प्रकाशक
मोहनलाल भट्ट
मन्त्री
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
हिन्दीनगर वर्धा
● ● ●

प्रथम संस्करण–३ •
मई १९६२
मूल्य–रु ३ /–
● ● ●

मुद्रक
मोहनलाल भट्ट
राष्ट्रभाषा प्रेस
हिन्दीनगर वर्धा
● ● ●

प्रकाशकीय

समितिकी यह प्रबल इच्छा थी कि रजत जयन्तीके अवसरपर ही यह रजत जयन्ती ग्रन्थ प्रकाशित हो सके किन्तु हमारे अनथक परिश्रमके बावजूद भी परिस्थितियोंने हमारा साथ न दिया। कई विद्वानोंसे सामग्री प्राप्त होनेमें काफी विलम्ब लगा और मुद्रण आदिके क्रममें भी कई ऐसी अपरिहार्य कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा जिसके कारण इस ग्रन्थके प्रकाशनमें अनपेक्षित विलम्ब हो गया। इसके लिए हम अपने सभी अग्रिम ग्राहकों एवं राष्ट्रभाषा प्रेमियोंसे क्षमा चाहते हैं।

आज हमें इस ग्रन्थको अपने ग्राहकों एवं राष्ट्रभाषा-प्रेमियोंके हाथोंमें देते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

प्रस्तुत ग्रन्थकी सामग्रीको पाँच खण्डोंमें विभक्त किया गया है।

पहले खण्डमें महाराष्ट्र गुजरात आन्ध्र कर्नाटक केरल तमिलनाडु ओड़िसा पंजाब मणिपुर, बंगाल और कश्मीर आदि प्रान्तोंकी हिन्दीको देनके सम्बन्धमें चर्चा की गई है। इस चर्चामें जहाँ-जहाँ सम्भव हुआ है वहाँ-वहाँ इन-इन प्रान्तोंकी भाषाओंका हिन्दीके साथ तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है।

दूसरे खण्डमें राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे हिन्दी साहित्यका इतिहास प्रस्तुत किया गया है। अबतक हिन्दी साहित्यके इतिहासमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा अपनायी गई काल-विभाजनकी पद्धतिको ही लिया जाता रहा है। प्रस्तुत लेखमें विद्वान लेखकने इस इतिहासको एक नई दृष्टिसे देखनेका प्रयत्न किया है। हिन्दीके व्यापक रूपके अन्तर्गत आनेवाली प्रत्येक विभागकी प्रकृति उसके साहित्यकी विशेष प्रवृत्तियों और लक्षणोंका सामान्य परिचय देकर उस साहित्यके विशिष्ट कवियों और लेखकोंकी विश्लेषणात्मक व्याख्या की गई है।

तीसरे खण्डमें राष्ट्रभाषाके निर्माण उसकी पारिभाषिक शब्दावली प्रादेशिक भाषाओंके सन्दर्भमें हिन्दीका शब्द-समूह, वैज्ञानिक विषयोंपर लिखे गए साहित्यकी परिचयात्मक जानकारी आदि विषयोंपर अधिकारी विद्वानों द्वारा सामग्री प्रस्तुत की गई है।

चौथे खण्डमे नागरी लिपि, उसकी उपादेयता, उसकी वैज्ञानिकता, उसकी प्राचीनता एव उसमें किये गए सुधारो आदिका विस्तृत विवेचन है।

पाँचवे खण्डमे राष्ट्रभाषा-प्रचारकी गतिविधियोकी अद्यतन जानकारी प्रस्तुत करनेका प्रयत्न किया गया है। राष्ट्रभाषा-प्रचारमे जो-जो सरकारी, गैर सरकारी प्रयत्न हुए, उन सबका विस्तृत विवेचन है।

सभी विषयोपर अधिकारी विद्वानो द्वारा सामग्री प्रस्तुत कराई गई है। इन सभी विद्वानोने लेख लिख भेजनेमें सहर्ष अपना जो अमूल्य सहयोग दिया, उसके लिए समिति उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है।

सारी सामग्रीको मुद्रणके लिए देनेसे पहले एक बार देख लेनेमे जिन कार्यकर्ताओका तथा सामग्रीको सुन्दर रूपमे मुद्रित करनेमे राष्ट्रभाषा प्रेसका जो सहयोग प्राप्त हुआ, उसके लिए समिति उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है। ग्रन्थको अधिक सुन्दर एव सुरुचिपूर्ण बनानेके हेतु चित्रोको तैयार करनेमे श्री रमणभाईका सहयोग प्राप्त हुआ। आवरणकी डिजाइन श्री विजय बन्हाणेने तैयार की, अत समिति उनके प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है। ऐसे बडे आयोजनोकी सफलताके पीछे जाने-अनजाने कई लोगोका सहयोग और परामर्श होता है, जिसके बिना कार्य पूरा होना कठिन हो जाता है। अत यहाँ ऐसे सभी लोगोके प्रति नाम देकर कृतज्ञता व्यक्त करना सम्भव नही है। हम उन सभीके प्रति अपनी सामूहिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। हम आशा तथा विश्वास भी करते हैं कि समग्र रूपसे हमारा यह प्रयास सभी राष्ट्रभाषा-प्रेमियोको रुचिकर एव उपयोगी प्रतीत होगा।

सयोजक,

रजत-जयन्ती-महोत्सव

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

पहला खण्ड

महात्मा गाँधी

प्रान्तीय भाषा-भाषियोंके अन्तर प्रान्तीय विनिमयके लिए एक
राष्ट्रभाषा समस्त भारतके लिए जरूरी है और
वह केवल हिन्दी ही हो सकती है।

—मो क गाँधी

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन

महाराष्ट्रकी हिन्दीको देन

डॉ विनयमोहन शर्मा

भारतके दक्षिणापथ (महाराष्ट्र) मे नव्य भारतीय आर्य-भाषा-कालके उपरान्त ईसाकी लगभग १३ वी शतीसे प्राय प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदायके सन्तोकी हिन्दी-वाणी उपलब्ध होती है। इसके धार्मिक, राजनैतिक आदि कारणोके अतिरिक्त हिन्दी-मराठी भाषाओका पारस्परिक निकट सम्बन्ध भी एक कारण है। मराठी भाषियोकी हिन्दी-सेवाका उल्लेख करनेके पूर्व हम इन दो भाषाओंके पारस्परिक सम्बन्धका भाषा-विज्ञानके आधारपर सिंहावलोकन करेगे।

हिन्दी-मराठी भाषाओका परस्पर सम्बन्ध

दोनो भाषाएँ एक ही आर्य-भाषा-परिवारकी है। यद्यपि आर्योंके मूल स्थानका ठीक-ठीक निर्णय नही हो पाया है तो भी ऐसा विश्वास है कि वे ईरानके मार्गसे शनै शनै भारतमें प्रविष्ट होते रहे है और लगभग ईसाके १५०० वर्ष पूर्व उनकी प्रथम टोली पजावमें प्रविष्ट हुई। वहाँ बसनेके उपरान्त वे धीरे-धीरे भारतके विभिन्न क्षेत्रोमें फैल गए और इस प्रकार वे जहाँ-जहाँ गए, अपनी भाषा भी स्वभावत लेते गए। भाषा-विज्ञानियोने उनके भाषाविकास-क्रमको मुख्यत तीन कालोमें विभाजित किया है—

(१) **प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा-काल** (लगभग १५०० ईसा पूर्वसे लगभग ५०० ईसा पूर्व तक) जिस कालमें वैदिक और लौकिक सस्कृतका विकास हुआ।

(२) **मध्य भारतीय आर्य-भाषा काल** (लगभग ५०० ईसा पूर्वसे १००० ई० तक) यह पालि, प्राकृत और अपभ्रश भाषाओके उदय और विकासका काल है।

(३) **नव्य भारतीय आर्य-भाषा-काल** (इसका प्रारम्भ १००० ई० सन् से होता है।) यह वर्तमान आर्य भाषाओके उदयका काल है। मराठी और हिन्दीके उदयका प्राय यही काल है।

मराठीकी उत्पत्ति महाराष्ट्री—महारठ्ठी—महरठ्ठी—मर्हाठी—मराठीसे लगाई जाती है। इसे 'देसी' और 'प्राकृत' भी कहा गया है। इसमें पूर्व वैदिक सस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रश-सभीके थोड़े बहुत अश विद्यमान होनेसे इसकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कुछ विद्वानोमें मतभेद उपस्थित हो गया है।

उत्पन्न भाषाओंके लिए सीमित हो गया है। जो शब्द मूलत हिन्दी वासियोका, बोधक है, वह अर्थ-सकोचके नियमानुसार हिन्दके विशिष्ट भू-भागकी भाषाका परिचायक हो गया है। डा० ग्रियर्सनने हिन्दीके दो मुख्य भेद किये है, (एक)—पश्चिमी हिन्दी और (दो)—पूर्वी हिन्दी। पश्चिमी हिन्दीके अन्तर्गत खडी बोली या हिन्दुस्थानी, बागरू, कन्नौजी, ब्रज और बुन्देलीका समावेश उन्होने किया है, और पूर्वी हिन्दीके अन्तर्गत अवधी, बघेली और छत्तीसगढीका। उन्होने मागधी अपभ्र शसे उत्पन्न बिहारीको हिन्दीसे पृथक् मानकर उसमें भोजपुरी, मैथिली और मगही को सम्मिलित किया है। इसी प्रकार उन्होने राजस्थानीको भी हिन्दीसे पृथक् घोषित कर उसका पृथक् ही परिवार बना दिया है। डा० भाण्डारकरने हिन्दीके पश्चिमी और पूर्वी भेद स्वीकार नही किए। दोनोको एक ही नाम हिन्दीसे अभिहित किया है। उन्होने राजस्थानीको भी हिन्दीकी ही उपभाषा स्वीकार किया है। आधुनिक भाषा-वैज्ञानिक बिहारी भाषाओको हिन्दीके अन्तर्गत माननेके पक्षमें होते जा रहे है।

हिन्दीके प्रादुर्भाव कालके सम्बन्धमें विद्वानोमे मतभेद है, परन्तु एकाध मतको छोडकर सभी मानते है कि उसका विकास अपभ्र शोंसे ही हुआ है और उसका आदिकाल लगभग १००० ई० है। यो ईसा सन्के लगभग २०० वर्ष पूर्वसे भी उसके विकास-चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे हैं। परन्तु उस कालकी रचनाओको हिन्दीका आभास देनेवाली अपभ्र श कृतियाँ मानना चाहिए।

हिन्दी-मराठीकी परस्पर तुलना

शब्द-निधि दोनो भाषाओमें प्राचीन और अर्वाचीन आर्य द्रविड, अरबी, फारसी, अँग्रेजी, डच, पुर्तगाली आदि भाषाओके शब्द है। परन्तु दोनोका मूल सस्कृत भाषा-परिवार होनेसे दोनोमें सस्कृतके तत्सम और तद्भव शब्दोकी प्रचुरता है। खडी बोली हिन्दीकी प्रवृत्ति तत्समताकी ओर अधिक है और मराठीकी तद्भवताकी ओर। मराठीकी विशेषता यह है कि वह उधार लिये हुए शब्दोको तत्सम रूपमे न रखकर अपने रगमें रँग लेती है। उदाहरणके लिए मजमून (अरबी), गजब (अरबी), मजहब (अरबी), मशहूर (अरबी), सिवा (अरबी), स्टेशन (अँग्रेजी), शब्द मराठीमें क्रमश मजकूर, गहजब, महजब, महशूर, शिवाय, ठेसन बन गए है। हिन्दीकी विभाषाओ—ब्रज, अवधी, बुन्देली, राजस्थानी, भोजपुरी आदिमें मराठीके समान ही विदेशी शब्दोको अपनी प्रवृत्तिमें रँग लेनेकी वृत्ति पाई जाती है।

हिन्दी-मराठीकी प्रवृत्तियाँ हिन्दी और मराठी-दोनो भाषाओकी लिपि देवनागरी अथवा बालबोध है। दोनोकी वर्णमालामें समानता है। व्यजनोमें ("ल"के साथ) 'ळ' व्यजन ध्वनि मराठीमें अधिक कही जाती है। परन्तु यह कथन पूर्वी हिन्दीके सम्बन्धमें लागू होता है। पश्चिमी हिन्दीकी मालवी, निमाडी तथा राजस्थानी उपभाषाओमें यह 'ळ' ध्वनि है।

कर्ता-कारक एकवचन अकारान्त सज्ञा-शब्द प्राचीन मराठीमें 'उ' और ओकारान्त होते है। जब उकारान्त होते है तब पूर्वी हिन्दीका अनुसरण करते है और जब ओकारान्त होते है तब पश्चिमी हिन्दीका। पश्चिमी हिन्दीमें भी कही-कही अकारान्त सज्ञा शब्दोका कर्ता एकवचनमें उकारान्त रूप मिलता है।

एक मतके अनुसार इसका जन्म पूर्व वैदिकसे, दूसरे मतके अनुसार संस्कृतसे, तीसरे मतके अनुसार पालिसे, चौथे मतके अनुसार महाराष्ट्री प्राकृतसे और अन्तिम मतके अनुसार महाराष्ट्री अपभ्रंशसे हुआ है। एक दूसरा मत यह भी है कि यह मूलतः पक्षभाषा है अर्थात् द्रविड भाषापर आधारित पर संस्कृत तथा प्राकृत एवं अपभ्रंशसे प्रभावित है। इसमें सन्देह नहीं कि मराठी पूर्ववैदिक, संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंशके मार्गसे ही अवतरित हुई है। अतः इसमें इन सभी भाषाओंके अवशेष विद्यमान रह सकते हैं। इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मराठीका पूर्व वैदिक भाषा परिवारसे सम्बन्ध है। मराठीका सीधा जन्म उस परिवारकी किस भाषा-शाखासे हुआ है, इसे जाननेके लिए हमें उसके शब्द भण्डारकी ही नहीं उसकी धातु, प्रत्यय और प्रयोग प्रक्रियाकी भी परीक्षा करनी होगी क्योंकि ये ही भाषाके भीतरी उपकरण होते हैं। ये जिस भाषासे अधिक मेल खायेंगे वही उसकी जननी मानी जाएगी। मराठी-भाषियोंमें उसकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें दो ही मत प्रमुख हैं (एक) मराठीका जन्म सीधे महाराष्ट्री प्राकृतसे हुआ है। डा. ब्लाख, ग्रियर्सन आदि इस मतके पोषक हैं। (दो) मराठीका जन्म सीधे महाराष्ट्री अपभ्रंशसे हुआ है। डा. तुलपुले, डा. कोलते आदि इस मतके समर्थक हैं। दूसरा मत ही आधुनिकतम है और मान्य है। क्योंकि यह वर्तमान आर्य भाषाओंके विकास क्रमसे मेल खाता है। प्राकृतों और नव्य आर्य भाषाओंके मध्यमें अपभ्रंशोंका काल माना है, इसे प्रायः सभी भाषा-वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। यह भी मान्य सिद्धान्त है कि भाषाका विकास क्रमशः होता रहता है। अतः प्राकृतोंका अपभ्रंशोंमें रूपान्तरित होना विकास-क्रमकी स्वाभाविक क्रिया है और अपभ्रंशोंका ही विकास आधुनिक आर्य भाषाओंके रूपमें हुआ है। जैन अपभ्रंश साहित्यके प्रकाशनके पश्चात् मराठीके जन्मके इतिहासकी क्रमिक शृंखला जुड जाती है। उसकी उत्पत्तिका काल आठवीं शताब्दी माना जाता है। उसके प्रथम चिह्न मैसूरके श्रवणबेलगोलाके शक ९८५ के शिलालेखमें मिलते हैं। वहाँ गोमटेश्वरकी प्रस्तर-मूर्तिके चरणोंपर उत्कीर्ण दो पंक्तियाँ हैं—

> “श्री चामुण्डराजे करवियले।
>
> श्री गंगराजे सुत्ताले करवियले।”

मराठीकी उपबोलियोंमें हार्नलेने कोकणी, दक्षिणी और रत्नागिरीका उल्लेख किया है परन्तु डा. गुणे इनमें और मूल मराठीमें जो पूनाके आसपास बोली जाती है कोई भेद नहीं देखते। मराठी क्षेत्रकी सीमाएँ उत्तरमें विन्ध्य और सतपुडाका भाग, पूर्व और दक्षिण-पूर्वमें तैलंगाना और छोटा नागपुर तथा दक्षिणमें कन्नड है। मराठीका आदि ग्रन्थ मुकुन्दराजका 'विवेकसिन्धु' माना जाता है, जिसकी रचना शक संवत् ११११ में हुई है।

हिन्दीकी उत्पत्ति हिन्दी शब्द फारसी है। इसका उल्लेख अति प्राचीन आर्य भाषा ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। सम्भवतः भारतमें मुसलमानोंके आक्रमणके पूर्व फारसी भाषा भाषियोंने 'सिन्धु' को 'हिन्दु' कहना प्रारम्भ कर दिया होगा क्योंकि फारसीमें 'स' का उच्चारण 'ह' होता है। सिन्धुका ही हिन्दु बन गया है जो सिन्धुके देशका द्योतक हो गया और जो हिन्दमें रहते थे उन्हें 'हिन्दी' कहा जाने लगा। कालान्तरमें हिन्दियोंकी भाषाका नाम हिन्दी पड गया। यों समस्त हिन्द-वासीके लिए हिन्दीका प्रयोग हो सकता है परन्तु हिन्दीका प्रयोग उत्तरापथके मध्य देशकी शौरसेनी और अर्द्धमागधी, मागधी अपभ्रंशोंसे

मराठी	बुन्देली
काय रे, कसा बसला आहे ?	काय रे, कैसो बैठो हे ?

इसी प्रकार मराठी 'आपण' पश्चिमी हिन्दी (बुन्देली) 'अपन' के सदृश है जो खडी बोलीमे भी प्रयुक्त होने लगा है। यथा—

मराठी—चला आपण चलू। **बुन्देली**—चलो, अपन चले।

मराठीमे राजस्थानीके समान 'न' के स्थानपर 'ण' की बहुलता है। मराठी की 'ळ' ध्वनि राजस्थानीमे भी है जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

मराठीका बुन्देलीसे बहुत कुछ सामीप्य दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि वह अपने क्षेत्रके उत्तरपूर्वमें उसके सम्पर्कमें प्रारम्भसे रही है। दोनोके साम्यके कतिपय उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

मराठीकी 'होता' भूतकालिक क्रिया बुन्देलीमें एकवचनमें 'हतो' है और बहुवचन में 'हते ?'। मराठीमें उसका बहुचचन रूप 'होते' है। यथा—

मराठी एकवचन— राम जात होता।
बुन्देली ,, राम जात हतो।
मराठी बहुवचन— मुलगे जात होते।
बुन्देली ,, मोडा जात हते।

प्राचीन मराठीमें 'नोहे' क्रिया खडी बोली 'नही' है' के अर्थमें प्रयुक्त होती है। बुन्देलीमें इसी अर्थमें 'नोही' प्रचलित है।

हिन्दी-मराठी साम्यके अनेक उदाहरण दिए जा सकते है, किन्तु यह लेखका मुख्य विषय न होनेसे उसके कतिपय उदाहरण मात्र प्रस्तुत किए गए है। फिर भी सक्षिप्त विवेचनसे स्पष्ट हो जाता है कि ये दो आर्य भाषाऐ बहुत अधिक सन्निकट है।

हिन्दीपर मराठीका प्रभाव जहाँ मराठी हिन्दी भाषी क्षेत्रसे घिरी हुई है, वहाँ उसका प्रभाव इस क्षेत्रकी हिन्दीपर स्वभावत पडा है। यह प्रभाव नागपुर, छत्तीसगढ़ विदर्भ और हैदराबाद राज्य-क्षेत्रोमें अधिक परिलक्षित होता है। नागपुर और विदर्भमे जो व्यावहारिक हिन्दी बोली जाती है,उसे हिन्दी-मराठीके प्रमुख केन्द्र-स्थान नागपुरके नामपर 'नागपुरी हिन्दी' कहा जाता है। डा० ग्रियर्सनने अपनी 'लिंग्वि-स्टिक सर्वे भाग ६' में नागपुरी हिन्दीका वर्णन किया है। उन्होने इसका क्षेत्र नागपुर जिला बतलाया है और इसके बोलनेवालोम उन्हीको सम्मिलित किया है, जिनकी मातृभाषा हिन्दीका कोई रूप है। उन्होने नागपुरी हिन्दीका जो उदाहरण दिया है, वह ऐसे परिवारका है जिसकी मातृभाषा बुन्देली है। ग्रियर्सन ने यही भूल की है। नागपुरी हिन्दीका क्षेत्र नागपुर ही नही, विदर्भ तक फैला हुआ है और इसे बोलनेवाले हिन्दी-भाषा-भाषी ही नही, अहिन्दी-भाषा-भाषी भी है। वास्तवमें यह व्यापारी क्षेत्र तथा बाजारमें विभिन्न भाषा-भाषियोके मध्य विचारोके आदान-प्रदानकी बोली है।

मराठी क्षेत्रमें हिन्दी-सचारके कारण

दक्षिणापथमें हिन्दीका प्रवेश मध्यदेशीय भाषा-विकासकी एक श्रृखला ही है। महाराष्ट्रमे

मराठी और पश्चिमी भाषाओंके वर्ण-उच्चारणोंमें प्राय समानता रहती है। ब का उच्चारण ह्रस्व व् ही होता है। बगलाके समान ओ नही।

ब और व का भेद मराठीमें पश्चिमी हिन्दीकी खडी बोली राजस्थानी आदिके समान स्पष्ट दिखाई देता है।

मराठीमें च ज झ का जिस प्रकार उच्चारण होता है उस प्रकार पूर्वी भाषाओंमें नही होता। मराठीमें इनके शुद्ध तालव्य और दन्त्य तालव्य उच्चारण मिलते हैं। मराठीमें दन्त्य और मूर्धन्य—स ष और श वर्ण विद्यमान हैं। पश्चिमी हिन्दीमें मे तीनो वर्ण है पर मूर्धन्य ष का उच्चारण ख होता है। पूर्वी हिन्दी (अवधी) में श के स्थानपर स ही अधिक प्रयुक्त होता है। बिहारी और सुदूर पूर्वकी बगलामे स के स्थानपर श का साम्राज्य है। पूर्वी हिन्दीके ग्रन्थोंमें ष मिलता है पर उसका उच्चारण पश्चिमी हिन्दीके समान ख होता है।

ऋ का उच्चारण पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दीम रि होता है और मराठीमें रु।

मराठीमे तीन—पुल्लिंग स्त्रीलिंग और नपुसकलिंग होते हैं। राजस्थानी डिंगलके प्राचीन ग्रन्थोमे स्त्रीलिंग और पुलिंगके अतिरिक्त कही-कही नपुसकलिंगके उदाहरण भी मिलते है।

ऊपर कहे अनुसार आकारान्त मराठी सज्ञापदका रूप एकवचनमे खडी बोली और भोजपुरीके समान पर बहुवचनमे खडी बोली पश्चिमी हिन्दीके समान होता है। यथा—

एकवचन

घोडा (मराठी) भोजपुरी—घोडा खडी बोली—घोडा

बहुवचन

घोडे (मराठी) भोजपुरी—घोडन खडी बोली—घोडे और पूर्वी हिन्दी—घोडन्ह।

मराठी सम्बन्धवाचक सर्वनामोका पश्चिमी हिन्दीके समान एकवचनमे जो से अन्त होता है पर बहुवचनमे वे पूर्वी हिन्दी भोजपुरीका अनुकरण करते हैं। यथा—

एकवचन

मराठी—जो पश्चिमी हिन्दी—जो पूर्वी हिन्दी—जे

बहुवचन

मराठी—जे पश्चिमी हिन्दी—जो पूर्वी हिन्दी—ज

मराठीमें मागधीसे उद्भूत बिहारी बगला आदि भाषाओंका भूतकालीन ल प्रत्यय पाया जाता है।

मराठी (भूतकाल) भोजपुरी (भूतकाल)
 गेला गइल

मराठीमें कैसा कैसे ऐसा जो जैसे ऐसे तैसे जैसी पश्चिमी हिन्दीके समान ही प्रयुक्त होते हैं।

मराठीमें प्रश्नवाचक सर्वनाम काय पश्चिमी हिन्दीकी बुन्देलीके समान काय ही है। यथा—

मराठी	बुन्देली
काय रे, कसा बसला आहे ?	काय रे, कैसो बैठो है ?

इसी प्रकार मराठी 'आपण' पश्चिमी हिन्दी (बुन्देली) 'अपन' के सदृश है जो खडी बोलीमें भी प्रयुक्त होने लगा है। यथा—

मराठी—चला आपण चलू। **बुन्देली**—चलो, अपन चले।

मराठीमे राजस्थानीके समान 'न' के स्थानपर 'ण' की बहुलता है। मराठी की 'ळ' ध्वनि राजस्थानीमे भी है जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

मराठीका बुन्देलीसे बहुत कुछ सामीप्य दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि वह अपने क्षेत्रके उत्तरपूर्वमे उसके सम्पर्कमें प्रारम्भसे रही है। दोनोके साम्यके कतिपय उदाहरण नीचे दिए जाते है—

मराठीकी 'होता' भूतकालिक क्रिया बुन्देलीमे एकवचनमें 'हतो' है और बहुवचन मे 'हते'। मराठीमे उसका बहुवचन रूप 'होते' है। यथा—

मराठी एकवचन— राम जात होता।
बुन्देली ,, राम जात हतो।
मराठी बहुवचन— मुलगे जात होते।
बुन्देली ,, मोडा जात हते।

प्राचीन मराठीमें 'नोहे' क्रिया खडी बोली 'नही' है' के अर्थमें प्रयुक्त होती है। बुन्देलीमें इसी अर्थमें 'नोही' प्रचलित है।

हिन्दी-मराठी साम्यके अनेक उदाहरण दिए जा सकते है, किन्तु यह लेखका मुख्य विषय न होनेसे उसके कतिपय उदाहरण मात्र प्रस्तुत किए गए है। फिर भी सक्षिप्त विवेचनसे स्पष्ट हो जाता है कि ये दो आर्य भाषाऍ बहुत अधिक सन्निकट है।

हिन्दीपर मराठीका प्रभाव जहाँ मराठी हिन्दी भाषी क्षेत्रसे घिरी हुई है, वहाँ उसका प्रभाव इस क्षेत्रकी हिन्दीपर स्वभावत पडा है। यह प्रभाव नागपुर, छत्तीसगढ विदर्भ और हैदराबाद राज्य-क्षेत्रोमें अधिक परिलक्षित होता है। नागपुर और विदर्भमें जो व्यावहारिक हिन्दी बोली जाती है,उसे हिन्दी-मराठीके प्रमुख केन्द्र-स्थान नागपुरके नामपर 'नागपुरी हिन्दी' कहा जाता है। डा० ग्रियर्सनने अपनी 'लिंग्विस्टिक सर्वे भाग ६' मे नागपुरी हिन्दीका वर्णन किया है। उन्होने इसका क्षेत्र नागपुर जिला बतलाया है और इसके बोलनेवालोम उन्हीको सम्मिलित किया है, जिनकी मातृभाषा हिन्दीका कोई रूप है। उन्होने नागपुरी हिन्दीका जो उदाहरण दिया है, वह ऐसे परिवारका है जिसकी मातृभाषा बुन्देली है। ग्रियर्सन ने यही भूल की है। नागपुरी हिन्दीका क्षेत्र नागपुर ही नही, विदर्भ तक फैला हुआ है और इसे बोलनेवाले हिन्दी-भाषा-भाषी ही नही, अहिन्दी-भाषा-भाषी भी है। वास्तवमें यह व्यापारी क्षेत्र तथा बाजारमे विभिन्न भाषा-भाषियोके मध्य विचारोके आदान-प्रदानकी बोली है।

मराठी क्षेत्रमें हिन्दी-सचारके कारण

दक्षिणापथमें हिन्दीका प्रवेश मध्यदेशीय भाषा-विकासकी एक श्रृंखला ही है। महाराष्ट्रमें

उसका प्रचार मध्यदेशके आर्योंकि उसमें प्रवेशका ही परिणाम है। दक्षिणापथमें जानेवाले आर्य बराबर व्यवहारमें स्वभावतः मध्यदेशकी किसी भाषाका व्यवहार करते रहे हैं और वही समय-समयपर अन्तर्प्रान्तीय व्यवहारकी भाषा बनती रही है। राष्ट्रकूट शासकोंके कालमें मान्यखेट साहित्यका केन्द्र था। वहाँ पुष्पदन्तके णायकुमार चरिउ में हिन्दीका आभास देनेवाली पक्तियाँ मिलती हैं—

सोहइ जलहरू सुरधणु छायए।

सोहइ माणुसु गुण सम्पत्तिए॥

महाराष्ट्रके चालुक्य राजा सोमेश्वरके ज्ञानकोष अभिलषित चिन्तामणि में राग रागिनियोंके प्रसंगमें हिन्दीकी पंक्ति भी दी गई है—

"नन्द गोकुल आयो कान्हु को गोपीजनें वधिहेली रे।"

इस ग्रन्थका रचनाकाल विक्रम सम्वत् ११८४ है।

पहले कहा जा चुका है कि दक्षिणापथमें हिन्दी-प्रचारके राजनैतिक धार्मिक आदि कारण रहे हैं जिनपर विहंगम दृष्टि डालना आवश्यक है।

राजनैतिक कारण

ईसाकी पूर्व ३२५–२६२ शतीमें मौर्य सम्राट् अशोकका राज्य-विस्तार दक्षिण तक था। उसके पश्चात् ईसाकी चौथी-पाँचवीं शतीमें यहाँका अधिकांश भाग गुप्त साम्राज्यमें सम्मिलित था। ईसाकी सातवीं शतीमें हर्षवर्धनने भी यहाँ राज्य किया। अतः जो यह कहते हैं कि मुसलमानोंने मध्यदेशकी भाषा हिन्दीको दक्षिणापथमें प्रचारित किया वे भ्रान्तिमें हैं। आर्य भाषाएँ उनके दक्षिण-प्रवेशके पूर्वसे ही वहाँ पहुँच चुकी थीं और जनता उन्हें समझती थी। मुसलमानोंके सम्पर्कसे वहाँ हिन्दीकी शैली विशेष पल्लवित हुई। बहमनी राजाओंके राज्यमें हिसाब-किताब हिन्दी भाषामें ही रखा जाता था। मुसलमान शासकों तथा हिन्दू राजाओंने स्थानीय भाषाओंके साथ-साथ हिन्दीको भी प्रोत्साहित किया था। हिन्दू शासकोंमें शहाजी तथा शिवाजी महाराजके समय हिन्दी कवियोंका बड़ा मान था। शहाजीकी सभामें प्रान्त प्रान्तके कवि पहुँचा करते और अपनी काव्य रचनाओंसे उन्हें प्रसन्न किया करते थे। उनके यहाँ जयराम नामक राजकवि हिन्दीकी अच्छी कविता करता था। शिवाजी महाराजकी सभामें भूषणके अतिरिक्त गंगा और मतिराम नामक कवि भी थे। स्वयं शिवाजी भी कभी-कभी हिन्दीमें पद-रचना करते थे। उनका एक पद उपलब्ध है—

"जय ही महाराज गरीब निवाज।

अम्बा कमीना कहलाता हूँ साहिब तेरी लाज।

मैं सेवक तू सेवा मांगूँ इतना है सब काज॥

छत्रपति तुम्हें उबार शिव इतना हमारा अर्ज।

महाराष्ट्रमें ललित-गोपाल-लोकनाटकोंका चलन रहा है। उसमें स्वांगके अभिनेता हिन्दीका भी प्रयोग किया करते थे। पेशवा कालमें लावनीबाजोंकी धूम थी। वे मराठीके साथ हिन्दीमें भी लावनियाँ गाते थे।

महाराष्ट्रकी हिन्दीको देन

आर्थिक कारण उत्तरापथ और दक्षिणापथका व्यापार-सम्वन्ध प्राचीन कालसे चला आ रहा है। अत उत्तर भारतकी मध्यदेशीय भापा दोनो दिशाओकी जनताको 'एक' करती रही है। ईसा शतीके पूर्वसे ही पैठणके श्रेष्ठी और महाजन देशभरमें सचार करते रहे है और मध्यदेशीय भापाका व्यवहार करते रहे है।

धार्मिक कारण उत्तर तथा दक्षिणकी जनताको निकट लानेका श्रेय धर्म तथा धर्माचार्योको है। आठवी शताव्दीमें शकराचार्य सुदूर दक्षिणमे उत्पन्न हुए, पर उन्होने अखिल भारतमे सचार कर धर्म-स्थापना की। रामानुजाचार्य, निम्वार्क, मध्वाचार्य आदिने उत्तर भारतमें हरि-सन्देश सुनाया। यह तभी सम्भव हो सका जव उन्होने मध्यदेशकी व्यापक भापाको अपने विचारोका माध्यम वनाया। वे तत्कालीन लोकभापाको अपनाकर ही जनताके कण्ठहार वन सके। महाराष्ट्रके सन्तोने भी जव उत्तर भारतकी यात्रा की तो वहीकी भापा अपनाई। उत्तरके नाथोने जव दक्षिणमे सचार किया तो महाराष्ट्रमे मराठी तो अपनाई ही, अपनी भाषाका भी प्रचार किया। कवीरने भी दक्षिणमें प्रवास किया था। उनकी साखियाँ आज भी महाराष्ट्रमे चावसे गाई जाती है। इस प्रकार उत्तर और दक्षिणके सन्तो-भक्तोके आवागमनने भी हिन्दीको महाराष्ट्रमे अनायास ही सचारित किया। जनता रामकृष्णकी जन्मभूमि और गगा-जमुना जैसी पवित्र नदियोका सान्निध्य चाहती रही है और इस प्रकार उत्तर भारतकी उसकी यात्राओने उसे वहाँकी व्यापक भापासे सहज परिचित करा दिया।

अव हम ऐतिहासिक क्रमसे मराठी भापी सन्तोकी हिन्दी-सेवाका उल्लेख करेगे।

यादव-काल महाराष्ट्रमें मुसलमानोके आक्रमणके पूर्व यादव राजा देवगिरिको राजधानी वनाकर साहित्य और कलाको प्रोत्साहन दे रहे थे। उस समय दिल्लीमे खिलजी वश राज्य कर रहा था। वहुत उथल-पुथलके पश्चात् सन् १३१८ में महाराष्ट्रमे यादव राजाओका राज्य समाप्त हो गया और देवगिरिपर मुस्लिम झडा फहराने लगा।

महाराष्ट्रमें सवसे प्राचीन हिन्दी वाणी महानुभाव पन्थके प्रवर्तक चक्रधरकी प्राप्त होती है। इनका समय सन् ११९४ से १२७३ है। ये जन्मसे गुजराती थे पर महाराष्ट्रको अपना धर्म-प्रचारका केन्द्र बनाकर देश-भ्रमण करते थे। उनकी शिष्या महदाइसा अपने गुरुकी अपेक्षा अधिक परिष्कृत हिन्दीमें पद गाती थी। उनके एक पदकी पक्तियाँ है—

> **"नगर द्वार हों मिच्छा करों हो, बापुरे मोरी अवस्था लो।**
> **जिहाँ जावों तिहाँ आप सरिसा कोउ न करी मोरी चिंता लो।**
> **हाट चौहाट पड रहूँ हो मॉग पच घर भिच्छा**
> **बापुड लोक मोरी अवस्था कोउ न करी मोरी चिंता लो।"**

इनका रचनाकाल शके १२३० के आसपास है। दामोदर पण्डित भी महानुभावी सन्त थे जिनकी साहित्य, सगीत और दर्शनमे अच्छी गति थी। इनकी हिन्दीकी चौपदियाँ प्रसिद्ध हैं। एक चौपदी है—

> **"नवनाथ कहै सो नाथ पथी, जगत कहे सो जोगी।**
> **विश्व बुझे तो कहि बैरागी, ज्ञान बुझै सो भोगी।"**

इनका समय शक-सवत् ११९४ के आसपास है।

सन्त ज्ञानेश्वरका नाम महाराष्ट्रीय सन्तोंमें मूर्धन्य स्थानपर है। इनकी ज्ञानेश्वरी का आज भी घर-घर पाठ होता है। इनका जन्म शक-सम्वत् ११९७ है। इनका भी हिन्दीमें एक पद प्राप्त होता है जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है—

सब घट देखो माणिक मौक्तिक कैसे कहूँ मैं काला बकला।
बम्बारंसे न्यारा होई, लेना एक और देना दोई॥"

इन्होंने नामदेवके साथ उत्तर भारतकी यात्रा की थी। अतएव इनका हिन्दीमें पद-रचना करना असंगत नहीं है। ज्ञानेश्वरकी बहिन मुक्ताबाईने भी हिन्दीमें पद कहे है।

महाराष्ट्रमें मुसलमानोंके आक्रमणके पश्चात् हिन्दी यादव कालमें जिन सन्तोंने हिन्दी-पद रचनाकी उनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। उसके पश्चात् आविर्भूत होनेवाले सन्तोंकी हिन्दी सेवाका परिचय आगे दिया जाता है।

नामदेव यद्यपि नामदेव ज्ञानेश्वरके सम-सामयिक थे तो भी इनका रचनाकाल ज्ञानेश्वरकी मृत्युके पश्चात् ही मुख्यतः प्रारम्भ होता है। इन्होंने ज्ञानेश्वरकी समाधिके उपरान्त महाराष्ट्र त्याग कर उत्तर भारतके पंजाबमें ही अपना अधिक समय बिताया। इसलिए इनके हिन्दीके पद उत्तर भारतमें बहुत अधिक प्रचलित है। सिक्खोंके आदि ग्रन्थमें वे प्रचुर मात्रामें संकलित है। इनका जन्म सम्वत् ११९२ में हुआ था। इनके पदोंकी भाषा अधिक साफ है। उदाहरणके लिए एक पद दिया जाता है—

"मोहि लागति तालाबेली॥
बछरे बिन गाइ अकेली॥
पानीआ बिनु मीन तलफै॥
ऐसे राम नामा बिनु बापुरो नामा॥
जैसे गाइका बाछा छूटला॥
थन चोखता माखनु घूटला॥
नामदेऊ नाराइनु पाइआ॥"

हिन्दीमें निर्गुण भक्तिके प्रथम उन्नायक नामदेव ही है। कबीरने भी इनकी स्तुति की है और यत्र-तत्र इनकी भाव-छाया ग्रहण की है।

त्रिलोचन इनकी गणना प्रसिद्ध सन्तोंमें की जाती है। गुरु ग्रन्थ साहबमें इनके चार पद संग्रहीत है जो विभिन्न राग-रागिनियोंमें है। किम्बदन्तीके अनुसार ये बार्सीके रहनेवाले थे। इनकी भाषामें नामदेवके समान स्पष्टता और प्रवाह नहीं है।

"बर महेषि हाथे लोहि आणिकले
राम के नाम अदवि त्रिलोचन रामजी।"

और भी—

"अन्ति कालि जो स्त्री सिमिरे,
ऐसी चिन्ता महि जे मरे
बैसवा होइ बलि बलि अवतरे।

ज्ञानेश्वर महाराज

गोदा महाराज ये नामदेवके पुत्र है। इन्होने मराठीके अतिरिक्त हिन्दीमे भी पद लिखे हैं। इन्होने मराठीके अभग छन्दका हिन्दीमे प्रयोग किया। साथ ही उसमें अपने पिताके जीवनको गूंथनेके कारण हिन्दीमें इन्हे खडी बोलीमे आख्यान-काव्य लिखनेका प्रथम श्रेय दिया जा सकता है।

सेनानाई इनकी भी प्रसिद्ध सन्तोमें गणना है। कोई इन्हे उत्तर भारतीय मानते है पर अधिक प्रमाण इनके महाराष्ट्रीय होनेके ही है। गुरु ग्रन्थ साहबमें इनका एक पद मिलता है जिसमे कहा गया है—

"राम भगति रामानन्द जानी,
पूरन परमानन्द बखाने।
मदन मूरति तारि गोविन्दे,
सेन भजे भज परमानन्दे।"

सेनाके एक-दो हिन्दी पद समर्थ वाग्देवता मन्दिर धूलियाकी हस्तलिखित पोथीसे प्राप्त हुए है।

भानुदास ये महाराष्ट्रके सरस कृष्ण-भक्त कवि है। इनकी एक प्रभाती इस प्रकार है—

"जागो हो गोपाल लाल जसोदा बलि ज्याई, जननी बलि ज्याई,
उठो तात प्रात भयो रजनिको तिमिर गयो,
टेरत सब गुवाल बाल मोहना कन्हाई।
सघन गगन चन्द मन्द उठौ आनन्द कन्द,
प्रकटित भयो हस-यान, कुमुदिनि सुखदाई।"

एकनाथ ये महाराष्ट्रमें भागवत-धर्म रूपी प्रासादके दृढ स्तम्भ कहे जाते है। इनका समय पन्द्रहवी और सोलहवी शताब्दीके मध्य है। इनके हिन्दी पद गौलज, मुडा, नानक, भारूड शीर्षकोके अन्तर्गत लिखे गए है। इनकी भाषा सन्तोकी अटपटी वाणीका ही रूप है। ब्रज, खडी बोलीके साथ-साथ अरबी, फारसी और गुजरातीकी भी छटा है। इनके पदोमे जहाँ सरसता है ("मैं दधि बेचन चली मथुरा, तुम केवो थारे नन्दजीके छोरा) वहाँ ढोगियोपर तीखा व्यग्य भी है—

"सन्यास लिया, भाशा बढ़ाया, मीठा खाना मगता है,
भूल गया अल्लाका नाम यारो जमका सोटा बजता है।"

दासो पन्त इनका काल सन् १५५१ से १६१५ तक माना जाता है। ये दत्तोपासक थे। इनके कुछ हिन्दी-भजन मिलते हैं।—

"सुन रे गुइयाँ हमारी बात
धन जोबन कोई न आवे सगात,
किसकी दुनिया किसकी मवेसी
दिन दो रहेंगे फिर उठ चले परदेसी।"

अनन्त महाराज इनके कालके विषयमें निश्चय रूपसे कुछ नही कहा जा सकता। परन्तु ये सम्भवत एकनाथके पश्चात् ही आविर्भूत हुए है। इनकी भाषा अनुप्रास, यमक और विरोधाभास अलकारोंसे गुम्फित हैं। अुदाहरणार्थ—

"न्यारी न हो के न्यारी मे हूँ
न्यारी न्यारी सब न्यारी हूँ।

माधवदास : ये विदर्भके रहनेवाले सन्त थे। अनुमान है कि शक सम्वत् १६०० में इनका आविर्भाव हुआ होगा। इनके दो हिन्दी पद प्राप्त हुए हैं। एक इस प्रकार है—

"सालबराम सुनो विनती मोरी
तव बरदान दया कर पाऊँ।
प्रात समै उठ मज्जन कर कर
प्रेम सहीत असनान कराऊँ।
चन्दनकी धुप दिप तुलसी दल,
बरं बरके फूल चढ़ाऊँ।
आप बैठे भरपत (?) सिंघासन
घंटा संख मिरदंग बजाऊँ।
मेघ बुंद चरनामृत पाऊँ,
सिरपरकी बैकुंठ पठाऊ।
जो कछू करत रसोन दिन भीतर,
भोग लगाकर भोजन पाऊँ।
जो कछु पान दियो कृष्णा को
करका लनके सात बढ़ाऊँ।
अब कब नाहीं मोहेका (?) के
देवनके दरबार मनुपाऊँ।
माधोदास कहे कर जोरे,
सब सन्तनकी बात चलाऊँ।"

श्यामसुन्दर : इनका समय शक सम्वत्‌की १६ वीं शताब्दी अनुमाना जाता है। इनका एक हिन्दी पद मिला है, जो मेम है।

जन जसवन्त : ये गोस्वामी तुलसीदासके महाराष्ट्रीय शिष्य थे। ये शक सम्वत् १५१ के लगभग आविर्भूत हुए। इन्होंने तुलसीदाससे प्रत्यक्ष दीक्षा लेनेके लिए काशी प्रवास किया। इनकी मृत्युके सम्बन्धमें एक दोहा प्रसिद्ध है—

"संवत सोलसौ थी मोतरा रवितनया के तीर
फागुन सुद सप्तमी जसवन्त त्यजे शरीर।

इनकी हिन्दी-रचनाका उदाहरण इस प्रकार है—

"कोई कहो, कोई निन्दो कोई कैसो कहो रे।
रघुनाथ सामे प्रीत बांधी होय कैसो होय रे।
जसवन्तने मोल बाँधी मीर था भरपूर रे।

रामदास स्वामी

रामचन्द्रने कूर्म होकर राख लीनी पीठ रे।
चन्द्र सूर्य जीनी जाते स्तम्भ बिन आकास रे।
जल्ल पर पाषाण तारे क्यू न तारे दास रे।
जपतशिव सनकादि मुनिजन नारदादिक सत रे।
जन्म-जन्मके स्वामि रघुपति दास जन जसवन्त रे।"

सन्त जन जसवन्तकी भाषा खडी बोली, ब्रज, मराठी हिन्दी मिश्रित है। पर भावोमे राम-भक्तिकी तीव्रता है।

शिवाजी कालीन मराठी भाषी सन्तोकी हिन्दी-वाणी

तुकाराम ये महाराष्ट्रके प्रसिद्ध अभगकार सन्त है। इन्हे सचमुच लोकोन्मुख कवि कहा जा सकता है। इनकी भाषामे सहज भोलापन है। इनका जन्म शक सम्वत् १५२० और निधन १५७२ माना जाता है। ये विशेष पढे लिखे नही थे पर उन्होने ज्ञानेश्वरी और एकनाथी भागवतका खूब पाठ किया था। इनका तत्कालीन हिन्दुई अथवा हिन्दी भाषासे भी परिचय था। इनके हिन्दी-पद्योको तीन भागोमें बाँटा जाता है। वे है,—गोपी-प्रेम, पाखड-उद्घाटन और नीति तथा भक्तिपरक उपदेश। उनके एक भजनकी पँक्तियाँ है —

"तुका सग तीन सू करिये जिनसे सुख दुनआय
दुर्जन तेरा मुख काला थीता प्रेम घटाय।"

एक पदमे वे कहते है—

"कब मरू पाँवू चेरन तुम्हारे,
ठाकुर मेरे जीवन प्यारे।
ज्यग डरे ज्याकू सो मोहि मीठा,
मीठा उर अनन्द माही पैठा।"

मृत्युको प्यार करनेवाली कल्पना कितनी निर्द्वन्द्व है। महाराष्ट्रमें हिन्दीका क्या रूप था, इसे समझनेके लिए तुकारामकी 'असल गाथा' अध्ययन-योग्य है।

कान्होबा ये तुकारामके छोटे भाई थे जिन्होने "चुरा चुराकर माखन खाया, गौलिनीका नन्द कुमार कन्हैया' जैसी पक्तियाँ लिखी है।

समर्थ रामदास इनका समय ईसाकी सत्रहवी शताब्दी था। इन्हे शिवाजी महाराजका राजनैतिक गुरु कहा जाता है। इन्होने महाराष्ट्रमें राम और हनुमानकी उपासनाका बहुत अधिक प्रचार किया। इनके कई हिन्दी-पद प्राप्त होते हैं। एक पदकी कुछ पक्तियाँ है—

"जित देखो उत राम हि रामा।
जित देखो उत पूरन कामा।
तृण तरुवर सातो सागर,
जित देखो उत मोहन नागर।

जल थल काष्ठ पषाण अकाशा।
चन्द्र सूरज नख तेज प्रकाशा।
मोरे मन मानस राम भजो रे।
रामदास प्रभु ऐसा करो रे।"

इनके शिष्योंने भी हिन्दीमें पद-रचना की जिनमें वेणा बाई, अक्काबाई, बहिणा बाई आदिके नाम लिए जा सकते हैं।

बहिणाबाई ये महाराष्ट्रकी प्रसिद्ध कवयित्री हैं। ये तुकारामकी शिष्या हैं। इनका जन्म १५५१ से शक सम्वत् १६२२ तक माना जाता है। इनकी कृष्ण-भक्ति परक रचनाएँ जो गौलण कहलाती हैं अधिक प्रसिद्ध हैं। एक गौलणकी पंक्तियाँ हैं—

"यमुनाके तट वेणु बजावत है गोपाल,
गीत प्रबन्ध हास्य विनोद नाचत है श्री हरि।"

इन्होंने उपदेशात्मी भी लिखी है। जैसे—

"अजब बात सुनाई माई अजब बात सुनाई
जलद पेड हिराये छाया जलमो चरन चुराई।"

गिरिधर, रघुनाथ वामन पंडित (रामदासी) आदि रामदास-कालीन सन्तोंकी भी हिन्दी वाणी मिलती है।

मानसिंह इनके सम्बन्धमें विशेष ज्ञात नहीं है परन्तु इनका एक हिन्दी पद राग बिहागका प्राप्त है जिसकी कुछ पंक्तियाँ हैं —

"बिगरी कौन सुधारे नाथ बिगरी कौन सुधारे
बनी बनेका सब कोई साथी दीनानाथ गुसाईं रे
भरी सभामें लज्जा राखी दीनानाथ गुसाईं रे।
कडू बेल की कडू तुमरिया सब तीरथ फिर आई रे।
गंगा न्हाई, जमुना न्हाई तोबि न गई कडुवाई रे।"

कल्याण स्वामी ये स्वामी रामदासके प्रिय शिष्योंमें रहे हैं और उनके लेखक भी। कल्याणकी स्मरण-शक्ति अत्यन्त तीव्र थी। समर्थ मुखसे बोलते जाते और कल्याण द्रुतगतिसे लिखते जाते। इन्होंने हिन्दीमें पद और रुक्मणी-स्वयम्बर नामक कथा-काव्यकी भी रचना की है। महाराष्ट्रमें रुक्मणी स्वयम्बरपर कई कथाकारोंने लिखा है। कल्याण स्वामीके अतिरिक्त मुकुन्ददास और मुकुन्दरायके नामपर भी रुक्मणी स्वयम्बर नामक कथा-काव्य प्राप्त हुए हैं। कल्याणकी हिन्दीका नमूना देखिए—

"हुई रुक्मणि तैयार
सजे सकली शृंगार
गले मोतीनके हार।
कुमार भीमक निकसी।"

इनके अतिरिक्त, जयरामस्वामी, शिवराम, देवदास, मुकुन्दानन्द, राम, नरहरि आदिके हिन्दी पद मिलते हैं। मानपुरीका गगापर लिखा हुआ पद अधिक परिष्कृत है। जैसे—

"तेरोहि निरमल नीर गंगा तेरोहि निरमल नीर।
तेरो ज्यू न्हाइये पाप कटत है पावन होत सरीर।" आदि

एक और पद है—

"तुम बिन और न कोई मेरो।
तुम बिन जियको दरद न ज्याने, भर भर अखियाँ रोई।"

इसी कालके गोस्वामी नन्दन, केशव स्वामी, गोपालनाथ, निपट निरजन, लीला विश्वम्भर और जमालशाहके मस्ती भरे पद मिलते हैं।

पेशवाकालीन और पेशवाओके परवर्ती मराठी सन्तोकी हिन्दी-वाणी

मध्व मुनीश्वर इनका जन्म शक सम्वत् १६११ में हुआ था। ये नाशिकके रहनेवाले थे। इनकी रचनाऐ औरगाबादमें रहनेके कारण अरबी, फारसी शब्दोसे आपूर हैं। ये भी निर्गुण सन्तो जैसी उक्ति, कहते है। यथा—

"सब घट पूरन एकहि रब है,
ज्यो तसबी बीच तागा।"

सूफियोके समान इन्होने अपने प्रियको माशूक कहकर पुकारा है जैसे—

"माशुक तेरा मुखडा दिखाव।
कपटका घूघट खोल सिताबी इश्क मिठाई चखाव।
आशकका तेरा जोडा चातक कर मेहर बरसाव।
दिल कागज पर सूरत तेरी गुरूके हात लिखाव।
मध्य मुनीश्वर साईं तेरा अस्सल नाव सिखाव।"

शिवदिन केसरी ये महाराष्ट्रमें नाथ-परम्पराके कवि कहे जाते है। इनकी रचनाओमें भी सूफी रग है। एक बडी हृदयस्पर्शी रचना है—

"हम फकीर जनमके उदासी, निरजन वासी
सतकी भिच्छा दे मेरी माईं मनका आटा भरपूर।
वार बार हम नहिं आनेके हरदम हार खुशी
हम फकीर जनमके उदासी निरजन वासी।
सोना रूपा घेला पैसा ओ कुछ हम ना चाहे
प्रेमकी भिच्छा ला मेरी माईं हम पछी परदेसी
हम फकीर जनमके उदासी निरजन वासी।"

"परदेसी निरजन वासी" के हृदयमें प्रेमकी कितनी गहरी पीर है। वह झोली लेकर अुसकी घर-घर भीख माँगता है। कबीरकी भाँति केसरीने भी अपने 'अलख' का कान्ता-भावसे स्मरण किया है—

"जिन कपरीने वैर किनो री साजनको महरम दियो री।"

अमृतराय इनका समय शक संवत् १६२ और १६७२ के मध्य माना जाता है। ये बुलढाना जिलेके रहनेवाले थे बादमें औरंगाबादमें आकर बस गए थे। ये अच्छे कीर्तनकार भी थे। ये मराठीके अतिरिक्त संस्कृत और हिन्दी भी अच्छी जानते थे। इन्होंने मराठी और हिन्दीमें प्रथम बार कटाव नामक एक छन्दको जन्म दिया। इसमें सानुप्रासिक चरण होते हैं जिनकी शब्द-योजनासे ही अर्थ स्पष्ट हो जाता है। इन्होंने हिन्दीमें फुटकल पदों कटावों आदिके अतिरिक्त शुक-चरित्र रामा-चरित्र द्रौपदी-वस्त्र-हरण रामचन्द्र वमन गणपति वमन आदि लम्बे कथा पद्य भी लिखे हैं। इनके शिष्योंमें सिद्धेश्वर महाराज और माधव कविका नाम अधिक प्रसिद्ध है। अमृतरायकी कतिपय पंक्तियाँ हैं—

"काया नहिं तेरी नहिं तेरी। मत कर मेरी मेरी।
न्हावे हौंदा पानी गरम। नहिं करता कोईका शरम।
इस कायाका कौन भरोसा। आकर बन जावेगा खासा।
बाँधे शीस दामकी पगड़ी। चौथे दिन मुड़ावे दाढ़ी।
खावे घी खिचड़ीका धुराका। आखर जल कर होवे खाक।"

सिद्धेश्वर महाराज ये अमृतरायकी शिष्य-परम्परामें हैं। इनकी रचनाओंमें नाथ योगियोंकी अनुभूति और उनकी अभिव्यक्ति प्रकट होती है। उनका एक पद है—

बंगला खूब बनाया वे
उस मो माधव सोया वे। ध्रुवपद॥
पंच तत्वकी भीत बनाई तीन गुण (न) का गारा
राम नामकी छान छवाई जानेहारा न्यारा।
उस बंगलेके दु नव दरवाजे बीच पवनका खम्भा
आवे जावे सब कोई देखे ये ही बड़ा अचम्भा।
माया दुराशा आशा नावे मन भो ताल बजावे
सुरत निरत निरंजन बजावे राम छतीसा गावे।
बंगला खूब बनाया वे
उस मो माधव सोया वे।

माधव ये भी अमृतरायके ही शिष्य हैं। इनकी हिन्दी अधिक परिमार्जित है। एक प्रभातीका नमूना इस प्रकार है—

"प्रात समै रघुवीर जगावे कौसल्या महारानी।
उठो लाल जी भोर भयो है सन्तनको हितकारी।
बन्दी जन ब्रह्मादि गुन गावे नावें वे वे तारी।
पंकजुता जिन भोरे ठाड़े होत कुलाहल भारी।
सुन जिन वचन उठे रघुनन्दन मैनन कमल उघारी।
चितवन मगन देख जनताको गुज्जा भए नर नारी।

कर असनान दान नृप दीजे गो गज कचन थारी।
जै जै कार करत धन्य माधव रघुकुल जस बिस्तारी।"

सोहिरोबा ये महाराष्ट्रके प्रसिद्ध सन्त हो गए हैं। इन्होने देशका पर्याप्त भ्रमण किया था। इनके कई हिन्दी-पद प्राप्त होते हैं। उदाहरणके लिए एक पद दिया जाता है—

"तुम अच्छा हुक्का पीना।
ब्रह्म रन्ध्रमें चित्रकूट चिलम,
प्राण अपानसे दमपर दम लेना।
अलख तमाखू ज्ञान अग्निसे,
जलकर माया धूम छोड देना।
कहत सोहिरा सतसग धरना,
अहमेली सेनली खलील कर देना।"

ये शक सम्वत् १६६६ मे उत्पन्न हुए थे।

नरहरिनाथ ये शिवदीन केसरीके पुत्र सत्रहवी शताब्दीके उत्तरार्द्धमें हुए थे। इनके हिन्दी पद इनकी अलमस्त वृत्तिके भी द्योतक हैं—

"क्या किसीसे काम, हम तो गुलाम गुरू घरके
बेपरवाह मनमौजी राजा हम अपने दिलके।
\+ \+ \+
चाँद सूरज मशाल लेकर आगे चलते हैं,
अर्द्ध-चन्द्रका मुख प्याला भर-भर पीते हैं।"

इनके अतिरिक्त लक्ष्मण फकीर, महिपत, कृष्णदास रामरायके भी फुटकर हिन्दी-पद मिलते हैं। कृष्णदासके पदकी पंक्तियाँ हैं—

जसोमति सुत नन्दलाला ब्रजकी गैल डोले
पीताम्बर कछनी कस गव्वनके सग जात
फेट मुरली मुकुट शीश बैस बैन बोले।
जसोमत सुत नन्दलाला ब्रजकी गैल डोले।
ग्वाल बाल सग लिए अग अग मोरे
हाथ लकुटि दध मटकी सखियन सो जोरे
बृन्दावन कुज जात गावत हरि कृष्णदास
या छवि न कही जात रसनामृत घोरे।"

देवनाथ महाराज ये विदर्भके रहनेवाले थे। इनका काल सन् १७५४ मे १८३० तक है। इनका अधिक समय तो ग्वालियरमें व्यतीत हुआ। इन्होने हिन्दीमे पद-रचना की है। इसमें निर्गुण कृष्ण-भक्तिका सरल रूप दिखलाई देता है। एक पदकी पक्तियाँ है—

कैसी मोहन बसी बजाई
सुनत धुन मोहे सुधि नहिं पाई।
भादौं मासों मेघ चढ़ावड़ उसकी मुंदरी बाती
रुनझुन रुनझुन मुरमुर झरिया बरसत है दिनराती।
ओढ़ि कुसाल दुसाल पिया सन रमही सौंझ बिछावन
बिजली-सी बशी बजाई मोहे मदनकुमार लभाई।
कैसी मोहन बसी बजाई।"

जीवनके उतार चढ़ावके विषयमें इनका एक प्रसिद्ध पद है—

"रससे नाथ फकीर कोई दिन याद करोगे।
कोई दिन ओढ़े शाल दुशाला कोई दिन गदवे चीर,
कोई दिन धोती और लंगोटी कोई दिन नंगे चीर।
कोई दिन खात पलंग बिछाना कोई दिन जमिन पै सीर।

रमाकनाथ ये देवनाथके शिष्य थे। इनका देहान्त सन् १८२५ में हुआ था। यद्यपि ये नाथपन्थी थे फिर भी इन्होंने हिन्दू धर्ममें मान्य सभी देवताओंपर रचनाएँ की हैं। इनका एक दोहा है—

रूप हीन कुल बालकी प्रीत करी नन्दलाल
पौनिन मोहरे डारके ब्याल बसी ब्रजपाल।"

विष्णुदास कवि ये सातारा के रहनेवाले थे। इनका जन्म सन् १८४४ में हुआ था। ये प्रसिद्ध लावनी-बाज रहे हैं। इनकी कुछ लावनियाँ मणि प्रवाल शैलीमें लिखी गई हैं जिनकी एक पंक्ति हिन्दीकी है और दूसरी मराठी की। कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

जरा जरा मोरी बात। तुर्सी से मंच करना दीसती।
मेव कुर्णाची नाहिं दुमावर पड़ा जबरदस्ती।
क्या कहूँ तारिफ तेरे बदनकी जबब तरहा प्यारी।
जसि कमलाची कली टवटवति दिसे नर दुपारी।

गुलाबराव महाराज ये विदर्भके रहनेवाले थे और इनका जन्म सन् १८८ मे हुआ था। इन्होंने ज्ञानेश्वरको अपना गुरु स्वीकार किया था। इनकी रचनाओंसे प्रतीत होता है कि ये सखी सम्प्रदायके अनुगामी थे। कृष्णको अपना पति मानकर शरीर पर मंगलसूत्र कुंकुम आदि स्त्री-सौभाग्य चिन्ह धारण करने लगे थे। ये मधुराद्वैत दर्शनके आचार्य कहे जाते हैं। इन्होंने दोहा चौपाई सवैया कवित्त आदि छंदो तथा विभिन्न राग-रागिनियोंमें गेय पदोंकी रचना की है। उनका एक कवित्त है—

"छाँडि लोक लाज राज साज चलो आज
वैदर्भको तैसे लखि नैन ललचाए हू।
कोउ ठाड़े द्वार बारे कोउ आवे अकुलवारे
पालकीमें बैठ मेरे प्राणराज आए हैं।
कमलिनि सनाथ रही कमल भी साथ रही

रसा हर खाय रही रसली मिलाई है
पानीके प्रवालकी और मनिके लाल की
अरू कामिनीके गालकी शोभा भुलाई है।
बीजुरी के सरि सूरज धुर धारीसे
करिके सवारी छबि सारी हरि लाई है।"

गुण्डा केशव ये विदर्भके रहनेवाले थे। इनके आविर्भावका काल अनिश्चित है पर ये शक सम्वत् १७५२ मे विद्यमान अवश्य थे। इनके कई हिन्दी-पद प्राप्त होते है जिनमें निर्गुण सन्तोकी विचारधारा मिलती है। इनकी भाषामे अरवी, फारसीकी झलक पाई जाती है। इनका एक ख्याल नीचे दिया जाता है—

"लगी है प्रेम लगन कि याद।
पीया बिन जीयरा कंकर जीयें,
खुदस्ते बूनियाद।
मेहारबक्ष दयाल आजीज कू
और न ज्यानु बादा।
गुडा केशो प्रेम दीललया,
तेरी खाने ज्यादा।"

आधुनिक युग आधुनिक युगमे भी महाराष्ट्र-अचल और उसके बाहर अनेक मराठी-भाषी सन्तो तथा गृहस्थोने हिन्दीमे रचनाएँ की। हम गुलाबराव महाराजकी चर्चा पहले कर चुके है। प प्रयागदत्त शुक्लने ऐसे मराठी भाषी आधुनिक हिन्दी प्रेमियोकी, जिनका विदर्भसे सम्बन्ध रहा है, अपने 'हिन्दी साहित्यको विदर्भकी देन' नामक ग्रन्थमे चर्चा की है।

सन् १८९९ मे सीताराम गुर्जरने मराठीके ओवी छन्दमें भक्त महिसासुर ग्रन्थकी रचना की। ये वर्धाके रहनेवाले थे। उसी कालमें बाबा रामजी तसकरीने भी, जो होशगाबादके नर्मदा-तटपर रहते थे, कुछ हिन्दी पद रचे है। एक पदकी पंक्तियाँ है—

"इस देहीको पूजो जासे और देव नहिं दूजो।
आतमब्रह्म सकलसे न्यारा आप याहीं बूझो।"

भोसलोके समयमें श्री मुकुन्दराज, दादाजी साधु, रामकृष्ण करतालकर, गोपाल जी हरदास, केशवदास महाराज, श्री सम्प्रदाय आदिकी हिन्दी वाणी मिलती है। इनमेंसे कुछके उदाहरण नीचे दिए जाते है—

(१) "गोकुलकी गलियोंमें कान्हा बसी बजावें।
ग्वाल बाल सब ब्रजके बसैया सब मिल धूम मचाई।
सब सखियाँ मिल मगल गावें तनकी सुध बिसराई।
मुकुन्द कहे प्रभु क्या छबि बरनू मनकी उनमनि पाई।"
—मुकुन्दराज।

सन्त तुकडोजी

(२) "राम भजन कर लेना एक दिन जाना है भाई।
सोना पहिरे चाँदी पहिरे पहिरे पीतल काँसा।
साहबके घर चिट्ठी आई छूटी देहकी आसा।
राजा गए काजी गए बड़े-बड़े अधिकारी।
साहबके घर जाना मुसाफिर छोड़ चले सरदारी।
हंस छोड़के जात पलक मे पंचतत्त्वका चोला।
जानबूझकर क्यों वे भूला कहे रामकृष्ण भाला।"

—रामकृष्ण।

(३) पूरन मोह फँसा है बे। हमने साहब पाया बे।
बड़ा महल क्या करना बाला। कितने दिन है जगवाला।
काल खड़ा है अपने पाला। क्या सासनी बाला।"

—केशवदास।

सन्त तुकडोजी इनका जन्म सन् १९१ में हुआ। ये अभी वर्तमान हैं। आप गुरु आडकुजीके परम भक्त हैं। इनकी राष्ट्रसेवा सब-विश्रुत है। सन् १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलनमें इनके भजनोंसे जनता अनुप्राणित हो उठी थी। ब्रिटिश सरकारने इनके प्रभावको देखकर इन्हें कुछ समयके लिए बन्दी बना लिया था। महात्मा गाँधी विनोबाजी व जवाहरलाल नेहरू सभीने इनकी राष्ट्रसेवाकी प्रशंसा की है। इनके भजन विदर्भके घर-घरमे गाए जाते हैं। इनके अनेक हिन्दी ग्रन्थ आदि मिलते हैं। उदाहरणार्थ—

"गंगा किनारे बैठकर हर बूंदको देखा करूँ।
हर बूँदके आकार में मैं वृत्तियाँ लेखा करूँ।
उठने उठाते गंगकी जैसी लहर मिटती रहे।
वैसी हमारी वृत्तियाँ सत् रूपमें बहती रहें।"

और भी

"दिन जमाने खूब बदले वह बदला ही नहीं।
लोग बदले लोग बदले, कर्म बदले धर्म के।
युग चारों कर बदले वह बदला ही नहीं।
जन्म बदले, राज बदले, काज बदले संग के।
मौत के तीर भी बदले, वह बदला ही नहीं।
रूप बदले, देह बदले रंग बदले नूर के।
शशि रविके फेर बदले, वह बदला ही नहीं।
नर्क बदले स्वर्ग बदले, ज्ञान बदले हर जहाँ।

सन्त तुकडोजी

(२) "राम भजन कर लेना एक दिन जाना है भाई।
सोना पहिरे चाँदी पहिरे, पहिरे पीतल काँसा।
साहबके घर चिट्ठी आई छूटी देहकी आसा।
राजा गए काजी गए बड़े-बड़े अधिकारी।
साहबके घर जाना पड़ा छोड़ चले सरदारी।
हंस छोड़के जात पलक मों पंचतत्वका चोला।
जानबूझकर क्यों वे भूला कहे रामकृष्ण बाला।"

—रामकृष्ण।

(१) पूरन मोह फंस्या है वे। तुमने साहब पाया वे।
बड़ा महल क्या करना वासा। कितने दिन है जगवासा।
काल खड़ा है अपने पासा। क्या सासकी आसा।"

—केशवदास।

सन्त तुकडोजी— इनका जन्म सन् १९१ में हुआ। ये अभी वर्तमान हैं। आप गुरु आडकुजीके परम भक्त हैं। इनकी राष्ट्रसेवा सर्व-विश्रुत है। सन् १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलनमें इनके भजनोंसे जनता अनुप्राणित हो उठती थी। ब्रिटिश सरकारने इनके प्रभावको देखकर इन्हें कुछ समयके लिए बन्दी बना लिया था। महात्मा गांधी विनोबाजी व जवाहरलाल नेहरू सबने इनकी राष्ट्र-सेवाकी प्रशंसा की है। इनके भजन विदर्भके घर-घरमें गाए जाते हैं। इनके अनेक हिन्दी भजन-पद आदि मिलते हैं। उदाहरणार्थ—

"गंगा किनारे बैठकर हर बूँदको देखा करूँ।
हर बूँदके आकार में ये वृत्तियाँ लेखा करूँ।
उठते उठाते गंगकी जैसी लहर मिलती रहे।
वैसी हमारी वृत्तियाँ सत् रूपमें खिलती रहें।"

और भी

दिन जमाने खूब बदले, वह बदला ही नहीं।
लोग बदले लोक बदले कर्म बदले धर्म के।
युग चारों फेर बदले, वह बदला ही नहीं।
रूप बदले, राज बदले काज बदले तन के।
मौत के दौर भी बदले, वह बदला ही नहीं।
जन्म बदले, देह बदले, रंग बदले नूर के।
छवि रविके फेर बदले वह बदला ही नहीं।
वर्ण बदले, स्वर्ण बदले आस बदले हर घड़ी।

सन्त तुकडोजी

ज्ञानके विन सार वदले, रूह वदला ही नहीं।
स्वरूपका उजियार है, वहाँ रूहका क्या पार है।
फहत तुकड्या तार है तो रूह वदला ही नहीं।"

श्री रघुनाथ भगाडे इनका जन्म सन् १८०४ मे दमोहमें हुआ था और मृत्यु नागपुरमें सन् १९३८ मे। आप सेशम जजके पदमे सेवा-मुक्त हुअे। ये हिन्दी-प्रेमी रहे है। इन्होने ज्ञानेश्वरीका हिन्दीमे अनुवाद किया है। ये एकनाथी भागवतका भी हिन्दीमें अनुवाद कर रहे थे पर वह पूर्ण न हो सका।

श्री देउसकर इनका अधिक समय काशी, कलकत्ता आदि स्थानोमे व्यतीत हुआ। अन्तिम समयमें जवलपुरमे आकर वसे। इन्होंने हिन्दीकी वडी भारी सेवा की है। वावूराव पराडकर, श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे आदिको हिन्दी पत्रकारिताके क्षेत्रमें लानेका श्रेय इन्हीको है। इन्होने स्वय कई पत्रोका सम्पादन किया और अभिनय-योग्य नाटक भी लिखे। ये प्राय कहा करते थे कि मराठी मेरी माता है, पर हिन्दी मेरी "मौसी" है। मौसीकी गोदमे ही मेरा लालन-पालन हुआ है और मुझे वह वहुत प्रिय है। मै उसीकी सेवामे सुख अनुभव कर रहा हूँ।

स्व माधवराव सप्रे ये द्विवेदी-युगके सवल लेखक और पत्रकार थे। मराठी 'केसरी' का हिन्दी सस्करण नागपुरमे इन्हीके सम्पादनमे निकलता था जिसकी हिन्दी-जगतमे वडी धूम थी। इन्होने पेंड्रारोडसे 'छत्तीस-गढ मित्र" मासिक पत्र निकाला था जिसमे हिन्दीके उस समयके महारथी वरावर लिखा करते थे। उसमें पुस्तकोकी लम्वी गुण-दोप-विवेचक आलोचनाएँ निकला करती थी जिन्हे विद्वान वडी रुचिसे पढा करते थे। राजनीतिसे सन्यास लेनेपर इन्होने मराठीके प्रसिद्ध ग्रन्थोका—दासवोध आदिका—हिन्दीमे अनुवाद भी किया था। और जवलपुरके 'कर्मवीर' तथा खण्डवाके 'कर्मवीर' को कर्मक्षेत्रमे अवतीर्ण करनेका भी इन्हे श्रेय है। अखिल भारतीय-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका अध्यक्ष-पद भी ये स्वीकार कर चुके हैं। छत्तीसगढमें हिन्दी-प्रचारका प्रशसनीय कार्य इनसे सम्पन्न हुआ।

स्व बाबूराव विष्णु पराडकर इनका सन् १८८३ में काशीमे जन्म हुआ था। इनका सारा जीवन हिन्दी पत्रकारितामें व्यतीत हुआ। काशीके "आज" का आपने जिस प्रतिष्ठा और श्रमसे सम्पादन किया, उससे हिन्दी-जगत भली-भाँति परिचित है। इनके विचार सतुलित पर साथ ही स्पष्ट हुआ करते थे। इन्होने हिन्दीको कई पारिभाषिक शब्द प्रदान किए। इन्हें हिन्दी-सेवाके निमित्त अखिल भारतीय महात्मा गाँधी-पुरस्कारसे भी सम्मानित किया गया। "आज" के अतिरिक्त इन्होंने कलकत्तेके प्रतिष्ठित पत्रो वगवासी, हितवार्ता, भारतका भी सम्पादन किया और कतिपय पुस्तके भी लिखी।

स्व लक्ष्मण नारायण गर्दे (जन्म सन् १८८९) इनकी सेवाऐं भी हिन्दी-पत्रकारिताको ऊँचा उठानेवाली है। कलकत्तेके 'भारत मित्र' 'श्रीकृष्ण सन्देश' आदि पत्रोको इन्होंने विशेप रुचिके साथ सम्पादित किया। "कल्याण" के सम्पादनमें कभी इनका हाथ था। इन्होने 'अरविन्द योग,' 'हिन्दुत्व,' 'तुकाराम-चरित्र' आदि ग्रन्थोकी रचना की है।

स्व विनायकराव ये जवलपुर निवासी हिन्दी-सेवी थे। इनकी 'रामचरित-मानस' पर की गई 'टीका' का हिन्दी जगतमें वडा मान है।

भा० रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे ये हिन्दीके प्राचीन साहित्य-सेवी हैं। मराठीकी अनेक कृतियोंका इन्होंने हिन्दी-रूपान्तर किया है।

स्व. सिद्धनाथ माधव आगरकर ये उज्जैनके सन्निकट आगरके निवासी थे। हिन्दीके अनन्य भक्त थे। भारतकी तरुण पीढ़ीको हिन्दी-प्रेममें अवतरित करनेका इन्हें बहुत कुछ श्रेय है। जबलपुर और खण्डवा के "कर्मवीर" तथा मध्यभारत के सम्पादन-कार्यकी हिन्दी-जगतपर गहरी छाप है। इन्होंने मराठीके कई ग्रन्थों—तिलक चरित्र मानसोपचार आदिका हिन्दी-रूपान्तर किया। स्वाधीनता संग्राममें कई बार भाग लिया और सन् १९४२ के कारावाससे मृतप्राय अवस्थामें छोड़े गए, जिससे थोड़े दिनोंके पश्चात् ही इनका देहावसान हो गया।

काका कालेलकर ये गांधीवादी स्वतन्त्र चिन्तक हैं। मराठी मातृभाषा होते हुए भी कई भाषाओंपर अधिकार रखते हैं। हिन्दीकी भी इनके द्वारा बहुमूल्य सेवा हुई है। गांधीजीके अनुयायी होनेके कारण हिन्दी-हिन्दुस्तानी आन्दोलनको पुरस्सर करनेमें इनका बड़ा योग रहा पर जबसे हिन्दीको वैधानिक राष्ट्रभाषाका पद प्राप्त हुआ है हिन्दी पक्षको प्रबल बनानेका सतत उद्योग करते रहते हैं। इनकी कई पुस्तकें हिन्दीमें प्रकाशित हुई हैं जो भाषाकी सरलता और सरसता तथा विचारोंकी गहनताके लिए अप्रतिम हैं। हिन्दीमें गांधीवादी विचार-धाराको आचार्य विनोबा भावेके पश्चात् इन्होंने ही प्रस्तुत किया है। ये हिन्दी-सेवीके नाते अखिल भारतीय गांधी-पुरस्कारसे पुरस्कृत हो चुके हैं।

श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ये सौ वर्षके लगभग पहुँच गए हैं पर वैदिक साहित्यके अन्वेषणके क्षेत्रमें अनिश्चित संलग्न हैं। गीता महाभारत आदिपर आपकी हिन्दी टीकाएँ प्रसिद्ध हैं। हिन्दीमें इनकी अनेक पुस्तकें छप चुकी हैं। मासिक वैदिक धर्म का भी ये सम्पादन कर रहे हैं। महात्मा गांधी पुरस्कारसे सम्मानित हैं।

आचार्य विनोबा भावे इनकी हिन्दी-सेवा और प्रेमसे सारा देश अवगत है। इनके प्रवचनोंकी साहित्यिकता सर्व-विश्रुत है। गांधी तथा सर्वोदय विचारधारा पर इनकी अनेक कृतियाँ उपलब्ध हैं। गीता तथा ईशावास्योपनिषद् पर इनकी टीकाएँ मौलिक हैं। हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है, इस मतके आप प्रबल उद्घोषक हैं।

स्व भास्कर रामचन्द्र भालेराव इनका जन्म सन् १८९५ में हुआ था। ये मध्यभारतके प्रसिद्ध पुरातत्त्व इतिहास आदि विषयोंके लेखक रहे हैं। इन्होंने वर्षों हिन्दीमें विभिन्न शोध-परक लेख लिखे। प्राचीन कविता तथा सिक्कोंपर शोध सम्बन्धी इनके लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिकामें छपते रहे हैं। आप लगभग २८ ग्रन्थ सम्पादित और अनुवादित किए हैं।

स्व श्री तामस्कर ये जबलपुरके रहनेवाले थे। इन्होंने इतिहास नागरिकशास्त्र आदि विषयोंपर अनेक हिन्दी कृतियाँ लिखीं। इन्होंने भूगोल पर भी शोधपरक पुस्तक लिखी है जो अप्रकाशित है।

स्व वासुदेव गोविन्द आपटे ये इन्दौरमें रह हिन्दी प्रचार वर्षों सम्पादन करते रहे हैं।

श्री प्रभाकर माचवे (जन्म २६-१२-१९१७) इनकी मातृभाषा मराठी है फिर भी इन्होंने वर्षों मध्यभारतमें रहकर कारण हिन्दीको सहज अपने आप लिया है। ये हिन्दीमें गद्य और पद्य दोनों

लिखते है। हिन्दीकी प्रगतिशील प्रवृत्तियोको अग्रसर करनेमे ये सदैव सचेष्ट रहते है। अभी तक इनके कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है, जो काव्य, आलोचना निवन्ध और कथा-साहित्यसे सम्बन्ध रखते है।

श्री अनन्त गोपाल शेवडे ये नागपुरके 'नागपुर टाइम्स' के सचालक है। इन्होने हिन्दीको मातृभापामे भी अधिक आदर दिया है। ये हिन्दी मे ही लिखते है। इनके कई उपन्यास प्रकाशित हो चुके है और पुरस्कृत भी। कुछ उपन्यास अन्य भापाओमे भी अनूदित हुए है। इनका 'ज्वालामुखी' उपन्यास वुक ट्रस्ट द्वारा सभी प्रमुख भारतीय भापाओमें अनूदित होनेके लिए स्वीकृत किया जा चुका है। उपन्यासोके अतिरिक्त इनके कथा-सग्रह तथा व्यक्तिपरक निवन्ध भी प्रकाशित हुए है। इन्हे हिन्दी-सेवीके नाते अखिल भारतीय गांधी पुरस्कार भी इसी वर्प प्राप्त हुआ है।

श्री गजानन माधव मुक्तिबोध ये आधुनिक प्रयोगवादी कवियोमे विशेप रूपमे सम्मानित है। 'अज्ञेय' द्वारा सम्पादित 'तार सप्तक' में इनकी रचनाएँ सकलित है। ये केवल कवि ही नही, चिन्तनशील समीक्षक भी है। 'प्रसाद' की कामायनीपर हाल ही इनकी आलोचनात्मक कृति प्रकाशित हुई है जिसमें इनका अपना स्वतत्र दृष्टिकोण है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओमें समय-समयपर इनके विचारोत्तेजक लेख प्रकाशित होते रहते है। इस समय राजनादगावके दिग्विजय महाविद्यालयमे हिन्दीके प्राध्यापक हैं।

श्री आत्माराम देवकर ये सेवानिवृत्त प्राचीन हिन्दी सेवी है। हटा (मध्यप्रदेश) मे रहते है, पानीका वुदवुदा, माया-मरीचिका, आदर्श मित्र आदि पुस्तकोकी रचना की है।

आधुनिक युगमे मराठी भाषी हिन्दी लेखकोकी सख्या वढती ही जा रही है। अत सवका नामोल्लेख करना भी कठिन हो रहा है। कुछ नाम जो स्मरण आ रहे है, नीचे दिए जा रहे है। इनमेंसे वहुतोकी विशिष्ट सेवा भी है, उनकी कुछ उल्लेखनीय कृतियाँ भी प्रकाशमे आई है, पर स्थानाभावसे उनपर विस्तारके साथ नही लिखा जा सका। अत क्षमा प्रार्थी हूँ—अनिल कुमार, भृग तुपकरी, शकर शेप, अनन्त वामन वाकणकर, गोविन्द नरहरि वैजापुरकर, श्रीनिवास बालाजी हर्डीकर, गोविन्द हरि वर्डीकर, भालचन्द्र आपटे, मालोजीराव नरहिसराव शितोले आदि।

गुजरातकी हिन्दीको देन

श्री केशवराम का शास्त्री

स्वराज्य प्राप्तिके पूर्व गुजरात प्रदेशकी ब्रिटिशकालीन जो सीमा थी उसमें आज छोटे-मोटे अन्तरके सिवा कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ है, और विभाजनके बाद भी दक्षिणतम-गुजरात सौराष्ट्र और कच्छका यही गुजराती-भाषी प्रदेश महाराष्ट्र और गुजरातके रूपमें ही स्थापित मिलता है। इसके अन्तर्गत देशी राज्योंका राजकीय दृष्टिसे विलीनीकरण हुआ किन्तु भाषाकी दृष्टिसे तो कोई परिवर्तन ही नहीं हुआ। केवल डूंगरपुर-बांसवाड़ा और सिरोही राज्यके गुजराती भाषासे सम्बद्ध भीली-भाषी प्रदेश आज राजस्थानमें सम्मिलित हो गए हैं।

आज गुजरात राज्यकी सीमा इस प्रकार है—उत्तरमें पाकिस्तानी सिन्धकी एवं राजस्थानके आबूकी उपत्यका पुरान सिरोही राज्यकी दक्षिणी सीमा पुरान उदयपुर राज्यकी दक्षिण-पश्चिमी सीमा पूर्वमें डूंगरपुर-बांसवाड़ाके विशाल वागड़ प्रदेशकी एवं मध्यप्रदेशकी पश्चिमी सीमा महाराष्ट्रके खानदेश की पश्चिमी सीमा दक्षिणमें महाराष्ट्रके नासिक एवं थाना जिलोंकी उत्तरीय सीमा और पश्चिममें सौराष्ट्र कच्छको अपनमें समाविष्ट करके विशाल अरब समुद्र है। आजसे करीब १ वर्ष पहले गुजरातके कवि नर्मदने गुजरातियोंके प्रिय राष्ट्रगीतमें गाया था—

"उत्तरमां अम्बा मात
पूरवमां काळी मात
छे दक्षिण दिशमां करन्त रक्षा कुन्तेश्वर महादेव,
ने सोमनाथ ने द्वारकेश ए पश्चिम केरा देव—
छे सहायमां साक्षात
जय जय गरवी गुजरात।

उपर्युक्त गीतमें गाई गई बात आज भी ज्यों की त्यों चरितार्थ होती है।

आज गुजरात प्रदेशकी सीमाका विस्तार जितना संकुचित हो गया है उतना आजसे हजार वर्ष पूर्व नहीं था। यह तो निश्चित ही है कि गुजरात नाम गुर्जर नामक लोकजातिने दिया है इस जातिके विजय

ही कुल राजकुलके पदको शोभित कर चुके थे और दक्षिण गुजरातके नादादे (प्राचीन स्वीकृत नाम नादीपुरका) चेदि राजवश (शासन काल चेदि स ३००–४८६ तक या ई सन् ५४८–७३४) 'गुर्जनृपतिवश' सज्ञासे विख्यात था। हरिश्चन्द्रकी क्षत्रिय पत्नीसे उत्पन्न दद्द नामक पहला गुर्जर इस वशका सस्थापक था। इन गुर्जरोका उस समय निवास प्रदेश प्रधानत मारवाड था। आजके गुजरातमे इनकी व्यापकता वहाँसे हुई थी। हर्षचरितके लेखक वाणभट्टने सम्राट हर्षवर्धनके पिता प्रभाकरवर्धनको 'गुर्जरप्रजागर' (चतुर्थ उल्लास) कहा है, इन गुर्जर लोगोसे मारवाडके ही गुर्जरोकी ओर स्पष्टतया सकेत है। दसवी शताब्दीके अन्तिम भागमें सुप्रसिद्ध अरब यात्री अलवरूनी द्वारा अपने प्रवास ग्रन्थ 'अल हिन्द' में एक प्रदेशका नाम 'गुज्रात' स्पष्ट रूपमें दिया गया है (ई सन् ९७०–१०३०) इनके मतमे वह प्रदेश आबूसे लेकर जयपुर तक ही था। उत्कीर्ण लेखोमें सस्कृतीकृत 'गुर्जरत्राभूमि' 'गुर्जरत्रामण्डल' 'गुर्जरत्रा' प्राकृत 'गुज्जरत्ता'–इन नामोसे सकेतित प्रदेश भी आबूसे लेकर उत्तरका विशाल मारवाड प्रदेश ही था। 'गुजरात' शब्दका मूल स्व नरसिहराव दिवेटियाने अरबी बहुवचनके स्त्रीलिंगवाची प्रत्यय 'आत' से सयुक्त 'गुज्र आत' 'गुज्रात' रूपमे भी माना है। अलवरूनीका प्रयोग देखनसे भी यही निश्चित मूल स्पष्ट होता है। भीलोका समूह 'भीलात', मेवोका समूह 'मेवात'–ये सब प्रजावाचक है, बादमें प्रदेशवाचक बन जाते है। जिस प्रदेशमें गुजरोकी सख्या अधिक थी उस प्रदेशका नाम 'गुज्रात', पडा, और अरबी बहुवचनके कारण निष्पन्न 'गुजरात' यह इस देशका नाम भी स्त्रीलिंगवाची रहा। पजावमे इस नामका एक प्रदेश आज भी पाया जाता है। अपभ्रश भाषाके अनेक प्रान्तीय भेद मिलते है उनमे एक भेद 'गौर्जर अपभ्रश', पञ्जावके टाक्क अपभ्रशसे सम्बन्धित प्राकृतसर्वस्वकार मार्कण्डेयने भी जिसकी ओर निर्देश किया है, वह मूलमे गुजर प्रजाके निवासभूमि राजस्थानके विशाल प्रदेशका था।

इससे इतना निश्चित होता है कि आजके गुजरात प्रदेशकी भूमिका नाम अल्वरूनीके समयमें 'गुजरात' नही था। जब मूलराज सोलकीन (चौलुक्य) ई स ९४२ में अणहिलवाडमे सत्ता हाथमे ली तब तो वह मात्र वढियारके साथ सारस्वत मण्डल (आजका उत्तर गुजरात) का ही अधिपति था। आजके मध्य गुजरात, दक्षिण गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छपर उसका अधिकार नही था। मूल-राजका पिता राजि कान्यकुब्जके प्रतिहार वशी राजा महेन्द्रपाल या महीपालका सामन्त था और वह भिन्नमालके प्रदेशका अधिरक्षक था। इसकी मृत्युके बाद मूलराज, अपने मोशालमें मामाके घरमें अणहिलवाडके अधिपति चावडा सामन्तसिहके पास सुरक्षित था। सामन्तसिहका उत्तराधिकारी बननेसे मूलराज अणहिलवाड पाटणका अधिपति बना। भिन्नमालवाले गुर्जर प्रदेशके सामन्त राजिका पुत्र होनेके कारण इसको "गुर्जरेश्वर" भी माना जाता था। बादमे तो आबूके धरणीवत्तहको मूलराजके सामन्तपदको स्वीकार करना पडा था, इससे मूलराज सचमुच ही 'गुर्जरेश्वर' भी बन गया था। आगे चलकर सौराष्ट्र कच्छ और खेटक प्रदेशके बहुतसे भाग मूलराजने अपने जीवनकालमे हस्तगत किये थे। फिर तो सिद्धराज जयसिहके (ई सन् १०९४–११४३) समय तक आजके गुजरातका ही रूप नही मिला बल्कि इससे भी बाहरके प्रदेश सोल-कियोकी सत्ताके अन्तर्गत आ गये थे। सिद्धराजने मालवापर (ई स ११३६) विजय प्राप्त की। इससे पूर्व तीन पीढियोसे मालवाके राजवश एव अणहिलवाडके सोलकियोके बीच सघर्ष जारी था। धारापति भोजदेवके इन शब्दोमे किया हुआ यह व्यग्य ध्यान देने योग्य है —

गुजरातकी हिन्दीको देन

श्री केशवराम का. शास्त्री

स्वराज्य प्राप्तिके पूर्व गुजरात प्रदेशकी ब्रिटिशकालीन जो सीमा थी उसमें आज छोटे-मोटे अन्तरके सिवा कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ है और विभाजनके बाद भी दक्षिणतम-गुजरात सौराष्ट्र और कच्छका यही गुजराती-भाषी प्रदेश महाराष्ट्र और गुजरातके रूपमें ही स्थापित मिलता है। इसके अन्तर्गत देशी राज्योंका राजकीय दृष्टिसे विसर्जन करण हुआ किन्तु भाषाकी दृष्टिसे तो कोई परिवर्तन ही नहीं हुआ। केवल डूंगरपुर-बांसवाड़ा और सिरोही राज्यके गुजराती भाषाके समान भीली-भाषी प्रदेश आज राजस्थानमें सम्मिलित हो गए हैं।

आज गुजरात राज्यकी सीमा इस प्रकार है—उत्तरमें पाकिस्तानी सिन्धकी एवं राजस्थानके आबूकी उपत्यका पुरान सिरोही राज्यकी दक्षिणी सीमा पुरान उदयपुर राज्यकी दक्षिण-पश्चिमी सीमा पूर्वमें डूंगरपुर-बांसवाड़ाके विशाल बागड़ प्रदेशकी एवं मध्यप्रदेशकी पश्चिमी सीमा महाराष्ट्रके खानदेशकी पश्चिमी सीमा दक्षिणमें महाराष्ट्रके नासिक एवं थाना जिलाकी उत्तरीय सीमा और पश्चिममें सौराष्ट्र कच्छको अपनेमें समाविष्ट करके विशाल अरब समुद्र है। आजसे करीब १ वर्ष पहले गुजरातके कवि नर्मदने गुजरातियोंके प्रिय राष्ट्रीय तर्जे गाया था—

"उत्तरमां अम्बा मात
पूरबमां काळी मात
छे दक्षिण दिशमां करन्त रक्षा कुन्तेश्वर महादेव
ने सोमनाथ ने द्वारकेश ए पश्चिम केरा देव—
छे सहायमां साक्षात
जय जय गरवी गुजरात।

उपर्युक्त गीतमें गाई गई बात आज भी ज्यों की त्यों चरितार्थ होती है।

आज गुजरात प्रदेशकी सीमाका विस्तार जितना संकुचित हो गया है उतना आजसे हजार वर्ष पूर्व नहीं था। यह तो निश्चित ही है कि गुजरात नाम गुर्जर नामक गोपजातिने दिया है इस जातिके कितने

ही कुल राजकुलके पदको शोभित कर चुके थे और दक्षिण गुजरातके नादादे (प्राचीन स्वीकृत नाम नादीपुरका) चेदि राजवश (शासन काल चेदि स ३००–४८६ तक या ई सन् ५४८–७३४) 'गुर्ज-नृपतिवश' सज्ञासे विख्यात था। हरिश्चन्द्रकी क्षत्रिय पत्नीसे उत्पन्न दद्द नामक पहला गुर्जर इस वशका सस्थापक था। इन गुर्जरोका उस समय निवास प्रदेश प्रधानत मारवाड था। आजके गुजरातमे इनकी व्यापकता वहाँसे हुई थी। हर्षचरितके लेखक वाणभट्टने सम्राट हर्षवर्धनके पिता प्रभाकरवर्धनको 'गुर्जरप्रजागर' (चतुर्थ उल्लास) कहा है, इन गुर्जर लोगोंसे मारवाडके ही गुर्जरोकी ओर स्पष्टतया सकेत है। दसवी शताब्दीके अन्तिम भागमें सुप्रसिद्ध अरब यात्री अलवरूनी द्वारा अपने प्रवास ग्रन्थ 'अल हिन्द' में एक प्रदेशका नाम 'गुज्रात' स्पष्ट रूपमें दिया गया है (ई सन् ९७०–१०३०) इनके मतमें वह प्रदेश आबूसे लेकर जयपुर तक ही था। उत्कीर्ण लेखोमें सस्कृतीकृत 'गुर्जरत्राभूमि' 'गुर्जरत्रामण्डल' 'गुर्जरत्रा' प्राकृत 'गुज्जरत्ता'—इन नामोसे सकेतित प्रदेश भी आबूसे लेकर उत्तरका विशाल मारवाड प्रदेश ही था। 'गुजरात' शब्दका मूल स्व नरसिहराव दिवेटियाने अरबी बहुवचनके स्त्रीलिगवाची प्रत्यय 'आत' से सयुक्त 'गुज्र आत' 'गुज्रात' रूपमे भी माना है। अलबरूनीका प्रयोग देखनेसे भी यही निश्चित मूल स्पष्ट होता है। भीलोका समूह 'भीलात', मेवोका समूह 'मेवात'—ये सब प्रजावाचक है, बादमे प्रदेशवाचक बन जाते है। जिस प्रदेशमे गुजरोकी सख्या अधिक थी उस प्रदेशका नाम 'गुज्रात', पडा, और अरबी बहुवचनके कारण निष्पन्न 'गुजरात' यह इस देशका नाम भी स्त्रीलिगवाची रहा। पजाबमे इस नामका एक प्रदेश आज भी पाया जाता है। अपभ्रश भाषाके अनेक प्रान्तीय भेद मिलते है उनमे एक भेद 'गौर्जर अपभ्रश', पञ्जाबके टाक्क अपभ्रशसे सम्बन्धित प्राकृतसर्वस्वकार मार्कण्डेयने भी जिसकी ओर निर्देश किया है, वह मूलमे गुजर प्रजाके निवासभूमि राजस्थानके विशाल प्रदेशका था।

इससे इतना निश्चित होता है कि आजके गुजरात प्रदेशकी भूमिका नाम अल्वरूनीके समयमें 'गुजरात' नही था। जब मूलराज सोलकीन (चौलुक्य) ई स ९४२ मे अणहिलवाडमे सत्ता हाथमें ली तब तो वह मात्र वढियारके साथ सारस्वत मण्डल (आजका उत्तर गुजरात) का ही अधिपति था। आजके मध्य गुजरात, दक्षिण गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छपर उसका अधिकार नही था। मूलराजका पिता राजि कान्यकुब्जके प्रतिहार वशी राजा महेन्द्रपाल या महीपालका सामन्त था और वह भिन्नमालके प्रदेशका अधिरक्षक था। इसकी मृत्युके बाद मूलराज, अपने मोशालमे मामाके घरमें अणहिलवाडके अधिपति चावडा सामन्तसिहके पास सुरक्षित था। सामन्तसिहका उत्तराधिकारी बननेसे मूलराज अणहिलवाड पाटणका अधिपति बना। भिन्नमालवाले गुर्जर प्रदेशके सामन्त राजिका पुत्र होनके कारण इसको "गुर्जरेश्वर" भी माना जाता था। बादमें तो आबूके धरणीवराहको मूलराजके सामन्तपदको स्वीकार करना पडा था, इससे मूलराज सचमुच ही 'गुर्जरेश्वर' भी बन गया था। आगे चलकर सौराष्ट्र कच्छ और खेटक प्रदेशके बहुतसे भाग मूलराजने अपने जीवनकालमे हस्तगत किये थे। फिर तो सिद्धराज जयसिहके (ई सन् १०९४–११४३) समय तक आजके गुजरातका ही रूप नही मिला बल्कि इससे भी बाहरके प्रदेश सोलकियोकी सत्ताके अन्तर्गत आ गये थे। सिद्धराजने मालवापर (ई स ११३६) विजय प्राप्त की। इससे पूर्व तीन पीढियोसे मालवाके राजवश एव अणहिलवाडके सोलकियोके बीच सघर्ष जारी था। धारापति भोजदेवके इन शब्दोमें किया हुआ यह व्यग्य ध्यान देने योग्य है —

गुजरातकी हिन्दीको देन

श्री केशवराम का. शास्त्री

स्वराज्य प्राप्तिके पूर्व गुजरात प्रदेशकी विशिष्टकार्ड न जो सीमा थी उसमें आज छोटे-मोटे अन्तरके सिवा कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ है और विभाजनके बाद भी दक्षिणतम-गुजरात सौराष्ट्र और कच्छका यही गुजराती-भाषी प्रदेश महाराष्ट्र और गुजरातके रूपमें ही स्थापित मिलता है। इसके अन्तर्गत देशी राज्योंका राजकीय दृष्टिसे विलीनीकरण हुआ किन्तु भाषाकी दृष्टिसे तो कोई परिवर्तन ही नहीं हुआ। अलबत्ता डूंगरपुर-बांसवाड़ा और सिरोही राज्यके गुजराती भाषासे सम्बद्ध भीली-भाषी प्रदेश आज राजस्थानमें सम्मिलित हो गए हैं।

आज गुजरात राज्यकी सीमा इस प्रकार है—उत्तरमें पाकिस्तानी सिन्धकी एवं राजस्थानके आबूकी उपत्यका पुराने सिरोही राज्यकी दक्षिणी सीमा पुराने उदयपुर राज्यकी दक्षिण-पश्चिमी सीमा पूर्वमें डूंगरपुर-बांसवाड़ाके सिवाय बागड़ प्रदेशकी एवं मध्यप्रदेशकी पश्चिमी सीमा महाराष्ट्रके खानदेश की पश्चिमी सीमा दक्षिणमें महाराष्ट्रके नासिक एवं थाना जिलोंकी उत्तरीय सीमा और पश्चिममें सौराष्ट्र कच्छको अपनेमें समाविष्ट करके विशाल अरब समुद्र है। आजसे करीब ९ वर्ष पहले गुजरातके कवि नर्मदने गुजरातियोंके प्रिय राष्ट्रगीतमें गाया था—

"उत्तरमां अम्बा मात
पूरवमां काली मात
छे दक्षिण देशमां करन्त रक्षा कुन्तेश्वर महादेव
ने सोमनाथ ने द्वारकेश ए पश्चिम केरा देव—
छे सहायमां साक्षात
जय जय गरवी गुजरात।

उपर्युक्त गीतमें गाई गई बात आज भी ज्यों की त्यों चरितार्थ होती है।

आज गुजरात प्रदेशकी सीमाका विस्तार जितना संकुचित हो गया है उतना आजसे हजार वर्ष पूर्व नहीं था। यह तो निश्चित ही है कि गुजरात नाम गुर्जर नामक गोपजातिसे लिया है इस जातिके विकास

ही कुल राजकुलके पदको शोभित कर चुके थे और दक्षिण गुजरातके नादादे (प्राचीन स्वीकृत नाम नादीपुरका) चेदि राजवंश (शासन काल चेदि स ३००–४८६ तक या ई सन् ५४८–७३४) 'गुर्ज-नृपतिवंश' सज्ञासे विख्यात था। हरिश्चन्द्रकी क्षत्रिय पत्नीसे उत्पन्न दद्द नामक पहला गुर्जर इस वंशका सस्थापक था। इन गुर्जरोका उस समय निवास प्रदेश प्रधानत मारवाड था। आजके गुजरातमे इनकी व्यापकता वहाँसे हुई थी। हर्षचरितके लेखक बाणभट्टने सम्राट हर्षवर्धनके पिता प्रभाकरवर्धनको 'गुर्जरप्रजागर' (चतुर्थ उल्लास) कहा है, इन गुर्जर लोगोसे मारवाडके ही गुर्जरोकी ओर स्पष्टतया सकेत है। दसवी शताब्दीके अन्तिम भागमें सुप्रसिद्ध अरब यात्री अलबरूनी द्वारा अपने प्रवास ग्रन्थ 'अल हिन्द' में एक प्रदेशका नाम 'गुज्रात' स्पष्ट रूपमे दिया गया है (ई सन् ९७०–१०३०) इनके मतमे वह प्रदेश आबूसे लेकर जयपुर तक ही था। उत्कीर्ण लेखोमें सस्कृतीकृत 'गुर्जरत्राभूमि' 'गुर्जरत्रामण्डल' 'गुर्जरत्रा' प्राकृत 'गुज्जरत्ता'—इन नामोसे सकेतित प्रदेश भी आबूसे लेकर उत्तरका विशाल मारवाड प्रदेश ही था। 'गुजरात' शब्दका मूल स्व नरसिहराव दिवेटियाने अरबी बहुवचनके स्त्रीलिंगवाची प्रत्यय 'आत' से सयुक्त 'गुज्र आत' 'गुज्रात' रूपमें भी माना है। अलबरूनीका प्रयोग देखनेसे भी यही निश्चित मूल स्पष्ट होता है। भीलोका समूह 'भीलात', मेवोका समूह 'मेवात'—ये सब प्रजावाचक है, बादमे प्रदेशवाचक बन जाते है। जिस प्रदेशमें गुजरोकी सख्या अधिक थी उस प्रदेशका नाम 'गुज्रात', पडा, और अरबी बहुवचनके कारण निष्पन्न 'गुजरात' यह इस देशका नाम भी स्त्रीलिंगवाची रहा। पजाबमे इस नामका एक प्रदेश आज भी पाया जाता है। अपभ्रंश भाषाके अनेक प्रान्तीय भेद मिलते है उनमें एक भेद 'गौर्जर अपभ्रंश', पञ्जाबके टाक्क अपभ्रंशसे सम्बन्धित प्राकृतसर्वस्वकार मार्कण्डेयने भी जिसकी ओर निर्देश किया है, वह मूलमे गुजर प्रजाके निवासभूमि राजस्थानके विशाल प्रदेशका था।

इससे इतना निश्चित होता है कि आजके गुजरात प्रदेशकी भूमिका नाम अल्बरूनीके समयमें 'गुजरात' नही था। जब मूलराज सोलकीन (चौलुक्य) ई स ९४२ में अणहिलवाडमें सत्ता हाथमें ली तब तो वह मात्र वढियारके साथ सारस्वत मण्डल (आजका उत्तर गुजरात) का ही अधिपति था। आजके मध्य गुजरात, दक्षिण गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छपर उसका अधिकार नही था। मूल-राजका पिता राजि कान्यकुब्जके प्रतिहार वशी राजा महेन्द्रपाल या महीपालका सामन्त था और वह भिन्नमालके प्रदेशका अधिरक्षक था। इसकी मृत्युके बाद मूलराज, अपने मौशालमें मामाके घरमें अणहिलवाडके अधिपति चावडा सामन्तसिहके पास सुरक्षित था। सामन्तसिहका उत्तराधिकारी बननेसे मूलराज अणहिलवाड पाटणका अधिपति बना। भिन्नमालवाले गुर्जर प्रदेशके सामन्त राजिका पुत्र होनेके कारण इसको "गुर्जरेश्वर" भी माना जाता था। बादमें तो आबूके धरणीवराहको मूलराजके सामन्तपदको स्वीकार करना पडा था, इससे मूलराज सचमुच ही 'गुर्जरेश्वर' भी बन गया था। आगे चलकर सौराष्ट्र कच्छ और खेटक प्रदेशके बहुतसे भाग मूलराजने अपने जीवनकालमें हस्तगत किये थे। फिर तो सिद्धराज जयसिंहके (ई सन् १०९४–११४३) समय तक आजके गुजरातका ही रूप नही मिला बल्कि इससे भी बाहरके प्रदेश सोल-कियोकी सत्ताके अन्तर्गत आ गये थे। सिद्धराजने मालवापर (ई स ११३६) विजय प्राप्त की। इससे पूर्व तीन पीढियोसे मालवाके राजवंश एव अणहिलवाडके सोलकियोके बीच सघर्ष जारी था। धारापति भोजदेवके इन शब्दोमे किया हुआ यह व्यग्य ध्यान देने योग्य है —

गुजरातकी हिन्दीको देन

श्री केशवराम का. शास्त्री

स्वराज्य प्राप्तिके पूर्व गुजरात प्रदेशकी ब्रिटिशकालीन जो सीमा थी उसमें आज छोटे-मोटे अन्तरके सिवा कोई विशेष अन्तर नही हुआ है और विभाजनके बाद भी दक्षिणतम-गुजरात सौराष्ट्र और कच्छका यही गुजराती-भाषी प्रदेश महाराष्ट्र और गुजरातके रूपमे ही स्थापित मिलता है। इसके अन्तर्गत देशी राज्योका राजकीय दृष्टिसे विलीनीकरण हुआ किन्तु भाषाकी दृष्टिसे तो कोई परिवर्तन ही नही हुआ। केवल डूंगरपुर-बांसवाड़ा और सिरोही राज्यके गुजराती भाषासे सम्बद्ध बोली-भाषी प्रदेश आज राजस्थानमे सम्मिलित हो गए है।

आज गुजरात राज्यकी सीमा इस प्रकार है—उत्तरमे पाकिस्तानी सिन्धकी एव राजस्थानके आबूकी उपत्यका पुराने सिरोही राज्यकी दक्षिणी सीमा पुराने उदयपुर राज्यकी दक्षिण-पश्चिमी सीमा पूर्वमे डूंगरपुर-बांसवाड़ाके विशाल बागड प्रदेशकी एव मध्यप्रदेशकी पश्चिमी सीमा महाराष्ट्रके खानदेश-की पश्चिमी सीमा दक्षिणमे महाराष्ट्रके नासिक एव थाना जिलाकी उत्तरीय सीमा और पश्चिममें सौराष्ट्र कच्छको अपनमे समाविष्ट करके विशाल अरब समुद्र है। आजसे करीब ९ वर्ष पहले गुजरातके कवि नर्मदने गुजरातियोके प्रिय राष्ट्रगीतमे गाया था—

> "उत्तरमा अम्बा मात
> पूरवमा काली मात
> छे दक्षिण दिशमा करन्त रक्षा कुन्तेश्वर महादेव
> ने सोमनाथ ने द्वारकेश ए पश्चिम करो देव—
> छे सहायमा साक्षात
> जय जय गरवी गुजरात।

उपर्युक्त गीतमे गाई गई बात आज भी ज्यो की त्यो चरितार्थ हुती है।

आज गुजरात प्रदेशकी सीमाका विस्तार जितना सकुचित हो गया है उतना आजसे हजार वर्ष पूर्व नही था। यह तो निश्चित ही है कि गुजरात नाम गुर्जर नामक लोपजातिन दिया है इस जातिके जिनमें

ही कुल राजकुलके पदको शोभित कर चुके थे और दक्षिण गुजरातके नादादे (प्राचीन स्वीकृत नाम नादीपुरका) चेदि राजवश (शासन काल चेदि स ३००–४८६ तक या ई सन् ५४८–७३४) 'गुर्ज-नृपतिवश' सज्ञासे विख्यात था। हरिश्चन्द्रकी क्षत्रिय पत्नीसे उत्पन्न दद्द नामक पहला गुर्जर इस वशका सस्थापक था। इन गुर्जरोका उस समय निवास प्रदेश प्रधानत मारवाड था। आजके गुजरातमे इनकी व्यापकता वहाँसे हुई थी। हर्षचरितके लेखक बाणभट्टने सम्राट हर्षवर्धनके पिता प्रभाकरवर्धनको 'गुर्जरप्रजागर' (चतुर्थ उल्लास) कहा है, इन गुर्जर लोगोंसे मारवाडके ही गुर्जरोकी ओर स्पष्टतया सकेत है। दसवी शताब्दीके अन्तिम भागमें सुप्रसिद्ध अरब यात्री अलबरूनी द्वारा अपने प्रवास ग्रन्थ 'अल हिन्द' मे एक प्रदेशका नाम 'गुज्रात' स्पष्ट रूपमें दिया गया है (ई सन् ९७०–१०३०) इनके मतमें वह प्रदेश आबूसे लेकर जयपुर तक ही था। उत्कीर्ण लेखोमे सस्कृतीकृत 'गुर्जरत्राभूमि' 'गुर्जरत्रामण्डल' 'गुर्जरत्रा' प्राकृत 'गुज्जरत्ता'—इन नामोसे सकेतित प्रदेश भी आबूसे लेकर उत्तरका विशाल मारवाड प्रदेश ही था। 'गुजरात' शब्दका मूल स्व नरसिंहराव दिवेटियाने अरबी बहुवचनके स्त्रीलिंगवाची प्रत्यय 'आत' से सयुक्त 'गुज्र आत' 'गुज्रात' रूपमें भी माना है। अलबरूनीका प्रयोग देखनेसे भी यही निश्चित मूल स्पष्ट होता है। भीलोका समूह 'भीलात', मेवोका समूह 'मेवात'—ये सब प्रजावाचक है, बादमें प्रदेशवाचक बन जाते है। जिस प्रदेशमे गुजरोकी सख्या अधिक थी उस प्रदेशका नाम 'गुज्रात', पडा, और अरबी बहुवचनके कारण निष्पन्न 'गुजरात' यह इस देशका नाम भी स्त्रीलिंगवाची रहा। पजाबमे इस नामका एक प्रदेश आज भी पाया जाता है। अपभ्रश भाषाके अनेक प्रान्तीय भेद मिलते है उनमें एक भेद 'गौर्जर अपभ्रश', पञ्जाबके टाक्क अपभ्रशसे सम्बन्धित प्राकृतसर्वस्वकार मार्कण्डेयने भी जिसकी ओर निर्देश किया है, वह मूलमे गुजर प्रजाके निवासभूमि राजस्थानके विशाल प्रदेशका था।

इससे इतना निश्चित होता है कि आजके गुजरात प्रदेशकी भूमिका नाम अल्बरूनीके समयमे 'गुजरात' नही था। जब मूलराज सोलंकीन (चौलुक्य) ई स ९४२ मे अणहिलवाडमें सत्ता हाथमें ली तब तो वह मात्र वढियारके साथ सारस्वत मण्डल (आजका उत्तर गुजरात) का ही अधिपति था। आजके मध्य गुजरात, दक्षिण गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छपर उसका अधिकार नही था। मूलराजका पिता राजि कान्यकुब्जके प्रतिहार वशी राजा महेन्द्रपाल या महीपालका सामन्त था और वह भिन्नमालके प्रदेशका अधिरक्षक था। इसकी मृत्युके बाद मूलराज, अपने मौशालमे मामाके घरमें अणहिलवाडके अधिपति चावडा सामन्तसिंहके पास सुरक्षित था। सामन्तसिंहका उत्तराधिकारी बननेसे मूलराज अणहिलवाड पाटणका अधिपति बना। भिन्नमालवाले गुर्जर प्रदेशके सामन्त राजिका पुत्र होनके कारण इसको "गुर्जरेश्वर" भी माना जाता था। बादमें तो आबूके धरणीवराहको मूलराजके सामन्तपदको स्वीकार करना पडा था, इससे मूलराज सचमुच ही 'गुर्जरेश्वर' भी बन गया था। आगे चलकर सौराष्ट्र कच्छ और खेटक प्रदेशके बहुतसे भाग मूलराजने अपने जीवनकालमे हस्तगत किये थे। फिर तो सिद्धराज जयसिंहके (ई सन् १०९४–११४३) समय तक आजके गुजरातका ही रूप नही मिला बल्कि इससे भी बाहरके प्रदेश सोलकियोकी सत्ताके अन्तर्गत आ गये थे। सिद्धराजने मालवापर (ई स ११३६) विजय प्राप्त की। इससे पूर्व तीन पीढियोसे मालवाके राजवश एव अणहिलवाडके सोलकियोके बीच सघर्ष जारी था। धारापति भोजदेवके इन शब्दोमें किया हुआ यह व्यग्य ध्यान देने योग्य है —

(१-६१) और उसके बाद 'आबू रास' (ई सन् १२३३) के 'गुजरात-धुर-समुधरण राणउ लूणपसाउ' (११) इन वचनोंसे मिलता है।

आजके गुजरातका 'गुजरात' नाम कबसे प्रचलित हुआ, इस प्रदेशकी भाषाकी विविध भूमिकाओके क्या क्या नाम थे और किस किस प्रदेश-भाषाओंके साथ इसका भगिनी-सम्बन्ध है, ऊपर यह बतलानेका एक अल्प प्रयत्न किया गया है। सास्कृतिक दृष्टिसे कहा जाय तो, आदिवासी भीलोको छोडकर, प्राय गुजरात-सौराष्ट्र-कच्छकी प्रजा मारवाड और सिन्धसे आकर बसी है। इनके रीति रस्म, व्यवहार, लोकगीत, लोक-साहित्य आदिमे जो साम्य दिखाई पडता है, वह भी इसी कारणसे। इस बातको भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि गुजरातमें बसनेवाले सभी लोग 'गुजर' नही है। गुजर अश गुजरातके पाटीदारोमे गुजराती रबारियोमे, गुजर ब्राह्मण, गुजर बनिये, गुजर सुतारोमे, एव सोलकी-वाघेला आदि राजवशी राजपूतोमे ही है। अन्य लोग दूसरे दूसरे वशोके है। ये सभी पीढियोसे साथ रहनेके कारण सास्कृतिक एकताके सूत्रमे बँधे हुए है।

गुजराती भाषा और हिन्दी भाषा

हिन्दी भाषा कहनसे उसके 'पूर्वी' और 'पश्चिमी' ये दो प्रधान भेद उपस्थित होते है। 'पूर्वी हिन्दी' कहनेसे 'अवधी' 'बघेली' और 'छत्तीसगढी' का एक समूह, और 'पश्चिमी हिन्दी' कहनेसे 'खडी बोली' 'बागरू' 'ब्रजभाषा' 'कन्नौजी' और 'बुन्देली' का समूह स्पष्ट होता है। 'राजस्थानी' की उत्तरपूर्वी सीमा, 'पश्चिमी हिन्दी' की दक्षिण-पश्चिमी सीमा बन जाती है। 'राजस्थानी' कृत्रिम नाम होनेपर भी विशिष्ट सज्ञाके अभावके कारण भाषाका यह नाम स्वीकृत कर लिया जाय तो इसमे कोई बाधा नही है। 'पुरानी राजस्थानी' के पश्चिम भागके बडे दो स्रोत विकसित हुए। वे है—'राजस्थानी' और 'गुजराती'। यहाँ 'गुजराती' और हिन्दी' की तुलनात्मक सुविधाकी दृष्टिसे सम्बन्धित भाषा-उपभाषाओके रूपोके साथ उनके स्वरूपको स्पष्ट करनेका एक प्रयत्न किया जा रहा है।

वर्णमाला –स्वर–भारतीय आर्य भाषाके वर्णोच्चार वैदिकी भूमिकासे चले आये है। यदि हम स्वरोपर विचार करें तो "अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ" इतने स्वरोंसे हमारा काम नही चलता है। गुजरातीके लिये—राजस्थानी और हिन्दीके लिये भी—'लघुप्रयत्न अकार' की अपेक्षा रहती है। 'कमल' शब्द देखनसे तुरन्त पता चलता है कि तीनो अकारोमे तारतम्य है। 'क' मे अकार समकक्ष है, 'म' मे पूरा स्वराघातवाला अकार है, तो इसी कारण 'ल' मे अकार पूर्णतया प्रयुक्त नही है। यूरोपीय विद्वान् यहाँ अकारका अभाव कहते हैं। हम सम्पूर्ण अभावका अनुभव नही करते हैं। इसी तरह स्वराघातके कारण ही "इ उ ए ओ" आदि स्वर अस्वरित होते है तब लघुप्रयत्न हो जाते है। राजस्थानी और हिन्दी उच्चारणो में भी यही स्थिति है। 'सगाई' 'लुगाई' 'जाऊँ' 'जनेऊ' 'गाउ' 'गयेलुं' 'जाओ' आदि गुजराती —हिन्दी शब्दोमें स्वराघातवाले स्वरोंके परवर्ती स्वरोमें उच्चारणलाघव स्पष्ट है।

तत्सम शब्दोके लेखनमें आज ऋकार स्वीकृत है, किन्तु उच्चारण नष्ट हो गया है। गुजराती-राजस्थानीमे सामान्योच्चारण 'र' है, तो हिन्दीमें ऋग्वेदीय पद्धतिसे 'रि' उच्चरित होता है। शिष्ट गुज-रातीमें 'रु' है। ये तीनो उच्चारण व्यञ्जनात्मक बन गये है।

उतर आया है। वैदिक संहिताओंमे 'ळ' और 'ळ्ह' से बताया जाता है, जैसा कि 'अग्निमीळे' 'दृळ्हम्' (='अग्निमीडे' और 'दृढम्')। गुजराती, राजस्थानी और हिन्दीमे इस विषयमे समानता है। हाँ, सौराष्ट्र-कच्छमें अवश्य इसके अपवाद है, जहाँ मूलमे दुगुणा 'ड्ड' हो और उनके विकासमे 'ड' आया हो, तो वह शुद्ध मूर्धन्य है, जैसा कि 'पड्ड' 'हड्ड' 'गड्ड' आदिसे विकसित 'पाडो' (महिषीपुत्र), 'हाडकु' (हड्डी)' 'गाडी' (गाडी)। सौराष्ट्र-कच्छमे मध्यवर्ती स्थितिमे सभी सयोगोमें 'ढ' का उच्चारण शुद्ध मूर्धन्य ही है। व्रजभाषामें तो 'ड-ढ' के 'र' 'र्‌ह' उच्चारण मिलते हैं।

'ड-ढ-ण' इस 'तालव्य' उच्चारणकी सज्ञा भाषाशास्त्रविषयक गुजराती ग्रन्थोमे 'मूर्धन्यतर' दी गई है।

'न-म' उच्चारण करते समय, यह स्वाभाविक भी है—पूर्ववर्ती स्वर ही सानुनासिक होता है। गुजराती-राजस्थानी और हिन्दी इन तीनो भाषामे यही स्थिति है। अत हम देखते है कि 'नातो' 'नदी' 'माता' 'मदन' के 'न-म' की आदि स्थितिमे उच्चारण निरनुनासिक है, 'दान' 'मान' 'रान' 'राम' आदिमे पूर्ववर्ती स्वर सानुनासिक है। प्राकृत भाषाओंके समयमे शब्दारम्भमें 'ण' आ सकता था और उस स्थितिमे उसका उच्चारण निरनुनासिक था जब कि मध्यवर्ती स्थितिमे 'ण' का पूर्ववर्ती स्वर ही सानुनासिक उच्चरित होता था। वही स्थिति आज तक चली आ रही है, और मध्यवर्ती 'ण' के तालव्य अथवा मूर्धन्यतर उच्चारणका यही कारण है।

'फ' का उच्चारण अँग्रेजी शब्दोमें दन्त्योष्ठ्य है, 'पीएच्' से आया हुआ 'फ' मात्र ओष्ठ्य है। गुजराती, राजस्थानी और हिन्दीमें अँग्रेजी तत्सम शब्दोके इन दोनो प्रकारके 'फ' की अव्यवस्था दिखाई पडती है।

'र' का उच्चारण गुजराती, राजस्थानी और हिन्दीमें सस्कृतके अनुसार है। 'मराठी' और दक्षिणकी द्रविड भाषाओंमे वर्तुलाकार होता है। बेशक, मराठीमें स्थान-परत्वमे सस्कृतानुसारी उच्चारण भी है।

'य-व' का लघुप्रयत्न उच्चारण पाणिनि द्वारा दिया गया था, किन्तु प्रचलित सस्कृत भाषामे इस उच्चारणका प्रचलन नही था। प्राकृतोमें-खास करके जैन महाराष्ट्रीमें, 'अवर्णो यश्रुति' से 'य' का लघु-प्रयत्न प्रवाही उच्चारण व्यापक था। गुजराती-राजस्थानी-हिन्दीमें 'य' और 'व' इन दोनोका लघुप्रयत्न उच्चारण स्वाभाविक है। गुजराती और राजस्थानीमें प्रथम भूतकृदन्तके रूपमें यह उच्चारण 'य' का जीवन्त रूप है, जैसा कि 'मार्यो' 'कर्यो' 'गयो', व्रजभाषामे भी इन रूपोमे यह स्वाभाविक है। और 'गया' 'आया' 'पाया' आदिमें 'य' लघुप्रयत्न है। गुजराती द्वितीय भूतकृदन्तोके स्वरान्त धातुस्थितिमे भी 'य' लघुप्रयत्न मिलता ही है, जैसा कि 'गयेलु' 'समायेलु'। तीनो भाषाओमें जब य और व 'इ' और 'उ' के बादमें उच्चरित होते है तब ये लघुप्रयत्न होते है, उदाहरणार्थ 'दरिया' 'कडियो' 'रूपियो' और इसी प्रकारके 'चाहिये' 'लिये' 'किये' 'किया' 'दिया' आदि शब्द-समूह। गुजरातीमे 'जुए' 'जुओ' जैसे क्रियारूपोमें 'जुवे' 'जुवो' जैसी स्पष्ट स्थिति है। गुजराती-हिन्दीके 'जाओ' आदि रूपोमें भी 'जाव' आदि ही उच्चारण है।

'श-ष-स' हमारी भाषाओमे प्राकृत कालसे ही 'स' के रूपमें है। गुजरातके चरोतर एव

ए-ओ प्राकृत भाषाओंके समयसे ह्रस्व भी चले आते हैं। ह्रस्व-दीर्घ ए-ओ के लिए संवृत संज्ञा गुजराती विद्वानोंने दी है। गुजरातीमें इनके अतिरिक्त विवृत उच्चारण भी है जिसके भी ह्रस्व और दीर्घ य दो प्रकार हैं। राजस्थानी एवं हिन्दीमें तो य दोनों प्रकार हैं हीं। ए-औ वाले संस्कृत तत्सम शब्दोंको छोड़कर राजस्थानी एवं हिन्दीमें तद्भव शब्दोंमें जहाँ कहीं "ए-औ" है वहाँ सर्वत्र उनका उच्चारण संस्कृतकी तरह संध्य "ए-औ" नहीं है। गुजराती बैठो राजस्थानी बैठो हिन्दी बैठा अरबी फारसी गयूर, कयूब कबूल (गुजराती बर, केर कोल जैसे शब्दोंके उच्चारण देखनेसे हिन्दी बैठा (बयठा) और गुजराती बैठो इन दोनोंके बीचका उच्चारण-भेद स्पष्ट होगा। राजस्थानी और हिन्दीमें अ व जहाँ जहाँ दो मात्राएँ लगाई जाती हैं वहाँ प्रायः सर्वत्र गुजरातीके ए-ओ विवृत हैं राजस्थानी उच्चारण भी प्राय विवृत है।

अनुस्वार और अनुनासिक —र, श ष स ह के पूर्व संस्कृत परम्परासे पूर्ण अनुस्वार है संरम्भ संशय कंस सह र। प्राय यह उच्चारण संस्कृत तत्सम शब्दोंके लिये सीमित है। कहीं-कहीं वर्गीय अनुनासिक व्यञ्जन होता है कहीं-कहीं भी लेखनमें अनुस्वार लिखनेकी प्रथा है।

यो अनुनासिक उच्चारण तो वैदिक समयसे ज्ञात है। प्रातिशाख्योंमें उसे ही 'रङ्ग' कहा गया है। अनुस्वरका मार्दवसे भारत-आर्यकुलकी भाषाओंमें अनुनासिक मृदु उच्चारण उतर आया है। संस्कृत अक्षि प्राकृत अक्खी अपभ्रंश अंखि गुजराती राजस्थानी हिन्दी आँख प्राकृत और अपभ्रंशके प्रत्ययोंके अन्तभागमें स्वतन्त्रतापूर्वक भी यह उच्चारण था। क्या-क्यां-क्यां और कहाँ-कहाँ-कहाँ में स्पष्ट अनुनासिक है। अनुस्वार ह्रस्व स्वरको गुरु बनाता है अनुनासिक तो मात्र स्वरधर्म है और सानुनासिक ह्रस्व स्वर ह्रस्व ही रहता है जैसे कि संस्कृत कंस हंस किन्तु गुजराती आँसु, हिन्दी हँसना।

विसर्ग : मात्र थोड़े संस्कृत तत्सम शब्दोंके लिये ही मर्यादित है।

व्यञ्जन—व्यञ्जनोंके उच्चारण वैदिक समयसे ही चले आते हैं। गुजरातीमें—खास करके चरोतरमें च-छ-ज-झ के मराठी प्रकारके विशिष्ट उच्चारण पाये जाते हैं। गुजरातके इतर प्रान्तोंमें राजस्थानी एवं हिन्दी आदिमें यह विशिष्ट उच्चारण नहीं है शुद्ध संस्कृत उच्चारण ही है। ग्रामीणोंमें च-छ का दन्त्य 'स' ज-झ का यूरोपीय 'ज़' सदृश और श-ष-स का कण्ठ्य अघोष महाप्राण 'ह' गुजरात सौराष्ट्र और कच्छमें परिचित है। इनमें श-ष-स का कण्ठ्य अघोष महाप्राण ह उच्चारण शिष्टोंमें अल्प व्यापक नहीं है। कतिपय विद्वानोंने इस उच्चारणको ह सदृश कहा है किन्तु ह तो कण्ठ्य घोष महाप्राण है। स ह ह ये तीन उच्चारण स्पष्ट रूपसे पृथक् हैं। यह भय राजस्थानीमें भी पाया जाता है।

अरबी-फारसी शब्दोंके जिह्वामूलकेपी अन्तरके साथ साथ रखनेवाले ख़-क़-ग़-ज़-फ़ आदि उच्चारण हिन्दीमें यथावत् हैं किन्तु गुजराती एवं राजस्थानीमें नहीं हैं। ज के विषयमें इतना है कि अंग्रेजी तत्सम शब्दोंमें गुजराती कण्ठ्य भी यह व्यक्त होता है जिसमें वहाँ ज से काम चलाया जाता है।

'ड-ढ' शब्दारम्भमें या समासान्त शब्दोंमें परवर्ती शब्दके आरम्भमें तो शुद्ध मूर्धन्य है जैसा कि डफ डोर्मी डल डमरु, डोर, मीडर, अडग आडम्बर, किन्तु मध्यवर्ती दशामें वैदिक समयसे तालव्य उच्चारण

उतर आया है। वैदिक संहिताओमे 'ळ' और 'ळ्ह' से बताया जाता है, जैसा कि 'अग्निमीळे' 'दृळ्हम्' (='अग्निमीडे' और 'दृढम्')। गुजराती राजस्थानी और हिन्दीमे इस विषयमे समानता है। हाँ, सौराष्ट्र-कच्छमे अवश्य इसके अपवाद है, जहाँ मूलमे दुगुणा 'ड्ड' हो और उनके विकासमे 'ड' आया हो, तो वह शुद्ध मूर्धन्य है, जैसा कि 'पड्ड' 'हड्ड' 'गड्ड' आदिसे विकसित 'पाडो' (महिषीपुत्र), 'हाड्कु' (हड्डी)' 'गाडी' (गाड़ी)। सौराष्ट्र-कच्छमे मध्यवर्ती स्थितिमे सभी संयोगोमे 'ढ' का उच्चारण शुद्ध मूर्धन्य ही है। ब्रजभाषामें तो 'ड-ढ' के 'र' 'र्ह' उच्चारण मिलते है।

'ड-ढ-ण' इस 'तालव्य' उच्चारणकी संज्ञा भाषाशास्त्रविषयक गुजराती ग्रन्थोमे 'मूर्धन्यतर' दी गई है।

'न-म' उच्चारण करते समय, यह स्वाभाविक भी है--पूर्ववर्ती स्वर ही सानुनासिक होता है। गुजराती-राजस्थानी और हिन्दी इन तीनो भाषामें यही स्थिति है। अत हम देखते है कि 'नातो' 'नदी' 'माता' 'मदन' के 'न-म' की आदि स्थितिमे उच्चारण निरनुनासिक है, 'दान' 'मान' 'रान' 'राम' आदिमे पूर्ववर्ती स्वर सानुनासिक है। प्राकृत भाषाओंके समयमे शब्दारम्भमें 'ण' आ सकता था और उस स्थितिमे उसका उच्चारण निरनुनासिक था जब कि मध्यवर्ती स्थितिमे 'ण' का पूर्ववर्ती स्वर ही सानुनासिक उच्चरित होता था। वही स्थिति आज तक चली आ रही है, और मध्यवर्ती 'ण' के तालव्य अथवा मूर्धन्यतर उच्चारणका यही कारण है।

'फ' का उच्चारण अँग्रेजी शब्दोमें दन्त्योष्ठ्य है, 'पीएच्' से आया हुआ 'फ' मात्र ओष्ठ्य है। गुजराती, राजस्थानी और हिन्दीमे अँग्रेजी तत्सम शब्दोके इन दोनो प्रकारके 'फ' की अव्यवस्था दिखाई पडती है।

'र' का उच्चारण गुजराती, राजस्थानी और हिन्दीमे संस्कृतके अनुसार है। 'मराठी' और दक्षिणकी द्रविड भाषाओमे वर्तुलाकार होता है। बेशक, मराठीमें स्थान-परत्वमे संस्कृतानुसारी उच्चारण भी है।

'य-व' का लघुप्रयत्न उच्चारण पाणिनि द्वारा दिया गया था, किन्तु प्रचलित संस्कृत भाषामें इस उच्चारणका प्रचलन नही था। प्राकृतोमें-खास करके जैन महाराष्ट्रीमे, 'अवर्णो यश्रुति' से 'य' का लघु-प्रयत्न प्रवाही उच्चारण व्यापक था। गुजराती-राजस्थानी-हिन्दीमे 'य' और 'व' इन दोनोका लघुप्रयत्न उच्चारण स्वाभाविक है। गुजराती और राजस्थानीमे प्रथम भूतकृदन्तके रूपमें यह उच्चारण 'य' का जीवन्त रूप है, जैसा कि 'मार्यो' 'कर्यो' 'गयो', ब्रजभाषामें भी इन रूपोमे यह स्वाभाविक है। और 'गया' 'आया' 'पाया' आदिमें 'य' लघुप्रयत्न है। गुजराती द्वितीय भूतकृदन्तोके स्वरान्त धातुस्थितिमें भी 'य' लघुप्रयत्न मिलता ही है, जैसा कि 'गयेलु' 'समायेलु'। तीनो भाषाओमें जब य और व 'इ' और 'उ' के बादमे उच्चरित होते है तब ये लघुप्रयत्न होते है, उदाहरणार्थ 'दरिया' 'कडियो' 'रूपियो' और इसी प्रकारके 'चाहिये' 'लिये' 'किये' 'किया' 'दिया' आदि शब्द-समूह। गुजरातीमे 'जुए' 'जुओ' जैसे क्रियारूपोमें 'जुवे' 'जुवो' जैसी स्पष्ट स्थिति है। गुजराती-हिन्दीके 'जाओ' आदि रूपोमें भी 'जाव' आदि ही उच्चारण है।

'श-ष-स' हमारी भाषाओमें प्राकृत कालसे ही 'स' के रूपमें है। गुजरातके चरोतर एव

गुजराती और राजस्थानीमे व्यञ्जनोमे जहाँ 'ण' है वहाँ नियमके रूपमे ही हिन्दीमे 'न', इसी तरह गुजराती-राजस्थानीके 'व' के स्थानपर हिन्दीमें प्राय 'ब' मिलता है। ब्रजभाषामे हिन्दीकी उस लाक्षणिकताका सविशेष पालन है।

व्याकरण

लिग —गुजरातीमे सस्कृत-प्राकृत-अपभ्रशकी परम्परानुसार तीनो लिग प्रचलित है। कुछ शब्दोका लिग-परिवर्तन हो गया है। राजस्थानीमे प्राय पुल्लिग और स्त्रीलिग दो लिग रहे है। ज्यो-ज्यो पश्चिम और दक्षिणमें आते है त्यो-त्यो नपुसकलिगका प्रयोग भी दिखाई देता है। गुजरातीमे इसका प्रयोग स्पष्ट रूपसे होता है। हिन्दीमे तो पुल्लिग और स्त्रीलिग दो ही लिंग है, तो भी पश्चिमी हिन्दीकी एक-दो उपभाषाओमे क्वचित नपुसकलिगके रूप भी बच गये है।

वचन —भारतीय आर्यकुलकी सभी वर्तमान भाषाओमे दो ही वचन है। इसका आरम्भ प्राकृत कालसे ही हो चुका था। गुजराती और हिन्दीमे जो विशिष्टता आई है वह बहुवचनके विभक्ति-रूपोमें 'ओ' प्रत्ययका प्रत्ययो एव परसर्गोंके पूर्व प्रवेश, जो हिन्दीमें सानुनासिक 'ओ' के रूपमें है, जैसे कि गुजराती 'घोडाओनु, झाडोनु', किन्तु हिन्दी घोडोका, झाडोका'। शब्दोके भीतर लगनेमें इतना ही अन्तर है कि गुजराती सबल रूपोमे 'ओ' अलग रहता है, तो हिन्दीमें वह पूर्व स्वरके साथ मिलकर परसवर्णके रूपमे याने 'ओ' के रूपमें एकरूप बन जाता है। राजस्थानी उपभाषाओमे एव भीली भाषा-कुलमे 'आँ' ('वागडी' में 'अँ') के रूपमें यह मिलता है। सौराष्ट्रमें—खास करके पश्चिमी भागमे 'उ', तो पूर्वी भागमे स्त्रीलिगमे मात्र सानुनासिक 'उँ' ये अपवाद स्वरूप है।

सबल रूपोमें गुजरातीमें 'घोडा—घोडाओ' 'घोडी—घोडीओ' (सौराष्ट्रमें तो एक ही रूप 'घोडाउ' 'घोडीउ'—'घोडियु—घोडियुँ) यो दो रूप प्रयुक्त होते है। राजस्थानीकी उपभाषाओमें 'आँ' आता है। हिन्दीमे स्त्रीलिगमें प्रथमा विभक्तिमें मात्र इ-ईकारान्त शब्दोमें ही 'आँ' आता है, उदा० 'कृतियाँ' 'लडकियाँ' 'घोडियाँ,। बाकी हिन्दी भाषाकुलमे प्रथमा विभक्तिके बहुवचनमें 'ए' प्रत्यय ही है, जो पालिमें व्यापक था और जो मगध देशकी ही लाक्षणिकता थी—अर्ध मागधीमें एव मागधीमे भी यही स्थिति थी। हिन्दीमें स्त्रीलिगी शब्दोमे वह प्रत्यय सानुनासिक 'एँ' के रूपमें है, उदा०—'रचनाएँ' 'बालाएँ' 'भुजाएँ' 'आँखें' 'पाँखें' 'बातें।' हिन्दी एव राजस्थानीकी एक जो विशिष्टता है पुल्लिग अकारान्त-उकारान्त शब्दोमें प्रथमा विभक्तिमे अप्रत्यय दशाकी स्थिति उदा हिन्दी 'पेड उगा—पेड उगे' 'फूल खिला-फूल खिले' 'लड्डू खाया—लड्डू खाये'। यानी साहचर्यसे ही वचन-परिचय होता है। शिष्ट गुजरातीमें प्रथमा विभक्तिके विषयमें साहचर्यसे जहाँ भी बोध है वहाँ सभी शब्दोमें ओकारकी आवश्यकताके विषयमें कोई बन्धन अनिवार्य नही है।

नाम —भारतीय आर्यकुलकी रूपाख्यान-पद्धति समान है। प्रत्ययोका लगभग नाश हो गया है और उनका स्थान अनुगो अथवा परसर्गोंने लिया है। गुजराती एव राजस्थानी-कुलमें तृतीया विभक्तिमे 'ए' बच गया है (जिसका उच्चारण ह्रस्व विवृत है—प्रान्तीयताकी दृष्टिसे कही कही वह सानुनासिक 'एँ' के रूपमें भी है), जो भीली-कुलमें भी है। इतना ही नही, सप्तमी विभक्तिमें भी बच गया है,

उत्तर गुजरातमे अकारान्त नपु नामोके रूपोमें प्रथमा ब व मे 'ढोराँ' 'घराँ' 'खेतराँ' जैसे रूप प्रयुक्त होते है। शिष्ट भाषामें यह नही है।

निर्बल अगका गुज में नपु, किन्तु दूसरोमें पु 'घर' शब्द :

ए व	गुज	राज	माल	ब्रज	हिं
प्रथमा	घर	घर	घर	घर	घर
तृतीया	घरे	घर	घर		
वि अ	घर–	घर–	घर–	घर–	घर–
बहुवचन					
प्रथमा	घर (–घरो)	घर	घर	घर	घर
तृतीया	घरे (घरोए)	घराँ	घराँ		
वि अ	घर–(घरो–)	घराँ	घराँ	घरौं–, घरनि–	घरो–

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि राजस्थानी कुलमें तृतीया विभक्तिके कर्तृ-अर्थमें 'ने' अनुग या परसर्ग नही लगता है, केवल मेवाती और मालवीमें 'ने' या 'नै' (–नें) का प्रयोग पश्चिमी हिन्दीकी निकटताके कारण होता है।

यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि सप्तमी विभक्तिमे गुज मे 'ए' प्रत्ययवाला रूप अब तक बचा है। वैसे ही राजस्थानी कुलमे भी 'ऐ' '(अँ) रूपमें बचा है किन्तु प्रयोगमे विरल होता जाता है और अनुगो किवा परसर्गोंसे काम चलाया जाता है।

अनुग किंवा परसर्ग :

विभक्तियोंके प्रत्यय नष्ट हो जानके कारण 'अनुगो' अथवा 'परसर्गों' का प्रयोग भारतीय भाषाओमे व्यापक बन गया है। य अनुग या परसर्ग मूलमें तो कोई शब्द ही है, पीछसे घिसते-घिसते छोटे-छोटे रूपमें आ पहुँचे है, स्वरूपमें प्रत्यय जैसे बन गए हैं। इसके अलावा नामयोगियोका भी ठीक-ठीक उपयोग, खास करके गुजराती भाषामे होता है।

	गुज	राज	माल	ब्रज	हिं
तृतीया-कर्ता			ने	नें, नै	ने
तृतीया-साधन	बडे, थी	थकी		से	से
चतुर्थी-सम्प्रदाय	ने	नै	ने, के	कौं, कूं, कै, के	को
चतुर्थी-तादर्थ्य	माटे, सारु, वास्ते			लिए	लिए
पञ्चमी	थी	सूं, ऊँ	ऊँ, से, सूं	सूं, सौं, तें, ते	से
षष्ठी	नो-नी-नुं-ना-ना	रो-रा-री	रो-रा-री	कौ-के-की	का-के-कीख
सप्तमी	माँ, उपर-पर, विशे, में, पर		में, पर	मे, मैं, पै, लौं,	मे, पर

अनुग या परसर्गोके अन्दर पूर्व हिन्दी सबल अगोमें बीचमें 'ए' आता है, 'घोटेने-मे-का' इत्यादि।

षष्ठीके अर्थके विशेषण रूप 'महारउ' ए व अपभ्रंशमे था, इसके ब व मे 'अम्हारउ'। गुज और राज में समान रूप ए व मारो–म्हारो है। मालवीमें 'म्हाँणो' है, ब्रजमें 'मेरौ,' हिन्दीमे 'मेरा' मिलता है, तो ब व गुज 'अमारो,' राज और माल 'मारो–म्हारो', ब्रज 'हमारौ,' हिन्दीमे 'हमारा'। हिन्दीके 'मुझे–हमे कोई ख्याल नही है' (ऐसे चतुर्थी अर्थके प्रयोग होते ही है।)

गुजराती ने उत्तम-मध्यम पुरुषोंके सम्मिलित अर्थका 'आपणे' प्राप्त किया है, जिसका रूपाख्यान राजस्थानीमें 'आपाँ,' मालवीमें भी 'आपाँ' इसी अर्थमें होता है। गुज 'आपणो,' राजस्थानी 'आपरो', तो मालवी 'आपणो' गुजरातीके समान षष्ठीका अर्थ देनेके लिए व्यापक है। 'अपन नही करेगे,' ऐसा प्रयोग बोलचालकी हिन्दीमे कभी होता है तो वहाँ अर्थ 'हम' ही है।

मध्यम पुरुष

ए व	गुज	राज	माल	ब्रज	हिं
प्रथमा	तुं	तूं, थूं	तूं	तू, तैं, तैं	तू
तृतीया	ते				
वि अ	तारा–	थ–, तै–	त–, थ–, था–	तो–, ततोहि–, तुझ	
बहुवचन					
प्रथमा	तमे (–तह्मे)	थे, तमे	थें	तुम	तुम
तृतीया	तमे (तह्मे)				
वि अ	तमारा–(तह्मारा)–	थाँ, तमाँ–	थाँ	तुम्हों–,	तुम–

(गुजराती मे 'तमो', वि अ 'तमो–' भी व्यापक है।)

द्वितीया और चतुर्थीके लिए गुज ए व 'तने' रूप 'त' (म गु तुहु–) अंगको, तो ब व 'तमने' रूप 'तम' (म गु तुम्ह–) अंगको मध्य गुज 'नइ' परसर्ग द्वारा मिला है। राजस्थानी एव ब्रजभाषा तथा हिन्दीमे तो वि अ को अनुग लगकर परूप सिद्धि होती है। गुज चतुर्थी ए व में 'तारे' और ब व में 'तमारे' तृतीयाके प्रत्ययसे प्राप्त है।

षष्ठीके अर्थके विशेषणके रूप 'तुहारउ' ए व अपभ्रंशमे था, इसके साम्यसे 'तुम्हारउ' गुजरातीमे ए व 'तारो-त्हारो', राज और माल 'थारो', ब्रज 'तेरौ', तो हिन्दीमें 'तेरा', ब व मे गुज 'तमारो' राज 'थाँरो–तमाँरो,' माल 'थाँणो', ब्रज 'तुम्हारौ–तिहारौ', हिन्दी 'तुम्हारा'।

गुजराती, राजस्थानी, मालवी, ब्रज और हिन्दी आदि भाषाओमें मानार्थमें 'आप' सर्वनामका प्रयोग होता है। जिसके सभी रूप बनते हैं। इसकी खूबी यह है कि ब्रज और हिन्दीमें वह अन्य पुरुष ब व की क्रियाके साथ प्रयुक्त होता है, उदा०– 'आप करे', गुजराती मध्यम पुरुषके साथ ब व की क्रियाका रूप प्रयुक्त होता है,, उदा० 'आप करो–आवो-जाओ।'

हिन्दीमें 'तुझे–तुम्हे कोई खयाल नही है' ऐसे क्रियाके चतुर्थीके रूपके प्रयोग स्वतन्त्र हैं।

दर्शक सर्वनाम— आ

ए व	गुज	राज	माल	व्रज	हि
प्रथमा	आ	औ यो	यो	यह्	यह्
		स्त्री आ या	स्त्री या		
वि अ	आ–	इण– इणी– अणी–	इणी– अणी–	या– याहि–	इस–
बहुवचन					
प्रथमा	आ	ए, ऐ	य	य	य
वि अ	आ–	इणां– अणां–	इणां– अणां	इन्हौं– इनि	इन्हों– इन–
		स्त्री यां– आं			

गुजराती में ब व में आे प्रथमवाले रूप भी शिष्टोंमें प्रचलित हैं तो द्वितीया चतुर्थीके अर्थमें आमने और षष्ठीके अर्थमें आमनुं खास करके मान बतानेके लिए प्रयोग करते समय बोले जाते हैं।

ए

ए व	गुज	राज	माल	व्रज	हि
प्रथमा	ए	ऊ, स्त्री वा	वो स्त्री वा	वा वह्	वह्
वि अ	ए–	उण– उणी– वणी–	उणी– वणी–	वाहि– वा–	उस–
बहुवचन					
प्रथमा	ए	वै	वी	वै वे	वे
वि अ	ए–	उणां– वणां– वां	वणां	उन्हों– उनि–	उन्हों– उन

आ विषय की सूचना ए के लिए भी समान है।

इतर सर्वनाम

	गुज.	राज	माल.	व्रज	हि.
सम्बन्धी	ज	जो जिको	जो	जो जौन	जो
		स्त्री जिका			
वि अं	ज–	जिण– जण– जणी–	जणी–	जाहि– जा–	जिस–
	ते	सो तिको		सो	
		स्त्री तिका			
वि अं	ते	तिण तिणी–		ताहि– ता–	
प्रश्नार्थ	कोण	कुण कण	कूण	को कौ	कौन
वि अं	को– के	कुण– कण–	कणी–	काहि– का	किस–
नपुं	कोण	काई	काई	कहा का	
अनिश्चित	कोई	कोई	कोई	कोऊ, कोई	कोई
नपुं	कई, काई	काई	काई	कछु	कुछ

गुज मे 'जे' 'ते' के रूपाख्यान 'ए' की तरह सभी सयोगोमे होते है। 'ते' गुज मे 'जे' के सम्बन्धी प्रयोगमे ही प्रयुक्त होता है, वहाँ 'ते' के स्थानपर 'ए' भी आता है। बाकी 'ते' अ पु के सर्वनामकी ही शक्ति अपनेमे बचा सका है। गुज मे 'वह' दर्शक सर्वनाम है ही नही। अ पु सर्वनाम 'तो' का भी स्थान 'ए' ने अपनेमे रखा ही है। इसपरसे बने हुए विशेषण एव अव्ययोमे भी यही स्थिति है।

हिन्दीमे प्रथमा-द्वितीया अप्रत्यय दशामें विशेपण स्वरूपमे एव रूपाख्यानमे वि अ 'जिस' है। 'किस' की भी यही स्थिति है।

गुज 'कोण' जीवित मानवके लिए है। व्यापक रूपमे 'शो-शी शुं के, जिसका वि अ शा-,शे-पु नपु मे है। हिन्दीमें इसके स्थानपर 'क्या' का प्रयोग है। गुज के पास एक प्रश्नार्थ 'कयो-कई-कयुं' भी है, जो 'क्या' के समानान्तर चलता है।

गुज में अनिश्चित 'हरकोई,' 'हरकाई' प्रचलित है। गुज हिन्दी दोनोमे 'हरेक' चलता है, तो गुज मे 'दरेक' व्यापक है।

'गुज मे 'सौ', तो हिन्दीमे 'सब' है, भारतके लिए हिन्दीमें 'सभी' का प्रयोग व्यापक है।

गुज में स्वात्मवाचक सर्वनाम 'पोते' है, हिन्दीमें इस अर्थमे 'अपना' शब्द (विशेषणात्मक) प्रयुक्त होता है। दूसरे तत्सम समान ही है।

क्रियापद :

सबसे प्रथम हम स्थितिवाचक क्रियापदको देखेंगे। पालि प्राकृतमे एक 'अच्छति' रूप था, जिसका सस्कृत मूल स द्वितीय गणका 'अस्' ही है। स मे गम्-गच्छति, यम् -यच्छति, ऋ-ऋच्छति, पृच्छति ऐसे क्रियारूपोमें एक विकरण 'च्छ' बच गया है। 'अस्' का स मे कोई रूप बचा नही, किन्तु पालि-प्राकृतमें आया जहाँ 'होना' और 'बैठना' दोनो अर्थ आये। 'आस्-बैठना' भी मुझे 'अस्-होना' का ही अर्थ-विकास लगता है। गुज में अच्छति>अप अच्छइ, मध्य गु >अछइ, छइ इस प्रकारसे 'छे' तक आया है।

वर्तमान काल		गुज	राज	माल	ब्रज.	हिं
ए व	१	छुं	हूँ	हूँ	हो	हूँ
	२	छे	है	हे	है	है
	३	छे	है	हे	है	है
ब व	१	छीए(-छिये)	हाँ	हाँ	हैं	हैं
	२	छो	हो	हो	हौ	हो
भूत काल पु	३	छे	है	है	है	हैं
ए व		हतो	थो	थो	हो, हुतौ	था
ब व		हता	था	था	हे, हुते	थे

ढूंढाडी (जयपुरी) में छूं 'छै-छाँ छो छै, मू का में छो छा' लक्ष्यमें लेने जैसे है। 'ह' प्रकृतिका सारा विकास 'छ>स>स>ह' के रूपमें है।

भविष्यकाल व प्रकृतिका विकास हत>ह>व के रूपमें है।

		गुज.	राज.	माल	व्रज	हि.
ए व	१	हईस होईस	हे हूँ		होइ हूँ	होगा
	२	हईस ,, हस	ह्वेही		होइ है	होगा
	३	हसे	ह्वेही		होइ है	होगा
ब व	१	हईसुं, होईसं	ह्वेहा		होग	होंग
	२	हशो होसो	हेहो		होग	होगे
	३	हस	हेही		होग	होंगे
	४	हसं	हेही		होगे	होंग

भविष्यकालके इन रूपोंमें प्राय समभार्थ है। राजस्थानीमें हुऊंगा ह्वेऊंगा हुस्यो हेऊस्यो प्रकारके रूपमें प्रचलित है।

मुख्य क्रियापद

वर्तमान कालमें परम्परासे स प्रा अप से जो रूप उतर आए है उनका निश्चयार्थ जीवित भाषाओमें चला गया है और सहायभूत छ के रूप आनके बाद निश्चयार्थ होता है। हिन्दीमें तो निश्चयार्थ के लिये वर्तमान कृदन्तके साथ छ से निष्पन्न ह के रूप लगाकर रूपसिद्धि की जाती है। मूल रूपोंमें विध्यर्थके अर्थोंका बल आ गया है।

गुजराती चाल —चलना

		गुज	राज.	माल.	व्रज.	हि
ए व	१	चालुं	चलूं	चलूं	चलौं	चलूं
	२	चाले	चळे	चळे	चलै	चले
	३	चाल	चळै	चळे	चलै	चले
ब व	१	चालीए (—चालिय)	चळा	चळा	चलै	चले
	२	चालो	चळो	चळो	चलौ	चलो
	३	चाले	चळै	चळे	चलै	चले
आज्ञार्थ—						
ए व	२	चाल (चाल्य)	चळ	चळ	चल	चल
ब व	२	चालो	चळो	चळो	चलौ	चलो
भविष्यार्थ—						
ए व	१	चालीश	चळसूं	चलूंगा	चलिहौं	चलूंगा
	२	चालीश चालशे	चळसी	चलेगा	चलिहै	चलेगा
	३	चालशे	चळसी	चलेगा	चलिहै	चलेगा
ब व	१	चालीशुं, चालशुं	चळसा	चलूंगा	चलिहैं	चलेंग
	२	चालशो	चळसो	चलोगा	चलिहो	चलोग
	३	चालशे	चळसी	चलेगा	चलिहैं	चलेंग

ढूंढाडी (जयपुरी) में चळस्यूं–चळसी–चळस्या –चळस्यो–चळसी ये रूप हैं।

उत्तर गुजरात और पुराने शिरोही राज्यकी गुजराती प्रान्तीय बोलीमे द्वि तृ तृ पु का 'चालसी' रूप है। हिन्दीने तो वर्तमानके रूपोको 'गा-गे' लगाकर काम चलाया है। 'हो' की तरह राज मे 'ला' और 'गो' वाले तो मालवीमें 'गो' वाले ही रूप है।

आज्ञार्थमे गुजरातीमे जहाँ भविष्य' के भाववाले 'चालजे, चालजो' (उत्तर गुजरातमें 'दीजे–लीज' भी) होता है वहाँ हिन्दीमे 'चलियें' रूप बनता है।

भूत काल

भूतकालके रूप तो प्राकृत भूमिकासे ही खो गए है। सस्कृतमे भूतकृदन्तोका उपयोग शुरू हो गया था, प्राकृतादि भूमिकामे वह चालू था और हमारी आजकी भारत-आर्यकुलकी भाषाओमे वही चला आता है।

कर्मणि और भावे रचना सकर्मक क्रियापदोकी कर्मणि रचना और अकर्मक क्रियापदोकी भावे रचना सस्कृतकी तरह गुजरातीमे भी व्यापक है। गुजरातीमे दोनो रचना क्रियारूपोमें मध्यग 'आ' से सिद्ध की जाती है—'छगनथी चोपडी वँचाय छे' (कर्मणि), छगनथी दोडाय छे (भावे)।* हिन्दीमे भी वाक्यके ये दोनो रूप है उदा०—'छगनसे पुस्तक पढी जाती है' (कर्मणि), 'छगनसे दौडा जाता है' (भावे)। यहाँ हिन्दीमें भूतकृदन्तके साथ 'जा' धातुके कर्तरि वर्तमान कृदन्तका रूप प्रयुक्त होता है। हिन्दीमें विध्यर्थ 'दिखाना, कराना, बुलाना' ऐसा मर्यादित प्रयोग दिखाई पडता है। राजस्थानीमें 'मारणो' का 'मारीजणो' जैसा 'ईज' मध्यगवाला (स 'इ+य' का क्रमिक विकास प्रा 'इज्ज' द्वारा) प्रचलित है।

गुज पास सस्कृत की कर्मणि भूतकृदन्तोकी यथावत् रचना भी है, जैसे 'छगने चोपडी वाची'। इस परसे चालू नयी रचना भी प्रचारमें है, उदा०—'छगनथी चोपडी वचाई।'

'मार' जैसे क्रियामूलके कर्मणि प्रयोगमे 'छगने मगनने लाकडी मारी'—'छगने मगनने लाकडीए मार्यो'—'छगने मगनने मार्यो'—'छगने मगनने मार्युं'। इनमेंसे हिन्दीमे 'छगनने मगनको (लकडीसे) मारा।' यही भावे रचना व्यापक है। 'छगनने मगनको लकडी मारी' यह हो सकता है, किन्तु यह व्यापक नही है।

प्रेरक 'प्रेरक' के विपयमें गुजरातीमें विविधता है, उदा०—अकर्मक क्रियारूपोंके विषयमें—स 'पतति', गुज 'पडे छे', प्रेरक स 'पातयति'—गुज कर्मक रूप 'पाडे छे', आगे जाकर 'पडावे छे' और फिर तो 'पडावरावे–पडावडावे छे।'

सकर्मक क्रियारूपोंके विषयमें—स करोति', गुज 'करे छे', प्रेरक स 'कारयति', गुज 'करावे छे', आगे जाकर 'करावरावे–करावडावे छे।'

'भम,' 'लग' जैसे कितनेमें 'भमाववुं–भमाडवुं' 'लगाववुं–लगाडवुं' यो वैकल्पिक 'आड' का प्रवेश, तो 'पेस' जैसे क्रियारूपोमे 'आड' ही 'पेसाडवुं।'

---

* गुजरातीकी विशिष्टताके सम्बन्धमे इस लेखके लेखकका ग्रन्थ 'गुजराती भाषा शास्त्र भाग–२' (पृष्ठ–११५–१२५) द्रष्टव्य है।

हिन्दीमें दो प्रक्रियायें चालू है— चलना से चलाना—चलवाना पकड़ना से पकड़ाना—पकड़वाना देना से दिलाना—दिलवाना बोलना से बुलाना—बुलवाना इत्यादि।

कृदन्त

वर्तमान कृदन्त इसका पारम्परिक प्रत्यय त सबका अंशका मिला है। बुन्देलीमें केवल निर्बल त है। गु करतो—ती—तुं—ता—ता राजस्थानी और मालवीमें करतो—ती—ता ब्रज करतो—ती—ते हिन्दी करता—ती—ते।

भूत कृदन्त इसमें भी य परम्परा ही है। गु राज माल ब्रज गयों—री हिन्दी किया—की हँसा—सी पढ़ा—ढी।

अव्ययरूप कृदन्त (सबन्धक भूतकृदन्त)—गुज में करी करीन ता राज करे, माल ब्रज करि हिन्दी कर। हिन्दीमें संयुक्त क्रियापदोंमें कर जैसे रूप प्रयुक्त होते हैं, स्वतन्त्र दशामें तो रूप में कर लगाया जाता है हँसकर जाकर। मुख्य कर में के और दूसरे रूपोंमें विकल्पसे के भी लगाया जाता है कर के हँसकर—हँसके आदि।

सामान्य कृदन्त स तव्य के विकासमें गुज करवा राज चलवा माल चलवो तो क्रियावाचक नाम-प्रत्यय अन के विकासमें राज चळणा—चळणूं माल चळना ब्रज चलनो हिन्दी चलना है।

यहाँ गुजराती और हिन्दीकी तुलनाका एकदम गहराईमें नहीं वरन तुलनात्मक दृष्टिसे सामान्य जानकारी देनेकी दृष्टि से ही विवेचन किया गया है।

गुजराती भाषियोंकी हिन्दी-सेवा

डॉ ग्रियर्सनने जिस विशाल प्रदेशको राजस्थान समझकर उसकी व्यापक भाषाका राजस्थानी कुलनाम अपनी अनुकूलताके लिए दिया वह प्रदेश अलबरूनीके द्वारा अभिहित 'गुजरात' था और उस विशाल प्रदेशकी भाषा भी गौर्जर अपभ्रंश थी। उसी राजस्थानी की पश्चिम विभागकी भाषाका नाम—'गुजराती' को साथ मिलाकर—डॉ तेस्सितोरीने पश्चिमी राजस्थानी दिया है। इस पश्चिमी राजस्थानी के दो भेद हैं 'मध्यकालीन राजस्थानी' और 'मध्यकालीन गुजराती' और मालवका दिया हुआ नाम है गुर्जर भाषा। आचार्य हेमचन्द्रके उत्तरकालमें उत्तर अपभ्रंश भाषाकी जो साहित्यिक कृतियाँ प्राचीन कवियोंकी मिलती है उनमें 'मध्यकालीन राजस्थानी' और मध्यकालीन गुजराती' अथवा 'गुर्जर भाषा' के पूर्वका स्वरूप मिलता है। न हिन्दीका न हिन्दीकी मानी गई उपभाषाएँ ब्रजभाषा आदिका उनके साथ कोई जनक-जन्य सम्बन्ध है। भाषाओंका पार्थक्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है। मध्यकालीन गुजराती की ई सन् ११५ के आस-पाससे प्राप्त हुई कृतियोंमें जहाँ कहीं व्यापक हिन्दी भाषा मिलती है वह इसी कारण स्पष्ट स्वरूपमें अपना व्यक्तित्व व्यक्त कर देता है। अवहट्ठ की छायामें उद्भूत कृत्रिम डिंगल भाषा—चारणी भाषा भी स्पष्ट रूपसे मालूम हो जाती है। ईसरके पीछे व्यासके रणमल्ल छन्द में कृत्रिम डिंगली रूपोंका प्राधान्य है किन्तु उसका स्वरूप हिन्दी का नहीं है मध्यकालीन गुजराती का ही है। पद्मनाभके कान्हडदे प्रबन्ध की भाषा भी स्पष्ट रूपसे मध्यकालीन गुजराती है। रासयुग-

नरसी मेहता

के अन्तिम भागकी कृतियोमे जैनेतर कवियोकी भी कोई कोई कृति प्राप्त है—असाइत नायककी 'हसाउलि' (ई सन् १३६१), अज्ञात कविका 'वसन्त-विलास फागु' (ई सन् १३५०-१४०० के करीव), वस्तिगकी 'चिहुगति-वेल चउपई' (ई सन् १४०६ से पूर्व की कृति), और भीमका 'सदयवत्सचरित' (ई सन् १४१०)। इन कृतियोमे हिन्दी रचनाओंके दर्शन नही होते है।

'रास युग' के अनुसन्धानमे नरसिंह महेताकी भक्तिमय विशाल पद रचनाओके कारण 'आदि-भक्तियुग' का आरम्भ होता है, जिसके आदि कवि अव तककी खोजोके अनुसार नरसिंह महेता ही ठहरते है। इस युगकी परम्परा अणहिलवाड पाटणके भालणमे और मारवाड-गुजरातकी भक्त कवयित्री मीरामे प्रतीत होती है। मेरे मतानुसार 'आदिभक्ति युग'की कालावधि ई सन् १४२० से १५२० तक मानना चाहिए। गुजरातमे भक्तिकी धारा कहाँसे आई इस विपयमे सप्रमाण कहा जा सकता है कि नरसिंह महेता पर तो एक ओर जयदेवके सस्कृत काव्य 'गीतगोविन्द' का असर था, तो दूसरी ओर महाराष्ट्रीय वारकरी वैष्णवोका। नरसिंहने 'हारसमे के पदो' मे जव गाया कि 'देवा हमची वार का वधिर होइला, आपुला भक्त का विसरी गेला' और अपनी छापके लिये 'नरसैयाचा स्वामी' ऐसा अपने सैकडो पदोमे कहा, तव कोई शका नही रहती। 'भणे नरसैयो' शब्दो पर तो जयदेवके 'भणति जयदेव' और वारकरी वैष्णव कवि नामदेवके 'नामा म्हणे' का सम्मिलित असर प्रतीत होता है। पण्ढरपुरके भगवान् 'विठोबा' नरसिंहसे ये परिचित है और गुजराती साहित्यमे तो सवसे पहले नरसिंह महेताहीने अपनी कवितामे 'विट्ठल' शब्दका और सम्वोधनोमे मराठी सदृश आकारान्त शब्दोका विपुलतया प्रयोग किया है। नरसिंह महेताका प्रिय छन्द 'झूलणा' स्पष्ट रूपसे नामदेवके अभगोका विकास मालूम पडता है। 'महानुभाव सम्प्रदाय'के मराठी सन्तोने एव 'वारकरी सम्प्रदाय' के नामदेवने भगवान कृष्णकी विविध लीलाओका गान भी किया था। 'भागवत' एव 'गीत गोविन्द' से प्रेरणा पाकर मराठी सन्तोकी पदप्रणालीको नरसिंहने आत्मसात् करके अपनी उद्दीप्त प्रतिभासे अनेक-सहस्र पदोकी रचना की। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि गुजरातमे नरसिंहसे पूर्व पद-प्रकार एव 'झूलणा' की रचनाएँ नही थीं, फिर भी इनको व्यापक बनानेका सर्वप्रथम श्रेय तो नरसिंह महेताको ही मिलता है।

सम्भवत नरसिंहका व्रजभाषाके शब्दोसे परिचय रहा हो। मुद्रित सस्करणोमे 'व्रखभान कुमारी' 'व्रिजवासी' 'कनैयालाल' जैसे शब्द क्वचित् मिलते हैं, तो 'रास सहस्त्रपदी' के मुद्रित पदोमें व्रजभाषाका एक पूरा पद भी मिलता है —

[पद ११९ मु—राग 'सामेरी']

साखी — कुजभवन खोजती प्रीते रे, खोजत मदन गोपाळ।
प्राणनाथ पावे नहीं तातें व्याकुल भई वृजबाळ ॥१॥
चाल — (चालता ते) व्याकुल भई व्रजबाला, ढुढती फीरे श्याम तमाला।
जाय बुझत चम्पक जाई, काहु देखी नन्दजी को राई ॥२॥
साखी — पीय संग एकात रस विलसत राधा नार।
कध चडावनको कहो, तातें तजी गये जु मोरार ॥३॥
चाल — ताते तजी गये जु मुरारी, लाल आय सग ते टारी।

त्यों और सखी सब आईं, नवहु देखो मोहन राईं ॥४॥
मैं तो मान कीयो मेरी बाई तातें सखी नचे नचाईं ॥५॥

साखी.— कृष्णचरित्र कोनो करे, कौतसे राधा नार।
एक भई त्यां पूतना एक भई जु गोपाळ लाल ॥६॥

चाल.— एक भई जु गोपाळ लाल री तेने दुष्ट पूतना मारी।
एक भेस-मुकुन्दको कीनो तेने तृणावर्त हरि लीनो।
एक भेस-दामोदर धारी तेने जमलम-अर्जुन तारी ॥७॥

साखी.— प्रेम प्रीत हरि जीन के, आए उनके पास।
मुदित भई त्यां भामनी गुन गावे नरसैंयो दास ॥८॥

(न म काव्य संग्रह पृष्ठ १९८–९९)

इस पदकी भाषाका स्वरूप भ्रष्ट है और किसी प्राचीन हस्तलिखित प्रतिमें अब तक नहीं पाया जाता। यह कृति यदि नरसिंह मेहताकी हो तो भाषाके कारण मथुरा प्रदेशके सम्पर्कका यह परिणाम हो सकता है।

भालणकी व्रजभाषामें लिखित पाँच-छह पदोंकी रचना तो सचमुच ध्यान देने योग्य है। भालणने भागवतके दशम स्कन्धका भावानुवाद करना दशम आख्यान के रूपमें किया है (ई सन् १५ के करीब)। भालणने कृष्णकी लीलाके स्वतन्त्र पदोंकी भी रचना की थी। स्वयं भालणने या किसी अन्य समकालीन या उत्तरकालीन सम्पादकने चाल कथाके बीच भालणके पदोंको समाविष्ट किया है। ऐसे १५ से भी अधिक पद सम्मिलित किए गये हैं। इनमें प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंमें व्रजभाषाके पाँच पद मिलते हैं और मुद्रित संस्करणोंमें एक पद अधिक भी मिलता है। (मुद्रित संस्करणोंमें ये ११ २५१ २५२ २५४ २५५, २६५ क्रमांक पद व्रजभाषाके हैं)। उनमेंसे एक यह है—

"व्रजको दुख समरत स्याम
पर्णकुटी सी बीसरत नाहीं नाहीन भावत सुंदर धाम ॥१॥
दधीर माग नवनीतके कारन उखले बांधे ते बहु दाम।
चितमें वे जु चुभी रही है चोर चोर कहत है नाम ॥२॥
निशदिन फिरतो जु सुरभिके संग घरघर नाचत बीत बनठाम ॥३॥
निज कृती दोहन व्रजको दुख करी देख्त नाहीं जो नाम ॥४॥
मोर पिच्छ मुंजाफल केके वेश बनावत बधिर ललाम।
भालणप्रभु विधाताकी गति चरित्र तुम्हारे सब काम ॥५॥

आश्चर्य है कि भालणके व्रजभाषाके पदोंपर सूरदास आदि अष्टछापके भक्तकवियोंका असर न होनेपर भी किसी-किसी गुजराती पदपर यह असर स्पष्ट दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भालणने जीवनकी उत्तरावस्थामें मथुरा प्रदेशकी यात्रा की थी और व्रजमें गिरिराज पर श्रीनाथजीके मन्दिरमें कुम्भनदास आदि भक्तोंके पदोंका श्रवण किया था।

भक्त कवयित्री मीराके विषयमे तो विशेष कहनेको है ही नही। इनकी राजस्थानी एव गुजराती मिश्रित रचनाओके अतिरिक्त ब्रज भाषाकी रचनाएँ भी काफी है। गुजरातीकी हस्तलिखित प्रतियोमे नरसिंह, नारायण, परमानन्द, सूरदास आदिकी रचनाओके साथ मीराके ब्रज भाषाके पद भी मिलते हैं। (ई सन् १६४५ की एक प्रतिमे 'मुरली वाजि हो, साजन मुरली वाजि हो' और 'नन्दलाल स्यु मेरु मन मान्यु हसा काहु करी गा कोइ रे' ये दो पद मिलते है)

इस युगके एक जैन कवि लावण्यसमयका उल्लेख उपयुक्त होगा। इनके ऐतिह्यमूलक प्रबन्ध-काव्य 'विमलदास' या 'विमल प्रवन्ध' मे (ई सन १५१२ की रचनामे) मुस्लिम पुरुष-स्त्रियोके द्वारा कहे गए वाक्यो में 'खडी बोली' का स्वरूप पाया जाता है। लावण्यसमय सम्भवत पहले गुजराती कवि हैं जिन्होने खडी बोलीका प्रयोग किया है —

"उचे गुखी चडी-चडी जव जोइ सुरताण।
क्या कीजइ हवइ आया खुदा तणा फुरमाण ॥७४॥
कसला वल हादरि हूआ, जब पूछइ सुरताण।
आया विमल वकाल ए, मुरडि मनावइ आण ॥७५॥
+ + +
आया हींदू गोबरे, सुणीआ बोल बकाल।
सामा सवि छीनी लीइ ते किम आपइ काल ॥७७॥
हींदू अह्म हक्कि गया, लडि विण लित्ता कोट।
ते कुण आज बकाल बे हमकु देवइ दोट्ट ॥७८॥

चालि

हमकु देवइ दोट बकाला, मागइ माल कोडि बिच्यारा।
हमके हाजारि नही असवारा, नही कोई वली झूझारा ॥७९॥
हमे सुरतान सम्रान समाने, हमकु नामु कोटि।
देखे बीबी लोक लूटाउ, मारि कराउ लोट ॥८०॥
ए तेरे पाय पडाउ, तु हू साहिब तेरा।
हिंदू कटक कराउ हेरा, कसू कहु बुह तेरा ॥८१॥"
+ + +
"ए हींदू छइ देव सरूपी, जे जे इणि दलि आया।
जिम देखु तिम वीट वीटाई, क्या हींदूकी माया ॥९२॥
रे रे मीरा रहि एक तीरा, म करे मान पराण।
जिसकी खोल्या बाण भी जावइ गाउ पच प्रमाण ॥९३॥" (सातवाँ खण्ड)

उपर्युक्त पक्तियोमे कई भाषाओका मिश्रण है। अत भाषाका रूप विकृत भी है, तो भी 'खडी बोली' का स्वरूप पकडनेमें कोई कठिनाई नही है। इनकी कवितामे आगे चलकर 'रेखता' का भी प्रयोग हुआ है और उसका यह पूर्वाभास है।

मुखिया साचोरा ब्राह्मण थे, जो अहमदाबादके पासके गाँवके निवासी थे। 'रामदास' की छापके उनके पद मिलते हैं। एक पद देखिए —

[राग 'गोरी']

" चलि सखी चलि अहो ब्रज पेंठ लगी है जहाँ बिकात हरि-रसप्रेम।
सूठ सोधो प्राननके पलटे उलट धरो जिय नेम ॥१॥
ओर भगति पाइवौ अति दुर्लभ कोटिक खर्चो हेम।
'रामदास' प्रभु रत्न अमोलिक सखी पैयत है राम ॥२॥ "

ई सन् १५२५ के आस-पास पौराणिक आख्यान-कथानकोकी प्रचुरतावाला 'आख्यान युग' जोर पकडता है। प्रेमानन्दके समय (ई सन् १७००) तक गुजराती साहित्यके इतिहासमे यह युग अपनी विपुल आख्यान-रचनासे विशिष्टता स्थापित कर गया है। इस युगमे भी हिन्दीकी सेवा करनेवाले साहित्यकार गुजरातमे कभी-कभी मिल जाते है। ई सन् १५३६ के प्रभासपाटणके कवि केशव हृदयरामकी 'कृष्णक्रीडाकाव्य' नामक ४० सर्गोकी गुजराती काव्यकृतिमें राधाके प्रसगमे (१४ वे सर्गमे) ब्रजभाषाकी बहुतसी पक्तियाँ मिलती है। उनमेंसे कुछ की वानगी देखिए —

['ध्रुपद']

" त्यज अभिमान गोवाली! घरच आयो श्री वनमाली,
याके चरण चतुर्मुख सेवे, किंकर होय कपाली। ५२

× × ×

सुनो हो यशोमति माय! कृष्ण करत हे अति अनियाय।
त्रोटक—कृष्ण करत हें अन्याय अतलीबल, गोपीको कह्यो न मानें,
देखत लोक, लाज कुछू नही, नारच बोलावत ही शाने?
हम गुनवन्ती सती सुलखणी, यह विध्य रह्यो न जाय,
कोप हि काल्य सुनेगो कसासुर, सुन हो जशोमति माय ॥५७॥ "

आगे ६४ वी पक्ति तक यह प्रसग चलता है और वहाँ तक ब्रजभाषाकी रचना है। केशवका भी ब्रजभूमिके साथ सम्पर्क सम्भव है। हाँ, इतना स्पष्ट है कि भालणपर पुष्टिमार्गके सूरदास आदि का असर है किन्तु केशव पर ऐसा कोई असर नही दिखाई पडता। इनपर यदि कोई असर है तो वह नरसिंह महेताकी 'चातुरियो' की बन्धपद्धतिका।

इसी युगमें श्रीविट्ठलनाथजीके २५२ शिष्योमेंसे किसी-किसी गुजराती शिष्योकी भी रचना ज्ञात हुई है। इनमेंसे एक शिष्य 'कटहरिया' गुजराती क्षत्रिय थे, जिनका निम्नलिखित पद यहाँ दिया जा रहा है—

[राग 'सारग']

" आज महा मगल महेराने,
पंच शब्द धुनि भीर वधाई घर घर वेर खवाने ॥१॥
ग्वाल भरे कावर गोरसकी वधु सिंगारत वानें।
गोपी गोप परस्पर छिरकत दधि के माट ढराने ॥२॥

मिट्टी में से जीवता मैं ऊठु जब बहार ।
तब फिरियाद वही करू, कहा है मेरा यार ?॥४॥
प्रियतम बिछूरन फिर मिलन, का जाणे कब होय ?
एह जग मिलन अनुप हे, मिली न विछुरो कोय ॥५॥
बिछुर मिले ते बहुत सुख, जु प्रियतम एहीं भाउ ।
प्रेम पलटियो, हे सखे, बिछुरे मिले तो काउ ? ॥६॥"

(पृष्ठ २२६–२७)

खम्भातके जैन कवि ऋषभदास एक प्रसिद्ध साहित्यकार हो गए है। इनकी रचनाओमें भी 'खडी बोली' के अश दीख पडते है। 'कुमारपालरास' में (ई सन् १६१४) एक स्थानपर यह छन्द आया है —

"कब ही माणस लाख लहइ, कबीक लाख सवाय ।
कबीक माणस कोडि लहइ, जब वाओ वाइक वाय ॥८१॥"

(आ का महोदधि ग्र ७, पृ १४२)

'श्रीहीरसूरिरास' मे (ई सन् १६२९) तो मुस्लिम पात्रोके द्वारा 'खडी बोली' का इन्होने प्रयोग कराया है —

"दीठो रूप सुदर आकार, खीजी खान बोल्यो तिण वार ।
'क्यु बे सेवडा इनकु करे ? क्या समज्या ए योग क्या धरे ?'॥७०॥
सताबखान बोल्यो तिहां सोय, 'करे सेवडा इनकु कोय ?
मारू ठार न छोडु उसे,' सताबखान इम हुओ गुसे ॥७१॥
रतनपाळ शाह बोल्यो तहीं, 'में तो सेवडा करता नहिं ।
ब्याह करूंगा इनका सही, जूठी बात तुम आगे कही ॥७२॥"

(आ का महोदधि ग्र ८, पृ ४३)

आगे हीरविजयजी और अकबरके जहाँ-जहाँ सम्वाद आते है वहाँ-वहाँ सर्वत्र अकबरके द्वारा 'खडी बोली' का प्रयोग मिलता है। वैसे ही जिनचन्द्रसूरिके प्रसगमें जहाँ अकबर और जहाँगीरके शब्दोको देनेका प्रयत्न समयप्रमोद आदि जैन कवियोने किया है, वहाँ भी खडी बोलीके अश मिलते है। कनकसोम, साधुकीर्ति, गुणविनय, समयसुन्दर, लब्धिमुनि रत्ननिधान आदिने 'जिनचन्द्रसूरि' की प्रशस्तिमें पद लिखे है, उनमें कई पद 'खडी बोली' मे ही है। उदाहरणके लिअे दो पद यहाँ दिए जा रहे है —

"बनी हे सद्गुरुकी ठकुराई ।
श्री जिन चन्द्रसूरि गुरुवदो, जो कुछ हो चतुराई ॥१॥
सकल सनूर हुकम सब मानति तै जिन्ह कु फुरमाई ।
अरु कछु दोष नहीं दल अतरि, तिमि सब हीं मनि लाई ॥२॥
माणिकसूरि पाट महिमावरी लइ जिन स्यु वितणाइ ।
झिगमिग ज्योति सुगुरुकी जागी, 'साधुकीरति' सुखदाइ ॥३॥"

(ऐ जै का स पृ ९७)

"सुगुरु मेरउ कामित कामगवी।
जग सूझ ताही अकबर दीनी सुगमवाम नवी ॥१॥
सकल निशाकर मंडल समसरि दीपति वदन छवी।
महिमंडलमह महिमा जाकी दिन प्रति नवी नवी ॥२॥
जिन माणिकसूरि पाट उदयगिरि श्रीजिनचन्द्र रवी।
पेखत ही हरखत समज मनमह रत्ननिधान कवी ॥३॥

(पृ १२१)

इस युगमें गुजरातका एक नरसिया (ई सन् १५११) परम भक्त महात्मा दादूदयाल (ई सन् १५४५ १६११) पुहकर कायस्थ (ई सन् १६२५) रामचन्द्र नागर (ई सन् १६४६), महराज सुभाणा (ई सन् १६६९) कवीश्वर दयारामजी (ई सन् १६६९) लक्ष्मीरामजी अहमदाबादके दलपतिराम बंशीधर और रघुराम (ई सन् १७ १) के विषयमें भी जानकारी प्राप्त हुयी है। इनमें दादूदयाल अहमदाबादके थे और परम भक्त थे उनकी ख्याति राजस्थानमें विशेष हुई है। उनके नामसे 'दादू पन्थ' नामक एक सम्प्रदाय भी चला। इस सम्प्रदायके अनुयायी जनोंकी प्राप्त रचनाएं मध्यकालीन 'ढूंढाळी' भाषामें हैं। दादूकी रचनाकी एक बानगी देखिए —

"अजहुं न निकसे प्राण कठोर।
दरसन बिना बहुत दिन बीते सुंदर प्रीतम मोर॥
चार पहर चार हु युग बीते रैनि गँवाई भोर।
अवधि भये अजहूँ नहि आये कतहुँ रहे चित चोर॥
कबहु नैन निरखि नहिं देखे मारग चितवत तोर।
दादू अइसहि आतुरि विरहिनि जइसहि चंद चकोर॥"

दलपतिराम और बंशीधर अहमदाबादके थे और उन दोनोंने साथ मिलकर महाराजा जसवन्तसिंहके सुप्रसिद्ध भाषाभूषण ग्रन्थकी टीकाके रूपमें—संस्कृतके कुवलयानन्द ग्रन्थके आधारपर हिन्दीमें अलंकार-रत्नाकर की रचना की है। ये दोनों हिन्दीके उच्च कोटिके कवि थे।

इस आख्यानयुग में गुजराती में समर्थ रचनाओंके साथ-साथ स्वतन्त्र रूपसे हिन्दीमें भी लिखनेवाले कवि तो अखा भगत (ई सन् १६ ०—१६५ के करीब) हैं। सन्तप्रिया (१ ७ साखी) और ब्रह्मलीला (छह सौ कड़ियोंके बारहरे) ये इनकी कृतियाँ व्रजमिश्रित भाषा वाणी में हैं। अखाने वेदान्तके सिद्धान्तको ठीक-ठीक आत्मसात् कर लिया था। वे कठिन-से-कठिन विषयको भी सर्वसुलभ और सरल भाषामें अपनी कविताओंमें अच्छी तरह अभिव्यक्त करनेकी क्षमता रखते थे। गुजराती एवं हिन्दी दोनोंही भाषाओंमें वह अपनी बात आसानीसे समझा देते थे। गुजरातीमें आपकी पदोंकी चौपाईकी रचना भी विपुल संख्यामें मिलती है। आपने अनेक गद्य पदोंकी रचना भी की थी। आपने ऐसे पद हिन्दी भाषामें भी लिखे थे। उदाहरणार्थ कुछ पद यहाँ दिए जाते हैं —

"रामरसायन जिन जिनही पियो है ताके नैन भये कछु औरा।
अब ही प्यालो भरि जाम पियो है रामरसायन जिन जिनही पियो है॥१॥

उतरत कठ कुटिलता मिट गई, जव उर अतर वास कियो हे।
भिन्न भिन्न भाव रह्यो तोरी भीतर, सो सव महारस नीर दियो हे ॥२॥
पियो हे पीयूष पच्यो हृदामा, महा अनुभव प्रकाश कियो हे।
ऊर्ध्व कमल सुर्ध भये ऐसे, जीव टली निज शिव भयो हे ॥३॥
ऊतरत नाही ताके ब्रह्म-खुमारी, वाकु कवहु न काल ग्रह्यो हे।
ज्युका त्यु ही 'अखा' हे निरन्तर, चित्त चिद्‌रूप भयो सो भयो हे ॥४॥"

"ब्रह्म महल सुख कीनो, अव तो ब्रह्ममहल सुख कीनो ॥ टेक ॥
चतुरातीत त्रिगुण पर पावन, ऐसो निज पद चीन्यो ॥१॥
जहाँ नहि ध्येय, जहाँ नहि ध्याता, धोखालीन सव कीनो ।
विधि निषेध दोउ भये वरावर, ना कोई अधिक अधीनो ॥२॥
ज्यु मोर-सलाखा मध्य परठत, प्रतिविम्ब मो तनमें कर लीनो।
भेदाभेद जहाँ नहि वाचा, आकाश तें अति झीनो ॥३॥
जीवन्मुक्त सकल घटवासी, सव रसभोगी भीनो ।
अजव कला अखा 'सोनारा,' ऐसो अनुभव चीन्यो ॥ ४॥"

'अखे गीता,' उसका गुजराती पद्यात्मक आख्यान-घाटीका ग्रन्थ है। चालीस कडवोंके इस ग्रन्थमे इन्होंने दस स्वतन्त्र पद भी अत्र-तत्र दिए है, इनमें ४, ५, ७, ९ ये चार पद हिन्दीमे हैं। उदाहरणके लिए एक पद दिया जा रहा है —

"अकल कला खेलत नर ज्ञानी, जेसे ही नाव हिरे फिरे दशे दिश।
ध्रुव तारेपर रहत निशानी, अकलकला खेलत नर ज्ञानी ॥ टेक ॥
चलन वलन अवनीपर वाकी, मनकी सुरत आकाश ठेरानी।
तत्त्व समास भयो हे स्वततर, जेसे हिम होत हे पानी ॥१॥
छूटी आद्य अत नहि पायो, जई न सकत जहाँ मन-बानी।
ता घर स्थिति भई हे जिनकी, कही न जात एसी अकथ कहानी ॥२॥
अजब खेल अद्‌भुत अनुपम, जाकु हे पहिचान पुरानी।
गगन ही गेबं भया नर वोले, एही 'अखा' जानत कोई ज्ञानी ॥३॥"

किसी भी गुजराती कविने ज्ञानसे भरे पदोकी रचना हिन्दीमें की हो तो ऐसा अखा ही पहिला कवि है। नरसिंह महेताने और धनराजन ज्ञानसे परिपूर्ण पदो एव वाणियोकी रचना जरूर की थी, किन्तु वे गुजरातीमे ही थी। अखाके सामने कबीर आदि पूर्वकालीन भक्तोंके ज्ञानसे भरे पद मौजूद थे, वे देशाटन भी बहुत किए थे। सत्सग भी जीवनमें उन्होने बहुत किया था। यह सारा ज्ञान वैभव अखाकी कवितामें ढल गया है।

'उत्तर अपभ्रश' के एव 'मध्यकालीन गुजराती' के 'फागुओ' की प्राप्ति ठीक-ठीक प्रमाणमें हुई है। यह काव्य प्रकार गुजरातकी भूमिकी विशिष्टता रही है। ई सन् १६६९ के आस-पासकी एक

'आख्यानयुग' के अन्तके साथ भक्ति और ज्ञानका प्रवाह बहानेवाले कवियोने गद्य पद्य साहित्यसे गुजराती साहित्यको समृद्ध किया है, इस नये युगका नाम 'उत्तर भक्तियुग' है। इस नये युगमें हिन्दीमे भी रचना करनेवाले साहित्यकारोकी कमी नही है। हिन्दीका समादर पहले था। किन्तु इस युगमे और भी बढ गया। इस युगकी विभूतिरूप पद्यमय वार्ताओंका कर्ता, अहमदाबादका कवि सामल भट्ट (ई सन् १७००–१७६५ है करीब) है इन्होने हिन्दीमे कोई विशिष्ट ग्रन्थ नही लिखा है। 'अगदविष्टि' एव 'रावण-मन्दोदरी सवाद, ये इनकी दो काव्य-रचनाएँ है जिनमे 'खडी बोली' के कितने ही पद्य मिलते है। सामल अपने छप्पयके लिअे भी गुजराती साहित्यके इतिहासमे प्रख्यात है। 'अगदविष्टि' मे उनके हिन्दीमे लिखे हुए छप्पय मिल जाते है —

"कहा लठकु लाज, कहा चाडीसु चातर!
कहा भीखमें भोग, कहा जस बिन क्षुधा नर!
कहा जूठे की जीत, कहा गोविंद बिन गानो!
कहा डापण दारिद्र, कहा सत बिने ज्यु शानो!
पुनि कहा मरकट कठ मनि, जुहारी-घर घोडला!
कहा रावनकु रीझवन, थयो बावरीके शिर बेडला!" ॥२२॥

कविने अगदके मुखसे एसे छप्पय–कवित्त आदि कहलवाये है।

'रावण मन्दोदरी सवाद' मे कथा निरूपणमे, विभीषणादि द्वारा ब्रजभाषाका प्रयोग मिलता है, तो कवित्त एव छप्पय भी भी खडी बोली और व्रज भाषाके मिश्रणमे है, एक कवित्त देखिए —

"बिभिषण कहे सुणो भ्रात, आये हे श्री रघुनाथ,
लक्ष्मण अनुज भ्रात, जनम को जती है।
आप मन ज्ञान आनो, वाको तो गुन बिखानो,
देवन को देव जाणो, त्रिलोक को पति है।
जाके नाम मुक्ति पावे, जठर फरी न आवे,
दर्शन अघ कोटि जावे, अतलि बल अति है।
सामल कहे काम कीजे, रक केरो कह्यो कीजे,
कर जोर सीत दीजे, (शुभ) शिरोमणि सती है॥८१॥"

इस नये युगमे नडियादके निकटके पीज गाँवके पटेल वेणीदासकी (ई सन् १७०५) 'दिल्ही साम्राज्य वर्णन' नामक कृति तत्कालीन राजकीय भूगोलकी दृष्टिसे एतिहासिक महत्वकी है। इसी समयकी एक दूसरी स्वतन्त्र कृति 'बाबी विलास' प्राप्त हुई है। अहमदाबादके राजपुर नामक उपनगरकी 'तुलसीपोल' के विसनगरा नागर केवलरामकी यह रचना है। अहमदाबादके इस समयके सूबेदार बाबी जवाँमर्दखानकी एव उसके पूर्वजोकी प्रशस्तिके रूपमे यह ग्रन्थ काव्यगुणोसे भी भूषित है। यह कृति ई सन् १७५० के निकटकी है। बाबी कमालुद्दीन उर्फ जवाँमर्दखानकी प्रशस्तिके दो कवित्त उदाहरण स्वरूप यहाँ दिये जा रहे है —

ई सन् १७०० के आस-पास वागड प्रदेशमें योगिराज मावजी और वादमे उनके नित्यानन्द जीवणदास सुरानन्द आदि शिष्य-प्रशिष्योने ज्ञान-भक्तिकी अनेक वाणियाँ एव पदोकी विपुल रचना की। वे रचनायें हस्तलिखित ग्रन्थोमे सुरक्षित पडी है। मही और सोम नदियोके सगमके निकट अवस्थित उनके धर्मस्थान सावला-हरि मन्दिरमे रखे गये वड ग्रन्थमे सैकडोकी सख्यामे इनके पदादि मिलते है। उनके इतर धर्मस्थानोमे भी इस ग्रन्थकी नकले होनेकी खबर है। सावला-हरिमन्दिरके उस ग्रन्थके दर्शनका लाभ मुझे मिला है। भाषा हिन्दी प्रचुर स्थानीय वागडीके स्वरूपकी है।

अखाकी तरह ज्ञानीभक्त प्रीतमदासने (ई सन् १७१८–१७९८) भी गुजरातीके साथ-साथ हिन्दीमे भी स्वतन्त्र रचनाएँ की थी। 'भक्त-नामावलि', 'ब्रह्मलीला', 'साखियो' में कही-कही हिन्दी दोहे मिलते है तो 'प्रेमनुं अग' 'वैराग्यनुं अग' 'अनन्यनु अग' 'ब्रह्मनुं अग' 'तृष्णानुं अग' 'मननुं अग' 'स्मरणनुं अग' आदि अग प्राय हिन्दीमे—खडी बोली में है। इनके भी कुछ पद 'खडी बोली' में मिलते है, जैसे–

"पद सरोज पर वारी, श्याम तेरे पद सरोज पर वारी।
मगल करत हरत सब दुखको, उर राखे त्रिपुरारी ।।१।।
जे पद मूल प्रगट भई गगा त्रिभुवन-पावनकारी।
'प्रीतम' सोइ चरणरज वन्दे तन मन धन बलिहारी।।२।।"

स्तुतिके पदोका हिन्दीका उदाहरण लीजिए—

"जय जय श्रीजानराय भक्त हितकारी ।। टेक ।।
पतितपावन नाम जाको लीला पीयूषधारी ।। १ ।।
कमलासन शम्भु शेष कहत निगम च्यारी।
दिनके दयाल आप, ईशता विसारी ।। २ ।।
गुनका गज विप्र व्याघ्र क्षुद्र पशु नारी।
अधम जाति बहुत भाति आपदा निवारी ।। ३ ।।
पाहि पाहि अशरणशरण, राखिये मोरारी।
'प्रीतम' के प्राणप्यारे–महिमा बलिहारी ।। ४ ।।"

मुकुन्द नामक एक भक्त ई सन् १७२१ के आसपास हुए थे। उनके हिन्दी पद भी प्राप्य है। एक नमूना देखिए —

"मोहन मधुबनमें बिराजे ।।टेक।।
बादर झुक आयो चौफेरी, मधुर मधुर स्वर गाजे ।। १ ।।
घटा छटा, घन दामनी चमकत, मोर बपैया समाजे ।। २ ।।
सुदर श्याम प्रभु मनोहर मूर्ति देखी मदन मस लाजे ।। ३ ।।
'मुकुन्द' मन्दमति कहे कर जोडी हृदयकमलमें बिराजे ।। ४ ।।"

इस युगके आरम्भके आस-पास किशनदास नामक जैन साधुने 'किशन बावनी' की (ई सन् १७५१) रचना की इसमें २२ कवित्त-सुभाषित है।

नरसिंह महेताके काका पर्वत महेताके एक वंशज जीवणदास वैष्णव बड़े रामभक्त थे (ई सन् १७४४-१८)। इनका विपुल भक्ति परक पदसाहित्य मिलता है। इन्होंने रुक्मिणी ब्याह फारसी बहुल ब्रजभाषामें रचा था।

एक शिवभक्त शिवानन्द सूरतमें ई सन् १७५४ के आस-पास हुए इनकी शिवविषयक रचनाएँ हिन्दीमें भी मिलती हैं। इस युगमें डूंगरपुरकी भक्त और वेदान्ती कवयित्री गौरीबाई मथुराम (ई. सन् १७८४ के पहले) और मूलतः उदेपुरके किरमें आकर और बसे हुए केवलपुरी मुक्तानंद महात्मा निरांत भक्त भोजा भक्त मुकुन्द प्रल्हाद हरजीवन व्यास भावनगरी आदि भक्त कवियोंने गुजराती पदोंके साथ-साथ हिंदीमें भी पद रचना की है। गौरी बाईकी रचना अष्टछापके कवियोंकी टक्करकी है।

आमोदके वैष्णव गोविंदरामके ब्रजभाषामें पाँच भक्तिपद प्राप्त हैं। भक्त प्रीतमदासने चिन्तामणि और रामरसायण ये दो ग्रन्थ हिन्दीमें और चेतमणि तिथि आदि गुजरातीमें रचे हैं। अपने रामायण के कारण प्रसिद्ध गिरधर भक्त (ई सन् १७८७-१८५२) ने राम लीला एवं कई पद हिन्दी में रचे हैं। अहमदाबादके श्री हरगोविन्द भट्टने बाबाजीकी लावनी गुजराती-मिश्रित हिन्दीमें रची है। कृपाराम भटनागर नामक एक वैष्णव कविने श्रीविट्ठलनाथजीके चतुर्थ पुत्र प्रतापी श्रीगोकुलनाथजीकी प्रशस्तिमें वल्लभचरित्र ब्रजभाषामें ९२ दोहोंमें लिखा है और इन्होंने ई सन् १८३८ में अहमदाबादमें साबरमतीमें आई हुई भयंकर बाढ़का वर्णन भी दोहोंमें किया है।

उत्तरभक्तियुग में स्वामिनारायणीय सम्प्रदायके विरक्त भक्त कवियोंने गुजराती साहित्यको अपनी भक्तिपूर्ण रचनाओंसे समृद्ध किया है। इनमें ब्रह्मानन्द और प्रेमानन्द प्रेमसखी नामी कवि थे। गुजराती भाषाकी इन दोनोंने महत्त्वपूर्ण सेवा की है तो हिन्दीको भी वे भूले नहीं हैं। ब्रह्मानन्दने भगवान कृष्णकी लीलाओंके पद प्रायः ब्रजभाषामें लिखे हैं

"श्याम सूरतकी नूर न मैनों में तो श्याम बसतसे नूर ॥ टेक ॥
कोमीके मन ज्यूं नही राखूं अहोनिश प्रीतम उर ॥ न ॥
जोही पल सुंदर श्याम न देखूं, सो पल कठिन करूर ॥ न ॥
ब्रह्मानन्द एई होय बसती नटवर-चरण हुजूर ॥ न ॥

उत्सव पद संग्रह शृंगारविलास लीलावर्णन विरहवर्णन और ज्ञान-विलास में भी गुजरातीके साथ-साथ हिंदीमें स्वतन्त्र सैंकड़ों पद मिलते हैं। ब्रह्मविलास और सुमति प्रकाश ये दो ग्रन्थ पूरे हिंदीके हैं। रचनाएँ भी उत्तम प्रकारकी हैं। छोटी बारोटका होनेके कारण इनका कवित्वपर जन्मसिद्ध अधिकार था वे सत्समागम एवं विद्याका लाभ भी मिला फलतः इनकी प्रतिभा चमक गई। गुजराती साहित्यको इसी कारण वे सराहनीय सेवा अर्पित कर सके हैं।

स्वामिनारायणके दूसरे भक्त कवि प्रेमानन्द प्रेमसखी हैं इनकी भी हिन्दी-सेवा श्लाघ्य है। भक्ति-विलास लीलावर्णन के सब मिलकर २२८९ पदोंमें हिन्दी पद भी सैंकड़ोंकी संख्यामें है।

कुछ पद नमूनेके तौरपर देखिए—

"लाला तेरी लटकनीमें लटकाई रे ॥ टेक ॥
लटकती चाल चलत मनमोहन मधुर मधुर मुसकाई रे।

दयाराम

जब देखु मोहन रग-भीने आनद उर न समाई।
लटकती चाल लाल द्रग चचल बिनु देखें कछु न सोहाई।
'प्रेमानन्द' घनश्याम-मूरति निरखत ध्यान लगाई।"

ऐसे ही पदोमें इनकी प्रतिभाके दर्शन होते हैं। और भी—

"रसियो मोसु रार करें, में केसे जाउ जल भरने जमुनाके पनघटवा ॥ टेक ॥
चीर मेरो फारे, हार मेरो तोरे, खोले पकरी घूघटवा।
ले ले नाम गारी दे खिजवत गिरिधर नागर नटुवा।
कठिन भयो जमुना जल भरनो, पथ भयो विकटवा।
कठिन भयो जमुना जल भरनो, पथ भयो विकटवा।
प्रेमानद कहे मन हर लीनो, पेंरी श्याम पीत पटवा।"

इन दोनोंके अग्रगामी मुक्तानन्द स्वामीके भी हिन्दीमे पद मिलते हैं।

इस युगको अपनी सर्वांगीण प्रतिभासे प्रतिभासित करनेवाले तो दयाराम हैं। (ई स १७७७–१८५३)। इनकी 'गरविया' एव 'पद' गुजराती साहित्यकी उत्तम रचनाएँ हैं। बारह-तेरह वर्षकी उम्रसे शुरू करके मृत्यु पर्यन्त लगातार ६०–६५ वर्षों तक उन्होने सरस्वतीकी उपासना की है। वे गुजराती रचनातक ही सीमित नही रहे, उन्होने मराठी, पजाबी, राजस्थानी, सस्कृत और ब्रजभाषामें भी रचनाएँ की है। गुजराती और ब्रजभाषापर उनका समान अधिकार था। ब्रजभाषामे आपने उसी प्रवाहमें सरलतापूर्वक रचना की है मानो वे मातृभाषामे ही लिख रहे हो। प्राप्य वडी कृतियोमें 'सतसैया' (ई सन् १८१६), 'वस्तुवृन्ददीपिका-कोश' (ई सन् १८१८), 'भागवातानुक्रमाणिका' (ई स १८२३), 'व्रजविलासामृत (अप्रसिद्ध ई सन् १८२६), 'श्रीकृष्ण अकलचन्द्रिका' और 'रसिकरजन' आदि रचनाएँ इन्हे उच्च कोटिके हिन्दी कवियोमे स्थान देनेके लिए पर्याप्त हैं। 'सतसैया' विहारीकी 'सतसई' की कोटिकी रचना है, तो 'रसिक रजन' तत्त्वज्ञानसे प्लावित काव्य-ग्रन्थ है। शुद्धाद्वैतवेदान्त समझनेके लिए यह पिछला ग्रन्थ उपयुक्त है। 'छप्पय कवित्त', कुण्डलिया और मत्तगयन्द छन्दसे समृद्ध इस ग्रन्थकी भाषा भी स्वाभाविक एव सरल है —

"क्योंहु न चलि जलजात बदनके पौन गगन बिन,
वुजै न दावानल कबू जलकलश सों घन बिन।
टूटि न कोटिकी टुटी कोंरिते चितामन बिन,
द्योस क्योंहु नहि होय दीपदिक सौं दिनमनि बिन।
विच सिंधु झाझ खग ऊडि थकें क्योंहु न लही पार थल,
तजी 'दया' ओरसब राखि इक चरन सरन गिरिधरन-बल ॥१॥"

"अक बिना सब मडल ज्यों, दुलहे बिन जेसी बिरात बिचारो,
वस्त्र बिना सब भूषन ज्यों, बिन लौंन जसो गन व्यजन सारो।
भूप बिना लगि जेसि चमू, बिन नाक परें सब रूप नकारो,
कहत दयो हरिभाव बिना इक, साधन कोटि हु एसेहि धारो ॥२॥"

इनके व्रजभाषाके कमनीय पद भी काफी बड़ी संख्यामें मिलते हैं। उदाहरणार्थ एक पद यों है—

"मेरे प्यारेके नोंकीले नेन बंसीवारेके नोंकीले नेन ॥ टेक ॥
विरहेमोहे तीरसों-वह मोहे तीरसों लगे
रेन दीवस मोहे कल न परत है मोहे पलक परत नहि चेन।
एजी मोहे पलक परत नहि चेन ॥
हांसी मंद मानुं मदनकी फांसी सुधा बोले सलुने बेन
दया के प्रीतम तोरी मोहन की मूरत मोहे छिन छिन सतावत मेन ॥

उन्होंने 'रेखता' के नीचे फारसीमय रचना की है —

परो मत इश्कके फंदा परे जब सोउ मतिमंदा
कठिन है इश्कका फिरका जेसे कोउ जगतमें विरला ॥१॥
आगे तों सिर अपना देवे, सोइ गड इश्कका लेवे।
सहे सब जगतकी हांसी तो तोडे दुःखकी फांसी ॥२॥
पिया जिने प्रेमका प्याला सदा वे रहत मतवाला।
दुनीमें दिन सब रेहेना माशुकका दे चरन नेंना ॥३॥
मोहन मेहेबुब तुंही मेरा करम बीच दीजिये डेरा ॥
सजन तेरी सांवरी सूरत भावो तेरी माधुरी मूरत ॥४॥
तुंही सिरदार मेरे सिर पर, तेरे दिल चाहे सो तुं कर।
आशककी ये ही हे अरजी न बुझिये माशुककी मरजी ॥६॥
भई दिल-मोहरी दासी प्यारकी दरसकी प्यासी।
निभावनवारे तुम भारी, 'दया' के प्रीतम गिरिधारी ॥७॥

गौरीबाई, ब्रह्मानन्द प्रमानन्द-प्रमसखी एवं दयाराम—इन चारोंमें भक्तितत्त्वकी प्रधानता है और प्रायः कवित्वपूर्ण हैं। व्रज-हिन्दीपर भी अच्छा अधिकार है। ये गुजराती साहित्यके भूषण तो हैं ही हिन्दी-व्रजभाषाके भी भूषण रूप बननेके लिए पूरी योग्यता रखते हैं।

इस युगके अन्तिम और अर्वाचीन युगके आरम्भके एक ज्ञाननिष्ठ भक्त कविकी चर्चाके बिना यह निबन्ध अधूरा ही रह जाएगा। वे हैं मलातज (खेड़ा जिलेके) एक ब्रह्मनिष्ठ नागर कवि छोटम (ई० सन् १८१२ १८८५)। इनकी साखियाँ हिन्दीमें हैं। दस अंगोंमें विभक्त ये साखियाँ एक अच्छा सुभाषित संग्रह बन गया है —

"कपटीको मधुरो वचन ज्यामें अहोत विकार।
मधुरा बोले मोर ज्युं, करे अहिका आहार ॥१॥
न्याय सहित जो बोलवो तो हो वचनको तोल।
मूरखके मुखको वचन ज्यामें नहि कछु तोल ॥ २॥ आदि ...

इनकी फुटकर रचनाएँ भी प्रसिद्ध हैं —

तेरा दिलमें दिलदार देख ले विचार करी;

जाका कोय न पाये पार, रहे मुनि ध्यान धरी ॥ टेक ॥
पच भूत वैराटमें रे चोराशी लख वाती,
जेसे एक भूमिमें ऊगे, तरुलता तृण जाती ॥ देख ले० ॥
घटघटमें मनका मत न्यारा, बुद्धि भेद अपारा।
एक नीरसे बाग बनाया, स्वाद सुगध रस न्यारा ॥ देख ले० ॥
माया कारण विश्वाकारे धारे रूपसे कहिए,
स्थावर जगम देह सकलमें निद्रा एक रस लहिये ॥ देख ले० ॥

× × ×

शूरा पींछे शब्द कु रे, ओर चित्त ना आवे।
जन 'छोटम' जजाल छाडके तुरत परम पद पावे ॥ देख ले० ॥"

पिगलशी गढवी, डुंगर बारोट, मनोहर स्वामी, खुमानबाई, जीवनलाल नागर, जूनागढके सुप्रसिद्ध देवीभक्त रणछोडजी दीवान, कोईदयाल, मोहनलाल, गोविन्दभाई गिलाभाई, जसुराम, उत्तमराम, नरसिहराम आदि हिन्दी कविताके उपासक इस युगके अन्तिम भागमें हुए है।

यहाँ हमें आजके हिन्दीके पुरस्कर्ता लल्लूलालजीको भी (ई सन १७६४–१८२६) को याद कर लेना चाहिए। भागवत-दशमस्कन्धकी कथा परसे गद्यमय 'प्रेमसागर', 'लतायफ हिन्द', 'भाषाहितोपदेश', 'सभा-विलास', 'माधव विलास', 'सतसइकी टीका', 'भाषा-व्याकरण', 'मसादिटे', 'भाषा', 'सिहासनबत्तीसी', 'बेतालपच्चीसी', 'माधवानल', 'शकुन्तला' ये सब लल्लूलालजीकी हिन्दी गद्य रचनाएँ है। वे कलकत्तमें कम्पनी सरकारके कारकून थे और हिन्दीकी सर्वोपयोगिताको समझकर हिन्दी गद्यको उन्होंने सबल बल दिया, जिसका शुभ परिणाम आजकी हमारी 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' है। 'उत्तर भक्तियुग' मे हम कच्छके महाराव लखपतीजी एव राजकोटके ठाकोर महेरायण सिहजीको पाते हैं। लखपतजीका 'लखपति श्रृगार' व्रजभाषाका काव्य शास्त्र-ग्रन्थ है, तो महेरायणा सिहजीका 'प्रवीण सागर' (ई स १७८२) सुमधुर काव्य ग्रन्थ है। इस ग्रन्थकी रचनामें महेरायण सिहजीको अपने दूसरे पाँच मित्रोकी भी सहायता मिली थी। महेरायण सिहजीके जीवनके प्रसगको रूपकके रूपमे देनेका इस काव्यमें सफल प्रयत्न है। लेखकका विभिन्न भाषाओपर अधिकार भी सूचित होता है। कवितामें प्रवाह है। कुछ उदाहरण देखिए —

"कुजगली बन जेवो तज्यौ अरु बेठ रहे गिरिसे गिरिधारी,
नेननिकी छबि बक्र निहारबो सो गति नेननिसे भइ न्यारी।
टेढो किरीट खुली अलकें सोइ आपनसे सब सुधि बिसारी,
ओरेनसे मुसके नहिं मोहन, कौनि भली व्रषभानु दुलारी ॥ १॥"
"उठी हे चमकि पाय, धरनि धमकि धरे,
जेहर झमकी मन आतुर अति भई।
उर अकुलाय धाय, चढी हे झरोखे जाय,
चिकसु उठाय लखी कुसुम अगें लई।

काया हमारी गोदडी रे, ओढे फिरे दिनरात,
'ज्ञानी' कहे अम ओर हे, नहीं काया हमारी जात ।। ६ ।।

कविकी 'कृष्ण भक्ति' की कविता भी पदोंके रूपमें मिलती है, तो शुद्ध उर्दू गजलोका भी अच्छा सग्रह सुलभ है।

गुजरात, सौराष्ट्र-कच्छके रजवाडोमे राज्याश्रित कवियोकी कमी नही थी। अलग-अलग उत्सवादिक, राज्याधिकार प्राप्तिके प्रसगादिपर कविताएँ पढी जाती थी, ये सब प्रसिद्धि नही पा सकी है। इनका सग्रह किया जाए तो इन कवियोने पीढी-दर-पीढी हिन्दीकी जो अपार सेवा की है, उसका कुछ अन्दाज आ सके।

आज तो हिन्दीका राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे ज्ञान सुलभ बना है, उसकी ओर लोगोका आदरकी दृष्टिसे देखना स्वाभाविक ही है, और हमारी इस पीढीके कवि दूलाभाई काग, "सुन्दरम्", राजेन्द्र शाह आदिने कभी-कभी हिन्दीमे भी कविता-लेखनका प्रयास किया है, तो इन्द्र वसावडा जैसे गद्य-लेखकने गद्य ग्रन्थोका भी सर्जन किया है। गांधीजीके 'हरिजन' पत्र द्वारा हिन्दीकी सेवा तो भारत-विख्यात है।

दूलाभाई भायाभाई काग (ई सन् १९०४ जन्म) सौराष्ट्र-गोहिलवाडके मजादर गाँवके परजिया चारण हैं। इनकी प्रतिभा उच्च प्रकारकी है। चारणी पद्धतिकी एव लोक-साहित्यकी इनकी गुजराती रचनाएँ, गेय गीत आदि अच्छी ख्याति पा चुके है। इन्होने हिन्दीमे भी कविताएँ लिखी है। 'राष्ट्र-ध्वज पचीशी' इनकी एक मान्य कृति है, जिसके आरम्भका कवित्त है —

"अभय किसान मजदूर व उद्योगपति,
अभय व्यापार सब खेलो वैश्योंके लले।
अभे कवि भारतीके भव्य ललकारो गीत,
अभे यमुनाके जल जाओ दधिमें ढले।
अभे सिहासन शुचि भारतके भूपतिके,
अभय धरित्री सब खेत धान्यसे फले।
श्वेतवर्णवाले छत्र छोर श्वेतद्वीप चले,
अभय रहो री धेनु हिन्दकी ध्वजा-तले ।।"

गाँधीजीकी लकडीका प्रताप भी द्रष्टव्य है —

"सुता बरडाकी भई कोतुकी करामतकी,
धीरजकी माता जब गाधी कर पकरी।
शोणितके प्यासो तीर खजर बदुकनसे,
तोप तलवारनसे अडिग होय टकरी।
बनके शिकारी जो गजारि मासाहारी बडे
सिहनने देखी तब हुए शेर बकरी।
चक्रनको शूलको रु बमके बलूननको
'काग' रोक रही सत मोहनकी लकरी ।।"

यहाँ हमारे एक वैष्णव गोस्वामी जो हारमोनियम-वादनमें भारतीय कलाकारोंमें ख्यात हैं संगीत शास्त्रके भी ज्ञाता हैं। य सौराष्ट्रके पोरबन्दर—सुदामापुरीके निवासी हैं—जो श्री द्वारिकेशलालजी (ई स १९ २ज म) को याद कर लेना चाहिए। इनकी मुकरायी एवं व्रजभाषाकी रचनाएँ सुमधुर हैं। भक्त हृदय होनेके कारण इनकी वाणीमें अष्टछापीय माधुर्यकी झलक पाई जाती है। यथा —

[राग बिहाग]

लाला क्यों न कहत कछु बैन।
तो बिन धीर अधीर सुबल वर कितहूं न पावत चैन॥ १॥
बिन हठ कर री तु नवल रसिकसों प्रकट बहुत अतिमैन।
कलित लाज जौवनकी जौवन जीवन हृदय सजोन॥ २॥
सुनित नवन अकुलात छबीली चाहत है कछु लैन।
कर बहु बैन अभिसार श्यामहित उरसि परम रसवैन॥ ३॥
द्वारकेश सुन वचन रसीली मुसकि चली कर सैन।
रहसि मिलें मानों कच्छु मिले सी सुफल भई बहु रैन॥ ४॥

इनके खण्डिता मान दान होरी आदिके पद भी मिलते हैं।

अन्वेषण-क्षेत्रमें सिरोहीके स्वनामधन्य स्व गौरीशंकर हीराचन्द ओझाकी राजपूतानाके इतिहास-ग्रन्थोंकी एवं लिपि शास्त्रकी भगीरथ सेवा पाटणके गो पा द्वारकादास परीखका पुष्टिमार्गके ग्रन्थोंके अनेक सम्पादन एवं अनेक निबन्धोंका लेखन विद्यमान प मुकुन्दलालजी सववीका वल्लभशास्त्रके अनेक उच्च कोटिके निबन्धोंका लेखन राष्ट्रभाषा प्रचारके कारण श्री मोहनलाल भट्ट श्री जेठालालजी जोशी श्री कान्तिलालजी जोशी आदिकी अनेक निबन्धोंकी-पाठ्य-पुस्तक आदिकी सेवा वागडके स्व पुरुषमल वागड़ियाके शोधपूर्ण विवरणोंका प्रकाशन और विद्यमान श्री भैरवसिंहजीकी डिंगल विषयक लेखोंकी सेवा श्री ओंकारेश्वर पुरोहितका 'सागर' पत्रिकाका सम्पादन श्री रणधीर उपाध्याय श्री भास्कर ई जोशी श्री हरिहर शुक्ल आदि अध्यापकोंके निबन्ध लेखन-पाठ्य पुस्तकोंका लेखन आदिकी हिन्दी सेवा श्लाघ्य है।

फैली हुई अशान्तिको मिटाने के लिये राजराजने साहित्यकी और जनताको प्रेरित करना उचित समझा अपने दरबारके कवि नन्नयासे महाभारतका अनुवाद कराया। तेलुगु भाषामे साहित्यका श्रीगणेश इसी समय हुआ। बौद्ध धर्म, जैन धर्म और वैदिक धर्मकी त्रिवेणी उस समयकी आन्ध्र जनताको चकित किया करती थी। मन्दिरोका महत्व बढने लगा था और शिलालेखोमे तेलुगुका प्रयोग होने लगा था।

बारहवी शताब्दीमे आन्ध्रका शासन अव्यवस्थित हो गया था। चोल राज्यके कई टुकडे हो गअे और आपसमे झगडे बढने लगे। धार्मिक क्षेत्रमे शैव और वैष्णव आपसमे लडने लगे। "पल्नाटि वीरयुद्ध" नामक मशहूर लडाई इसी समयकी थी जिसको श्रीनाथने अपनी लेखनीके द्वारा अमरत्व प्रदान किया है।

तेरहवी शताब्दीमे आन्ध्रमे काकतीय प्रतिष्ठित हुए। काकतीय वंशके राजा सभी अर्थोमे 'आन्ध्र शासक' थे। काकतीय राजा प्रतापरुद्रीके समय मुसलमानोका हमला शुरू हो गया था और प्रतापरुद्रने उल्लूखांके हाथो बन्दी होनके कारण निराश होकर प्राण छोड दिये थे।

काकतीयोके समय साहित्य, कला और वाणिज्यका आशातीत विकास हुआ। इसी समय महा-भारतका अनुवाद तिक्कनान पूरा किया। 'रंगनाथ रामायण', 'उत्तर रामायण' जैसे सुन्दर काव्योकी भी रचना इसी समय हुई। देश-विदेशमे आन्ध्रके वाणिज्यका प्रसार हो गया था। "प्रतापरुद्रयशोभूषण" नामक काव्यशास्त्रका प्रणयन भी इसी समय हुआ।

इसके बाद सन् १३५८ से १३६७ तक कापय्या नामक देशभक्तने विदेशी शत्रुओसे वरंगलकी रक्षा करनेका प्रयत्न किया था। इतनेमे तुंगभद्राके किनारे विजयनगरका साम्राज्य हरिहर और बुक्क नामके दो भाइयोके प्रयत्नसे स्थापित हो चुका था। स्वामी विद्यारण्यकी वात्सल्यमयी छायामे इसकी खूब उन्नति हुई। कृष्णदेवरायके समय इस साम्राज्यका सूर्य उत्कर्षके उत्तुंग शिखरपर आसीन हो गया था। इस युगमे कला और साहित्यका यथेष्ट विकास हुआ। पेद्दना, धूर्जटि, तेनालि राम-कृष्ण आदि महाकवियोकी काव्य साधना इसी समय सफल हुई थी। तेलुगुके प्रसिद्ध "अष्टदिग्गज" (आठ श्रेष्ठ कवि) इसी समयके थे, जो कृष्णदेवरायकी प्रेरणासे अपनी मातृभाषाकी चिरस्मरणीय सेवा कर गये।

सन् १५३० मे कृष्णदेवरायका देहान्त हो गया और परवर्ती राजाओकी कमजोरीके कारण राक्षसी तंगडीके समरांगणमें विजयनगरकी राजलक्ष्मी विचलित हो गयी थी। तेलगानेमें आधिपत्य जमाकर धीरे-धीरे पूरे आन्ध्रको हडप लेनेकी इच्छासे बहमनी राज्य विजयनगरका शत्रु बन बैठा था। इन परिस्थितियोमें सन् १६५२ में विजयनगर भी मुसलमानोके आधीन हो गया।

कुतुबशाही शासनका केन्द्र गोलकुण्डा था। इस परम्परामें महमद कुलीका नाम चिरस्मरणीय है, जिन्होने सन् १५९१ में हैदराबाद नगरका ढांचा बनाकर बसाया था। कुतुबशाही शासनमें आन्ध्र का काफी अच्छा सांस्कृतिक विकास हुआ। शासकोकी सहिष्णुता तथा सहृदयता ही इसका कारण है। परन्तु यह शासन भी अधिक समय तक न टिक सका।

सन् १६८७ में गोलकुण्डा मुगल साम्राज्यके हाथमें चला गया और हैदराबादमें निजामका शासन स्थापित हुआ। अठारहवी शतीके आरम्भमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी धीरे-धीरे आन्ध्रमे प्रवेश पाने लगी और

के दर्शनसे यात्रियोंके मन जिस प्रकार पवित्र बन जाते हैं उसी प्रकार वहाँके प्राकृतिक वैभवको देखकर उनकी आँखें भी सफल हो जाती हैं।

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

आन्ध्र प्रदेशका इतिहास ऋग्वेदके समयसे ही आरम्भ होता है। ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मण महाभारत रामायण तथा सम्राट अशोकके समयके शिलालेखोंमें आन्ध्र शब्दका उल्लेख मिलता है। मेगस्थनीजने आन्ध्रोंके गज-बल हय-बल तथा अन्य बल-वैभवकी बड़ी प्रशंसा की है। लेकिन ईसाके पूर्व तीसरी शताब्दी तक इस भूभागके शासन अथवा शासकोंके सम्बन्धका कोई प्रामाणिक परिचय उपलब्ध नहीं है।

मत्स्य पुराणमें शातवाहनोंका उल्लेख मिलता है जिन्होंने चार शताब्दियों तक आन्ध्रपर शासन किया था। उपलब्ध सामग्रीके आधारपर ये ही शातवाहन आन्ध्रके पहले शासक सिद्ध होते हैं। इस वंशके सत्रहवें राजा हाल ने अपनी प्रसिद्ध रचना गाथासप्तशती को भारत भारतीके चरणोंमें अर्पित की थी। हिन्दीकी सतसई परम्परा इसी सप्तशतीपर आधारित है।

ईसाके पूर्व २११ से लेकर सन् १५७ तक शातवाहनोंकी छत्र-छायामें आन्ध्रमें वाणिज्य व्यवसाय फला और साहित्यका यथेष्ट विकास हुआ था। अमरावती भट्टिप्रोलु, गुंटपल्लि आदि प्रान्तोंमें अब भी उस समयकी स्थापत्य तथा शिल्पकलाके प्रमाण विद्यमान हैं।

शातवाहनोंके पश्चात् इक्ष्वाकुओंने आन्ध्रकी बागडोर अपने हाथमें ले ली। इन राजाओंके शासनमें बौद्ध धर्मको बड़ा प्रोत्साहन मिला था। दूर-दूरके बौद्ध धर्मके विद्यार्थी यहाँके धार्मिक विद्यालयोंमें शिक्षा प्राप्त करनेके लिए आया करते थे। बुद्धकी मूर्ति बनाकर पूजा करनेकी प्रथा इसी समय आरम्भ हो गयी थी। शिलालेखोंकी भाषा प्राकृत थी।

ईसाकी चौथी शताब्दीके द्वितीय चरण तक इक्ष्वाकुओंका पतन हो गया और राज्य कई खण्डोंमें बँट गया था। बृहत्फलायन शालंकायन विष्णुकुण्डिन आदि विभिन्न राजवंशोंने आन्ध्रपर शासन किया था। इस समयके शिलालेखोंमें प्राकृतका स्थान संस्कृतने लिया है। बौद्ध धर्मके साथ-साथ वैदिक धर्मको भी आदर मिलने लगा था। विष्णुकुण्डिनोंने स्थापत्य और शिल्प कलाओंका पोषण किया था। उण्डवल्लि और मुगलराजपुरम्के गुफा-मन्दिरोंको देखनेपर इनकी कला-साधनाका परिचय मिलता है।

तदनन्तर सन् ६११ में पूर्वी चालुक्योंने आन्ध्रपर अपना आधिपत्य जमाया। प्रारम्भकी दो तीन शताब्दियोंके बाद सन् ८४८ में गुणग विजयादित्यका शासन शुरू हुआ। इन्होंने अपने शिलालेखोंमें अपनेको दक्षिणापथका शासक घोषित किया है। राष्ट्रकूटोंका आपने बड़ी चतुराईके साथ दमन किया। पूर्वी चालुक्योंके साथ-साथ उत्तरमें गांग तथा दक्षिणमें पल्लवोंका भी शासन चलता था। सिंहविष्णु और महेन्द्रविष्णुकी कला-रुचि महाबलिपुरम् की शिल्प कलामें मुखरित हो चुकी है। पर दसवीं शताब्दीके आरम्भमें पल्लवोंका स्थान चोलवंशके राजाओंने ग्रहण कर लिया था। ग्यारहवीं शताब्दीके मध्यमें पूर्वी चालुक्यके राजा राजराजने कर्नाटक चालुक्योंसे समझौता कर लिया। देशमें

शब्दोका प्रयोग पाया जाता है। अत ये समानार्थ शब्द हो गये है। इन तीनोमे 'आन्ध्र' अथवा 'अन्ध्र' शब्दका प्रयोग सबसे प्राचीन है। ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमे पहले पहल 'आन्ध्र' शब्दका प्रयोग मिलता है। विश्वामित्रके पुत्र, पिताके द्वारा अभिशप्त तथा निर्वासित होकर आन्ध्रकी ओर गय थे। 'रामायण' तथा 'भारत' में भी आन्ध्र जातिका उल्लेख मिलता है। भगवान् विष्णुकी सहस्त्र नामावलीमे भी 'आन्ध्र' शब्दका प्रयोग किया गया है। ईसाकी पन्द्रहवी शताब्दीसे 'अन्ध्र' के साथ साथ 'आन्ध्र' शब्दका भी प्रयोग पाया जाता है। ईसाकी ग्यारहवी शताब्दीके आरम्भसे आन्ध्रके समानार्थकके रूपमे "तेलुगु" शब्दका प्रयोग होने लगा है। इसी शताब्दीके मध्यमें तेलुगुके आदिकवि नन्नय्याने तेलुगुके अर्थमे "तेनुगु" शब्दका का भी प्रयोग किया है। इस प्रकार ये तीनो शब्द प्रचलित हो गये है।

तेलुगु भाषाके पारिवारिक निर्णयके सम्बन्धमें भी विद्वानोमें काफी मतभेद है। दक्षिण भारतमें प्रचलित होनके कारण दक्षिणकी अन्य द्रविड भाषाओके साथ इसको भी कुछ लोग 'द्रविड परिवार'की भाषा समझते है और कुछ लोग भाषाका वैज्ञानिक अध्ययन करके उसे 'आर्य परिवार' के अन्तर्गत मानते है। वैसे, साधारण दृष्टिसे देखनेपर दोनो वादोमें सत्यका आशिक रूप दिखाई देता है। सम्भव है कि तेलुगु यहाँकी कोई देशी भाषा रही होगी जिसका तमिल, मलयालम और कन्नडसे सम्बन्ध रहा होगा और बादमे इस देशके विदेशी शासकोकी मातृभाषा (सम्भवत कोई प्राकृत) का इसपर प्रभाव पडा होगा और दोनोके सम्मिश्रणसे वर्तमान तेलुगुका रूप स्थापित हुआ होगा। यहाँकी सस्कृतिमे जिस प्रकार उत्तर और दक्षिण (अथवा आर्य और द्रविड) का सम्मिश्रण दिखायी देता है, वैसा ही सम्मिश्रण भाषाके सम्बन्धमे भी हो जाना असम्भव नही है।

भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण

१ वर्णमाला

(१) तेलुगुकी वर्णमालामे प्राय वे सभी स्वर और व्यञ्जन पाये जाते है जो हिन्दीमे है। इन सामान्य अक्षरोके अतिरिक्त "ए" और "ओ" के ह्रस्व रूप भी तेलुगुमे मिलते है जो कि हिन्दीमे नही है।

(२) हिन्दीका अर्धानुस्वार अनुनासिक का सूचक है। पर तेलुगुमें ऐसा कोई ध्वनि चिह्न नही है। तेलुगुके अर्द्धानुस्वारका उच्चारण नही होता। वह केवल पूर्णानुस्वारके लुप्त होनेका सूचक मात्र है।

(३) तेलुगुमें साधारण "र" और "ल" के अतिरिक्त एक नया अक्षर* है जो 'र' का तीव्र रूप है पर 'रँ' नही। एक और नया अक्षर मराठी 'ळ' के समान है। हिन्दीकी कला, महिला और मुरली तेलुगुमे कळा, महिळा और मुरळी बन जाती है।

(४) ए, औ, श, ष, आदि कतिपय वर्णोंके तेलुगु और हिन्दी उच्चारणमें भी अन्तर पाया जाता है। 'च' और 'ज' का दन्त्य उच्चारण भी होता है, जिसे 'च' और 'ज' पर एक विशेष चिन्ह लगाकर प्रकट किया जाता है।

तेलुगुमें 'ऋ' का उच्चारण, हिन्दीके विपरीत, 'रि' की तरह होता है।

---

* चूंकि हिन्दीमें इससे मिलता जुलता कोई अक्षर नही है इसलिए इसको अपने मूल रूपमे नही दिया जा सका।

निजामकी उदारताका पूरा-पूरा उपयोग करके कम्पनीने सन् १८ तक तेलंगानेको छोड़कर आन्ध्रके सब प्रान्तोंमें अपना आधिपत्य जमा लिया।

ब्रिटिश शासनके समय सारे भारतमें एक नई चेतना फैली। राष्ट्रकी एकता और साथ-साथ परतन्त्रताकी वेदनाका अनुभव हर भारतवासीने किया। राष्ट्रीय जागरणकी लहरने आन्ध्रको भी खूब प्रभावित किया। इस राष्ट्रीय आन्दोलनमें आन्ध्रके बड़े-बड़े नामकोंने पूरा सहयोग प्रदान किया था और आखिर सन् १९४७ में भारत स्वतन्त्र होकर ही रहा।

स्वतन्त्रताके अवतरित होते ही आन्ध्र जनता अपनी प्रान्तीय स्वतन्त्रताकी मीठी उत्कण्ठाकी सफलताकी आशा लगाए बैठी थी लेकिन तब सरकारका निर्णय इसके अनुकूल नहीं था। मद्रास राज्यके अन्तर्गत ही आन्ध्रको भी मिलाया गया था पर आन्ध्रके निवासी इस निर्णयको अन्तिम मानकर बैठे नहीं रहे। आन्ध्र राज्यकी स्थापना के लिए आन्दोलन हुआ और नेल्लूरके एक देशभक्त पोट्टि श्रीरामुलुने आमरण अनशनका व्रत धारण करके अपने प्राणोंकी बलि भी चढ़ादी। फलतः सन् १९५३ में मद्रास राज्यके समय भाषी प्रान्तको अलग करके ग्यारह जिलोंका आन्ध्र राज्य बनाया गया। बादमें तब सरकारकी राज्य पुनर्निर्माण सम्बन्धी नीतिके अनुसार तेलंगानेके नौ जिलोंको मिलाकर परिपूर्ण आन्ध्र प्रदेश का निर्माण हुआ। इस नये राज्य उद्घाटन १ नवम्बर १९५६ को भारतके प्रधान मन्त्रीने किया था।

इस प्रकार आन्ध्रोंके तईस सौ वर्षके इतिहासमें उनकी सांस्कृतिक धार्मिक राष्ट्रीय और साहित्यिक चेतनाका क्रमिक विकास देखा जा सकता है। भारतकी राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक सम्पत्तिको अधिकाधिक समृद्ध बनानेमें आन्ध्र हमेशा अग्रणी रहा। भारतको सुमधुर बनानेमें आन्ध्रने हमेशा योग दिया है। कलाकी अखिल भारतीय आराधनामें आन्ध्रके अमरावती अजंताकी नागार्जुन आदि कला-केन्द्रोंकी सुधामयी धाराने नई चेतनाका सृजन किया था। नाट्य-कला और नृत्यकलामें भी आन्ध्रकी देनका स्मरण तब तक किया जाएगा जबतक त्यागराज अन्नमाचार्य क्षेत्रय्या आदि महानुभावोंके नाम अमिट रहेंगे। साहित्य संसारमें तेलुगुका विशेष स्थान है। संस्कृत साहित्यका सार ग्रहण करके आन्ध्रभारतीने उसी सुरभारतीके चरणोंमें अपनी निजी सम्पत्ति अर्पित की है। नन्नय्या तिक्कना पोतन्ना श्रीनाथ पेद्दना सूरना आदि महाकवियोंने अपने-अपने क्षेत्रमें अमर कलाकृतियोंका सर्जन किया है। मल्लिनाथ पण्डितराज जगन्नाथ भवभूति सायण आपस्तम्ब आदि मनीषियोंने अमर-भारतीकी आराधना करके अखिल भारतीय स्तरपर आन्ध्रका मान बढ़ाया।

सक्षेपमें यही कहा जा सकता है कि आन्ध्रने उत्तर की विन्ध्य मालिकाएँ और दक्षिणकी मधुर नादालहरियोंमें समन्वयके रूपमें जहाँ उत्तरमें दक्षिणको व्याप्त किया था वहाँ उसने उत्तरसे दक्षिणको भी बहुत कार्यान्वित किया। आदान-प्रदानके इस महायज्ञमें आन्ध्रका महत्व राष्ट्रीकी अपेक्षा सम्भवतः ही अधिक रहा है।

भाषा

आन्ध्र प्रदेशकी मुख्य भाषा तेलुगु है। 'तेलुगु' का पर्यायवाची शब्द है 'तेलुगु'। 'आन्ध्र' शब्दका भी इसी अर्थमें प्रयोग होता है। यहाँ की जाति देश और भाषाके अर्थमें आजकल इन तीनों

शब्दोका प्रयोग पाया जाता है। अत ये समानार्थ शब्द हो गये है। इन तीनोमे 'आन्ध्र' अथवा 'अन्ध्र' शब्दका प्रयोग सबसे प्राचीन है। ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमे पहले पहल 'आन्ध्र' शब्दका प्रयोग मिलता है। विश्वामित्रके पुत्र, पिताके द्वारा अभिशप्त तथा निर्वासित होकर आन्ध्रकी ओर गये थे। 'रामायण' तथा 'भारत' मे भी आन्ध्र जातिका उल्लेख मिलता है। भगवान् विष्णुकी सहस्त्र नामावलीमें भी 'आन्ध्र' शब्दका प्रयोग किया गया है। ईसाकी पन्द्रहवी शताब्दीसे 'अन्ध्र' के साथ साथ 'आन्ध्र' शब्दका भी प्रयोग पाया जाता है। ईसाकी ग्यारहवी शताब्दीके आरम्भसे आन्ध्रके समानार्थकके रूपमे "तेलुगु" शब्दका प्रयोग होने लगा है। इसी शताब्दीके मध्यमे तेलुगुके आदिकवि नन्नय्याने तेलुगुके अर्थमे "तेनुगु" शब्दका का भी प्रयोग किया है। इस प्रकार ये तीनो शब्द प्रचलित हो गये है।

तेलुगु भाषाके पारिवारिक निर्णयके सम्बन्धमे भी विद्वानोमें काफी मतभेद है। दक्षिण भारतमें प्रचलित होनके कारण दक्षिणकी अन्य द्रविड भाषाओके साथ इसको भी कुछ लोग 'द्रविड परिवार'की भाषा समझते है और कुछ लोग भाषाका वैज्ञानिक अध्ययन करके उसे 'आर्य परिवार' के अन्तर्गत मानते है। वैसे, साधारण दृष्टिसे देखनेपर दोनो वादोमे सत्यका आशिक रूप दिखाई देता है। सम्भव है कि तेलुगु यहाँकी कोई देशी भाषा रही होगी जिसका तमिल, मलयालम और कन्नडसे सम्बन्ध रहा होगा और बादमे इस देशके विदेशी शासकोकी मातृभाषा (सम्भवत कोई प्राकृत) का इसपर प्रभाव पडा होगा और दोनोंके सम्मिश्रणसे वर्तमान तेलुगुका रूप स्थापित हुआ होगा। यहाँकी सस्कृतिमे जिस प्रकार उत्तर और दक्षिण (अथवा आर्य और द्रविड) का सम्मिश्रण दिखायी देता है, वैसा ही सम्मिश्रण भाषाके सम्बन्धमें भी हो जाना असम्भव नही है।

भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण

१ वर्णमाला

(१) तेलुगुकी वर्णमालामें प्राय वे सभी स्वर और व्यन्जन पाये जाते है जो हिन्दीमे है। इन सामान्य अक्षरोंके अतिरिक्त "ए" और "ओ" के ह्रस्व रूप भी तेलुगुमें मिलते है जो कि हिन्दीमे नही है।

(२) हिन्दीका अर्धानुस्वार अनुनासिक का सूचक है। पर तेलुगुमें ऐसा कोई ध्वनि चिह्न नही है। तेलुगुके अर्द्धानुस्वारका उच्चारण नही होता। वह केवल पूर्णानुस्वारके लुप्त होनेका सूचक मात्र है।

(३) तेलुगुमे साधारण "र" और "ल" के अतिरिक्त एक नया अक्षर* है जो 'र' का तीव्र रूप है पर 'र्' नही। एक और नया अक्षर मराठी 'ळ' के समान है। हिन्दीकी कला, महिला और मुरली तेलुगुमें कळा, महिळा और मुरळी बन जाती है।

(४) ए, औ, श, ष, आदि कतिपय वर्णोंके तेलुगु और हिन्दी उच्चारणमें भी अन्तर पाया जाता है। 'च' और 'ज' का दन्त्य उच्चारण भी होता है, जिसे 'च' और 'ज' पर एक विशेष चिन्ह लगाकर प्रकट किया जाता है।

तेलुगुमें 'ऋ' का उच्चारण, हिन्दीके विपरीत, 'रि' की तरह होता है।

---

* चूँकि हिन्दीमें इससे मिलता जुलता कोई अक्षर नही है इसलिए इसको अपने मूल रूपमें नही दिया जा सका।

२ शब्द

(१) तेलगुके सभी शब्द अजन्त (स्वरान्त) होते हैं हिन्दीकी तरह हलन्त नहीं। यह प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ गई है कि विदेशी शब्द भी स्वरान्त बनकर ही तेलगुमें प्रयुक्त होते हैं। जैसे—स्कूलु स्कूल बाजारका बजारु बनना।

(२) तेलगुके शब्दोंमें हर अक्षर का स्पष्ट और पूरा उच्चारण होता है। पर हिन्दी में अधिकतर में अकार हलन्त उच्चरित होता है।

(३) हिन्दी और तेलगुमें संयुक्ताक्षर लिखनेके ढंग में भी काफी अन्तर है। हिन्दीमें पहला अक्षर आधा लिखा जाता है और दूसरा अक्षर पूरा। तेलगुमें पहला अक्षर पूरा लिखा जाता है और दूसरे अक्षरका चिह्न मात्र।

(४) सन्धिकी प्रवृत्ति तेलगु शब्दोंमें अधिक है। तेलगुमें वाक्यके मध्यमें कभी स्वरका प्रयोग स्वतन्त्र रूपसे नहीं हो सकता। वह स्वर अपनेसे पहलेके व्यञ्जनके साथ सन्धिके नियमोंके अनुसार, मिल जाता है। यह भाषाकी प्रकृति-सा बन गया है। किसी भी शब्दको किसी दूसरे शब्दसे जोड़ना हो तो किसी ध्वनिका लोप होगा या आगम होगा या आदेश। हिन्दीमें यह बात नहीं है। किसी शब्दके कारण किसी दूसरे शब्दमें विकार उत्पन्न नहीं होता है। जैसे —

तेलुगुमें—रामुडु + इक्कडकु + एप्पुडु + वच्चुनु ? = [रामुडिक्कडकेप्पुडु वच्चुनु ?]

हिन्दीमें—राम + इधर + कब + आएगा ? = [राम इधर कब आएगा ?]

आजकल तेलगुमें भी सन्धिको अनावश्यक समझा जा रहा है। शिष्ट व्यवहारमें भी विसन्धिको मान्यता मिल रही है।

३ शब्द-भेद

(१) हिन्दीकी भाँति तेलगुमें भी संज्ञा सर्वनाम विशेषण आदि आठ प्रकारके शब्द-भेद पाए जाते हैं। संज्ञाको तेलगुमें नामवाचक का नाम दिया गया है।

(२) तेलगु और हिन्दीमें संज्ञाके दो ही वचन हैं और सात कारक हैं (सम्बोधनको छोड़कर)। हिन्दीमें संज्ञाके पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दो ही प्रकार माने गए हैं। तेलगुमें नपुंसक लिंग भी है। पुरुष अथवा देवतावाची शब्दोंको महत्‌वाचक और उनके स्त्री वाचक शब्दोंको महतीवाचक मानते हैं अन्य तिर्यक और जड़वाची सभी शब्द अमहत्‌वाची हैं। आजकल पुं स्त्री नपुंसक के भेदको माननेकी ओर अधिक झुकाव है।

लिंग निर्णयकी समस्या हिन्दीमें जटिल है। तेलगुमें ऐसी कोई समस्या ही नहीं है। चेतन और अचेतन और स्त्री-पुरुषका अन्तर स्पष्ट है और इसी आधारपर संज्ञाओंके लिंग निर्धारित किए जाते हैं।

हिन्दीमें अन्य पुरुष सर्वनामका लिंग भेद क्रियाके रूप द्वारा ही जाना जा सकता है जबकि तेलगु में अन्यपुरुष सार्वनामिक शब्दोंमें लिंगके अनुसार भेद है। यथा हिन्दीका वह अंग्रेजीके That, He, She or It के लिए प्रयुक्त होता है तो तेलगुमें अदि वाडु आमे अलग-अलग शब्द प्रयुक्त होते हैं।

उत्तम पुरुष बहुवचन (हम) के दो रूप हैं, 'मनमु' और 'मेमु'। 'मनमु' में वक्ता श्रोताको भी अपनमें मिला लेता है तो 'मेमु' में केवल वक्ता विद्यमान रहता है। यह वैशिष्ट्य द्रविड परिवारकी सभी भाषाओंमें पाया जाता है पर आर्य परिवारकी भाषाओंमें नही। इसीके वजनपर बोलचालकी हिन्दीमें 'अपन' शब्दका प्रयोग होता है और मराठीमें 'आम्हीं' तथा 'आपण'

विभक्तियोंके आगमनसे सर्वनामोके रूपमें परिवर्तन दोनो भाषाओंमे पाया जाता है।

तेलुगुमे निजवाचक 'अपना' प्रयोग नहीके बराबर है। केवल अन्य पुरुषमें ही इसका प्रयोग दिखाई पडता है।

तेलुगुमें सम्बन्धवाचक 'जो' का प्रयोग तो होता ही नही। यह प्रयोग इस भाषाकी प्रकृतिमें नही है।

(३) हिन्दीकी भाँति तेलुगुमें भी क्रियाके तीन मुख्य काल माने गये हैं—भूत, वर्तमान और भविष्य। किन्तु इन तीन कालोंके अवान्तर भदोमें थोडा बहुत अन्तर दिखायी देता है। तेलुगुका वर्तमान काल हिन्दीके तात्कालिक वर्तमान कालके समान है। हिन्दीका सामान्य वर्तमान तेलुगुमें तद्धर्मकालमें माना जाता है। सामान्य भूत और सामान्य भविष्यत्को छोडकर भूत और भविष्यत् के अन्य प्रकार तेलुगुमें प्रयुक्त अवश्य होते है, पर इन क्रियाओंके विशष रूप नही हैं। समापक और असमापक क्रियाओके पारस्परिक सहयोगसे य सभी रूप बन जाते है।

तात्विक दृष्टिसे देखनपर तेलुगुमें क्रियाका विशष महत्व नही है। सर्वनाम और क्रियाजन्य विशषणका सम्मिश्रित रूप ही क्रियाका रूप धारणकर लेता है। उदाहरणार्थ—

रामुडु वच्चु-चुन्नाडु [राम आ रहा है।]

इस वाक्यमें 'वच्चुचुन्नाडु' क्रिया है। पर इसका विच्छद करनेसे 'वच्चुचुन्न वाडु' (आता हुआ वह) हो जाता है। इसमें 'आता हुआ' (क्रियाजन्य विशषण) और 'वह' (सर्वनामका) सम्मिश्रित रूप ही 'वच्चुचुन्नाडु' है। इसीका भूतकालिक रूप 'वच्चिनाडु' (वच्चिन वाडु) वर्तमान रूपसे अधिक भिन्न नही है। 'वच्चु' ['आ'] धातुका वर्तमानकालिक रूप 'वच्चुचुन्नु' भूतकालिक रूप 'वच्चिन' बन जाता है। अत क्रियाके अन्तमें कोई परिवर्तन नही होता है। क्रियाजन्य विशषण का रूप बदल जाता है। यह बात हिन्दीमें नही है।

हिन्दीमें लिंगके अनुसार क्रियाका रूप बदल जाता है। पर तेलुगुमें केवल अन्य पुरुषकी क्रियाओके इस प्रकार रूप बदल जाते हैं।

हिन्दीमें क्रियाके तीन वाच्य होते हैं—कर्तृ वाच्य, कर्म वाच्य और भाव वाच्य। पर तेलुगुमे भाव वाच्यका प्रयोग नही होता।

लिंग-वचनके अनुसार विशषणोमें कोई परिवर्तन नही होता। पर हिन्दी और तेलुगुमें क्रमकी भिन्नता है। हिन्दीमें 'बाईस' [twenty two नही two twenty] है पर तेलुगुमें 'इरुवदिरेंडु' [बीस दो] होता है।

(१) हिन्दी और तेलुगुके वाक्योंमें शब्दोंका क्रम एक ही विधानके अनुसार होता है—कर्ता, कर्म और क्रिया। पर तेलुगुके वाक्योंमें क्रियाका होना अनिवार्य नहीं है। उदा रामुडु मंचिवाडु [राम अच्छा है।]

(२) तेलुगुमें सम्बन्ध वाचक सर्वनामके अभावके कारण प्रायः वाक्य रचना सरल ही हुआ करती है। हिन्दीके मिश्रित या संयुक्त वाक्योंकी रचना तेलुगुके उपयुक्त नहीं है।

(३) परोक्ष कथनमें तेलुगुकी वाक्य रचना हिन्दीसे बिलकुल उलटी होती है।

४ शब्द-भण्डार :

तेलुगुकी शब्दावलीके चार विभाग किये जा सकते हैं—तत्सम तद्भव देशी (देशज) और विदेशी। दक्षिणकी भाषाओंमें संस्कृतसे अधिक शब्दोंको आत्मसात् करनेकी प्रवृत्ति पायी जाती है। तेलुगुमें इसकी मात्रा अधिक है। लेकिन संस्कृतके कुछ ऐसे शब्द हैं जो हिन्दी और तेलुगुमें सामान्य रूपसे प्रयुक्त होनेपर भी भिन्न-भिन्न अर्थ रखते हैं। उदाहरणके लिये "प्रपंच" शब्दका प्रयोग हिन्दीमें छल-कपट के अर्थमें होता है जब कि तेलुगुमें संसार के अर्थमें होता है। इसी प्रकार आलस्य का अर्थ हिन्दीमें सुस्ती है और तेलुगुमें विलम्ब। उपन्यास अनुमान चेष्टा विचार आदि शब्दोंके इन दो भाषाओंमें अलग-अलग अर्थ होते हैं।

५ भाषाकी व्यापकता और परिवर्तनशीलता

तेलुगुकी अपेक्षा हिन्दी अधिक व्यापक और परिवर्तनशील है। हिन्दीका क्षेत्र विस्तृत है और तेलुगुका सीमित। दोनों भाषाओंमें साहित्य-रचनाका आरम्भ करीब-करीब एक ही समयपर—ग्यारहवीं शताब्दीमें हुआ था। पर, आजकी तेलुगु और ग्यारहवीं शताब्दीमें नन्नयाके द्वारा प्रयुक्त तेलुगुमें अधिक अन्तर या परिवर्तन नहीं दिखाई देता। परन्तु हिन्दीमें पृथ्वीराज रासोकी भाषा कामायनी की भाषासे एकदम भिन्न है। इसका कारण शायद क्षेत्रका विस्तार और अन्य भाषाओंका प्रभाव हो है।

६ भाषाकी विशेषता

तेलुगु भाषामें नाद सौन्दर्यका विशेष आकर्षण है जो कि व्रजभाषामें पाया जाता है। यही कारण है कि तिरुवायूरकी तमिल भाषाके वायु-मण्डलमें पलकर भी सन्त त्यागराजने अपने गीतोंकी रचना तेलुगु भाषामें की थी। इस प्रकार संगीतके माध्यमसे त्यागराजने सुदूर दक्षिणमें भी तेलुगुको प्रतिष्ठित किया है। सकार, लकार और नकारका अधिक प्रयोग होनेके कारण इसमें सरसता लालित्य और नवनीत जैसी कोमलता पायी जाती है। इस भाषाके माधुर्यके कारण ही किसी विदेशी व्यक्तिने इस भाषाकी प्रशंसा Italian of the East कहकर की है।

दक्खिनी हिन्दी

पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी संयुक्त प्रदेश (आर्यावर्तके जिस भागका पुराना नाम मध्यदेश था तथा आजकल जिसे पछाँह कहते हैं) से तुर्कों द्वारा उत्तर भारतकी विजय कर लेनेके बाद ईसाकी चौदहवीं सदीसे आम्यान्वेषी सैनानी तथा वणिकजन दक्खिन (महाराष्ट्र तलंगाना और कर्नाटक) में अपना शासन जमाने

लगे। इन लोगोमें यद्यपि दिल्लीके तुर्क मुलतानोंसे प्रेरित या पोपित पञ्जावी और पछाँही भारतीय भारतीय मुसलमान ही नेतृत्वमे थे फिर भी स्थानीय राजपूत, जाट, वनिया, कायस्थ आदि जातियोंके हिन्दुओ की सख्या भी कम नही थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इन लोगोमे पूर्वी पजाव और पछाँहके गूजरोकी सख्या अधिक थी, क्योकि दक्खिनी हिन्दीको उसके कवि लोग 'भाका' या 'भाखा' वोलते थे और 'गूजरी' नाम भी देते थे। उत्तर भारतमे उन दिनो हिन्दू-मुस्लिम या भारतीय-ईरानी एक नवीन मिली-जुली सभ्यता की नीव डाली गई थी। दक्खिनमे वसे हुए उत्तर भारतीय पजावी और पछाही मुसलमान, जो अपनी क्षात्र-शक्ति, प्रसार-शक्ति तथा अधिकार-शक्ति के कारण वहाँके एक नवीन अभिजात समाजके लोग वने, उत्तर भारतसे जिस लोक-साहित्यको अपने साथ ले गए थे, उसीके आधारपर, इसलामी सूफी-दर्शन और रहस्यवादका रग उसपर चढाकर, एक अभिनव साहित्य-शैलीका प्रवर्त्तन करने लगे। मुस्लिम धर्म-गुरुओंके अत्यधिक प्रभावके कारण यह भाषा अरवी लिपिमे लिखी जाने लगी। इस साहित्य-शैलीका शाब्दिक, तात्विक और तथ्य विषयक ढाँचा उत्तर भारतके सन्त साहित्य जैसा ही था। हम दक्खिनी साहित्यको उर्दू तथा हिन्दीके खडी वोलीसे सम्वन्धित साहित्यका आदि रूप कह सकते है। यह साहित्य धारा वर्तमान हिन्दी और उर्दू साहित्यका उत्पत्ति स्थान है। उत्तर भारतसे दक्खिनमे जाकर यह प्रौढ वना फिर समग्र उत्तर भारतपर, दिल्लीकी भापाके सहारे, इसका प्रभाव फैला।"

—डॉ सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

सर्वश्री नासिरुद्दीन हाश्मी, डॉ सैयद मुहीउद्दीन कादिरी 'जोर', श्री अव्दुल कादिर सर्वरी, डॉ श्रीराम शर्मा, डॉ राजकिशोर पाण्डेय, श्री वृजविहारी तिवारी आदिके सतत प्रयत्नसे दक्खिनीका हिन्दी साहित्य पर्याप्त मात्रामे प्रकाशमें आया है और आता जा रहा है। महापण्डित राहुल साकृत्यायन की पुस्तक 'दक्खिनी हिन्दी काव्य धारा' और डाक्टर वावूराम सक्सेनाकी 'दक्खिनी हिन्दी' भी उल्लेखनीय कृतियाँ है।

ख्वाजा वन्देनवाज (१३४३ ई) दक्खिनी हिन्दीके प्रथम कवि माने जाते है। 'चक्कीनामा' (पद्य) 'मेराजनामा' (गद्य) से पारा (गद्य) इनकी पुस्तके है। इनकी कविताका एक नमूना लीजिए—

'देखो वाजिद[1] तनकी चक्की। पीड चातुर होके सक्की[2]।
सौकन इब्लिस[3] खिच खिच थक्की। के या विस्मिल्ला अल्ल हो[4]।।'

दक्खिनी हिन्दीके आदिकाल (१४००–१५०० ई) के लेखकोमें शाहमीरांजी, अशरफ, बुरहानुद्दीन जानम, एकनाथ, शाहअली, मुल्ला वजही आदि प्रसिद्ध है। दक्खिनी हिन्दीका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सबरस' के लेखक है वजही। वजहीके दो काव्य ग्रन्थ मिलते है। 'कुतुबमुश्तरी' (१६०९ ई) मे बगालकी राजकुमारी मुश्तरी और अपने सरक्षक इब्राहीम कुतुबशाहके उत्तराधिकारी मुहम्मद कुल्ली कुतुबके काल्पनिक प्रेमका वर्णन किया है। 'सबरस' वजही की मौलिक कृति नही मानी जाती किन्तु वह अपने कवित्वपूर्ण गद्यके कारण विशेष महत्व रखती है।

---

१ विहित २ सखी ३ शैतान ४ हे भगवान

भाग गये दिल्लूमियाँ
सपड गई दुम
—(सूई)

हरी गुवज सुफेद खाने
उसमे बैठे सिद्दी दिवाने
—(सीताफल)

आहाकी थैलीमें ऊहूके दाले
—(मिर्च)

दक्षिणमें बहमनी राज्यकी स्थापना गोलकुण्डाके साहित्य-रसिक कुतुवशाही राजाओंके समय से ही, आन्ध्र प्रदेशमें, खासकर तेलगान प्रान्तका सम्बन्ध 'दकनी' भाषासे था। १६ वी शतीके आस-पास के काव्योमें कुछ उर्दूके शब्दोका प्रयोग हुआ है। 'खबर' शब्द 'कबुरु' बन ठठ तेलुगुका शब्द बन गया है। 'मछिलीपट्टणम' जो किसी जमानमें प्रसिद्ध बन्दरगाह था, 'गाह' का लोप होनेपर 'बन्दर' के नामसे ही प्रसिद्ध है। इस प्रकार 'दकनी' या 'हिन्दुस्तानी' के रूपमे ही सही, दक्षिण भारतमें हिन्दीका व्यवहार, विचारोंके आदान-प्रदानके साधनके रूपमे लगभग १५–१६ वी शताब्दीसे होने लगा था।

तजाऊर १६–१७ वी शतीमे तेलुगु साहित्यका केन्द्र बना हुआ था। विजयनगर साम्राज्यके पतनके बाद तेलुगुको सुदूर दक्षिणके रियासतोमें ही आश्रय मिला। तेलुगु नायक राजाओंके शासन कालके बाद तजाऊर पर मराठोका शासन स्थापित हो गया। उनकी मातृभाषा ठहरी मराठी, प्रान्तकी भाषा रही तेलुगु, फिर भी इन मराठी शासकोन तेलुगु साहित्यकी अनन्य सेवा की है।

भोसलावशके मालोजीके पौत्र एकोजीके पुत्र महाराज शाहजी (सन् १६८४–१७१२) अपने साहित्य-सेवाओसे तेलुगु साहित्यमें चिरस्मरणीय स्थानके अधिकारी बन गए है। सगीत और साहित्यके सुन्दर सगम के समान शहाजीने तेलुगुमे लगभग बीस 'यक्षगान' लिख है। इनके अतिरिक्त मराठीमें 'लक्ष्मीनारायण कल्याण' नामसे और हिन्दीमे 'राधाबनसी धर विलास नाटक', और 'विश्वातीत विलास नाटक' नामसे दो 'यक्षगान' लिख हैं। इन हिन्दी 'यक्षगानो' की चार पाण्डुलिपियाँ प्राप्त है जिनमे तीन तेलुगु लिपिमे है तो एक देवनागरी लिपिमें। "हिन्दीके नाटय साहित्यके एक विशिष्ट अगका निर्माण करनेका गौरव शहाजीका है और इन प्राचीन कृतियोंके रक्षण करनेका यश 'सरस्वती महल' के पोषकोका ही है।" इन यक्षगानोकी एक और विशषता है, वह है कि हिन्दी भाषाको कर्नाटक रागरागिनियोमें निबद्ध करनेका सफल प्रयास। भाषाके उदाहरणके लिए 'राधाबनसीधर विलास' नाटकसे एक गीत उद्धृत किया जाता है —

"सखि सध्या राग अरून सुहावे।
माणिक्य जैसो वारुनि अबल मानु।
गिरिपर नाथ घुडति कर लिय दीप श्रेणि जो ऐसे सुहावति ॥ १ ॥
कमलिनी नाथ रुठ गया कहकर मुख म्लान होती।
कुमुदिनी नाथागमन सुन मुख स्मित पूर्ण होती ॥ २ ॥

जग देखो तब भोगी जाके अपने घर जाते है।
बकई निज पियोलते कामिनी ताब फिरे ॥ १ ॥

महाराष्ट्र प्रान्तसे नाटक कम्पनियाने सन् १८८ और १८८५ म आन्ध्रदेशमे घूमघूमकर कई नाटकों का अभिनय किया। इन नाटकोंकी भाषा टूटी-फूटी हिन्दी ही होती थी। इन नाटक समाजोने जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया वह यह कि यहाँकी जनताको नाटक रचना और प्रदर्शनकी ओर आकृष्ट करनेके अतिरिक्त जनता मे हिन्दी भाषाके प्रति भी रुचि पैदा कर दी।

मछलीपट्टनमके नेशनल थियट्रिकल सोसाइटी ने १८८६ से प्रारम्भ कर लगभग १०—१५ वर्षों तक हिन्दी नाटकोंको अभिनीत करवाया। इन हिन्दी या हिन्दुस्तानी नाटकोंके प्रणेता थे श्री वाकेल्ल पुरुषोत्तम कवि। स्वनामधन्य इस महापुरुषने सन् १८८६—८८ तक ३२ हिंदी नाटक लिखे हैं। पर दुर्भाग्यवश अब ६ नाटक सम्पूर्ण रूपमें और ८ नाटकोंके गीत मात्र उपलब्ध हैं। य सभी नाटक तेलगु लिपिमे लिखे गए हैं। अभी इन नाटकोंपर शोधकार्य चल रहा है और आशा है कि निकट भविष्यमे दक्खिनी हिन्दी के नव साहित्यकी एक विस्तृत कड़ीका सुष्ठ रूप दृष्टिगत होगा और हिन्दीके नाटक साहित्यके अज्ञातप्राय पक्षपर प्रकाश पड़ेगा।

श्री पुरुषोत्तम कविकी भाषाका नमूना लीजिए —

(सूत्रधारके वचन गणपतिसे)— जगज्जननीयमाम महामहिमाधिरोधार्य निवारिताखिलार्त्तजन देवता! सर्व लोक शरण्या! प्रणमसख्या! आप् भक्ताधीन होनसे अयिर्सी वीन्पर, [illegible] हुव हैं। आप्का दर्शन कर्नेसि हम् मै पावन्नी निर्विचार भी हुवा हुँ। आज्ञानुवर्ती होनक लिए कर्नो विज्ञापन य है—
(गुमास्तेके वचन तालकदारसे)— जी! हुजूर! अब्बी कहाँका तहसीलदार? कहाँका मकान? सर्कार्के बयानम रहने लेकाच रूप तमाम् बरस भर्के बोह भद्रगिरिपर, श्रीरामदेव् कु बड़ा देवलेक बनाके बहुत् कीमत् रहने बहुतर ही की जवाहिरी भि अस्सा मर्नेम कायम् होन बहुतकसबके चीजों भि तय्यार कराके वहा ताबस्तर्देकर सारा बख्त् नीद् भूकका ख्यालभि छोडकर वोहि देवस्ने बैठके गीतों गात खुद् पावे दिवाना सरीक हुं कहते।

उपर्युक्त उद्धरण श्री रामदासु चरित्र नामक नाटक के हैं और श्री भीमसेन 'निर्मल' न दिए हैं।

इन नाटकोंके अतिरिक्त और भी हिन्दी नाटक उस समय आन्ध्र प्रदेशमें लिखे गए होंगे पर उनका पता नहीं चल रहा है। आन्ध्रकेसरी श्री टंगटूरि प्रकाशम पन्तुलुने अपनी आत्मकथामे इस प्रकार लिखा है—

जब हमारी लोवर फोर्थ की पढ़ाई खतम हुई तब पूना की कंपनी ओंगोल आई। वे हिन्दी नाटकोंका प्रदर्शन करते। तब उन्होने प्रमीला स्वयंवर, पीस्या नारायणराव वध तथा परिणय कीचक वध आदि नाटकोंका अभिनय करते थे। उस समय हमारी भी इच्छा हुई कि ऐसे नाटकोंका अभिनय करें। हमारी इच्छाको रूप देनेके लिए उस गाँवमे नाटकोंपर जान देनेवाले एक उडवल्ली साहब थे। उडवल्ली साहब उर्दूके पण्डित थ। वे उर्दूमे ही नाटक लिखते। हम तेलुगु लिपिमे उसे लिखकर, पूरे नाटक कण्ठस्थ कर लेते। १

इस प्रकार यह स्पष्ट है १५ वी शतीसे लेकर १ वी शती तक आन्ध्र प्रदेशमे हिन्दी-हिन्दुस्तानीका बोल-चाल व्यवहार होता ही रहा। २ वी शतीके प्रारम्भमे गांधीजीकी प्रेरणाके बलसे राष्ट्रभाषाके रूपमें हिन्दीका प्रचार होने लगा और राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे हिन्दीका अध्ययन-अध्यापन होने लगा।

पुरुषोत्तम कवि

आन्ध्र प्रदेशका हिन्दीके साथ सम्बन्ध

भारतकी वाह्य विभिन्नतामें आन्तरिक एकताको प्रतिष्ठित करनेवाली मूल शक्तियोंमें भाषा और साहित्यका महत्वपूर्ण स्थान है। भारतकी प्राय सभी भाषाओका साहित्य एक ही प्रकारकी सास्कृतिक विचार धारासे अनुप्राणित है। इसका प्रधान कारण है यहाँकी विविध भाषाओंके बीचमें निरन्तर चलनेवाला पारस्परिक आदान-प्रदान। विदेशी शासनके पहले आदान-प्रदानका यह सास्कृतिक कार्य सुर-भारती सस्कृतके माध्यमसे सम्पन्न हुआ करता था। बादमे पालि, प्राकृत जैसी भाषाओंके द्वारा भी यह कार्य बहुत हद तक सम्पन्न हुआ करता था। बादमे अँग्रेजी जैसी विदेशी भाषा भारतके मस्तिष्क मात्रका पोषण करनेमे समर्थ रही। अत उसके हृदयकी अवहेलना-सी हो गई और फलत भारतकी सास्कृतिक एकता तनिक शिथिल होने लगी। पर इधर खडी बोली (हिन्दी) ने अपना सिर उठाया है और अब इसीके माध्यमसे भारतीय साहित्यकी एकरूपताका पुनरुत्थान सम्भव हो रहा है।

आदान-प्रदानके इस महान् कार्यमे आन्ध्रका पहलेसे ही महत्वपूर्ण सहयोग रहा है। आपस्तम्ब, हाल, वल्लभाचार्य, पण्डितराज जगन्नाथ, आदि महर्षियो, मनीषियो तथा मनस्वियोकी दूरदर्शिताने आन्ध्रको समग्र भारतके साथ मिला दिया है। हालकी 'गाथा सप्तशती'ने हिन्दीमें 'सतसई'की सरस परम्पराको प्रचलित किया था। हिन्दी साहित्यको स्वर्णिम शोभा प्रदान करनेवाली 'कृष्णभक्ति शाखा'को उर्जस्वित करनेका श्रय श्रीवल्लभाचार्यकी 'नरवचद्र छटा' को ही है जिसके विना कविवर सूरदासको 'सब जग माँझ अँधेरो' ही दिखाई पडा था। सूरदासने हिन्दी साहित्यको हृदय दिया था तो श्री वल्लभाचार्यने पवित्र गोदावरीसे अभिमिश्रित स्निग्ध एव स्फीत वुद्धि प्रदान करके ब्रजको सर्वथा परिशुद्ध किया था। इसके पश्चात् अठारहवी शतीके अन्तिम चरणमे तैलङ्ग ब्राह्मण 'पद्माकर' भी इसी परम्पराके प्रवर्तकके रूपमें अपना नाम अमर कर गए है।

उपर्युक्त महानुभावोने जिस कार्यको सास्कृतिक दृष्टिकोणसे सम्पन्न किया था, उसीको सन् १९१८ मे महात्मा गाँधीने राष्ट्रीय रूप प्रदान किया था और भारतकी पतनोन्मुख सास्कृतिक चेतनाको भाषाके सहारे खडा कर दिया था। सन् १९१८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन इन्दौरमें सम्पन्न हुआ था। गाँधीजीने इस अधिवेशनके अध्यक्षीय भाषणमे हिन्दीको अखिल भारतीय रूप प्रदान करके उसका राष्ट्रीय महत्व समझाया था। उस समय तक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागका दृष्टिकोण हिन्दी भाषी प्रान्तो तक ही सीमित था। आगे चलकर दक्षिणमे भी हिन्दीका प्रचार आरम्भ हो गया और मई सन् १९१८ में साहित्य सम्मेलनका कार्यालय मद्रासमें स्थापित हो गया। महात्मा गाँधीजीके पुत्र देवदासके द्वारा ही राष्ट्रवाणीकी आराधना दक्षिणमें शुरू हुई थी। इसी समयसे राष्ट्रभाषा हिन्दीके साथ आन्ध्रने भी अपना यथाधिक सम्पर्क स्थापित कर लिया है। देवदास गाँधी, रामभरोसे, रामानन्द शर्मा आदिके साथ-साथ हृषीकेश शर्मा, मोटूरि सत्यनारायण जैसे उत्साही आन्ध्र युवकोने भी राष्ट्रके इस स्पृहणीय कार्यमे स्तुत्य योग दिया था।

इस राष्ट्रीय धाराके साथ-साथ सास्कृतिक चेतनासे प्रेरित साहित्यिक साधना भी आन्ध्रमें जाग उठी। सर्वश्री जन्ध्याल शिवन्नशास्त्री, ओरुगटि वेकटेश्वर शर्मा आदि उदीयमान लेखकोने राष्ट्रवाणीमें लिखने प्रशसनीय प्रयास किया था। इस समयको 'जागरण काल' अथवा 'प्रबोध युग' माना जा सकता है। सन्

१९१८ से १९३५ तक यही प्रबोध आन्ध्र के हिन्दी आन्दोलनमें दृष्टिगोचर होता है। सांस्कृतिक एकरसता को भारतमें पुन: प्रतिष्ठित करनेके लिए आन्ध्रने एक सामान्य भाषाकी आवश्यकता महसूस की और वहांके प्रतिभाशाली लेखकोंने तुरन्त उस कार्यमें सक्रिय तथा रचनात्मक योगदान देना आरम्भ किया था।

सन् १९३६ तक हिन्दीका प्रचार आन्ध्रकी शिक्षित जनतामें किया गया और इसके फलस्वरूप सरकारने भी इसको मान्यता प्रदान कर विद्यालयोंमें भी हिन्दीका प्रवेश कराया। इस प्रकार सन् १९३७ से हिन्दी अध्ययन-अध्यापनका भी विषय बन गयी है। अब प्रचारकों शिक्षकों तथा लेखकोंकी संख्या बढ़ने लगी। सन् १९३७ से सन् १९४९ तक प्रचारकी लहर आन्ध्रके कोने-कोनेमें फैल गई जिसने हजारों युवकोंको हिन्दी पढ़ने और हिन्दीमें लिखनेकी ओर प्रेरित किया है। तेरह सालकी इस अवधि को प्रचार युग अथवा साधना युग माना जा सकता है। इसी बारी अवधिमें सर्वश्री रामभूर्ति रेणु आरिगपूडि रमेश चौधरी हनुमच्छास्त्री अयाचित नरसिंहमूर्ति राघवराव सूर्यनारायण भावुक आदि कई उदीयमान लेखक आन्ध्रमें तैयार हो गए। इनकी साधनाने आन्ध्रका मुख उज्ज्वल किया है और सिद्ध किया कि हिन्दी केवल उत्तर भारतकी एक साधारण प्रान्तीय भाषा नहीं है बल्कि वह सारे राष्ट्रकी सम्पत्ति है।

सन् १९५ में हिन्दीने भारतके संविधानमें आदरणीय स्थान प्राप्त कर लिया है और तबसे उसका विकास पहलेसे कई गुना अधिक होने लगा है। अब लेखक समालोचक कवि नाटककार, कहानीकार और पत्रकार अधिकाधिक संख्यामें अपनी प्रतिभाके बलपर राष्ट्रवाणीको समृद्ध करने लगे हैं। अत: सन् १९५ से अब तक का यह काल 'विकास युग' माना जा सकता है।

इस प्रकार आन्ध्र प्रदेशमें हिन्दी साहित्यकी व्याप्तिको 'चार युगों'में विभाजित किया जा सकता है —

प्राचीन युग सन् १९१८ से पहले
प्रबोध युग सन् १९१८ से सन् १९३५ तक
साधना युग सन् १९३७ से सन् १९४९ तक
विकास युग सन् १९५ से सन् १९६ तक।

इससे यह नहीं समझना चाहिए कि प्रत्येक युगके लेखक अलग-अलग हैं और उनकी प्रवृत्तियाँ एक दूसरेसे भिन्न हैं। केवल विकासकी दृष्टिसे यह विभाजन किया गया है। वास्तवमें प्रबोध युग की ही प्रवृत्तियाँ 'साधना युग'में और इसी प्रकार साधना युग की प्रवृत्तियाँ विकास युग में परिवर्तित एवं परिष्कृत हुईं। प्रत्येक युग अपने पूर्ववर्ती युगका पूरक तथा परवर्ती युगका पोषक होता है। कभी कभी यह भी देखा जाता है कि एक ही लेखक प्रबोध युग में अपनी साधनाका आरम्भ करके साधना युग और विकास युगों में अपनी रचनाका कार्य जारी रखता है। अत: यह विभाजन तत्कालीन प्रवृत्तियोंपर अधिक आधारित है लेखकोंपर नहीं।

अब आगे चलकर प्रत्येक युगके प्रमुख लेखकोंकी साहित्यिक सेवाका परिचय दिया जाएगा। यहांपर इस बातको स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इसमें केवल उन्हीं लेखकोंके नाम दिए जा रहे हैं जो आन्ध्र प्रदेशके निवासी अथवा तेलगु भाषी होकर हिन्दीमें लिखते हैं। आन्ध्रमें कई अन्य भाषा भाषी हैं जो विविध प्रान्तोंसे यहां आकर बसे हुए हैं और जो राष्ट्रवाणीमें साहित्य सर्जन कर रहे हैं। विस्तारके भयसे इनका उल्लेख इस निबन्धमें नहीं किया जा रहा है यद्यपि इन सहृदय लेखकोंकी सेवा अत्यन्त स्तुत्य है।

आन्ध्रकी हिन्दीको देन

प्रबोध-युग (१९१८–१९३५)

सन् १९१८ के मार्चके महीनेमें गाँधीजीने हिन्दीको राष्ट्रभाषाका रूप मौखिक रूपसे और दो ही तीन महीनोमे दक्षिणमे इसका प्रचार भी शुरु कर दिया था। बापूकी इस आत्मीय प्रे प्रतिभाशाली आन्ध्र युवकोका मन हिन्दी पढने और हिन्दीमें लिखनेकी ओर आकृष्ट किया। सर्वश्री जन्ध्याल शिवन्नशास्त्री, पीसपाटि वेकट सुब्बराव, रामकृष्ण शास्त्री आदि उत्तर भा हिन्दीका अध्ययन करके वापस आये। इनमेंसे श्री जन्ध्याल शिवन्न शास्त्रीका व्यक्तित्व बडा जबर राष्ट्रीय दृष्टिकोणमे श्री मोटूरि सत्यनारायणने हिन्दी प्रचारके बीज जिस प्रकार बोये थे, उ शास्त्रीजी आन्ध्रमे हिन्दी साहित्यके सर्जनकी सञ्जीवनी प्रेरणा सञ्चरित कर गए थे।

उपर्युक्त विवेचनसे यह नही समझना चाहिये कि सन् १९१८ के पहले आन्ध्रोका ध्य साहित्यकी ओर आकृष्ट ही हुआ नही था। पिछले पृष्ठोमे स्पष्ट कर दिया गया है कि आन्ध भाषा और साहित्यके साथ दो प्रकारका सम्बन्ध रहा है—राष्ट्रीय और सास्कृतिक। राष्ट्री सन् १९१८ के बाद ही दृष्टिगोचर होता है। उसके पहले सास्कृतिक दृष्टिकोणसे आन्ध्रने हिन्द भाँति अपनाया था और इसका उज्ज्वल प्रमाण है पद्माकरकी प्राभातिक काव्य-माधुर परम्परामें श्री कृष्णमूर्ति शिष्टु, पुरुषोत्तम नादेल्ल आदि महानुभावोने अपनी सास्कृतिक तथा प्रवण प्रकृतिका परिचय दिया था। श्री कृष्णमूर्ति शिष्टुने तुलसीदासके "रामचरितम पद्यानुवाद तेलुगुमें किया है। अब तक प्राप्य अनुवादोमे यही 'मानस'का पहला आन्ध्रानुवाद चौपाईके छन्दोमे यह अनुवाद किया गया है और इस दृष्टिसे यह तेलुगुके छन्दोवैभवको भी सिद्ध हुआ है। यद्यपि इन छन्दोका प्रयोग बादके आन्ध्रके लेखकोने नही किया है। कृष्णमूर्ति अनुवाद अरण्यकाण्डमें 'मारीच वध' तक किया था। शेषाशका अनुवाद मडनरहरि नामवे पूरा किया। इसका रचना-काल सन् १८८० के लगभग है, जबकि उत्तर भारतमें नागरी प्रचा काशीकी स्थापना तक नही हुई थी। इसी प्रकार श्रीनिवासराव पर्सुमर्तीका गद्यानुवाद और न भागवतुलका पद्यानुवाद भी उल्लेखनीय है। यह बडी प्रसन्नताकी बात है कि आन्ध्रके कवि सबसे पहले 'मानस' की ओर गई और आज भी कई ऐसे तेलुगु भाषी है जो केवल 'मानस' व करनेके लिये हिन्दी सीखना चाहते हैं। 'मानस'के मधुर वाचक नोमुल अप्पाराव इस उदाहरण है।

'मानस' के अनुवादकी ओर आन्ध्रके लेखकोका ध्यान जिस समय आकृष्ट हुआ था उ लगभग हिन्दी नाटकोका भी प्रदर्शन आन्ध्रमें होने लगा, जिसकी ओर कई कलाप्रिय युवकोका म हुआ। इनमें नादेल्ल पुरुषोत्तम नामके नाटककारका नाम विशष उल्लेखनीय है। आपने और १८८६ के बीच हिन्दीमें कई नाटक लिखकर रगमचपर उनका प्रयोग कराया था। आपके तेरह हिन्दी नाटक आज मिलते है। इन नाटकोकी पाण्डुलिपियाँ इस समय उस्मानिया विश्व तरुण शोधकर्ता तथा वरगल आर्ट्स कालेजके प्राध्यापक श्री भीमसेन 'निर्मल' के पास हैं, अनुशीलन कर रहे है। कहा जाता है कि आपने कुल मिलाकर ३२ नाटक लिखे थे। अ प्रकाशित हो जाएँ, तो अतीतका बहुत-सा अन्धकार आलोकित हो सकेगा।

यह सारा कार्य प्रबोधकालके (अर्थात् सन् १९१८) पूर्व हुआ था। इसी आधारपर आलोच्य कालकी साहित्यिक रचना मात्र बढ़ी। आपस्तम्बके समयसे चली आती हुई इस सांस्कृतिक भागीरथीने बीचमें प्राप्त राष्ट्रीय यमुनाको अपनेमें मिला लिया और अब वह समग्र भारतको पावन कर रही है।

युग-साहित्य

गद्यकार

स्व. शिवरामशास्त्री (१८९६-१९२९) आप आलोच्य युगके प्रतिनिधि लेखक माने जा सकते हैं। आप तेलुगु, संस्कृत, बंगला और हिन्दीके मर्मज्ञ विद्वान् तथा तेलुगु और संस्कृतके सरस कवि थे। आपने डी. एल. रायके बंगला नाटकोंका आन्ध्र भाषामें अनुवाद भी प्रस्तुत किया था। हिन्दीमें आपने दो कोश तथा दो व्याकरण-ग्रन्थ लिखे थे। 'हिन्दी-तेलगु-कोश' 'तेलगु हिन्दी-कोश' 'हिन्दी-तेलगु व्याकरण' तथा 'ब्रजभाषा व्याकरण' (मथुरा) आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

भाषाकी शुद्धता एवं विचारोंकी स्पष्टताको आपने अपने लेखोंमें बहुत महत्व दिया था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजीसे आप बराबर सम्पर्क बनाये रखते थे। आप 'सरस्वती' में लिखा करते थे। एक लेखमें आपने हिन्दीके लेखकों तथा कवियोंकी अस्पष्ट अभिव्यक्तिपर अपना असन्तोष प्रकट करते हुए लिखा है —

"आजकल युवक कवि 'मिस्टिक पोइट्री' (रहस्यमय कविता) लिखते हैं। ये लोग अपने अनुभवकी किसी पहलूको लेकर इतनी अस्पष्ट कविता लिखते हैं कि स्वयं लेखकके सिवा दूसरेकी समझमें वह नहीं आती। इनमें कई तो ऐसे भी सज्जन हैं जो दूसरोंको अपनी कविताका भाव भी नहीं समझा सकते। ऐसी कविताओंसे क्या लाभ है मैं नहीं जानता।"

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीने अपने एक लेख 'आजकलके छायावादी कवि और कविता' में इन पंक्तियोंको उद्धृत भी किया है। इससे स्पष्ट है कि आन्ध्रमें हिन्दी रचनाके प्रारम्भिक दिनोंमें रहकर भी शास्त्रीजी हिन्दी साहित्यको पुष्ट करनेके लिए कितने लालायित थे। इस युगके कितने ही लेखक प्रभावित और निखार हुए वे सब शास्त्रीजीकी प्रेरणाके आभारी हैं।

स्व. मोक्कपाटि वेंकटेश्वर शर्मा (१९१५-१९५२) शास्त्रीजीके पश्चात् आपका नाम उल्लेखनीय है। आप भी शास्त्रीजीकी भाँति अल्पायु तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। सन् १९२५ से आपकी हिन्दी सेवा आरम्भ हुई थी। आप बापटूर तिरुपतम मेल्पर आदि कई केन्द्रोंमें हिन्दीका प्रचार करके आन्ध्र विश्वविद्यालयके प्रथम हिन्दी प्राध्यापक बने थे। हिन्दी और तेलुगुका तुलनात्मक अध्ययन करके साहित्यिक समन्वय तथा सांस्कृतिक संगम के महान् कार्यमें आपने बड़ी प्रशंसनीय सेवा की है। तुलनात्मक अध्ययनके आप प्रवर्तक माने जा सकते हैं। शास्त्रीजीकी प्रेरणा पाकर आपने 'साधना युग' व 'रामभूमि' रघु ने इस परम्पराको आगे बढ़ाया। सामयिकी गार्थी हुई प्रतिभाको आपने जमाया था और इस दृष्टिसे आप प्रबोध युग के प्रतिनिधि लेखक माने जा सकते हैं। आपने रमण महर्षिकी जीवनी लिखी है।

हृषीकेश शर्मा सन् १९१८ मे जबसे दक्षिणमे हिन्दीका प्रचार आरम्भ हुआ था तभीसे आप हिन्दीकी सेवामे तत्पर रहे और कई रूपोमे आप भारत-भारतीकी आराधना करते रहे है। आप स्वय लेखक है और लेखकोको प्रेरित करनेवाले भी है। आन्ध्र प्रदेशमे प्रकाशित पहली हिन्दी पत्रिका 'हिन्दी प्रचारक' का सम्पादन सर्वप्रथम आप ही के द्वारा सम्पन्न हुआ था और यही पत्रिका आज 'हिन्दी प्रचार समाचार' के नामसे प्रसिद्ध है। प्रेमचन्द द्वारा सञ्चालित 'हस' के भी आप कुछ दिनो तक सहायक सम्पादक रहे और बादमें 'राष्ट्रभारती' की सेवामें लग गए। पत्रकारके रूपमे आपकी सेवाएँ चिरस्मरणीय है और इसके जरिए आपकी रचना शक्तिका भी परिचय प्राप्त होता रहा है। आपने जयशकर प्रसाद, उपेद्रनाथ 'अश्क' आदि कई प्रसिद्ध हिन्दी लेखकोकी रचनाओका तेलुगुमें अनुवाद किया है।

मोटूरि सत्यनारायण सन् १९२१ से आप गाँधीजीके आदेशपर हिन्दीके प्रचारमें लग गए और आज तक कई रूपोमे राष्ट्रवाणीकी सेवा करते आ रहे है। आपका व्यक्तित्व बहुमुखी है। आप प्रचारकोमे प्रचारक, शिक्षकोमे शिक्षक, लेखकोमे लेखक तथा पत्रकारोमे पत्रकार हैं। 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा', मद्रासके मुख-पत्र 'हिन्दी प्रचार समाचार' तथा 'दक्षिण भारत' के सम्पादकके नाते अपने हिन्दी साहित्यकी स्तुत्य सेवा की है। 'तेलुगु भाषा समिति', 'भारतीय सास्कृतिक सघ' तथा अन्य कई सरकारी, गैर सरकारी सास्कृतिक सस्थाओके आप सदस्य है और इस रूपमे भी आपके व्यक्तित्व ने हिन्दीको लाभान्वित किया है। आपने विद्यार्थियोके लिए उपयुक्त कई पाठ्य-पुस्तकोकी रचना की है। आपकी 'हिन्दी स्वबोधिनी' का आन्ध्रमें विस्तृत प्रचार हुआ है। कई पत्र-पत्रिकाओमें आप विभिन्न विषयोपर लेख भी लिखा करते है।

इनके अतिरिक्त दम्मालपाटि रामकृष्ण शास्त्री, उन्नव राजगोपालकृष्णय्या, एस वी शिवराम शर्मा, दिनवहि सत्यनारायण आदिके नाम भी आलोच्य युगके गद्यकारोमें उल्लेखनीय है। सागि सत्य-नारायण और कोमण्डूरि शठकोपम भी इसी युगमें प्रचार-कार्य शुरू कर चुके थे। पर इन दोनोके द्वारा लिखित शब्दकोश–'शब्दसिंधु' (सत्यनारायण कृत) और 'आन्ध्र-हिन्दी-कोश' (शठकोपम कृत) बादमें प्रकाशित हुए थे।

पद्यकार

इस युगके पद्यकारोमें लाजपति पिंगलका नाम विशेष उल्लेखनीय है। सन् १९२१ से आपकी हिन्दी सेवाका आरम्भ हुआ था। आपकी रचनाओमे 'रामदास' (खण्डकाव्य), 'सुमती शतक' का हिन्दी अनुवाद और 'मीराबाई' (पद्य) प्रसिद्ध है।

कर्णवीर नागेश्वर राव भी इसी युगके लेखक है। आप सस्कृत, हिन्दी और तेलुगुके माने हुए विद्वान् और कवि है। आप सस्कृतमें अधिक लिखते है। हिन्दीमें आपने कुछ पाठ्य पुस्तके भी लिखी है।

साधना-युग (सन् १९३६–१९४९)

प्रबोध युगकी रचनाओने आन्ध्रके कई तरुण लेखकोमें नई चेतना पैदा कर दी। भाषा और साहि-त्यके प्रसारके लिए बाहरका वातावरण भी अनुकूल होने लगा। पाठशालाओमे हिन्दीकी पढाई प्रारम्भ हो चली। हिन्दी पढनेवालोकी सख्या भी बढ गई और फलत हिन्दीमे लिखनेवालोकी भी सख्या बढने लगी।

इस युगके लेखक गद्य पद्य नाटक कहानी उपन्यास समालोचना आदि साहित्यके सभी रूपोंमें अपने हाथ आजमा रहे हैं। वास्तवमें आन्ध्रमें हिन्दीकी परिनिष्ठित साधना इसी युगमें सम्पन्न हुई है।

प्रबोध युगकी भाँति इस युगमें भी राष्ट्रवाणीके दोनों रूप—राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक—पाए जाते हैं। सांस्कृतिक दृष्टिकोणसे आदान-प्रदानका जो कार्य मोसलटि वेंकटेश्वर शर्माने इसके पूर्व शुरू किया था उसे सक्रिय एवं प्रगतिशील रूप प्रदान करनेका श्रेय इस युगके वारणासि राममूर्ति 'रेणु' को मिला है। इस दृष्टिसे 'रेणु' जी को इस युगकी सांस्कृतिक धाराका प्रतिनिधि लेखक माना जा सकता है। 'रेणु' जीके साथ साथ आरिगपूडि रमेश चौधरी, आलूरि बैरागि चौधरी, सूर्यनारायणमूर्ति, चावलि नरसिंहमूर्ति, रावकोंड हनुमच्छास्त्री अयाचित आदि कई लेखकोंने इसी सांस्कृतिक दृष्टिकोणसे हिन्दी में लिखना शुरू कर दिया है।

इसी प्रकार आलोच्य युगकी राष्ट्रीय धाराके अन्तर्गत वेमूरि आञ्जनेय शर्मा, चिट्टूरि लक्ष्मीनारायण शर्मा, वेंकटाचल शर्मा, रामसुब्बय्या, चोडवरम आदिने भी राष्ट्रवाणीको समृद्ध तथा सम्पन्न बनानेमें प्रशंसनीय योग दिया है।

इन दो प्रमुख धाराओंके अतिरिक्त शिक्षकों तथा अध्यापकोंमेंसे एक लेखक वर्ग इसी युगमें अपनी समुज्ज्वल सेवाके साथ प्रकट होने लगा है। इस वर्गके लेखकोंमें श्री सुन्दर रेड्डी, सीतारामय्या, आकेल्ल सुन्दरराम शर्मा, कोटा भगवान, लक्ष्मणरायशर्मा आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

गद्यकार

प्रबोध युगमें जिन साहित्यिक प्रवृत्तियोंका उद्घाटन शिवम शास्त्री और वेंकटेश्वर शर्माने किया था उन्हींकी अनन्य साधना इस युगके लेखकोंमें पाई जाती है। कविता, उपन्यास, नाटक, एकांकी, समालोचना, निबन्ध, पत्रकारिता आदि साहित्यके प्रायः सभी रूप इस युगमें दिखाई देते हैं। इस युगके गद्यकारोंका परिचय इस प्रकार है —

राममूर्ति 'रेणु' — आप इस युगके गद्यकारोंमें सर्व प्रथम उल्लेखनीय हैं। भारतीय भाषाओंमें और विशेष रूपसे हिन्दी और तेलुगुके बीचमें निरन्तर चली आती हुई साहित्यिक आदान-प्रदानकी परम्पराको आप हीने इस युगमें प्रतिष्ठित किया है। कविता और नाटक भी आपके प्रिय विषय हैं। सन् १९२ में आपका एक कविता संग्रह 'विहग गीत' के नामसे प्रकाशित हुआ था। सन् १९२ के बाद आपके नई नीति-स्तबक तथा कृष्णलीला तरंगिणी, गीत सङ्करम्, सात्योकी त्यागराज, महान व्याख्याकार मल्लिनाथ सूरी आदि आकाशवाणी हैदराबादके द्वारा प्रसारित हुए हैं। किन्तु ये सभी रचनाएँ सन् १९५ से शुरू होनेवाले विकास कालका प्रतिनिधित्व करती हैं आलोच्य कालका नहीं। आपकी इन रचनाओंमें सांस्कृतिक अनुसन्धानका एक परिष्कृत रूप दिखाई देता है जिसके पीछे आपकी पूर्ववर्ती रचनाओंमें झलकनेवाली साहित्यिक साधना छिपी हुई है। आप अभी तेलुगु साहित्यको हिन्दीमें रूपान्तरित करनेमें जुटे हुए हैं।

आपकी 'साधना-काल'की रचनाओंमें आन्ध्र देशके 'कबीर-वेमना' सबसे पहली है। सन् १९४६ में आपने इस रचनाका आरम्भ किया था और चार सालके गम्भीर अध्ययनके फलस्वरूप आपकी यह पहली रचना सन् १९४९ में प्रकाशित हुई थी। इसके पश्चात् भी आपके कई लेख इस नई धारा राष्ट्र

भारती', 'सरस्वती', 'आजकल', 'अजन्ता', 'कल्पना', 'अवन्तिका' आदि कई पत्र-पत्रिकाओ-में प्रकाशित हुआ करते थे। 'नेहू-अभिनन्दनग्रथ' मे आपका लिखा हुआ 'आन्ध्र प्रदेशके बौद्ध-केन्द्र' नामक लेख विशेष उल्लेखनीय है। आपके प्राय सभी लेखोमे साहित्यिक आदान-प्रदानकी प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। सन् १९५२ मे 'साहित्यकार ससद' के द्वारा प्रकाशित 'आदान-प्रदान' आपकी इसी प्रवृत्तिको मुखरित करनेवाले कई लेखोका सकलन है।

आपकी अप्रकाशित रचनाओमे 'एक वीरा' (उपन्यास), 'राजा देशिग', (७०० पद्योका अनूदित काव्य) और भागवतके कुछ प्रसग उल्लेखनीय है।

तजाऊरके ग्रन्थालयमे 'राधा वशीधर विलास' नामक एक गेय नाटक आपके द्वारा हाल हीमे सम्पादित और प्रसारित हुआ था। सम्पादकके अनुसार हिन्दीका यह पहला गेय नाटक है, जिसकी रचना तमिल प्रान्तके रहनेवाले मराठी भाषी शासक शाहजीने हिन्दीमे की थी और इसकी पाण्डुलिपि तेलुगु लिपिमें है। इस प्रकार आपकी साहित्यिक साधना इस युगमे आरम्भ होकर 'विकास-युग' मे आकाशवाणीके माध्यमसे बहुत आगे बढ रही है।

आरिगपूडि रमेश चौधरी आप इस युगके उदीयमान लेखकोमेसे एक है और हिन्दीमे मौलिक रचनाके अग्रदूत माने जा सकते है। 'भूले-भटके', 'दूरके ढोल', 'खरे-खोट' आदि उपन्यास और 'भगवान भला करे' जैसे कहानी सग्रह आपकी साहित्यिक सेवाके ज्वलन्त प्रमाण है। आपकी शैलीमें सरलता और स्निग्धताकी सुन्दर सम्मिलिन पाया जाता है और आपके विचार बिलकुल सुलझे हुए होते है। आपके उपन्यासोमे आन्ध्र देशके ग्रामीण वातावरणका सुन्दर चित्रण मिलता है। 'दक्षिण-भारत' का सम्पादन भी आपने काफी समय तक किया है। इस दृष्टिसे आप इस युगके माने हुए पत्रकारोमेंसे एक है। केन्द्रीय साहित्य अकादमीके लिए आपने तेलुगुके श्रेष्ठ उपन्यास 'नारायणराव' का हिन्दीमे अनुवाद किया है।

हनुमच्छास्त्री अयाचित आप इस युगके इतिहास लेखकोके प्रतिनिधि माने जा सकते है। 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' तेलुगुमें और 'तेलुगु साहित्यका इतिहास' हिन्दीमे लिखकर आपने दोनो भाषाओकी चिरस्मरणीय सेवा की है। आप हिन्दी, तेलुगु, और सस्कृतके पहुँचे हुए विद्वान् है। आजकल अलीगढ विश्व-विद्यालयमे हिन्दी भाषियोको तेलुगु सिखा रहे है।

आलूरि बैरागि चौधरी आप हिन्दी और तेलुगुके अच्छे लेखकोमेसे एक है। हिन्दीमें 'बादलकी रात' और कुछ फुटकल कविताएँ आपने लिखी हैं। आप प्रमुख रूपसे कवि है और कविताने आपको पत्रकार भी बनाया है। हिन्दी और तेलुगुमे प्रकाशित होनेवाली 'चन्दामामा' पत्रिकाका आपने सम्पादन किया है। बालोपयोगी कविता लिखनमे आप बडे कुशल है। तेलुगुमें 'चीकटि-नीडलु', 'नूतिलो गुन्तिकलु', 'दिव्य—भवन', 'त्रिशकु स्वर्गम' आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ है।

जी सुन्दर रेड्डी आन्ध्र विश्व विद्यालयसे सम्बन्धित महाविद्यालयोमे हिन्दी पढानेवाले अध्यापकोमें हिन्दीमे लिखनेकी प्रेरणा आपने दी है। आपकी प्ररणासे कई लेखकोने हिन्दीमे लिखना शुरू कर दिया। श्री रेड्डीजी स्वय अच्छे लेखक भी है। 'साहित्य और समाज', 'मेरे विचार', 'हिन्दी और तेलुगुका तुलनात्मक अध्ययन' आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ है। आप कभी-कभी तेलुगुमे भी लिखते है। दोनो भाषाओपर आपका अच्छा अधिकार है।

सुन्दर राम शर्मा कोवा : संस्कृत-पालि प्राकृत फ्रेंच जर्मन फारसी और रूसीके अतिरिक्त हिन्दी और तेलुगुके आप विशिष्ट विद्वान् हैं। हिन्दी और तेलुगुमें आपने कई रचनाएँ की हैं। भाषा-विज्ञान आपका प्रिय विषय है। प्रद्युम्नाभ्युदयम् नामक संस्कृत नाटकका आपने तेलुगुमें अनुवाद किया है। बिहारी सतसई का भी आपने तेलुगुमें अनुवाद किया है। शिक्षा-शास्त्रके भी आप पहुँचे हुए विद्वान् हैं। आप जैसे बहु भाषा-पारंगत तथा अध्यवसायी अध्येताको पाकर आन्ध्र गौरवान्वित है।

आञ्जनेय शर्मा बेमूरि : आप इस युगकी राष्ट्रीय धाराके प्रतिनिधि लेखक हैं। आपने कई रचनाओंका तेलुगुमें अनुवाद किया है, जिनमें सेवा-सदन, निर्मला, गबन, रंगभूमि विशेष उल्लेखनीय हैं। ये तीनों मुंशीजीकी रचनाओंके अनुवाद हैं। इनके अतिरिक्त काकासाहेब कालेलकरके 'कला और जीवन दर्शन' का भी आपने तेलुगुमें अनुवाद किया है। हिन्दीमें 'दक्षिणकी कहानियाँ' आपकी प्रसिद्ध रचना है। आत्रेयके 'ईनाडु' का भी आपने हिन्दीमें अनुवाद किया है। हिन्दी और तेलुगुके अतिरिक्त गुजरातीसे भी आपका सम्बन्ध है। पन्नालाल पटेल के 'मलेला जीवा' का आपने तेलुगुमें अनुवाद किया है। धार्मिक अनुवाद कार्यकी ओर आन्ध्रके कई लेखकोंको भी प्रोत्साहित किया है। इस महत्वपूर्ण धाराके आप प्रतिनिधि एवं प्रवर्तक माने जा सकते हैं। आपने 'स्रवन्ति' नामक एक तेलुगु पत्रिकाका कार्फी समयतक सम्पादन किया है और 'दक्षिण भारती' नामक हिन्दी पत्रिकाका भी सम्पादन किया है। पत्रकार और अनुवादक के अतिरिक्त आप अभिनेता भी हैं। आपने राष्ट्र भाषाके प्रचारमें बहुत बड़ा योग दिया है।

विकास-युग (१९५० ६०)

साधना युगके लेखकोंकी वाङ्मय तपस्याने इस युगमें रचनात्मक विकासका रूप धारण किया है। इधर पिछले दस सालसे हिन्दीमें आन्ध्रके कई लेखकोंने लिखना शुरू किया है। हिन्दी पढ़ने और पढ़ानेवालोंकी संख्या भी जब बढ़ने लगी तो आवश्यक पाठ्य सामग्रीको प्रस्तुत करनेका प्रयासका भी इस दशकमें बड़ी तीव्र गतिसे ह्रास लगा। समालोचना तुलनात्मक अध्ययन उपन्यास कहानी नाटक एकांकी पत्रकारिता आदि सभी क्षेत्रोंमें आन्ध्रके तरुण लेखकोंने अपनी कुशल लेखनी चलाई और इस दिशामें आशातीत सफलता भी प्राप्त की है।

पत्रकार

साधना युगकी भाँति इस युगमें भी गद्य रचनाओं पद्य रचनाओं अलग करके दोनों धाराओंका पृथक विवेचन करना सम्भव नहीं है क्योंकि इस युगमें गद्यकार और पद्यकार अलग अलग नहीं हैं। गद्य लिखनेवाले पद्य भी लिख रहे हैं और पद्य लिखनेवालोंका गद्य भी समान है। पत्रकार और गद्यकार भी इसी प्रकार अलग-अलग नहीं हैं। हिन्दी सामग्री एवं अध्ययन-अध्यापन सम्बन्धी पत्रिकाके सम्पादक दोनों दृष्टि से आगे उल्लेखनीय हैं। हैदराबादसे निकलनेवाली 'कल्पना' 'अजन्ता' और 'मिलाप' आन्ध्र प्रदेशकी हिन्दी पत्रिकाएँ अवश्य हैं। पर तेलुगु भाषा अथवा साहित्यसे इनका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है न इनके सम्पादक ही तेलुगु भाषी हैं। इधर कुछ दिनोंसे नाम्पल्ली गार्ड्स में प्रचारके लिए विजयवाड़ासे 'इनसान

नामकी पत्रिका निकल रही है जिसके सम्पादक श्री 'लवणम' है। हैदरावादसे आञ्जनेय शर्माके सम्पादकत्वमें इन दिनो 'दक्षिण भारती' नामकी एक पत्रिका निकल रही है। इसके माध्यमसे दक्षिणकी भापाओके साहित्य का परिचय हिन्दीमे दिया जा रहा है। 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा', मद्राससे निकलनेवाली 'दक्षिण भारत' का भी यही आदर्श है। आन्ध्र में इन दोनो पत्रिकाओका काफी प्रचार है। हिन्दीमे पत्रिका सम्पादन करनेका पहला श्रेय प हृशीकेश शर्माको मिलना चाहिए जिनके द्वारा प्रदर्शित मगलमय मार्गके अब तक कई अनुयायी बन चुके है और बन रहे है।

गद्यकार

अब पत्रकारोंके पश्चात् गद्य लेखकोका भी स्मरण करना चाहिए। अनुवादक, समालोचक और निबन्ध लेखक जिस प्रकार पूर्ववर्ती युगमे हुए है, उसी प्रकार इस युगमे भी विद्यमान है। साहित्यकी कोई धारा अछूती नही रह गई है। अब यहाँ पर इस युगके कतिपय लेखकोका परिचय दिया जा रहा है --

क।माक्षीराव ए सी सन् १९४४ से आप हिन्दी क्षेत्रमे काम कर रहे है और आपने हिन्दीमें कई पाठ्य पुस्तकोकी रचना की है। 'हिन्दी-तेलुगु-कोश' के द्वारा आपने हिन्दी सीखनेवाले तेलुगु छात्रोको लाभान्वित किया है। पत्र-पत्रिकाओमें आपके लेख प्रकाशित होते रहते है और आप अच्छे अनुवादक भी है। हालमे आपके द्वारा किया गया 'रगनाथ रामायण' का हिन्दी अनुवाद बिहार-राष्ट्रभाषा परिषदने प्रकाशित किया है।

नरसिहमूर्ति 'रायकोड' कामाक्षीरावकी भाँति आपका भी सम्बन्ध 'साधनाकाल' से अधिक है। पर आपकी साहित्य सेवाको अभी-अभी उपयुक्त माध्यम मिला है। पिछले दो-तीन सालसे आप आकाश-वाणी, विजयवाडामे काम कर रहे है। आप हिन्दी और तेलुगुके माने हुए विद्वान है और दोनो भाषाओमे कविता भी लिखते हैं। आपकी रचनाओमें 'जागृति', 'आर्हतम', 'भारत नाटचम्, 'तटके वन्धन' और 'चित्रनलीय' उल्लेखनीय है। सन् १९३७ से आप हिन्दीकी सेवामें लगे हुए है।

बालशौरि रेड्डी आन्ध्रके तरुण हिन्दी लेखकोमें आपका प्रमुख स्थान प्राप्त है। तुलनात्मक अध्ययनकी ओर आपकी विशप रुचि है। 'पचामृत' नामक आपकी रचना उत्तरप्रदेशकी सरकारके द्वारा पुरस्कृत है। इस पुस्तकमे तेलुगुके पाँच प्राचीन कवियोकी चुनी हुई रचनाओका सरस व सरल अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। 'शबरी' नामका एक उपन्यास है। 'अटके आंसू' 'तेलुगु की उत्कृष्ट कहानियाँ' * नामसे अनूदित कहानी-सग्रह और 'आन्ध्र भारती' नामका आलोचना गन्थ आपकी हालही की रचनाएँ है। 'आजकल', 'राष्ट्रभारती', 'दक्षिण भारत' आदि कई पत्र-पत्रिकाओमें आपके लेख प्रकाशित होते रहते है। सन् १९४९ से आप हिन्दीमे लिखने लगे है और इतनी कम अवधिमे आपने आशातीत यश व सफलता प्राप्त की है।

भीमसेन निर्मल आप हिन्दो और तेलुगुके माने हुए विद्वान है और अब तक तुलनात्मक अध्ययन पर आपके लिखे हुए लेखोकी सख्या सौ से भी आग बढ चुकी है। कई तेलुगु कहानियोंके हिन्दी अनुवाद

---

* तेलुगुके सत्रह उत्कृष्ट कहानीकारोके इस प्रतिनिधि कहानी-सग्रहको राष्ट्रभापा-प्रचार समिति, वर्धाने दिसम्बर १९६० में प्रकाशित किया है।

भी पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए हैं। रामप्रोलु सुब्बारावके 'रुप नवनीत' तथा अडवि बापिराजुकी 'नर्तनशाला' तथा मुन्दुरी... का आपने हिन्दीमें अनुवाद किया है। ये दोनों ग्रन्थ अभी अप्रकाशित हैं। मुनिमाणिक्यम् नरसिंहरावके उपन्यास 'कांतिमुख' का आपने हिन्दीमें अनुवाद किया है। इल्लिन्दल सरस्वतीकी 'आधि मुन्याल' नामक पुस्तकका आपने हिन्दीमें अनुवाद किया है। आपकी वाङ्मय तपस्या अत्यन्त धीर एवं गम्भीर गतिसे चल रही है और भविष्यमें आपसे बड़ी आशाएँ हैं।

वेंकटमूर्ति महोदय आप हिन्दी और तेलुगुके अच्छे लेखक हैं। तेलुगुमें आपकी रचना 'मानवुड मेल्कोन्नाडु' आप की मँजी हुई लेखनीका परिचय देती है। हिन्दीमें आपने कई कहानियाँ लिखी हैं। आप अच्छे अनुवादक और कवि भी हैं। आपकी पत्नी मंजुलता भी कहानियाँ लिखती हैं।

राजा लोपमिरि राव शर्मा आप हिन्दी तेलुगु और संस्कृतके योग्य विद्वान हैं और इधर छह-सात सालसे आपने हिन्दीमें लिखना शुरू किया है। 'आन्ध्र साहित्यकी रूपरेखा' 'आन्ध्रकी लोक कथाएँ' और 'आन्ध्रके लोकगीत' आदि आपकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। आपके पिता कर्मवीर नागेश्वर रावके सांस्कृतिक निष्ठाने आपके व्यक्तित्वको बहुत प्रभावित किया है और आप आन्ध्रके वर्तमान हिन्दी लेखकोंमेंसे एक हैं। आपकी रचना 'आन्ध्रकी लोककथाएँ' केन्द्रीय सरकारके द्वारा पुरस्कृत है। आप हिन्दीके भी कवि हैं।

राधाकृष्णमूर्ति वेमूरि सन् १९४ से हिन्दीके साथ आपका सम्बन्ध रहा है और इधर छह-सात सालसे आप हिन्दीमें अधिक लिखने लगे हैं। 'देश हमारा', 'रामदास', 'नागार्जुन पर्वत' आदि आपकी रचनाओंमें आपका राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक व्यक्तित्व स्पष्ट होता है। तेलुगु साहित्यकी प्रमुख विभूतियोंका परिचय राष्ट्रभाषीके माध्यमसे देनेमें आप तत्पर हैं। आपके लेख कई पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होते रहते हैं। तेलुगुकी 'पूर्णम्मा' की टीकाका आपने पहली बार हिन्दीमें प्रवेश कराया है और इसके लिए आपको सरकारके द्वारा पुरस्कार भी मिल चुका है। आप योग्य वक्ता और अनुभवी अध्यापक हैं। आप तेलुगुमें भी लिखते हैं और दोनों भाषाओंपर आपका समान अधिकार है।

उपर्युक्त लेखकोंके अतिरिक्त वर्तमान गद्यकारोंमें मुद्दुरि सगमेशम आकेल्ल सीतारामम्म अल्लूरि सत्यनारायण राजु विश्वमित्र बोनपूडि राजाराव अट्लूरि रामाराव अक्कुमिल्लि कृष्णमूर्ति दाव शाऊर भगवान हनुमन्तराय शर्मा पांडुरंगाराव मुरली चिरीवूरि सुब्रह्मण्यम कप्पगंतुल सत्यनारायण बूदराजु वेंकट सुब्बाराव वय शर्मा आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

पद्यकार

जैसे पहले कहा गया है कि इस युगके लेखकोंमें कवियोंको समालोचकोंसे अथवा समालोचकोंको कवियोंसे अलग करके बताना कठिन है। फिर भी कविताकी ओर विशेष रुचि दिखाकर आजकल पद्य-रचना करनेवाले लेखकोंमें वड्डिपर्ति चलपतिराव बूदराजु वेंकट सुब्बाराव भगवान हनुमन्तराय शर्मा हनुमन्तराव चक्रवर्ती चल्लगालि सुब्बाराव रामाराव सूर्यनारायणमूर्ति चावलि सूर्यनारायण मूर्ति भानु गुर्नाथम वेमिराजु नृसिंह अप्पाराव पलमर्तिशिल वेंकटेश्वरराव आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

वड्डिपर्ति चलपति रावने पेद्दनाके मनुचरित्रके प्रारम्भिक तीन सर्गोंका हिन्दी अनुवाद मनोहरके नामसे किया है। पर यह अब तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

भगवान इन्नमराय शर्माने 'सुमती शतक', 'कुमारी शतक' और 'वेमन शतक' का अनुवाद हिन्दीमे किया है। पहलेके दोनो अनुवाद प्रकाशित है। 'वेमन शतकका' अनुवाद रामाराव और चलसानि सुब्बारावने भी किया है और ये भी दोनो प्रकाशित है।

सूर्यनारायण मूर्ति 'भानु' ने श्री श्री की कई कविताओका हिन्दीमे अनुवाद किया है। आपने कई गीत भी हिन्दीमे लिखे है।

वूदराजु वेकट सुब्बारावके दो काव्य-ग्रन्थ 'प्रणय' और 'मृणालिनी' के नामसे प्रकाशित हैं। आपने 'उफान' नामका एक उपन्यास भी लिखा है। आपने 'पारिजातापहरणम' और 'दाशरथीशतकम' का भी अनुवाद किया है।

चावलि सूर्यनारायण मूर्ति मौलिक तथा अनूदित दोनो प्रकारकी कविताएँ लिखनेमें कुशल हैं। आपने 'समझौता' नामका एक नाटक भी लिखा है।

वसन्तराव चक्रवर्ती हैदराबादके रहनेवाले है। आपकी कवितापर जयशकर प्रसादका जबरदस्त प्रभाव पडा है। प्रसाद के 'आँसू' का विम्ब ही आपकी 'पीडा' है जो हाल ही में प्रकाशित हुई है। 'दृष्टिदान' और 'कर्णका आत्मदान' आपके अन्य काव्य ग्रन्थ है।

दुर्गानन्दने जाषुआके 'फिरदौसी' का हिन्दीमे अनुवाद किया है। हिन्दीकी कई कविताओका आपने तेलुगुमे अनुवाद किया है।

कुमारि सुन्दरी और सरगु कृष्णमूर्ति, 'मुरली' आदिकी काव्य साधना भी भविष्यको आशा दिला रही है।

शोध-कार्य

जबसे आन्ध्रके उत्साही विद्यार्थियोकी दृष्टि हिन्दीके अध्ययनकी ओर आकृष्ट हुई तबसे हिन्दीमें शोध कार्यका भी आरम्भ हुआ। आन्ध्र विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागके प्रथम आचार्य श्री ओरुगटि वेकटेश्वर शर्माने पहली बार तुलनात्मक अध्ययनका महत्व तेलुगु भाषी विद्वानोंके सामने स्पष्ट कर दिया था और इसी बीजका पल्लवित रूप हमें 'रेणु' जी जैसे दूरदर्शी लेखकोकी रचनाओमें मिला है। इन दोनोकी साहित्यिक साधनाने हिन्दी और तेलुगुकी तुलना तथा हिन्दीमें शोधकार्यकी ओर कई युवकोको प्रेरित किया है। फलत हनुमच्छास्त्री अयाचित, पाडुरगाराव इलयापुलूरि, नरसिहाचार्य एस टी राजन राजू, वेकट रमण, भीमसेन निर्मल, सूर्यनारायण 'धवल' आदिने अपनी रुचिके अनुकूल विषय चुनकर हिन्दीमें शोध कार्य करना शुरू कर दिया है। राष्ट्रवाणीके विकासमें आन्ध्रके युवकोंके द्वारा प्रवर्तित शोध-कार्य तथा तुलनात्मक अध्ययन की इस परम्पराने बहुत महत्वपूर्ण योग दिया है। उपर्युक्त शोधकर्ताओमें पाडुरगराव 'मुरली' ने सन् १९-५७ में तेलुगु और हिंदीके नाटक-साहित्यकी तुलना करके नागपुर विश्वविद्यालयसे पी एच डी की उपाधि प्राप्त की है।

शेष शोधकर्ताओमेंसे नरसिहाचार्य और वेकटरमण क्रमश 'साहित्य और अनुभूति' तथा 'भक्ति साहित्यका सामाजिक मूल्याकन' पर अपने शोध प्रबन्ध तैयार कर चुके है।

राजन राजू हिन्दी और तेलुगुके आधुनिक काव्य साहित्यकी तुलना कर रहे हैं और सूर्यनारायण 'धवल' दोनो भाषाओंके प्रबन्धोंके काव्य-शिल्पकी तुलना कर रहे है। भीमसेन 'निर्मल' नादेल्ल पुरुषोत्तम

द्वारा लिखित हिन्दी नाटकोंका अनुशीलन कर रहे हैं। हनुमच्छास्त्री हिन्दी और तेलुगुके भक्ति साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन कर रहे हैं।

इस प्रकार हिन्दी साहित्यकी अनेक रचनात्मक साधना आज जो आन्ध्रमें दिखाई दे रही है उसका भविष्य आशासे आप्लावित है। इस विवेचनमें आन्ध्रके उन सभी लेखकोंका उल्लेख नहीं हो पाया है जिनकी मातृभाषा तेलगु नहीं है। वास्तवमें हृषीकेश शर्मा रामानन्द शर्मा अवधनन्दन रामचरौते डॉ. देवनारायणलाल श्रीराम शर्मा वर्धीश्वर विद्यालंकार, गंगाप्रसाद शास्त्री डॉ. रामनिरञ्जन पाण्डेय डॉ. राजकिशोर पाण्डेय आदि कई ऐसे विद्वान हैं जिन्होंने आन्ध्रमें हिन्दीको प्रतिष्ठित करनेमें चिरस्मरणीय योग दिया है। आन्ध्रके हिन्दी लेखकोंका परिचय देना ही प्रस्तुत निबन्धका लक्ष्य रहा अतः इनकी सेवाका यहाँपर उल्लेख करना सम्भव नहीं हो सका है पर इनकी सेवा सदैव स्मरणीय रहेगी।

इधर आधुनिक कवियोंकी कई काव्य प्रतिभाएँ भी आन्ध्रमें सुन्दर काव्य-साहित्यका सर्जन कर रही हैं। करीब ४२ कवियोंकी उनके परिचय सहित रचनाएँ, आन्ध्रके हिन्दी कवि नामक पुस्तकमें संगृहीत की गई हैं। यह पुस्तक श्री मदनचन्द देवी मन्त्री सहकारी जन साहित्य प्रकाशन समिति हैदराबादकी ओरसे प्रकाशित की गई है। इस पुस्तकमें श्री वागीन्द्र शर्मा गयाप्रसाद शास्त्री रामजीवनलाल भीष्मदेव शास्त्री मधुसूदन चतुर्वेदी आदिके अलावा श्री वी सुब्बाराव तथा श्री चक्रवर्ती की भी कविताएँ हैं।

कर्नाटककी हिन्दीको देन

प्रो. ना. नागप्पा

कर्नाटककी प्राचीनता

'कन्नड' (कर+नाड < कारु नाडु = काली मिट्टी-प्रधान भूमि) शब्द काफी प्राचीन है। वैसे ही कन्नड देश या कर्नाटक या कर्णाटक देशका प्रयोग भी काफी प्राचीन है। कर्णाटक शब्द महाभारतमे प्राप्त होता है। प्राचीन कालमें संस्कृत-काव्योंके पाठनकी शैलियोका वर्णन करते हुए किसी प्राचीन संस्कृत कविने कहा है कि कर्णाटकी लोग टकारके साथ संस्कृत-श्लोकोका उच्चारण करते हैं। इन दिनो भी संस्कृत-पण्डित कर्नाटकमें संस्कृत श्लोक टंकारके साथ ही पढते हैं। उडुपिसे लगे हुए माळ्वे बन्दरगाहमें परशुराम द्वारा स्थापित एक ईश्वर मन्दिर है। इसके बारेमें कहा जाता है कि सारी पृथ्वी कश्यप ऋषिको दानमे दे डालनेके बाद परशुरामने समुद्रको सुखाकर अपने लिए थोडी-सी जगह बना ली थी जहाँ वे तपस्या करते रहे। रामायणमें वर्णित किष्किन्धा हम्पै के पास कर्नाटक में ही है। ऋष्यमूक पर्वत भी यही है। कहते हैं कि कावेरी (मैसूर नगर से उत्तर की ओर ३७ मीलकी दूरी पर चुंचनकट्टे) में सीताने स्नान किया था। बीजापुर जिलेमें स्थित महाकूटमे अगस्त्यने तपस्या की थी। और इधर ऐतिहासिक काल तक पहुँचते-पहुँचते हम यह पाते हैं कि चन्द्रगुप्त (ई पू २९७) मौर्य श्रवण बेळगोळके पहाडपर अपने धर्म गुरुसे जैनधर्म ग्रहण करके भद्रबाहुकी गुफामें तपस्या करते रहे और वही उनका देहावसान भी हुआ था। अशोकके (ई पू २८२-२७७) तीन शिला-लेख चित्रदुर्ग जिलेमें विद्यमान है। कहते हैं कि जैन और बौद्ध धर्मों का कर्नाटक देशमे प्रचार था।

कर्नाटक देशका वर्णन

प्राचीन कन्नड काव्योमें कावेरीसे गोदावरी तक कर्नाटकके विस्तारका उल्लेख मिलता है। नृपतुग (ई सन् ८१४-८७७) नामक राष्ट्रकूट कविने (जो मानखेटमें राज्य करता था) कन्नड देशकी सीमाओका इस प्रकार वर्णन किया है —

कावेरिर्यिंद मो—
वावरिवरमिर्द नाडदा कन्नडदोळ्।
भाविसिद जनपर्द वसु—
धावलय विलीन विसद विषय विशेष ॥

कावेरीसे गोदावरी तक कन्नड-नाडका विस्तार था। आजकलकी बम्बई, पुनेके पास उसका महाराष्ट्र कार्ला और भाजाके गुहान्तर्देवालय—सब कर्नाटकके अन्तर्गत माने जाते थे। पुनेके पास स्थित कार्ला और भाजाके प्रसिद्ध मन्दिर बनवानेवाले दक्षिण कन्नड प्रान्तके श्रेष्ठियाँ प्रसिद्ध समुद्री व्यापारी माने जाते थे। आज (कर्नाटक) मैसूर राज्यके १९ जिले हैं—बेळगाम बीदर, बीजापुर, बळ्ळारी बेंगलोर, गुल्बर्गा चिक्कमगळूर, चित्रदुर्ग कोडगु हासन मैसूर मंडया रायचूर, दक्षिण कन्नड (मंगळूर) उत्तर कन्नड (कारवार) धारवाड तुमकूर, रायचूर और कोलार। पहाड भी कर्नाटकमें काफी है। पूर्वाद्रि और पश्चिमाद्रिका मानो सन्धिस्थान है सह्याद्रि (जि शिवमोग्गा) जिसके पासका जुर्वास्त (मान्सूनकी उपत्यका घाटी में) देखने योग्य है। बाबाबुडनगिरि (जि चिक्कमगळूर) काफी की पैदावारके लिए प्रसिद्ध है। ऊटी (उदक मण्डल) मद्रासके इलाकेमें है फिर भी उदक मण्डलके पहाडी लोगोंकी भाषा कन्नड है। उनकी भाषा कन्नडकी विभाषा है। इरुळर सोलिगर (बिळिगिरिरंगनका पहाड—चामराजनगर–जि मैसूर) के लोगोंकी भाषा भाषा-विज्ञान संस्कृति और ऐतिहासिकताकी दृष्टिसे काफी महत्वकी है। कोडगुकी भाषा भी कन्नडकी विभाषा है। जमकी चरवाहे (गडरिये) इरुळर, जमसी ग्वाले हुसल लोग मलेय बिळिगिरि रंगके पहाड़पर रहनेवाले सोलिग नीलगिरि (ऊटी) पहाड़में रहनेवाले तोडा लोग बडग लोग कोडगु एव लोग दक्षिण कन्नड जिलेके कोरग लोग कुडिम लोग दक्षिण कन्नड जिलेके कोट लोग कोया लोग कोडा लोग मुरिया लोग और पनिया लोग कर्नाटकके आदिवासी माने जाते हैं। इन सबकी अपनी-अपनी बोलियाँ हैं। ये सब बोलियाँ कन्नड भाषाके अन्तर्गत ही हैं। कहते हैं कि सोलिग लोगोंका मूल पुरुष सोलगय्या था तोडा लोग अपनेको रावणका वंशधर मानते हैं। बडग लोग कदाचित् अपनेको पाण्डवोंका वंशज मानते हैं। जमकी ग्वाले (गोपाल-यादव) देहलीके पाससे मुसल्मानोंकी मारसे बचकर मागडि (बेंगलोरके पास) आकर बस गए। दक्षिण कन्नडकी भाषा तुळुभी कन्नडकी ही विभाषा है। दक्षिण कन्नडके तुळुवर समुद्री राजा थे और पुराने जमानेसे नौका-व्यापारके लिए प्रसिद्ध थे। कर्नाटकका काफी लम्बा समुद्र-तट प्रदेश पडता है। कर्नाटकमें मंगळूर, माल्पे भटकळ कारवार में बन्दरगाह बनाये जा सकते हैं। इन दिनों गोवा तकको लोग कर्नाटकमें मिलानेकी आवाज उठा रहे हैं। इस प्रदेशके मानी उत्तर कर्नाटकके कन्नड लोग कोंकणी (मराठीकी विभाषा) सीखकर कोंकणी लोग कहलाने लगे हैं। उत्तर कर्नाटकमें स्थित गोकर्ण (गोकर्ण) प्रसिद्ध स्थान या तीर्थ है। इसे परशुराम क्षेत्र कहते हैं। इधर मैसूरसे मंगळूर तक कोई २ मील बससे जाइए तो प्रकृति इतनी रम्य दिखाई पडती है कि दक्षिण कन्नड तक उतरते-उतरते हम मानो अपनेको कश्मीरमें पाते हैं। दक्षिण कन्नड और उत्तर कर्नाटकमें काफी मैदान प्रदेश है। हासन शिवमोग्गा चिक्कमगळूर, धारवाडका थोड़ा भाग मलेनाड या पहाडी प्रदेश है। यहाँ इलायची काली मिर्च, सुपारी लौंग के अलावा नारियल (गरी) और काजू पैदा होते हैं—जो आजकल बाहरी देशोंके साथ व्यापारकी दृष्टिसे मुख्य है। इसके अलावा कर्नाटकमें चाय

काफी, तम्वाकू, गन्ना, धान, रागी, कपास, वाजरा, (ज्वार) मकई, मिर्च तथा इमली, चन्दन और सागौन जैसे पेड पैदा होते हैं। कोलारमे सोनेकी खाने हैं। मैदान, मलेनाड, जगल, वन्दर प्रदेश—ये चारोंके चारो इतने सुन्दर और भरे-पूरे हैं कि उनकी पैदावारसे देशके लोग मालामाल हो सकते है। अभी देशकी उपज और खनिज-सम्पदाकी उन्नति हो रही है। गेरुसोप्पा (जोग) और शिवसमुद्रमे विख्यात जल-प्रपात है जिनसे विजली उत्पन्न होती है। जोगका (शरावती नदी का) जल-प्रपात करीब १००० फुट गहरा है। ऊपरसे नदीका जल नीचेके खड्डमें गिरते ही कोई ६४० फुट तक जलकी फुहार उठती है। यहांके प्रकृति गाम्भीर्य और महानताके सम्मुख खडे-खडे हम आश्चर्य-चकित हो जाते है।

कर्नाटककी ऐतिहासिकता

कर्नाटकका कोई दो हजार वर्षोका इतिहास प्राप्त होता है। कर्नाटकके राजवशोमेंसे मुख्य हैं — गग, कदम्व, राष्ट्रकूट, चालुक्य, होयसळ, यादव (मैसूर) और विजयनगरके राजा, केळदिके राजा (नायक), और स्वादिके राजघराने। सभी राजा धर्म-सहिष्णु रहे। हैदरअली और टीपू सुलतानने भी हिन्दुओंके मन्दिरोको जागीरे दी है। कर्नाटक भाषाके साहित्यमे कई राजा स्वय कवि हो गए हैं। कर्नाटक भाषा-साहित्यके प्रथम कवि (आदि कवि) 'कविराज-मार्ग' के लेखक नृपतुग (८१४-८७७) राष्ट्रकूट-राजा थे। राष्ट्रकूटोकी राजधानी मान्यखेड (मानखेट—जो पुराने हैदरावाद—कर्नाटकमें पडता है) कर्नाटकका प्रसिद्ध नगर था। कर्नाटकके लोग वीर, रसिक, सहृदय, काव्य-दोष या गुण तुरन्त पहचाननेवाले माने जाते थे। कवि सम्राट् 'पम्प' (जैन) अरिकेसरि नामक चालुक्य राजाके आश्रयमे पनपा था। इसी आश्रय-दाताका नायकत्व (अर्जुनके नायकत्वकी छायाके रूपमें) पम्प भारतमे वर्णित है। पम्प कविको 'कविता गुणार्णव' भी कहते थे। राजा वैदिक मतावलम्वी था, पर कवि जैन था। वेदव्यासकृत महा-भारत पम्पके हाथो छह महीनोमें 'विक्रमार्जुन विजय' नामक प्रसिद्ध काव्यके रूपमें पुरानी कन्नडमें उतर आया। इस पुस्तकमें 'बनवासि' (कर्नाटकका वह प्रान्त जिसमे चालुक्य लोग राज करते थे।) के प्रकृति सौन्दर्यका ऐसा ही अनूठा वर्णन किया है, यथा —पपने आकाक्षा प्रकट की हैं—

"वनवासिके नन्दनवनमे मै अगले जन्ममे कोयल या भ्रमर हो कर पैदा हो जाऊँगा और गाता फिरूँगा।"—पम्प॥

अरिकेसरिकी राजधानी पुलिगेरे कन्नड भाषाका केन्द्र माना जाता था। नृपतुगने भी इसी प्रान्तको कन्नड-भाषाका केन्द्र माना था।

कर्नाटकमें धर्म-समन्वय

जैन, बौद्ध और हिन्दू ब्राह्मण (वैदिक), और लिंगायत, (अवैदिक) सभी धर्मोंका कर्नाटकमें प्रचार हुआ था। बेलूर (जि हासन) का प्रसिद्ध वैष्णव मन्दिर होयसळ राजा विष्णुवर्द्धनके जमानेमें १२ वी सदीमें बनवाया गया था। यहाँ एक श्लोक खुदा हुआ है जिसमे धर्म समन्वयका आदर्श ही प्रस्तुत है —

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः।
सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलम् श्री केशवः सर्वदा॥

मैसूर नरेशको 'कर्नाटक-रत्न-सिंहासनाधीश्वर' कहते हैं और शृंगेरीमठके श्री १०८ स्वामीजी 'कर्नाटक-सिंहासन-स्थापनाचार्य' के नामसे अभिहित करते हैं।

इससे बढ़कर धर्म-समन्वयका भाव क्या हो सकता है! जैनोंके मन्दिर और वैष्णव-मन्दिरोंके साथ-साथ शैव मन्दिर भी बेलूर-हलेबीडमें बनाये गए हैं। श्रवण बेळगोळ (जो मैसूरसे १७ मील दूर पड़ता है) में १० वीं शताब्दीमें चामुंडरायका बनवाया हुआ श्रवण बेळगोळ पहाड़पर स्थित गोम्मटेश्वर (जिसकी नग्न प्रस्तर-मूर्ति एक अखण्ड शिलाके रूपमें आज भी १० फुट ऊँची खड़ी है) सारे विश्वमें अनोखा है। कला भक्ति ऐतिहासिकता वस्तु और शिल्पके भावकी उत्पादनकी दृष्टिसे यह मूर्ति अपने ढंगकी एक ही है। दक्षिण कन्नड़ जिलेके कार्कळमें और वेणूरमें भी ऐसी मूर्तियाँ हैं पर श्रवण बेळगोळ की मूर्ति सबसे भव्य है। इसके बनवानेवाले चामुंडराय (९७८ ई) काफी प्रसिद्ध रहे। आप गंगराज राचमल्ल (९७७-९८४) के मन्त्री थे। आपने कन्नड़ प्राकृत और संस्कृतमें काव्य रचना की है। आप कवियोंके आश्रयदाता भी थे। कन्नड़ साहित्यमें जैन कवियोंने साहित्य धाराका श्री गणेश किया जिसके बाद ब्राह्मण और वीरशैव कवियोंने अपनी काव्य-धारा जैन काव्य-धाराके साथ मिलाई। गंग राजाओंके कई उपलब्ध शिला-लेखोंसे पता चलता है कि वे हमारे देशके इस प्रदेशमें धर्म-समन्वय-भावसे राज करते थे।

कर्नाटक प्रदेशमें एक भी अखाड़ा ऐसा नहीं जिसमें हनुमान (मारुति) की तस्वीर न रखी गई हो। षण्मुखका एक मन्दिर घोण्डूरमें है। भीमा और मारुतिके मन्दिर कर्नाटक भरमें कई जगह पाए जाते हैं।

चालुक्य राजाओंकी राजधानी बादामिमें बनशंकरी 'रट्ट' राजाओंकी राजधानी सौंदत्तिमें यल्लम्मा कृष्ण देवराय आदि राजों की राजधानी (विजयनगरके राजाओंकी राजधानी) में भुवनेश्वरी और मलेनाडके पाळेय (स्वामी) केळदि वंशके राजपुत्रोंकी इष्ट देवी मूकाम्बिका मैसूरके राजाओंकी गृह-देवी चामुण्डेश्वरी और शृंगेरीकी श्री शारदा देवीकी उपासना-पद्धतिसे अनुमान होता है कि कर्नाटकमें किसी समय शाक्त मत भी प्रचारमें था। बाळेहोन्नूरके लिंगायतोंके मठमें आज भी सालमें एक बार कुमारी-पूजा की जाती है।

कन्नड़ भाषाका इतिहास

भारतकी वर्तमान भाषाएँ मुख्यतः भारतीय आर्य भाषा परिवार, आस्ट्रिक परिवार (या मुंडा परिवार) द्राविडी परिवार तथा तिब्बती-बर्मी परिवारके अन्तर्गत आ जाती हैं। द्राविड़ भाषाएँ न केवल दक्षिण भारतमें ही (आन्ध्र प्रदेश मद्रास मैसूर तथा केरल राज्योंमें) बोली जाती हैं बल्कि उत्तर भारतमें भी गोंडवनके प्रदेशमें कहीं-कहीं और बलूचिस्तानमें ब्राहुई नामक बोलीके रूपमें प्रचलित है।

गोंडावनके आस-पास गोंडी, बगालके पश्चिम भागमे कुरुख, सन्थाल परगना जिलेमे माल्तो (राजमहलकी पहाडियोंपर बोली जानेवाली राजमहली), उडीसाकी पहाडियोपर खोण्ड (या कूई), पूर्व बरारमें कोलामी, पुसद तालुकामें चलनेवाली भीली और चाँदाके आस-पास रहनेवाले गोडो कीबोली नायकी, प्रधानतया उत्तर भारतकी द्राविड भाषाओंके अन्तर्गत मानी जाती है। ये बोलियाँ आस-पासकी आर्य भाषाओंसे इतनी प्रभावित है कि इन्हे पहचानना भी भाषा-विज्ञानियोके अध्ययनका फल है। इधर डॉ सिद्धेश्वर वर्मा का निष्कर्ष है कि कश्मीरमे कुछ व्यापारी लोग वाणिज्य-जगत्में परस्पर एक द्राविड बोली काममे लाते है। यह कुछ इसी प्रकार होगा जैसा कि पुणेके आस-पासके महाराष्ट्रके बच्चे गुल्ली-डण्डा, या गोली खेलते समय कन्नडके आँकडोका प्रयोग करते है। तात्पर्य यह है कि द्राविड भाषाएँ केवल दक्षिण भारत तक ही सीमित नही है। भारतमें—भारतके बाहर भी—अन्यत्र भी यत्र-तत्र प्रचलित हैं। देशके अन्य सब प्रदेशोमें आर्य भाषाएँ चलती है। केवल 'मुडा' के रूपमे आस्ट्रिक भाषाका चिह्न देशमे शेष रह गया है। असम एव बर्माकी सरहदपर तिब्बती बर्मी भाषाएँ बोली जाती है।

क्षेत्रफल और बोलनेवालोकी सख्याकी दृष्टिसे द्राविड भाषाओका काफी महत्व है। नीचे दी गई तालिकासे यह बात स्पष्ट लक्षित होती है —

राज्य	क्षेत्रफल (वर्गमील)	प्रचलित भाषाका नाम	जनसख्या *
आन्ध्र प्रदेश	१,०५,९६२	तेलुगु	३,५९,७७,९९९
मद्रास (तमिळनाड)	५०,११०	तमिळ	३,३६,५०,९१७
मैसूर (कर्नाटक)	७४,३४७	कन्नड	२,३५,४७,०८१
केरल	१५,०३५	मलयाळम्	१,६८,७५,१९९
			योग—११,००,५१,१९६

भारतकी आबादीकी करीब एक चतुर्थांश जनता द्राविड भाषा-भाषी है।

भारतीय आर्य भाषाएँ सदियोंसे द्राविड भाषाओंके द्वारा प्रभावित है। आज भी ईरानी भाषामें वर्त्स्य ध्वनियोका नितान्त अभाव है। किन्तु भारतीय आर्य भाषाओमे (जो इन्डो ईरानी कुलसे सम्बद्ध हैं) अत्यन्त प्राचीन कालसे ही—यहाँ तक कि ऋग्वेदकी भाषामें भी—वर्त्स्य ध्वनियोका प्रयोग मिलता है। सिन्धके आस पास ब्रहुई भाषा (द्राविडी) का बोला जाना इस बातकी तरफ सकेत करता है कि वह भाषा मोहनजोदडोके आस-पासकी किसी जमानेमें प्रचलित द्राविड भाषाओका अवशेष है। मोहनजोदडोकी सभ्यता आर्य सभ्यतासे कही प्राचीन है, यह बात निर्विवाद है। फलत निष्कर्ष यह निकलता है कि द्राविड लोग यहाँ आर्योके भारतमें बाहरसे आनेके पहले (यदि आर्य बाहरसे आए हो तो) या यहाँ व्यापक प्रदेशमें बस जानेके पहलेसे रहे और उनकी अपनी सभ्यता थी। तात्पर्य यह है कि एकदम प्रारम्भिक कालसे ही वर्त्स्य-ध्वनि-बहुला द्राविड भाषाओका आर्य भाषाओपर प्रभाव पडे बिना

* १९६१ की जनगणनाके आधारपर।

देशमें न रहा। केवल भाषाकी ही बात नहीं है। शिव पशुपति या शक्तिकी कल्पना भी द्राविडी मानी जाती है। यह सारा प्रभाव-ग्रहण सदियोंमें जाकर कुछ इस प्रकारसे हुआ कि जनताको पता ही न चला कि ये परिवर्तन हो रहे हैं।

केवल ध्वनियोंकी बात ही नहीं—उच्चारणकी प्रवृत्ति तकमें द्राविडी प्रभाव देखनेमें आता है। द्राविड भाषाओंमें संयुक्त-व्यञ्जनोंके उच्चारणकी अरुचि है। धर्म शब्द तमिळमें धरिरम् होगा। ऐसा ध्वनि-परिवर्तन आर्य भाषाओंमें भी पाया जाता है जैसे —

कर्म—करम धर्म—धरम।

तमिळ भाषाके शब्दगत स्पर्श अघोष ध्वनियोंका घोषवत् उच्चारण नियमतः चलता है। इसी तरह श्लोक का हिन्दीमें सोग भक्त>भकत>भगत चलते हैं।

द्राविड भाषाएँ आर्य भाषाओंके क्रिया रूपोंको शिथिल कर गईं। द्राविड भाषाओंमें प्रायः कृदन्त-घटित क्रियाएँ ही चलती हैं। तिङन्त क्रियाएँ बहुत कम हैं। संस्कृतके दस लकारोंमेंसे (क्रियाओंसे) प्राकृतपालि-स्तरके बाद अपभ्रंश-काल तक पहुँचते-पहुँचते चार ही लकार रह गए—वर्तमान भविष्यत् विधि और भूत। भूत एवं वर्तमान कालमें कृदन्तोंका भी प्रयोग होने लगा जैसे —कुर्वन् अस्मि पुनरायान् महाकपि। यही कारण है कि हिन्दीकी क्रियाओंमें लिंग भेद है जो संस्कृतमें नहीं है। जैसे —वह आता है वह आती है। पर संस्कृतमें 'स या सा आगच्छति। तात्पर्य यह है कि द्राविड भाषाएँ हमारे देशमें उतनी ही प्राचीन हैं जितनी आर्य भाषाएँ। यदि मोहनजोदड़ोकी सभ्यतासे द्राविडी सभ्यताका सम्बन्ध स्थापित हो जाय तो द्राविड भाषाओंका इतिहास काफी प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओंसे भी पुराना सिद्ध होकर रहेगा।

तमिळ भाषा द्राविड भाषाओंमेंसे सबसे प्राचीन है। द्राविड>द्रमिड—दरमिड—दमिळ—दम्मिळ—दमिळ—तमिळ—से पता चलता है कि तमिळ शब्द द्राविड शब्दसे उत्पन्न है। पर क्या द्राविड शब्द द्राविडी रहा होगा—इसमें सन्देह प्रगट किया जाता है क्योंकि द्राविड भाषामें किसी शब्दके आदिम संयुक्त व्यञ्जन (असम संयुक्त व्यञ्जन) का उच्चारण नहीं होता। फिर भला द्राविड शब्द कैसे उत्पन्न हुआ? क्या यह शब्द स्वयं आर्योंका नामकरण तो नहीं है? अपनी भाषाका नामकरण दूसरोंके द्वारा होनेमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। हमारी अपनी भाषा हमारे लिए 'भाषा' है जैसे—बच्चा (हमारा) घरमें बच्चा ही सम्बोधित होगा। पर नामकरण दूसरोंके लिए आवश्यक हो जाता है। अस्तु।

कहते हैं कि द्राविड लोग इन दिनों हिन्द महासागरमें लुप्त लेमूरिया भूखण्डके आदिम निवासी थे। कुछ लोग कहते हैं कि एशिया माइनरसे द्राविड लोग भारतमें सिन्धसे होकर आये। द्राविडी सभ्यता काफी प्राचीन है। डॉ. कामठकरके कथनानुसार द्राविड लोग भगवानको को कहकर पुकारते थे (को राजा) ['को—ईल' तमिळमें देवालय' को कहते हैं।] उनके यहाँ रीति-रिवाज अपने ढंगके थे।

---

* द्राविड (संस्कृत) दमिळ (पालि)

वे सामान्य धातुओका उपयोग जानते थे। वे ग्रहोंके चलन-क्रमसे परिचित थे। वे दवा करना, शहर (गांव) वसाना, नौका, वजरा, जहाज, वनाना जानते थे। प्राचीन द्राविड लोग कृषि करते थे, पशुपालन करते थे, शिकार खेलते थे और भालो और तलवारोका लडाईमें उपयोग करते थे। वे लोग कपडा वुनना और रगना भी जानते थे। द्राविड लोग मिट्टीके वरतन वनानेमे अपना सानी नही रखते थे।

ई सन् ५९७ व ६०८ के वीच वादामीके पास स्थित महाकूटके राजा मगलेशके शिला-स्तम्भमे 'द्रमिळ' शब्दका प्रयोग हुआ है।

द्राविड भाषाओकी अपनी कुछ विशेषताएँ है। तमिळ भाषासे कन्नड और तेलुगु कुछ कम पुरानी नही हैं। कुमारिल भट्टने तन्त्रवार्तिकमे 'आन्ध्र-द्राविड' भाषाओका उल्लेख किया है। आन्ध्र भाषाका उस समय (यानी ८ वी सदीमें) अस्तित्व था। इतना ही नही कुमारिल भट्टका द्राविडी उच्चारण का जिक्र करना इस वातका परिचायक है कि तमिळ या आन्ध्र भाषाएँ उन दिनो काफी समृद्ध भाषाएँ थी।

शब्दगत स्पर्श अघोष व्यञ्जनोका घोषवत् उच्चारण द्राविड भाषाओकी अपनी विशेषता है, जैसे —शोक>सोग, आकाश>आगस (कन्नड)

तमिळ सज्ञाएँ जहाँ 'ऐ' कारान्त है, कन्नड-सज्ञाएँ 'ए'कारान्त और तेलुगु-सज्ञाएँ 'अ' कारान्त होती है। मलयाळम्में भी अकारान्त सज्ञाएँ होती है—

शब्द	तमिळ	कन्नड	तेलुगु	मलयाळम्
सिर	तलै	तले	तल	तल

कन्नड भाषामे जहाँ कण्ठय उच्चारण होता है, वहाँ तमिळमें तालव्य सघर्षी 'श' का और तेलुगुमें तालव्य स्पर्श 'च' का उच्चारण होता है —

कन्नड	**तमिळ**	**तेलुगु**
किवि	शेवि	चेवि
कै	शै	चै

कन्नडमें जहाँ शब्दगत तालव्य सघर्षी 'श' कारका उच्चारण होता है वहाँ तमिळमें तालव्य-लुण्ठित[1] 'य' का उच्चारण होता है।

तमिळ	**कन्नड**
पेयर्	पेसर्
वयिर्	वसिर्

नोट —तमिळ और कन्नडकी सज्ञाएँ प्राय हलन्त[2] होती हैं। तेलुगुकी सज्ञाएँ अजन्त[3] होती हैं।

कन्नड, तमिळ, मलयाळम् और तेलुगुमेंसे तमिळ भाषा सबसे प्राचीन मानी जाती है। आजकलके विद्वान् (जैसे–डॉ कृष्णमूर्ति प्रोफेसर आफ तेलुगु श्री वेकटेश्वर वि वि) मूल आर्य भाषाके समान द्राविड भाषाकी खोजमें अर्थात् उसकी 'कल्पना' द्वारा रचना (reconstruction) मे लगे हुए हैं। मूल द्राविडसे १८-१९ या २० तक द्राविड भाषाओका धीरे-धीरे विकसित होना माना जाता है (एकसे अधिक

---

१ continuant, २ व्यञ्जनान्त, ३ स्वरान्त।

भाषागत लक्षणोकी अत्यन्त बारीक बातोपर ध्यान देना इस लेखकका उद्देश्य नही है। फिर भी यह बताना आवश्यक है कि प्राचीन कन्नडमे मिलती जुलती भाषा उत्तर कर्नाटकके हवीक (एक जाति) लोग आज भी बोलते है। इन दिनो भी पुरानी कन्नडमे प्रसिद्ध 'चम्पू', मध्यकालीन कन्नड-शैलीमें प्रसिद्ध षट्पदि-काव्य आधुनिक कन्नडकी भिन्न-भिन्न काव्य-शैलियोंके साथ-साथ प्रचलित है। श्री बी एम श्रीकण्ठय्याजी (जो आधुनिक कन्नड साहित्यके प्रवर्तक माने जाते है।) ने अपने 'अश्वत्थामन्' नाटकमे प्राचीन या पुरानी कन्नड भाषाका प्रयोग किया है।

न्नड और हिन्दीके कतिपय भाषागत समान तत्व--

कन्नडकी कुछ अपनी भाषागत विशेषताएँ है जो अन्य सब द्राविड भाषाओमे भी पायी जाती है। आर्य भाषाएँ इनमे सर्वथा भिन्न है —

द्राविड भाषाएँ	भारतीय आर्य भषाएँ
(१) ह्रस्व 'ए', 'ओ' का प्रयोगाधिक्य	ह्रस्व 'ए', 'ओ' का कम प्रयोग।
(२) महाप्राण ध्वनियोका अत्यन्त कम प्रयोग	महाप्राण ध्वनियोका प्रचुर प्रयोग।
(३) अल्प प्राणके स्थानपर महाप्राणका उच्चारण करनेसे ठेठ द्राविड भाषाओमे अर्थ-भेद नही होता, जैसे —कर्तॅ, कर्थॅ < कथा, बहळ (लिखित) भाळ (कथित), नात, नाथ ('व्')	दोना, धोना कल, खल जाग, झाग आदि हिन्दी शब्दोमे अल्पप्राणके स्थानपर महाप्राणका उच्चारण करनेसे अर्थ परिवर्तन हो जाता है।
(४) द्राविड भाषाओमे कर्मणि प्रयोग अत्यन्त अल्प है।	भारतीय आर्य भाषाओमे कर्मणि प्रयोग एकदम मुहावरेदार है।

इधर कन्नड और हिन्दीका वाक्य-विन्यास अर्थात्—कर्त्ता, कर्म, क्रियाका क्रम एक-सा हो गया है।

यद्यपि कन्नड और हिन्दी सर्वथा भिन्न भिन्न भाषाएँ है, फिर भी दोनो भाषाओमे कुछ अशोमे समानताएँ भी है —

(१) दोनो भाषाओकी क्रियाएँ प्राय वर्तमान या भूत कृदन्तकी सहायतासे बनी हुई हैं। द्राविड भाषाओंके बारेमें भी यही बात है, उदा —

तमिळ	कन्नड	हिन्दी
वन्द (आन्), वन्दान् आया [हुआ (वह) पुल्लिंग]	बन्दनु	आया < स आगत
वन्द (आळ्) वन्दाळ् आई [हुई (वह), स्त्रीलिंग]	बन्दळु	आई < स आगता
वर् (आन्) वरान् आता ((हुआ) (वह))	बरुत्ता (आनॅ) आता (हुआ (वह)	आता है
वर् (आळ्) आती [(हुई), वह]	बरुत्त (आळॆ) आती (हुई) (वह)	आती है

(२) दोनों भाषाओंके वाक्योंमें कर्म कारकके चिह्न प्राय लुप्त रहता है अर्थात् परसर्गके बिना भी कर्म का तात्पर्य घटित होता है।

(३) पक्षीवृन्द पाण्डवलोग जन-समूह जैसे प्रयोग भारतीय आर्य भाषानुगत प्रयोगोंसे भिन्न हैं। द्राविड़ भाषाओंमें ऐसे प्रयोग ही मुहावरेदार हैं उदा —

एकवचन	बहुवचन
बडव (गरीब कन्नड)—	बडवर, गरीब (कन्नड) बड हुडगर (गरीब लड़के)
हक्कि (पक्षी)	हक्कि गळु (पक्षी-गण)

(४) हिन्दी और कन्नड (कन्नड़ ही क्यों सभी द्रविड़ भाषाओं) की संयुक्त क्रियाओंमें काफी साम्य है। संस्कृतमें संयुक्त क्रियाऐं बहुत कम हैं।

कन्नड़	हिन्दी
माडि होगु	कर जाओ।
नोडिरु	देख रखो
कोदु बिट्ट	मार डाला
बिद्दु बिट्ट	गिर पड़ा
होरटु होद	चला गया

(५) कन्नड और हिन्दीकी शब्दावलीमें काफी साम्य है। कई तद्भव (संस्कृतोद्भव फारसी अरबी तुरकी अंग्रेजीके विकृत शब्द) शब्द भी दोनो भाषाओंमें समान हैं —

कन्नड	हिन्दी
सेवक	सेवक
चञ्चल	चञ्चल
अपार	अपार
कच्च (पका)	कच्च (कच्चा)
हक्कि	पक्षी
सूजि	सुई ∠सं—सूचिका
निद्दे निद्रे	नींद निद्रा
बीदि	बीथी
विश्वास (प्रीति)	विश्वास (प्रतीति)
विपरीत (बहुत)	विपरीत (एकदम उलटा)
शिक्षे (दंड)	शिक्षा (शिक्षा)
गुमास्ते	गुमास्ता
कचेरि	कचहरी
रैत	रईत
जवाम्	जवाब

कन्नड	हिन्दी
सवार	सवार
सरकार	सरकार
पोलीसु	पुलिस
टिकीट्ु	टिकट
कार्डु	कार्ड
लाटीनु	लालटेन

मध्यकालीन कन्नड भाषा तकके काव्योमे संस्कृत-प्राकृत शब्दोका बाहुल्य पाया जाता है। आजकलके प्रसिद्ध कवि कुवेम्पुकी गद्य एवं पद्यकी भाषामें पर्याप्त मात्रामे संस्कृत शब्दोका प्रयोग हुआ है। कुल कन्नड भाषामे करीब ३५ से ४० प्रतिशत तक ऐसी शब्दावली चलती है जो हिन्दीसे सर्वथा भिन्न नही है। इन भाषागत तत्वोकी पर्याप्त समानताके कारण कर्नाटकमे हिन्दी पढनेवालोकी संख्या दक्षिणके आन्ध्र, तमिळनाड और केरल प्रान्तोंसे अपेक्षाकृत अधिक है। सम्भव है कि मराठी, हिन्दुस्तानी भाषाओंके अधिक प्रचलनके कारण भी कर्नाटकके लोगोको हिन्दी उतनी अजनबी नही लगती जितनी अन्य द्राविड भाषा-भाषियोको।

कन्नड साहित्यका इतिहास

९ वी सदीके 'नृपतुंग' कन्नड भाषाके प्रथम कवि माने जाते है। उनका काव्य 'कविराजमार्ग' पुरानी कन्नडका एक लक्षण-ग्रन्थ है। उनके बाद कई जैन कवि हुए जिनमें पप, पोन्न, रन्न प्रसिद्ध हैं। यह कन्नड साहित्यके इतिहासका प्रथम चरण या जैन काल माना जाता है। प्रसिद्ध पोन्न कवि (९४५-९५०) राष्ट्रकूट-सम्राट् कृष्ण (९३९-९६८) का 'आस्थान कवि' था। उसका 'शान्ति पुराण' अत्यन्त प्रसिद्ध काव्य है। इसमें १२ आश्वास है। शान्तिनाथके बारहो जन्मोकी कथा इसमें वर्णित है।

तीसरा प्रसिद्ध कवि रन्न है। उनका 'गदायुद्ध-काव्य' प्रसिद्ध है।

कलचुरी और होयसळ राजाओने (११००-१३५०) कितने ही कवियोको आश्रय दिया था। पम्पा-सरोवरके किनारे 'हम्पे' नामक स्थानमें स्थित विजयनगरके भग्नावशेष पुकार-पुकारकर कहते हैं कि बहमनी राज्योंके सुलतानोंके विरुद्ध हक्क-बुक्क नामके दो वीरोकी सहायतासे किस तरह विद्यारण्य स्वामीने विजयनगर-साम्राज्य (हिन्दू राज्य) की स्थापना की थी। यह साम्राज्य राजा कृष्णदेवरायके जमानेमें अपनी कीर्तिकी चोटीको पहुँचा हुआ था। १५२६ के तळिकोटे युद्ध तक इस महान् साम्राज्यकी श्री-वृद्धि होती रही। आपसी फूट और पीछेके राजाओकी अदूरदर्शिताके कारण यह राज्य मुसलमानोंके द्वारा विजित हो गया, अन्यथा इस साम्राज्यके सामने सारे दक्षिण भारतमें उस समय खडा होनेवाला कोई सम्राट् या बादशाह न था।

विजयनगरके राजा कन्नड, आन्ध्र और संस्कृतके कवियोको बराबर आश्रय देते रहे। इनके जमानेमें राजा लोग कवियोका उत्सव कराते, उनका यश-गान कराते और खास विद्वत्सभा या

दरबारमें उनका सम्मान करते थे। सनत्कुमार चरित-लेखक बोम्मरस कवि (१४८५ ई.) षट्पदि-भारतके रचयिता साळ्व (१५५ ई) भरतेशवैभव के रत्नाकर (१५५७ ई) कवि विजयनगर-साम्राज्यमें पनपे थे।

मैसूरके यादव राजवंश (१३९५ १९४७ ई) ने जितना प्रजा-हितैषी कार्य किया उतना कर्नाटकमें किसी भी राजवंशने नहीं किया। मुसल्मानोंके समयमें बीचमें हैदरअली और टीपूके चंगुलमें फँसकर मुक्त होनेकी कोशिश करते हुए भी इन हिन्दू राजाओंने अपने आश्रित लोगोंके हितोंका बराबर ख्याल रखा। इनमेंसे कुछ राजा स्वयं प्रसिद्ध कवि हो गए हैं। चिक्कदेवराज ओडेयर कृष्ण काव्यके प्रसिद्ध लेखक हैं। पद्मरस कवि (१२९९ ई) भुजबलिचरितके रचयिता पंचबाण (१६१४ ई) विज्जळराय-चरितके कर्ता कवि धरणि पंडित (१६५ ई.) मैसूरके हिन्दू राजाओंके आश्रयमें पले थे।

भक्तिका प्रादुर्भाव और उसका साहित्यपर प्रभाव

बारहवीं सदीमें शैव भक्ति और वैष्णव भक्तिकी ऐसी धारा कर्नाटकमें बही कि जनता उससे अछूती न रही। इससे चार सौ वर्ष पहले ही आठवीं सदीमें श्री आदि शंकराचार्य (७८८ ई जन्मकाल) ने शिवमोग्गा जिलेमें तुंगा नदीके किनारे शृंगेरी नामक स्थानमें शंकर-मठकी स्थापना की थी। आप अद्वैतमत प्रतिष्ठापनाचार्य हुए। नागार्जुन इनके पहले हुए थे। वे शून्यवादी थे। इन्होंने माना था कि जगत सत्य नहीं है। वसुबन्धु (शंकराचार्यजीके गुरु) ने भी यही माना था। इसी तत्वको शंकरने पल्लवित किया और उपनिषदोंकी नई व्याख्या की। वास्तवमें शंकराचार्यजीके द्वारा (जिनका जन्म केरलमें हुआ था।) भारतमें ब्राह्मण-धर्मका पुनरुत्थान हुआ।

१२ वीं सदीमें शंकरके शुष्क ज्ञानवादक प्रत्यावर्तनके रूपमें रामानुजाचार्यजीका भक्ति-मार्ग निकला। आपने प्रपत्ति मार्ग चलाकर शूद्रोंको (यहाँ तक कि अस्पृश्य कहलानेवालोंको) भी प्रपत्ति मार्गमें दीक्षित कर दिया। इन्होंने अपने पूर्ववर्ती आळ्वार लोगोंके भक्ति-पथको आगे बढ़ाया और जनतामें चलाया। श्री रामानुजाचार्यजी मैसूर राज्यके मेलुकोटे नामक स्थानमें रहे और उपदेश दिये। प्रसिद्ध बेलूर-मन्दिरका निर्माता विष्णुवर्धन वैष्णव (रामानुजीय) था।

वीरशैव-साहित्य

शैवोंकी विचार-धारासे भी कर्नाटक अछूता न रहा। यों तो हरिहरका हरिहरेश्वर मन्दिर, हम्पा-क्षेत्रका पम्पापति मन्दिर और कदम्बोंका सोमेश्वर-मन्दिर, हळेबीडुका ईश्वरालय इस बातके प्रतीक हैं कि कर्नाटकमें शैव मत भी काफी लोकप्रिय थे। १२ वीं सदीमें श्री बसवेश्वर (कलचुरी-वंशके बिज्जळ राजाके मन्त्री) ने वीरशैव मतका प्रवर्तन किया। अल्लम प्रभु ईश्वर या पर-शिवका अवतार (अनुभावी) माना जाता है। यह भी बसवेश्वरका सम-सामयिक था। अल्लमप्रभुकी प्रमुखिम लीला म इस बातका उल्लेख है कि वह गोरक्षनाथसे मिला था। इसमें तथ्य कितना है वह अनुसन्धान-योग्य है। अल्लम प्रभुके अलावा सर्वज्ञ षडक्षरि जैसे कितने ही वीरशैव कवि हुए हैं। इनके वचन " कबीर जैसे निर्गुणी सन्तोंकी बानी जैसे ही हैं।

बसवेश्वर

कर्नाटकके वीरशैव सन्त या शरण और हिन्दीके निर्गुणी सन्त दोनो एक ईश्वरको माननेवाले है। वे रहस्यवादी, साधक और 'ज्ञान' पर जोर देनेवाले और परमात्माके प्रति माधुर्य्य-प्रेमको लेकर चलनेवाले सन्त कवि हुए है। दोनोमे 'शून्य' पर प्रतीति, वैदिक धर्मके प्रति अन्धे रूढिगत विश्वास की कमी, और आभ्यन्तर पवित्रता (वाह्याडम्बरके प्रति उपेक्षा) की वाते पायी जाती है। "वीरशैव लोग परात्पर शिवके साथ आनन्दमय मिलनके अभिलाषी होते है" (दे—सस्कृतिके चार अध्याय—दिनकर पृ २९०)। उनका अन्तिम लक्ष्य समरसैक्यकी प्राप्ति है। कूडल-सगमेश्वरका जप इनके यहाँ विधेय है। इनका मत शक्ति-विशिष्टाद्वैत कहलाता है। यह मत कन्नडके वचन-साहित्य द्वारा कर्नाटकमें अभिव्यक्त हुआ है।

ब्राह्मण-साहित्य

करीब-करीब इसी समय द्वैतमत-प्रतिष्ठापनाचार्य मध्वाचार्य (जन्म ११९७ ई)का उडुपिमें प्रादुर्भाव हुआ। आप वल्लभाचार्यजीके समान कृष्ण भक्त कवि थे। आप वेद, उपनिषद और गीताके माननेवाले थे। वेदोका अधिकार सवको—स्त्रियोको या शूद्रोको नही था। प्रस्थानत्रयीकी सारी बातें आळ्वार लोग तमिळनाडमें पदोंके द्वारा कह गए। नायन्मारोने (शैव कवि) शैव-प्रवन्धोंके द्वारा तमिळ-नाडको ये ही बातें पहुँचाईं। वैसे ही कृष्ण भक्तिकी धारा देशी भाषा (कन्नड) में गीत या भजन या पदोके द्वारा मध्वाचार्यजीके अनुयायी पुरन्दरदास, कनकदास, श्रीपादराय जैसे कवियोने वैष्णव भक्ति धाराको कर्नाटकमें बहाकर वीर शैव-भक्तिके समान सरसता और सहृदयतासे परिपूर्ण कृष्ण भक्तिका प्रसार कर दिया। इनमें भी दासकूट ('अष्ट छाप' जैसे) के कवि हुए है। इन कवियोने मधुर भक्ति भावमें अपनेको खोकर और पर-वश होकर श्री कृष्ण भगवानकी बाल-लीला और यौवन-लीलाका वर्णन किया है।

इस तरह जैनोके अतिरिक्त कर्नाटकमें श्री शकराचार्यजीका अद्वैतमूलक एकेश्वरवाद, श्री रामानुजीय विशिष्टाद्वैतमूलक प्रपत्तिवाद, श्री वसवेश्वरका शक्ति-विशिष्टाद्वैत-मूलक एकेश्वरवाद और श्री मध्वाचार्यजीके द्वारा प्रवर्तित और पुरन्दरदास जैसे कवियोके द्वारा प्रवर्द्धित द्वैतमूलक भक्तिवादकी धाराएँ वही, पनपी और समन्वित हुईं। इस समन्वयका जन-जीवनपर काफी असर पडा।

नव्य कन्नड़ साहित्य (आधुनिक काल) की शैली

कन्नड आधुनिक या नव्य कव बनी ? पम्पके जमानेमें तत्कालीन कन्नड आधुनिक ही तो थी। अब हमारी कन्नड भाषा आधुनिक है। धारवाडकी शैली अलग, दक्षिण कन्नडकी शैली अलग और मैसूर-कन्नडकी शैली अलग जरूर है। पर इधर कर्नाटक (१९५६ ई)की पुन स्थापनाके वाद इन शैलियोकी एकताका प्रयत्न हो रहा है। सारे कर्नाटकमे वृत्तपत्र, कहानी, कादम्बरी (उपन्यास), तथा अन्य प्रकारके गद्य-पद्योके द्वारा आधुनिक गद्य-पद्य-साहित्यकी एक भाषा, एक शैली, एक-सी शब्दावली और एक ही लिपिका प्रसार हो रहा है—और हमारी अपनी आंखोके सामने ही हो रहा है। आज कन्नडमें टाईप-राईटर-यन्त्र भी उपलब्ध है।

कर्नाटकमें हिन्दी प्रचार

कन्नड मे सबसे पहले वयस्क-शिक्षा प्राईमरी मिडिल और हाईस्कूल तककी शिक्षा दी जाने लगी। १९२४ ई से ही हमारे यहाँके स्कूलोंमे हिन्दीका प्रवेश हो गया था। हमारे राज्यमें आज एक हजार हाईस्कूल है। छठी कक्षामे हिन्दीका अध्ययन अनिवार्य कर दिया गया है। १ वीं कक्षामें १९६३ ई से हिन्दी सार्वजनिक परीक्षा (सरकारी परीक्षा) के लिए एक अनिवार्य विषय हो रही है। इसके बारेमे सरकारी आदेश भी निकल चुका है। यों तो १९४८ ई से ही हमारे सब हाईस्कूलोंमे हिन्दी भाषाका अध्ययन अनिवार्य (सार्वजनिक परीक्षा विषय नहीं) कर लिया गया था।

कर्नाटकमें प्रचलित भाषाएँ

कर्नाटक राज्यमे कई धर्म और संस्कृतियोंका संगम हुआ है।

राज्यमें ६२% कन्नड भाषा-भाषी
११% तेलुगु भाषा-भाषी
९% हिन्दी—हिन्दुस्तानी भाषा-भाषी
४% तमिळ भाषा भाषी
४% मराठी भाषा-भाषी
३% तुळु भाषा-भाषी
१% मलयाळम् भाषा-भाषी

और २% अन्य भाषा-भाषी लोग रहते है। कर्नाटकमें हिन्दी प्रसारके लिए काफी प्रोत्साहन प्राप्त हो रहा है।

हमारे स्कूलोंमे कन्नड तेलुगु, मराठी हिन्दी उर्दू तमिळ मलयाळम् अंग्रेजी और सिन्धी तथा तिब्बती भाषाओंमें प्राईमरी शिक्षा (प्राथमिक शिक्षा) दी जा रही है। मिडिलमे हिन्दी और अंग्रेजी अनिवार्य है। यूनिवर्सिटीमें कन्नड माध्यम प्रवेशका प्रयत्न हो रहा है। हाईस्कूल-स्तर तक १९६ से ही शिक्षाका माध्यम कन्नड है।

कोलार, बैंगलोर, धारवाड और बेलगाँव में चार-पाँच हिन्दी मीडियमके स्कूल चल रहे है। कालेजोंमे कन्नडके उच्चस्तरकी अनेक विषयोंपर लिखी हुई पुस्तकें मैसूर विश्वविद्यालयने प्रकाशित की है—कर्नाटक विश्वविद्यालयने भी यह कार्य अपने ऊपर लिया है।

(१९१५ के बाद) आधुनिक कन्नड-साहित्यकी निम्नलिखित विशेषताएँ है —

(१) भारतीय संस्कृतिसे भिन्न कर्नाटककी कोई अपनी संस्कृति नहीं है। कर्नाटककी संस्कृति ऐसी है कि उसका योग-दान भारतीय संस्कृतिको भी प्राप्त है। यह आधुनिक कन्नड साहित्यमें लक्षित है।
(२) अंग्रेजी (तथा पश्चिमी) साहित्यका कन्नड-साहित्यपर प्रभाव पड़ा है।
(३) अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओंकी तरह ही (हिन्दीके समान ही) कन्नड साहित्यमे भी गद्य साहित्यकी विपुलता और पद्य-साहित्यकी उत्तरोत्तर कमी हो गई है। (ई सन् १८२१ में ही कन्नड-कवि मुद्दणने रामाश्वमेध में कहा था— गद्य हृद्य पद्य वध्य।)

(४) साहित्यमे बौद्धिकता (चिन्तन, आलोचना .) का आधिक्य हो रहा है।
(५) कन्नड भाषामे साहित्येतर (वैज्ञानिक, टैक्निकल आदि) ग्रन्थोकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।
(६) अन्य भाषाओ (खासकर अँग्रेजी, बगला और हिन्दी) से कन्नडमें अनुवादकी वृद्धि हो रही है ।
(अँग्रेजीके कई नाटक, कहानी, उपन्यास, गीत व लेखोका अनुवाद बकिम व रवीन्द्र साहित्य, प्रेमचन्द-साहित्य, प्रसाद व मुन्शी-साहित्य, जैनेन्द्रकुमार, वृन्दावनलाल वर्मा, एवम् गाँधी-साहित्यका कन्नडमें अनुवाद उपलब्ध है।)
(७) पत्रकारितामें वृद्धि हो रही है।
(८) अनुसन्धान-स्तरके साहित्यकी वृद्धि (कन्नडमे मौलिक अनुसन्धान सम्बन्धी ग्रन्थोमे वृद्धि) हो रही है ।

नव-चैतन्यका कर्नाटकमे बीज वोनेवालोमेंसे 'विद्यारण्य-काव्य' के लेखक बाळाचार्य सक्करि (शान्त कवि) का नाम स्मरण करना आवश्यक है। वग-विभाजन (१९०६ ई) और बकिमके 'वन्दे-मातरम्' के बाद ही हमे इस नव-चैतन्यके चिह्न देशमे (और कर्नाटकमें भी) दिखाई पडने लगे।

करिबसप्पशास्त्री कृत शकुन्तला-नाटकका कन्नड अनुवाद, मुद्दण (१८२३ ई) के 'रामाश्वमेघ' और 'मुद्रामञ्जूषा' तथा आलूर वेकटरावके कर्नाटक-गतवैभव (१९१७ ई) ने अपने ढगसे कर्नाटकमें नव-चेतना जगायी।

पम्प, रन्न, पोन्न, हरिहर, राघवाक, रत्नाकरवर्णि, कुमारव्यास, बसव और पुरन्दरदास जैसे कवियोने जिस वाणीके द्वारा कर्नाटककी सस्कृति-ज्वालाको उज्ज्वल किया और भारतीय सस्कृतिकी ज्योतिको उद्दीप्त किया, उसी वाणीके बोलनेवाले अन्य भाषाओंके प्रेम या मोहमे फँसकर मानो कन्नडको भूल बैठे थे कि इस नई राष्ट्रीय चेतनाने भी जनताको जगाया—उसमें नवीन स्फूर्ति पैदा की।

श्री एम एस पुट्टण्णाका माडिद्दुण्णो महाराय (१९१५) (कन्नड-उपन्यास), श्री मास्ति वेकटेश अय्यगारकी 'कॅलवु सण्ण कथॅगळु' (कुछ छोटी कहानियाँ) और अन्य लेखकोकी कृतियोंसे कन्नडमें नई चेतनाको अमरता (साहित्याभिव्यक्ति द्वारा नित्यता) प्राप्त हुई।

जैसे हिन्दीमें भारतेन्दुने साहित्यकी नई दिशाओका प्रवर्तन किया था वैसे ही प्रोफेसर बी एम. श्रीकठय्याने कतिपय अँग्रेजी गीतोका कन्नड-काव्यमय अनुवाद 'इग्लिश गीतॅ' के नामसे प्रकाशमें लाकर इस नई चेतनाकी तरफ युवक लेखकोका ध्यान आकृष्ट किया। "कन्नड वालोको विश्वकी समस्त ग्रन्थो और निधियोंसे अपना साहित्य समृद्ध कर लेना चाहिए" यही "श्री" का सन्देश था।

फिर क्या था कन्नड साहित्यकी गुप्त गामिनी शक्ति अब जनताकी भिन्न-भिन्न कृतियोंके द्वारा कई दिशाओमें वह निकली।

विचार-प्लुत गद्यके लेखकोमेंसे सर्वप्रथम श्री डी वी गुंडप्पा (जीवन सौन्दर्य और साहित्य) है। मौलिक उपन्यासोमेंसे कारन्तका 'मरळि मण्णिगॅ' (फिर मिट्टीकी ओर—गाँवकी तरफ) और चोमन दुडि (चोमका वाद्य—दुडि एक वाद्य—विशेष) सर्वप्रथम है। कैलासम्के हास्य-

रस प्रधान नाटकोंने जनताको मोह लिया। बैंगलोरके सन्दूक कालेजसे प्रबुद्ध कर्नाटक निकला। पीछे चलकर वह महाराजा कालेज मैसूरसे और अब मैसूर विश्वविद्यालयकी तरफसे प्रकाशित हो रहा है। कन्नड़की यह त्रैमासिक पत्रिका अनुसन्धान तथा विचारपूर्ण साहित्यके अतिरिक्त नई कविता व नये साहित्यके नये-नये प्रकारोंको प्रकाशमें लानेकी साधक बनी है। जय कर्नाटक" (धारवाड़)—मासिक पत्रिकाने भी कर्नाटककी काफी सेवा की। इधर सम्पदभ्युदय" (मसूरके वृद्ध पितामह श्री एम वेंकटकृष्णय्याके सम्पादकत्वमें) विश्वकर्नाटक" (टी टी शर्मा के सम्पादकत्वमें) जैसे दैनिक और साप्ताहिक पत्रोंने कर्नाटक भाषाकी पत्रकारिताका स्तर एकदम ऊँचा कर दिया। कन्नड़ साहित्य परिषद (बैंगलोर) देश भक्त कर्नाटक संघ कर्नाटक विद्या वर्धक संघ" (धारवाड़) जैसी संस्थाओंने साहित्य सर्जनामें योग देकर साहित्यिकोंकी समय-समय गोष्ठियाँ (सम्मेलनमें) बुलाकर विचार विनिमयका अवसर दिया। मिश्चिन बल्लिक सीरीज् (धारवाड़) मैसूर विश्वविद्यालयकी कन्नड़ प्रकटन-माला-सीरीज् ओरिएन्टल लाइब्रेरी प्रकटन-सीरीज् और इधर संस्कृति-प्रसारकी सीरीज् में कई उपयोगी पुस्तक प्रकाशित हुईं। सत्यशोधन पुस्तक भाण्डागार, बैंगलोरने गाँधी साहित्य व अन्य राष्ट्रीय साहित्यके अलावा अनेक कन्नड़ साहित्य-ग्रन्थोंको प्रकाशित किया। विश्वविद्यालयकी ओरसे पुरानी कन्नड़ भाषाकी हस्तलिखित पुस्तकोंकी खोज की व्यवस्था हुई। कई नए ग्रन्थ प्रकाशमें आए। उनका सम्पादन करनेवाले विद्वानोंमेंसे प्रो बी एम श्रीकण्ठय्या प्रो टी एस वेंकण्णय्या प्रो ए आर. कृष्ण शास्त्री प्रो. टी एन श्रीकण्ठय्या प्रो डी एल नरसिंहाचार, श्री रा‍ई पाईस रेवरेण्ड किट्टेल (कन्नड़–अंग्रेजी कोश-निर्माण) हल्दट्टी श्री उत्त्यागि मद्रास यूनिवर्सिटीके श्री सेषय्यगार, श्री आर. नरसिंहाचार्य आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। यदि इनमेंसे जितने विद्वान् जीवित हैं वे सब अपने-अपने सम्पादनानुभव लिख दें तो ऐसे लेखोंका संग्रह Textual Criticism की एक खास उपयोगी पुस्तक होगी। इन महानुभावोंने प्राचीन कन्नड़-साहित्य रत्नोंका कन्नड़ जनताको सिर्फ परिचय ही न कराया अपितु कन्नड़-साहित्यके इतिहास लेखनके लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। कन्नड़के जानपद साहित्यकी खोज करके गीतोंका संग्रह करके प्रकाशित करने वालोंमेंसे मुख्य हैं —बेन्द्रे कृष्णमूर्ति "क र. ह । होस कन्नड़-व्याकरण लिखकर प्रो. टी एन श्रीकण्ठय्याने कर्नाटककी बड़ी सेवा की है। उनकी भारतीय काव्य मीमांसा (नामक काव्य-विमर्शात्मक ग्रन्थ १ ४२ में लिखित और १९५२ में प्रकाशित) भारतीय भाषाओंमें उपलब्ध अपने ढंगकी एक अनोखी कृति है। किसी भी भारतीय भाषामें लिखित आलोचनात्मक ग्रन्थकी दृष्टिसे इस ग्रन्थकी उपादेयता और उपयोगिता असंदिग्ध है। यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह पुस्तक कन्नड़-साहित्यमें आलोचना को बहुत आगे बढ़ा सकी है। श्री शिवराम कारन्तने अपनी मक्कळ पुस्तक (Children s Encyclopaedea) प्रकाशित करके आज सरकार द्वारा हाथमें लिए हुए कन्नड़ विश्व-कोशकी नींव २५ वर्ष पहले ही डाली थी। इतना ही नहीं कन्नड़में विज्ञान (भौतिक विज्ञान) पर लिखने वाले श्री एन नागेशराव (अंग्रेजी–प्रोफेसर) थे। श्री डी कृष्णय्याने कन्नड़में (Agricultural Economics) पर एक पुस्तक लिखी। वैसे ही अनेक ग्रन्थ यूनिवर्सिटीके विस्तार कार्यक्रम प्रकाशित हुए। इन पुस्तकोंमें सारी सामग्री अंग्रेजीसे लेनी पड़ती थी। अतः ऐसे लेखकोंकी सहायताके लिए मैसूर विश्वविद्यालयने १ ४३६ में अंग्रेजी-कन्नड़ कोश प्रकाशित किया।

ऐसा कोश अन्य किसी भारतीय भाषामें उपलब्ध नही है। यात्रा-ग्रन्थोमें श्री प्रो वी सीतारामय्या का (हपॅय यात्रे) अत्यन्त उत्तम ग्रन्थ है—यही इस ढगका सर्व प्रथम ग्रन्थ है।

आधुनिक कन्नडमें सबसे प्रथम "श्री" का नाम लेना चाहिए। उन्होने कन्नड-साहित्य-क्रान्तिका एक आन्दोलन ही खडा कर दिया। इस आन्दोलनने हमे कुवेम्पु जैसे युग-प्रवर्तक कवि, डी वी गुण्डप्पा जैसे विमर्शक, श्री टी एन श्रीकण्ठय्या जैसे आलोचक व विद्वान्, श्री डी एल नरसिंहाचार जैसे सम्पादक, 'प्राच्य शोधक' तथा विमर्शक और जी पी राजरत्नम जैसे विद्वान् व सर्वतोमुखी प्रतिभाशाली लेखक हमे दिये।

इस आन्दोलनने हमे ऐसा प्रोत्साहन दिया, हममें ऐसा उत्साह भरा और नई चेतनाका सञ्चार किया कि जब कभी हम लोग कोई नया काव्य या नाटक लेखकके मुंहसे सुनकर घर आते तो ताजगी, आनन्द, स्फूर्ति, उत्साह एव रसात्मकताका अनुभव करते थे। श्री ए एन मूर्तिरावने हमें 'भटकती आत्मा' (अलॅयुव मन—शुद्ध साहित्य मौलिक हास्य-व्यग्य-स्वरचित लेखोका सग्रह) दी। श्री मञ्जुनाथ (अँग्रेजी-प्रोफेसर) ने भी ऐसे अनेक लेख लिखे है। वास्तवमे हिन्दीमें ऐसे निबन्ध है ही नही। मेरी राय है कि कन्नडमें ऐसे कई मौलिक ग्रन्थ है जिनका हिन्दीमे अनुवाद करके सारे भारतके सामने लाना आवश्यक है—

(१) रामायण दर्शन—श्री कुवेम्पु
(२) भारतीय काव्य-मीमासा—प्रो टी एन श्रीकण्ठय्या।
(३) महाभारत—कुमार व्यास।
(४) भटकती आत्मा—प्रो ए एन मूर्तिराव।
(५) पुरन्दरदास तथा अन्य दासोंके चुने हुए गीत।
(६) वचनकारोंके चुने हुए वचन।
(७) हम्पॅय यात्रे (यात्रा-साहित्य)—श्री वी सीतारामय्या।
(८) कुवेम्पु, मास्ति, आनन्द तथा अन्य कतिपय कहानीकारोकी चुनी हुई कहानियाँ।
(९) टी पी कैलासम्के सभी नाटक और 'सस' के ऐतिहासिक नाटक।
(१०) बेन्द्रेके चुने हुए भाव-गीत।

आज कन्नड साहित्यके सभी अग काफी पुष्ट है। कई हिन्दी-ग्रन्थो, वग-ग्रन्थो एव अँग्रेजी तथा सस्कृत-ग्रन्थोंके कन्नडमे अनुवाद प्रकाशित हो रहे हैं। श्री जी पी राजरत्नमको बौद्ध साहित्य कन्नडमें लानेका श्रेय प्राप्त हुआ है। टा के कृष्णमूर्तिने कतिपय सस्कृतके लाक्षणिक ग्रन्थोका कन्नडमे अनुवाद किया है। उदा —दण्डीकृत 'काव्यालकार'। सुब्रण्णाने 'दशरूपक' का कन्नडमें अनुवाद किया है। 'मुद्रामञ्जूषा' का सफल निरूपण "राक्षसकी मुद्रिका" द्वारा किया है प्रो टी एन श्रीकठय्याने। इसमें सस्कृत तथा प्राकृतके पद्योका कन्नड-अनुवाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत मुद्रा राक्षसके अनुवादसे भी उत्तम बन पडा है। 'प्रसाद' जीके 'आँसू' का एक काव्यानुवाद छप गया है। और भी कई अनुवाद हो रहे हैं। प्रेमचन्द, जैनेन्द्र और प्रसादकी कई कहानियाँ हिन्दीसे कन्नडमें आई है। वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'मृगनयनी' का कन्नड अनुवाद प्रो एम एस कृष्णमूर्तिने किया है। उन्होने

हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत 'बाणभट्टकी आत्म-कथा' का भी कन्नडमें अनुवाद किया है। इस तरह कन्नड साहित्यकी सर्वतोमुखी उन्नति इस समय हो रही है।

सिरिभूवलय

सिरिभूवलय एक जैन श्रावक द्वारा कई सौ वर्ष पहलेका विरचित सन्दर्भ-ग्रन्थ है जिसमें संख्याओंके हिसाबसे अक्षर जोड़कर पढ़ना होता है। इसी तरीकेसे पढ़नेसे 'गीता' के श्लोक निकलेंगे और कहीं रामायणके श्लोक पढ़े जाएँगे। मेरा अनुमान है कि ऐसे ही कुछ अन्य ग्रन्थ कहीं मिलें तो इनमेंसे सम्भव है कि मूल पृथ्वीराज रासो और बड्डकहा (गुणाढ्य) निकल आए।

कर्नाटकमें हिन्दीकी स्थिति

वैसे तो हैदर और टीपूके जमानेसे या और भी पहलेसे मैसूरमें हिन्दी गद्य व पद्य उर्दू लिपिमें उपलब्ध होते आए हैं। सबरस (ब्रजभाषा-लक्षण-ग्रन्थ दक्खनी हिन्दी-शैलीमें) की एक हस्तलिखित प्रति मैसूरमें मिली है। बिहारीकी लालचन्दी टीका (?) की फटी पुरानी अधूरी हस्तलिखित प्रति मुझे मिली है। इससे पता चलता है कि खोज करनेसे हिन्दीका खजाना यहाँ भी कुछ हद तक प्राप्त हो सकता है।

१७वीं सदीके एक मुसलमान बादशाहको एक वीरशैव जंगम कविने ब्रजभाषाके दोहोंमें एकेश्वरवादका उपदेश दिया था। ये दोहे शिवानुभव नामक कन्नड पत्रिकामें छपे हैं। हमारे यहाँके भागवत (हरिकथाकार) तुलसी, कबीर, नानक और मीराँके गीत बराबर गाते रहे हैं। कनकको भक्ति-विजय में कबीरका भी नामोल्लेख हुआ है। कन्हुपा (कन्नाप्पा) का कर्नाटकी होना विचारणीय है। कन्नडके वचनकारोंके तत्त्व और दास कवियोंकी श्रीकृष्ण-लीला सम्बन्धी पद हिन्दीके निर्गुणी सन्तकी वाणी और कृष्ण भक्त कवियोंके पदोंसे वस्तु तथा भावमें मिलते-जुलते हैं। जैसे द्वैतमत-प्रतिष्ठापनाचार्य मध्वाचार्य कर्नाटक ही हैं जिनकी शिष्य परम्परासे वल्लभाचार्यजीका सम्बन्ध अवश्य रहा होगा।

भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे कई हिन्दी—हिन्दुस्तानी शब्द कन्नड भाषामें आज प्रचलित हैं।

इधर कुछ कन्नड-ग्रन्थोंका हिन्दीमें भी अनुवाद हुआ है। नागरिक (नाटक के. एम. आर. श्रीनिवासमूर्ति) का भी दिवाकरने हिन्दीमें अनुवाद किया है। भारतीय साहित्य अकादमीकी तरफसे डॉ. हिरण्मय्यने कृष्णमूर्तिकी शान्तला (उपन्यास) का हिन्दीमें अनुवाद किया है। आनन्द और कुवेम्पुकी कई कहानियाँ हिन्दीमें आई हैं। ईश्वर भी ऐसा होगा * (कुवेम्पु) को दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके द्वारा प्रकाशित कहानी-संग्रहमें स्थान प्राप्त है। आनन्दकी एक कहानी पत्नीका पत्र ‡ (हेंडतिय कागद) १९३६ के हंस में छपा था। पम्प-रामायणका हिन्दी अनुवाद दक्षिण भारत (मद्रास) द्वैमासिक पत्रिकामें छपा था।

---

* अनुवादक श्री कृष्णराव।

‡ अनुवादक श्री हिरण्मय।

आजकल नई कन्नड भाषा-भाषी हिन्दीमें भी मौलिक रूपसे लिखने लगे हैं। लिखनेवालोमेंसे श्री ?गनाथ दिवाकर, श्री गुरुनाथ जोशी, श्री सिद्धनाथ पन्त, प्रो एम एस कृष्णमूर्ति, डॉ हिरण्मय, श्री प वेंकटाचल शर्मा और श्री श्रीकण्ठमूर्तिके नाम उल्लेखनीय हैं।

कर्नाटकमें मौलिक हिन्दी साहित्यकी सर्जना अगले दशकमें होगी—ऐसी आशा है। तभी हिन्दी वास्तवमें सारे भारतकी राष्ट्र-वाणी बनेगी।

इस लेखके लिखनेमे निम्नलिखित पुस्तकोसे काफी सहायता प्राप्त हुई हैं —

(१) मैसूर राज्य—१, नवम्बर, १९५६ (मैसूर-राज्य–सरकार द्वारा प्रकाशित।)
(२) कन्नड कैपिडि—द्वितीय भाग (मैसूर विश्वविद्यानिलय द्वितीय सस्करण।)
(३) मैसूर विश्वविद्यानिलयकी प्रचारोपन्यास-माला प्रचार-भाषा-मालामे प्रकाशित।
(४) कन्नड साहित्य चरित्रॆ—श्री प्रो मुगळि (१९६० ई)
(५) Vijayanagar Sexcentenary Commomeration Volume (Dharwar, 1936)
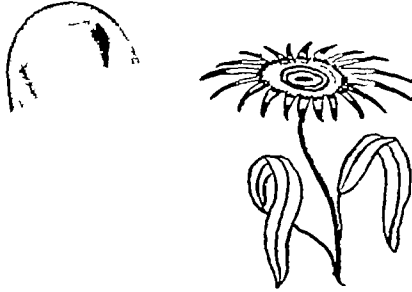
केरलकी हिन्दीको देन

श्री एन वेंकटेश्वरन

केरलका भौगोलिक परिचय

केरल राज्य भारतके पश्चिम दक्षिण कोनेका एक अत्यन्त उपजाऊ एवं रमणीय प्रदेश है। यह छोटा सा राज्य अपनी ऊँची-ऊँची पर्वत-श्रेणियाँ हरे-भरे जंगलों कल कल करती नदियों सस्य-श्यामल खेतों तथा सदाबहार नारियल सुपारी कटहल आम आदिके फलोंसे लदे हुए पेड़ोंको लिए प्राकृतिक सुषमाकी अद्भुत प्रदर्शिनीके रूपमें विराजमान है। इस अनुपम सुन्दर कोने-से इसकी पश्चिमी सीमामें गरजता हुआ अरब सागर सदा सर्वदा लहर मारता हुआ दिखाई देता है। पूरबकी ओर भारतके पश्चिमी घाटके पहाड़ोंकी निबिड़ पंक्तियाँ आकाशको चूमनेकी चेष्टा करती नजर आती हैं। इन्हीं पहाड़ोंको सह्य-पर्वत-माला कहते हैं जिसके विषयमें हमारे अत्यन्त प्राचीन पुराणों तथा सुविख्यात काव्य-ग्रन्थोंमें भी आकर्षक एवं मनोरञ्जक यथेष्ट वर्णन मिलते हैं।

केरल राज्यके उत्तरमें कन्नड प्रान्त अथवा मैसूर राज्य है। दक्षिणमें मद्रास राज्यका कन्या कुमारी जिला है। भारतके स्वतन्त्र होनेके पश्चात् जब तक भाषावार प्रान्तोंका नवीन संगठन नहीं हुआ था तब तक कन्याकुमारीको भी पूर्ववत् केरलके अन्तर्गत ही माना जाता था। लेकिन वर्तमान समयमें तमिल भाषा-भाषी लोगोंकी अधिकता के कारण कन्याकुमारी मद्रास राज्यके अन्तर्गत हो गई है। अतः आधुनिक केरल राज्य अरब समुद्र के किनारे-किनारे होकर उत्तरमें कासरकोट से लेकर दक्षिणमें पारश्शाला तक फैला हुआ प्रदेश है, जो अधिक चौड़ा न होनेपर भी काफी लम्बा अवश्य है।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि केरल राज्यकी पूर्व सीमामें सर्वत्र पहाड़ ही पहाड़ हैं। उन पर्वतोंकी श्रेणियाँ इस राज्यके अन्दर भी यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। उनके नीचेकी अगणित छोटी-बड़ी तराइयोंके रूपमें यह सारा देश निराले ढंगसे सुशोभित हो रहा है। इस राज्यके पूरबके उन गगनचुम्बी पहाड़ोंको पार करने पर उत्तरी कोनेमें हमको मैसूर राज्य मिलता है और शेष भागोंमें तमिलनाड अथवा मद्रास राज्यके कोयम्बतूर मदुरा रामनाड तिरुनेलवेली कन्याकुमारी आदि जिले हैं। वर्तमान केरल राज्यका क्षेत्रफल १५ २ वर्गमील है और जन-संख्या १ ६८ ७५,९९९ है।

जिस प्रकार केरल राज्य 'पहाडोका देश' कहा जा सकता है, उसी प्रकार इसको 'नदियो का देश' भी कह सकते है, क्योकि सैकडो छोटी परन्तु गहरी नदियाँ पूरवके सह्य पहाडसे निकल कर पश्चिमकी ओर निरन्तर बहती रहती है। केरलकी ये नदियाँ कभी जलके अभावमें सूखती नही नजर आती क्योकि यहाँ साल भरमें छह-सात महीनो तक बराबर वर्षा होती ही रहती है। पूरबसे निकलकर पश्चिमकी ओर प्रवाहित होनेवाली ये सलिल-भरी सुन्दर नदियाँ या तो सीधे अरब समुद्रकी गोदमें शरण लेती है या उसके किनारोकी छोटी-बडी खाडियो अथवा झीलोमे गिरकर आत्म-समर्पण कर डालती है। इन नदियोंके सगमोपर खाडियोकी विशेष स्थितिके कारण केरलकी पश्चिमी सीमामें समुद्रके किनारे कुछ नैसर्गिक एव उत्तम बन्दरगाह भी अवस्थित है। ऐसे बन्दरगाहोमे बेक्कल, कण्णनूर, तलश्शेरी, बडगरा, कोषिकोड, तिरूर, कोर्टुंगल्लूर, कोचिन, आलप्पी, कोल्लम, तिरुवनन्तपुरम, कोवलम आदिके नाम उल्लेखनीय है। इनमें कोचिनको ही सबसे श्रेष्ठ बन्दगाह मानते है। यह भारतके बडेसे बडे बन्दरगाहो मे एक बताया जाता है और इसको 'बन्दरगाहोकी रानी' की पदवी भी दी जाती है। कोचिनका महत्व अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिसे भी बहुत ही बडा माना जाता है। लोग कहते है कि बम्बईसे भी बढकर कोचिनमें एक उत्तम बन्दरगाहकी तमाम सुविधाएँ प्राप्त होती है, क्योकि यह एकदम प्राकृतिक बन्दरगाह है। नैसर्गिक होनेके अलावा मानवके प्रयत्नोने भी इधर कुछ सालोंसे 'कोचिन' को पूर्वाधिक सुधारा और बढाया अवश्य है। पहले कोचिनके पूरबकी तरफ जो झील थी, वह बहुत ही उथली थी। लेकिन कुछ वर्षों से मानवके प्रशसनीय प्रयत्नोंके कारण उस झीलको समुद्रकी-सी गहराई प्राप्त हुई है और उसके बीचमे मानव निर्मित एक छोटा, नया सुन्दर एव सुख-सुविधाओसे सम्पन्न द्वीप भी बसाया गया है। कोचिनके इसी अभिनव द्वीपको "विल्लिगटन द्वीप" (Wellington Island) कहते है। इसीमें वर्तमान बन्दरगाह व्यवस्था कार्यालय (Harbour Administration office), हवाई जहाजोका अड्डा, रेलवे स्टेशन, नाविक-केन्द्र, समुद्री-व्यापारियोंके बडे-बडे गोदाम आदि भी बने हुए है। यही नाविक शिक्षाका सर्वप्रथम कालेज भी खुला है। झीलके पूरबके किनारेपर बसे एरणाकुलम शहरसे विल्लिगटन द्वीप तथा पश्चिमी किनारेके प्राचीन शहर 'कोचिन' तक पहुँचनेके लिए दो बडे-बडे पुल भी झीलके ऊपर बने है। यह अभिनव द्वीप ऐसी जगह पर बना है कि समुद्रसे बडे-बडे जहाज भी इसके तीनो तरफ झीलमें विश्राम पा सकते हैं और द्वीपके ठीक किनारेपर लग सकते है। इसलिए कोचिनका बन्दरगाह प्रकृतिकी कृपा और मानवके प्रयत्नोके फलस्वरूप अत्यन्त सुन्दर उपयोगी एव सम्पन्न बना हुआ है। भारतमे इसकी बराबरी करने लायक कोई दूसरा बन्दरगाह शायद ही होगा। स्वतन्त्र भारतमे समुद्री व्यापार और जल सेनाकी दृष्टिसे भी कोचिनका बडा महत्व है। इसमें सन्देह नही कि भारतके व्यापारियोंके बीचमें इस बन्दरगाहका नाम केरलसे भी बढकर प्रसिद्ध बन गया है।

केरल राज्यकी भूमि बडी उपजाऊ है। यह नदियो, जगलो और खेतोंसे भरी हुई सम्पन्न वसुन्धरा है। यहांकी नदियाँ, पहाडोंसे सोना, अभ्रक, मोनोसइट आदि अनेक कीमती धातुएँ तथा खनिज पदार्थ सतत प्रवाहके साथ लाकर हमें प्रदान करती है। केरलके जगलोमें हाथी, चीते, बाघ, हिरण, खरगोश आदि जानवर तथा कई प्रकारके उपयोगी पेड-पौधे और औषधियाँ है। उन

पहाड़ी जानवरोंमें हाथी ही मुख्य है। हाथीको केरलकी वन भूमियोंकी अद्भुत एवं अनुपम विभूति मानते हैं। यहाँके जंगलोंमें तेक्कु (Teak) इरुमुल्लू तम्बकम अमनी वगैरह भवन-निर्माणके उपयोगी पेड़ तथा इलायची काली मिर्च मन्दक लवंग आदि बहुमूल्य सुगन्धित पदार्थ प्रचुर मात्रामें पाये जाते हैं। यहाँकी उपजाऊ भूमिमें मुख्यतः धानकी खेती ही की जाती है। परन्तु धानके अलावा ईख उड़द तिल टापियोक्का (एक प्रकारका मूलकन्द जो खाया जा सकता है।) वगैरह भी खूब पैदा होते हैं। केरलके फलदायक पेड़ोंमें नारियल ही सर्व प्रधान है। नारियलके पेड़को केरलके लोग कल्पतरु मानते हैं और अपने बाग-बगीचोंमें उसकी खेती भी खूब करते हैं। अतएव केरलमें सर्वत्र नारियलके पेड़ोंके जंगल ही जंगल दिखाई देते हैं और इसका कई लोग नारियलका राज्य भी कहा करते हैं। आम कटहल सुपारी आदिके पेड़ भी यहाँ बहुत मिलते हैं। कितने ही देशी तथा विदेशी यात्रियोंने इस सुन्दर देशकी प्राकृतिक सुषमा और वैभवसे मुग्ध होकर इसकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है।

केरलका ऐतिहासिक परिचय

पौराणिक दन्त-कथाओंके आधारपर यह माना जाता है कि केरलके आदि शासक महाबलि थे और उनकी राजधानी तृक्काक्करा थी जो कोचिनके पूरबकी तरफ स्थित प्रसिद्ध शहर एरणाकुलम के नजदीकका एक छोटा-सा गाँव है। तृक्काक्करा में इस समय भी भगवान "वामन" का एक मन्दिर है जिसको महाबलिके भूमि-दानका स्मृति-चिह्न मानते हैं। केरलके लोग आज भी महाबलिके शुभागमनकी यादमें प्रति वर्ष ओणम त्योहार मनाते हैं और उस अवसरपर इसी मन्दिरके देव तृक्काक्करप्पन (वामन) की पूजा भी करते हैं। यद्यपि इस प्रचलित कथा और प्रथाका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है तो भी केरलके लोग इन दोनोंको अब भी विशेष महत्व देते हैं। कहा जाता है कि महाबलिके जमानेमें शासनकी दृष्टिसे समूचा केरल एक अखण्ड राज्य माना जाता था और प्रजा सब प्रकारसे सुखी सम्पन्न एवं सुरक्षित थी।

जब हम पौराणिक कालके धुंधले वातावरणसे इतिहासके उजालेमें आते हैं तब हम यह पता लगता है कि यहाँ नम्बूतिरी ब्राह्मण लोग ही केरलमें शासन करते थे। वे ब्राह्मण राज-काज चलानेमें अत्यन्त निपुण थे। केरलमें उनके कुल चौंसठ गाँव थे जिनमेंसे एक सुयोग्य व्यक्ति शासकके रूपमें चुना जाता था। वह रक्षा पुरुष कहलाता था और बारह वर्ष तक राज चलाता था। उस रक्षा पुरुष की सहायता करनेके लिए तलियातिरि नामके चार प्रादेशिक अधिपति मनोनीत किये जाते थे। चौंसठ गाँवोंके चार विभाग थे और प्रत्येक विभाग तळि कहा जाता था। उन विभागोंके प्रतिनिधि ही तळि वालोंके कहलाते थे। नम्बूतिरियोंकी यह शासन प्रणाली बहुत दिनों तक सुचारु रूपसे चली। इतिहासके विद्वानोंका मत है कि आपसके झगड़ोंके कारण कुछ दिनों बाद रक्षा पुरुष के शासनका अन्त मिलता है। जब आपसके झगड़ोंके कारण नम्बूतिरियोंका यह शासन-तन्त्र कमजोर पड़ गया तो उन्होंने निश्चय किया कि बाहरसे किसी सुयोग्य क्षत्रियको बुलाकर बारह साल तक उसको शासनका भार सौंप दिया जाए और उसके बाद दूसरे किसी राजाको चुना लिया जाए। इस निर्णयके अनुसार नम्बूतिरियोंने चेर चोल पाण्ड्य आदि पड़ोसी राज्योंसे राजाओंको बारी

बारीसे आमन्त्रित कर 'पेरुमाळ' के नामसे उन्हे केरलकी राजगद्दी अथवा 'रक्षा पुरुष के सिंहासन' पर बैठानेका क्रम बनाया। अत 'रक्षा पुरुषोके शासन-काल' के बाद पेरुमाळोका शासन यहाँ कई सालो तक चलता रहा।

इस प्रकारका 'पेरुमाळ शासन-काल' केरलमें ११३ ई पू आरम्भ हुआ और ४२७ ईस्वी तक जारी रहा। पेरुमाळोकी राजधानी पुराने बन्दरगाह और व्यापार-केन्द्र 'कोट्टुगल्लूर' नगरमे थी। तमिल साहित्यमें इस नगर का "वञ्चि" नामसे उल्लेख मिलता है। इस राजधानी का असली नाम 'तिरुवचिक्कुलम्' है। उनके जमानेमें बनाया गया एक शैव मन्दिर अब भी वहाँ मौजूद है। कहा जाता है कि केरलमें जब बुद्ध-मतका प्रचार हुआ, तब हिन्दू-धर्म की रक्षा करनेके लिए "कुशलशेखर" नामक एक पेरुमाळ राजाने इस मन्दिरका निर्माण करवाया। इस मन्दिरके आराध्य देव शिव है, जो पेरुमाळ राजाओंके कुलदेव माने जाते थे। आजकलके कोचिन राजवशके लोग, जो पेरुमाळके उत्तराधिकारी माने जाते है, इस मन्दिरके भगवानको अपने कुलके परम आराध्य देव मानते है और उनकी विशेष पूजा भी करते है। इस मन्दिरमें अन्तिम चेरमान पेरुमाळ भास्कर रविवर्मा और उनके गुरु सुन्दरेश्वरकी मूर्तियाँ आज भी मौजूद है।

प्राय सभी पेरुमाळ राजा बडे सुयोग्य शासक रहे थे। उनका शासन-काल केरलका 'स्वर्ण-युग' माना जाता था। वे कला और साहित्य के पक्के प्रेमी और पोषक थे। उनके शासन-कालमें केरलमे खेती और उद्योग-धन्धोकी बडी उन्नति हुई। समुद्री व्यापार को खूब प्रोत्साहन मिला। केरलके व्यापारी जावा, मलाया, चीन, जापान आदि सुदूरके पूर्वी प्रदेशोमें भी अपनी नावो द्वारा माल-असबाब पहुँचाते थे। व्यापारकी वृद्धि और प्रचारके कारण देशकी धन-दौलत खूब बढी और प्रजा सुखी व सम्पन्न हुई। पश्चिमी देशोंसे यहूदी और ईसाई लोग भी 'पेरुमाळ-काल' में केरल पहुँचे और उन विदेशी लोगोंने यहाँ काफी अच्छा स्वागत-सत्कार भी अवश्य प्राप्त कर लिया। पेरुमाल शासकोने ईसाई, मुसलिम, यहूदी आदि अन्य धर्मावलम्बियोके साथ हमेशा उदारता और मैत्रीका व्यवहार किया था।

पेरुमाळोमे अन्तिम शासकका नाम भास्कर रविवर्मा था। वे 'चेर' देश से बुलाया बुलाये गए थे जिससे उनको "चेरमान पेरुमाळ" भी कहा करते थे। वे इतने नीतिज्ञ और जनप्रिय शासक थे कि बारह सालकी पूर्व निश्चित साधारण अवधिकी पूरी समाप्तिपर भी उन दिनोंके केरलवासी लोगोने उनको वापस नही जाने दिया, बल्कि उनसे प्रार्थना की, कि वे अपने अन्तिम दिनो तक केरलमे ही रहे और यहाँ का शासन-कार्य खूब सम्भालते रहे। अपनी प्रिय प्रजाके अनुरोध और प्रार्थनाको मानकर भास्कर रविवर्माने छत्तीस साल तक यहाँका राज-काज सम्भाला। उस समयके प्रमुख नम्पूतिरी नेताओने उनको केरलका स्थायी राजा बनाकर अभिषिक्त भी किया था। अपनी मृत्युके पहले ही भास्कर रविवर्माने केरलके प्रादेशिक सामन्तो और शासकोको उन-उन विभागोका शासन-एकबार स्वतन्त्र रूपसे स्वय सम्भालनेकी स्वय शिक्षा भी दी, जहाँके वे अधिकारी माने जाते थे। अत 'पेरुमाळ—काल' के बाद 'सामन्त-काल' लानेका उत्तरदायित्व भी अन्तिम पेरुमाळका माना जा सकता है।

भास्कर रविवर्माकी बहनका विवाह 'पेरुम्पटम्प्पु' नामक एक बहुत बडे प्रतिष्ठित और सम्पन्न ब्राह्मण-परिवारके नम्पूतिरी युवकसे हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि भास्कर रविवर्माने अन्तिम दिनो

में अपनी उसी बहनके पुत्र अथवा अपने प्रिय भानजेको ही अपने राज्यके मध्य-भागका उत्तराधिकारी और शासक बनाया। उसी भानजेके कुलका नाम आगे चलकर पेरुम्पटप्पु स्वरूपम् पड़ा और उसी वंशकी परम्पराके राजा लोग बहुत सालों तक मध्य केरल अथवा कोचिन राज्य के शासक रह सके। यहाँ तक कि अंग्रेजोंके बाद भारतके स्वतन्त्र होने तक उनका राज्य किसी न किसी प्रकारका कायम रहा और उनकी प्रतिष्ठा और प्रभुता बनी रही।

अन्तिम पेरुमाळ भास्कर रविवर्माके बाद केरलमें सामन्त राजाओंकी प्रधानता रही। यद्यपि पहले ऐसे सामन्तोंकी संख्या पचास तक रही थी तो भी उनमें सोलह-सत्रह ही प्रमुख माने जाते थे जिनमें एरनाट वल्लुवनाट कोलनाट, परप्पनाड सामोतिरी पेरुम्पटप्पु, कटत्तनाड् वेनाड् चम्पकस्सेरी तेक्कुंकूर, वटक्कुंकूर, पन्तळम आदिके नाम विशेष उल्लेखनीय रहे थे। इन सामन्तोंके शासन-कालका इतिहास इतना बड़ा और विस्तृत हुआ है कि यहाँ पर उसका अत्यन्त संक्षिप्त परिचय देना भी कठिन प्रतीत होता है। ये सामन्त राजा अपने-अपने प्रदेशके सफल शासक और वीर पुरुष माने जाते थे। उनकी वीरता शासन-पटुता और कुलीनताके विषयमें कई प्रकारकी मनोरञ्जक बातें प्रचलित हैं। सामन्त राजाओंके शासन-कालको सामन्त-काल कह सकते हैं। उस जमानेमें प्रबल सामन्तोंके बीच पारस्परिक युद्ध और पारिवारिक संघर्ष बहुत ज्यादा होते थे। प्रत्येक सामन्त राजा अपनेको दूसरोंसे श्रेष्ठ मानते थे और अपने पड़ोसी राजासे लड़कर अपने प्रदेशकी सीमा बढ़ाने अपने बल और कुलकी श्रेष्ठता और उच्चता साबित करने तथा प्रभुता और प्रतिष्ठा पानेका प्रयत्न करते थे। अतः उनके आश्रयमें रहनेवाली प्रजा भी "यथा राजा तथा प्रजा" की उक्तिको सत्य साबित करनेमें तन-मनसे तत्पर रहती थी। उन दिनों देशमें प्रत्येक स्थानपर वीरोंका सम्मान किया जाता था। वीर रस-पूर्ण काव्योंका निर्माण और प्रचार सामन्त-कालकी विशेषता थी। उस युगमें केरलकी स्त्रियाँ भी लड़ाईके क्षेत्रोंमें पुरुषोंके बराबर बहादुरी और साहसके साथ युद्ध-कला प्रकट करती थी और वीर-स्वर्ग पाना अपने गौरवकी बात मानती थी। सामन्त राजाओंकी तरह रानियाँ भी सेना-सञ्चालन और शत्रुसे डटकर युद्ध करना अपना कर्तव्य समझती थी। सामन्त कालमें आपसकी लड़ाइयोंकी तरह समय-समयपर पाश्चात्य देशोंसे आए पुर्तगीज डच फ्रांसीसी अंग्रेज आदि विदेशी आक्रमणकारियों तथा अधिकार-लोलुप व्यापारियोंसे भी युद्ध हुआ करते थे जिनमें कभी किसी सामन्त राजा की जीत होती तो कभी उन आगन्तुक व्यापारियों तथा आक्रमणकारियोंकी। एक प्रकारसे यह युग केरलके इतिहासमें संघर्षोंका ही युग माना जा सकता है। उस युगमें केरलमें जितना सैनिक शिक्षा और शस्त्रों-अस्त्रोंके अभ्यासका प्रचार हुआ उतना और किसी युगमें नहीं हुआ था। वह वास्तवमें युद्ध-कला और वीर-पूजा का ही युग था।

केरलके सामन्त राजाओंके बीचमें कोषिक्कोडके सामोतिरी कोचिनके राजा तथा वेनाट अथवा तिरुविताङ्कूरके राजा—ये तीनों सबसे प्रबल और प्रतापी माने जाते थे क्योंकि इन तीनोंकी राजसत्ता बहुत दिनों तक कायम रहती थी। इन तीनों राजाओंके प्रताप और शासनके विषयमें इतिहासमें बहुत सी बातें मिलती हैं। वेनाट वंशके राजाओंमें वीरवर मार्तण्ड वर्माका नाम सबसे ज्यादा प्रसिद्ध माना जाता है, क्योंकि उन्हींकी युद्ध-कुशलता और बहादुरीके कारण विशाल 'तिरुविताङ्कूर' राज्यकी स्थापना हुई थी जो स्वतन्त्र भारतमें भाषाधार प्रान्तोंके बनने तक कायम रही थी। उसके बाद 'कोच्चिन' (कोचिन) राज्यका

नाम लिया जा सकता है। जिसकी स्थापना करनेमे 'शक्तन् तम्पुरान' का विशेष हाथ रहा था। 'तिरुविताकूर' और 'कोचिन' इन दोनो राज्योंके राजाओकी शासन-पटुता और प्रजा-प्रेमके विषयमें बहुत सी बातें प्रसिद्ध है। ये दोनो राजवश अब भी विद्यमान है और इनको वर्तमान भारत सरकार भी पेन्शन आदि देकर खूब सम्मानित करती है। 'सामोतिरी' और 'पषश्शी' राजाओकी प्रभुता अँग्रेज-राजके होने तक ही रही थी। अँग्रेज सरकारने उन राजवशके लोगोको, अन्य कई सामन्त राजाओ को जिस प्रकार पेन्शन देकर सन्तुष्ट कर रखा था, उसी प्रकार बडी रकम प्रतिवर्ष पेन्शनके रूपमें देनेकी व्यवस्था की थी। इस प्रकार पेन्शन पानेवाले कई सामन्त राजाओंके वशके लोग इस वक्त भी केरलमें मिलते हैं। ऐसे राजवशोंके लोग काफी सम्पन्न और सुखी रहते है और उनके कुटुम्बोको अब भी लोग आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। वे अपने-अपने देशके जमीनदार या जागीरदारके रूपमें सुखसे जीवन बिताते हैं।

सामन्त-कालके समाप्त होते-होते केरलमे अँग्रेजोकी सरकार कायम होने लगी। उत्तर केरल अथवा मलबारमें उनका पूरा आधिपत्य हो गया, क्योकि वहाँके सामन्त 'सामोतिरी', 'पषश्शी' आदि राजाओको उन्होने बुरी तरहसे परास्त कर उनका राज्य अपने अधीन कर लिया। लेकिन मलबारके दक्षिण भागमें जो 'कोचिन' और 'तिरुविताकूर' नामक प्रबल राज्य थे, उनके राजाओको अँग्रेजोने युद्धमें हरानेके बदले कूटनीतिके बलपर अपने काबूमें कर लिया और उनसे सन्धि कर ली। सन्धिकी शर्तोंके अनुसार उन दोनो राजाओको अपने राज्यपर शासन करनेका अधिकार प्राप्त हुआ और वे भारतसे अँग्रेजोंके चले जाने तक अपने-अपने राज्यके राजा माने गए। लेकिन भारतके स्वतन्त्र होनेके बाद देशकी परिस्थिति बदल गई और भाषावार प्रान्तोका नवीनतम सगठन भी हो गया, तो इन राजाओंके हाथसे शासनका अधिकार चला गया और राजतन्त्रके स्थानपर प्रजातन्त्रका आगमन भी हो गया। अत इन दोनो राजाओको अपना अधिकार छोडना पडा। इतिहास बताता है कि इन दोनो राज्योमें जो राजतन्त्र-शासन कालो तक चल रहा था, वह काफी अच्छा और प्रशसनीय रहा था और यहाँके राजाओंके अधीन भी लोग बहुत सुखी और सन्तुष्ट रहते थे।

भाषावार प्रान्तोंके सगठनके कारण जबसे मलयालम भाषा-भाषी जनताके लिए नया केरल राज्य स्थापित हुआ, तबसे उपर्युक्त दोनो रियासतोको उसी नवीन विशाल केरलमें विलीन होना अनिवार्य हो गया। इसलिए 'कोचिन' और 'तिरुविताकूर' का स्वतन्त्र अस्तित्व इस वक्त नही है। ये दोनो राज्य, और मलबार वर्तमान राज्यके अभिन्न अग बन गए हैं। लेकिन पुराने तिरुविताकूर राज्यके 'कन्याकुमारी' और इर्द-गिर्दके प्रदेश इस वक्त तमिलनाडु अथवा मद्रास राज्यके अन्तर्गत माने जाते है, क्योकि वहाँके अधिकाश लोग तमिल बोलते हैं। इस प्रकार वर्तमान 'केरल राज्य' मलयालम भाषा-भाषी लोगोका राज्य माना जाता है, यद्यपि इसमें काफी तादादमें अन्य भाषा-भाषी भी रहते हैं।

केरल राज्यका सदर मुकाम तिरुवनन्तपुरम शहर है जो पुराने तिरुविताकूर राज्यका राजनगर था। इस वक्त केरलका हाईकोर्ट एरणाकुलममें है, जो पुराने कोचिन राज्यका सदर मुकाम रहा था और जिसके पश्चिम भागमें 'कोचिन' नामक प्रसिद्ध बन्दरगाह और प्राचीन शहर भी बसे हुए है।

मलबारका कोयिकोड नगर जो सामोतिरी राजाओंके ज़मानेमें व्यापार और शासनका केन्द्र रहा था इस वक्त भी काफी महत्त्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि उसको केरलका प्राचीनतम शहर कहते हैं।

स्वतन्त्र भारतके अन्य राज्योंकी तरह केरलका वर्तमान शासन भी जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियोंके एक मन्त्री-मण्डलके ज़रिये चल रहा है। श्री पट्टमताणु पिल्लै इस वक्त केरल राज्यके मुख्य मन्त्री और श्री वी वी गिरि यहाँके राज्यपाल हैं। पुराने कोचिन और तिरुविताकूर के राजाओंका इस समय शासनके कार्यमें विशेष कोई अधिकार नहीं है यद्यपि वे दोनों अभी भी 'राजा' ही कहलाते हैं। हाँ वे भारत सरकारसे प्राप्त होनेवाली पेन्शनकी बड़ी रकमके अलावा अपनी निजी जायदाद और महलोंके मालिक अवश्य माने जाते हैं।

केरलके लोग

केरलके सबसे आदिम निवासियोंकी परम्परामें वेल्लर पुलयर आदि पुरानी द्राविड़ जातिके लोग इस समय भी मिलते हैं, जो अपनी आजीविकाके लिए प्रायः खेती-बारीके काम करते हैं। उसी परम्पराके मलयर नायाडी काटर आदि कुछ असभ्य लोग हैं, जो ज़्यादातर जंगलोंमें रहते हैं और शिकार द्वारा अपनी उपजीविका चलाते हैं। ये दोनों प्रकारके आदिम निवासी ज़्यादा अशिक्षित और गरीब हैं। अपनी परम्परागत रूढ़ियों और रीति-रिवाजोंके कारण ये लोग सभ्य समाजसे सदा दूर रहते हैं। लेकिन आजकल विशेष प्रकारसे परिगणित और पतित जातियोंके उद्धारके देश-व्यापी प्रयत्नोंके फलस्वरूप इन लोगोंकी दशा भी धीरे-धीरे सुधरती जा रही है। इन आदिम निवासियोंकी संख्या भी काफी बड़ी है।

प्राचीन कालमें भारतके अन्य प्रान्तों तथा यूरोप अरब आदि विदेशोंसे जो लोग विभिन्न समयपर केरलमें आकर आबाद हुए थे उनको इतिहासके विद्वान अभ्यागत लोग के नामसे पुकारते हैं। ऐसे अभ्यागत लोगोंमें नम्बूतिरी और नायर जातिके लोग सबसे प्राचीन और प्रमुख माने जाते हैं। नम्बूतिरि शुद्ध आर्य रक्तके ब्राह्मण समझे जाते हैं, तो नायर आर्य और द्राविड़के मिश्रित रक्तके शूद्र। केरलके प्राचीन इतिहाससे पता लगता है कि यहाँ पहले कई शताब्दियों तक नम्बूतिरी और नायर लोगोंकी विशेष प्रधानता और प्रतिष्ठा रही थी और उनके अधीन पुलयर वेल्लर आदि आदिम निवासी लोग किसान और मज़दूर बनकर गुलामोंकी तरह दिन काटते थे।

केरलके नम्बूतिरियों के विषयमें कहा जाता है कि पौराणिक कालमें भगवान परशुरामने क्षत्रिय-संहारके पापोंसे स्वयं मुक्ति पानेके इरादेसे समुद्रके भीतरसे अपने परशुको फेंककर केरल प्रदेशको बाहर निकाल लिया और ब्राह्मणोंको उसे दानमें दे दिया। जिन ब्राह्मणोंको केरलकी भूमि प्राप्त हुई, उनको नम्बूतिरी ब्राह्मण का नाम भी दिया था। परशुरामने केरल-भूमिपर शासन करनेका सम्पूर्ण अधिकार भी उन्हीं नम्बूतिरी-ब्राह्मणों का दिया था। केरलमें उनको स्थायीरूपसे अधिवसित करनेके उद्देश्यसे भगवान परशुरामने नम्बूतिरी ब्राह्मणों की चोटी बाँधनेकी और कपड़ा पहननेकी एक नई रीति भी प्रचलित कर डाली थी जिससे यदि वे कभी केरल छोड़कर अपने पुराने देश या अन्यत्र कहीं चले जाते तो वहाँके एकदम जाति भ्रष्ट लोगोंकी तरह लाचार होकर उनको केरलकी ही तरफ लौट आना पड़ता था।

वशज बताया करते है। वे अपने घरोंके नाम तथा कई विशेष रस्म-रिवाजोका प्रमाण देकर इसका समर्थन भी करते है। 'कुन्नम्कुलम', 'मलयाट्टूर', 'कोट्टुगल्लूर', 'कोट्टयम', 'तिरुवल्ला' आदि स्थानोमे ईसाई गिरजे सर्व प्रथम स्थापित हुए और वहाँ ईसाई धर्मावलम्बी लोगोकी सख्या बहुत बढ गई। केरलके पुराने राजा लोग भी ईसाइयोंसे बडी मित्रता और उदारताका सलूक किया करते थे। इसलिए उनकी प्रभुता और प्रतिष्ठा यहाँ बडी आसानीसे बढ गई और आज केरलमें ईसाई लोग इतने अधिक प्रबल और प्रतिष्ठित माने जाते है कि यहाँके प्रत्येक शासन-कार्यमे उनका हाथ विशेष रूपसे अवश्य रहता है। ईसाईयोंके कई सगठन (रोमन काथलिक, सिरियन, प्राटस्टन्ट आदि) भी केरलमें बहुत मजबूत बन गए है।

मलबार में मुसलमान लोग भी बहुत रहते है। कहा जाता है कि ये पहले अरब देशसे यहाँ आए और यहाँके लोगोंके साथ हिलमिलकर रहने लगे। इतना ही नही, बहुतसे हिन्दुओको अपने धर्ममें मिलानेका कार्य भी बडी सफलतासे किया। इस तरह अपने दलकी सख्या बढाने तथा इस देशमें अपनेको प्रबल बनानेमे वे पूरी तरहसे कामयाब हुए। वे मलयालममें अरबी शब्दोको मिलाकर बोलते है और उनकी भाषाको 'माप्पिला-मलयालम' का विशेष नाम भी प्राप्त हुआ है, क्योकि इन मुसलमानोको अन्य लोग "माप्पिला" या "जोनक" (यवनक) कहते है। आजकल गुजराती तथा मारवाडी व्यापारी लोग भी केरलमें काफी सख्यामे पाये जाते है, फिर भी बौद्धो और जैनियोकी सख्या कम है।

केरल राज्यके निवासियोके इस सक्षिप्त परिचयसे हम एक विशेष बात जान सकते है कि यहाँ नम्पूतिरी, नायर, तीय्यर जैसे हिन्दुओंके साथ ईसाई और मुसलमान लोग भी मिल-जुलकर रहते है, फिर भी यहाँ बहुत कम साम्प्रदायिक झगडे हुए है। जाति-भेद, भाषा-भेद या धर्म-भेदके कारण आपसकी घनिष्ठता कभी कम नही होती। यहाँ अन्यान्य धर्मावलम्बियोके सुन्दर सम्मिश्रणसे केरलमें एक नया सास्कृतिका विकास हुआ है, जिसे हम एकदम केरलकी अपनी विशेषता कह सकते है।

केरलकी भाषा और साहित्य

केरलके अधिकाश लोगोकी मातृभाषा मलयालम है। मलयालमको अपनी जन्म-भूमिके नामके आधारपर कई लोग 'कैरली' भी कहते है। यद्यपि 'कैरली' अपनी बडी बहन 'तमिल' भाषाके बराबर अत्यधिक पुरानी अथवा प्राचीनतम भाषा नही मानी जाती है और उसका स्वतन्त्र अस्तित्व केवल ९०० ईस्वीके करीब ही साबित किया जा सकता है, तो भी उसका व्याकरण और शब्द-समूह तमिलकी अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक एव सर्वाग पूर्ण है। दक्षिण भारतकी प्राचीन द्राविड-भाषाके कुलमें जन्म लेनेपर भी मलयालमपर अपनी जननीकी अपेक्षा धात्री सस्कृत-भाषा का बहुत अधिक प्रभाव दीख पडता है। प्राचीन मलयालममें भी उत्तर भारतकी कई प्रमुख भाषाओकी तरह सस्कृतके सैकडो शब्द अपने तत्सम और तद्भव रूपोमें पाये जाते है।

मलयालमकी वर्णमाला सस्कृतके समान ही है। दो-चार वर्ण अधिक भी मिलते है। मलयालमकी अपनी अलग लिपि भी है, जो अत्यन्त सुन्दर और सम्पूर्ण है। यद्यपि नागरी लिपिमें मलयालमकी सम्पूर्ण ध्वनियाँ नही हैं, तो भी उसके सहारेसे मलयालम भाषा अच्छी तरह लिखी और पढी जा सकती है। लेकिन दो-चार वर्णोके लिए मलयालमके नागरी-लिपिमें कुछ विशेष प्रकारके चिन्होका

नम्पूतिरी और नायर लोगोंकी तरह केरलके निवासियोंमें प्रधान लोग ईषवर या तीय्यर हैं। विद्वानोंका कहना है कि ये पहले सिंहल-द्वीपके निवासी थे और केरलके एक पुराने शासक चेरमान पेरुमाळ के आदेशको मानकर सिंहल-राजाकी अनुमति लेकर यहाँ आ बसे थे। इनके ईषवर और तीय्यर नाम इनके आदिम जन्म-देश सिंहल-द्वीप के सूचक हैं, क्योंकि सिंहलसे ईषवर बना होगा और द्वीपसे तीय्यर। इन लोगोंका जातीय धन्धा नारियलके पेड़की खेती करना है। नारियलसे ताड़ी निकालना भी इनका मुख्य काम रहा है। ईषवर या तीय्यर लोगोंकी संख्या केरलमें नायरोंकी अपेक्षा ज्यादा है। ये नायरोंके बराबर पढ़े-लिखे और प्रबल भी हो रहे हैं। इनमें कई सम्पन्न खानदानके लोग हैं, जो अच्छे व्यापारी ठेकेदार और ओहदेदार भी हुए हैं। ईषवरों तथा तीय्यरों की तरह समुद्रके किनारे अरयर और वालर नामक मछुए लोग भी रहते हैं। उनका मुख्य काम मछली पकड़ना और उसीका व्यापार करना है। केरलमें उनकी संख्या भी कम नहीं है।

केरलके पड़ोसी तमिलनाडसे कई तमिल भाषा-भाषी ब्राह्मण तथा अन्य जातिके लोग पेरुमाळों के जमानेसे यहाँ आया-जाया करते थे। उनमें कुछ विद्वान एवं राजनीतिज्ञ ब्राह्मण यहाँके राजाओंके दरबारोंमें मन्त्रणा देते थे अथवा अन्य प्रकारके छोटे-मोटे राज-काज करते थे तो बाकी लोग यहाँ व्यापार करनेमें लगे हुए थे। उन ब्राह्मणोंके कई परिवार केरलमें बस गए और इस समय यहाँ उनकी परम्पराके बहुतसे लोग मिलते हैं। उन दिनों तमिल भाषा-भाषी अन्य जातिके कई लोग भी यहाँ मजदूर, व्यापारी किसान बनकर स्थायी रूपसे रहने लगे थे जिनकी परम्पराके लोग इस वक्त भी कम नहीं हैं। इसी प्रकार कन्नड़ी अथवा तुळु बोलनेवाले उडुप्पी तथा मंगलोर देशके कुछ ब्राह्मण एम्बान्तिरी लोग भी केरलमें स्थायी रूपसे रहते हैं। ये अक्सर यहाँके मन्दिरोंमें पुजारीका काम करते हैं या होटल चलाते हैं। केरलके समुद्रके किनारे जो प्रमुख शहर हैं उनमें कोंकिणी नामक जातिवाले बहुत लोग रहते हैं जिनमें कुछ लोग सारस्वत ब्राह्मण हैं और शेष अन्य जातिके। कोंकिणी लोगोंकी भाषा कोंकणी है जो एक प्रादेशिक बोली मात्र है। कहते हैं गोवा और आसपासके कोंकण नामक प्रदेशमें ये लोग रहते थे और पोर्तुगीजके शासन-कालमें इनको अपने धार्मिक आचार-विचारोंके पालन करनेमें अनेक कष्ट झेलने पड़े। वहाँके ईसाई शासकोंके कट्टर धर्म-प्रचारकी आँधीसे अपने धर्मको बचानेके लिए ये लोग अपना देश छोड़कर दक्षिणकी तरफ अपनी-अपनी नावोंमें चल पड़े और केरलके किनारे तलश्शेरी कण्णूर, कोषिक्कोड कोचिन आलप्पुषा, आलप्पुषा कोल्लम आदि बन्दरगाहोंमें आकर उतरे। इस प्रकार यहाँके उदार सामन्त राजाओंकी शरणमें आनेके कारण उनको यहींपर स्थायी रूपसे रहकर व्यापार आदि करनेकी सुविधा प्राप्त हुई। उन दिनोंके राजाओंकी उदारतासे इन लोगोंको काफी जमीन और सम्पत्ति भी प्राप्त हुई। इन लोगोंके लिए अलग मन्दिर बनवाने तथा उनमें दैनिक पूजा आदि करानेके लिए आवश्यक धन भी उन सामन्त राजाओंने प्रदान किया था। उन मन्दिरोंमें मट्टाञ्चेरी-कोचिन में जो बड़ा वैष्णव मन्दिर है, वही सबसे प्रसिद्ध और सम्पन्न माना जाता है।

विदेशोंसे आकर केरलमें जो लोग स्थायी रूपसे बस गए हैं, उनमें यहूदी और सिरियानी और ईसाई प्रधान हैं। ईसाइयोंने समय-समयपर यहाँके बहुतसे हिन्दुओंको भी अपने धर्ममें मिलाकर अपने दलको बढ़ाया और संगठित किया। केरलके वर्तमान कई ईसाई खानदानोंके लोग अपनेको पुराने नम्पूतिरियोंके प्रतिष्ठित

कुमारान आशान

उपयोग भी करना पड़ेगा। अतः भारतकी राष्ट्र-लिपि अथवा सामान्य-लिपिके रूपमें नागरी-लिपिको अपनानेके प्रस्तावका विरोध शायद ही मलयालमके भक्त लोग करेंगे। केरलके कई वर्तमान प्रगतिशील विकासोन्मुख विचारके साहित्यकारों तथा भाषा-प्रेमियोंने भारतकी सामान्य-लिपिके रूपमें नागरी लिपिको स्वीकार करनेके उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण प्रस्तावका विशेष समर्थन भी किया है।

मलयालमका प्राचीनतम साहित्य लोक-गीतों का माना जाता है। लोक-गीतोंकी भाषा आधुनिक मलयालमसे एकदम भिन्न थी। उस समयकी भाषाका नाम ही दूसरा था क्योंकि मलयालमका स्वतन्त्र सुन्दर रूप उन गीतोंमें पूर्ण रूपसे प्रकट नहीं हुआ था। उन दिनोंकी उस भाषाको मलयाम्-तमिल कहते थे। कुछ लोगोंका कहना है कि वह तमिल भाषाकी एक प्रादेशिक बोली मात्र थी। लेकिन वास्तवमें मलयाम्-तमिल में रचे हुए उन प्राचीन गीतोंमें तमिल भाषासे बहुत कुछ भिन्न एक स्वतन्त्र प्रकारकी बोली का विकासोन्मुख रूप अवश्य प्राप्त होता है जिसका नाम ही आगे चलकर मलयालम पड़ा था। अतः उन लोक-गीतोंको यदि मलयालमके प्रेमी ऐतिहासिक विद्वान मलयालमकी प्राचीन सम्पत्ति बताते हैं, तो तमिल के अनन्य आराधक उन्हें अपनी भाषाकी पुरानी पूँजी माननेका दावा भी अवश्य करते हैं। वे लोक-गीत तत्कालीन किसान रमणियोंके गानेके लिए रचे गए थे जिनमें केरलके प्रकृति-सौन्दर्य प्रेम विरह विनोद आदिके मनोज्ञ एवं मधुर वर्णन मिलते हैं। लेकिन उन गीतोंका कोई अच्छा प्रामाणिक संग्रह अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ है। केवल देहाती लोग गाया करते हैं।

उपर्युक्त लोक-गीतोंके बाद मलयालममें पाट्टुकळ नामक विशेष प्रकारका साहित्य मिलता है। तत्कालीन लोगोंको आनन्द प्रदान करने तथा सत्प्रेरणा देनेके उद्देश्यसे विविध विषयोंपर रचे गए खास प्रकारके गानोंको पाट्टुकळ् कहते हैं। उन गानोंमें देवोंकी कथाएँ, वीर पुरुषोंकी जीवनियाँ विनोद भरी सामयिक बातें भगवानकी स्तुति देश भक्ति बेकारी गरीबी आदि विविध विषय वर्णित हैं। मलयालम भाषाका स्वतन्त्र रूप सबसे पहले उन्हीं पाट्टुकळ नामक रचनाओंमें ही प्रकट हुआ है, जो तमिलसे थोड़ा-बहुत प्रभावित होनेपर भी उससे बिल्कुल भिन्न अवश्य है। उस समयकी मलयालममें सर्वनाम विशेषण क्रियाओंके रूपान्तर, विभक्तियाँ कारक प्रत्यय क्रिया विशेषण आदि करीब-करीब आधुनिक मलयालमके अनुरूप ही पाये जाते हैं। अतएव पाट्टुकळ् को मलयालम साहित्यकी सम्पत्ति माननेमें कहीं किसी प्रकारका विरोध होना सम्भव नहीं है।

ये 'पाट्टुकळ्' कई प्रकारके मिलते हैं। उनमें देवियोंको प्रसन्न करनेके लिए रचे गए मनोरञ्जनके गाने ज्यादा हैं, जिनमें काम रति वसन्त नख-शिख आदि शृंगार रस-प्रधान विषय वर्णित हैं। पौराणिक कथाओंपर निर्मित गाने भी कम नहीं हैं। उनमें सुरों और असुरोंके बीचके युद्ध शिव और पार्वतीकी तपस्या काम-दहन देवी भद्रकालीकी असुर-संहार-लीला हरिहर पुत्र अथवा शास्ता या अय्यप्पनकी कथा राम-कथा आदि रोचक कहानियाँ मिलती हैं। इनके अलावा देशकी सामाजिक एवं सामयिक प्रथाओंके विषयमें लिखे हुए पाट्टुकळ् भी बहुत हैं। उनमें उस जमानेके विवाह पुत्र-जन्म व्यायाम मृत्यु आदि प्रसंगोंका सरस वर्णन मिलता है। उन दिनोंके पचासों गीत-काव्योंमें वटकन् पाट्टुकळ और रामचरित नामक दो ग्रन्थोंका स्थान अधिक श्रेष्ठ माना जाता है।

कुमारान आशान

मलयालम साहित्यमे उपर्युक्त 'पाट्टुकल' के वाद 'सन्देश-काव्य', 'चम्पू-काव्य' तथा 'कृष्ण गाथा काव्य'—इन तीनो प्रकारके काव्योका नया युग आरम्भ होता है। उस नवीन युगमे भाषाका रूप भी काफी परिवर्तित हो गया। भाषामे 'मणि प्रवालम्' नामक एक नई शैली प्रचलित हो उठी। 'मणि प्रवालम्' शैलीमें सस्कृत शव्दोंके रत्नो (मणियो) के साथ देशी शव्दोंके प्रवालोको जोडकर प्रयोग करनेका क्रम रहता है। आधुनिक मलयालयमे 'मणि प्रवालम्' शैली ही प्रचलित है, जिससे केरलके लोगोको सस्कृतका काफी अच्छा ज्ञान आसानीसे प्राप्त हो जाता है।

'मणि प्रवालम्' शैलीमे लिखे हुए 'सन्देश-काव्य' वहुत मिलते है। सस्कृतसाहित्यके 'मेघदूत' के समान मलयालममे 'उण्णुनीलि-सन्देश', 'कोक-सन्देश', 'उण्णियच्चिरु-तेवि-चरितम्', 'उण्णि-याटि चरितम्' आदि सन्देश-काव्य उत्तम ग्रन्थ माने जाते है। सन्देश-काव्योंके साथ उन दिनो प्रवन्ध-काव्योकी रचना भी होती थी। 'कण्णश रामायणम्' उन्ही दिनोका एक श्रेष्ठ प्रवन्ध काव्य है। 'रामायणम्' के अलावा 'भागवत्', 'शिवरात्रि महिमा', 'भारत', 'पद्म पुराण' आदि ग्रन्थ भी उस युगमे निर्मित हुए है जिनका महत्व कम नही है।

मलयालमके 'चम्पू-काव्य' केवल गद्य-पद्यात्मक रचनाएँ ही नही, वल्कि भाषाकी दृष्टिसे सस्कृत और मलयालमके मिश्रित काव्य भी है। उसमें ऐतिहासिक एव पौराणिक घटनाओंके वर्णनोंके साथ सामान्य लोगोंके जीवनकी समस्याओकी सुन्दर झांकी भी मिलती है। केरलके लोगोकी हास्य-रस-प्रधान सरस उक्तियाँ उनमें यथेष्ट प्राप्त होती है, जिनसे उन दिनोंके देशकी विविध परिस्थितियोका, सामान्य परिचय पाठकोको आसानीसे प्राप्त होता है। ऐसे चम्पू-काव्योमें एक प्रसिद्ध कवि 'पुनम नम्पूतिरी' का लिखा 'रामायणम्-चम्पू' ही सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। उसमें रावणका जन्म, रामका अवतार, ताडका का वध, अहल्या-मोक्ष आदि प्रसगोसे लेकर रामचन्द्रके स्वर्गारोहण तककी कथाका पूरा वर्णन मिलता है। उस ग्रन्थका आधार वाल्मीकि-रामायण ही है। लेकिन 'पुनम नम्पूतिरी' ने अपनी कल्पना और प्रतिभाके अनुकूल कथाके प्रसगोका वर्णन काफी हेरफेरके साथ मौलिक ढगसे किया है। 'रामायणम्-चम्पू' के अलावा 'काम दहनम्', 'रावण विजयम्' 'उमा तपस्या', 'पारिजात हरणम्', 'नैषधम्', 'राज रत्नावलीयम्' आदि अन्य कई चम्पू-ग्रन्थोंके नाम भी अवश्य उल्लेखनीय है। इन तमाम ग्रन्थोंकी भाषा 'मणि प्रवालम्' शैलीकी है और इनमें शुद्ध सस्कृतमें लिखे प्रसग भी काफी मिलते हैं।

उस युगमें चम्पू ग्रन्थोकी अपेक्षा 'कृष्ण गाथा काव्य' ही अधिक लोकप्रिय बन गया था, क्योकि उसके कवि 'चेरुश्शेरी नम्पूतिरी' ने अपने काव्यमें तत्कालीन साधारण जनतामें प्रचलित भाषाका ही प्रयोग करके उसको अधिक सरल एव मार्मिक बनाया था। भागवतके दशम स्कन्धके आधारपर उन्होने मलयालममें जो 'कृष्ण-गाथा-काव्य' रचा है, वह हिन्दीके सूरदासके 'सूर-सागर' से भी बढकर श्रेष्ठ माना जाता है, क्योकि एक प्रवन्ध-काव्यके तमाम गुण भी उसमें मिलते हैं। 'कृष्ण गाथा' के समान 'भारत गाथा', 'भागवतम् पाट्टु', 'सेतु बन्धनम् पाट्टु' आदि रचनाएँ भी उस युगकी बहुमूल्य देन हैं।

मलयालम साहित्यका स्वर्ण युग महा कवि 'तुचत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन' अथवा 'तुंचन्' के समयसे प्रारम्भ होता है। 'एषुत्तच्छन' का सकेतार्थ गुरु अथवा आचार्य है, क्योकि 'एषुत्तु' माने

एत्त और अच्छन माने पिता अर्थात् शिक्षा देनेवाले पिता या गुरु के अर्थमें ही एषुत्तच्छन का प्रयोग किया गया है। वास्तवमें मलयालमकी वर्णमाला लिपि तथा मलयालम भाषाके प्रयोगोंकी नवीन शैली आदिके जन्मदाता एवं प्रचारक महाकवि तुंचन् ही थे। उनकी सबसे प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय रचना अध्यात्म रामायण नामक प्रबन्ध काव्य है। उस काव्यको मलयालममें एषुत्तच्छन-रामायणम् भी कहा करते हैं। उनकी रामायणका पाठ केरलके प्रत्येक घरमें बड़ी भक्ति और श्रद्धाके साथ किया जाता है। वे परम भक्त और सदाचारी विद्वान थे। उनकी दृष्टिमें राम कृष्ण शिव ब्रह्मा आदि सब देवता समान थे। सबकी आराधना और प्रशंसा उन्होंने अपने काव्योंमें अवश्य की है। वे बड़े दार्शनिक और स्वतन्त्र विचारक थे। उनके रचे हुए अनेकों काव्योंमें रामायण भारतम् श्रीमद्भागवतम् चिन्तारत्नम् हरिनाम कीर्तनम् ब्रह्माण्ड पुराणम् देवी माहात्म्यम् आदि बहुत प्रसिद्ध हैं।

महाकवि तुंचन् ने एक नवीन पद्य शैली किलिप्पाट्टु (शुक-गीत) नामसे प्रचलित की थी जिसका अनुकरण करते हुए तत्कालीन तथा बादके बहुतसे कवियोंने असंख्य काव्य रचे हैं, जिनकी एक सामान्य सूची मात्र देना भी यहाँ सम्भव नहीं है। आजकलके कितने ही उदीयमान कवि किलिप्पाट्टु शैलीमें कविताएँ किया करते हैं। किलिप्पाट्टु के भी कई भेद और उपभेद पाये जाते हैं, जिन सबके जन्मदाता तुंचन् ही माने जाते हैं। मलयालमके पद्य साहित्यमें तुंचन् का जो स्थान है, उसकी बराबरी करनेवाले दूसरे कवि शायद ही मिलते हैं।

महाकवि तुंचन् के समकालीन कवियोंमें पूंतानम् नम्पूतिरि नामक एक कृष्ण भक्त कवि भी मिलते हैं जो हिन्दीके सूरदास और अष्टछाप के कवियोंकी तरह कृष्ण भक्तिपूर्ण रचनाएँ करके मलयालम-के साहित्यको सम्पन्न बनानेमें सफल हुए हैं। वे सारे जगतको गोपाल कृष्णमय मानते थे। कृष्ण भगवानकी स्तुति करना ही उनके जीवनका मुख्य लक्ष्य था। उनकी रचनाओंमें श्री कृष्ण कर्णामृतम् सन्तान गोपालम् पार्थसारथी स्तव कृष्ण लीला ज्ञानप्पाना आदि महत्वपूर्ण काव्य हैं।

मलयालमके साहित्यमें कथकलि-साहित्य का विशेष महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। कथकलि एक विशिष्ट नृत्यकलात्मक नाटकाभिनय-प्रणाली है, जिसमें अभिनय नृत्य और संगीत इन तीनोंका सुन्दर समावेश है। कथकलि का साहित्य अत्यन्त श्रेष्ठ है। कथकलि के प्रबन्ध काव्य उच्च कोटिके होते हैं। वे प्रायः पौराणिक आख्यानोंको लेकर लिखे हुए नाट्य-काव्य हैं जिनमें गीतों तथा पदों तक श्लोकोंके जरिये कथोपकथनका कार्य सम्पन्न किया जाता है। उन काव्योंके पद श्लोक गीत आदि अत्यन्त प्रभावोत्पादक एवं मार्मिक ढंगसे गाये जाते हैं। उनकी भाषा संस्कृत-मिश्रित मलयालम अर्थात् मणि प्रवालम् शैली की है। बीच-बीचमें शुद्ध संस्कृतके श्लोक और कीर्तन भी पाये जाते हैं। कथकलि-काव्योंकी कविताएँ प्रायः अनुप्रासयुक्त एवं प्रसादगुण विशिष्ट होती हैं। प्रसंगानुकूल ओज और माधुर्यपूर्ण रचनाएँ भी उनमें कम नहीं हैं।

कथकलि-साहित्य के सबसे प्राचीन कवि कोट्टारक्करा के एक राजा माने जाते हैं। उनके ग्रन्थमें रामायणकी पूरी कथाका वर्णन मिलता है। उस प्रबन्ध काव्यका पूरा अभिनय करनेके लिए कमसे-कम आठ रातोंका समय आवश्यक है। इस साहित्य-शाखाके प्रमुख प्राचीन कवियोंमें 'कोट्टयत्तु केरल वर्मा राजा निर्दिकाड्डूर के धर्मराजा अदिवनी मलनाड राजा उण्णायि वारियर इरयिम्मन

तपि' आदिके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कथकलि-काव्योमे 'वक वधम्', 'सुभद्राहरणम्', 'नल-चरित्रम्', 'वाण युद्धम्', 'दक्ष यागम्', 'अम्वरीप चरितम्' आदि अत्यन्त प्रसिद्ध एव लोकप्रिय ग्रन्थ हैं।

कथकलि-साहित्यकी तरह 'तुल्लल-साहित्य' भी मलयालमके एक विशिष्ट प्रकारका 'नृत्य-कालात्मक पद्य-साहित्य' है। इस नवीन शाखाके जन्मदाता महाकवि 'तुंचन्' की तरह एक दूसरे प्रसिद्ध कवि 'कुंचन् नम्बियार' हैं। महाकवि 'कुंचन्' हास्य-रसके सवसे श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं, जिन्होने 'तुल्लल पाट्टु' नामक एक 'नृत्यकलात्मक कथा-प्रवचन-पद्धति' को जन्म दिया था, और अपने ही समयमें केरलकी जनताके वीचमें उसका खूव प्रचार भी किया था। 'तुल्लल पाट्टु' एक प्रकारकी पद्य-शैली है। केरलके मन्दिरोमें उत्सवके अवसरपर अपनी विशेप प्रकारकी वेष-भूपाओंके साथ एक नट दर्शकोंके वीचमें मञ्चपर खडा होकर गाते हुए अभिनयके साथ पद्यात्मक भापामें किसी पौराणिक कथाका प्रवचन देता है, जिस समय उसके गाने 'तुल्लल पाट्टु' की शैलीमें गाये जाते है, वताया जाता है कि इस प्रकारके कथा-प्रवचन-का श्रीगणेश महाकवि कुंचनके प्रयत्नसे ही हुआ है, और उन्होने स्वय उसके लिए वीसो काव्य रचे थे, नटके लिए उपयुक्त वेश-भूषाओका निश्चय किया था तथा अनुकूल वाजे, गायक आदिकी व्यवस्था भी की थी। 'तुल्लल कलि' नामसे यह 'नृत्यकलात्मक कथा-प्रवचन' इस जमानेमे भी केरलमें सर्वत्र, विशेष रूपसे मन्दिरोमे वहुत प्रचलित है।

'तुल्लल कथा-साहित्य' मे अनेक उच्च कोटिके प्रवन्ध काव्य मिलते हैं। महाकवि 'कुंचन' के प्रमुख काव्योमें 'इरुपत्तिनालु वृत्तम्' (वीस प्रवन्ध-काव्योका सग्रह), 'पत्तिनालु वृत्तम्' (चौदह काव्योका सग्रह), 'शीलावती', 'नल चरितम्', 'शिव पुराण,' 'विष्णु गीता', 'भागवतम्', 'भगवद् दूत' आदि अत्यन्त प्रसिद्ध माने जाते हैं। उनका एक श्रेष्ठ मणि प्रवाल महाकाव्य 'श्रीकृष्ण चरित्रतम्' हिन्दीके 'प्रिय-प्रवास' और 'कृष्णायन' नामक काव्योंके तरह श्रेष्ठ और सरल रचना है। उनके कुल साठ के करीब काव्य अभीतक उपलब्ध हुए है। पौराणिक कथाओके प्रवचनके वहाने वे समाज-सुधारका कार्य करनेमें अतीव सफल हुए थे। उनकी रचनाओमे सामयिक वातो तथा अधिकारी शासकोंके विषयमें प्रसगानुकूल चर्चा और आलोचना मिलती है। महाकवि 'कुंचन' ने अपने काव्योंके द्वारा केरलके ब्राह्मणसे लेकर चण्डाल तक—सभी जातियोंके लोगोंके जीवनकी व्यग्यपूर्ण आलोचना की है और उनके बीचमें प्रचलित कुरीतियो तथा मिथ्याचारोकी निन्दा की है। उनकी निन्दाके वचन भी सबको मीठे लगते हैं, क्योकि वे हँसी-मजाकमें सब कुछ प्रकट करनेमे विशेष सफल हुए हैं। अत उन्होने जो सत्य कहा है, वह प्रिय बनाकर मीठे व्यग्य पूर्ण ढगसे ही व्यक्त किया है, जिससे उसकी कटुता कही किसीको असह्य नही प्रतीत होती। इसमें कोई सन्देह नही कि ईसाकी अठारहवी सदीमे 'तुल्लल कथा साहित्य' की सर्वतोमुखी उन्नति करनेमें महाकवि 'कुंचन' तथा उनके कई शिष्य सम्पूर्ण रूपसे सफल हुए हैं।

'तुल्लल पाट्टुकल' के वरावर मलयालममे 'वंचि पाट्टुकल' का स्थान भी ऊँचा माना जाता है। किश्ती या नाव चलाते समयके खास प्रकारके गानोको 'वंचि पाट्टु' कहते है। 'वंचि पाट्टु' की रीति और गति विशेष प्रकारकी होती है। 'रामपुरत्तु वारियर' नामक एक गरीव कविने 'वंचि पाट्टु' की नई रीतिकी कविताओको सबसे पहले जन्म दिया था। इसलिए 'वंचि पाट्टु' के जन्मदाताके रूपमे 'वारियर' का नाम ही साहित्यमें लिया जाता है। उनका प्रथम काव्य 'कुचेल वृत्तम्'

(सुदामा चरितम्) बहुत प्रसिद्ध है। मलयालममें कालिदासकी नई शैलीकी कविताओंका अनुकरण करने वाले बहुतसे श्रेष्ठ कवि मिलते हैं। यद्यपि उनकी रचनाएँ ज्यादातर मुक्तक हैं तो भी प्रबन्ध-काव्य भी कम नहीं है।

प्राचीन कालसे लेकर ईसाकी अठारहवीं सदी अथवा उन्नीसवीं सदीके आरम्भ काल तक मलयालम-में केवल पद्य साहित्यकी उन्नति ही अधिक हुई थी। उन्नीसवीं सदीमें गद्य साहित्यका विकास भी धीरे धीरे होने लगा। केरलकी सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियोंके कारण गद्यके विकासकी अनिवार्य आवश्यकता भी आ पड़ी थी। अंग्रेजोंके शासन-कालमें प्राय सभी भाषाओंमें गद्य-साहित्यका विकास शीघ्र होने लगा। मलयालमकी हालत भी वैसी ही थी। ईसाई धर्मके अनेक प्रचारकोंके कारण हमारे देशके साहित्यमें गद्यका उपयोग बढ़ने लगा और उसके अनुसार रचनाओंकी संख्या भी अधिक होने लगी। यहाँतक कि प्रथम 'मलयालम कोष'के लेखक डॉ गुण्डर्ट नामक जर्मनीके एक विदेशी सज्जनने मलयालम भाषा सीखनेके लिए उपयोगी पाठ्य-पुस्तक व्याकरण-ग्रन्थ आदिकी रचना करके पर्याप्त यश कमा लिया है। वास्तवमें गुण्डर्टकी साहित्य-सेवाएँ प्रशंसनीय हुई हैं। उनके लिखे कोषमें शब्दोंकी उत्पत्ति अर्थ भेद व्यवहार्य उच्चारणकी रीति आदि विविध बातोंपर प्रकाश डाला गया है। मलयालमकी प्राचीन कृतियोंका अध्ययन करनेके लिए गुण्डर्टका कोष बहुत उपयोगी है।

मलयालमके गद्य-साहित्यमें सबसे पहले पाठ्य-पुस्तकोंकी बारी ही आती है। आरम्भमें कई ईसाई पण्डितोंने इस उपयोगी कार्यमें थोड़ी बहुत सफलता अवश्य पाई है। लेकिन केरल वर्मा वलिय कोयि तम्पुरान और उनके भानजे राजराज वर्मा कोयि तम्पुरान' के प्रयत्नोंसे मलयालममें जो पाठ्य-पुस्तकें लिखी गई थीं उनकी बराबरी करनेवाली रचनाएँ शायद ही किसी भाषामें अन्यत्र प्रकाशित हुई होंगी। ये दोनों राज परिवारके प्रतिष्ठित विद्वान थे जो अच्छे कवि और साहित्यकार भी थे। मलयालमके अभिनव साहित्यके निर्माताओंमें ये दोनों कोयितम्पुरान अत्यन्त आदरणीय साहित्य-सेवी माने जाते हैं। उन्होंने अथक परिश्रम करके गद्य साहित्यकी बड़ी उन्नति की है। उनमें राजराज वर्माने स्वयं पाठ्य-पुस्तकोंके अलावा अच्छे-अच्छे रीति ग्रन्थ व्याकरण आदिकी रचना भी की है। उनके लिखे हुए लक्षण ग्रन्थोंमें साहित्य साह्यम् मध्यम-व्याकरणम् वृत्त मंजरी भाषा-भूषणम् केरल पाणिनीयम् आदि प्रामाणिक रचनाएँ मानी जाती हैं। केरल वर्माने "अक्बर" नामक एक उपन्यास लिखा है। विज्ञान मंजरी और महच्चरितम् उनकी दूसरी श्रेष्ठ गद्य रचनाएँ हैं। वे गद्यकी अपेक्षा पद्य ज्यादा लिखते थे। उनके काव्योंमें पद्मनाभ पद पद्म शतकम् मयूर सन्देशम् अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक (अनुवाद) ध्रुव चरितम् हनुमदुत्सवम् आदि बहुत श्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध माने जाते हैं। इन दोनों कोयितम्पुरानों की प्रेरणासे कितने ही गद्य-लेखक तथा कवि मलयालम साहित्यकी उन्नति करनेमें तत्पर होने लगे। इन सबके अथक प्रयत्नसे आधुनिक कालमें मलयालम साहित्यकी सर्वतोमुखी उन्नति हो रही है।

जैसे हिन्दी साहित्यका आधुनिक काल भारतेन्दुसे शुरू होता है, वैसे ही मलयालममें भी उपर्युक्त दोनों कोयितम्पुरानों से आधुनिक पद्य और गद्य साहित्यका आरम्भ होता है। वे आधुनिक युगके पथ प्रदर्शक एवं प्रवर्तक माने जाते हैं। उनके समकालीन कवियोंमें के सी केशव पिल्ला कोल मन्नूर कुचिकुट्टन

वल्लतोळ नारायण मेनोन

(सुदामा चरितम्) बहुत प्रसिद्ध है। मलयालममें वारियरकी नई शैलीकी कविताओंका अनुकरण करने वाले बहुतसे श्रेष्ठ कवि मिलते हैं। यद्यपि उनकी रचनाएँ ज्यादातर मुक्तक हैं, तो भी प्रबन्ध-काव्य भी कम नहीं हैं।

प्राचीन कालसे लेकर ईसाकी अठारहवीं सदी अथवा उन्नीसवीं सदीके आरम्भ काल तक मलयालम-में केवल पद्य साहित्यकी उन्नति ही अधिक हुई थी। उन्नीसवीं सदीमें गद्य साहित्यका विकास भी धीरे धीरे होने लगा। केरलकी सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियोंके कारण गद्यके विकासकी अनिवार्य आवश्यकता भी आ पड़ी थी। अंग्रेजीके शासन-कालमें प्राय सभी भाषाओंमें गद्य-साहित्यका विकास शीघ्र होने लगा। मलयालमकी हालत भी वैसी ही थी। ईसाई धर्मके अनेक प्रचारकोंके कारण हमारे देशके साहित्यमें गद्यका उपयोग बढ़ने लगा और उसके अनुसार रचनाओंकी संख्या भी अधिक होने लगी। यहाँतक कि प्रथम मलयालम कोषके लेखक डॉ गुण्डर्ट नामक जर्मनीके एक विदेशी सज्जनने मलयालम भाषा सीखनेके लिए उपयोगी पाठ्य-पुस्तकें व्याकरण-ग्रन्थ आदिकी रचना करके पर्याप्त यश कमा लिया है। वास्तवमें गुण्डर्टकी साहित्य-सेवाएँ प्रशंसनीय हुई हैं। उनके लिखे कोषमें शब्दोंकी उत्पत्ति अर्थ भेद व्यवहार उच्चारणकी रीति आदि विविध बातोंपर प्रकाश डाला गया है। मलयालमकी प्राचीन कृतियोंका अध्ययन करनेके लिए गुण्डर्टका कोष बहुत उपयोगी है।

मलयालमके गद्य-साहित्यमें सबसे पहले पाठ्य-पुस्तकोंकी बारी ही आती है। आरम्भमें कई ईसाई पण्डितोंने इस उपयोगी कार्यमें थोड़ी बहुत सफलता अवश्य पाई है। लेकिन केरल वर्मा वलिय कोयि तम्पुरान और उनके भानजे राजराज वर्मा कोयि तम्पुरान' के प्रयत्नोंसे मलयालममें जो पाठ्य पुस्तकें लिखी गई थी उनकी बराबरी करनेवाली रचनाएँ, शायद ही किसी भाषामें अन्यत्र प्रकाशित हुई होंगी। ये दोनों राज परिवारके प्रतिष्ठित विद्वान थे जो अच्छे कवि और साहित्यकार भी थे। मलयालमके अभिनव साहित्यके निर्माताओंमें ये दोनों कोयितम्पुरान अत्यन्त आदरणीय साहित्य-सेवी माने जाते हैं। उन्होंने अथक परिश्रम करके गद्य साहित्यकी बड़ी उन्नति की है। उनमें राजराज वर्माने स्वयं पाठ्य-पुस्तकोंके अलावा अच्छे-अच्छे रीति ग्रन्थ व्याकरण आदिकी रचना भी की है। उनके लिखे हुए लक्षण ग्रन्थोंमें साहित्य साह्यम् मध्यम-व्याकरणम् वृत्त मंजरी भाषा-भूषणम् केरल पाणिनीयम् आदि प्रामाणिक रचनाएँ मानी जाती हैं। केरल वर्माने "अकबर" नामक एक उपन्यास लिखा है। विज्ञान मंजरी और महच्चरितम् उनकी दूसरी श्रेष्ठ गद्य रचनाएँ हैं। वे गद्यकी अपेक्षा पद्य ज्यादा लिखते थे। उनके काव्यामें पद्मनाभ पद पद्म शतकम् मयूर सन्देशम् अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक (अनुवाद) ध्रुव चरितम् हनुमदुत्सवम् आदि बहुत श्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध माने जाते हैं। उन दोनों कोयितम्पुरानों की प्रेरणासे कितने ही गद्य-लेखक तथा कवि मलयालम साहित्यकी उन्नति करनेमें तत्पर होने लगे। उन सबके अथक प्रयत्नसे आधुनिक कालमें मलयालम साहित्यकी सर्वतोमुखी उन्नति हो रही है।

जैसे हिन्दी साहित्यका आधुनिक काल भारतेन्दुसे शुरू होता है, वैसे ही मलयालममें भी उपर्युक्त दोनों कोयितम्पुरानों से आधुनिक पद्य और गद्य साहित्यका आरम्भ होता है। वे आधुनिक युगके पथ प्रदर्शक एवं प्रवर्तक माने जाते हैं। उनके समकालीन कवियोंमें के सी केशव पिल्ला कोड गल्लूर कुंजिकुट्टन

वल्लतोळ नारायण मेनोन

तम्पुरान, चात्तुकुट्टि मन्नाटियार, पन्तलम् केरल वर्मा, नट्टुवम् नम्पूतिरी, कुण्टूर नारायण मेनोन आदिके नाम विशेष उल्लेखनीय है। उपर्युक्त कवियो तथा लेखकोकी रचनाओमें कई महा-काव्य, खण्ड-काव्य, नाटक, उपन्यास और कहानियाँ भी मिलती है, जिन सबके नामोकी बडी सूची मात्र यहाँ देना अनावश्यक-सा प्रतीत होता है।

आधुनिक पद्य साहित्यकी नवीन धाराके अग्रदूतोके रूपमें कुमारन आशान, वल्लतोळ, और उळ्ळूर के नाम लिये जाते हैं। ये तीनो महाकवि इस समय जीवित नही है। इनमे कुमारन आशान् मलयालमके दु खवादी दार्शनिक कवि है। उनकी कवितामे पीडा और निराशाकी मार्मिक गूंज है। वे बडे तत्वान्वेशी, जीवनदर्शी कवि थे। अत उनकी रचनाएँ दार्शनिक और आदर्श प्रधान हैं। वे समाज-सुधारक, क्रान्तिकारी और प्रगतिशील कवि थे। उन्होने अछूतोकी दयनीय दुर्दशापर मार्मिक प्रकाश डालते हुए 'चण्डाल भिक्षुकि' नामक खण्ड-काव्य लिखा है। इसके अलावा 'बुद्ध चरितम्', 'वीणपूवू', 'नलिनी', 'चिन्तामग्ना सीता', 'लीला', 'करुणा' आदि वीसो उत्कृष्ट काव्य लिखें है।

वल्लतोळ नारायण मेनोन मलयालमके राष्ट्रीय कवि थे। समाज और राष्ट्रकी नवीन प्रवृत्तियो का प्रतिविम्ब उनकी रचनाओंपर पडा है। वे गाँधीजीके बडे भक्त थे। उसी प्रकार साम्यवादी रूसके आराधक भी थे। 'चित्रयोगम्' उनका लिखा महाकाव्य है। 'वधिर विलापम्', 'कॉञ्चि सीता' मग्दलन मरियम्', 'शिष्यनुँ मकनुम्', 'गणपति' आदि उनके मुख्य खण्ड-काव्य है। 'साहित्य मजरी' नामक आठ भागोमें उनकी विविध विपयोपर लिखी फुटकर कविताएँ सग्रहीत हैं।

उळ्ळूर परमेश्वरय्यर बडे ही विलक्षण पण्डित और प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। उनकी रचनाएँ पाण्डित्यपूर्ण होनेके कारण विद्वानोंके वीचमें विशेष समादरका पात्र बनी है। 'उमा केरलम्' उनका एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। 'वचीश गीति', 'मगल मजरी', 'पिंगला', 'हृदय कौमुदी', 'कर्ण भूषणम्', 'किरणावलि', 'काव्य-चन्द्रिका' आदि उनके मुख्य खण्ड-काव्य और पद्य-सग्रह है। उळ्ळूर ने पद्यकी तरह गद्यमे भी कई श्रेष्ठ रचनाएँ की हैं जिनमे 'विज्ञान दीपिका' उनके विद्वत्तापूर्ण निवन्धोका सग्रह है। उन्होने मलयालमके कई प्राचीन काव्योकी खोजकर प्रकाशित किया। उनकी भूमिका और टीकाएँ भी लिखी। उन्होने मलयालम साहित्यका एक बृहत् प्रामाणिक इतिहास भी लिखा है।

मलयालमके आधुनिक जीवित कवियोमे जी शकर कुरुप बडे प्रगतिशील और छायावादी कवि हैं। वे केरलके नवयुवकोंके सबसे प्रिय कवि माने जाते हैं। उनके विचार और आदर्श आधुनिक युगके अनुकूल एव क्रान्तिकारी हैं। दलित मानवताकी पुकार और कलाकार उनकी कविताके शब्दोंमें गूंज उठती है उन्होने 'साहित्य-कौतुकम्' नामक चार-पाँच सग्रहोमें अपनी सैकडों फुटकर कविताओको प्रकाशित किया है। 'स्वप्न सौधम्', 'सूर्यकान्ति', 'नवातिथि', 'सध्या' आदि उनकी उत्कृष्ट रचनाएँ है। रवि बाबूकी गीताञ्जलि का पद्यानुवाद भी उन्होंने किया है। अब वे हिन्दीके जयशकर प्रसादकी 'कामायनी' का भी अनुवाद कर रहे हैं।

कोमल-कान्त पदावलियोमें मधुर मार्मिक गीत रचनेवाले भावुक कवि 'चगँपुषा' कृष्ण पिल्लै मलयालमके दु खवादी कवियोमे सबसे श्रेष्ठ माने जाते हैं। जीवनकी निराशा, प्रेमकी पीडा, गरीबी और बेकारी की यातना, समाजके अत्याचार, क्रान्तिके स्वप्न आदि विषयोपर उन्होंने बहुत सी सुन्दर मार्मिक रचनाएँ

की है। उनकी रचनाओंका बेहद प्रचार केरलके अपढ़ मजदूरों व देहातियोंके बीचमें भी हुआ है। रम णन् नामक उनका जो खण्ड-काव्य है उसका पैंतीसवाँ संस्करण भी अभी निकला है। 'देवता' वाष्प-चक्रन बाष्पांजलि हेमन्त चन्द्रिका उद्यान लक्ष्मी सुमधामिका आदि उनके प्रमुख खण्ड काव्य और कविता-संग्रह हैं। वे केरलके सबसे अधिक लोकप्रिय कवि माने जाते हैं। लेकिन दुर्भाग्यवश पैंतीस वर्षकी अल्पायुमें ही उनका स्वर्गवास हो गया था।

मलयालमके आधुनिक पद्य-साहित्यमें ऐसे अनेकों उदीयमान प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं जो अपनी अमूल्य सुन्दर, भावपूर्ण क्रान्तिकारी एवं मधुरतम कविताओंसे साहित्यकी निरन्तर श्रीवृद्धि करते रहे हैं। उनमें नालप्पाट बालामणि अम्मा और नारायण मेनोन के राजा कुट्टिप्पुरत्तु केशवन नायर, वेण्णिक्कुलम् गोपाल कुरूप वैलोप्पिल्लि श्रीधर मेनोन ओलप्पमण्णा पी भास्करन जेम्स जी कृष्ण वारियर, पाला नारायणन नायर आदि कुछ प्रमुख कवियोंके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

मलयालमके गद्य साहित्यमें उपन्यास पद्य काव्य नाटक एकांकी कहानी जीवनी निबन्ध आलो-चना आदि-सब प्रकारकी रचनाएँ मिलती हैं। उपन्यास-साहित्यके क्षेत्रमें संस्कृत अँग्रेजी और बंगलाके उपन्यासों तथा आख्यायिकाओंका प्रभाव मलयालम पर खूब पड़ा है। अँग्रेजी और बंगलाके उत्तम उपन्यासों का अनुवाद मलयालममें काफी हो चुका है। उनके प्रभावमें पड़कर कई स्वतन्त्र मौलिक उपन्यासोंकी रचना भी हुई है। उपन्यास-लेखकोंमें सर्व प्रथम मौलिक उपन्यास कुन्दलता के रचयिता अप्पु नेदुंगाडी माने जाते हैं। चन्दु मेननके शारदा इन्दु लेखा सी वी रामन पिल्लैके मार्ताण्ड वर्मा 'राम राजा बहादुर' धर्मराजा प्रेमामृतम् टी के वेलु पिल्लैके हेमलता सरदार के एम पणिक्करके परकिप्पटयालि पुन्नोरकोट्टु स्वरूपम् केरल सिंहम् एन के कृष्ण पिल्लैके कनक मंगलम् नारायण कुरुक्कलके सत्यग्राही रामकृष्ण पिल्लैके पारप्पुरम् गोपिनाथन नायरके मुथा पोट्टुवाट्टु कयी तथा तकष के दसों उपन्यास आदि उच्च कोटिके उपन्यास हैं। मलयालममें उपन्यास साहित्यकी ईर्ष्याजनक उन्नति अवश्य हो रही है जिसकी प्रशंसा भारतकी केन्द्र सरकार भी कर चुकी है। तकषीके चम्मीन नामक मौलिक उपन्यासको सरकार पाँच हजार रुपयेसे पुरस्कृत भी कर चुकी है।

कहानी-साहित्यका भी अच्छा विकास मलयालममें हो रहा है। इधर सैकड़ों श्रेष्ठ कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रायः सभी उपन्यास-लेखकोंने कहानियाँ भी लिखी हैं। उनके अलावा पोनकुन्नं वर्की पोट्टक्काटु, मुहम्मद बशीर, कारूर, कोवूर, तकषी सरस्वती अम्मा ललिताम्बिका अन्तर्जनम् केशव देव के टी मुहम्मद पी सी कुट्टिकृष्णन् आदि सैकड़ों कहानी-लेखकोंके नाम भी अवश्य उल्लेखनीय हैं।

नाटक और एकांकियोंका साहित्य भी मलयालममें काफी उन्नति कर रहा है। ई वी कृष्ण पिल्लैने नाटक-साहित्यके विकासमें सराहनीय काम किया है। पुराने संस्कृत एवं तमिल नाटकोंके अनुवाद के बाद स्वतन्त्र मौलिक नाटकोंकी रचना करनेका श्रेय उन्हींके कारण सुगम हो गया। शाकुन्तलम् मालविकाग्निमित्रम् भासरत्नम् उत्तररामचरितम् जैसे पद्यमय अनूदित नाटकोंके बाद ई वी कृष्ण पिल्लैके गद्य नाटकोंने विशेष लोक-प्रियता पाई। रंगमंच की दृष्टिसे उनके नाटक अत्यधिक सफल हुए। सीता देवी इरविकुट्टि पिल्लै राजा केशवदास बी ए मायावी पेण्णरशुनाडु आदि

नालप्पाडु बालामणि अम्मा

की है। उनकी रचनाओंका बेहद प्रचार केरलके अपढ़ मजदूरों व देहातियोंके बीचमें भी हुआ है। रम
णन् नामक उनका जो खण्ड-काव्य है उसका पैंतीसवाँ संस्करण भी अभी निकला है। 'देवता आरा-
धकन बाष्पांजलि हेमन्त चन्द्रिका उद्याम लक्ष्मी मुग्धावस्था आदि उनके प्रमुख खण्ड
काव्य और कविता-संग्रह हैं। वे केरलके सबसे अधिक लोकप्रिय कवि माने जाते हैं। लेकिन दुर्भाग्यवश
पैंतीस वर्षकी अल्पायुमें ही उनका स्वर्गवास हो गया था।

मलयालमके आधुनिक पद्य-साहित्यमें ऐसे अनेकों उदीयमान प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं जो अपनी
अमूल्य सुन्दर, भावपूर्ण क्रान्तिकारी एवं मधुरतम कविताओंसे साहित्यकी निरन्तर श्रीवृद्धि करते रहे हैं।
उनमें बालमणि अम्मा और नारायण मेनोन के राजा कुट्टिप्पुरत्तु केशवन नायर, चेंगम्पुषा
गोपाल कुरुप वैलोप्पिल्लि श्रीधर मेनोन ओळप्पमण्ण पी भास्करन वेन्नी कृष्ण वारियर, पाला
नारायणन नायर आदि कुछ प्रमुख कवियोंके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

मलयालमके गद्य साहित्यमें उपन्यास गद्य काव्य नाटक एकांकी कहानी जीवनी निबन्ध आलो-
चना आदि-सब प्रकारकी रचनाएँ मिलती हैं। उपन्यास-साहित्यके क्षेत्रमें संस्कृत अँग्रेजी और बंगलाके
उपन्यासों तथा आख्यायिकाओंका प्रभाव मलयालम पर खूब पड़ा है। अँग्रेजी और बंगलाके उत्तम उपन्यासों
का अनुवाद मलयालममें काफी हो चुका है। उनके प्रभावमें पड़कर कई स्वतन्त्र मौलिक उपन्यासोंकी रचना
भी हुई है। उपन्यास-लेखकोंमें सर्व प्रथम मौलिक उपन्यास कुन्दलता के रचयिता अप्पु नेडुंगाडी
माने जाते हैं। चन्तु मेनन्के शारदा इन्दु लेखा सी वी रामन पिल्लैके मार्ताण्ड वर्मा राम
राजा बहादुर धर्मराजा प्रेमामृतम् टी के. वेल पिल्लैके हेमलता सरदार के एम
पणिक्करके परङ्किप्पटयालि पुन्नोरकोट्टु स्वरूपम् केरल सिंहम् एन के कृष्ण पिल्लैके कनक
मंगलम् नारायण कुरुक्कलके सत्यग्राही रामकृष्ण पिल्लैके पारप्पुरम् गोपिनाथन नायरके सुभा
पोट्टकाट्ट कर्त्ता तथा उरूब के दसों उपन्यास आदि उच्च कोटिके उपन्यास हैं। मलयालममें उपन्यास
साहित्यकी ईर्ष्याजनक उन्नति अवश्य हो रही है जिसकी प्रशंसा भारतकी केन्द्र सरकार भी कर चुकी है।
तकषीके चम्मीन नामक मौलिक उपन्यासको सरकार पाँच हजार रुपयेसे पुरस्कृत भी कर चुकी है।

कहानी-साहित्यका भी अच्छा विकास मलयालममें हो रहा है। इधर सैकड़ों श्रेष्ठ कहानियाँ
प्रकाशित हो चुकी हैं। प्राय सभी उपन्यास-लेखकोंने कहानियाँ भी लिखी हैं। उनके अलावा पोनकुन्न वर्की
पोट्टक्काट्ट, मुहम्मद बशीर, कारूर, कोवूर, तकषी सरस्वती अम्मा ललिताम्बिका अन्तर्जनम्,
केशव देव के टी मुहम्मद, पी सी कुट्टिकृष्णन् आदि सैकड़ों कहानी-लेखकोंके नाम भी अवश्य
उल्लेखनीय हैं।

नाटक और एकांकियोंका साहित्य भी मलयालममें काफी उन्नति कर रहा है। ई वी कृष्ण
पिल्लैने नाटक-साहित्यके विकासमें सराहनीय काम किया है। पुराने संस्कृत एवं तमिल नाटकोंके अनुवाद
के बाद स्वतन्त्र मौलिक नाटकोंकी रचना करनेका क्षेत्र उन्हींके कारण सुगम हो गया। शाकुन्तलम्
मालविकाग्निमित्रम् चारुदत्तम् उत्तररामचरितम् जैसे पद्यमय अनूदित नाटकोंके बाद ई वी
कृष्ण पिल्लैके गद्य नाटकोंने विशेष लोक-प्रियता पाई। रंगमंच की दृष्टिसे उनके नाटक अत्यधिक सफल
हुए। सीता देवी इरविकुट्टि पिल्लै राजा केशवदास बी ए मायावी पेण्णरसुनाडु आदि

उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। पोनकुन्न वर्की, कौनिक्करा कुमार पिल्लै और पद्मनाभ पिल्लै, सी माधवन पिल्लै, टी एन गोपिनाथन नायर, एन पी चेल्लप्पन नायर, वी टी भट्ट तिरि, के रामकृष्ण पिल्लै, के टी महुम्मद, एन कृष्ण पिल्लै, कप्पन कृष्ण मेनोन आदि कई सज्जन आधुनिक युगके प्रमुख नाटककार हैं। आर सी शर्मा जैसे कुछ लेखकोंने बंगलाके डी एल राय, गिरीश घोष आदिके नाटकोंका अनुवाद भी किया है।

गद्य-काव्यका भी अच्छा विकास मलयालममें हुआ है। कौनिक्करा कुमार पिल्लै और पद्मनाभ पिल्लै इस शाखाके प्रमुख लेखक माने जाते हैं। उनके अनुकरणपर बहुतसे गद्य-काव्य-लेखक अपनी रचनाओं से साहित्य-भण्डारको भरपूर बना रहे हैं।

जीवनी, निबन्ध और आलोचना-साहित्यका भी भण्डार बराबर बढता जा रहा है। केरलमें चित्र-कार और गायक भी कम नहीं हैं। विश्वविख्यात चित्रकार रविवर्मा केरलके थे, जिनके चित्रोंका प्रचार सारी दुनियामें हो चुका है।

मलयालममें 'मातृभूमि', 'मलयाल मनोरमा', 'मलयाल राज्यम्', 'परिषद मासिका' 'युव केरलम्', आदि पचासों मासिक पत्र और साप्ताहिक-पत्र प्रकाशित होते हैं। मलयालमके दैनिक अखबारोंकी संख्या भी पचासके करीब है।

मलयालमकी तरह संस्कृत और तमिलके भी कई कवि और विद्वान केरलमें उत्पन्न हुए थे। यद्यपि यहाँ उनका भी संक्षिप्त परिचय देना बिलकुल सम्भव प्रतीत नहीं होता, तो भी केरलके शंकराचार्य, मेलप्पत्तूर नारायण भट्टतिरी, महाकवि भास, कुमार कवि आदिका स्मरण किये बिना रहना अनुचित होगा।

आखिर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि साहित्य, कला आदिकी दृष्टिसे केरल और मलयालम का स्थान निस्सन्देह महत्वपूर्ण है।

केरलमें हिन्दी प्रचार

इतिहाससे इस बातका पता लगता है कि बहुत पुराने जमानेसे भी केरलमें कहीं-कहीं हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी भाषाका थोडा बहुत अध्ययन हो रहा था। यहाँके प्राचीन एवं प्रसिद्ध देव-मन्दिरोंके पास पहले 'गोसाई-मठ' नामक खास प्रकारकी यें सराय अथवा मुसाफिरखाने बने हुए थे। उन मठोंमें 'द्विभाषी' नामक कर्मचारी नियुक्त होते थे, जिनका मुख्य काम उत्तर भारतसे, समय-समय पर केरल आनेवाले साधु-सन्तों, तथा तीर्थ-यात्रियोंका समुचित स्वागत-सत्कार करना था। 'द्विभाषी' अपने यहाँ आनेवाले अतिथियोंको बडे आदर-सम्मानके साथ ठहराते थे और उन्हें अपने यहाँके प्रधान दर्शनीय स्थान आदि दिखाते थे। 'द्वि-भाषी' के पदपर नियुक्त होनेके लिए हिन्दी या हिन्दुस्तानीका काम-चलाऊ ज्ञान आवश्यक माना जाता था। अतः उसके उम्मेदवारको किसी न किसी प्रकार थोडी हिन्दीकी जानकारी हासिल करनी पडती थी। इसके लिए वे लोग अपने सत्संग और साधु-सेवाके फलस्वरूप प्राप्त होनेवाले हिन्दी-ज्ञानको मलयालम लिपिमें लिख लिया करते थे। उन पुस्तकोंकी सहायतासे 'द्विभाषी' तथा उनके बन्धु-मित्र एक प्रकार की टूटी-फूटी हिन्दी सीख लेते थे। उनकी हिन्दीको पहले 'गोसाई-भाषा' अथवा 'हिन्दुस्तानी' के नामसे लोग पुकारते थे। 'द्विभाषी' की नियुक्ति तत्कालीन राजाओंकी सरकारकी तरफसे होती थी। इसलिए साधारणतः राजाओंके आश्रममें रहनेवाले सेवक लोग ही ज्यादातर इस पदपर नियुक्त होते थे। सरकार-

समर्पण और तल्लीनताकी अनुभूतिका अभिव्यञ्जन पा सकते हैं। वे एक महान तत्ववेत्ता, दार्शनिक, विद्वान, अथवा महान उपदेशक नही थे ?। वे मुख्यत एक रसिक भावुक भक्त-कवि और सफल गायक मात्र थे। अपने इष्ट-देव तथा कुल-देव 'श्री पद्मनाभ' के प्रति अपनी अपार एव अकलक भक्तिको अभिव्यक्ति करना, उनके प्रेममे मस्त होकर अपने आपको भूल जाना, उनके प्रति होनेवाली भक्तिके सामने समस्त ससारको तुच्छ मानना, 'श्री पद्मनाभ' को छोडकर दूसरे देवोकी गौणता दिखाना आदि कई बाते हम 'गर्भ श्रीमान्' की प्रत्येक कवितामे पाते है।

'श्री पद्मनाभ' पर उनकी कितनी गहरी भक्ति और श्रद्धा थी, यह निम्नलिखित हिन्दी गीतसे प्रकट होती है —

[राग कानडा—चौताल]

देवनके पति इद्र, ताराके पति चन्द्र ॥ टेक ॥
विद्याके पति गणेश, दु ख-भार-हारी ॥ १ ॥
रागपति कानडा, बाजनके पति बीन।
ऋतुपति है वसन्त रति सुख कारी ॥ २ ॥
मुनिजनपति व्यास, पछी पति हस है।
नरपति राम अवध-विहारी ॥ ३ ॥
गिरिपति हिमाचल, भूतनके पति महेश,
तीन-लोक पति श्री पद्मनाभ गिरिधारी ॥ ४ ॥

स्वातितिरुनाल श्री रामचन्द्रजीके भी भक्त थे। नीचे दिए हुए गीतमें रामाभिषेकका सुन्दर वर्णन मिलता है —

[काफी राग—आदि ताल]

अवध सुखदाई अब बाजे बजायो ॥ टेक॥
रतन सिंहासनके ऊपर रघुपति सीता सहित सुहायो।
यों भरत सुमित्रा-नन्दन ठाढ़े चामर चतुर झुलायो ॥ १ ॥
गालव गावत जन मगल गावत देवन बजायो।
यों रावण मारे असुर सब मारे राज बिभीषण पायो ॥ २ ॥
मात कौसल्या करत आरती निज मन वाछित पायो।
यों पद्मनाभ प्रभु फणि-पर-शायी त्रिभुवन सुख करि आयो ॥३॥

स्वातितिरुनालके विनयके पद हमें सूर और तुलसीकी याद दिलानेवाले हैं। उसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है —

[अठाणा राग—आदि ताल]

सुमरण कर जदुनाथ हरीके ॥ टेक ॥
बास कियो जिन धर्म वरीके
सुमरणसे जिनके ॥ १ ॥

की तरफसे उन साधु-सन्तो तथा मेहमानोंको मुफ्तमे बाँट देनेके लिए गेहूँ आटा दाल नमक चावल तरकारी लकड़ी बर्तन आदि चीजे दी जाती थी। उनको समुचित रूपसे तीर्थ-यात्रियोंमें बाँट देनेका भार द्वि भाषियों का था। इस प्रकारके द्विभाषियोंके वंशज कई लोग इस वक्त भी केरलके प्रसिद्ध तीर्थोंके किनारे पाये जाते है। उनमे कुछ सज्जनोंके पास हिन्दुस्तानी भाषा सीखनेके लिए उन दिनों मलयालममे लिखी हुई प्राचीन पुस्तके भी मिलती है। उन हस्तलिखित पुस्तकोसे यह प्रमाणित होता है कि केरलमें बहुत प्राचीन कालसे हिन्दीका अध्ययन हो रहा था। इसी प्रकार प्राचीन गोसाई-मठों के खण्डहर इस वक्त भी केरलमे कही-कही नजर आते है। लेकिन ऐसे गोसाई-मठ और द्विभाषी ज्यादातर तरुविताकूर और कोचिन में ही पाये जाते है, क्योकि वहाँके राजाओकी सरकार बहुत दिनो तक कायम रही और वही द्विभाषियोकी नियुक्ति भी जारी रही।

प्राचीन कालसे तिरुवितांकूर राज्यके राजा लोग बड़े धर्मनिष्ठ कला-कुशल साहित्यानुरागी एव बहु भाषा प्रेमी रहते थे। अत वे स्वय अपने यहाँ आनेवाले साधु-सन्तोका सत्संग पानेके लिए बड़े उत्सुक रहा करते थे। वे अपने दरबारोमे भी हिन्दी–विद्वानो तथा कवियोका विशेष रूपसे स्वागत-सम्मान किया करते थे। उन पण्डितो और कवियोकी सहायतासे वे स्वय हिन्दी सीखनेका भरसक प्रयत्न भी करते थे। अपने प्रयत्नमें बहुतसे राजा लोगोको काफी सफलता मिली थी। उनमे एक राजा ऐसे थे जिन्होने केवल हिन्दी सीखी ही नही बल्कि हिन्दीमें अच्छी-अच्छी कविताएँ भी लिखी थी। उनका नाम स्वाति नक्षत्र रामवर्मा राजा था। वे गर्भ-श्रीमान् और स्वाति तिरुनाल के नामोंसे अधिक प्रसिद्ध हुए थे। उनका जन्म १६ अप्रैल सन् १८१३ को हुआ था। वे संस्कृत तमिल हिन्दी अंग्रेजी मलयालम कन्नड तेलुगु आदि विविध भाषाएँ जानते थे। उन्होने प्राय उन सभी भाषाओमें अच्छे-अच्छे गीत कीर्तन और पद भी रचे है। दक्षिण भारतके सुविख्यात संगीताचार्य त्यागराजके कीर्तनों और गीतोंके समान महाराजा स्वाति-तिरुनाल की रचनाएँ भी संगीत-मर्मज्ञोके बीचमे बहुत प्रसिद्ध मानी जाती है। गर्भ श्रीमान् के हिन्दी-पद और गीत भक्त कवि सूरदास मीरा आदिके पदोके समान कर्ण-मधुर एव भावपूर्ण हुए है।

राजा गर्भ श्रीमान् भी बड़े कृष्ण भक्त कवि थे। उन्होने हिन्दीमे कुछ चालीसके करीब पद और गीत रचे है। पहले वे गीत और पद मलयालम लिपिमें ही लिखे गए थे। अभी तक नागरी अक्षरामें छपी एक पुस्तकके रूपमें उनकी हिन्दी कविताएँ प्रकाशित नही हुई है। इन पंक्तियोंके लेखकने सन् १९१६ में काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी मुख-पत्रिका "नागरी प्रचारिणी पत्रिका में उन गीतोंका एक संग्रह कवि की जीवनीके साथ प्रकाशित कराया था। उस प्रकाशनमे 'गर्भ श्रीमान्' के जितने हिन्दी पद और कीर्तन तब तक उपलब्ध हुए थे उन सबका संग्रह किया गया था।

महाराजा गर्भ श्रीमान् के हिन्दी पदो और कीर्तनोकी भाषामें खड़ी बोली और ब्रजभाषाका सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है। उनमे असीम श्री कृष्ण भक्तिके सूक्ष्म तथा मार्मिक भावोका अभिव्यञ्जन हुआ है। समुचित स्थानोपर सार्थक शब्द-रत्नोका सुन्दर चयन करके अपने पदो और गीतोकी गति और लयता मे कमनीयता और कर्ण-प्रियता पैदा करनेकी कला ही 'गर्भ श्रीमान्' की लेखनीकी सबसे बड़ी विशेषता है। हिन्दी तथा अन्य भाषाओंमें रचे हुए उनके तमाम पदो और कीर्तनोमें हम एक सच्चे भक्तके सम्पूर्ण आत्म

मोर पिछ कटि काछनी राजे कर मुरली उर माल लासे।
फणिवरके पर निरत करत प्रभु देव मुनिश्वर गगन बसे ॥ १ ॥
हाय जोड सब नाग-वधू-जन करें विनती हरि चरणसे।
छोडों हमारे प्रीतमको हम अचल धोवे अँसुवनसे ॥ २ ॥
पद्मनाभ प्रभु फणि पर शायी कद इन जोवों चितवन से।
ऐसी लीला कोटि तुमारी नहीं कहि जावे कविजनसे ॥ ३ ॥

कृष्णके हायकी मुरली, जिसने गोकुलकी गोपियोको प्रेमसे उन्मत्त बना दिया था, कालिन्दीके तीर के कुन्ज-वनोमे कैसा सम्मोहन राग छेडती थी, इसका वर्णन अनेको कृष्ण-भक्त कवियोने किया है। मुरली-माधुरी पर स्वातितिरुनालके भी कुछ सुन्दर पद मिलते है —

[भैरवी राग—आदि ताल]

बँसीवालेने मन मोहा ॥ टेक ॥
बोली बोले मीठी लागे
दर वर उमग करावे ॥ १ ॥
वेणुन वाजे तान गावे ।
निसि-दिन गोपियाँ रिझावे ॥ २ ॥
साँवरा रग मोहनी अग ।
सुमरण तनको भुलावे ॥ ३ ॥
कालिंदीके तीर ठाढे ।
मोहन बाँसुरी बजावे ॥ ४ ॥
पद्मनाभ प्रभु दीन बन्धु ।
सुर नर चरण मनावे ॥ ५ ॥

कृष्णके प्रति गोपियोंके प्रेमके वर्णनमे स्वातितिरुनालने सखी-सम्वादके रूपमें कुछ रमणीय प्रसग उपस्थित किए है, जहाँ हर्ष, अभिलाषा, असूया आदि विविध सञ्चारियोका मार्मिक अभिव्यञ्जन हुआ है। कृष्णकी रूप-माधुरीपर अत्यधिक मोहित हुई एक गोपिका अपनी सखीसे कहती है —

[पूर्वी राग]

आली ! मै तो जमुना जल भरन गई ॥ टेक ॥
जब श्याम सुन्दर सों भेंट भई ।
मोरनके पिछ सीस बिराजत ।
बाँसुरी मो उपजत तान नई ॥ १ ॥
गौवनके सग क्षण धावे क्षण ठाढे ।
ग्वाल बालसे बोली बोले अमृत मई ॥ २ ॥
सोइ पद्मनाभ प्रभु फणि पर शायी ।
मोहे निहाल करे त्रिलोक—दई ॥ ३ ॥

एक जनमें कैसे पतित उधारे प्यारे।
गीधा तारे सुदामा तारे वेश्या तारे अजामिल तारे ॥२॥
मीन कच्छ सूकर नरहरि प्रभु वामन रूप बलि-मद हारे।
परशुराम रघुराम राम बल कल्कि रूप धर वैरय संहारे ॥३॥
शिव सनकादिक अरु ब्रह्मादिक जिनको निसि-दिन मनमें धारे।
सात रात भर गिरिवर धारो सो मनमोहन नन्दकुमारे ॥४॥
नव के राम कृष्ण मधुसूदन पुरुषोत्तम व्रजराज मुरारे
जप तप राखे अधम उधारन पद्मनाभ प्रभु नाथ हमारे ॥५॥

स्वातितिरुनालके अधिकतर पदोंमें भगवान श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओं गोचारणके विविध प्रसंगों तथा गोपी-प्रेम और विरहका मधुर वर्णन मिलता है। कृष्ण मचलकर माता यशोदाके सामने यों शिकायत करते हैं —

[बिहाग राग—आदि ताल]
मैं तो नहिं जाऊँ जननी जमुनाके तीर ॥टेक॥
इतनी सुनके मात जसोदा पूछति मुरहरसे।
क्यों नहिं जावत धेनु चरावन बालक कहु हमसे ॥१॥
कहत हरी सब ग्वालिन मिलि हम छीनत मन कुच से।
जब सब लाज-भरी ब्रज बालिन कहे न कछो मुखसे ॥२॥
तौ हूँ बात सबै मधुसूदन बोले जसुमति से।
जब सब गोपिन तब हरिके मुख ढाँकत निज करसे ॥३॥
ऐसी लीला कोटि किये कैसे जावो मधु बन से।
पद्मनाभ प्रभु दीन-उधारन पालो सब दुखसे ॥४॥

ऊपरके वर्णनमें प्रच्छन्न शृंगारकी झलक बड़ी मार्मिकतासे अभिव्यक्त हुई है। इसी प्रसंगका वर्णन भक्त कवि सूरदासने दूसरे ढंगसे किया है, जहाँ उन्होंने बाल हृदयके भोलेपनके साथ माताके अपार वात्सल्य का चित्र खींचा है। देखिए, सूरका कृष्ण क्या कहता है —
मैया हौं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसौं मेरे पाइ पिराइ॥
जौ न पत्याहि पूछि बलदाउहिं अपनी सौंह दिवाइ।
यह सुनि माइ जसोदा ग्वालिनि गारी देत रिसाइ।
मैं पठवति अपने लरिका कौं आवै मन बहराइ।
"सूरस्याम" मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाइ॥

स्वातितिरुनालने श्रीकृष्णके कालिय-मर्दनकी लीलाका जो वर्णन किया है, वह अत्यन्त सुन्दर हुआ है।

[भैरवी राग—आदि ताल]
कृष्णचन्द्र राधा मन मोहन मेरे मन में विराजो जी ॥टेक॥

मोर पिछ कटि काछनी राजे कर मुरली उर माल लासे।
फणिवरके पर निरत करत प्रभु देव मुनिश्वर गगन वसे ॥ १ ॥
हाथ जोड सब नाग-वधू-जन करें विनती हरि चरणसे।
छोडो हमारे प्रीतमको हम अचल धोवे अँसुवनसे ॥ २ ॥
पद्मनाभ प्रभु फणि पर शायी कद इन जोवों चितवन से।
ऐसो लीला कोटि तुमारी नहीं कहि जावे कविजनसे ॥ ३ ॥

कृष्णके हाथकी मुरली, जिसने गोकुलकी गोपियोको प्रेममे उन्मत्त बना दिया था, कालिन्दीके तीर के कुञ्ज-वनोमे कैसा मम्मोहन राग छेटती थी, इसका वर्णन अनेकों कृष्ण-भक्त कवियोने किया है। मुरली-माधुरी पर स्वातितिरुनालके भी कुछ सुन्दर पद मिलते हैं --

[भैरवी राग—आदि ताल]

बँसीवालेने मन मोहा ॥ टेक ॥
बोली बोले मीठी लागे
'दर दर उमंग करावे ॥ १ ॥
वेणुन वाजे तान गावे ।
निसि-दिन गोपियाँ रिझावे ॥ २ ॥
सांवरा रग मोहनी अग।
सुमरण तनकी भुलावे ॥ ३ ॥
कालिदीके तीर ठाढे।
मोहन बांसुरी बजावे ॥ ४ ॥
पद्मनाभ प्रभु दीन बन्धु।
सुर नर चरण मनावे ॥ ५ ॥

कृष्णके प्रति गोपियोंके प्रेमके वर्णनमें स्वातितिरुनालने सखी-सम्वादके रूपमे कुछ रमणीय प्रसग उपस्थित किए है, जहाँ हर्ष, अभिलाषा, असूया आदि विविध सञ्चारियोका मार्मिक अभिव्यञ्जन हुआ है। कृष्णकी रूप-माधुरीपर अत्यधिक मोहित हुई एक गोपिका अपनी सखीसे कहती है —

[पूर्वी राग]

आली! मै तो जमुना जल भरन गई ॥ टेक ॥
जब श्याम सुन्दर सों भेंट भई।
मोरनके पिछ सीस बिराजत।
बांसुरी मो उपजत तान नई ॥ १ ॥
गौवनके सग क्षण धावे क्षण ठाढे।
ग्वाल बालसे बोली बोले अमृत मई ॥ २ ॥
सोइ पद्मनाभ प्रभु फणि पर शायी।
मोहे निहाल करे त्रिलोक—दई ॥ ३ ॥

रास-लीलाके समयमें कृष्ण गोपियोंको धोखा देकर कहीं छिप गया। सबेरे कृष्ण जब एक गोपीके घरके सामनेसे निकला तब उसका रूप देखकर चतुर गोपिका सारा रहस्य जान गई। वह ईर्ष्यासे जल-भुन कर अपनी जैसी दुखिया दूसरी सखीको बुलाकर यों कहती है —

[राग भैरवी—आदि ताल]

आये गिरिधर द्वारे मोरे चोरी।
अंजन अधर ललाट महावर नयन उनींदे चल आये।
रयन समय प्रभु छलबल करिके कौन तियाको बिरमाये।
बिन गुण माल बिराजत हिय में मृदु पलकन्या सुख पाये।
ब्रज नारीको बंचन कर के कैसे प्रीतम सुख पाये॥
सोलह सिंगार करि फूलनके हार लिये बिविध सुगन्धसे मन भाये।
बैठी थी मो मनके साथी कुमुद सरोवर कुम्हलाये॥
सुखके कारन दुखसे के निवारन मधुबन मुरली धुन गाये॥
पद्मनाभ प्रभु फणि-पर-शायी कोटि मदन तनछवि छाये॥

स्वातितिरुनालने संयोग शृंगारका जो चित्रण किया उसमें शील और संयमका पूरा ख्याल रखा है जिससे वे अन्य कृष्ण भक्त कवियोंकी मामूली मस्तीसे बच गए हैं।

[सुरटि राग—आदि ताल]

खेलो पिया चांदनी रात॥टेक॥
अब रहियो मोरे साथ।
बिजलीसे प्रीत लगाऊँ।
मुझमें मुझ ही मिलाऊँ।
सब फूल हार बनाऊँ।
मन भर भर भूषण पाऊँ॥१॥
तन मों अबीर लगाऊँ।
अँखियाके कोर झुलाऊँ।
बिनके वियोग भुलाऊँ।
तोसे चुनरि हमारि रंगाऊँ॥२॥

गोपियोंके विरह-दुःखके वर्णनमें प्रेमके वियोग-पक्षकी सम्पूर्ण मार्मिकता अभिव्यक्त करनेका प्रयत्न किया गया है। प्रिय प्रवास में दुखिया एक गोपी अपने विरहका असह्य दर्द अपनी सहेलीके सामने यों प्रकट करती है —

[बिहाग राग—आदि ताल]

सुनो सखि मेरी मनकी दरद री॥टेक॥
जब फिरती मैं रंगमहलमें
सेज पलंगपर तड़पके जागी॥१॥

बेल चमेरी दौना मरुवा
चम्पे गुलावकी हार बनाती ॥ २ ॥
जैसे जल बिन तरसत पछी।
तरस रही मेरो पिय बिन छाती ॥ ३ ॥
सोवत नाहि लगे गोरि। निद्राऊँ।
बीच बीच पियाको बुलाती ॥ ४ ॥
निसि दिन भर भर चुवा रे चन्दन
अतर अरगजा अग लगाती ॥ ५ ॥

भ्रमर-गीतका प्रसग भी बहुत मार्मिक हुआ है, जहाँ सूरदासकी गोपियाँ उद्धवके आगे रोकर कहती है—

बिनु गोपाल बैरिनि भई कुजै।
वृथा बहति जमुना, खग बोलत,
वृथा कमल फूलै अलि गुजै।

और यह करुण सन्देश सुनाती है कि " मधुकर, इतनी कहियहु जाई। अति कृस गात भई ये तुम बिनु, परम दुखारी गाई।" वहाँ स्वातितिरुनालके वर्णनमे गोपियाँ उद्धवके सामने अपने प्रेम-विह्वल हृदयकी अपार विरह-व्यवस्था यो प्रकट करती है—

[पूर्वी राग—चौताल]

ऊधो, सुनिये मेरो सन्देश, चले जबसे पिया परदेश। ॥ टेक ॥
गौवाँ तृण नीर त्याग किन्हों, सबै ग्वाल बाल शोक किन्हो।
जल-जमुना नहीं भावै, घडी भर कुज कुम्हलावै ॥ १ ॥
हाथ मुरली, गले माला, चले जब नन्दके लाला।
मोह ब्रजके जो नरनारी, भूले कैसे मोको बनचारी ॥ २ ॥
जब लीनो जन्म ब्रजमें, हरो सब ताप क्षण भरमें।
ऐसे प्रभुके वियोग सहे, कैसे हमको सो छौंडि रहे ॥ ३ ॥
जाकी महिमा पुकारे वेद जा को नहि लोक लोक विभेद।
जा के बल हरे मन शूल, ताके मुखचन्द्रसे कर दूत ॥ ४ ॥

स्वातितिरुनालके कुछ गीतोके भाव मीरांबाईके विरह-गीतोके भावोसे मिलते-जुलते हैं। दर्द-दिवानी मीराँ गाती है —

चलो मन गगा जमुना तीर।
गगा जमुना निरमल पानी, शीतल होत शरीर।
बसी बजावत गावत कान्हो, सग लिया बलबीर।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुडल झलकत हीर।
मीरांके प्रभु गिरिधर नागर, चरण कँवल पै सीर।

स्वातितिरुनालका गीत यों है —

[धन्यासी राग—चौताल (ध्रुपद)]

जमुना किनारे प्यारे कदमपर मोहन।
बाँसुरी बजावे सखि कुंज भवन में
मोर पिछ गले माल मकराकृत कुंडल।
मकुटादिक भूषण सोभा देत तनमें
पद्मनाभ दीनबन्धु मेरो ताप हारो।
प्रभु गोपिनाथ गिरिधर रहो मेरे मन में

स्वातितिरुनालने भगवान शिवकी स्तुतिमें भी कुछ गीत रचे हैं। नीचे एक उदाहरण दिया जाता है —

[धनयासी राग—चौताल]

सीस गंग भस्म अंग अरधंग गौरी संग बरखा के।
बरतुरंग ताप-संग लागे ॥ टेक ॥
सदा संग भरा रंग भूषणके भये।
भुजंग ओढ़े चर्म मतंग संग की जो पद के ॥ १ ॥
हतानंग कृपापाग धारे हाथ बीच कुरंग।
वास कीन्हो हृदय-कमल पद्मनाभ प्रभु के ॥ २ ॥

महाराजा धर्म भीमान की तरह मलयालम साहित्यके प्रसिद्ध कवि कुंचन् नम्बियारकी कविताम भी उत्तर भारतसे आनेवाले सन्यासियोंकी बोलीमें हिन्दीका प्रसंगानुकूल प्रयोग किया गया है। इससे यही सिद्ध होता है कि उन दिनों केरलमें हिन्दी जानने वाले लोग अवश्य रहते थे।

प्राचीन कालकी केरलीय सेनाओंमें राजपूत मराठे पञ्जाबी वगैरह उत्तरीय लोगोंको भी शामिल किया करते थे। उन उत्तर भारतीयोंके साथ यहाँके सिपाहियोंको पलटनमें काम करना पड़ता था। उनके लिए उन्हें हिन्दुस्तानीमें बातचीत करनेकी शक्ति हासिल करनेकी जरूरत पड़ती थी। अतः उन दिनों केरलके सैनिकोंके बीचम एक प्रकारकी बोलचालकी हिन्दीका अध्ययन और प्रचार होता था। फौजके सिपाहियोंके सम्पर्कमें आनेवाले कुछ साधारण लोग भी उनकी हिन्दी सीखनेका प्रयत्न करते थे। मलयालम भाषाके गद्य ग्रन्थ पयन्नूरके भाषाकी बानगीका जो उदाहरण दिया जाता है उसमें हिन्दी व उर्दूके कई शब्द मिश्रत हैं। इसका कारण यह भी बताया जाता है कि मुगल बादशाह औरंगजेबके जमानेसे लेकर दक्षिणी रियासतोंकी फौजके ओहदेदारोंको उर्दू या हिन्दुस्तानीकी बोली भी जानकारी रखना अत्यन्त आवश्यक माना गया था।

मैसूरके बहादुर सुलतान हैदरअली और उनके बेटे टिप्पूने जब केरलके उत्तरी प्रदेशोंपर हमला किया और केरलके कई लोगोंको मुसलमान बनाया तब यहाँके कुछ खास मुकामोंपर उर्दू भाषा जानने वाले लोगोंकी तादादमें भी तरक्की हो गई। उसका प्रभाव मलयालम भाषापर भी अवश्य पड़ा। हिन्दी उर्दूके कई तत्सम एवं तद्भव शब्द मलयालम भाषामें प्रयुक्त होने लगे। गुजर बाकी

'जवाब', 'सवाल', 'बदला', 'ताल्लुक', 'तहसील', 'सूबा', 'हराम', वगैरह कई शब्द मलयालममें घुल-मिलकर मलयालमके अपने से बन गए।

केरलके प्राय सभी बन्दगाहोपर उत्तर भारतसे मारवाडी, गुजराती, पारसी, मुसलमान आदि व्यापारी सैकडो सालोके पहले आकर बस चुके थे। वे एक प्रकारकी बोलचालकी हिन्दी भाषामें ही यहाँके निवासियोसे बातचीत किया करते थे। उन उत्तर भारतीय व्यापारियोके साथ अच्छी तरह व्यापार करनेके लिए यहाँके कई आदमियोको उनकी हिन्दी भाषाका अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि केरलके प्रधान-व्यापार-केन्द्रोंके आसपास रहनेवाले लोग एक प्रकारकी टूटी-फूटी हिन्दी या हिन्दुस्तानीसे परिचित होने लगे।

पहले ही बताया जा चुका है कि केरलमें बहुत पुराने समयसे ही सस्कृत भाषाका अध्ययन और अध्यापन हो रहा था, जिससे यहाँके साधारण लोगोकी बोलचालकी भाषामें भी वर्तमान हिन्दीके बराबर सैकडो सस्कृत-शब्दोका प्रयोग होना अत्यन्त सहज और स्वाभाविक बन गया था। इसीलिए हिन्दी का जो सस्कृतमय साहित्यिक रूप है, वह पहले ही से मलयालम-भाषा-भाषी लोगोको काफी सरल प्रतीत हुआ। तुलसीदास की 'राम-चरित-मानस' और नाभादासकी 'भक्तमाला' जैसी रचनाओका गद्यानुवाद मलयालममें बहुत पहले ही प्रचलित हो जानेका मुख्य कारण कदाचित् यही माना जाता है। इस प्रकार केरलके लोगोकी दृष्टिमें आधुनिक युगके 'हिन्दी प्रचार आन्दोलन' के शुरू होनेके पहले ही, हिन्दी भाषा एक सुपरिचित एव सुबोध भाषाके रूपमें काफी लोकप्रिय बन चुकी थी, और उस भाषाका थोडा बहुत अध्ययन धार्मिक, राजनैतिक तथा व्यापारिक कारणोसे यहाँ पर अवश्य हो रहा था। लेकिन यह मानना पडता है कि केरलमें सगठित एव व्यवस्थित रूपसे हिन्दी प्रचारका कार्य सिर्फ सन् १९२२ से ही आरम्भ हुआ है।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीने दक्षिण भारतमे हिन्दी प्रचारका काम करनेके लिए मद्रासमें 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' नामक सस्था की स्थापना करके वास्तवमें एक बडा भारी राष्ट्र-निर्माणका कार्य पूरा किया है। अब इस बडी सस्थाकी चार प्रान्तीय शाखाएँ अथवा सभाएँ स्थापित हो चुकी है। इन्ही प्रान्तीय सभाओकी तरफसे प्रत्येक प्रान्त में गत चालीस सालोसे हिन्दी प्रचारका कार्य बडी सफलतासेके साथ किया जा रहा है। सबसे पहले सन् १९२२ मे मद्रासकी 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' ने एक केरलीय हिन्दी विद्वान श्री एम दामोदरन उण्णिको उत्तर भारतसे बुलाकर केरलमें हिन्दी प्रचारका कार्य करने तथा उसके लिए आवश्यक सगठन आदिकी व्यवस्था करनेका आदेश दिया। श्रीमान दामोदरन उण्णि केरलके एट्टुमानूर नामक गाँवके निवासी थे। उत्तर भारतमें सस्कृत भाषाका विशेष अध्ययन करनेके लिए गए हुए थे। वहाँ कई सालो तक आर्य-समाजी गुरुकुलोंमे अध्ययन और अध्यापनका कार्य करते हुए, उन्होने सस्कृत और हिन्दीका अच्छा पाण्डित्य प्राप्त किया था। इसलिए उन्होने हिन्दी प्रचार सभाका आदेश सहर्ष स्वीकार किया और केरलमें आकर राष्ट्रभाषाका प्रचार करने लगे। श्री दामोदरन उण्णिने केरलके कई प्रधान केन्द्रोमें भ्रमण करके यहाँ लोगोको हिन्दी सीखनेकी जरूरत समझाई। वे स्वय प्रत्येक केन्द्रमें पाँच-छह महीनो तक रहकर वहाँके उत्साही स्त्री-पुरुषोको पढाने लगे। उनके हिन्दी-वर्गके किसी होनहार विद्यार्थीको वे नए हिन्दी वर्ग चलाने का कार्य भी सौंप देते थे। उनकी सलाह और सहायतासे प्रोत्साहित होकर कई नए हिन्दी-प्रचारक इस

क्षेत्रमें काम करने लगे। इसलिए जब कभी वे अपने किसी एक केन्द्रका काम बीचमें छोड़कर अन्यत्र चले जाते थे तो वहाँ का काम पूर्ववत् जारी रखनेकी जिम्मेदारी उन विद्यार्थियोंपर छोड़ देनेमें कामयाब होते थे। उनके द्वारा संगठित हिन्दी केन्द्रोंमें कभी कार्यकर्ताओंका अभाव नहीं रहा है। उनकी इस सफल नीतिके कारण नए-नए हिन्दी प्रचारक अलग-अलग केन्द्रोंमें जाकर स्वतन्त्र रूपसे हिन्दीका प्रचार करने लगते। इस तरह श्री दामोदरन उण्णिने अकेले ही बहुतसे हिन्दी-केन्द्रोंका संगठन मात्र नहीं किया बल्कि सञ्चालन भी खूब किया। वे संस्कृत हिन्दी और मलयालमके प्रकाण्ड विद्वान थे अच्छे वक्ता सफल संगठक और सरस अध्यापक थे। इसलिए उनके व्यक्तित्व और प्रवचनोंसे प्रभावित होकर बहुतसे लोग हिन्दी पढ़ने और पढ़ानेमें में बड़ी दिलचस्पी दिखाते थे। उनकी मजेदार बातें सुनने के लिए कई प्रतिष्ठित सज्जन उनके वर्गोंमे शामिल हुआ करते थे। वे वास्तवमें एक आदर्श हिन्दी-प्रचारक थे। केरलके हजारों आधुनिक हिन्दी प्रचारकोंमें बहुतसे लोग ऐसे हैं जो या तो श्री दामोदरन उण्णिके शिष्योंमेंसे हैं अथवा उनके शिष्योंकी परम्पराके विद्यार्थी हैं। इन पंक्तियोंका लेखक भी उनके शिष्योंमेंसे एक है। स्वर्गीय श्री दामोदरन उण्णिजी ही केरलके प्रथम हिन्दी प्रचारक माने जाते हैं।

सन् १९२५ से मद्रासकी हिन्दी प्रचार सभाकी तरफसे केरलमें श्री दामोदरन उण्णिके अलावा श्री के. नियाचन नायर, श्री के आर. शंकरानन्द—जैसे दो-चार नए हिन्दी प्रचारक भी नियुक्त हुए। उन प्रथम प्रचारकोंके अथक परिश्रमसे केरलके कतिपय केन्द्रोंमें संगठित रूपसे हिन्दी प्रचारका काम चलने लगा। कितने ही नए हिन्दी वर्गोंका संगठन हुआ। हिन्दी प्रचार सभाकी परीक्षाओंके लिए नए-नए केन्द्र खोले गए। जगह-जगह हिन्दी-प्रचारकी आवश्यकता और महत्वको समझानेके लिए प्रचारक-सम्मेलन होने लगे। केरलके उत्साही युवकोंको हिन्दी-प्रचार सभाकी तरफसे सञ्चालित प्रचारक विद्यालयोंमें शामिल होकर पढ़नेके लिए छात्रवृत्ति देकर बुलाया गया। उन विद्यालयोंमें बीसों युवक पढ़नेके लिए गए और अपनी शिक्षा पूरी करके वापस आनेपर केरलके किसी न किसी केन्द्रमें हिन्दी-प्रचारका कार्य करनेमें लीन हो गए। इस प्रकार ज्यों-ज्यों केरलके हिन्दी केन्द्रोंकी संख्या बढ़ने लगी त्यों-त्यों नए-नए उत्साही एवं निस्वार्थ हिन्दी प्रचारक भी इस महान आन्दोलनमें स्वेच्छासे भाग लेने लगे।

सन् १९२२ से सन् १९३२ तक केरलमें हिन्दी-प्रचारका जो कार्य हुआ उसका पूरा उत्तरदायित्व सीधे 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' का ही रहा था। इस बीचमें सन् १९२८ में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके प्रचार मन्त्रीके पदपर कोचिन-निवासी डब्ल्यू पी इग्नेशियसकी नियुक्ति हुई। उन्होंने केरलमें हिन्दी प्रचार कार्यको पूर्वाधिक संगठित एवं व्यवस्थित रूप प्रदान करनेमें सफलता पाई। उनके प्रयत्नोंके फलस्वरूप सन् १९२८ में कोचिन राज्यकी विधान सभामें हिन्दी-प्रचारके सम्बन्धमें एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुआ जिसका आशय यह था कि कोचिन रियासतके तमाम हाईस्कूलोंमें अनिवार्य रूपसे राष्ट्रभाषा हिन्दी पढ़ाई जाए। उन्हीं दिनोंमें कोचिनके महाराजाके परिवारके स्त्री-पुरुष भी हिन्दी पढ़ने लगे थे। अतः महाराजा ने भी उपर्युक्त प्रस्तावका विरोध नहीं किया। उस समयके शिक्षा-निर्देशक (डी पी आय) श्री सी मत्ताईने उस प्रस्तावसे प्रेरित होकर कोचिन राज्यके कुछ प्रमुख हाईस्कूलोंमें ऐच्छिक रूपसे हिन्दी पढ़ानेकी व्यवस्था की। उन स्कूलोंमें हिन्दी पढ़ानेके लिए आवश्यक अध्यापकोंको सभाने ही प्रदान किया था जिनमें सभाके सर्वैतनिक एवं सहायक प्रचारक श्री पी के. केशवन नायर, श्री पी के नारा-

यणन नायर, श्री के आर शकरानन्द, श्री के केशवन नायर , श्री के वी नायर, श्री जी नीलकण्ठन नायर, श्री कृष्णदेव, श्री एम नारायण मेनोन, श्री राघवन इलयिटम, श्री के माधव कैमल, श्री के जी पणिक्कर आदि पुराने हिन्दी-सेवी महाशय भी शामिल थे। इस तरह दक्षिण भारतमे सबसे पहले हाईस्कूलोमें हिन्दी पढानेकी व्यवस्था करनेका श्रेय कोचिन के महाराजाकी ही सरकारको प्राप्त हुआ।

धीरे-धीरे केरलमे हिन्दीका प्रचार पूर्वाधिक बढने लगा तो सन् १९३२ मे दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाने यहाँका काम सुचारु रूपसे चलानेके लिए अपनी एक प्रादेशिक शाखा एरणाकुलम् शहरमें स्थापित की। उस शाखाके मन्त्रीके पदपर श्री ए चन्द्रहासन नियुक्त हुए। उनके नेतृत्वमे हिन्दी-प्रचारमें बडी प्रगति होने लगी। थोडे ही दिनोके बाद तिरुविताकूर रियासतमे हिन्दी प्रचार-कार्यको सगठित रूपसे चलानेके लिए सभाकी एक नवीन शाखा तिरुवनन्तपुरम शहरमे भी खोलनी पडी। उस शाखाके मन्त्री पण्डित देवदूत विद्यार्थी बनाए गए। एरणाकुलम्‌मे स्थापित शाखाकी देख-रेखमे कोचिन राज्य और मलबारके हिन्दी-प्रचार-कार्य सम्पन्न होने लगा, और तिरुविताकूर रियासत मात्रका काम तिरुवनन्तपुरमकी शाखाकी तरफसे सञ्चालित एव सगठित होने लगा। इन दोनो नवीन शाखाओंके निरन्तर प्रयत्नके कारण केरलके कोने कोनेमे नए-नए हिन्दी-केन्द्रोका सगठन बहुत शीघ्र हो गया। हिन्दी प्रचारको और हिन्दी वर्गोंकी सख्या भी बेहद बढ गई। विभिन्न परीक्षाओमे हजारोकी तादादमे परीक्षार्थी शामिल होने लगे। सभाके इने-गिने सवैतनिक प्रचारकोंके अलावा कई उत्साही स्वतन्त्र प्रचारक भी निस्वार्थ भावसे हिन्दी प्रचारका कार्य करनेमे तन मनसे लग गए। इस प्रकार सन् १९३२ से १९३६ तक केरलके हिन्दी-प्रचार-कार्यमे जो प्रशसनीय प्रगति हुई, उसका पूरा श्रेय सभाकी इन दोनो शाखाओको दिया जा सकता है।

सन् १९३६ के बाद दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके आदेशानुसार उसीके तत्वावधानमे आन्ध्र तमिलनाडु, केरल और कर्नाटककी प्रान्तीय भाषाओंके आधारपर उन चारो, भाषावार प्रान्तोमे हिन्दी प्रचारका काम स्वतन्त्र रूपसे चलानेकी प्रेरणा देनेके उद्देश्यसे अलग अलग चार 'प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभाएँ' स्थापित हो गई। उनमें केरलकी प्रान्तीय सभाका सम्विधान, सन् १९३६ जुलाई मासमें सभाके सदस्योका जो विराट सम्मेलन एरणाकुलममे बुलाया गया, था, उसमे सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ। उसी सम्मेलनमे सभा के तत्कालीन पदाधिकारियोका चुनाव भी किया गया। कोचिन राज्यके अवकाश-प्राप्त शिक्षा-निर्देशक स्वर्गीय श्री सी मत्ताई ही सर्व सम्मतिसे सभाके प्रथम अध्यक्ष चुने गए। देशके कुछ प्रमुख नेताओकी एक कार्यकारिणी समिति भी उसी दिन बनायी गई। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाने अपने सुयोग्य एव महान कार्यकर्ता पण्डित देवदूत विद्यार्थीको केरलकी नवीन प्रान्तीय सभाके मन्त्रीके पदपर नियुक्त किया। इस तरह सन् १९३६ में जिस प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभाका जन्म केरलमे हुआ था, वही अब तक वहाँका हिन्दी प्रचार-कार्य बडी दक्षता और सफलताके साथ करती आ रही है।

मद्रासकी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके मार्गदर्शनके अनुसार उपर्युक्त प्रान्तीय सभा अपने प्रजातन्त्रात्मक सविधानके आधारपर हिन्दी प्रचार सम्बन्धी बहुमुखी कार्य-कलाप करती है। हिन्दी प्रचार के महान कार्यमें सहयोग और सहायता देनेकी इच्छा रखनेवाले सभी बालिग स्त्री-पुरुष नियत चन्दा देकर इस सस्थाके सदस्य बन सकते है। सदस्योके विराट सम्मेलनोमें सभाकी व्यवस्थापिका समिति के सदस्य

चुने जाते हैं। उसके बाद व्यवस्थापिका समिति अपनी एक कार्यकारिणी समितिका चुनाव करती है। सभाके अध्यक्ष उपाध्यक्ष कोषाध्यक्ष कार्यकारिणी समितिके सदस्य आदि पदाधिकारी भी नियमानुसार चुने अथवा मनोनीत हो जाते हैं। लेकिन प्रान्तीय सभाके मन्त्रीकी नियुक्ति भारत हिन्दी प्रचार सभा स्वयं करती है। इस प्रकार प्रान्तीय सभाकी जो कार्यकारिणी समिति बनती है वही व्यवस्थापिका समितिके निर्देशानुसार इस संस्थाको सुचारु रूपसे चलानेका काम सम्भालती है। यद्यपि प्रत्येक प्रान्तीय सभा अपने बहुमुखी कार्योंके लिये अपने प्रान्तके लोगोंसे समय समयपर चन्दा दान आदि वसूल करती है तो भी इनकी मातृ संस्था दक्षिण भारतकी हिन्दी प्रचार सभा ही आवश्यकतानुसार अनुदान आदि देकर उसको अपना आर्थिक उत्तरदायित्व पूरा करनेका मौका देती है। इसलिए प्रत्येक प्रान्तीय सभाका अभेद सम्बन्ध दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभासे अवश्य बना रहता है।

केरलकी प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा अपने प्रान्तके हिन्दी प्रचार कार्यको बढानेके लिये बीसों सवैतनिक एवं सैकडों सहायक हिन्दी-प्रचारकोंकी नियुक्ति करती है। अपने सुयोग्य एवं अनुभवी सगठकोंके द्वारा नए नए हिन्दी केन्द्रोंका सगठन करके हिन्दी प्रचार मण्डल और शाखा-समितियाँ कायम करना भी सभाके कार्यक्रममें प्रधान माना जाता है। हिन्दीकी प्रारम्भिक तथा उच्च शिक्षा प्रदान करनेके लिए विभिन्न केन्द्रोंमें प्रारम्भिक हिन्दी विद्यालयों तथा महाविद्यालयोंका सञ्चालन भी सभा करती है। प्रमुख केन्द्रोंमें हिन्दी पुस्तकालयों और वाचनालयोंकी स्थापना करके हिन्दी पढे-लिखे लोगोंकी जानकारी बढानेकी व्यवस्था भी यही संस्था करती है। इसी प्रकार समय समय पर *हिन्दी-सप्ताह हिन्दी मेला हिन्दी-शिविर, हिन्दी-स्पर्धाएँ,* हिन्दी प्रचारक सम्मेलन सार्वजनिक हिन्दी प्रचार सम्मेलन हिन्दी नाटक प्रदर्शन हिन्दी-पत्रिका-प्रकाशन आदि विविध कार्यकलापोंके जरिए, केरलकी जनतामें हिन्दी सीखनेकी अभिरुचि बढानेमें यह प्रान्तीय सभा काफी सफल हो रही है। विविध हिन्दी परीक्षाओंके द्वारा केरलके लोगोंमें हिन्दीकी जानकारीको सुदृढ एवं विकासोन्मुख बनाए रखने का प्रयत्न करना सभाका सबसे प्रधान कार्य माना जाता है। केरलके स्कूलों और कालेजोंमें हिन्दीकी पढाईका प्रबन्ध करानेमें भी प्रान्तीय सभाको बडी सफलता प्राप्त हो गई है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि आज दक्षिण भारतमें केरल ही एक ऐसा अहिन्दी प्रदेश है जहाँके सभी स्कूलों और कालेजोंमें हिन्दी अनिवार्य रूपसे पढाई जाती है।

केरलमें सभाकी प्राथमिक से लेकर प्रवीण" तककी तमाम हिन्दी परीक्षाएँ इतनी लोक-प्रिय बन चुकी हैं *कि प्रत्येक बार इन परीक्षाओंमें हजारोंकी तादादमें परीक्षार्थी बैठते हैं* और उत्तीर्ण होनेपर अपनी हिन्दी पढाई जारी रखनेका प्रयत्न बराबर करते रहते हैं। हिन्दी अध्यापकोंकी प्रशिक्षण देनेके लिए सभा जो प्रचारक परीक्षा चलाती है उसमें भी कई लोग हर बार बैठते हैं और उत्तीर्ण होनेके बाद स्वयं हिन्दी पढानेके कार्यमें ही लग जाते हैं। ऐसे हिन्दी-प्रचारकों और हिन्दी-सेवकोंकी सख्या केरलमें प्रतिवर्ष बढती ही रहती है। आज केरलका कोई गाँव या कस्बा ऐसा नहीं होगा जहाँ पर कोई न कोई हिन्दी-प्रचारक अथवा हिन्दी-विद्यालय अथवा हिन्दी-वर्ग नहीं चलता हो।

यद्यपि केरलकी प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभाका पुराना नाम केरल हिन्दी प्रचार सभा था तो भी आज इसको दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (केरल) का नया नाम दिया गया है। इस संस्थाका सदर-मुकाम एरणाकुलममें है। इसमें अपना निजी मकान व्याख्यान-भवन पुस्तक बिक्री विभाग महा

विद्यालय आदि भी है। इस सस्थाके तीन जिल्हा-कार्यालय, बीसो शाखा-कार्यालय, पचासो हिन्दी-प्रचार मण्डल, सैकडो विद्यालय, तथा अनेक हिन्दी पुस्तकालय इस समय केरलमे स्थापित हो चुके है। सन् १९४५ मे इस सस्थाके सवप्रथम मन्त्री पण्डित देवदूत विद्यार्थीकि उत्तर भारत चले जानेके बाद समय-समय पर सर्वश्री ए चन्द्रहासन, पी के नारायणन नायर, एन सुन्दर अय्यर, पी के केशवन नायर, एम महलिगम, के आर विश्वनाथन, जी सुब्रह्मण्यम, नारायण देव तथा इन पक्तियोंके लेखकने इसके मन्त्रीके पदपर काम किया है। सन् १९४७ से लेकर सन् १९५९ तक बारह साल इन पक्तियोंके लेखकको अपने केरलकी इस प्रियतम हिन्दी सस्थाके मन्त्रीके पदपर जो सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उससे वह अपनेको अवश्य अत्यन्त धन्य मानता है, और उन दिनोकी कठोर एव मधुर स्मृतियाँ वह अपने जीवनमे कदापि नही भूल सकता। समय-समयपर केरलकी सभाके अध्यक्ष चुने जानेका सौभाग्य जिनको प्राप्त हुआ, उनमे, सर्वश्री स्वर्गीय सी मत्ताई, स्वर्गीय चेगनाशेरी परमेश्वरन पिल्लै, स्वर्गीय राव बहादुर नारायणन पण्डाले, स्वर्गीय टी के कृष्ण मेनोन, स्वर्गीय डॉ ए आर मेनोन, एम अच्युतन वैद्यर, एन सुन्दर अय्यर, आर कृष्ण अय्यर, के पी माधवन नायर, पी के केशवन नायर आदि महाशयोंके नाम अवश्य स्मरणीय है। सभाके सगठकोंके पदपर समय-समयपर नियुक्त हुए सवश्री ऐ वेलायुधम, कृष्ण पिल्लै, परमेश्वर पणिक्कर, सी जी गोपालकृष्णन्, सी आर नाणप्पा, ए वासु मेनोन, एन सदाशिवन, एम पी माधव कुरुप, नारायण दत्त, नारायण देव आदि सफल कार्यकर्ताओने जो प्रशसनीय सेवा की है, उसका सक्षिप्त परिचय देना भी यहाँ पर सम्भव नही है। केरलके प्रशिक्षण विद्यालयोंमे प्रधान अध्यापक तथा प्राध्यापकके पदपर काम करके अच्छे सुयोग्य प्रचारकोंको तैयार करके प्रदान करनेकी सराहनीय सेवा, जिन महाशयोने की है, उनमे सर्वश्री का म शिवराम शर्मा, सोमनाथ, पी नारायण, पन्नालाल त्रिपाठी, टी पी वीरराघवन, सुमतीन्द्र आदिके नाम उल्लेखनीय है। आखिर इस वक्त कुछ खास परिस्थितियोके कारण मद्रासकी मातृसस्था दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी तरफसे केरलके लिए एक विशेष अधिकारी नियुक्त हुए है। अत कुछ दिनोसे श्री आञ्जनेय शर्माजी विशेष अधिकारी की हैसियतसे इस सस्थाका कार्य-भार सम्भाल रहे है। इस समय इस सस्थाकी देख-रेख मे हिन्दी-प्रचारके महान कार्यमे लगे हुए तीन हजारसे अधिक हिन्दी-प्रचारक है, जिनमे ज्यादा लोग यद्यपि सरकारी तथा गैर सरकारी स्कूलो और कालेजोमें काम कर रहे है,तो भी वे सबके सब सभा की सेवा भी यथावकाश भरसक अवश्य करते ही रहते है, और अपने को सभाके प्रचारक घोषित करनेमे बडे गौरव और आनन्दका अनुभव भी करते है। इनके अलावा सभाके कुछ सवैतनिक एव सहायक प्रचारक अपना पूरा समय सभाके कार्योमे ही लगाते है। ऐसे प्रचारकोंकी अपेक्षा उपर्युक्त स्वन्तत्र प्रचारकोकी सख्या ही वास्तवमें ज्यादा है, और उनकी निस्वार्थ सेवाओके कारण ही सभाकी प्रतिष्ठा प्रतिदिन बढती रहती है।

हिन्दी-प्रचार सभाके अलावा केरलकी सरकार और केरलके विश्वविद्यालय (युनिवर्सिटी) की तरफसे भी हिन्दी प्रचारका कार्य जोरोंसे चल रहा है। विश्वविद्यालयकी तरफसे "हिन्दी विद्वान" नामक एक उच्च परीक्षा चलाई जाती है। विश्वविद्यालयकी प्रेरणासे केरलके प्राय सभी कालेजोमें हिन्दी पढानेकी व्यवस्था हो चुकी है। अत कालेजोमे हिन्दी पढ़नेवालो और पढानेवालोकी सख्या बहुत बढ़ रही है। विश्वविद्यालयने अपने कुछ प्रमुख कालेजोमे हिन्दीमे 'एम ए' तककी पढाईका समुचित प्रबन्ध भी किया है। अत केरलके कई पुराने हिन्दी-प्रचारक और वर्तमान हिन्दी अध्यापक इस समय

एम ए बननेकी कोशिश में लगे हुए हैं। उनमे सैकडों अध्यापक उत्तर भारतीय विश्वविद्यालयोंमें जाकर स्वय अध्ययन करके एम ए की डिग्री पहले ही प्राप्त कर चुके हैं। यहांके कालेजोंमें काम करने वाले चार पाँच प्राध्यापक उत्तर भारतीय विश्वविद्यालयोंसे पी एच डी की पदवी हासिल करनेमें भी कामयाब हुए हैं।

इस समय केरलकी सरकारकी तरफसे राज्यके हिन्दी-प्रचार-कार्यमें यथाशीघ्र प्रगति लानेके लिए एक "विशेष अधिकारी" (Hindi Special officer) भी नियुक्त हुए हैं। हिन्दी अध्यापकोंके लिए प्रशिक्षण-शिविर ट्रैनिंग विद्यालय आदि भी केरल सरकार चलाती है। अपनी सेवामें रहनेवाले योग्य हिन्दी अध्यापकोंको समय समयपर छात्रवृत्ति और मार्ग-व्यय देकर हिन्दी की उच्च शिक्षा पानेके लिए उत्तर भारत भेजनेका कार्य भी सरकार करती है। हिन्दी-प्रचारके लिए एक प्रदर्शनी-वैन (गाड़ी) भी सरकारने खरीदी है। केरलकी प्रमुख हिन्दी सस्थाओंको आर्थिक सहायता देकर यथा-सम्भव प्रोत्साहित करनेकी नीतिका पालन भी सरकार करती है। इसके अलावा अपनी विविध योजनाओंके द्वारा केन्द्र सरकारसे समय-समय हिन्दी प्रचारके लिए भरसक अनुदान पानेका प्रयत्न भी अवश्य करती है।

केरलमें जो साम्यवादी सरकार श्री ई एम एस नम्पूतिरिपाटके मुख्य मन्त्रित्वमें पिछली बार करीब तीन साल तक शासन कर रही थी उसने भी यहांके हिन्दी प्रचारको पूर्ण रूपसे प्रोत्साहित करनेमें कोई बात उठा नहीं रखी थी। श्री नम्पूतिरिपाटकी साम्यवादी सरकारने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (केरल) को भवन-निर्माणके लिए दस हजार रुपए विशेष अनुदानके रूपमें दिए और पहले प्रान्तीय पुरानी कांग्रेस सरकारकी तरफसे सिर्फ एक सौ रुपए मात्रका जो मासिक अनुदान दिया जाता था उसको बढ़ाकर दो सौ पचास किया गया। इस प्रकारके कई कारणोंसे हमको यह बात सहर्ष स्वीकार करनी पड़ती है, कि केरल राज्यकी विविध सरकार हमेशा हिन्दी प्रचारके कार्यमें अवश्य सहयोग और सहायता प्रदान करती ही रहती है।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (केरल) केरल सरकार, और विश्वविद्यालय इन तीनोंके अलावा तिरुवनन्तपुरम शहरमें एक स्वतत्र हिन्दी-प्रचार सभा भी कई वर्षोंसे हिन्दी प्रचार कर रही है। उस सभाके मन्त्री केरलके एक पुराने प्रचारक श्री के वासुदेवन पिल्लै हैं। यह सस्था अपनी अलग हिन्दी परीक्षाओंको चलाती है, और उनमे उत्तीर्ण विद्यार्थियोंको पुरस्कार, प्रमाण-पत्र आदि बाँट देती है। हाल ही में उस सस्थाकी कुछ परीक्षाओंको केरल सरकारने मान्यता प्रदान की है। अत उनमे उत्तीर्ण लोग भी आजकल केरलके कुछ स्कूलोंमे हिन्दी अध्यापकके पदपर नियुक्त होते हैं।

केरलके हिन्दी प्रचार आन्दोलनमें शुरूसे पुरुषोंके बराबर महिलाएँ भी बड़ी दिलचस्पी दिखाती आ रही हैं। प्राय यहांके परीक्षार्थियोंमे ज्यादा महिलाएँ शामिल होती हैं। हिन्दी वर्गोंमें भी अक्सर स्त्रियोंकी सख्या ज्यादा पायी जाती है। हिन्दी प्रचार करनेवाले प्रचारकोंमें भी महिलाओंकी सख्या पुरुषोंसे कम नहीं है। इस समय केरलके बाहर अन्य प्रान्तों तथा राज्योंमें जाकर यहां की कई सुशिक्षित महिलाएँ हिन्दी प्रचार कार्य करती हैं। अत केरल में इस महत्वपूर्ण राष्ट्र निर्माणात्मक भाषा-प्रचारके कार्यकी इतनी उन्नति सफलता और प्रगति यहांकी महिलाओंके अथक परिश्रम और अनुकरणीय प्रेरणाके कारण ही हो रही है ऐसा कहना बिलकुल अनुचित नहीं होगा।

केरलके प्राय सभी हिन्दी केन्द्रोमें हस्तलिखित हिन्दी पत्रिकाएँ प्रकाशित करनेका कार्यक्रम बराबर चलता रहता है। ऐसी अनेको पत्रिकाएँ प्राप्त हो सकती हैं जिनमें उच्च कोटिके हिन्दी लेख, कहानियाँ और कविताएँ प्रकाशित हो रही हैं। लेकिन इसमे उन सबका परिचय देना कठिन है। केरलसे छपकर प्रकाशित होनेवाली हिन्दी पत्रिकाओमे 'युग प्रभात,' 'केरल भारती,' 'भाव' और 'रूप' आदि काफी लोकप्रिय हो रही हैं। 'युग प्रभात' एक पाक्षिक पत्रिका है, जो 'मातृभूमि' नामक मलयालमके प्रसिद्ध दैनिक और साप्ताहिक पत्रोके प्रकाशकोकी तरफसे प्रकाशित हो रही है। उसके सम्पादक मलयालमके एक प्रसिद्ध कवि, समालोचक और पत्रकार श्री एन वी कृष्ण वारियर है और सह सम्पादक है श्री रविवर्मा। 'युग प्रभात' उच्च कोटिकी सास्कृतिक एव साहित्यिक सचित्र पत्रिका है। वर्तमान हिन्दी ससारने कई बार इस पत्रिकाकी बडी प्रशसा की है। 'केरल भारती' प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभाकी मुख-पत्रिका है। अन्य पत्रिकाओमें 'हिन्दी मित्र', 'विश्वभारती,' 'राष्ट्रवाणी,' 'प्रताप,' 'ललकार' आदिके नाम उल्लेखनीय है। इनमे कुछ पत्रिकाओका प्रकाशन इस समय बन्द हो गया है, तो भी उनमें प्रकाशित पाठ्य सामग्री अवश्य सञ्चय कर रखने योग्य है।

हिन्दी-प्रचार आन्दोलनके फल-स्वरूप, केरलमें कई सुयोग्य हिन्दी कवि, लेखक, लेखिकाएँ, समालोचक, विद्वान आदि तैयार हो चुके है, और हो रहे है। उन सबके नामकी लम्बी सूची यहाँ स्थानाभावके कारण नही दी जा सकती। इसी प्रकार हिन्दीसे मलयालममें और मलयालमसे हिन्दीमें श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाओका सुन्दर अनुवाद करनेवाले अच्छे अच्छे अनुवादक भी केरलमे कम नही है।

उपर्युक्त बातोसे यह स्पष्ट है कि केरलमें हिन्दी-प्रचारका राष्ट्र-निर्माणात्मक कार्य बडी तीव्र गतिसे बढ रहा है। हिन्दी परीक्षार्थियोकी सख्या, हिन्दी प्रचारको तथा अध्यापकोकी सख्या, हिन्दी केन्द्रोकी सख्या, हिन्दी लेखक व लेखिकाओ की सख्या, हिन्दी पत्रिकाओकी सख्या आदि सब बातोमें यहाँ दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि होती रहती है। केरलके लोगोने कभी कही हिन्दीका विरोध नही किया है। उन्होंने हमेशा हिन्दी आन्दोलनको पूर्ण रूपसे अपनाया है, और हिन्दी भाषाका अध्ययन और प्रचार करना अपना एक परम श्रेष्ठ 'राष्ट्र-धर्म' माना है। अत इसमें कोई सन्देश नही है कि केरलमें हिन्दीका भविष्य अवश्य उज्वल होगा।
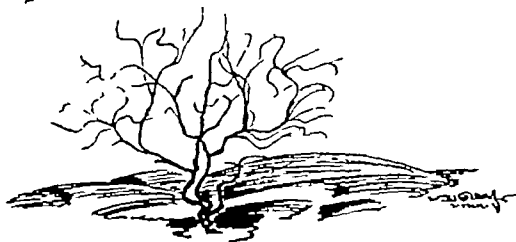
एम ए बननेकी कोशिश मे लगे हुए है। उनम सैकडो अध्यापक उत्तर भारतीय विश्वविद्यालयोंमें जाकर स्वय अध्ययन करके एम ए की डिग्री पहले ही प्राप्त कर चुके हैं। यहाँके कालेजोंमें काम करने वाले चार पाँच प्राध्यापक उत्तर भारतीय विश्वविद्यालयोंसे पी एच डी की पदवी हासिल करनेमें भी कामयाब हुए है।

इस समय केरलकी सरकारकी तरफसे राज्यके हिन्दी प्रचार-कार्यमें यथाशीघ्र प्रगति लानेके लिए एक विशेष अधिकारी" (Hindi Special officer) भी नियुक्त हुए हैं। हिन्दी अध्यापकोंके लिए प्रशिक्षण-शिबिर ट्रैनिंग विद्यालय आदि भी केरल सरकार चलाती है। अपनी सेवामें रहनेवाले योग्य हिन्दी अध्यापकोंको समय समयपर छात्रवृत्ति और मार्ग-व्यय देकर हिन्दी की उच्च शिक्षा पानेके लिए उत्तर भारत भेजनेका काय भी सरकार करती है। हिन्दी प्रचारके लिए एक प्रदर्शनी-वैन (गाड़ी) भी सरकारने खरीदी है। केरलकी प्रमुख हिन्दी सस्थाओंको आर्थिक सहायता देकर यथा-सम्भव प्रोत्साहित करनेकी नीतिका पालन भी सरकार करती है। इसके अलावा अपनी विविध योजनाओंके द्वारा केन्द्र सरकारसे यथा-समय हिन्दी प्रचारके लिए भरसक अनुदान पानेका प्रयत्न भी अवश्य करती है।

केरलम जो साम्यवादी सरकार थी ई एम एस नम्पूतिरिपाटके मुख्य मन्त्रित्वमें पिछली बार करीब तीन साल तक शासन कर रही थी उसने भी यहाँके हिन्दी प्रचारको पूर्ण रूपसे प्रोत्साहित करनेमें कोई बात उठा नही रखी थी। श्री नम्पूतिरिपाटकी साम्यवादी सरकारने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (केरल) को भवन-निर्माणके लिए दस हजार रुपए विशेष अनुदानके रूपमें दिए और पहले प्रान्तीय पुरानी कांग्रेस सरकारकी तरफसे सिर्फ एक सौ रुपए मात्रका जो मासिक अनुदान दिया जाता था उसको बढाकर दो सौ पचास किया गया। इस प्रकारके कई कारणोंसे हमको यह बात सहर्ष स्वीकार करनी पडती है, कि केरल राज्यकी विविध सरकारें हमेशा हिन्दी प्रचारके कार्यमे अवश्य सहयोग और सहायता प्रदान करती ही रहती है।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (केरल) केरल सरकार, और विश्वविद्यालय इन तीनोंके अलावा तिरुवनन्तपुरम शहरमे एक स्वतन्त्र हिन्दी-प्रचार सभा भी कई वर्षोंसे हिन्दी प्रचार कर रही है। उस सभाके मन्त्री केरलके एक पुराने प्रचारक श्री के वासुदेवन पिल्लै है। यह सस्था अपनी अलग हिन्दी परीक्षाओं चलाती है, और उनम उत्तीर्ण विद्यार्थियोंको पुरस्कार, प्रमाण-पत्र आदि बाँट देती है। हाल ही म उस सस्थाकी कुछ परीक्षाओंको केरल सरकारने मान्यता प्रदान की है। अत उनमे उत्तीर्ण लोग भी आजकल केरलके कुछ स्कूलोंमें हिन्दी अध्यापकके पदपर नियुक्त होते है।

केरलके हिन्दी प्रचार आन्दोलनमे पुरुषोंके बराबर महिलाएँ भी बडी दिलचस्पी दिखाती आ रही हैं। प्राय यहाँके परीक्षार्थियोंम ज्यादा महिलाएँ शामिल होती है। हिन्दी वर्गोंम भी अक्सर स्त्रियोंकी सख्या ज्यादा पायी जाती है। हिन्दी प्रचार करनेवाले प्रचारकोंमें भी महिलाओंकी सख्या पुरुषोंसे कम नही है। इस समय केरलके बाहर अन्य प्रान्तो तथा राज्योंम जाकर यहाँ की कई सुशिक्षित महिलाएँ हिन्दी प्रचार कार्य करती है। अत केरल मे इस महत्वपूर्ण राष्ट्र निर्माणात्मक भाषा प्रचारके कार्यकी इतनी उन्नति सफलता और प्रगति यहाँकी महिलाओंके अथक परिश्रम और अनुकरणीय प्रेरणाके कारण ही हो रही है ऐसा कहना बिलकुल अनुचित नही होगा।

तमिल और मलयालम भाषाओंके लिए भी लागू था। अतएव गांधीजीने राष्ट्रीयताकी दृष्टिसे न केवल राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रचार आवश्यक माना बल्कि उत्तर भारतीयोको दक्षिण भारतीय किसी एक भाषाका सीखना भी आवश्यक माना था। भाई हृषीकेश शर्माजीको उन्होने आदेश दिया था कि पहले तेलुगु भाषा सीखनेपर अधिक ध्यान दो।

यद्यपि तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम एक परिवारकी भाषाएँ है, तो भी यह मानना ठीक नही होगा कि तेलुगु, कन्नड और मलयालम, तमिलसे उत्पन्न है। इसमें सन्देह नही कि कई शब्द इन चारो भाषाओमें प्रयुक्त है। इसमे भी सन्देह नही कि केवल तमिल भाषाकी अत्यन्त प्राचीन रचनाएँ उपलब्ध है। तेलुगु, कन्नड, और मलयालमकी रचनाएँ दस या बारह सौ वर्षोंसे अधिक प्राचीन नही है। पर इस बातका कोई प्रमाण नही है कि जहाँ आजकल कन्नड और तेलुगु भाषाएँ प्रचलित है, उन प्रदेशोमें तमिल प्रचलित थी। जहाँ मद्राससे दक्षिणकी डेढ या दो हजार वर्ष पूर्वकी तमिल रचनाएँ उपलब्ध है वहाँ मद्राससे उत्तरकी कोई तमिल रचना उपलब्ध नहीहै। डेढ हजार वर्ष पूर्वकी तेलुगु या कन्नडकी रचनाएँ उपलब्ध है, तो उससे पूर्व उन भाषाओंके क्षेत्रमें जो भाषा प्रचलित थी, वह कौन-सी भाषा थी? यह मानना उचित मालूम होता है कि कोई ऐसी सामान्य भाषा थी जिसका तमिलसे निकट सम्बन्ध था, उसीसे कन्नड और तेलुगु भाषाओकी उत्पत्ति हुई। मलयालम आजकल जिस प्रदेशमें प्रचलित है, वहाँ करीब डेढ-दो हजार वर्ष पूर्व तमिल ही प्रचलित थी। अत मलयालम भाषाको तमिलसे उत्पन्न माना जा सकता है। किन्तु इस प्रदेशमें भी तमिल प्रथाओसे भिन्न प्रथाएँ ऐसी पाई जाती है कि सहसा यह माननेका साहस नही होता कि केरलकी सस्कृति तमिल सस्कृतिसे उत्पन्न है।

तमिल प्रदेशकी भौगोलिक स्थिति

तमिल प्रदेश भारतके दक्षिणमें है। इस प्रदेशके दक्षिणमें हिन्द महासागर, पश्चिममें केरल, उत्तरमें मैसूर और आन्ध्र तथा पूर्वमे बगालकी खाडी है। भारतका नक्शा देखनेपर विदित होगा कि भारतका दक्षिणी भाग सकुचित है और उत्तरी भाग विस्तृत है। उत्तरमें गुजरातसे लेकर बगाल तकका भूभाग—पश्चिमसे पूर्व—करीब उतना ही लम्बा है, जितना हिमालयसे कन्याकुमारी, उत्तरसे दक्षिणतक है। पर दक्षिणकी ओर बढते-बढते भू-भाग तग होता जाता है, यहाँतक कि कन्याकुमारीमें वह नुकीला बन जाता है। यह कन्याकुमारी तमिल प्रदेशकी और भारतवर्षकी दक्षिणी सीमा है। इस कन्याकुमारीके चरणोको बगालकी खाडी, हिन्द महासागर और अरब सागर सदा धोते रहते है। इस कन्याकुमारीमें कन्या 'उमा' का मन्दिर है। उमाकी तपस्यासे प्रसन्न होकर महादेवजीने उमासे विवाह करनेका निश्चय कर लिया। अपने यहाँसे उमाके घरके लिए निकल पडे। पर वहाँतक पहुँचनेके पूर्व कलिकालका आरम्भ हो गया। कलिकालमें भला देवी उमाका विवाह हो सकता है? फलत विवाह स्थगित हुआ। विवाहके लिए चावल, हल्दी, कुकुम आदि जो सामग्री जमा की गई, उसे विवाह तकके लिए रेतका आकार दे दिया गया—आज भी कन्याकुमारीमें समुद्रके किनारे तरह-तरहकी रेत मिलती है जिन्हे देखकर चावल, हल्दी (चूर्ण), कुकुम, रगोली आदिका भ्रम होता है।

सामान्य रूपसे यह माना जाता है कि दक्षिण भारतमे गर्मी अधिक पड़ती है। कवियोने कहा है कि सूर्य सर्दीमें दक्षिणकी ओर चला जाता है और जब दक्षिणमें गर्मी बढने लगती है तब फिर उत्तरकी

तमिलनाडकी हिन्दीको देन

श्री क म शिवराम शर्मा

प्राचीन द्राविड़ भाषा

भारतकी भाषाओंमें अत्यन्त प्राचीन भाषाएँ दो हैं संस्कृत और तमिल। कई तमिल भाषियोंका तो कहना है कि तमिल संस्कृतसे भी प्राचीन है। हमारे लिए प्रश्न यह नहीं है कि कौन-सी भाषा किससे प्राचीन है—हमें विचार यह करना है कि तमिल और संस्कृतके—तमिल भाषा-भाषियों और संस्कृत भाषा भाषियोंके—बीचमें मेल-मिलाप कैसे हुआ। आज हम समग्र भारतको—आसेतु-हिमाचल एक राष्ट्र मानते हैं।

तमिल-संस्कृतके समन्वयपर विचार करते हुए हम केवल संस्कृत भाषा तक सीमित न रहकर संस्कृतसे उत्पन्न आधुनिक हिन्दीपर तमिलका प्रभाव कैसे पड़ा है—इसका भी कुछ विचार करेंगे। भारत जैसे देशमें एक भाषाका दूसरी भाषासे प्रभावित होना स्वाभाविक है। भारतकी तमिल तेलगु, कन्नड मलयालम महाराष्ट्री गुजराती सिन्धी पञ्जाबी हिन्दी बंगला उड़िया आदि सभी भाषाओंपर एक दूसरेका प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। प्राचीन कालमें संस्कृत भाषाका माध्यम लेकर सार्वदेशिक व्यापार चला करते थे और आज हम हिन्दीको वह स्थान प्रदान करनेके प्रयत्नमें लगे हुए हैं। अन्य भाषाओंने हिन्दीपर कैसा प्रभाव डाला—यही हमारे लिए विशेष विचारणीय है। पर तमिल सुदूर दक्षिणकी भाषा है, इसलिए उसका प्रभाव हिन्दीपर किस तरहसे पड़ा—यह शीघ्र समझाना आसान नहीं है। हमें एक तरहसे आर्य-द्राविड समन्वयका ही कुछ उल्लेख करना होगा।

इसमें सन्देह नहीं कि दक्षिण भारतकी भाषाएँ भिन्न परिवार की हैं, और उत्तर भारतकी भाषाएँ संस्कृत या प्राकृत जन्य हैं। यही कारण है कि सन् १९१८ ई में गांधीजीने जब हिन्दी-प्रचारका काम शुरू किया तब पहले दक्षिण भारतमें हिन्दीका-प्रचार करनेकी आवश्यकता बताई थी। दक्षिण भारतीयोंके लिए हिन्दी एक विदेशी भाषा-सी थी। उत्तरके लोग तो केवल मद्रासी भाषा से परिचित थे। बहुतसे लोग यह भी नहीं जानते थे कि स्वतन्त्रताके पूर्वके मद्रास प्रान्तमें तमिल तेलगु कन्नड और मलयालम नामक चार साहित्य-सम्पन्न प्रमुख भाषाएँ थीं। तैलोंके नाम उन दिनों केवल तेलुगु भाषाके लिए नहीं; अपितु

लिंग वालूका बना है—इसलिए पृथ्वी लिंग है। जम्बुकेश्वर त्रिचिनापल्लिके पास है। त्रिचिनापल्ली कावेरी नदीके दक्षिणी किनारेपर है और जम्बुकेश्वर उत्तरी किनारेपर एक द्वीपमे है। इसी द्वीपमे श्रीरंग भी स्थित है। जम्बुकेश्वर के लिंगके चारो ओर सदा पानी रहता है—इसलिये यह अप लिंग माना गया है। श्री काल हस्ती, प्रसिद्ध तिरुपति नामक वालाजी क्षेत्रके पूर्वकी ओर करीब चालीस मीलपर है। मद्राससे वम्बई जाते हुए, मद्राससे करीब सौ मीलपर रेनिगुण्टा नामक स्टेशन पडता है। वहाँसे करीब छह सात मील पश्चिममे तिरुपति-वालाजी है। मद्राससे कलकत्ता जाते हुए गुडूर नामक एक स्टेशन पडता है। इस गुडूर से रेनिगंटा तक एक रेल मार्ग है और इसीमे श्री कालहस्ती स्थित है। यहाँके मन्दिरकी यह विशेषता है, कि जहाँपर मूल लिंग स्थित है वहाँ सदा हवा चलती है। इसलिये यह वायु लिंग है। तिरुवण्णामलैका मन्दिर एक पहाडकी तलहटीमे बना हुआ है। यह पहाड 'अरुणाचल' कहलाता है और वही लिंग माना जाता है। मन्दिरके अन्दरका लिंग इस पहाडका प्रतीक और तेजोलिंग माना जाता है। चिदम्बरम्‌में एक मण्डप है जो सालमे केवल एक दिन खुलता है। साल भर वन्द, यह मण्डप जिस दिन खुलता है, उस दिन लाखो लोग लिंग के दर्शनके लिये जमा हो जाते है। जब मण्डपके परदे हटाए जाते है तब खाली-शून्य-मण्डप ही देखनेको मिलता है—वही आकाश–लिंग माना जाता है।

दक्षिणके मन्दिरोकी एक और विशेषता वहाँ का शैव-वैष्णव समन्वय है। पूरी वातोसे अपरिचित कुछ लोग, शिवकाची–विष्णुकाची नामसे कल्पनाकर लेते है कि, शैव और वैष्णवोमें सदा संघर्ष रहता है। पर सच वात यह है कि इन दोनोमे संघर्ष नही, सहयोग ही रहता है। प्राचीन कालके शैव-भक्त कवि 'नायनमार' कहलाए और वैष्णव भक्त कवि 'आळवार' कहलाए। इन नायनमारो और अळवारोका एक सामान्य उद्देश्य था—वौद्ध और जैन धर्मोका खण्डन करना। काञ्चीके शिवमन्दिरके ब्रह्मोत्सवके आठवे दिन भगवानकी मूर्तिकी सजावटके लिए विष्णुकाञ्चीके मन्दिरसे वस्त्र व आभूषण आदि लाए जाते हैं। मदुराके प्रसिद्ध मन्दिरके ब्रह्मोत्सवके अन्तिम दिन वारह मील दूर परसे भगवान विष्णुकी मूर्ति लाई जाती है—शिवजी के विवाह-समारोहमे सम्मिलित होनेके लिए। शैव-वैष्णव समन्वयके अन्य अनेको प्रमाण पेश किए जा सकते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टिसे तमिल प्रदेशके प्रमुख तीन राजवंश प्राचीन कालमे प्रसिद्ध थे—चोल, पाण्ड्य और चेर। चोल राज्य आधुनिक तञ्जौर और त्रिचिनापल्लीके प्रदेशमें था। पाण्डय राज्य उसके दक्षिणमें आधुनिक मदुरा, रामनाथपुरम और तिरुनेल्वेली जिलेमें व्याप्त था। इन दोनो राज्योंके पश्चिम में पश्चिम समुद्र (अरब सागर) के तीरपर, जहाँ आज कल केरल राज्य है, वहाँ चेर राज्य था। चोल राज्यके उत्तरमें पल्लव राजाओका राज्य था। इन प्रबल राज्यो के पतनके वाद अनेक छोटे मोटे राज्य स्थापित हुए। सन् १६३९ ई में ऐसे ही एक छोटे राजासे अनुमति प्राप्तकर अंग्रेजी व्यापारियोने पूर्वी समुद्रतटपर 'चेन्नप्पट्टणम्' नामक नगर बसाया। यही आजकलका मद्रास शहर है।

तमिल प्रदेशकी नदियाँ

मद्रास राज्यकी अपनी नदियाँ इनी गिनी है और बहुत छोटी है। वहाँकी प्रधान नदी कावेरी है जिसकी उत्पत्ति मैसूर राज्यमें होती है। मैसूर शहरके पास इस नदीपर एक वाध है। मैसूर राज्य

पार पहुँचने लगता है। दक्षिणमें सर्दी नहीं पड़ती इसमें सन्देह नहीं है। पौष मासमें भी केवल एक सूतका वस्त्र ओढ़कर भी काम चलाया जा सकता है। पर गर्मीमें उत्तर भारतकी गर्मीसे कुछ अधिक गर्मी तमिल प्रदेशमें नहीं पड़ती। इसका कारण यह है कि उस तट प्रदेशपर बंगालकी खाड़ी और अरब सागर दोनों जलाशयोंका प्रभाव पड़ता है। इतना ही नहीं—तमिल प्रदेशकी उत्तरी सीमा दक्षिणके हिन्द महासागरसे अधिक दूर नहीं है।

तमिल प्रदेशके मन्दिर

अंग्रेजोंने तमिल प्रदेशको लैण्ड ऑफ टेम्पल्स (मन्दिरोंका प्रदेश) कहा है। यह बिलकुल ठीक है। तमिल भाषाकी करीब दो हजार वर्ष पूर्वकी एक प्रसिद्ध कवियित्री औवै थी। उसने कहा था— कोइल्लिल्ला ऊरिल कुडि इरुक्क वेण्डाम अर्थात् जहाँ मन्दिर न हो ऐसी बस्तीमें मत बसो। कवियित्रीके इस आदेशका तमिल लोगोंने बड़ी तत्परतासे पालन किया। यदि कहीं नई बस्ती बसाई जाती तो तमिल लोग वहाँ मन्दिरका निर्माण अवश्य ही कर डालते हैं। तमिल लोगोंके दैनिक कार्यक्रममें भगवान के दर्शनार्थ मन्दिरमें जानेका क्रम अवश्य रहता है। हर मन्दिरमें समय-समयपर मेले महोत्सव मनाए जाते हैं और वार्षिक महोत्सव तो धूम-धामसे मनाया ही जाता है। रामेश्वर तो अत्यन्त प्रसिद्ध तीर्थ है—मदुरा त्रिचिनापल्ली श्रीरंगजी कांची आदि तमिल प्रदेशके अत्यन्त प्राचीन प्रसिद्ध क्षेत्र हैं। वहाँके मन्दिर बड़े बड़े हैं। लोग समय-समयपर अन्न वस्त्र आभरण और नकद रुपए मन्दिरोंको दान दिया करते हैं। कई मन्दिरोंमें असंख्य रत्नाभरणोंका कोष है। तिरुपति नामक वालाजी क्षेत्र आजकल आन्ध्र प्रदेशमें आ गया है। इसको तमिल लोग अपने ही प्रदेशका मानते हैं। इस मन्दिरकी आमदनी आजकल प्रतिवर्ष तीस चालीस लाख रुपए की है। कई मन्दिरोंके ऊपरके विमान सोनेके पत्रोंसे ढके हुए हैं। मन्दिरोंमें जहाँ भगवानका मूल विग्रह रहता है, उसके ऊपर एक गोल गुम्बज सा बनाया जाता है—यही विमान कहलाता है।

दक्षिणके मन्दिरोंके द्वारपर ऊँचे गोपुर बने हुए हैं। ये गोपुर दक्षिण भारतके मन्दिरोंकी विशिष्टता है। इसी गोपुरको मद्रास राज्य सरकारने अपना राज्य-चिह्न बना लिया है। गोपुर प्रवेश-द्वार पर ऊँची दीवारोंपर बने हुए होते हैं। उसका निचला हिस्सा चौड़ा होता है और ऊपर उठते-उठते चौड़ाई कम होती जाती है। इन गोपुरोंपर सुन्दर प्रतिमाएँ बनाई जाती हैं।

दक्षिणके लोगोंको वहाँके मन्दिरोंने बहुत अधिक प्रभावित किया है। वहाँके मन्दिर शिक्षाके केन्द्र रहे, कलाके पोषक रहे, और आध्यात्मिकताके प्रेरक रहे। हर मन्दिरमें प्रतिवर्ष दस दिनका मेला लगता है जो ब्रह्मोत्सव कहलाता है। इसके अलावा समय-समयपर अन्य कई उत्सव हुआ करते हैं। बड़े-बड़े मन्दिरोंमें उत्सवोंका क्रम इस तरह रहता है कि साल भरमें कहीं न कहीं किसी बड़े प्रसिद्ध मन्दिरमें उत्सव चलता ही रहता है। कुछ मन्दिरोंकी विशेषता यह है कि उत्सव शुक्ल पक्षकी पञ्चमीके दिन आरम्भ होकर पूर्णिमाके दिन पूरा होता है।

दक्षिणके पाँच मन्दिरोंमें कांची जम्बुकेश्वर, श्री कालहस्ति, तिरुवण्णामलै और चिदम्बरमके मन्दिरोंमें शिव-लिंग क्रमशः 'पृथ्वी लिंग' 'अप लिंग' 'वायु लिंग' 'तेजो लिंग' और 'आकाश लिंग' माने जाते हैं। कांचीका

लिंग वालूका बना है---इसलिए पृथ्वी लिंग है। जम्बुकेश्वर त्रिचिनापल्लिके पास है। त्रिचिनापल्ली कावेरी नदीके दक्षिणी किनारेपर है और जम्बुकेश्वर उत्तरी किनारेपर एक द्वीपमें है। इसी द्वीपमें श्रीरंग भी स्थित है। जम्बुकेश्वर के लिंगके चारो ओर सदा पानी रहता है---इसलिये यह अप लिंग माना गया है। श्री काल हस्ती, प्रसिद्ध तिरुपति नामक बालाजी क्षेत्रके पूर्वकी ओर करीब चालीस मीलपर है। मद्राससे बम्बई जाते हुए, मद्राससे करीब सौ मीलपर रेनिगुण्टा नामक स्टेशन पडता है। वहाँसे करीब छह सात मील पश्चिममें तिरुपति-बालाजी है। मद्राससे कलकत्ता जाते हुए गुडूर नामक एक स्टेशन पडता है। इस गुडूर से रेनिगुंटा तक एक रेल मार्ग है और इसीमे श्री कालहस्ती स्थित है। यहाँके मन्दिरकी यह विशेषता है, कि जहाँपर मूल लिंग स्थित है वहाँ सदा हवा चलती है। इसलिये यह वायु लिंग है। तिरुवण्णामलैका मन्दिर एक पहाडकी तलहटीमे बना हुआ है। यह पहाड 'अरुणाचल' कहलाता है और वही लिंग माना जाता है। मन्दिरके अन्दरका लिंग इस पहाडका प्रतीक और तेजोलिंग माना जाता है। चिदम्बरम्‌में एक मण्डप है जो सालमें केवल एक दिन खुलता है। साल भर बन्द, यह मण्डप जिस दिन खुलता है, उस दिन लाखो लोग लिंग के दर्शनके लिये जमा हो जाते हैं। जब मण्डपके परदे हटाए जाते है तब खाली-शून्य-मण्डप ही देखनेको मिलता है--वही आकाश-लिंग माना जाता है।

दक्षिणके मन्दिरोकी एक और विशेषता वहाँ का शैव-वैष्णव समन्वय है। पूरी बातोसे अपरिचित कुछ लोग, शिवकाची--विष्णुकाची नामसे कल्पनाकर लेते है कि, शैव और वैष्णवोमें सदा संघर्ष रहता है। पर सच बात यह है कि इन दोनोमे संघर्ष नही, सहयोग ही रहता है। प्राचीन कालके शैव-भक्त कवि 'नायनमार' कहलाए और वैष्णव भक्त कवि 'आळवार' कहलाए। इन नायनमारो और अळवारोका एक सामान्य उद्देश्य था---बौद्ध और जैन धर्मोका खण्डन करना। काञ्चीके शिवमन्दिरके ब्रह्मोत्सवके आठवे दिन भगवानकी मूर्तिकी सजावटके लिए विष्णुकाञ्चीके मन्दिरसे वस्त्र व आभूषण आदि लाए जाते है। मदुराके प्रसिद्ध मन्दिरके ब्रह्मोत्सवके अन्तिम दिन बारह मील दूर परसे भगवान विष्णुकी मूर्ति लाई जाती है---शिवजी के विवाह-समारोहमे सम्मिलित होनेके लिए। शैव-वैष्णव समन्वयके अन्य अनेको प्रमाण पेश किए जा सकते है।

ऐतिहासिक दृष्टिसे तमिल प्रदेशके प्रमुख तीन राजवंश प्राचीन कालमे प्रसिद्ध थे---चोल, पाण्ड्य और चेर। चोल राज्य आधुनिक तञ्जौर और त्रिचिनापल्लीके प्रदेशमें था। पाण्ड्य राज्य उसके दक्षिणमें आधुनिक मदुरा, रामनाथपुरम और तिरुनेल्वेली जिलेमे व्याप्त था। इन दोनो राज्योंके पश्चिम में पश्चिम समुद्र (अरब सागर) के तीरपर, जहाँ आज कल केरल राज्य है, वहाँ चेर राज्य था। चोल राज्यके उत्तरमें पल्लव राजाओका राज्य था। इन प्रबल राज्यो के पतनके बाद अनेक छोटे मोटे राज्य स्थापित हुए। सन् १६३९ ई में ऐसे ही एक छोटे राजासे अनुमति प्राप्तकर अंग्रेजी व्यापारियोने पूर्वी समुद्रतटपर 'चेन्नप्पट्टणम्' नामक नगर बसाया। यही आजकलका मद्रास शहर है।

तमिल प्रदेशकी नदियाँ

मद्रास राज्यकी अपनी नदियाँ इनी गिनी है और बहुत छोटी हैं। वहाँकी प्रधान नदी कावेरी है जिसकी उत्पत्ति मैसूर राज्यमे होती हैं। मैसूर शहरके पास इस नदीपर एक बाध है। मैसूर राज्य

पार करके यह नदी मद्रास राज्यमें प्रविष्ट होती है। वहाँके मेट्टूर नामक स्थानमें इसपर एक बड़ा बान्ध है। यहाँसे यह नदी त्रिचिनापल्ली जिलेमें बहती है। त्रिचिनापल्ली नगरके पश्चिममें यह नदी दो भागोंमें विभक्त होकर बहती है—यहीं पर श्रीरंगमका द्वीप बना हुआ है। इस द्वीपको पार करके फिर दोनों धाराएँ एक दूसरेके बहुत निकट आ जाती हैं। यहाँ प्राचीन चोल राजाओंका बना एक बान्ध है जो कल्लणै (प्रस्तर बान्ध) कहलाता है। यहाँ ये दोनों धाराएँ फिर अलग हो जाती हैं—उत्तरकी धारा कोल्लिडम कहलाती है और दक्षिणकी कावेरी। इस नदीके कारण त्रिचिनापल्ली और तञ्जौरकी भूमि बहुत उपजाऊ बनी है।

मदुरा नगरसे होकर वैगै नामक नदी बहती है। यह पश्चिमी पहाड़ोंसे निकलकर पूर्वकी ओर जाती है। इसमें पानी कम रहता है। पश्चिमी पहाड़से उत्पन्न होकर पश्चिमकी ओर बहने वाली एक नदीपर बान्ध बनाया गया और पहाड़में सुरंग खोदकर उसका पानी वैगै नदीमें बहाया गया है। यह बांध पेरियार डैम कहलाता है। और भी दक्षिणमें तिरुनेल्वेलीमें ताम्रपर्णी नदी बहती है। यह अत्यन्त रमणीय स्थानोंसे होकर बहती है। इस नदीकी एक शाखा चित्तार है। कुत्तालम नामक स्थानमें इस शाखा नदीका जल प्रपात है। कुत्तालम बड़ा स्वास्थ्यप्रद स्थान माना जाता है और प्रतिवर्ष जुलाई-अगस्त-सितम्बर महीनोंमें यहाँ हजारोंकी संख्यामें यात्री स्वास्थ्य लाभ करने और आराम करनेके लिये आया करते हैं। कावेरीके उत्तरमें पेण्णैयार नामक नदी है। इसमें भी पानी कम रहता है। इसके भी उत्तरमें पालार (क्षीर नदी) बहती है। यह नदी भी मैसूर राज्यमें निकलती है। उस राज्यमें उद्गम परही इसका सारा पानी रोक लिया गया है। इसलिए यह नदी प्रायः सूखी रहती है। इस नदीके तीरपर वेलूर नामक नगर बसा हुआ है। इस नगरकी तीन विशेषताएँ हैं जलविहीन नदी राजा विहीन किला और मूर्ति विहीन मंदिर। नदी तो पालार है। वेलूर नगरमें एक बहुत बड़ा किला है। इसमें अदालत सरकारी दफ्तर पुलिस ट्रेनिंग स्कूल आदि हैं। पर सैकड़ों वर्षोंसे इसका कोई राजा मालिक नहीं रहा। इसी किलेमें एक सुन्दर मन्दिर है। पर उसमें कोई मूर्ति नहीं है। यह जलकण्ठेश्वर मन्दिर कहलाता है।

मद्रास राज्यके दो पर्वत प्रदेश बड़े प्रसिद्ध हैं। उटकमण्ड या ऊटी नामसे प्रसिद्ध उदकमण्डलम् बड़ा ही रमणीय स्थान है। यह नगर नीलगिरि नामक पहाड़पर बसा हुआ। इसको लोग पर्वत प्रदेशोंकी रानी (The queen of Hill stations) कहते हैं। इन्हीं पहाड़ोंपर कुनूर नामक सुन्दर नगर भी बसा हुआ है। दूसरा प्रसिद्ध पर्वत प्रदेश कोडैकानल है। यह मदुरा जिलेमें है। इन दोनों स्थानोंका वातावरण शान्त है। कहते हैं कि यहाँका वातावरण और प्राकृतिक दृश्य आदि दर्शनीय हैं।

आर्य द्राविड़ समन्वय

दक्षिणकी भाषाएँ द्राविड़ परिवारकी भाषाएँ हैं पर यह नहीं कहा जा सकता है कि दक्षिणके लोग द्राविड़ परिवारके हैं। भारतवर्षमें द्राविड़ और आर्योंका इतना मेल मिलाप हुआ है कि अब यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि आर्य कौन हैं और द्राविड़ कौन हैं। दक्षिणके द्राविड़ सबसे दक्षिणके वा

ह्मणोको आर्य और ब्राह्मणेतर लोगोको द्रविड मानता है। कई लोगोका विश्वास है कि दक्षिण भारतके तमाम लोग द्राविड है। पर इन बातोमे कोई तथ्य नही है। हिटलर केवल अपनेको आर्य मानता था-उसकी दृष्टिमे भारतके आर्य, आर्य नही थे। अभी दो हजार वर्ष भी नही हुए। यवन, हूण आदि हमारे भारतमे आ बसे थे। अब क्या यह बताया जा सकता है कि कौन यवन है और कौन हूण ? द्राविडो और आर्योका समन्वय तो दसो हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ। लोगोका विश्वास है कि श्री रामचन्द्रजीके कालसे यह हो रहा है। अनेक प्रकारसे द्राविडो और आर्योका एसा समन्वय हो गया है कि अब निश्चित रूपसे नही कहा जा सकता कि कौन आय है और कौन द्राविड।

आर्य द्राविड समन्वयका एक सुन्दर उदाहरण हमको मासोकी रचनामे देखनेमें आता है। दक्षिण भारतके तमिल और केरल प्रदेशोमे सौरमान वर्ष चलता है। सौरमण्डल बारह राशियोमे बँटा हुआ है—मेष, ऋषम, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनुप, मकर, कुम्भ और मीन। आकाश मण्डलमे चन्द्रके मार्गमे पडनेवाले आश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र है। सवा दो नक्षत्रोकी एक राशि मानी गई है। अर्थात् नक्षत्रोके चार-चार पाद (पाव) माने जाएँ तो मेप राशिमे आश्विनीके चारो पाद, भरणीके चारो पाद और कृतिकाका एक पाद पडेगा। ऋपभ राशिमे कृत्तिकाके शेप तीन पाद, रोहिणीके चारो पाद और मृगके दो पाद पडेगे। इस तरह बारहो राशियोमे सत्ताईस नक्षत्र समा जायेंगे। सौरमान वर्षका प्रयोग अँग्रेजोका भी चलता है। पृथ्वीको सूयकी एक पूरी परिक्रमा करनेमे जो समय लगता है वह 'वर्ष' कहलाता है। इस वर्षको दिनोमें विभाजित कर, पूरे ३६५ दिनोंके बाद नए वर्षका आरम्भ, अँग्रेज आदि पाश्चात्य लोगोने भी माना है। चार वर्षमे एक बार उन लोगोने अपना वर्ष ३६६ दिनोका बना लिया है।

भारतवषके तमिल और केरल प्रदेशोमें भी इसी क्रमसे वर्ष की गणना होती है। वर्षका आरम्भ तब माना जाता है जब सूर्य मेष राशिमे आता है अर्थात् अश्विनी नक्षत्रपर सूर्य रहता है। 'नक्षत्र' का विषय द्राविडोने आर्योसे लिया, आर्योके प्रथम नक्षत्र अश्विनीके सयोगमे सूर्यके आनेपर वर्षका आरम्भ मानना द्राविड-आर्य समन्वयका प्रमाण है। दूसरा प्रमाण तमिल मासोंके नामकरणमे है। केरलमें महीनोका नामकरण राशिके नाम पर हुआ है। जब सूर्य मेप राशिमे रहता है तब मेष मास, जब कन्या राशिमें रहता है, तब कन्या मास और जब धनुषमें रहता है तब धनुर्मास आदि। पर तमिल मासोका नामकरण हिन्दी आदि अन्य प्रदेशोंके मासोके नामोके अनुकरणपर हुआ है।

हिन्दी मास	तमिल मास
चैत्र	चित्तिरै
वैशाख	वैकाशि
ज्येष्ठ	आनि
आपाढ	आडि
श्रावण	आवणि
भाद्रपद	पुरट्टाशि
आश्विन	ऐप्पिशि

हिन्दी मास	तमिल मास
कार्तिक	कार्तिई
मार्गशीर्ष	मार्गलि
पौष	तै
माघ	मासि
फाल्गुन	पंगुनि

इन मासोंमें कार्ति आदि पुरट्टासि ऐप्पिसि तै मासि नाम कुछ भिन्नसे प्रतीत होते हैं।

यह तो हुआ द्राविड़का आर्योंसे ग्रहण। आर्योंने भी काल गणनामें द्राविड़ोंसे समन्वय करनेका प्रयत्न किया है। चान्द्रमान वर्षकी गणना चन्द्रकी गतिके आधारपर हुई है। चन्द्रकी जब पृथ्वीके चारों ओर एक परिक्रमा पूरी होती है तब एक मास माना जाता है। पूर्णिमाके दिन जिस नक्षत्र पर चन्द्र रहता है उसके आधारपर मासका नामकरण हुआ। यदि पूर्णिमाके दिन चन्द्र चित्रा नक्षत्रपर रहा तो वह मास चैत्र कहलाता है। ऐसे बारह मासोंका एक वर्ष माना जाता है। अर्थात् पृथ्वीके चारों ओर चन्द्रकी जब बारह परिक्रमाएँ हो जाती हैं, तब एक वर्ष माना जाता है। परन्तु जब चन्द्र पृथ्वीकी बारह परिक्रमाएँ पूरी करता है तब भी पृथ्वीकी (सूर्यकी) एक परिक्रमा पूरी नहीं होती। उसमें आठ दस दिन रह जाते हैं। मुसलमानोंकी काल-गणना चन्द्रमान है। हम देखते हैं कि उनका रमजान कभी फागुनमें पड़ता है तो कभी आषाढ़में। पर हमारे भारत वर्षमें श्रीराम नवमी कृष्णाष्टमी बुद्धजयन्ती आदिमें ऐसा अन्तर नहीं पाया जाता है। इसका कारण यह है कि भारतमें जहाँ चान्द्रमान गणना प्रचलित है वहाँ करीब तीन वर्षमें एक बार वर्षमें तेरह महीने मान लिए गए हैं। यह समन्वयकी दृष्टिसे ही हुआ होगा।

प्रश्न यह उठा होगा कि वर्षके बारह मास ही माने गए और बारहों मासोंके नाम भी दे दिए गए। यदि बीचमें कभी कोई नया तेरहवाँ मास लाया जाए तो उसका किस तरहसे कैसा नामकरण हो। इसके लिए निश्चय हुआ कि जिस सौर मासमें दो अमावस्याएँ पड़ें उस महीनेका नाम देकर उसको अधिक मास माना जाए। उदाहरणके लिये यदि सूर्यके मेष राशिमें रहते दो अमावस्याएँ आएँ तो (चित्तिरै) चैत्रके दो मास माने जाएँ और एक आधिक चैत्र माना जाए। एक सौर मासमें दो अमावस्याएँ करीब तीन सालमें एक बार ही पड़ती हैं।

हिन्दीपर तमिलका प्रभाव

ऐसा समन्वय भाषाके सम्बन्धमें भी अवश्य ही हुआ होगा। पर हमें मात्र अपना विचार हिन्दी तक ही सीमित रखना है। मेरा विचार है कि हिन्दीके वाक्यकी रचनामें तमिलका कुछ प्रभाव अवश्य दृष्टिगोचर होता है।

दक्षिणके लोग हिन्दी व्याकरणके लिंग के सम्बन्धमें बड़ी कठिनाई पाते हैं। उनकी समझमें नहीं आता कि 'पैर' क्यों पुल्लिंग है और 'टाँग' स्त्रीलिंग। उनकी समझमें नहीं आता कि [illegible] अर्थ प्रकट करनेपर [illegible] क्यों स्त्रीलिंग है और [illegible] अर्थ प्रकट करनेपर वही शब्द क्यों पुल्लिंग है। इसपर एक सज्जनने एक सीमित क्षेत्रमें इस संकटसे मुक्ति पानेका एक सरल उपाय ढूँढ निकाला। उन्होंने कहा कि

जिम वाक्यके कर्ताके माथ ने 'कारक' चिन्ह लगा है उसके 'कर्म'के माथ 'को' अवश्य लगा लो ताकि 'क्रियाका' रूप सदा पुल्लिग एक वचन रहे। कौन यह निश्चय करनेका कष्ट उठाए कि, कर्म पुल्लिग है या स्त्री लिंग। वे कहा करते थे, मैंने रोटीको खाया, उसने कहानीको सुना, तुमने चिट्ठीको पढा आदि।

इन मब 'कर्मो'के माथ 'को' लगाना कुछ अच्छा तो नही लगता। प्रश्न अब यह उठता है कि 'कर्म'में कहाँ 'को' लगाना अनिवार्य है और कहाँ वह चिन्ह लुप्त रह मकता है। यही पर दक्षिण भारतीय भाषाओ का प्रभाव देखनेमे आता है।

द्राविड भाषाओमे 'सज्ञाओ'के दो भेद है—महद्वाचक और अमहद्वाचक। मनुष्य वर्ग और देवता वर्गके नाम महद्वाचक सज्ञाये है। जीव जन्तु, जीव-रहित अन्य वस्तुओके नाम अमहद्वाचक है। मद्वाचक सज्ञाओके ही स्त्रीलिग और पुल्लिगका भेद माना जाता है। गाय स्त्रीवर्ग का जीव होनेपर भी स्त्री लिगकी नही मानी जाएगी क्योकि वह अमहद्वाचक है। अहमद्वाचक 'सज्ञाओ'के माथ 'कर्म' कारक चिन्ह लगाना अनिवार्य नही है, महद्वाचक 'सज्ञाओ'में वह अनिवार्य है।

तमिलकी विशिष्टता

'वह' शब्दके तमिलमे तीन रूप है—अवन्, अवळ् और अदु। अवन् और अवळ्, महद्वाचक शब्द है और क्रमश पुल्लिग और स्त्री लिंग है। तीसरा रूप अदु अमहद्वाचक है। वह पशु, पक्षी, पेड पौधे, आदि मव तरहके सजीव या निर्जीव वस्तुओके नामके स्थानपर आता है। मनुष्य वर्गके शिशु शब्दके स्थानपर भी वही प्रयुक्त होता है। किसी पुरुष या स्त्रीके प्रति अपमान सूचित करना हो तो उस सर्वनामका प्रयोग हो मकता है।

इस सर्व नामके तीनो रूपोंके अनुरूप क्रियाये होती है। वह आता है, वह आया और वह आएगा, के तीन तीन रूप है —

वह आया—	अवन् वन्दान्	पुरुष
	अवळ् वन्दाळ्	स्त्री
	अदुवन्ददु	अमहत्
वह आता है—	अवन वरुगिरान्	पुरुष
	अवळ वरुगिराळ्	स्त्री
	अदु वरुगिरदु	अमहत्
वह आएगा—	अवन वरुवान्	पुरुष
	अवळ वरुवाळ्	स्त्री
	अदु वरुम्	अमहत्।

यदि ध्यानसे देखा जाए तो विदित होगा कि, तमिल क्रियाओंके पुल्लिग अन्य पुरुषके अन्तमे न्, स्त्रीलिंगमें ळ् और अहमद्वाचकमें 'दु' या 'म्' रहता है। इस आधारपर नए हिन्दी सीखनेवाले, सब क्रियाओका अर्थ कर लेते हैं। खाया, पिया, देखा, सबको पुल्लिग मानकर तमिल भाषाका रूप प्रदान कर देते है। और सभी क्रियाओंके अन्तमें 'न्' लगा देते है। पर जब देखते है कि 'सीताने खाया' प्रयोग

होता है तब रह जाते हैं। सीता तो स्त्रीलिंग है और आया पुल्लिंग कैसे? तमिल या अन्य किसी दक्षिणी भाषामें कर्मणि प्रयोग या भावे प्रयोग होता ही नहीं है। इन प्रयोगोंकी आवश्यकता तब पड़ती है जब किसी विशेष कारणसे वाक्यमें 'कर्ताके साथ कारक' चिन्ह लगाना पड़ता है। पर दक्षिणी भाषाओंमें वाक्यके कर्ता के साथ कोई विशेष चिन्ह लगाना नहीं पड़ता। इसलिये प्रयोगका प्रश्न ही नहीं उठता।

सर्वनाम का उल्लेख करते हुए द्राविड़ परिवारकी भाषाओंके उत्तम-पुरुष बहुवचनका उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा। यदि ध्यानसे देखा जाए तो विदित होगा कि हम सर्वनामके दो भिन्न अर्थ हैं। यदि हम किसीसे कहें कि भाई चलो हम सिनेमा चलें तो इस वाक्यके हम में जिससे हम बोल रहे हैं वह भी सम्मिलित है। पर यदि हम उससे कहें— देखो भाई हम सिनेमा चलते हैं— तुम यहीं ठहरो तो इस वाक्यके हम में जिससे बातें कर रहे हैं वह सम्मिलित नहीं है। दक्षिणकी चारों भाषाओंमें हम के इन दोनों अर्थोंको सूचित करनेवाले दो भिन्न शब्द हैं। तमिलमें नाम् और नागळ दो शब्द हैं नाम मध्यम पुरुष—युक्त हम, है और नामळ मध्यम पुरुष रहित हम है। नाम् पोवोम का अर्थ होगा हम तुम चलें। नागळ पोवोम् का अर्थ होगा (तुम्हें छोड़कर) हम चलें।

तमिल भाषा संयोगात्मक भाषा है। कारक चिन्ह संज्ञा या 'सर्वनामों' के साथ जुड़ जाते हैं क्रियाओं के साथ उत्तम मध्यम या अन्य पुरुष सूचक सहायक क्रिया लगानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती प्रत्यय क्रिया के साथ जोड़ दिया जाता है। नकार सूचक प्रयोगोंमें भी नहीं या मत अलग जोड़नेकी आवश्यकता नहीं पड़ती केवल प्रत्यय क्रिया के साथ जोड़ दिया जाता है।

कारक चिह्न

	हिन्दी	तमिल
कर्म कारक	रामको	रामनै
करण कारक	रामसे	रामनोड रामनाल
सम्प्रदान कारक	रामके लिए	रामनुक्काग
अपादान कारक	रामसे	रामनैक्काट्टि लुम
सम्बन्ध कारक	रामका	रामनुडैय
अधिकरण कारक	राममें रामपर	रामनिल रामनमेल

क्रियाएँ

जाता हूँ	पोगिरेन
(तू) जाता है	पोगिराय
(वह) जाता है	पोगिरान
(हम) जाते हैं	पोगिरोम
(तुम) जाते हो।	पोगिरीरमळ
(वे) जाते हैं	पोगिरारमळ

क्रियाएँ

(मैं) गया	पोनेन
(तू) गया	पोनाय
(वह) गया	पोनान

तमिल वाक्योमे बहुधा 'कर्त्ता' का लोप कर दिया जाता है। 'क्रिया' के रूपसे ही आसानीसे 'कर्त्ता' का बोध हो जाता है।

वन्दान	(वह) आया	वर विल्लै	(नही आया)
वरुगिरान	(वह) आता है	वरुगिरानिल्लै	(नही आता है)
वरुवान	(वह) आएगा	वरान	(नही आएगा)
वा	(आ)	वरादे	(मत आ)
वेण्डुम	(चाहिए)	वेण्डाम	(नही चाहिए)

हिन्दीमे सयोगात्मक रूप हमे केवल सभाव्य भविष्य क्रियाओमे मिलता है जहाँ 'क्रिया' के रूपसे उत्तम मध्यम व अन्य पुरुषका बोध होता है।

तमिल वर्णमाला

यद्यपि आकारकी दृष्टिसे दक्षिण भारतीय वर्ण माला, उत्तर भारतीय वर्ण मालाओंसे भिन्न हैं, तो भी भारतकी उर्दूको छोडकर अन्य सभी वर्ण मालाओकी एक समता है। सभीमे पहले अकारसे लेकर स्वर है और स्वरोंके बाद क से लेकर व्यञ्जन हैं। उत्तरमे गुजराती, गुरुमुखी, बगला, उडिया आदिकी लिपियाँ देवनागरी लिपिसे भिन्न है, फिर भी एक सामान्य रूपसे उनके विकासका साफ पता मिलता है। पर दक्षिण की लिपियाँ किस लिपिसे उत्पन्न हुई है ---इसका कोई प्रमाण नही है। और बात ध्यान देने योग्य यह है कि तमिल और तेलुगु लिपियोका कोई साम्य नही है। तेलुगु और कन्नड लिपियाँ बहुत अधिक मिलती जुलती है। वैसे ही तमिल और मलयालमकी लिपियाँ भी बहुत कुछ मिलती जुलती है।

तमिल वर्ण मालाके अक्षर (यहाँ नागरी लिपिमें दिए जा रहे है) ये है —

स्वर---अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऍ, ए, ऐ, ऑ, ओ, औ, अक्।

व्यञ्जन---क, ङ, च, ञ, ट, ण, त, न, प, म, य, र, ल, व, ष, ळ, र, न।

स्वरोमें अकारादि क्रम नागरी स्वरोंके समान ही है पर 'ऋ' तमिलमे नही है, न अनुस्वार और विसर्ग ही है। यदि तमिल और देवनागरीका मूल स्रोत एक ही है तो तमिलमे ये तीनो क्यो नही है? स्वरोंके अन्तमें 'अक्' क्या है? यह भी एक तरहका अनुस्वार ही मालूम पडता है। जैसे, नागरी वर्ण-मालाके अनुस्वारमे 'अ' का उच्चारण 'अम्' या 'अङ'---अर्थात् स्वरके बाद हलन्त है वैसे ही तमिलके 'अक्' में भी है। आजकल यह हलन्तका चिन्ह माना जाता है, परन्तु प्राचीन तमिलमे इस विशिष्ट स्वरका अलग महत्व रहा।

व्यञ्जनोके सम्वन्धमे देखा जाएगा कि नागरी वर्ण मालामे जहाँ 'क' से 'म' तक २५ वर्ण है तहाँ तमिलमे केवल १० है। 'क' वर्ग आदि पाँचो वर्गोके केवल प्रथम और अन्तिम व्यञ्जन तमिलमें है---

वर्गके दूसरे, तीसरे और चौथे व्यञ्जन नहीं हैं। तमिलमें महाप्राण व्यञ्जन नहीं हैं इसलिए दूसरे और चौथे व्यञ्जनोंका लोप अधिक खटकता नहीं है। पर क्या तमिलमें ग ज ड द और ब का प्रयोग नहीं होता?

कहा जाता है कि तमिल भाषा ऐसी है कि उसके लिए क च ट त प—ये पाँच और ङ, ञ ण न म ये पाँच कुल दस वर्ण—व्यञ्जन ही पर्याप्त हैं। क च ट त प के उच्चारण सम्बन्धी नियमोंसे स्पष्ट हो जाएगा कि कहाँ उनका उच्चारण नागरीके इन अक्षरोंके समान होगा और कहाँ ग ज ड द और ब के समान होगा। तमिलमें ख छ ठ थ फ तथा घ झ ढ ध भ की कोई आवश्यकता ही नहीं है। ध्यान रखना आवश्यक है कि तमिलमें च का कोमल रूप ज नहीं बल्कि श है।

एक सामान्य नियम है कि शब्दके आरम्भमें आनेवाले इन व्यञ्जनोंका उच्चारण नागरी व्यञ्जनके समान होता है। तब तो दिराविड का उच्चारण तिराविड होना चाहिए। कट्टर-से-कट्टर द्राविड़ भी तिराविड नहीं दिराविड ही कहा करता है।

इसलिए यह प्रश्न उठता है कि यदि तमिल ने किसी अन्य भाषासे अपने वर्ण लिए तो उसने अनेक वर्ण क्या नहीं लिए?

अन्तस्थ य र ल व तमिलमें भी है देवनागरीमें भी है। ऊष्म श ष स ह तमिलमें नहीं है। नए तीन व्यञ्जन हैं—ऴ ळ ऱ, ऩ इनमें 'ळ' मराठीमें प्रचलित है। सम्भवतः द्राविड़ देशके सामीप्यका यह परिणाम है। 'ऴ' एक ऐसा वर्ण है, जो केवल तमिल और मलयालम भाषाओंमें प्रचलित है। कहते हैं कि तेलगु और कन्नड़ भाषाओंमें पाँच छह सौ साल पूर्व तक यह व्यञ्जन प्रचलित था। ऱ एक नया रकार है—यह सामान्य रकारसे कुछ अधिक कर्कश होता है पर 'ड़' से कुछ कोमल यह अक्षर तमिल तेलगु कन्नड और मलयालम—इन चारों भाषाओंमें पाया जाता है।

ऩ केवल तमिल भाषामें है। इसमें और सामान्य न के उच्चारणमें कोई अन्तर नहीं है। पर व्याकरणमें नियम है कि कहाँ कौन-सा न प्रयुक्त हो सकता है और कहाँ वर्ज्य है।

इसके विपरीत मलयालममें केवल एक न कार है—पर कभी उसका उच्चारण कुछ बदल जाता है। इसके लिए भी नियम है।

इस वैषम्योंपर विचार करते हुए, हमें सोचना ही पड़ता है, कि विभेद क्यों और कैसे आए।

यहाँपर दो और बातोंका उल्लेख कर देना उचित होगा। एक यह कि तमिलमें ङ का दूसरा रूप ग नहीं बल्कि करीब-करीब ह है। काङ्म दाङ्म आदिका उच्चारण काहम दाहम आदि होगा दूसरी बात यह है, कि तमिल भाषामें केवल द्वित्ताक्षर हैं संयुक्ताक्षर नहीं। सत्य "सत्तिय बनता। रत्न, रत्तिन बनेगा।

तमिल प्रदेशमें ग्रन्थाक्षर नामक एक वर्णमाला प्रचलित है। इसके वर्णोंका आकार यद्यपि तमिल वर्णोंसे है तो भी है ये तमिल वर्णोंसे भिन्न। इस वर्णमालामें देवनागरीके अनुस्वार विसर्ग महाप्राण ऊष्म सभी अक्षर हैं। इस वर्णमालाके ज श ष स ह और क्ष तमिलमें अधिक प्रयुक्त होने लगे हैं।

तमिलपर हिन्दीका प्रभाव

यह कहना कठिन है कि तमिलपर हिन्दीका कोई प्रभाव पड़ा है या नहीं। दोनों भाषाएँ एक दूसरीसे दूर रहनेके कारण एकका दूसरीपर अधिक प्रभाव पड़ा नहीं पाया। पर हिन्दू लोगोंमें तीर्थ यात्राका

बडा महत्व माना गया है। इसलिए यात्रियोंके कारण थोडा बहुत प्रभाव पडता ही रहा। तमिल प्रदेशके रामेश्वर, श्रीरग, काची जैसे क्षेत्र उत्तर भारतीयोके लिए दर्शनीय रहे हैं। उत्तरसे यात्रापर आनेवाले गुजराती, महाराष्ट्री और बगाली लोग भी अपने विचार हिन्दीमें व्यक्त किया करते रहे हैं। वैसे ही तमिल प्रदेशके यात्री चाहे पण्ढरपुर जाते, चाहे द्वारिका, अपने विचार हिन्दीमें ही प्रकट करते रहे हैं। सम्भवत इसका कारण मुसलमानोका राज्य शासन हो। मुसलिम शासन यद्यपि दक्षिणमें अपेक्षाकृत कम रहा तो भी वह रहा अवश्य। आर्काटके नवावका नाम तो प्रसिद्ध ही है। वे लोग अपने साथ उर्दू दक्षिणमें ले गए। वह उर्दू दक्षिणमें हिन्दुस्तानी कहलाई। उत्तरके कई हिन्दी भाषी व्यापारी दक्षिणमें आ वसे। वे यद्यपि हिन्दी भाषा-भाषी थे, तो भी दक्षिण भारतमें उनकी भापा भी हिन्दुस्तानी कहलाई। सामान्य लोगोका विश्वास था कि हिन्दुस्तानी मुसलिम शासकोकी भाषा थी और इसलिए वह राजभाषा मानी गई। धनी परिवारोमें 'हिन्दुस्तानी' पढना सभ्यताका लक्षण माना गया। तमिल प्रदेशके मध्य भागमें स्थित तञ्जौर जिलेके एक गाँवमें मुझे यह सुननेका मौका मिला --

मुसलमानकी बाषा मुषुडुम आता तै,
वन्ददुक्कु बोले तो सोच्चतुक्कु अल्ला है।

अर्थात् मुसलमानकी भाषा पूरी-पूरी आती नही है। जितनी आती है उतनी बोल लूंगा और शेषके लिए अल्ला है।

इतना तो निश्चित है कि मुसलिम शासकोंके कारण और महाराष्ट्रके राजाओके कारण अनेक शब्द जो हिन्दीमें प्रचलित है तमिलमें भी प्रविष्ट हुए। मेज, कुर्सी, तमिलमें मेजै, कुर्ची, वन गई। खाली शब्द तमिलमें 'काली' बन गया और उसका इतना उपयोग बढ गया कि इसका समानार्थ वाची तमिल शब्द बहुत कम प्रयुक्त होता है। सरकारी व्यवहारमें जमाबन्दी, अजमाइश, किश्त, तहसीलदार, चोवदार आदि अनेक शब्द प्रचलित है।

कुछ शब्दोकी समानता विशेष ध्यान देने योग्य है --

तमिल	हिन्दी
पिदुग	फुदकना
पटिगारम	फिटकरी
शेरूक्क	सरकना (फिसलना अर्थमें)

विचार साम्य

इस बातका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नही है कि तमिलपर हिन्दीका प्रभाव पडा हो अथवा हिन्दीपर तमिलका प्रभाव पडा हो। तमिल इतनी पुरानी और दूरस्थ भाषा है कि उसपर हिन्दीका प्रभाव पड नही सकता था। इन्ही कारणोंसे वह स्वय भी हिन्दीपर कोई प्रभाव नही डाल सकती थी। फिर भी दो बाते ध्यान देने योग्य है। तमिलके आल्वरोमे पेरियाल्वार एक है। इन्होके यहाँ 'आण्डाल' नामक प्रसिद्ध कवयित्री पली। आण्डालकी गिनती भी आल्वारोमें है।

पेरियाल्वारने श्री कृष्णपर गीत रचे है। पन्द्रह-बीस वर्ष पूर्व किसी तमिल पत्रके दीपावली अकमें मैने कनक-आगनमें घुटनोंसे चलते हुए अपने प्रतिविम्बको पकडनेका प्रयत्न करनेवाले बाल-कृष्णका चित्र देखा। तुरन्त मुझे सूरदासका पद याद हो आया और मैने सोचा कि उस पदके आधारपर ही यह चित्र

बना होगा। पर उस चित्रके नीचे दिया हुआ था पेरियाल्वारका एक गीत। मुझे वह गीत सूरदासके पदका भाषान्तर-सा प्रतीत हुआ। पर पेरियाल्वारका समय सूरदाससे सैकड़ों वर्ष पूर्व था। मैं यह माननेको भी तैयार नहीं हूँ कि सूरदासने पेरियाल्वारके गीतोंसे गीतका विषय लिया होगा।

सन् १९३७ में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके अहातेमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी एक बैठक हुई थी जिसमें महात्मा गांधी राजर्षि टण्डनजी स्वर्गीय जमनालालजी बजाज आदि पधारे थे। उस अवसरपर कई तमिल विद्वान भी पधारे थे। वहाँ स्वर्गीय महामहोपाध्याय उ वे स्वामिनाथ अय्यरने अपना यह विचार प्रकट किया था कि तुलसीदासपर कम्बका प्रभाव पड़ा होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कम्बका काल तुलसीदाससे सैकड़ो वर्ष पूर्व था।

श्री अय्यर का यह कहना था कि उत्तर भारतीय काव्य परम्परामें स्वयंवर विवाहोंमें स्वयंवरके पूर्व नायक-नायिकाओंके मिलनेका वर्णन नहीं रहता है। तमिल काव्य परम्परामें यह पाया जाता है। तुलसीदासके रामचरित मानसमें भी यह पाया जाता है—यह सम्भवतः कम्बका ही प्रभाव रहा हो। स्वयं तुलसीदासने नाना पुराण निगमागम सम्मतम् कहा है। कम्ब रामायण नाना पुराणोंमें एक रहा हो। सुदूर काशी वासी तुलसीपर तमिल रामायणका प्रभाव कैसे पड़ा होगा? इसके सम्बन्धमें यह कहा गया—दक्षिण भारतमें कई शैवमठ हैं जो कई सदियोंसे धर्म और भाषाकी सेवा करते आ रहे हैं। तञ्जाऊर जिलेमें तिरुप्पनन्दाल नामक एक स्थान है जहाँ एक ऐसा मठ है। उसके स्थापक अकबर और जहाँगीरके समयके थे। वे काशीमें जाकर बहुत दिनों तक रहे थे इसलिए मठका नाम ही काशीवासी मठ पड़ा। उनके यहाँ काशीमें प्रतिदिन तमिल कम्ब रामायणपर प्रवचन हुआ करता था। उस समय तुलसीदास भी प्रवचनमें उपस्थित रहते थे। यह तो केवल अनुमानकी बात है।

तमिल प्रदेशमें हिन्दी

इधर तमिल प्रदेशमें "हरि कथा" नामक कथा-वाचनका क्रम चलता है। हरिश्चन्द्रोपाख्यान रुक्मिणीपरिणय आदि कथाओंका प्रवचन होता है। बीच बीचमें गीत भी गाए जाते हैं। ऐसी हरि कथाको सामान्यतः कालक्षेपम कहते हैं। ऐसे कालक्षेपोंमें कबीरदास तुलसीदास 'मीराबाई' आदिकी कथाओंका भी प्रवचन होता आया है। यह क्रम करीब सौ दो सौ वर्षोंसे चला आ रहा है। पर इन प्रवचनोंमें इन साहित्यकारोंको केवल भक्तोंके रूपमें चित्रित किया जाता रहा। इनकी दो चार रचनाएँ सुनाई जाती थीं।

शिवाजी महाराजके एक वंशजने दक्षिणमें अपना प्रभाव बढ़ाया और तञ्जौर जिलेके तञ्जौर (तञ्जाऊर) नगरमें अपनी राजधानी स्थापित की। उनके वंशजोंने तमिल साहित्य और कलाको प्रोत्साहन दिया और साथ-साथ महाराष्ट्र और कुछ अंश तक हिन्दी साहित्यको भी प्रोत्साहन दिया। तञ्जाऊर नगरमें सरस्वती महल लाइब्रेरी नामक बृहद् पुस्तकालय है। उसमें कई हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। यदि कोई उस पुस्तकालयमें जाकर खोजे तो अवश्य ही कुछ हिन्दी रचनाएँ मिल जाएँगी।

इस सदीके आरम्भमें कुछ पारसी नाटक मण्डलियाँ दक्षिण भारतमें हिन्दुस्तानी नाटक प्रदर्शित करती थीं। दक्षिणके लोगोंको हिन्दी या हिन्दुस्तानीके परिचय प्राप्त करनेके ये ही अवसर थे।

मद्रासके श्री वी कृष्णस्वामी अय्यर बडे देश-भक्त थे। वे महामना मालवीयजीके आप्त मित्र थे। सन् १९१० मे उन्होने काशीमे एक भाषण देते हुए कहा था कि हिन्दी ही भारतकी राष्ट्रभाषा हो सकती है। सन् १९१८ ई मे जब बापूजीने दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचारका आरम्भ किया तब वे न रहे। खुशीकी बात है कि उनके दो पुत्र है और दोनो हिन्दी प्रचारके समर्थक है।

आर्य समाजका दक्षिणमे भी कुछ प्रचार हुआ। उसके कारण हिन्दीका भी कुछ प्रचार हुआ पर वह 'राष्ट्रभाषा' का प्रचार नही था—आर्य भाषाका था। मदुरा नगरमे ठाकुर खाँ चन्द्र वर्मा नामक सज्जन १९१५–१६ में ही हिन्दी वर्ग चलाते थे। उन दिनो श्री ऐनी बेसण्टका तमिल प्रदेशमे बडा प्रभाव था। ठाकुरजी बेसन्टका विरोध करते थे। इसलिए वे सरकारी जासूस माने गए।

सन् १९१८ में दक्षिण भारतमे जबसे हिन्दी का प्रचार शुरू हुआ तबसे कुछ आदान-प्रदानका काम शुरू हुआ है। श्रीमती अम्बुजम अम्मालने रामचरित मानसके अयोध्याकाण्डका तमिलमे सरल गद्यानुवाद किया है। आपने प्रेमचन्दके 'सेवा सदन' का भी अनुवाद किया और इस अनुवादके आधारपर तमिल बोलपट भी तैयार हुआ। अनेको उपन्यास और कहानियोका तमिलमे अनुवाद हुआ है। श्री जमदग्नि नामक हिन्दी प्रचारकने स्वर्गीय जयशकर प्रसादकी कामायनीका तमिलमे पद्यानुवाद किया है। ऐसे ही आँसूका भी तमिलमें पद्यानुवाद हुआ है।

तमिलसे हिन्दीमें भी कई ग्रन्थोका अनुवाद हुआ है। स्वर्गीय सुब्रह्मण्य भारतीके 'ज्ञानरथम' नामक गद्य-काव्यका हिन्दीमें अनुवाद हुआ है। तमिल वैष्णव कवि आल्वारोकी कृतियोका अनुवाद हिन्दीमे हुआ है।

सुमतीन्द्रन नामक उत्साही प्रचारकने सुन्दर कविताएँ रची है, जिनकी बडी प्रशसा हुई है। अभी हालमे मुझे दो-चार हिन्दी गीत 'कर्नाटिक राग' मे सुननेका मौका मिला। ये गीत मदुराकी एक देवीने रचे है। ये गीत कृष्ण-भक्तिके गीत है और मीराकी रचनाओसे कुछ मिलते-जुलते हैं।

एक तमिल भाषा-भाषीके कुछ छन्द यहाँ दिए जा रहे हैं —

वर्ण मात्रका है सदा अकारका आधार।
त्यों ही सारी सृष्टिका हैं ईश्वर आधार॥

सुत प्रति करतब बापका बस एकहि सो जान।
पाने योग्य करे उसे विज्ञोंसे सम्मान॥

का होइहि जो राखिए तिय कह कारागार।
ताकर उत्तम चरित ही ताकर राखनहार॥

सुत कर करतब सोय जातें पितुसन सब कहै।
का तप कीन्हा होय, जाकर फल उस सुन भयो॥

वीणा नाद मृदगको उत्तम मानै सोय।
शिशुकी बातें अटपटी जिसने सुनी न होय॥

नारगिका आचार, नाव निसेनी और गुरु।
आप न पावें पार, औरनको कर पार भी॥

ओडिशाकी हिन्दीको देन

डॉ॰ हरेकृष्ण महताब

उत्कलकी भौगोलिक रूपरेखा

हम आजकल जिस क्षेत्रको ओड़िशा कहते हैं उसका ऐतिहासिक नाम था उत्कल और कलिंग। किन्तु अब न तो पहलेका उत्कल ही है और न कलिंग ही। उस समयका ओड़िशा वर्तमान ओड़िशासे बहुत बड़ा था। आधुनिक ओड़िशा भारतके विभिन्न राज्योंमें से एक है। यह १७ ५ उत्तरी अक्षांससे २२ १४ उत्तरी अक्षांस तथा ८१ २७ पूर्वी देशान्तरसे ८७ २९ पूर्वी देशान्तरके बीचमें अवस्थित है। यह भारतके पूर्वी उपकूलमें प्राय ३ मील तक फैला हुआ है। इस राज्यके पूर्वमें बंगोपसागर (बंगालकी खाड़ी) उत्तर-पूर्वमें पश्चिमी बंगाल उत्तरमें बिहार, पश्चिममें मध्यप्रदेश और दक्षिण पश्चिममें आन्ध्रप्रदेश है। आधुनिक ओड़िशाका क्षेत्रफल ६ १३६ वर्गमील है, जिसमें १४६ लाखसे अधिक मनुष्य रहते हैं। यह मयूरभञ्ज केन्दुझर, बालेश्वर, कटक पुरी गञ्जाम कोरापुट कालाहाण्डी फुलबाणी बलांगीर, सम्बलपुर, ढेंकानाल और सुन्दरगढ़—इन १३ जिलोंमें विभक्त है। सन् १९३६में ओड़िशा बिहारसे अलग होकर स्वतन्त्र प्रान्तके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ था। उस समय ओड़िशाका क्षेत्रफल अबसे बहुत कम था। तब इसमें कटक पुरी बालेश्वर, सम्बलपुर, गञ्जाम और कोरापुट—ये छह जिले ही थे। इन छह जिलों और २४ रियासतोंको लेकर ओड़िशा प्रदेश गठित हुआ था। सन् १९४७ में अंग्रेजी सरकारके भारत छोड़नेके बाद कांग्रेस सरकारने देसी राज्योंको प्रान्तोंके साथ मिला देनेका निश्चय किया। इसके फलस्वरूप पहली जनवरी सन् १९४८ को मयूरभञ्जके अतिरिक्त शेष २३ रियासतोंका ओड़िशामें विलयन हो गया। एक सालके बाद मयूरभञ्ज भी ओड़िशामें सम्मिलित कर लिया गया।

ओड़िया भाषा

ओड़िया भाषा प्रधान रूपसे मागधी प्राकृत और अशोकके शिलालेखकी प्राच्य उपभाषाके बीचसे होकर अन्तिम वैदिक भाषामें उत्पन्न हुई है। अशोकके शिलालेखकी भाषा और वैदिक भाषा इन दोनोंके बीचमें पालि भाषा और संस्कृत भाषा है। इसलिए ओड़िया भाषा पालि भाषामें भी संयुक्त है।

अशोकके धाउली और जउगड शिलालेखो और अधिकाश स्तम्भ-लेखोमे व्यवहृत होनेवाली प्राच्य भाषा (Eastern dialect) के कई विशिष्ट लक्षण है। जैसे 'र' की जगह 'ल' का व्यवहार, अकारान्त शब्दके कर्तृ कारक एक वचनमे 'अ' विभक्ति और अधिकरण कारकके एक वचनमें 'असि' विभक्तिका प्रयोग तथा सयुक्त व्यञ्जन वर्णोमे समीकरण। लेकिन गिरनारमे व्यवहृत प्रतीच्य भाषा (Western dialect) में 'र' का व्यवहार, एकारान्त पुल्लिग शब्दके कर्तृ कारक एक वचनमे 'ओ' विभक्ति और अधिकरण कारकके एक वचनमे 'अम्हि' विभक्तिका प्रयोग तथा सयुक्त व्यञ्जनोका व्यवहार (यथा—'प्र, त्र' आदि) भी देखा जाता है। प्रथमोक्त दो भाषागत वैशिष्ट्य सस्कृत नाट्य साहित्यमें व्यवहृत और वैयाकरणोके द्वारा उल्लिखित मागधी प्राकृतमे दिखाई पडते है। सौरसेनीकी भाँति धउली और जउगडकी भाषामें भी केवल 'स' का व्यवहार मिलता है। लेकिन वैयाकरणो द्वारा उल्लिखित नाटच-साहित्यकी मागधीमे केवल 'श' का व्यवहार दिखाई पडता है।

नाट्य साहित्यकी मागधीमे और कई लक्षण है, जो धउली और जउगडकी भाषामें नही मिलते है। यथा —

दृय < प्य (धउली और जउगडमे, सस्कृत अद्य <अज)

न्य् < ञ्ञ („ „ „ अन्य-अन्न)

श्चका प्रयोग („ „ „ छ का प्रयोग)

सयुक्त व्यञ्जनके प्रारम्भमें 'स' का सरक्षण यथा—हुस्ते = (सस्कृत हस्त)

इसके स्थानपर गिरनारमें 'अस्ति' का प्रयोग है, लेकिन धउली, जउगडमे यह नही है।

जैन धर्मशास्त्रकी अर्द्ध मागधीके साथ धउली जउगडकी प्राच्य-भाषाका ऐक्य नही है।

नाटको * मे व्यवहृत साहित्यिक मागधीके उपर्युक्त तीन लक्षण है, यथा—'र' के स्थानमें 'ल' का होना, 'ष' और 'स' के स्थानमे 'श' का होना और अकारान्त पुल्लिग शब्दका कर्तृ कारक एक वचनमें 'ए' का प्रयोग। यह विहारके योगीमारा गुफाके 'सुतनुका' शिलालेखमे दृष्टिगोचर होता है।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दीके लगभगके लिखे खारवेलके हाथीगुफा शिलालेखकी भापा अशोककी धउली, जउगडमे व्यवहृत प्राच्य भाषाकी परिणति नही है। यह पाली सदृश भाषा है।

खारवेलके इस लेखमें अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ व्यवहृत है। 'ऐरेन' शब्दके वैकल्पिक पाठमें 'ऐ' एक ही वार देखा जाता है। पदमें कही-कही सस्कृत 'ऋ' और कही 'अ', किसीमें 'इ' और अत्यन्त विरल 'रु' (यथा-वृक्ष, रूख) का प्रयोग हुआ है। इसमें निम्नाङ्कित व्यञ्जन वर्ण भी व्यवहृत हुए है। क, ख, ग, घ, च, छ, ज, ट, ठ, ड, त, थ, द, ध, प, व और भ।

अनुनासिक—ण, न, म और अनुस्वार।

अन्तस्थ—य, र, ल, व और ह (मात्र 'ळ' का व्यवहार नही है।)

---

* नाटकोमें निम्न स्तरके लोगो द्वारा परवर्ती मागधी प्राकृतका व्यवहार हुआ है। यह मगध देशमें व्यवहृत भाषाके पूर्ण प्रतिबिम्ब रूपसे ग्रहणीय नही है, अर्थात् यह मगधके राजा और ब्राह्मणोकी भाषा नही है।

ऊष्म—केवल स ('श' और 'ष' के स्थानमें भी)

जैन प्राकृतमें पदके अन्तिम अक्षर और बीचमें ओ के स्थानपर कभी-कभी ए हो जाता है लेकिन खारवेलके लेख और पालिमें कहीं भी ओ की जगह ए का प्रयोग नहीं है। पालि और अर्द्धमागधीमें सम्कृत र के स्थानम ल के न होनेकी प्रवृत्तिके साथ खारवेलके लेखका सामञ्जस्य देखा जाता है। न को ण मे परिवर्तन न करनेकी जो प्रधान प्रवृत्ति पालिम दिखाई पड़ती है वह खारवेलके लेखकी भाषामे है, पर अर्द्धमागधी म नही है।

खारवेलके लेखकी भाषामे कई दृष्टियोसे अर्द्धमागधीसे साम्य और पालिसे वैषम्य दिखाई पड़ता है।

अकारान्त शब्दके कर्त्ता कारक एक वचनम ए विभक्तिका प्रयोग (जो अशोकके जउगड़ धउली लेखम * और नाटय साहित्यकी मागधी प्राकृतम देखा जाता है) आधुनिक ओड़िया भाषामे कई स्थानोपर मिलता है। जैसे मे से आदि (हिन्दीमे वा सो) जणे (एक आदमी) दजे (एक दस) टका या टके (एक रुपया) हाते (एक हाथ) गछे (एक पेड़) आदि। आधुनिक ओड़ियामे र और ल दोनोका व्यवहार होता है। वर्तमान ओड़िया भाषी सिर्फ स का उच्चारण करता है। लेकिन लिखते समय सस्कृत वर्णमालाके अनुसार श ष स का भी व्यवहार करता है। जउगड़ और धउली भाषामे अधिकरण कारक एक वचनमे अभि प्रत्यय था लेकिन आधुनिक ओड़ियामें व्यवहृत यहि तहि काहि (यहाँ तहाँ कहाँ) मे हि विभक्ति तथा प्रत्ययका व्यवहार होता है। अनुमान है कि कृष्णाचार्यके चर्यापदम सप्तमी एक वचनके हि का प्रयोग (चर्या ७-५) अभि से आया है।

मोटे तौरपर ओड़िया भाषा मागधी प्राकृत और मागधी अपभ्रंशसे विकसित हुई है। अनुमान है कि इसपर अर्द्धमागधीका प्रभाव पड़ा है।

सन् १९ १ ई म हरप्रसाद शास्त्रीने बौद्धगान ओ दोहा नामक ग्रन्थ नैपालसे खोज निकाला और सन् १९१६ मे उसका सम्पादन कर प्रकाशित किया। चर्यापद नामक ग्रन्थ इसी ग्रन्थम अन्तर्भुक्त है। इस ग्रन्थम 'लईपाद' 'कान्हुपाद' और 'सबरपाद' आदि कई सिद्ध आचार्योंके अनेक पद या गान देखनेको मिलते है। इस चर्यापदकी भाषापर विचार करते हुए किसीने उसे प्राचीन बगला किसीने प्राचीन मैथिली किसीने प्राचीन ओड़िया और किसीने असमी कहकर ग्रहण किया है। लेकिन इसकी भाषाको प्रधान रूपम मागधी अपभ्रंश मानना ठीक होगा। इसमे कुछ हद तक बगला असमी मैथिली और ओड़िया भाषाके कई लक्षण खोजे जा सकते हैं। इन पदकर्त्ताओमेसे कई प्राचीन बगाल ओड़िशा असम तथा मिथिलाके रहनेवाले हो सकते है।

---

* अशोकके जउगड़ धउली शिलालेख कई शब्द और धातु (Root) आज भी पहलेकी भाँति तथा कुछ परिवर्तित होकर ओड़ियाम व्यवहृत होते है। किछि (some) कम्पन किंचित्।

*निमित्तार्थक अविरलक्रिया यातिकालमानाति सम्प्रति—*नप्तु प्रनप्तु महासवैमया महासेके (a surname)—छ पृच्छा-चाउ (desire) आदि।

'लुईपाद' आदि नाम प्राचीन ओडिया साहित्यमें मिलते है।[1] हरप्रसाद शास्त्रीने 'बौद्ध गान ओ दोहा' के दूसरे सस्करण पृ ७६ में 'चौरासी नाथो' या 'सिद्धो' मेंसे ७५ लोगोका नाम गिनाया है। उनमेंसे गोरखनाथ, मीननाथ, चौरगीनाथ, सवरनाथ, और जलन्धरके नामोका उल्लेख 'अमरकोष' नामक प्राचीन ओडिया तालपत्र पोथीके प्रथम अध्यायके प्रारम्भमें है।[2] इसमे मस्त्यन्दनाथ (लुईका दूसरा नाम) का भी नाम मिलता है।

हरप्रसाद शास्त्रीने 'बौद्धगान ओ दोहा'की भूमिकामे स्वीकार किया है कि चर्यापदके कई पदकर्ता और 'दोहाकार' ओडिशाके साथ मपृक्त थे। जैसे—"मयूरभञ्जमें उनकी (लुईकी) पूजा होती थी।[3] एक पदकर्ताका घर ओडिशामें है" उनके गीत ओडियामे लिखे गए है। वगला पदमे जहाँ क्रियाके बाद 'ल' रहता है, वही इसमे 'ड', जैसे—हम 'गहिल' 'गाइड।' अत इसे ओडिया भाषाका पद मानते है।'[4] [5]

ओडिया भाषाके द्वितीय एक वचन का विशिष्ट परसर्ग (Post Position) 'कु' और षष्ठी एक वचनका परसर्ग 'र' क्रमश कृष्णाचार्य और शवरीपादके चर्या-गानमें मिलते है, यथा—

अविद्या करिकु दम अकिलेसे ९।५

आधुनिक ओडियामे होगा—अविद्या करिकुदम अकिलेसे।

तइलाबाडिर पासर जोन्हावाडी उएला ५०।४

(आधुनिक ओडियामे होगा—तइला बाडिर पाशरे जन्हवाडी उइला।)

चर्यापदकी भाषाके साथ ओडिया भाषाका घनिष्ठ सम्पर्क है।

भाषाको लेकर सारे भारतवर्षमे आज जो विभेद दिखाई दे रहे है, वे सब एक नई परिस्थितिके परिणाम स्वरूप है। अँग्रेजोके आनेके बाद जव कचहरी और अदालतोमें व्यवहारके लिए तथा शासनके साथ जनताका सम्पर्क बनाए रखनेके लिए एक साधारण भाषाकी आवश्यकता महसूस की गई और जब अँग्रेजी भाषाको मुख्य भाषाके तौरपर, स्थानीय भाषाको गौण रूपसे स्वीकार किया गया तो उस समय

---

१ लोहिदास मठ करि थाति एठारे लय करि थाति निराकार ध्यान परे, एठारे। (प्राची नदीकूले)—शून्यसहिता, अच्युतानन्द दास (१५-१६ वी शती, गर्गवटुक द्वितीय स पृ ७९।)

२ यह पोथी अध्यापक वशीधर महान्तिके पास है।

३ बौद्धगान ओ दोहा, सम्पादक हरप्रसाद शास्त्री, भूमिका पृ १५।

४ वही , पृ १७।

५ कृष्नाचार्य तेगुरे मनर जाय गाय ताहाके भारतवासी वलिया गिया छे। केवल एक जाये-गाय लेखा—तिनि ब्राह्मण ओडिशा हइते आगत, से ओ आवार तर्जमाकार महापण्डित कृष्न, तिनि ग्रन्यकार नहेक (पृ २४)। ओडिशार राजा इन्द्रभूति वज्रयोगिनी उपासना प्रचार करने, ताहार कन्या लक्ष्मीकरा अेइविषये ताहाके विशेष सहायता करिया छिलेन एव सस्कृते अनेक पुस्तक लिखिया छिलेन।

शवरीश्वर या सवर से हि दलेइर लोक छिलेन (पृ २९)। ओडिशा निवासी तेलीपेर एकखानी दोहाकोष छिल (पृ ३४)।

यह देश सर्वत्र नैतिक पतनकी चरम सीमा तक पहुँच चुका था। मुख्य भाषा के विरोधमें किसीको कुछ भी कहनेका साहस नहीं था उल्टे गौण भाषाके तौरपर भी स्वीकृति पानेके लिए सभी प्रादेशिक भाषाओंने जब कोशिश की तो यह समझना चाहिए कि उसी समयसे प्रादेशिक भाषाओंके भीतर अन्तर्विवादका बीज बोया गया। इसी बीजके कारण धीरे-धीरे भाषानुसार प्रदेशोंकी सृष्टि हुई। आज फिर प्रान्तीय स्वतन्त्रता आदिका विकास होते-होते यह एक विषम समस्या बनकर खड़ी हो गई है। कोई भी प्रान्त एक भाषा-भाषी नहीं है। प्रत्येक प्रान्तमें एकाधिक भाषाओंके व्यवहार करनेवाले लोग आदिकालसे वास करते आ रहे हैं। भाषाओंके भीतर परस्पर आदान प्रदान बराबर चलता आ रहा था। लेकिन प्रान्तीय भाषाके नामपर जब किसी एक भाषाका निर्णय कर उसे कानूनन स्वीकार करानेका प्रयास होने लगा तब भाषा विवादने उत्कट रूप धारण किया। यही है आज हमारी भाषाकी समस्या!

परन्तु यदि कुछ काल पहले की स्थितिपर दृष्टि डाली जाए तो यह पाया जाएगा कि उस समय भाषाओंके भीतर परस्पर सम्भाव तथा बन्धुता थी। इससे इस विषयपर विचार करना आसान होगा। सबसे पहले हमें यह याद रखना चाहिए कि भाषा साहित्यकी सृष्टि करती है उसी प्रकार वह स्वयं उसका विकास भी मनुष्यके भाव-विकासपर निर्भर करता है। जब भाषाके सहारे भाव व्यक्त होता है तब वह साहित्य बन जाता है। आज जिस प्रकार जातीयता आन्तर्जातीयता और राजनीति देशके मनोभावको बड़े पैमानेपर आलोड़ित कर रही है वैसा पहले जमानेमें न था। पहले मानवकी ईश्वर चिन्ताने ही मनुष्यके भाव जगतपर अधिकार जमाया था। खासकर प्राय एक हजार सालसे पहले जब भारतवर्ष विदेशियोंके द्वारा ध्वस्त-विध्वस्त हो गया था जब देवाध्युषित स्थान लुण्ठित और धूलिसात हो गए थे और भारतका आत्मविश्वास लुप्त प्राय हो गया था। भारतवासी अपनी कर्मशक्तिका विश्वास खोकर ईश्वरका आश्रय ले किसी तरह अपनी रक्षा कर सका था। वही है भक्तिका युग। निराश्रयका जगदीश रक्षक था। उस समयके भाव-जगतका मन्त्र उस समयका प्राय सभी साहित्य भक्ति-भाव प्रसूत है। ईश्वरकी भक्तिको प्रकट करनेके लिए कोई भाषाके विभेदका विचार नहीं करते थे। खासकर भक्तिभाव श्रीकृष्ण और श्री रामचन्द्रको केन्द्र मानकर प्रकट होता था। भक्ति कार्यके हेतु अयोध्या वृन्दावन जगन्नाथपुरी आदि तीर्थक्षेत्रोंका आकर्षण उस समय बहुत था। अत उन्हीं इलाकोंकी भाषा दूसरे भाषा-भाषी भावुकोंके भाव-प्रकाशन व्यवहृत होना स्वाभाविक था।

पुरी पुरुषोत्तम या श्रीक्षेत्र श्री शंकराचार्यके समयसे सनातन धर्मकी पीठके नामसे प्रसिद्ध थे। शंकराचार्यके बाद श्री रामानुज द्वारा जयदाव देव पुरीमें भक्ति भावका प्रचार होनेके बाद ही ओड़िशामें भक्ति-भावके प्रवाहने स्रोतका प्रभाव क्रमश अधिकाधिक होने लगा। नरहरि तीर्थके ओड़िशामें अवस्थानने भक्ति भावके प्रसारके लिए सुन्दर क्षेत्र तैयार किया था। अन्तमें श्री चैतन्यजीका पुरीमें आगमन हुआ और उनकी सारी लीलाओंको वहीं प्रकट किया गया जिसके कारण पुरी या श्रीक्षेत्र ही भक्ति-भावका एक पीठ हो गया। फिर भी मूल केन्द्र तो अयोध्या और वृन्दावन ही रहे। उस समय साधु-सन्तोंका परिभ्रमण तथा तीर्थ-पर्यटन ही आन्तर प्रादेशिक सम्पर्क रखनेका एक मात्र उपाय था। इसमें सन्देह नहीं कि उत्तर भारतसे बहुतसे साधु-सन्त पुरी जगन्नाथजीके दर्शनके लिए आते थे भजन गाते थे। अत उनकी भाषाका वाणीका ओड़िशामें प्रसरित होना अस्वाभाविक नहीं है।

उस समय उत्तर भारतकी भाषा क्या थी, यह प्रश्न है। आज जिसको हिन्दी कहा जाता है, वैसी वह नही थी। उस समय व्रज वोली प्रधान भाषा थी। वास्तविक हिन्दीका स्वरूप वही है। आजकी प्रचलित हिन्दी भाषाने व्रज वोली, खडी बोली, भोजपुरी, मैथिली आदि बहु आञ्चलिक भाषाओको आत्मसात कर विकास किया है, उस समय ये आञ्चलिक भाषाएँ ललित, उन्नत और पुष्ट नही थी, ऐसा नही कहा जा सकता, किन्तु यह मान लेना अनुचित नही, कि ये भाषाएँ आत्म-समर्पण करके साहित्य क्षेत्रसे विलीन-सी हो गई। व्रज वोलीका मधुर भक्ति-साहित्य आज ऐतिहासिकोका आलोच्य विषय मात्र रह गया है। एक समय यही व्रज भाषा भी ओडिशाके भक्तोंके द्वारा भावोकी अभिव्यक्तिका साधन बनी थी। ओडिया भाषा समझनेवाली जनताके लिए जिन भक्तोने ओडिया भाषामें साहित्य लिखा था, वे ही व्रज भाषा समझनेवाले भक्तोंके लिए उन्हीकी भाषामे गीतोकी रचना करते थे। उस समय जो भक्त, भारत प्रसिद्ध थे, उन्होने ही विभिन्न भाषा-भाषियोंके लिए विभिन्न भाषाओमे अपने भाव व्यक्त किए है। यही है ओडिशामे हिन्दी साहित्यके विकासका मूल इतिहास।

उसके बाद जब ओडिशामें दो सौ साल तक मुसलमानोका राज्य चला, तो उस समय राजकीय भाषा फारसी थी, उसी समय बहु-सख्यक राजपूत और पञ्जाबी ओडिशामें आकर बसने लगे। यद्यपि उर्दू फारसीसे विकसित हुई है, तथापि उर्दू और हिन्दीके भीतर सामञ्जस्य इतना अधिक है कि सम्भवत हिन्दी भाषा क्रमश उर्दू भाषाको भी आत्मसात कर ले। उस समय ओडिशामें कुछ व्यक्तियोने उर्दू तथा हिन्दी भाषामे प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। मुसलमानी राज्य कालके बाद फिर जब मराठोका राज्य प्रतिष्ठित हुआ, उस समय भी फारसी राजकीय भाषा बनी रही। लेकिन तब तक फारसी, उर्दू, मराठी, ओडिया आदि सब भाषाओमें मिल-जुलकर आमतौरपर एक हिन्दीका आकार ले लिया था। इसी समय कुछ उडिया व्यक्तियोने हिन्दी साहित्यमें भी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

प्रत्येक कविकी जीवनी और उनकी कविताओके नमूने देनेके लिए यहाँ स्थानका अभाव है। केवल उनका नाम तथा अनुमानित समय ही दिया जाता है। इन लोगोकी सारी रचनाएँ पुस्तकाकारमें प्रकाशित होनी चाहिए। यहाँ उदाहरणार्थ कुछ पद्यांश दिए गए है।

१५ वी सदीके अन्तमे जब श्री चैतन्यजी श्रीक्षेत्रमे आए, उस समय तक भक्तराय रामानन्द भक्ति मार्गमें बहुत अग्रसर हो चुके थे। राय रामानन्दने सस्कृत, ओडिया तथा व्रजबोलीमे बहुत-सी रचनाएँ की थी। राय रामानन्दके व्रजभाषामे लिखित बहुतसे सगीत आज भी उत्कलीय तथा बगीय वैष्णव भक्तोंके आदरके धन है। उनकी हिन्दी कविताका एक नमूना देखिए —

पहिलेहि राग नयन भगे भेल।
अनुदिन बाढ़ल अवधि ना गेल॥
ना सो रमण, ना हाम रमणी।
दुहु-मन मनोभव पेषल जानि॥
ए सखि, से—सब प्रेम— काहिनी।
कानू—ठाने कहवि विछूरल जानि॥

ना कौशल भूती ना कौशल मान।
हृदको निम्नने मध्ये पाँवबान॥
मब सोहि विराग तुहुं मेलि भूतो।
सुपुरुष—प्रेमक ऐक्षन रीति॥
वर्धन चत—भरताधिप—मान।
रामानन्द—राय कवि भाण॥

(श्रीमद् सुन्दरानन्द विद्याविनोद विरचित अचला
नीलाचल ग्रन्थ पृ ५८)

इसी समय भक्त कवि श्री जगन्नाथदासजीका आविर्भाव हुआ। आज ओड़िसाकी पूरपल्लीमें इनके भागवतपका घर-घर पाठ किया जाता है। श्री चैतन्यने भक्तके हिसाबसे इन्हें अति बड़ जगन्नाथ दास कहा है। इन्होंने ओड़िया भाषामें बहुत-सी कविताओंकी रचना की थी। व्रजभाषामें भी इनकी कुछ रचनाएँ थीं। उनमसे नमूनेके रूपमें निम्नलिखित कविता देखिए —

बहे बहे सुगन्ध बात रहे रहे तरुगन मुकात।
गहे गहे वन निरखमात। पंछी सर्व विविध रूप करे शार शार॥
वन घन घन कोला कुल कल कल कल कोकिल कुल।
मोर मोर मारे मोर, रटे अपार अपार
जगन्नाथ हिय हर हर
वृन्दावन वन्दन बलीहार बार बार॥

+ + +

सुरंग रंग माथ पाग जरी जरकस जामें लाग।
भलका लल्क सोहे भाल, विधुवर चित चमक है।

+ + +

नयन देख सफरीगन तकित बीच बचक है।
नासाकी ठाठ देख चम सुग कानन उपेख
अधर देख मोर भानु भक्त किम्बो सरन है।
दशन जोति मोती वारो कुन्द कलियाँ कौन वारौं
विप्र जगन्नाथ वारौं वदनकी बलिहारी है।

(नवजीवन ४ थी संख्या मई, १९२८ में प्रकाशित
श्री नीलमणि मिश्रके निबन्धसे)

इसके बाद मुगलोंके राजत्वकालमें कवि श्री वंशीवल्लभ मिश्रने अपनी काव्य प्रतिभासे तत्कालीन समाजको दंग कर दिया था।

निश्चित रूपसे ज्ञात न होनेपर भी ये अठारहवीं सदीके अन्तिम चरणमें पैदा हुए थे। इनका जन्म-स्थान-भद्रकके आस-पास गणपग्राम था। ये ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न हुए थे। इनके पिताका नाम

सत्यनारायण मिश्र गोस्वामी और माताका नाम सत्यवती देवी था। बचपनमे शिक्षाके प्रति अनमने-से थे। किम्वदन्ती है कि सालिन्दीके किनारे उत्तरेश्वर महादेव और शीहट नागर आदि प्रत्यक्ष देवताओकी कृपासे वे कवि बन सके। फारसी भाषामें वे प्रवीण थे। उन्होने फारसी भाषामे कई लोकनाटच लिखे हैं। इनके लिखित 'मोगल तामसा', 'फकीर तामसा', और 'राधाकृष्ण तामसा' आदि लोकनाटच चैत महीनेमें अभिनीत होते है। इसलिए इन्हे चैती तामसा कहते हैं। इनकी रचनाओकी कुछ बानगी देखिए ---

शिव वन्दना

जयहटेश्वर महिमा सागर मन्दिर शोहे चउतारा।
त्रिशूल ऊपर बाना उड़े घेरत घटकत है पारा॥
अघोग नाशी मुक्तक दासी जटा-जुट गग तेरा।
अघीन वल्लभ दीन ही भावै जयहटनागर बम् भोला॥

('मोगल तामसा' से)

सालन्दी नद तीर्थराज है त्रेता युग अवतारी।
राम, लछुमन, सीता मायी अवगाहन कुण्ड् जारी॥
जात चयत जो मात रही हैं अघनन मानस मेला।
नाथ कहे चान्दनीका ऊपर सितार बोले बम् भोला॥

('योगी तामसा' से)

मोगल उक्ति

मर हवाये पयग मुस्ता कावे दहे पयगामे दोस्त।
ता कुन सजा अजसरे रगवत फिदाये नामे दोस्त॥
किर मुकायेम सममुका खास वरद रक्ता कर दयन।
रतनके बाजारे अजम राबि गारव बुर दयन॥

('मोगल तामसा' से)

भिश्तीके प्रति

बदजात भिश्तीवाला अबतक न लाया पानी।
पानी बिगैर हमारा हयरान परेशानी॥
गोस्ताखी करके दिलमें करता है बेइमानी।
वरमा न मिलेगा जबतक न लावे पानी॥

('मोगल तामसा' से)

ग्वालिनके प्रति

ए यार दिल नवाज हमारी सलाम है।
अहे नाजनीन निगार हमारी सलाम है॥
करता है नित सलाम नसुद हासिले कलम।
तू अबरू एक मानके मेरे सलाम है॥

चारु कलाधर चान्द बराबर लाल प्रवाल जवाधर तारे।
आप बिशाल भुज दुइ तोल के दीनको रखनेका पुकारे।।

\+ \+ \+ (गुण्डिचा बिजे पृ १०)

ओ देवी सुभद्रा उए भक्त भद्रा
सर्ग लोक माता भवानी दयाद्री।
बल्लि हेम-गोरी सदा है किशोरी
सुभोगी बिलासी अनाशी अछिद्रा।।

\+ \+ \+ (गुण्डिचा बिजे पृ १०)

मसक मिठाई रस कोई पाई
लवणी के 'चुरमा' सब से है नरमा।
विरी लड्डु नाडी, हरिमन वेढ़ी
'कान्ति' सुकान्ति मान्ति कुमान्ति।

\+ \+ \+

आरिसा बहुपुरा 'सुकाकरा'
टाकुआ मित गजा मनोहरा।
वुन्दिआसर अमालू इण्डुरी
हसकेली खुरुमा गजापुरी
बल्लल रम्मा श्रेणी वात्तोकी सयुत मरीच पानी
दधिरस सहिता 'राई' जिह्वा—लोभकारी संतोषदानी।।

('गुण्डिचा बिजे', १७, १८)

रामदास

सिद्धन कों छुटत ध्यान, मानिनी सब तेज मान
ग्यानीकों भूल्यो ध्यान, योगी मन भटकी।
कहत अधीन श्रीराम, नवजलधर सुन्दर श्याम,
छिनत् है कोटि काम, मेरो मनमें अटकी।

\+ \+ \+

पीतपट पहरे पीत पछोरी उधारे,
गोवर्द्धन धारे नन्दके दुलारे।
कह तुह ए श्रीराम रटतु हैं वाही नाम
मेरो प्राणप्यारे मुरली वारे।।

\+ \+ \+

श्याम सजल जलद घनघटा
वरन छवि छटा

चारु कलाधर चान्द बराबर लाल प्रवाल जवाधर तारे।
आप बिशाल भुज दुइ तोल के दीनको रखनेका पुकारे॥
(गुण्डिचा बिजे पृ १०)

\+ \+ \+

ओ देवी सुभद्रा उए भक्त भद्रा
सगे लोक माता भवानी दयाद्री।
बल्लि हेम-गोरी सदा है किशोरी
सुभोगी बिलासी अनाशी अछिद्रा॥
(गुण्डिचा बिजे पृ १०)

\+ \+ \+

मसक मिठाई रस कोई पाई
लवणी के 'चुरमा' सब से हैं नरमा।
विरी लड्डु नाडी, हरिमन वेड़ी
'कान्ति' सुकान्ति भान्ति कुभान्ति।

\+ \+ \+

आरिसा बहुपुरा 'सुकाकरा'
टाकुआ मित गजा मनोहरा।
वुन्दिआसर अमालू इण्डुरी
हसकेली खुरुमा गजापुरी
वन्तल रम्भा श्रेणी वात्तोकी संयुत मरीच पानी
दधिरस सहिता 'राई' जिह्वा—लोभकारी सतोषदानी॥
('गुण्डिचा बिजे', १७, १८)

रामदास

सिद्धन कों छुटत ध्यान, मानिनी सब तेज मान
ग्यानीकों भूल्यो ध्यान, योगी मन भटकी।
कहत अधीन श्रीराम, नवजलधर सुन्दर श्याम,
छिनतु हे कोटि काम, मेरो मनमें अटकी।

\+ \+ \+

पीतपट पहरे पीत पछोरी उघारे,
गोवर्द्धन धारे नन्दके दुलारे।
कह तुह ए श्रीराम रटतु हैं वाही नाम
मेरो प्राणप्यारे मुरली वारे॥

\+ \+ \+

श्याम सजल जलद घनघटा
वरन छवि छटा

मस्तक तीर फेंटा
लगि है अतिगौटा।
कर मुरली लकुटा
बसन पीतपटा
राजित कटि तटा
ठेरे यमुनाको तटा।
गोपीयन घर पैठा माखन दधि लूटा
व्रज के भी चोठा
वाहि मार अर्जुन तरु टूटा,
मिश्रिदिन श्रीराम बाहाको रटा भो रटा भो रटा।

(नवजीवन तृतीय वर्ष ४ थी संख्यामें श्री मौक्तमणि मिश्रके निबन्धसे)

जगबन्धु हरिचन्दन या जगबन्द

सुगन्ध मन्द मर मर मधुर बहे समीर
तब पत सब छन छन छन लहु लहु लहु
पल्लव सब डोइये।
लपट सब लताजाल वापर सब पंछी माल
झुलकत सब हार डाल
कोयल सब कुहु कुहु कुहु कोलाहुल बोलि हुएं।
+ + +
जगबन्द जन्म पुन पुन गुन वृन्दावन किये बन्धन
बलीहारी बार बार वृन्दावन वास है॥
+ + +
महीमारको निवारन जन्म लियो जो मोहन
पूरन ब्रह्म सनातन बैकुण्ठवासवाला।
पूतना कोहि जो मारे, भवंरा चरनको तोडे
तृणा को लेयारे जो घोर रन में डाला।
जगबन्द जन्म मोहि श्रीकृष्ण सदा प्रगट वृन्दावन
नवघन काहु काला (नवजीवन तृतीय वर्ष ५ वी संख्यामें श्री मौक्तमणि मिश्रके निबन्धसे)

कविचन्द्र नरसिंह राय गुरु

अरे तुम क्या नवाब हो अनगुल राजा बड़ा।
आरे जहां में हुकुम फिराए यहीं हांके घोड़ा॥

घडी घडीमें फौज चलाए हिन्दोल गड दिया मडा।
कुरु मिठा हवेली कबेली जितना दौलत पोडा॥

\+ \+ \+

राजा कहे मैं क्या खून किया
यात्री लोगों की मुलाकात न पाया॥
फन्ध अन्ध सब दौलत लिया।
बउद बरवाद अनुगुल हुआ॥
तुम क्या पूछ रहे, चिडिया सत नवावे
नरपति लोगोंको दोष लगाना कम्पनी जात स्वभावे।

\+ \+ \+

साहेब कहे तुम दाखल राए,
कम्पनी घर तुमको खूनी बताए।
सारा जहा में लोग मराए
घाट बाट खूनी नाट को जाए।
राजा तुम क्या मन कहे जल्दी राची चलो।
विप्र श्रेष्ठ कविचन्द्र कहे विहि लिहि बामको पाओ॥

(श्री सुधाकर पटनायक द्वारा सम्पादित, कविचन्द्र श्री नृसिंहराय गुरु लिखित 'राजा सोमनाथ सिंह जगदेव' नामक पुस्तकसे उद्‌धृत और 'आसन्ता कालि' की पूजा सख्या १९६१ में प्रकाशित श्री नीलमणि मिश्रके लेखसे।)

सम्बलपुर राजदरबारके कवि श्री विप्र प्रहलाद रायकी कविताका नमूना देखिए —

कौशलमें मुखमान महानद पाटनमें बसुधा वसुधाई।
सम्बलपुर पवित्रपुरी प्रलहाद कहे मोहीं वर्णि न जाई।

\+ \+ \+

कौशलमुख्य सम्बलपुर देशा। जहाँ वसत चौहान नरेशा॥
बसे नगुपुर गदी सोभाँहि। जेंहि छवी जम्बो द्वीपमें नाहीं॥
चित्रोत्पल गढ बहें बढ़तीरा। जह उपजे मनी कञ्चन हीरा॥
शस्त्र सशास्त्र पुरन पुरवासी। विद्यामें मन लहुरें काशी।
अलकापुरी पटान्तर देशा। पहुचे नहीं पापुके लेशा॥
आपु बैठी सिरजो समलाई। ताते समलपूर कहाई॥
बसें सहर छतीसों जाति। महारम्य सों भावहु भाति।

कोटि विप्राश्रए कोष्ठ तरे। नग सीमामो अपुम धर्में रे।
मस्तावल मह सेवा करइ। अष्टपाद ते पह अनुसरइ।
दुर्गम दुर्ग दुर्ग बहु बांके। चार्ई महानद है जाके।
चढ़े चरन तोपें मनमेले। रोग होही दुस्मन बोह देखे।

(ओड़िशा म्यूजियममें सुरक्षित जय चन्द्रिका ग्रन्थ से
उद्धृत मासन्ता कालि पूजा संख्या १९९१ में प्रकाशित)

इनके अतिरिक्त रघुराय अनंग भीम मधुपुर नरेन्द्र बानपुर हरिचन्दन आदि कवियोंने भी हिन्दीमें रचनाएँ की है। श्री राय रामानन्दके बनवासीके पदोंकी चर्चा बंगला भाषामें लिखे ग्रंथोंसे मिलते है।

शेष ओड़िया तथा हिन्दी दोनों भाषाके साहित्यिकोंके बारेमें ओड़िसा म्यूजियमके श्री नीलमणि मिश्रने मासिक साहित्योंमें आलोचना की है। इनकी हिन्दी रचनाएँ अबतक प्रकाशित नहीं हुई है। श्री बंशीवल्लभ मिश्रकी रचनाएँ आज तक म्यूजियमके हस्तगत भी नहीं हुई है। लेकिन जिस स्वर और भावमें इन कवियोंकी रचनाएँ देखनेमें आती है, इसमें सन्देह नहीं कि इन्होंने उस समयके हिन्दी साहित्यमें उच्च स्थान प्राप्त किया था।

२ श्री सत्ताब्दीम श्रीमती कुन्तलाकुमारीका नाम हिन्दी साहित्यमें अनुपम रहा है। इन्होंने हिन्दीमें कई पुस्तकें उपन्यास काव्य आदि लिखे है।

पञ्जाबकी हिन्दीको देन

डॉ. धर्मपाल मैनी

पञ्जाबकी ऐतिहासिकता

वेदोंके गायक 'मन्त्र द्रष्टार' ऋषियोंकी पवित्र भूमि तथा आर्योंका आरम्भिक प्रदेश पञ्जाब भारतका गौरव है। उन्नत ललाट, रक्त-आभान्वित कपोल, तेजपूर्ण नेत्र, सार्द्र केश राशि, विस्तृत वक्ष-स्थल, विशाल बाहु, गौर वर्ण और ओजमय आनन—सब मिलकर जिस सात्विक तेजोमय सौम्य आकृतिको सजीव और साकार बनाते हैं, वह आर्यत्वको सार्थक करती है। ब्रह्मावर्तका ब्रह्मतेज और वीरप्रसू-भूमिके योद्धाका वीरत्व मानो यहीं साकार हुआ है। सरस्वती तो ब्रह्मावर्त्तमें सरस्वतीको ही प्रवाहित करने चली आई थी तथा दृषद्वतीने यहांके लोगोंको विशेष दृष्टि प्रदान की, दोनोंने मिलकर मध्यवर्ती ब्रह्मावर्त्त प्रदेशमें ही ऋषियोंको प्रादुर्भूत किया। विश्वके प्राचीनतम वाङ्मय ऋग्वेदकी ऋचाओं से सर्व प्रथम यही प्रदेश निनादित हुआ था। ऋग्वेदमें इसका प्राचीनतम उपलब्ध नाम सप्तसिन्धु है, जिसमें सरस्वती, शतद्रू (सतलुज), विपासा (व्यास), परुष्णी (रावी), असिक्नी (चिनाब), वितस्ता (झेलम), तथा सिन्धु इन सात नदियोंका उल्लेख है। सरस्वतीको छोडकर शेष पाँचों नदियाँ सिन्धुमें आकर मिलती हैं, वही सबसे प्रमुख नदी है, अतः इस प्रदेशका नामकरण उसीके आधारपर हुआ। 'स' के स्थानपर 'ह' का प्रयोग करनेवाले ईरानियोंने इसे 'हप्तहिन्दु' भी कहा है। महाभारतमें जिन सात द्वीपोंके राजाओंका उल्लेख है, वे इन नदियों द्वारा निर्मित द्वाबोंके ही नृप हैं। उन दिनों इस प्रदेशके लिए वाहीक या आरट्ट नामका भी प्रयोग मिलता है। चिनाब और सिन्धके संगमपर पञ्चनद नामक छोटा-सा स्थान है। सम्भवतः इसी नदका स्थान 'अम्बु' (जल) ने लिया और धीरे-धीरे 'पञ्चाम्बु' से 'पञ्जाब' नाम प्रचलित हुआ। दूसरी सम्भावना यह भी है कि 'नद' का स्थान फारसीके 'आब' [सं आप्=जल] शब्दने लिया, जिससे 'पञ्जाब' बना। राजस्थानके कवि सुन्दरदास (१७ वी शताब्दी) ने सर्व प्रथम अपनी कवितामें 'पञ्जाबी' शब्दका प्रयोग किया है। ऐतिहासिक प्रमाणों तथा साहित्यमें उल्लेखके अभावमें यह अनुमान करना बहुत असंगत न होगा कि प्रागैतिहासिक कालसे ही इस सम्पूर्ण

प्रदेशके लिए सप्त-सिन्धु के अतिरिक्त अन्य कोई एक नाम प्रचलित नहीं हो सका। महाभारत कालमें इस भूखण्डकी भौगोलिक स्थिति कुछ इस प्रकार थी —

कुरु जांगल कुरुक्षेत्रके पास दृषद्वती (चितंग ?) से लेकर यमुनाके समीप तकका उत्तरा प्रदेश है जो इसकी दक्षिण-पूर्वी सीमा बनाता है। इसके सामका प्रदेश बहु धान्यक है जिसके प्रमुख नगर रोहितक (रोहतक) का उल्लेख भी मिलता है। इसमें आधुनिक गुड़गाँव रोहतक तथा हिसार आदि जिलोंको लिया जा सकता है।

ब्रह्मावर्त मनुस्मृतिमें सरस्वती और दृषद्वती (चितंग ?) के मध्यवर्ती प्रदेशको ब्रह्मावर्त कहा गया है। यही ऋचाओंके गायक ब्रह्मर्षियोंका पवित्र प्रदेश है। इसीलिए मनुने इस प्रदेशके परम्परागत आचारको ही सदाचार कहा है। ऋग्वेदमें सरस्वती दृषद्वती नदियों तथा इस पवित्र ऋषि-भूमि ब्रह्मावर्त का विशेष उल्लेख है। यहाँ बहुतसे ऋषि-आश्रम थे। यहाँ शैरीषक (सिरसा) ऋषियोंकी प्रधान नगरी थी। ईसाकी प्रथम शताब्दीमें शतद्रू (सतलज) तक इसका विस्तार हो गया था जिसपर मालव-गणका अधिकार था। कुरुक्षेत्रसे अम्बालाकी ओर तथा उससे भी आगे पर्वतीय प्रदेशमें एक ओर शिमला तथा दूसरी ओर देहरादून तकका प्रदेश कालकूट कहलाता था।

त्रिगर्त शतद्रू (सतलज) और इरावती (रावी) के मध्यवर्ती प्रदेशका नाम त्रिगर्त था। जालन्धर इसके केन्द्रमें प्रमुख नगर था। पाणिनिने छह बाहरी कबीलोंका आकर यहाँ बस जानेका भी उल्लेख किया है। आधुनिक जालन्धर होशियारपुर, गुरदासपुर चम्बा कांगड़ा मण्डी सुकेत आदिका यह प्रदेश है। सम्पूर्ण सप्तसिन्धु का मध्यवर्ती प्रदेश मध्यमिका (माझ) आधुनिक लाहौर और अमृतसरका प्रदेश था जिसमें बादमें सम्भवतः त्रिगर्तका भी कुछ भाग मिल गया था।

मद्रदेश इरावती (रावी) और चन्द्रभागा (चिनाब) के मध्यवर्ती अधिकतर पर्वतीय प्रदेशको मद्रदेश कहा गया है। कुछ विद्वानोंने इसे रावीसे झेलम तकका प्रदेश माना है। परवर्ती समयमें यह सीमा ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। व्यापारका बहुत बड़ा केन्द्र शाकल (स्यालकोट) इसकी राजधानी थी। चीनी यात्री हुवेन्त्सांगने भी इसका वर्णन किया है। गाय वृष तथा घीके लिए प्रसिद्ध ग्राम मखियालाके प्रदेशको उशीनर नाम दिया गया था।

पूर्व गन्धार और अपर गन्धार सिन्धुके दोनों ओरके प्रदेशको पूर्व गन्धार तथा अपर गन्धार कहा गया है। इसी प्रदेशमें प्रसिद्ध तक्षशिला (जिला रावलपिंडी) पुष्करावती (पेशावर) अटकटका (अटक) तथा उरसा (हजारा) आदि नगर अवस्थित थे। तक्षशिला गन्धार राज्यकी राजधानी थी। पाणिनीने भी इसका उल्लेख किया है। यहाँके लोग सभ्य तथा समृद्ध थे और ई पू तीसरी शताब्दीमें यह शिक्षा का बहुत बड़ा केन्द्र था।

कैकेय प्रदेश रामायण में व्यासके आगेके प्रदेशको तथा महाभारतमें आधुनिक झेलम शाहपुर आदि जिलोंको कैकेय प्रदेश कहा गया है। झेलमके पश्चिमी किनारेसे लेकर चिनाबसे इसके संगम तकका यह प्रदेश है। इसी भूमिको वीर प्रभू भी कहा गया है।

सौवीर सिन्धका पुराना नाम था। इसकी राजधानी रोरुका (रोहरी) में पुराने सिक्के आदि भी मिले हैं। इसीके सामने बारवर (सक्खर) भी प्रसिद्ध नगर था।

महाभारत कालके वाद इस प्रदेशके भिन्न-भिन्न क्षेत्रोपर विभिन्न राजा राज्य कर रहे थे। वीर एव स्वाभिमानी पोरसको तक्षशिलाके राजाकी सहायतासे हराकर महान योद्धा सिकन्दरने ई पू ३२६ मे वहुतसे भागोपर अपना अधिकार कर लिया था। उसके लौटनेके कुछ समय वाद चन्द्रगुप्त मौर्यने उस प्रदेशको जीतकर अपने राज्यमे मिला लिया तथा उसके पौत्र सम्राट् अशोकने तक्षशिलाको ही अपने उत्तरी राज्यकी राजधानी वनाया था। कलिंग-विजयके वाद वौद्ध धर्मका आश्रय लेकर अपने सम्पूर्ण साम्राज्यमे सुख, शान्ति और समृद्धि लानेमें उसने कोई कसर न उठा रखी थी। ईसाकी पहली शताब्दीमे शक तथा कुशाण वाह्य आक्रमणकारियो द्वारा विजित पञ्जावके कुछ प्रदेशको ईसाकी चौथी शताब्दीमे समुद्रगुप्तने वापस लिया। उसके पुत्र विद्या और कला-प्रेमी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने अपने राज्यकी सर्वांगीण प्रगतिकर हिन्दू धर्म, सभ्यता और सस्कृतिकी पुन प्रतिष्ठा की। छठी शताब्दीमे हूणोका आक्रमण हुआ और सातवी शताब्दीके आरम्भमे उन्हे पराजित कर हर्षवर्धनने थानेश्वरको अपनी राजधानी वनाई। उसके वाद यहाँ छोटे-छोटे राज्य रह गए। ग्यारहवी शताब्दीके आरम्भमे महमूद गजनवीके हाथो जयपालकी हारने पञ्जावमे हिन्दू राज-सत्ताको लगभग समाप्त कर दिया। १६ वी शताब्दीमे पानीपतके प्रसिद्ध युद्ध इसी प्रदेशमे हुए, पर रणजीतसिंहसे पहले कोई इस प्रदेशका उद्धार न कर सका। मौका पाकर अनेक छोटी-छोटी रियासते भी स्थापित हुई। अँग्रेजोका राज्य स्थापित होनेके वाद वीसवी शताब्दीके आरम्भमे उन्होने इस प्रदेशको सिन्ध, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त तथा पञ्जाव इन तीन प्रान्तोमें विभाजित कर दिया और स्वतन्त्रता-प्राप्तिके समय युग-युगसे चली आने वाली राष्ट्रीय सास्कृतिक दायादके धनी पञ्जावको पूर्वी और पश्चिमी पञ्जावके रूपमे भारत और पाकिस्तान दो भिन्न राष्ट्रोका अग वना दिया गया। धर्म और जातिके आधारपर विशाल जन-समूह का स्थानान्तरित व विपन्न होना इस विभाजनकी अनचाही देन है। इतना ही नही, धर्मके नामपर धर्मान्ध लोगो द्वारा ही नर-सहारका नग्न-नृत्य मानवताके पाशविक इतिहासमें भी अविस्मरणीय है। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पश्चात् सन् १९४८ मे आठ रियासतोको मिलाकर वनाए हुए पैप्सू राज्यको सन् १९५६ में पञ्जावमें मिलाकर इस प्रदेशको एक वनानेका भारत सरकारने प्रयत्न किया था, लेकिन 'भाषाके आधारपर प्रान्त निर्माण' के नारे और आन्दोलनके परिणाम स्वरूप प्रान्तको न केवल हिन्दी और पञ्जावी भाषा-भाषी दो क्षेत्रोमे विभक्त कर दिया गया है, अपितु इसी आधारपर राज्य विधान सभाकी भी दो प्रादेशिक समितियाँ वना दी गई है। सक्षेपमे इस प्रदेशके ऐतिहासिक विकासकी यही कहानी है।

प्रदेशकी भाषा

ब्रह्मावर्त्तमे वैदिक ऋचाओका गान आरम्भ हुआ था। धीरे-धीरे ऋषियोकी वैदिक सस्कृतके अतिरिक्त जन-समाजमे जो भाषा प्रचलित हुई, उसे लौकिक सस्कृत कहा गया है। महाभारत-काल तक इसीका प्रचलन रहा। सम्भवत इसीलिए वेदव्यासने इसे साहित्यिक माध्यमके रूपमे अपनाया तथा भगवान कृष्णने भी इसी भाषामे गीताका सन्देश दिया। भगवान बुद्धके समय जन-भाषाका आसन ग्रहण करनेवाली 'पालि' को बुद्ध-भक्त पाल वश के राजाओने विशेष रूपसे प्रचलित किया। इसी समय सस्कृतको विकृत होनेसे बचानेके लिए ही पञ्जावके प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनिने अष्टाध्यायीकी रचना की, परिणाम-

स्वरूप संस्कृत केवल शिक्षितोंकी भाषा रह गई। सिकन्दर आदि विदेशियोंके आक्रमणोंके कारण अभारतीय भाषाओंके शब्दोंको अपनानेवाली प्राकृत जन भाषाके अधिक निकट होती गई और ईसाकी पहली शताब्दी तक आते-आते पालि धार्मिक ग्रन्थोंकी भाषा बन गई। पाणिनिकी परम्परामें महाभाष्य के द्वारा संस्कृतके स्वरूपको सुरक्षित करनेवाले पतञ्जलिने भ्रष्ट भाषाको सर्वप्रथम अपभ्रंश नाम दिया। पुनः शक कुषाण आदि विदेशियोंके भारतपर आक्रमण एवं विजय तथा निवासने अपभ्रंशके विकासमें विशेष योग दिया। गुप्त कालमें उच्च शिक्षित वर्गकी भाषा संस्कृत तथा निम्न व अशिक्षित वर्ग (जन सामान्य) की भाषा प्राकृत थी। कालिदासके नाटक इसके प्रमाण हैं। हूणोंके आक्रमणोंके बाद अपभ्रंश अधिक प्रचलित हुई और हर्षकी मृत्युके बाद तो यह स्वरूप साहित्यका माध्यम भी बन गई। ८ वीं से १२ वीं–१४ वीं शताब्दी तक अपभ्रंश-काव्यका निर्माण होता रहा। हम कह सकते हैं कि आधुनिक भारतीय भाषाओंके विकास तक सम्पूर्ण उत्तरी भारतपर—साहित्य और जन-भाषाके माध्यमके रूपमें विभिन्न अपभ्रंशोंका ही राज्य रहा। इन्हींमें आरम्भिक भारतीय आर्य भाषाओंके तत्त्व देखनेको मिलते हैं जिन्होंने धीरे-धीरे विकसित होकर स्वतन्त्र भाषाओंका रूप ग्रहण किया। पैशाची शौरसेनी तथा महाराष्ट्री अपभ्रंश इनमें प्रमुख थीं जो इन्हीं नामोंकी प्राकृतोंसे विकसित हुई थीं। पञ्जाबी भाषाकी उत्पत्तिपर वैज्ञानिक दृष्टिसे अभी सन्तोषप्रद कार्य नहीं हो पाया है। पी० डी० गुणे सुनीतिकुमार, डॉ० गोपाल-सिंह दर्दी तथा सुरिन्दर सिंह कोहली शौरसेनी अपभ्रंशको इसकी जननी मानते हैं। तारापुरवालाने इसपर शौरसेनीका प्रभाव स्वीकार किया है। ग्रियर्सनने 'माझ' की भाषाको पैशाची बताते हुए कहा है कि पैशाची की नींवपर शौरसेनीने जो प्रासाद बनाया वही पञ्जाबी है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा डॉ० भोलानाथ तिवारी तथा प्रेमप्रकाश सिंह इसकी उत्पत्ति कैकेय अपभ्रंशसे मानते हैं। प्रेमप्रकाश सिंहके अतिरिक्त अन्य किसी भी विद्वानने युक्ति-युक्त विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया है। मेरे विचारसे मूल प्रश्न यह है कि आधुनिक पञ्जाबीका विकास लहंदा या केन्द्रीय पञ्जाबी—उसकी किस उपभाषा या बोलीसे हुआ है? इसका समाधान किए बिना यह समस्या सुलझने वाली नहीं। अन्यान्य मतोंपर विचार तथा भाषाका विश्ले-षणात्मक अध्ययन करनेके बाद हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि पञ्जाबी शब्द-रूपोंकी दृष्टिसे लहंदा (पश्चिमी पञ्जाबी) तथा भाषाकी प्रकृतिकी दृष्टिसे केन्द्रीय पञ्जाबी (पूर्वी पञ्जाबी) के अधिक निकट है। भाषाके ये ही दो मूल तत्त्व हैं। लहंदाका पुराना शब्द भण्डार कुछ पैशाचीसे और अधिक तथा कैकेय अपभ्रंशसे प्रभावित तथा विकसित प्रतीत होता है तथा माझ (पूर्वी पञ्जाबी) की प्रकृति और प्रवृत्ति शौरसेनी अपभ्रंश की देन है। अब तक के अध्ययनके आधारपर इससे अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। इनके अतिरिक्त सम्पर्क में आनेवाली ब्रजभाषा फारसी आदिका प्रभाव भी कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होता है। गजनवी राबी और उससे भी आगे तक इस भाषाका प्रचलन हुआ। इधर पूर्व दक्षिणी भागमें यमुना तक ब्रजभाषा और खड़ी बोली विकसित होती रहीं। मुसलमानोंके आधिपत्यके बाद फारसी का जो प्रभाव यहाँ की भाषाओंपर पड़ा वह सोलहवीं शताब्दीके बाद और अधिक बढ़ा। महाराजा रणजीत सिंह (१८ वीं शताब्दी) के राज्यमें पञ्जाबीको महत्त्व मिला। इधर ब्रजभाषा साहित्यका माध्यम बनी आ रही थी उसीको रियासतोंने गुरमुखी लिपिमें अपनाया तथा पञ्जाबी यहाँ बोल चालकी भाषाके रूपमें प्रचलित हुई। अंग्रेजी राज्यके साथ-साथ यहाँकी भाषाओंपर उसका कुछ प्रभाव पड़ा। प्रचलित अंग्रेजी शब्दोंमें कुछ विकृत

रूपोको इन भाषाओने अपनाया। इस प्रकार पञ्जावमें ब्रजभाषा और पञ्जावीका विकास साथ-साथ हुआ। सिख गुरुओकी वाणीका माध्यम कही ब्रजभाषा है, तो कही पञ्जावी। आजतक उसका वैज्ञानिक विश्लेषण न करनेके कारण कुछ विद्वानोने उसे हिन्दी तथा दूसरोने पञ्जावी कहा है। गुरुमुखी लिपिमें पञ्जावीसे प्रभावित ब्रजभाषाका वहुत-सा साहित्य उपलब्ध है, जिसे लिपिके कारण पञ्जावीके अन्तर्गत रख दिया गया है। वस्तुत शौरसेनी अपभ्रशकी कुछ विशेषताएँ दोनोमें सामान्य रूपसे देखनेको मिलती हैं। अत एक भाषामें दूसरेका भ्रम हो जाना वहुत कुछ स्वाभाविक भी है। इतना होते हुए भी सक्षेपमें हिन्दी और पञ्जावीकी प्रकृतिमें निम्नलिखित भेद उपलब्ध हैं —

१ पञ्जावीमे हिन्दीके—को, से, का, के, की, मे तथा परसर्गोके स्थानपर क्रमश—नूँ, तो, दा, दे, दी, विच तथा ते का प्रयोग होता है।

२ हिन्दीके 'ता' तथा 'न' के स्थानपर पञ्जावीमें क्रमश—'दा' तथा 'ण' का प्राय प्रयोग मिलता है।

३ पञ्जावीमे स्त्रीलिंग वहुवचनके साथ सहायक क्रिया भी उसके अनुरूप ही परिवर्तित हो जाती है, लेकिन हिन्दीमें नही। (हि—वे जाती हैं। प—ओ जादियाँ हण।)

४ भूतकालमें हिन्दी 'था' के स्थानपर पञ्जावीमें 'सी' का प्रयोग होता है।

नाथ-साहित्य

विश्वकी महान् विभूतियाँ काल-प्रसूत होती हैं। मध्यकालीन भारतीय वाङमयके क्रान्तिदर्शी साहित्यिक नेता गोरखनाथ ऐसी ही विलक्षण विभूति थे। ईसाकी दसवी शताव्दीमे केन्द्रीय एव स्थानीय राज्य शक्ति के अभावमे निराश्रित, विक्षुब्ध एव विशृंखलित भारतीय जनता साहस, शक्ति, धर्म और सन्तोष आदि मानवके आन्तरिक गुणोका महत्व समझा कर निष्प्राण सामाजिक जीवनमें चेतना फूंकनेवाले व्यक्ति की ओर आँखें लगाये वैठी थी। ऐसे समय वाह्य प्रभावोसे आन्तरिक जीवनको विक्षुब्ध न होने देनेकी अपूर्व शक्तिका क्रियात्मक सन्देश लेकर गुरु गोरख अवतीर्ण हुए। विश्वके इतिहासमें वाहुओके अशक्त हो जानेपर अनेक वार वाक् शक्तिने समाजका साथ दिया है—वह वाक् शक्ति जो जीवन शक्तिकी अभिव्यक्ति हो और वैयक्तिक जीवनकी अनुभूति जिसकी आधार-भूमि हो। गोरखकी जोगेसुरी वाणी इन तत्वोका ही घोल है।

सिद्धोंसे सन्तोका सम्बन्ध जोडनेवाली महत्वपूर्ण नाथोकी लडीके मूर्धन्य गोरखनाथ पञ्जावकी ही विभूति थे। इन्होने न केवल अपने गुरु मत्स्येन्द्र (मच्छेद्र) को जगाया, अपितु इस विशिष्ट ज्ञानकी प्रसारक परवर्ती अमर परम्परा भी प्रचलित कर दी, जिसके सम्पर्कमें आकर उत्तरी भारतका वहुत-सा वाङमय महान् वन गया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्लने 'भाषा' और 'सम्प्रदायिक प्रवृत्ति' (शिक्षा मात्र) के आधारपर इन रचनाओको यह कहते हुए कि 'जीवनकी स्वाभाविक अनुभूतियो और दशाओसे उनका कोई सम्बन्ध नही' शुद्ध साहित्यके अन्तर्गत नही रखा। डाक्टर रामकुमार वर्मा इनके काव्यत्वको उभारे विना ही इनके सिद्धान्तोका परिचय देकर इसे 'विविध साहित्य' के अन्तर्गत रखते हैं। 'शुद्ध' विशेषण जोडते हुए शुक्लजीने इनकी

साहित्यिकताको दबी आवाजमें स्वीकार किया है। साधन मूलक विधियों और वैराग्योत्तेजक विचारोंका बाहुल्य होनेसे नीरसताका आधिक्य मानते हुए भी आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने इनके कुछ सबदों में सञ्चरित मानव रस में पाठकको मग्न कर उनका काव्यत्व उभारा है और इस प्रकार शुक्लजीकी दबी आवाजको प्रखर स्वर दिया है। इतना ही नहीं परवर्ती हिन्दी साहित्यमें परिलक्षित पवित्र आचरण-शुद्धि और मानसिक पवित्रताका जो स्वर सुनाई पड़ता है उसका श्रेय इस साहित्यको ही है। इसलिए इस पथके साहित्यसे परवर्ती हिन्दी साहित्यका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह लिखकर उन्होंने हिन्दी साहित्य सापेक्ष उसका महत्त्व भी दिखाया है। जहाँ तक भाषाका सम्बन्ध है न केवल गोरख बाणी अपितु अब तो "नाथ सिद्धोंकी बानियाँ" में भी जिस भाषाका परिचय मिलता है विद्वान् उसे हिन्दीका ही आदिम रूप स्वीकार करते हैं। प्राप्त प्रमाणोंके आधारपर गुरु गोरखका समय नवीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध मानना ही अधिक युक्ति संगत प्रतीत होता है। राहुल सांकृत्यायन इस मतके प्रवर्तक थे। डॉक्टर मोहनसिंहकी खोजसे इस बल मिला तथा सभी प्रमाणोंको एकत्रित कर तर्क संगत ढंगसे प्रस्तुत कर आचार्य द्विवेदीको इसे सर्वाधिक प्रामाणिक एवं लगभग निश्चित बना देनेका श्रेय प्राप्त है।

अब तक की खोजके आधारपर गुरु गोरखकी २८ के लगभग संस्कृतमें तथा ४ के लगभग हिन्दीमें रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। संस्कृत रचनाओंका विशेष विवरण नाथसम्प्रदाय में प्राप्त है। हिन्दी रचनाओंमें बहुत-सी पृष्ठ भरसे अधिक की नहीं हैं। पीताम्बरदत्त बड़थ्वालने सबदी पद शिष्या दर्शन प्राणसंकली नरवैबोध आत्मबोध अभय मात्रा योग पन्द्रह तिथि सप्तवार मछिन्द्र गोरख बोध रोमावली ज्ञान तिलक ज्ञान चौंतीसा और पंचमात्रा इन चौदह रचनाओंको प्रामाणिक माना है। इनमेंसे ज्ञान चौंतीसा को छोड़कर शेष सभीको गोरख बाणी संग्रहमें प्रकाशित भी किया था।

सिद्धान्तकी दृष्टिसे डॉ० मोहनसिंह इनमें से मछिन्द्र गोरखबोध को अति प्रामाणिक व महत्त्वपूर्ण मानते हैं। लेकिन प्रबोधचन्द्र बागची तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीका यह मत अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि गोरखने उसे स्वयं न लिखा होगा तो भी यह मत्स्येन्द्रके सिद्धान्तोंपर प्रकाश डालने वाला अवश्य है। गोरखके परवर्तियोंमें कुछ कबीर गुरु नानक दादू आदि परवर्ती सन्तोंके नाम से भी प्रचलित हैं। अतः उन सबकी प्रामाणिकताके विषयमें निश्चित रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता। फिर भी इतना निश्चित है कि उनका मूल स्वर गोरखका ही है। सभी रचनाओंमेंसे सबदी को गोरखकी सबसे अधिक प्रामाणिक रचना माना जा सकता है। इनमें काम क्रोध लोभ मोह आदि मानसिक दुष्प्रवृत्तियोंपर अंकुश रखकर मनको दृढ़ एवं उदात्त बनानेका समर्थन किया गया है। इस प्रकार बाह्य आडम्बरोंके स्थानपर आन्तरिक शुचिता का महत्त्व दर्शाया गया है। मध्यमार्गी योगको स्वावलम्बित करके उन्होंने नाथ साधकी शिथिल प्रणाली प्रचलित की और काम-वासनाको देह-साधनाका समुचित अंग बना दिया। सब विचारोंकर उन्होंने सहज जीवनका एक मार्ग प्रस्तुत किया जो परवर्ती सन्तोंमें अधिक स्पष्ट और प्रखर होता गया है। शुद्धाचरण सहज जीवनकी आधार भूमि है। कथनी और करनी में ऐक्य उसका प्राण है। इसमें सिद्धान्तसे कहीं अधिक क्रियात्मक जीवनपर बल दिया है। कोरा ज्ञान नहीं उसकी जीवनके माध्यमसे अभिव्यक्ति ही जीवन्त सत्य है।

इनकी भाषा रचनाओंमें कई 'गोष्ठ' भी प्राप्त है। सिद्धान्तोकी व्याख्याके लिए सम्भवत इस शैलीका आश्रय लिया गया है। इसी परम्परामे यह शैली परवर्ती सन्तोंमें भी प्रचलित हुई तथा हिन्दी साहित्यको 'उलटबाँसियाँ' भी इन्हींकी देन है।

जालन्धरनाथ तिब्बतसे प्राप्त भोट ग्रन्थोंके आधारपर नाथ-सम्प्रदायमे इन्हे मत्स्येन्द्रनाथका गुरु तथा आदि नाथ माननेकी परम्परा चली आ रही है। लेकिन भारतीय योग-परम्परामे इन्हे मत्स्येन्द्रका गुरुभाई स्वीकार किया गया है। जो हो, ये मत्स्येन्द्रनाथके समसामयिक अवश्य थे। उसीसे इनका समय ९ वी शताब्दीका पूर्वार्द्ध उचित जान पडता है।

यज्ञाग्निसे उद्भूत होनेके कारण इन्हे ज्वालेन्द्रनाथ कहा गया है तथा उसीका विकृत रूप जालन्धर-नाथ है। पर इनके प्रधान शिष्य कृष्ण पाद (कानपा) ने उन्हे जालन्धरिपा कहा है तथा अन्य प्राचीन उद्धरणोंमें भी इनका यही नाम प्राप्त है। अत यही इनका वास्तविक नाम प्रतीत होता है। इनके नामसे ही इनका जालन्धर पीठसे सम्बन्ध स्पष्ट है, जिसे प्राय सभी विद्वानोने स्वीकार किया है। इनके नामपर सात ग्रन्थोका उल्लेख मिलता है। परन्तु 'नाथ सिद्धोकी बानियाँ' मे इनके केवल १३ पद सगृहीत है जिनमे नाथ पन्थी विचार धारा ही मिलती है। सद्गुरुके माध्यमसे ही परम पदकी प्राप्तिका भी उल्लेख है तथा कर्मानुकूल फल प्राप्ति पर विशेष बल दिया है।

पहलै कीया सो अब भुगतावै।
जो अब करै सो आगै पावै॥
जैसा दीजै तैसा लीजै।
ताठे तन-घर नींका कीजै॥

चरपटीनाथ चम्बाकी रियासत राजवशावलीमे इनका उल्लेख है तथा राज प्रासादके सम्मुख इनका एक मन्दिर भी मिलता है। नाथ-परम्परामें इन्हे गोरखका शिष्य और तिब्बती परम्परामें इन्हे मीनपा का गुरु माना गया है। सम्भवत इनका समय दसवी शताब्दी है। इनकी 'चतुर्भवाभिवासन' नामक एक कृतिका तिब्बतीमें अनुवाद प्राप्त है। गुरु नानककी 'प्राण सकली' मे इनकी गुरुसे जो बात-चीत है उससे स्पष्ट है कि ये किसी मृत्युञ्जयी रसायनकी खोजमें थे और बाह्य वेशका इन्होने विरोध किया है। "नाथ सिद्धोकी बानियाँ" मे इनके ५९ पद और ५ श्लोक सगृहीत हैं। उनमे भी इन्होने बाह्याडम्बर तथा वेषका यथाशक्ति विरोध किया है। एक उदाहरण देखिए —

इक पीत पटा इक लम्ब जटा।
इक सूत जनेऊ तिलक ठटा।
इक जगम रहीए भसम छटा।
जडतउ नहीं चीनै उलटि घटा।
तब चरपट सगले स्वाँग नटा॥

'योग-प्रवाह' में भी इनके कुछ हिन्दी पद सग्रहीत है।

चौरगीनाथ पिण्डीके जैन ग्रन्थ भण्डारमें इनकी 'प्राण सकली' मिली है जिसमें इन्होने अपने को राजा शालिवाहनका पुत्र, मत्स्येन्द्रका शिष्य तथा गोरखका गुरुभाई कहा है। राहुलजीके अनुसार

इन्हें तिब्बती परम्परामें गोरखका गुरुभाई ही माना जाता है। पञ्जाबकी लोकगाथाओंमें इन्हें स्यालकोटका पूरन भगत कहा जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी किसी उपयुक्त प्रमाणके अभावमें तथा प्राण सकली की भाषाके आधारपर इस मतसे सहमत नहीं है। यही मत समीचीन प्रतीत होता है। प्राण सकली की प्रारम्भिक भाषा पूर्वी है तथा बादकी राजस्थानीके निकटकी। तन्जुरमें इनकी वायुतत्त्व भावनोपदेश पुस्तकका तिब्बती अनुवाद भी प्राप्त है। नाथ सिद्धोंकी बानियाँ में इनकी प्राण सकली (जिसकी अन्तिम संख्या १४९ है लेकिन बीचमें बहुत-सी वाणीके अभावमें वस्तुतः १ से ज्यादा नहीं) सबदीके चार पद तथा थी नाथाष्टक नामसे आरतीके आठ पद संगृहीत हैं। इनके विचार नाथ-परम्पराके ही हैं।

हिन्दीका सन्त साहित्य सभी दृष्टियोंसे गोरखके माध्यमसे पञ्जाबका ऋणी है। कबीर, गुरु नानक दादू आदिके साहित्यपर इनका विशेष प्रभाव देखनेको मिलता है। आचार्य द्विवेदीके शब्दोंमें "केवल हिन्दीके साहित्यपर ही नहीं बंगला मराठी उड़िया नैपाली आदि भाषाओंके साहित्यमें भी इस सम्प्रदायके विश्वासों की स्मृति रह गई है। कबीर आदि सन्तोंके अनेक पद थोड़े परिवर्तनके साथ पूर्ववर्ती नाथ-सिद्धोंकी रचना है।" विकृत ब्राह्मण-धर्मके बाह्याडम्बरोंका विरोध कर, चित्त-शुद्धि व मनोनिग्रहका सन्देश लौकिक आकर्षणोंसे बचकर जीवनके उच्च मूल्योंको समझना-समझाना मायाका विरोध और वैराग्यका महत्व— कहणि रहणि बिन थोथी का क्रियात्मक प्रचार तथा कुछ अंश तक योगका महत्त्व पथ प्रदर्शक गुरु ही सर्वसर्वा आदि नाथ-पन्थके विचार ही सम्पूर्ण सन्त-साहित्यको आप्लावित किए हुए हैं। अपने मतको जन-सामान्यके निकट लानेके लिए उन्होंने लोक भाषाका आश्रय लिया और सन्तोंने भी उनका अनुकरण किया। न केवल इतना ही अपितु शैलीकी दृष्टिसे भी सिद्धान्तोंकी व्याख्या व अपने मतकी विजय दिखानेके लिए प्रश्नोत्तर रूपमें गोष्ठ का आश्रय वैराग्योत्तेजक भावोंके प्रचारके लिए पद तथा अपने मतके प्रति लोगों-की उत्सुकता बढ़ानेके लिए थोड़ी-सी उलटबाँसियोंका प्रयोग सम्पूर्ण सन्त साहित्यकी विशेष रूपसे गोरख व नाथ-सम्प्रदायकी ही देन है।

अब्दुल रहमान

संस्कृत प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य तथा उसकी परम्पराओंके ज्ञाता इस कविका आविर्भाव ग्यारहवीं शताब्दीमें मुल्तानमें हुआ था। उनका सन्देश रासक तीन प्रक्रमोंमें २२१ छन्दोंमें आबद्ध है। उनकी अन्य प्राकृत रचनाएँ व गीत आज तक अप्राप्य ही हैं जिनका उल्लेख उनकी इस कृतिमें है। सन्देश रासकमें प्रोषित पतिका नायिका एक पथिक द्वारा अर्थ-लोभके कारण गए हुए पतिको सन्देश भेजना चाहती है। बार-बार उस रोकनेपर भी वह सन्देश पूर्ण नहीं कर पाती और अनायास ही रो पड़ती है। पथिकके जाते ही पति आ जाता है और मिलनमें काव्यका अन्त होता है। भाव-साम्यकी दृष्टिसे कालिदासके मेघदूतकी अप्रत्यक्ष छाया इसपर दृष्टिगोचर होती है। उसमें बाह्य वर्णनकी अपेक्षा आन्तरिक वृत्तियोंका उल्लेख अधिक आत्मीयतापूर्ण बन सका है। कविके नामको छोड़कर उसके काव्यसे उसके अहिन्दू होनेका कोई चिह्न-मात्र भी प्राप्त नहीं। इसमें विरह-दशाकी अनुभूतियोंका वर्णनका प्रयत्न है। चाहे जिस वस्तुका *वर्णन हो 'व्यञ्जना हृदयकी कोमलता और मर्म बेधकता होती है' द्विवेदीजीके इस कथनसे ही इस काव्यका* गौरव स्पष्ट है। यह प्रधानतः अपभ्रंश का काव्य है जिसमें विरह-काव्योंमें प्रयुक्त उन सभी भारतीय रूढ़ियों

और काव्य-परम्पराओका बहुतायतसे निर्वाह हुआ है, जो सस्कृत और हिन्दी काव्यमें देखनेको मिलती है। इस दृष्टिसे यह इन दोनोकी 'सयोजक लडी है। पद्मावत की विरहिणी नागमतीमे इसकी छाया देखी जा सकती है।

चन्द (चदबरदाई)

मध्यकालीन भारतीय इतिहासमें विशेष स्थान रखनेवाले महाराज पृथ्वीराज (१३ वी शताब्दी) के अभिन्न सखा, वीर योद्धा, कुशल सलाहकार व मन्त्री महाकवि चन्द लाहौरमें ही उत्पन्न हुए थे। उनके हिन्दीके प्रथम महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकतापर पर्याप्त विचार हो चुका है। सभी दृष्टियोसे विचार करनेके बाद हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि रासोमें पर्याप्त अनैतिहासिक वर्णन महाकवि और उसकी कृतिकी ऐतिहासिक सत्तामें व्याघात पहुँचानेमे अक्षम हैं। कविका समय और उसकी कृतिका मूल रूप वाद-विवादका विषय हो सकते हैं, पर उनकी सत्ता नही, विशेषत जबसे 'पुरातन प्रबन्ध सग्रह' मे मुनि जिन विजयजीने चन्दके छप्पय दिए है, जिनका आधार १५ वी शताब्दीका हस्तलेख भी है। ६९ समयोमे विभक्त २५०० पृष्ठोके 'रासो' के आकारकी दृष्टिसे बहत् मध्यम, लघु तथा लघुतम-चार रूप किए गए हैं। लघुत्तम रूप वहत्का सक्षिप्त रूप ही है, फिर भी इसमे प्रक्षेप कम और प्रामाणिकता अधिक होनेकी सम्भावना अवश्य है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीके अनुसार इसमे निम्नलिखित प्रामाणिक अश है --

आरम्भिक अश, इन्छिनी विवाह, शशिव्रता का गन्धर्व विवाह, तोमर पाहारका शहाबुद्दीनका पकडना, सयोगिता का जन्म, विवाह तथा इच्छनी और सयोगिताकी प्रतिद्वन्द्विता और समझौता।

'रासक' शृगार काव्य है और 'रासो' शृगाराधारित वीर काव्य। इसमे पथ्वीराजके युद्धोसे कही अधिक तीन विवाहोका (इन्छिनी, सयोगिता और शशिव्रतासे) सजीव वर्णन है। इनमे भी सयोगिता वाला प्रसग निस्सदिग्ध रूपसे मूल रासो का सर्वप्रधान अग था, यद्यपि प्रक्षिप्त अशने उसे भी बहुत कुछ विकृत कर दिया। 'रासो' में पूर्वप्रेम व रागकी सभी दशाओ तथा उससे उत्पन्न अन्यान्य परिस्थितियोका सरस वर्णन है। कवि प्रथाके अनुसार नख-शिख वर्णन भी मिलता है। जन सामान्यका चित्रण करनेवाला काव्य न होकर यह ह्रासोन्मुखी सामन्ती शक्तियोके अन्तर्विरोधका चित्रण करनेवाला महाकाव्य है। कविने ऐतिहासिक तथ्योमेंसे जीवन्त सत्यको अपनी उर्वर कल्पना शक्तिसे चारु बनाकर सहृदय पाठकोके लिए सरस मानवीय महाकाव्यका प्रणयन किया है। ऐतिहासिक शुष्क कथात्मकताका उसमे नितान्त अभाव है, पर इससे उसका काव्यगत मूल्य कम करनेका हमें कोई अधिकार नही। मानवीय सत्योमेंसे जीवन रस निकालकर उसे काव्य-रसमें परिणत कर देनेकी तथा जीवनकी विषय परिस्थितियोको भी सरस तूलिकासे रग देनेकी अपूर्व क्षमता इस महाकविमे है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीके शब्दोमे--कथाकार की अद्भुत योजना शक्ति, कथाका घुमाव पहचानने की अपूर्व क्षमता, भावोका उतार-चढाव चित्रित करनेकी मोहक भगिमा तथा मार्मिक स्थलोका सरस वर्णन महाकविकी प्रतिभाके कुछ विशिष्ट पग-चिन्ह है। उनका शब्द-भण्डार तथा शब्दोका उचित प्रयोग आधुनिक पाठकको भी चकित कर देता है। भापापर

उनका विशेष अधिकार था। शिवसिंह सरोजमें उन्हें छप्पयोंका राजा कहा था पर डॉ॰ नामवरसिंहने तो उन्हें छन्दोंका राजा की उपाधिसे विभूषित किया है।

संस्कृतके अन्तिम महाकाव्यके बहुत देर बाद हिन्दी का प्रथम महाकाव्य होनेके कारण इसपर महान दायित्व था। उसका पर्याप्त सफलता पूर्वक निर्वाह करनेके कारण इसका साहित्यिक मूल्य अत्यधिक है। संक्षेपतः यह कहना अत्युक्ति न होगा कि प्राचीन सांस्कृतिक तथा साहित्यिक मान्यताओं तथा कथानक रूढ़ियों का पथ एवं प्रक्षेपकोंको पर्याप्त ज्ञान था। 'रासो' न केवल उनका पोषक रहा है अपितु परवर्ती महाकाव्योंका दिग्दर्शक भी। प्राचीन भारतीय साहित्यिक परम्पराको नवीन तक पहुँचानेके लिए यह मध्यस्थ प्रकाश-स्तम्भ है। परवर्ती हिन्दी साहित्य इसका प्रमाण है।

सन्त-काव्य

गोरख जालन्धर आदि नाथोंकी जो परम्परा पञ्जाबमें प्रचलित थी उपयुक्त प्रतिभाके अभावमें तथा परिस्थितियोंके परिवर्तित हो जानेके कारण वह बहुत देर तक उसी रूपमें आगे न बढ़ सकी अथवा उनका साहित्य न मिलनेके कारण वह लुप्त प्रतीत होती है। उसी परम्परासे बहुत कुछ लेकर सम्पूर्ण उत्तरी भारतमें जिस सन्त काव्यका प्रणयन हुआ उसे संगृहीत कर समन्वित रूप देनेका बहुत कुछ श्रेय पञ्जाबमें सन्त काव्यके उन्नायक गुरु नानक को ही दिया जा सकता है।

गुरु नानक देव (सं १५२६–१५९६) जन्मसे अन्तिम कर्मसे गुरु यात्राओंसे भ्रमणशील चतुर्दिक ज्ञानके भण्डार, उदात्त भावनाओंके अजस्र स्रोत अध्यात्म-पथके अविचल पथिक गुरुनानक महान् व्यक्तित्व लेकर संसारमें आए। मोदी खाने में बैठा-बैठा उनके अन्तरका ब्रह्म झिलमिला उठा। प्रतिभा प्रस्फुटित हुई और दोहों चिट्ठा में देहों कहिमा के माध्यमसे उनकी वाणी अभिव्यक्त हुई। अनुभूति सम्पूर्ण वाणीका आधार है। उनके प्रधान विषय हैं ब्रह्म तथा उसकी प्राप्ति का उपाय नाम —उसका महत्व तथा निरन्तर स्मरण। माया हउमैं (अहं) विषय-विकार, बाह्याडम्बर (जप तप तिलक माला पूजा तीर्थ-स्नान आदि) अवरोधक शक्तियोंकी निस्सारता तथा सत्सङ्ग सद्गुरु और अभ्याससे मनको वशमें करना नदरि (भगवत् कृपा) का महत्व तथा निष्काम कर्मण्यताका महत्व स्थापित कर धर्मपराङ्मुख अकर्मण्य जनता को कर्मण्य बनाते हुए धर्मोन्मुख करना। वस्तुतः सैद्धान्तिक सत्योंको ही व्यावहारिक रूप देना उनकी वाणीका मुख्य उद्देश्य है। उन्होंने सभी सन्तोंकी वाणियोंका संग्रह करनेमें अपनी समन्वयात्मिका बुद्धिका परिचय दिया। इसीलिए गुरु नानककी विरोध करनेवाली वाणी न भी कबीर की कटुता नहीं उनके धार्मिक विश्वासोंमें वैष्णव आचार्योंकी सार्वभिकता नहीं उनके जीवन-यापनमें योगियोंकी शारीरिक कष्टमयी साधनाएं नहीं उनकी भक्तिमें पुष्टिमार्गका आडम्बर नहीं उनके नाम-स्मरण में वैष्णवोंकी ताना-रटन्त नहीं उनके ज्ञानमें शंकरकी शुष्कता नहीं और इन सबसे बढ़कर उनके कर्ममें हउमैं (अहंकार का गर्व नहीं। यही कारण है कि उनकी वाणी बहुत जनप्रिय और प्रभावोत्पादक सिद्ध हुई। उनकी भाषा लोकी पश्चिम व मध्यके अनुकूल बदलती चलती है। वह सदा ही भावानुसारिणी रही है। जपुजी आदिमें समान शैलीके दर्शन होते हैं। उन्होंने ब्रज और पञ्जाबी—दोनोंमें ही काव्य रचना की है। भाषाका महत्व होने के कारण अभी तक उनकी भाषाका विश्लेषणात्मक अध्ययन नहीं हो सका। रागका उनकी वाणीमें विशेष
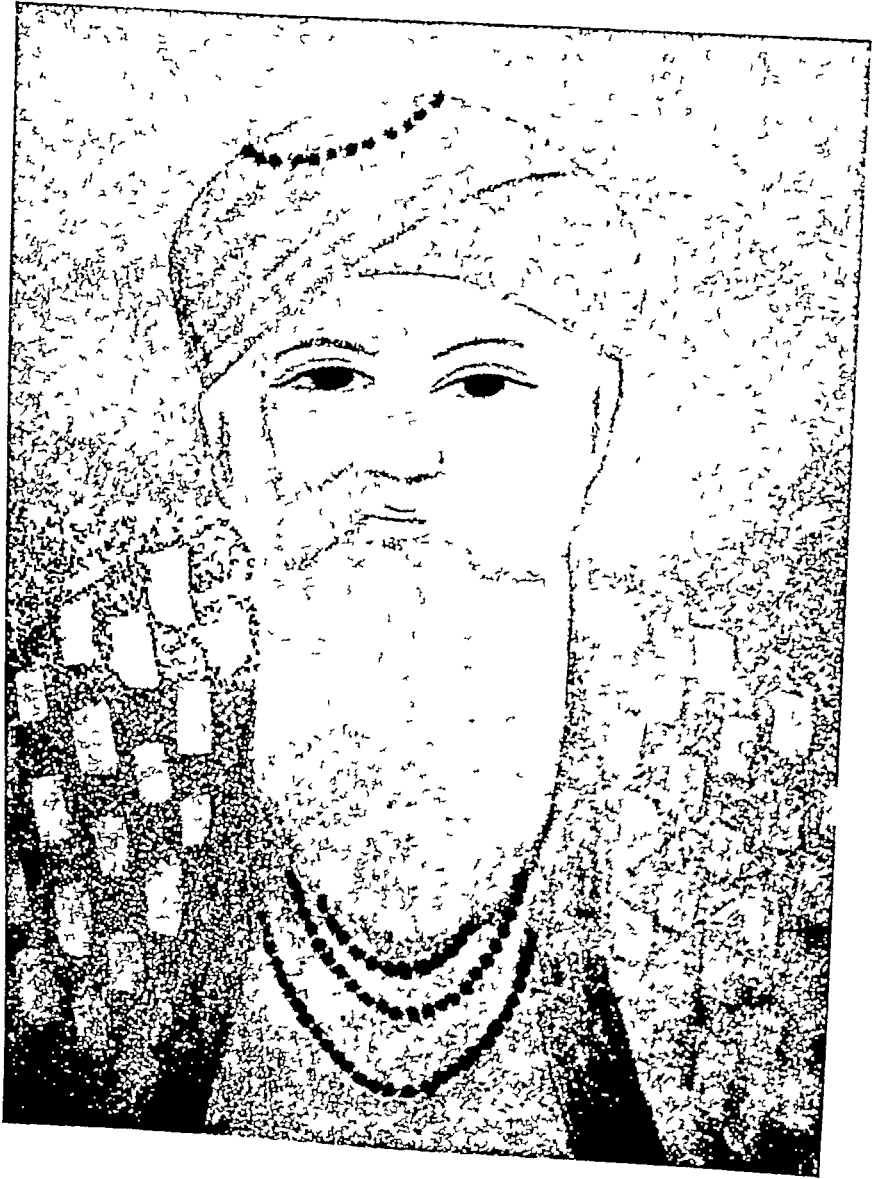
नानकदेव

स्थान है। उन्होने कबीर, रैदास, धन्ना, बेनी आदि सन्तोकी न केवल विचार धारा, अपितु शब्दावलीको भी निस्सकोच अपनाया, लेकिन अपने अनुकूल ढालकर। इसीसे सम्पूर्ण काव्यपर उनके 'सन्त-व्यक्तित्व' की अमिट छाप है। इसी परम्परामे द्वितीय गुरु अगद (स १५६१–१६०९) ने भी ६२ श्लोक लिखे है, जिनमे भगवत् प्रेमकी अनन्यताका स्वर प्रधान है। इनमें ब्रज कम और पञ्जाबी अधिक है। सम्भवत इसीलिए इन्हे पञ्जाबी (गुरुमुखी लिपि) का जन्मदाता भी कहा जाता है। तृतीय गुरु अमरदास (स १५२६–१६३१) अपने प्रारम्भिक जीवनमे वैष्णव थे, अत उन्हे पर्याप्त ज्ञान, और अनुभव था। सम्भवत अपने प्रारम्भिक जीवनमे 'निगुरे' रहनेके कारण उन्होने सद्‌गुरु पर विशेष बल दिया है, इनकी भाषामें भी ब्रज और पञ्जाबी-दोनोका ही निखरा हुआ रूप देखनेको मिलता है। उन्ही विषयोको अधिक बुद्धि सगत बनाकर सरल भाषामे प्रकट किया है। 'सच्ची वाणी' का पाठ करनेके लिए 'ग्रन्थ' निर्माणकी प्रेरणा भी पञ्चम गुरु अर्जुनको इन्हीसे मिली। पौराणिक आख्यानो एव भारतीय साहित्यिक परम्पराओका स्वर इनके काव्यमे अधिक देखनेको मिलता है। चतुर्थ गुरु रामदास (स १५९१–१६३८) की वाणी में प्रेमकी प्रधानता है और उनके जीवनमें सेवाका विशेष महत्व था। इनकी लम्बी वाणियोमें प्राय एक ही भाव छिपा रहता है, लेकिन उसका सुन्दर गठन, सरस-शब्दावली तथा मधुर-सगीत अनायास ही पाठकको अपनेमे मग्न किये रखता है। उनके शब्द-चित्र भी बडे प्रभावोत्पादक है। रामसरका निर्माण प्रारम्भ कर उन्होने धर्मको एक स्थान प्रदान किया। पञ्चम गुरु अर्जुन (स १६२०–१६६३) ने लगभग २३०० पदोकी रचना की। इनकी सूक्ष्मान्वेषिणी दृष्टिसे जीवनका कोई क्रिया-व्यापार न बच सका। भक्तोके उद्धरण देकर भक्त-रक्षक भगवानका इन्होने बहुत वर्णन किया है। निर्गुणसे अधिक सगुण को इन्होने अपनाया है। समास-शैलीमें 'सुखमणी' इनकी उत्कृष्ट रचना है। ब्रज और पञ्जाबीके साथ-साथ इन्होने लहदाको भी कही-कही अपनाया है। कलाके निखरे हुए रूपके भी इनमे दर्शन होते है। कविके साथ-साथ सम्पादकके रूपमें भी इनका विशेष महत्व है। 'आदि ग्रन्थ' मे पूर्ववर्ती गुरुओ और सन्तोकी वाणियोको क्रम-बद्ध कर, रागोके अनुकूल घरो आदि मे विभक्त कर ऐसे वैज्ञानिक रूपसे सम्पादित किया है कि देखते ही बनता है। 'ग्रन्थ' इन वाणियोका प्रामाणिक सग्रह है। इससे इनका साहित्यिक महत्व और भी बढ जाता है। नवम गुरु तेगबहादुर (स १६७८–१७३२) की वाणीमें ब्रज भाषाका निखरा हुआ रूप देखनेको मिलता है। इनकी वाणी अधिक नही, लेकिन दु खमे आन्तरिक शान्ति प्रदान करनेकी उसमे अपूर्व क्षमता है। कटु व शुष्क न होनेके कारण शिक्षा-प्रद होते हुए भी ग्राह्य है। सम्पूर्ण सन्त-काव्यका पुनरुक्ति दोष इनमे भी खटकता है। महान योद्धा एव भक्त गुरु गोविन्द सिंह (स १७२३-१७६५) सिख-धर्मके सस्थापक हुए है। उपयुक्त शिष्यके अभावमे 'आदि ग्रन्थ' को ही इन्होने सदाके लिए 'गुरु पद' प्रदान कर दिया और स्वत इनकी वाणी 'ग्रन्थ' मे न होकर भी उसमे प्रतिपादित धर्म को दार्शनिक आधार देती है। न केवल धार्मिक व राजनैतिक, अपितु साहित्यिक दृष्टिसे भी वे युगान्तरकारी सिद्ध हुए। 'दशम ग्रन्थ' इनकी रचनाओ का सग्रह है। जापु, अकाल उसतति तथा ३२ स्फुट सवैयोमें इनका भक्ति-काव्य मिलता है। विचित्र नाटकमे अपनी कथा हिन्दी साहित्यका प्रथम आत्म-चरित्र है। घटनाओके भावमय चित्रणमें उसका काव्यत्व उभरा है। ८६४ छन्दोके रामावतारके चित्रणमे वन-गमन, सीता-हरण आदि मार्मिक स्थलोका सरस अकन विविध छन्दोमें हुआ है। बाल-लीला, रास-मण्डल, गोपी-विरह और युद्ध-प्रबन्धमे विस्तार पूर्वक २४८२ छन्दोमे कृष्णावतारका वर्णन है। योद्धा कृष्णके विशद

रूपके अतिरिक्त वात्सल्य संयोग एवं वियोग शृंगारका भी अच्छा चित्रण हुआ है। प्रमुख छन्द सवैया होते हुए भी बीच-बीच में कवित्त चौपाई, दोहा आदिका आश्रय लेकर तथा गाथी-विरहमें बारह मासाको अपनाकर उन्होंने हिन्दी काव्य-शैलियोंका सफल अनुसरण किया है। चण्डी चरित्रमें युद्ध-वर्णन प्रधान है जिसमें आसुरी शक्तियोंपर दैवी शक्तियोंकी विजय दिखाई है। युद्धके गत्यात्मक एवं ध्वन्यात्मक चित्रोंने वीर रसके प्रतिपादनमें तथा पद्धतिका शैलीने उसकी अभिव्यक्तिमें सहयोग देकर उसे सफल वीर-काव्य बना दिया है —

केतक गिरे धरन विकरारा

बन सरताके गिरे करारा। (दसम–ग्रन्थ १७७)

गुरु भारतीय परम्पराके सजग प्रहरी थे। २४ अवतारोंकी कथाओंका सरस वर्णन ४ कि लगभग उपाख्यान (जिनमें बहुतसे पुराणोंसे लिये गए हैं),अवतार वादकी स्वीकृति वर्णाश्रम धर्मकी सत्ता सुगृहिणीका महत्व तथा उदार धार्मिक दृष्टिकोण आदि सम्पूर्ण पौराणिक मान्यताओंको आत्मसात् कर न केवल उन्होंने अपने पूर्णतया भारतीय होनेका परिचय दिया है अपितु परवर्ती साहित्यको भी इस परम्परासे प्रभावित करनेमें सशक्त माध्यम सिद्ध हुए। अपने राज-दरबारमें ५२ कवियोंको आश्रय देना उनके काव्य-प्रेमी होने का ज्वलन्त प्रमाण है। कहते हैं विद्याधर ग्रन्थमें उनकी रचनाएँ समृहीत थी जिसका कुछ अंश ही प्राप्त हो सका है।

भाई गुरदास आदि ग्रन्थ के लिपिकार भाई गुरदास तीसरे से छठे गुरु तक सबके साथी रहे थे। ये ग्रन्थ के सबसे अच्छे व्याख्याता माने जाते हैं। इन्होंने पञ्जाबीमें केवल एक 'वार' तथा हिन्दीमें ६७२ कवित्त-सवैये लिखे हैं। ५ –६ कवित्त माधुर्य-भक्ति के हैं। लगभग ६ कवित्तोंमें भावपूर्वक गुरु-भक्ति व गुरु-महिमा का गान किया है। औपचारिक रूपसे सुसज्जित नायिकाके दर्शन भी इनके काव्यमें होते हैं। भाषाकी ओर भी इनका विशेष ध्यान है। पञ्जाबके परवर्ती कवियोंको शुद्ध और परिनिष्ठित ब्रज भाषा इनकी सबसे बड़ी देन है।

वीरभान सतनामी पन्थके प्रवर्तक वीरभानका प्रामाणिक परिचय उपलब्ध नहीं होता। अनुमान है कि ऊधोदासस प्रेरणा पाकर स १६ क आसपास ये बिजेसर (नारनौल पञ्जाब) में अपनी विचार धाराका प्रचार करने लगे। ईश्वरको 'सत्यनाम संज्ञा देनेके कारण ही सम्भवत इनके सम्प्रदाय का नाम सतनामी पड़ा। बानी नामक ग्रन्थमें इनके पद संग्रहीत हैं जिनमें सन्त मतके सिद्धान्तोंके प्रतिपादनके साथ सदाचरणके नियमोंपर विशेष बल दिया है। जोगीदास (सम्भवत इनके सहोदर) इस पन्थके विशेष प्रचारक हुए, जिससे यह परवर्ती साध सम्प्रदायके रूपमें विकसित हुआ।

बाबालाल 'बाबालाली' सम्प्रदायके प्रवर्तक बाबालालका जन्म कसूर (लाहौर) में स १६४७ में हुआ। दाराशिकोह से ज्ञान चर्चाके कारण इन्होंने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की। इनके दोहे साखियोंमें सन्त-मतका ही प्रतिपादन हुआ है। इन्द्रिय-निग्रह व आन्तरिक मानवीय गुणोंके विकासपर इन्होंने बल दिया है। कुछ पञ्जाबी शब्दोंका प्रयोग भी इनकी भाषामें मिलता है। भाषा सरल व स्पष्ट है।

सद्जराम (१८ वी शताब्दीका प्रारम्भ) ये सेवापन्थ के प्रवर्तक सेवारामजीका गुणगान परचियाँ भाई सेवारामजी' ग्रन्थ में किया है। सन्त-महिमाको स्वीकार करते हुए ग्रन्थ आरम्भ किया।

आगे चलकर स्वस्थ समाज-निर्माणके लिए नैतिक दृष्टिका महत्व बताया है तथा गुरुसे अधिक ध्यान शिष्यपर दिया है। 'आसावरियाँ' उनकी अन्य-कृति है। इनके अतिरिक्त ५, ६ मौलिक तथा ३, ४ अनूदित कृतियाँ भी है, जिनमे 'योगवासिष्ठ' का अनुवाद भी मिलता है। इनका तथा अन्य सेवा पन्थियोका खडी-बोली-परक गद्य विशेष महत्व रखता है।

गरीबदास गरीब पन्थके प्रवर्त्तक सन्त गरीबदास स १७७४ में छुडानी (रोहतक) मे उत्पन्न हुए। २४००० वाणियोका 'हिंखर बोध' नामक सग्रह इनके साहित्यिक व्यक्तित्व का परिचायक है, जिसमे बहुत-सी कबीर आदि पूर्ववर्त्ती सन्तोकी वाणियाँ भी सगहीत हैं। आमरण गृहस्थ रहकर भी सन्त मतके प्रचारक गरीबदासकी वाणीमें 'नाम-स्मरण' तथा 'गुरु-महिमा' पर विशेष बल दिया गया है। खडी बोलीके क्रियारूप इनकी भाषाको आधुनिक बनाए हुए है।

सतरेण (१८ वी शताब्दी) उदासी साधु सन्त रेण की ४, ५ कृतियाँ मिलती है। 'श्री अनभय अमृत' उनके वेदान्त विषयपर वचनोका सग्रह हैं तथा 'श्री उदासी बोध' मे उदासी वेषका विस्तार पूर्वक वर्णन है। उनके महाकाव्य 'श्री गुरुनानक विजय' का परिचय अन्यत्र दिया है।

डेढराज 'नागी' सम्प्रदायके प्रवर्त्तक डेढराजका जन्म स १८२८ मे नारनौलमे हुआ था। इन्होने तीन ग्रन्थ लिखे थे, जो प्राप्त नही है। सम्प्रदायमें प्राप्त इनकी वाणीसे स्पष्ट है कि शुद्धाचरणके साथ-साथ इन्होने सत्यका विशेष महत्व स्वीकार किया है। प्रभावशाली शिष्य-परम्पराके अभावमे इनके पन्थका अधिक प्रसार न हो सका।

साधु निश्चलदास हिसार जिलेमे दादू पन्थके सशक्त साहित्यकार हुए है। बगला, मराठी, अँगरेजी आदि कई भाषाओमें इनके 'विचार-सागर' का अनुवाद प्राप्य है। इसीसे इनके साहित्य का महत्व स्पष्ट है। गत तीन शताब्दियोमे अत्यधिक प्रभावशाली रचना रहकर स्वामी विवेकानन्द ने भी इसका महत्व स्वीकार किया है। इनकी प्रकाशित 'वृत्ति प्रभाकर' तथा 'मुक्ति प्रकाश' के अतिरिक्त अन्य कुछ रचनाएँ भी हैं। विधिवत् शिक्षित होनेके कारण इनकी विचार धारामें जहाँ सम्बद्ध दार्शनिक विचार धाराके दर्शन होते है, वहाँ उत्कृष्ट काव्यत्व भी मिलता है। स १९२० मे देहली में इनका देहान्त हुआ। बीसवी शताब्दी मे गणितके एम ए व प्राध्यापक स्वामी रामतीर्थ बन गए। उन्होने अध्यापक जीवन और ससारमें रहते हुए भी उसे त्याग कर अपने सन्त व्यक्तित्वका परिचय दिया। उनकी रचनाओमें अनुभूति और प्रतिभाका अद्‌भुत सयोग है। उनकी वाणियोके बहुतसे सग्रह प्रकाशित हुए है। आधुनिक युगके भारतीय सन्तोमें उनका विशेष स्थान है। छोटी ही आयुमे उनकी इहलीला समाप्त हो गई।

पञ्जाबकी सन्त-परम्परा को दो भागोमें विभक्त किया जा सकता है। प्रथम गुरु व उनसे सम्बन्धित व्यक्ति जिनका क्षेत्र प्राय मध्य पञ्जाब रहा है। दूसरा कबीरकी सन्त-परम्पराको उसी रूपमें विकसित भी करके अपन नवीन पन्थोके प्रवर्त्तक-जिनका क्षेत्र हरियाणा रहा है। प्रथम वर्गने राजनैतिक अत्याचारोकी प्रतिक्रियामें—न केवल विश्व की प्रधान वीर जाति को ही जन्म दिया, अपितु उनके साहित्यने भारतीय पौराणिक मान्यताओको पूर्णतया अपनाये रखा तथा पञ्जाबमे विकसित होनेवाले सम्पूर्ण हिन्दी व पञ्जाबी साहित्यको राष्ट्रीय दायाद के रूपमें वे सब मान्यताएँ—कथानक रूढियाँ एव काव्य-शैलियाँ प्रदान की। इसी परम्पराका अनुसरण करते हुए २० वी शताब्दी के अन्त तक इस प्रदेशके प्राय सम्पूर्ण काव्यने व्रजभाषा

को गुरुमुखी लिपिमें अपनाया। प्रान्तीय शब्दों तथा शब्दोंके पञ्जाबी रूपोंके दर्शन अवश्य होते हैं पर भाषाकी प्रकृति और प्रवृत्ति सब कहीं ब्रज की ही है। जिसे हिन्दी-साहित्यके सभी मूर्धन्य इतिहासकारोंने सम्भवत कृतियोंके अप्रकाशित होने तथा लिपि का ज्ञान न होनेके कारण भुलानेकी भूल की है। इतना ही नहीं पञ्जाबके कृष्ण व राम-काव्यको रीतिबद्ध होने तथा अश्लील शृंगारसे बचाए रखनेका श्रेय भी इस वातावरणको ही दिया जा सकता है।

हरियाणाके विभिन्न सन्त मतोंके प्रवर्तकों व प्रसारकोंने स्वस्थ साहित्य और खड़ी बोलीके स्पष्ट रूप का समुचित विकास किया। इस दृष्टिसे भाषा और साहित्यके विकासमें इनका सहयोग भी महत्वपूर्ण है।

सूफी-काव्य

सूफी-काव्यके विकासमें पञ्जाबका विशेष हाथ रहा है यद्यपि प्रधानत इसका माध्यम हिन्दी न था क्योंकि काव्यगत परम्पराओंके साथ भाषा भी बहुत कुछ वे अपने साथ ही लाए थे और उसे अपनाये भी रखा फिर भी यहाँके लोगोंने उसे अपनी भाषामें भी अभिव्यक्ति दी। शेख फरीद (स १२३०—१३२२) प्रसिद्ध सूफी हुए हैं। उन्हींकी कुछ रचनाओंको गुरु नानकने उनकी परम्परामें ११ वें शिष्य शेख इब्राहीमसे प्राप्तकर अपनी वाणीके साथ ही संग्रहीत किया था जिन्हें आगे चलकर 'गुरु ग्रन्थ' में स्थान मिला। इन्होंने सीमित मानव-जीवनमें यथासम्भव ही विषयोंका त्यागकर 'नाम' स्मरणका उपदेश दिया है। इसमें उपदेशका स्वर प्रधान होते हुए भी लौकिक-व्यावहारिक उद्धरणों व उदाहरणोंने उसे शुष्क और बोझिल नहीं होने दिया। भाषामें प्रयुक्त फारसी शब्द भावानुकूल होनेके कारण प्राय खटकते नहीं। पञ्जाबीके प्रारम्भिक तत्व इनकी भाषामें मिलनेके कारण इन्हें Father of Modern Punjabi (आधुनिक पञ्जाबी का जनक) कहा गया है। यद्यपि बुल्लेशाह (१८ वीं शताब्दी) का अधिक साहित्य पञ्जाबीमें प्राप्त है तो भी उनकी कुछ रचनाओंमें हिन्दीके भी दर्शन होते हैं। इनके 'दोहरे' 'काफी' 'बारह मासा' आदि रचनाओंका एक संग्रह प्रकाशित भी हो चुका है। इनके अतिरिक्त सूफी होते हुए भी अलखदास (१६ वीं शताब्दी) के दोहोंमें कबीरका प्रभाव अधिक दिखाई पड़ता है। शाह हुसैन (१६ वीं शताब्दी) सूफी सिद्धान्तोंके सूक्ष्म विश्लेषक विरह काव्यके सच्चा माने गए हैं। उनकी भाषामें उर्दू शब्दोंका पर्याप्त प्रयोग मिलता है। जालन्धरके मीरा शाहके काव्य को देखकर तो उनके साकारोपासक होनेका भ्रम हो जाता है। समानान्त सौंधीके काव्यमें भी खड़ी बोलीके दर्शन होते हैं।

सूफी प्रेम-काव्य मुस्लिम और हिन्दू-संस्कृतिकी साहित्यिक सम्मिलन भूमि है। पञ्जाब इस सम्मिलन को प्रस्तुत करनेमें अग्रणी रहा है—चाहे वह राजनैतिक सामाजिक धार्मिक व साहित्यिक किसी भी क्षेत्रमें क्यों न हो। यह पञ्जाबकी भौगोलिक स्थिति की देन है। अभारतीय तत्वोंके भारतमें प्रवेशका द्वार तथा स्थितिका स्थान यह बना रहा है अत उसके लिए यह आवश्यक भी था। पञ्जाबके प्रधानत मुस्लिम तथा कुछ हिन्दू साहित्यकारोंने इस प्रकार के साहित्यका निर्माणकर मानवीय भावनाओंके स्तरपर ऐक्य प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया। सच्चे प्रेमका महत्व विरह की तड़पन मिलनके लिए आकुलता तथा त्यागकी भावना सर्वत्र प्राप्य है। काव्यमें ऐसी ही भावनाओंकी अभिव्यक्ति में मार्मिक स्थलोंकी योजना होती है। सूफी सिद्धान्तों

और मसनवी शैलीका चाहे पूर्णतया पालन न भी हुआ हो, पर सब मिलाकर इस प्रकार की प्रेम-कथाओने हिन्दी साहित्यमें सरस काव्य का सृजन कर उसे अधिक लौकिक धरातलपर ला बिठाया। 'हीर-राझा', 'सोहनी-महीवाल' तथा 'ससी-पुन्नू' से सम्बन्धित प्रेम-कथाएँ सम्पूर्ण पञ्जाबी साहित्यमे बिखरी पडी है। 'लैला-मजनू' तथा 'शीरी-फरहाद' में ये और अधिक स्वाभाविक व सरस बन गई है, यह सूफी-परम्परा की ही देन है।

कृष्ण-काव्य

सम्पूर्ण भारतीय वाड्मयको जीवन्त रससे सञ्चारित करनेवाले गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण है। मानव-जीवनकी सभी अवस्थाओका सरस एव मनोहर चित्रण करनेके लिए शायद कृष्णसे उपयुक्त पात्र न कवियोको मिला और न ही रसिक पाठकोको। कृष्णकी बाल-लीलाओ और युवा-क्रीडाओका सरस एव मोहक चित्रण कर सूरने उत्तरी भारतको रसाप्लावित कर दिया था। परवर्त्ती कवि और सहृदय पाठक भी इससे दूर न जा सके, यह उनके व्यापक प्रभावका द्योतक है। पञ्जाबमे इस परम्पराके उन्नायक बल्लूआणा (भटिंडा) के हरिया जी (१७ वी शताब्दी) को कहा जा सकता है। उनके बाल-लीला और भँवरगीतको देखनेसे ज्ञात होता है कि न केवल विषय, अपितु सूर और अष्टछापकी गीत-शैलीका भी उन्होने अनुकरण किया है। इनके कुछ पद निर्गुण सम्बन्धी भी मिलते है, तो भी उसपर सगुणका महत्व स्थापित करते हुए इन्होने पुष्टि मार्गीय परम्पराको ही पुष्ट किया है। गोपी-विरहमे बाँसुरी और कुब्जा-सभीका सजीव चित्रण हुआ है। ब्रजका 'माखन-चोर' दूध, दहीसे अधिक यहाँ 'सागु', 'सत्तू' तथा खिचडी खाना पसन्द करता है। यह प्रान्तीय वातावरण उपस्थित करना उनकी मौलिकता है। उनकी राधाकी तल्लीनता की हद है, कृष्णसे आत्मीयता बढाते-बढाते वह स्वत ही कृष्ण हो गई—'कान्ह चवन्ती कान्हो होई।'

जहाँ केवल कृष्ण-कथाका वर्णन उन्होने ब्रज भाषामें सूरकी पद शैलीमें किया है, वहाँ राम-कथाको पञ्जाबी वार-शैलीमें लिखा है। राम और श्याम मे उन्होने कोई भेद नही देखा। सभी पौराणिक परम्पराओ व मान्यताओंके दर्शन हमे उनके काव्यमे होते है। गुरु गोविन्दसिंहके २४९२ छन्दोंके 'कृष्णावतार' में भारतीय परम्पराके आलोकमें कृष्णके अन्य रूपोंके साथ-साथ योद्धारूप का विशेष वर्णन मिलता है, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। इतिहासकार खुशहाल चन्द (राय) (१८ वी शताब्दी) के 'बिन्द्रावनकी कुञ्ज गलिनमे' आए हुए कृष्णके साथ गोपियोंके होली खेलनेका वर्णन तथा कुछ अन्य पद भी ब्रजभाषा मे मिलते है। पटियालाके 'महाराजा अमरसिंह की वार' के प्रसिद्ध लेखक राजकवि केशवदास (१९ वी शताब्दी) ने 'बारहमासा कृष्णजी का' लिखकर बदलते हुए वातावरणमे सरस ब्रजभाषामें कृष्णके मधुर व सजीव चित्र अकित किए है। जातिराम (१९ वी शताब्दी) ने 'सुदामा मगल', 'रुक्मिणी मगल' तथा 'गौरा मगल' लिखकर अपना कृष्ण-प्रेम जतलाया है। अमीरदास (१९ वी शताब्दी) के 'श्रीकृष्ण साहित्य सिन्धु' मे कृष्ण सम्बन्धी भक्ति तथा प्रेमके पद मिलते है, जो इनकी प्रौढ काव्य-रचनाके परिचायक है। लगभग १५, १६ ग्रन्थोंके रचयिता उमादास (१९ शताब्दीका अन्त) ने 'सुदामा-चरित' में सुदामाके चरित्रको तथा 'सयोगी बारह माह' मे राधा और कृष्णके वियोग तथा मिलनके चित्र अकित किए है। कृष्ण-भक्त गुलाबके 'रुक्मिणी मगल' में कृष्ण और रुक्मिणीके सयोगकी सरस कथा है। नयनसुख (२० वी शताब्दी) ने 'बारह मासा' में राधा-कृष्णके प्रेम और विरहके चित्र अकित किए है।

पञ्जाबका हिन्दीका कृष्ण-काव्य प्राय: अप्रकाशित रहा है अत: उसका उचित मूल्यांकन तो दूरकी बात है परिचय-मात्र भी हिन्दी जगतसे न हो सका। यह अभी शोधका विषय है।

भारतीय परम्पराओं तथा कृष्ण काव्यकी विशेषताओंको यहांके कवियोंने भी सफलतापूर्वक अपनाया लेकिन प्रान्तीय वातावरणका निर्माण कर लौकिक नायक श्रीकृष्णको अश्लील शृंगारके पंकसे बचाकर तथा भक्ति और रसका आश्रय प्रदान कर उनके नायकत्वको सार्थक किया है। इस प्रकार जहां भगवानको श्रेष्ठ मानव के स्तरसे गिरनेसे बचाये रखा वहां पञ्जाबके राज-दरबारोंमें भी ब्रजभाषाको काव्यका माध्यम बनाए रखनेमें सहयोग दिया।

राम-काव्य

तुलसीने निर्गुण रामको 'मानस' के माध्यम से जब मानवीय जीवनकी अभिव्यक्ति दी तब हिन्दी काव्य गौरवान्वित हो तथा उत्तरभारतीय जन-मन रामचरित्रमें अनुरक्त उठा। पञ्जाबके हृदयराम (सं १६८) ने 'हनुमन्नाटक' लिखकर अपने सरस कवि हृदयका परिचय दिया है। संस्कृत नाटक उसका आधार होते हुए भी प्रतिपादनकी दृष्टिसे यह मौलिक ही है। यह प्रबन्ध काव्यके अधिक निकट है। वातावरणका निर्माण करनेमें कविने प्रकृतिका प्रयोग कुशलता-पूर्वक किया है। मार्मिक स्थलोंकी पहचान करने में भी कवि चूका नहीं। वनगमन विरह वर्णन आदिमें उन्माद प्रलाप आदि सभी दशाओंका उसने विस्तार-पूर्वक चित्रण किया है —

जानकी न पाई रोइ उठे रघुराई ॥५॥१॥

कहकर मानो उसने रोते रामको ही प्रस्तुत कर दिया है। रामचन्द्र शुक्लजीने भी इसकी कविताको बड़ी सुन्दर और परिमार्जित स्वीकार किया है तथा इस कृतिको उस कालका इस प्रकारका सबसे प्रसिद्ध नाटक स्वीकार किया है। हिन्दीमें इसके अनुकरणपर कई नाटक लिखे गए। विषयवस्तु, भाषा और छन्दकी दृष्टिसे यह न केवल उत्तम ग्रन्थ अपितु परवर्ती सगुण भक्ति परक प्रबन्ध-काव्यका आलोक-स्तम्भ सिद्ध हुआ। इसीलिए पञ्जाबमें राम-कथा ब्रजभाषामें कवित्त-सवैयोंमें प्राप्त है।

तुलसीके उद्देश्य स्वान्त: सुखायका अनुसरण कर सोढी मिहरवान (१७ वीं शताब्दी)ने 'आदि रामायण' की रचना कुछ पद्य और अधिक गद्यमें की। इसमें अबाध प्रवाह ही इसकी विशेषता है। कथा श्री रामचन्द्रजीकी 'आदि महाभारत' आदि अन्य १६ कृतियां भी प्रसिद्ध हैं। निर्मल साधु गुलाबसिंह (१९वीं शताब्दी) की 'अध्यात्म रामायण' के बहुतसे अंशको संस्कृतका भावानुवाद तथा कुछ अंशको मौलिक भी कहा जा सकता है। 'राम नाम प्रताप प्रकाश' के दोहोंमें अन्यान्य ग्रन्थोंमें वर्णित रामके भिन्न-भिन्न रूपोंपर प्रकाश डाला है। सिक्ख धर्मको भारतीय वैदान्तिक दार्शनिक आधार देनेका श्रेय इन निर्मल साधुओंको ही है। 'भाव रसामृत' तथा 'मोक्षपंथ' पद्यमें इनका महत्व बनाये रखनेवाली अन्य कृतियां हैं। सन्तोख सिंह (१९ शताब्दी)ने भी 'रामायण' की रचनाकर रामकाव्य परम्पराको आगे बढ़ाया। यद्यपि इनका महत्व 'श्री गुर प्रताप सूर्य' के कारण है जिसे सिक्ख गुरुओंका इतिहास कहा जा सकता है। जपुजीकी गर्व गंजनी टीका भी इनकी प्रसिद्ध रचना है। इनमें उच्च कोटिका कवित्व दृष्टिगोचर होता है। पञ्जाबके प्रमुख राजदरबारोंमें रहने वाले राजकवियोंने रामचरित का गानकर प्रचलित प्रथाका पालन किया है। कुछ

सिंह (अद्‌भुत नाटक रामायण), लालसिंह (फूल माला रामायण) वीर सिंह (सुधा सिन्धु रामायण), कृष्ण लाल, (रामचरित रामायण) निहाल (रामायण चन्द्रोदय), गोविन्द दास (श्रीराम गीता तथा राम स्तोत्र)—ये सभी लगभग १९ वी शताब्दीके अन्त तक हुए। कीर्ति सिंह (बीसवी शताब्दीके प्रारम्भमे) की 'सतसैय्या रामायण' सात सौ दोहोमें लिखी होनेके कारण सतसई परम्पराका निर्वाह करती है तथा 'अनूप रामायण' भी इस विषयसे सम्बन्धित दूसरी कृति है। गुरुदाससिंहका 'बारह माह श्रीरामचन्द्रिका' एक सामान्य-सी कृति है। कवि राम रचित 'राम गीते' नाटक पद्यमें लिखा गया है, जिसकी अपूर्ण प्रति मिलती है। कवि रामदासकी 'सार-रामायण' भी उल्लेखनीय है।

पञ्जाबमे प्रभावशाली निर्गुण मतके साथ-साथ सगुण भक्ति परक रामकाव्यकी अखण्ड परम्पराको बनाये रखना ही इस काव्यकी सबसे बडी देन है। भारतीय पौराणिक आख्याओंके माध्यमसे जीवनकी विषम परिस्थितियोमें भी क्रियात्मक समाधान प्रस्तुत कर, जन साधारणको आदर्शमय एव मर्यादापूर्ण जीवनका महत्व बताया तथा राजदरबारोके विलासी वातावरणको भी साहित्यिक अश्लीलतासे बचाए रखनेमे सहयोग दिया। बीसवी शताब्दी तक ब्रजभाषाको ही राजदरबारोंके भी साहित्यका माध्यम बनाये रखनेमें सहायता दी तथा प्राचीन परम्परा एव शैलियोको भी जीवित रखा।

जैन साहित्य

वीर प्रसू पञ्जाबमें शान्त रस प्रधान जैन साहित्यकी भी कुछ रचनाएँ मिलती हैं। लाहौरमें कवि कृष्ण दास (स १६५१)ने 'दुर्जन सप्त बावनी', 'आध्यात्म बावनी' तथा 'दानादिरास'की रचना की। अन्तिम कृतिमें दान, शील, तप तथा भाव—इन चार गुणोका परस्पर सम्वाद मिलता है। अम्बाला के भगवती दास (सवत १७००) ने २३ ग्रन्थोकी रचना की जिनमें से 'आदित्य व्रत रास' आदि दस रास ग्रन्थ है। सीताके सतीत्वका सरस चित्रण भी इन्होने 'सीता सतु' में किया है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक चरित काव्य, 'गोरा बादल की बात' के लेखक नाहर जटमल (स १६८०) लाहौर के निवासी थे। उसकी अनेक प्रतियाँ उपलब्ध है। उपलब्ध प्रमाणोंके आधारपर इसके मूल रूपको पद्यमें ही स्वीकार किया जा सकता है। उनकी 'लाहौर गजल' में नगरका सजीव वर्णन है। शैली, छन्द व भाषा-सभी दृष्टियोंसे अनेक नगरोका वर्णन परवर्ती जैन कवियोने भी किया है। उनकी बावनी पर पञ्जाबीका प्रभाव स्पष्ट है। 'प्रेम विलास चौपाई' उनका प्रेमकाव्य है। उनकी कुछ अन्य रचनाएँ भी प्राप्त है। 'तिलोक दर्पण' के रचयिता लाहौर निवासी खड्ग सेन (सवत् १७१३) थे। शास्त्र-स्वाध्यायके लिए लिखे गए इन ग्रन्थोमें वंश-परम्पराओ का विस्तृत परिचय भी मिलता है। फगवाडा निवासी मेघ कवि (सवत् १८१७) ने 'मेघमाला', 'मेघ विनोद' तथा 'गोपीचन्द' कथाकी रचना की। उनका 'मेघ विनोद' वैद्यकका बहुत उपयोगी ग्रन्थ सिद्ध हुआ। छन्द व काव्य शास्त्रके मर्मज्ञ कसूर निवासी हरजस राय (स १८६४) ने 'साधु गुण रत्न माला' में 'देवार्चना' तथा 'देवाधिदेव' की रचना कर अपने सरस कवित्वका परिचय दिया। मुनि 'आत्माराम' (स १८९४) ने 'नरतत्व प्रकरण,' 'जैनतत्व दर्शन' आदि रचनाओ द्वारा काव्यत्वसे अधिक अपने ज्ञानका प्रसार किया। पूर्णत धार्मिक काव्य होनेके कारण जैन-काव्य शान्त रस प्रधान तथा आध्यात्मिक प्रेरणाका स्रोत है। यह काव्य पद्यके साथ-साथ गद्यके विकासमें भी सहायक है। विविध विषयोंके ज्ञानके प्रसारक ग्रन्थोकी रचना इस साहित्यकी महत्ता है।

वीर-काव्य

गुरुओंके सन्त काव्यने वीर पञ्जाबीको शान्त रससे इतना प्रभावित किया कि उनका वीरत्व काव्यमें इतना प्रस्फुटित नहीं हुआ जितना राजनैतिक जीवनमें। हिन्दी वीर काव्यके उज्ज्वल आलोक स्तम्भ चन्द (बरदाई) पञ्जाबके ही रत्न थे जिनका उल्लेख अन्यत्र हो चुका है। रत्नसेन और अलाउद्दीनके युद्धके वर्णनमें गोरा-बादलकी वीरता और विजयका सजीव चित्रण जिस ओजपूर्ण शैलीमें हुआ है, उसने उसे 'गोरा-बादलकी कथा' नामक लोक-काव्यके रूपमें प्रचलित कर दिया। यह लाहौर जटमलकी लगभग १५ पद्योंकी रचना है। पद्मावतीकी प्राप्ति तथा चित्तौड़की चढ़ाई इसके मुख्य स्थल है। गुरु गोविन्द सिंह (सं १७२१) की अपनी कथा हिन्दी का प्रथम आत्मचरित है। सर्वप्रथम जीवनकी ऐतिहासिक घटनाओंके भावमय चित्र प्रस्तुत कर गुरुने अपने काव्यत्वका परिचय दिया है। कृष्णावतारके युद्ध प्रबन्धमें भी कृष्णके योद्धा रूपका ही विशद चित्रण हुआ है जो वीर गुरुको वीर रसका सफल कवि सिद्ध करता है। चण्डी चरित्र का भी मुख्य उद्देश्य युद्ध वर्णन ही है। इसमे पद्धटिका शैलीका आश्रय लिया गया है। दशम गुरुके दरबारके प्रसिद्ध ५२ कवियोंमे से बहुतोंने वीरतापूर्ण युद्धोंका वर्णन कर वीर काव्यका सृजन किया जिनमें से लगभग २ कवियोंकी रचनाएँ देखनेको मिलती है। सेनापति (सं १७५८) ने अपने प्रबन्ध काव्य गुरु शोभा मे जहाँ ऐतिहासिक युद्धोंके वर्णनमें उनके युद्धवीर रूपको उभारा है वहाँ उनके दानवीर होनेका भी बड़ा सजीव वर्णन किया है। उन्होंने खड़ी बोली मिश्रित ब्रजभाषा का आश्रय लिया है। अणिरामने अपने जंगनामा मे औरङ्गजेबके सेनानी अजीमखांपर गुरु गोविंद सिंहकी विजयका वर्णन किया है। इनके काव्यमे युद्धका चित्रण ही प्रधान है। इसी से यह अधिक सजीव भी बन सका है। इसमे उर्दूके कुछ शब्दोंका प्रयोग मिलता है। केशवदास (सं १७७) की अमरसिंहकी वार इस दृष्टिसे महत्वपूर्ण है। पटियाला नरेश अमरसिंहने लोक-कल्याणके लिए युद्ध किया; इसलिए उसे 'दनुज-दल-दलन' कहा है और युद्ध-वर्णनमें उनकी वीरताका परिचय दिया गया है। गुरु गोविंद सिंहके सहयोगी योद्धा हीर कविने भी ओजपूर्ण भाषामें कुछ युद्धोंके चित्र खींचे है। इनके कुछ पद्योंकी तुलना महाकवि भूषण से की जासकती है।

पञ्जाबका वीर-काव्य शृंगाराधारित न होकर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का उन्नायक है। धर्मकी रक्षाके लिए जीवनकी बलि देनेवालोंकी कहानी है। राजाओंकी वीरताका अनावश्यक अनैतिहासिक एवं उपहास्य वर्णन इसमें प्राय नहीं मिलता। राज-दरबारोंमे शृंगारके स्थान पर वीर-परम्पराको विकसित कर प्रान्तीय वीरताकी भावनाका काव्य में उचित रूपसे प्रस्फुटन किया गया है। वीर रसके उपयुक्त ओजपूर्ण भाषाका माध्यम बनाकर मधुर ब्रजभाषाकी सामर्थ्यको भी बढ़ाया है।

चरित काव्य

राम और कृष्णके अतिरिक्त सिख गुरुओंके भी चरित सम्बन्धी काव्योंका यहाँ प्रणयन हुआ है। अन्य मे लिपिकार भाई गुरुदासने लगभग ६ कवितोंमें गुरु-महिमाका भावपूर्ण गान किया है। वीर-काव्यके गायक सेनापति आदिका ऊपर उल्लेख हो ही चुका है। उनके अतिरिक्त स्वरूपचन्द भल्ला (सं १८१२) ने महिमा प्रकाश लिखकर दसों गुरुओंके जीवन-चरित्रपर प्रकाश डालनेका

प्रयत्न किया है। यह ऐतिहासिक नही है। और अधिकाश प्राय सरल पद्यमें है, परन्तु इसका कुछ भाग गद्यमें भी है। यह साधारण काव्य खडी बोलीमें है, यही इसकी विशेषता है। सन्तदास छिब्बर (स १८३४) ने 'जन्म साखी नानक शाहकी' में महामानव गुरु नानकके जीवनपर सर्व प्रथम सफलता पूर्वकप्रकाश डाला है। असुरों (मुसलमानो) का विरोध करनेके लिए देव (गुरुनानक) आए थे। पौराणिक मान्यताओंके साथ-साथ उन्होंने अवतारवादका समर्थन किया है। भूदन (मालेरकोटला) के प्रसिद्ध सन्त रेणका विशालकाय 'श्री गुरु नानक विजय' (स १८६०) उनकी अद्‌भुत रचना शक्तिका परिचायक है। २० खण्डोंके ३२८ अध्यायो में ३६२० पृष्ठोमें गुरु नानक के जीवनका विशद ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया है। इसे 'सिक्खो का पुराण' भी कहते है। इनकी अन्य चार कृतियोमेंसे एक 'गुरु नानक बोध' भी है। सन्तमतके प्रसारक ये उदासी साधु थे। अत्याचारी मुसलमानोके विरोधी थे —

करी मसीता आपनी देव सथान गिराइ।
दूध पीयें जिन गऊ का तिन ही को फिर खाइ।२।४।२४।१२१॥

यह कहकर उन्हे समझानेका भी प्रयत्न किया है। इनके काव्यका प्रधान रस शान्त रस है। पञ्जाबीका भी पर्याप्त प्रभाव इनकी रचनाओमे देखनेको मिलता है। केशवगढके ग्रन्थी सुक्खासिहका 'गुरविलास' गुरु गोविन्दसिहका धीरोदात्त नायकके रूपमे सर्वांगीण चित्रण प्रस्तुत करता है। यह ऐतिहासिक होते हुए भी चमत्कारोंसे बच न सका तथा पौराणिक प्रभावने इस काव्यमें अवतारवादकी प्रतिष्ठा की है। गुरुओंके अतिरिक्त सहजराम (स १८३८) ने 'परिचयए भाई सेवारामजी' लिख कर सेवा पन्थी सन्तका महत्वपूर्ण नैतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। शिष्यकी ओर पाठकका ध्यान दिलाया है। भाई मनीसिहके नामपर प्रचलित दो 'गुरु विलास' छठे तथा दसवे गुरुकी जीवन-कथा पर प्रकाश डालते है।

ऐतिहासिक तथ्योकी, आदर्श गुरुकी, प्रबन्ध काव्यकी तथा ब्रज भाषाकी रक्षाका श्रेय इन काव्योको दिया जा सकता है। इस प्रकार सिख-धर्मके उच्च आचरणको बनाए रखनेमें भी इनका सहयोग है।

प्रेम-काव्य

पञ्जाबकी प्रसिद्ध लोक-कथाऐं, कुछ फारसीसे आई हुई प्रेम-कथाऐं तथा अन्य पौराणिक गाथाऐं ही पञ्जाबकी प्रेम कथाओका प्रेरणा-स्रोत हैं। लोक-भाषामें यह 'किस्सा काव्य' नामसे प्रसिद्ध हैं तथा परवर्ती पञ्जावी साहित्यमें यह परम्परा पर्याप्त विकसित हुई। भाई गुरदास के ५०, ६० माधुर्य भक्तिके कवित्त तथा नायिक भेद आदिके प्राप्त शृगारिक चित्रणोका पहले उल्लेख हो ही चुका है। गुरु गोविन्द सिहके चरित्रोपाख्यानमें ४०५ उपाख्यान प्राप्त है, जिनका केन्द्र नारी है। 'हीर-राझा' (चरित्र ९८), 'सोहनी-महीवाल', 'ससी-पुन्नू', 'रतनसेन-पद्मावती', 'कृष्ण-राधिका' तथा 'नल-दमयन्ती' आदि १२ प्रेम-कथाओमें रूप और प्रेमका व्यापक चित्रण देखनेको मिलता है। इसमें नारी-पात्रोंका प्राय गौरवमय चित्रण हुआ है। कैकेयीका रथ सञ्चालन व तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओंसे सम्बद्ध स्त्रियोंके शौर्यकी भी अनेक कथाऐं मिलती है। इनके अतिरिक्त रूपसी पत्नियो व अभिसारिकाओंके प्रसाधनके लिए शृगारकी सब सामग्री प्रस्तुत की है। इस प्रकार रीति कालीन विलासपूर्ण दूषित समाज व राजदरबारोंके कामोद्दीपक चित्र अकित कर समाजको अधिक नैतिक होनेका सन्देश दिया है। यद्यपि उनमे उपदेशात्मकता कम और

कथा कहनेकी प्रवृत्ति अधिक है, तो भी शौर्य एकनिष्ठा आदि सद्गुणोंके साथ-साथ चरित्र पर विशेष बल दिया है। वस्तुत पञ्जाबके हिन्दी प्रेम-काव्यको अश्लीलतासे बचाकर मर्यादित प्रेमसे परिपुष्ट करने वाले गुरु ही परवर्ती प्रेम-काव्यके पथ-प्रदर्शक कहे जा सकते हैं।

औरंगजेबके मुन्शी गुरदास गुणी (सं १७६०) ने गणेश-वन्दना से प्रारम्भ कर कथा हीर राझेकी ब्रजभाषामें लिखी है। राझेका सौन्दर्य कामदेवसे कम थोड़े ही है मानो मन्मथ आनि उतरयो और नयनोंके बाणोंसे घायल करनेके चित्र भी देखनेको मिलते हैं —

मैनि सैनि के हम तोहि मारे
घायल होहि हैं हम सारे॥ (पृ २१७)

इस प्रकार लौकिक शृंगारका मधुर सरस और सजीव चित्रण हुआ है। प्रचलित हीर राझेकी प्रेम कथाके वर्णन में कुछ सूफी मान्यताओंका भी पालन हुआ है। कथा सुखान्त है। राजाराम दुग्गल (१८ वीं शताब्दी) मे सूर-रोमबत की प्रेम-कथाका गान किया है। शृंगारके आधार-रूप तथा शौर्यका अच्छा वर्णन हुआ है। कहीं-कहीं स्वतन्त्र रति-विहारके उपयुक्त वातावरणका भी निर्माण हुआ है। प्रसिद्ध प्रेमकी पीर का गायन भी यहाँ मिलता है। इसकी ब्रजभाषामें खड़ी बोलीके भी दर्शन होते हैं। पटियाला दरबार के कवियोंमें भी प्रेमवशासे ही शृंगारी कवित्त-सवैयोंका प्रचलन हो गया था और यह परम्परा बराबर बनी रही। धीरे-धीरे इनपर रीति कालीन प्रभाव भी परिलक्षित होता है। ग्वालेश्वरने तो नरेश रसिकताओंका भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इस काव्य की विशेषता यह है कि प्रचलित रीतिकालीन रीतिबद्धता तथा अश्लीलतासे यह काव्य प्राय अछूता रहा तथा स्वस्थ प्रेमका गायक सिद्ध हुआ। कथा-काव्य और प्रबन्ध-परम्पराके विकासमें सहयोगी रहा।

रीति-काव्य

हिन्दीमें रीतिबद्ध काव्यकी महत्ता इसीसे स्पष्ट है कि शुक्लजी-जैसे महान् साहित्यके इतिहासकारने इस परम्पराके आधारपर इस साहित्यिक युग (स १७ ०—१९) का नामकरण ही 'रीतिकाल' किया था। लेकिन पञ्जाबके कवि इस आचार्यत्वके चक्करसे प्राय बचे रहे। गुरु गोविन्द सिंहकी काव्य शक्ति अपार थी। सभी प्रचलित विषयों काव्य-पद्धतियों एवं शैलियोंका आश्रय लेकर उन्होंने पर्याप्त काव्य की रचना की। चण्डि चरित्र उक्ति विलास उनकी अलंकार प्रधान रचना है, जिसके २३३ छन्दोंमें लगभग १८ अलंकारोंका प्रयोग हुआ है।

जयकिशन (१८ वीं शताब्दी) की 'रूपदीप' मंगल भाषा तथा निरञ्जनी साधु हरिदासबाबकी 'छन्द रत्नावलीसे उनके छन्दशास्त्रके पाण्डित्यका बोध होता है। कवि हरनामका 'साहित्य बोध' उसके आश्रयदाता कपूरथलाके राजा निहालसिंहके नामसे प्रचलित है। यह एक सुन्दर लाक्षणिक ग्रन्थ है इसमें न केवल नायक-नायिका भेदका विस्तार से वर्णन है, अपितु रस और अलंकारोंपर भी कविने प्रकाश डाला है। टहल सिंह (१९ वीं शताब्दी) ने अलंकार सागर सुधा मे अलंकारोंका विशद विवेचन तथा उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। सुमेर भूषण में बाबा सुमेर सिंहने भी अलंकारोंपर प्रकाश डाला है। नाभानरेशके कवि नवीन (स १८९९) मे रस तरंग में विभाव अनुभाव सञ्चारी तथा रसका अच्छा वर्णन किया है। परम्पराके

अनुसार प्रधानतया शृंगार तथा वीर रसका ही वर्णन हुआ है। उदाहरणोमे अच्छे, काव्यत्वके दर्शन होते है। केशवदासका 'अष्ट नायिका', नायिका-भेदका अच्छा ग्रन्थ है। अमृतरायका चित्र विलास भी लक्षण ग्रन्थके रूपमे प्रसिद्ध है। वीरकवि के 'रस-प्रबोध' नामक लक्षण-ग्रन्थमे प्राचीन परम्पराका अनुसरण करते हुए हाव भाव तथा नायक-नायिका के भेद तथा लक्षण दिए है। कवि ब्रह्मके लक्षण ग्रन्थ 'रस नायिका' की कविता स्पष्ट और सरस भी है। हिन्दीके अन्य उत्कृष्ट रीतिकाव्य कारोसे इसकी तुलना की जा सकती है। मथुरा के ग्वाल कविने बहुत दिनो पञ्जाबके राज-दरबारोमे रहकर कविता की। 'कृष्णजू को नख-शिख', 'दूषण-दर्पण', 'रस रग' आदि इनके रीति ग्रन्थ है। ये कुशल कवि थे तथा इनकी कविताओमें रीतिकालीन प्रभाव देखनेको मिलता है। मौजाबादके चन्द्रशेखर बाजपेयी भी प्रौढावस्थामें कुछ समयके लिए पटियालाके राज-दरबारमे रहे थे। रीति परम्परामें 'नख-शिख', तथा 'रसिक विनोद' इनकी कृतियाँ है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य विभिन्न विषयोपर भी लिखकर उन्होने अपने पाण्डित्यका परिचय दिया है। पञ्जाबके कवियोमे इस रीति पद्धतिका विशेष प्रचलन न हो सका। आचार्यत्वके अभावमें उनका इस प्रकारका काव्य गौरवपूर्ण नही, तो भी प्रचलित परम्पराका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पडा है——यह काव्य इसीका प्रमाण है।

विविध साहित्य

रामप्रसाद निरञ्जनीके 'भाषा योग वासिष्ठ' को देखकर शुक्लजी इन्हें प्रथम प्रौढ गद्य लेखक माना है। इनकी शुद्ध भाषा व आधुनिक प्रतीत होनेवाली शैली देखते ही बनती है ——'इतना सुन अगस्त मुनि बोले कि हे ब्रह्मण्य! केवल कर्मसे मोक्ष नही मिलता और न केवल ज्ञानसे मोक्ष मिलता है, मोक्ष दोनोसे प्राप्त होता है। कर्मसे अन्त करण शुद्ध होता है, मोक्ष नही होता और अन्त करणकी शुद्धि बिना केवल ज्ञानसे मुक्ति नही होती।' इनका महत्व इतनेसे ही स्पष्ट है।

'जो सुख बलख न बुखारे वह छज्जूके चौबारे।' के प्रसिद्ध लेखक छज्जू भगतने भी 'योग वसिष्ठ' को छन्दोमे लिखा है। साधु ज्ञानदासने 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटकको भाषामें, छन्दोबद्ध किया तथा वेदान्त सम्बन्धी 'वाक्य-विलास', 'मोक्ष-पथ प्रकाश' और 'वैराग्य शतक' पुस्तके भी लिखी; जो इनके गम्भीर ज्ञान और सफल अभिव्यक्ति की परिचायक है। पटियाला दरबारके आनन्दराम ने सरल व स्पष्ट भाषामें 'भगवद्गीता-भाषा' नाम से गीताका छन्दोबद्ध अनुवाद किया। अन्यान्य कृतियोका साराश लेकर प्रेम सिंहने 'बुद्धि वारिधि' नामक विशालकाय ग्रन्थ तैयार किया, जिसका गद्य महत्वपूर्ण है। 'गुरु-ग्रन्थ' के प्रसिद्ध कोषकार कान्ह सिंहने 'गुरु शब्द रत्नाकर' नामक लगभग साढे तीन हजार पृष्ठोंके कोषके अतिरिक्त गुरु-मत पर प्रकाश डालने वाली 'गुरुमत प्रभाकर', 'गुरुमत सुधाकर' तथा कुछ अन्य पुस्तके भी लिखी। इनकी ब्रजभाषा में "है" आदि खडी बोली के कुछ क्रिया-पद भी दृष्टिगोचर होते है। पण्डित तारासिंह ने भी 'गुरु गिरार्थ' 'कोष' तथा 'गुरुमत निर्णय सागर' आदि गुरुमत सम्बन्धी अनेक ग्रन्थोकी रचना की तथा कुछ टीकाएँ भी लिखी हैं। निर्मला-पन्थ सिख धर्मकी वेदान्तिक दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। भारतीय सास्कृतिक मान्यताओका सिक्ख धर्म और साहित्यमें स्थान बनाने मे उसका पर्याप्त सहयोग रहा है। 'आध्यात्म रामायण' के अतिरिक्त गुलाबसिहकी 'भाव रसामृत', 'मोक्षपन्थ' आदि कृतियां भी उल्लेखनीय है। सस्कृत का ज्ञान और उसीके कारण परिनिष्ठित ब्रजभाषाके भी उनमें दर्शन होते है। ज्ञान सिंहका 'श्री गुरु

कथा कहनेकी प्रवृत्ति अधिक है तो भी शौर्य एकनिष्ठा आदि सद्गुणोंके साथ-साथ चरित्र पर विशेष बल दिया है। वस्तुत पञ्जाबके हिन्दी प्रेम-काव्यकी अश्लीलतासे बचाकर मर्यादित प्रेमसे परिपुष्ट करने वाले गुरु ही परवर्ती प्रेम-काव्यके पथ-प्रदर्शक कहे जा सकते हैं।

औरंगजेबके मुन्शी सूरदास गुणी (सं १७६) ने गणेश-वन्दना से प्रारम्भ कर कथा हीर रांझेकी ब्रजभाषामें लिखी है। रांझेका सौन्दर्य कामदेवसे कम थोड़े ही है मानो मन्मथ आनि उदरयो और नयनोंके बाणोंसे घायल करनेके चित्र भी देखनेको मिलते हैं —

नैनि सैनि के हम तोहि मारे
घायल होहि है हम सारे॥ (पृ २१७)

इस प्रकार लौकिक शृंगारका बहुत सरस और सजीव चित्रण हुआ है। प्रचलित हीर रांझेकी प्रेम-कथाके वर्णन में कुछ सूफी मान्यताओंका भी पालन हुआ है। कथा सुखान्त है। राजाराम दुग्गल (१८ वी शताब्दी) ने सूर-रंभावत की प्रेम-कथाका गान किया है। शृंगारके आधार-रूप तथा शौर्यका अच्छा वर्णन हुआ है। कहीं-कहीं स्वतन्त्र रति-विहारके उपयुक्त वातावरणका भी निर्माण हुआ है। प्रसिद्ध प्रेमकी पीर का गायन भी यहाँ मिलता है। इसकी ब्रजभाषामें बड़ी बोलीके भी दर्शन होते हैं। पटियाला दरबार के कवियोंमें भी केशवदाससे ही शृंगारी कवित्त-सवैयोंका प्रचलन हो गया था और यह परम्परा बराबर बनी रही। धीरे-धीरे इनपर रीति कालीन प्रभाव भी परिलक्षित होता है। चन्द्रशेखरने तो नरेश रचितार्थोंका भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इस काव्य की विशेषता यह है कि प्रचलित रीतिकालीन रीतिबद्धता तथा अश्लीलतासे यह काव्य प्राय अछूता रहा तथा स्वस्थ प्रेमका भावक सिद्ध हुआ। कथा-काव्य और प्रबन्ध-परम्पराके विकासमें सहयोगी रहा।

रीति-काव्य

हिन्दीमें रीतिबद्ध काव्यकी महत्ता इसीसे स्पष्ट है कि शुक्लजी-जैसे महान् साहित्यके इतिहासकारने इस परम्पराके आधारपर इस साहित्यिक युग (सं १७ ०—१९) का नामकरण ही 'रीतिकाल' किया था। लेकिन पञ्जाबके कवि इस आचार्यत्वके चक्करसे प्राय बच रहे। गुरु गोविन्द सिंहकी काव्य शक्ति अपार थी। सभी प्रचलित विषयों काव्य-पद्धतियों एव शैलियोंका आश्रय लेकर उन्होंने पर्याप्त काव्य की रचना की। चण्डि चरित्र उक्ति विलास उनकी चमत्कार प्रधान रचना है जिसके २११ छन्दोंमें लगभग १८ अलकारोंका प्रयोग हुआ है।

जयकिशन (१८ वी शताब्दी) की 'रूपदीप' नामक भाषा तथा निरञ्जनी साधु हरिरामदासकी 'छन्द रत्नावली'से उनके छन्दशास्त्रके पाण्डित्यका बोध होता है। कवि हरनामका साहित्य बोध' उसके आश्रयदाता कपूरथलाके राजा निहालसिंहके नामसे प्रचलित है। यह एक सुन्दर लाक्षणिक ग्रन्थ है इसमें न केवल नायक-नायिका भेदका विस्तार से वर्णन है अपितु रस और अलकारोंपर भी कविने प्रकाश डाला है। टहल सिंह (१८ वी शताब्दी) ने अलंकार सागर सुधा में अलकारोंका विशद विवेचन तथा उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। सुमेर भूषण में बाबा सुमेर सिंहने भी अलकारोंपर प्रकाश डाला है। नाभानरेशके कवि नवीन (सं १८९९) ने रस तरंग में विभाव अनुभाव सञ्चारी तथा रसका अच्छा वर्णन किया है। परम्पराके

उपन्यास है॥ जिसे हिन्दी का प्रथम उपन्यास भी माना जाता है, इस दृष्टिसे उनका विशेष महत्व है। मूलत वह सनातन धर्मके प्रचारक व पुनरुद्धारक थे, लेकिन साहित्यिक दृष्टिसे भी उनकी कृतियाँ हिन्दीमे अपना स्थान रखती है। १४०० पृष्ठोकी उनकी जीवनी प्रारम्भिक गद्यको विशिष्ट देन है। भारतेन्दुके समयमें वह भाषाके दूसरे प्रसिद्ध लेखक थे। उनकी आध्यात्म सम्बन्धी अन्य कृतियाँ भी उपलब्ध है, इनकी भाषा बहुत ही प्रौढ तथा परिमार्जित है।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' प्रेमचन्द हिन्दीके मूर्धन्य उपन्यासकार है, तो कौशिक उनकी परम्पराको सफलतापूर्वक आगे बढानेवाले सबसे सशक्त उपन्यासकार। 'माँ' और 'भिखारिनी' अपने दोनो उपन्यासोमे वे आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण लेकर आगे बढे हैं। वर्णन-शैली, कथोपकथन, सजीव पात्र-निर्माण, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद तथा चलती भाषा-सभी दृष्टियोसे वह प्रेमचन्दके अनुवर्ती हिन्दी उपन्यासकारोमें सबसे अधिक उनके निकट हैं। उनकी कथाका विकास और पात्र बहुत स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक है। भावात्मक शैलीमे कथानक का विकास, उनकी हिन्दी साहित्यको देन है। कम समस्याओ व पात्रोको लेकर उनकी गहराई में उतरना भी उनकी कलाकी विशेषता है। बगलाकी रागात्मक प्रवृत्तिको अपनानेके कारण वर्णन-शैली तथा कला-कौशलकी दृष्टिसे वे प्रेमचन्द और प्रसादसे भी आगे बढे है। इस प्रकार उन्होने हिन्दी उपन्यासको मौलिक दृष्टिकोण एव नवीनता प्रदान की।

यशपाल- क्रान्तिकारी यशपाल साम्यवादसे विशेष रूपसे प्रभावित रहे। उन्होंने समाजके उत्कृष्ट यथार्थवादी चित्रण उपस्थित किए है। राजनैतिक व सामाजिक विचारोकी अभिव्यक्तिके साधन स्वरूप 'दादा कामरेड' लिखकर उन्होने हिन्दी उपन्यासको नए क्षेत्रमें प्रविष्ट कराया। जहाँ राजनैतिक सिद्धान्त व मानवीय प्रेम, एक साथ ही विकसित होते है। प्रकृतिको वातावरणके माध्यमसे सजीव बना देनेमें तथा मानवीय भावनाओंके चित्रण मे यशपाल कुशलहस्त हैं। 'देशद्रोही' इसका प्रमाण है। 'दिव्या' में उनकी सास्कृतिक—ऐतिहासिक यथार्थ दृष्टि साकार हुई है। थोथे आदर्शसे उनका कोई समझौता नही। मानवीय गुण व दुर्बलताएँ देशकालातीत हैं। 'गोदान' के अन्तकी तरह 'दिव्या' का अन्त हिन्दी ही नही, विश्व-साहित्यमें अपना विशेष स्थान रखता है। तत्कालीन समाजका इतना कलात्मक चित्रण शायद ही कही हो? पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्थाके दूषित वातावरणसे उत्पन्न आधुनिक समस्याओका नग्न चित्रण 'मनुष्यके रूप' में देखा जा सकता है। कलिंगपर आक्रमण और युद्ध न करनेकी प्रतिज्ञा करने वाले अशोकका ऐतिहासिक प्रसग इनके 'अमिता' उपन्यासका आधार है। प्रेमचन्द केवल ग्रामीण वातावरण के चित्रणमें सिद्धहस्थ है, पर यशपाल अपने अगाध ज्ञान और वर्णन-कौशलके सहारे जिस अशोक कालीन समाज को सजीव कर सके हैं, वह उनकी प्रतिभाका परिचायक है। 'झूठा सच' इनकी अन्य उत्कृष्ट कृति है, जिसमें इनकी उच्चकोटिकी प्रतिभाके दर्शन होते हैं। चन्द्रगुप्त विद्यालकारने इसे हिन्दीका सर्वोत्कृष्ट उपन्यास माना है। इनका अनुभव विशाल है। इनकी पर्यवेक्षण शक्ति बहुत ही सूक्ष्म है। त्रिभुवन सिंहके कथनानुसार 'प्रेमचन्दके वाद यशपाल सही मानेमे जन साधारणके लिए हिन्दी कथा साहित्य का प्रतिनिधित्व करते हैं'। शान्तिप्रिय द्विवेदीने इन्हे 'प्रेमचन्दकी तिरोहित प्रतिभाकी तरुण शक्ति' कहा है, तो इनकी कृतियोंके कारण, 'अब हिन्दी कथा साहित्य देने लायक भी हो गया है,' यह कहकर मैथिलीशरण गुप्तने इनकी प्रतिभाका महत्व स्वीकार किया है। वहुत सी कहानियोंके अतिरिक्त निवन्धोंके भी सात सग्रह इनके वौद्धिक-

पन्थ प्रकाश' पन्थ पर प्रकाश डालता है। सन्तोख सिंहके 'श्री गुरु प्रताप सूर्य' का सिख धर्म व साहित्यमें विशेष महत्व है। आदर्श व्यावहारिक जीवन व मान्यताएँ प्रस्तुत करने वाले इन आचार्योंने साहित्य और समाजको नैतिक धरातल से नीचे गिरनेसे बचाया तथा भाषाको ही साहित्यका माध्यम बनाये रखनेमें सहयोग भी दिया। यह सम्पूर्ण साहित्य पञ्जाबके साहित्यकारोंकी विविध रुचियों उनकी अभिव्यक्तिकी अन्यान्य शैलियों तथा ब्रज भाषाके बदलते हुए रूपों आदि सभीका परिचायक है।

आधुनिक युग

सन् १८५७ के स्वतन्त्रता संग्रामने भारतका राजनैतिक मानचित्र ही बदल दिया। उसके परिणामस्वरूप यहाँके धार्मिक व सामाजिक जीवनमें विशेष परिवर्तन आने प्रारम्भ हो गए। जीवनके मूल्य व मान्यताएँ बदलने लगी। अँग्रेजी शासनने शिक्षित समाजके जीवनको अधिक प्रभावित किया और साहित्यकार इसी वर्गकी उपज होते हैं। अतः तत्कालीन भारतीय साहित्यपर इसका विशेष प्रभाव और उसकी प्रतिक्रिया—दोनो ही आवश्यक थे। पश्चिमके बुद्धिवादने विश्वके तथाकथित बौद्धिक-वैज्ञानिक युगमें बुद्धिजीवी मानवका महत्व बढ़ा दिया। विज्ञानकी विशेष प्रगति तथा बौद्धिकताके प्रसारने मानवको अधिक व्याख्या-परक तथा तर्कशील बना दिया है। जीवन रस अब मस्तिष्क द्वारा उपभोग्य हो गया। साहित्यकी अन्य विधाओंका तो कहना ही क्या अब तो कविता भी न केवल छन्दोंका बन्धन छोड़कर अपितु लय ताल और सुरसे भी नाता तोड़कर बौद्धिक विलास मात्र रह गई है। जीवनके साथ साथ साहित्यके मूल्य भी बदल गए और इसलिए विश्वके साहित्य की मान्यताओं व उपलब्धियोंमें आमूल परिवर्तन हो गया। विज्ञानने न केवल ज्ञान-विज्ञानका प्रसार किया अपितु उसकी प्रगतिने यातायात की सुविधा छापेखानेकी तत्परता तथा अब रेडियो और टेलिविजनके चमत्कार स्वरूप उपयुक्त साधन प्रस्तुत कर सम्पूर्ण विश्वके क्रिया-कलापोंको परस्पर इतनी घनिष्ठता से सम्बद्ध कर दिया कि देश-कालका व्यवधान तो मानो समाप्त ही हो गया। २० वीं शताब्दीमें जो साहित्य राज-दरबारोंकी वस्तु न रहकर सामाजिकोंसे सम्बद्ध होने लगा था आज वह प्रान्तीय और राष्ट्रीय बन्धन समाप्तकर अन्तर्राष्ट्रीय या मानवतावादी हो रहा है जिससे स्पष्ट है कि साहित्य का क्षेत्र अति विस्तृत हो गया है। साहित्यिक दृष्टिसे भौगोलिक सीमाओंके टूट जानेसे मानव-जीवनकी गति भी अति तीव्र हो गई है। ज्ञानके प्रसार, विचारोंकी अभिव्यक्ति तथा समस्याओंके समाधानके लिए सामाजिकों को गद्यकी आवश्यकता अनुभव हुई। बौद्धिकों के तर्क तथा वैज्ञानिकोंकी व्याख्याके लिए भी गद्य ही अभिव्यक्ति को—सरलता और स्पष्टताके माध्यमसे सफल बना सकता था। अतः इसका अनायास ही महत्व बढ़ गया और यह गद्य-युग ही बन गया। तब गद्य के माध्यमसे ही नाटक निबन्ध व लेख और धीरे-धीरे उपन्यास कहानी तथा जीवनीने भी जन्म लिया। रचनात्मक साहित्यके साथ-साथ आलोचना का भी साहित्य-क्षेत्रमें प्रवेश स्वाभाविक ही था। यह बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक हिन्दी साहित्य की कहानी है।

उपन्यास

पञ्जाबमें आर्यसमाजकी प्रतिक्रियाएँ श्रद्धाराम फुल्लौरी ने सत्यामृत-प्रवाह की रचना कर सनातन हिन्दू-धर्मकी मान्यताओंका महत्व बताया। भाग्यवती (स० १९३४) उनका सामाजिक

उपन्यास है। जिसे हिन्दी का प्रथम उपन्यास भी माना जाता है, इस दृष्टिसे उनका विशेष महत्व है। मूलत वह सनातन धर्मके प्रचारक व पुनरुद्धारक थे, लेकिन साहित्यिक दृष्टिसे भी उनकी कृतियाँ हिन्दीमें अपना स्थान रखती है। १४०० पृष्ठोंकी उनकी जीवनी प्रारम्भिक गद्यको विशिष्ट देन है। भारतेन्दुके समयमे वह भाषाके दूसरे प्रसिद्ध लेखक थे। उनकी आध्यात्म सम्बन्धी अन्य कृतियाँ भी उपलब्ध है, इनकी भाषा बहुत ही प्रौढ तथा परिमार्जित है।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' प्रेमचन्द हिन्दीके मूर्धन्य उपन्यासकार है, तो कौशिक उनकी परम्पराको सफलतापूर्वक आगे बढानेवाले सबसे सशक्त उपन्यासकार। 'माँ' और 'भिखारिनी' अपने दोनो उपन्यासोंमें वे आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण लेकर आगे बढे है। वर्णन-शैली, कथोपकथन, सजीव पात्र-निर्माण, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद तथा चलती भाषा-सभी दृष्टियोंसे वह प्रेमचन्दके अनुवर्ती हिन्दी उपन्यासकारोंमें सबसे अधिक उनके निकट है। उनकी कथाका विकास और पात्र बहुत स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक है। भावात्मक शैलीमें कथानक का विकास, उनकी हिन्दी साहित्यको देन है। कम समस्याओ व पात्रोको लेकर उनकी गहराई मे उतरना भी उनकी कलाकी विशेषता है। बगलाकी रागात्मक प्रवृत्तिको अपनानेके कारण वर्णन-शैली तथा कला-कौशलकी दृष्टिसे वे प्रेमचन्द और प्रसादसे भी आगे बढे है। इस प्रकार उन्होंने हिन्दी उपन्यासको मौलिक दृष्टिकोण एव नवीनता प्रदान की।

यशपाल क्रान्तिकारी यशपाल साम्यवादसे विशेष रूपसे प्रभावित रहे। उन्होंने समाजके उत्कृष्ट यथार्थवादी चित्रण उपस्थित किए है। राजनैतिक व सामाजिक विचारोकी अभिव्यक्तिके साधन स्वरूप 'दादा कामरेड' लिखकर उन्होने हिन्दी उपन्यासको नए क्षेत्रमे प्रविष्ट कराया। जहाँ राजनैतिक सिद्धान्त व मानवीय प्रेम, एक साथ ही विकसित होते है। प्रकृतिको वातावरणके माध्यमसे सजीव बना देनेमें तथा मानवीय भावनाओंके चित्रण मे यशपाल कुशलहस्त है। 'देशद्रोही' इसका प्रमाण है। 'दिव्या' में उनकी सास्कृतिक—ऐतिहासिक यथार्थ दृष्टि साकार हुई है। थोथे आदर्शसे उनका कोई समझौता नही। मानवीय गुण व दुर्बलताएँ देशकालातीत है। 'गोदान' के अन्तकी तरह 'दिव्या' का अन्त हिन्दी ही नही, विश्व-साहित्यमें अपना विशेष स्थान रखता है। तत्कालीन समाजका इतना कलात्मक चित्रण शायद ही कही हो? पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्थाके दूषित वातावरणसे उत्पन्न आधुनिक समस्याओका नग्न चित्रण 'मनुष्यके रूप' में देखा जा सकता है। कलिंगपर आक्रमण और युद्ध न करनेकी प्रतिज्ञा करने वाले अशोकका ऐतिहासिक प्रसग इनके 'अमिता' उपन्यासका आधार है। प्रेमचन्द केवल ग्रामीण वातावरण के चित्रणमें सिद्धहस्थ हैं, पर यशपाल अपने अगाध ज्ञान और वर्णन-कौशलके सहारे जिस अशोक कालीन समाज को सजीव कर सके है, वह उनकी प्रतिभाका परिचायक है। 'झूठा सच' इनकी अन्य उत्कृष्ट कृति है, जिसमे इनकी उच्चकोटिकी प्रतिभाके दर्शन होते हैं। चन्द्रगुप्त विद्यालकारने इसे हिन्दीका सर्वोत्कृष्ट उपन्यास माना है। इनका अनुभव विशाल है। इनकी पर्यवेक्षण शक्ति बहुत ही सूक्ष्म है। त्रिभुवन सिंहके कथनानुसार 'प्रेमचन्दके बाद यशपाल सही मानेमे जन साधारणके लिए हिन्दी कथा साहित्य का प्रतिनिधित्व करते है'। शान्तिप्रिय द्विवेदीने इन्हें 'प्रेमचन्दकी तिरोहित प्रतिभाकी तरुण शक्ति' कहा है, तो इनकी कृतियोंके कारण, 'अब हिन्दी कथा साहित्य देने लायक भी हो गया है,' यह कहकर मैथिलीशरण गुप्तने इनकी प्रतिभाका महत्व स्वीकार किया है। बहुत सी कहानियोंके अतिरिक्त निबन्धोंके भी सात सग्रह इनके बौद्धिक-

विचारक व्यक्तित्वके परिचायक हैं। समाजवादके प्रचारने यदि उन्हें बाँधा न होता तो इनकी कला और निखार पाती तब इनके साहित्यमें हमें और अधिक स्थायित्व मिलता।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' पश्चिमी शिक्षा और सभ्यतासे प्रभावित लाहौरके युवक 'अश्क' के साहित्यकार ने विषम आर्थिक परिस्थितियोंमें पनपना आरम्भ किया। निम्न मध्य वर्गकी आशाओं-आकांक्षाओंका सरस व सजीव चित्रण उनके उपन्यासोंमें देखनेको मिलता है। सितारों के खेल के बाद उनके दूसरे उपन्यास गिरती दीवारें ने हिन्दी उपन्यास जगतमें इनका स्थान बनाया। भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य सभ्यताके सम्मेलनसे उत्पन्न विषम परिस्थितिमें विकसित होनेवाले युवक चेतन की जीवन दशाओंका यथार्थ चित्रण कर अश्क ने अपनी उत्कृष्ट तूलिकाका परिचय दिया है। 'गर्म राख' में जन समाजके प्रति निधियोंको व्यापक जीवन-क्षेत्रसे लेकर चित्रित किया है। पत्थर अलपत्थर में घोड़ेवाले हसनदीन की दर्द भरी जीवन-गाथा है। जो केवल टनमर्गसे अलपत्थर जाने और वापिस पहुँचने में ही पूर्ण हो गई है। 'अश्क' में यथार्थ चित्रणों की अद्भुत क्षमता है किन्तु प्रेमचन्दसे भिन्न-शैली अपनाकर। यही उनकी मौलिक देन है। उर्दूसे आनेके कारण आपकी भाषामें प्रवाह स्वाभाविक ही है। भाषा सरस और प्रभावोत्पादक है।

गुरुदत्त हिन्दुत्वकी रक्षाके प्रयत्नमें विज्ञानका प्राध्यापक हिन्दीका सफल उपन्यासकार बन जाएगा इसकी किसी को सम्भावना भी न थी। स्वाधीनताके पथपर के बाद पथिक बहती रेता भावुकता का मूल्य आदि १५ १६ उपन्यास इन्होंने लिखे हैं। हिन्दू राष्ट्रीयताके प्रबल समर्थक व प्रचारक लेखकका रूप उनकी कृतियोंमें दृष्टिगोचर होता है। सन् १९२ से लेकर आज तक के राजनैतिक भारतका चित्रण उन्होंने सांस्कृतिक और सामाजिक पृष्ठभूमिपर किया है। उनका सुसंगठित कथानक स्वाभाविक व आकर्षक चरित्र-चित्रण तर्कपूर्ण एवं पात्र—परिस्थितिके अनुकूल कथोपकथन स्वाभाविक सजीव वातावरण तथा सरस प्रवाहमयी शैली सब मिलकर अनायास ही पाठक को अपने साथ ले चलती है। कहीं-कहीं विचार धाराके प्रचार ने उन्हें उपदेष्टा मात्र ही बना दिया है। इतना होते हुए भी विषय और शैली दोनों दृष्टियोंसे उनकी हिन्दी उपन्यासको विशेष देन है। भारतीय सामाजिक पृष्ठभूमिमें राष्ट्रीय कांग्रेसकी असफलताओं का इससे अच्छा विवरण व चित्रण शायद ही कहीं और मिले।

कन्हैयालाल सब्बरवाल आपने भी मूक तपस्वी संघर्ष आदि उपन्यास लिख कर हिन्दी उपन्यास साहित्यको समृद्ध किया है। नायकके उच्च सात्विक प्रेमका दिग्दर्शन 'मूक तपस्वी' में कराकर समाजके लिए उच्चादर्शकी स्थापना की है।

सत्यकाम विद्यालंकारका सामाजिक उपन्यास सीमा अच्छा बन पड़ा है। 'मुक्ता' आदि कुछ अन्य उपन्यास भी उन्होंने लिखे हैं। रजनी पनिक्कर ठोकर, पानीकी दीवार आदि कई उपन्यास नारी-हृदयका भावात्मक चित्रण प्रस्तुत कर देते हैं। युग सन्धि तथा समस्या नारी आदि कुछ उपन्यास लिखकर पृथ्वीनाथ शर्माने तथा जली मुसकराई घरकी लाज आदि उपन्यास लिखकर इतिहासके प्राध्यापक नरपतराय सेमरने भी हिन्दी उपन्यासमें अपना स्थान बनाया। मोहन राकेश आदि नई पीढ़ीके लेखकोंने भी इस क्षेत्रमें सफलतापूर्वक पदार्पण किया है। पञ्जाबीके प्रसिद्ध लेखक करतारसिंह दुग्गल तथा कवयित्री अमृता प्रीतम ने भी हिन्दी-उपन्यास को समृद्ध करनेमें पर्याप्त सहयोग दिया है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

कहानी

हिन्दीके उत्कृष्ट कहानीकारोंमे चन्द्रधर शर्मा गुलेरीका नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने केवल तीन ही कहानियाँ लिखी है, जिनमेंसे 'उसने कहा था' ने उन्हे अमर कहानीकार बना दिया है। यथार्थका स्वाभाविक ढगसे रुचिकर व प्रभावोत्पादक चित्रण, दैनिक सामान्य घटनाओंके माध्यम से सजीव पात्रोंकी अमिट छाप सहृदयोंपर छोड जाना है। यथार्थ जीवन और आदर्श प्रेमका मञ्जुल समन्वय उनकी कलाकी विशेषता है। देश-काल तथा पात्रके अनुकूल भाषा-शैलीका प्रयोग उनकी कहानी को नितान्त आत्मीय बना देता है। प्रेमचन्दकी परम्परामे कौशिकजीने भी कहानियाँ लिखी। 'चित्र शाला' (दो भाग), 'कल्लोल', 'मणिमाला' आदि इनके कहानी सग्रह है। 'ताई' इनकी एक सफल मनोवैज्ञानिक कहानी है। स्वाभाविक जीवनका सजीव चित्रण इनकी सफलताका रहस्य है। इन्होंने प्रधानत इतिवृत्तात्मक सामाजिक कहानियाँ ही लिखी है। अशिक्षित का हृदय, तथाकथित शिक्षित व सभ्यसे कही अधिक सुसस्कृत होता है। शीर्षक की सार्थकता भी इसीमें है। मानव अन्तर्मन का स्वाभाविक उद्घाटन कर यथार्थ के माध्यम से आदर्शोन्मुख होना इनकी कलाकी विशेषता है। 'रक्षा-बन्धन' और 'विधवा' भी इनकी उत्कृष्ट कहानियाँ है। प्रेमचन्दकी परम्पराको आगे बढानेमे इनका सबसे अधिक योग रहा है। प्रेमचन्दकी तरह उर्दूसे हिन्दीमें आने वाले सुदर्शन भी, हिन्दीके प्रसिद्ध कहानीकार है। 'सुदर्शन सुधा', 'नगीने', 'पनघट', 'फूलवती' आदि से भी अधिक इनके कहानी सग्रह प्रकाशित हो चुके है। जिनमे 'फूलवती' (पृ १०५), 'पत्थरोंका सौदागर' (पृ १०२) आदिको तो लगभग उपन्यास ही कहा जा सकता है। 'हारकी जीत' में बाबा भारतीके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, हृदयग्राही चित्रण तथा सुधारवादी दृष्टिकोणके माध्यमसे जिस आदर्शको लेखकने प्रस्तुत किया है, वह पाठकके मर्मको छू लेता है। मानव हृदयको प्रभावित करनेवाली 'न्याय मन्त्री' तथा मानव भावनाओंके मूल्य व महत्व को साकार करनेवाली 'प्रेमतरु' इनकी अन्य उत्कृष्ट कहानियाँ है। प्रधानत इनकी कहानियोंके विषय भी सामाजिक है, जिन्हे सुधारवादी दृष्टिकोण रखते हुए, प्रभावोत्पादक ढगसे प्रस्तुत कर इन्होंने प्रेमचन्दकी परम्पराको प्राणवान बनाकर आगे बढाया है। 'अश्क' को तो उर्दू से हिन्दीमे लानेका श्रेय प्रेमचन्द को ही प्राप्त है। उन्होंने न केवल उनकी उर्दू कहानियोंके हिन्दी अनुवाद कर प्रकाशित करवाए, अपितु इनके कहानी-सग्रहकी भूमिका लिखकर हिन्दीमे कहानी लिखनेकी ऐसी बलवती प्रेरणा दी, जो उनके परवर्ती कहानी-सग्रहो मे साकार हुई। 'पिंजरा' और 'अकुर' अश्ककी प्रारम्भिक कहानियोमें प्रेमचन्द और सुदर्शनका आदर्शोन्मुख-यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत है। लेकिन धीरे-धीरे वे अधिक यथार्थवादी होते गए और उनके चित्रण भी अत्यधिक सजीव होने लगे। व्यक्तिके माध्यम से ही इन्होंने सामाजिक समस्याओंपर प्रकाश डाला है। प्रेम और उसके रूप इनके मुख्य विषय रहे है। बादकी कहानियोमे ये प्रगतिशील कहे जा सकते है। आदर्शके कठघरेमें ये बन्द न रह सके। इनकी कुछ कहानियाँ एक-दो पृष्ठोकी भी है। कुल मिलाकर इन्होंने पूर्ववर्ती हिन्दी कहानीकी विशेषताओंको अपनाया और परवर्त्ती हिन्दी कहानीको उसीके विकास मे एक नई दिशा भी प्रदान कर रहे है। हास्य रसकी भी कुछ कहानियाँ इन्होंने लिखी हैं। '७० श्रेष्ठ कहानियाँ' इनका अच्छा कहानी-सग्रह है। चन्द्रगुप्त विद्यालकार उत्कृष्ट भाव-प्रधान कहानी लेखक है। दैनिक जीवन गत सत्योंको जिस मार्मिक ढगसे उन्होंने अभिव्यक्त किया है, उससे उनकी

कहानियाँ रुचिकर एवं प्रभावोत्पादक बन गई हैं। चन्द्रकला, अमावस, भयका राज्य आदि इनकी मौलिक कहानियोंके संग्रह हैं। हार्डीकी कहानियोंका इन्होंने अनुवाद भी किया है। सामाजिक कहानियोंके अतिरिक्त इन्होंने राजनैतिक, क्रान्तिकारी तथा भावात्मक कहानियाँ भी लिखी हैं। सुघड़ भावात्मक कथानक और रोचक शैलीमें इनकी कहानीकी सफलता निहित है। जीवनके विविध क्षेत्रोंसे कथानक की सामग्री चुनकर इन्होंने हिन्दी कहानीको व्यापक दृष्टिकोण प्रदान किया है। मार्क्सवादी आदर्शों पर आधारित साहित्यके स्रष्टा क्रान्तिकारी यशपालका हिन्दी-कहानी-साहित्यमें विशेष स्थान है। आर्थिक विषमताके कारण विभिन्न वर्गोंके सामाजिक मूल्य व मान्यताएँ उनकी कहानियोंके केन्द्र बिन्दु हैं। आर्थिक शोषण के कारण चरमराये हुए इस सामाजिक ढाँचेका जैसा यथार्थवादी सजीव चित्रण इन्होंने प्रस्तुत किया है वैसा प्राय दुर्लभ है। इसीसे उनकी लेखनीका कौशल स्पष्ट है। अपने कथानकके चुनावमें उन्होंने पौराणिक धार्मिक तथा ऐतिहासिक सामग्रीका भी आश्रय लिया है। स्त्री तथा पुरुषके विविध सम्बन्धों व प्रेमके विभिन्न रूपोंपर भी इन्होंने प्रकाश डाला है। उनकी सम्पूर्ण कला सोद्देश्य है। वह मनोरञ्जनसे उच्चतर उद्देश्य और आदर्श प्रस्तुत करती है। उनका आधार चाहे कुछ भी हो जहाँ कहीं प्रचारकी भावना उभरी नहीं है वहाँ उनकी कला विशेष रूपसे निखरी है। पिंजरेकी उड़ान, वो दुनियाँ, ज्ञानदान, अभिशप्त आदि एक दर्जन से भी अधिक उनके कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। संक्षेपमें हिन्दीमें समाजवादी आधार पर उत्कृष्ट यथार्थवादी कहानी लेखकके रूपमें यशपालका महत्त्व भुलाया नहीं जा सकता। नई पीढ़ीके लेखकोंमेंसे मोहन राकेशने हिन्दी-कथा-साहित्यमें अपना स्थान बना लिया है। इन्सान के खण्डहर, नए बादल, जानवर और जानवर तथा एक और जिन्दगी उनके कहानी संग्रह हैं। धीरेन्द्र मेहदीरत्ताके सिमसेकी भीम आदि कहानी संग्रहोंमें भी कहानीकारकी प्रतिभाके दर्शन होते ह। भीष्म साहनी और कृष्णा सोबतीकी कहानियोंमें विशेष आकर्षण है। इनके अतिरिक्त सरस्वती मलिक, पृथ्वीनाथ शर्मा, रजनी पनिकर, सत्यप्रकाश सेंगर, हंसराज रहबर, बलराज साहनी, सत्यपाल आनन्द, पुष्पा महाजन, जगनाथ मलिक तथा पञ्जाबीके प्रसिद्ध लेखक करतारसिंह दुग्गल और अमृता प्रीतम ने भी हिन्दी कथा-साहित्यको समृद्ध किया है और कर रहे हैं। अतः अभी उनके कथा साहित्य का उचित मूल्यांकन नहीं हो सकता।

नाटक

उदयशंकर भट्ट और हरिकृष्ण प्रेमीकी साहित्य साधनाका क्षेत्र बहुत काल तक पञ्जाब रहा है। हिन्दी-नाटक-साहित्यको समृद्ध करनेमें उसे नयी दिशा देनेमें इनका जो हाथ रहा है उसे भुलाया नहीं जा सकता।

गुरुदत्तने ऐतिहासिक नाटक 'दयानन्द' में आर्य समाजके प्रवर्तक ऋषिके तपस्वी जीवनका चित्रण किया है। पौराणिक आख्यान पर आधारित 'अजन्ता' को ऐतिहासिक पद्धति पर लिखा है। उसमेंसे अस्वाभाविक अंशोंको निकालकर अत्यन्त विश्वसनीय बनानेका प्रयत्न किया है। भावना प्रधान मधारोंने प्रेम-कथाको रोचक बना दिया है। आनरेरी मजिस्ट्रेट, उनका सफल प्रहसन है जिसमें न्यायके नामपर अन्याय कैसे होता है इसका चित्रण है।

उदयशंकर भट्ट

कथाकार अश्क सफल नाटककार भी हैं। 'जय-पराजय,' के बाद, उन्होंने 'स्वर्गकी झलक' 'कैद,' 'उडान', 'छठा बेटा' आदि सामाजिक नाटक लिखे हैं। पश्चिमी सभ्यतामें नारी गृहिणी नही रह पाती, 'स्वर्गकी झलक' मे यही दिखाया गया है। 'कैद' तथा 'उडान' मे विवाह समस्याको केन्द्र बनाया गया है। 'जय-पराजय' को छोडकर उनके अन्य नाटकोमें सकलन-त्रय, कलात्मकता, अभिनेयता आदिका अच्छा निर्वाह हुआ है। उनकी भाषा परिस्थिति एव पात्रानुकूल होनेके कारण प्रभावोत्पादक बन पडी है। इस प्रकार उनके नाटक सजीव है। 'देवताओकी छायामें', 'तूफान से पहिले' आदि एकाकी सग्रहोमे इनके ३० के लगभग एकाकी प्रकाशित हो चुके है। सामाजिक समस्याओ को ही उन्होंने अधिकतर अपनाया है। 'अधिकार का रक्षक' आदिमें तिलमिला देनेवाला व्यग्य है, तो परवर्त्ती एकाकी अपेक्षाकृत गम्भीर है तथा कुछमे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत है। सकेतो और प्रतीको द्वारा मार्मिक रहस्यका उद्घाटन करनेवाले 'अश्क' हिन्दीके प्रथम लेखक है। कुल मिलाकर 'अश्क' ने मध्यम-वर्गकी सामाजिक कुरीतियो, अभावो और खोखलेपनको ही अपने एकाकियोका केन्द्र-बिन्दु बनाया है और उन्हीके माध्यमसे सामाजिक समस्याओपर प्रकाश डालनेमे वे सफल भी हुए है। पृथ्वीनाथ शर्माने भी 'दुविधा', 'अपराधी' आदि सामाजिक नाटक लिखे है। यथार्थका महत्व स्वीकार करते हुए भी वे आदर्शका मोह नही छोड सके है। इस असन्तुलनने उनके नाटकोको अधिक सफल नही होने दिया। उर्मिलाके चरित्रका गौरव दिखाने के प्रयत्नमे लिखा गया 'उर्मिला' अपेक्षाकृत अधिक सफल कृति है। कला का अधिक निखरा हुआ रूप इसमें देखनेको मिलता है। चन्द्रगुप्त विद्यालकारने 'रेखा' और 'अशोक' दो ऐतिहासिक नाटक लिखे है। प्रसादसे प्रभावित होते हुए भी वे उनकी ही तरह सफल नाटकोका प्रणयन न कर सके। कही इतिहासकी परिधिका उल्लघन है, तो कही असम्भाव्य दृश्योका विधान। इन्होने भी सास्कृतिक आधार प्रस्तुत करनेका प्रयत्न किया है, पर वह भी बहुत सशक्त नही बन सका। इतना होते हुए भी वातावरणके निर्माण व चरित्र-चित्रणमें इनकी कलाकी सफलता दृष्टिगोचर होती है। 'तांगेवाला, 'मनुष्यकी कीमत' आदि आपने कुछ एकाकी भी लिखे है।

हिन्दी नाटक साहित्यमे 'आषाढका एक दिन' ने मोहन राकेशका स्थान बना दिया है। उसमे जिस सास्कृतिक सरसताके दर्शन होते है, वह सहृदय की रुचिका परिष्कार और मनोविनोद दोनो ही करती है। कलाका निखरा हुआ रूप उसमें दृष्टिगोचर होता है। डॉ कैलाशनाथ भटनागरने 'भीष्म प्रतिज्ञा', 'कुणाल', 'श्रीवत्स' आदि कुछ सफल नाटक लिखे है। कवि देवराज 'दिनेश' के 'रावण' और 'मानव प्रताप' भी सफल नाटक है। इनके अतिरिक्त अन्य भी कुछ लेखकोंके एकाकी नाटक देखनेको मिलते है लेकिन अभी साहित्यमें उनका स्थान नही बन सका है।

कविता

दृश्य काव्य, कथा साहित्य तथा निबन्ध लेखनमें पञ्जाबके लेखकोने हिन्दी साहित्यमें अपना जो स्थान बनाया है कविताके क्षेत्रमें वे वैसा न बना सके। बालमुकुन्द गुप्तकी 'स्फुट कविता' काव्य रचनाका प्रयास है, लेकिन मूलत वे सम्पादक और गद्य लेखक थे। अत उनकी प्रतिभाका, काव्य क्षेत्रमे उचित रूपसे विकसित न हो सकना स्वाभाविक ही था। पञ्जाबमे रहकर उदयशकर भट्ट तथा हरिकृष्ण प्रेमी ने जिस काव्यका प्रणयन किया उसका हिन्दी काव्य में विशेष स्थान है।

प्रथम पत्नीकी मृत्युने अश्क के प्रसुप्त भावुक कविको जगाया और 'सूनी अँधियारी रातोंमें' जब कि वह एकाकी और मौन बना रहता था तभी शोकाकुल हृदय से कविता फूट निकली। इसीलिए उसमें उन भावोंका स्वाभाविक आवेग है जो मर्मस्पर्शी है। निराश कविकी वेदनापूर्ण कविताएँ प्रात दीप में संगृहीत हैं। ऊर्मियाँ में कवि पुनः जीवनकी ओर बढ़ा है। बरगद की बेटी तथा अन्धेर और चाँदनी इनके दो खण्डकाव्य हैं। इनका काव्य सुबोध है। उसमें विचारों और भाषा दोनों ही दृष्टियोंसे कोई जटिलता नहीं है।

शम्भूनाथ शेष के उर्मीछिका सुषमा अन्तर्लोक आदि कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं। काश्मीर आपका खण्डकाव्य है। आपने कहीं तुकान्त छन्दोंमें नवयुगका निर्माण करनेके के लिए मानवके मानसको ललकारा है तो कहीं सुखद जीवनके मधुर गीत गाए हैं। हिन्दीमें सफल रुबाइयाँ और गजलें भी इन्होंने लिखी हैं जिनमें स्वस्थ जीवन दर्शन अभिव्यक्त हुआ है। आकाश-वाणीके जालन्धर केन्द्रमें काम करते हुए आपने बहुतसे कवि सम्मेलनोंका आयोजन भी किया था।

देवराज दिनेश जन सामान्यके कवि हैं। देशके विभाजनका करुणापूर्ण चित्रण और कवि सम्मेलनोंमें उसका प्रभावोत्पादक पठन कितने ही श्रोताओंको रोने के लिए विवश कर देता है। उनकी वाणीमें ओज है तथा भावोंके अनुरूप ही सशक्त अभिव्यक्ति भी है। इन्होंने अभाव-ग्रस्त जीवनका आपने ऐसा चित्रण प्रस्तुत किया है जो जन मानसको अनायास ही स्पर्श कर लेता है। इनके मजदूर ने भी अगणित बार धरा पर स्वर्ग बनाये हैं इसीलिए वह गर्वोन्नत है तथा इनका नाविक सागरकी उत्ताल तरंगोंसे घबराने वाला नहीं। इनकी वाणीमें अदम्य प्रेरणा व उत्साह भरा है। आज इस प्रदेशके राजकवि होनेका इन्हें गौरव प्राप्त है।

विद्याभास्कर अरुण को उनके काव्य-संग्रह सवेरा और साथी' ने अच्छे कवियोंकी पंक्तिमें ला बिठाया। समाजमें विद्यमान आर्थिक विषमता एवं शोषणने इनके भावुक हृदयको विशेष रूपसे प्रभावित किया है। मधुर और कोमल भावनाओंके उद्रेकमें इन्होंने प्रेमके भी कुछ गीत गाए हैं। अब हिन्दी और पञ्जाबी भाषाका विश्लेषणात्मक अध्ययन करनेमें व्यस्त हैं। शायद इनका कवि सो चुका है। जगनाथ नलिन की प्रतिभा बहुमुखी है। यामिनी उनका काव्य है। जीवनकी विषमताओंसे जूझने वाला कवि प्रगतिशील भी रहा है। अत इनके काव्यमें शक्ति पूर्वक बढ़े होनेका स्वर मिलता है। देश-विभाजनके करुण दृश्योंने प्रत्येक कविके अन्तस्को आन्दोलित कर दिया और कितने ही सहृदयोंको कवि भी बना दिया। नलिन ने पश्चिमसे चले आनेवाले काफिले का चित्रण बड़ा ही सजीव तथा मर्मस्पर्शी किया है। अध्यापक नलिन कवि आलोचक कहानीकार, एकांकीकार और निबन्धकार भी हैं।

उदयभानु हंस हिन्दीमें रुबाइयों के सफल प्रयोगके कारण प्रसिद्ध हुए। हिन्दी रुबाइयाँ इनका पहला प्रकाशित संग्रह है। धड़कन और सरगम इनके अन्य काव्य-संग्रह हैं। मानवतावादी धरातलपर इन्होंने मैं मानव हूँ हर मानवसे प्यार करता हूँ कहकर भेदभावकी दृष्टिको दूर कर मानव मात्रके सामान्य भावों (प्रेम आदि) को कविताका विषय बनाया है। परमानन्द शर्माकी ओजस्वी वाणी छत्रपति और बैरागी प्रबन्ध काव्योंके माध्यमसे सार्थक हुई। वीरभूमि पञ्जाबका वास्तविक प्रतिबिम्बित इनके ही वीर रस प्रधान काव्यमें हुआ है। दुष्ट दर्प-दलनके लिए इन्होंने वीर प्रमुख आह्वान किया है। इनकी वाणीमें

ओज के साथ-साथ वेग, शक्ति और सामर्थ्य भी है। खुशीराम शर्मा वसिष्ठ प्रेमके गायक रहे हैं। 'प्रेमोपहार' इनकी कविताओका सग्रह है। इनके गीतोमे मधुर मदिराकी मादकता है। शोषितोके प्रति सहानुभूति भी इनके परवर्त्ती काव्य का विपय रहा है। अभयकुमार यौधेयके 'प्रतीची की ओर' आदि काव्य सग्रह प्रकाशित हुए है। विश्वप्रकाश दीक्षित 'वटुक' ने भी पञ्जावमे रहकर पर्याप्त साहित्य साधनाकी है, जिसमे उनका कवि रूप भी उभरा है। इनके काव्यमे सुलझे हुए जीवन-दर्शनके दर्शन होते है। चिरजीतने कुछ राष्ट्रीय और रोमाण्टिक कविताएँ लिखी है। 'चिलमन' इनका कविता सग्रह है।

मदनलाल 'मधु' ने 'उन्माद' मे अपने यौवनका उन्माद भर दिया है। उनके प्रेम गीत वडे ही मार्मिक है। भावोंके साथ लय, ताल और सुरका ऐसा सन्धान कम ही गीतोमे देखनेको मिलता है। मञ्चपर कविता पाठमे उन्हे अद्वितीय सफलता मिलती रही है। सुदर्शन वाहरी तथा शकुन्तला श्रीवास्तवके मधुर गीत भी अच्छे वन पडे है। त्रिलोकीनाथ रञ्जनने प्रेमकी कविताओमे भावनाओको साकार किया है। प्रो शैवाल, ओमप्रकाश आनन्द, पुरुषोत्तम कुमार, मनसाराम 'चञ्चल', विकल, सत्या शर्मा आदिके अतिरिक्त कालेजोकी पत्रिकाओ तथा अन्यान्य प्रान्तीय पत्रिकाओमे भी तरुण कवियोके अनेक गीत पढनेको मिलते हैं। पञ्जावमे हिन्दी काव्यके विकासमे इन सभीका योगदान है। उपर्युक्त सभी लेखक पञ्जावके है और उन लोगोने शुरूमे उर्दू अथवा पञ्जावीमे लिखना शुरू किया, किन्तु वादमे वे हिन्दीके ही हो गए।

निबन्ध आलोचना तथा विविध साहित्य

वावू वालमुकुन्द गुप्त पञ्जावके पहले हिन्दी निबन्धकार कहे जा सकते है। उर्दू पत्रोंके सम्पादनके वाद हिन्दी 'भारत मित्र' के प्रधान सम्पादक बने थे। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीसे टक्कर लेनेकी क्षमता इन्हीमे थी। 'शिव शम्भु का चिट्ठा' उनकी प्रसिद्धिका कारण है। 'गुप्त निवन्धावली' इनके निबन्धोका सग्रह है। राजनैतिक परिस्थितिपर व्यग और सामाजिक जागरणके दर्शन इनके निवन्धोमें होते है। इनके विनोदपूर्ण निबन्धोमें भावोका विशेष स्थान है। उनका वाक्य-विन्यास अर्थपूर्ण व चुस्त होते हुए भी सरल है। उनका व्यग्य तीखा और सयत है। व्याकरण, भाषा और लिपि आदि पर भी कुछ निबन्ध इन्होने लिखे है।

माधवप्रसाद मिश्र 'सुदर्शन' के सम्पादक थे। पर्व, त्योहार व तीर्थस्थानोपर उन्होने अपने भावना-प्रधान निबन्ध लिखे। 'माधव मिश्र निवन्धमाला' नामसे आपके निबन्धोका सग्रह भी प्रकाशित हुआ है। 'सब मिट्टी हो गया' इनका उत्कृष्ट निबन्ध कहा जा सकता है। सनातन धर्म व भारतीय सस्कृतिके प्रति इनकी श्रद्धा भी इन निवन्धोमें देखनेको मिलती है। 'धृति', 'क्षमा' आदि इनके कुछ गम्भीर निबन्ध है। उनमे पाण्डित्यके भी दर्शन होते हैं। इनकी भाषा-शैली सस्कृत-गर्भित, विषयानुकूल एव प्रौढ है। कुल मिलाकर ये अपने युगके सफल निबन्धकार हुए हैं।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरीकी प्रतिभा उनके निबन्धोमें भी प्रस्फुटित हुई है। गम्भीर-से-गम्भीर शास्त्रीय विषयोके प्रतिपादनमें भी ये विनोदके छीटे देते चलते हैं। रूढिवादी समाजपर व्यग करनेके लिए ही इन्होने 'कछुआ धर्म', 'मारेसि मोहि कुठाँव' आदि निबन्ध लिखे। इनके तिलमिला देनेवाले व्यग्य सशक्त शैली में अभिव्यक्त हुए। 'शैलीकी जो विशिष्टता, और अर्थ गर्भित वक्रता गुलेरीजीमें मिलती है वह और किसी लेखकमें नही।' यह लिखकर शुक्लजीने भी उनकी शैलीकी महत्ता स्वीकार की है।

अध्यापक पूर्णसिंहने 'आचरणकी सभ्यता' 'मजदूरी और प्रेम' तथा 'सच्ची वीरता' आदि थोड़े ही निबन्ध लिखे हैं। मानवीय सदाचरणपर ऐक्य कर्मण्य जीवन तथा आन्तरिक जीवनका महत्त्व उनके निबन्धों को सांस्कृतिक बनाए रखनेके लिये पर्याप्त है। उनकी भावात्मक शैली निबन्धको आत्मीयतापूर्ण बना देती है। भाषा और भाव की एक नयी विभूति उन्होंने सामने रखी। इतना ही नहीं इनकी लाक्षणिकताको भी सुबक्षीने हिन्दीमें नया ही माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्लसे पूर्व निबन्धकी इस बृहत्त्रयी का सम्बन्ध पञ्जाबसे ही था।

श्री सन्तरामजी लम्बे अरसेसे कुछ सांस्कृतिक तथा वैयक्तिक जीवनमें चारित्रिक महत्त्व बतानेवाले निबन्ध लिखते रहे हैं। ये प्रायः पत्रिकाओंमें ही मिलते हैं। मननीन्द्रकुमार विद्यालंकारने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा राष्ट्रीय आर्थिक समस्या-सम्बन्धी बहुतसे ज्ञान-वर्धक निबन्ध लिखे हैं। प्रो. इन्द्र विद्यावाचस्पति आचार्य विश्वबन्धु आदि प्रौढ लेखकोंके कुछ अच्छे निबन्ध पत्र-पत्रिकाओंमें निकलते रहे हैं।

आलोचनाके क्षेत्रमें डॉक्टर इन्द्रनाथ मदानने आधुनिक हिन्दी-साहित्य प्रबन्धपर पी एच डी प्राप्त की थी। उसके बाद 'प्रेमचन्द एक विवेचना' में उपन्यास सम्राट्का सामाजिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया। 'हिन्दी कलाकार' में मूर्धन्य कलाकारोंकी कलापर इन्होंने प्रकाश डाला है। अभी हाल ही में उनका 'आधुनिक कविताका मूल्यांकन' प्रकाशित हुआ है जिसमें आधुनिक कवियोंकी विश्लेषणात्मक आलोचना प्रस्तुत है। इस ग्रन्थमें उनके प्रौढ आलोचकके दर्शन होते हैं। जयनाथ 'नलिन' ने 'हिन्दी निबन्धकार' और 'हिन्दी नाटककार' दो अच्छी आलोचना-पुस्तकें लिखी हैं। 'विद्यापति' में इन्होंने उनके काव्यका सर्वांगीण विवेचन प्रस्तुत किया है। नलिन की शैली सरस स्पष्ट और सशक्त है। आलोचककी निष्पक्षता के दर्शन उनमें होते हैं। भगवत्स्वरूपने पन्तके काव्यका सन्तुलित विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इनके अतिरिक्त पी एच डी की उपाधि के लिए शिवनारायण बोहरा रामचन्द्र शर्मा सरनदास भनोत हरदेव बाहरी किरणचन्द्र शर्मा ससारचन्द्र दुर्गादत्त मेनन गोविन्दराम बेदपाल शर्मा भीष्म साहनी धर्मपाल यादव सुषमा धवन आशा गुप्ता बेनीप्रसाद ब्रजलाल गोस्वामी आदिने प्रबन्ध प्रस्तुत कर सफलता प्राप्त की है जिनमेंसे अभी थोड़े ही प्रबन्ध प्रकाशित हुए हैं। प्रो गुरुकुलमें समय पञ्जाब विश्वविद्यालयमें संस्कृतका विशेष अध्ययन हुआ था। संस्कृतके विशिष्ट विद्वानोंने भी हिन्दीमें विशेष योग दिया। डॉ सूर्यकान्तने पञ्जाबमें रहकर 'हिन्दीका विवेचनात्मक इतिहास' तथा 'साहित्य-मीमांसा' लिखकर अपनी विद्वत्ता और गम्भीर अन्वेषण शक्तिका परिचय दिया। डॉ सिद्धेश्वर वर्मा और डॉ बनारसीदास जैनने भाषा विषयक गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत किया। डॉ रघुवीरने देश-विभाजनके बाद शब्द निर्माण और बृहत् कोष निर्माणका कार्य कर जो ख्याति पाई है उसका बीजारोपण वे यहाँ ही कर चुके थे। आचार्य विश्वबन्धुने उच्च कोटिके वैदिक साहित्यके प्रकाशनके लिए हिन्दीको माध्यम चुना और मार्मिक विचारपूर्ण लेख लिखनेके साथ साथ वैदिक साहित्यके प्रकाशनमें भी सहयोग दिया।

आर्य समाज के प्रसिद्ध प्रचारक सत्यदेव परिव्राजकने जीवन-सम्बन्धी अन्यान्य विषयोंपर लगभग ३ पुस्तकें लिखकर हिन्दी साहित्यको समृद्ध किया और अन्तमें अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति भी नागरी प्रचारिणी सभा काशीको दान देकर हिन्दी प्रेमका परिचय दिया। पं भीमसेन विद्यालंकारने वीर मराठे शिवाजी वीर पञ्जाबी आदि लिखकर पञ्जाबी युवकों और बालकों

जगाया तथा अन्यान्य पत्रो व 'हिन्दी सन्देश' का सम्पादन कर और दीर्घ काल तक हिन्दी साहित्य सम्मेलनके मन्त्री-पदपर कार्य कर हिन्दीके प्रसार और प्रचारमे सक्रिय सहयोग दिया। आनन्दस्वामीने १९२९ में 'हिन्दी मिलाप' आरम्भ किया था तथा भक्ति सम्बन्धी कुछ पुस्तके भी लिखी थी। उनके सुपुत्र 'यश' (आजकल पञ्जाबके शिक्षा-मन्त्री) ने भी पत्र-सम्पादनके कार्यको सफलतापूर्वक वहन करनेके साथ-साथ 'कारावास' और 'आग' दो कहानी सग्रह भी प्रकाशित किए है। 'वीर अर्जुन' के प्रकाशक कृष्णके हिन्दी-प्रेमकी परम्परामे उनके सुपुत्र वीरेन्द्र भी 'वीर प्रताप' का सम्पादन कर रहे है। 'हरियाना सन्देश' के माध्यमसे उस प्रदेशमें हिन्दीके प्रचारका श्रेय महेशचन्द्रको दिया जा सकता है। 'भारती' और 'युगान्तर' के सम्पादन करनेके बाद सन्तरामजीने 'विश्वज्योति' के प्रकाशनमे हाथ बँटाया। भारतीय सस्कृतिसे प्रेम होनेके कारण तथा सुधारवादी दृष्टिकोण रखनेके कारण इन्होने नैतिकता-प्रधान, उपदेशात्मक, व्यावहारिक एव उपयोगी ६० से भी अधिक पुस्तके लिखकर हिन्दी साहित्यको समृद्ध किया है। भाई परमानन्दकी वाणीका ओज 'वीर वैरागी' मे उनकी लेखनीके माध्यमसे साकार हुआ। उन्होने 'भारत रमणी रत्न' आदि अन्य भी कुछ सशक्त विचारपूर्ण पुस्तके लिखी। प भगवद्दत्तने 'वैदिक वाङ्मयका इतिहास' तथा 'भारतवर्ष का बृहत् इतिहास' आदि कई ग्रन्थोकी रचना कर भारतीय सस्कृतिका स्वरूप सामने रखा। उनकी लेखनीमे ओज है और तर्कमे अद्भुत शक्ति। जयचन्द्र विद्यालकारने भारतीय इतिहासका गवेषणात्मक अध्ययन कर मौलिक मान्यताएँ स्थापित की है। उनका 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' (दो भाग) मानसिक दासताको उतार फेकनेका निष्पक्ष एव निर्भय प्रयत्न है। इसपर मगलाप्रसाद पारितोषिक भी प्राप्त हुआ है। 'भारत भूमि और उसके निवासी' भी उनकी अन्य उल्लेखनीय कृति है। इसके अतिरिक्त भारतीय सस्कृतिके इतिहास लेखनमें भी उनकी लेखनीको सफलता मिली है। लाला लाजपतरायने स्वामी दयानन्दका जीवन-चरित लिखा था। ये सभी लेखक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे 'आर्य-समाज' की देन है। डॉ हरदेव बाहरीने शब्द-विज्ञान व कोश-निर्माणमे विशेष ख्याति अर्जित की है। भदन्त आनन्द कौसल्यायनने बौद्ध धर्म सम्बन्धी साहित्य का सर्जन किया है, जिनमेंसे 'बुद्धवचन' और 'जातक' (दो भाग) अधिक प्रसिद्ध है। हसराज अग्रवालने भी 'सस्कृत साहित्यका इतिहास', 'हिन्दी साहित्यकी परम्परा', 'हमारी सभ्यता और विज्ञान' आदि कृतियोका निर्माण कर हिन्दीके विकासमें योग दिया है। डॉ परमानन्दने 'जपुजी साहिबका टीका', 'भारतकी दिव्य विभूतियाँ' आदि पुस्तके लिखकर अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है। श्रीधरानन्दने पिंगलपर कार्य किया है, जो पञ्जाबकी हिन्दी परीक्षाओमें नियत होनेके कारण पर्याप्त प्रचलित रहा है। जगन्नाथ पुच्छरत ने गत ५० वर्षोंसे पञ्जाब विश्वविद्यालयकी हिन्दी परीक्षाओंके लिये उपयुक्त पुस्तकोकी रचना की, तथा परीक्षाओके प्रचारके लिए सभी सम्भाव्य प्रयत्न किए, जो प्रान्तमें हिन्दी-प्रचारकी दृष्टिसे उपेक्षणीय नही। मदनमोहन गोस्वामी विविध पत्रोका सम्पादन करनेके बाद आजकल पञ्जाब सरकारके मासिक पत्र 'जागृति' का सम्पादन कर रहे है। शमशेर सिंह 'अशोक' ने गुरुमुखी लिपिमें लिखित हिन्दीके साहित्यको प्रकाशमे लानेके लिए सराहनीय प्रयत्न किए है। कुछ लोगोने इधर अच्छे अनुवाद भी प्रस्तुत किए है। इतिहास, भूगोल, सामाजिक ज्ञान आदि सभी विषयोंके साथ-साथ गणित, रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, वनस्पति शास्त्र आदि वैज्ञानिक विषयोपर भी विद्यार्थियोको ध्यानमे रखकर कुछ पुस्तके लिखी गई है तथा लिखी जा रही है। सब मिलाकर

ज्ञान-विज्ञानके साहित्यका भण्डार भरनेमें पञ्जाबके हिन्दी साहित्यकार भी अपना पूरा सहयोग दे रहे हैं।

आधुनिक युगमें पञ्जाबमें हिन्दी प्रचार और प्रसारका श्रेय ऋषि दयानन्द को दिया जा सकता है। अँग्रेजी राज्यकी स्थापनाके साथ ही यहाँ हिन्दीके लिए कोई स्थान नहीं रह सकता था। स्वामी दयानन्दने अपनी मातृभाषा गुजरातीको छोड़कर राष्ट्रीय एकताके लिए हिन्दीको राष्ट्रभाषा स्वीकार कर, अपने विचारोंके माध्यमके रूपमें अपनाया। यहाँ मुसलमान उर्दूको अपनाए बैठे थे और विधिवद् शिक्षाके आरम्भ होते ही अँग्रेजी उच्च शिक्षाका माध्यम बन बैठी। उससे पहले देशके इस भागमें हिन्दीके प्रचलित न होनेके कारण इसे जन भाषामें कोई स्थान न मिल सका। स्वामी दयानन्दका आर्य समाजका धार्मिक आन्दोलन यहाँ ईसाइमतका विरोध करता था यहाँ समाजको राष्ट्रीय जागरणका सन्देश भी दे रहा था। पञ्जाब और उसकी राजधानी लाहौर आर्य समाज का सबसे प्रमुख केन्द्र बना। इसके परिणामस्वरूप बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें यहाँ एक ओर डी ए वी स्कूलों तथा कालेजोंकी स्थापना हुई, वहाँ कुछ गुरुकुलोंकी भी नींव रक्खी गई। स्कूलों और कालेजोंमें तो राजकीय विश्वविद्यालयकी परीक्षाओंको स्थान दिया गया पर माध्यम प्राय हिन्दी ही रहा लेकिन गुरुकुलोंमें तो प्राचीन ऋषि-परम्पराका अनुसरण करनेके प्रयत्नमें संस्कृतके माध्यमसे संस्कृतिका मधु-पान करानेका प्रयास किया गया जिसका सशक्त माध्यम परिष्कृत हिन्दी ही थी। परिणामस्वरूप लोगोंके रूपमें पंजाबीको अपनानेवाले एक बहुत बड़े जन-समुदायने भी भाषाके रूपमें हिंदीको ही अपनाया और यह परम्परा आज तक उसी प्रकार चली आ रही है। भाषाके इस प्रकारके महान् आन्दोलनमें ब्रह्मसमाज के माध्यमसे नवीन चन्द्र राय तथा उनके अनुवर्तियोंने भी पर्याप्त सहयोग दिया। देव समाज तथा सनातन धर्म आदि सभी हिन्दू धार्मिक संस्थाओंने हिन्दीको न केवल जीवित रक्खे अपितु जीवन्त धारा बनाए रखनेमें कोई कसर न उठा रखी। वस्तुत वाई एम सी ए (Y M.C.A.) के अँग्रेजी अंजुमने तरक्की ए उर्दू के उर्दू तथा चीफ खालसा दीवान के पञ्जाबी-प्रचारकी प्रतिस्पर्धामें ही हिन्दी विकसित हुई। 'Divide and Rule की नीतिके आधारपर शासन करनेवाली राजनैतिक सत्ताके विरुद्ध इन धार्मिक सामाजिक व साहित्यिक संस्थाओंने ही भाषाको जीवनी शक्ति प्रदान की तथा उसमें प्राण तत्त्वको पल्लवित कर उसे साहित्य-सर्जनके लिए सक्षम बनाया। गत तीन चार दशकोंमें प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनने भाषाके प्रचारमें विशेष योग दिया है। लाहौर इसकी गतिविधियोंका केन्द्र था। इसके वार्षिक अधिवेशनोंमें प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेताओं द्वारा हिन्दीको राष्ट्रभाषाके रूपमें विकसित करने और अपनाने पर जोर दिया जाता था। देश-विभाजनके पश्चात् जालन्धर, अम्बाला आदि केन्द्रोंमें स्थानीय साहित्यकार कभी-कभी मिलकर नवीन रचनाओंका पठन व आलोचना करके साहित्यिक रुचिको जागृत रखने तथा परिष्कृत करनेका प्रयत्न करते हैं। इससे नवोदित लेखकोंको प्रेरणा व प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार भाषाके प्रचारसे भी अधिक साहित्यके विकासमें इसका विशेष योग रहा है। पेप्सूका पञ्जाबी-विभाग जब भाषा-विभागमें परिणत हुआ तो उसमेंसे हिन्दी-विभाग भी विकसित हुआ। नाटक भाषण लेख तथा वाद-विवाद प्रतियोगिता द्वारा हिन्दी-विभाग भाषा-प्रचार का कार्य कर रहा है। यह विभाग वर्षकी सर्वोत्कृष्ट कृतियोंपर पुरस्कार देकर, तथा अन्य उपयोगी व स्वस्थ साहित्यके प्रकाशनके लिए आर्थिक सहायता देकर साहित्यिक वातावरणके निर्माणमें प्रयत्नशील है। वार्षिक शोध-गोष्ठियोंमें विशिष्ट विद्वानोंके शोध-निबन्धोंपर विचार-विमर्श

भी इसी दिशा में स्वस्थ प्रयत्न है। हिन्दीके साहित्यिक वातावरणके निर्माणमें इन सब शक्तियोका विशेष योग रहा है, जिसके महत्वको भुलाया नही जा सकता।

सक्षेपमें पञ्जाबकी हिन्दी साहित्यको देनका मूल्याकन इन शब्दोमें किया जा सकता है। गोरख व उनके अनुगामियोकी योग-साधना, अब्दुल रहमानके शृगार तथा चन्दके शृगाराधारित वीर काव्यने अनुवर्त्ती सम्पूर्ण हिन्दी काव्यको प्रेरणा दी और अपनी पद्धतिसे प्रभावित भी किया। राजनैतिक विक्षोभ तथा धार्मिक अव्यवस्थाके समय गुरुओकी आध्यात्मिक वाणी, तथा अन्य सन्तोके काव्यने ही समाजको नैतिक सम्बल देकर उसके धर्म और आचारकी रक्षा की। रीतिकालीन रीतिबद्धता और अश्लीलतासे पञ्जाबके साहित्यकारोका बचे रहना कम महत्व की बात नही, और गुरुमुखी लिपिमे लिखित ब्रजभाषाके उपेक्षित साहित्यका जब कभी उचित मूल्याकन होगा, तो जिस 'रीतिकाल' का नाम अभी 'शृगार काल' रखा गया है उसमे और भी परिवर्तन की बहुत कुछ सम्भावना दिखाई देगी, क्योकि यहाँका वीर और चरित-काव्य महत्ता और परिमाणकी दृष्टिसे अब और अधिक देर तक उपेक्षणीय नही रह सकता। गुलेरी, यशपाल और अश्क आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्यके उज्ज्वल नक्षत्र इस भूमिके ही रत्न है। उनपर किसे गर्व न होगा। डॉ रघुवीर और आचार्य विश्ववन्धुके प्रयत्नोकी कौन सराहना न करेगा। प्रचारकी दृष्टिसे आर्य-समाज और उसकी शिक्षा सस्थाओ द्वारा उत्पन्न वातावरणका महत्व भी अविस्मरणीय है। न केवल उदयशकर भट्ट तथा हरिकृष्ण प्रेमीका साधना-क्षेत्र पञ्जाब रहा है, बल्कि अब तो भारतके मूर्धन्य सरस सास्कृतिक साहित्यकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भी यही से सशक्त साहित्यिक अभिव्यक्तिके उपयुक्त पोषक तत्वोको सगृहीत कर रहे है। कौन जानता है कि अपने साहित्यिक व्यक्तित्वका पूर्ण विकास करने ही वे ऋषिभूमिमें चले आए है। यह गौरव भी पञ्जाबको ही प्राप्त है।

मणिपुरकी हिन्दीको देन

श्रीमती विमला रैना

और

श्री छत्रध्वज शर्मा

मणिपुरकी सृष्टि और उसका नाम

मणिपुरकी सृष्टि कैसे हुई और उसका नाम कैसे पड़ा इसके सम्बन्धमें यहाँ एक जनश्रुति है। कहा जाता है कि आजसे १ हजार वर्ष पहले मणिपुरका यह मैदान जलसे भरा हुआ था। कोई स्थल नहीं था। चारों तरफ पानी ही पानी था। उस समय उत्तरकी ओरसे हर-पार्वती (शिव दुर्गा) यहाँ आए। यहाँका प्राकृतिक दृश्य देखकर वे मुग्ध हो गए। महादेवने अपने मनमें सोचा कि यहाँका पानी निकाल दिया जाए और इसे रंग-भूमि बनाया जाए। उन्होंने अपने त्रिशूल द्वारा पानीको सुखा दिया। यह मैदान सूख गया और प्रकृतिकी क्रीड़ा-स्थली बन गया। महादेव प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी दुर्गा देवीके साथ यहाँ लाइहराओबा क्रीड़ा खेली। यह लाइहराओबा मणिपुरकी सबसे पुरानी लीला है। इससे यहाँ के विभिन्न प्रकारके लोक नृत्य लोक-गीत तथा नाना-नृत्य आदि की उत्पत्ति हुई। अत लाइहराओबा को यहाँकी क्रीड़ाओंकी जननी भी कहते हैं। इसी प्रकार महादेवने मणिपुरकी सृष्टि की। अब तक यहाँके लोगोंके मनमें यह धारणा है कि मणिपुरके सैपेम्बा (सृष्टि-कर्ता) तो महादेव हैं।

शिव-दुर्गाकी इस रमणीय क्रीड़ाको देखकर देवी-देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। इससे आनन्दित होकर उन्होंने स्वर्गसे मणि-माला गिराई। जिससे सारी जगह मणियोंकीसी रोशनी फैल गई। इससे इस प्रदेशका नाम मणिपुर पड़ा। इसके सम्बन्धमें इतिहासकारोंका विभिन्न मत है। ऐसा भी कहा जाता है कि अनन्त जिसका नाम पाखंग-बा (नागराज) भी है यह यहाँका सर्वप्रथम राजा था। वह मणियों-का मुकुट पहनता था। उसके ताजसे सदा प्रकाश चमकता था जिससे भी इस प्रदेशका नाम मणिपुर रखा गया।

आजकलके इतिहासकार ऐसा भी कहते हैं कि यह प्रदेश कमलकी भाँति पहाड़ों द्वारा घिरा हुआ है जिससे भी इस प्रदेशका नाम मणिपुर पड़ गया है। कुछ भी हो यह तो निर्भ्रान्त सत्य है कि भारतवर्षमें अपनी

विशिष्ट कलाकी वजहसे मणिपुरका अपना एक स्थान है। वास्तवमें यह प्रकृतिकी लीला-भूमि है। कलाका एक विशुद्ध केन्द्र है।

कगला और इम्फाल

बाहर लोग कगलाका नाम कम सुनते और जानते हैं। पर इम्फालका नाम तो काफी सुनते हैं। इसी इम्फालके बीच ही में कगला नाम की एक प्राचीन नगरी है। यह ऐतिहासिक स्थान है। यह मणिपुर-की पुरानी राजधानी थी। इसी स्थानपर आजकल असम राइफल पलटनका कैम्प बना हुआ है। यह स्थान समुद्रकी सतहसे २,६०० फुटकी ऊँचाईपर स्थित है। आजसे पांच हजार वर्ष पहले यह नगरी बसी हुई थी।

इम्फाल मणिपुरका शहर और राजधानी है। पर पहले इस शहरका नाम इम्फाल नहीं था। असलमें युम्फाल था। इसके सम्बन्धमें एक जनश्रुति है कि इस शहरमें लगातार घर बसे हुए थे और घनी आबादी थी जिससे इस शहरका नाम युम्फाल रखा गया। 'युम'का अर्थ घर और 'फाल'का अर्थ लकडीकी बनी हुई आसनी है। अँग्रेज लोग मणिपुरपर शासन करने लगे। वे शासनके साथ-साथ अपनी भाषा अँग्रेजीका जबरन प्रचार करने लगे, जिससे यहाँकी भाषा, संस्कृति और साहित्य आदि नष्ट-भ्रष्ट होने लगे। वे यहाँके नामोंका उच्चारण ठीक-ठीक नहीं कर पाए। इसलिए अपनी सुविधानुसार नामोंमें परिवर्तन किया। अत उन्होंने युम्फालको इम्फाल और विष्णुपुरको विशेनपुर कर दिया। उनके राज्य कालसे ही अब तक इम्फाल चलता आया है। स्वतन्त्रता प्राप्तिके इतने वर्षों बाद अब स्थानोंके नामोंमें परिवर्तन की आवश्यकता है।

मणिपुरकी भौगोलिक सीमा

मणिपुरके उत्तरमें नागा-पहाड, पूर्वमें बर्मा-देश, दक्षिणमें लुशाई-पहाड, चीन-पहाड और पश्चिममें कछार जिला है। यह मणिपुरकी आधुनिक सीमा है। मणिपुरकी सीमा किसी जमानेमें नागा-पहाडसे आगे ब्रह्मपुत्र तक फैली थी, जिसका प्रमाण यह है कि महाराज गौरीश्यामने ता ११ सितम्बर, १७६३ में युनाइटेड ईस्ट इंडिया कम्पनीको जो एक पत्र लिखा था, जिससे हम जान सकते हैं—"The River Brahmaputra in the Dominions of Meckley" इस पत्रमें सारा विवरण है। पुराने जमानेमें बाहरके लोग मणिपुरको मेखलीके नामसे समझते थे। असम और कछारमें वहाँके लोग मणिपुरको मगलू कहते थे। बर्मा-देशके निवासी मणिपुरको कासे और काते कहकर पुकारते थे। किसी जमानेमें मणिपुरने बर्मा-देशके कुछ अंश व हिस्से पर अधिकार कर लिया था। सन् १७२५ से १७४५ के बीच महाराज गरीबनिवाजने बर्मा-देशके कुछ प्रमुख नगर अपने हाथमें ले लिये थे। सन् १८२६ के फरवरी महीनेमें महाराज गम्भीर सिंहने कबो-वेली (बर्मा-देश) पर आक्रमण किया और विजय पाई। इन महाराजके समयमें यह कबो-वेली मणिपुरके अधीन रही।

किसी जमानेमें कछारका यह प्रदेश मणिपुरके अधीन रहा। सन् १८१९ में मणिपुरके तीन राजा-ओंने कछारके राजा गोविन्दचन्द्रको राज-सिंहासनसे निकाल दिया और वे वहाँके प्रशासक और राजा बने। मणिपुरके राजा-महाराजाओंके साहस, बुद्धिमत्ता और प्रयाससे मणिपुरकी सीमा काफी दूरतक फैली हुई थी।

मणिपुरकी वर्तमान परिवर्तित सीमा

सन् १८३३ में महाराज गम्भीरसिंहने अपनी सेना लेकर नागा-पहाड़पर आक्रमण किया और नागाओंपर कब्जा कर लिया। मणिपुरकी उत्तरी सीमा नागा-पहाड़ तक फैली जिसका प्रमाण कोहिमा (नागा-लैण्डकी राजधानी) पर स्थापित पत्थर परसे मिल सकता है जिसपर पद-चिह्न भी अंकित हैं।

सन् १८३५ से सन् १८७७–७८ तक पुनः मणिपुरकी सीमा निश्चित नहीं की जा सकी। इसका कारण यह था कि नागा-निवासियोंको अधिक समय तक वशमें रखना सम्भव नहीं था। फिर सन् १८७७–७८ में मणिपुर पहाड़ी-स्थानोंको चाहता था। पर ब्रिटिश-सरकारने मणिपुरको पहाड़ी स्थान देनेमें असमर्थता प्रकट की और स्वीकार भी नहीं किया। किसी-न-किसी तरह सीमा तो निश्चित करनी ही थी। अतः ब्रिटिश-सरकार और मणिपुरके अधिकारियोंने एक सन्धि-पत्रपर हस्ताक्षर कर मणिपुरकी सीमा नागा-पहाड़ तक निश्चित की।

पूर्वमें बर्मा देश

कई ऐसी भी ऐतिहासिक घटनाएँ हैं, जिनका उल्लेख यहाँ करनेकी आवश्यकता महसूस नहीं होती। फिर भी महाराज गम्भीरसिंहके जमानेमें ता ९ जनवरी १८३४ में मणिपुरके अधीन यह कबो-वेली बर्मा-देशको लौटा दी गई। इसके लिए भारतके वाइसराय लॉर्ड विलियम बेंटिकने क्षति-पूर्तिके रूपमें ५ — ५ रु मासिक सरकारकी तरफसे दिए जानेकी घोषणा की।

सन् १८९४ में कौमुरी कमीशनकी बैठक हुई, जिसमें तत्कालीन मणिपुरके पोलिटिकल एजेन्ट और चीन-पहाड़के पोलिटिकल आफिसरमें एक शर्त निश्चित हुई जिसके अनुसार ५ —५ रु मासिक बन्द कर देने और कबो-वेली भी लौटानेकी बात सामने आई। इस निश्चयके अनुसार रुपया भी नहीं दिया गया और कबो-वेली भी बर्मा देशको लौटा दी गई।

लुशाई पहाड़

सन् १८७२ में मणिपुरके महाराज चन्द्रकीर्तिसिंहने लुशाई-पहाड़पर चढ़ाई की। बादमें उन्होंने मन्त्रार्गको मणिपुरके अधीन कर लिया। मणिपुरकी दक्षिण-सीमाकी जानकारीके लिए दो पत्थर गाड़े गए थे। इनसे मणिपुर और मन्त्रार्गकी सीमा निश्चित की जाती थी।

कछार जिला

ता १८ अप्रैल १८३३ में महाराज गम्भीरसिंह और ब्रिटिश-सरकारमें एक सन्धि हुई जिसमें मणिपुर और कछारकी सीमा निश्चित की गई। जिस समय भारतवर्षके गवर्नर जनरल और सुप्रीम कौंसिलने पोल गार्डन की ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी ओरसे इसमें बराक नदीके पश्चिमका पहाड़ जैसे कालानागा और कुनजाई पहाड़ोंको महाराज गम्भीरसिंहको दे दिया था। इस पोलमार्क अनुसार जिरी-नदी और बराक नदी पश्चिम मणिपुर और कछारकी सीमा हो गई। इसी समयमें जिरी नदीके पूर्व तटपर मणिपुरका पुलिस स्टेशन बनाया गया।

मणिपुरकी ऐतिहासिक और सास्कृतिक पृष्ठभूमि

मणिपुर एक छोटा-सा प्रदेश है, फिर भी उसका अपना एक इतिहास और अपनी एक सस्कृति है। आज भारतवर्षमें कला व सस्कृतिकी वजहसे मणिपुरका अपना एक स्थान है। सब लोग जानते ही है कि मणिपुर एक ऐतिहासिक स्थान व केन्द्र है। इसमें अनेक राजा-महाराजा हुए। कई ऋषि-मुनियो, महात्माओ तथा कई वीर महापुरुषोने इस प्रदेशमे जन्म लिया। गोविन्द-भक्त राजर्षि महाराज भाग्यचन्द्रजीका नाम किसने नही सुना ? देश-भक्त वीर पाओना व्रजवासी और शहीद वीर टेकेन्द्रजीतका नाम कौन नही जानता ? महाभारतके सुप्रसिद्ध नायक वीर अर्जुन अपने पुत्र वीर बभ्रुवाहनके हाथो इसी प्रदेशमे हार गए थे।

महाभारतके जमानेसे ही मणिपुरका भारतवर्षसे ही सम्बन्ध रहा। वास्तवमे यह प्रदेश भारत-वर्षका सिंहद्वार है। अत आज किसी भी हालतमें यह प्रदेश भारतवर्षसे पृथक नही हो सकता। भारतके सुप्रसिद्ध नेता तथा राष्ट्रनायक प जवाहरलालजी नेहरूने एक जगह कहा 'मणिपुर भारतवर्षका हीरा (मणि) है।' पण्डितजीकी इस उक्तिसे आधुनिक जगतमे मणिपुरकी ख्याति और भी बढ गई।

कहते हैं कि सृष्टिके समय लाइहराओबा—क्रीडा खेली गई। यह मणिपुरकी सबसे पुरानी लीला है। इससे यहाँके विभिन्न प्रकारके लोक-नृत्य, लोक-गीत आदिकी उत्पत्ति हुई। असलमे 'लाइहराओबा' मणिपुरकी सस्कृति है।

आज मणिपुरी नृत्यके नामसे 'रास-लीला' जगत प्रसिद्ध है। यह अत्युक्ति न होगी कि रासकी उत्पत्ति भी लाइहराओबा से ही हुई। पर लाइहराओबा और 'रास' दोनोका स्थान-अलग-अलग है। ग्रामोमे ग्रामीण लोग देवी-देवताओको खुश करनेके लिए प्रति वर्ष उत्सवका आयोजन किया करते है। उसको लाइहराओबाकी सज्ञा दी जाती है। इस अवसरपर ग्रामीण लोग नाचते और गाते है। इसका मुख्य उद्देश्य ग्राममें श्रीवृद्धि होनेसे या कुलमे श्रीवृद्धि होने से है।

मुख्यत रास-लीला ऐसे स्थानोपर खेली जाती है, जहाँ पवित्र स्थान तथा मन्दिर हो, जैसे श्रीगोविन्दजी तथा श्रीविजयगोविन्दजी के मन्दिर (मण्डप)। बडी श्रद्धा तथा भक्ति-भावनाके साथ रास-लीला खेली जाती है और लोग इसे देखते है। लोग इसे गोपनीय समझते है। यहांके लोगोकी धारणा है कि श्रीकृष्णके प्रति रास-लीला समर्पित की जानेसे पूर्वजोको स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

जमानेके अनुसार और समयका रूप बदलनेके साथ-साथ रास-लीलाका कुछ रूप भी बदल गया, जैसे, पहले रास-लीला रगमञ्चपर, रगभूमि व स्टेजपर नही खेली जाती थी। आज जहाँ पैसा है, वहाँ रास-लीला खेली जाती है। रास बाजारू चीज हो गई है। आज मणिपुरी कला देशमें ही नही, विदेश तक पहुँच गई है। पर खेद इस बातका है कि आज कला-कलाके लिए नही है, कला पैसेके लिए हो गई है।

मणिपुरी तथा उसकी लिपिकी उत्पत्ति

मणिपुरी भाषाकी उत्पत्ति कब हुई और यह कितनी पुरानी भाषा है, इसके सम्बन्धमें कोई ठीक-ठीक नही कह सकता, फिर भी यहाँ एक जनश्रुति प्रचलित है कि हरिचक (सत्ययुग) में अतिया गुरु-शिदबा (शिव) ने इस जल-प्लावित भूमि की सृष्टि की। इस भूमिको लीला-स्थल बनाया और एक नया

संसार बसाया। तब उन्होंने अपने पुत्रों—सनामही और पाखंगबा को शिक्षा-दीक्षा दी। मैतैरोल (मणिपुर) में ही शिक्षा दी जाती थी।

गुरु (शिव) ने अपने शिष्योंको जो धर्म-ग्रन्थ पढ़ाया था। उसीका नाम 'शिशिमा' (शिवकी भाषा) था। सर्व प्रथम जो अक्षर पढ़ाया जाता था उसीका नाम शिवाक्षर (शिवका अक्षर) था। गुरुने अपने शिष्योंको वरदान दिया था कि जिस अक्षरको जानते ही तुम्हें साहित्यका पूरा ज्ञान हो। इसी प्रकार मणिपुरी भाषा और लिपिकी उत्पत्ति हुई।

मणिपुरी भाषा

मणिपुरकी मुख्य भाषा मणिपुरी है। इसको मैतैरोल भी कहते हैं। मणिपुरी पुराने जमानेसे यहाँकी राष्ट्रभाषा रही और आज भी है। इस भाषाको बोलनेवाले लोग भारतके विभिन्न स्थानों तथा पड़ोसी देशों पाकिस्तान और बर्मामें रहते हैं। इस भाषाके अलावा मणिपुरके आस-पास पहाड़ी इलाकोंमें बोली जानेवाली लगभग २ बोलियाँ भी हैं। मणिपुरमें ऐसी परिस्थिति है कि पहाड़में एक गाँवकी बोली दूसरे गाँवके लोग बोल और समझ नहीं पाते। पहाड़में प्रत्येक गाँवमें अपनी-अपनी बोली है। अत आदिम जातिके लोग तथा नागा भाई-बहन मणिपुरी माध्यम द्वारा दूसरे गाँवके लोगोंके साथ अपने भाव प्रकट कर बातचीत करते हैं।

लोग जानते ही हैं कि यह भाषा बहुत पुरानी है। इस भाषामें बहुत प्राचीन साहित्य है। शिला-लेख भी बहुत मिलते हैं। इस भाषाके सम्बन्धमें मणिपुरके सुप्रसिद्ध साहित्यकार तथा इतिहासकार पण्डितराज यीमजोम्बापू शर्माजी विद्यारत्न गवेषणा शिरोमणिने एक जगह कहा भारतके प्राचीन साहित्य-जगतमें मणिपुरी साहित्यका भी अपना एक स्थान है। भारतके प्राचीन साहित्यमें कृष्ण-यजुर्वेद साहित्य भी एक है। जिस साहित्यके पश्चात् मणिपुरी साहित्य भी एक है। इस भाषाको कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा गौहाटी विश्वविद्यालयने स्वीकार किया। बी ए तक मणिपुरी भाषाकी पढ़ाई होती है।

मणिपुरी साहित्यके ह्रासका कारण

मणिपुरी भाषाके सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री एल इबुङोहल सिंहजी बी ए बी एल. ने एक जगह कहा है कि सन् १७१२ में मणिपुरमें एक धर्म-युद्ध हुआ था। सिलहटसे शान्तिदास शर्मा नामक एक पण्डित मणिपुरमें आया। वह रामानन्दी धर्मका प्रचारक था। वह राजाकी शरणमें आया। राजाने बड़े प्रेमसे पण्डितका स्वागत किया। शान्तिदास शर्मा मणिपुरमें रामानन्दी धर्मका प्रचार करना चाहता था। अत उसने इस धर्म पर जोर दिया। उस समयके राजा गरीबनिवाजने भी इस धर्मको चाहा और स्वीकार किया परन्तु उस समयके गुरु लौरेम्बायोगनागबाबा ने इस धर्मका घोर विरोध किया और कहा कि यह धर्म हमारे धर्मसे कोई दूसरा नया धर्म नहीं है। अत फिर मणिपुरी समाज तथा जनतामें इस धर्मका प्रचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। मणिपुरके अधिकांश लोग गुरु लौरेम्बायोगनागबाबाकी बात का समर्थन करने लगे। एक दो आदमियोंके अलावा राजाकी आज्ञा माननेको सारी जनता तैयार न थी। जिससे नाराज होकर राजाने अपने समयके सब मणिपुरी साहित्य तथा प्राचीन साहित्यके ग्रन्थ जला दिए। इतना ही नहीं

उन्होने अभिशाप भी दिया था कि 'मणिपुरी–भाषामे गाना नही गा सकते। भजन-कीर्तन आदि नही कर सकते। पाप होगा। यदि मणिपुरी भाषामे गाना गाए और दिनमे तुम्हारी मृत्यु हुई तो कौएका रूप तथा रातमे तुम मर गए तो उल्लूके रूपमे तुम अपना जन्म ग्रहण करो अर्थात् तुम कौए तथा उल्लूका शरीर धारण करो। पेना (प्राचीन काल का एक बाजा) पर रोए तो नरकमे पड जाओ।' पुराने जमानेमे प्रजा राजाको विष्णु समझती थी। राजाकी आज्ञाको ईश्वरका आदेश मानती थी। प्रजा राजासे बहुत डरती थी। वह राजाके समक्ष कुछ नही कर सकती थी। अत राजाके इस शापसे डरते हुए आज तक मणिपुरी गायक अपनी मातृभाषा मणिपुरीमे गाना गानेको तैयार नही होते। वे इस भाषामें गाना नही गाना चाहते है। इन कारणोसे मणिपुरी और उसका साहित्य नष्ट-भ्रष्ट हो गया है। राजाको भी पदच्युत किया गया और शान्तिदास शर्माको भी मार डाला गया।

मणिपुरी लिपि

मणिपुरी भाषाकी अपनी लिपि है। उसको मैतैमयेक कहते है। पर अब यह लिपि प्रचलित नही है। यह कितनी पुरानी लिपि है और इसका ब्राम्ही लिपिसे सम्बन्ध है या नही, इसके सम्बन्धमे कोई भी नही बता सकता। साधारणत देखनेमे तो ऐसा लगता है कि मणिपुरी अक्षर देवनागरी अक्षरके समान हैं। मणिपुरी अक्षरकी अपनी एक विशेषता है कि स्वर-वर्ण एक ही 'अ' (अजी) है। 'अजी माने 'अ' जिसमे मात्राएँ लगानेसे बाकी के अन्य स्वर-वर्ण बन जाते हैं। इसी लिपिमे मणिपुरी भाषाका बहुत प्राचीन साहित्य है। अत अब इस लिपिकी गवेषणा करने तथा सस्कार करनेकी सख्त जरूरत है।

मणिपुर प्रदेश और हिन्दी

यद्यपि हिन्दी भाषा कभी किसी धर्म विशेषके अनुयायीके साथ नही बँधी रही है। फिर भी मन्दिरो मठो और तीर्थ-स्थानोमे रहनेवाले साधु-सन्तो और पुजारियोके विचारोकी अभिव्यक्तिका वह माध्यम रही। ये सभी लोग चूंकि जनसाधारणके कल्याणका चिन्तन करते थे,अत इनकी भाषा भी जनताकी ही भाषा थी। इसका एक सबसे बडा कारण यह भी रहा कि जनताका बहुत बडा अश इस प्रकारकी भाषामे अभिव्यक्त विचारो को सरलतापूर्वक समझ सकती थी एव उन्हे हृदयगम कर सकती थी।

मणिपुरका सम्बन्ध आर्य-सस्कृतिसे अत्यन्त प्राचीन कालसे चला आ रहा है। राजकुमारी चित्रागदा, मणिपुरके राजा चित्र वाहनकी पुत्री थी। राजकुमारी चित्रागदाके यौवन जन्य अनुपम लावण्य एव सौन्दर्यसे मोहित होकर अर्जुनने उससे विवाह किया था। चित्रागदा नाम ही आर्य सस्कृति और सस्कृत भाषाके प्रचलित होनेका सकेत है।

यह सर्व विदित है कि मणिपुरके अधिकाश लोग वैष्णव-सम्प्रदायके है। वे धर्म-परायण, धर्म-निष्ठ तथा धर्म-भीरु हैं। उन्हे हिन्दू-धर्मके प्रति बडी श्रद्धा है। तीर्थ-यात्राकी परम्परा व प्रथा वर्षोसे चली आई है। अत यहाँके लोग प्रतिवर्ष नवद्वीप, जगन्नाथपुरी, गया, काशी, प्रयाग, वृन्दावन, हरिद्वार आदिके मन्दिरो तथा तीर्थस्थानोकी यात्रा करते ही रहते है। इसका परिणाम यह हुआ कि मणिपुरके जन-जीवन पर हिन्दीके सस्कारो का काफी प्रभाव पडा।

मणिपुरका सांस्कृतिक सम्बन्ध विशेष रूपसे वृन्दावनसे रहा। फलत: वहाँके मन्दिरों का प्रभाव मणिपुरकी संस्कृति पर बहुत अधिक अंशोंमें पड़ा। मणिपुरके मन्दिरों और वहाँके जन-जीवनमें वृन्दावन की झांकी सरलतासे मिल सकती है। वृन्दावन की गली-गलीकी ही भाँति मणिपुरके गाँव-गाँवमें और गली गलीमें राधाकृष्णके मन्दिर मिलते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्रजभाषा एवं ब्रजकी संस्कृति का काफी प्रभाव वहाँके जन-जीवनपर पड़ा। वृन्दावन और राधाकुण्डमें मणिपुरके राजा महाराजाओं द्वारा निर्मित कराये हुए मन्दिर अब तक विद्यमान हैं। इन मन्दिरोंमें कई मणिपुरी रहते हैं। और ब्रजवासी लोग भी प्रतिवर्ष मणिपुर आते-जाते रहते हैं। परिणाम यह होता है कि मणिपुरियोंपर ब्रजभाषाका प्रभाव है और यहाँ आनेवाले ब्रजवासियोंपर मणिपुरीका। ये ब्रजवासी मणिपुरी भाषा समझ और बोल लेते हैं।

इस तरह यह माननेमें कोई आपत्ति नहीं है कि मणिपुरका हिन्दीसे निकट सम्बन्ध रहा है। यहाँके राजा-महाराजाओं सन्तों महापुरुषों कवियों साहित्यकारों तथा नेताओंने हिन्दीका कभी विरोध नहीं किया। उन्होंने हिन्दीका समर्थन ही किया है। पुराने जमानेमें यहाँके राजाओं और प्रशासकों ने अपने प्रशासनिक कार्योंमें हिन्दीको भी स्थान दिया। इसके कई प्रमाण उपलब्ध हैं।

सिक्का और देवनागरी

पुराने जमानेमें मणिपुरमें जातीय सिक्का चलता था इसको मणिपुरी भाषामें सेल कहते हैं। सेल में देवनागरी तथा हिन्दीका उल्लेख किया गया था। इससे ज्ञात होता है कि पुराने जमानेमें मणिपुरमें राजा-महाराजाओं और प्रशासकोंने अपने दरबारमें और प्रशासनके कार्यमें देवनागरी तथा हिन्दीका प्रयोग किया था।

सनामही में 'श्री' का उल्लेख

मणिपुरके प्रत्येक घरमें एक-एक गृह-देवता रहता है। उसीका नाम है सनामही। मणिपुरी लोग सनामहीको सूर्य प्रतीक (शिवम) मानते हैं। उसीमें श्री का उल्लेख किया गया था। आश्चर्यकी बात तो यह है कि मणिपुरके अमुर्त लोगोंने अपनी भाषा तथा लिपिके रहते हुए भी धार्मिक क्षेत्रमें सांस्कृतिक तथा राजनैतिक क्षेत्रमें देवनागरी और हिन्दी को अपनाया था।

अस्त्र-शस्त्र और हिन्दी

पुराने राजा-महाराजाओंके अस्त्र-शस्त्र और कृपाण (तलवार) आदि आज राजमहलमें सुरक्षित रखे हुए हैं। इससे प्रतीत होता है कि पुराने जमानेमें राजाओंने अपने अस्त्र-शस्त्र और कृपाण (मणिपुरीमें थागघाग कहते हैं) पर देवनागरी और हिन्दीका प्रयोग करवाया। कृपाण चलानेमें जो बोली बोली जाती थी वह हिन्दी थी।

पद और हिन्दी

मणिपुरमें पुराने जमानेमें लोइपाग (कोर्ट पञ्चायत दरबार) की प्रथा प्रचलित थी। लोइपाग

(कार्यालय) कार्यकर्ताओ, कर्मियो और पदाधिकारियोको राजा व प्रशासक की तरफसे पद व उपाधि दी जाती थी। यह उपाधि और पद हिन्दीमे ही दिया जाता था।

सेनापति टेकेन्द्रजीत के युगमें हिन्दी

सन् १८९० का समय मणिपुरके भाग्याकाशमे दुर्भाग्यपूर्ण था। जिस समय ब्रिटिश सरकारने मणिपुरपर आक्रमण किया और अधिकार कर लिया। मणिपुरके सिह वीर सेनापति व जनरल टेकेन्द्रजीत ब्रिटिशके जालमे फँस गए। उनपर मुकदमा चलाया गया और दोप लगाया गया। मुकदमेके वक्त उन्होने अपना बयान (स्टेटमेन्ट) हिन्दीमे ही दिया था और उन्होने अपने हस्ताक्षर हिन्दीमे किए थे। उस समय उन्होने अपना सारा काम हिन्दीमे किया था। अत इन कारणोसे हम जान सकते है कि मणिपुरमे हिन्दीका काम नया नही है। विगत कई वर्षोसे मणिपुर हिन्दीका एक क्षेत्र रहा, इसमे कोई शक नही है।

महोत्सव और हिन्दी

मन्दिरमें सब लोग मिल कर भोग चढाये जानेके बाद भोजन करते है, या किसीके निमन्त्रण पर लोग भोजन करते है, उसको 'उत्सव' या 'महोत्सव' की सज्ञा दी जाती है। भोजनके वक्त सबसे प्रथम पक्तिमें गुणवान पण्डित ब्राह्मण बैठते है। इसके बाद उम्र, अवस्थाके अनुसार साधु-वैष्णव लोग बैठते है और भोजन करते है। श्रीगणेश व शुरूसे पहले सर्व प्रथम पण्डित-पक्तिमे बैठनेवाले ब्राह्मण बोलते है, वे हिन्दी ही बोलते हैं। जब तक ब्राह्मण नही बोलेगे, तब तक कोई भी भोजन नही कर सकता, चाहे बच्चा ही क्यो न हो, ब्राह्मणकी बोली इस प्रकारसे है —

महाप्रसाद लेवानन्द हरि बोल।

[महाप्रसाद आनन्दके साथ ले लो, भोजन पाओ और हरि (श्रीकृष्ण) बोलो।]

सकीर्तन और हिन्दी

मणिपुरी समाजमे सकीर्तन का अपना एक महत्त्व है। यहांके लोग सकीर्तनका बहुत आदर और सम्मान करते है। लोगोका विश्वास है कि सकीर्तनमे ही भगवान है। इसी सम्बन्धमे भगवानकी एक उक्ति है —

नाह वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद् भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद !

लोग बगला व ब्रजबुलीमें ही सकीर्तन करते है। आजकल लोग मणिपुरी भाषामें गाने लगे है। सगीत तथा सकीर्तन प्रारम्भ होनेसे पहले एक ब्राह्मण बोलता है, उसको मणिपुरी भाषामें 'माण्डप मपू' (मण्डपका (स्वामी व प्रधान पुरुष) की सज्ञा दी जाती है। उसका बहुत मान है। ऐसे ब्राह्मण हिन्दीमें ही जय-ध्वनि करते है —

श्रीमद्राधा-गोविन्द, वल्लभ प्रेमसे कह।

[श्रीमद् राधा-गोविन्द तथा वल्लभ (वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्तक आचार्य)] उनका नाम प्रेमसे कहो और स्मरण करो।

गोपाष्टमी और ब्रजबोली

मणिपुरमें कार्तिक शुक्ला अष्टमीको राष्ट्रीय उत्सवके रूपमें दो मन्दिरों—श्रीगोविन्दजीके मण्डप (राजमहल) तथा श्रीविजयगोविन्दके मण्डप पर प्रतिवर्ष गोपाष्टमीका आयोजन किया जाता है। इस अवसरपर नृत्य होता है। प्रारम्भसे अन्त तक राम-कृष्ण तथा गोप ब्रजबोलीमें ही गाते हैं। इस नृत्य पर ब्रजबोलीका पूरा प्रभाव पड़ता है।

इसी प्रकार मणिपुरके जन-जीवनोंपर हिन्दीका प्रभाव पड़ा है। मणिपुरका हिन्दीसे सम्बन्ध आजका नहीं सैकड़ों वर्षोंसे है। अतः यह सम्बन्ध अविच्छिन्न है। क्योंकि मणिपुरियोंके नैतिक जीवन पर काफी हद तक हिन्दीका असर हुआ।

मणिपुरमें हिन्दी-प्रचारका श्रीगणेश

मणिपुर राज्यके ग्रामोंके नाम कुछ खण्डहरोंकी खोज मन्दिरोंके निर्माण तथा उनकी व्यवस्था और मूर्तियाँ इस बातका प्रमाण है कि संस्कृत और हिन्दी-भाषी राजाओंका इन प्रान्तोंमें राज्य था। विशमाक नगर और तामेश्वरी कुण्ड ब्रह्म कुण्ड लोहितमें मायापुर, सुवन श्रीमें दुर्गमुख तेजपुर और नगामसे यह घोषित करते हैं कि यहाँ संस्कृत और हिन्दी किसी मात्रामें प्रचलित थी और किसी अज्ञात कारणसे बिलकुल लुप्त हो गई। भाषाएँ कैसी बनती बिगड़ती हैं, इसका उदाहरण मणिपुर भाषाकी अद्भुत कहानी है। बहुत समयसे न जाने कब और कैसे इनकी अपनी भाषाकी लिपि खो गई। अब इनकी भाषा अपनी है, पर उसकी लिपि बंगला है। संस्कृत जाननेवालोंने हिन्दीकी लिपि क्यों न अपनाई? मणिपुर भाषाकी लिपि कैसे मिट गई? और बंगला लिपि कैसे प्रचलित हो गई इसका प्रमाण कुछ ताम्र-पत्रों तथा कुछ पुराने बचे-खुचे ग्रन्थोंसे मिलता है पर दुख इस बातका है कि यहाँके लोग अब पुरानी लिपि पढ़ नहीं पाते। कुछ ऐसे पण्डित अवश्य हैं जो खोज करनेपर उस लिपिके अक्षर और शब्दोंका अर्थ लगाते अवश्य हैं उन अर्थोंपर भी पण्डितोंमें आपसमें मतभेद हो जाता है। पण्डित लोग अभी तक पूरी तरह पुरानी लिपिके अन्तरोंमें बने हुए शब्दोंके उच्चारण और अर्थको सिद्ध नहीं कर पाए हैं। मणिपुरी लिपिमें कुछ अक्षर देवनागरी लिपिसे मिलते हैं कुछ चीनकी लिपि जैसे हैं कुछ पालिके अक्षरों जैसे और कुछ शायद किसी अन्य लिपिसे नहीं मिलते। मणिपुरी बोलीमें कुछ शब्द हिन्दीके हैं। इन शब्दोंके सम्बन्धमें यह नहीं कहा जा सकता कि वे शब्द मणिपुरीमें कब और कैसे सम्मिलित हो गए। पृथ्वी राजा प्रजा शान्ति इत्यादि शब्द अब भी मणिपुरीमें बोले जाते हैं, पर इससे अधिक कोई विशेष सम्बन्ध नहीं।

कहा जाता है कि मणिपुरी भाषाकी अपनी लिपि नष्ट हो जानेका उत्तरदायित्व मणिपुरके एक राजापर है। अठारहवीं शताब्दीमें पामहेबा नामक एक मणिपुरके राजा थे। वे इतने लोकप्रिय हुए कि गरीब नवाज की उपाधि मिली थी। ये अपनी उपाधिसे इतने प्रसिद्ध हुए कि उनका नाम ही गरीब नवाज पड़ गया। अधिकतर मणिपुरी अब भी इन्हें इनके नाम से नहीं वरन् इनकी उपाधिसे ही इन्हें सम्बोधित करते हैं। गरीब नवाज कुछ काल राज्य करनेके बाद वैष्णव धर्मके प्रचारक गोस्वामी शान्तिदाससे बड़े प्रभावित हुए। राजा पामहेबाने पहले स्वयं मैतेई धर्म (जो तिब्बती उपासनामें शैव्य

धर्म ही मानते थे।) छोडकर वैष्णव-धर्म ग्रहण किया, फिर राज्यके कर्मचारियो तथा राजमहलके सभी लोगोको वैष्वण धर्म अपनाने के लिए प्रेरित किया। देखते-देखते बहुतसे मैतैई राजाको प्रसन्न करनेकी दृष्टिसे वैष्णव हो गए, पर ग्रामोमे, राज नगर और राजमहलसे दूर रहनेवाले लोग अब भी अपना पुराना धर्म ही मानते थे। कुछ ही कालमे गोस्वामी शान्तिदासके आदेशसे अथवा अपने राज्य के सम्पूर्ण रूपसे वैष्णव हो जानेकी चाहसे उन्होने मैतैई धर्मकी मनाही कर दी और सारे मैतैई धर्म-ग्रन्थोको जलवा डाला। उस समय मणिपुरमें शिक्षा कुछ पण्डितो तक ही सीमित थी। और अधिकाश धर्म-ग्रन्थो की पुस्तके मणिपुरी लिपिमें ही थी। चूंकि जनतामें विद्याका प्रचार एव प्रसार अधिक नही था, अत इन पुस्तकोके जल जानेपर मणिपुरी लिपि ही जल गई और पामहैबा गरीब-निवाज, आदेशका काम तथा धर्मका प्रचार बगला लिपिमे होने लगा। पाठशालाओमें केवल बगला लिपि सिखाई जाती थी और मैतैई धर्म पालन करनेवालोको दण्ड दिया जाता था। कहा जाता है कि कुछ पण्डित इस अन्यायके विरोधमे कुछ ग्रन्थ बचाकर अपने साथ जगलोमे ले गए और वहाँ जा बसे। इन्ही पण्डितोंके वशजोंके पास वे मैतई लिपि के ग्रन्थ है। इस युगके लोग तो उन्हे पढ भी नही सकते। और यह सब ग्रन्थ और कुछ बचे हुए ताम्र-पत्र ही इस सत्यका प्रमाण है कि मणिपुरी लिपि कभी रही अवश्य थी। सबसे आश्चर्यजनक तो यह बात है कि राजा पामहैबाकी उपाधि 'गरीब-निवाज' न तो सस्कृत है, न हिन्दी और न मणिपुरी। गरीब नवाज उर्दू है। ऐसी स्थितिमे यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि मणिपुरकी प्रजाने यह उपाधि इन्हे कैसे दी? वास्तवमे बात यह है कि मणिपुरमे सस्कृतका ही नही, अपितु उर्दूका भी कभी प्रचार था। इतिहासमे लिखा है कि १६६२ में मीर जुमलाने आसामपर आक्रमण किया था और बहुतसे राज्योंपर विजय पाई थी। हो सकता है उसी सम्पर्कके परिणाम स्वरूप मणिपुरीमे उर्दू भाषाके कुछ शब्द प्रचलित हो गए हो। मणिपुरमें अब भी मुसलमान बसते है, पर वे अब उर्दू नही जानते।

सुनते है कि गरीब-नवाजने मैतई धर्मके मन्दिरोमेकी मूर्तियाँ नष्ट करवा दी, उनके भजनो और पूजन करनेवालो पर मृत्यु-दण्ड लगा दिया और अपने राज्यमें केवल वैष्णव धर्मका प्रचार किया। हो सकता है कि ऐसी व्यवस्थाके पीछे गोस्वामी शान्तिदासका अनुरोध अथवा ऐसा आदेश हो कि नए धर्मके साथ नई लिपि हो, ताकि यदि कुछ ग्रन्थ बचे भी हो तो आनेवाले नए युगमे उन्हें कोई पढ न सके और फिर पुराना धर्म कभी वैष्णव धर्मको पुन मिटा न सके।

समयकी पुकार व माँगके अनुसार देशमे हिन्दीका प्रचार व प्रसार होने लगा। भारतके अन्य प्रान्तोमे हिन्दीके प्रचार एव प्रसारके कार्यका मणिपुरपर असर होना स्वाभाविक ही था। यहाँके लोगोमें भी हिन्दी-प्रचारके कायके प्रति प्रेम जागा। परिणामत सन् १९२७-२८ में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागकी तरफसे यहाँ हिन्दीके प्रचार-कार्यका श्रीगणेश हुआ। हिन्दीके प्रचार-कार्यका श्रीगणेश तो हो गया, परन्तु उस समय हिन्दीके इस कार्यमे काफी रुकावटे हुई। खद्दर-पोश व्यक्ति और हिन्दी-प्रचारकको देश-विद्रोही माना जाता था। तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्टका यह आदेश था कि मणिपुर स्टेटमे बाहरके आदमी तथा नेता आकर हिन्दीका प्रचार-कार्य नही कर सकते और इस सम्बन्धमें भाषण

वगैरह नहीं कर सकते। ऐसा मालूम होता है कि उस समय उन्हें हिन्दीके प्रचार-कार्यसे काफी डर लगता था।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी तरफसे परीक्षा-केन्द्र खोल दिया गया। राष्ट्रभाषा नामक परीक्षा ली गई। इसी प्रकार बड़ी कठिनाइयोंका सामना करते हुए सम्मेलनने हिन्दी-प्रेमियोंके सहयोगसे यहाँ हिन्दीका प्रचार-कार्य शुरू किया। इस समय हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थियोंकी संख्या नगण्य थी।

महात्मा गाँधीजीकी प्रेरणा से सन् १९३६ में राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी स्थापना हुई। इस संस्था का केन्द्रीय कार्यालय भारत के राष्ट्र-तीर्थ वर्धामें रखा गया। इस केन्द्रीय कार्यालयके द्वारा देशके विभिन्न कोनों और हिन्दीतर प्रान्तों में राष्ट्रभाषाका प्रचार-कार्य करनेके लिए राष्ट्रभाषा हिन्दीके योग्य प्रचारक तथा सञ्चालक भेज दिए गए। देशमें राष्ट्रभाषाका आन्दोलन जोरोंसे सक्रिय रूपमें होने लगा। मणिपुरमें भी राष्ट्रभाषा प्रचारका सुसन्देश आ पहुँचा।

मणिपुरमें सम्मेलन तथा समितिसे पहले हिन्दीका कार्य करनेवाली कोई संस्था नहीं थी। असलमें सोचा जाए और विचार किया जाय तो राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाकी प्रान्तीय समितिने ही मणिपुरमें हिन्दीका काफी काम किया है। अत आज इस संस्थाकी जनतामें बड़ी लोकप्रियता प्राप्त हुई है। आशा है कि भविष्यमें भी इस संस्थाके द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी-सीखनेमें मणिपुरी जनताको बड़ी सुविधा होगी।

मणिपुरकी घाटी और पहाड़ोंमें हिन्दी भाषाका प्रचार हो रहा है। यहाँके लोगोंमें विशेष कर भाषाओंके उन्नतिशील ग्रामोंमे हिन्दीको ओर रुचि है। यहाँके विद्यालयोंमें कुछ कक्षाओं तक हिन्दी भाषा का अध्ययन अनिवार्य है। पर खेद है कि दसवीं कक्षा तक हिन्दी पढ़े-लिखे विद्यार्थी हिन्दी पढ़ सकते हैं पर ठीक से बोल नहीं पाते और कभी-कभी तो जो वे पढ़ते लिखते हैं वह पूर्णत समझ भी नहीं पाते। इसका मुख्य कारण शायद यह है कि स्कूलोंमें हिन्दी पढ़ानेवाले अध्यापक अधिकतर मणिपुरी हैं जिन्होंने स्वयं इसी प्रकार हिन्दी पढ़-लिखकर हिन्दीकी योग्यता प्राप्त की है। वे स्वयं पढ़ सकते हैं लिख सकते हैं पर हिन्दी बोल नहीं सकते। और वार्तालापकी हिन्दी ठीकसे समझ भी नहीं पाते। यह समस्या भी वैसी ही है जैसी हिन्दी बोलने वालोंके लिए प्राय उन गावोंकी स्कूलोंमें होती है जहाँ हिन्दी बोलने वाले अध्यापक बोली ही विद्यार्थी इसलिए पढ़कर इसलिए पढ़ाते हैं अथवा हिन्दी भाषा भाषेकी अपने ही भाषाके पण्डितसे मणिपुरी पढ़ने पर होती है। ऐसे विद्यार्थी किसी तरह किताब रटा रटा कर पास हो जाएँगे। किताबी मणिपुरी पढ़कर कुछ समझ भी लेंगे। कुछ लिख लेंगे। पर वार्तालापमें न मणिपुरी ठीकसे बोल पाएँगे और न ठीकसे समझ पाएँगे।

आश्चर्यजनक बात यह है कि यहाँके लोग जो ऊँची कक्षा तक हिन्दी पढ़ते हैं, बहुत ही शुद्ध और वार्तालापके लिए विशिष्ट हिन्दीका प्रयोग करते हैं। उच्चारण में थोड़ा भेद होता है, पर भाषा एकदम शुद्ध होती है। अधिकतर हिन्दी-भाषी लिखनेमें शुद्ध लिखते हैं पर बोलनेमें हिंदुस्तानी ही बोलते हैं। एक तरहसे कहा जा सकता है कि हमारी लिखनेकी हिन्दी भाषा और बोलनेकी भाषामें विशेष अन्तर होता है। मणिपुरमें ऐसा नहीं है। जो अरुचि से केवल परीक्षा पास करनेको हिन्दी पढ़ते हैं वे हिन्दी न तो बोल ही सकते हैं और न बोली हुई हिन्दी समझ ही सकते हैं पर जो उच्च श्रेणीके विद्यार्थी हैं—वे शुद्ध सही और

स्वच्छ हिन्दी वोलते हैं। हिन्दुस्तानी यहाँ वाजारकी भाषा कहलाती है। यह भी साहित्यिक हिन्दुस्तानी नही है, टूटी-फूटी हिन्दी है।

मेरा अनुमान है कि हिन्दी-प्रचार और हिन्दीका स्कूलोमे अनिवार्य होनेसे अधिक हिन्दी सिनेमाओ ने यहाँके विद्यार्थियोको हिन्दी समझना सिखाया है। यह एक प्रकार से श्रव्य दृश्य शिक्षा है। पर सिनेमा इन्हे हिन्दी समझना अधिक सिखा पाया। हिन्दीका इस देशमे अधिक प्रयोग न होनेसे जहाँके लोग सहज भावसे हिन्दी वोल नही पाते।

किसी भी शिक्षाका की सफलताके लिए यह आवश्यक है, कि उस भाषाको अधिकाधिक वोला जाए। यदि शिक्षा विभाग, विशेष ध्यान दे तो यह कमी भी दूर हो सकती है। पहले तो कोई भी भाषा सिखानेवाला उस भाषाका वोलनेवाला होना आवश्यक है। दूसरे कितावी परीक्षाके साथ बातचीतकी परीक्षा और उसके पुरस्कारो को वढानेसे विद्यार्थियोकी इस शिथिलताको दूर करने लिए उत्साहित कर अधिकाधिक बोलनेकी ओर अग्रसर करेगी। हिन्दी नाटक प्रतियोगिता, हिन्दी विषय वाद विवादमें अच्छे पुरस्कार भी वहुत कुछ भाषाको सफल वना सकते हैं। नही तो किसी भाषाकी लिपिको पढ-लिख लेना, भाषाका मुख्य हेतु पूरा नही कर सकता।

मणिपुरके स्कूलोमें हिन्दी पढानेकी कई सस्थाएँ है, जो हिन्दी-प्रचारके कार्यमे सहयोग दे रही है। उन्हे अपने इस प्रयत्नमें कुछ सफलता भी मिली है, अभी तक हिन्दी बोलना तथा पूर्णत बोली हुई हिन्दी या हिन्दुस्तानी समझना यहाँके हिन्दी छात्रोको कठिन ही है।

मणिपुरमें मणिपुर राष्ट्रभाषा समिति, मणिपुर हिन्दी प्रचार सभा, मणिपुर हिन्दी परिषद, नागरी लिपि प्रचार सभा इत्यादि सस्थाएं चल रही है। स्कूलोमे कुंगलातोबी हिन्दी हायर सेकण्डरी, पूर्व भारत हिन्दी हायस्कूल, भैरवदान हिन्दी स्कूल, जय हिंदी मात्री पुखाई सस्थाएँ जो मणिपुरमे हिन्दीकी प्रचार कर रही हैं। वैसे प्राय सभी सरकारी स्कूलोमें हिन्दी सिखाई जाती हैं। हर साल हिन्दीमें, विद्यार्थी परीक्षामें उत्तीर्ण होते है। आशा है, हिन्दी सीखनेवाले विद्यार्थियोको सुविधा और प्रोत्साहन देनेसे मणिपुरमें अवश्य हिन्दी भाषाकी पूर्ण सफलतामें देर नही लगेगी।

बंगालकी हिन्दीको देन

डॉ सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या
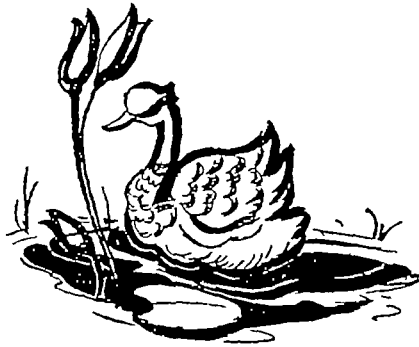
भारतमें आर्यभाषाके इतिहासकी आलोचनाकी सुविधाकी दृष्टिसे मोटे तौरपर तीन स्तरोंमें विभक्त कर लिया गया है। प्रथम स्तरका नामकरण हुआ है—(१) आदि भारतीय-आर्य छान्दस या वैदिक संस्कृत व प्राचीन लौकिक संस्कृत—यह आद्यस्तरकी प्रकाशक या प्रतिभू स्थानीय भाषा है द्वितीय स्तर है (२) मध्य भारतीय-आर्य या मध्ययुगीन भारतीय-आर्य—पालि भारतमें तथा भारतके बाहरके शिलालेख व साहित्यमें व्यवहृत विभिन्न प्रकारकी प्राकृतें तथा अपभ्रंश—ये सारे मध्ययुगीन भारतीय आर्यके निदर्शन हैं। अन्तमें आता है तृतीय या आधुनिक स्तर—(३) नव्य अथवा आधुनिक भारतीय-आर्य—भारतमें (भारत-के बाहर भी) प्रचलित आजकालकी आर्य भाषाएँ—हिन्दी बंगला ओड़िया मराठी गुजराती पंजाबी सिंहली आदि भाषाएँ इसके इस पर्यायके अन्तर्गत आती हैं। आत्यन्तिक वैज्ञानिक सीम-भेदके चक्करमें न पड़-कर साधारणतः इन तीन स्तरोंको क्रमशः (१) "संस्कृत (२) प्राकृत" तथा (३) "भाषा का नाम दिया जा सकता है। धारावाहिक तथा स्वाभाविक परिवर्तनके फलस्वरूप संस्कृत" प्राकृत बन गई, बादमें प्राकृत अपभ्रंशके माध्यमसे होकर आधुनिक आर्य "भाषा में परिणत हो गई। भाषाकी धारा नदीकी भाँति प्रवाहित होती रहती है जो सदा परिवर्तनशील है। भाषाकी गतिमें कुछ विशेष-विशेष लक्षणोंको ध्यानमें रखकर इस भाषा-प्रवाह अथवा परिवर्तनकी धाराको विभिन्न युगोंमें विभक्त किया जा सकता है। आलोचनामें भी सुविधाके लिए ऐसा किया जाता है। कारण और कार्यका विवेचन परम्परा या सिलसिला अर्थात् शृङ्खलाका पौर्वापर्य निश्चित करनेके लिए कुछ तिथियोंका निर्देश इस युग-विभाजनके लिए अपरिहार्य बन जाता है। मोटे तौरपर कहा जा सकता है कि भारतीय आर्यभाषाके इन तीनों स्तरों अथवा परम्परागत इतिहासका काल निर्णय इस प्रकार किया गया है —

(१) आदि भारतीय-आर्य अथवा "संस्कृत" युग—old Indo-Aryan (जर्मन भाषामें Alt Indo-Arische)—भारतमें आर्योंके आगमनके समयसे बुद्धदेव तथा महावीरके समय तक—अनुमानतः ईसापूर्व १५ या १४ से ईसापूर्व ५ तक

(२) मध्ययुगीन भारतीय आर्य अथवा "प्राकृत" युग—Middle Indo-Aryon (जर्मन भाषामें, Mittel Indo-Arische) ईसापूर्व ६०० से १००० ईस्वी तक, तथा

इस स्तरको पुन चार उपस्तरोमें विभाजित किया जाता है —

(क) आद्य या प्राथमिक प्राकृत—ईसापूर्व ६०० से २०० तक,

(ख) प्रथम सन्धि युगकी प्राकृत—ईसापूर्व २०० से २०० ईस्वी तक,

(ग) साहित्यिक प्राकृतका स्तर—२०० ईस्वीसे ६०० तक तथा

(घ) द्वितीय सन्धि युगकी प्राकृत या अपभ्रश—६०० ईस्वीसे १००० तक।

(३) नव्य भारतीय आर्य अथवा "भाषा" युग—New Indo-Aryan (जर्मन भाषामें New Indo-Arische) १००० ईस्वीके पश्चात्।

इन विभिन्न स्तरो तथा उपस्तरोंके लक्षणो और इतिहासको लेकर अभी विवेचन करनेका अवसर नही है तथा इन विषयोपर यथेष्ट आलोचना भी हो चुकी है। सस्कृत (वैदिक सहित), प्राकृत, अपभ्रश, भाषा—इस धारामें, आदि भारतीय आर्य-भाषाको आधुनिक भारतकी नव्य भाषा तथा उपभाषा-समूहमें परिणत किया है।—हिन्दी (पँछाही या पश्चिमी हिन्दी—विशेषत ब्रजभाषा और खडी बोली), कोसली (तथा-कथित पूर्वी हिन्दी—अवधी, बघेली और छत्तीसगढी), भोजपुरी, मैथिली व मगही, बगला, ओडिया, असमिया, हलवी, मराठी व कोकणी, गुजराती, राजस्थानी, सिन्धी व कच्छी, पूर्वी पजाबी या पजाबी, हिन्दी या लहन्दी या पश्चिमी पजाबी, पश्चिमी हिमाली, मध्य हिमाली (गढ़वाली व कुमायूँनी) तथा पूर्वी हिमाली (नेपाली, गुरखाली या खसकुरा)—ये सारी आधुनिक भारतीय भाषाएँ और उपभाषाएँ प्राचीन भारतीय आर्य भाषाकी—वैदिक जिसका प्रथम साहित्यिक रूप है, चरम परिणति है।

लोगोकी बोलचालमें सस्कृत, प्राकृत व भाषा–इन तीन स्तरोमेंसे होती हुई अपनी गति अव्याहृत रख सकी। किन्तु ईसापूर्व १५०० से १००० ईस्वीकी प्राय ढाई हजार वर्षकी लम्बी अवधिमें जब "सस्कृत" तथा "प्राकृत" अर्थात् आदि भारतीय आर्य तथा मध्ययुगीय भारतीय-आर्य भाषाकी गति प्रवाहित हो रही थी, तब कथ्य भाषाके आधारपर, उसके सहारे ही धीरे-धीरे कई एक साहित्यिक भाषाओका भी निर्माण होता रहा और सभीने उन साहित्यिक भाषाओको सम्मानके साथ स्वीकार कर लिया, फलस्वरूप मौखिक बोलचालकी कथ्य-भाषा इन सारी साहित्यिक भाषाओंके प्रभावमें व दबावमें पडकर प्राय एक प्रकारसे लुप्त-सी हो गई, ढँक सी गइ। उदीच्य अर्थात् उत्तर-पश्चिम पजाबके आर्यभाषी जन समाजमें प्रचलित "लौकिक" या कथ्य भाषाके आधारपर तथा ऋग्वेदादि प्राचीन वेद-सहितामें व्यवहृत प्राचीनतम साहित्यिक भारतीय आर्यभाषा वैदिक या छान्दसके आधारपर ईसापूर्व प्रथम सहस्रके प्रथमार्द्धमें ही "सस्कृत" भाषा, Classical Sanskrit अथवा "लौकिक सस्कृत" का रूप प्रस्तुत हो गया। ईसापूर्व पाँचवी शताब्दीमें (ईसापूर्व ५००–४०० शतकमें) उदीच्यके अधिवासी, सिन्धु नदीके तटपर आधुनिक अटक नगरके समीप शालातुर ग्राममें जिनका गृह था, उन महर्षि पाणिनिने इस लौकिक सस्कृतका जो व्याकरण रच डाला, उसीके द्वारा इस भाषाका स्वरूप सदाके लिए स्थिर हो गया। पाणिनिने अपने इस अष्टाध्यायी व्याकरणमें छान्दस अथवा वैदिक सस्कृतके प्रयोग तथा नियमका पूरा उल्लेख किया है। वैदिक सस्कृतकी उत्तराधिकारिणी प्राचीन व मध्ययुगके भारतकी मुख्य साहित्यिक भाषाके रूपमे, सस्कृत भाषा, इस प्रकार भारतीय सस्कृत,

प्रधानतम प्रकाश भूमिके रूपमें प्रतिष्ठित हुई। सबसे भारतमें "देवभाषा के] रूपमें संस्कृत भारतीय व प्रतिष्ठा पाती आ रही है और पिछले ढाई हजार] वर्षोंकी] अवधिमें संस्कृतमें साहित्य रचना ज्ञान-विज्ञान दर्शन आदि गम्भीर विषयोंकी ग्रन्थ [रचना कभी बन्द नहीं हुई—काश्मीरसे केरल, कन्याकुमारीसे ब्रह्मदेश तक भारतके इस विशाल भूखण्डमें संस्कृतने ही केवल संस्कृतिकी स्वर्णशृंखला बनकर सब भिन्न विभिन्न समस्त भारतको एक धर्म-राज्य पाशमें बाँध रखा है। बादमें हिन्दू सभ्यताके—ब्राह्मण्य तथा बौद्ध सभ्यताके प्रचारके साथ-साथ सिंहलमें इन्दोचीनमें (बर्मामें श्याममें कम्बोजमें चम्पामें) इन्दोनेशियामें (यवद्वीपमें बलिद्वीपमें बोर्नियो आदिमें) तथा तिब्बतमें और मध्य एशियामें चीनमें] सुदूर] जापानमें संस्कृतने प्रसार लाभ किया। संस्कृतके बराबर-बराबर संस्कृतकी प्रतिष्ठाको धक्का न लगाकर, बल्कि उस प्रतिष्ठाको और भी सुदृढ़ बनाकर कई एक साहित्यिक भाषाएँ भारतीय आर्यभाषाके मध्ययुगके इतिहासमें पनपने लगी। वे भाषाएँ इस प्रकार हैं —

(१) महाराज अशोकके शिलालेखोंमें तथा अन्यत्र व्यवहृत उत्तर पश्चिमी दक्षिण-पश्चिमी और पूर्वी इन तीनों प्रकारकी प्राकृत।

(२) पालि मूलतः शूरसेन या मथुरा अञ्चलकी भाषापर आधारित—मगधकी भाषापर नहीं—यह हीनयान बौद्धोंके थेरवादी सम्प्रदायकी धार्मिक-साहित्यिक भाषाके रूपमें ईसाके जन्मकालके आसपासके समय मान ली गई थी (सिंहलमें तथा अन्यत्र भी)।

(३) अर्द्धमागधी प्राकृत—जैनगणोंके प्राचीनतम धर्म साहित्यकी भाषा—इस, भाषाका प्राचीनतम रूप यथायोग्य रूपसे सुरक्षित नहीं रखा जा सका।

(४) बौद्ध संस्कृत अथवा गाथा—विभिन्न प्राकृत रूप-भाषाओंको यथासम्भव संस्कृतके रूपमें रँगने तथा संस्कृतके ऊपर प्राकृतको ढालनेकी चेष्टाके फलस्वरूप ईसाके जन्मके कुछ पूर्वसे ही संस्कृत-प्राकृत मिश्रित साहित्यकी यह अभिनव भाषा दिखाई देने लगी थी—इसमें विराट बौद्ध साहित्य रचा गया है। इस साहित्यमें महायान बौद्धोंने अपने धर्मशास्त्र ग्रन्थोंको सुरक्षित रख छोड़ा है।

(५) ब्राह्मण्य बौद्ध तथा जैन साहित्यमें—काव्योंमें धर्मविषयक ग्रन्थोंमें कविताओंमें तथा संस्कृत नाटकोंमें व्यवहृत विभिन्न प्रकारकी प्राकृत जैसे शौरसेनी महाराष्ट्री "गान्धारी" या मध्य एशियामें प्राप्त उत्तर-पश्चिम पञ्जाबकी भाषा। तथा मध्ययुगीन भारतीय आर्यका—अर्थात् प्राकृतका—अन्तिम रूप

(६) अपभ्रंश। आधुनिक भाषाशास्त्रकी दृष्टिसे यह अपभ्रंश प्राकृतकी अन्तिम अवस्था अथवा स्तरका साधारण नाम है। विभिन्न अञ्चलोंमें व्यवहृत प्राकृत (जैसे "मागधी "अर्द्ध मागधी और सेनी "गान्धारी आवन्त सौराष्ट्री) तथा उन्हीं अञ्चलोंसे उद्भूत आधुनिक भाषाओंके बीच (बङ्गला ओड़िया मैथिली भोजपुरी अवधी ब्रज पञ्जाबी हिन्दकी राजस्थानी गुजराती मराठी नेपाली गढ़वाली कुमायूँनी प्रभृतिकी,) यह स्तर] जैसे तमोल सेतु है। "प्राकृत के और भाषा के बीच जैसे मिलन क्षेत्र है। विभिन्न प्रादेशिक अपभ्रंश भी कई रहे होंगे किन्तु एक मात्र शौरसेनी अपभ्रंशके सिवाय दूसरोंका कोई निदर्शन उस प्रकार प्राप्त नहीं होता।

जिस समय आधुनिक आर्यभाषाओंने अपना-अपना नवीन रूप धारण किया था यानी ईसाके १००० वर्षके कुछ अनन्तर, भारतमें कई साहित्यिक भाषाएँ विशेष रूपसे प्रचलित थी —

(१) संस्कृत—खूब उन्नत, बढ़ी-चढ़ी और उसका खूब बोलबाला था, सभी उसे देवभाषाके रूपमे जानते थे, भारतमें सभी जगह संस्कृतके पण्डित-विद्वान पाये जाते थे और उसका विराट साहित्य और भी वृद्ध, समर्थ तथा पुष्ट होता जा रहा था।

(२) विभिन्न प्रकारकी प्राकृतें—इनका साहित्यिक प्रयोग पाली-रूपमें भारतके बाहर सिंहलमें तथा वर्मामें विस्तृत होता जा रहा था और जैनोंके बीच विभिन्न प्राकृतोंमें खूब जोरोंसे साहित्य-रचना हो रही थी। ब्राह्मण पण्डितोंके लिखे संस्कृत नाटकोंमें कही-कही कुछ-कुछ प्राकृतोंका प्रयोग भी होता था। इसके अलावा ईसाके जन्मके प्राय ८०० वर्ष पश्चात्,

(३) शौरसेनी अपभ्रंश एक लोकप्रिय साहित्यकी भाषाके रूपमे माना जाने लगा। यह एक ओर प्राकृतके प्रतिस्पर्धीके रूपमे दिखाई दिया तो दूसरी ओर विभिन्न आधुनिक भाषाओंकी अव्याहत गतिको, साहित्यमें उनके प्रयोगको एक सीमातक रोकता दिखाई दिया। अन्यान्य अपभ्रंशोंकी तुलनामें शौरसेनी अपभ्रंश उत्तर भारतमें सर्वत्र एक विशिष्ट सम्मान तथा लोकप्रियताका अधिकारी बन गया। आधुनिक पश्चिम उत्तर-प्रदेश तथा उससे सटे राजस्थानकी लोकभाषा अथवा मौखिक भाषाके आधारपर यह शौरसेनी अपभ्रंश साहित्यिक भाषाके रूपमें विकसित हो गई। पूर्व पंजाबकी भाषा, गुजरातकी भाषा इस शौरसेनी अपभ्रंशके बहुत ही पास की थी, इसलिए कही-कही थोड़ा-बहुत स्थानीय रूपभेद रहने पर भी, यह शौरसेनी अपभ्रंश अथवा "नागर" अपभ्रंश संस्कृत तथा जैन प्राकृतके बराबर सहज ही मे अपना स्थान बना ले सकी। उस समय समग्र उत्तर-भारतमे क्षत्रिय राजपूत राजाओंका युग था। राजस्थानमे, गुजरातमें, पंजाबमें, उत्तर-प्रदेशमें, सुदूर बंगाल और नेपालमें—जहाँ कही भी राजपूत राजवंश अथवा राजपूतोंके साथ सम्पर्क स्थापित अन्य हिन्दू राजवंश राज्य करते थे, वही शौरसेनी अपभ्रंशको थोड़ी-बहुत स्वीकृति मिल ही गई। उस युगके प्रधान जनप्रिय साहित्यके योग्य लोकभाषाके रूपमें इसका प्रचार होता गया। राजपूत राजाओंका शौर्य-पराक्रम, उनका साम्राज्य, सामयिक तथा राजनैतिक जगतमें उनकी सर्वजन स्वीकृत प्रतिष्ठा, इन सबने मिलकर उनके द्वारा पृष्ठपोषित और उनकी राजसभाओंके कवियो तथा अन्य लेखकों द्वारा प्रयुक्त इस शौर-सेनी अपभ्रंशकी मर्यादाको और भी बढ़ा दिया।

इस कारण उधर पश्चिम पंजाब, सिन्ध, गुजरात और महाराष्ट्रसे नेपाल और बंगाल तक समस्त उत्तर भारतके साहित्य-क्षेत्रमें उदीयमान स्थानीय कथ्य भाषाओंके साथ-साथ पश्चिम उत्तर-प्रदेश, पूर्व पंजाब तथा राजस्थानके स्वकीय साहित्यिक अपभ्रंश शौरसेनी अपभ्रंशने (या पश्चिमी अपभ्रंशने) अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया, सर्वत्र ही इसका पठन-पाठन प्रचलित होता गया तथा इसमें "भाषा साहित्य" की रचनाएँ होती रही। बंगालमें भी यही बात दिखाई देती है। ईस्वी सन् १००० के आसपास बंगालके कविगण संस्कृतके अलावा और भी दो भाषाओंकी जोड़ी गाड़ी हाँक रहे हैं—और उनमे एक स्थानीय प्राचीन बंगला भाषा है तथा दूसरी भाषा पश्चिमी या शौरसेनी अपभ्रंश है।

यह शौरसेनी अपभ्रंश राजस्थान और मथुरा वाली पश्चिम उत्तर प्रदेशकी भाषापर प्रतिष्ठित साहित्यिक भाषा है—मथुरा अंचलकी ब्रज कान्यकुब्जकी कनौजी मध्यप्रदेशकी बुन्देली राजस्थानकी डिंगल और पिंगल नामसे परिचित मध्ययुगकी वो साहित्यिक भाषाओं तथा उपरन्तु पूर्व पंजाबी जानपद हिन्दुस्तानी , बांगरू या जाटू और दिल्लीकी हिन्दुस्तानीका आदिरूप कहा जा सकता है। इस आधारपर यह भी कहा जा सकता है कि एक हजार वर्ष पूर्व शुद्ध बंगला भाषाके पास-पास बंगालके साहित्यिकोंके बीच शौरसेनी अपभ्रंश नामसे परिचित प्राचीनतम पछाँही हिन्दीका एक प्राचीनतर साहित्यिक प्रकार भेद प्रचलित था। अत प्रथम युगके बंगाली कवि तथा अन्य लेखकगण बंगलाके साथ-साथ पछाँही हिन्दीकी एक प्रकारकी प्राचीन साहित्यिक रूपकी चर्चा करते थे तथा उसमें गान और कविता रचते थे। यह परवर्ती कालमें कुछ-कुछ बंगाली वैष्णव कवियों द्वारा मैथिल-मिश्र कविताकी भाषा ब्रजबुली के प्रयोगके समान है—ब्रजबुलीमें लिखनेकी परम्परा रवीन्द्रनाथ तक चली आई है।

हजार वर्ष पहलेकी बंगलाके प्राचीनतम निदर्शन हमें "चर्यापद" गानोंमें मिलते हैं। ओड़िया बंगला और असमिया भाषाऐं इतनी घनिष्ट रूपसे जुड़ी हुई हैं कि हजार वर्ष पहले ये भाषाऐं जैसे एक ही भाषाके तीन प्रान्तीय रूपभेद मात्र थीं—तीनों एक ही प्राचीन भाषामें जिसे मागधी अपभ्रंश कहा जा सकता है सम्मिलित थीं। चर्यापदों की भाषा इस अधुना लुप्त तथा अप्राप्य 'मागधी' अपभ्रंशकी अत्यन्त निकटवर्ती होनेके कारण ओड़िया तथा असमिया साहित्यिक और भाषा तात्त्विकगण चर्यापदों की भाषामें प्राचीन बंगला न मानकर प्राचीन ओड़िया तथा प्राचीन असमिया कहकर अपनी माँग उपस्थित कर रहे हैं। सिर्फ यही नहीं मैथिली भाषा तथा साहित्यके ऐतिहासिकगण "चर्यापदों" को प्राचीन मैथिल बता रहे हैं और एक-दो हिन्दी-लेखकोंने, चर्यापदों को हिन्दी कहकर उनपर हिन्दीके हककी माँग की है। जो भी हो चर्यापदोंके साथ-साथ बंगालके कवियोंने—विशेषत बौद्ध वज्रयान सहजिया सम्प्रदायके गुरु और उपदेशकोंने शौरसेनी अपभ्रंशमें भी पदोंकी रचना की है यह निर्विवाद है। हिन्दीके आदिकालकी पश्चिमकी यह हिन्दी-पूर्व साहित्यिक भाषा पश्चिमी अपभ्रंश बंगालमें पहुँच चुकी थी इसपर चर्चा होती थी इस प्रदेशके कविगण उसका प्रयोग भी करते थे इसका प्रकृष्ट प्रमाण मिलता है।

बंगालमें शुद्ध बंगला भाषामें साहित्य-सृजनका श्रीगणेश ईसाकी दशम शताब्दीमें हुआ। द्वादश शताब्दीमें बंगालकी संस्कृतज्ञ पण्डित श्रीधर दासने अपनी "सदुक्तिकर्णामृत" नामक संस्कृत श्लोकोंकी एक संग्रह-पुस्तकमें बंगाल कवि अर्थात् बंगदेश अथवा पूर्वी बंगालके बंगाल कवि नामके एक अज्ञातनाम कविकी संस्कृतमें रची इस बंग भाषा प्रशस्तिको संकलित कर उपस्थित किया है —

घनरससमयी गभीरा वक्रिमसुभगोपजीविता कविभिः ।
अवगाढा च पुनीते गङ्गा वंगालवाणी च ॥

"गंगा नदी और बंगला भाषा—इन दोनोंमें एक प्रचुर जलपूर्ण (घनरससमयी) है दूसरी यह रसोंका आकर है एक सुन्दर छन्दोमयी है दूसरी टेढ़ी-मेढ़ी होकर प्रवाहित होनेके कारण सुन्दर है अनुरूप कवियोंने दोनोंकी सेवाऐं की हैं तथा अवगाहन करनेपर, दोनों ही मनुष्यको पवित्र करती है।

अतएव ईसवी १२ से पूर्व ही बंगला भाषामें एक विशिष्ट साहित्य रचा जा चुका था। उस साहित्यका इतिहास सुविदित है तथा बंगालके विद्वान पण्डितोंने उसकी आलोचना भी की है। किन्तु प्राचीन

बगलाके बरावर-बरावर पश्चिमी अपभ्रशको भी बगालमें स्थान दिया गया था, यह स्मरण रखने योग्य बात है। इसके माध्यमसे उत्तर और पश्चिम भारतके साथ बगालका हजार वर्ष पूर्वसे सास्कृतिक सयोग साहित्यके माध्यमसे दृढतर हुआ प्रतीत होता है। हाँ, पृष्ठभूमिके रूपमें देवभाषा सस्कृतके वाद ही सभव हुआ होगा।

ईस्वी १००० के आसपास वगला भाषाके उद्‌भवके साथ ही साथ यह भाषा साहित्य सृजनके कार्यमें व्यवहृत होने लगी। इधर ईस्वी १२०० के उपरान्त वगालके पश्चिम और उत्तर भाग, विदेशसे आगत तुर्की मुसलमानो द्वारा जीत लिए गए उत्तर भारतके साथ बगालका सम्पर्क इसके पूर्वके कालके समान वना नही रहा। उस समय नेपाल और मिथिला और उडिया भी स्वतत्र राज्य वने हुए थे। इन तीन अचलोके साथ वगालका योग सम्पर्क अटूट वना रहा। उत्तर भारतके साथ राजनैतिक और सास्कृतिक सम्बन्ध घट जानेपर, बगालमें पश्चिमी या शौरसेनी अपभ्रश तथा उसके वाद नूतन उद्‌भूत पश्चिमी हिन्दीकी भी चर्चा और उसमें रचना बगालमे प्राय वन्द-सी हो गई। मिथिलामे स्वतत्र हिन्दू राज्य होनेके कारण वहाँ प्राचीन हिन्दू-रीति-नीति और सस्कृतकी चर्चा अव्याहत रही। इतना ही नही, बगालमें तुर्की-विजयके पश्चात् बगाली-सस्कृत-शिक्षार्थी विशेषत स्मृति तथा न्यायमें उच्च शिक्षाध्यायनके लिए कई एक शताव्दी तक पहुँचते रहे। उन दिनो मिथिलाकी लोकभाषा मैथिलीका स्वर्णयुग था, आजकलकी भाँति मैथिलीभाषा विपन्न-दुर्दशाग्रस्त नही हो गई थी। मैथिल पण्डितगण केवल सस्कृत-चर्चा तथा सस्कृतमें ग्रन्थ ही नही रचते थे, उपरन्तु वे अपनी मातृभाषा मैथिलीमें भी एक उच्चकोटिका साहित्य भी रच रहे थे। वगाली-सस्कृत विद्यार्थी भी मिथिलामें केवल सस्कृत पाठाभ्यास करते थे, ऐसी वात नही, वे भी मैथिली भाषामें रचित राधाकृष्ण विषयक तथा अन्य गान जिनसे वे आकृष्ट होते थे, उन सव गानोको सीख लेते थे और वगालमें भी उन गानोको बिखेर देते थे। मैथिली भाषामें रचित विद्यापति आदि प्रमुख कवियोके गान वगालमें (यहाँ तक कि आसाम और ओडिसामें) इतने लोकप्रिय हो गए कि बगालके कई वैष्णव कवियोने इन सव गानोके भाव-भाषाका अनुकरण कर गान व पद रच डाले। फलस्वरूप वगालमें बगला भाषाके वरावर एक नई कृत्रिम साहित्यिक भाषा पनपने लगी, जो टूटी-फूटी मैथिलीमिश्र बगला है। यह भाषा बगला वैष्णव साहित्यमें "ब्रजबुली" नामसे परिचित है। इस ब्रजबुलीमें वृन्दावनके गोस्वामियोंके प्रभावसे पश्चिमी-हिन्दी ब्रजभाषाके रूप और शब्द भी पाये जाते है। श्रीकृष्णकी ब्रजलीला इस भाषाके पदोमें वर्णित होनेके कारण इस भाषाका नाम "पाँचाइल ब्रजबुली" (पछाँही ब्रज वोली) पड गया। पर यह भाषा ब्रजमडल यानी मथुरा-वृन्दावन, आग्रा-कोइल-गवालियारकी ब्रजभाषासे विलकुल भिन्न है। ब्रजवुलीमें पद रचनाकी धारा वगालमें आज भी चली आ रही है—स्वय रवीन्द्रनाथने इस अति मधुर कृत्रिम मिश्र वगला-मैथिल कविताकी भाषामें "भानुसिंह ठाकुरकी पदावली" के नामसे परिचित अति मनोहर कुछ पद अथवा कविताएँ लिखी है —

सतिमिर रजनी, सचकित सजनी
शून्य निकुज अरण्य।
कलयित मलये, सुविजन निलये
वाला विरह-विषण्ण।

बांशरि ध्वनि तुहु अमिय गरलरे,
हृदय विदारइ हृदय हरलरे,
आकुल काकलि भुवन भरलरे,
उतल प्राण उतरोय,
को तुंह बोलबि मोय ?

हेरि हासि तव मधुऋतु धावल,
शुनइ बांशि तब पिककुल गावल,
विकल भ्रमरसम त्रिभुवन आवल,
चरण-कमल युग छोंय,
को तुंह बोलबि मोय ?

गोपवधूजन बिकशित-यौवन,
पुलकित यमुना, मुकुलित उपवन,
नील नीरपर धीर समीरण,
पलके प्राणमन खोय,
को तुंह बोलवि मोय ?

तृषित आंखि, तव मुखपर बिहरइ,
मधुर परश तव, राधा शिहरइ,
प्रेम-रतन भरि हृदय प्राण लइ,
पदतले अपना धोय,
को तुंह बोलबि मोय ?

को तुंह को तुंह सब जन पुछइ,
अनुदिन सघन नयन जल मुछइ,
याचे भानु, सब सशय, घुचइ,
जनम-चरणपर गोय।
को तुंह बोलवि मोय ?

तुर्की राज्यकी स्थापनाके उपरान्त, समग्र बगालके साथ उत्तर भारतका सयोग कुछ कालके लिए बन्द हो गया। किन्तु पुन पठान तथा भारतीय मुसलमान राजशक्तिकी स्थापनाके फलस्वरूप जब उत्तर भारतमे और बगालमें अराजकताके स्थानपर थोडी शान्ति और शृखलाकी प्रतिष्ठा हुई, तब फिर

बंगालका और उत्तरभारतके साथ छिन्न योगसूत्र नवीन रूपसे पुनर्ग्रथित हुआ। उत्तरभारतसे जत्थेके जत्थे भारतीय तथा अन्य मुसलमान फौजी सिपाही व्यापारी सूफी-दरवेश मुल्ला और अन्य इसलाम-धर्म-प्रचारक तथा साथ ही साथ हिन्दू व्यापारी सेठ-साहूकार बंगाल आने लगे। इसमें बंगालकी मुसलमान राजशक्तिका आवाहन था तथा स्थानीय हिन्दू जमींदारोंकी पृष्ठ पोषकता थी। चतुर्दश तथा पञ्चदश शताब्दीमें (सन् १३००—१५०० ईस्वीके बीच) इस प्रकार पुनराय उत्तरभारतकी हिन्दू संस्कृति तथा मुसलमान सूफी संस्कृतिके साथ बंगालका नये रूपसे सम्पर्क स्थापित हुआ। उस समय पश्चिम उत्तर प्रदेशमें सूरदास प्रमुख कवियोंकी कृतियोंके आधारपर जो नया ब्रजभाषा साहित्य सम्वर्धित हो रहा था उसका पता बंगालको तब तक न था। चैतन्य देवकी ब्रजमण्डलकी तीर्थ यात्राके बाद षोडश शताब्दीके प्रथमार्द्धमें जब बंगालके गौड़ीय गोस्वामियोंने वृन्दावनमें अपनी बस्ती स्थापित की तबसे फिर नये सिरेसे पछाँहा या पश्चिमी-हिन्दी प्रदेशकी धर्म संस्कृति और साहित्यके साथ वैष्णवोंके माध्यमसे बंगालका सम्मेलन हुआ।

चतुर्दश शताब्दीके द्वितीयार्द्धसे षोडश शताब्दीके प्राय अन्तिम चरण तक "कोसली" भाषाके प्रदेशमें—जिसे साधारणत "पूर्वी-हिन्दी" अञ्चल कहा जाता है उस अञ्चलमें (यह 'कोसली' या पूर्वी-हिन्दी भाषा इस समय एक विशिष्ट साहित्य-समृद्ध भाषा थी—तथा इसकी तीन विशिष्ट उपभाषाएँ थी—अवधी या बैसवाड़ी बघेली और छत्तीसगढ़ी या महाकोसली—इनमेंसे अवधीके दानसे भारतीय साहित्य विशेष रूपसे गौरवान्वित हुआ था—अवधीमें ही मलिक मुहम्मद जायसीने "पदुमावति" और गोस्वामी तुलसीदासने "रामचरितमानस" ग्रन्थ लिखा।) एक विशेष उल्लेख योग्य काव्य साहित्य स्थानीय मुसलमान सूफी कवियों तथा साधकोंके द्वारा रचा जा रहा था। इनमेंसे सबसे पुराने अवधी सूफी कवि मुल्ला दाऊद हैं जिनकी रचना उपलब्ध है—सन् १३७० ईस्वीके आसपास 'नोर और चन्दा' की कहानी लेकर यह काव्य रचा गया है। ये सूफी कविगण हिन्दू नायक-नायिकाओंको लेकर अवधी भाषामें चौपाई और दोहोंमें रूमानी या प्रेम और वीरताकी कहानियाँ लिखा करते थे। इनके द्वारा प्रवर्तित यह अवधी काव्यधारा कई शताब्दियोंसे आज तक प्रवाहित होती आ रही है। मंझनका "मधुमालती" कुतबनका "मृगावती" और मलिक मुहम्मद जायसीका "पदुमावति" इसी धाराके अन्तर्गत समाविष्ट ग्रन्थ हैं। प्रेमाख्यानके माध्यमसे सूफी-साधनाके आदर्शका प्रचार करना इनका अन्यतम प्रधान उद्देश्य था। जीवात्मा और परमात्मा—ईश्वरके बीच प्रेमका जो सम्पर्क है, उसे प्रेम-कहानीके रूपकके रूपमें ही इन ग्रन्थोंमें वर्णित किया गया है। अनुमान है कि इस समय बंगालमें जो-जो सूफी गुरु और मुल्ला इसलाम धर्मके प्रचारार्थ मुसलमान फौज लश्कर और सौदागरोंके साथ-साथ बंगालमें आए वे सभी अधिकांश संख्यामें आजकलके उत्तर प्रदेशके पूर्वांचलके निवासी रहे होंगे। पन्द्रहवीं शताब्दीमें जौनपुर इन लोगोंका प्रधान केन्द्र था। ये लोग अधिकतर अवधी भाषा बोलते थे। कुछ-कुछ भोजपुरी भी बोलते थे। इन्हीं लोगोंकी अवधी भाषामें ये सारे सूफी काव्य विशिष्ट साहित्यिक देन माने जाते हैं। कई एक घटनाओंसे यह बात प्रमाणित होती है कि इनका विस्तार सुदूर पूर्वी बंगालके श्रीहट्ट (सिलहट) तथा चट्टग्राम (चटगाँव) तक हो गया था। शाह जलाल नामके एक सूफी सन्त चौदहवीं शताब्दीके प्रथम दशकमें श्रीहट्ट गये थे। उस समय श्रीहट्ट बंगालके पठान तथा उत्तर भारतीय मुसलमानों द्वारा विजित हो चुका था तथा शाह जलालके प्रभावसे

उस अञ्चलके हिन्दुओमे मुसलमान धर्म काफी फैल गया था। अनुमान है कि शाह जलालके अनुचरोंने, उस अञ्चलमें उत्तर भारत—कोसल अञ्चलसे लाये गए सूफी काव्य साहित्य, अवधी भाषा और अवधी भाषाकी अपनी लिपि—नागरीका श्रीहट्टमे और उसके आसपासके स्थानोमें तथा पूर्वी बंगालके अन्याय स्थानोमे प्रचार किया और स्थापित भी किया। सूफी मुसलमान कवियोकी रचनाओंकी नकले तथा बहुत-सी अवधी काव्यो-की पोथियोकी नकले फारसी अक्षरोमें की गई थी, पर साथ-साथ स्थानीय लिपिका भी प्रयोग होता था। और आज तक पूर्व उत्तर प्रदेश तथा बिहारके मुसलमानोके बीचमें से फारसी लिपि नागरी और नागरीका संक्षिप्त रूप—कैथी लिपिको निकाल बाहर नही कर सकी। श्रीहट्ट या सिलहटके मुसलमानोंके बीच अब भी उत्तर भारतके मुसलमान धर्म गुरुओकी देन "सिलहट नागरी" प्रचलित है—कम-से-कम कुछ साल पहले तक तो थी। इस सिलहट नागरीमे छेनीसे काटकर सीसेके अक्षर तैयार किये गए है और उनमे पुस्तकें छापी गई है जिनका विषय मुसलमानी सूफीयत है, भाषा बंगला है किन्तु अक्षर बंगलाके न होकर "सिलहट नागरी" के है।

अवधी भाषा काव्य इस प्रकार जब कोसल या पूर्वी हिन्दी प्रदेशसे पूर्वी बंगाल तक पहुँच रहा था तब पछाँहामें ब्रजभाषाका बोलबाला बढ रहा था और खडी बोलीका उद्‌भव नही हुआ था। दक्षिणमें बहमनी साम्राज्य तथा उसके पश्चात् गोलकुण्डा, बीजापुर आदि पाँच मुसलमानी राज्योमें हिन्दीके प्राचीन दक्षिणी रूपमें—"दखनी" या "दक्नी" भाषामें भी एक प्रौढ साहित्य रचा जा रहा था। चौदहवी-पन्द्रहवी सदीमें मुसलमानी प्रभावसे बंगालमें उत्तर भारतकी भाषाके रूपमे सिर्फ अवधी भाषाका ही प्रचार व अध्ययन चालू था। बंगालमें इस भाषाका नाम "गोहारी" या "गोयारी" था। पूर्वी बंगालके मुसलमान पडित लोग सोलहवी सदीमे अपने धार्मिक साहित्यके अंगके रूपमें इस "गोहारी" भाषामे काव्य-पाठ करते थे तथा अपनी सूफी भावधारा सहित इन सब काव्योका व्याख्याके साथ पाठ मुसलमान जन-साधारणके बीच किया जाता था व सुनाया जाता था (जिस प्रकार हिन्दुओमें रामायण-महाभारत तथा भागवत, पुराण आदिका पाठ किया व सुनाया जाता है।) सत्रहवी सदीसे इन सब काव्योका अनुवाद या अनुकरणके माध्यमसे प्रचार कार्य चट्टग्रामके मुसलमानों तथा चट्टग्रामके पार्श्ववर्ती ब्रह्मदेशके अराकान अञ्चलमें बसे हुए बंगाली मुसलमानों द्वारा आरम्भ हो गया था। दौलत काजी तथा आलोओल (अल-अव्वल) सत्रहवी सदीके इन चट्टग्राम तथा अराकानके बंगाली मुसलमान कवियोमें प्रधान है। इनमे आलाओल रचित मलिक मुहम्मद जायसी कृत "पद्मावती" काव्य सर्वाधिक समादृत तथा बंगला साहित्यमें एक विशिष्ट स्थान अधिकार किये हुए है।

"गोहारी" या "गोयारी" भाषाके बंगालमे प्रचलित इस नामका मूल क्या है? चट्टग्रामके बंगाली मुसलमान कविगण गर्वके साथ कहते है—वे बंगला, संस्कृत, फारसी, अरबी और "गोहारी" इन सभी भाषाओसे परिचित है। इससे मेरी प्रथम धारणा यह बनी कि यह शब्द हिन्दी "गँवारी" शब्दका विकृत रूप है—उत्तर भारतकी अन्यतम देश-भाषाका मुसलमान आलिम और शायर लोग, जो फारसी साहित्य-का रसास्वादन कर विभोर थे, अरबी और फारसी—ये ही दो भाषाएँ जिनके लिए एकमात्र सम्मानित भाषाएँ थी, उनके लिए देश-भाषाको, भारतीय भाषाको हिन्दुओकी भाषाको "गँवारी", अशिक्षितोकी भाषाको, इस नामके सिवा दूसरा नाम क्या दिया जा सकता था?" "ग्रामीण" अर्थात् ग्रामवासी गरीबोकी भाषा थी,

इसलिए वे यह "गौवारी" शब्द प्रयोगमें लाते थे और बंगालियोंके कानोंमें "गौड़ व कन्नौजी" यह "गौगोवारी गाबोवारी गोवारी गोहारी" बन गया। किन्तु अब देख रहा हूँ कि कोसली भाषाकी उपभाषाओंमें यह अन्यतम है, उत्तर प्रदेशके बांदा जिलेमें यमुना नदीके दक्षिणमें जिसकी उपभाषाको महोरा अञ्चलकी यह बोली है। महोरी बोलीकी कोई भी विशेष प्रतिष्ठा अब और नहीं रही, पर शायद चार सौ साल पहले कोसली भाषाकी यह अन्यतम प्रधान उपभाषा रही हो और यह "महोरी" नाम कोसली साहित्यके साथ-साथ उत्तर भारतके मुसलमान सूफी सन्तोंके द्वारा बंगाल पहुँच गया हो और यह नाम बंगालके मुसलमान कवियोंने चालू कर दिया।

सत्रहवीं सदीके बादसे यह "गोहारी" या "गोवारी" भाषाका प्रभाव बंगालसे एकदम मिट-सा गया। "गोहारी" के बाद बंगला भाषामें किसी सीमा तक ब्रजभाषाकी छाप वृन्दावनके गोस्वामियोंके प्रभावसे पड़ती रही। सन् १५८० ईस्वीके लगभग कवि कृष्णदास कविराज द्वारा वृन्दावनमें पुरानी बंगलामें लिखित अन्यतम उच्च कोटिका दार्शनिक ग्रन्थ "श्री चैतन्यचरितामृत" प्राप्त होता है। इस ग्रन्थकी भाषामें ब्रजभाषा हिन्दीका प्रभाव मिलता है। इस समयसे जिस प्रकार सूरदास प्रमुख ब्रजभाषाके कवियोंके राधाकृष्ण लीला विषयक पद ब्रजमण्डलके बंगाली वैष्णवोंके बीच प्रचारित हुए, उसी प्रकार बंगला भाषापर भी इन सब पदोंका प्रभाव थोड़ा-बहुत पड़ा। सन् १६१५ के कुछ बाद ब्रजभाषा हिन्दीकी एक बड़ी पुस्तक नाभादासजीका "भक्तमाल" ग्रन्थ बंगला भाषामें अनूदित हुआ। सन् १५७५ ईस्वीमें बंगालमें पठान राज्य शासनका अन्त हो गया। बंगाल, बिहार और उड़ीसा एक सूबे या प्रदेशके रूपमें आगरा और दिल्लीके मुगल साम्राज्यके साथ सम्मिलित हो गए। इस समयसे उत्तर भारतकी राजनीति, भाषा तथा संस्कृतिके साथ बंगालका सम्बन्ध और भी दृढ़ होता गया। बंगाली राजकार्यके लिए फारसी पढ़ने लगे, व्यवसाय-वाणिज्यके लिए पश्चिमसे आये हुए सेठ-साहूकारों और महाजनोंके सम्पर्कमें आकर (जो पंजाबी, राजस्थानी तथा उत्तर प्रदेशीय थे) ब्रजभाषा और नये सिरेसे खड़ीबोलीके साथ परिचय प्राप्त कर अभ्यस्त होते रहे। फलस्वरूप बंगालियोंकी भाषा और साहित्यपर फारसी और हिन्दीका (ब्रजभाषा और खड़ी बोलीका) प्रभाव पड़ता हुआ दिखाई देने लगा। जहाँगीराबाद या मुर्शिदाबाद, ढाका, हुगली, बर्द्धमान, चट्टग्राम—इन सभी स्थानोंपर फारसीकी चर्चा हुआ करती थी तो कहीं-कहीं पश्चिमसे आये धनी और वणिकोंके (व्यापारीके रूपमें) प्रभावसे (विशेषकर मुर्शिदाबाद अंचलमें) उस समय किन्तु हिन्दी भी स्थायी रूपसे प्रतिष्ठित हो गई। फारसी और संस्कृतके साथ नागरी अक्षरोंमें हिन्दी या ब्रजभाषाकी जानकारी उस समय किसी-किसी राजा या जमींदारकी सभा तथा नवाबके दरबारमें विद्वत्ताके प्रमाणस्वरूप गिनी जाती थी। अठारहवीं सदीके मध्यभागमें रामेश्वरने सत्यनारायणजीकी कथा "रामेश्वरी सत्यनारायण" की रचना की थी। इस ग्रन्थमें फकीरके द्वारा हिन्दी भाषाका प्रयोग कराया गया है। साधु-संन्यासी पीर-फकीर आदि काफी संख्यामें उत्तर भारतसे बंगालमें आते रहते थे, आज भी आते रहते हैं। इन सम्प्रदाय द्वारा बंगालमें हिन्दी (खड़ी बोली तथा ब्रजभाषा व अवधी) दोहा-चौपाईका कुछ-कुछ प्रचार हो गया तथा कबीरके वचन, तुलसीदासकी वाणी, सूरदास और मीराबाईके पद काफी प्रचारित हुए। पश्चिमके कलावन्त उस्ताद गवैयोंके कारण भी हिन्दीका प्रचार विशेष रूपसे अठारहवीं सदीमें बंगालमें पाया जाता है। अष्टादश शताब्दीके प्रारम्भमें तत्कालीन-नवाबोंके

कोई एक उस्ताद पश्चिम बगालके विष्णुपुरके राजा द्वारा आमन्त्रित हुए थे। वे विष्णुपुरमे ही बस गए थे। उनकी शिष्य परम्परासे विष्णुपुरमें हिन्दी ध्रुपद-खयालका एक बडा केन्द्र स्थापित हो गया जो आज भी चालू है।

बगालमे सोलहवी, सत्रहवी, अठारहवी तथा उन्नीसवी सदीमे हिन्दी प्रचारका एक उल्लेखनीय कारण था। बगालके उत्तर पश्चिममे ही उत्तर भारत पडता है। बगालकी सस्कृतिके साथ इस उत्तर-भारतकी सस्कृतिका एक योगसूत्रका आकर्षण है। नाडियोके बीचका सम्पर्क जैसा है जिससे बगालमे "पश्चिम" कहते ही हमारा मन कैसे मोहाविष्ट जैसा हो जाता है। यह बगालका "पश्चिम" उत्तर भारत ही है जो हिन्दू धर्म तथा सस्कृतिका अपना क्षेत्र या प्रकाशभूमि है। यह पश्चिम गगा, यमुना, सरयू, सरस्वतीका देश है, उससे और भी पश्चिममे पजाव पडता है, जहाँ शतद्रु, विपासा, इरावती, चन्द्रभागा, वितस्ता अठखेलियाँ करती है और सिन्धुका देश है। रामायण, महाभारत, भागवतके रामसीता, पञ्च पाँडव, कृष्ण-राधा—इनकी यह पश्चिम लीला-भूमि है। भारतकी हिन्दू सस्कृतिकी प्राथमिक पुस्तके—आदि वेद, रामायण, महाभारत, अष्टादश पुराणोका प्रचार पश्चिमके अन्तर्गत कुरुक्षेत्र, ब्रह्मावर्त, नैमिषारण्य तथा तमसा नदीके तटपर हुआ था। हमारे जितने भी प्रधान-प्रधान तीर्थ है—गया, काशी प्रयाग, अयोध्या, हस्तिनापुर, पुष्कर, हरिद्वार, मथुरा, वृन्दावन—सभी पश्चिममे है और उत्तरमें हिमालयके बीच केदार वद्री, यमुनोत्री, गगोत्री तथा कश्मीरमें अमरनाथ पडता है। प्राचीन तथा मध्य युगमे जितने भी पुण्यश्लोक महान-महान ऋषि-महर्षि, राजा-महाराजा, महामहिम नारियोने जन्म लिया, सभीने इस पश्चिममे ही जन्म लिया। भारतके धर्मकी कथा, इतिहासके गौरव-स्तम्भ, शौर्य, पराक्रम तथा रोमान्स, जैसे सबके सब यही पश्चिममे पूंजीभूत हो गए है, एकत्रित हुए है। बगालके ब्राह्मणोकी किंवदतिके अनुसार वे पश्चिमके कान्यकुब्जके ब्राह्मणोकी सन्तान है। अतएव सहज, सरल, तथा स्वाभाविक रूपसे ही प्रत्यन्त प्रदेशके मनुष्योके मनमें विशेष रूपसे बगालके लोगोके मनमें पश्चिम या उत्तर भारतके विषयमे इतना आग्रह है, तथा यहाँकी भाषाके प्रति मर्यादा-प्रतिष्ठा प्रदान करनेके लिए वे सदा प्रस्तुत है। मुगल शासन कालसे जब बगाल उत्तर भारतका एक अविभाज्य अग बन गया, तबसे यह आग्रह और भी बढ गया। ऊपरसे वृन्दावनके वैष्णवोका सयोग भी था, अत प्रबल हो गया।

अष्टादश शताब्दीके सर्वविख्यात बगाली कवि भारतचन्द्र रायगुणाकरने अपना अनवद्य काव्य बगलामे लिखा, किन्तु अपनी लिखी ब्रजभाषा तथा पछाँही हिन्दीमे रचित कुछ कविताएँ भी उन्होने अपने काव्यमें सग्रहीत कर दी है —

भाटके प्रति राजाकी उक्ति

> गग कहो गुणसिन्धु महीपति नन्दन सुन्दर क्यों नहीं आया।
> जो सब भेद बुझाय कहा किधौं नहीं तेंह समुझाय शुनाया॥
> कान लिये तुझे भेज दिया सुधी भुल गई अरु मोहि भुलाया।
> भट्ट हो अब भड भया कविताई भटाई में दाग् चढ़ाया॥

कीय व सैन्य विभागीय अँग्रेज अधिकारियोके लिए कलकत्तामे फोर्ट विलियम कालेजकी स्थापना हो गई तथा जॉन गिल्काइस्ट साहब उसके अध्यक्ष बने। इस कालेजमे नवागत अँग्रेजोको फारसी, अरबी, सस्कृत, हिन्दुस्थानी (हिन्दी और उर्दू) और बगला सिखानेकी व्यवस्था की गई। एक तो इन सब आधुनिक भारतीय भाषाओमें अच्छे गद्य ग्रन्थोका अभाव था, ऊपरसे पठन-पाठनोपयोगी बगला, हिन्दुस्तानी, (हिन्दी और उर्दू) की गद्य-पुस्तके भी नही थी, अत गिलक्राइस्ट साहबने पण्डितो तथा मौलवियोको इस उद्देश्यसे नियुक्त किया कि वे आवश्यक साहित्य प्रस्तुत करें। इन सब भाषाओमें गद्य-सृजनकी यही प्रथम प्रेरणा प्राप्त हुई। तभीसे कलकत्ता समस्त उत्तर भारतकी प्रतिभूस्थानीय नगरी बन गई। यहाँ उत्तर भारतसे आये हुए ब्रजभाषा और हिन्दुस्थानी (हिन्दी और उर्दू) के जानकार लोग भी काफी थे और उनकी अवस्थिति तथा उपस्थितिके ही कारण बगालमे प्राय समान मर्यादा हिन्दी और उर्दूको इसी कलकत्तामें मिली। तारिणीचरण मित्र जैसे बगाली-हिन्दी लेखक भी यही दिखाई देने लगे। अब हिन्दी और उर्दू साहित्यका एक प्रधान तथा छापेखानेकी बदौलत व सहूलियतसे काफी दिनोके लिए कलकत्ता एक प्रधानातम केन्द्र बन गया। हिन्दी और उर्दू साहित्यके इतिहासमे बगाल तथा कलकत्ताका दान अपरिसीम है। यहाँसे थोडी दूरपर, श्रीरामपुरमें बैपटिस्ट मिशनरियोने जो छापाखाना स्थापित किया था, वहाँसे उन लोगोने हिन्दी पुस्तके (बाइबलका अनुवाद आदि) प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया। सन् १८२६ में राजा राममोहन रायने फारसी और उर्दूमें प्रथम समाचार पत्र प्रकाशित किया था, किन्तु उर्दू अश लोकप्रिय न होनेके कारण उसके कई अक प्रकाशित होनेके बाद उसे बन्द कर दिया गया। इसी उन्नीसवी सदीके मध्यभागमें एक और व्यक्तिका उल्लेख आवश्यक है—वे हैं पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जो हिन्दीके जानकार भी थे। उन्होने हिन्दी "बैताल पचीसी" का एक सुन्दर बगला अनुवाद प्रकाशित किया था। सन् १८५७ में कलकत्ता विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई, साथ ही बगलाके साथ-साथ हिन्दी, उर्दू, ओडिया, असमियाने भी अपना-अपना स्थान बना लिया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशय कलकत्ता विश्वविद्यालयमें हिन्दीके परीक्षक बनाये जाते थे, तथा वे बगालियोके बीच नागरी लिपिके ज्ञानविस्तारके लिए विशेष आग्रहशील थे, बगालमें प्रचलित शब्दके स्थानपर उत्तर भारतमें प्रचलित विक्रम सवत की गणनाके अनुसार वर्ष प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टा भी उन्होने की थी। तारिणीचरण मित्र जैसे बगाली-हिन्दी लेखक भी कलकत्तामे दिखाई दिए।

इस युगमें जितने भी बगाली विद्वान पण्डित व्यक्ति राष्ट्रीयता-बोधके कारण हिन्दुस्तानी या हिन्दी भाषाके प्रति आकृष्ट हुए, प्राय वे सभी सस्कृत निष्ठ नागरी लिपिमे लिखित खडी बोली हिन्दीके पक्षपाती थे। सन् १८५० के बादमे जो-जो बगाली बगालसे बाहर निकलकर बिहार, उत्तर प्रदेश और पजाबमें बस गए, उनमेंसे बहुतोने नागरी हिन्दीका प्रचार किया। इनमेंसे बिहारके भूदेव मुखोपाध्याय, उत्तर प्रदेशके (प्रयागके) बेणी माधव भट्टाचार्य, सारदाप्रसाद सान्याल, प्यारी मोहन बन्द्योपाध्याय, रामकाली चौधुरी और नीलकमल मित्र तथा पजाबके नवीनचन्द्र रायका नामोल्लेख किया जा सकता है। सन् १८७८ मे मुंगेरमे कृष्णानन्द सेनने "धर्म प्रचारक" नामकी एक हिन्दी साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित की थी। विशेष रूपमे भूदेव मुखोपाध्यायकी प्रशसामें कवि अम्बिकाने भोजपुरीमे एक गीत तक रच डाला था, जिसका उल्लेख सर जार्ज ग्रियर्सनने 'Seven grammars of the Dialects and sub-dialects of

the Bihari Language Part II the Bhojpuri Dialect Calcutta, 1884 में दिया है –

धन्य धन्य ववरलिस प्रजा-सुख-कामी।
आर्यनके दूर करी नागरी चलावी॥
सुकदेव (भूदेव) करि पुकार, सब हिन्द जाई।
प्रजा-सुख दूर करहु आमली बुराई॥

तथा शिवनन्दन सहायने अपनी आत्मकथामें लिखा है —

उक्त बाबू भूदेव मुखोपाध्यायके कारण ही बिहार प्रान्तमें हिन्दीका प्रचार हुआ। उन्होंने इसके लिए बहुत कुछ यत्न किया था। उन्हींके समयमें बिहारियोंकी कुछ रुचि हिन्दीकी ओर झुकी उन्हींके समयमें बिहार प्रान्तके शिक्षा विभागके कर्मचारियोंने विद्यार्थियोंके उपयोगी कई एक पुस्तकोंकी रचना की। पूर्वोक्त "मत्त-भवित-शतक" की समालोचनामें तत्कालीन हिन्दी भाषाके प्रसिद्ध समाचार-पत्र "उचित-वक्ता" में लिखा था कि "हम लोग आशा करते हैं कि भूदेव बाबूके यत्नसे बिहार प्रान्तमें हिन्दीकी सभी प्रकारकी पुस्तकें (जिस प्रकार बंगलाम है) प्रकाशित हो जाएँगी क्योंकि जबसे उक्त महाशय बिहार प्रान्तमें आए हैं तभीसे दिनों-दिन हिन्दी पुस्तकें बढ़ती जाती हैं। यह देखकर हम लोगोंको जान पड़ता है कि कुछ दिनोंमें बिहार प्रान्तमें पश्चिमोत्तर प्रदेशकी अपेक्षा पुस्तक संख्या अधिक हो जाएगी। जो हो पर बिहारमें इस प्राथमिक उद्योगका श्रेय निस्सन्देह ही भूदेव बाबूको ही है और सर्वदा रहेगा।"

बंगालके कुछ बड़े-बड़े साहित्यिकों तथा महान नेताओंने भी हिन्दीके पक्षका समर्थन किया था। सन् १८७१ में बंगालमें ब्राह्म समाजके अन्यतम प्रख्यात नेता ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र सेनने अपनी सम्पादित "सुलभ समाचार" पत्रिकामें इस प्रकार लिखा था –

यदि भाषा एक न होनेपर भारतवर्षमें एकता न हो तो उसका उपाय क्या है? समस्त भारतवर्षमें एक भाषाका प्रयोग करना इसका उपाय है। इस समय भारतमें जितनी भी भाषाएँ प्रचलित हैं उनमें हिन्दी भाषा प्रायः सर्वत्र प्रचलित है। इस हिन्दी भाषाको यदि भारतवर्षकी एक मात्र भाषा बनाई जाय तो अनायास शीघ्र ही सम्पन्न हो सकती है। किन्तु राजाकी सहायता न पानेसे कभी सम्पन्न नहीं हो सकती। अब अंग्रेज लोग हमारे राजा हैं। वे जो इस प्रस्तावसे सहमत होंगे यह विश्वास नहीं किया जा सकता। भारतवासियोंमें अनैक्य नहीं रहेगा वे परस्पर एक हृदय हो जाएँगे यह सोचकर अंग्रेज शायद डर जाएँगे। वे सोचते हैं कि भारतवासियोंमें अनैक्य न रहनेसे ब्रिटिश साम्राज्य टिका नहीं रह सकता। भारतवर्षमें जो-जो बड़े बड़े राजा हैं वे ध्यान दें तो यह कार्य प्रारम्भ हो जाय। जिस प्रकार एक भाषा करनेमें कष्ट उठाना कर्तव्य है उसी प्रकार उच्चारण भी एक रूपमें करनेके लिए कष्ट उठाना कर्तव्य है। भाषा एक न होनेपर एकता नहीं हो सकती।

अनुरूप आशयसे युक्त बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय द्वारा सम्पादित "बंग-दर्शन" में लिखा गया एक लेख सन् १८७७ में प्रकाशित हुआ था। इस लेखके लेखक स्वयं बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय रहे ऐसा लगता है। लेखका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है —

उपसंहारमें मैं सुशिक्षित बगभाषियोको एक बात बतलाना चाहता हूँ। भारत भरमे वे ही सबसे अधिक पाश्चात्य ज्ञानोपार्जनमें सफल हुए हैं . अँग्रेजी भाषा द्वारा जो भी हो, किन्तु हिन्दीकी शिक्षा प्राप्त न करनेसे किसी भी प्रकार काम चलानेका नही। वे हिन्दी भाषामें पुस्तक रचना तथा भाष , द्वारा भारतके अधिकाश स्थानोका मगल-साधन करेगे, केवल बगला और अँग्रेजोकी चर्चासे यह होनेका नही। भारतके निवासियोकी सख्याकी तुलनामे बगला और अँग्रेजीके बोलने और समझनेवालोकी सख्या कितनी है? बगालकी तर h हिन्दीकी उन्नति नही हो रही है, यह दुर्भाग्यका विषय है। हिन्दी भाषाकी सहायतासे भारत वर्षके विभिन्न प्रदेशोके बीच जो लोग ऐक्य-बन्ध स्थापित कर सकेगे, वे ही सच्चे भारत-बन्धुकी सज्ञा पानेके योग्य होगे। सभी चेष्टा करें, प्रयत्न करें, जितने भी समयके क्यो न हो, मनोरथ पूर्ण होगा।

स १ १८९२ से पहले महान शिक्षाशास्त्री तथा लेखक भ्देव मुखोपाध्यायने अपनी "आचार-प्रवन्ध" पुस्तकमे अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया था ---

भारतवासियोके बीच प्रचलित भाषाओमें हिन्दी-हिन्दुस्थानी ही प्रधान है। परन्तु मुसलमानोकी कृपासे यह सर्वत्र महादेशव्यापक बन गई है। अतएव यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इसीके सहारे और अवलम्बन मानकर ही कभी भविष्यमे भारतवर्षकी समस्त भाषाएँ सम्मिलित हो , केंगी।

स्वदेशी आन्दोलनका प्रारम्भ होते ही उपेक्षित मातृभाषाके प्रश्नपर चर्चा होने लगी और इस विषय-पर बडा बल दिया जाने लगा। विशेषरूपसे बगालमे, जहाँ कि भाषा विभक्त प्रदेशका अमर प्रतीक बन गई। परन्तु अब भी हिन्दुस्तानीको अपना महत्त्व नही दिया गया था। बगालके एक राजनैतिक नेता पत्रकार कालीप्रसन्न 'काव्य विशारद' ने उस समयमें भी हिन्दीके महत्त्वको स्वीकार किया था और उत्तर भारतमे जनप्रियताका भी ध्यान रखा था। उन्होने एक अत्यन्त प्रचलित राष्ट्रीय गान भी रच डाला था, जिसे सन् १९०५-१२ के स्वदेशी आन्दोलनके दिनोमें बगाली नवयुवक कलकत्ताकी सडकोपर तथा बगालके सभी स्थानोपर गाते फिरा करते थे। उस गानकी प्रारम्भिक पक्ति इस प्रकार थी --

मैया, देशका ई क्या हाल?
खाक मिट्टी जौहर होती सब, जौहर है जजाल

और इस पक्तिसे समाप्त होता था ---

हो भारत-मान देशके सन्तान, करो स्वदेश हित।

उन्नीसवी सदीके अन्तिम दशक पर्यन्त कलकत्ता हिन्दी साहित्य तथा पत्र-पत्रिकाओका एक प्रधान केन्द्र था। हिन्दी रचनाओमें बगाली लेखकोका भी यथेष्ट हाथ था। कलकत्ताकी बगला "बगवासी" पत्रिकाके हिन्दी सस्करण "हिन्दी बगवासी" ने पचीस वर्षोंसे भी अधिक काल तक लगातार हिन्दी भाषा और साहित्यकी सेवा की है। इस पत्रिकाके गौरवपूर्ण दिनोमे बगाली-हिन्दी लेखक अमृतलाल चक्रवर्ती तथा ब्रजमण्डलके पण्डित प्रभुदयाल पाण्डे और हरिआवा प्रान्तके बालमुकुन्द गुप्त इसका सचालन करते थे। बगालके बाहर भी कई एक बगाली-हिन्दी लेखकोने विशेष साहित्यिक प्रतिष्ठा प्राप्त की है जिसमे स्वर्गीय किशोरीलाल गोस्वामी, स्वर्गीय डाक्टर नलिनीमोहन सान्याल, ऊषारानी मित्रा, मन्मथनाथ गुप्त आदि है तथा बगलासे हिन्दीमें अनुवाद-साहित्यके क्षेत्रमें भी कई एक बगाली-हिन्दी अनुवादकोने अपनी प्रतिभाका अच्छा परिचय दिया है। इसी प्रकार उर्दूके क्षेत्रमें बगाली लेखक बाबा जमनादासका उल्लेख किया जा

सकता है। प्रयागकी बंगाली संस्था इण्डियन प्रेसकी हिन्दी सेवाएँ सुपरिचित हैं। इसके बंगवासी प्रतिष्ठाता तथा सत्वाधिकारीने 'सरस्वती' पत्रिकाका प्रकाशन प्रारम्भ किया था एवं इसका नाम सार्थक प्रमाणित हुआ है। पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीके सम्पादनकालमें इसी 'सरस्वती' के माध्यमसे आधुनिक हिन्दी गद्य शैली परिष्कृत और परिमार्जित प्रसाद गुण सम्पन्न और ओजस्विनी एवं व्यंजना शक्तिकी अधिकारिणी बन सकी। इसी संस्थाने अति जनप्रिय एक साप्ताहिक पत्रिकाका प्रकाशन भी आरम्भ किया था जो उस युगके लिए अनुकरणीय घटना—जैसी थी। इस युगमें भी इस संस्था द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य देखकर आश्चर्यान्वित हो जाना पड़ता है। इसी प्रकार कलकत्तासे रामानन्द चट्टोपाध्यायने अपनी सम्पादित बंगला मासिक 'प्रवासी' तथा अंग्रेजी मासिक 'माडर्न रिव्यू' के साथ-साथ समपर्याय युक्त नाम 'विशाल भारत' नामसे हिन्दी मासिक पत्रिका प्रकाशित कर बंगवासियोंकी ओरसे हिन्दीकी सेवा की थी।

इस प्रसंगमें हिन्दी साहित्यकी आलोचना तथा बंगालियोंके बीच उसके प्रसारके लिए जिन विद्वान पण्डित तथा सुलेखकोंने आत्मनियोजित किया था उनका भी यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है। इन व्यक्तियों-में विश्वभारतीके पण्डित क्षितिमोहन सेनका नाम सर्वप्रथम आता है। कबीर और दादूकी रचनावली तथा मध्ययुगीन सन्त परम्पराके साधु-सन्तोंकी वाणीको बंगाली पाठक-समाजमें प्रचारित कर पण्डित सेनने बंगाली तथा हिन्दी भाषी उभय जनसमाजको कृतार्थ किया है। कई एक बंगाली लेखकोंने 'रामचरितमानस' का बंगलामें अनुवाद किया है। स्वर्गीय नलिनीमोहन सान्यालने एक ओर हिन्दीमें पुस्तकें लिखी हैं तो दूसरी ओर सूरदासके निर्वाचित पदोंका बंगलामें अनुवाद भी किया है। इनके अलावा छोटे-बड़े बहुतेरे बंगाली हिन्दी भाषा और साहित्य विषयके अनुवादकों तथा निबन्धकारोंके नामोंका उल्लेख किया जा सकता है।

उत्तर भारतके साहित्य और संस्कृतिके साथ उत्तर भारतके मनन और चिन्तनके साथ मध्ययुगीन उत्तर भारतकी आत्माके साथ परिचय प्राप्त कर स्वयं लाभवान होनेके लिए बंगवासी और बंगभाषी जन-गणने इस प्रकार गत हजार वर्षसे आत्म नियोजित कर रखा है। यह कार्य बंग भाषियोंने किया है—"स्वान्तः सुखाय। स्वेच्छासे बंगालियोंने हिन्दी सीखी है, स्वेच्छासे सीख रहे हैं, स्वेच्छासे भविष्यमें सीखेंगे।

कश्मीरकी हिन्दीको देन

लेखक

श्री पृथ्वीनाथ 'मधुप'

सशोधक और सवर्धक

प्रो जे डी जाडू

प्राचीन कालसे ही कश्मीर सरस्वतीकी साधनाका प्रमुख स्थल रहा है। पीयूषवर्षिणी सस्कृत भाषा एव साहित्यको कश्मीरने अपूर्व देन दी है। सस्कृत साहित्यके इतिहासमे मुक्ताकण, शिवस्वामी, आनन्दवर्धन, क्षेमेन्द्र, विल्हण, कतृण, सोमदेव, गुणाढ्य, अभिनवगुप्त, उत्पल, कैयट, मम्मट, मख और कवि जगद्धर भट्ट आदि बीसियो सरस्वती पुत्रोका स्वर्णाक्षरोमे नामाकन है।

सस्कृत ही नही, अपितु मुस्लिम राजकालमे कश्मीरने फारसी साहित्यको भी प्रचुर विपुलता प्रदान की है। साकी और मयखाना के खुमारसे पूर्ण उर्दू अदबके निर्माणमें भी कश्मीरका काफी हाथ रहा है। भला यह कैसे सम्भव होता कि कश्मीर भारतीय जन-जनके मनकी धडकनोकी भाषा हिन्दीको अपनाने और इसके साहित्यको समृद्ध करनेमें विपुलता देनेमे पीछे रहता। हाँ, कालचक्रकी गतिने इसमें शिथिलता अवश्य लाई है।

कश्मीर प्रान्तमे हिन्दीका प्रचलन कबसे आरम्भ हुआ ? देश और देशवासियो तथा उनकी भाषा-पर इसका कितना प्रभाव पडा है ? यहाँके शिष्ट वर्ग और सन्त कवि इससे कितने प्रभावित हुए ? इन प्रश्नोका एक लम्बे अनुसधानसे सम्बन्ध है। परन्तु इतिहासका अनुशीलन करनेके पश्चात् इस तथ्यकी ओर स्पष्टतया सकेत मिलता है कि चिरकालसे काशी और कश्मीरका पारस्परिक सम्पर्क रहा है। दोनो देश विद्याके केन्द्र माने गए हैं। दोनो के नाम आदरसे लिए जा रहे हैं। धार्मिक, सामाजिक तथा नैतिक समस्याओकी जटिलताके सुलझानेमें यहीके आचार्य प्रवीण माने जाते हैं। विद्याके केन्द्र होनेके कारण यहाँके आचार्यों तथा विद्वानोका भिन्न-भिन्न विषयोंके सम्बन्धमें विचार-विनिमय होना आवश्यक था। असीम विद्यानुराग, दीर्घकाल साध्य दुर्गम यात्राके क्लेशोकी अवहेलना करते हुए, यहाँके आचार्य एक दूसरेकी ओर

आकृष्ट होते थे दोनों एक दूसरेकी सौहार्द-सुधाके पिपासु थे। दोनों स्थानोंके पण्डित एक दूसरेके साहित्य-भण्डारके समालोचक थे। ये समालोचनाएँ तर्क विचार तथा एक दूसरेके विषयमें सम्मतियाँ किस भाषामें हुआ करती थी? अथवा राजसभाओंमें भिन्न भिन्न विषयोंपर तर्क-वितर्क वाद-विवाद अथवा देशोंके महापण्डितोंका विचार विनिमय किस माध्यमसे हुआ करता था? निस्सन्देह ही यह कहा जा सकता है कि यह सब कार्य भारतकी उस समयकी राष्ट्रभाषा संस्कृतमें अथवा जनताकी भाषा हिन्दीमें होता था। दोनों देशोंके तत्कालीन बहुसंख्यक शिष्ट वर्गमें संस्कृत सभ्यता तथा शास्त्रीय विचारोंका पारस्परिक आदान-प्रदान देशीय भाषाओंमें ही पर्याप्त-रूपसे रहा है। अतः एक सहस्र वर्षसे पूर्व भी यदि कश्मीरमें हिन्दी भाषाके किसी रूपान्तरका आगमन स्वीकार करें तो इसमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

हिन्दी भाषाके रूपान्तरोंका सम्मिश्रण अथवा प्राकृत अपभ्रंशोंका समावेश बहुधा संस्कृत कविताओंमें पाया जाता है। यह रीति चिरकाल तक संस्कृत कवियोंमें आदरणीय रही है। इसी परम्पराके अनुकूल अन्य देशी भाषाओंमें भी द्वि-भाषीय रचनाओंका प्रचार हुआ है। जितनी भाषाओंका सम्मिश्रण जिसकी रचनामें पाया जाता था उतना ही उसे विलक्षण बुद्धिका चमत्कारी कवि स्वीकार किया जाता था। इस कलाका व्यवहार यहाँ तक बढ़ गया कि कविगण द्वि-भाषा मिश्रित ही नहीं अपितु बहुभाषा मिश्रित रचनाएँ करने लगे। कई रचनाएँ ऐसी भी मिलती हैं कि एक तरफसे पढ़ो तो संस्कृत ही संस्कृत है और दूसरी तरफसे पढ़ो तो प्राकृतकी कविता जान पड़ती है। उदाहरण अनेक हैं। सबके निर्देश करनेकी आवश्यकता नहीं। केवल इस बात पर ध्यान आकर्षित किया जाता है कि दसवीं शताब्दीमें कश्मीरके प्रसिद्ध कवि श्री आनन्द वर्द्धनाचार्यकी रचना ईश्वर शतक में एक ऐसा श्लोक पाया जाता है जिसमें कविके कहनेके अनुसार छह भाषाओंका समावेश है—(षड्-भाषा मिश्रितोऽयं श्लोकः) श्लोककी मुख्य भाषा संस्कृत और उसीमें छह भाषाएँ समाविष्ट हैं। टीकाकार भी इन छह भाषाओंका पृथक पृथक उल्लेख नहीं कर पाए हैं। सम्भव है हिन्दीका भी कोई रूपान्तर इसमें समाविष्ट हो।

ग्यारहवीं शताब्दीके प्रसिद्ध कवि श्री क्षेमेन्द्रकी कई रचनाओंसे यह स्पष्ट होता है कि कश्मीरमें तत्कालीन विद्यालयोंमें भारतीय छात्र अध्ययन करते थे जिनमें गौड़ छात्रोंका विशेष उल्लेख किया गया है। इनके लिए शिक्षाका माध्यम संस्कृत तो था ही परन्तु यदि किसी-न-किसी रूपमें हिन्दीका माध्यम भी उपयोगमें लाया गया हो तो यह असम्भव प्रतीत नहीं होता।

यशकी प्राप्ति तथा धनार्जनके लिए कश्मीरके अनेक कवि समय-समयपर भारतीय नरेशोंकी सभाओंको सुशोभित करते थे। संस्कृतके अद्वितीय कवि होनेके कारण उनका सम्मान और उनकी पूजा सर्वत्र हुआ करती थी। विक्रमाङ्कदेव चरितके रचयिता कवि बिल्हणका जीवन इस विषयमें विशेष उल्लेखनीय है। घर लौटनेपर ये सामान्य कविपुङ्गव धन और मानके साथ भारतीय भाषा हिन्दीके संस्कारोंको अपने साथ लेना न भूल सकते थे।

परन्तु कश्मीर बहिर्गत न रहा तथा उनकी भाषापर भी हिन्दीका उत्तरोत्तर प्रभाव पड़ता गया उसका मुख्य कारण था कि भारतीय पुरानें आचार्योंका तदनन्तर भारतीय साधु-सन्त समाजको तत्पश्चात् भारतीय पर्यटक वर्गका है। सुन्दर कश्मीरका शारदा पीठ विश्वविद्यालय इसके तपस्वियोंका आध्यात्मिक ज्ञानपूर्ण पावन सम्पर्क इसके चिरविख्यात अनेक तीर्थस्थानोंका महत्त्व इसकी प्राकृतिक सुषमा इनके

नानाविध मोहक दृश्य, इसके स्वच्छ सरोवरोमे विकसित कमलोका सुगन्धित समीर, इसकी पौष्टिक जलवायु, इसके स्वास्थ्यप्रद स्थान, इसके मधुर फलोके रसास्वादकी लालसा, किस योगी, रोगी, भोगीके लिए आकर्पणके कारण नही हुए है ? कश्मीरमे भारतीयोका आगमन अति प्राचीन कालसे होता आया है। इनके सम्पर्कसे कश्मीर वासियोको भारतकी भाषाओका परिचय भी प्राप्त हुआ है, विशेपकर हिन्दीका। उनके रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रस्मसे भी कश्मीरी पर्याप्त मात्रामें प्रभावित हुए हैं। अभिप्राय यह है कि भिन्न-भिन्न प्रकृतिके भारतीय आगन्तुकोसे कश्मीरवासियोने अपनी प्रतिभा-प्रशस्तिके अनुकूल विद्यामें, कलामे, अध्यात्ममे, आचारमें, कवितामे, भापणमे कुछ-न-कुछ शिक्षा ग्रहण की है, जिससे इसके मानसिक क्षेत्रमे परिवर्तन होना अनिवार्य था, विशेपकर साधु, सन्त और परमहम-सन्यासी इत्यादिसे जो हिन्दी भाषा द्वारा उसके विचार विनिमय हुआ करते थे, उनसे भी वह वहुत प्रभावित हुआ है। हिन्दी समझना या सीखना कश्मीरीके लिए अधिक कठिन नही था, क्योकि हिन्दीके तद्भव-तत्सम शव्द कश्मीरी भाषासे भिन्न नही है। यद्यपि प्रान्तीयताके कारण उच्चारणमे कुछ अन्तर अवश्य है। उदाहरणार्थ—

कश्मीरी	हिन्दी	कश्मीरी	हिन्दी
कन	कान	अथ	हाथ
दन्द	दान्त	पोन्य्	पानी
वुठ	होठ	सिर्य्	सूर्य
अछ	आँख	जल्	जल
निथ्र	नेत्र	रस	रस
मूख	मुख	रूप	रूप
परुन	पढना	स्वन्दर	सुन्दर
लेखुन	लिखना		

इत्यादि,

और भी अनेक शव्द हैं जिनका निर्देश करना यहाँपर वाछित नही। शुद्ध हिन्दीमे दिया हुआ भाषण कश्मीरीके लिए सुवोध है। साराश यह है कि कश्मीरमे हिन्दी भाषाका प्रचार अनायास ही साधु-सन्तो द्वारा हुआ है। वहुभाषा प्रिय कश्मीरीने भी सन्तोकी वाणी ग्रहण करनेमें अपनी रुचि प्रदर्शित की। आस्तिक तथा धार्मिक जनतापर इसका अधिक प्रभाव पडता गया। यहाँ तक कि कश्मीरी भाषाका कवि भी द्वि-भाषामयी अर्थात् हिन्दी-कश्मीरी मिश्रित कविता करनेमे अपना उत्कर्ष समझने लगा। लोग भी इसकी कला-प्रवीणतापर मुग्ध होने लगे। क्रमश कश्मीरी भाषाके कवि भी हिन्दीमे कविता करने लगे जिसका वर्णन अगले पृष्ठोपर अकित किया गया है।

यहाँपर इस वातका उल्लेख करना अनुचित न होगा कि उन्नीसवी शताब्दीके उत्तर कालमें श्री महाराणा रणवीरसिंहने हिन्दी और डोगरी भाषामे देवनागरी लिपि द्वारा अपना सारा राज्यकार्य चलाया था। सस्कृतकी पुस्तकोका भी हिन्दीमें अनुवाद काशीके पण्डितोंसे करवाया था जो अनुवाद पुस्तकालयोमें सुरक्षित हैं। परन्तु महाराजा प्रतापसिंहके शासनकालमें पजावसे आए हुए उर्दू-फारसी पढे हुए मन्त्रियोने अपनी सुविधाके लिए, हिन्दी-डोगरीको पदच्युत करके उर्दू-फारसी को ही राज्य-कार्यवाहीके लिए प्रचलित किया। साथ-साथ ही अँग्रेजीका भी समावेश होता गया।

१—भिक्षा माँगन खान बनायो,
आयो शिवजी गोकुलमें।
ना कुछ समझा ना कुछ बोला,
खोला नहीं नेत्र विशाल।
मौनी होके धोनी तपायो—आयो० ॥
अन्तर्यामी स्वामी देखा
भीतर बाहर पूरण-मय।
बालकृष्ण मुख उससे छुपायो—आयो० ॥

२—चाहे देखो सुदर्शनका
मनका दीवा भाल।
हृदि मन्दिरमें श्यामसुन्दरको
सोऽहं जप जप जपो ओंकार।
प्रणव उपासन करो निशिदिनका—मनका० ॥

३—क्या है जग कोई जानता नाहीं,
ज्ञान बिना पहचानता नाहीं।
मन कसा तन मथुरा होन्दा
कृष्ण आत्मा हृदि गोकुल रहन्दा।
नारद विवेक सच सनेहा देंदा ......॥

४—जागो जागो श्यामा चढ गया दिन,
आ दूध पीने जायो न्हायो बदन।
+ + +
परमानन्दको भी ले चल साथ,
टुर न सके तुम पकडो हाथ।
आजसे बिचारेको ना रखो भिन्न...... ॥

५—भज गोविन्दका नाम और क्या काम।
इस वाणीका स्वाद पावे सद्‌गुरुका प्रसाद।
सद्‌गुरुका प्रसाद पावे कोई होवे साद।
काया लेकर माया छोडो यह टूटी उपाध।
माने सच पैगाम—भज गोविन्दका नाम ॥

महाकवि परमानन्दके पश्चात् क्रमश जो महानुभाव हिन्दीसे प्रभावित हुए, इनमेंसे उल्लेखनीय व्यक्तियोंकी नामावली इस प्रकार है—

श्री लक्ष्मणजी—यह महाकवि परमानन्दके समकालीन तथा इनके अनन्य शिष्य थे। यद्यपि इनकी स्वतन्त्र हिन्दी कविता उपलब्ध नही है, परन्तु इन्होने अपनी कश्मीरी कविताओंमें हिन्दीका पर्याप्त

प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ —

१—गोविन्द नामा श्याम कलेवर निकाला।
राम सुदामा गोविन्द कृष्ण विशाला।
योगी जोगी त्वम् विकारी ब्रह्मचारी॥
अमा-कारो कुछ त बु मा कुनि बोला।
हरिकुम गौशल आति नौगा क्यपि होला।
होवा क्या अब तुम न होने उपकारी॥

२—हर मुख हरनस छो हर वे लाहर
भितर बाहर हर हर ओम्।

श्रीकृष्णदास = श्रीकृष्ण राजदान

आप कश्मीरी भाषाके एक प्रसिद्ध कवि हुए हैं। इनका जन्म १८५ ई के लगभग अनन्त नाग तहसीलमें स्थित वनपुट्ट ग्राममें हुआ था। इनकी रचनाओंमें हिन्दी मिश्रित कविताएँ प्राप्त होती हैं। कविताओंके विषय हैं—भक्ति उपासना योगाधारणा मुक्तिफलप्राप्ति इत्यादि इत्यादि।

बाल्यावस्थामें ही ये महादेवके प्रसादसे कश्मीरीमें निरर्गल कविता करने लगे थे। अन्य-अन्य कविताओंके अतिरिक्त आपका शिवलग्न अर्थात् शिव परिणय काव्य कश्मीरी जनतामें बहुत प्रसिद्ध है। यह काव्य म म प मुकुन्दराम पून द्वारा रचित संस्कृतानुवाद सहित एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता ने १ १३ ई में प्रकाशित किया है। आपकी काव्य-शैली प्रवाहयुक्त तथा नाना छन्द अलंकारोंसे सजी हुई है। कई कविताएँ तो बहुत सुन्दर हैं।

कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं —

१—मकर कुठब म कर शिवनाम-शिवनाम
सुनाता हूँ तुझे अब मैं अर्भकी बात्।

[मधु-ओष्ठोंसे मत करो अब शिवनाम-शिवनाम अर्थात् शिवनाम मत जपो—मैं तुम्हें सच्चे अर्भकी बात सुनाता हूँ—हे पार्वती!]

२—कनी तरतील श्याम कल लव च मैम कुन
अरे राजेकी कुमारी बल मेरी सुन।

[तुम्हारा पीतम सोनेमें परिवर्तित होगा काल अर्थात् ध्यान मेरी तरफ रखो। हे राज कुमारी! मेरी बल अर्थात बात सुनो।]

३—राधाकृष्ण राजा ग्वाला
अरे नन्द लाला अरे निकाला।
+ + +
निरंजन्-माला बालगोपाला
देवकीनन्दना दीनदयाला,
अरे नन्द लाला बंसरीवाला।

४—सूर्यरूप माया छह (है) चानि (तेरी) छाया।
जिस माया का भेद किसीने न पाया।
पान् (स्वय) छुख (हो) मायायि मज (मायामें) निर्माया,
वह माया देवलोक देखने आया— . ।

श्रीकृष्ण राजदानकी बहुत सारी कविताए श्री महाकवि परमानन्दकी कविताओसे प्रभावित हुई देखने मे आती हैं। अनुप्रास, श्लेष तथा यमक अलकारोकी प्रचुरतासे आपकी धारावाहिक कवितामें चार चाँद लगे है। विवाहोत्सवोपर आपके रचित गीत महिलाएँ घर-घर गाती हैं।

श्री ठाकुर जू मनवटी—हिंदी काव्य रचना की दृष्टिसे कवि परमानन्दके पश्चात् (१८५० ए डी १९२६ ए डी) का नाम उल्लेखनीय है। श्रीमनवटी सनातन धर्मानुयायी वेदात मार्गी पडित थे। आपकी कविताएँ वेदान्तके विचारोंसे भरी पडी हैं। आप अपने समयके एक प्रसिद्ध एव सफल अध्यापक थे। आपने अपनी कविताओका एक सग्रह 'अमृत सागर' नामसे छपवाया था। इसमे दोनो भाषाओकी (हिंदी और कश्मीरी) कविताएँ सग्रहीत है। श्री नीलकण्ठ शर्माने मुझे इनकी कई हिन्दी कविताएँ सुनाई। महाकवि परमानन्दकी कविताओकी अपेक्षा इनकी कविताएँ सुगमतासे समझमे आती हैं। इनकी भाषामे यद्यपि उर्दूका पुट है, परन्तु वे हैं अत्यन्त सुलझी हुई। इनकी रचनाओका नमूना देखिए —

कर दया तू हे दयालु, दे तू आँखें ज्ञानकी,
तमसे गममें थम गया हूँ चाह मुझे निर्वाणकी।
मायाका विलास सारा तुमने जो उत्पन्न किया।
में उसीमें सो गया हूँ तुम जगाओ कर दया।
ना बुरा मैं जानता हूँ ना भला मैं जानता
तुम हरे सबसे परे तेरी दया मैं मानता।

\+ + +

२—मन तुझ बिन तडपता है श्रीकृष्ण मुरारी,
श्रीराम राम राम राम राम राम जी।
जूमर जैसा मैं घूमता गम पाता हूँ बहुत,
भ्रमसे मुझे गम ना छुटे फिर भ्रमसे जन्म-मृत।
जन्मादिकोंके दुखसे चाहता हूँ निवृत्ति,
श्रीराम राम राम राम राम रामजी॥

\+ + +

४ श्री **हलधर जू कूकरू**—श्री कूकरू जी प ठाकुर जू मनवटीके समकालीन तथा इनके शिष्य हुए हैं। आप भी वेदान्त दर्शनानुयायी कश्मीरी मत कवि हुए हैं। आपकी कई कविताओकी एक हस्तलिखित प्रति श्री नीलकण्ठ शर्माके पास सुरक्षित है। इस पाडुलिपिके पढनेके पश्चात् मुझे इसमें कुछ हिन्दीकी कविताएँ भी मिली। अपने गुरुकी भाँति ही इनकी कविताओंमें भी उर्दूका समिश्रण है। अपने गुरुकी अपेक्षा इनकी हिन्दी कविताओमें प्रेषणीयताका गुण कम है। मुझे इनकी एक ऐसी कविता भी मिली, जिसकी पहली दो

पंक्तियाँ हिन्दी और सिन्धी की पंक्तियाँ कश्मीरीमें हैं जो हमें बरबस रहीमकी याद दिलाती हैं। इन पंक्तियोंका आस्वादन कीजिए —

तुम बिन मुझको ना है करार
आ कर मुझको साक्षात्कार।
+ + +
यदि उर हरि हो सुहृद मति मले
त्यजि कूलि व्यथ-यदि सत् विचार।
सबसे पहले सबसे पिछले
सबसे हरहर सारहि सार ॥

इनकी काव्य रचनाका नमूना भी देखिए —

१—जब तुम ने ढूंढा जब पहचान भों हरे।
साक्षात् सन्मान नाराज भों हरे।
हरिभक्ति में डर नहीं करना
बाहर भीतर आप ही अपना।
यदि सर छोड़ कर घर ध्यान भों हरे।
+ + +
भाई बाप न तुम न भाई,
धन के लोभी धन दिला नाही।
इनके पीछे क्यों परेशान भों हरे।
जो जो जिसके मर्दे पर लिखा है।
सो सो उस को मिले क्या डर है।
अपना आन पछान (पहचान)
आन पहान भों हरे।

२—सो हमने रस्ता जो भूल गया था।
घरमें गंगा स्नान नजरसे।
+ + +
हम तुम ना है हम तुम रचना,
रचना में बोलना और सुनना।
निश्चिन्त निर्भय मन हरी हर से।
घर में गंगा स्नान नजर से ॥

३—हाथ जोड़कर सद्गुरु के पास जाकर,
सद्गुरु कराकर मन हरीहर।
मेरी न कहीं हुआर न तेरी।

सद्‌गुरु ढूंढ़कर बन कर अमीरी,
छोडकर दर्दिसर पकडकर फकीरी . ॥

मास्टर जिन्दा कौल (मास्टरजी) —श्री जिन्दा कौलजी १८८० ई मे श्रीनगरके शिहलीट नामक स्थानमे पैदा हुए है। आप अपने समयके एक सुयोग्य अध्यापक समझे जाते थे। आप महाकवि परमानन्दके परम भक्त है। आधुनिक कश्मीरी सन्त कवियोमे आपका प्रमुख स्थान है। आपको अपने एक मात्र कविता सकलन "स्मरण" पर साहित्य एकादमीका ५००० का पुरस्कार मिल चुका है।

सन् १९४१ ई मे मास्टरजीकी 'पत्र पुष्प' नामसे एक पुस्तिका छपी है। इसमे आपकी पाँच हिन्दी कविताएँ सग्रहीत है। ये क्रमश निम्नाकित है —

१ नववर्ष (नवर्यह) सम्बन्धी सन्देश।
२ प्रेम कन्हैया।
३ ध्रुव नारायण सम्वाद।
४ भ्रातृभाव
५ पतझडमे चिनारका पत्ता।

इन कविताओका साहित्यिक मूल्य अधिक नही है, परन्तु ऐतिहासिक महत्वकी न्यूनता भी नही है। कुल मिलाकर "पत्र पुष्प" की कविताओमे प्रेम और विश्वबन्धुत्वने प्रधान स्वर पाया है। दो-एक उदाहरणोका अवलोकन कीजिए —

१—प्रेम तो सुख प्रत्यक्ष है
द्वेष प्रकट सताप।
प्रेम समान तो पुन नहीं
द्वेष समान न पाप।
२—सारे देशमें चल पडे जिस से प्रेम की लहर।
सींचे सूखे खेतको यह् गगा की नहर॥
२—स्वामिन् सर्वेश्वर सर्वाश्रय,
सर्वाकार प्रणाम।
भगवन् विश्वात्मन् विश्वभर,
विश्वाधार प्रणाम॥
आप हे बन्धु भ्राता,
आप पिता और माता।
आप ही धन और दाता,
प्रतिपालक और त्राता,
आप को वारवार प्रणाम॥
३—ईश्वर इच्छा इन सव में से,
जीव को हाके जाती हैं।

जड़ प्रकृति तब कालान्तर में
क्रम से उन्नति पाती है।

अन्त में श्रम और प्रज्ञा द्वारा
प्रभु में आत्म समाती है॥

पण्डित नीलकण्ठ शर्मा —श्री शर्माजी सन् १८८८ ई० में ब्रव (सादीपुर) नामक गाँव—तहसील गान्दरबलमें एक मध्यम-वर्गीय कश्मीरी पण्डित घरानेमें उत्पन्न हुए हैं। आपकी शिक्षा-दीक्षा घरपर ही हुई। अल्पवयसे ही आप कश्मीरी में कविताएँ करते थे। आप आधुनिक कश्मीरी साहित्यके शीर्षस्थ महाकवि माने जाते हैं। आपकी सुप्रसिद्ध कृति 'रामायण शर्मा' अर्थात् कश्मीरी रामायणका अध्ययन करते हुए मुझे इसमें हिन्दीकी कई रचनाएँ दृष्टिगोचर हुईं। आपकी हिन्दी सुलझी हुई है। हिन्दी कविताएँ भी आपकी कश्मीरी कविताओंकी भाँति भक्तिरस-सनी तथा प्रसाद-गुणयुक्त हैं। कुछ कविताओंका आस्वादन कीजिए —

१—जय जय प्रभु विभु दीनदयाला
जय जय राम खरारी।
जय परिपूरण पीताम्बर-धर
असुर वंश निवारी।
सर्वाधारा निर्-आकारा
त्रिभुवन तारा प्यारा।
तू है सब में व्यापक निर्मल
तू है सब से न्यारा।
कर्ता धर्ता हर्ता भर्ता
भक्तजनके हितकारी।
ना मैं जानूँ भक्ति तेरी
ना मैं जोग पछानूँ।
ना मैं धर्मी ना मैं कर्मी
ना कोई साधन जानूँ।
मैं हूँ मतिमन्द बालक जैसा,
तू मेरा रखवारी॥

२—हे रघुनंदन जय रघुनंदन
जय जय त्रिभुवन सार।

\+ \+ \+

अन्त तुम्हारा किसने जाना
किसने पाया भेद।

कहते गाते वर्णन करते
ऋषि मुनि चारों वेद।
कह कह सब गए हार।। जय ।।
नीलकठ हूँ दास तुम्हारा
त्रास निवारो जी।
दिखलाओ अपना सुन्दर मुख,
दु ख सहारो जी।
तू है सरजन हार।। जय ।।

श्री दीनानाथ "नादिम"—कश्मीरी काव्यको नया मोड देने वाले कवि श्री 'नादिम' भी पहले पहल हिन्दी कविताएँ किया करते थे। श्री नादिमजी सन् १९१६ ई मे श्रीनगरमे पैदा हुए। आजकल आप हिंदू हाइस्कूलके प्रिंसिपल है। आपकी हिन्दी कविताएँ काफी लोकप्रिय बनी थी। इनकी कविताओमे गजबका प्रवाह है। आपकी "कलिगसे राजघाट तक" नामक कविता काफी प्रसिद्ध हो चुकी है। इसी कविताके एक अश का अवलोकन कीजिए —

१—यह कर दिया
वह कर दिया।
यह किसलिए
वह किसलिए?
विजय के लोभ के लिए?
विजय के लोभ के लिए-अशोकने।
२—कलिगके ललाटपर कया लिखी।
विजयकी हारकी कथा।
स्वदेश प्यारकी कथा।
मनुष्य रक्तसे नहा नहाके।
लाल रगसे ।।

सहभाषा कालके अनन्तर प्रचार सृजन कालका आरम्भ होता है। बीसवी शताब्दीके पूर्वार्द्धसे कश्मीरमे हिन्दी प्रचारको काफी गति मिली, जिसके परिणामस्वरूप स्वतन्त्र रूपसे हिन्दी लेखनकी ओर साहित्यकारोका झुकाव बढता गया और कई हिन्दी पत्र पत्रिकाओका जन्म हुआ। हिन्दी प्रचार कार्य तथा हिन्दी पत्र-पत्रिकाओके जन्मसे ही बहुतसे आधुनिक कश्मीरी लेखकोको हिन्दी लिखनेकी प्रेरणा मिली है। अत निम्नलिखित पक्तियोमे हम कश्मीरमें हिन्दी प्रचार कार्य तथा कश्मीरकी हिन्दी पत्रिकाओपर प्रकाश डालेंगे।

कश्मीरमे हिन्दी प्रचारका बीजारोपण कई समितियो द्वारा हुआ है। इस बीजने क्रमश अकुरित होकर एक पौधे और अब एक वृक्षका रूप धारण किया है। इस हिन्दी-वृक्षकी समय-समयपर अनेक शाखाएँ एव उपशाखाएँ निकली। कई शाखाएँ कालपदाघातसे टूटकर गिरी और कई आज पुष्ट होकर फल दे रही है। इन सभी शाखाओ और उपशाखाओका परिचय निम्नलिखित पक्तियोमे दिया जा रहा है —

आर्य समाज श्रीनगर शाखा —सन् १९ ई० के लगभग श्रीनगरमें लाहौर आर्यसमाजकी शाखा प्रतिष्ठित हुई थी। प्रति रविवारको प्रातः इसकी बैठक हुआ करती थी जिसमें भिन्न भिन्न विषयोंपर विद्वान् सभासदों द्वारा हिन्दीमें व्याख्यान हुआ करते थे। इसके अतिरिक्त समाज की वार्षिक बैठकोंमें पंजाब तथा अन्य प्रान्तोंसे विद्वानों और प्रचारकोंको निमन्त्रित करके समोजक उनसे महान् गम्भीर विषयोंपर हिन्दीमें भाषण करवाते थे जिससे लोगोंमें हिन्दीकी ओर रुचि बढ़ती जाती थी। हिन्दी प्रेमियोंमें हिन्दीकी पुस्तकें भी बाँटते थे। नवयुवकोंको हिन्दीके प्रचारके लिए पुरस्कार भी प्रदान किया जाता था। वस्तुतः हिन्दी शिक्षाका सूत्रपात कश्मीरमें इन्हीं सज्जनोंके यत्नोंसे हुआ है।

सनातन-धर्म सभा —हिन्दी प्रचारमें इसका कश्मीरमें काफी महत्त्वपूर्ण स्थान है। परन्तु जो उत्साह समाजियोंमें देखा गया है वह सनातनियोंमें नहीं था। मगर सनातनियोंका प्रचार कार्य स्थिरतासे तथा धीरे-धीरे चलता रहा है। महाराजा प्रतापसिंहके सनातनधर्मी होनेके कारण सभाका भी अधिक सम्मान था और समय समयपर बाहरसे वयोवृद्ध विद्वानोंको बुलाकर सनातनी समोजक श्री देवमत महाराजके सभा-पतित्वमें बड़ी बड़ी सभाएँ आमन्त्रित करते थे और अनेक विषयोंपर चर्चा होती थी। परन्तु सारी कार्यवाही हिन्दीमें ही हुआ करती थी। इसके अतिरिक्त इसकी भी साप्ताहिक बैठकें शामको हुआ करती जिनमें विद्वानोंके भाषण तथा रामायण-महाभारतकी कथाएं भी हिन्दीमें होती थीं। इससे भी कश्मीरियोंमें हिन्दी सीखनेकी तरफ रुचि बढ़ती गई और बालक बालिकाएँ भी पर्याप्त लाभ उठाने लगीं। इसका स्थापना काल १९ ई० है।

हिन्दू सहायक सभा —इसकी स्थापना लगभग १९ ५ में हुई थी। इस युगके संचालकोंमें लाला शिवदास बाबा जगजनसिंह डॉ० कुलभूषण तथा तथा प० दौलतरामके नाम उल्लेखनीय हैं। ये सब सज्जन हिन्दी संस्कृतके अनन्य प्रेमी होते हुए सामाजिकता तथा धार्मिक कार्योंमें भी विशेष भाग लेते थे। इनका हिन्दी प्रचार-कार्य-सराहनीय है। ये सभी हिन्दी-निबन्ध प्रतियोगिताओंका आयोजन करती थीं। इस सभा द्वारा आयोजित सन् १९११ ई० की निबन्ध-प्रतियोगितामें श्रीनाथजूजी तथा श्री मधुसूदन कौलजी (भूतपूर्व अध्यक्ष रिसर्च विभाग) जो उस समय श्री प्रताप कॉलेजके विद्यार्थी थे वे निबन्ध सर्वश्रेष्ठ घोषित किए गए थे।

जीवन सुधार सभा —यह लगभग सन् १९१ ई० में प्रतिष्ठित की गई थी। इसके संचालकोंमें स्वर्गीय श्री लाला लक्ष्मीचन्द जोसमाका नाम उल्लेखनीय है। सभाके कार्यालयमें एक सुन्दर छोटा-मोटा हिन्दी-पुस्तकालय भी था जिसमें उस समयके मासिक—सरस्वती माधुरी चाँद तारका इत्यादि रखे जाते थे। नवीनतम छोटी-मोटी पुस्तक पुस्तिकाएँ भी प्रचुर मात्रामें थीं। नवयुवकोंको आकर्षित करनेके लिए और उनमें हिन्दी-साहित्यानुराग बढ़ानेके लिए श्री जोसमाजी काफी प्रयत्न करते थे। उनकी ही प्रेरणासे कार्यमिलापें बड़े बड़े अवसर भी हिन्दी प्रचारके लिए दत्तचित्त हुए थे। समयका विचार करके हिन्दीके विषयमें उस समयका उनका यत्न काफी प्रशंसनीय है।

इन पचनदीय महानुभावोंकी प्रेरणासे स्थानीय नवयुवकगण भी हिन्दी प्रचारमें रुचि लेने लगे और इनका बाल्याम भी उर्दूके स्थानपर हिन्दी पढ़ना ही पसन्द करने लगे। उन्होंने हिन्दी प्रचारके लिए

छोटी-छोटी सभाएँ स्थापित की जिसके फलस्वरूप कई अन्य सस्थाओका प्रादुर्भाव हुआ जिनका वर्णन अगले पृष्ठोमें अकित किया जा रहा है।

हिन्दी प्रचारिणी सभा —यह सभा १९५० ई तक काम कर रही थी, परन्तु कार्यकर्ताओके इतस्तत स्थानान्तरित होनेसे, अचानक वन्द हो गई। १९५० ई की कश्मीरकी परिस्थितियाँ कुछ ऐसी वनी रही जिनके फलस्वरूप हिन्दीके प्रचार कार्यमें वाधा पड गई। यह स्थिति शोघ्र ही १९५३ ई से सुधर गई।

२ **हिन्दी साहित्य परिषद** —१९५३ ई के लगभग यह परिषद कई नवयुवकोके उत्साहसे प्रस्थापित हुई। वादमें इसी परिषदने कश्मीर हिन्दी साहित्य सम्मेलनका रूप धारण कर लिया, जो वर्तमान कालमें भी हिंदी-प्रचार कार्यके साथ-साथ हिन्दी साहित्य-निर्माणके कार्यमे भी सलग्न है। सम्मेलन विचार गोष्ठियो, साहित्यिक वैठको एव मासिक पत्रिका 'कश्यप' के प्रकाशन द्वारा कश्मीरके हिन्दी साहित्यकारोको प्रोत्साहन दे रहा है। कश्मीरी साहित्यकारोकी नई पौध किसी न किसी रूपमे सम्मेलनकी ही उपज है।

३ **जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति** —यह सस्था सन् १९५६ में स्थापित हुई है। यह राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धासे सम्बद्ध है। इसके सचालकोमेंसे श्री प्रो जाडूजीका नाम विशेष रूपसे उल्लेख्य है। श्री जाडूजी युवावस्थासे ही हिन्दी-प्रचार-प्रसार कार्योमें लगनके साथ भाग लेते रहे है। राजकीय हिन्दी प्रसार वोर्डके मत्रित्व कालमे आपने गाँव गावमें हिन्दीकी पाठशालाएँ खुलवाकर वहाँपर हिन्दी पढनेकी ओर, बालक वालिकाओमे ही नही, वल्कि वयस्कोमें भी रुचि बढाई। हिन्दी सस्कृत विभागके अध्यक्षत्व कालमे भी अपने कॉलिजके हिन्दी विद्यार्थियोम काफी सख्या वढानेके अतिरिक्त उनमे आपने राष्ट्र-भाषाके प्रति श्रद्धा-सम्मानकी भावना वढ़ाई, जिसके फलस्वरूप आधुनिक पीढीके युवक-युवतियोमे हिन्दी प्रचारके लिए महान् अनुराग है और पढ़नेके लिए प्रवृत्ति भी है। आजकल श्री जाडूजीके अध्यक्षत्वमे जम्मू-कश्मीर-राष्ट्रभाषा समिति पूरी लगनसे हिन्दीका प्रचार कार्य कर रही है। अव तक इस समितिने हिन्दी भाषासे अनभिज्ञ हजारो कश्मीरवासियोको राष्ट्रभाषा हिन्दीकी शिक्षा प्रदान की है। हिन्दी-लेखन स्पर्धाओ, हिन्दी भाषण स्पर्धाओ, हिन्दी साहित्यकारोके सम्मानार्थ पारितोषिको तथा अन्य प्रोत्साहन पारितोषिकोका आयोजन करके यह समिति अपने उद्देश्यको पूर्ण कर रही है। समितिका साहित्य-विभाग भी कुछ कालसे कार्यरत है।

कश्मीरके अहिन्दू, जो हिन्दीको एक साप्रदायिक भाषा समझते थे, के दिमागोंसे भी धीरे-धीरे समितिने इस भ्रमको दूर किया। समिति प्रति सत्रमें, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा सचालित भिन्न भिन्न हिन्दी-परीक्षाओमे अनेक अहिन्दुओको भी उनकी रुचिसे सम्मिलित कर रही है।

४ **अभिनव लेखक मण्डल** —तरुण हिन्दी लेखकोकी इस मण्डलीका प्रादुर्भाव सन् १९५९ ई मे हुआ था। प्रचार कार्यका शानदार कार्यक्रम भी इसके दिमागमें था। परन्तु कई कार्यकर्ताओकी स्वार्थ प्रवृत्ति और कपट भावनाके कारण यह एक वर्षके जीवनान्तरमें ही विलीन हो गई।

५ **हिन्दी प्रचार सभा** —यह सभा हिन्दी प्रचारकी दिशामे काफी लगनसे काम कर रही है। जम्मू कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी सहयोगी सस्थाके रूपमें यह सभा राष्ट्रभाषा हिन्दीकी परीक्षाओके लिए छात्र-छात्राओको तैयार कर रही है।

हिन्दी पत्रिकाएँ

कश्मीरकी हिन्दी संस्थाओं एवं हिन्दी प्रचारकोंके अथक प्रयत्नोंसे कश्मीरमें कई हिन्दी पत्रिकाओं का जन्म हुआ। आज तक यहाँसे लगभग सात हिन्दी पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई हैं। अर्थाभाव तथा उचित राजकीय सहायताएँ मिलनेपर कुछ कालके पश्चात् अधिकांश पत्रिकाएँ बन्द हुईं। क्रमानुसार कश्मीरकी हिन्दी पत्रिकाओंकी सूची इस प्रकार है —

१—महावीर, २—वितस्ता ३—चन्द्रोदय ४—योजना ५—कश्यप ६—प्रकाश ७—बालविकास।

इन पत्रिकाओंमेंसे आजकल केवल कश्यप तथा प्रकाश ही प्रकाशित होते हैं। कश्यप हिन्दी साहित्य सम्मेलन कश्मीरकी साहित्यिक पत्रिका है। यों तो यह मासिक पत्रिका है परन्तु अभी नियमित रूपसे निकल नहीं पा रही है। इस पत्रिकामें कश्मीरके प्रतिनिधि कृतिकारोंके साथ ही नवोदित लेखकोंकी रचनाएँ भी छपती हैं। कुल मिलाकर 'कश्यप' का स्तर बुरा नहीं। 'प्रकाश' एक पाक्षिक पत्रिका है। इसका प्रकाशन ब्राह्मण महामण्डल कश्मीर द्वारा हो रहा है। मण्डल मठाधीशोंके अनुसार यह एक साहित्यिक, सामाजिक और धार्मिक पत्रिका है। परन्तु जितने भी अंक अभीतक प्रकाशमें आए हैं उनसे मठाधीशोंके कथन की सत्यता प्रमाणित नहीं होती। इस पत्रिकाका सम्पादन और स्तर कुछ उन्नत नहीं है।

कश्मीर सरकारने भी हिन्दी प्रचारकी दिशामें थोड़ा बहुत योग दिया है। स्कूलों कालेजों और पाठशालाओंमें हिन्दीके सुयोग्य अध्यापकोंकी व्यवस्था कर सरकारने हिन्दी शिक्षा प्रसारमें सहयोग दिया। १९१६ ई॰ में महाराजा प्रतापसिंहने एक बोर्ड भी नियत किया था जिसका उद्देश्य यह था कि हिन्दी और संस्कृत का प्रचार दूर दूर तक फैल जाए। भिन्न-भिन्न स्थानोंपर पाठशालाएँ भी स्थापित की गई थीं जिनका संचालन सरकारी आर्थिक सहायतासे बोर्ड कर रहा था। इसके सदस्य थे—स्व रामलाल काचीलाल स्व नित्यानन्द शास्त्री स्व मधुसूदन कौल एम ए और श्री जाडूजी जिन्होंने कुछ कालतक बोर्डका मन्त्री पद स्वीकार किया था। जाडूजीके मन्त्रित्वकालमें पाठशालाओंकी संख्या भी बढ़ गई थी। आजकल इनका निरीक्षण शिक्षा विभाग द्वारा हो रहा है। कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति भी इन पाठशाला टीचरोंकी थोड़ी-बहुत पारितोषिक रूपसे आर्थिक सेवा करती है इस आशासे कि वे लोग राष्ट्रभाषा परीक्षाओंमें परीक्षार्थियोंकी संख्या बढ़ानेमें यत्न करें। इसके अतिरिक्त सरकारी संस्कृत रिसर्च डिपार्टमेंट प्रकाशन विभाग तथा जम्मू-कश्मीर कलचरल अकादमीके द्वारा भी राज्य सरकारने हिन्दीकी अनन्य सेवा की है। जम्मू-कश्मीर-संस्कृत-रिसर्च विभाग श्री महाराजा प्रतापसिंहने १९ ई॰ में संस्कृत-अध्ययनकी उन्नति करनेके लिए विशेषकर कश्मीर-अद्वैत-शैवदर्शनके शास्त्रोंको सम्पादित करनेके लिए, स्थापित किया था। इसके अध्यक्षोंमें श्री ज सी चटर्जी श्री महामहोपाध्याय मुकुन्दराम शास्त्री श्री मधुसूदन कौल तथा प्रो जाडूजीके नाम उल्लेखनीय हैं। संस्कृतकी साहित्यिक पुस्तकोंका संशोधन तथा सम्पादन करनेके साथ-साथ उपर्युक्त विद्वानोंने कई संस्कृत तथा हिन्दी रचनाओंका हिन्दी अनुवाद भी करवाया था जो अभी तक अमुद्रित पड़ी हैं। महाकवि पण्डितराजकी कई कविताओंका हिन्दी अनुवाद भी उसी रिसर्च विभागमें श्री जाडूजीके द्वारा हुआ था वह भी अभीतक अप्रकाशित ही पड़ा है। इसके अतिरिक्त सन १९११ ई॰ की श्री जाडूजीकी लिखी हिन्दी कविता— आतिथ्य-आदर्श —का यहाँपर निर्देश करना भी अनुपयुक्त न होगा। यह कविता गृह-लक्ष्मी पत्रिकामें जो उस वक्त श्रीमती उमा नेहरूके सम्पादनमें प्रयागसे निकलती थी सम्पादिकाके सुन्दर

नोट सहित छपी थी। महाभारतके कपोत-कपोती नामक आख्यानका यह पद्यमय स्वतन्त्र हिन्दी अनुवाद है।

सरकारी विद्यालयोमे भी कई वर्षोसे त्रैमासिक तथा षाण्मासिक पत्रिकाओमे, हिन्दी स्तम्भोमे, हिन्दी प्रोफेसरोके निरीक्षणमे, वहुतसे उत्साही, हिन्दी प्रेमी छात्र-छात्राओके हिन्दी लेख छप चुके है और आजकल छप भी रहे है। इनमेसे कई लेख सुन्दर और सराहनीय है।

सन् १९५७ मे राज्य सचालित लालारूख पवलिकेशनसकी ओरसे हिन्दीमे "कश्मीरी लोककथाऐं" नामक एक पुस्तक छपी है।

सन् १९५३ से हिन्दीको सरकारकी ओरसे थोडा-वहुत सरक्षण और भी मिला है। सूचना निदेशालयकी ओरसे एक दो हिन्दी पत्रिकाएँ निकली और "कलचरल अकादमी" की स्थापना भी की गई। सूचना विभागने "योजना" तथा "वाल-विकास" नामक दो हिन्दी पत्रिकाएँ सम्पादित की। गत चार पाच-छ वर्षोसे "योजना" का सम्पादन योग्य सम्पादकोके हाथोमें आकर वहुत परिमार्जित हो गया था। इसमे जम्मू कश्मीरके प्रतिनिधि हिन्दी कृतिकारोके अतिरिक्त भारतके शीर्षस्थ हिन्दी लेखकोकी रचनाएँ छपती थी। "वाल-विकास" बच्चोकी पत्रिका थी। इसके दो ही अक निकल सके। दोनो अकोकी सजावट मनोहर थी। एक और पाक्षिक पत्र भी उक्त निदेशालय द्वारा "कश्मीर समाचार" नामसे सम्पादित होने लगा था, परन्तु सकटकालमे इन सवका सम्पादन और मुद्रण रुक गया है।

जम्मू-कश्मीर कलचरल अकादमीकी हिन्दी उपसमितिके सयोजक श्री पृथ्वीनाथ 'पुष्प' तथा उनके सहयोगियोके श्रम तथा लगनसे जम्मू-कश्मीरके हिन्दी साहित्यकारोके दो सग्रह—'गद्याजलि' तथा 'पद्याजलि', सम्पादित होकर मुद्रित हुए है। इन सगहोमे राज्यके लगभग सभी प्रतिनिधि कृतिकारोको स्थान दिया गया है। श्री पुष्पजीके प्रयत्नोसे उक्त उपसमितिकी ओरसे राज्यके हिन्दी साहित्यकारोकी साहित्यिक बैठकोका आयोजन भी किया गया था। परन्तु कई बैठकोके होनेके पश्चात् ही इस आयोजनका अन्त हुआ।

कश्मीरके हिन्दी कृतिकार

कश्मीरमें हिन्दी-सस्थाओ तथा पत्र-पत्रिकाओकी सक्षिप्त परिचयात्मक पृष्ठभूमि देनेके पश्चात् अव यहांपर कश्मीरके कृतिकारोका अवलोकन किया जाता है। उक्त पृष्ठभूमि इस कारणसे आवश्यक है, क्योकि इनके प्रोत्साहन स्वरूप ही कश्मीरके वहुतसे हिन्दी लेखक प्रादुर्भूत हो गए है।

यहांके कृतिकारोको दो श्रेणियोमें विभाजित किया जा सकता है —

१—कश्मीरके वे हिन्दी लेखक जो कश्मीरसे वाहर रहते है।

२—कश्मीरके वे हिन्दी लेखक जो पूर्णत कश्मीर निवासी है।

कश्मीरके वाहर रहनेवाले कश्मीरी हिन्दी लेखकोकी सख्या काफी है। इनमेंसे प्रमुख हिन्दी-लेखिकाओका उल्लेख निम्नलिखित पक्तियोमें कर रहे हैं —

श्रीमती **शचीरानी गुर्टू**—श्रीमती गुर्टूका हिन्दी-आलोचना क्षेत्रमे अपना एक विशेष स्थान है। आपने हिन्दीमे वहुत से आलोचनात्मक निवन्ध लिखे है और कई आलोचनात्मक ग्रन्थोका सम्पादन भी किया

है। आपका साहित्य दर्शन नामक ग्रन्थ हिन्दी आलोचना-क्षेत्रमे काफी समादृत है। इस सुन्दर ग्रन्थमें आपने हिन्दीके सुप्रसिद्ध कवियोके साथ यूरोपके प्रसिद्ध कलाकारोकी तुलना की है। आपकी तुलना का ढंग मौलिक एव सुन्दर है।

श्रीमती सत्यवती मल्लिक—आपका जन्म सन् १९ ६ ई में श्रीनगरमें लाला चिरंजीलाल-जीके घरमें हुआ। आपके पताजी कश्मीरके एक अत्यन्त प्रतिष्ठित आर्य समाजी कार्यकर्ता रहे हैं। आजकल आप दिल्लीमे रहती है। विशाल भारतके द्वारा आपने हिन्दी साहित्य-जगतमे काफी ख्याति प्राप्त की। हिन्दी-कहानी-क्षेत्रमे आपका एक अपना स्थान है आपकी कहानियोमे नारी-जीवनका अच्छा चित्रण हुआ है। कहानियोके साथ-साथ आपने निबन्ध यात्रा-विवरण संस्मरण तथा रेखाचित्र आदि भी लिखे है और कई स्केचो तथा संस्मरणोका भी सम्पादन किया है। कहानी-साहित्यमे आपके कहानी संग्रह— दो फूल तथा वैशाखकी रात —काफी समादृत है। इनके अतिरिक्त आपके मानव रत्न अमिट रेखाएँ "कश्मीर की सैर अमर पथ दीपक तथा दिन रात नामक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इनमेंसे अमर पथ तथा दिन रात पर आपको उत्तर प्रदेश सरकारसे पुरस्कार भी मिल चुका है।

आपकी पहली कहानी दो फल सन् १९३२ ई मे विशाल भारतमें छपी थी। हिन्दी गद्य-लेखनके साथ श्रीमती मल्लिक हिन्दी कविता लिखनेमे भी रुचि रखती हैं। १९३८ में आपकी पहली कविता अन्तरमें था क्रीडा करते हंस मे छपी थी।

श्री प्रेमनाथ दर—श्री दर आजकल दिल्लीमे रहते हैं और आकाशवाणी दिल्लीमें काम करते हैं। आप हिन्दीमें भी लिखते हैं और उर्दूमे भी। आप एक सुलझे हुए कहानीकार तथा नाटककार हैं। साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित भारतीय कविता १ ५१ के कश्मीरी भागका सुन्दर हिन्दी अनुवाद आपने ही किया है। आपका हिन्दी नाटक घरकी बात एक सफल नाटक है। साहित्य-जगतमें यह नाटक काफी प्रसिद्ध हो चुका है। इस नाटकपर आपको कश्मीर कलचरल अकादमीका १९६२ का एक हजार रुपयेका प्रथम पुरस्कार मिल चुका है।

श्री जीवनलाल प्रेम —श्री जीवनलाल कश्मीरके सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री टीकालाल शास्त्री—रैन जो हिन्दी व्याकरण के यशस्वी लेखकके सुपुत्र है। आपका जन्म १९१८ ई में लाहौरमें हुआ है। आज कल आप दिल्लीमें रहते हैं और नवभारत टाइम्स के कार्यालयमे काम कर रहे हैं। आप एक सफल हिन्दी कवि होनेके साथ-ही-साथ एक सफल अनुवादक भी है। अबतक आपके तीन कविता-संकलन—पतझड़ बसन्त बहार तथा तारावली—प्रकाशित हो चुके है। आपने गुरु गोविन्दसिंहकी जीवनी हिन्दीमें लिखी है और गीतांजलिका भी हिन्दीमे अनुवाद किया है। आपकी ये दोनो पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं।

श्रीमती विमला रैना—श्रीमती रैना एक प्रतिभा सम्पन्न हिन्दी कथाकार एव नाटककार है। इनकी अबतक कुल मिलाकर आठ पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है। इनके कहानी संकलन हम तुम और वह तथा "बुझे दीप" सराहनीय हैं। इनका नाटक बाबी साहब भी काफी प्रसिद्धि पा चुका है।

श्री श्यामलाल वत्ता—इनका जन्म बारामुला कश्मीरमें हुआ है। आप सन् १९४७ ई तक बारामुला नेशनल हाइस्कूलमें अध्यापकका काम करते रहे। तदनन्तर आप भारत आए। आजकल आप दिल्लीमें रहते हैं और भारत सरकारके सूचना विभागमे काम करते हैं। आपके लेखन विषय हैं—कश्मीरका

लोक साहित्य और कश्मीरका इतिहास। आपकी कश्मीरकी लोककथाएँ दो भागोमे प्रकाशित हुई है। कश्मीरके इतिहास विषयक आपके अनेक निबन्ध कई हिन्दी पत्र-पत्रिकाओमे छपे है।

श्री मोहनकृष्ण दर—श्री दर कश्मीरके एक उदीयमान साहित्यकार है। आपका जन्म श्रीनगरमे नरपीर स्थान मुहल्लेमे १९३१ ई मे हुआ है। आप एक सुलझे हुए हिन्दी कहानीकार है। आपके कहानी सग्रह—'चिनारके पत्ते' तथा 'केसरके फूल' हिन्दी साहित्य ससारमे काफी प्रसिद्ध हो चुके है। आपकी अधिकाश कहानियोकी पृष्ठभूमि कश्मीर ही है। "मनोरम कश्मीर" नामसे भी आपकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। आपका व्यवसाय पत्रकारिता है। आजकल आप दिल्लीमे निवास करते है।

श्री त्रिलोकीनाथ वैष्णवी तथा श्रीमती निर्मला 'कसम' भी हिन्दी साहित्य साधनामे चिरकालसे सलग्न है। आप पहले "रफीक" उपनामसे कश्मीरी कविताएँ लिखा करते थे, परन्तु बादमे हिन्दीमें लिखने लगे। आपके कई हिन्दी कविता सकलन अप्रकाशित पडे है। श्री वैष्णवीजी आजकल उत्तर प्रदेशमे नौकरी करते है।

सुश्री निर्मला 'कुसुम' ने भी कई हिन्दी कविताओकी रचना की है। आप धारावाहिक शैलीमे लिखती है। आपका विषय है समाज और नारीका चित्रण। आप आजकल दिल्लीमे रहती है।

प्रचार-सृजन काल

इस कालके कवियोमे सर्वप्रथम स्वर्गीय दुर्गाप्रसाद कायस्थका नाम उल्लेखनीय है। श्री कायस्थ का जन्म सन् १९०८ ई में श्रीनगरमें हुआ। आप हिन्दी-सस्कृतके एक अच्छे विद्वान् थे। कश्मीरमे हिन्दी प्रचार प्रसारके लिए आपने काफी काम किया। आपने अपने सुयोग्य अनुज स्वर्गीय दीनानाथ 'दीन' को भी हिन्दी-सेवाकी शिक्षा दी थी। आप कश्मीर सरकारके शिक्षा सचिवालयमें अण्डर-सेक्रेटरीके पदपर नियुक्त थे। साहित्य साधनाके अतिरिक्त आप समाज सुधार तथा सास्कृतिक कार्योमें भी सक्रिय भाग लेते थे। कश्मीरके प्रथम हिन्दी साप्ताहिक 'चन्द्रोदय' को १९३९ में आपने श्री पृथ्वीनाथ पुष्पके सहयोगसे सम्पादित किया था।

हिन्दी कविताके साथ-साथ ही आप हिन्दी तथा अँग्रेजी गद्य भी लिखते थे। कश्मीरके सुप्रसिद्ध सस्कृत आचार्य उत्पलकी आपने अँग्रेजीमें एक संक्षिप्त जीवनी भी लिखी है। कश्मीरकी आदि कवयित्री ललद्यदपर भी आपने "ललद्यद" नामक प्रसन्ध लिखा है, जिसे कश्मीर हिन्दी साहित्य सम्मेलनने प्रकाशित किया है। १९५३–५५ ई में कश्मीरी कवितापर आपने एक लेखमाला लिखी जो "ज्योति" पत्रिकामें प्रकाशित हुई। आपका हिन्दी कविता संकलन "अश्रुकण" आपकी अकाल मृत्युके कारण अधूरा ही मुद्रित हो सका। प्रस्तुत पंक्तियोके लेखकनें आपके श्रीमुखसे कई बार आपकी रचनाएँ सुनी है। आपकी कविताओमें वेदनाका सचार है। इनपर छायावादी प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। इनकी कविताओमेंसे एक नमूना देखिए। कवि "पकज" नामक कवितामे लिखता है —

बाल कुसुम का रे तू प्राण,
अवलम्बी शिशु सा नादान,
उलझी अलक सुगन्ध समान,

गुलशी मधुप गुरीली तान।
भावमसा का मधु आख्यान।
प्रकृति का साक्षात् विभव।
दूर मंजिल की सुन्दर स्वप्न।
कोमलताका घर संचय।
दीन जीव का आत्मीयम।
संस्कृति का रसपूत हृदय।

श्री पृथ्वीनाथ 'पुष्प' —श्री 'पुष्प' कश्मीरके सर्वतोमुखी साहित्यकार हैं। आपका जन्म सन् १९१७ ई में हुआ। आप कश्मीर सरकारके शिक्षा-विभाग पुरु कालजके प्रिन्सिपलके पदपर इस समय नियुक्त हैं। कश्मीरमें हिन्दी प्रचार-प्रसारमें आपका काफी योग है। जम्मू कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा प्रकाशित १५ दिनोंमें ही उर्दूसे हिन्दी सीखिए नामक पुस्तिका आप ही की रचना है। आप राजभाषा आयोगके एक मान्य सदस्य थे। आप हिन्दीमें कविताएँ-कहानी लिखते हैं तथा आपके प्रिय विषय कश्मीरी भाषा साहित्य और संस्कृति हैं। आलोचनामें आपकी विशेष रुचि है। आजकल आप आलोचनात्मक निबन्ध ही लिखते हैं। हिन्दीके अतिरिक्त आप अँग्रेजी उर्दू और कश्मीरीमें भी लिखते हैं। आपने कई हिन्दी कवियोंकी रचनाओंका कश्मीरीमें तथा कई कश्मीरी कृतियोंका हिन्दीमें अनुवाद किया है। आपकी सर्व प्रथम प्रकाशित रचनाएँ इस प्रकार हैं—

१ लेख—स्वर्गीय प्रेमचन्द प्रताप श्रीनगर, १९३६ ई
२ कविता—दो दृश्य प्रताप श्रीनगर, १९३७ ई
३ कहानी—अहिंसा प्रताप श्रीनगर, १९३७ ई

जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालयकी कई परीक्षाओंके लिए आपने अनेक पाठ्य पुस्तकोंका सम्पादन भी किया है। आपकी शैली आकर्षक एवं भाषा सुबोध है। शोषितों और श्रमिकोंके प्रति आपके मनमें सहानुभूति तथा समवेदना है। नवजीवन नामक कवितामें आप लिखते हैं —

वसुधा के मुरझाए मुँह पर।
मानव नव आशा ले आया।
पत्थर से पथराई आँखों में
सोया चेतन अँगड़ाया।
+ + +
पर ठिठुरे श्रमिकों के जी
जीवनकी मधु तरसाएगा क्या ?
जीवन न जब जाड़े से
धरती में खूनकारा पाया ?

श्री पुष्पकी कविता प्रसाद गुण युक्त है। इन्होंने कई नवीन छन्दोंको भी अपनाया है। देखिए —

डर लगता है
सच्चाई से
डर लगता है,
सच्चाई जो
सौ-सौ बहकावों में खुलकर,
मानव कुल को
युग हत्या का
वर देती है।

("डर लगता है"—कवितासे)

श्री पुष्पजीके गद्यका भी नमूना देखिए —

"ललद्यदने होश सम्भाला तो कश्मीरके सास्कृतिक जीवनमें भारी उथल-पुथल मची हुई थी। इधरसे शैवदर्शनकी जीवन-पोषक परम्पराओंको वाह्य आडम्बरोने घेर रखा था। और उधरसे इस्लामके प्रचारक (सूफी फकीर) एक नया दृष्टिकोण पेश करने लगे थे। बुद्धिभेदके कारण भिन्न भिन्न जातियो और सस्कृतियोके बीच वैमनस्य उपजाकर समाजमे गडबड मचानेवालोकी भी कमी न थी। अत आवश्यकता इस बातकी थी कि दर्शनकी मानवतावादी परम्पराओको पाखण्ड और कर्मकाण्डके कडे बन्धनोंसे छुटकारा दिलाया जाए।"

(योजना—कश्मीरी साहित्यको नारीकी देन)

श्री घनश्याम सेठी—आप कहानीकार है और लेख भी लिखते है। आप १९३४ ई मे पैदा हुए। आपका व्यवसाय यो तो व्यापार है परन्तु लेखनसे काफी दिलचस्पी रखते है। आपकी रचनाएँ, यात्रा सस्मरण, कहानियाँ तथा लेख हिन्दी पत्र-पत्रिकाओमें छपती रहती है। आपकी एक पुस्तक—'नगरी-नगरी फिरा मुसाफिर'—प्रकाशित हो चुकी है। इस पुस्तकमें आप ने अपनी विदेश यात्राओंके सस्मरण सकलित किए हैं। आपके वर्णन करनेका ढग बहुत सुन्दर है। आपकी भाषा शैली मे सरलता और सरसता है। उक्त पुस्तकसे उद्धृत "डेजर्ट बसमें" नामक यात्रा सस्मरणके एक अशका अवलोकन कीजिए —

" फ्रेंच कॉस्मटिक्स भी खुशबुओमें बसे, चिकने फर्शपर नाचते हुए अमेरिकन और अँग्रेज जोडे, नाम मात्रके लिए कपडेको शरीरसे लगाए, अरबी साजोकी 'रम्भा' धुनोपर शरीरका प्रत्येक अग नचाती हुई "कवरे" की अरबी नर्तकियाँ, बुझाती और बुझ-बुझकर जलती रोशनियाँ, गर्म-गर्म साँसोका स्पर्श, लम्बे-लम्बे नि श्वास और आहे, शॅम्पियनकी स्कॉचके कलात्मक गिलासोका टकराव उनमे बसी मदिराका छलकाव,—अर्द्धरात्रि की इस घडीमें जैसे 'अरेबियन नाइट्स' का बगदाद जीवित हो गया है—"

श्री पृथ्वीनाथ 'मधुप'—प्रस्तुत पक्तियोंके लेखकका जन्म १९३४ ई मे हुआ। आपको कश्मीरके सुविख्यात भक्तकवि, कश्मीरी रामायणकार, श्री नीलकण्ठ शर्माका आत्मज होनेका गौरव प्राप्त है। आप १९५० ई से हिन्दीमें लिख रहे हैं।

पहले पहल आपने हिन्दी कहानियाँ लिखी जो "ज्योति" मे प्रकाशित हुई है। आप अब केवल कविताएँ और आलोचनात्मक निबन्ध ही लिखते है। आपकी पहली रचना "तुम कहाँ हो?" सन् १९६०

ई में प्रकाशित हुई थी। नई कविता ने आपको काफी प्रभावित किया है। आप हिन्दीमें मुक्तक (रुबाइयाँ तथा कतए) भी लिखते हैं। कानपुरके साहित्यायन के तत्वावधानमें प्रकाशित बृहद्ग्रन्थ सुकवि कुंजबिहारी स्मृतिग्रन्थ —में आपका एक लेख "कवि वाजपेयीका कृतित्व" संकलित है। आपने कल्हण गौरव नामसे प्रतिनिधि हिन्दी कहानी संग्रहका भी सम्पादन किया है। कई कश्मीरी कवियोंकी रचनाओंका हिन्दी पद्यानुवाद भी किया है। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंमें आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। योजना नव वर्ष विशेषांक (जनवरी-फरवरी १९२१) के सम्पादकीय—"अपनी बात"—से दो पंक्तियाँ उद्धृत कर आपके कुछ कविताएं नीचे अंकित किए जाते हैं। श्री मधुप जी कश्मीरके उदीयमान कवि हैं। बड़ी प्यारी कविताएँ रचते हैं। इनकी भाषा और भाव—दोनोंमें बड़ा प्रभाव और मिठास है —

१—मधुर मूकता इतनी भाती,
नीरव हो सब कुछ कह जाती
मर्म भार से दब-सी जाती,
रोम-रोम को पुलकित करके,
बता रही कोई अभिलाषा
नील-नलिन-नयनों की भाषा

(योजना— नयनोंकी भाषा कविताते)

२—पहाड़ की ढलान पर खड़ा
झाड़ियों पत्थरों से घिरा
अनेक पक्षियों की चीखों से अभिषिक्त
चोटियों की माला धारे,
वह अकम्प
विचार-मग्न ठूंठ
तलहटीकी—
दूब को
अंकुरित
पल्लवित
पुष्पित
वृक्षोंकी ओर घूर-घूर
सोच रहा है
क्या ? ? क्या ? ? ?

("एक प्रश्न — कश्यप —अगस्त ११ से)।

३—हृदय-हृदय में व्याप्त हमारे गीताका सन्देश
आत्मा अमर रहा करती है मृत्यु अवस्था शेष।
हम सर्वजित हैं सब जगके

हँस हँस वंगे प्राण,
प्यारे हिन्दुस्तान !

(राष्ट्रभाषा—मार्च, ६३ से)

४—प्रकाश को नहीं पूजूंगा मैं, तम को ही,
जय कहूँगा प्यार की न, ठोकरों की।
हँसी नहीं निश्वासे ही बनें अपनी ;
इन सबने मुझे पीर दी, परख दी॥

+ + +

बेगुनाह मिले धूल में पापी रहे उच्चासन पर,
चोरों के हों पौ बारह बस अभाव हो साधुके घर।
ढोंग है, धोखा है, व्यर्थ का भ्रम है केवल,
स्वार्थी पडितों की चतुराई का फल है ईश्वर॥

(अप्रकाशित—मुक्तक-संग्रह "पखुरियाँ" से)

श्री **मोहनलाल** 'निराश'—आप कश्मीरके उदीयमान कवि हैं। पहले पहल आप उर्दूमें लिखते थे, बादमें हिन्दीमें लिखने लगे। पहले आप कहानियाँ लिखते थे, परन्तु बहुत समयसे आपकी कोई कहानी देखनेमें नहीं आई है।

आपकी पहली हिन्दी रचना—'शान्ति विहग'–'नया समाज', कलकत्तामें सन् १९५७ में छपी थी। 'नई काव्य धारा' से आप काफी प्रभावित है। आपने पतजीकी कई कविताओका कश्मीरीमे अनुवाद किया है। आपका जन्म श्रीनगरमें १९३४ ई मे हुआ। आजकल आप आकाशवाणी श्रीनगरमें, काम कर रहे हैं। आपकी कविताओके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

१—वह चेतन निश्चेतन जगमें,
चेतनता लाने में रत है।
('यह' "मानव" है—
वह शब्द कोषसें "संभव" है।)
निर्माण पर्व है, नया समय,
हो रहा धरा पर स्वर्णोदय !।

(योजना '५८—"अरुणोदय" से)

२—पत्थर,—
और उड़ा,
और उड़ा,
समय हुआ,
और हुआ,
और हुआ,

यह हुआ
कि पंखों में जुड़ गए पत्थर,
आकृतिका पत्थर।
प्रकृतिका पत्थर।
पत्थर बस पत्थर।
तो पत्थर आ गिरा नीचे
पतन की होती है गति।

(पद्यावलि— दायरे और दायरे और दायरे से)

१—माटी से माटी जुड़ती है
बन जाता है जड़ खिलौना।
कोई मोहन कोई राजा।
हँसी रत्ती भर मन भर रोना।
खिलनेवाली कलि माधवकी
झरनेवाला फूल शरद का।
सृजन प्रलय के आख्यानों से
यह इतिहास रचा जाता है।

(पद्यावलि से)

श्री हरिकृष्ण कौल—आप कश्मीरके एक अच्छे हिन्दी-कहानी लेखक हैं। आपकी अधिकांश कहानियोंमें कश्मीरी पण्डित समाजका चित्रण हुआ है। आपकी कहानियोंका शिल्पविधान चरित्र चित्रण एवं भाषा शैली मनोरम होती है। आपका जन्म श्रीनगरमें १९३४ ई० में हुआ। आपकी एक प्रतिनिधि कहानी— यक्ष और टोपी के एक अंशका अवलोकन कीजिए —

मोहन और विजया खिड़कीमें बैठे आपसमें कुछ खुसर-फुसर कर रहे थे। माँ उन्हें डाँट रही थी कि इतनी सर्दी होनेपर भी वे खिड़की बन्द क्यों नहीं करते? लेकिन बच्चे उसकी बात मानें तब ना! वे खिड़कीके भीतर कौनड़ियाँ छिपाकर यक्षकी ताकमें थे। यक्ष आ के रहेगा ऐसा उनका विश्वास था। वह शीघ्र ही उनके आँगनमें घुसकर किसी अँधेरे कोनेमें छिप जाएगा। फिर जब माँ पूजा समाप्त करके कौनड़ियाँ दीवारमें बने ताकचेपर खिचड़ी रखेगी तो वह झट निकलकर खिचड़ी खाने लगेगा और यही वह अवसर है जब वह उसकी टोपी चुरा सकते हैं।

श्री चमनलाल सप्रू—आप लेखकसे अधिक प्रचारक हैं। श्रीनगरमें आपका जन्म सन् १९३५ ई० में हुआ। आपने कई हिन्दी पाठ्य पुस्तिकाओंका सम्पादन किया है। कश्मीरी भाषा एवं साहित्यके सम्बन्ध आपने अनेक लेख लिखे हैं जो कई हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए हैं।

श्री शशिशेखर तोषखानी—आप कश्मीरके मेधावी युवा कवि हैं। आप बचपनसे अब तक बराबर लिखते आ रहे हैं। आपका जन्म १९३२ ई० में श्रीनगर, कश्मीरमें हुआ है। श्री बच्चनजी तथा अज्ञेयजीकी कविताओंसे आप बहुत प्रभावित हुए हैं बल्कि कविता लिखनेकी प्रेरणा आपको उन्हींसे मिली है। आपने

आप 'नई कविता' खूब लिखते है। आपकी कविताएँ सरस तथा मार्मिक है जो आजकी पत्र-पत्रिकाओमे छपती रहती है।

कुछ उदाहरण प्रस्तुत है —

१—मै प्रभात का बुझता तारा,
मरु में सूख रही जलधारा,
मै गिरती दीवार उठाना व्यर्थ मुझे।

२—नाचती हर साँस मेरी आज बन पुलकित मयूरी,
हो रही है क्या तुम्हारे रूप की बरसात रंगिनि ?
जो कि सूने मन गगन पर
लिख गई चिर स्नेहलेखा
करुणाई अंकित नयन में
जो सहज सौन्दर्य-रेखा
तमपटी सी मुक्त कुन्तलराशि, पूनमचन्द्र सा मुख !
(मै दिवसका ताप शापित कंठसे जिसको बुलाता—)
क्या नहीं तुम वह अमर छबि की सलोनी रात रंगिनि ?

(योजना '५९—"रूपकी बरसात" से)

३—नहीं है दर्द
(आत्माका उदित वह पुण्य !)
क्रास पर लटके मसीहा सा कहूँ,
लो, घाव में कीलें नुकीली हाथ में ठोंको
तुम्हारे वास्ते मैं तो
घृणा में कीच में
अपमान में धँस कर
अछूता सत्य लाया हूँ
उसे मैं
आज तुम को सौंपता हूँ।

(पद्यांजलि से—)

श्री जवाहर कौल—आप कश्मीरके उन तरुण कहानीकारोमेंसे हैं, जिनकी साहित्य-साधनाको देखकर निःसकोच कहा जा सकता है कि यह मेधावी कहानीकार हिन्दी कहानी क्षेत्रमें, निकट भविष्यमें ही अपना विशेष स्थान बना लेगा। श्री कौल सफापुरा ग्राम (कश्मीर) में एक मध्यवर्गीय कश्मीर घरानेमें १९३७ ई में उत्पन्न हुए। आप अपने पिताजीके साथ बचपनमें लद्दाखमें काफी समय तक रहे। अत आपकी कई अच्छी कहानियोमें लद्दाखके जीवनकी झाँकियाँ देखनेमें आती हैं। आपकी भाषा सुबोध है।

आपकी कहानियोंके प्राण आपके कथापात्रोंके सुन्दर वार्तालाप हैं। कथासंग्रह [illegible] 'नरगिस' मानके कहानीका एक वार्तालाप देखिए —

कहाँ रहती हो?
नगर मुन्ना
क्या तुम्हारे भाई बहन हैं?
न।
माँ?
मालूम नहीं।
क्या वह तुम्हारे पिताके पास नहीं? मैंने आश्चर्यसे पूछा।
नहीं।
क्या पतिसे झगड़ा हो गया है?
वे उसके पति नहीं।
तो वे तुम्हारे असली पिता नहीं?
नहीं।

श्री रतनलाल शान्त — आप कहानियाँ कविताएँ तथा आलोचनात्मक निबन्ध लिखते हैं। आपकी कला धीरे-धीरे प्रगतिकी ओर बढ़ती जा रही है। नई कविता ने आपको खूब प्रभावित किया है। आप विमर्शशील तरुण लेखक हैं। आपका जन्म १९३९ ई० में श्रीनगर, कश्मीरमें एक कुलीन घरमें हुआ है। आप मेधावी हैं और आपको शोधग्रन्थोंके लिखनेमें काफी रुचि है। आपकी कविताके कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं —

सूरज कभी मेरे यहाँ से नहीं गुजरा,
अपनी अँधेरी कोठरी के झरोखे से
मैंने बाहर झाँक कर
उषा के फूल सम्हालती मालिन से
और तारों की बन्द होती दुकानों से,
जितनी भी किरणें खरीदी थीं।
वे सब खोटी निकलीं।

(पथावलिसे)

दूसरा खण्ड

हिन्दी साहित्यका इतिहास

[राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे]

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

प्रस्तावना :

[हिन्दीको राष्ट्रभाषाका यह स्थान और पद उसकी उस व्यापक और आन्तरिक शक्ति के कारण मिला है, जो उसे समय-समयपर धार्मिक, आध्यात्मिक और साहित्यिक नेताओ कवियो, लेखको, और धर्म-प्रचारकोके पोषणसे प्राप्त हुई। राष्ट्रभाषा हिन्दीके सम्बन्धमे यह तथ्य जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि यह भाषा कही की बोल-चालकी भाषा नही है। इसे उत्तर भारतके मनीषियो, धर्म-प्रचारको, सन्तो और व्यापारियोने मिलकर देशव्यापी रूप दिया, मुसलमान शासकोने अपनी राज सभाओमें इसकी नई शैली उर्दूके नामसे चलाई, क्योकि यह पहलेसेही व्यापारियोकी (बाजारकी) व्यावहारिक भाषा बनी हुई थी।

देशकी अखण्डताके साथ देशके लिए भाषाका एक होना आवश्यक है। यह प्रधान तत्व गाँधीजी जैसे महापुरुषने भलीभाँति समझकर उसे राष्ट्रभाषाके रूपमे प्रतिष्ठित किया। सयोग या कुयोगसे राजनैतिक द्वारसे इसका प्रवेश करा देनेके परिणाम स्वरूप इसका कही-कही विरोध भी किया गया और यह कहकर किया गया कि उत्तर भारतकी यह भाषा हम पर बलपूर्वक लादी जा रही है। किन्तु तथ्य यह है कि यह भाषा उत्तर प्रदेश और बिहारके लिये भी वैसे ही नई है, जैसे दक्षिणके लिए। किन्तु उत्तर भारतने इसे कुछ दिन पहले अपने व्यवहारके लिये स्वीकार किया और अन्य प्रदेशोने अब किया है।

इस प्रयासमें ऐतिहासिक दृष्टिसे यह प्रदर्शित किया गया है कि कई शताब्दी पूर्वसे ही भारतके विचार-शील महापुरुष भारतीय जनताकी भावात्मक एकता सिद्ध करनेके लिए एक व्यापक भाषाकी सृष्टि करते जा रहे थे, जिसके परिणाम-स्वरूप आजकी हिन्दी भाषा अपना पूर्ण प्रौढ रूप ग्रहण कर सकी है और जिसकी विस्तृत परिधिमे पूर्वमें बिहारसे पश्चिममे पजाब तक और उत्तरमे नेपाल और पार्वत्य प्रदेशसे लेकर विन्ध्य-मेखला तक के बीच बोली जानेवाली सभी बोलियाँ समविष्ट हो जाती है।

इस इतिहासमें हिन्दी साहित्यकी परिधिमे भोजपुरी और उर्दूका भी समावेश किया गया है, क्योकि भोजपुरी भी अब बोलीसे ऊपर उठ रही है और उर्दू तो हिन्दीकी शैली ही है, जिसका विचार हिन्दी साहित्य के ही अन्तर्गत होना चाहिए। इसी प्रकार नेपाली भापा भी हिन्दीकी ही आत्मीय भापा है। उसका साहित्य

भी समृद्ध है। उसका समावेश भी हिन्दी साहित्यके अन्तर्गत होना चाहिए। हिन्दी साहित्यके इतिहास-लेखकोंको इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

इस इतिहासमें भाषा और साहित्यिक प्रवृत्तियोंका विशेष विवेचन किया गया है। इन प्रवृत्तियोंके विवेचनके अन्तर्गत यथासम्भव अधिकसे अधिक कवियों और लेखकोंका समावेश किया गया है, फिर भी अज्ञात प्रचारभावसे दूर रहनेवाले बहुतसे कवियों और लेखकोंके नाम छूट गए होंगे। किन्तु जहाँ तक साहित्यिक प्रवृत्तियोंका प्रश्न है कोई प्रवृत्ति छूटने नहीं पाई। इसे राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे हिन्दी साहित्यका इतिहास प्रस्तुत करनेका प्रयास ही समझना चाहिये। हिन्दी साहित्यका विस्तृत इतिहास नहीं। हमारे गुरु आचार्य शुक्लजीने अपने प्रसिद्ध 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' के प्रथम संस्करणकी भूमिकामें लिखा है—'वर्तमान सहयोगियों तथा उनकी अमूल्य कृतियोंका उल्लेख भी थोड़े-बहुत विवेचनके साथ करते-करते किया गया' किन्तु मैंने भय और पक्षपात छोड़कर निर्धारित कसौटीपर कसकर परीक्षण करनेका प्रयत्न किया है, इसलिए कुछ वर्तमान-कालीन लेखकोंकी रचनाओंका मूल्यांकन करनेमें स्वभावतः सत्य-समीक्षाकी दृष्टिसे कुछ कड़ा होना पड़ा है किन्तु विश्वास है कि वे और उनके पक्षपाती उसे सहन करने और उस दृष्टिसे आत्म-परीक्षण करनेकी उदारता दिखावेंगे। यह कहना तो नितान्त मिथ्याहंकार होगा कि इस प्रबन्धमें पूर्ण न्याय किया गया है फिर भी न्यायशील होनेका प्रयत्न सात्विक निष्ठासे किया गया है। मैं राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको धन्यवाद देता हूँ कि उसने मुझे यह इतिहास लिखनेका अवसर दिया। मैं उन मित्रोंका कृतज्ञ हूँ जिनके ग्रन्थोंसे मुझे सहायता मिली है। मुझे विश्वास है कि कृपालु पाठक अपने अनमोल सुझाव देकर और छूटे हुए नामोंका विवरण देकर मुझे अनुगृहीत करेंगे जिससे अगले संस्करणमें उचित परिष्कार किया जा सके।]

इतिहासकी रूपरेखा

भारतकी प्राकृत भाषाओंने देश भेदसे अथवा भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार देशी भाषाओंका रूप धारण कर लिया और इस क्रियामें जहाँ एक ओर संस्कृतने अपनी शब्दावली तत्सम और तद्भव रूपमें दी वहीं विभिन्न प्रदेशोंकी बोल-चाल और व्यवहारमें प्रयुक्त होनेवाले देशी शब्द भी साहित्यमें स्थान पाने लगे। परिणाम यह हुआ कि देशी भाषाओंका साहित्य भी अपना उदार रूप-वैभव लेकर साहित्यकी सृष्टि करने लगा। इस सम्पूर्ण प्रयासमें लोक-कवियोंने अपनी सामूहिक लोक-भावना लोक-संस्कृति और लोक चरित्रका वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया जिसके परिणाम-स्वरूप भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें व्याप्त अनेक देशी भाषाओंमें प्रचुर मात्रामें साहित्यका सर्जन होने लगा।

संस्कृतका आधार

उत्तर भारतकी समस्त देशी भाषाओंका आधार संस्कृत भाषा ही थी इसलिए स्वभावतः जहाँ उनमें एक ओर देशी शब्दोंके अपनानेकी प्रवृत्ति थी वहीं दूसरी ओर संस्कृतके तत्सम और तद्भवको भी आत्मसात् करनेकी उदारता विद्यमान थी। इस उदारताका दूसरा सुफल यह हुआ कि उच्चारणमें थोड़ी-बहुत विभिन्नता और विलक्षणता होनेपर भी वे इतनी अधिक एक-दूसरेके साथ घुल-मिल गईं कि उत्तर

भारत के एक प्रदेशके निवासी दूसरे प्रदेशकी देशी भाषाको बडी सुविधाके साथ समझ सकते थे। यह व्यापकता लानेका श्रेय उन महात्माओ, साधुओ, विद्वानो तथा धर्म-प्रचारको और व्यासोको था जिन्होने समस्त उत्तर भारतमे घूम-घूमकर धर्मका प्रचार किया। साथ ही यह श्रेय उन चारणोको भी था जिन्होने भारतीय इतिहासके वीर चरितोको अपनी ओज पूर्ण भाषामे जनताको सुना-सुनाकर उन्हे अपनी आन तथा अपने मान-सम्मानकी रक्षाके लिये उद्बोधित किया था। इस धार्मिक तथा वीरता-पूर्ण प्रचारके साथ ही समस्त उत्तर भारतमें वैष्णव धर्मके प्रचारके कारण एक विचित्र प्रकारकी धार्मिक चेतना व्याप्त हो गई, जिसमे एक ओर तो भारतीय धम और दर्शनके आधारपर भगवद्-भक्ति, उपासना और साधनाका प्रचार किया जा रहा था और दूसरी ओर हिन्दू जनताके हृदयमे अपने धर्मकी रक्षाके लिए आत्मबल, शौर्य और तेजका भाव भरकर उन्हे उद्दीप्त किया जा रहा था। प्रारम्भमे तो भाषाके व्यापकत्वकी इस वृत्तिका कोई महत्व नही समझा गया किन्तु हिन्दी साहित्यके प्रसिद्ध इतिहासकार, सशक्त समालोचक, अप्रतिम निबन्धकार और प्रभावशील कवि आचार्य रामचन्द्र शुक्लने उत्तर भारतमे व्याप्त इन दोनो प्रवृत्तियोको परस्पर मिलती-जुलती भाषाओमे पल्लवित करने और बल देनेवाली साहित्य-शक्तियोको एक सूत्रमे गूँथनेका जो अत्यन्त स्तुत्य कार्य किया, वह राष्ट्रीयताकी भावना और राष्ट्रभाषाको व्यापक स्वरूप प्रदान करनेकी भूमिकाके रूपमे बडा महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ, अन्यथा पजाबीके समान सभी प्रादेशिक भाषाएँ अपनी बोली और उसके जैसे-तैसे साहित्यको ले-लेकर अपनी ढपली, अपना राग गाते और अपनी डेढ चावलकी खिचडी अलग पकाकर भाषावार प्रान्तकी बडी विषम समस्याएँ उत्तर भारतमे खडीकर देते, किन्तु उन्होने अत्यन्त सुचारु रूपसे और अत्यन्त व्यापक दृष्टिकोणसे पूर्वमे मैथिली और मगहीसे लेकर पश्चिममे राजस्थानी और पजाबीकी बोलियोके साहित्यको हिन्दी भाषा के एक साहित्य सूत्रमे आबद्ध कर दिया क्योकि इस समस्त प्रदेशकी लोकभावनाका एक ही सस्कार सूत्र था, उनकी एक ही प्रकारकी समस्याएँ थी और उस समस्याओके समाधानके लिए एक ही प्रकारका सम्मिलित भावात्मक प्रयास था। इसीलिए आचार्य शुक्लजीने चन्द और उनके अनुगामी वीर कवियोको तथा विद्या-पति-जैसे श्रृगार और भक्तिके कवियोको एक ही साथ प्रस्तुत करनेका आयोजन किया, क्योकि उत्तर भारतमे जहाँ एक ओर शैव और वैष्णव धर्मकी तथा हिन्दुत्वके रक्षणको भावनाकी प्रबलता थी वही दूसरी ओर हिन्दू और मुस्लिम सस्कृतियोका समन्वय करनेवाले कबीर-जैसे निर्गुण सन्तोकी प्रधानता थी। इसके साथ-साथ विश्वके लोक-मानसमे शाश्वत विहार करनेवाली श्रृगारकी भावना सभी देशोमें समान रूपसे व्याप्त थी ही। इसी युगमें उत्तर भारतमे विशेषत राजस्थानमें क्षत्रिय वीरो और वीरागनाओने अपने शौर्य, पराक्रम और आत्म-बलिदानसे उदात्त मनुष्यताके जो तेजस्वी आदर्श प्रस्तुत किए, उन्हे केवल क्षत्रिय ही नही अन्य जातियाँ भी सराहनीय, आदरणीय और अनुकरणीय समझती थी। वे आदर्श कवियोकी वाणीसे अधिक सशक्त हो-होकर लोक मानसमें इतने अधिक सजीव रूपसे प्रतिष्ठित हो गए कि साधारण जनता भी तन्मय होकर चारणोके वीर काव्यको श्रवण करती और अपने मनोविनोदके लिए भी जगनिक जैसे वीर कविके आल्हाका गायन करती थी।

हिन्दी साहित्यका राष्ट्रीय रूप

इस दृष्टिसे हिन्दी साहित्यका रूप प्रारम्भमें ही पूर्णत राष्ट्रीय हो गया था और उस राष्ट्रीयताका

अर्थ उस युगकी दृष्टिसे था विदेशी मुसलमानी संस्कृतिको देशसे बाहर करना, तत्कालीन यवन शासकोंके अत्याचारको रोकना और बलपूर्वक तलवारकी ताकतसे लादी जानेवाली प्रवृत्तिका विरोध करना। साहित्यके इस प्रारम्भिक रूपमें इसीलिए दो प्रकारकी प्रवृत्तियाँ व्यापक रूपसे दृष्टिगोचर होती हैं—एक तो दार्शनिक और धार्मिक कर्मकाण्डकी प्रवृत्ति जो दार्शनिक दृष्टिसे जनताके मनमें भारतीय देवता, धर्म या उपासनाकी वृत्ति जागरित करके उपासनाकी पद्धति प्रवर्तित करे अथवा उदार भावसे सब धर्मोंका समन्वय करके सहनशीलताका पाठ सिखावे। दूसरी वीरतापूर्ण प्रवृत्ति जो भारतीय प्राचीन पूर्व-पुरुषोंके वीरता-पूर्ण चरित्रोंकी काव्यात्मक चर्चा करते हुए लोगोंमें आत्म-सम्मान, उनकी आत्म-चेतना और धर्मकी रक्षाके लिए प्राण उत्सर्गकी भावना भरती चल रही थी। यह प्रयास सामूहिक रूपसे पञ्चनदसे लेकर बिहार तक निरन्तर होता रहा और यही हिन्दी साहित्यका आदिकाल है जिसमें ऐतिहासिक दृष्टिसे भी उत्तर भारतके क्षत्रिय शासकोंने सम्मिलित रूपसे या एकाकी होकर पश्चिमोत्तरसे आक्रमण करनेवाले आक्रमकोंका प्रतिरोध किया था। ऐसे लोकोपकारी पराक्रमी वीरोंका वरण करनेके लिए भी सुन्दरी क्षत्रिय कुमारियाँ लालायित रहती थीं इसलिए इस वीरताके साथ उदात्त शृंगार भी साथ-साथ पल्लवित हुआ और यह वीर तथा शृंगारकी भावनाएँ काव्य और साहित्यमें एक साथ विकसित हुईं।

साहित्यमें वचनका अनधिकृत प्रवेश

इधर हिन्दीके कुछ साहित्यकारोंने हिन्दी साहित्यकी भूमिकाके रूपमें वज्रयानी सिद्धोंकी ऊटपटाँग अटपटी बानियोंको भी हिन्दी साहित्यमें प्रविष्ट करनेका बीड़ा उठाया है किन्तु यह सिद्धोंकी समूची बानी न तो साहित्य ही है, न तो काव्य ही। वह पूर्णतः एकाकी ठेठ दार्शनिक पारिभाषिक शब्दोंसे लदी हुई अस्पष्ट उक्तियोंका समूह है जिसमें वज्रयानियोंके सिद्धान्त, कर्मकाण्ड और आचार मात्रका वर्णन या नैतिक उपदेशका भाण्डार है जिसे साहित्यमें सम्मिलित नहीं किया जा सकता। यही बात कबीर आदि सन्त महात्माओंके वचनोंके साथ भी है। उसे सर्वप्रथम मिश्र-बन्धुओंने अपने हिन्दी नवरत्नमें स्थान देकर इतना अनावश्यक महत्त्व दे दिया और कबीर भी हिन्दी साहित्यके महारथियोंके साथ पाँचवें सवार मान लिए गए और 'कौवा कान ले गया' की कहावतके अनुसार सभी इतिहासकारोंने उसी भूलका अन्धानुकरण किया। वास्तवमें ऐसी सब कृतियाँ साहित्यकी सीमासे बाहर हैं और बाहर रहनी भी चाहिएँ। राजशेखरने अपनी काव्य-मीमांसामें इसीलिए स्पष्ट घोषित कर दिया है कि सम्पूर्ण वाङ्मयके दो भाग होते हैं—शास्त्र और काव्य। इसलिए सन्त कवियोंकी समस्त रचनाएँ शास्त्र या नीति-ग्रन्थोंके अन्तर्गत तो आ सकती हैं काव्यके अन्तर्गत नहीं क्योंकि काव्यका सबसे बड़ा आधार उसका मूर्त आलम्बन होता है। जब तक कि मूर्त आलम्बन पुष्ट न हो तब तक काव्यका कोई अस्तित्व ही नहीं होता है। सन्तोंकी बानीमें प्रसंगवश उपमा, रूपक, दृष्टान्त आदि आ जानेसे या कहीं-कहीं कोई सूक्तिका चमत्कार आ जाने मात्रसे ही वह साहित्यकी कोटिमें नहीं आ सकती। उसके काव्यत्व या साहित्यकी स्थापनाके लिए स्पष्ट और मूर्त आलम्बनका होना आवश्यक है। यह आलम्बन-तत्त्व सम्पूर्ण सन्त साहित्यमें स्वभावतः अनुपस्थित है और इसीलिए उसमें कहीं भी न तो काव्यानन्द ही प्राप्त होता और न उसमें रसकी तन्मयता ही आ सकती।

हिन्दी साहित्यमें भारतीयता और मानवता

हिन्दी साहित्यके इतिहासका एक और भी महत्त्वपूर्ण पक्ष है। वह यह है कि हिन्दी साहित्यमे अन्य साहित्योके समान केवल मानवीय भावनाओंके चित्रणका ही नही, वरन् राष्ट्रीय और सार्वभौम दृष्टिसे उनके उदात्तीकरणका भी प्रयास किया गया। इस प्रयासमे साहित्य केवल मनोविनोदका साधन ही नही वरन् समाजके उद्धारका साधन भी बन गया जिससे उसका महत्व राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे और भी अधिक बढ गया। ऐसी स्थितिमे हिन्दी साहित्यका परीक्षण और अध्ययन चार दृष्टियोसे करना उचित होगा—१–हिन्दी साहित्यमे भारतीय धर्म और दर्शनकी वृत्ति जगाने और उसकी स्थापनाके लिए प्रयत्न। २–हिन्दी साहित्यमे आत्म-रक्षा, धर्म-रक्षा, देश-रक्षा, आनकी रक्षा और समाज रक्षाके लिए किस प्रकारकी काव्यमयी प्रेरणाये प्राप्त होती है। ३–मनुष्य-मात्रके हृदयमे शाश्वत रूपमे व्याप्त शृगार आदि रसोकी निष्पत्तिके लिए सामग्री। ४–समाजको आदर्श रूपसे सुव्यवस्थित और सुसगठित करनेके लिए कवियोके प्रयास। ये चारो ही राष्ट्रीय भावनाएँ है, क्योकि इनमे आत्म-रक्षा, समाज या जातिके सस्कारो और भावनाओकी रक्षा, मनुष्यकी सामान्य वृत्तियोका पोषण और सामाजिक आदर्शकी स्थापना चारो समान रूपसे निहित है।

हिन्दी साहित्यके इतिहासकी नवीन विवेचन-पद्धति

आचार्य शुक्लजीने 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' नामक ग्रन्थमे हिन्दी साहित्यके नौ सौ वर्षोंके इतिहासको चार कालोमे विभक्त किया है—आदिकाल (वीरगाथा-काल सम्वत् १०५० से १३७५), पूर्व मध्यकाल (भक्ति-काल स १३७५ से १७००), उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल, स १७०० से १९००), आधुनिक काल (गद्यकाल स १९०० से १९८४)। किन्तु यहाँ यह खण्ड-क्रम इसलिए नही ग्रहण किया गया कि जिस अवधिमे काल बाँध दिए गए है, उस अवधिके पश्चात भी आज तक वे सभी साहित्य-धाराएँ विभिन्न प्रदेशोमे निर्बाध गतिसे निरन्तर चलती रही, कभी बन्द नही हुई। राजस्थानी साहित्यमें वीरगाथा कालकी परम्परा १३७५ तक ही समाप्त नही हो गई। आज भी राजस्थानके कवि अपनी उसी शृगारसे पुष्ट वीरकाव्य-परम्परामें रचनाएँ करते चले आ रहे हैं। इसी प्रकार ब्रजभाषा में भी भक्ति और शृगार-समन्वित काव्यकी जो परम्परा चली वह बीचमें कभी लुप्त नही हुई। वह भी आज तक ज्यो-की-त्यो चली आ रही है। यद्यपि व्यावहारिक क्षेत्रमे नागरी (खडी बोली) का ही प्रचार अधिक है, किन्तु ब्रजभाषाके कवि आज भी उसी प्रकार, उसी धारामे, उसी पद्धतिके अनुसार, उसी ओजसे भक्ति और शृगारकी रचनाएँ करते जा रहे है। मैथिली साहित्य कभी हिन्दी साहित्यमे उतना सम्पर्क नही प्राप्त कर सका जितना स्वभावत उसे प्राप्त कर लेना चाहिए था। यही कारण है कि मैथिलीके अनेक प्रसिद्ध कवियोमेंसे एकमात्र कवि विद्यापति ही हिन्दी साहित्यके क्षेत्रमें प्रसिद्धि पा सके और अध्ययनके विषय बन सके। यद्यपि उन्हे भी बँगलावाले अपना कवि मानते हैं। इसलिए मैथिली साहित्यके प्रसगमें हम विशेष काव्य चर्चा न करके केवल विद्यापतिके साहित्यकी विशेषता बताकर छोड देंगे।

नागरी (हिन्दी) साहित्य

नागरी साहित्यका प्रारम्भिक काल अन्य भाषाओंके समान ही अत्यन्त प्राचीन है जिसमें पहले

तो कविता ही होती थी किन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके समयमें और उसके कुछ पहलेसे गद्यमें भी रचना होने लगी थी। भारतेन्दुजीने अपने समयमें नागरी गद्यके विविध प्रकारोंको अपने समाचार-पत्र और अपनी रचनाओंके द्वारा इतना प्रोत्साहन दिया कि वह प्रौढ़ होकर आगे बढ़ चला और उसमें नाटक उपन्यास कहानियाँ निबन्ध गद्यकाव्य और जीवन-चरित आदि भी लिखे जाने लगे। इन रूपोंके अतिरिक्त साहित्यिक समीक्षाएँ समीक्षात्मक निबन्ध तथा योरोपीय गद्य शैलियोंके प्रभावसे अनेक प्रकारकी साहित्यिक रूप-शैलियोंमें रचनाएँ होने लगीं। अतः नागरी साहित्यका विवेचन करते हुए निम्नांकित क्रमसे उसका इतिहास स्पष्ट करनेका प्रयत्न करेंगे—कविता नाटक उपन्यास कहानी गद्यकाव्य निबन्ध और समीक्षा। इन सब रूपोंके विकासके क्रमके साथ उनकी विभिन्न अवस्थाएँ तथा उन विभिन्न रूप-शैलियोंके विशिष्ट लेखकों और कवियोंका समीक्षात्मक परिचय भी दिया जायगा।

विवेचन-पद्धति

इतिहासकी इस क्रममें यही विशेषता होगी कि हिन्दीके व्यापक रूपके अन्तर्गत आनेवाली प्रत्येक विभाषाकी प्रकृति उसके साहित्यकी विशेष प्रवृत्तियों और आन्दोलनोंका सामान्य परिचय देकर उस साहित्यके विशिष्ट कवियों और लेखकोंकी निम्नांकित क्रमसे विश्लेषणात्मक व्याख्या की जायगी—१—कविका परिचय २—कविका अध्ययन तथा पाण्डित्य ३—कविका काव्यकी ओर उन्मुख करनेवाली प्रेरणाएँ, ४—कविकी रचनाएँ ५—कविका काव्य-कौशल और ६—उसका प्रभाव।

अपभ्रंश और हिन्दी

जबसे पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरीने काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी पत्रिकामें पुरानी हिन्दी शीर्षक लेख लिखा तबसे हिन्दीके सभी इतिहासकार यह मानते चले आए कि हिन्दीकी उत्पत्ति उस अपभ्रंशसे हुई है जो हेमचन्द्रके अपभ्रंश व्याकरणमें अथवा सोमप्रभदेव और सिद्धपाल आदिकी रचनाओंमें पाया जाता है। किन्तु सत्य यह है कि जैन ग्रन्थोंमें और हेमचन्द्रके प्राकृत व्याकरणमें जिस अपभ्रंशकी व्याख्या की गई और जिसके उदाहरण दिए गए हैं वे सब पुरानी हिन्दी के नहीं वरन् पुरानी गुजराती और पुरानी राजस्थानी के हैं। जिसे डॉ॰ ग्रियर्सनने नागर अपभ्रंश सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याने सौराष्ट्र अपभ्रंश और कन्हैयालाल मुनशीने सौराष्ट्री अपभ्रंश कहा है। आज भी राजस्थानके अनेक कवि उसी अपभ्रंशकी विकृत भाषा (डिंगल) में रचना करते हैं। राजस्थानी बोलियोंमें अब भी वैसे ही शब्दोंका प्रयोग होता है। यह भाषा ट वर्ग प्रधान विशेषतः ण प्रधान है। यहाँ वचन के लिए वयण और सयन के लिये सयण और विशेष के लिये विएस का प्रयोग होता है किन्तु ब्रज और अवधीकी प्रकृति इससे भिन्न है। वह नकार प्रधान है यहाँ वचन और सयन का बैन और सैन तथा विशेष का बिसेस हो जाता है। इसके अतिरिक्त रासक रासो तथा अपभ्रंशकी प्रकृतिमें लिखनेवाले लेखकोंकी रचनाएँ जो उदाहरणमें गुलेरी जीने दी हैं वे सब उन्हीं लेखकोंकी हैं जो गुजरात या पश्चिमी राजस्थानके आसपासके रहनेवाले थे। अतः उस अपभ्रंशको हिन्दीकी अर्थात् नागरी ब्रज अवधी भोजपुरी आदिकी माता मानना अत्यन्त अनुचित और असंगत है फिर भी हिन्दीके इतिहासकारोंमें

परम्परासे विशृंखलित न होनेकी भावनासे अपभ्रंश भाषा और साहित्यका भी समुचित विवेचन कर दिया गया है।

नागरी भाषा *

नागरी भाषाकी उत्पत्ति अन्तर्वेदमें हुई और वह सीधे संस्कृतसे स्वयं प्राकृत बनकर फूट निकली। जिन दिनों (चौदहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें) गुजरात और पश्चिमी राजस्थानके अनेक कवि अपनी अपभ्रंश बोलियोंमें रचनाएँ कर रहे थे, उन्हीं दिनों मियाँ खुसरो दिल्लीमें बैठे उस नागरीमें बातचीत कर रहे थे और अपनी मुकरियाँ लिख रहे थे जो वास्तवमें ठेठ देशी नागरीकी प्राकृतिक भाषा है और जिसके उदाहरण अत्यन्त स्पष्ट है —

एक नारने अचरज किया, साँप मार पिंजरेमें दिया।
तरवरसे एक तिरिया उतरी, उसने खूब रिझाया।
बापका उससे नाम जो पूछा, आधा नाम बताया।।

उर्दूवालोंने भी इन्हीं उदाहरणोंको उर्दूका आदिरूप माना है। इतना ही नहीं, जब फारसी भाषाको नागरी भाषामें बदलनेकी बात चली और अमीर खुसरोने खालिकबारी लिखी, वह इस बातका प्रमाण है कि १४ वीं शताब्दीमें दिल्लीके आस-पास मेरठ, मुजफ्फरनगर जिलोंकी वह बोलचालकी भाषा साहित्यिक रूप धारण करती जा रही थी जिसमें अमीर खुसरोने अपनी पहेलियाँ और मुकरियाँ लिखीं। खालिक बारीके पहले ही पद्य—'खालिकबारी सिरजनहार। वाहिद एक, बिदा करतार।' में 'सिरजनहार', 'एक' और 'करतार' शब्द नागरी भाषाकी प्रकृतिके वे प्रारम्भिक रूप हैं, जो संयोगसे आज भी ज्योंके त्यों मेरठ प्रदेशके घरोंमें बोले और समझे जाते हैं, और जिसमें हरिऔधजीने 'चुभते चौपदे,' 'चोखे चौपदे' आदि ठेठ भाषाके ग्रन्थोंकी रचना की है।

इसका अर्थ यह है कि १४ वीं शताब्दीसे पूर्व न जाने कितनी शताब्दियों पहलेसे आज तक इस अन्तर्वेद में वह भाषा बोली जाती रही और उसमें काव्य भी रचे जाते रहे, जिसे हम 'ठेठ नागरी' कह रहे हैं और जिसमें अमीर खुसरोने उपर्युक्त रचनाएँ कीं। यह भाषा कितनी व्यापक थी इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि खुसरोसे भी पहले नामदेवने अपनी कुछ रचनाएँ इसी नागरी भाषामें प्रस्तुत कीं। अतः निश्चित रूपसे हेमचन्द्र द्वारा प्रतिपादित अपभ्रंश भाषाका नागरी, ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि हिन्दीकी किसी भाषासे किसी प्रकारका कोई सम्बन्ध नहीं था।

भारतमें ही नहीं, संसारके सभी प्रदेशोंमें जिस प्रकार नदियों, पहाड़ों आदि भौगोलिक सीमाओंसे घिरे हुए प्रदेशोंमें अलग-अलग बोलियाँ उपजीं और पनपीं उसी प्रकार अन्तर्वेदमें संस्कृतसे सीधे नागरीका विकास हुआ।

---

* वर्त्तमान हिन्दी (खड़ी बोली)

राष्ट्रभाषा

हमारी राष्ट्रभाषाका स्वरूप नागरी भाषाका वह व्यापक रूप है, जिसे समूचे भारतमें तथा भारतके बाहरके भी कुछ मिलाकर कमसे कम १५ करोड़ प्राणी बोलते और समझते हैं और जिसमें देश-भेद के अनुरूप संज्ञा विशेषण आदिके लिए तत्तत्प्रदेशीय शब्दोंका प्रयोग होता रहता है। राष्ट्रभाषासे अपरिचित लोग अपने देशके अन्य प्रान्तोंमें जानेपर भारी कठिनाइयोंमें पड़ सकते हैं। हम भले ही राष्ट्रभाषाके विद्वान न हों राष्ट्रभाषा भली प्रकार बोल भी न सकें पर समझ सकनेका अभ्यास तो हमें अवश्य करना ही चाहिए। राष्ट्रभाषाका अध्ययन इसी उद्देश्य से किया जाता है कि हम प्रत्येक देशवासीको अपनी बात समझा सकें और उसकी बात समझ सकें।

राष्ट्रभाषाकी समस्या।

भारतीय संविधान द्वारा राष्ट्रभाषाका प्रश्न निर्णीत हो जानेपर भी कुछ लोगोंने उसे जटिल बना रखा है। सच पूछिए तो संस्कृत ही भारतकी वास्तविक राष्ट्रभाषा है जिसे समझने और बोलनेवाले आज कश्मीरसे लेकर कन्या कुमारी तक और सीमा प्रान्तसे लेकर ब्रह्मा तक मिलेंगे। यह संस्कृतका ही प्रताप है कि भारतकी सभी देशी भाषाओंमें अधिकांश शब्द संस्कृतके तत्सम या तद्भव रूपमें व्यवहृत होते हैं। अत हमारी राष्ट्रभाषाका जो भी स्वरूप होगा उसकी पहली पहचान तो यह होगी कि उसमें अधिकांश शब्द संस्कृतके तत्सम या तद्भव होंगे अर्थात् वह संस्कृत निष्ठ होगी अरबी फारसी अंग्रेजी निष्ठ नहीं। कुछ लोग समझते हैं कि संस्कृत-निष्ठ बनाकर नागरी भाषा कठिन और दुर्बोध की जा रही है। यह तो अवश्य सत्य है कि नागरी भाषाकी मूल या ठेठ प्रकृति वास्तवमें सरल तद्भवात्मिका है किन्तु वह प्रकृति उस परिमित क्षेत्रके लिए ही सरल हो सकती है जहाँ वह शताब्दियोंसे लोगोंकी बोलीमें मँज चुकी है और लोक-व्यवहृत होनेके कारण बोध-गम्य हो चुकी है। किन्तु अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंके लिए नागरीके उन तद्भव शब्दोंकी अपेक्षा तत्सम संस्कृत शब्द अधिक सुगम और बोधगम्य होंगे। एक उदाहरण लीजिए। ठेठ नागरी भाषामें हम कहते हैं —

पराई सम्पदा देखकर तुम्हें क्यों डाह लगती है ?

इस वाक्यमें सम्पदा शब्द तो संस्कृत-मूलक भाषा वाले समझ जाएँगे किन्तु डाह लगना हमारे लिए जितना सरल है उतना ही दूसरोंके लिये कठिन है। यदि हम कहें—

दूसरोंकी सम्पत्ति देखकर तुम्हें क्यों ईर्ष्या होती है तो सब प्रदेशोंके लोग सरलतासे समझ जाएँगे।

दूसरी बात यह है कि राष्ट्रभाषा उसी प्रदेशकी भाषा हो सकती है जिसमें राज-क्षेत्र या धार्मिक क्षेत्र हो क्योंकि सम्पूर्ण देश चाहे और कहीं जाय या न जाय किन्तु राजक्षेत्र और धार्मिक क्षेत्रमें अवश्य जाता है। भारतके राजक्षेत्र और धार्मिक क्षेत्र सब उत्तर भारतमें ही हैं। गंगाजी यमुनाजी कैलास बदरीनाथ हरिद्वार, प्रयाग काशी अयोध्या मथुरा वृन्दावन चित्रकूट आदि हिन्दुओंके शैव और वैष्णव केन्द्र तथा राजधानी दिल्ली सब गंगा-यमुनाके आस-पास ही हैं। अत यहाँकी भाषासे मिलती-जुलती भाषा ही भारतमें सांस्कृतिक क्षेत्रकी भाषा होनेके कारण राष्ट्रभाषा हो सकती है।

तीसरी बात यह है कि घने बसे हुए होनेके कारण उत्तर प्रदेशके लोग व्यवसाय और नौकरीके लिए भारत और भारतके बाहरके प्रदेशोमे जा बसे है। वे सभी लोग बाहर जाकर भी अपनी भाषा की परम्पराका निर्वाह कर रहे हैं। जिन देशोमें वे गए है, वहाँकी भाषा भी उन्होने सीखी, पर वहाँ वालोको अपनी भाषा सीखनेको भी उन्होने बाध्य किया। भारतके अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तोमे भी बडे हाटोके व्यापारी सेवक, बैंकोंके चपरासी, ट्राम तथा मोटर चलानेवाले, दूध, तरकारी फल आदि बेचनेवाले तथा घरोमें भोजन बनाने और नौकरी करनेवाले प्राय उत्तर प्रदेशके लोग ही है। भारतके पुतलीघरोमे काम करनेवाले भी अधिकाश उत्तरप्रदेशके ही हैं। इनके अतिरिक्त मौरिशस, ट्रीनीडाड, डच-गाइना, ब्रिटिश गाइना, नैटाल और दक्षिण अफ्रिका आदि देशोंके निवासी भारतीयोकी भी व्यवहार भाषा नागरी ही है। और वे भारतसे नागरी की पोथियाँ मँगाकर अपने बच्चोको नागरी ही पढाते है। अत इस दृष्टिसे नागरी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है।

चौथी बात यह है कि राष्ट्रभाषा वही होनी चाहिए जिसे अधिकाश लोग बोलते और समझ सकते हो। यदि हम उत्तरप्रदेशमें कहते है कि 'मुझे आपसे एक बात कहनी है', तो हमारे पजाबी मित्र कहेगे—'मैंने आपसे इक्क बात कैणी ऐ।' राजपूतानेके सज्जन कहेगे,—'मुजै आपसै एक बात बोलणी है।' हमारे बगाली मित्र कहेंगे—'हाम आपको एक बात बोलने माँगता है।' ये सब वक्तव्य नागरीके ही प्रान्तीय रूपान्तर है, जो किसी प्रकारसे भी वक्तामे भावको व्यक्त करने या समझनेमे बाधा नही डालते। अत व्यापक रीतिसे नागरी ही एक ऐसी भाषा है जिसे हिमालय और भारतीय सागरके बीच रहनेवाले लगभग पैंतीस करोड नर-नारी किसी-न-किसी रूपमें बोलते और समझते है।

हमारी भाषाकी समस्याएँ

अपनी मातृभाषाको हम लोग प्राय हिन्दी कहा करते हैं, पर वास्तवमें हिन्दी भाषाओके उस समूहका नाम है जो आर्यवर्तमें बोली जाती है। आज हमारी शिष्ट और सामाजिक भाषा नागरी (हिन्दी) है। जिसे लोग 'खडी बोली' के नामसे पुकारनेकी व्यापक भूल करते है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो खडी, पडी, टेढी और सीधी बोली किसी भाषाका नाम नही हुआ करता। भाषाका नाम या तो उस भूभागसे सम्बद्ध होता है जहाँ वह बोली जाती है, जैसे—मराठी, गुजराती, बगला, पजाबी आदि या उस भाषाके लक्षणके आधारपर जैसे 'बिगडी हुई भाषा' का 'अपभ्र श' स्वच्छ, मँजी हुई भाषाको 'सस्कृत' और नागरिको और शिष्ट व्यक्तियो द्वारा बोली जानेवाली भाषाको 'नागरी'। इस प्रकार या तो हिन्दीकी भाषा का नाम 'हिन्दी' मानना होगा या उसके लक्षणके कारण 'नागरी' नाम स्वीकार करना होगा क्योकि वह नगरो और नागरिकोकी भाषा है।

हिन्दीकी व्यापकता

हिन्दी वास्तवमे उस भाषा समूहका नाम है जिसके अन्तर्गत पजाबी, राजस्थानी, व्रज, अवधी, मैथिली, भोजपुरी, मगही, बुन्देलखण्डी, छत्तीसगढी, उर्दू तथा प्रादेशिक भाषाएँ और शैलियाँ आती है, जिस शैलीका नाम आज उर्दू है वह भी पहले हिन्दी' या 'हिन्दवी' कहलाती थी। पर दिन-दिन बढनेवाले-

साम्प्रदायिक विद्वेषने हिन्दीकी इस शैलीमें अरबी तुर्की फ़ारसी आदि भाषाओंके शब्द धीरे-धीरे बढ़ाकर उसे हिन्दीकी प्रतिद्वन्द्विनी भाषाका रूप दे दिया है। फिर भी उसके व्याकरणका ढाँचा देखते हुए भाषाकारोंके लिए वह हिन्दी (नागरी) ही जानी और मानी जाएगी। इस प्रकार हमारे लोक-व्यवहार माध्यम बनी हुई वर्तमान नागरी भाषा वह भाषा है जिसका संस्कृतसे अविच्छेद्य सम्बन्ध बना हुआ है जिसके क्रियापद स्वाभाविक लोक वाणीमें अपना लोक-व्यवहृत रूप स्थिर करके साहित्य और जन-व्यवहारमें प्रयुक्त होते हैं जिसमें देशीय उपसर्गों और प्रत्ययोंके साथ साथ संस्कृत प्रत्यय और उपसर्गोंका भी प्रयोग होता है जिसमें संज्ञा और विशेषण विशेषतः संस्कृतके तत्सम और तद्भव होते हैं और जिसमें उन विदेशी शब्दोंका भी नागरीकी ध्वनि और रूपके अनुसार स्वीकार हो गया है जिनका पर्याय नागरी और संस्कृतमें नहीं है या जिनका पर्याय बनानेमें उन विदेशी शब्दोंके ठीक भावका बोध होनेमें बाधा या भ्रान्ति होनेकी सम्भावना होती है।

नागरी भाषा

जिस नागरी भाषाकी हम चर्चा कर रहे हैं उसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने खड़ी बोली के नामसे स्मरण किया था। इस सम्बन्धमें इस भाषाका नागरी नाम उल्लेखनीय है। संसारमें सर्वत्र प्रायः लिपि और भाषाका एक ही नाम हुआ करता है अतः नागरी लिपिमें लिखी जानेवाली भाषा भी नागरी ही कही जानी चाहिए। उत्तरप्रदेशमें मेरठ और मुजफ्फर नगर जिलोंमें अभी तक खड़ी बोलीके नामसे पुकारी जानेवाली भाषाको नागरी ही कहते हैं। यही नागरी हमारी साहित्य-रचनाका माध्यम है। इसका गद्य और पद्य रूप हिन्दीके अन्तर्गत ही आता है। ऐसी स्थितिमें हमारी राष्ट्रभाषा और मातृभाषाका नाम नागरी ही है। भले ही हम अपने घरोंमें ब्रज अवधी छत्तीसगढ़ी और भोजपुरी आदि उन भाषाओंमें बोलते रहें जिनकी गणना उपभाषाओं और प्रादेशिक बोलियोंमें ही हो सकती है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी

अतः हिन्दी भाषा या राजभाषाके नामसे जिस भाषाका परिचय हम दे रहे हैं वह देवनागरीमें लिखी जानेवाली वह नागरी भाषा है जिसे अब व्यापक रूपसे हिन्दी कहा जाने लगा है और जो भारतकी राष्ट्रभाषा स्वीकार कर ली गई है।

हमारा पद्यात्मक साहित्य प्रायः अवधी और ब्रज इत्यादि हिन्दीकी उन भाषाओंमें है जिन्हें पुराने हिन्दू और मुसलमान भाखा कहते थे और जिनका ह्रास होते देखकर मुंशी सदासुखलालने रोते हुए कहा था —

रस्मो रिवाज भाखाका दुनियासे उठ गया।

अतः सब बातोंपर विचार करते हुए निःसंकोच कहा जा सकता है कि जिस भाषाको हम आज हिन्दी कहते हैं उसका गद्य भाग नागरी और शेष व्यापक साहित्य हिन्दी है जिसके अन्तर्गत सिन्धु नदीके पूर्वी तटसे लेकर बिहार तक तथा हिमालयकी दक्षिणी उपत्यकासे लेकर सतपुड़ाके उत्तरीय तट तक उत्तर भारतमें बोली जानेवाली सभी भाषाएँ उपभाषाएँ और बोलियाँ आ जाती हैं।

कुछ दिन पूर्व हिन्दीवालोकी प्रसिद्ध सस्थामें ऐसा प्रस्ताव रखा गया था कि केवल नागरी (खडी बोली) को ही हिन्दीके अन्तर्गत स्थान दिया जाय, किन्तु सभाने बुद्धिमत्तापूर्वक उसे अस्वीकार कर दिया, क्योकि हिन्दी साहित्यके क्षेत्रसे उस साहित्यको अलग नही किया जा सकता जिसका वर्तमान हिन्दीसे सास्कृतिक सम्बन्ध है।

अपभ्रंश साहित्य और हिन्दी

अपभ्र शके सम्बन्धमें लोगोकी यह धारणा अत्यन्त निर्मूल है कि वर्तमान हिन्दी (नागरी या खडी बोली) अवधी और ब्रजका उद्‌भव अपभ्रशसे हुआ। अपभ्र श शब्दका सर्वप्रथम प्रयोग पतञ्जलिके महाभाष्यमे ईसासे लगभग दो सौ वर्ष पूर्व हुआ। महाभाष्यमे लिखा है —

अल्पीयांस शब्द' भूयांसोऽपशब्दा। एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रशाः।
तद्यथा एकस्य गो शब्दस्य गावी गोणी गोता गोपोतलिका इत्येवादया शब्दा।

[मूल शब्द तो थोडेसे होते हैं किन्तु अपशब्द बहुत होते हैं। यहाँ तक कि एक ही शब्दके बहुतसे बिगडे हुए रूप (अपभ्र श) होते हैं, जैसे—एक ही 'गो' शब्द 'गावी', 'गोणी', 'गोता', 'गोपोतलिका' इत्यादि अपभ्र श शब्द मिलते है।]

उन्होने छन्दस् (वेद) और भाषा (सस्कृत) के शब्दोको ही साधु शब्द और शेषको अपशब्द माना है। अत पाणिनिकी दृष्टिसे अपभ्रश शब्द वे है जो लौकिक और वैदिक शब्दोसे भिन्न है। उनके अनुसार सस्कृतके शब्दोंको बिगाडकर, बढाकर, हेरफेर करके जो रूप बनाए गए हैं वे ही अपभ्र श हैं। कुछ लोगोका मत है कि अपभ्र शका अर्थ बिगडा हुआ या विभ्रष्ट नहीं है क्योकि 'गावी' शब्द तो 'गो' के विकारसे बन भी सकता है पर 'गोपोतलिका' तो किसी प्रकार भी नहीं बन सकता। किन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि 'गो' में 'पोतलिका' शब्द लाडमे प्रयुक्त हुआ है जैसे अपने कुत्ते 'मोती' को लोग प्यारसे 'मोतिया', 'सोनमोतिया' और 'मोतीलाल' भी कहते हैं। शब्दागम भी तो विकारमें ही आ जाता है। एक कृष्ण शब्दको लीजिए। उसके इतने रूप मिलते हैं—कान्ह, कन्ह, कान्हा, कन्हैया, कान्धा, कान्हरो, कन्हैयालाल' आदि। किन्तु ये सबके सब कृष्णके अपभ्रश ही है।

भरतने अपने नाट्य शास्त्रमें तत्सम, तद्‌भव और देशी तीन प्रकारके शब्दोका अस्तित्व स्वीकार करते हुए सस्कृतके बिगडे हुए रूपको ही प्राकृत माना है, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है —

एतदेव विपर्यस्त सस्कारगुणवर्जितम्।
विज्ञेय प्राकृत पाठ्य नानावस्थान्तरात्मकम्॥

यह प्राकृत पाठ्य भी भरतने तीन प्रकारका बताया है—समान शब्द, विभ्रष्ट और देशी। इसे स्पष्ट करते हुए उसने कहा है कि कमला, अमल, रेणु, तरग, लाल, सलिल आदि शब्द तो समान या तत्सम शब्द है, जो प्राकृतमे पहुँचकर भी अपना सस्कृत रूप बनाए रखते हैं। विभ्रष्ट शब्द वे है जो उच्चारण-दोषसे बिगडकर विरूप हो जाते है। जैसे—'ग्रीष्म' का 'गिम्हो', 'कृष्ण' का 'कण्हो', 'पर्यक' का 'पल्लक' आदि। इसका अर्थ यह है कि विभ्रष्ट और देशी भी प्राकृत ही है।

देशी भाषाके सम्बन्धमें भरतने कहा है कि प्रयोग के अनुसार भाषाएँ चार प्रकारकी होती हैं—

अतिभाषा, आर्यभाषा, जाति भाषा तथा जात्यन्तरी भाषा। देवताओंकी भाषाको अतिभाषा और राजाओंकी भाषाको आर्य भाषा कहते हैं। जाति भाषा भी दो प्रकारकी होती है—एक तो वह जिसमें म्लेच्छ शब्दोंका प्रयोग होता था और दूसरी वह जो भारतवर्षमें बोली जाती थी। जात्यन्तरी भाषा वह थी जो गाँव या जंगलके पशुओं या अनेक पक्षियोंकी बोलीसे मिलती-जुलती होती थी। इसका अर्थ यह है कि भरतके समयमें भी भाषा बोलनेकी प्रकृति यह थी कि शिष्ट लोग संस्कृतका प्रयोग करते थे सामान्य लोग प्राकृतका अर्थ संस्कृतको ही उलट-पलट कर या विभ्रष्ट अर्थात् बिगाड़कर बोलते थे या अपनी देशी भाषाएँ बोलते थे और ये सब प्राकृतके अन्तर्गत ही थी। इसके अतिरिक्त अलग-अलग प्रदेशोंमें अलग-अलग देशी भाषाएँ बोली जाती थीं। इस प्रकार देश भेदसे उन्होंने सात भाषाएँ गिनाई हैं—मागधी, आवन्ती, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, बाह्लीका और दक्षिणात्या। शबर, आभीर और द्रविड़ भाषाओंकी गणना उन्होंने देशीमें की है, क्योंकि उनका उच्चारण भ्रष्ट होता है। उन्होंने विभ्रष्टको ही विभाषा बताया है।

भरतने आभीरों (सौराष्ट्र-वासियों) की भाषाको उकार-बहुला बताया है और उसके उदाहरण में मोरिल्लउ नच्चन्तउ दिया है। इसी आधारपर बहुतसे विद्वान् मित्र यह समझ बैठे हैं कि चूँकि अपभ्रंशकी ही प्रकृति उकार-बहुला है इसलिए निश्चय ही आभीर भाषा ही अपभ्रंश है। यदि और भी आगेका साहित्य देखा जाय तो प्रतीत होगा कि अपभ्रंश शब्द संस्कृतके बिगड़े हुए शब्दोंके रूपमें प्राप्त होते हैं।

वलभीके राजा हरिषेणके शिलालेखमें एक वाक्य आता है —

संस्कृत-प्राकृतापभ्रंश-भाषात्रय-प्रतिबद्ध-प्रबन्धरचना-निपुणान्तःकरण: ।

[वे संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश तीनों भाषाओंमें प्रबन्ध रचना करनेमें निपुण थे।]

छठी सदीके इस लेखसे बहुत पहले भासने भी अपने नाटकोंमें प्राकृतोंका प्रयोग किया और कालिदासने भी अपने नाटकोंमें प्राकृत और अपभ्रंश सभी खुलकर प्रयोग किया है। स्वयं भरतने ही यह प्रमाणित कर दिया है कि नाटकोंमें अमुक-अमुक प्रकारकी भाषाओंका प्रयोग किया जाना चाहिए। भामहने काव्यके गद्य और पद्य भेद बताकर भाषाकी दृष्टिसे उनका भेद बताते हुए कहा है कि—काव्य तीन प्रकारकी भाषाओंमें लिखे जा सकते हैं—संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश। दण्डीने अपने काव्यादर्शमें लिखा है —

आभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंश इति स्मृताः ।
शास्त्रेषु संस्कृतादन्यदपभ्रंशतयोदितम् ॥

[काव्योंमें तो आभीर आदि जातियोंकी भाषा अपभ्रंश कहलाती है और शास्त्रोंमें संस्कृतके अतिरिक्त भाषाको अपभ्रंश कहकर जोड़ा गया है।]

अर्थात् केवल आभीरोंकी ही नहीं वरन् आभीरोंके समान अन्य असंस्कृत जातियोंकी भाषाको भी अपभ्रंश कहा गया है। इस दृष्टिसे उन्होंने प्राकृतको भी अपभ्रंश मान लिया है।

नवीं शताब्दीमें अपने काव्यालंकारमें रुद्रटने छः प्रकारकी भाषाएँ मानी हैं—प्राकृत, संस्कृत, मागधी, पैशाची, शौरसेनी और अलग-अलग देशोंकी अपभ्रंश। इसका तात्पर्य यह है कि संस्कृतके साथ-साथ प्राकृत भी चल रही थी किन्तु विभिन्न देशोंके असंस्कृत लोग उसे (प्राकृत या संस्कृतको) बिगाड़-बिगाड़कर अपभ्रंश बोल रहे थे।

ग्यारहवी शताब्दीमें काव्यालकारकी टीका करते हुए नमिसाधुने प्राकृतका अर्थ लोकभाषा अर्थात् साधारण जानपदीय भाषा बताया है जो पाणिनिके महाभाष्य भरतके नाट्य शास्त्र और दण्डीके काव्यादर्शके सिद्धान्तसे मिलता है।

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश सब साथ-साथ

इस शास्त्रार्थका परिणाम यह निकला कि भाषाके ये सब रूप एक साथ चलते थे। अत्यन्त पढे-लिखे, विद्वान्, तथा शिष्ट पण्डित लोग सस्कृतका प्रयोग करते थे। साधारण जनता जब सस्कृत बोलने-वालोका अनुकरण करनेके प्रयत्नमे बिगाडकर सस्कृत बोलती थी तब वह प्राकृत हो जाती थी और गाँव जगलके लोग उसीको और भी बिगाडकर अपभ्र श कर देते थे। इस प्रकार सब कालोमे भाषाके ये तीनो रूप विद्यमान रहे। आज भी अँग्रेजी पढा-लिखा व्यक्ति प्लेटफार्म कहता है, स्टेशनोपर काम करनेवाले अनपढ लोग पलेटफारम कहते हैं और गाँवके लोग उसे लेटफारम कहते हैं। यह अपभ्र शकी प्रकृति इस श्रेणी तक पहुँच जाती है कि काशीमें मुकदमा लडनेवाले देहाती लोग इजलासको गिलास कहते हैं। अर्थात् यह विकार दो प्रकारका होता है—१—सीधे सस्कृत (शिष्टजन-भाषा) को बिगाडकर बोलनेसे, २—प्राकृत या जनभाषाको बिगाडकर बोलनेसे। इस प्रकार जिस युगमे कोई नया शब्द शिष्ट लोग चलाते है तत्काल उसका प्राकृत और अपभ्र श रूप उसी समय चलने लगता है। अत, यह मूल धारणा ही अशुद्ध है कि पहले वैदिक सस्कृत रही और सब लोग शुद्ध रूपसे वैदिक सस्कृत ही बोलते रहे। यदि ऐसी बात होती तो शिक्षाकी आवश्यकता ही न पडती और यह कभी न कहा जाता —

दुष्ट शब्द स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमान हिनस्ति यथेन्द्रशत्रु स्वरतोऽपराधात्।

(स्वर या वर्ण बिगाडकर अनुचित ढगसे प्रयुक्त किया हुआ दुष्ट शब्द उसी प्रकार वाग्वज्र होकर यजमानको मार डालता है जैसे स्वरके दोषपूर्ण वाचनसे इन्द्रका शत्रु वृत्रासुर मारा गया।)

और महाभाष्यकारको भी यह न लिखना पडता कि—

उदात्ते कर्तव्ये योऽनुदात्त करोति खण्डिकोपाध्याय तस्मै चपेटां ददाति।

[जो शिष्य उदात्तके बदले अनुदात्त उच्चारण करता है उसे पाधाजी एक चाँटा जड देते हैं।]

भाषाका विकास और इतिहास

वैज्ञानिकोका मत है कि प्राचीनतम मनुष्यका जन्म डेढ करोड वर्ष पहले हुआ, किन्तु वर्तमान रूपवाला मनुष्य साढे बारह लाख वर्ष पूर्व अन्य जीवोसे पृथक् होकर मनुष्य रूपमें व्यक्त होने लगा। उसके पश्चात् अनेक प्रकारकी मानव जातियाँ (भूमध्य सागरके उत्तरमे नियेन्डर्थल और अरिग्नेशी, उत्तर अफ्रीका या दक्षिण एशियामें क्रोमेग्न और ग्रिमाल्डी और उसके पश्चात दक्षिण स्पेनमें ऐजीलियन और पश्चिमी योरपमे मन्दग्लिनियन नामक मनुष्य जातियाँ) प्रकट हुई जो पाषाण-युग और नवपाषाण-युगकी मानव जातियाँ मानी जाती हैं। उसके पश्चात् ७००० से ६००० वर्ष ई पू में मनुष्य धातुका प्रयोग करने लगा। फ्लैण्डर्स पेत्रीने नील नदीके कछारमें मिस्री सभ्यताका प्रारम्भ १०००० ई पू से माना है।

लोकमान्य तिलकका मत है कि जिस समय योरप तथा अन्य भूभागोंमें वन्य मानव जातियाँ रहती थीं उस समय (१८ सहस्र वर्ष ई पूर्व) वेद की रचना होने लगी थी। मोहनजोदड़ो और हड़प्पामें जो खुदाइयाँ हुई हैं उनसे ज्ञात होता है कि ईसासे ६ वर्ष पूर्व भारतसे मिस्र तकके देश (मिस्र असुरिया, बाबुल ईरान और आर्यावर्त) परस्पर एक दूसरेसे बहुत सम्बद्ध हो चुके थे। जब छह सहस्र वर्ष पूर्व ऐसे समृद्ध नगरोंका विवरण मिलता है तब यह निश्चय है कि ये जातियाँ कई सहस्र वर्ष पूर्वसे पर्याप्त विकास कर चुकी होंगी क्योंकि सप्तसिन्धु मोहनजोदड़ो और हड़प्पा सुमेरियामें निप्पर नगर, मिस्रके फराओंकी राजधानी मेम्फिस और असुरियामें असुर नगर तथा असुर देवताकी प्रतिष्ठा लगभग एक समान (६ से ४ ई पू तक) हो चुकी थी। भारतके उत्तरमें प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक [illegible] मूल ग्रन्थकी रचना १४६८ ई पू मे हो चुकी थी अर्थात् ईसासे चार सहस्र वर्ष पूर्व चीनमें भी पर्याप्त सांस्कृतिक जागति हो चुकी थी। इधर उत्तर भारतमें गान्धारसे हस्तिनापुर किए हुए काशी तथा अनेक प्रतापी राजा राज्य कर रहे थे जिनमेंसे शान्तनु, भीष्म विचित्रवीर्य तथा महाभारतके सम्पूर्ण राजाओंका पूरा विवरण विस्तारसे मिलता है। कलियुगके आगम (३१ २ ई पूर्व) के समय उत्तर भारतमें विभिन्न क्षेत्रोंमें अनेक प्रतापी राजा राज्य कर रहे थे। इसके पश्चात्का भारतका इतिहास भाषा-वैज्ञानिकोंके लिए विशेष महत्त्वका है। महाभारतके पश्चात् भगवान कृष्णका निर्वाण होनेपर जब उनकी पत्नियोंको लेकर अर्जुन जा रहे थे तब बीचमें आभीरोंने घेरकर कृष्णकी पत्नियाँ उनसे छीन ली। इसका अर्थ यह है कि सौराष्ट्र और शूरसेन प्रदेशके बीच ३ वर्ष ई पू दस्युओंके रूपमें आभीर विद्यमान थे। उसी समय मिस्रमें पिरामिड बन रहे थे और सारगोन प्रथमने आकर सुमेरी साम्राज्यका अन्त कर दिया था अर्थात् [illegible] फुनीशिया (ईरान) तक अपनी साम्राज्य-सीमा बढ़ा ली थी। इसके पश्चात हम्मूरबीने बाबुल (बेबीलोनिया) जीता (२१ ई पू) अरबोंने मिस्रको जीता (१६८ ई पू) और इसके पश्चात् १७४६ ई. पू में पश्चिमी एशिया तक भारतके आर्योंका राज्य रहा। १४ से १२० ई पूर्व तक यहूदी लोग फिलस्तीन पहुँचे। १३७५ ई पूर्वमें मितन्नी (पश्चिम एशिया) में आर्य देवताओंकी पूजा होने लगी थी और मिस्रमें सूर्यका मन्दिर बन गया था। आर्य सभ्यताका विस्तार इतना होने लगा था कि १ ई पू मे यूनानी लोग एशिया-कोचक तक फैल गए और ७७ ई पू में यूनानके साथ भारतका व्यापार होने लगा था। असुरियोंने ७२२ ई पू में इसराइल और फिर ६७ में मिस्र जीत लिया किन्तु ६१२ ई पूर्वमें खल्दियोंने असुरी साम्राज्य उखाड़ फेंका। इसके पश्चात ६ ई पूर्वमें ईरानियोंने मिस्र जीत लिया। ५८६ ई पू में बाबुलके राजा नबूकदनजरने यरूशलम ध्वस्त किया और वह सहस्रों यहूदी नागरिकोंको बन्दी बनाकर बाबुल ले गया। ५३९ ई पू में कुरुने खल्दी साम्राज्य नष्ट करके ईरानी राज्य स्थापित किया। ५२५ ई पू में ईरानियोंने मिस्रपर अधिकार जमाकर ५१२ ई पू भारतीय सीमा तक अधिपत्य स्थापित कर लिया। इसके पश्चात् सिकन्दर का आक्रमण हुआ और फिर चन्द्रगुप्तसे हारकर सेल्यूकसने भारत की पश्चिमी सीमाके पश्चिमी प्रदेश चन्द्रगुप्तको दे दिए और अपनी कन्याका विवाह भी चन्द्रगुप्तसे कर दिया। इसके पश्चात् शक सिथियन, हूण, अरब तुर्क और पठान क्रमशः भारतपर आक्रमण करने आते रहे और यहीं बस जाते रहे। तात्पर्य यह है कि भारतकी सीमाको छोड़कर पहली बार ईरानी राजा कुरुने ५१२ ई पू में की। इससे पूर्व उत्तर भारतमें संस्कृतभाषा बोलचाला था।

भाषा विज्ञानके पण्डित यदि इन घटनाओपर दृष्टिपात करेंगे तो उन्हे प्रतीत होगा कि मिस्रसे लेकर ईरान तकका प्रदेश निरन्तर परस्पर मिस्री, यूनानी, असूरी, बावुली, सुमेरी, ईरानी, अरबी, हूण और शक जातियोंके परस्पर सहार, उथल-पुथल और आदान-प्रदानसे बने है। अत जिस समय पण्डित और राजा लोग सस्कृतका पोपण कर रहे थे। उस समय राजनैतिक महत्वाकाक्षी राजा और व्यापारी एक दूसरे देशसे सम्पर्क स्थापित करके स्वतन्त्र रूपसे इधरसे उधर आ जा रहे थे। और जो इन युद्धोमे विजयी होता था वह विजित देशके सैनिको और नागरिकोको वन्दी बनाकर अपने देशमे ले जाता था। अत, यह कहना अत्यन्त भ्रामक है कि पहले सस्कृत हुई फिर प्राकृत हुई, फिर अपभ्रश। सस्कृतके साथ-साथ पास पडोसके प्रदेशोकी न जाने कितनी प्रकारकी भापाओका मेल यहाँकी भापाओमें होता रहा, हुआ और वाहरकी अनेक जातियो के यहाँ आ वसनेके कारण पजाव, राजस्थान, सिन्ध और सौराष्ट्रके विभिन्न प्रदेशोकी भाषाएँ वहुत रूपोमे वैसे ही ढल चली। जैसे हमारे देशके दुर्भाग्यसे पाकिस्तान बननेके कारण सिन्धके जो लोग भारतमें आए वे भारतमें रहकर अपना भी सस्कार बनाए हुए है और साथ ही यहाँकी भापाका भी प्रयोग करते है। वैसे ही मिस्र और भारतके बीचकी अनेक प्रतापी और समृद्ध जातियोंके परस्पर सघर्षसे जो भगदड मची उनमेंसे कुछ (यहूदियो और पारसियो) ने तो आकर भारतमें आश्रय लिया। ऐसी विप्लवकी परिस्थितिमे भाषाका निर्माण शान्तिपूर्वक नही हुआ। जो जातियाँ आती गई वे अपने उच्चारण-क्रमके अनुसार सस्कृतका या यहाँ की प्राकृतोका उच्चारण करती रही और वे जहाँ-जहाँ आकर वसी वहाँ-वहाँ उनकी अपनी प्राकृत वन गई। विभिन्न प्रदेशोमे वसनेके कारण ही उनके द्वारा उच्चरित भाषा ही उस देशकी अपभ्रश वन गई, अर्थात् उन प्रदेशोमे जो वहाँके प्राकृत लोग (स्वाभाविक देशवासी) जिस भाषाका प्रयोग करते थे उसीको विगाड कर ये नए आगन्तुक जो बोलने लगे वही अपभ्रश बन गई। जैसे सस्कृतका 'कुत' लोकभाषामें तो 'किधर हुआ किन्तु अगरेज इसे और भी विगाडकर 'किढर' कहने लगा। यही अपभ्रश है। इससे यही निष्कर्ष निकला कि जिस समय सस्कृतका बोलवाला था उस समय भी दुष्ट शब्दोका प्रयोग करनेवाले लोग विद्यमान थे और वे प्राकृत वोलते थे। उसमे भी जो लोग बाहरसे आकर अपनी नई ध्वनि प्रणालीके अनुसार उच्चारण करने लगे वह अपभ्रश हो गया। यह तथ्य इस बातसे भी प्रमाणित है कि राजशेखरने अपभ्रशका जो क्षेत्र बताया है वह वही है, जहाँ उत्तर-पश्चिमके मार्गोसे ईरानी, यूनानी, शक, सिथियाई, हूण और अरबी लोग आकर बसते रहे।

गौडाद्या सस्कृतस्था परिचितरुचय प्राकृते लाटदेश्या
सापभ्रश-प्रयोगा सकल मरुभुवष्टक्कभादानकाश्च।
आवन्त्या पारियात्रा सहदशपुरजैर्भूतभाषां भजन्ते।
यो मध्ये मध्यदेशे निवसति स कवि सर्वभाषा-निषण्ण

[गौड (बगाल) आदि आर्यावर्त्तके लोग सस्कृतका व्यवहार करते है, लाट (गुजरात) के लोग प्राकृत-प्रिय है, सारे मरुस्थल (राजस्थान), टक्क, (पूर्वी पजाब या बाँगर देश) और भादानक (मालवा) के लोग अपभ्रशका व्यवहार करते है और मध्यदेश (वर्त्तमान उत्तर-प्रदेश) के निवासी सब भाषाओंके पण्डित होते है]

अपभ्रश तथा अवहट्टका सम्बन्ध—विद्यापति ने अपनी कीर्तिलताके प्रारम्भमें कहा है —

सक्कयवाणी बहुअ न भावइ
पाउअ-रसको मम्म न जानइ।
देसिल बअना सब जन मिट्ठा
तें तैसन जम्पेओं अवहट्ठ॥

[संस्कृत वाणी बहुत लोगोंको अच्छी नहीं लगती और प्राकृतका मर्म बहुतसे लोग जानते नहीं। किन्तु देशी बोली सबको मीठी लगती है इसलिए मैंने यह अवहट्ट कहा है।]

राजशेखरने भी कर्पूरमञ्जरीकी भूमिकामें कहा है —

परुसा सक्कअबन्धा पाउअ-बन्धोवि होई सुउमारो।
पुरुस-महिलाण जत्तिअ तेत्तिअ अमिमाणं॥

अर्थात् संस्कृतकी कविता कठोर होती है और प्राकृतकी कोमल। दोनोंमें वही अन्तर है जो पुरुष और स्त्रीमें होता है। किन्तु प्रश्न यह है कि विद्यापतिने जब देसिल बअना कह ही दिया है तब उन्हें यह कौन कहनेकी आवश्यकता पड़ी कि मैं अवहट्ट कह रहा हूँ। यह अवहट्ट कोई भाषा है या शैली है या केवल किसी विशेष प्रकारकी रचनाका नाम है जैसे रासो एक प्रकारकी रचना है या भोजपुरमें बिदेसिया एक प्रकारकी रचना है। वैसे ही क्या अवहट्ट कोई रचना पद्धति तो नहीं है? कीर्तिलतामें वर्णनात्मक इतिवृत्त है। अतः अवहट्टका अर्थ क्या कोई चलती कथा तो नहीं है? यह अवहट्ट शब्द आवसथ्य अर्थात् गाँव या घरका भी अपभ्रंश हो सकता है जिससे अर्थ होगा घरेलू या गाँवकी बात।

अपभ्रंशके विषय

यदि हम अपभ्रंशके विषयोंका विश्लेषण करें तब भी ज्ञात होगा कि उनमें जो ऐतिहासिक अंश प्राप्त होते हैं वे सबके सब कच्छ गुजरात और मारवाड़के पश्चिमी प्रदेशके ही हैं। प्रबन्ध-चिन्तामणिमें उदाहरण दिया गया है —

झम्पा ताविड जहि न किउ लक्खउ भणइ निघट्ट।
गणिया लब्भइ दीहडा के दहक अहवा अट्ठ॥

[जिस उचित अर्थात् (प्रसिद्धि प्राप्त) वीरसे (शत्रु लोग) तापित नहीं किए गए अर्थात् जिस वीरने शक्ति पाकर भी अपने शत्रुओंको आक्रान्त नहीं किया तो कुशल लक्खा कहता है कि उसे कुल गिनतीके दस या आठ दिन मिलते हैं उसका यश नहीं टिकता।]

इस दोहेमें कच्छके प्रसिद्ध राजा लक्खाका वर्णन किया हुआ है जो मूलराजके हाथसे ९८ ई में मारा गया था। दूसरा उदाहरण लीजिए —

मुंज पडल्ला दोरडी पेक्खसि न गम्मारि।
आसाढि घन गज्जीईं चिक्खिलि होसे वारि॥

[हे मुग्ध गँवार! यह जो प्रेमकी डोरी ढीली हो गई है इसे अभी नहीं समझ रहे हो किन्तु आषाढ़ आनेपर जब बादल गरजने लगेंगे और धारा और पानीकी फिसलन हो जायगी तब देखता हूँ तुम कैसे अपनेको रोक पाओगे? अर्थात् यह जो प्रेमकी डोरीका ढीलापन आज दिखाई पड़ता है यह बरसातमें नहीं रहेगा।]

मुंज भणइ मुणालवलइ, जुव्वण गयु न झूरि।
जो सक्कर सय खंड थिय, तो इस मीठी चूरि॥

[मुंज कहता है कि हे मृणालवती! तुम अपने इस बीते हुए यौवनके लिए चिन्ता न करो, क्योंकि शक्कर चाहे जितनी चूर-चूर हो जाय, फिर भी उसकी मिठास नहीं जाती।]

झाली तुट्टी किं न मुउ, किं न हुयउ छारपुंज।
हिंडइ दोरी बंधीयउ, जिम मंकड तिम मुंज॥

[मैं जलकर टुकडे-टुकडे होकर क्यों नहीं मर गया? क्यों नहीं राख का ढेर हो गया कि आज मेरे होते हुए मुंज इस प्रकार बन्दरके समान डोरीमें बँधा हुआ घूम रहा है।]

इस प्रकार अधिकांश उदाहरण मुंज-मृणालवतीके सम्बन्धके ही हैं जिनका सम्बन्ध गुजरातसे ही है। इसके अतिरिक्त उसमें रुद्रादित्य, भोज, सिद्धराज जयसिंह, वर्द्धमानपुर (वढवाण), गिरनार आदिकी चर्चा है जिन सबका सम्बन्ध सौराष्ट्र, राजस्थानके दक्षिणी पश्चिमी भाग और मालवासे ही है। सोमप्रभसूरि की कविताओंमें भी नलगिरि हाथीकी चर्चा है जो उज्जयिनीके राजा चण्डप्रद्योत के यहाँ था —

नलगिरि हत्थिहिंमि ठितइ, सिवदेवेहि उच्छंगि।
अग्गिभीरु रह दारुइहि, अग्गि देहि महं अंगि॥

यह पद भासके नाटकसे लिया गया है जो तीसरी चौथी शताब्दी ई पू में माना जाता है। इसमें भी जो कथा आई है वह पश्चिमी भारत (उज्जयिनी, राजस्थान और मालवा) की ही है। हेमचन्द्रने अपभ्रंश प्रकाशमें जो उदाहरण दिए हैं उनमें जितने ऐतिहासिक दोहोंका समावेश है वे निश्चित रूपसे उसी प्रदेशका प्रतिनिधित्व करते हैं।

अत, अपभ्रंश निश्चय ही पश्चिमी प्रदेश (पश्चिमी राजस्थान तथा सौराष्ट्र) की भाषा थी जहाँ विदेशी जातियाँ आकर मुख्यत बसी।

अपभ्रंश और हिन्दीका सम्बन्ध

बहुतसे आचार्योंने —

पुत्तें जाएं कवँणु गुणु, अवगुणु कवँणु मुएण।
जा बप्पीकी भुंहडी, चम्पिज्जइ अवरेण॥

उदाहरण लेकर और इसमें आए हुए 'बप्पीकी' में विद्यमान 'की' को सम्बन्ध कारकका चिह्न मानकर उसे हिन्दी की जननी बता दिया। किन्तु भाषाकी परीक्षा करनेपर जान पडेगा कि उसका सम्बन्ध गुजराती और पश्चिमी राजस्थानीसे अधिक है। कालिदासकी विक्रमोर्वशीय से जो दोहा दिया जाता है वह यदि कालिदासका मान भी लिया जाय (क्योंकि उसे कुछ लोग प्रक्षिप्त मानते हैं) तब भी इसी बातकी पुष्टि होती है कि उस भाषाका सम्बन्ध मालवा और राजस्थानकी ही भाषासे रहा है जो आज भी है, क्योंकि कालिदास स्वयं उज्जयिनी के थे। अत इससे भी सिद्ध होता है कि अपभ्रंश उधरकी ही भाषा थी, हिन्दीसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

सक्कअवाणी बहुअ न भावइ
पाउअ-रसको मम्म न पावइ।
देसिल बअना सब जन मिट्ठा
तें तैसन जम्पओं अवहट्ठा॥

[संस्कृत वाणी बहुत लोगोंको अच्छी नहीं लगती और प्राकृतका मर्म बहुतसे लोग जानते नहीं। किन्तु देशी बोली सबको मीठी लगती है इसलिए मैंने यह अवहट्ट कहा है।]

राजशेखरने भी कर्पूरमञ्जरीकी भूमिकामें कहा है —

परुसा संसिक्कअबन्धा पाउअ-बन्धोवि होई सुउमारो।
पुरुस-महिलाणं जत्तिअ तेत्तिअ अविमाणं॥

अर्थात् संस्कृतकी कविता कठोर होती है और प्राकृतकी कोमल। दोनोंमें वही अन्तर है जो पुरुष और स्त्रीमें होता है। किन्तु प्रश्न यह है कि विद्यापतिने जब देसिल बअना कह ही दिया है तब उन्हें यह कौन कहनेकी आवश्यकता पड़ी कि मैं अवहट्ट कह रहा हूँ। यह अवहट्ट कोई भाषा है या शैली है या केवल किसी विशेष प्रकारकी रचनाका नाम है जैसे रासो एक प्रकारकी रचना है या भोजपुरमें बिदेसिया एक प्रकारकी रचना है। वैसे ही क्या अवहट्ट कोई रचना पद्धति तो नहीं है? कीर्तिलतामें वर्णनात्मक इतिवृत्त है। अत अवहट्टका अर्थ क्या कोई जनश्रुति कथा तो नहीं है? यह अवहट्ट शब्द आवसथ्य अर्थात् गाँव या घरका भी अपभ्रंश हो सकता है जिसका अर्थ होगा घरेलू या गाँवकी बात।

अपभ्रंशके विषय

यदि हम अपभ्रंशके विषयोंका विश्लेषण करें तब भी ज्ञात होगा कि उनमें जो ऐतिहासिक अंश प्राप्त होते हैं वे सबके सब कच्छ, गुजरात और मारवाड़के पश्चिमी प्रदेशके ही हैं। प्रबन्ध-चिन्तामणिमें उदाहरण दिया गया है —

उग्गा तावित जहिं न किउ लक्खउ भणइ निघट्ट।
गणिया लब्भइ दीहड़ा के दह अहवा अट्ठ॥

[जिस उदित अर्थात् (प्रसिद्धि प्राप्त) वीरने (शत्रु लोग) तापित नहीं किए गए अर्थात् जिस वीरने अवसर पाकर भी अपने शत्रुओंको आक्रान्त नहीं किया तो कुकल लक्खा कहता है कि उसे कुछ गिनतीके दस या आठ दिन मिलते हैं उसका यश नहीं टिकता।]

इस दोहेमें कच्छके प्रसिद्ध राजा लक्खाका वक्तव्य दिया हुआ है जो मूलराजके हाथसे ९८ ई में मारा गया था। दूसरा उदाहरण लीजिए —

मुंज बडल्ला दोरडी पेक्खेसि न गम्मारि।
आसाढि घन गज्जीइं चिक्खिल्लि होसे वारि॥

[हे मुग्ध गँवार! यह जो प्रेमकी डोरी ढीली हो गई है इसे अभी नहीं समझ रहे हो किन्तु आषाढ़ आनेपर जब बादल गरजने लगेंगे और चारों ओर पानीकी फिसलन हो जायगी तब देखता हूँ तुम कैसे अपनेको रोक पाओगे? अर्थात् यह जो प्रेमकी डोरीका ढीलापन आज दिखाई पड़ता है वह बरसातमें नहीं रहेगा।]

होता था। इस प्रकार भरतकी बताई हुई उस समयकी सातो देशी भाषाओका अस्तित्व सिद्ध हो जाता है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि भरतने इन भाषाओको स्पष्ट रूपमे देशभाषा कहा है, प्राकृत नही। प्राकृतके लिये उन्होने अलग वर्णन दिया है कि नाटकोमे संस्कृत और प्राकृतके साथ चार प्रकारकी भाषाओका प्रयोग करना चाहिए—अतिभाषा, आर्यभाषा, जातिभाषा, जात्यन्तरी भाषा। ये भेद इस दृष्टिको रखकर किए गए हैं कि नाटकमे देवताओंसे अतिभाषा अर्थात् अतिशय संस्कृतनिष्ठ भाषा, राजाओंसे श्रेष्ठ या आर्य संस्कृत भाषा, विभिन्न प्रकारकी जातियोंसे उनकी जाति भाषाएँ और पशु-पक्षियोंके अनुकरणके लिए जात्यन्तरी भाषा बुलवानी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि एक संस्कृत भाषामे भी शैली के अनुसार कई प्रकारके वर्ग बनाए जा सकते हैं। अत अपभ्रंशको हमे कोई अलग ढलकर बनी हुई भाषा नही समझना चाहिए। यदि ऐसा होता तो हमे ऐसी कडियाँ अवश्य मिलती चलती जिससे ज्ञात हो सकता कि अमुक-क्रमसे, अमुक-अमुक समयमें, अमुक-अमुक कारणोसे अमुक-अमुक परिवर्तन हुए और भाषाका रूप बदला। पर ऐसे क्रमिक प्रमाणोका पूर्ण अभाव है।

अपभ्रंशमें सिद्धोकी बानियाँ

कुछ हिन्दी साहित्यके इतिहासकारोने भूलसे सब प्रकारकी पद्य-बद्ध रचनाओको साहित्यकी सीमा के भीतर समाविष्ट कर लिया है। अरस्तूने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्य-शास्त्र' (पेरिपोइतिखीस) मे स्पष्ट रूपसे इसीलिए लिख दिया है कि प्रत्येक पद्य-बद्ध रचना को काव्य नही मानना चाहिए क्योकि आयुर्वेद ग्रन्थ भी पद्यमे लिखे गए हैं, इसलिये वे काव्य नही माने जा सकते। किसी प्रकारकी रचनाको काव्यकी श्रेणीमे पहुँचनेके लिए कुछ विशेष गुणोसे समन्वित होना चाहिए और वे गुण निम्नांकित हैं —

१—रचयिताने काव्य-रचना की दृष्टिसे उसका ग्रथन किया हो।

२—काव्य- शास्त्रमे वर्णित गुणोंसे युक्त, यथासम्भव दोषोसे रहित, शब्द-शक्तियोंसे समन्वित तथा अलंकारोंसे सुसज्जित होनी चाहिए।

३—भाव और रसके अनुसार शब्द-योजना और छन्दो-योजना होनी चाहिए।

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु सोहत नहीं, कविता, बनिता, मित्त॥

४—सहृदय साहित्य-रसिकोंके लिए आस्वाद्य हो अर्थात् सहृदय-संवेद्य हो।

इस दृष्टिसे विचार किया जाय तो स्वत सिद्ध हो जाएगा कि वज्रयानी सिद्धो और नाथ सम्प्रदायके सन्तोने अपने मतके प्रचार और प्रसार तथा सिद्धान्तोंके निरूपणके लिए साखी, सबद, रमैनी, उलटबाँसी आदिके रूपमे जिन दोहो या पदो की रचना की वे न तो काव्य-मर्मज्ञोके लिए लिखे गए न काव्य-शास्त्रो की मर्यादाके साथ लिखे गए वरन् उनका उद्देश्य अपने सम्प्रदायके सिद्धान्तोका संरक्षण और प्रचार करना मात्र था कि जिससे उनके अनुयायी तथा शिष्य लोग उन सिद्धान्तोको सुविधापूर्वक और भली भाँति कण्ठस्थ किए रक्खे।

कबीरने अपने निम्नांकित दोहोमें जिन चौरासी सिद्धोकी चर्चा की है वे सब स ७९७ से संवत् १२५७ के बीच तक हुए —

अपभ्रंशकी ध्वनियाँ

अपभ्रंशमें —

१—ऋ का अ हो जाता है। आज भी गुजरातमें कन्हण (कृष्ण) भाई नाम मिलेंगे।

२—मातृका माउ भी माय हो जाता है जो कच्छ और सिन्ध तक प्रचलित है।

इसी प्रकार न के बदले ण का प्रयोग राजस्थान पंजाब और गुजरातमें है हिन्दीमें नहीं। हिन्दीकी प्रवृत्ति शुद्ध स्पष्ट न की है ण की नहीं। एक विचित्र प्रयोग अपभ्रंशमें ज का है जिसका अर्थ है (ही)। आज भी गुजराती भाषामें उसका प्रयोग किया जाता है। एक ज = एक ही। इसके लिए मराठी च का प्रयोग होता है— एक च प्याला। इस प्रकार अपभ्रंशको हिन्दीकी जननी मानना नितान्त भ्रमात्मक है।

इस सबसे यह परिणाम निकला कि एक ही समय सब भाषाओंमें जहाँ एक ओर शिष्टजन किसी शब्दको भली भाँति व्युत्पन्न करके विशेष नियम के अनुसार उसे गढ़कर उसका प्रयोग करते हैं वहीं असंस्कृत लोग उसका अनुकरण तो करने लगते हैं किन्तु ठीक उच्चारण न करनेके कारण उसे बिगाड़कर बोलते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि एक साथ एक भाषाके शिष्ट (संस्कृत) प्राकृत तथा अपभ्रंश तीनों रूप चल पड़ते हैं। एक विद्वान् जहाँ दूसरे विद्वान्से कहता है कि तुम कुछ धर्म-कर्म नहीं करते वहीं वही विद्वान् किसी अपढ़से कहता है—'अरे भाई! तुम लोग कुछ धरम-करम किया करो।' अतः शिष्ट लोग भी जिस योग्यताके व्यक्तिसे बातें करते हैं उसकी भाषा प्रकृतिके अनुसार अपनी भाषाको प्राकृत या अपभ्रंश रूपमें ढाल लेते हैं। इसलिए यह धारणा अत्यन्त भ्रामक है कि किसी युगमें कई सौ वर्ष तक संस्कृत रही फिर कई सौ वर्षों तक प्राकृत रही फिर कई सौ वर्षों तक अपभ्रंश रही और इसी प्रकार भाषाओंका क्रम चलता रहा। यदि व्याकरण-बद्ध हो जानेके कारण संस्कृत आज तक ज्यों की त्यों बनी रही तो प्राकृत और अपभ्रंश भी व्याकरण बन जानेपर ज्योंकी त्यों क्यों नहीं बनी रहीं। क्या कारण है कि पालि नामकी तथाकथित भाषा अथवा अन्य प्राकृत सहसा समाप्त हो गई और अकारण अपभ्रंशकी प्रधानता हो चली। वास्तविक बात यह है कि प्राकृत संस्कृत तथा अपभ्रंश सब साथ रहीं जैसा कि भास और कालिदास के नाटकों तथा भरतके नाट्य शास्त्रसे सिद्ध भी है। संस्कृतमें लिखनेवाले समस्त देश भरमें व्याप्त रहे, किन्तु प्राकृत और अपभ्रंश की रचनाएँ किसी विशेष धर्म सम्प्रदाय वर्ग या प्रदेश तक सीमित रहीं या राजाश्रयसे पुष्ट होती रहीं। जब सम्प्रदाय धर्म वर्ग या प्रदेशकी साहित्य प्रवृत्तिका ह्रास हो गया तो वह प्राकृत या अपभ्रंश समाप्त हो गई अथवा अन्य प्रकारके प्रभावोंसे (भाषा शासन संस्कार) प्रभावित होकर दूसरे रूपोंमें ढल गई।

८ ई पू से ५ ई पू तक उत्तर भारतमें १६ महाजनपद थे। जिनमें से दो-दो के मेलसे एक एक युग्म जनपद बन गया था। अंग-मगध काशी-कोशल वृज्जि-मल्ल चेदि-वत्स कुरु-पाञ्चाल मत्स्य-शूरसेन अश्मक-अवन्ती और गान्धार काम्बोज। अब यदि भरतके बताए हुए सूत्रके अनुसार हम परीक्षा करें तो स्पष्ट हो जायगा कि भरतने जो सात भाषाएँ गिनाई हैं उनमेंसे मागधी तो अंग-मगधकी भाषा थी प्राच्या भी काशी-कोशलकी थी अर्द्ध मागधी भी वृज्जि-मल्लकी थी बाह्लीका भी कुरु-पाञ्चालकी थी दाक्षिणात्या भी दक्षिणकी थी अवन्ति भी अश्मक-अवन्ती की थी और शौरसेनी भी मत्स्य शूरसेन की थी। उस समय गान्धार-कम्बोज की भाषा जाति भाषा थी जिसमें म्लेच्छ शब्दोंका प्रयोग

होता था। इस प्रकार भरतकी बताई हुई उस समयकी सातो देशी भाषाओका अस्तित्व सिद्ध हो जाता है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि भरतने इन भाषाओको स्पष्ट रूपसे देशभाषा कहा है, प्राकृत नही। प्राकृतके लिये उन्होने अलग वर्णन दिया है कि नाटकोमे सस्कृत और प्राकृतके साथ चार प्रकारकी भाषाओका प्रयोग करना चाहिए—अतिभाषा, आर्यभाषा, जातिभाषा, जात्यन्तरी भाषा। ये भेद इस दृष्टिको रखकर किए गए है कि नाटकमें देवताओसे अतिभाषा अर्थात् अतिशय सस्कृतनिष्ठ भाषा, राजाओसे श्रेष्ठ या आर्य सस्कृत भाषा, विभिन्न प्रकारकी जातियोसे उनकी जाति भाषाएँ और पशु-पक्षियोके अनुकरणके लिए जात्यन्तरी भाषा बुल्वानी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि एक सस्कृत भाषामें भी शैली के अनुसार कई प्रकारके वर्ग बनाए जा सकते है। अत अपभ्रशको हमे कोई अलग ढलकर बनी हुई भाषा नही समझना चाहिए। यदि ऐसा होता तो हमें ऐसी कडियाँ अवश्य मिलती चलती जिससे ज्ञात हो सकता कि अमुक-क्रमसे, अमुक-अमुक समयमें, अमुक-अमुक कारणोंसे अमुक-अमुक परिवर्तन हुए और भाषाका रूप बदला। पर ऐसे क्रमिक प्रमाणोका पूर्ण अभाव है।

अपभ्रशमें सिद्धोकी बानियाँ

कुछ हिन्दी साहित्यके इतिहासकारोने भूलसे सब प्रकारकी पद्य-बद्ध रचनाओको साहित्यकी सीमा के भीतर समाविष्ट कर लिया है। अरस्तूने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्य-शास्त्र' (पेरिपोइतिरवीस)में स्पष्ट रूपसे इसीलिए लिख दिया है कि प्रत्येक पद्य-बद्ध रचना को काव्य नही मानना चाहिए क्योकि आयुर्वेद ग्रन्थ भी पद्यमे लिखे गए हैं, इसलिये वे काव्य नही माने जा सकते। किसी प्रकारकी रचनाको काव्यकी श्रेणीमे पहुँचनेके लिए कुछ विशेष गुणोसे समन्वित होना चाहिए और वे गुण निम्नाकित है —

१—रचयिताने काव्य-रचना की दृष्टिसे उसका ग्रथन किया हो।

२—काव्य- शास्त्रमे वर्णित गुणोंसे युक्त, यथासम्भव दोषोसे रहित, शब्द-शक्तियोसे समन्वित तथा अलकारोसे सुसज्जित होनी चाहिए।

३—भाव और रसके अनुसार शब्द-योजना और छन्दो-योजना होनी चाहिए।

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु सोहत नहीं, कविता, बनिता, मित्त॥

४—सहृदय साहित्य-रसिकोंके लिए आस्वाद्य हो अर्थात् सहृदय-सवेद्य हो।

इस दृष्टिसे विचार किया जाय तो स्वत सिद्ध हो जाएगा कि वज्रयानी सिद्धो और नाथ सम्प्रदायके सन्तोने अपने मतके प्रचार और प्रसार तथा सिद्धान्तोके निरूपणके लिए साखी, सबद, रमैनी, उलटबाँसी आदिके रूपमे जिन दोहो या पदो की रचना की वे न तो काव्य-मर्मज्ञोके लिए लिखे गए न काव्य-शास्त्रो की मर्यादाके साथ लिखे गए वरन् उनका उद्देश्य अपने सम्प्रदायके सिद्धान्तोका सरक्षण और प्रचार करना मात्र था कि जिससे उनके अनुयायी तथा शिष्य लोग उन सिद्धान्तोको सुविधापूर्वक और भली भाँति कण्ठस्थ किए रक्खे।

कबीरने अपने निम्नाकित दोहोमे जिन चौरासी सिद्धोकी चर्चा की है वे सब स ७९७ से सवत् १२५७ के बीच तक हुए —

धरती औ असमान बिच दोई तूंबा औघ ।
षट दर्शन संसय पड़या औ चौरासी सिद्ध ॥

सरहपासे प्रारम्भ होने वाले इन चौरासी सिद्धोंमें मसुकिना लुइपा विरुपा डोम्बिप्पा दारिकपा गुंडरिपा कुक्कुरिपा कम्बलिपा कण्हपा गोरक्षपा तिलोपा शान्तिपा तन्तिपा महिपा भदेपा धर्मपा आदि सिद्धोंने अपढ़ होनेके कारण अपने सिद्धान्तों उद्देश्यों और व्यावहारिक कर्मकाण्ड आदिके साथ नीति-परक उपदेशोंको साधारण जनभाषामें ही वर्णित किया। साहित्यकी दृष्टिसे इन सम्पूर्ण रचनाओंका कोई महत्व नहीं है। हाँ भाषाकी दृष्टिसे इन रचनाओंका महत्व हो सकता है क्योंकि इन रचनाओंका अध्ययन करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि आठवीं शताब्दीसे तेरहवी शताब्दी तक लगभग पाँच सौ वर्षोंमें उत्तर भारतके विभिन्न क्षेत्रोंके सन्तोंमें पारस्परिक साम्प्रदायिक व्यवहारके लिए किस प्रकारकी भाषाका प्रयोग होता था।

इन सिद्धोंमेंसे गोरक्षपाने ही ग्यारहवीं शताब्दीके मध्यम पश्चिमी भारतमें अपने सम्प्रदायका प्रचार किया। अन्य वज्रयानी सिद्ध लोग पूर्वी भारतमें ही अपनी वाममार्गी बीभत्स तान्त्रिक प्रक्रियाओंका प्रचार कर रहे थे। गोरखनाथने अपने हठ-योगमें नाद और बिन्दुको अपनी उपासनाका केन्द्र बनाया सम्पूर्ण कर्मकाण्ड-मूलक बाह्याचारका खण्डन किया। सामान्य जनको भी अपने मण्डलमें प्रविष्ट करनेकी छूट दी। इसलिए अपढ़ शूद्र तथा अन्य अपठित वर्गोंके लोग यहाँ तक कि मुसलमान भी इस पन्थकी ओर आकृष्ट हुए। साहित्य रचनाके विचारकी तो बात दूर रही इस सम्प्रदायके अन्तर्गत जितनी भी रचना हुई, उसका रचयिता कौन है यह भी अभी तक सन्दिग्ध है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है उन रचनाओंका महत्व केवल भाषाकी दृष्टिसे ही हो सकता है। यह बड़े खेदकी बात रही है कि बहुत बड़े-बड़े विद्वानोंने इस सम्पूर्ण अप्रमाणिक रचना समूहको बल-पूर्वक हिन्दी साहित्यमें प्रविष्ट करनेका प्रयत्न किया अनेक डाक्टरोंने बड़े-लम्बे चौड़े ग्रन्थ भी लिखे किन्तु उनमेंसे किसीने भी विशेष युगकी भाषाकी प्रवृत्ति और प्रकृतिकी दृष्टिसे इन रचनाओंका अध्ययन विश्लेषण और विवेचन नहीं किया। गोरखनाथके नामसे प्रसिद्ध रचनाओंमें सबदी पद अभैमात्राजोग सिष्यादरसन प्राणसंकली आत्मबोध मछीन्द्र-गोरखबोध ग्यानी-गोरखको गोरख-गणेश-सम्वाद गोरख दत्त सम्वाद गिआन जोग आनतिलक पैंदरा तोत्र प्रसिद्ध है। ये रचनाएँ भाषाकी दृष्टिसे भी बड़ी अव्यवस्थित और बहुभाषा-मिश्रित है। पश्चिम भारतमें इस सम्प्रदायके प्रचार होनेके कारण इन रचनाओंकी भाषामें राजस्थानी गुजराती पंजाबी तथा नागरी (हिन्दी या खड़ी बोली) के उस प्राचीन रूपकी स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है जिसे सर्वसुगम भाषा बनानेके निमित्त तत्कालीन सिद्ध और सन्त प्रयत्नशील थे। गोरखनाथका इस दृष्टिसे महत्व माना जा सकता है कि उन्होंने या उनके नामसे लिखने वाले व्यक्तियोंने गद्यमें भी रचना की है जिससे पश्चिम भारतमें साम्प्रदायिक व्यवहारके लिए प्रयुक्त होनेवाली भाषाका जन-भाषाका परिचय प्राप्त करनेमें सुविधा हो जाती है। इनके सम्प्रदायके अन्तर्गत जालन्धर और चर्पटी आदि नाथपंथी रचनाओंमें भाषाका कुछ अधिक निखरा हुआ रूप दिखाई पड़ता है।

वज्रयानी सिद्ध

जिस समय भारतमें गृह किन्तु बाहरसे आकर बौद्धमत बढ़ने सिद्धोंको भारते भिक्षु-समाजमें प्रवेश

होनेकी आज्ञा दी थी उसी समय उन्होने कहा था—'यदि मेरा धर्म एक सहस्र वर्ष चलता तो अब केवल पाँच सौ वर्ष ही चलेगा।' यह बात सत्य सिद्ध भी हुई। विनयपिटक स्वत इस बातका साक्षी है कि स्वय बुद्धके ही समयमे बौद्ध विहारोमें अनेक प्रकारके पापाचार होने लगे थे जिनके निवारणके लिए गौतम बुद्धने अनेक प्रकारके प्रायश्चित्तोका विधान किया था। विक्रम सम्वत्‌के प्रारम्भ होनेसे पूर्व ही बौद्ध धर्ममें बहुत विकार आने लगा था। पुष्यमित्र शुगने वैदिक कर्मकाण्ड और यज्ञका पुन प्रवर्तन करके उस मरणासन्न बौद्ध धर्मको आघात पहुँचाया। अशोकका साम्राज्य विशीर्ण हो जाने तथा वैष्णव धर्मकी प्रबलताके कारण बौद्ध धर्मने इतनी विकृति आ गई कि वज्रयानी बौद्ध भिक्षु अपने धर्मकी ओटमें गुह्याचारकी साधनाका आश्रय लेकर अनेक प्रकारके पापाचार करने लगे और मास, मदिरा तथा सुन्दरीका उपभोग करने लगे। ये सब सिद्ध अधिकाश नालन्दा, राजगृह, विक्रमशिला आदि बौद्ध केन्द्रोमें ही रहा करते थे और अपढ होनेके कारण स्वभावत उनकी भाषामे उस क्षेत्रमें बोली जानेवाली उस लोक-भाषा मगहीका अधिक प्रयोग मिलता है, जिसे मागधी प्राकृत तथा अपभ्रशका विकार कहा जा सकता है। इन्होने दोहा, चौपाई, सोरठा, छप्पै और चर्या गीतोमें रचनाएँ की है। इससे यह निष्कर्ष निकालना सहज है कि तत्कालीन लोक-जीवन और लोक-गीतोमें इन छन्दोका बहुलतासे प्रयोग होता था। इन रचनाओमे स्थान-स्थानपर रागोका भी निर्देश मिलता है जिससे यह समझनेमें भी सुविधा होती है कि इन लोगोने जनताको आकृष्ट करनेके लिए सगीतको भी माध्यम बनाया था। साथ ही साथ यह भी सरलतासे ज्ञात हो जाता है कि उस समय पूर्वी भारतमे किन रागोका अधिक लोक-व्यवहार होता था। तात्पर्य यह है कि इन सम्पूर्ण रचनाओका महत्व साहित्यकी दृष्टिसे तो नही किन्तु भाषाकी दृष्टिसे अवश्य है, और वह इसीलिए कि उन्हे पढनेसे तत्कालीन लोक-प्रचलित तद्भव और देशी शब्द, मुहावरे, अभिव्यक्ति-कौशलकी प्रकृति और अलकारोंके प्रयोगकी शैलीका ज्ञान हो जाता है। यह भी ऐसा विषय है जिसपर विस्तारसे खोज होनी चाहिए।

मागधी और हिन्दी

जैन धर्मके अनेक प्रसिद्ध तीर्थंकरोने पूर्वी भारतमें ही जन्म लिया। जिनमें महावीरकी प्रसिद्धि उतनी ही हुई जितनी बौद्ध धर्मके प्रचारमे गौतम बुद्धकी। जैन धर्मावलम्बियोका विश्वास है कि मागधी ही वास्तवमें मूल या आदि भाषा है—'सा मागधी मूल भाषा'। उनका विश्वास है कि ४५४ ई में देवर्षिगणने प्रेरणा देकर सम्पूर्ण जैन साहित्यको लेख-बद्ध कराया और यह सब लेखन-कार्य प्राकृत (मागधी प्राकृत) में हुआ। किन्तु जब ये प्राकृतें भी लोक-जीवनमें प्रविष्ट होकर विकृत होने लगी, उस समय स्वभावत लोक-रुचिका आदर करनेवाले धर्म-प्रचारक लोग जन-भाषामे ही अपनी रचना करने लगे। इस प्रयासमें पहले तो केवल धर्म-ग्रन्थोके लिए प्राकृत और अपभ्रशका प्रयोग हुआ, किन्तु पीछे चलकर लोक-काव्यो तथा लोक-गीतोमे व्यवहृत जन-भाषाकी शक्तिसे प्रभावित होकर अनेक कवियोने उस लोक-भाषामें काव्य भी लिखने प्रारम्भ कर दिए। यद्यपि जैन धर्मका सूत्रपात और प्रारम्भ तो पूर्वी भारतमें हुआ, किन्तु उसका अधिक प्रचार पश्चिमी भारतमें हुआ और यही कारण है कि जैन साहित्यके अधिकाश विद्वान् पश्चिम भारत (राजस्थान, गुजरात और मालवा) में ही अधिक हुए। उसका यह भी एक कारण रहा कि वहाँके जैन धर्माचार्यों और लेखकोको राजाश्रय भी प्राप्त हो गया था।

महावीरके पश्चात् जैन धर्ममें दो सम्प्रदाय चल पड़े—१–भद्रबाहुका दिगम्बर सम्प्रदाय और २–स्थूलभद्रका श्वेताम्बर सम्प्रदाय। इनमेंसे दिगम्बर सम्प्रदायका अधिकांश साहित्य अपभ्रंश भाषामें रचा गया जिसे भूलसे प. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जैसे विद्वानोंने हिन्दीका पूर्ववर्ती स्वरूप मानकर उसे पुरानी हिन्दी संज्ञा दी है यद्यपि उसे कहना चाहिए पुरानी गुजराती या पुरानी मराठी। जिन जैन कवियोंने साहित्यिक रचनाएँ की है उनमें 'जैन रामायण' लिखनेवाले स्वयम्भूदेवका नाम अधिक प्रसिद्ध है जिसके सम्बन्धमें हिन्दीके कुछ अन्य प्रतिष्ठित विद्वानोंने यहाँ तक भ्रामक प्रचार कर डाला कि गोस्वामी तुलसीदास जीने भी उसीसे प्रभावित होकर रामचरितमानसकी रचना की है। किन्तु यह निराधार है क्योंकि एक तो उसमें रामका चरित भी बहुत विकृत है और दूसरे उसमें रामके बदले रावणके चरितका अनावश्यक विस्तार किया गया है। स्वयम्भूकी निम्नांकित चार रचनाएँ मानी जाती है —

१—पउम चरिउ (पद्म चरित—जैन रामायण)। २—रिट्ठिणेमि चरिउ (अरिष्टनेमि चरित या हरिवंश पुराण)। ३—पचमि चरिउ (नाग कुमार चरित)। ४—स्वयंभू छन्द।

कुछ लोगोंने इन्हींको हिन्दीका प्रथम कवि पुष्प माना है जिसका उल्लेख शिवसिंह सेंगरने किया है किन्तु पुष्पकी कोई भी रचना अभी तक कहीं दृष्टिगोचर नहीं हुई।

हमारे कुछ साहित्यके इतिहासकारोंने स्वयम्भूको हिन्दीका आदि कवि मान लिया है जिसने पउम-चरिउ (पद्मचरित) नामसे रामायणकी रचना की थी। पहली बात तो यह है कि स्वयंभूकी रचना भी बहुत उच्च कोटिकी नहीं है जैसा कुछ विद्वानोंने बताया है। उसमें इतिवृत्त अधिक और काव्यत्व अत्यन्त कम है और वह भी सब संस्कृतके ग्रन्थोंसे ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर लिया गया है। उसकी कथा भी अध्यात्म या वाल्मीकि रामायणकी कथाकी परम्परामें नहीं है। उसमें इतने अनावश्यक विस्तारसे रावणका वर्णन किया गया है कि वह रामचरित न होकर रावणचरित बन गया है। उसमें दशरथकी चार रानियाँ बताई गई है और बहुत-सी ऐसी असंगत कथाएँ भरी पड़ी है जो सभी प्रसिद्ध राम-काव्यों और कथाओंसे भिन्न है। स्वयं स्वयम्भूने अपने पउम चरिउमें स्थान-स्थानपर यह घोषणा भी की है कि मैं कथा आदि कुछ जानता नहीं। २१ वी सन्धिके प्रारम्भमें ही वह कहता है —

हउँ किंपि ण जाणमि मुक्खु मणे।
णिय बुद्धि पयासमि तोवि जणे॥
जं सयलु वि तिहुयणु वित्थरिउ।
आरंभिउ पुणु राहवचरिउ॥

यह उक्ति केवल उस प्रकारकी नम्रता प्रकाशन नहीं है जैसा गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने रामचरितमानसके प्रारम्भमें किया है—

कवित विवेक एक नहिं मोरे।
सत्य कहौं लिखि कागद कोरे।

पउमचरिउकी कथा पढ़नेसे भी प्रतीत होता है कि स्वयम्भूने रामचरितकी कथा उसने अपने मनसे गढ़ी है और उसे यहाँ तक नहीं ज्ञात था कि दशरथके कितनी रानियाँ थी और रामकी माता कौन थी।

जैन आचार्योमे सौराष्ट्र-निवासी हेमचन्द्र मेरुतुगाचार्य और सोमप्रभदेव सूरिका अत्यधिक सम्मान है। हेमचन्द्र (सवत् १२१६ से १२२९) ने 'सिद्ध हैमचन्द्र शब्दानुशासन' नामक बहुत बडा व्याकरणका ग्रन्थ लिखा जिसमे उन्होने प्राकृतके उदाहरणोके साथ-साथ अपभ्र शके अनेक साहित्यिक उदाहरण दिए है। ये सभी उदाहरण गुजराती भाषाके पूर्ववर्ती अपभ्रशके ही मानने चाहिए। इन उदाहरणोमें केवल गुजरातीकी पूर्ववर्ती भाषा ही नही, अपितु सौराष्ट्रके इतिहास और दृश्योका भी चित्रण है। अन्हेलवाड (सौराष्ट्र) के जैन पण्डित सोमप्रभसूरिने 'कुमारपाल प्रतिबोध' नामक अपने प्राकृत ग्रन्थके बीच-बीचमें कुछ अपने पूर्ववर्ती और कुछ स्वय अपने रचे हुए अपभ्र शके दोहे दिए है जिन्हे गुजराती भाषाका ही पूर्ववर्ती मानना चाहिए, हिन्दीका नही। इनके अतिरिक्त पद्मसूरि, विजय-चन्द्रसूरि (सवत् १२५७), धर्मसूरि (सवत् १२६६) और विजयसिंह सूरि (सवत् १२८८) आदि अनेक जैन कवियोने बहुत-सी साहित्यिक रचनाएँ की, किन्तु उनका हिन्दीसे सम्बन्ध जोडना अत्यन्त असगत है।

इसी प्रदेशमें अर्थात् सौराष्ट्र और पश्चिमी राजस्थानके क्षेत्रमे प्रवास-वियोग-प्रधान श्रृगार-कथाओके आधारपर 'रासक' लिखनेकी पद्धति चली, जैसे भोजपुरी भाषाम बिदेसिया लिखा जाता है। विदेश गए हुए प्रियतमके विरहमें त्रस्त विरहिणीकी कथाओंके आधारपर सौराष्ट्रमें लिखी हुई इन प्रेम-कथाओमें सयोग और विप्रलम्भके साथ-साथ प्रासगिक वीर कथाएँ भी मिलती है। इन कवियोमें 'अब्दुर्र-हमान' का सनेह रासय (सन्देश रासक) अधिक प्रसिद्ध है। अब्दुर्रहमान (सवत् १३६७) जुलाहे थे जिन्होने अपनी रचनामे हिन्दू आदर्शोका पालन करते हुए बारह-मासेकी शैलीमें प्रियके पास वियोगिनीके सन्देश भेजनेका मधुर चित्रण किया है।

इसी युगमें करणपुरीके राजा कर्णके आश्रित जबलपुर निवासी जल्लरने श्रृगारकी अत्यन्त उदात्त फुटकर रचनाएँ की है।

इसी प्रकार पुष्पदन्त और शार्ङ्गधर आदिकी रचनाएँ भी बहुत उच्च कोटि की नही है। इस अपभ्र श साहित्यसे हिन्दीका कोई सम्बन्ध नही रहा इसलिए हम यहाँ निरर्थक सौराष्ट्री अपभ्र श साहित्यकी विशेष चर्चा नही करेंगे।

कुछ विद्वानोने बौद्ध तान्त्रिक वज्रयानी साधु सरहपा आदि की रचनाओसे भी हिन्दीका सम्बन्ध जोडनेका प्रयत्न किया है, किन्तु वे रचनाएँ तो काव्यकी श्रेणीमे ही नही आतीं। उनका न तो हिन्दी साहित्यसे किसी प्रकारका कोई सम्बन्ध ही है और न इस प्रकारकी रचनाने हिन्दी साहित्यको प्रभावित ही किया है, फिर भी उनकी रचनाओकी प्रकृति और प्रवृत्तिका विवेचन इस दृष्टिसे कर दिया गया है कि नागरी (हिन्दी) भाषाके विकासके अध्ययनमें उनसे बहुत सहायता मिलती है।

हिन्दीकी पूर्वगामिनी अपभ्रंश

ऊपर यह बताया जा चुका है कि सोमप्रभदेव और हेमचन्द्र आदिने जिस अपभ्र शका व्याकरण लिखा या जिसके उदाहरण दिए है वह गुर्जुरी या सौराष्ट्री अपभ्र श है। नागरी (हिन्दी) का उद्गम सीधे सस्कृतसे हुआ और यदि उसकी कोई पूर्व गामिनी अपभ्र श रही है तो वह 'मध्यदेशीय' अपभ्र श होगी जिसकी गणना प्राकृतचन्द्रिकामें इस प्रकार सत्ताईस अपभ्र शोमे की गई है —

ब्राचडो लाटवैदर्भावुपनागरनागरौ ।
बार्बरावन्त्यपाञ्चालटाक्कमालवकैकयाः ॥
गौडौड्रहैवपाश्चात्यपाण्ड्यकौन्तलसैंहलाः ।
कालिङ्ग्यप्राच्यकार्णाटकाञ्च्यद्राविडगौर्जराः ॥
आभीरो मध्यदेशीयः सूक्ष्मभेदव्यवस्थिताः ।
सप्तविंशत्यपभ्रंशा वैतालादिप्रभेदतः ॥

इस मध्यदेशीय अपभ्रंशका स्वरूप कैसा था इसका कोई विवरण नहीं मिलता किन्तु यह कुछ इस प्रकारका रहा होगा जैसा मेरठ-मुजफ्फरनगरकी निम्नांकित जनपदीय भाषामें प्राप्त होता है —

जिके धार निकड़गी हो तो लवारा बांध दीए। मन्नै हारैमक दूध धड़ा रख्या। मका रहै परे स ठाला तो मठठा बिलो लूं। कुठलेमें नाज रख्या हो तो परातमें घालल्या। किधे जाह रा। लोट्टा बी ठात्ता लाय्ये।

[देख! दूध छूट गया हो तो बछड़ा बांध देना। मैंने दूध गरम करने रख दिया है। मैं कहती (कहता) हूँ कि उधरसे मथानी उठा लाओ तो छाछ मथ लूं। अन्नागारमें अन्न हो तो बड़ी थालीमें डालकर ले आओ। किधर जा रहा है। लोटा भी उठाते लाना।]

इस मध्यदेशीय अपभ्रंशकी कुछ अपनी विशेषताएँ हैं—

१—दीर्घ मात्रावाले वर्णके पश्चात् दीर्घ मात्रावाले व्यञ्जनमें द्वित्व हो जाता है जैसे लोटा का लोट्टा ।

२—दीर्घ मात्रावाले शब्दोंके पहले आनेवाला एकमात्रिक स्वर लुप्त हो जाता है जैसे—'उठा' का ठा अनाज का नाज ।

३—रहा में वर्ण विपर्यय हो जाता है— जा रहा का जा ह रा हो जाता है ।

४—मैंने का मन्नै हो जाता है ।

५—मैंने कहा का मका उसने कहा का उसेका हो जाता है आदि। इस प्रदेशकी अपभ्रंशकी प्राचीन रचनाएँ अप्राप्य हैं ।

जिस अपभ्रंशका व्याकरण हेमचन्द्रने लिखा है उसमें दर्शन शृंगार और वीरतापूर्ण सुन्दर रचनाएँ हुई हैं। इसके प्रमुख कवियोंमें सरहपा और कण्हपा आदि बज्रयानी सिद्ध तथा देवसेन (सावयधम्म दोहा) जोइन्दु (परमात्म प्रकाश—योगसार) रामसिंह (पाहुड दोहा) अब्दुर्रहमान (सन्देशरासक) सोमप्रभ (कुमारपाल-प्रतिबोध प्रबन्ध-चिन्तामणि) हेमचन्द्र (प्राकृत-व्याकरण) हैं। कुछ उदाहरण उल्लेखनीय हैं —

जो सिउ-संकरु विण्हु सो, सो रुद्दु वि सो बुद्धु ।
सो जिणु ईसरु बंभु सो सो अणंतु सो सिद्धु ॥

—परमात्मप्रकाश योगसार

[शिव, शकर, विष्णु, रुद्र, वुद्ध, जिन, ईश्वर, ब्रह्म, अनन्त और सिद्ध सब एक ही है, उनमें कोई अन्तर नही।]

बहुयइँ पठियइँ मूढुपर, तालू सुयकइ जेण।
एक्कुजि अक्खरु त पढहु, सिवपुरि गम्मइ जेण॥ —पाहुड दोहा

[अरे मूर्ख! तूने वही सब वहुत पढा है जिसके पढनेमे तालू सूखता है। एक ही अक्षर (ॐ) क्यो नही पढ़ लेता जिससे मोक्ष प्राप्त हो जाय।]

जसु पवसत ण पवसिया, मुइअ विओइ ण जासु।
लज्जिज्जउ सदेसडउ, दिंती पहिय पियासु॥ —सनेह रासअ

[हे पथिक! जिस प्रियके विदेश जाते समय मै न तो साथ गई, न उनके वियोगमें मर सकी, उस प्रियको सन्देश भेजते मै लज्जासे गडी जा रही हूँ।]

माणि पणट्ठइ जइ न तणु, तो देसडा चइज्ज।
मा दुज्जन-कर-पल्लवेंहि, दसिज्जन्तु भमिज्ज॥
मइँ जाणिउँ पिय विरहियह, कवि धर होइ वियालि।
णवरु मयकु वि तिह तवइ, जिह दिणयरु खयकालि॥
मरगय वन्नह पियह उरि, पिय चपय पह देह।
कसवट्टइ दिन्निय सहइ, नाइ सुवन्नह रेह॥
चूडउ चुन्नी होइसइ, मुद्धि कवोलि निहत्तु।
सासानलिण झलक्कियउ, वाह-सलित-ससत्तु॥
अम्हे थोवा रिउ बहुअ, कायरु एम्व भणन्ति।
मुद्धि निहालहि गयणयलु, कइ जण जोण्ह करन्ति॥

—कुमारपाल प्रतिबोध

[यदि मान नष्ट होनेपर प्राण न छोडा जा सके तो देश छोड देना चाहिए, किन्तु दुर्जनोकी उँगलियोका लक्ष्य वनकर घूमना ठीक नही।

हे प्यारे! मैने तो समझा था कि विरहिणियोको सध्या या रात्रिको कुछ शान्ति प्राप्त होगी, किन्तु यहाँ तो चन्द्रमा ही प्रलयका सूर्य वनकर जलाए डाल रहा है।

नीलम रगवाले (साँवले) प्रियकी छातीपर लेटी हुई वह चम्पेके वर्णवाली प्रिया ऐसी सुहावनी लग रही है जैसे कसौटीपर खिंची हुई सोनेकी रेखा हो।

अरी पगली! गालोपर हाथ धरकर बैठेगी तो उष्ण श्वासोकी गर्मीसे तपकर और आँसुओसे भीगकर चूडियाँ चूर चूर हो जाएँगी।

हम थोडे है और शत्रु वहुत है, यह वात तो कायर लोग ही सोचा करते है। अरी पगली! देख, आकाशमें कितने (ग्रह) है जो प्रकाश देते है (सूर्य और चन्द्रमा ही न!)]

जा मति पच्छह सम्पजइ, सा मति पहिली होइ।
मुज भणइ मुणालवइ, विघन न बेढइ कोइ॥ —प्रबध चिन्तामणि

[मुंज कहता है कि हे मृणालवती ! जो विवेक किसी घटनाके हो चुकनेके पश्चात् होता है वह यदि पहले हो जाय तो कोई बाधा नहीं पड सकती।]

ढोल्ला मइँ तुहुँ वारियाँ मा कुरु दीहा माणु।
निद्दए गमिही रत्तडी दडवड होइ विहाणु॥
अंगहिँ अंगु न मिलिउ हलि अहरें अहरु न पत्तु।
पिउ जोअन्तिहे मुह-कमलु, एम्वइ सुरउ समत्तु॥
जे महु दिण्णा दिअहडा दइएँ पवसन्तेण।
ताण गणन्तिए अंगुलिउ जज्जरियाउ नहेण॥
जो गुण गोवइ अप्पणा पयडा करइ परस्सु।
तसु हउँ कलिजुगि दुल्लहहो बलि किज्जउँ सुअणस्सु॥
भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कंतु।
लज्जेज्जंतु वयंसिअहु जइ भग्गा घर एंतु॥
वायसु उड्डावन्तिअए, पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्टि तडत्ति॥
हियडा फुट्टि तडत्ति करि कालक्खेवें काइँ।
देक्खउँ हयविहि कहिँ ठवइ पइँ विणु दुक्ख सयाइँ॥
जइ ससणेही तो मुइअ, अह जीवइ निन्नेह।
बिहिँ वि पयारेंहिँ गइअ धण किं गज्जहि खल मेह॥
महु कंतहो बे दोसडा हेल्लि म झंखहि आलु।
देन्तहो हउँ पर उव्वरिअ जुज्झंतहो करवालु॥
जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि मज्झु पिएण।
अह भग्गा अम्हहँ तणा तो तें मारिअडेण॥
पुत्ते जाएँ कवणु गुणु, अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पीकी भुंहडी चम्पिज्जइ अवरेण॥
जइ केवँइ पावीसु पिउ, अकिआ कुड्डु करीसु।
पाणिउ नवइ सरावि जिवँ सव्वंगे पइसीसु॥
पियसंगमि कउ निद्दडी पिअहो परोक्खहो केम्व।
मइँ बिन्निवि विन्नासिआ निद्द न एम्व न तेम्व॥
गयउ सुकेसरि पिअहु जलु निच्चिन्तइँ हरिणाइँ।
जसु केरएँ हुंकारडएँ, मुहहुँ पडन्ति तृणाइँ॥
अज्ज वि नाहु महुजिअ घर, सिद्धत्था वन्देइ।
ताउँ वि विरहु गवक्खेंहि, मक्कड-घुग्घिउ देइ॥
अम्मडि पच्छायावडा पिउ कलहिअउ विआलि।

घइँ विवरीरी बुद्धडी, होइ बिनासहो कालि ॥
बाह बिछोडवि जाहि तुहुं, हउँ तेवइँ को दोसु।
हिअयट्ठिय जइ नीसरहि, जाणउँ मुज सरोसु ॥ —प्राकृत व्याकरण

[हे प्रिय ! मैने तुझे (कितनी बार) रोका है न, कि तुम बहुत देरतक न रूठे पडे रहा करो। देखो, इस प्रकार सोओगे तो रात निकल जाएगी और सवेरा हो जाएगा।

प्रिय इतना सुन्दर था कि अगसे अग और अधरसे-अधर भी न मिल पाए। केवल उसका मुख-कमल एकटक निहारनेमें ही सुहागरात बीत गई।

प्रियने विदेश जाते समय जो लौटनेके दिन बताए थे उन्हे गिनते-गिनते उँगलियाँ नखसे जर्जर हो गई है।

जो व्यक्ति अपने गुण छिपाकर, दूसरेके गुण प्रकट करता है उस कलियुग-दुर्लभ सज्जनपर मै बलिहारी जाता हूँ।

हे बहन ! अच्छा हुआ कि हमारा पति युद्धमें काम आया। यदि वह भागकर घर लौट आता तो सखियोमें मेरी बडी हँसाई होती।

(प्रियके आगमनके शकुनके लिए वह) नायिका जब कौआ उडा रही थी कि सहसा प्रिय आते दिखाई दे गया, अत आधी चूडियाँ तो (उडाते समय विरहकी दुर्बलताके कारण पतले हाथसे) निकलकर धरतीपर जा गिरी, आधी (प्रियको सहसा देखकर मोटे होनेके कारण) तडककर टूट गई।

अरे हृदय ! तू देर क्यो कर रहा है, झट तडककर फूट जा, फिर मै देखती हूँ कि यह अभागा विधि, सारे दु खोको कहाँ समेटकर रखता है।

अरे दुष्ट मेघ ! तू क्या गरजे जा रहा है। यदि मेरी प्रिया मुझसे स्नेह करती होगी तो वह कबकी मर चुकी होगी और यदि अब भी जी रही है तो निश्चय है कि मुझसे स्नेह नही करती। मेरी प्रिया तो दोनो प्रकारसे हाथसे जाती रही।

अरी सखी तू क्या झूठ बकती है। मेरे प्रियमें तो दो ही दोष है। दान देते-देते तो मै बची रह गई हूँ और युद्ध करते-करते करवाल।

अरी सखी ! यदि शत्रु भाग रहे हैं तो मेरे प्रिय द्वारा मारे जानेपर भाग रहे है और यदि हमारे पक्षके लोग भाग रहे है तो मेरे प्रियके मारे जानेपर भाग रहे होगे।

उस पुत्रके उत्पन्न होनेसे क्या लाभ और मरनेसे क्या हानि है जिसके पिताकी भूमिपर दूसरे अधिकार कर ले।

यदि मै किसी भी प्रकार अपने प्रियको पा लूं तो ऐसा अनोखा करतब कर दिखाऊँ कि जैसे मिट्टीके नये पात्रमें पानी समा जाता है वैसे ही मै भी सब अगो सहित उनमें समा जाऊँगी।

बताओ प्रियके 'सगम' में (साथ) कैसे नीद आ सकती है और प्रियके विरहमें भी कैसे आ सकती है। मैं तो दोनो ओरसे मारी गई, न ऐसे नीद आती है, न वैसे।

अरे हरिणो ! अब निश्चिन्त होकर जल पीओ क्योकि वह सिंह चला गया जसकी हुकार-मात्र सुनकर तुम्हारे मुँहसे घास गिर पडती थी।

[मुंज कहता है कि हे मृणालवती ! जो विवेक किसी घटनाके हो चुकनेके पश्चात् होता है वह यदि पहले हो जाय तो कोई बाधा नहीं पड़ सकती।]

ढोल्ला मइँ तुहुँ वारियां, मा कुरु दीहा माणु।
निद्दए गमिही रत्तडी, दडवड होइ विहाणु॥
झंपहिँ झंप न मिलिअ हलि, अहरें अहरु न पत्तु।
पिउ जोअन्तिहे मुह-कमलु, एम्वइ सुरउ समत्तु॥
जे महु दिण्णा दिअहडा, दइएँ पवसन्तेण।
ताण गणन्तिए अंगुलिउ, जज्जरियाउ नहेण॥
जो गुण गोवइ अप्पणा पयडा करइ परस्सु।
तसु हउँ कलिजुगि दुल्लहहो बलि किज्जउँ सुअणस्सु॥
भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कंतु।
लज्जेज्जन्तु वयंसियहु जइ भग्गा घर एंतु॥
वायसु उड्डावन्तिअए, पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्टि तडत्ति॥
हिअडा फुट्टि तडत्ति करि, कालक्खेवें काइँ।
देक्खउँ हयविहि कहिँ ठवइ पइँ विणु दुक्ख सयाइँ॥
जइ ससणेही तो मुइअ अह जीवइ निन्नेह।
बिहिँ वि पयारेंहिं गइअ धण किं गज्जहि खल मेह॥
महु कंतहो बे दोसडा हेल्लि म झंखहि आलु।
देन्तहो हउँ पर उव्वरिअ जुज्झंतहो करवालु॥
जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि मज्झु पिएण।
अह भग्गा अम्हहँ तणा तो तें मारिअडेण॥
पुत्ते जाएँ कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पीकी भुंहडी चम्पिज्जइ अवरेण॥
जइ केवँइ पावीसु पिउ अकिआ कुड्डु करीसु।
पाणिउ नवइ सरावि जिवँ सव्वंगें पइसीसु॥
पिअसंगमि कउ निद्दडी पिअहो परोक्खहो केम्व।
मइँ बिन्निवि विन्नासिआ निद्द न एम्व न तेम्व॥
गयउ सु केसरि पिअहु जलु, निच्चिन्तइँ हरिणाइँ।
जसु केरएँ हुंकारडएँ, मुहहुँ पडन्ति तृणाइँ॥
अज्ज वि नाहु महुज्जि घर, सिद्धत्था वन्देइ।
ताउँ वि विरहु गवक्खेहिँ, मक्कड-घुग्घिउ देइ॥
अम्मडि पच्छायावडा पिउ कलहिअउ विआलि।

भक्त चारणोकी ओजस्विनी रचनाओका ही रूप उठ खडा होता है। कुछ तो भाषा-ध्वनिके कारण और कुछ उसमे वर्णित विषयके कारण राजस्थानी साहित्य और वीर-रस पूर्ण काव्य एक प्रकारसे समानार्थी हो गए है। इसका यह अर्थ नही हैं कि राजस्थानी भाषामे अन्य रसोमे रचनाएँ हुई ही नही या राजस्थानी भाषाके कवियोने जो कुछ लिखा वह वीर रसमें ही। अपने आश्रयदाता राजाओकी प्रशस्तिमे ही अधिक रचनाएँ करनेके कारण चारणोने स्वभावत अपने आश्रयदाता राजाओके थोडे गुणोका भी अत्यन्त विस्तारके साथ वढा-चढाकर वर्णन किया। इस प्रशस्ति-गानमे उनके शौर्य और पराक्रमका वर्णन—चाहे वह अतिरञ्जित ही क्यो न हो—अनिवार्य था। यही कारण है कि राजस्थानी भाषाका साहित्य राजाओके शौर्य और पराक्रमके वर्णनसे भरा पडा है। उसमे 'डीग' अर्थात् अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णनकी प्रचुरता होनेसे ही लोगोने इस प्रकारके काव्यको 'डीगल' कहना प्रारम्भ किया, जो आगे चलकर राजस्थानी भाषाके उस सम्पूर्ण साहित्यके लिये रूढ हो गया जिसमें युद्धोका वर्णन किया गया हो।

डिंगल शब्द

१—डॉक्टर टैसीटरीका मत है कि डिंगल शब्दका अर्थ गँवारू है। ब्रजभाषा साहित्यिक भाषा थी जिसमे सव प्रकारके नियमोका पालन होता था, किन्तु डिंगलमे सव प्रकारकी छूट थी। २—डॉक्टर हरप्रसाद शास्त्रीका विचार है कि प्रारम्भमे इस भाषाका नाम डगल (जागल देश अथवा मरुदेशकी भाषा) था परन्तु आगे चलकर पिंगलके तुकपर उसका नाम डिंगल कर दिया गया। ३—श्री गजराज ओझाके मतसे इस भाषाकी रचनाओमें 'ड' वर्णकी प्रचुरतासे इसका नाम डिंगल पडा। ४—बाबू श्यामसुन्दरदासका मत है कि जो लोग ब्रजभाषामें कविता करते थे उनकी भाषा पिंगल कहलाती थी। उसीसे भेद करनेके लिए मारवाडी भाषाका नाम डिंगल पडा। ५—श्री किशोर सिंह बारहठ मानते है कि डिंगल शब्दकी उत्पत्ति सस्कृतके डीङ धातुसे हुई है। इसी प्रकारके कुछ और भी अनेक मत है किन्तु अधिकाश लोग यही मानते हैं कि यह नाम पिंगलके तुकपर रखा गया है। परन्तु ये सभी मत भ्रमपूर्ण है। 'डिंगल' शब्द डीगल (गप्प) से वना है। डिंगलका साहित्य विस्तृत और प्राचीन है। चारणोने अपनी सम्पूर्ण रचनाएँ इसीमें प्रस्तुत की है और उन्होने वडी सावधानीसे व्याकरण एव छन्द शास्त्रके नियमोपर वरावर ध्यान रखा है।

राजस्थानी-काव्य

वीररसका वर्णन करनेमे टवर्ग एव द्वित्ववर्ण-युक्त पदावलीका प्रचुर प्रयोग आवश्यक माना गया है। अवधी और ब्रज-जैसी मधुर भाषाओमें भी युद्धादिके वर्णनोमें कवियोने इसी प्रकारकी पदावलीका सहारा लिया है। फिर राजस्थानीकी पदावली तो यो ही ओजपूर्ण है। इसलिए उसमें वीर रसकी रचनाएँ अधिक ओजपूर्ण तथा प्रभावशाली हो पाई है।

राजस्थानीके अन्तर्गत जयपुरीमें प्राय नीति और शृगार की रचनाएँ हुई है और मारवाडीमें वीर रसकी। नीति और शृगार आदिकी रचनाएँ अधिकतर दोहोमें और वीर रसके पद छप्पयमें रचे गए हैं। वीर रसमे रचना करनेवाले ब्रजभाषाके कवियोने भी अधिकतर छप्पय और कविताका ही प्रयोग किया है।

अभी मेरे पति घरमें बैठे सिद्धार्थों (जैन तीर्थंकरों) की पूजा कर ही रहे हैं कि विरह अभीसे खिड़कीसे बन्दर-घुड़की देने लगा है।

अरी अम्मा! अपने प्रियसे सही झीम झगड़ा कर लेनेपर बड़ा पछतावा हो रहा है। सचमुच विनाशके समय बुद्धि उलटी हो जाती है। विनाशकाले विपरीत बुद्धि।

तुम बाँह छोड़कर जाते हो तो जाओ मैं तुम्हें क्या दोष दे सकती हूँ किन्तु हे मुग्ध! तुम्हें रूठा हुआ तो तब समझूँ जब तुम हृदयसे बाहर हो सको।]

तइँ पतुआ गिरनार, काइँ मनि मत्सर धरेउ।
मारीता खंगार एकउ सिहरु न ढारेउ।

[अरे विशाल गिरनार! तूने यह कैसा वैर निकाला कि खंगार राजाके मारे जानेपर तू (उसके सिरपर) अपना एक शिखर भी नहीं डाल सका (कि वह दबकर मर जाय)]।

राजस्थानी हिन्दीका साहित्य

राजस्थानी भाषा और साहित्यका सम्बन्ध सीधे अपभ्रंशसे है। उसका साहित्य समझनेके लिए यह जान लेना चाहिए कि राजस्थान वीरोंका देश रहा है। उसकी उदात्त परम्परामें पुरुषों और स्त्रियों दोनोंने समान रूपसे अद्भुत पराक्रम तेज और आत्म-त्यागके अत्यन्त समुज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

जहाँ तक भाषाके विकासका प्रश्न है संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश तीनों भाषाएँ साथ-साथ चलती रहीं। विभिन्न प्रदेशोंमें वहाँ-वहाँकी भाषा-प्रकृतिके अनुसार उनकी प्राकृत और अपभ्रंश भाषा बनती रही। मरुभूमि अथवा जांगल प्रदेश अधिकांश वीर और व्यवसायी लोगोंका प्रदेश रहा है। इसलिए वहाँ पढ़ने-लिखनेकी पद्धतिका बहुत प्रचलन नहीं रहा। युद्ध-विद्या ही वहाँकी प्रधान विद्या थी इसलिए उस प्रदेशमें अपभ्रंशका ही बोलबाला रहा—जैसा कि राजशेखरने अपनी काव्य मीमांसामें कहा है—

सापभ्रंशप्रयोगाः सकलमरुभुवष्टक्कभादानकाश्च।

राजस्थान नामसे जो भूभाग यमुनाके पश्चिमसे समुद्र तक चला गया है उस क्षेत्रमें संस्कृत या प्राकृतकी अपेक्षा अपभ्रंश बराबर ही व्यापक रूपसे प्रयोग होता रहा। यही कारण है कि राजस्थानी बोलियाँ और गुजराती भाषामें बहुत कुछ साम्य है किन्तु राजस्थानीका क्षेत्र अधिक विस्तीर्ण है। उसके अन्तर्गत जो अनेक बोलियाँ आती हैं उनमें चार मुख्य मानी जाती हैं—उत्तरमें मेवाती दक्षिण-पूर्वमें मालवी पश्चिममें मारवाड़ी और मध्यवर्ती क्षेत्रमें जयपुरी। इनमें भी जयपुरी और मारवाड़ीमें साहित्यिक रचना बहुत हुई है क्योंकि उन प्रदेशोंके राजाओंने सुकवियोंको बहुत आश्रय दिया था। जयपुरी-मिश्रित *ब्रजभाषाकी* भाषामें दादूदयाल और उनके शिष्योंने बहुत रचनाएँ कीं। मारवाड़ीमें चारणोंकी रचनाएँ प्रधान हैं जिनका साहित्य प्राचीन भी है और विस्तृत भी।

चारण काव्य

आज जब हम राजस्थानी भाषा और साहित्यका नाम लेते हैं तब हमारे सामने सहसा वहाँके राज

राजस्थानी रचनाओका समय

राजस्थानीमे जो रचनाएँ आज उपलब्ध हैं उनके दो रूप हमारे सामने हैं—प्रबन्ध काव्यका काव्यात्मक रूप और मुक्तक काव्यका गीत या दोहा रूप। रासो या रासक ग्रन्थ प्रबन्ध-काव्यके रूप है। अपभ्रशके क्षेत्र (राजस्थान और गुजरात) मे ही रासक ग्रन्थोकी परम्पराका विकास हुआ और अपभ्रश, गुजराती तथा राजस्थानी साहित्यके प्रारम्भिक कई सौ वर्षो तक प्रबन्ध काव्यके रूपमे कितने ही रासक (रासो) ग्रन्थोका प्रणयन हुआ। उस समय ग्रन्थोका हस्तलिखित रूप होनेके करण उनका प्रचार अधिक नही हो पाता था और इसलिए उनमे प्रक्षेप और हेर-फेर की बहुत अधिक सम्भावना रहती थी। इसीसे इन रासकोकी भाषा, कथावस्तु और घटना-क्रममे ऐसी असगतियाँ आ गई है कि यही ज्ञात नही होता कि कौन रचना किस समय की है। बहुतसे कवियोने तो किसी प्राचीन राजाका वृतान्त लेकर उसका वर्णन वर्तमान कालमे इस प्रकार किया है कि उससे यह भ्रम हो जाता है कि कविने अपने समयकी घटनाका वर्णन किया है, परन्तु चारण कवियोकी यह एक अपनी वर्णन-शैली है जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण केसरी सिंह बारहठका 'प्रतापचरित्र' है जिसकी रचना सवत् १९९२ मे हुई थी। अत न तो यही कहा जा सकता है कि राजस्थानीके अनेक रासक-ग्रन्थोकी रचनाका ठीक समय क्या है न चरित नायकके आधारपर ही रचनाओका समय निर्धारित किया जा सकता है। फिर अनेक कवियोका भी कोई प्रारम्भिक इतिवृत्त नही मिलता। भाषामें भी इतनी अधिक मिलावट है कि उसका आधार लेना भी उचित नही है। अत, परम्परासे ग्रन्थकारका जो समय निर्धारित है उसे ही आधार मानकर, उनकी रचनाओका समीक्षण किया जा रहा है।

डिंगल, पिंगल और हिन्दी

हिन्दीकी व्यापक परिभाषाके अन्तर्गत राजस्थानसे लेकर बिहार तक और गढवाल कुमाऊँसे लेकर विन्ध्य मेखला तकके प्रदेशोकी सब बोलियाँ हिन्दीके अन्तर्गत मान ली गई है, और राष्ट्रीय अखण्डताकी तथा भावात्मक एकताकी दृष्टिसे उचित भी है, किन्तु भाषाकी प्रकृतिकी दृष्टिसे डिंगल या राजस्थानी भाषा हिन्दीके अन्तर्गत आनेवाली अन्य सब भाषाओंसे कुछ भिन्न है। इस राजस्थानी भाषाका एक रूप 'पिंगल' भी है जो राजस्थानी भाषासे प्रभावित ब्रजभाषाका एक रूप है। इसमें मुख्य पाँच बोलियाँ आती है—मारवाडी, ढूंढाडी, मालवी, मेवाती और वागडी।

रासक या रासो

राजस्थानी साहित्यमें रासक या रासो नामसे अनेक प्रबन्ध-काव्योकी रचना की गई है। पहले यह व्यापक भ्रम था कि इस 'रासो' शब्दकी उत्पत्ति 'रहस्य' या 'रसायण' से हुई है, किन्तु अब यह सिद्ध हो गया है कि गुजरात और राजस्थानमें छठी-सातवी शताब्दीसे अठारहवी शताब्दी तक बराबर रासक ग्रन्थोकी रचना होती रही है। अपभ्रशके लक्षण-ग्रन्थोमें रासक-काव्यका सर्व प्रथम उल्लेख विरहाक कृत वृत्तजाति-समुच्चयमें मिलता है जिसका समय आचार्योने ९ वी शताब्दीके पूर्व ही माना है। वृत्तजाति-समुच्चयमें रासक काव्यको एक परिभाषा यह बतलाई गई है कि विस्तारिक या द्विपदी छन्दमें उसकी रचना हो और अन्तमे विहारी छन्द आवे। दूसरी परिभाषा इस प्रकार बताई गई है —

चारण और भाट

राजस्थानमें वीर रसकी रचनाएँ करनेवाले चारण और भाट कलमके ही नहीं तलवारके भी धनी रहे हैं। उच्च कोटिकी कवित्व-शक्तिसे युक्त होनेके साथ ही वे अत्यन्त पराक्रमी और वीर भी होते थे और अपने आश्रयदाताओंके पक्षमें युद्धोंमें भाग भी लेते थे। यही कारण है कि उनके युद्ध-वर्णन अत्यन्त सजीव हो सके हैं। चारणोंमेंसे कुछने तो अपने आश्रयदाताओंको तुष्ट करके स्वार्थ-साधनकी ही चेष्टा की परन्तु कुछ उनके सब समयके साथी अन्तरंग मित्र और प्रिय बने रहे। चन्द भी पृथ्वीराजके ऐसे ही साथी थे। इन चारणोंकी प्रतिष्ठा भी थी। कुछ चारणोंने तो राजाओंकी चाटुकारी-प्रियताका लाभ उठाया और कुछ ने वस्तुतः उनके सभी बनकर। इन्हें आश्रयदाता राजाओंने प्रसन्न होकर लाख पसाव करोड़ पसाव और अरब पसाव बराबर दिए हैं। इसका अर्थ यह है कि उन्हें रुपये हाथी घोड़ा सिरोपाव (मानवस्त्र) आदि देकर सम्मानित किया जाता था। कुछ कवियोंको गाँव भी दिए जाते थे। लाख पसाव प्रायः बड़े पुरस्कार (एक लाख रुपयेके पुरस्कार) को कहते थे। करोड़ पसाव और अरब पसाव उससे क्रमशः बढ़कर होते थे। बच्छराज (वत्सराज) की प्रशंसामें कहा गया यह दोहा कलतक राजाओं-को आवश्यक परिवर्तनके साथ सुनाकर उनसे धन-लाभ करता रहा है —

> दैता अरब पसाव नित दिन्नो पोत बछराज।
> पड़ अजमेर सुमेरसूं ऊँची दीसे आज॥

इन चारणोंने राजाओंकी वीरोंका व्यक्तिगत गान ही गाया कभी अखण्ड भारतकी दृष्टिसे राष्ट्रीय भावनाको उत्तेजित नहीं किया। यहाँ तक कि अंग्रेजी शासन काल तक भी जब कि राजाओंके पारस्परिक विग्रह और युद्ध समाप्त हो गए, चारण लोग उनके पराक्रमका ही वर्णन करते रहे। युद्धवीर, दानवीर, दयावीर और धर्मवीर चारों रूपोंमें ये वर्णन राजाओंको आलम्बन बनाकर हुए हैं और आज भी नेताओंके लिए हो रहे हैं। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी साहित्यमें वीरगाथा किसी एक विशेष-युगकी प्रवृत्ति रही है तथा डिंगलकी रचनाओंका युग समाप्त हो गया।

वयण-सगाई

राजस्थानके कवि अलंकार-प्रदर्शनके फेरमें तो बहुत नहीं पड़े किन्तु वयण सगाई या वैन सगाई पर उन्होंने अधिक ध्यान दिया। वयण सगाई एक प्रकारका अनुप्रास है जिसके कई भेद हैं। इसका साधारण नियम यह है कि किसी छन्दके एक चरणका प्रथम शब्द जिस अक्षरसे आरम्भ हो उसी चरणका अन्तिम शब्द भी उसी अक्षरसे आरम्भ हो जैसे निम्नांकित सोरठेमें —

> पड़ियां मूंछा पाण कै पड़ियूं भिड़ तन कारणे।
> दीसे जिण दीवाण इण रो महुली मात इक॥

यद्यपि वयण सगाई का निर्वाह न होना कोई दोष नहीं माना जाता किन्तु पहलेके कवियोंने इसका पालन इस दृढ़ताके साथ किया कि आनेके कवियोंके लिए यह ऐसा काव्य-नियम सा बन गया कि जिसकी उपेक्षा करना कवित्व-शक्तिका अभाव समझा जाता था।

साहित्यकारोकी ही है—जिसमे साहित्यिक सौन्दर्य तो कम है किन्तु भाषाके विकासकी दृष्टिसे जिसका महत्व नि सन्देह अपरिमेय है। इस कालकी रचनाओके साथ एक यह भी दैव सयोग हुआ है कि जैन धर्मावलम्बियो द्वारा की हुई रचनाओको तो जैन-धर्मावलम्बियोने सुरक्षित कर रखा, किन्तु अन्य असख्य साहित्यकारोकी रचनाएँ निरक्षरता, अज्ञान, असावधानता, दीमक, पुस्तक-कीट, वर्षा तथा अन्य प्राकृतिक उत्पातोसे समाप्त हो गई और जो इधर-उधर कुछ लोगोके पास पडी भी रह गई उनका उद्धार नही हो पाया। ऐसी रचनाओमे सारगधर, (शार्ङ्गधर), असायित और श्रीधरकी प्राप्त रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं।

शाङ्गर्धर, असायित और श्रीधर

राघवके पौत्र और दामोदरके पुत्र शार्ङ्गधरने वैद्यक ग्रन्थ 'शार्ङ्गधर सहिता' के अतिरिक्त 'सुभाषित ग्रन्थ' तथा शार्ङ्गधर-पद्धतिका भी सवत् १४२० मे सग्रह किया जिसमें कुछ सूक्तियाँ अपनी और कुछ अन्य कवियोकी सगृहीत हैं। प्रसिद्धि यह है कि इन्ही 'शार्ङ्गधर' ने तत्कालीन जन-भाषामे 'हमीर रासो' और 'हमीरकाव्य' नामक दो ग्रन्थोकी रचना की थी जिनके कुछ पद 'प्राकृत पैंगल' मे और कुछ इधर-उधर ग्रन्थोमे विकीर्ण मिलते हैं। राजस्थानी कवियोके समान इनकी भाषामें ओज, प्रवाह, प्रेरणामय शब्दावली, उत्तेजनापूर्ण वर्णन और वीरोको उकसानेवाली शक्ति विद्यमान हैं।

सिद्धपुरके औदीच्च ब्राह्मण कुलमे उत्पन्न प्रसिद्ध कथाकार राजारामके पुत्र असयितने सवत् १४२७ में दोहे-चौपाईमें 'हसावली' नामकी एक छोटी-सी पुस्तक लिखी है जिसके अन्तर्गत तीन विरह-गीत भी हैं। यह रचना शृगार रससे ओत-प्रोत अत्यन्त सरस, भावमयी और आकर्षक है।

ईडरके राजा रणमलके समकालीन कवि श्रीधरने सवत् १५१४ के लगभग 'रणमल-छन्द' नामका छोटा-सा खण्डकाव्य लिखा था जिसमें पाटणके सूबेदार जफरखाँ और रणमलके युद्ध (सवत् १४५४) का अत्यन्त भावपूर्ण, ओजपूर्ण तथा सूक्ष्म वर्णन है।

दलपत

जैन साधु शान्तिविजयके शिष्य दलपतने उनसे दीक्षा लेकर अपना नाम 'दौलतविजय' रख लिया था। इन्होने सवत् १७३० से १७६० के बीच 'खुमाण रासो' नामक प्रबन्ध काव्य लिखा जिसमे बापा रावळ (सवत् ७९१) से लेकर महाराज राजसिह (सवत् १७०९–३७) तकके मेवाडके शासकोका काव्यात्मक वर्णन होनेपर भी खुमाणका अधिक विस्तृत विवरण होनेके कारण इसका नाम 'खुमाण रासो' रख दिया। कुछ विद्वानोने भ्रमसे इन्हे मेवाडके रावळ द्वितीय खुमाण (सवत् ८७०) का समकालीन मान लिया, क्यो किइन्होने काव्यमें वर्त्तमान कालकी क्रियाओका प्रयोग किया है। वास्तवमे जिस प्रकार सवत १९९२ में बारहठ केशरी सिहने 'प्रताप चरित्र' में वर्तमान कालमें ही वर्णन किया है उसी प्रकार दलपतने भी। यहाँ तक कि राजस्थानके सभी चारण-भाट आज भी प्राचीन कथाओका वर्णन वर्त्तमान कालकी क्रियामें ही करते है।

'खुमाण रासो' की रचना पिगल (व्रज) भाषासे मिश्रित और प्राकृत तथा अपभ्रशके प्रभावसे छूटी हुई राजस्थानी भाषामें है। यह काव्य आठ खण्डोमें विभाजित है जिसमे अत्यन्त सरल भाषामें

अडिलाहि दुवहएहिं व मत्ता रड्डाहिं तह अ ढोसाहिं ।
बहुएहिं जो रइज्जइ सो भण्णइ रासओ णाम ॥

[जिसकी रचना अधिकांशत अडिला (अडिल्ल) दुवहम (द्विपथक या दोहा) मात्रा रड्डा और ढोसा छन्दोमें की जाती है उसे रासक कहते है ।]

स्वयम्भूकृत स्वयम्भूछन्दसमें रासाके सम्बन्धमें लिखा है —

घत्ता छड्डणिआहिं पद्धडिआ (हि) सु-अण्णरूएहिं ।
रासाबंधो कव्वे जण-मण अहिरामो (यओ ?) होइ ॥

[घत्ता छड्डणिया पद्धडिया और अन्य छन्दोंसे युक्त रासाबन्ध काव्य लोगोको अच्छे लगते है ।]

इसके पश्चात एक पद्यमें रासा नामक एक २१ (१४+७) मात्राओंके छन्दकी परिभाषा दी गई है जिससे प्रकट होता है कि रासा छन्दका रासकबन्धमे विशेष प्रयोग होता था ।

इन बातोंसे स्पष्ट हो जाता है कि रासक या रासामें रासा छन्दकी ही मुख्य रूपसे योजना की जाती थी और बीच-बीचमें अपभ्रंशके अन्य छन्द भी रख दिए जाते थे। अब्दुर्रहमानके सन्देश रासक में भी यही प्रणाली अपनाई गई है। उसमें व्यवहृत रासक छन्द (१२+९) मात्राओंका है। धीवरकृत रणमल्ल छन्दमें भी यही परम्परा अपनाई गई है। (अपभ्रंशकी इस प्रणालीसे भिन्न रासकका एक और प्रकार भी मिलता है जिसमें मात्राबन्धके साथ गेयबन्धका भी प्रयोग किया गया है। भरतेश्वर बाहुबली रास इसी ढंगका रासक है।

रासकोंमें किसी प्रवासी तथा उसकी पत्नीके संयोग-वियोगका वर्णन होता था अपभ्रंश तथा मात्राबन्धके साथ गेयबन्धवाली परम्परामें राजस्थानी भाषामें भी अनेक प्रकारके साहसपूर्ण कृत्यों तथा संयोग-वियोगकी कथाओंसे भरे हुए अनेक काव्य लिखे गए, जिनका नाम रासकसे बिगड़कर रासज या रासो हो गया और जिनमें खुमाण-रासो बीसलदेव रासो और पृथ्वीराज रासो अधिक प्रसिद्ध हुए।

दलपतविजयके नामसे प्राप्त खुमाणरासो की रचना ९ वी शताब्दीकी बताई जाती थी किन्तु अब लोगोंका मत है कि इसकी रचना १८ वी शताब्दीके पूर्वकी नहीं हो सकती। इसमें यद्यपि बापा रावलसे लेकर महाराणा राजसिंह तकका वर्णन है किन्तु खुमाणका वृत्तान्त अधिक विस्तारसे है। इसीसे जान पड़ता है इसका नाम खुमाण रासो रखा गया।

राजस्थानी साहित्य

जिस भाषामें प्रारम्भिक राजस्थानी साहित्य लिखा गया है उसे योरोपीय भाषा-शास्त्रियोंने प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी कहा है और गुजराती साहित्य समालोचकोंने जूनी गुजराती (पुरानी गुजराती) कहा है क्योंकि उस भाषामें वर्तमान राजस्थानी और वर्तमान गुजराती दोनोंका प्रारम्भिक रूप सम्मिश्रित है। उसके साथ-साथ प्राकृत और अपभ्रंशकी जो विशेषताएँ प्राकृत व्याकरणके आचार्योंने निर्दिष्टकी हैं उनमेंसे अधिकांश इसमें मिलती है। इतना ही नहीं वरन् जिस प्रकार प्राकृत साहित्यके निर्माणका अधिक श्रेय जैन पण्डितोंको है उसी प्रकार राजस्थानी साहित्यके प्रारम्भिक काल (ग्यारहवी विक्रम शताब्दीके मध्यसे लेकर पन्द्रहवी विक्रम शताब्दीके मध्य तक) की राजस्थानी रचनाओंका श्रेय जैन

हुअउ पइसा रउ बीसलराव। आवी समय अतेवरी राव।
रूप अपूरव पेषियइ। इसी अस्त्री नहिं सयल ससार ॥२॥

यह बात जान लेनी चाहिए कि वीसलदेव रासो वीर रस प्रधान काव्य नही है। इसमे कविने सयोग-वियोगके ही गीत अधिकतर गाए है और सारा ग्रन्थ राजमतीके विरह-वर्णनसे भरा पडा है।

चन्द बरदाई

चन्द वरदाईको अमर वनानेवाला ग्रन्थ 'पृथ्वीराज-रासो' हिन्दीकी उपभापाओ या विभापाओका सर्वप्रथम महाकाव्य माना जाता है। किन्तु चन्द और रासो दोनोके सम्वन्धमे पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाणोका इतना अभाव है कि इनके सम्वन्धमें निश्चयपूर्वक कुछ भी कह सकना कठिन है। चन्दके सम्वन्धमे जो कुछ पृथ्वीराज रासोमे लिखा है उसे सन्दिग्ध कहा जाता है। चन्द और पृथ्वीराजका जन्म रासोके अनुसार एक ही दिन हुआ और दोनोकी मृत्यु भी एक ही दिन हुई। पृथ्वीराजका समय सवत् १२२०-१२४९ माना जाता है। अत, रासोके उल्लेखके अनुसार चन्दका भी यही समय होना चाहिए।

चन्दकी ख्याति अत्यधिक है और रासो उनकी ही रचना कही जाती है, किन्तु रासोमे वर्णित घटनाओके इतिहास-विरुद्ध होनेसे लोगोने इसे जाली ग्रन्थ माना है और यह मत व्यक्त किया है कि भले ही चन्द नामक किसी कविने इसकी रचनाकी हो, किन्तु न तो वह पृथ्वीराजका समसामयिक था, न इतिहासका उसे ज्ञान था और न उसने यह पूरा ग्रन्थ लिखा है। रासोमे चगेज और तैमूरका नाम आनेसे यह बात और भी पुष्ट हो जाती है कि यह ग्रन्थ अपने वर्त्तमान रूपमे वहुत पीछे पूर्ण हुआ, क्योकि महाराणा राजसिंहके समय में 'राजप्रशस्ति' नामक एक सस्कृत महाकाव्यमे ही पृथ्वीराज रासोकी कोई चर्चा नही मिलती। राजप्रशस्तिका रचना-काल सवत् १७१८-३२ है। अत, कुछ लोगोका विचार है कि रासो भी इसके कुछ पूर्व रचा गया होगा। परन्तु इसका वास्तविक लेखक कौन है यह नही कहा जा सकता। अधिक सम्भव यह है कि चन्दने मूलत रचना की हो और पीछे अनेक चारणोने उसमे बहुत-कुछ जोड दिया हो।

पण्डित मोहनलालविष्णु पण्ड्याके अतिरिक्त रासोके प्रमाणिक होनेका समर्थक और कोई भी नही है। पण्ड्याजीने रासोके सवतोको प्रमाणिक ठहरानेके लिए रासोका यह दोहा लिया—

एकादस सै पचदह, विक्रम साक अनन्द।
तिहि रिपुजय पुरहरनको, भए पृथिराज नरिंद ॥

और कहा कि विक्रम सवत्‌मेंसे ९० वर्ष घटा दिए जाएँ तो रासोके सभी संवत् ठीक ठहरते हैं। पर ये ९० वर्ष घटाए क्यो जायँ। इसका उत्तर वे नही दे पाए। जब सवतोंके व्यतिक्रमका समाधान वे नही कर पाए तब इतिहास-विरुद्ध घटनाओका वे क्या समाधान करते। पृथ्वीराजकी राजसभामें जयानक नामक कश्मीरी कवि भी था जिसने पृथ्वीराज विजय नामक एक सस्कृत काव्य लिखा है। उसमें उसने चन्द नामके किसी कविकी कही चर्चा तक नही की है। उसने पृथ्वीराजके मुख्य भाटका नाम पृथ्वीभट्ट लिखा है। आश्चर्य है कि जो चन्द कवि पृथ्वीराजका मित्र, स्नेही और सखा कहा जाता है और जिसके सम्बन्धमे यह प्रसिद्ध है कि वह और पृथ्वीराज दोनो एक प्राण दो शरीर थे, उसकी पृथ्वीराज-विजयमें कही चर्चा न हो।

प्रभावशाली विस्तृत वर्णन किए गए हैं। सम्पूर्ण काव्य भरमें प्रसाद गुणकी ही प्रधानता है और अलंकारों का प्रयोग भी अत्यन्त स्वाभाविक प्रवाहमें किया गया है बलपूर्वक नहीं।

नल्लसिंह

विजयगढ़ (करौली राज्य) के यदुवंशी राजा विजयपालके राजकवि भाट नल्लसिंहने महाराज विजयपालके दिग्विजय और पंगके युद्ध (संवत् १ ९१) का वर्णन विजयपाल रासो नामक वीरकाव्य ४२ छन्दोंमें पिंगल भाषामें लिखा है। तत्कालीन राजाश्रित कवियोंकी परम्पराके अनुसार इन्होंने इस काव्यमें बहुतसे इतिहास-विरुद्ध अतिशयोक्तिपूर्ण तथा अयुक्तिपूर्ण वर्णन दिए हैं। यद्यपि मिश्र बन्धुओंने इसका रचना-काल संवत् १३५५ माना है तथापि यह ग्रन्थ स्पष्टतः बहुत पीछेका रचा हुआ है। इसकी भाषापर १८ वीं शताब्दीके पृथ्वीराज रासो और संवत् १९९७ के वंश-भास्कर दोनोंका प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इसमें वीररसके वर्णन अत्यन्त सुन्दर, सरस और प्रभावपूर्ण हैं।

नरपति नाल्ह

अनावश्यक रूपसे प्रसिद्धि प्राप्त ग्रन्थ बीसलदेव रासो के रचयिता नरपति नाल्हका कोई विशेष विवरण प्राप्त नहीं है। बीसलदेव रासोमें कहीं-कहीं कविने अपने लिए व्यास शब्दका जो प्रयोग किया है उसके आधारपर यह अनुमान किया गया है कि ये सेवग या भोजक जातिके ब्राह्मण थे। कुछ विद्वानोंने इस ग्रन्थमें आए हुए बारह सै बहोत्तराहाँ शब्दके आधारपर यह मान लिया है कि ये अजमेरके चौहान राजा बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) के समकालीन थे किन्तु इसमें इतिहास विरुद्ध इतनी अधिक घटनाएँ हैं कि न तो नरपतिको किसी भी प्रकार इतना प्राचीन माना जा सकता और न नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित बीसलदेव रासो में दिया हुआ संवत् १२७२ भी स्वीकार्य हो सकता है। अब तक बीसलदेव रासोकी जो १५ हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं जिनमें सबसे प्राचीन संवत् १६६९ की है। इन विभिन्न प्रतियोंमें रचनाकाल १ ११ से १३११ तक दिए हुए हैं किन्तु भाषा और ऐतिहासिक तथ्योंकी दृष्टिसे यह १६ वीं शताब्दीसे पहलेका नहीं है। इसलिए यही अनुमान अधिक प्रामाणिक है कि मन्द-बत्तीसी (संवत् १५४७) विक्रम पञ्च-दण्ड (संवत् १२१) स्नेह-परिक्रम और नि स्नेह-परिक्रम नामक चार ग्रन्थोंके रचयिता १६ वीं शताब्दीके गुजराती कवि नरपतिने ही बीसलदेव रासोकी भी रचना की है जिसके आधारपर बीसलदेव रासो नामक काव्य संवत् १५५०—६ के आस-पास रचा गया होगा। इस ग्रन्थमें चार खण्ड और दो सौ सोलह छन्द हैं। इसकी भाषा देखनेसे ज्ञात पड़ता है कि यह मूलतः गुजरातीमें रही होगी जो पीछे चलकर राजस्थानी चारणों भाटों और सेवकोंके हाथमें पड़कर आधी गुजराती और आधी राजस्थानी बन गई। यह ग्रन्थ इतना अव्यवस्थित है कि न तो इसका एक भी छन्द नियमित है न इसमें काव्यत्व ही है और न यह वीर रसका ही ग्रन्थ है। इसे व्यर्थ ही लोगोंने अनावश्यक महत्त्व देकर साहित्यकी कोटिमें ला रखा है।

नीचे नरपति नाल्हकी रचनासे दो उदाहरण दिए जा रहे हैं—

प्रणमूँ हनुमन्त अञ्जनी पूत। शूम्यो आकर आयम्यो पूत।
कर जोड़े नरपति कहइ। बार भी आवज्यो मोज नरेस ॥१॥

हुअउ पइसा रउ वीसलराव। आवी समय अतेवरी राव।
रूप अपूरव पेषियइ। इसी अस्त्री नहि सयल ससार ॥२॥

यह बात जान लेनी चाहिए कि वीसलदेव रासो वीर रस प्रधान काव्य नही है। इसमें कविने सयोग-वियोगके ही गीत अधिकतर गाए है और सारा ग्रन्थ राजमतीके विरह-वर्णनमे भरा पडा है।

चन्द बरदाई

चन्द वरदाईको अमर बनानेवाला ग्रन्थ 'पृथ्वीराज-रासो' हिन्दीकी उपभाषाओ या विभाषाओका सर्वप्रथम महाकाव्य माना जाता है। किन्तु चन्द और रासो दोनोके सम्बन्धमे पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाणोका इतना अभाव है कि इनके सम्बन्धमे निश्चयपूर्वक कुछ भी कह सकना कठिन है। चन्दके सम्बन्धमें जो कुछ पृथ्वीराज रासोमे लिखा है उसे सन्दिग्ध कहा जाता है। चन्द और पृथ्वीराजका जन्म रासोके अनुसार एक ही दिन हुआ और दोनोकी मृत्यु भी एक ही दिन हुई। पृथ्वीराजका समय सवत् १२२०–१२४९ माना जाता है। अत, रासोके उल्लेखके अनुसार चन्दका भी यही समय होना चाहिए।

चन्दकी ख्याति अत्यधिक है और रासो उनकी ही रचना कही जाती है, किन्तु रासोमें वर्णित घटना-ओके इतिहास-विरुद्ध होनेसे लोगोने इसे जाली ग्रन्थ माना है और यह मत व्यक्त किया है कि भले ही चन्द नामक किसी कविने इसकी रचनाकी हो, किन्तु न तो वह पृथ्वीराजका समसामयिक था, न इतिहासका उसे ज्ञान था और न उसने यह पूरा ग्रन्थ लिखा है। रासोमे चगेज और तैमूरका नाम आनेसे यह बात और भी पुष्ट हो जाती है कि यह ग्रन्थ अपने वर्त्तमान रूपमें बहुत पीछे पूर्ण हुआ, क्योकि महाराणा राजसिहके समय में 'राजप्रशस्ति' नामक एक सस्कृत महाकाव्यमे ही पृथ्वीराज रासोकी कोई चर्चा नही मिलती। राजप्रशस्तिका रचना-काल सवत् १७१८-३२ है। अत, कुछ लोगोका विचार है कि रासो भी इसके कुछ पूर्व रचा गया होगा। परन्तु इसका वास्तविक लेखक कौन है यह नही कहा जा सकता। अधिक सम्भव यह है कि चन्दने मूलत रचना की हो और पीछे अनेक चारणोने उसमे बहुत-कुछ जोड दिया हो।

पण्डित मोहनलालविष्णु पण्डचाके अतिरिक्त रासोके प्रमाणिक होनेका समर्थक और कोई भी नही है। पण्ड्याजीने रासोके सवतोको प्रमाणिक ठहरानेके लिए रासोका यह दोहा लिया––

एकादस सै पचदह, विक्रम साक अनन्द।
तिहि रिपुजय पुरहरनको, भए पृथिराज नरिंद ॥

और कहा कि विक्रम सवत्मेसे ९० वर्ष घटा दिए जाएँ तो रासोके सभी सवत् ठीक ठहरते है। पर ये ९० वर्ष घटाए क्यो जायँ। इसका उत्तर वे नही दे पाए। जब सवतोके व्यतिक्रमका समाधान वे नही कर पाए तब इतिहास-विरुद्ध घटनाओका वे क्या समाधान करते। पृथ्वीराजकी राजसभामे जयानक नामक कश्मीरी कवि भी था जिसने पृथ्वीराज विजय नामक एक सस्कृत काव्य लिखा है। उसमे उसने चन्द नामके किसी कविकी कही चर्चा तक नही की है। उसने पृथ्वीराजके मुख्य भाटका नाम पृथ्वीभट्ट लिखा है। आश्चर्य है कि जो चन्द कवि पृथ्वीराजका मित्र, स्नेही और सखा कहा जाता है और जिसके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध है कि वह और पृथ्वीराज दोनो एक प्राण दो शरीर थे, उसकी पृथ्वीराज-विजयमें कही चर्चा न हो।

आचार्य शुक्लजीका मत है कि पृथ्वीराजके वंशजोंके यहाँ सम्भवतः चन्द नामका कोई भाट रहा होगा जिसने उनके पूर्वज पृथ्वीराजकी प्रशस्तिमें कुछ छन्द रचे हों। बादमें बहुत-सा कल्पित मट्ठ-भणन्त इसमें जुड़ता गया और उसीपर रासोकी यह बड़ी इमारत खड़ी कर दी गई।

रासोके 'षट्-भाषा पुराणं च कुरानं कथितं मया' से स्पष्ट है कि इस ग्रन्थमें कई भाषाओं और बोलियोंका मेल है परन्तु अन्य छन्दोंकी भाषा पूर्णतः बेठिकाने है। इसमें कहीं तो प्राकृत और अपभ्रंशके प्रयोग मिलते हैं और कहीं आधुनिक साँचेमें ढली भाषा मिलती है। इसलिए यह निर्णय करना सम्भव नहीं कि कितना अंश सच्चा और कितना जाली है। पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कविराज मुरारी दान और श्यामलदान तो इस सम्पूर्ण ग्रन्थको ही जाली मानते हैं। किन्तु हालमें ही मुनि जिनविजयजीको जो चार छप्पय मिले हैं वे भाषाकी कसौटीपर खरे उतरते हैं और उनके आधारपर यह माना जा सकता है कि चन्द कवि पृथ्वीराजके समयमें अवश्य था।

इन सब इतिहास-सम्बन्धी पचड़ोंको छोड़कर शुद्ध साहित्यिक दृष्टिसे परखा जाय तो पृथ्वीराज रासो वस्तुतः महाकाव्य है। इसमें ६९ समय या अध्याय हैं। इसकी भाषा राजस्थानी-मिश्रित ब्रजभाषा है जिसमें प्राकृत अपभ्रंश अरबी फारसी और तुर्की शब्दोंका भी प्रयोग हुआ है। इसमें हाटक दोहा पद्धरि, गाहा तोमर, भुजंगी और कवित्त (छप्पय) छन्दोंका प्रयोग हुआ है किन्तु छप्पय छन्दकी संख्या सबसे अधिक है। गाहा (गाथा) छन्दका प्रयोग रासोके पश्चात् अन्य किसी ग्रन्थमें नहीं मिलता। वैदिक कालसे प्रयुक्त यह छन्द रासो तक आकर रुक गया है। रासोकी कविता बहुत ही ओजस्विनी और सबल है। इस ग्रन्थमें वीर रसका प्राधान्य है। साहित्य-शास्त्रके अनुसार महाकाव्यमें भिन्न-भिन्न बातोंका वर्णन आवश्यक बताया गया है उन सबका समावेश इसमें किया गया है। रासोके वर्णन इतने सजीव हैं कि पढ़ते ही वे नेत्रोंके सम्मुख मूर्तिमान् होकर घूमने लगते हैं। कथाका प्रबन्ध-निर्वाह करनेमें वर्ण्य विषयोंको साकार रूप देनेमें पात्रोंका चरित्र-चित्रण करनेमें रासोकारको अद्भुत सफलता मिली है। रासोकी कथामें बड़ी गति बड़ा प्रवाह बड़ा वेग है। इसके सभी पात्र सजीव और क्रियाशील हैं।

रासोके कुछ पद्य यहाँ परिचयार्थ दिए जाते हैं —

मिलिहि लक्ख तुषार सबल पाषरिअइ जसु हय।
चउदसय मयमत्त दंति गज्जति महामय॥
बीस लक्ख पायक्क सफर फारक्क धणुद्धर।
ल्हूसडु अरु बलु यान संख कु जाणइ तांहपर॥
छत्तीस लक्ख नराहिवइ विहिविनिम्मिओ हो किम भयउ।
जइ चन्द न जाणउ जल्हुकइ गयउ कि मुउ कि घरि गयउ॥१॥
प्रिय प्रिथिराज नरेस जोग लिपि कग्गर दिन्नौ।
लग्गन बरग रचि सरब दिन्न द्वादस ससि भिन्नौ॥
सौ ग्यारह अरु तीस साष संवत परमानह।
जो पित्री-कुल सुद्धबरन बरि रक्खहु प्रानह॥

दिक्खत दिट्ठि उच्चरि वर इक पलंक्क विलब न करिय ।
अलगार रयनि दिन पचमहि ज्यों रुकमिनि कन्हर वरिय ।।२।।
वचि कागज चहुआन नें, फिरन चव सह थान ।
मनोवीर तनु अकुरे, मुर्गति भोग बनि प्रान ।।
मची कूह वल हिन्दु के कसे सनाह-सनाह ।
वर चिराक दस सहस भइ बजि निसान अरिदाह ।।३।।

रासोके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध है कि निम्नलिखित दोहेके पश्चात्का अश चन्दके चतुर्थ पुत्र जल्हणका रचा हुआ है—

आदि अन्तलगि वृत्तिमन प्रन्नि गनी गजराज ।
पुस्तक जल्हण हत्थ दै, चले गजन नृपकाज ।।

इस दोहेसे स्पष्ट हो जाता है कि जल्हण भी उच्च कोटिके कवि रहे होगे।

इतिहासकारोने सभी प्रकारके इतिहासोका काल विभाजन आदि, मध्य और वर्त्तमानके आधारपर किया है। देशोके इतिहास, साहित्योके इतिहास सबमें इस परम्पराका पालन दिखाई पडता है। राजस्थानी भाषाका आदिकाल विक्रमकी पन्द्रहवी शताब्दीके मध्य तक माना जाता है। तबसे लेकर १८ वी शताब्दीके अन्त तकका काल मध्यकालके नामसे सम्बोधित होता है और उसके पश्चात्का समय आधुनिक-काल कहा जाता है। आदिकालके कुछ ही कवियोकी रचनाएँ आज उपलब्ध है। रासो कहलानेवाले ग्रन्थ-लेखनकी परम्परा आदिकालसे लेकर १८ वी शताब्दी तक हुई। मध्यकालमें प्रबन्धके रूपमें चारणोने अपने आश्रयदाताओका प्रशस्ति–गान ही किया। इसमे सन्देह नही कि चारणोकी रचनाएँ अधिकतर राजाओके यश गानसे युक्त होती रही तथापि ये लोग फुटकर गीत आदि ही लिखनेमें व्यस्त रहे। ये मुक्तक बहुत ही ओजस्वी और प्राणवान् है तथा इनमें वेग और गतिके साथ कला और काव्य भी है। इनकी भाषा बहुत ही प्रौढ है। वास्तवमें यह राजस्थानी साहित्यका अत्यन्त समृद्धिका युग रहा है। इसी युगमें केवल राजस्थानीमें ही नही वरन् ससारकी सभी प्रचलित भाषाओमें उच्च कोटिके कवि हुए और सभी देशोमें शृगारका वर्णन सर्वाधिक रुचिके साथ हुआ। देशमें शान्ति और सुव्यवस्थाके समय शृगारका किसी-न-किसी रूपमे वर्णन स्वाभाविक ही था।

राजस्थानीमें इस कालमें शृंगार रसके दो अपूर्व ग्रन्थ रचे गए—'ढोला मारूरा दूहा' और 'वेलि क्रिसन रुकमिणीरी।' राजस्थानी भाषामे भाव और भाषा दोनो दृष्टियोंसे इनकी जोडके ग्रन्थ दूसरे नही है।

गागनोरगढके अधिपति अचलदास खीचीके आश्रित कवि शिवदासने सवत् १९९० के लगभग 'वचनिका अचलदास खीचीरी' की रचना की जिसकी भाषा प्रौढ और कविता रस-भावपूर्ण है। इसमें गद्य और पद्य दोनो है।

कल्लोल

कल्लोल कविके जन्म, निवास आदिके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञात नही है। इनकी कृति 'ढोला मारूरा दूहा' वेजोड है जिसका अन्तिम दोहा इस प्रकार है —

पनरह से तीसें बरस कथा कहीं गुण जांण ।
बदि बैसाखें बार गुरु, तीज जाण सुभ वांण ॥

इससे ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थकी रचना सवत् १५३० में पूर्ण हुई।

यह प्रेम-गाथात्मक काव्य है। राजस्थान भरमें इस कहानीका प्रचार है। जैसे पंजाबके घर घरमें हीर-रांझाकी कहानी प्रसिद्ध है और आज भी लोग उसे सुनकर नहीं अघाते उसी प्रकार राजस्थानके लोग ढोला और मारू का प्रेम वृत्तान्त सुनते नहीं अघाते। राजस्थानीका यह अमर प्रेम काव्य पूर्ण रूपसे राजस्थानकी भावनाको अभिव्यक्त करता है। इसमें उक्तियाँ कविकी मौलिक सूझ और भावोंकी रमणीयता अद्भुत है। इन दोहोंकी प्राचीनताका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि कबीरकी साखियोंमें ढोला-मारू के दोहे ज्यों-के-त्यों पाए जाते हैं। लिखित रूप म रहनेके कारण इसके कुछ दोहे लुप्त हो गए थे जिससे कथाकी कड़ी बीच-बीचमें टूट गई थी। जैन कवि कुशल लाभने चौपाइयाँ जोड़कर कथाका क्रम पूरा कर दिया। इस ग्रन्थके कुछ दोहे नीचे दिए जाते हैं —

राति सखी इण ताल मईं काइक कुरली पंखि ।
उवै सरि हूँ घर आपणी बिहु न मेल्हौं अंखि ॥१॥
अकथ कहाणी प्रेमकी किण सूँ कही न जाय ।
गूँगाका सुपना भया, सुमर सुमर पिछताय ॥२॥
यह तन जारी मसि करूँ, धूआँ जाहि सरग्गि ।
मुझ प्रिय बद्दल होइ करि, बरसि बुझावै अग्गि ॥३॥

ईसरदास

ईसरदासका जन्म जोधपुर राज्यके भाद्रेस गाँवमें सवत् १५९५ में हुआ था। इन्होंने १२ ग्रन्थोंकी रचना की जिनमें हरिरस और हाला झाला रा कुण्डलिया बहुत प्रसिद्ध है। शेष ग्रन्थ साधारण और छोटे है। ईसरदास सिद्ध और भक्त कवि थे। इनके काव्यमें इनकी तल्लीनता और दृढ़ भगवद्भक्ति प्रकट होती है। इनकी मृत्यु सवत् १६७५ म हुई।

पृथ्वीराज

पृथ्वीराज बीकानेर-नरेश रायसिंहके छोटे भाई थे। इनका जन्म सवत् १६ ६ में बीकानेरमें तथा मृत्यु ५१ वर्षकी अवस्थामें सवत १६५७ म मथुरामें हुई। पृथ्वीराज देशभक्त वीर और हिन्दुत्वाभिमानी व्यक्ति थे। अकबरके दरबारमें रहते हुए भी ये अत्यन्त निर्भीक और तेजस्वी थे। भाषा साहित्य पिंगल सगीत और ज्योतिषके अच्छे पण्डित और उच्च कोटिके भक्त भी थे। नाभादासजीने भक्तमालमें इनको भी स्थान दिया है। इनकी पत्नी चम्पादे भी काव्य-रचनामें अत्यन्त प्रवीण और सहृदय थी।

पृथ्वीराजके रचे पाँच ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं १– वेलि क्रिसन रुकमणी री २– दसम भागवत रा दूहा ३– गगालहरी ४– बसदेवरावउत और ५– दसरथरावउत। वेलि क्रिसन रुकमणी री की रचना वेलियो गीत छन्दमें हुई है। यह ३ ५ पद्योंका खण्डकाव्य है जिसमें कृष्ण-रुक्मिणीके परिणयकी कथा थी

हुई है। पृथ्वीराजकी रचनाओमे यह सर्वोत्कृष्ट है। यह रचना अत्यन्त प्रौढ और मार्मिक है। इसका रचना-काल अब तक १६३७ माना जाता था परन्तु उदयपुरकी नई हस्तलिखित प्रतिके अनुसार इसकी रचना सवत् १६४४ में हुई। पृथ्वीराजके शेप चारो ग्रन्थ दोहोमे है। 'दसम भागवतरा दूहा' मे १८४ दोहे है जो कृष्ण-भक्तिपरक है, 'दसरथरावउत' मे ५० दोहे राम-स्तुति सम्बन्धी हैं, 'वसदेवरावउत' मे १६५ दोहे श्रीकृष्ण-सम्बन्धी है और 'गगालहरी' मे ८० दोहे गगाजीकी महिमा-सम्बन्धी है। इनके अतिरिक्त इनके कुछ फुटकर छन्द भी मिलते है जो वीर रसकी रचनाके उत्कृष्टतम उदाहरण है।

वेलिकी कथाका आधार भागवतका दशम स्कन्ध है परन्तु कविकी वर्णन-शैली अपनी है। भाषाकी विशुद्धता और शब्दोंके चयनका ऐसा ध्यान रक्खा गया है कि पढते ही उनके ध्वनिमात्रसे भावनाका चित्र सामने उपस्थित हो जाता है। कविकी अलकार-योजना भी वहुत सटीक है। 'वयण सगाई' का ध्यान रखनेपर भी कही भाव दबने नही पाए है। उपमा और रूपकका पृथ्वीराजने प्रचुर प्रयोग किया है। इसमें कला-पक्ष और भाव-पक्ष दोनो एक-से-एक बढकर है। वेलिमें पृथ्वीराजका प्रकृति वर्णन अत्यन्त उत्तम हुआ है। यह वर्णन षड्ऋतु वर्णनके रूपमें है किन्तु इसमे पिष्टपेपण नही है।

पृथ्वीराजकी कुछ कविताएँ नीचे दी जा रही है —

माई एहडा पूत जण, जेहडा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओझकै, जाण सिराणै सॉप ॥१॥
परपच लाज दीठ नह व्यापण, खाटो लाभ अलाभ खरो।
रज वेचवा न आवै राणा, हाट मीर हमीर हरो ॥२॥
गत प्रभाथियौं ससि रयणि गलती, वर मन्दा सइ वदनवरि।
दीपन परजलतौ इन दीपै, नास फरिम सू रतनि नरि ॥३॥
काया लागो काट सिकलो गर छूटै नहीं।
निरमल हुवै निराट, मेट्या सूभागीरथी ॥४॥

दुरसाजी आढ़ा

यदि भाषाकी प्रौढ़ता और विशुद्धतामें पृथ्वीराजके समकक्ष कोई कवि खडा हो सकता है तो वे है आढ-गोत्रीय चारण कवि दुरसाजी जो सवत् १५९२ में जोधपुरके भूदला गाँवमें उत्पन्न हुए थे और १२० वर्ष की लम्बी आयु भोगकर सवत् १७१२ में काल-कवलित हुए। ये छह वर्षकी अवस्था मे अनाथ हो गए। इनका पालन-पोषण बगडीके ठाकुर प्रतापसिहने किया। इनके सम्बन्धमे प्रसिद्ध है कि अकबरके दरबारमे इनका अत्यधिक सम्मान था तथा उसमें इन्हें बहुत बहुत बार पुरस्कृत किया था, किन्तु यह बात सदिग्ध लगती है, क्योकि इन्होने अकबरको अधम, लालची आदि विशेषणोसे तिरस्कृत किया है। ये कविके साथ-साथ योद्धा भी थे और अनेक युद्धोमें लड चुके थे। इसीसे इनकी कविता वीरदर्पपूर्ण है। इनमें हिन्दुत्वका अभिमान कूट-कूटकर भरा था। हिन्दू जाति और धर्मकी महिमा इनकी कविताओमें स्पष्ट लक्षित होती है। इनकी भाषा सरल और ओजपूर्ण है तथा राजस्थानमें बहुत प्रचलित है। इनका 'विरुद छिहत्तरी' उत्तम ग्रन्थ है। स्फुट छन्द भी इनके मिलते है। दो दोहे नीचे दिए जाते है —

अकबर गरब न आण हिन्दू सह चाकर हुआ।
दीठो कोई दीवाण करतो लटका कटहेड़ै।
अकबर समँद अथाह तिह डूबा हिन्दू-तुरक।
मेवाड़ी तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी॥

बांकीदास

आसिया शाखाके चारण कविराजा बांकीदासका जन्म जोधपुर राज्यमें संवत् १८२८ में हुआ था। अनेक गुरुओंसे विद्या प्राप्त करके ये अच्छे विद्वान् और कवि निकले। संवत् १८९   में महाराज मानसिंहने इन्हें अपना राजकवि नियुक्त किया। बांकीदास कवि तो उच्च कोटिके थे ही इतिहासके भी प्रकाण्ड पण्डित थे। महाराज इन्हें बहुत मानते थे। १८९   में इनकी मृत्यु होनेपर महाराजको असीम दुःख हुआ था।

बांकीदासकी २७ पुस्तकें नागरी प्रचारिणी सभाने बांकीदास ग्रन्थावलीके नामसे तीन भागोंमें प्रकाशित की हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने बहुतसे फुटकर गीत और २८   के लगभग छोटी-छोटी ऐतिहासिक कहानियाँ भी लिखी हैं। बांकीदास राजस्थानीके प्रथम श्रेणीके कवि थे। इनकी भाषा प्रौढ़ प्रवाहपूर्ण और परिमार्जित है वर्णन-शैलीमें स्वाभाविकता है अलंकारोंका भी इन्होंने जो अधिक प्रयोग किया है वे सर्वत्र स्वाभाविक रूपसे आए हैं। यद्यपि नीति और उपदेशकी बातें इन्होंने अधिक नहीं हैं तथापि वीर रसकी इनकी उक्तियाँ भी कहीं-कहीं बड़ी अनूठी हैं। इनके दो पद्य नीचे दिए जाते हैं —

केल रहै मित कांपती कायर जये कपूर।
सीहण रण लाजै नहीं सीह जणे रजे सूर॥१॥
वाता वन वै तो विमै जस तैसी गर पीठ।
जेतो गुड़ नै नाखियां तैसी मीमच मीठ॥२॥

सूरजमल (सूर्यमल)

सूरजमलका कवियोंमें बड़ा सम्मान है। चारणोंका तो कहना है कि सूरजमल जैसा कवि न हुआ न होगा। इसमें सन्देह नहीं कि अपने समयमें सूरजमलका इतना प्रभाव था कि इनके सामने राजस्थानीका कोई कवि टिक न सका। इनका जन्म संवत् १८७२ में बूँदीमें हुआ। ४८ वर्षकी आयु भोगकर संवत् १९२   में ये संसार छोड़कर चल बसे।

सूरजमल उच्च कोटिके जन्मजात कवि थे। ये अनेक शास्त्रों एवं अनेक भाषाओंके अद्भुत विद्वान् थे। इनके रचे चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं–'वंशभास्कर' 'वीर सतसई' 'बलवन्त विलास' और 'छन्द मयूख'। इनके अतिरिक्त इनके स्फुट छन्द भी बहुत-से इधर-उधर मिलते हैं। वंश भास्कर बूँदी राज्यका इतिहास है जिसमें युद्धोंका वर्णन अत्यन्त सजीव और काव्यमय है। वीर सतसईमें केवल १   ही दोहे हैं किन्तु उनको वीर रसका प्रतिभावान् ओजस्वी और सर्वश्रेष्ठ कवि प्रमाणित करनेके लिए १   दोहे ही पर्याप्त हैं। इन दोहोंमें उनका हृदय बोलता है। इनकी भाव-गम्भीरता सराहनीय है। शेष दोनों ग्रन्थ साधारण हैं। इनकी कविताके दो उदाहरण नीचे दिए जाते हैं —

फहरक्कि दिसान वडे, वहरक्कि निसान उडै वियरं ।
रसना अहिनायककी निकसे कि पराझल होरियकी प्रसरं ।।
गजघट ठनकिय भेरि भनक्किय, रग रनकिय कोच करी ।
पखरान फनकिय वान सनकिय चाप तनकिय ताप परी ।।१।।
सुतधारा रज-रज थियौ वहू वलेवा जाय ।
लखिया डूगर लाजरा सासू उन न समाय ।।२।।

यद्यपि व्रजभाषाके प्रचारके कारण अनेक राजस्थानी कवि भी व्रजभाषामें रचना करने लगे किन्तु राजस्थानीमें भी रचनाएँ होती रही। कविराजा मुरारीदासने (दोनो-सूरजमलके दत्तक पुत्र बूंदीवाले तथा जसवन्त जसोभूषणके रचयिता जोधपुरवाले केसरी सिंह वारहठ आदिने अधिकतर रचनाएँ व्रजभाषामें ही की है फिर भी राजस्थानीमे जो कुछ उन्होने लिखा है वह कम महत्वका नही है ।

व्रजभाषाके हटते-हटते जव नागरीका प्रचार हो गया तव राजस्थान में भी कवियोकी रचनाका माध्यम नागरी ही हो गई। फिर भी आजकलके अनेक कवियोने राजस्थानीमे वडी सजीव और ओजस्वी रचनाएँ की है जिनमें केसर सिंह वारहठ, मुकुल, पतराम गौड, आदि प्रमुख है। जवसे जयपुरमे रेडियो केन्द्र स्थापित हुआ है तवसे राजस्थानीके अनेक कवियोकी अत्यन्त उत्कृष्ट और रसभावपूर्ण रचनाएँ प्राय सुननेको मिला करती है। उनका कोई सग्रह न होनेसे उनकी समीक्षा कर सकना सम्भव नही है। इन कवियोमें अनेक प्रगतिवादी, प्रयोगवादी कवि भी हैं जो राजस्थानी भाषामे अपनी उदात्त परम्परा भुलाकर इन निरर्थक, थोथे वादोका पोषण कर रहे है।

राजस्थानीके संवाद ग्रन्थ

कम ही लोग जानते होगे कि राजस्थानीमें सवाद काव्य-लिखनेकी भी एक विशिष्ट परम्परा थी। वाद-विवाद अथवा प्रश्नोत्तरकी शैलीमें प्रस्तुत उस साहित्यको ही सवाद साहित्य कहते है, जो बौद्ध और जैन साहित्यमें धर्मतत्त्वनिरूपणके लिये प्रयुक्त हुआ है। किन्तु मध्यकालके राजस्थानी कवियोने विनोदके रूपमें कुछ अवस्थाओ और वस्तुओको व्यक्ति मानकर भी उनसे सवाद कराए हैं।

वैसे सवादोका प्रयोग नाटको तथा काव्योमें तो प्राचीन कालसे ही होता आया है परन्तु सम्पूर्णत और स्वतन्त्र सवाद-काव्यका सर्वप्रथम उदाहरण हमें 'कृपण-नारि सवाद' (१४३७)के रूपमें मिलता है। इसके पश्चात् तो सोलहवी शताब्दीसे बराबरही इस शैलीकी काव्य-रचनाके उदाहरण मिलते आते है। इन सवाद काव्योमें दन्त-जिह्वा सवाद, सुखडचम्पक-सवाद, रावण-मन्दोदरी सवाद, गोरी-साँवली-सवाद, मोती-कपा-मिया-सवाद, उद्यम-कर्म-सवाद, हरिणा व्याध्र सवाद १६ वी और १७ वी शताब्दीकी रचनाएँ है। १८ वी १९ वी शताब्दीमें भी इस शैलीकी रचनाएँ प्रचुर परिमाणमे हुई। अधिकाश ये रचनाएँ जैन पण्डितोकी है। जैनेतर कवियोकी भी कुछ रचनाएँ इस शैली की है, पर बहुत अल्प है। दाता और सूमका सवाद, मारवली-मालवणी सवाद, गुरू-चेला-सवाद, सोना-गुंजा सवाद, (गद्यमें) इसी ढगकी रचनाएँ हैं। किन्तु यह परम्परा अब समाप्त हो गई है।

राजस्थानी साहित्यके उपर्युक्त प्रारम्भिक कालमें राजस्थानी और गुजराती भाषा दोनों हाथमें हाथ डाले हुए एक साथ चल रही थी किन्तु धीरे धीरे जब राजस्थानीकी विभिन्न बोलियोंमें साहित्यिक रचनाएँ अधिक प्रकाश पाने लगी तब राजस्थानी और गुजराती दोनोंरा स्वरूप स्पष्टत: अलग हो गया। राजस्थानकी जिन अनेक बोलियाम साहित्यिक रचनाएँ हुई उनमें सबसे अधिक प्रौढता मारवाड़ी भाषामें विद्यमान थी जिसका साहित्य अब डिंगल या डींगल साहित्यके नामसे व्यक्त किया जाता है। इस मारवाड़ी बोलीका साहित्य इतना अधिक लोक-प्रिय हुआ कि यही भाषा धीरे-धीरे सम्पूर्ण राजस्थानकी साहित्यिक भाषा बन चली। उसका कारण भी यह था कि उत्तर भारतमें मुसलमानी शासन भली प्रकार जम चुका था युद्ध बन्द हो चले थे इसलिए स्वभावत कुछ तो शृंगार परक रचनाएँ हुई, कुछ तत्कालीन भक्ति आन्दोलनके फल-स्वरूप भक्ति-परक रचनाएँ हुई और आश्रयदाता राजाओंका गौरव-वर्णन तो मानो वहाँकी साहित्य-परम्परा ही थी। शृंगार परक रचनाओंमे 'ढोला मारुरा दूहा' और 'वेलि क्रिसन रुकमणीरी' नामक शृंगारके अत्यन्त प्रौढ काव्योंकी रचना हुई। शृंगार रसकी मधुरता और मादकतासे ओत प्रोत ये दोनो काव्य डिंगल भाषाके सिरमौर हैं जो वर्णन भाषा शैली उक्ति मोहकता आदि सब दृष्टियोंसे अनुपमेय है। भक्त कवियोंमें मीराबाई तो राजस्थानकी ही नहीं गुजरात और समस्त उत्तर भारतकी या यों कहिए कि हिन्दी संसारकी प्रसिद्ध कवयित्री हैं जिन्होने माधुर्य रसका अकेले हिन्दी साहित्यको अत्यन्त मनोहर सुधा-कलश प्रदान किया है। भक्त कवियोंकी कोटिमें ईसरदास की रचनाओंका भी चारणोंमें बड़ा सम्मान है।

अपने आश्रय दाता राजाओंके यश वर्णन करनेवाले चारण कवियोंकी रचनाओंमें राजभक्ति और धर्म-वर्णनका ही वैशिष्ट्य रहा है जिनमें उन्होने नि सकोच होकर अपने आश्रय-दाता राजाओंका अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। यद्यपि इस वर्गके कवियोंने कोई महाकाव्य तो नही किखा तथापि इनके मुक्तक गीत और दोहोंमें भी कही-कही ऐसी मार्मिक उक्तियाँ प्रभावशील भाव और हृदयको सद्य झकझोर कर उद्बुद्ध करनेकी तड़प विद्यमान है। इसी युगमें दादू पन्थके जन्मदाता दादूदयाल भी हुए जिनका वर्णन यथा प्रसग आगे किया जायगा।

शिवदास

आश्रय दाता राजाओंकी कीर्तिके वर्णकारोमें चारण शिवदास सामान्य ने डिंगल भाषामें गद्य पद्य मिश्रित अचलदास खीचीरी वचनिका नामक छोटा-सा चम्पू काव्य लिखा है जिसमें माण्डूके पातशाह और गागरौन गढके खीची राजा अचलदासके युद्ध (सवत १४८५ का) वर्णन है। इसके गद्य-खण्डको कविने वात (वार्ता) के नामसे अभिहित किया है।

तत्ववेत्ता

सम्वत् १५५५ के लगभग जोधपुर राज्यके पीपारके नवरवासी निम्बार्क सम्प्रदायके सन्त तत्ववेत्ताने कवित्त नामका पिंगल (राजस्थानीसे बनी हुई ब्रज) भाषामें ९८ छप्पयोंका सग्रह ग्रन्थ लिखा जिनमें जनक नारद तथा रामकृष्ण आदि महापुरुषोंका महत्त्व बखाना गया है।

ग्रन्थ लिखे है। ये अत्यन्त सरल, सुबोध और मनोहारिणी शैलीमे गुजराती मिश्रित राजस्थानी भाषामें लिखते थे।

इस युगके अन्य राजस्थानी कवियोमे माधवदास चारण (स १६१० से १५ के) सम्भवत जोधपुरके वलूंडा ग्राममे उत्पन्न हुए थे। ये वडे उच्च कोटिके भक्त कवि थे। इन्होने डिंगल भाषामे 'राम रासो' और 'भाषा दशमस्कन्ध' नामक ग्रन्थ लिखे जिनमे 'राम रासो' अत्यन्त सुन्दर कलात्मक प्रवन्ध काव्य है।

सवत् १७०० से १९०० के वीच तत्कालीन काव्य-रीतिके अनुसार अनेक रीति-ग्रन्थो तथा शृगार-प्रधान और श्रीकृष्णकी प्रेम लीलासे सम्वद्ध अनेक रचनाएँ की गई किन्तु प्रधानता मुक्तक पदो और कवित्तोकी ही रही। इनके अतिरिक्त स्वभावत वीररसपूर्ण अनेक सुन्दर रचनाएँ हुई। १७ वी शताब्दीके अन्तिम चरणमें माधवदास दधवाडियाने रासो शैलीपर राम-रासो की सुन्दर रचना की जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है और इसी युगमें खुम्माण रासो, पृथ्वीराज रासो, हमीर आदि अनेक रासो ग्रन्थ लिखे गए। कुछ चारणोने मुक्तक पदोके वदले 'राजरूपक' और 'सूरज प्रकाश' आदि प्रवन्ध काव्योकी भी सृष्टि की।

इस युगके रचनाकारोमें जोधपुर-महाराज गजसिंहके द्वितीय पुत्र जसवन्त सिंह (१६८३) डिंगल और पिंगल दोनो भाषाओंके कवि थे। इन्होने 'भाषा-भूषण', 'सिद्धान्त वोध', 'सिद्धान्त सार', 'अनुभव प्रकाश', 'अपरोक्ष सिद्धान्त', 'आनन्द विलास', 'चन्द्र प्रवोध' (नाटक) 'पूली जसवन्त सवाद' और 'इच्छा-विवेक' आदि अनेक ग्रन्थ लिखे।

मुहणौत नैंडसी (स १६६७) वडे आत्माभिमानी कवि थे। ये डिंगल भाषाके पद्य और गद्य दोनो अत्यन्त प्रवाह शील और रोचक भाषामें लिखते थे।

कल्याण दासने (१७०० में) डिंगल भाषामे गुण गोविन्द नामक ग्रन्थमे राम और कृष्णकी लीलाओका अत्यन्त भावमय वर्णन किया है। इनके अतिरिक्त साईदान, डूंगरसी, जग्गाजी, किशोरदास, गिरधर, जोगीदास, कुशलधीर, मानजी, वादर, दयाल, वीरभाण, करणीदान, सूदन, नन्दराम, खेतसी, जोधराज, हम्मीर, कृपाराम, मानसिंह, ओपाजी, वाकीदास, मनछाराम, रामदान, चण्डीदान, किसनजी, आदि अनेक कवियोने इस युगमें सुन्दर रचनाकी जिनमें चारण कुम्भकरण, हरिदास भाट, पृथ्वीराज, गोपीनाथ चारण और भीमाजी चारण उल्लेखनीय है।

वर्तमान कालका राजस्थानी साहित्य

राजस्थानीका वर्तमान युग सवत् १९०० से प्रारम्भ समझना चाहिए। जिसमें प्रारम्भिक प्रथम चरणमें सबसे अधिक प्रसिद्ध और शक्तिशाली कवि बूंदीके चारण सूरजमल हुए। चारण सूरजमल (१८७२) अनेक शास्त्रोके पण्डित और कई भाषाओंके ज्ञाता थे। इन्होने वश-भास्कर, वीर सतसई, बलवन्त विलास और छन्दोमयूख नामक ग्रन्थोकी रचना की। डिंगल भाषाके ये अद्वितीय कवि हैं। सूक्ष्म प्रभावशाली और ओजपूर्ण रचनामें कोई इनसे टक्कर नही ले सकता। इस युगके अन्य कवियोमें शकर दास या स्वरूप दास सस्कृत, पिंगल और डिंगलके प्रौढ विद्वान थे और अनेक रजवाडोमें उनका सम्मान था। इन्होने

वियोग गीत सांखियाँ तथा मनको प्रबोधनात्मक पद ही कहे हैं—जो सभी गेय मुक्तक हैं। उनकी भक्ति माधुर्य भावकी थी। इसलिए उन्होंने अपने पारमार्थिक या अलौकिक शृंगाररसे पूर्ण भक्तिमय और प्रेममय रचनाएँ की हैं।

राजस्थानके अन्य कवि

राजस्थानके अन्य कवियोंमें स १५७५ में पच सहेली रा गुहा के रचयिता छीहल और संवत् १५६१ के लगभग जोधपुर राज्यके भाद्रेस गाँववासी चारण आशानन्द भी अच्छे कवि हुए हैं। इन्हीके भतीजे प्रसिद्ध राजस्थानी कवि ईसरदास हुए।

ईसरदास

रोहड़िया शाखाके चारण ईसरदासका जन्म सवत् १५९५ में जोधपुर राज्यके भाद्रेस गाँवमें हुआ था। अपने गरु पीताम्बर भट्टसे सस्कृत विद्या और पुराणका अध्ययन करके ये जामनगर जा पहुँचे वहाँ कि रावल जामने इन्हें अपना पोलपात (पुरस्कार प्राप्त) सभासद बनाकर लाखपसावा जागीर दे दी थी। चालीस वर्ष वहाँ रहकर ये पुन भाद्रेस लौटकर लूनी नदीके तटपर एकान्तवास करने लगे। इन्होंने डिंगल भाषामें हरिरस छोटा हरिरस बाल-लीला गुण भागवत हस गरुड़ पुराण गुणआगम निन्दास्तुति देवयाण वैराट रास-कैलास सभापर्व हाला झाला रा कुण्डलिया नामक १२ ग्रन्थ लिखे जिनमेंसे हरिरस और हाला-झाला रा कुण्डलिया अधिक प्रसिद्ध हैं। मीराकी तन्मयताके समान इनमें भी भक्ति-तन्मयता और इष्ट देवमें अपार भक्तिका अत्यन्त भावपूर्ण वर्णन है।

केसवदास

जोधपुर राज्यके गीडिया ग्रामवासी डिंगल भाषाके प्रसिद्ध कवि केसवदासका जन्म सवत् १६१ में तथा निधन सवत् १६९७ में हुआ था। इन्होंने गुण-रूपक राव अमरसिंहजी रा गुहा विवेक वार्ता और गज-गुण चरित्र शीर्षक ग्रन्थ लिखे थे। इनकी रचनाएँ बड़ी प्रौढ ओज-पूर्ण और प्रवाहशील हैं।

फुटकर छप्पयोंके रचयिता अल्लूजी चारणने अत्यन्त सरल डिंगल भाषामें कुछ छप्पय लिखे हैं।

सवत् १६२५ के लगभग जल्ह नामके कविने चम्पावती नगरीके राजकुमार और अलखि तरंगिनी नामक सुन्दरीकी कल्पित कथाके आधारपर बुद्धि रासो लिखा है जो अपभ्रंशसे प्रभावित राजस्थानी भाषामें बड़ी सरस रचना है।

अन्य कवि

इस कालके अन्य कवियोंमें जैनाचार्य अभय-धर्मके शिष्य कुशल लाभ (सवत् १५८ के लगभग) साहित्यके उद्भट विद्वान और कुशल कवि थे। उन्होंने ढोला मारुरी चौपाई माधवानल कामकन्दला चौपाई तेजसार रास अगडदत्त चौपाई पार्श्वनाथ स्तवन गौडी छन्द नौकार छन्द भवानी छन्द पूज्य वाहनगीत जिनपालित जिन-रक्षित-सन्धिगाथा और पिंगल शिरोमणि नामक ११

ग्रन्थ लिखे है। ये अत्यन्त सरल, सुबोध और मनोहारिणी शैलीमे गुजराती मिश्रित राजस्थानी भाषामें लिखते थे।

इस युगके अन्य राजस्थानी कवियोमे माधवदास चारण (स १६१० से १५ के) सम्भवत जोधपुरके वलूंडा ग्राममे उत्पन्न हुए थे। ये बडे उच्च कोटिके भक्त कवि थे। इन्होने डिंगल भाषामे 'राम रासो' और 'भाषा दगमस्कन्ध' नामक ग्रन्थ लिखे जिनमें 'राम रासो' अत्यन्त सुन्दर कलात्मक प्रबन्ध काव्य है।

सवत् १७०० से १९०० के बीच तत्कालीन काव्य-रीतिके अनुसार अनेक रीति-ग्रन्थो तथा शृगार-प्रधान और श्रीकृष्णकी प्रेम लीलासे सम्बद्ध अनेक रचनाएँ की गई किन्तु प्रधानता मुक्तक पदो और कवित्तोकी ही रही। इनके अतिरिक्त स्वभावत वीररसपूर्ण अनेक सुन्दर रचनाएँ हुई। १७वी शताब्दीके अन्तिम चरणमें माधवदास दधवाडियाने रासो शैलीपर राम-रासो की सुन्दर रचना की जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है और इसी युगमें खुम्माण रासो, पृथ्वीराज रासो, हमीर आदि अनेक रासो ग्रन्थ लिखे गए। कुछ चारणोने मुक्तक पदोके बदले 'राजरूपक' और 'सूरज प्रकाश' आदि प्रबन्ध काव्योकी भी सृष्टि की।

इस युगके रचनाकारोमे जोधपुर-महाराज गजसिंहके द्वितीय पुत्र जसवन्त सिंह (१६८३) डिंगल और पिंगल दोनो भाषाओके कवि थे। इन्होने 'भाषा-भूषण', 'सिद्धान्त बोध', 'सिद्धान्त सार', 'अनुभव प्रकाश', 'अपरोक्ष सिद्धान्त', 'आनन्द विलास', 'चन्द्र प्रबोध' (नाटक) 'पूली जसवन्त सवाद' और 'इच्छा-विवेक' आदि अनेक ग्रन्थ लिखे।

मुहणोत लैंडसी (स १६६७) बडे आत्माभिमानी कवि थे। ये डिंगल भाषाके पद्य और गद्य दोनो अत्यन्त प्रवाह शील और रोचक भाषामें लिखते थे।

कल्याण दासने (१७०० में) डिंगल भाषामें गुण गोविन्द नामक ग्रन्थमें राम और कृष्णकी लीला-ओका अत्यन्त भावमय वर्णन किया है। इनके अतिरिक्त साईदान, डूंगरसी, जग्गाजी, किशोरदास, गिरधर, जोगीदास, कुशलधीर, मानजी, वादर, दयाल, वीरभाण, करणीदान, सूदन, नन्दराम, खेतसी, जोधराज, हम्मीर, कृपाराम, मानसिंह, ओपाजी, वाकीदास, मनछाराम, रामदान, चण्डीदान, किसनजी, आदि अनेक कवियोने इस युगमें सुन्दर रचनाकी जिनमें चारण कुम्भकरण, हरिदास भाट, पृथ्वीराज, गोपीनाथ चारण और भीमाजी चारण उल्लेखनीय है।

वर्तमान कालका राजस्थानी साहित्य

राजस्थानीका वर्तमान युग सवत् १९०० से प्रारम्भ समझना चाहिए। जिसमे प्रारम्भिक प्रथम चरणमें सवसे अधिक प्रसिद्ध और शक्तिशाली कवि बूंदीके चारण सूरजमल हुए। चारण सूरजमल (१८७२) अनेक शास्त्रोके पण्डित और कई भाषाओके ज्ञाता थे। इन्होने वश-भास्कर, वीर सतसई, वलवन्त विलास और छन्दोमयूख नामक ग्रन्थोकी रचना की। डिंगल भाषाके ये अद्वितीय कवि है। सूक्ष्म प्रभावशाली और ओजपूर्ण रचनामें कोई इनसे टक्कर नही ले सकता। इस युगके अन्य कवियोमें शकर दास या स्वरूप दास सस्कृत, पिंगल और डिंगलके प्रौढ विद्वान थे और अनेक रजवाडोमें उनका सम्मान था। इन्होने

हृदयगाम्भीर्य उक्ति—चन्द्रिका भक्तिबोध पाण्डव यशेन चन्द्रिका आदि कई ग्रन्थ लिखे। किन्तु इनके अधिकांश ग्रन्थोंकी भाषा पिंगल है। डिंगल और पिंगलमें रचना करनेवाले दूसरे कवि नटनागर (१८६५) अपने नटनागर विनोद के लिए प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार राव बख्तावरजी (स १८७) व्रज और राजस्थानी दोनों भाषाओंमें रचना करते थे। उन्होंने ११ ग्रन्थ लिखे जिनमें केहर प्रकाश बहुत प्रसिद्ध हुआ जिसमें कमल प्रसन्न नामक वेश्या और उसके प्रेमी केसरीसिंहके प्रेमका विस्तृत वर्णन है। राजस्थानी भाषामें यह अत्यन्त सुन्दर कलात्मक और मनोहर प्रबन्ध काव्य है। व्रज भाषा और डिंगल दोनोंमें रचना करनेवाले हिन्दीके राजकवि गुलाबजी (१८८७) बड़े प्रसिद्ध हुए जिन्हें कामपुरकी रसिक-सभाने साहित्य भूषण की उपाधि से विभूषित किया था किन्तु इन्होंने व्रजभाषामें अधिक रचना की है। बूँदीके प्रसिद्ध कवि सूरजमलके दत्तक पुत्र मुरारिदानने भी (स १८९५) डिंगल और पिंगलमें रचना की और डिंगल कोष भी लिखा है। राजस्थानी भाषामें लिखनेवाले मस्त कवि ऊमरदानका जन्म जोधपुरके ढाबर गाँवमें स १९ ९ में हुआ था। इन्होंने बोल-चालकी राजस्थानी में किन्तु कुछ ग्राम्य प्रयोगोंके साथ ऊमर काव्य लिखा है। करजालीके महाराज चतुरसिंहने (१९३३) में राजस्थानी और व्रजभाषा दोनोंमें कविता की है। इसी प्रकार जयपुरके हुलतिया ग्रामवासी बारहठ बालाबक्स (स १९१२) ने भी डिंगल पिंगल दोनोंमें लगभग १९ रचनाएँ की। चारण केसरीसिंहके पुत्र ठा मानूदान (१९४८) ने अनेक मुक्तक रचनाएँ डिंगल भाषामें की तथा वीर-सतसई नामक ग्रन्थ लिखा। इनकी रचनामें ओज प्रवाह और प्रभावशीलता विद्यमान है। इनकी देशभक्ति-परक रचनाएँ बहुत उत्कृष्ट हैं। राजस्थानी व्रजभाषा और और नागरी तीनोंमें समान रूपसे शक्ति शाली रचना करनेवाले कवियोंमें जोधपुरके कुचेरा ग्राम-वासी अमृतलाल माथुर (१९२२) अधिक शक्तिशाली कवियोंमें हैं।

डिंगल और पिंगल दोनोंमें रचना करनेवाले मेवाड़के बसी ग्रामवासी मोहनसिंह (स १९५६) ने अत्यन्त प्रौढ़ कौशलके साथ लगभग १७ ग्रन्थ लिखे। पतराम गौड़ (१९७) नागरी और राजस्थानी दोनोंके अच्छे कवि और लेखक हैं। दूसरे राजस्थानी और नागरीके कवि हैं—बीकानेरके बिरमाली ग्रामवासी चन्दसिंह जिन्होंने कई रचनाएँ की हैं जिनमें बादळी अधिक प्रसिद्ध हुई।

मोवजी मेहमारियाने डिंगल भाषामें वीर सतसई लिखी है। बारहठ हिंगळाजदान भी डिंगल भाषाके बड़े विद्वान और कवि थे। मनोहर शर्मा और भीमराज विदग्धने क्रमश मरवणीकी आत्मा और 'मूँघा मोती' नामक राजस्थानी कविताओंसे बड़ी प्रसिद्धि पाई है। मेघराज मुकुलने सेनाणी नामक राजस्थानी रचनासे कवि सम्मेलनोंमें बड़ी ख्याति पाई है।

इस प्रकार राजस्थानी भाषाके कवि आज तक राजस्थानी भाषामें रचना करते चले आ रहे हैं। ऊपर बताया जा चुका है कि राजस्थानने हमारे देशको अपने काव्यसे बड़ी नैतिक-शक्ति प्रदान की। उस युगमें जब भारत वर्षपर विदेशी मुसलमान दस्युओंका निरन्तर आक्रमण हो रहा था और समस्त भारतकी धर्मप्राण जनता उनके अत्याचारोंसे त्रस्त हो गई थी उस समय राजस्थानके चारणों और कवियोंने ही अपनी शक्ति-शालिनी और ओजस्विनी रचनाओंसे बड़बड़ो कवितों और गीतोंसे सञ्जीवनी शक्ति भरी थी। इसलिए राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे उन सभी कवियोंका बड़ा महत्व है जिन्होंने अपने-अपने युगके अनुसार, राष्ट्र भावना राष्ट्र-धर्म और राष्ट्रीय जीवनको शक्तिपूर्ण अभिव्यक्ति द्वारा अनुप्राणित किया।

स्वभावत जब ब्रजभाषाका प्रभाव बढा और भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके प्रयाससे ब्रजभाषा और नागरी (खडी बोली) का प्रचार और प्रसार अधिक होने लगा उस समय राजस्थानके प्रतिभाशाली कवियोने ब्रज और नागरी दोनोमे अपनी काव्य प्रतिभाका चमत्कार दिखाना आरम्भ किया, किन्तु जिस प्रकार भारतेन्दुजीने छन्द तथा अलकारके साथ साथ अन्य लोक हितकारी धार्मिक, नैतिक, भक्ति-परक तथा देश-भक्तिपूर्ण रचनाएँ की वैसी रचनाओका राजस्थानी साहित्यमे अभाव रहा। वीर रसके साथ भक्ति और श्रृगारकी अवश्य कुछ रचनाएँ हुई। स्वतन्त्र देशी रजवाडोका प्रभाव अधिक होनेके कारण वहाँ देश-प्रेम और देश-भक्तिकी व्यापक उदात्त भावनाका विकास नही हो सका। किन्तु राजस्थानके कवि और लेखक ब्रज और नागरीमें भी प्रौढ रचना तो करते रहे पर साथ ही राजस्थानी भाषाको भी उन्होने छोडा नही। इसलिए यह कहना न्याय्य नही होगा कि वीरगाथा कालका एक विशेष युग था जो एक विशेष कालावधिमे समाप्त हो गया। वह तो अपनी भाषा और भावकी विशिष्ट परम्परा लिये आजतक ज्यो-का-त्यो सजीव और सप्राण रूपसे विद्यमान है। राजस्थानी कविताके कुछ उदाहरण पर्याप्त होगे—

एकणि वनि वसन्तडा, एवड अन्तर काइ।
सीह कवड्डी ना लहै, गैवर लक्खि बिकाई॥
गैवर गळै गळत्थियो, जहँ खचै तहँ जाइ।
सीह गलत्थणजे सहै, तो दह लक्ख बिकाइ॥ —शिवदास

[एक ही वनमें वसनेपर भी इतना अन्तर क्यो हो जाता है कि सिंहको कोई कौडीके मोल नही लेता और हाथी लाखोमें बिकता है। हाथीके गलेमें साकल पडी रहती है इसलिए उसे जिधर खीचो उधरको चल देता है। यदि सिंह भी अपने गलेमें इस प्रकार रस्सी बँधवा सकता तो वह दस लाखमें बिकता।]

बाबहियो वै विरहणी, दुहुवाँ एक सहाव।
जब बरसै घण घणौ, तब ही कह प्रीपाव॥
बिज्जुळियाँ नीळज्जियाँ, जळहर तू ही लज्जि।
सूनी सेच विदेसप्रिय, मधुरै मधुरै गज्ज॥
यहुतन जारी मसि करूँ, धूआँ जाहि सरग्गि।
मुझ प्रिय बद्दल होई करि, बरसि बुझावै अग्गि॥
डूगर केरा वाहळा, ओछाँ केरा नेह।
वहता वहै उतावळा, झटक दिखावै छेह॥ —कल्लोल

[पपीहे और विरहिणी दोनोका एक-सा स्वभाव है। जब बादल जमकर बरसने लगते है तो दोनो पी-आव, पी-आव पुकारने लगते है।

हे जलधर! विजलियाँ तो निर्लज्ज हो गई है इसलिए तू ही कुछ लाजकर। मेरा पलग सूना है और प्रिय विदेशमे है इसलिए गरजना हो तो धीरे-धीरे गरज।

यह तन जलाकर ऐसा कोयला कर दूंगी कि उसका धुआँ स्वर्ग तक उठ जाय जिसे देखकर मेरा प्रिय बादल बनकर बरसता हुआ उस आगको बुझा दे।

पहाडियोके झरने और क्षुद्र लोगोका प्रेम वहता तो वेगसे है पर थोडी ही देरमे समाप्त हो जाता है।]

चम्पा केरी पंखुड़ी गूंथूं नवसर हार।
जो गलि पहिरूं पीव बिन लागै अंग अंगार॥ —ढोलामारू

[चम्पाकी पखुड़ियोंको गूँथकर मैं नवसेरा हार तो बना लूँगी पर यदि मैं अपने प्रियके वियोगमें गलेमें डाल लूँगी तो वह शरीरको अंगारके समान जलाने लगेगा।]

साहूळी आपै समो बीजी कवण गिणंत।
हाक बिराणी किम सहै घण गाजियै मरन्त॥
सीहण हेकौ सीहजण छापर मंडे आळ।
दूध बिटाळण कापुरस बौहळा जणै सियाळ॥
केहर मूछ भुजंगमण सरणाई सूहड़ांह।
सती पयोधर, कृपणधन पड़सी हाथ मुवांह॥
सैल घमोड़ा किम सह्या, किम सहिया गजदन्त।
कठण पयोधर लागतां कसमसतो तू कन्त॥ —ईसरदास

[सिंह अपने समान दूसरे किसको गिनता है (किसीको नहीं) इसलिये वह दूसरेकी ललकारको कैसे सह सकता है। वह तो बादल गरजनेपर ही मरता है।

सिंहिनी ऐसे एक सिंहको जनती है जो उसके सामने धावा करता है और सियारी बहुतसे दूध लजाने वाले कायराके समूहको जन्म देती है। सिंहकी मूँछ सर्पकी मणि वीरोंका गढ या शरणागत सती स्त्रीके स्तन और कंजूसका धन उनके मर जानेपर ही हाथ लग पाता है जीते जी नहीं।

हे कन्त! तू तो मेरे कठोर स्तनोंका सामना करनेसे घबरा जाता था वहाँ युद्धमें बरछोंकी चोटें कैसे सहीं हाथियोंके दाँतोंको कैसे सहा।]

माई एहड़ा पूत जण जेहड़ा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओझकै जाण सिराणै सांप॥
अकबर समँद अथाह सूरापण भरियौ सजळ।
मेवाड़ौ तिण मांह पोयण फूल प्रतापसी॥ —पृथ्वीराज

[हे माता। ऐसा पुत्र उत्पन्न करो जैसा राणा प्रताप है जिसके डरसे अकबर ऐसा डरा सोता है मानो सिरहाने साँप बैठा हो।

अकबर अथाह समुद्र है जिसमें वीरता रूपी जल भरा हुआ है किन्तु मेवाड़का प्रतापसिंह उसमें कमलके फूलके समान उसीके ऊपर उगा हुआ है।]

अकबर घोर अंधार, ऊँघाणा हिन्दू अवर।
जागै जग-दातार, पोहरे राण प्रतापसी॥ —दुरसाजी

[अकबर-रूपी घोर अन्धकारमें और सब हिन्दू इसलिए निश्चिन्त होकर सो गए, कि पहरेपर जाग देनेवाले राणा प्रतापसिंह विद्यमान हैं।]

साह हमें उगड़ मत्र सांगाउ बगतर पूठ।
भागे नहँ भड़में त्रिमे ता हाथउ सांगूढ॥ —बीरीदास

[अरे हाथी! जब तक सिंह अपनी खोहमे जागता नही और अपने पजे नही ठीक करता तब तक तू गरज ले और जगलके वृक्षोकी जडें उखाड ले।]

घोडाँ घर, ढालाँ पटल, मालाँ, थभ बणाय।
जो ठाकर भोगे जमी, और किसू अपणाय॥
भाभी देवर नींद-बस, बोलीजै न उताळ।
चवताँ घावाँ चंकसी, जै सुणासी त्रबाळ॥
भाभी हूँ डोढ़ी खडी, लीधाँ खेटक रूक।
थे मनुहारौ पावणाँ, मेडी झाल बँदूक॥
ठकुराणी सतियाँ मणे, चून समप्यौ सेर।
चूडो जिण दिन चाहसी, उण दिन केय अबेर॥ —सूरजमल

[जो राजपूत अपने घोडोको ही घर, ढालोको छत और भालोको ही खम्भे बना लेता है वही भूमिका उपभोग करता है और कौन उसे प्राप्त कर सकता है। वीर-भोग्या वसुन्धरा।

हे भाभी! युद्धमे घायल तुम्हारा देवर सोया हुआ है, ऊँचे स्वरसे न बोलो। कही नगाडेका स्वर उसके कानमे पड गया तो अपने बहते घावोके होनेपर भी चौंककर उठ खडा होगा।

हे भाभी! मै तो ढाल-तलवार लेकर द्वारपर खडी हो जाती हूँ, तुम ऊपर मुँडेरपर बन्दूक लेकर पाहुनो (वैरियो) का स्वागत (वध) करो।

ठकुरानीसे सती नारियाँ कहती है कि हे सरदारनी! हमें सेरभर आटा दे दो। इसके बदले जिस दिन तुम्हे सुहागकी (युद्धके लिए हमारे पतियोकी) आवश्यकता होगी, उस दिन तनिक देर नही लगेगी।]

सुत मरियौ हित देसरे, हरख्यो बधु-समाज।
माँ नहँ हरखी जनम दे, जतरी हरखी आज॥ —नाथूदान

[सारे बन्धु-बान्धव यह जानकर बडे प्रसन्न हुए कि पुत्रने अपने देशके लिए प्राण दिए है और माताको भी आज जितनी प्रसन्नता हुई है उतनी इसके जन्मके समय नही हुई थी।]

राजस्थानीका गद्य साहित्य

राजस्थानी भाषाका गद्य साहित्य भी लगभग उतना ही पुराना है जितना पद्य साहित्य। कुछ विद्वानोने राजस्थानी गद्यका प्रारम्भ तेरहवी शताब्दीके मध्यसे माना है, किन्तु चौदहवी शताब्दीमे जो राजस्थानी गद्यकी कृतियाँ मिली हैं वे इतनी मँजी हुई, पुष्ट और प्रवाहशील है कि निश्चय ही उस रूप तक पहुँचनेमे राजस्थानी गद्यको दो-तीन सौ वर्ष तो लगे ही होंगे।

जिस प्रकार राजस्थानी पद्य-साहित्यकी प्रारम्भिक रचनाओका श्रेय जैन विद्वानोको है उसी प्रकार प्राचीन गद्य-लेखनका श्रेय भी जैन आचार्योको ही है, जिन्होने अत्यन्त सरल और सरस राजस्थानी भाषामे जैन सिद्धान्तोका निरूपण किया है। राजस्थानी भाषामें ख्यात और वात जैसी गद्य शैलीकी रचनाएँ हुआ करती थी और राज-कार्योमे भी राजस्थानी गद्यका प्रयोग होता था। जोधपुरके डिडवाणा

ग्रामवासी शिवचन्द भरतिया (१९१) ने राजस्थानी भाषामें केशर विलास नाटक फाटका जंजाल नाटक बुढ़ापाकी सगाई नाटक कनक सुन्दर, मोतियोंकी कण्ठी वैश्य प्रबोध विश्रान्त प्रवासी सवीत मालपुकर नाटक और बोध दर्पण ग्रन्थ गद्यमे लिखे हैं। इनकी भाषा बड़ी सरल प्रवाहपूर्ण और सरस है। रामकरण (संवत् १९१४) का जन्म जोधपुर राज्यके बड़ल गाँवमें हुआ था। ये भी संस्कृत मागधी और डिंगल भाषाओंके बड़े पण्डित थे। इन्होंने राजस्थानी भाषामे सैनसीकी ख्यात के अतिरिक्त मारवाड़ी व्याकरण भी लिखा है। किन्तु इधर राजस्थानी गद्य लिखनेकी प्रवृत्ति बहुत कम हो गई है। राजस्थानके कुछ साप्ताहिक पत्रोंमे राजस्थानीके लेख कभी-कभी देखनेको मिल जाते हैं। कुछ कहानियाँ भी इधर राजस्थानीमे लिखी गई हैं। किन्तु उत्कृष्ट कोटिका गद्य साहित्य राजस्थानीमे उपलब्ध नहीं है। वास्तवमें साहित्यकी प्रकृति तो पद्य ही है और वह प्रारम्भ कालसे आज तक ज्यों-की-त्यों चली आ रही है। यह विश्वासके साथ कहा जा सकता है कि वर्तमान कवि राजस्थानी भाषामें विभिन्न साहित्यिक राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक वादोंके साथ-साथ सभी नवीन शैलियोंका समावेश अपनी नवीन कवितामें कर रहे हैं और यह प्रतीत होता है कि जैसे-जैसे वर्तमान हिन्दी साहित्य प्रौढ़ और सशक्त होता जाएगा वैसे-वैसे उससे प्रेरणा सहायता और शक्ति पाकर राजस्थानी भाषाका साहित्य भी समृद्ध होता चला जाएगा।

सधुक्कड़ी हिन्दीकी रचनाएँ

ऊपर बताया जा चुका है कि सन्त साहित्य वास्तवमें साहित्यकी सीमामें नहीं आता क्योंकि वह समस्त वाङ्मय आलम्बन हीन निर्गुण उपासना या तत्सम्बद्ध दार्शनिक विवेचन है। केवल कहीं-कहीं नीतिके कुछ पद या दोहे आ जाने भरसे या छन्दमें रचना होने मात्रसे न तो वह साहित्यकी कोटिमें आता है और न उनके रचनाकारोंने ही साहित्यकी दृष्टिसे उनकी रचना की है। यही कारण है कि एक सन्तकी वाणी विभिन्न प्रदेशोंमे पहुँचकर वहाँकी बोलीके सस्तारेमें मँजकर भाषा और शैलीकी दृष्टिसे उस प्रदेशकी बन गई। इसीलिए सन्तोंकी वाणीकी भाषामें विभिन्न प्रदेशोंमें प्राप्त ग्रन्थोंमें भाषाकी घोर असमानता व्याप्त है। इनमें भिन्न राजस्थानी भाषाके कवियोंने चारण होते हुए भी काव्यकी दृष्टिसे रचना की है किन्तु अन्य कवियोंमेंसे किसीने भी न तो अपनी वाणीके काव्यपक्ष पर ध्यान ही दिया और न ध्यान देनेकी आवश्यकता ही समझी क्योंकि वे कवि थे ही नहीं। उनका उद्देश्य तो अपने सिद्धान्त और मतका प्रचार करना मात्र था इसलिए उनकी गणना साहित्यमें नहीं की जा सकती। फिर भी हिन्दी साहित्यके अनेक इतिहासकारों और विद्वानोंने इस भी बलपूर्वक हिन्दीमें ठूँस दिया है और रस अलंकार तथा कल्पनाका आनन्द लेनेवाले साहित्यके छात्रों और अध्येताओंको बलपूर्वक इड़ा-पिङ्गलाकी बाट लेने कुण्डलिनीका पीछा करने षट्चक्रको भेदने और अनाहत नाद सुननेके लिए घोर परिश्रम करनेको बाध्य किया है अर्थात् उन्हें काव्यानन्दके क्षेत्रसे बलपूर्वक भगाकर और ठेलकर अष्टाङ्गयोग और हठयोग साधनको विवश किया है।

सन्त साहित्य जिस प्रकारकी भाषामें प्रस्तुत हुआ है उसका नाम आचार्य शुक्लजीने सधुक्कड़ी भाषा रक्खा है, किन्तु सधुक्कड़ी वास्तवमें कोई उस प्रकारकी भाषा नहीं जिस प्रकारकी भाषाएँ राजस्थानी

अवधी, ब्रज अथवा नागरी हैं। वैसे पजावके पूर्वी भागसे लेकर वगालके पश्चिम तक और राजस्थान एव मध्यप्रदेशसे लेकर हिमालयके दक्षिण तकका सारा प्रदेश हिन्दी भाषा-भाषी माना जाता है, किन्तु इस विशाल भू-भागके अन्तर्गत कितनी ही स्थानीय और क्षेत्रीय वोलियाँ भी हैं जिनमेंसे कुछ मे तो अत्यन्त प्रौढ साहित्यकी रचना हुई है और कुछ वोलियोके रूपमे रह गई। राजस्थानी, अवधी, ब्रज, नागरी, मैथिलीमें प्रचुर साहित्य विद्यमान है जब कि मगही, भोजपुरी, कुमाऊँनी, बुन्देली, मालवी, मेवाडी आदि अधिकाशत क्षेत्रीय वोलियोंके रूपमे ही व्यवहृत होती रही है। इसलिए हिन्दी साहित्यके इतिहास-लेखकोने उपर्युक्त जिन पाँच वोलियोको भाषाके रूपमे ग्रहण किया उन्हीके प्रस्तुत साहित्यपर विचार किया और निर्गुण सम्प्रदाय वाले सन्तो द्वारा प्रस्तुत साहित्यका परिगणन भी उन्हीके अन्तर्गत कर लिया।

सधुक्कड़ी भाषा

गद्यका विकास न होनेके कारण निर्गुण मतके प्रवर्तक सन्तों और उपदेशकोने सुविधाके साथ अपने मतका प्रचार करनेके लिए पद्यका आश्रय लेकर अपनी रचनाओमे ऐसी भाषाका प्रयोग किया जिसे विशुद्धताकी दृष्टिसे हम किसी एक भाषाके अन्तर्गत नही रख सकते। इनकी रचनाओमे पजावसे लेकर विहार तक और हिमाचलसे लेकर विन्ध्य तकके वीच प्रचलित सभी वोलियो और भाषाओका प्रयोग हुआ है।

इस प्रकारकी मिश्रित भाषाका प्रयोग होनेके अनेक कारण हैं —१—ये साधु अधिकाशत अपढ थे जिन्हे किसी भी भाषाके ठीक स्वरूपका वोध न था। इन्होने साहित्य-रचना नही की। २—समय-समय-पर ये लोग जो मौखिक उपदेश देते थे उन्हे इनके शिष्य लिपिवद्ध या कण्ठाग्र कर लेते थे। इन उपदेशोंके लिपिवद्ध होनेका कार्य कभी-कभी तो इनकी मृत्युके पश्चात हुआ। ३—ये सदा एक स्थानपर नही रहते थे। निरन्तर घूमते रहनेसे स्थान-स्थानकी भाषाओ और वोलियोका प्रयोग इनके उपदेशोमें आना अनिवार्य था। उनके लिए ऐसी भाषामें अपने मतका प्रचार करना आवश्यक हो गया जिसे सब स्थानोके लोग समझ सके। ४—इन्हे साहित्य-शास्त्र और छन्द शास्त्रका ज्ञान नही था, इसलिए इनकी रचनाओमे अधिक-तर छदोभग तथा काव्य-दोष पाए जाते है। इनकी रचनामे भाषा की भी कोई व्यवस्था नही है। एक ही रचनामे नागरी, पजावी, भोजपुरी सबके रूप अलग-अलग दिखाई पड जाते है। इसीलिए इस खिचडी भाषामें रचे हुए सन्त साहित्यकी गणना सधुक्कडी भाषाके अन्तर्गत की गई है। अपने मतका प्रचार करनेके लिए तथा सभी क्षेत्रो और वर्गोंको अपने मतका अनुयायी बनानेके लिए उन्होने सुगमता पूर्वक कण्ठ की जा सकनेवाली एव सुविधापूर्वक प्रचारित हो सकनेवाली पद्य-वद्ध रचनाओका सहारा लिया और इसमें सन्देह नही कि इन्हे अपने कार्यमें सफलता भी मिली। इस प्रकारके कलाकारोमें कबीर, नानक, दादू आदि मुख्य हैं।

ऐतिहासिक आधार

हिन्दी साहित्यमें निर्गुण मतकी दृष्टिसे विस्तृत साहित्यकी रचना सबसे पहले कवीरकी ही मिलती है। कवीर हमारे सामने दो रूपोमें आते हैं—एक और वे हठयोग और वेदान्तका आश्रय लेकर भगवान्के सगुण रूप अथवा साकारोपासनाका विरोध करके निराकार ब्रह्मकी उपासनाका उपदेश देते हैं,

दूसरी ओर भगवन्नामके जपकी शिक्षा देकर भक्तिका पथ भी प्रशस्त करते हैं। कबीर अत्यन्त प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। उन्होंने देख लिया था कि नाथ-पन्थी योगियोंने हृदय-पक्ष-विहीन अन्तस्साधनाका जो प्रचार किया उससे मनुष्य प्रभावित नहीं हो सका। नाथ-पन्थी योगियोंने जो पन्थ निकाला था वह समाजके लिये हितकारक भी नहीं सिद्ध हुआ क्योंकि उसमें सामाजिक भावनाओंका पूर्ण अभाव था। इसीलिए वह लोगोंको आकृष्ट नहीं कर सका। कबीरने इस बातका अनुभव किया। रामानुजाचार्यने शंकरके केवलाद्वैतवादका खण्डन करके विशिष्टाद्वैतवादकी स्थापना की और साथ ही ब्रह्मकी सगुण भक्तिका (लक्ष्मी-नारायणके रूपमें) निरूपण किया। उसने जन समाजको बहुत कुछ आकृष्ट किया। कबीरने यह अनुभव किया कि केवल अन्तस्साधनाकी बात लोगोंकी समझमें नहीं आ सकती। इसलिए अपने मतमें उन्होंने भक्तिका भी समावेश कर लिया। परन्तु वे थे नाथ पन्थी योगियोंसे ही प्रभावित। अत उन्होंने निराकार ब्रह्मकी उपासना पर बल देकर, उसका नाम जापकर, उसे हृदयमें अनुभव करनेका उपदेश दिया। सन्त नामसे अभिहित सभी प्रचारकोंने इसी मार्गका अवलम्बन किया।

नाथ पन्थ

बौद्ध धर्म धीरे-धीरे विकृत होकर वामाचारमें परिणत हो गया था। इस वामाचारका आचरण करनेवाले लोग वज्रयानी कहे जाते थे जिनका गढ़ पूर्वी भारत था। तन्त्र साधना ही इनकी प्रधान क्रिया रह गई थी और उसीके माध्यमसे ये मानवकी हीन प्रवृत्तियोंको उभाड़कर अपनी वासनाओंकी पूर्ति किया करते थे। इन्होंने अपना रंग-ढंग कुछ इस प्रकार जमा रखा था कि जनता इन्हें अलौकिक शक्तियोंसे सम्पन्न समझकर इनसे डरती थी।

आठवीं और दसवीं शताब्दीके बीच प्रचलित परम्परासे अलगेको अलग करके गोरखनाथने महर्षि पतञ्जलिके योग-दर्शनको आधार मानकर, हठयोग का सहारा लेकर अपना अलग नाथ पन्थ चलाया। इस नाथ-पन्थमें भी नाथ हो गए हैं। गोरखनाथने जिस प्रकार वज्रयानियोंसे अलग होकर कनफटे योगियोंका अपना अलग नाथ-पन्थ चलाया उसी प्रकार वज्रयानियोंकी लीलाभूमि (पूर्वी भारत) का मोह त्याग करके इन्होंने अपने मतका प्रचार पश्चिमी भारतमें किया। इस सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें इस बातपर बल दिया गया कि योगकी साधनासे ईश्वरको घटके भीतर ही प्राप्त किया जा सकता है। ये लोग सिद्ध कहलाते थे। कनफटे साधु लोग गोरखनाथको साक्षात् शिवका अवतार मानते हैं।

नाथ पन्थी कनफटे योगी दीक्षाके समय पत्थर, बिल्लौर, गैंडेके सींग मिट्टी या लकड़ीका कुण्डल कानमें पहनते हैं जिसे कुण्डल मुद्रा या दर्शनी कहते हैं। इसीलिए इन कनफटे योगियोंको दर्शनी योगी भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त ये लोग दो-तीन अंगुल लम्बा एक नाला-सा पदार्थ ऊन या धागेके डोरे में बाँधकर गलेमें लटकाए रहते हैं। इस डोरेको सेली और उस नाल पदार्थको 'नाद' कहते हैं। ये लोग पट्टा बाँधते, गेरुआ वस्त्र पहनते, भस्म लगाते और भभूतका त्रिपुण्ड्र लगाते हैं। इन लोगोंका प्रचार मुख्य रूपसे पश्चिमी भारतमें था अतएव स्वभावत इनकी बानियों और उपदेशोंमें उधरकी भाषाके ही दर्शन होते हैं। इन्होंने जो भी रचनाएँ की हैं वे नागरी पंजाबी राजस्थानी-मिश्रित भाषामें हैं। इनकी बानीसे प्रभावित

कबीर

कबीर आदिने भी इसी भाषाका सहारा लिया क्योकि वह मिश्रित भाषा उत्तर भारतके सभी प्रदेशोमे लोक-व्यवहार (धर्म-प्रचार, व्यापार तथा दो प्रदेशोंके लोगोके परस्पर व्यवहार) की भाषा थी।

कबीरदास

जैसा ऊपर वताया जा चुका है कि निर्गुणवादी सन्तोको हमारे यहाँ साहित्यमें अनुचित महत्त्व देकर उन्हें साहित्यमें प्रविष्ट तो कर लिया गया किन्तु न तो उनकी रचनाओंके मूल पाठ ही प्राप्न होते है, न उनके सम्बन्धमे यही निश्चय है कि उन्होने स्वय उस प्रकारकी रचना की थी या नही, और यदि की भी थी तो उसमें उनकी अपनी कितनी है और कितनी उन्होने दूसरोंसे ली है। इन सन्तोकी अधिकाश वाणी परस्पर इतनी मिलती-जुलती है कि यहाँ कहना कठिन हो जाता है कि वास्तवमें मूल वाणी किसकी है और फिर यह जानना तो और भी कठिन है कि उनका साहित्यिक महत्त्व क्या है। जिन लेखको और आलोचकोने ऐसे सन्त महात्माओको बलपूर्वक कवियो और साहित्यकारोकी श्रेणियोमे ला घसीटा उन्होने केवल साहित्यके साथ ही अन्याय नही किया वरन् उन सन्तोंके साथ भी घोर अन्याय किया है और हिन्दी साहित्यके साथ तो भयकर अत्याचार यह किया गया कि इन सन्तोकी वाणीके बेतुके प्रवेश काव्य और साहित्यका अनुशोलन होनेके बदले दार्शनिक मन्थन होने लगा है। ऐसे अनिर्णीत रचनावाले तुक्कड सन्तोमें कबीरदासको सबसे अधिक आवश्यक महत्त्व दे दिया गया है। उनका परीक्षण इसलिए आवश्यक है कि उन्होने साहित्य भले ही न दिया हो किन्तु ऐसी सर्व व्यापक भाषाका प्रयोग वे निश्चय ही कर रहे थे जो उत्तर भारतके अधिक-से-अधिक प्रदेशोमे समझी जाती थी। राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे उनकी यह सार्वजनीन प्रवृत्ति अवश्य स्तुत्य है और उन लोगोको विशेष रूपसे उनका अध्ययन करना चाहिए जो अभी तक इस अज्ञानान्धकारमें पडे चक्कर लगा रहे हैं कि नागरी अर्थात् हमारे वर्त्तमान साहित्यिक प्रयासोका माध्यम बनी हुई नागरी भाषा (जिसे भूलसे खडी बोली कहा गया है) या गद्यकी हिन्दीको केवल आज ही राष्ट्रीय भावात्मक एकताके लिए प्रयुक्त करनेकी बात नही की जा रही है वरन् सर्व प्रथम सन्तोने ही नैतिक दृष्टिसे राष्ट्रीय भावात्मक एकता समृद्ध करनेके लिए इस भाषाका प्रयोग चार सौ वर्षों पहलेसे प्रारम्भ कर दिया था और वह भी पद्य-बद्ध करके।

कहा जाता है कि कबीरका जन्म एक विधवा ब्राह्मणीसे हुआ था जिसे रामानन्दजीने भूलसे पुत्रवती होनेका आशीर्वाद दे दिया था। लोक-लज्जावश उसने बालकको जन्मते ही फेंक दिया जिसे नीरू नामक एक जुलाहेने घर ले जाकर पाला-पोसा। कबीरका जन्म कुछ लोग सवत् १४५५ मे, कुछ १४५६ में और कुछ लोगोने १४३७ में माना है। किन्तु कबीर-पन्थियोमें प्रचलित —

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायतको पूरनमासी प्रगट भए।।

वाले दोहेके अनुसार इनका जन्म सवत् १४५६ ही ठहरता है और अधिकतर वही लोगोको मान्य भी है।

कबीर धर्मकी भावना

यद्यपि कबीरका पालन-पोषण मुसलमान जुलाहेके घर हो रहा था तथापि उनके मनमें आरम्भसे ही हिन्दू धर्म भावना और भक्ति-पद्धतिके प्रति अनुराग था। निश्चय ही उनके माता-पिताने इसका विरोध किया होगा किन्तु उस विरोधका कबीरदासजी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे निरन्तर राम-नामके जपकी ओर प्रवृत्त होते गए। इन्हीं दिनों स्वामी रामानन्दका प्रभाव और उनके कारण रामनाम तथा राम कथाका प्रचार बढ़ रहा था। सम्भव है कबीरको रामनामके जपकी प्रेरणा वहींसे मिली हो। कबीर जब धीरे धीरे कुछ वयस्क हुए और रामनामके जपकी ओर उनका अनुराग बढ़ता गया तो उनके मनमें स्वामीजीसे दीक्षा लेनेकी भावना उत्पन्न हुई। मुसलमान होनेके नाते स्वामीजीसे प्रत्यक्ष रूपसे वे दीक्षा ले नहीं सकते थे इसलिए उन्होंने सीढ़ियोंपर लेटनेवाला ढंग निकाला। इस प्रकार स्वामीजीसे रामनाम-जपका उपदेश पाकर कबीरदासजीने स्वामीजीको अपना गुरु मान लिया और उस उपदेशके अनुसार रामनामका जप करने लगे। आरम्भमें रामको वे जो कुछ भी मानते रहे हों पर आगे चलकर उनका मत भिन्न हो गया और कहने लगे —

> दसरथ-सुत तिहुं लोक बखाना।
> रामनामका मरम है आना॥

इस प्रकार कबीरके राम निराकार निर्गुण ब्रह्मके पर्याय हुए जब कि उनके गुरु रामके साकार रूपके उपासक थे।

नेता बननेकी लालसा

स्वामी रामानन्दके प्रभावमें आनेसे वे रामनामकी ओर प्रवृत्त हुए सही किन्तु उन्होंने वैष्णवोंकी श्रेणीसे अपनेको पृथक रखा। इसके कई कारण हैं—१—मुसलमानी संस्कारोंमें पलनेके कारण उनका बल्लद् अवतारवादके सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करता था। २—कबीरको स्वयं अपना महत्व सिद्ध करना था। यदि वे रामानन्दी वैष्णवोंका ढंग अपनाते तो वे उस धारामें ही बह जाते और उनका अलग कोई महत्व ही न रहता। ३—कबीरकी बुद्धि प्रखर थी प्रतिभा विलक्षण थी। उन्होंने ऐसा किया कि इस समय ऐसा अवसर है कि लोगोंको प्रभावित करके अपने नामसे एक नया मत खड़ा कर दिया जाय। आजकल जो काम चतुर राजनैतिक नेता करते हैं वही उस समय कबीरने किया। वे पढ़े लिखे न थे क्योंकि उन्होंने स्वयं कहा है मसि कागद हम छुयौ नहीं कलम गही नहिं हाथ किन्तु अन्य साधनोंसे उन्होंने पर्याप्त अर्थात् सत्संगसे श्रुत ज्ञान अर्जित किया था और उसका उपयोग उन्होंने अपना लक्ष्य सिद्ध करनेके लिए किया भी।

कबीरके ज्ञानका आधार

स्वामी रामानन्दके सम्पर्कसे उन्होंने वैष्णवोंका अहिंसावाद प्रपत्तिवाद (शरणागतिवाद) और रामनाम लिया। नाथ-पन्थी योगियोंके साथ रहकर उनके हठयौगिक सिद्धान्त और साधनात्मक रहस्यवाद का पल्ला पकड़ा और अपने पन्थमें व्यक्तिगत समावेश करनेके उद्देश्यसे उन्होंने सूफियोंकी उपासना-प्रणाली ग्रहण की। सूफी ईश्वरको प्रियतम (माशूक) के रूपमें मानकर चलते हैं और उसकी प्राप्ति ही जीवन

का लक्ष्य मानते हैं। सूफीवाद वेदान्तके अद्वैतवादका ही मुसलमानी रूप है। मुसलमानोको अपनी ओर लुभानेके लिए यह आवश्यक था कि कबीरदासजी मुसलमानोकी भी कुछ बातें ग्रहण करते किन्तु इसलामका जो रूप उस समय प्रचलित था उसे कबीरदास खपा नही सकते थे। इसलिए उन्होने सूफियोका ढर्रा अपनाया जिसमे भारतीय एकेश्वरवादके समर्थनके साथ-साथ मनुष्यकी रागात्मक वृत्ति को आकृष्ट और उद्दीप्त करनेवाले तत्त्व भी विद्यमान थे।

पीरोसे सम्पर्क

कबीरपन्थी मुसलमान तो उन्हे शेख तकीका ही शिष्य मानते है किन्तु कबीरका यह कथन कि 'घट-घट है अविनासी, सुनहु तकी तुम सेख' शेख तकीको कबीरके गुरुके आसनपर प्रतिष्ठित होने देनेमें बाधक सिद्ध हो रहा है। सूफी पीरो और मुसलमानी फकीरोका सग कबीर बराबर करते थे और उनसे बहुत कुछ तत्त्व भी ग्रहण करते थे किन्तु कबीर किसीको अपनेसे बडा नही मानते थे, सबको स्वय उपदेश देते थे और अपनेको ईश्वरका ऐसा दूत घोषित करते थे जो जगके उद्धारके लिए ही भेजा गया हो —

काशीमें हम प्रगट भए है, रामानन्द चेताए।
समरथका परवाना लाए, हस उबारन आए॥

गुरु-माहात्म्य

स्वामी रामानन्दका नाम कबीरने सर्वत्र बडे आदरसे लिया है और उन्हे ही अपना गुरु माना है। गुरुकी महिमाके वचन कबीर या इस धाराके सन्तोकी बानियोमे बराबर मिलते हैं। स्वय कबीरने गोविन्दसे गुरुको बडा बताया है —

गुरु गोविन्द दोनों खडे, काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपकी, गोविन्द दिया बताय॥

गुरु-माहात्म्यकी यह बात कबीरको नाथपन्थियोसे प्राप्त हुई थी। सिक्खोमे 'गुरु' लगानेकी जो परम्परा चली वह गुरुके माहात्म्यके कारण ही और यह परम्परा तथा माहात्म्य-भावना 'गुरु' गोरखनाथ और 'गुरु' मत्स्येन्द्रनाथकी ही देन है। कबीर तथा उनके बादके सभी सन्तोने नाथपन्थियोसे जहाँ ज्ञानवाद और योगवाद लिया वहाँ यह गुरुवाद भी लिया। इन सन्तोकी परम्परामें गुरुको जब गोविन्दसे भी बढ़कर मान लिया गया है तो शास्त्रका क्या महत्त्व है। यदि शास्त्रोके वचन और गुरु-आदेशमें विरोध पडता हो तो शास्त्र-वचनकी उपेक्षा की जा सकती है। इनकी परम्परा हालमें राधास्वामी सम्प्रदाय तक बराबर चली आई है।

कबीरका साहित्य

कबीर कुछ पढ़े-लिखे नही थे। इसलिए उन्होने कुछ लिखा नही है। उनके मौखिक उपदेशोका सग्रह उनके शिष्योने विशेष कर धर्मदासने आगे चलकर किया। कबीरकी बानियोका सग्रह बीजकके नामसे प्रसिद्ध है। इस बीजकके तीन भाग है—साखी, रमैनी और सबद। साखी दोहोमे है और इसमें स्वमत-

प्रतिपादन परमत-खण्डन तथा विविध उपदेश हैं। यद्यपि कबीरदासने स्पष्ट कहा है बोली मेरी पूरब की तथापि उनके नामसे जो रचनाएँ मिलती हैं उनकी भाषापर राजस्थानी और पंजाबीसे लेकर भोजपुरीतकका प्रभाव है। रमैनी और सबदकी भाषा पर ब्रजका प्रभाव अधिक है क्योंकि इनमें गेय पद हैं किन्तु पूरबी बोलीके रंगसे यह भी रंगी हुई है। तात्पर्य यह है कि काशीके होनेके कारण उन्होंने कहा तो होगा पूरबी अर्थात् बनारसीमें किन्तु भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें पहुँचकर वह उन-उन प्रदेशोंकी बोलियोंकी प्रकृतिमें ढल गई।

कबीरके सम्पूर्ण साहित्यमें वेदान्त-तत्त्व हिन्दू-मुसलमानोंको फटकार, हिन्दुओंके समस्त धार्मिक ग्रन्थों और देवताओंकी बुराई संसारकी अनित्यता मायाकी प्रबलता आदि अनेक विषयोंका प्रतिपादन हुआ है।

कबीरकी बानियोंका सबसे पहला संग्रह धर्मदासने संवत् १५२१ में किया जब कबीरदासजी ६५ वर्षके थे। कबीर-जगनावलीकी प्राचीनतम प्रति संवत १५६१ की मिली है। सिक्खोंके गुरु-ग्रन्थ साहबमें भी उनके बहुतसे पद संगृहीत हैं।

कबीर जब पढ़े-लिखे नहीं थे और साहित्य स्रष्टा भी नहीं थे तो उनकी बानियोंमें काव्य-तत्त्व या दार्शनिक तत्त्व ढूँढनेका प्रयास व्यर्थ है। वे बहुपठ नहीं बहुश्रुत थे। उन्होंने सत्संगसे जो कुछ प्राप्त किया था उसका समावेश अपने उपदेशोंमें भलीभाँति किया है। वेदान्त और हठयोगके गूढ़ और पारिभाषिक पद सूफियोंकी रहस्यवादी भावना रूपकों और अन्योक्तियोंके माध्यमसे कही हुई ज्ञानकी बातें तथा चुटीली और व्यंगपूर्ण उक्तियोंने कबीरकी ओर साधारण जनोंके लोगोंको आकृष्ट किया। वे कबीरकी उलटबासियोंके रहस्योंमें डूबते-उतराते हुए उनको महान् सिद्ध पुरुष मानते थे। साधारण समाजपर अपना आतंक जमानेके लिए ही कबीरने इस प्रकारकी अस्पष्ट भाषाका प्रयोग किया। इस आतंक जमानेकी भावनाका ही यह परिणाम हुआ कि कबीर काशी छोड़कर मगहर चले गए जहाँ संवत् १५७५ में उन्होंने शरीर त्याग किया।

कबीरके कुछ पद उदाहरणके रूपमें नीचे दिए जा रहे हैं —

कबीर संगत साधुकी कदे न निरफल होय।
चन्दन होसी बावना नीम न कहसी कोय॥
मेर संगी है जना एक वैष्णव एक राम।
बोई दाता मुक्तिका, वो सुमिरावे नाम॥

इन उदाहरणोंसे प्रकट होता है कि कबीरदास वैष्णवके समर्थक और शाक्तोंके विरोधी थे।

सुर नर मुनि जन औलिया ए सब उरली तीर।
अलह रामकी गम नहीं तहँ घर किया कबीर॥

यह उदाहरण इस बातका सूचक है कि कबीर अपनेको ब्रह्मज्ञानी और ब्रह्म विद्याका मर्मज्ञ समझते थे। ऐसी-ऐसी गर्वोक्तियाँ उनकी बानियोंमें बहुत मिलती हैं।

सूफियोंके रहस्यमय माधुर्य भावकी जो उपासना पद्धति कबीरने अपनाई उसका उदाहरण यह पद है।

साईंके सग सासुर आई ।
सग न सूती, स्वाद न माना, गा जीवन सपनेकी नाईं ॥
जना चार मिलि लगन सुधायो, जना पाँच मिलि माँडो छायो ।
भयो वियाह चली विनु दूलह, वाट जात समधी समझाई ॥

कवीर आदि सन्त कवि नही थे । वे मत-प्रवर्तक प्रचारक मात्र थे । केवल पद्य-बद्ध रचनाएँ करनेके कारण उनको साहित्य-स्रष्टाओमे गिन लिया गया है । कही-कही उनकी रचनाओमे, विशेषकर पदोमे मोहकता, भावुकता और प्राञ्जलता मिलती है । अन्य सन्तोकी अपेक्षा कवीरमे यह गुण अधिक है और यह प्रभाव काशीमें रहनेका है । कितने ही पद ऐसे मिलते है जो सूर और कवीर दोनोके नामसे प्रचलित है । एक उदाहरण लीजिए —

है हरि भजनको परमान ।
नीच पावै ऊँच पदवी वाजते नीसान ॥
भजन परताप ऐसो जल तरै पापान ।
अजामिल अरु भील, गनिका चढे जात विमान ॥
चलत तारे सकल मण्डल चलत ससि अरु भान ।
भक्त ध्रुवको अटल पदवी रामको दीवान ॥
निगम जाको सुजस गावत सुनत सन्त सुजान ।
सूर हरिकी सरन आयो राखि ले भगवान ॥

ठीक यही पद कवीरके नामसे प्रचलित है । अन्तिम चरणमें यह अन्तर है —

जन कवीर तेरी सरन आयो राखि लेहु भगवान ।

स्वामी रामानन्द जैसे अद्‌भुत महात्मा सौभाग्यसे ही उस समय भारतमें अवतरित हुए । उनके द्वारा हिन्दू जाति और हिन्दी भाषाकी जो सेवा हुई वह वर्णनातीत है । उन्होने जाति-पाँतिके कोई वन्धन नही माने और सवको अपना शिष्य वनाया । इस दृष्टिसे भावात्मक एकताको भारतमे प्रचारित करनेका श्रेय श्री रामानन्दजी और उनके शिष्योको है और उनकी सर्ववोध्य भाषाका भी यह महत्व है कि इन सन्तोने ही पहले पहल राष्ट्रभाषा हिन्दीका महत्त्व समझकर उसका स्वरूप निर्माण किया और उसमे अपने सिद्धान्तोका प्रचार किया । उन्होने स्वय जो कुछ किया वह तो किया ही, उनकी शिष्य-परम्पराने, जिसमें गोस्वामी तुलसीदासजी भी हो गए है, हिन्दी साहित्यका अपूर्व श्रीवर्द्धन किया । स्वामी रामानन्दजीके ही शिष्य कवीर थे । कवीरके अतिरिक्त रैदास, सेन नाई, धन्ना जाट और पीपा भगत भी उनके मुख्य शिष्य थे जिन्होने निर्गुण ढगकी भक्ति-पद्धति अपनाई ।

रैदास

रैदासको रामानन्दजीके वारह शिष्योमें गिना जाता है । रामानन्दजीने निम्न श्रेणीके लोगोको अपनाकर बहुत आगे बढा दिया । जुलाहे होकर भी कवीर अुनके ही प्रतापसे इतनी अधिक प्रतिष्ठाके पात्र हुए । उसी प्रकार रैदास भगत चमार होनेपर भी सन्त श्रेणीको प्राप्त हुए । रैदासकी साधना

अवश्य ऊँची श्रेणीकी रही तभी तो मीराने भी उनका नाम बड़े आदरके साथ लिया है।

रैदासने स्वयं अपनेको चमार कहा है—

ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार।

रैदास काशीके ही रहनेवाले थे। इन्होंने भी निर्गुण पन्थ पकड़ा। इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। जब ये पढ़े-लिखे ही न थे तो ग्रन्थ रचना ही कैसे करते। इनके कुछ फुटकर पद इधर-उधर मिलते हैं जिनमेसे कुछ तो गुरु ग्रन्थ साहबमे ही सगृहीत हैं।

रैदासका एक पद लीजिए —

फल कारन फूले बनराई, उपजै फल तो करम नसाई।
जलमें जैसे तूम्बा तिरै। परिचे पिण्ड जीव नहि मरै॥
जब लगि नदी न समुद्र समावै तब लगि बढ़ै हुंकारा।
जब मन मिल्यो राम सागर सों तब यह मिटी पुकारा॥

धर्मदास

धर्मदासजी कबीरके शिष्य थे और उनके मरनेपर बीस वर्ष तक उनकी गद्दीपर रहे। कबीरकी बानियोका सग्रह इन्होने ही किया। इनकी रचनाएँ कबीरकी अपेक्षा अधिक सरल और भाव-व्यञ्जक हैं। इन्होने अधिकतर पूर्वी बोलीका ही प्रयोग किया है। कबीरकी शिष्य-परम्परामे कमाल मलूकदास और श्रुतिगोपाल भी हो गए हैं। साहित्यकी दृष्टिसे इन लोगोकी रचनाओका विशेष महत्व नही है। अतएव इनपर अधिक विचार करना व्यर्थ है।

गुरु नानकदेव

गुरु नानकदेव लाहोरके खत्री थे। इनका जन्म संवत् १५२६ मे हुआ था। ये जन्मसे ही साधु स्वभावके थे। यद्यपि इनकी गणना निर्गुण पन्थवालोमें की गई है तथापि ये भगवानके साकार रूपके उपासक थे और सगुणकी आराधनामे बराबर रत रहते थे। कबीरकी भाँति इन्होंने किसी मतका खण्डन नही किया और न किसी प्रकार दम्भ और सिद्धाईका ढिंढोरा पीटा। सीधी सरल भाषामें इन्होंने अपनी बात कही। ये हिन्दू धर्मके रक्षकके रूपमे प्रकट हुए और देशभरमे भ्रमण करके इन्होंने हिन्दू जातिको शक्ति और सान्त्वना प्रदान की। ये भी विशेष पढ़े-लिखे न थे। समय-समयपर जो भजन इन्होंने गाए उन्हीका सग्रह गुरुग्रन्थ साहबमे किया गया है। ये भजन पजाबी ब्रज मारवरी आदि मिली-जुली भाषाओमे हैं—जैसा उस समय धार्मिक प्रचारकोमें प्रचलन था। एक उदाहरण लीजिए —

पवणु गुरु पाणी पिता माता धरति महतु।
दिवस रात दुइ दाई दाया खेले सकल जगतु॥
चंगियाइयाँ बुरियाइयाँ वाचै धरमु हदूरि।
करमी आपो आपणी कै नेड़ै कै दूरि॥
जिनी नाम धियाइआ गए मसक्कति घालि।
नानक ते मुख उजले केती छूटी नालि॥

गुरु नानकदेवके अतिरिक्त अन्य सिक्ख गुरुओने भी कुछ-कुछ रचनाएँ की है। गुरु गोविन्द सिंहने तो प्रचुर परिमाणमे रचनाएँ की है। ये शुद्ध व्रजभाषामे बडी ओजपूर्ण रचना करते थे। इनका चण्डी-चरित्र प्रौढ व्रजभाषामे प्रणीत अच्छा काव्य है। सिक्ख गुरुओमे इन महात्माके मनमें भगवानके सगुण रूपके प्रति बडी आस्था थी।

गुरु नानकके पुत्र श्री चन्द्राचार्यने अलग उदासीन पन्थ चलाया और ठेठ नागरी भाषामे अपने सम्प्रदायका सिद्धान्त ग्रन्थ 'मात्राशास्त्र' लिखा जिसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है —

ओइम् कदु रे बाल !
किसने मूंडा किसने मुंडाया। किसका भेजा नगरी आया।
सद्गुरु मूंडा लेख मुंडाया। गुरुका भेजा नगरी आया।।

तात्पर्य यह है कि उस समय पजावमे नागरी (खडी बोली) भाषा ही शिष्ट जनके लोक-व्यवहार, धर्म-व्यवहार और ग्रन्थ-व्यवहारकी भाषा बन चुकी थी और श्री चन्द्राचार्यने तो उसी नागरी भाषाके पद्यमे अपने सिद्धान्त ग्रन्थकी भी रचना कर दी, यद्यपि अन्य सन्त लोग व्रज भाषा या मिली-जुली भाषाका प्रयोग करते थे। इस दृष्टिसे राष्ट्रभाषाकी प्रथम सैद्धान्तिक रूपमे प्रतिष्ठा करनेवाले श्री चन्द्राचार्य ही थे।

दादू

निर्गुनिए साधुओमें दादूकी गणना बडे आदरके साथ की जाती है। दादूके जन्मके सम्बन्धमें भी विचित्र कथाएँ प्रचलित है। दादूका जन्म उनके भक्त लोग सम्वत् १६०१ मे मानते है। उनके गुरुका भी कोई विवरण नही मिलता। परन्तु उनकी बानीमें कबीरका नाम आदरपूर्वक लिया गया है। इधर-उधर घूमते हुए वे जयपुरके पास भरानेकी पहाडियोमे आकर अन्तिम समयमें रहे और वही सम्वत् १६६० मे शरीर छोडा। दादू पन्थियोका प्रधान गढ वही है और वहाँ दादूके वस्त्रादि आजतक रखे है। दादू-पन्थी निराकार ब्रह्मके उपासक है। ये तिलक, कण्ठी आदि नही धारण करते। ये हाथमे एक सुमिरनी रखते है और परस्पर सत्तराम कहा करते हैं।

दादू पश्चिम प्रदेशके रहनेवाले थे इसलिये स्वभावत उनकी भाषामे पच्छिमीपन है। पजाबी और जयपुरी मिश्रित राजस्थानीका उन्होने प्रयोग किया है जिसमें गुजराती और नागरीका भी मेल है। गुजराती और पजाबीमे अलगसे भी कुछ पद उन्होने लिखे है। उनकी भाषामे फारसी, अरबी और तुर्की शब्दोका भी पर्याप्त प्रयोग हुआ है। दादूकी रचनाओमें सयम और गम्भीरता है। उन्होने विरोधियोको गाली नही दी। नम्रता उनमें इतनी थी कि वे सबको दादा कहते थे। इसीसे उनका नाम दादू पड गया। दादूकी रचनाओके कुछ उदाहरण लीजिए—

जे सिर सौंप्या रामको, सो सिर भया सनाथ।
दादू दे ऊरण भया, जिसका तिसके हाथ।।१।।
जब मन लागै रामसो, तब अनत काहेको जाइ।
दादू पाणी लूण ज्यों, ऐसे रहै समाइ।।२।।

अबहूँ न निकसे प्रान कठोर।
दरसन बिना बहुत दिन बीते सुन्दर प्रीतम मोर ॥३॥
चार पहुर-चारहु जुग बीते रैनि गॅंवाई मोर।
अवधि गए अजहूँ नहीं आये कतहूँ रहे चित चोर ॥४॥
कबहूँ नैन निरखि नहिं देखे मारग चितवत तोर
दादु अइसहि आतुरि विरहिनि जैसहि चन्द चकोर ॥५॥

सन्तोके निर्गुणवाद सीधी-सादी जन-भाषामें उपदेश सब धर्मोके आडम्बरपूर्ण कर्मकाण्डका विरोध और सब प्रकारके भेद भाव दूर करनेकी भावनाका प्रभाव इतना व्यापक रूपसे देशभरमें फैला कि अनेक पन्थ लगभग कबीरके ही सिद्धान्तोंसे मिलते-जुलते समुद्‌भूत हो गए जिनमें अधिकांश राजस्थानमें पनपे। ये सभी पन्थ चलानेवाले सन्त लोग विशेष पढे-लिखे नहीं थे और सधुक्कडी भाषा (स्थानीय जन-भाषासे प्रभावित नागरी भाषा) में अपने उपदेश देते या सिद्धान्त निरूपण करते थे। इनके अनुयायी भी अधिकांश अपढ लोग ही होते थे। यद्यपि इनमेंसे अधिकांशने काव्य लिखनेकी चेष्टा नहीं की किन्तु कुछ काव्य प्रतिभा सम्पन्न सन्तोंने जहाँ-तहाँ काव्यत्व लानेका भी प्रयत्न किया है और उन कवियोंकी भाषा भी सधुक्कडी भाषासे ऊपर उठकर काव्य-भाषा बन गई।

दादूपन्थी रचनाकार

दादूपन्थमें चार प्रकारके साधु होते हैं—खाकी विरक्त वस्त्रधारी और नागा। ये लोग हाथमें सुमरनी रखते हैं सत्त राम कहकर परस्पर नमस्कार—प्रणाम करते हैं और कबीरके ही समान ये लोग निराकार निर्गुण निरञ्जन और ब्रह्मकी ही सत्ता मानते हैं।

स १६ और १६१ के बीच जयपुरके नरायणा ग्रामसें बखनाजी नामके सन्त हुए जिन्होंने कुछ राजस्थानीसे प्रभावित सरल सधुक्कडी भाषामें अपनी बाणीकी रचना की।

अन्य सन्तोके समान रज्जबजी (स १६२४) बहुपठ तो नहीं थे बहुश्रुत बहुत थे। जातिके पठान मुसलमान होते हुए भी दादूजीके सम्पर्क से ये भी सन्त हो गए और इन्होंने बाणी और सर्वंगी नामक दो संग्रह रचनाएँ की।

दादूदयालके ज्येष्ठ पुत्र और उनके उत्तराधिकारी गरीबदास (स १६१२) ने भी अपने पिताजी की शैलीमें ही साखी पद अनभै-प्रबोध और अध्यात्मबोध नामक रचनाएँ की।

जगन्नाथदास

दादूजीके शिष्य जगन्नाथदास कायस्थ (स १६४) बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। इन्होंने बाणी गुण-गजनामा गीतासार और योग वाशिष्ठसारकी रचना की थी।

दादूके शिष्य जनगोपाल (स १६५ के लगभग) ने सीकरीमें गुरुमन्त्र लेकर दादू जन्म-लीला-परची ध्रुव चरित्र प्रह्लाद-चरित्र भरत-चरित्र मोह-विवेक चौबीस गुरुओंकी लीला

'शुक-सम्वाद', 'अनन्तलीला', 'वारहमासिया', 'मटके सवैये', 'कवित्त', 'जखडी', 'काया-प्राण सम्वाद', 'साखी', पद आदि वहुत-सी प्रौढ रचनाएँ की।

दादूके प्रधान शिष्य जगजीवन (स १६५० के लगभग) वडे अच्छे सन्त और विद्वान् थे। इन्होने 'वाणी' नामक वडा ग्रन्थ लिखा जिसमे वैष्णव धर्मके सिद्धान्तोका भी पर्याप्त समावेश है।

दादूजीके प्रशिष्य दामोदर दास (लगभग स १६५०) ने 'मार्कण्डेय पुराण' का गद्यानुवाद किया है किन्तु कुछ नीति-परक दोहे भी लिखे है।

मारवाडके गूलर ग्रामवासी माधोदास (स १६६१) ने 'सन्त-गुण-सागर-सिद्धान्त' नामक ग्रन्थमें दादूजीके जीवनका पूरा विवरण छन्दोवद्ध रूपमे दिया है।

फतहपुर निवासी भीखजन (स १६८३) ने छोटा-सा 'भीख-वावनी' नामक नीति-ग्रन्थ लिखा है। दादूजीके वावन प्रधान शिष्योमेंसे एक शिष्य सन्तदास (समाधिकाल स १६९६) ने बारह हजार छन्दोमे वाणी लिखी थी और जीवित समाधि ले ली थी।

सुन्दरदास

जयपुर राज्यकी द्यौसा नगरीके निवासी सुन्दरदास (जन्म स १६५३) भी छह वर्षकी अवस्थामें ही दादूके शिष्य हो कर अुनके साथ ही रहने लगे थे। वर्पभरके पश्चात् जव दादूका अवसान हो गया (स १६६०) तो ये जगजीवनजीके साथ अपने गाँव द्यौसा होते हुए काशी आए जहाँ २० वर्ष तक वेद, वेदाग, साहित्य और दर्शनका व्यापक और गम्भीर अध्ययन करके राजस्थान लौट गए। प्राय ९३ वर्पकी अवस्थामें सर्वांग सुन्दर, सुरुचि-सम्पन्न, मृदुल, स्त्री-भीरु, वाल ब्रह्मचारी साधुका देहावसान सागानेरमे हुआ।

निर्गुण मतवालोमे सुन्दरदासजी ही ऐसे महात्मा हो गए है जिन्हे काव्य, व्याकरण, छन्दशास्त्र, इतिहास, पुराणादिकी सम्यक् शिक्षा मिली थी। सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश और राजस्थानीके अतिरिक्त इनको फारसीका भी वहुत अच्छा ज्ञान था। इसीलिए इनकी रचनाएँ वहुत ही सरस है। भाषा इनकी मँजी हुई, प्राञ्जल और काव्य-गुण सम्पन्न है। अन्य सन्तोके समान इन्होने केवल दोहे और पद ही नही कहे है वरन् कवित्त सवैया आदिमे भी रचनाएँ की है। शास्त्रोका व्यापक अध्ययन होनेके कारण इन्होने मनमानी ऊटपटाँग बातें नही कही। उदाहरण लीजिए —

> **देखहु दुर्मति या ससार की।**
> **हरिसों हीरा छांडि हाथ तें, वाघत मोट विकार की।।**
> **नाना विधिके कर्म कमावत, खबर नहीं सिर मार की।**
> **झूठे सुखमें भूलि रहे है, फूटी आँख गँवार की।।**
> **बारम्बार पुकार कहत हौं, सौह सिरजनहार की।**
> **सुन्दरदास बिनस करि जैहै, देह छिनक में छार की।।**

यद्यपि इन्होने अधिकतर रचनाएँ ब्रजभाषामे की है किन्तु नागरी और राजस्थानीका मेल कही-कही हो ही गया है। इनके रचे ४० ग्रन्थ कहे जाते है।

इन्होंने ज्ञान-समुद्र　सर्वांग-योग　पञ्चेन्द्रिय चरित्र　सुखसमाधि　स्वप्न प्रबोध　वेद विचार　उक्त अनूप　अद्भुत उपदेश　पञ्च प्रभाव　गुरु सम्प्रदाय　गुन उत्पत्ति　सद्गुरु महिमा-नीसानी　गुरुदया षट्पदी　भ्रम-विध्वंस अष्टक　गुरु-कृपा अष्टक　गुरु उपदेश अष्टक　गुरु महिमा अष्टक　रामजी अष्टक　नाम अष्टक　आत्मा-अचल अष्टक　पञ्जाबी भाषा अष्टक　ब्रह्मस्तोत्र अष्टक　पीर मुरीद अष्टक　अजब ख्याल अष्टक　ज्ञान झूलना अष्टक　सहजानन्द ग्रन्थ　गृह वैराग-बोध ग्रन्थ　हरि बोल चेतावनी　तर्क चेतावनी　विवेक-चेतावनी　पवगम-छन्द ग्रन्थ　अडिल्ला छन्द ग्रन्थ　मडिल्ला छन्द ग्रन्थ　बारह मासी आयुर्बल भेद　आत्माविचार　त्रिविध अन्त करण भेद ग्रन्थ　पूर्बी भाषा बरवै ग्रन्थ　सवैया (सुन्दर विलास)　साखी ग्रन्थ　उत्तरपद कवित्त　आदि अनेक महत्वपूर्ण प्रौढ साहित्यिक रचनाएँ की। इनकी रचनाएँ वास्तवमे साहित्यिक ओजसे पूर्ण है। और यदि निर्गुण सन्तोमे किसीका भी कविकी दृष्टिसे अधिक सम्मान हो सकता है तो सुन्दरदासका ही होना चाहिये।

रज्जबजीके शिष्य खेमदास (स १७४) ने अत्यन्त शक्तिशाली और मँजी हुई भाषामे कर्म धर्म सम्वाद　सुख-सम्वाद　चितावनी　योग-संग्रह और साखी नामक चार ग्रन्थ लिखे।

प्रह्लाददासजीके शिष्य राघवदासने भक्तमाल नामक ग्रन्थ (स १७७) मे दादूपन्थके प्रधान महन्तोकी जीवनियाँ राजस्थानीसे प्रभावित सधुक्कड़ी ब्रज भाषामे लिखी है।

पठान काजिबजी (स १७ ८) ने दादू पन्थ स्वीकार करके अरिल्ल　गुनकठियारा नाम　गुन उत्पत्तिनामा　गुण श्रीमुख नामा　गुण-गरिमा नामा　गुण हरिजन-नामा　गुण गंज नामा　गुण-मज नामा　गुण-निर्मोही　गुण-प्रेम कहानी　गुण विरहका अंग　गुण-निसानी　गुण छन्द　गुणहित उपदेश ग्रन्थ　पद और राजकीर्तन नामक रचनाओकी सृष्टि की।

जयपुर राज्यके ब्रावल गाँवके पास कालीम रहनेवाले जनगरामने लगभग सौ ग्रन्थोकी रचना की जिनमे सुन्दरोदय (स १९　के लगभग) में नागा जमातका अत्यन्त भव्य वर्णन किया है।

दादूपन्थियामे मोहनदास　रामदास　चतुरीदास　नारायणदास　प्रयागदास　कान्हडदास　चतरदास प्रह्लाददास　टीकादी　जग्गादास　चैनदास आदि सन्त कवि हुए है जिन्होने राजस्थानी मिश्रित नागरी या राजस्थानीसे प्रभावित सधुक्कड़ी ब्रज भाषामे प्रौढ रचनाएँ की है।

सुन्दरदाससे कुछ समय पूर्व इलाहाबादके कड़ा मानिकपुरमे मलूकदासजीका जन्म हुआ था जिनकी परम्परा अब भी वहाँ है। इनकी गद्दियाँ काबुलसे नेपाल तक फैली है। इन्होने भी कुछ रचनाएँ की है। इनका यह दोहा तो लोक प्रसिद्ध है —

अजगर करे न चाकरी　पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गए　सबके दाता राम॥

सन्तोंकी यह परम्परा देशभरमें व्याप्त होकर बराबर चलती आई। तुकाराम बोधपन्थी सन्त ही थे। सन्तोंके चमत्कारिक करनोंकी बात भी सुनी जाती है। राधास्वामी सम्प्रदायवाले अब भी सन्त ही कहे जाते है। किन्तु सामान्यत ये सन्त लोग काव्य-शास्त्रसे प्राय अनभिज्ञ होते थे और इनका अध्ययन भी अधिक नहीं होता था इसलिए इनमें काव्य-तत्त्व ढूँढ़ना व्यर्थ है।

चरणदासी पन्थके रचनाकार

कबीर पन्थकी निर्गुणवादी पद्धतिसे मिलता-जुलता चरणदासी पन्थ भी बहुत प्रसिद्ध है जिन्होने शब्दमार्ग चलाया और गुरुके चरणको ही सर्वश्रेष्ठ साध्य माना। ये साधु शरीरपर पीला वस्त्र, माथेपर गोपी चन्दनका पतला-सा तिलक, सिरपर पीले रगका कुल्हा देकर पीली पगडी बाँधते है।

इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक चरणदासका जन्म मेवातके डहरा गाँवमे मुरलीधर और कुजी देवीके घर (स १७६०) मे हुआ। सात वर्षकी अवस्थामे अपनी माँके साथ दिल्लीमे ननिहालमे चले आए जहाँ १९ वर्षकी अवस्थामें शुकदेव मुनिने इन्हे शब्दमार्गका ज्ञान दिया। इन्होने 'अष्टाग-योग', 'नासकेत', 'सन्देहसागर', 'भक्तिसागर', 'हरिप्रकाश-टीका', 'अमर लोक-खण्ड धाम', 'भक्ति-पदारथ', 'शब्द', 'मन-विरक्त-करन गुटका', 'राममाला', 'ज्ञान-सारोदय', 'दानलीला', 'ब्रह्मज्ञान-सागर', 'कुरुक्षेत्र की लीला' नामक चौदह ग्रन्थ लिखे। इनकी भाषा भी सधुक्कडी नागरी भाषा थी।

चरणदासकी दो शिष्या दयाबाई (स १७५० के लगभग) और सहजोबाई (स १८०० के लगभग) बहुत प्रसिद्ध है। दयाबाईने 'दयाबोध' और 'विनय-मालिका' नामक ग्रन्थोमें गुरुकी महिमा तथा दैन्य और वैराग्यसे युक्त भावनाएँ भरी है। सहजोबाईने अपनी रचनाओमे गुरुका बडा माहात्म्य वर्णित किया है जिसमे सरल भाषामें प्रेमका उल्लासपूर्ण वर्णन है।

रामस्नेही पन्थके रचनाकार

निर्गुण वादियोमें रामचरण द्वारा प्रवर्त्तित राम-स्नेहियोका भी बडा विचित्र पन्थ है। ये लोग निर्गुण परमेश्वरको ही राम कहते है और उन्हीकी उपासना करते है। ये लोग न तो मूर्त्ति-पूजा करते और न कपडे पहनते केवल लँगोट बाँधकर चादर ओढे रहते है। ये साधु राम-द्वारोमें रहकर भजन कीर्तन करते हैं। इनके तीन मुख्य केन्द्र राजस्थान मे है—शाहपुरा, खेडापा और रैण। ये शाहपुराको अपना गुरु-द्वार समझते है जहाँ फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा से चैत्र कृष्ण षष्ठी तक मेला लगता है।

खैडापेका राम-स्नेही पन्थ हरिरामदासजीने चलाया जिन्होने स १८०० में एक जयमलदास नामक रामानन्दी वैष्णव साधुसे दीक्षा ली थी। इनके शिष्य रामदासजीने खैडापेमे गद्दी स्थापित की थी। रामदासजी गृहस्थ थे और उन्होने अपने शिष्योको गृहस्थ आश्रम धारण करनेका उपदेश दिया था किन्तु इनके पुत्र दयाल दास और पौत्र पूर्णदासने अपने पन्थवालोके पाँच भेद कर दिए—विरक्त, विदेही, परमहस, प्रवृत्ति और घरबारी। इनका गुरुद्वारा सिंहयल है। खैडपे और सिंहथल दोनो स्थानोपर होलीके दूसरे दिन मेला लगता है जिसमे साधु लोग भजन-कीर्तनके साथ-साथ पचवाणीकी कथा करते है।

रैण (मेडता) के राम स्नेहियोके आदि गुरु दरियावजी हुए है जिनका गुरु द्वारा रैण है—जहाँ वर्षमें एक वार इस पन्थके अनुयायी एकत्र होते है।

जयपुर सोडा ग्राम-वासी विजयवर्गीय वैश्य रामचरण (स १७७६) ने कृपारामसे दीक्षा लेकर शाहपुरेमें अपनी गद्दी स्थापित की और २२५ शिष्य बनाए। इन्होने आठ हजार छन्दोमे अपनी वाणी लिखी है जिनकी रचना भावपूर्ण तो है पर छन्दकी कोई व्यवस्था नही है।

बीकानेर राज्यके सिंहथल ग्रामके ब्राह्मण भागचन्द्रके पुत्र हरिरामदास (सं १७८ के लगभग) ने जयमलदाससे दीक्षा ग्रहण करके सैकडो शिष्यपर शिष्य बनाए और फुटकर साखियाँ और पद लिखे तथा छोटी छोटी बहुत-सी रचनाएँ की। जिसमे निसाणी बडी प्रसिद्ध है।

जोधपुरके पीकोकोर ग्रामवासी रामदास (स १७८१) ने बारह गुरुओंसे सन्तुष्ट न होकर सं १८ ९ में हरीराम दासजीसे राम-सनेही पन्थकी दीक्षा ली और खेडापेमें अपनी गद्दी स्थापित की। इन्होंने गुरु-महिमा भक्तमाल चेतावनी और अग-बद्ध अनुभव वाणी की रचना की जिसके चार अग हैं—दास उदास सम्भव और सुवह।

रामदासजीके पुत्र और खेडापेकी गद्दीके अधिकारी दयालदासजी (स १८८६) बडे उच्च कोटिके साधु थे। इनका करुणा-सागर नामक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है।

जोधपुर राज्यके जेतारन नगर-वासी दरियावजी (स १७७७) का नाम साधु होनेके पश्चात् दरियाशाही हो गया और अब वे दरिया साहब कहलाते हैं। इन्होने प्रेमदासजीसे दीक्षा लेकर रैण गाँवमे अपनी गद्दी स्थापित की। ये नागरी संस्कृत फारसी आदि कई भाषाओंके ज्ञाता थे। इन्होंने दस हजार छन्दोंमे वाणी नामक बृहत् ग्रन्थ लिखा था जिसकी भाषा बडी प्रौढ और काव्य-गुण-पूर्ण है।

राम स्नेही साधुओंमे बालक राम (स १८९९के लगभग) ने भक्तदास गुन चित्रणी टीका नामक ग्रन्थ अनेक छन्दोंमे लिखा है जो ऐतिहासिक दृष्टिसे बडा महत्त्वपूर्ण और साहित्यकी दृष्टिसे बडा सरस है।

रामस्नेही पन्थियोंमे जयमलदास (स १७९) सन्तदास (स १६८९से स १८ ९) नारायणदास (स १८ ६–५१) परसराम (स १८२४–९६) हरिदेवदास (स १८३५) पूर्णदास (स १८८५) अर्जुनदास (स १८९२) और सेवकराम (स १९) भी अच्छे सन्त कवि हुए हैं।

निरञ्जनी पन्थके सन्त रचनाकार

सोलहवीं विक्रमी शताब्दीके मध्यमें हरिदासजीने निराकार, निर्गुण निरञ्जन परमेश्वरकी आराधनाके आधारपर निरञ्जनी पन्थ चलाया जिनके दो भेद हैं—घरबारी और निहग। इनका केन्द्र है मारवाडमें डिडवानेके पास गाढा नामक स्थान। इस सम्प्रदायके घरबारी गृहस्थ तो सामान्य वेश-भूषाके साथ रामानन्दी तिलक लगाते हैं किन्तु निहग लोग गगम याकी गुदडी या सेली बाँधते हैं। हरिदासजी बडे प्रभावशाली महान् साधु पुरुष थे। इन्होंने भक्त विरदावली भरथरी सम्वाद साखी नाममाला ग्रन्थ पद-नाम निरणय ग्रन्थ ब्याहला जोग ग्रन्थ और टोडरमल जोग शीर्षक रचनाएँ की थीं। इनके बावन शिष्य थे जिन्होंने हरिदा सोत पूर्णदा सोत अमरदा सोत नारायणदा सोत आदि कई थाम्भे स्थापित किए जिनमे बहुतसे अब भी विद्यमान हैं।

गद्यपद्यकी भाषामें अथवा स्थानीय भाषाओंसे प्रभावित नागरी भाषामें रचना करनेवाले इन सन्तोका बहुत बडा समुदाय आज भी देशमें विद्यमान है और विचित्र बात यह है कि वे आज भी इसी प्रकार भाषामें अपने यहाँ साधुओं और गृहस्थोंमें प्रवचन करते इसी प्रकारकी रचना करते और इसी लोक भाषाका व्यवहार करते हैं। यह सम्भव है कि बहुत पाठ-निरपेक्ष जानकर यह प्रवृत्ति बदल जाय किन्तु धर्मनिरपेक्ष राज्यमें धर्म और सम्प्रदायोंके प्रति जिस प्रकार विरोधका भाव प्रदर्शित किया जा रहा है उसे दृष्टिमें रखते

हुए यह प्रतीत होता है कि यह सम्प्रदाय अधिक दिन तक नही टिक सकेगी और ज्यो-ज्यो नागरी भाषा राष्ट्र-भाषाके पद पर हिन्दीके रूपमे प्रवर्द्धमान होती चली जा रही है, उसे देखते हुए यह प्रतीत होता है कि सधुक्कडी भाषा अधिक दिनोतक नही टिक सकेगी।

राष्ट्रभाषाकी दृष्टिमे इन निर्गुणवादियोका बहुत अधिक महत्त्व है, क्योकि इन्होने ही उत्तर-भारतको एक विचार-सूत्रमें बाँधने या भावात्मक एकताके लिए एक व्यापक भाषाकी आवश्यकताका अनुभव किया, उसका निर्माण किया, उसमें रचनाएँ की और उसमे अपने कथन, उपदेश, नीति, सन्देश तथा वाणीकी रचना करके उसे पुष्ट तथा समृद्ध किया।

अवधी-साहित्य

आजकी नागरीको छोडकर राजस्थानीके पश्चात् सबसे अधिक व्यापक भाषा अवधी रही है। आज जिस प्रदेशको अवध कहते है, उसके अतिरिक्त बघेलखण्ड और छत्तीसगढमे भी यह थोडे बहुत परिवर्त्तनो-के साथ बोली जाती है। अवधी और बघेलीमे तो कोई अन्तर नही है, किन्तु छत्तीसगढी पर मराठी और उडियाका थोडा-थोडा प्रभाव दिखाई पडता है। अवधीके दो रूप मिलते है—पश्चिमी और पूर्वी। पश्चिमी अवधी लखनऊसे कन्नौज तक बोली जाती है। इस प्रकार ब्रजभाषाके निकटतम पहुँच जानेके कारण यह उससे प्रभावित भी हुई है। पूर्वी अवधीका क्षेत्र अयोध्यासे गोडा तक और इलाहाबादके दक्षिण तक चला गया है।

अवधीका साहित्य

अवधीका अधिकाश साहित्य प्रबन्ध या कथा-काव्यके रूपमें मिलता है। जहाँ अवधीमें अधिकतर प्रबन्ध काव्योकी रचना हुई है, वहाँ ब्रजभाषामें मुक्तक काव्यकी। अवधीकी प्रकृति भी कथा-काव्यके अधिक अनुकूल है। सूफी सम्प्रदायवालोकी सभी रचनाएँ अवधीमे ही है। उन्होने प्रबन्धो रूपक या अध्यवसान का आश्रय लेकर ऐतिहासिक या कल्पित कथाओ द्वारा अपने मतका प्रचार किया। सूफियोने हिन्दुओके घरोमे प्रचलित इस प्रकारकी अनेक कथाएँ लेकर उनमे आवश्यकतानुसार हेरफेर करके अपने मतका प्रचार करनेके उद्देश्यसे उन्हें प्रबन्ध-काव्यका रूप दिया। इसीसे उनकी रचनाएँ कुछ लोगोमें अधिक प्रचलित हुई। इन प्रबन्ध काव्योके लिए सूफियोने दोहे-चौपाईका क्रम ग्रहण किया।

अवधीकी सबसे प्राचीन रचना अबतक ईश्वरदास-कृत 'सत्यवती कथा' (१६ वी शताब्दी) मानी जाती थी, किन्तु इधर जो खोजें हुई है, उनसे ज्ञात होता है कि मुल्ला दाऊने सवत् १४२७-२८ में 'चन्दायन' नामक एक कथा-काव्यकी रचना की थी, जिसकी एक खण्डित प्रति मनेरशरीफ खानकाह पुस्तकालयमें मिली है। इसके अतिरिक्त ईश्वरदासकी ही रची हुई दो और रचनाएँ 'अगद पैज' और 'भरत मिलाप' का भी विवरण मिला है। ईश्वरदासकी रचनाएँ १६ वी शताब्दी की है। इसके पश्चात् तो अवधीमे साहित्य-रचनाके उदाहरण बराबर मिलते है, जिसका क्रम आजतक चला आ रहा है। अवधीका उत्कर्ष काल १६ वी और १७ वी शताब्दी है। इसी समयमें ही जायसीका 'पदमावत' और तुलसीका 'रामचरित मानस' रचा गया।

अवधीके प्रबन्ध काव्य

अवधीके प्रबन्ध काव्य दो रूपोंमें पाये जाते हैं—पहला पौराणिक या ऐतिहासिक आख्यानोंके आधारपर और दूसरा कल्पित कहानियोंके आधारपर। इनमेंसे हिन्दू कवियोंकी सब रचनाएँ पौराणिक-ऐतिहासिक कथाओंको आधार बनाकर चली हैं तथा सूफी कवियोंकी (जिनमें प्राय सभी मुसलमान हैं।) रचनाएँ प्राय कल्पित कहानियोंको आधार बनाकर चली हैं। अत हम इन्हें चरित काव्य और रूपक-काव्य इन दो श्रेणियोंमें बाँट सकते हैं।

चरित काव्य

चरित काव्योंमें 'सत्यवती कथा' के अतिरिक्त ईश्वरदासकी दो और रचनाएँ मिली हैं—'अगद पैज' और भरत मिलाप। सत्यवती-कथा का आरम्भ तो पौराणिक ढगसे होता है किन्तु आगे चलकर यह कल्पित कथाका रूप ग्रहण कर लेती है। अगद पैज और भरत मिलाप निश्चय ही पौराणिक कथाएँ हैं। उनकी कथा उनके नामसे ही स्पष्ट है। इसके पश्चात् कालक्रमसे अवधीके चरित काव्योंमें गोस्वामी तुलसीदासजीका रामचरितमानस जानकी मगल पार्वतीमगल रामलला-नहछू और बरवै रामायण आते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास

कलिकुलकमलदिवाकर, हिन्दी काव्यगगनके सूय कलिके वाल्मीकि कलियुगमे रामकथाके सफल विस्तारक और उन्नायक भक्त चूडामणि गोस्वामी तुलसीदासजीका प्रादुर्भाव हिन्दू जाति वर्णाश्रम धर्म और हिन्दी भाषाके लिए भगवानकी ओरसे वरदानके रूपमें ही हुआ। गोस्वामीजीने अपनी रचनाओंके माध्यमसे रामके लोक-मगलकारी पावन चरित्रका आदर्श उपस्थित करके म्रियमाण हिन्दू जातिकी धमनियोंमें नवरक्तका सञ्चार किया। रामके लोकसग्रही लोकरञ्जक चरितने मुमूर्षु हिन्दुओंको कर्त्तव्य-पथकी ओर अग्रसर होनेके लिए प्रवृत्त किया। मुसलमान शासकोंके अत्याचारोंसे त्रस्त और दलित भारतीय हिन्दू समाज कोई आश्रय न पाकर नैराश्यकी अवस्थामें पडा हुआ था। गोस्वामीजीका ही यह कौशल था कि उन्होंने यह अवस्था दूर की और हिन्दुओंको उठ खडे होनेका सामर्थ्य प्रदान किया और समस्त राष्ट्रको व्यापक रूपसे नैतिक चेतना प्रदान की।

गोस्वामीजीका जीवन-वृत्त

गोस्वामीजीका जन्म कब और कहाँ हुआ इस सम्बन्धमें आज तक विवाद चल ही रहा है। कुछ लोग उन्हें सोरोका निवासी सिद्ध करनेका भी विफल प्रयत्न कर चुके हैं। उनका तर्क इस दोहे पर आधृत है—

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तस बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥

कुछ लोग उनका जन्म स्थान अयोध्या ही बताते हैं। उनका तर्क यह है कि गोस्वामीजीकी रचनाओंमें जिस प्रकारकी अवधीका प्रयोग हुआ है वह अयोध्याके आसपास की ही है। किन्तु वे अयोध्यामें

अधिक समय तक रहे और वह उनके इष्ट देव रामकी पुरी रही है, इसलिए वहाँकी भाषापर उनका अधिकार स्वाभाविक है। वास्तवमे उनका जन्म बाँदा जिलेके राजापुर ग्राममे यमुनाके तटपर हुआ था।

गोस्वामीजीके जन्म-सवत्‌के सम्बन्धमे भी इसी प्रकार भिन्न-भिन्न मत प्रचलित है। 'गोसाईं-चरित' और 'तुलसी-चरित' में उनका जन्म-सवत् १५५४ दिया हुआ है। इन दोनो पुस्तकोकी प्रामाणिकताके सम्बन्धमे विद्वानोमे मतभेद है। इनमें दिए हुए कतिपय वर्णन परम्परासे प्रचलित जनश्रुतियोसे मेल नही खाते। इसीलिए लोगोने सवत् १५५४ की प्रामाणिकता मे भी सन्देह किया है। मिरजापुरके श्री रामगुलाम द्विवेदीने गोस्वामीजीका जन्म सवत् १५८९ माना है। रामनगरके चौधरी छुन्नीसिंहके यहाँ गोस्वामीजीके समकालीन श्रीकृष्णदत्त मिश्रकी रची 'गौतम चन्द्रिका' नामकी एक पोथीके कुछ अश है, जो उन्होने वहीपर उतार रक्खे है। 'यह गौतम-चन्द्रिका' दोहे-चौपाइयोमें है और इसमे उक्त मिश्रजीने अपने वश-परिचयके प्रसगमें गोस्वामीजीके सम्बन्धमें भी पर्याप्त विवरण दिया है। उससे गोस्वामीजीके सम्बन्धमें कुछ नई बातें प्रकाशमें आई है। 'गौतम-चन्द्रिका' के अनुसार गोस्वामीजी सवत् १६८० की श्रावण कृष्णा तीज के दिन ८० वर्षकी आयुमें साकेतवासी हुए। इस विवरणके अनुसार उनका जन्म-सवत् १६०० ठहरता है। किन्तु अभी इस पोथीके सम्बन्धमे निश्चयात्मक रूपसे कुछ नही कहा जा सकता। एक ही बात निश्चित है कि गोस्वामीजीका जन्म श्रावण शुक्ला सप्तमीको हुआ और उनका देहावसान सवत् १६८० की श्रावण कृष्णा तीजको काशीमें हुआ, जैसा इस दोहेसे प्रकट है —

सवत सोलह सौ असी, असी गगके तीर।
श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥

गोस्वामीजीके सम्बन्धमे यह परम्परासे प्रसिद्ध है कि वे पत्यौजाके पराशर गोत्रीय दुबे ब्राह्मण थे —

'तुलसी पराशर गोत दूबे पतियौजाके।'

यह भी प्रसिद्ध है कि उनके पिताका नाम आत्माराम तथा माताका हुलसी था। हुलसी नामके प्रमाणके सम्बन्धमे रहीम (अब्दुर्रहीम खानखाना) का यह दोहा प्रसिद्ध ही है —

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहति अस होय।
गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी-सो सुत होय॥

तुलसीदासजीके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध है कि वे अभुक्त मूल नक्षत्रमे उत्पन्न हुए थे, जिससे उनके पिताने उन्हे त्याग दिया। इसका प्रमाण उनकी इन उक्तियोसे भी मिलता है —

(१) **मातु-पिता जग जाइ तज्यो।** (कवितावली)
(२) **जननी-जनक तज्यो जनमि।**
(३) **तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातु-पिताहू।** (विनयपत्रिका)

कहा जाता है कि पिताकी इस उपेक्षा और त्यागके कारण माताने उनके पालन-पोषणका भार अपनी दासी मुनियापर छोडा। मुनिया बालकको लेकर अपनी ससुरालकी चली गई। मुनियाकी मृत्युके समय बालक पाँच वर्षका था। पिताने जब उस समय भी उसे रखना स्वीकार न किया तब वह मारा-मारा फिरने लगा। अन्तमें नरहरिदास नामके महात्माने उसपर अनुग्रह करके उसे अपने साथ रख लिया। ये

महात्मा मोडा जनपदके अन्तर्गत सूकरक्षेत्र (सोरो नही) के रहनेवाले थे वहाँ वे बालकको सिखाते गए। वहीं गुरुसे तुलसीदासजीने 'राम-कथा' सुनी। इसके पश्चात् गोस्वामीजी अपने गुरुजीके साथ काशी चले आए और पञ्चगङ्गा घाटपर शेष सनातनजीसे पन्द्रह वर्ष तक शास्त्र काव्य इतिहासादिका अध्ययन करते रहे। इसके अनन्तर गोस्वामीजी राजापुर लौट गए और वाल्मीकि रामायणकी कथा कहकर निर्वाह करने लगे। वहीं भारद्वाज-गोत्री एक ब्राह्मणने अपनी कन्या इन्हे ब्याह दी। अपनी पत्नीमे गोस्वामीजी इतने अनुरक्त थे कि एक दिन जब इनकी पत्नी मायके चली गई तो ये भी उसके पीछे-पीछे वहाँ जा पहुँचे। इस पर क्षुब्ध होकर उसने कहा —

लाज न लागत आपको दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेमको कहा कहौं मै नाथ॥
अस्थि-चर्म-मय देह मम तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ होति न तौ भव भीति॥

इसी बातपर गोस्वामीजीको विराग हुआ और वे गृह-त्याग करके काशी अयोध्या चारो धाम तथा अन्य तीर्थोंकी यात्रा करते हुए कैलास-मानसरोवर तक घूम आए। वहाँसे लौटकर उन्होने सवत् १६३१ की रामनवमीको अयोध्यामें रामचरितमानसकी रचना आरम्भ की जो ढाई वर्षमें पूर्ण हुई। मानस के कुछ अश अयोध्यामे और कुछ काशीमे रचे गए थे।

गौतम चन्द्रिका के अनुसार गोस्वामीजी २८ वर्षकी अवस्थामे तीर्थाटनके लिए निकले और ३१ वर्षकी वयमे अयोध्या आकर मानसकी रचनामे जुट गए। सूकर खेतके सम्बन्धमे गौतम चन्द्रिका मे उल्लेख है कि वह घाघरा और सरयूके सगमपर है शाण्डिल्य ऋषिका वहाँ आश्रम है और नरहरि स्वामी शाण्डिल्य गोत्रीय थे भी।

गोस्वामीजीके स्नेहियो और मित्रोकी एक लम्बी सूची भी गौतम चन्द्रिका मे दी हुई है। रहीम और नाभाजीसे उनका स्नेह सम्बन्ध था। मीरासे भी उनका पत्र-व्यवहार हुआ था किन्तु उनके सबसे घनिष्ठ मित्र थे काशीमे भदैनीके टोडर जिनके निधनपर गोस्वामीजीने चार दोहे कहे हैं। गोस्वामीजीने नरकाव्य लिखा ही नही। अनन्य मित्रके शोकमे इन चार दोहोके रूपमे उनके भावोका उद्रेक हुआ था।

गोस्वामीजीकी रचनाएँ

रामचरितमानस विनयपत्रिका गीतावली दोहावली कवितावली रामाज्ञा प्रश्न रामलला नहछू पार्वती-मंगल जानकी-मंगल बरवै रामायण कृष्ण-गीतावली और वैराग्य-सन्दीपिनी ही गोस्वामीजीकी प्रामाणिक रचनाएँ मानी जाती हैं। इनमे 'रामचरितमानस' विनय पत्रिका गीतावली कवितावली और रामाज्ञाप्रश्न तो बडे ग्रन्थ है और शेष सात छोटे।

रामचरितमानसकी रचना गोस्वामीजीने सबसे पहले की। उसके प्रारम्भ करनेकी तिथि उन्होंने स्वय मानसमे इस प्रकार दी है —

संवत सोरह सौ एकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा॥
नवमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

यह प्रसिद्ध है कि उस दिन प्राय वैसा ही योग उपस्थित था जैसा कि भगवान् रामके जन्मके दिन था। मानसकी रचनामे दो वर्ष, सात महीने, छब्बीस दिन लगे। सम्वत् १६३३ के मार्गशीर्ष शुक्ल पक्षमे राम-विवाहकी तिथिके दिन ग्रन्थकी रचना पूर्ण हुई। यह पूरा ग्रन्थ दोहे, चौपाई, छन्द, सोरठा, पद्धतिपर अवधी भाषामे रचा गया है। रामचरितमानसकी भाषा सस्कृतकी कोमलकान्त पदावलीसे सरस, गानमय और मनोमुग्धकारी हो गई। गोस्वामीजी सब शास्त्र-पारगत विद्वान् थे। अत उनकी शब्द-योजना साहित्यिक और सस्कृत-निष्ठ है। रामचरित मानसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि प्रबन्ध काव्य होनेके साथ-साथ नाटकके रूपमे रामलीलाके लिए भी व्यवहृत होता है। स्तोत्रके रूपमे भी पाठ किया जाता है, गेय काव्य भी है और इसके कुछ दोहे तथा कुछ चौपाइया मन्त्रके रूपमे भी जपी जाती है। ये विशेषताएँ ससारके किसी काव्यमे भी नही है।

'मानस' के अतिरिक्त 'बरवै रामायण', 'रामलला नहछू', 'जानकी मगल', 'पार्वती मगल', 'दोहावली', 'रामाज्ञाप्रश्न', और 'वैराग्य-सदीपिनी' की रचना अवधीमे हुई है। 'विनयपत्रिका', 'गीतावली', 'कवितावली' और 'कृष्ण-गीतावली' की रचना ब्रजभाषामें हुई है।

'बरवैरामायण' छोटा-सा ग्रन्थ है। इसमे बरवै छन्दके मुक्तक पदोमे रामकथा कही गई है। कहा जाता है कि अपने मित्र रहीमके अनुरोधपर ही गोस्वामीजीने अवधीके इस सर्वप्रिय छन्दमे रामकथा कही। 'रामललानहछू' मे बीस सोहर छन्दोमें रामके किसी मगल-सस्कारपर नहछूका वर्णन है। 'जानकी-मगल' और 'पार्वती-मगल' मे भी 'बरवै रामायण' और 'रामलला-नहछू' की ही भाँति ठेठ अवधीकी मिठास मिलती है। ये ग्रन्थ ही इस बातके प्रमाण है कि कवि अवधीके क्षेत्रका रहनेवाला है। 'जानकी-मगल' मे सीताजीके और 'पार्वती–मगल' में पार्वतीजीके विवाहका वर्णन है। इनकी भाषमे इतना प्रवाह है कि शब्द एकके पश्चात् एक फिसलते चले जाते है। एक उदाहरण लीजिए —

गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति।
सारद सेस सुकवि स्रुति सन्त सरलपति॥
हाथ जोड करि विनय सबहि सिर नावौं।
सिय-रघुवीर-विवाह जथामति गावौं॥

'दोहावली' में सूक्ति-पद्धति पर रचे हुए पाँच सौ से ऊपर दोहे है, जिनमे नीति, भक्ति तथा नाम-माहात्म्यका वर्णन है। इसमे प्राय डेढ सौ दोहे मानसके है। बहुतसे और दोहे भी अन्य ग्रन्थोमें पाए जाते हैं। ज्ञात होता है कि इनका सग्रह अन्तमे किया गया।

'रामाज्ञा प्रश्न' के सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि अपने मित्र गगाराम ज्योतिषीके अनुरोधपर गोस्वामीजीने इसकी रचना की थी। इसमें सात सर्ग है। प्रत्येक सर्गमे सात-सात दोहेके सात सप्तक है। इसमें भी पूरी रामकथा कही गई है। 'जानकी-मगल' की ही भाँति इसकी राम-कथामें भी मानससे यह अन्तर है कि इसमे परशुरामका आगमन वाल्मीकिकी राम-कथाके अनुसार तब होता है, जब बारात मिथिलासे अयोध्याके लिए प्रस्थान कर चुकती है। इसमें शकुन-विचार किया गया है। इसके अनेक दोहे मानससे भी लिये गए है। गोस्वामीजीके केवल इसी ग्रन्थमें सीताके वनवासकी कथा-प्राप्त होती है।

'वैराग्य-सन्दीपिनी' दोहे-चौपाइयोमे रचा गया लघुकाव्य ग्रन्थ है, जिसमें सन्त महिमाका वर्णन है।

इसकी शैलीसे यह नहीं प्रतीत होता कि यह गोस्वामीजीकी रचना है। सम्भवतः यह उनकी प्रारम्भिक रचना हो।

'गीतावली' में पूरी रामकथा सात काण्डोंमें अनेक राग-रागिनियोंके निर्देशके साथ गेय पदोंमें कही गई है। इसके आरम्भमें रामका बालरूप-वर्णन और अन्तमें रामरूप-वर्णन अत्यन्त मनोरम हुआ है। 'गीतावली' में अनेक पद ऐसे हैं जो सूर-सागर में केवल राम-स्याम और सूर-तुलसीके अन्तरके अतिरिक्त ज्यों-के-त्यों आए हैं। इसकी रचना शुद्ध प्रौढ़ और साहित्यिक ब्रज भाषामें हुई है।

'कवितावली' में गंग आदि कवियोंकी कविता-सवैया पद्धतिपर सात काण्डोंमें रामकथा कही गई है। ब्रजभाषामें रचे गए इस ग्रन्थकी भाषा बड़ी ओजस्विनी है! हनुमानबाहुकको कुछ लोग इसीके अन्तर्गत मानते हैं, कुछ लोग पृथक्। ऐसा प्रतीत होता है कि समय-समयपर राम-कथा-सम्बन्धी जो विविध प्रसंग गोस्वामीजीकी वाणीसे विविध छन्दोंमें मुखरित होते रहे उनका संग्रह आगे चलकर उन्होंने ही या उनके भक्तोंने कर दिया और उसका नाम कवितावली या कवित्त रामायण रख दिया।

ऐसा कहा जाता है कि कृष्णगीतावली की रचना वृन्दावन-यात्राके अवसरपर की गई थी। इसमें श्रीकृष्ण-सम्बन्धी ६१ अत्यन्त सरस और भावपूर्ण पद हैं।

'विनयपत्रिका' की गणना गोस्वामीजीके मुख्य ग्रन्थोंमें की जाती है। कुछ लोग उसे स्फुट पदोंका संग्रह मानते हैं किन्तु जिस प्रकार और जिस क्रमसे इसकी रचना हुई है उसे देखते हुए इसे स्फुट पदोंका संग्रह नहीं कहा जा सकता। 'विनयपत्रिका' के सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि जब तुलसीदासजीने रामनामका व्यापक प्रचार करके जीवोंके उद्धारका मार्ग प्रशस्त करना आरम्भ किया तो कलि घबराया और उसने उन्हें त्रस्त करना प्रारम्भ किया। गोस्वामीजीने हनुमानजीसे सारी स्थिति कही। इसपर हनुमानजीने कहा कि भगवान्‌की सेवामें प्रार्थनापत्र लिखिए तो मैं उसे उनके पास पहुँचा दूँगा और तब सारा कष्ट निवृत्त हो जायगा। तब गोस्वामीजीने यह पत्रिका लिखी जिसपर भगवान् रामने सही की अर्थात् उसे स्वीकार किया। जो पत्रिका गोस्वामीजीने लिखी है, उसका ठीक वही स्वरूप है जो किसी राजाके पास भेजनेके लिए प्रार्थना-पत्रका होता है। मंगलमय गणनायककी प्रार्थना तो आवश्यक है ही उसके पश्चात् क्रमसे अनेक देव-देवियोंकी प्रार्थना की गई है। काशी और चित्रकूटकी प्रार्थनाके अनन्तर हनुमानजीसे प्रार्थना तथा रामके तीनों भाइयोंकी स्तुति की गई है। यह सब हो चुकनेपर जगदम्बा जानकीसे निवेदन किया गया है —

कबहुँक अम्ब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ ॥

और फिर ४३ से ४८ वें पद तक रामकी स्तुति है। इसके पश्चात् अनेक प्रार्थनाओंके अनन्तर ६४ वें पदसे २७१ वें पदतक महिमा अपनी दीनता कलिजन्य दुःख आदिका वर्णन करके २७२ वें से २७६ वें पद तक बाल्यावस्थासे तब तकके दुःख बतलाये गए हैं और भगवान्‌से प्रार्थना की गई है कि आप मेरी पत्रिका स्वयं बाँच। २७८ वें पदमें हनुमान आदिसे सभामें पत्रिका उपस्थित करनेका निवेदन किया गया है जिसे लक्ष्मणजीने सबकी रुचि जानकर भगवान्‌के सामने उपस्थित कर दिया। अन्तिम पदमें भगवान् द्वारा पत्रिकापर सही होनेकी बात कही गई है। इस प्रकार यह पत्रिका एक प्रकारका खण्ड काव्य है

जिसमे पत्रिकाका पूरा इतिहास अत्यन्त प्रौढ ब्रज भाषामें किया गया है। पत्र विश्व साहित्यमे अपने ढगका निराला है।

गोस्वामीजीकी काव्य-भाषा

जिस समय गोस्वामीजीने काव्य-क्षेत्रमे प्रवेश किया, उस समय अवधी और ब्रज भाषा-दोनोका प्रयोग काव्य-जगत्‌में भली-भाँति होने लगा था। काव्य-रचनाके लिए ब्रज-भाषाका प्रयोग किसी-न-किसी रूपमे पहलेसे ही चला आ रहा था, किन्तु वह भाषा लोक-व्यवहारकी भाषासे दूर पड गई थी। सूरदासजीने उस लोक-व्यवहारकी भाषाका साहित्यिक भाषाके मेलमें लाकर काव्य-भाषाका एक नया चलता रूप प्रदान किया। आगे काव्य-रचनाके लिए यही भाषा आदर्श बनी। उसी प्रकार अवधीका प्रयोग सूफी कवियोने भी पर्याप्त रूपसे किया था। गोस्वामीजीने अपने काव्योमे इन दोनोका प्रयोग इस सुन्दरतासे किया कि दोनो भाषाओको पराकाष्ठापर पहुँचा दिया। 'सूर-सागर'मे ब्रजभाषाका जो माधुर्य है, उससे भी बढकर माधुर्य गोस्वामीजीकी ब्रजभाषाकी रचनाओमें मिलता है और अवधीका जो माधुर्य हमे 'जायसी' आदिमें मिलता है, उससे कही अधिक बढकर गोस्वामीजीकी रचनाओमें मिलता है। इतना ही नही, गोस्वामीजीने अपनी रचनाओमें इन दोनो भाषाओको माँजकर अधिक परिष्कृत, कोमल और मधुर बना दिया है। दोनो भाषाओंके शब्द और अर्थपर समान रूपसे अधिकार रखनेवाला ऐसा दूसरा कवि नही हुआ।

अवधी और ब्रज भाषाके अतिरिक्त वे सस्कृतके प्रकाण्ड पण्डित और फारसीके भी मर्मज्ञ थे। वे शुद्ध राष्ट्रीय कवि थे जिन्होने म्रियमान राष्ट्रको नवजीवनका सन्देश दिया, नैतिक चेतना प्रदान की, सामाजिक शील और मर्यादाका पाठ पढाया, आत्मसम्मान और लोक-कल्याणके लिए बडेसे बडा त्याग करनेकी प्रेरणा दी और केवल भारतके ही नही, विश्वभरकी कल्याणकारी भावनाको सम्पुष्ट किया। इस दृष्टिसे वे केवल भारतके ही नही, विश्वके महाकवि हैं।

गोस्वामीजीकी रचना-पद्धति

गोस्वामीजीने अपने समयकी पाँचो प्रकारकी काव्य रचना पद्धतियोका प्रयोग किया. १—चारण कवियोकी छप्पय-पद्धति, २—विद्यापति और सूरकी गीत-पद्धति, ३—सूफियोकी दोहे-चौपाईवाली पद्धति, ४—सन्तोकी दोहा-पद्धति, जो नीति और उपदेशके लिए प्रयुक्त होती थी और ५—गग आदिकी कवित्त-पद्धति।

उन्होने अवधेश रामकी मुख्य कथा अवधकी भाषामें कथा काव्यके लिए, अवधकी भाषामें प्रचलित दोहे-चौपाई की पद्धतिपर लिखी। यही ग्रन्थ (रामचरितमानस) उनकी सभी रचनाओका सिरमौर हुआ। शीलवश लिखी हुई 'कृष्ण गीतावली'को छोड दें, तो गोस्वामीजीने जो कुछ लिखा है, वह अपने आराध्य भगवान् रामकी कथाके ही प्रसगमें। रामकी यह कथा अनेक छन्दो और काव्यकी प्रचलित सभी शैलियोमें गोस्वामीजीने इस कौशलसे कही है कि सभी शैलियोपर उनका समान अधिकार प्रतीत होता है। इस क्षेत्रमे भी उनकी समताका कोई कवि आज तक हिन्दीमे नही हो पाया है। गोस्वामीजीकी रचनाओसे हम इन पाँचो शैलियोंके उदाहरण दे रहे हैं —

(१) दोहे-चौपाईवाली पद्धति—गोस्वामीजीकी सर्वश्रेष्ठ रचना रामचरितमानसकी इसी

पद्धतिपर या इसी काव्य-शैलीमें है। मानसकी यह शैली इतनी प्रिय हुई कि व्यास लोग प्रायः सम्पूर्ण उत्तर भारतमें मानसकी ही कथा कहने लगे। इसके दो फल हुए—एक तो रामकी कथाका व्यापक प्रचार हुआ और लोगोंने रामके आदर्शमय तथा मर्यादापूर्ण जीवनसे शिक्षा लेकर नैराश्यजन्य भावनासे अपना त्राण प्राप्त करके जीवनके उच्च आदर्श ग्रहण किए। दूसरे-सन्तोंकी अस्पृश्य जातियोंसे सामाजिक व्यवस्थाके विशृंखल हो जानेकी जो भयावनी आशंका उत्पन्न हो चली थी वह दूर हो गई। गोस्वामीजीने मानसकी रचना भाषामें तो अवश्य की किन्तु उसमें संस्कृतकी कोमल-कान्त-पदावलीका सहारा लिया जिससे वह भाषा पुष्ट और साहित्यिक हो गई। रामचरितमानस इसीलिए आज तक लोगोंका कण्ठहार होता चला आया है और जैसे-जैसे समय बीतता जाता है उसकी लोकप्रियता बढ़ती ही जाती है। नीचे संस्कृतनिष्ठ और ठेठ दोनों प्रकारकी अवधीके उदाहरण दिए जाते हैं —

> अमिय मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भवरुज-परिवारू।
> सुकृत सम्भुतन बिमल बिभूती। मञ्जुल मंगल मोद प्रसूती ॥
> जन-मन मञ्जु मुकुर मल हरनी। किए तिलक गुनगन बस करनी ॥१॥
> कहहि झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई।
> हमहुँ कहब अब ठकुर सोहाती ना हित मौन रहब दिन-राती ॥२॥

(२) गेयपदोंवाली गीत-पद्धतिपर गोस्वामीजीकी रचनाएँ कम नहीं हैं। विनय-पत्रिका और गीतावली —जैसी दो बड़ी-बड़ी पोथियाँ इसी शैलीमें हैं। सन्तोंने भी इस शैलीमें पर्याप्त रचनाएँ की थीं किन्तु उनका भाषा-साहित्य सम्बन्धी ज्ञान कुछ भी नहीं था। इसलिए उनकी रचनाएँ साहित्यकी दृष्टिसे विचारके योग्य नहीं हैं। विद्यापति और सूरने लोकमें चलती भाषामें मधुर, ललित और रसपूर्ण रचना करके इस शैलीको परिपुष्ट किया। गोस्वामीजीने इस शैलीमें दो बड़े-बड़े ग्रन्थ प्रस्तुत करके ब्रजभाषाकी इस शैलीमें और भी बल दिया। विनय-पत्रिका के आरम्भमें जो संस्कृतनिष्ठ पदावली आई है वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। साथ ही वह रसके अनुकूल कहीं मधुर और कहीं ओजपूर्ण है। आगे चलकर पदोंकी भाषा बहुत ही सरल हो गई है किन्तु उसका लालित्य एवं माधुर्य निरन्तर बना रहता है। गीतावलीके पद तो कहीं-कहीं अधिक मार्मिक और भाव-व्यंजक हैं। दो उदाहरण दिए जा रहे हैं —

> कौसलेन्द्र नवनील कञ्जाभतनु, मदन-रिपु कंज हृदि चञ्चरीकं।
> जानकी-रवन सुख-भवन भुवनैक प्रभु समर भंजन परम कारुनीकं ॥१॥
> जौ पै हौ मातुमते महँ ह्वैहौं।
> तौ जननी जगमें या मुखकी कहाँ कालिमा ध्वैहौं ॥२॥

(३) कवित्त-सवैया-पद्धतिपर गोस्वामीजीकी रचनाएँ तो अल्प हैं किन्तु रसानुकूल भाषाकी योजना अत्यन्त स्वाभाविक और आह्लादकारक है। दो उदाहरण लीजिए —

> बर दन्तकी पंगति कुन्द कली अधराधर-पल्लव खोलनकी।
> चपला चमके घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलनकी ॥
> घुँघरारी लटें लटकें मुख ऊपर कुण्डल लोल कपोलनकी।
> निवछावरि प्रान करें तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलनकी ॥१॥

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल जाल मानौं
लङ्क लीलिबेको काल रसना पसारी है।
कैधों व्योम बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु
बीररस बीर तरवार सी उघारी है ॥२॥

(४) चारणोकी छप्पय-पद्धतिपर हनुमान-बाहुकके कुछ छन्दोकी रचना बडी ही ओजस्विनी भाषामें की गई है। कवितावलीका यह छन्द लीजिए —

डिगति उर्वि अतिगुर्वि, सर्व पब्बै समुद्रसर।
ब्याल बधिर तेहिकाल, बिकल दिगपाल चराचर॥
दिग्गयन्द लरखरत, परत दसकण्ठ मुक्ख भर।
सुरबिमान हिम-भानु, सघटित होत परस्पर॥
चौंके बिरंचि सकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यो॥
ब्रह्माण्ड खण्ड कियो चण्ड धुनि, जबहि राम सिवधनु दल्यो॥

(५) नीतिके उपदेशोवाला सन्तोकी सूक्ति-पद्धतिपर 'दोहावली' की रचना हुई है। रामाज्ञा प्रश्नमें भी यही शैली ली गई है। दो उदाहरण नीचे दिए जा रहे है—

आवत ही हरखे नहीं, नैनन नहीं सनेह।
तुलसी तहाँ न जाइए, कञ्चन बरसै मेह ॥१॥
अमिय गारि गारेउ गरल, नारि करी करतार।
प्रेम बैरकी जननि जुग, जानहि बुध न गँवार॥

गोस्वामीजीका युग

जिस समय गोस्वामीजीका प्रादुर्भाव हुआ उस समय देशमे उन यवन शासकोका बोलबाला था जो यहाँकी सस्कृति ही मिटा देना चाहते थे। उनका भी शासन स्थिर न होनेसे और दिन-रातके उनके पारस्परिक झगडोंसे जनताका जीवन अशान्त और कष्टमय हो गया था। उधर सन्तोने अपनी अटपटी बानियोंसे सारा सामाजिक जीवन ही विश्रृखल कर डाला था। इसके पूर्व वज्रयानियोंके वामाचारने हिन्दू समाजको जर्जर कर ही रखा था। जयदेव, विद्यापति और सूरने अपनी रचनाओसे हिन्दू समाजका हृदय रसाप्यायित अवश्य किया परन्तु सामाजिक जीवनकी मर्यादा और उसकी विधिका कोई स्वरूप या आदर्श सम्मुख न रहनेसे कर्त्तव्याकर्त्तव्यका निर्णय लोग नही कर पाते थे क्योकि कृष्णचरितके लोक-मगलमय लोक-कल्याणकारी, लोकानुरञ्जनकारी और लोक-सग्रही स्वरूपका आदर्श सामने नही आया। अत, रामके मर्यादापूर्ण जीवनका आदर्श उपस्थित करके गोस्वामीजीने यह कार्य पूर्ण कर दिया। यदि तुलसीदास न होते तो निश्चय ही हिन्दू समाज डूब गया होता। गोस्वामीजीने रामलीलाका व्यापक प्रचार करके रामके उदात्तचरित्रका लोक-जीवनमे व्यापक प्रचार कर दिया।

गोस्वामीजीका दार्शनिक पक्ष

गोस्वामीजी विशुद्ध रूपसे भक्त कवि थे। उन्होने अपने सभी ग्रन्थोमें एक मात्र भक्तिका ही प्रति-

पालन किया है। मानसमें स्थान-स्थानपर इसे योगादिसे श्रेष्ठ इसलिए बताया गया है कि भक्त अपने आराध्यके प्रति जब आत्मसमर्पण कर देता है तब उसे और कुछ करना शेष नहीं रह जाता। फिर तो उसकी सब व्यवस्था उसके योग क्षेमका पूरा दायित्व आराध्य पर ही आ जाता है। अन्य उपासना-पद्धतियोंमें जहाँ स्खलित और विचलित हो जानेके अनेक अवसर होते हैं वहाँ भक्तके सामने इसका कोई भय नहीं होता। वह सदा निर्भय रहता है। काकभुशुण्डिने जिस उत्तम ढंगसे भक्तिका प्रतिपादन किया और उसे श्रेष्ठतर साधन ठहराया है उसका खण्डन करके अन्य उपासना-विधियोंको श्रेष्ठतम नहीं बताया जा सकता। ज्ञान और कर्मकी महत्ता स्वीकार करते हुए भी भक्तिको उन्होंने श्रेष्ठ बताया है और इस युगमें उसे ही एक मात्र साधन माना है।

कलि हरि-भजन न साधन दूजा।

तुलसीदासजीने रामको ही अपना सर्वस्व और एक मात्र आराध्यदेव माना है। उन्होंने जगतको सत्य असत्य और सत्य भी असत्य भी माननेवालोंका खण्डन करके कहा है कि यह जगत सत् और असत्से विलक्षण (सदसद्विलक्षण) बताते हुए कहा है कि यह सत् है न असत् है न सत और असत् ही है।

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोउ मानै।

तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपुनि पहिचानै॥

तुलसीदासजीने रामका जो स्वरूप खड़ा किया है उसमें रामके जगदुद्धारक-स्वरूपके कारण उनके प्रति पूज्य भाव सदा बना रहता है। इसी कारण उनका लोकरञ्जनकारी रूप अधिक निखर आया है। यह विशेषता अन्य किसी कविमें नहीं मिलती। इस भावनासे प्रेरित होकर ही गोस्वामीजीने अपने पात्रोंको सर्वत्र आदर्श रूपमें उपस्थित करते हुए, उनके शील उनकी मर्यादा उनके चारित्रिक वैशिष्ट्यताका सदा ध्यान रखा है। ऐसे पात्रोंके चरित्रका उत्कर्ष दिखानेके लिये कुछ हीन चरित्रोंवाले पात्र भी आए हैं जिनके आ जाने से काव्यका सौष्ठव बढ़ गया है। शील और मर्यादाका ध्यान रखनेके कारण उन्होंने शृंगार का वर्णन भी नहीं अमर्यादित नहीं होने दिया है। सीताजीके रूप वर्णनम एक भी शब्द ऐसा नहीं है जिसे पढ़कर कोई नाक भौं सिकोड़ सके। इसी प्रकार उमा-महेश्वर-विवाहके पश्चात् गोस्वामीजीने स्पष्ट किया दिया है —

जगत-मातु-पितु सम्भु-भवानी।

तेहि सिंगार न कहौं बखानी।

इसी प्रकार भरतके शीलका वर्णन करके गोस्वामीजीने उसे पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है। ऐसे कितने ही प्रसंग मानसमें स्थान-स्थान पर भरे पड़े हैं।

मार्मिक स्थलोंका चित्रण

गोस्वामीजीकी सबसे बड़ी विशेषता मार्मिक स्थलोंके चित्रणमें पाई जाती है। जहाँ भी ऐसे प्रसंग आए हैं उनका वर्णन बहुत ही भावपूर्ण भाषामें किया गया है। जनककी फुलवारी राम-सीताका परस्पर दर्शन धनुष-भंगके पूर्व और पश्चात् सीताकी मन स्थिति राम-वनवासके पश्चात् भरतका प्रसंग लक्ष्मण मूर्च्छा रामके लौटने समय हनुमान और भरतका मिलन आदि ऐसे प्रसंग हैं जो बरबस मनको खींच लेते हैं। रामके लौटनेके ठीक पूर्व भरतकी मनःस्थिति देखिए —

जो करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी।
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ॥

गोस्वामीजीका काव्यानुपात

अनेक कवि अपने काव्योमें अनुपातका ध्यान नही रखते। किसी प्रसगमे यदि वे किसी वस्तुका वर्णन करने लगते है तो उसका विस्तार इतना बढा देते है कि मूल कथाका रस ही समाप्त हो जाता है। प्रबन्ध काव्योमे यदि अनुपातका ध्यान न रखा जाय तो वह व्यर्थ हो जाता है। गोस्वामीजीकी रामकथा (मानस) मे ऐसा दोष कही नही पाया जाता। उन्होने इतिवृत्त, वस्तु या व्यापारका वर्णन, भावव्यञ्जना और सम्वाद सबके अनुपातका इतना ध्यान रखा है कि कथाके प्रवाहमें कही भी व्याघात नही पडता। कोई भी वर्णन न तो लम्बा होने पाया है न न्यून।

रामकी कथाको रसपूर्ण बनाना ही उनका उद्देश्य था। अत न तो वे किसी प्रकारके चमत्कार-प्रदर्शनके फेरमें पडे और न शब्दोका रूप विकृत करनेके फेरमें। स्वाभाविक रूपसे जो कुछ जहाँ आता गया, अपने आप खपता गया।

इस प्रकार हम देखते है कि गोस्वामीजी केवल हिन्दीके ही नही विश्वके सर्वश्रेष्ठ कवियोंके मूर्धन्य हैं।

अवधीके अन्य कवि

गोस्वामीजीकी रचनाओंके अतिरिक्त कुछ अन्य लोगोकी भी रचनाएँ आगे चलकर इस प्रकार की मिलती है जिन्हे चरितकाव्यकी श्रेणीमें रखा जा सकता है। जौनपुरके जैन कवि बनारसीदास (१६४३ मे जन्म) ने अवधीमे 'अर्द्ध कथानक' नामक अपना जीवनचरित लिखा। इसमें सम्वत् १६९८ तकको घटनाएँ दी हुई है। हिन्दीकी यह पहली आत्म-कथा है, इसलिये इसका अधिक महत्त्व है। १८ वी शताब्दीमें रचा हुआ सबलसिंहका 'महाभारत', श्रीपति-कृत 'कर्णपर्व', क्षेमकरण-कृत 'कृष्णचरितामृत', सहजराम-कृत 'प्रह्लाद-चरित' और 'रघुवश दीप', मुकुन्दसिंह-कृत 'नलचरित', बुलाकीनाथ-कृत-रामायण, साधारण कोटिकी रचनाएँ है। १९ वी शताब्दीमें झामदासने 'श्रीरामायण', सूरजदासने 'रामरहारी' (लवकुश कथा), नवलदासने 'भागवत दशम स्कन्ध', बेनीबख्सने 'हरिचन्द-कथा', मधुसूदन चौबेने 'रामाश्वमेध' और सूरदासने 'रामजन्म' (विवाह तककी कथा) लिखा। २० वी शताब्दीमें सहजरामने रामायण (सुन्दरकाण्ड) लिखा। अभी कुछ दिन पूर्व श्री द्वारकाप्रसाद मिश्रने दोहे चौपाईकी पद्धतिमे अपना विशाल कथा-काव्य 'कृष्णायन' प्रस्तुत किया है।

मधुसूदन चौबे

ऊपर जो सूची दी गई है उनमेंसे दो-एकको छोडकर प्राय सभी अप्रकाशित है। मधुसूदन-कृत 'रामाश्वमेध' उत्तम काव्य है। मधुसूदनकी भाषा गोस्वामीजीकी भाषासे इतनी मिलती-जुलती है कि उसे रामचरित-मानसका परिशिष्ट कहा जा सकता है। 'रामाश्वमेध' की कथाका आधार 'पद्मपुराण' है।

गोस्वामीजीके अनुकरणमें चौबेजीको पर्याप्त सफलता मिली है। यद्यपि इसका प्रचार बहुत कम ही पाया है किन्तु ग्रन्थ अत्यन्त उच्च कोटिका है। कुछ उदाहरण लीजिए —

सिय रघुपति पदकञ्ज पुनीता। प्रथमहिं वन्दन करौं सप्रीता॥
मृदु मञ्जुल सुन्दर सब भाँती। ससिकर सरिस सुभग नखपाँती॥
चिन्तामनि पारस सुरधेनू। अधिक कोटिगुन अभिमत देनू।
जन-मन-मानस रसिक मराला। सुमिरत मञ्जन बिपति बिसाला।

मधुसूदन चौबे मथुराके रहनेवाले थे। इन्होंने इस ग्रन्थकी रचना सम्वत् १८३९ में की।

अध्यवसाय या रूपक-काव्य (ऐलेगरी)

अवधीके प्राप्त साहित्यमें काल-क्रमसे सबसे पहली रचना सूफी कवि मुल्ला दाऊद कृत 'चन्दायन' है। इसके पश्चात् ईश्वरदासकी सत्यवती कथा है जो कल्पित कथाका आधार लेकर चली है। सत्यवती कथामें पाँच-पाँच अर्धालियोंपर एक दोहा है और ५८ वें दोहेपर पुस्तक समाप्त हो गई है। इसकी भाषा अयोध्याके आस-पास की ठेठ अवधी है।

आगे चलकर सूफी कवियोंने यही क्रम ग्रहण किया। इस प्रकारकी सबसे पहली रचना कुतबन-की मृगावती (सम्वत् १५५८) है। इस कथाके द्वारा कविने प्रेममार्गके त्याग और कष्टका निरूपण करके साधकके भगवत्प्रेमका स्वरूप दिखाया है। इसके पश्चात् सम्वत् १६ २ में मंझनने मधुमालती की रचना की। मधुमालती के वर्णन अपेक्षाकृत अधिक हृदयग्राही और विस्तृत हैं। कल्पना भी विशद है। किसी समय मधुमालती और मृगावती का इतना अधिक चलन था कि बनारसीदासने भी अपने अर्ध-कथानकमें इनकी चर्चा की है।

जायसी

मलिक मुहम्मद जायसीका स्थान सूफी रचनाकारोंमें सबसे प्रमुख है। उनकी भाषामें भी ठेठ अवधी (पूर्वी) की जो मिठास है वह कम कवियोंमें पाई जाती है। जायसीके पूर्व सूफी कवियोंने अपने मतका प्रचार करनेके लिए कल्पित कथा अवधी भाषा और दोहे-चौपाईकी शैली अपना रखी थी। जायसीने भी यह सारा ढंग अपनाया किन्तु प्रेमाख्यान लिखनेकी उनकी प्रणाली अन्य सूफी कवियोंकी अपेक्षा अधिक सुन्दर है तथा उसमें सूफी भावोंका चित्रण भी मनोरम है। जायसीने अपने पूर्वके पाँच काव्योंकी चर्चा की है— स्वप्नावती मुग्धावती मधुमालती प्रेमावती और मुग्धावती। उनमेंसे मृगावती और मधुमालती का ही उद्धार हो सका है। जायसीके पश्चात् भी सूफी मतके प्रचारके उद्देश्यसे इस प्रकारके काव्य लिखे गए किन्तु इस क्षेत्रमें जो स्थान जायसीको प्राप्त हुआ वह औरोंको नहीं मिल सका।

जायसीका जीवनवृत्त

जायसीने अपना बहुत कुछ जीवन-वृत्त अपने ग्रन्थोंमें लिख दिया है। अपने जन्मस्थानके सम्बन्धमें उन्होंने लिखा है —

जायस नगर धरम अस्थानू। नगर क नाँव आदि उदयानू।

अपने जन्मकालके सम्बन्धमें आखिरी कलाममें इनका कहना है —

भा अवतार मोर नौ सदी। तीस बरस ऊपर कवि बदी।

फिर आखिरी कलामका रचनाकाल उन्होंने इस प्रकार दिया है —

नौ से बरस छतीस जो गए। तब एहि कथा क आखर कहे।।

इससे यह अर्थ निकलता है कि इनका जन्म हिजरी ९८ सौ सदीके पश्चात् हुआ। तीस वर्ष की अवस्थामें (९३६ मे) उन्होंने कविता की। इस प्रकार वे ९०६ में उत्पन्न हुए। विक्रम सम्वत्‌के अनुसार यह समय लगभग १५५५ मे पडता है।

पद्मावतके सम्बन्धमें जायसीने कहा है—

सन् नव सै सत्ताइस अहा। कथा अरम्भ बैन कवि कहा।।

इसके अनुसार २१ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने पद्मावतकी रचना आरम्भ की। किन्तु इस ग्रन्थके आरम्भमें शेरशाहकी प्रशसा है। इससे यह अनुमान होता है कि ग्रन्थ १९-२० वर्षोंकी लम्बी अवधिमें जाकर पूरा हुआ और शेरशाहवाला अश बादमें जोड दिया गया। जायसीकी मृत्युका काल ९४९ हिजरी लिखा है। इस प्रकार जायसीकी मृत्यु ४३ वर्षकी अवस्थामें हुई।

ये काने और कुरूप हानेके साथ ही कुछ ऊँचा भी सुनते थे। शेरशाह जब इन्हे देखकर एक बार हँसा तो इन्होंने निर्भीकतापूर्वक कहा—मोहिका हँसेसि कि कोहरेहि" (मुझपर हँसे या मेरे बनानेवाले कुम्हार (ईश्वर) पर। ये पहुँचे हुए फकीर माने जाते थे और इसीसे अमेठीके राजघरानेमें इनका बहुत सम्मान था। अमेठीसे दो मील दूर जगलमें ये रहा करते थे। वही इनकी मृत्यु भी हुई।

जायसीने अपने तीनो ग्रन्थोमें अपने गुरुका उल्लेख किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये चिश्ती सम्प्रदायके निजामुद्दीन औलियाकी शिष्य परम्परामें थे जिसकी दो शाखाएँ थी—एकमें सैयद अशरफ जहाँगीर हुए और दूसरीमें शेख मुहीउद्दीन हुए। इन्होंने दोनो परम्पराओका अपने गुरु रूपमें स्वीकार किया है।

जायसीकी रचानाएँ

जायसीके रचे ग्रन्थोकी सख्या बीस कही जाती है किन्तु इनमे आज तीन ही उपलब्ध है— 'अखरावट', 'आखिरी कलाम' और 'पदमावत'।

'अखरावट' को सूफी-तत्त्व-मजूषा कह सकते हैं। इसमें वर्णमालाके एक-एक अक्षरको लेकर ईश्वर, सृष्टि, जीव, ससारकी असारता, ईश्वरीय प्रेम और ईश्वर-प्राप्तिके साधनोका वर्णन, बोध-सुलभ रीतिसे किया गया है।

'आखिरी कलाम' मे कयामतके दिन अन्तिम निर्णय के दिन का वर्णन है।

'पद्मावत' ही वस्तुत उनको अमर बनानेवाला ग्रन्थ है। इस ग्रन्थसे विदित होता है कि जायसीको प्रेमकी पीरसे भरा कवि-हृदय मिला था। इसमें सात अर्द्धालियोके पश्चात् एक दोहेका क्रम रखा गया है। इसकी रचना मसनवी (दो-दो चरणोकी तुकान्त रचना) पद्धतिपर हुई है। आरम्भमें ईश्वर, मुहम्मद

साहब खलीफाओं और तत्कालीन राजा तथा गुरुकी स्तुति की गई है। इसके पश्चात् कथाका प्रारम्भ किया गया है जो सर्गबद्ध न होकर प्रसंगबद्ध है। इसमें चित्तौड़की महारानी पद्मिनीको आधार बनाकर एक कल्पित कथाका रूपक खड़ा करके उस कथाके माध्यमसे सूफी सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया गया है। इसीलिए कहानीके उस भागमें जहाँ प्रेम-सम्बन्धी व्यापारोंका वर्णन आया है वहाँ ग्रन्थ बहुत ही सरस तो हो ही गया किन्तु ग्रन्थकारने सूफीवादके प्रेम-पन्थका भी भली-भाँति व्यक्त करनेका अवसर हाथसे नहीं जाने दिया। इसका पूर्वार्द्ध सर्वथा कल्पित है। अत यह शुद्ध रूपक-काव्य है। केवल पात्र और बादकी कुछ घटनाएँ ऐतिहासिक हैं। इसमें ५८ प्रसंग हैं जिनमें चित्तौड़के राजा रत्नसेन और सिंहलकुमारी पद्मिनीके विवाहकी कथा तथा आगे चलकर अलाउद्दीनके पद्मिनीके विवाहकी कथा तथा आगे चलकर अलाउद्दीन द्वारा पद्मिनीकी ख्याति सुनकर चित्तौड़पर आक्रमण करने पद्मिनीके कौशलसे अलाउद्दीनके मूर्ख बन जाने तथा चित्तौड़में प्रवेश करनेपर पद्मिनीके स्थानपर राखका ढेर पानेका विवरण विस्तारके साथ दिया हुआ है।

जायसीकी भाषा

हम पहले बता चुके हैं कि पश्चिमी अवधीपर ब्रजभाषाका प्रभाव कुछ-कुछ पड़ा है। इसका मुख्य कारण यह है कि अवधीके अधिकांश रचनाकार, विशेषकर सूफी कवि पठित नहीं थे। उन्होंने इस बातका विचार करके लिखा ही नहीं कि हम अवधी लिख रहे हैं या ब्रज-भाषा। उन्होंने अपने आस-पासकी भाषामें रचना की। यही उनकी बोलचालकी भाषा थी। अन्य प्रदेशवालोंसे भी उनका सम्पर्क रहता था इसलिए उनकी कवितामें बोलचालकी भाषाके भी बहुत शब्द आ गए हैं। काव्य-रचनाके प्रसंगमें उपयुक्त शब्द न मिलनेपर शब्दोंको तोड़ने-मरोड़नेकी प्रवृत्ति अवधी और ब्रज भाषा दोनोंके कवियोंमें बराबर मिलती है। जायसी भी इस दोषके अपवाद नहीं थे। उन्होंने बराबर अन्य प्रदेशोंकी भाषाके शब्दोंका प्रयोग शुद्ध रूपमें ही किया है। नीचे हम इस प्रकार के कुछ उदाहरण दे रहे हैं —

१– बैठि रहा सगरौ ससारा।
२– लागेउ माघ परै अब पाला।
३– ऐसे जानि मन गरब न होई।

इन उदाहरणोंमें सगरौ शब्द शुद्ध रूपसे ब्रज भाषाका है। लागेउ ब्रजभाषाके लाग्यौ का ही रूप है। अवधी रूप लगा होगा। ऐसे भी ब्रज भाषाके ऐसो का एक रूप है जिसमें एक मात्रा घटा दी गई है। अवधीमें इसका रूप अस या अइस होगा। इस प्रकारके प्रयोग पद्मावतमें एक दो नहीं सैकड़ों पाये जाते हैं।

बिरिछ उपारि पेड़ि स्यों लेई।

स्यों शब्द बुन्देलखण्डी है। इसका प्रयोग सह के स्थानपर होता है। केशवने लिखा है—

अमित्या सगौरह राजत है। जायसीने अरबी-फारसीके कठिन और दुर्बोध शब्दोंका भी प्रयोग पर्याप्त सख्यामें किया है। संस्कृतके तत्सम शब्दोंका प्रयोग भी कहीं कहीं पाया जाता है। इनके अतिरिक्त जायसीकी भाषामें शब्दोंके बिगड़े हुए रूप कम नहीं मिलते —

१- कीन्हेसि राकस भूत परीता।
२- कीन्हेसि भोकस देव दईता।
३- वह अवगाह दीन्ह तेहि हाथी।

परीता, दईता और हाथी शब्द क्रमश 'प्रेत, दैत्य और हाथ' के लिए आए है। राजस्थानीके चारण कवियोकी भाँति उन्होने 'सुक्ख सुहेला उग्गवै, दु ख झरे जिमि मेह' भी लिखा है।

ऊपर दिए हुए उदाहरण इस बातके सूचक है कि जिस ग्रन्थमे इस प्रकारके प्रचुर प्रयोग हुए है उसकी भाषा ठेठ अवधी नही कही जा सकती। यह अवश्य है कि जायसीका पद्मावत मुख्य रूपसे बोलचालकी अवधीमें है और अन्य सूफी कवियोने जो मार्ग दिखाया था उसपर चलकर जायसीने अवधीमे ग्रन्थ रचना करनेमे पर्याप्त सफलता प्राप्त की।

जायसीका वर्ण्य-विषय

जायसीपर विचार करते समय केवल पद्मावतकी ही बात सामने आती है। काव्यकी दृष्टिसे उनकी अन्य रचनाओका कुछ भी महत्त्व नही है। पद्मावतमें चितउर (चित्तौड) के राजा रत्नसेनका सिहल कुमारी पद्मावतीके साथ विवाह और अन्तमे युद्धमे रत्नसेनके खेत रहने तथा पद्मावतीके सती हो जानेका वर्णन है। इसमें विवाहतककी कथा कल्पित है और आगेकी ऐतिहासिक किन्तु यह कथा ऐतिहासिक काव्यकी दृष्टिसे नही, रूपक काव्यकी दृष्टिसे लिखी गई है जैसा कि जायसीने ग्रन्थकी समाप्ति पर स्वय कहा है —

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनी चीन्हा।
गुरू सुआ जेई पन्थ दिखावा। बिनु गुरु जगतको निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धन्धा। बाँचा सोई न एहि चित बन्धा।
राघवचेतन सोई सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू।।

इसलिए जायसीका वर्ण्यविषय तो है सूफी मत जिसके प्रचारके लिए कविने हिन्दू समाजमें प्रचलित कहानीको हिन्दुओकी बोलीमें इस सहृदयताके साथ कही कि उनके जीवनकी मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओंके साथ कविके हृदयका उदारतापूर्ण पक्ष भी सामने आ गया। कुतबन और मझनने जो मार्ग प्रदर्शित किया था उसपर चलने, उसको पुष्ट करने और पद्मावतके वर्ण्य-विषय द्वारा हिन्दुओ और मुसलमानोंके रागात्मक सम्बन्ध दृढ करनेमें जायसीको अद्भुत सफलता मिली।

जायसीकी काव्यगत विशेषताएँ

जायसीकी भाषामें बहुत दोष आ गए है फिर भी अवधीपर उनका असाधारण अधिकार था। उनकी भावव्यञ्जना, मार्मिकता और कवि-सुलभ प्रतिभा कही-कही अत्यन्त उत्कर्षपर पहुँच गई है। पद्मावतसे जायसीकी हिन्दू-भाव मर्मज्ञता और हिन्दू-पुराण-शास्त्रोकी अभिज्ञताका भली-भाँति परिचय मिलता है। इसी से वे हिन्दू जीवनके रहस्योंका चित्रण सहानुभूतिपूर्वक एव निरपेक्षताके साथ कर सके। रहस्यवादके चित्रणकी उनकी प्रणाली तथा वर्णन-शैली सभी उत्तम है। कथाका चुनाव करने और उसका

व्यक्त करनेमें भी उन्होंने अपनी कुशलता दिखाई है। कोई कल्पित कथा न लेकर उन्होंने ऐसी ऐतिहासिक कथा ली जिसपर प्रत्येक हिन्दू गर्व करता था और इसीलिए उस कथाके मर्मस्पर्शी स्थलोंका वर्णन करनेमें वे सफल हो सके। हाँ उस कथामें उन्होंने स्वच्छन्दतापूर्वक अन्य अनेक घटनाएँ यथास्थान जोड़ दी हैं।

जायसी और हिन्दी साहित्य

आचार्य शुक्लजीने जायसीके काव्यकी समीक्षा लिखकर वस्तुतः उसे प्राण-दान दिया। हिन्दीके कवियोंमें उनकी गणना पहले नहीं की जाती थी। इसका एकमात्र कारण यह था कि जायसीका ग्रन्थ फारसी लिपिमें लिखा गया था। उसमें सूफी मतका प्रतिपादन था और नायक-नायिकाके ऐतिहासिक होते हुए भी उसकी कथाधारा एकदम कल्पित था। इन सब कारणोंसे हिन्दू जनताको आकृष्ट करनेवाले तत्त्व उसमें बहुत कम थे। सूफीवाद भी कभी लोकप्रिय न हो सका अतः ग्रन्थका प्रचार भी बहुत ही कम हुआ। पहले कबीर और फिर तुलसी-सूर ऐसे छा गए कि केवल राम-कृष्ण सम्बन्धी काव्यके लिये ही स्थान रह गया। शृंगार और शौर्य-पराक्रम-सम्बन्धी काव्यके लिए कविताकी तबतक की मान्य परिभाषाओंके साथ भी जायसीकी कविता मेल नहीं खाती थी। इसीलिए उनका पद्मावत दबा पड़ा रहा।

रूपक काव्योंकी परम्परा जायसीके पश्चात् भी कुछ दिनों तक चलती रही। सूफी कवियोंमें जायसीके पश्चात् उसमान-कृत चित्रावली तथा नूरमुहम्मद-कृत इन्द्रावती और अनुराग-बाँसुरी का मुख्य स्थान है। शेख निसारने यूसुफ-जुलेखा और भूपनारायणने कथा चार दरवेश १९ वीं शताब्दीमें लिखी। २० वीं शताब्दीमें प्रतापगढ़के ख्वाजा अहमदने नूरजहाँ और गाजीपुरके मुहम्मद नसीरने चित्रमुकुटकी कथा एवं प्रेमदर्पण या यूसुफ-जुलेखा लिखा। ये समस्त रचनाएँ साधारण कोटि की हैं। वस्तुस्थिति यह है कि चरित काव्योंमें रामचरितमानस एवं रूपक काव्योंमें पद्मावतके समीप तक भी पहुँच सकने वाले ग्रन्थ नहीं तैयार हो पाए, उनके जोड़का पाना तो दूरकी बात थी।

द्वारकाप्रसाद मिश्र

द्वारकाप्रसाद मिश्र मध्यप्रदेशके रहनेवाले हैं। रामायणके ढंगपर उन्होंने कई वर्षोंके परिश्रमके पश्चात् कृष्णायन नामका एक महाकाव्य दोहा-चौपाईके क्रमसे कृष्णचरितपर लिखा। यह श्रीकृष्णके बिखरे हुए चरित्रोंको एक सूत्रमें पिरोकर प्रबन्धके रूपमें लिखा गया है और भाषा तथा शैलीकी दृष्टिसे तुलसीके मानसकी छाया ग्रहण की गई है। इसमें एक ओर पुरानी परम्पराको विकसित करनेका प्रयास है दूसरी ओर यह सम्मार्जित संस्कृतनिष्ठ भाषामें नवीन व्याख्या विचार और अभिव्यक्तिसे युक्त है।

कृष्णायनकारने यह सिद्ध कर दिया है कि अवधीमें अब भी प्रबन्धरचना और चरित्र-सर्जनकी शक्ति उसी प्रकार मौलिक रूपमें विद्यमान है जिस प्रकार तीन चार सौ वर्ष पूर्व थी।

अबतक अवधीका राम शील शक्ति और सौन्दर्यका प्रतीक था किन्तु उस कृष्णायनने भोग और योग राग और विराग शक्ति और दया उत्साह और पराक्रम राजनीति और धर्मकी वह समन्वयकारी शक्ति दी जिसमें सांस्कृतिक पुट लिए हुए प्रायः सभी आदर्शोंका उद्बोधन हुआ। इसके कृष्ण विद्यापतिके रसिया सूरके दैवी आगरोंके पूर्ण अवतारी रीतिकालके छैले और भागवतकारके परात्पर ब्रह्म ही नहीं वरन् महान्

क्रान्तदर्शी कूट राजनीतिज्ञ, कुशल राजा, कर्मठ कर्मयोगी और लोकप्रिय महापुरुष भी हैं। अत्याचारोका विरोध एव दमन करनेके साथ ही साथ नाशमेसे निर्माण और प्रलयके पेटसे सृष्टिके अकुर निकालनेमे समर्थ युगके नेताके रूपमे प्रतिष्ठित है।

इस दृष्टिसे यह एक समन्वयकारी विशाल काव्यग्रन्थ है। इसमे कृष्णके कर्मयोगका विस्तार, बाल्यकाल, यौवनकाल, एव प्रौढावस्थाके उचित वात्सल्य, प्रेम और नैतिक बलमे सन्धि बनाकर पत्थरको फोडकर निकली हुई दूबके समान है।

सम्पूर्ण काव्यमे विकासात्मक, विचारात्मक एव भावात्मक तत्व भरे पडे है। इससे प्रबन्धत्वके साथ-साथ मार्मिक जीवन घटनाओका सविस्तर गुम्फन है।

अवधीका मुक्तक-काव्य

अवधीमे मुक्तक-काव्यकी रचना बहुत कम हुई है। गोस्वामीजीके कुछ दोहो, सोरठो और बरवै छन्दोके अतिरिक्त रहीमका बरवै नायिका भेद ही उस समयकी स्फुट रचनाएँ है। सूफी कवियोने कथाकाव्य ही लिखे। अवधीके अन्य रचनाकारोने भी कोई न कोई कथा ही लिखी है।

इधर कुछ दिनोंसे लोक-साहित्यकी बडी चर्चा है। सभी भाषाओ और बोलियोमे लोक-साहित्य-सम्बन्धी रचनाएँ धडाधड प्रस्तुत की जा रही हैं। नागरीके इस युगमे भी इन भाषाओ या बोलियोकी कुछ पत्रिकाएँ निकलती हैं। जब से लखनऊमें रेडियो केन्द्रकी स्थापना हुई है तबसे अवधी साहित्यिक-गीत और लोकगीत बराबर सुननेको मिला करते है। अवध प्रदेशके कवि सम्मेलनोमें भी इस प्रकारकी रचनाएँ सुननेमें आती है। इस समय अवधीमें रचना करनेवाले कितने ही अच्छे कवि है। द्वारका प्रसाद मिश्रका उल्लेख हम पहले ही कर चुके है। इस युगमे एकमात्र उन्होने ही अवधीमें प्रबन्ध काव्य लिखा है। अन्य सभी कवियोने मुक्तक ही लिखे है। चन्द्रभूषण त्रिवेदी (रमई काका) के तीन काव्य सग्रह (बौछार, भिनसार और फुहार) प्रकाशित हो चुके हैं। कानपुरके वागीश शास्त्रीका छोटा-सा सग्रह 'ठोकर' नामसे प्रकाशित हुआ। इनके अतिरिक्त, वशीधर शुक्ल, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, युक्तिभद्र दीक्षित, केशवचन्द्र वर्मा, बेकलजी, रमई काका, श्याम तिवारी आदि ने अवधीमें अच्छे-अच्छे गीतोकी रचना की है। आजका युग अधिकतर गीतकार ही उत्पन्न कर रहा है। अतएव अवधीमे भी गीत ही लिखे जा रहे है। अवधीके वर्तमान गीतकार किस प्रकारकी रचनाएँ कर रहे है इसके दो उदाहरण देकर अवधी साहित्यकी चर्चा समाप्त की जाती है —

एहो निसापति ! ऐसे सासनु तुम्हारे है कि,
गुनसील कम्बलमें सकट महान माँ।
जेतने तुम्हार तालमेली है सनेही मीत,
कुमुद कुमुदिनी है फूली अभिमान माँ॥
मेडहा सियार भरे लेत है भॅमारी निज,
गीदड उडान भरे अब तौ गुमान माँ।

चकई चकोर चुने चिनगी चिचारे मुंह।
तुम्हारे सहारे बढ़े उस्स आसमान मां॥

—रमई काका

यह कवित्त है। अवधीमे कवित्त सवैया आदिकी रचना प्राचीन कवियाने नहीं की है। इस प्रकारके प्रयाससे अवधी इस शैलीमें भी मँज जायगी। इस अन्योक्तिके व्याजसे वर्तमान शासनके-स्वरूप पर व्यंग्य किया गया है।

परियनके मुह महस विकनई चमकई मोरि दुवारि।
छाहें करय मिमियां मखमेली गलियन डारि फससाय।
फुलवनसे माती रस भीनी सोनावनि करय अघाय॥
बहिके पतियनि का झुलझ दे बेना सकइ बयारि।
परियनके मुंह मइस चिकनई चमकई मोरि दुवारि,
सावन रसय मकास बदरिया सम्मय बिजुरिया सारे
जागो धरती सलसमा पउइय उहे मोतिकी डारी॥
सराबोर दिन राति करय मन कजरिन के बौछारि।
परियनके मुंह मइस चिकनई चमकई मोरी दुवारि॥

—श्याम तिवारी

व्रजभाषा साहित्य

व्रजभाषाका केन्द्र चौरासी कोसमे फैला व्रजमण्डल है जिसके अन्तर्गत मथुरा वृन्दावन आगरा अलीगढ़ और हाथरसका प्रदेश आता है। लोक-व्यवहारमे भी व्रजभाषाका क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है। दक्षिण पश्चिममें यह आगरा भरतपुर करौली ग्वालियरके पश्चिमी भाग धौलपुर, जयपुरके पूर्वीभाग उत्तरकी ओर गुड़गांव उत्तर पूर्वकी ओर एटा मैनपुरी अलीगढ़ बुलन्दशहर, बदायूं बरेली होते हुए नैनीतालकी तराई तक फैली हुई है। बुन्देलखण्डमे भी कुछ परिवर्तनोके साथ व्रजभाषा ही बोली जाती है इसलिए बुन्देलखण्डीको अलग भाषा न मानकर इसीका रूप मानना चाहिए।

इस भाषाका प्रचार मध्यकालमे इतना अधिक था कि हिन्दी पढ़े-लिखे लोग इसी भाषामें अधिकतर रचनाएँ करते थे। हिमालयकी तराईसे लेकर विन्ध्यके उत्तरतक और राजस्थानके पूर्वी भागसे लेकर मगधके साहित्यमें इसी भाषाका एकछत्र राज्य था। प्रत्येक साहित्यकारको इसी भाषाका प्रेम ग्राम रचना पड़ता था तभी तो दासजी कह गए हैं—व्रजभाषा हेतु व्रजवास ही न अनुमानौ।

व्रज-भाषाकी उत्पत्ति शौरसेनी प्राकृतसे हुई है। शौरसेनी प्राकृतका क्षेत्र गुजरात राजस्थानसे लेकर देशके उस भूभागतक है जहांकी भाषा व्रज मण्डलकी भाषा है। आगे चलकर इसका भी क्षेत्र भिन्न होगया और राजस्थानमें राजस्थानीका गुजरातमें गुजरातीका तथा व्रजमण्डलमे स्थानीय बोलियोंका विकास हुआ और उनमे साहित्य-सर्जन भी होने लगा। लोक-व्यवहारकी ये भाषाएँ साहित्यकी भाषाएँ बन गई और उनके स्वरूप भी भिन्न हो गए। व्रजभाषामे रचे हुए प्रारम्भिक ग्रन्थोंकी आज कोई जानकारी हमें नहीं है।

पृथ्वीराज-रासोकी भाषापर ब्रजभाषाका पर्याप्त प्रभाव है। उसमे कितने ही शब्दरूप तो शुद्ध ब्रजभाषाके मिलते हैं। राजस्थानीके कितने ही कवियोंने पिंगलमे अर्थात् ब्रजभाषामें रचनाएँ की हैं। खुसरोकी भी कुछ रचनाएँ ब्रजभाषामे है। नामदेवने भी कुछ रचनाएँ शुद्ध ब्रजभाषामे की है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रजभाषाकी रचनाएँ हमें १३ वी शताब्दीसे बराबर मिलती आ रही है और जो रचनाएँ मिली है वे इतनी पुष्ट और शुद्ध भाषामे है कि प्रतीत होता है कि कमसे कम दो सौ वर्ष पूर्वसे उसमे साहित्य-रचना अवश्य होती आ रही होगी।

किन्तु कविवर सूरदासजीने उस साहित्यिक भाषाको लोक-व्यवहारकी भाषासे प्राणवान् बनाया और ब्रजराज कृष्णका गुणगान करके उसमे वह शक्ति फूंक दी कि ब्रज भाषा आगे चलकर एक प्रकारसे उत्तर भारतकी ऐसी राष्ट्रीय और साहित्यिक भाषा हो गई कि असमके कुछ कवियोने भी ब्रजभाषामें रचना की।

सूरदासजीके पश्चात् ब्रजभाषामे अधिकतर रचनाएँ कुछ समयतक तो कृष्णको ही लेकर हुई किन्तु आगे चलकर इसमे सभी प्रकारका साहित्य रचा जाने लगा। सूरदासजी ही वस्तुत ब्रजभाषाके प्रथम-महाकवि हैं। शिवसिंहसरोजमे तो उनके पूर्वके सेन नामक किसी कविका भी उल्लेख हुआ है और कालिदास त्रिवेदीने अपने हजारामें उक्त कविका एक कवित्त भी उद्धृत किया है किन्तु इस कविका काल भी सन्दिग्ध है और फिर उसकी अपेक्षा तो सन्त कवियो तथा नामदेवने ही ब्रजभाषामें बहुतसे पद कहे हैं। अत सेन कवि हों भी तो उसका कोई महत्व नही। ऐसी अवस्थामे महाकवि सूरदास और उनके परवर्ती कवियोपर ही यहा विचार किया जायगा।

यह बताया जा चुका है कि अवधी मुख्यतया कथा-काव्यकी भाषा है और ब्रजभाषा मुक्तक-काव्य की। ब्रजभाषाके आदि महाकवि सूरदासजीने जयदेव और विद्यापतिके दिखाए मार्गपर चलकर गेय पदो में कृष्णके बालजीवनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया। आगे जितने भी कृष्ण-भक्त कवि हुए सबने इसी प्रणाली पर कृष्णके बालजीवनके सम्बन्धमें रचनाएँ की। कृष्ण-साहित्यके अतिरिक्त ब्रजभाषामें रचना करनेवालोमें मुख्य स्थान रीत-विषयक साहित्य रचनेवालोका है। इनकी सभी रचनाएँ स्वभावत मुक्तक काव्यके रूपमें है। तीसरा वर्ग उन लोगोका है जिन्होने कवित्त सवैयोमें फुटकर रचनाएँ की है। किन्तु ऐसा नही है कि ब्रजभाषामें प्रबन्ध काव्योकी रचना हुई ही न हो। केशवकी रामचन्द्रिका ब्रजभाषामे ही है। यद्यपि कुछ लोग उसे फुटकर पदोका सग्रह भी कहते हैं किन्तु वह पूरेका पूरा काव्य ब्रजभाषामे प्रबन्धकाव्यकी शैलीमें रचा गया है। बीच-बीचमे ब्रजभाषामें प्रबन्ध काव्योकी रचनाएँ बराबर होती भी रही हैं। इनका क्रम आचार्य रामचन्द्र शुक्लजीके 'बुद्ध-चरित' और रत्नाकरजीके 'गगावतरण' तक चला आया है। ब्रज-भाषाकी मूल प्रकृति मुक्तक छन्दात्मक है और इसी प्रकारकी रचनाओका उसमे बाहुल्य है इसलिये पहले उसीपर विचार किया जायगा।

ब्रजभाषाका मुक्तक काव्य

ब्रजभाषाके मुक्तक काव्य-साहित्यको सुविधाकी दृष्टिसे तीन श्रेणियोमें बाँटा जा सकता है—१ श्रीकृष्ण सम्बन्धी काव्य, २ स्फुट काव्य और ३—रीति विषयक काव्य।

(क) श्रीकृष्ण सम्बन्धी काव्य

यद्यपि महाभारत तथा अनेक पुराणोंमें कृष्णचरित्रका वर्णन आया है तथापि ब्रजभाषामें कृष्ण चरित का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत ही है। किन्तु भागवतमें और इनकी कथामें एक बड़ा भारी अन्तर यह है कि कि भागवतमें जहाँ केवल श्रीकृष्णकी चर्चा आयी है वहाँ ब्रजभाषा-काव्यमें कृष्णके साथ राधाका नाम भी भी जुट गया है। राधाका व्यापक प्रचार जयदेवके गीत-गोविन्दसे हुआ जिसे विद्यापतिने ज्यों का त्यों ले लिया। यह नहीं कहा जा सकता कि जयदेवने राधाकी कल्पना ब्रह्मवैवर्त पुराणके आधारपर खड़ी की या उस समय लोकमें ही राधाका नाम इसी रूपमें प्रचलित था जिसे जयदेवने ले लिया। राधाकी चर्चा जयदेव से व्यापक हुई है बस इतना ही निश्चित है। ब्रज-भाषाके कवियोंमें सूरदासजी ही पहले पहल कृष्णके साथ राधाको ले के आए। फिर तो कृष्ण-सम्बन्धी कोई रचना ही राधाको अलग करके नहीं प्रस्तुत हुई।

विद्यापति संवत् १४६ में वर्तमान थे। उन्होंने राधाकृष्ण–सम्बन्धी पदोंकी रचना विशुद्ध शृंगारके भावसे की क्योंकि वे स्वयं शैव थे। वस्तुतः वैष्णव धर्मका देशव्यापी आन्दोलन तो १५ वीं और १६ वीं शताब्दीमें ही फैला जिसका विद्यापतिसे कोई लगाव न था। वैष्णव धर्मकी कृष्ण-भक्ति शाखाके उन्नायक महाप्रभु वल्लभाचार्यका प्रादुर्भाव संवत् १५३५ में हुआ। इसी समय बंगाल (तत्कालीन गौड़ प्रदेश) में चैतन्य महाप्रभु हुए जिन्होंने देशके पूर्वी अञ्चलमें कृष्ण भक्तिकी धारा बहाई।

महाप्रभु वल्लभाचार्यने अपने विशुद्धाद्वैती पुष्टिमार्गमें शंकराचार्यजीके मायावादका खण्डन करके भगवान्‌के सगुण रूपको वास्तविक रूप और निर्गुणको उसका तिरोहित रूप घोषित किया। भक्तिको भी पूर्ण रूपसे स्वीकार न करके उन्होंने उसका केवल प्रेमभावका पक्ष ग्रहण किया और कहा कि इस प्रेम-लक्षणा भक्तिकी ओर जीव तभी प्रवृत्त होता है जब उसपर श्रीकृष्णका अनुग्रह होता है। अपने मतका व्यापक प्रचार करनेके पश्चात् उन्होंने वृन्दावनमें अपनी गद्दी स्थापित की गोवर्धन पर्वतपर श्रीनाथजीका मन्दिर बनवाया तथा सेवाका ऐसा भारी उपक्रम रचा जिसमें भोग राग तथा विलासकी प्रधानता हुई। इसके लिये कृष्णका बाल्यरूप और उनकी ब्रजलीलाको ही ग्रहण करना आवश्यक था क्योंकि ब्रजसे मथुरा जानेके अनन्तर तो कृष्णका जीवन समर्पशील कर्मयोगीका हो गया। यही कारण है कि ब्रजभाषाके सभी कृष्ण-भक्त कवियोंने कृष्णके बालजीवनके ही गीत गाए। यह निश्चित था कि कृष्णका सम्पूर्ण जीवन चरित न लेनेसे उनके सम्बन्ध की काव्यकी रचनामें प्रबन्धरचना समावेश नहीं हो पाया और इसीलिये ब्रजभाषाके कवियोंकी रचनाओंमें जीवनकी अनेकरूपता और उसके मार्मिक पक्षोंका पूर्ण उद्घाटन न हो पाया। इस परम्पराके आदि कवि सूरदासजी श्रीमद्-वल्लभाचार्यजीके शिष्य थे।

सूरदासजी

ब्रजभाषाके श्रेष्ठतम कवि श्रीकृष्णके अनन्य भक्त उक्ति चारु अनुप्रास वर्णोंकी स्थिति तथा पदसे अद्भुत अर्थ उत्पन्न करनेवाले महाकवि सूरदासजी जिस प्रकार ब्रजभाषाके आदि कवि माने जाते हैं। उसी प्रकार अपने वर्ण्य विषयकी उत्तमताके कारण अन्तिम भी। सूरदासके सम्बन्धमें यह उचित उक्ति सर्वथा सटीक बैठती है —

तत्त्व तत्त्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी।
बची-खुची कबिरा कही, और कही सब जूठी॥

सूरदासजीका जीवनवृत्त

सूरदासजीका थोडा बहुत जो भी वृत्तान्त हमे मिलता है वह चौरासी वैष्णवनकी वार्तासे ही। यह वार्ता वल्लभाचार्यजीके पौत्र गोकुलनाथजीकी लिखी कही जाती है किन्तु उसमें स्थानस्थानपर श्रीगोकुलनाथजी जीने ऐसो कह्यो' आदि वाक्योसे यही प्रतीत होता है कि यह किसी अन्य व्यक्तिकी रचना है। फिर भी यह पोथी प्राचीन है और उक्त सम्प्रदायमे यह गोकुलनाथजीकी कृतिकी भाँति मान्य है।

इस पोथीसे सूरदासजीके सम्बन्धमें दो ही तीन बातें निश्चयात्मक रूपसे विदित होती है— १—सूरदासजी गऊघाटपर रहकर विनयके पद गाया करते थे। २— आचार्यजीने एक बार उनके पद सुने तो उनसे प्रसन्न होकर कहा कि तुम हमारे साथ चलो। ३—सूरदासजीको साथ लाकर उन्होने दीक्षित किया और फिर उन्हें श्रीनाथजीके मन्दिरकी कीर्तन-सेवा सौपी। ४— तबसे सूरदासजी गोवर्द्धन पर ही रहने लगे ५ वल्लभाचार्यजीके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथके सामने ही गोवर्द्धन की तलहटीमे परसोली ग्राममे उनकी मृत्यु हुई।

सूरदासजीका एक ग्रन्थ सूरसारावली है जिसकी रचना सूरसागरके पश्चात् हुई। उसमे सूरदासजीने अपनी अवस्था ६७ वर्ष की बताओ है।

'गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठि बरस प्रवीन।'

इस ग्रन्थके पश्चात् सूरदासजीने साहित्य-लहरी नामक एक ग्रन्थ की रचना की। यद्यपि इसमें जिस विषयका वर्णन है वह सूरदासजीकी प्रवृत्तिके अनुकूल नही लगता तथापि वह सूरदासकी रचना मानी जाती है। अत उसको आधार मानकर यदि चले तो साहित्य लहरीकी रचना सूरदासजीने सम्वत् १६०७ में की—

मुनि पुनि रसनके रसलेख।
दसन गौरी नंदनको लिखि सुबल सम्वत पेख॥

यदि दो-तीन वर्ष पूर्व सूरसारावलीका रचनाकाल माना जाय तो १६०४—१६०५ में सूरदासजी ६७ वर्ष के रहे होगे। इस प्रकार उनका जन्म सम्वत् १५३९—४० ठहरता है। उनकी अवस्था ८०—८२ वर्षकी माने तो वे सम्वत् १६२०—२१ में गोलोकवासी हुए होगे।

सूरदासजीको कुछ लोग चन्द वरदाईका वशज बताते है और अपने कथनकी पुष्टिमे साहित्य-लहरी का एक पद उपस्थित करते है किन्तु जब साहित्य-लहरी की प्रामाणिकता सन्दिग्ध है तब उक्त पदका ही क्या कहना जो बहुत समय सम्भव है किसी ब्रह्मभट्टने उसमें पीछे से जोड दिया हो क्योकि चौरासी वैष्णवनकी वर्ता की भावप्रकाश टीकाके रचयिता श्रीहरिरायने सूरदासजीको सीही ग्रामनिवासी जन्मान्ध सारस्वत ब्राह्मण कहा है।

भक्तमालमे भी सूरदासके जन्मान्ध होनेकी बात कही गई है। किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि सूरदासजी एक बार एक कुएँमें गिर पडे और छह दिन उसीमें पडे रहे। सातवें दिन श्रीकृष्ण प्रकट हुए और उन्हे दृष्टि

देकर अपना दर्शन दिया। सूरदासजीने भगवानसे वर माँगा कि जिन नेत्रोंसे मैंने आपका दर्शन किया है उनसे और कुछ न देखूँ तथा नित्य आपके भजन कीर्तनमें लगा रहूँ। फिर भगवान्ने उन्हें कुएँसे निकाला। सूरदासजी के नेत्रोंकी ज्योति जाती रही और वे व्रजमें आकर रहने लगे। इसके पश्चात् जब विट्ठलनाथजीने पुष्टिमार्गी आठ सर्वोत्तम कवियोंको चुनकर अष्टछापकी प्रतिष्ठाकी तो सूरदासजी उनमें प्रमुख हुए। उन्हें दिव्य दृष्टि अवश्य प्राप्त थी क्योंकि जिस दिन श्रीनाथजीका जैसा शृंगार होता वैसा ही वर्णन वे गाकर करते थे। एक दिन उनकी परीक्षा लेनेके लिये श्रीनाथजीको बिना वस्त्र पहनाए सूरदासजीसे कहा—गाइए और तत्काल सूरदासजी गा उठे—

आजु हरि देखेउँ नगन-नंगा ॥

सूरकी रचनाएँ

सूरके सम्बन्धमें कुछ सूक्तियाँ प्रसिद्ध हैं—

सूर सूर तुलसी ससी उडगन केशवदास
अबके कवि खद्योत सम, जहँतहँ करत प्रकास ॥
किधौं सूरको सर लग्यौ, किधौं सूरकी पीर।
किधौं सूरको पद लग्यौ, बेधत सकल सरीर ॥ (बरबस धुनत सरीर)

महाकवि सूरदासजीके नामसे तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—सूरसागर सूरसारावली और साहित्य-लहरी।

सूरसागर वस्तुतः सागर है। कहा जाता है कि सूरने भागवतके आधारपर सवालाख पदोंमें कृष्ण चरित्रका गान किया किन्तु आज तो इसका दसवाँ भाग भी उपलब्ध नहीं है। भागवतकी कथाके आधारपर रचे हुए सूरसागरके १२ स्कन्धोंमें अन्य अवतारोंकी कथाओंका भी वर्णन है किन्तु नवम स्कन्धमें रामावतारका वर्णन और दशम स्कन्धके पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्धमें श्रीकृष्णके चरित्रका वर्णन ही अधिक प्रशस्त है। इस दशम स्कन्धमें भी वर्णन तो अनेक विषयोंका है किन्तु विनयके पद बालकृष्णका वर्णन और भ्रमरगीत वाला अंश सर्वोत्तम है। सूरकी ख्यातिका एक मात्र आधार कृष्णकी बाललीलाओंका वर्णन है। यह वर्णन इतना विस्तृत और चित्रात्मक है कि उसके पश्चात् अब उस विषय पर कहनेके लिये कुछ नहीं रह जाता। भ्रमर गीतवाला अंश सूरसागरका सबसे मर्मस्पर्शी अंश है। यद्यपि भागवतमें ही यह अंश सर्वप्रथम आया है किन्तु सूरने स्वयं सगुणोपासना का पक्ष अपनी ओरसे जोड़ दिया है जिससे इसमें रोचकता एवं सरसता अधिक आ गई है यद्यपि सगुण पक्षका समर्थन सूरने तर्कके आधारपर नहीं अनुभूतिके आधारपर किया है।

सूरसारावलीमें सूरसागरकी ही कथाको संक्षेपमें कहा गया है। इसमें कथाके कुछ अंश या कृष्ण के जीवनकी कुछ घटनाएँ आगे-पीछे हो गई हैं। सागर और सारावलीमें एक अन्तर यह भी है कि सूरसागरमें जहाँ सरल और बोधगम्य भाषामें कथा गाई गई है वहाँ सारावलीमें कुछ कूट पद भी आए हैं।

साहित्य-लहरीमें सूरसागरके ही कुछ पद हैं ही अनेक पद ऐसे भी हैं जो नायिकाभेद अलंकार और रस आदिके उदाहरण स्वरूप रचे गए प्रतीत होते हैं। इसीलिए इसे सूरदासजीकी रचना न मानकर कोई कहते हैं कि भक्ते आसनमें जाकर भक्त ने ऐसी रचना कैसे कर डाली है ? जो भी हो साहित्य-लहरी उनकी ही रचना मानी जाती है।

गीतोकी परम्परा और सूरदासजी

प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ गाता है। गीतोकी यह परम्परा सम्भवत मानव-समाजमें किसी न किसी रूपमे तवसे चली आ रही है जव से मनुष्यने वोलना सीखा है। धीरे-धीरे जव मनुष्यमे साहित्यिक प्रवृत्तियो का उदय हुआ तो वह अपने इन गीतोको भी लिपिवद्ध करने और साहित्यिक रूप देने लगा। राधा-कृष्णको आलम्वन वनाकर साहित्यिक गीतोकी रचना सवसे पहले जयदेवने सस्कृत में की। व्रजमण्डलमे भी इस प्रकारके गीत लोक-भापामें प्रचलित थे जिनको आधार वनाकर भक्त-प्रवर सूरदासजीने उन्हे साहित्यिक रूप दिया और महाप्रभु वल्लभाचार्यजीके मुँहसे श्रीकृष्णकी लीलाएँ सुनकर उन्हे व्रजभापाके गेय पदोमें गाकर अमर कर दिया।

सूरदासजी व्रजभापाके प्रथम कवि है जिन्होने गीतोकी रचना राग-रागिनियोके निर्देशके साथ साहित्यिकभापामे की। सूरदासजीके शृगारी पदोपर विद्यापतिकी छाप भी निश्चित है क्योकि अनेक पद ऐसे मिलते है जिनमे दोनो कवियोने एक ही भावका एक ही प्रकारसे वर्णन किया है। आगे चलकर व्रजभापामें राधाकृष्ण विषयक गेय पदोकी रचना करनेवालोने सूरदासजीकी प्रणालीका ही अवलम्वन किया जो आजतक अविच्छिन्न रूपसे चली आई और जिसका लगभग सभीने अनुसरण किया।

सूरदासजीका काव्य-क्षेत्र

सूरदासजीके सम्वन्धमे प्रसिद्ध है कि वल्लभाचार्यजीसे दीक्षा लेनेके पूर्व वे मथुराके गऊघाटपर विनयके पद गाया करते थे। वल्लभाचार्यजीके सम्पर्कमें आनेपर वे कृष्ण-चरितका गान करने लगे। सन्तोके नीरस उपदेशोके कारण हिन्दुओके जीवनमे नीरसता आ गई थी। अतएव उसको सरसता प्रदान करना आवश्यक समझकर श्री वल्लभाचार्यजीने कृष्ण-चरितके वालरूप (जो मानव जीवनका प्रियतम और मधुरतम अग है।) की आराधनाका ही प्रचार किया। वस्तुत आराध्यके वालभावकी उपासनाकी कल्पना ही मधुर है। श्रीवल्लभाचार्य ही उसके प्रवर्तक है। गोस्वामी तुलसीदासजीने वाल रामकी आराधनाका समर्थन काक भुशुण्डिके मुखसे कराया है। वाल भावकी उपासनाके पीछे सवसे वडी वात यह है कि उपासक कालान्तरमें वालकोके समान निर्दोष, निरीह और निश्छल अवस्था प्राप्त कर लेता है। आगे भाँति-भाँतिके प्रेम-व्यापारोका प्रवेश हो जानेसे इस उपासना-पद्धतिमें राधाकृष्ण और गोपियोका प्राधान्य हो गया जिससे प्रेमी-प्रेमिका भावकी उपासना-पद्धति ही प्रवल होती चली गई।

सूरदासजीने भी यद्यपि इस प्रेमी-प्रेमिकाकी भक्ति-पद्धतिको लेकर वहुतसे अतिशय उद्दाम शृगारी पदोकी भी रचनाएँ की है और कृष्णके मथुरा गमनके पश्चात गोपियोकी अवस्थाओको लेकर विप्रलम्भ शृगार-के भी कितने ही पद गाए है तथापि कृष्णकी वालरूप-विपयक उनकी रचनाएँ अद्भुत है। वाल-सुलभ चापल्य और क्रीडाएँ इस विस्तारके साथ सूरकी रचनाओमें मिलती है कि लगता है सूरके समान वाल-प्रकृतिका ज्ञाता कोई हुआ ही नही। गोस्वामीजीका काव्यक्षेत्र सूरदासजीकी अपेक्षा कही अधिक व्यापक और विस्तृत है जिसमें उन्होने जीवनके सम्पूर्ण अगोका समावेश करके मनुष्यकी भिन्न-भिन्न दशाएँ और मानव-जीवनमे आने-वाली विविध परिस्थितियाँ उपस्थित करके उनके समाहारका प्रयत्न किया है, किन्तु सूरदासजीने जीवनका एक ही पक्ष लिया है और इस एक ही पक्षमें जो विस्तार और व्यापकता सूरदासजीने दिखाई है, वर्णनोकी जो

प्रचुरता और परिस्थितियोंकी जो विभिन्नता प्रस्तुत की वह किसी भाषाके किसी कविके काव्यमें नहीं आई है। ये वर्णन प्रचुर ही नहीं इतने मनोमुग्धकारी हैं कि मन उनमें ही रम जाता है। उदाहरण लीजिए —

१— मैया मैं नाहीं दधि खायो।
स्याल परै ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो।
देखु तुही छींके पर भाजन ऊँचे धर लटकायो॥
तुही निरखु नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायो।

२— सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुन चलत रेनु तनुमंडित मुख दधि लेप किए।

३— जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवन रेंगै कब धरनी पग द्वैक धरै।

४— मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
मोसौं कहत मोलको लीनौं, तोहि जसुमति कब जायो।
गोरे नन्द जसोदा गोरी, तू कत स्याम सरीर।

इस प्रकारके सैकड़ो पद सूरसागरमें भरे पड़े हैं।

सूरदासजीका संयोग शृंगार

बालरूपके अतिरिक्त शृंगारके उभय पक्षका भी वर्णन सूरदासजीने अत्यन्त उत्तम किया है। जब तक कृष्ण गोकुलमें रहे तब तकका उनका सारा जीवन संयोग शृंगारसे अभिभूत है। कृष्णके प्रति राधा और गोपियोंका जैसा प्रेम है वह वर्णनातीत है। इसकी ही छाया लेकर आगेके कवियोंने संयोग-शृंगार विषयक उत्कृष्टतम रचनाएँ आरम्भ कर दी। सूरदासजीने जिस भावसे इन पदोंकी रचना की वे तो रह गए, उनके बदले विद्यापतिका शृंगार भाव अधिक व्याप्त हो गया। सूरके दो-तीन उदाहरण लीजिए —

१— नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर स्याम भुजा अपने उर धरिया।
क्रीडा करत तमाल तरुनतर स्यामा-स्याम उमँगि रस भरिया॥
यों लपटाइ रहे उर-उर ज्यों मरकत मनि कंचनमें जरिया।

२— धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुँचावत एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी।

३— स्याम भए राधा बस ऐसे।
चातक स्वाति चकोर चन्द्र ज्यों चकवाक रवि जैसे॥

शृंगार-वर्णनके प्रसंगमें सूरदासजीने अन्योक्तियों और व्यंग्योक्तियोंकी ऐसी झड़ी लगा दी है कि उनका वर्णन स्वाभाविक और सरस हो उठा है। नेत्रोंका वर्णन मुरलीका वर्णन मुरलीके कारण गोपियोंके [illegible] कितनी मार्मिक है —

मुरली तऊ गोपालहि भावति ।
सुनु री सखी यदपि नंदनन्दन नाना भाँति नचावति ।
राखति अेक पाँव ठाढे करि, अति अधिकार जनावति ।

इस शृंगारके अन्तर्गत ही रासलीलाका वर्णन आता है। यद्यपि रासलीलाका वर्णन भागवतकी रासपचाध्यायीके आधारपर हुआ है तथापि सूरके वर्णनोमे स्वाभाविकता अधिक आ गई है।

सूरका वियोग शृंगार

सयोग शृंगार सम्बन्धी सूरदासजीका वर्णन तो बजोड है ही, उनका वियोग (विप्रलम्भ) शृंगार उससे भी बढकर है। इसका आरम्भ कृष्णके मथुरा चले जानेपर होता है। कृष्णके विरहमें गोपियोकी पीडा और वेदना का ऐसा स्वाभाविक चित्रण सूरदासजीने किया है कि उनके विरह-सागरमे डूबकर पाठकको सागरके पार जानेकी युक्ति ही नही सूझती। दो एक उदाहरण लीजिए —

१— बिनु गोपाल वैरिन भई कुजें।
तब वे लता लगति अति सीतल अब भई विषम ज्वालकी पुजें।

२— मधुबन तुम कत रहत हरे।
बिरह वियोग स्यामसुन्दरके ठाढे क्यो न जरे।

३— अरी मोहि भवन भयानक लागे माई स्याम बिना।
देखहि जाइ काहि लोचन भरि नन्दमहरिके अँगना।

सूरके वियोग वर्णनोंके भीतर परम्परासे चले आते हुए सभी प्रकारके उपालम्भ पाए जाते है।

सूरदासजीका भ्रमरगीत

वाग्वैदग्ध्यका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण यदि सूरसागर में कोई है तो वह है भ्रमरगीत। भ्रमरगीत विरह-काव्य है। यद्यपि उसमें गोपियोका विरह वर्णित है, किन्तु उसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि उसमे सूरने अत्यन्त मार्मिक ढगसे सगुणोपासनाका निरूपण किया है। उस समय निर्गुण पन्थियोका प्रभाव बहुत बढा हुआ था। इसलिए सूरने मार्मिक ढगसे सगुणोपासनाका प्रतिपादन किया और निर्गुण मत की ऐसी छीछालेदर की कि उसके पाँव ही उखड गए। गोपियोने अपनी वचन-वक्रतासे उद्धवको पछाड दिया। गोस्वामीजीने भी निर्गुण मतका खण्डन कागभुशुण्डिसे कराया है, किन्तु सूरदासजीका ढग निराला है। वे बहुत सीधे-सादे ढगसे गोपियोसे कहला देते है —

१— ऊधो तुम अपनो जतन विचारौ।
हितकी कहत कुहितकी लागै किन बेकाज ररौ।

२— जाहु जाहु आगे ते ऊधो पति राखति हौं तेरी।

गोपियोकी इन उक्तियोमें कितना सहज भाव, कितना सहज रोष है।

प्रचुरता और परिस्थितियोंकी जो विभिन्नता प्रस्तुत की वह किसी भाषाके किसी कविके काव्यमें नहीं आई है। ये वर्णन प्रचुर ही नहीं इतने मनोमुग्धकारी हैं कि मन उनमें ही रम जाता है। उदाहरण लीजिए —

१— मैया मैं नाहीं दधि खायो।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो।
देखु तुही छींके पर भाजन ऊँचे धर लटकायो॥
तुही निरखु नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायो।

२— सोभित कर नवनीत लिये।
घुटरुन चलत रेनु तनुमंडित मुख दधि लेप किए।

३— जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवन रेंगे कब धरनी पग द्वैक धरै।

४— मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी।
मोसों कहत मोलको लीनों तोहिं जसुमति कब जायो।
गोरे नन्द जसोदा गोरी तु कत स्याम सरीर।

इस प्रकारके सैकड़ों पद सूरसागरमें भरे पड़े हैं।

सूरदासजीका संयोग शृंगार

वात्सल्यके अतिरिक्त शृंगारके उभय पक्षका भी वर्णन सूरदासजीने अत्यन्त उत्तम किया है। जब तक कृष्ण गोकुलमें रहे, तब तकका उनका सारा जीवन संयोग शृंगारसे अभिभूत है। कृष्णके प्रति राधा और गोपियोंका जैसा प्रेम है वह वर्णनातीत है। इनकी ही छाया लेकर आगेके कवियोंने संयोग-शृंगार विषयक उत्कृष्ट रचनाएँ आरम्भ कर दी। सूरदासजीने जिस भावसे इन पदोंकी रचना की वे तो रह गए, उनके बदले विद्यापतिका शृंगार भाव अधिक व्याप्त हो गया। सूरके दो-तीन उदाहरण लीजिए —

१— नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर स्याम भुजा अपने उर धरिया।
क्रीड़ा करत तमाल तरुनतर स्यामा-स्याम उमँगि रस भरिया॥
यों लपटाइ रहे उर उर ज्यों मरकत मनि कंचनमें जरिया।

२— धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुँचावत एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी।

३— स्याम भए राधा बस ऐसे।
चातक स्वाति चकोर चन्द ज्यों चक्रवाक रवि जैसे॥

शृंगार-वर्णनके प्रसंगमें सूरदासजीने अन्योक्तियों और व्यंग्योक्तियोंकी ऐसी झड़ी लगा दी है कि उनका वर्णन स्वाभाविक और मार्मिक हो उठा है। नेत्रोंका वर्णन मुरलीका वर्णन मुरलीके कारण गोपियोंके मनमें ईर्ष्या आदि पढ़ने योग्य वर्णन हैं। मुरलीके सम्बन्धमें गोपियोंकी यह उक्ति कितनी मार्मिक है —

मुरली तऊ गोपालहिं भावति ।
सुनु री सखी यदपि नंदनन्दन नाना भाँति नचावति ।
राखति अेक पाँव ठाढे करि, अति अधिकार जनावति ।

इस शृगारके अन्तर्गत ही रासलीलाका वर्णन आता है। यद्यपि रासलीलाका वर्णन भागवतकी रासपचाध्यायीके आधारपर हुआ है तथापि सूरके वर्णनोमे स्वाभाविकता अधिक आ गई है।

सूरका वियोग शृगार

सयोग शृगार सम्बन्धी सूरदासजीका वर्णन तो बजोड है ही, उनका वियोग (विप्रलम्भ) शृगार उससे भी बढकर है। इसका आरम्भ कृष्णके मथुरा चले जानेपर होता है। कृष्णके विरहमें गोपियोकी पीडा और वेदना का ऐसा स्वाभाविक चित्रण सूरदासजीने किया है कि उनके विरह-सागरमे डूबकर पाठकको सागरके पार जानेकी युक्ति ही नही सूझती। दो एक उदाहरण लीजिए —

१– बिनु गोपाल बैरिन भईं कुजें ।
तब वे लता लगति अति सीतल अब भईं विषम ज्वालकी पुजें ।
२– मधुबन तुम कत रहत हरे ।
बिरह वियोग स्यामसुन्दरके ठाढे क्यों न जरे ।
३– अरी मोहि भवन भयानक लागे माई स्याम बिना ।
देखहि जाइ काहि लोचन भरि नन्दमहरिके अँगना ।

सूरके वियोग वर्णनोंके भीतर परम्परासे चले आते हुए सभी प्रकारके उपालम्भ पाए जाते है।

सूरदासजीका भ्रमरगीत

वाग्वैदग्ध्यका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण यदि सूरसागर में कोई है तो वह है भ्रमरगीत। भ्रमरगीत विरह-काव्य है। यद्यपि उसमें गोपियोका विरह वर्णित है, किन्तु उसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि उसमे सूरने अत्यन्त मार्मिक ढगसे सगुणोपासनाका निरूपण किया है। उस समय निर्गुण पन्थियोका प्रभाव बहुत बढा हुआ था। इसलिए सूरने मार्मिक ढगसे सगुणोपासनाका प्रतिपादन किया और निर्गुण मत की ऐसी छीछालेदर की कि उसके पाँद ही उखड गए। गोपियोने अपनी वचन-वक्रतासे उद्धवको पछाड दिया। गोस्वामीजीने भी निर्गुण मतका खण्डन कागभुशुण्डिसे कराया है, किन्तु सूरदासजीका ढग निराला है। वे बहुत सीधे-सादे ढगसे गोपियोसे कहला देते है —

१– ऊधो तुम अपनो जतन विचारौ ।
हितकी कहत कुहितकी लागै किन बेकाज ररौ ।
२– जाहु जाहु आगे ते ऊधो पति राखति हौं तेरी ।

गोपियोकी इन उक्तियोमे कितना सहज भाव, कितना सहज रोप है !

प्रचुरता और परिस्थितियोंकी जो विचित्रता प्रस्तुत की वह किसी भाषाके किसी कविके काव्यमें नहीं आई है। ये वर्णन प्रचुर ही नहीं इतने मनोमुग्धकारी हैं कि मन उनमें ही रम जाता है। उदाहरण लीजिए —

१— मैया मैं नाहीं दधि खायो।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो।
देखु तुही छींके पर भाजन ऊँचे धर लटकायो॥
तुही निरखु नान्हें कर अपने मैं कसे करि पायो।

२— सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुन चलत रेनु तनुमंडित मुख दधि लेप किए।

३— जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवन रेंगें कब धरनी पग द्वैक धरै।

४— मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी।
मोसों कहत मोलको लीनों, तोहि जसुमति कब जायो।
गोरे नन्द जसोदा गोरी, तु कत स्याम सरीर।

इस प्रकारके सैकड़ों पद सूरसागरमें भरे पड़े हैं।

सूरदासजीका संयोग शृंगार

वात्सल्यके अतिरिक्त शृंगारके उभय पक्षका भी वर्णन सूरदासजीने अत्यन्त उत्तम किया है। जब तक कृष्ण गोकुलमें रहे, तब तकका उनका सारा जीवन संयोग शृंगारसे अभिभूत है। कृष्णके प्रति राधा और गोपियोंका जैसा प्रेम है वह वर्णनातीत है। इनकी ही छाया लेकर बादके कवियोंने संयोग-शृंगार विषयक उत्कृष्ट रचनाएँ आरम्भ कर दी। सूरदासजीने जिस भावसे इन पदोंकी रचना की वे तो रह गए, उनमें बदले विद्यापतिका शृंगार भाव अधिक व्याप्त हो गया। सूरके दो-तीन उदाहरण लीजिए —

१— नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर स्याम भुजा अपने उर धरिया।
क्रीड़ा करत तमाल तरुनतर स्यामा-स्याम उमँगि रस भरिया॥
यों लपटाइ रहे उर-उर ज्यों मरकत मनि कंचनमें जरिया।

२— खेलु धुरत अति ही रति बाढ़ी।
एक बार दोहनि पहुँचावत एक बार जहँ प्यारी ठाढ़ी।

३— स्याम भए राधा बस ऐसे।
चातक स्वाति चकोर चन्द्र ज्यों चक्रवाक रवि जैसे॥

शृंगार-वर्णनके प्रसंगमें सूरदासजीने अन्योक्तियों और व्यंग्योक्तियोंकी ऐसी झड़ी लगा दी है कि उनका वर्णन स्वाभाविक और सरस हो उठा है। नेत्रोंका वर्णन, मुरलीका वर्णन, मुरलीके कारण गोपियोंके मनमें ईर्ष्या आदि बड़े अनूठे वर्णन हैं। मुरलीके सम्बन्धमें गोपियोंकी यह उक्ति कितनी मार्मिक है —

मुरली तऊ गोपालहिं भावति ।
सुनु री सखी यदपि नंदनन्दन नाना भाँति नचावति ।
राखति अेक पाँव ठाढे करि, अति अधिकार जनावति ।

इस शृंगारके अन्तर्गत ही रासलीलाका वर्णन आता है। यद्यपि रासलीलाका वर्णन भागवतकी रासपचाध्यायीके आधारपर हुआ है तथापि सूरके वर्णनोमे स्वाभाविकता अधिक आ गई है।

सूरका वियोग शृंगार

सयोग शृगार सम्बन्धी सूरदासजीका वर्णन तो बजोड है ही, उनका वियोग (विप्रलम्भ) शृगार उससे भी बढकर है। इसका आरम्भ कृष्णके मथुरा चले जानेपर होता है। कृष्णके विरहमें गोपियोकी पीडा और वेदना का ऐसा स्वाभाविक चित्रण सूरदासजीने किया है कि उनके विरह-सागरमे डूबकर पाठकको सागरके पार जानेकी युक्ति ही नही सूझती। दो एक उदाहरण लीजिए —

१– बिनु गोपाल बैरिन भईं कुजें ।
तब वे लता लगति अति सीतल अब भईं विषम ज्वालकी पुजें ।

२– मधुबन तुम कत रहत हरे ।
बिरह वियोग स्यामसुन्दरके ठाढे क्यों न जरे ।

३– अरी मोहि भवन भयानक लागे माई स्याम बिना ।
देखहि जाइ काहि लोचन भरि नन्दमहरिके अँगना ।

सूरके वियोग वर्णनोंके भीतर परम्परासे चले आते हुए सभी प्रकारके उपालम्भ पाए जाते है।

सूरदासजीका भ्रमरगीत

वाग्वैदग्ध्यका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण यदि सूरसागर मे कोई है तो वह है भ्रमरगीत। भ्रमरगीत विरह-काव्य है। यद्यपि उसमें गोपियोका विरह वर्णित है, किन्तु उसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि उसमे सूरने अत्यन्त मार्मिक ढगसे सगुणोपासनाका निरूपण किया है। उस समय निर्गुण पन्थियोका प्रभाव बहुत बढा हुआ था। इसलिए सूरने मार्मिक ढगसे सगुणोपासनाका प्रतिपादन किया और निर्गुण मत की ऐसी छीछालेदर की कि उसके पाँव ही उखड गए। गोपियोने अपनी वचन-वक्रतासे उद्धवको पछाड दिया। गोस्वामीजीने भी निर्गुण मतका खण्डन कागभुशुण्डिसे कराया है, किन्तु सूरदासजीका ढग निराला है। वे बहुत सीधे-सादे ढगसे गोपियोसे कहला देते है —

१– ऊधो तुम अपनो जतन विचारौ ।
हितकी कहत कुहितकी लागै किन बेकाज ररौ ।

२– जाहु जाहु आगे ते ऊधो पति राखति हौं तेरी ।

गोपियोकी इन उक्तियोमे कितना सहज भाव, कितना सहज रोप है !

प्रचुरता और परिस्थितियोंकी जो विचित्रता प्रस्तुत की वह किसी भाषाके किसी कविके काव्यमें नहीं आई है। ये वर्णन प्रचुर ही नहीं इतने मनोमुग्धकारी हैं कि मन उनमें ही रम जाता है। उदाहरण लीजिए —

१- मैया मैं नाहीं दधि खायो।
ख्याल परै ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो।
देखु तुही छींके पर भाजन ऊँचे धर लटकायो॥
तुही निरखु नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायो।

२- सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुन चलत रेनु तनुमंडित मुख दधि लेप किए।

३- जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवन रेंगै कब धरनी पग द्वैक धरै।

४- मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
मोतों कहत मोलको लीनों तोहिं जसुमति कब जायो।
गोरे नन्द जसोदा गोरी तू कत स्याम सरीर।

इस प्रकारके सैकड़ों पद सूरसागरमें भरे पड़े हैं।

सूरदासजीका संयोग शृंगार

वात्सल्यके अतिरिक्त शृंगारके उभय पक्षोंका भी वर्णन सूरदासजीने अत्यन्त उत्तम किया है। जब तक कृष्ण गोकुलमें रहे तब तकका उनका सारा जीवन ललाम शृंगारसे अभिभूत है। कृष्णके प्रति राधा और गोपियोंका जैसा प्रेम है वह वर्णनातीत है। इसकी ही छाया लेकर आगेके कवियोंने संयोग-शृंगार विषयक उत्तमोत्तम रचनाएँ आरम्भ कर दीं। सूरदासजीने जिस भावसे इन पदोंकी रचना की वे तो रह गए, उनके बदले विलासिताका शृंगार भाव अधिक व्याप्त हो गया। सूरके दो-तीन उदाहरण लीजिए —

१- नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर स्याम भुजा अपने उर धरिया।
क्रीड़ा करत तमाल तरुनतर स्यामा-स्याम उमँगि रस भरिया॥
यों लपटाइ रहे उर उर ज्यों मरकत मनि कंचनमें जरिया।

२- धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुँचावत एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी।

३- स्याम भए राधा बस ऐसे।
चातक स्वाति चकोर चन्द्र ज्यों चकवाक रवि जैसे॥

शृंगार-वर्णनके प्रसंगमें सूरदासजीने [illegible] और [illegible] जैसी झांकी दिखाई है [illegible] वर्णन [illegible] और [illegible] है। [illegible] वर्णन [illegible] वर्णन सूरजीके [illegible] [illegible] वर्णन है। [illegible] है —

मुरली तऊ गोपालहिं भावति ।
सुनु री सखी यदपि नंदनन्दन नाना भाँति नचावति ।
राखति अेक पाँव ठाढे करि, अति अधिकार जनावति ।

इस शृंगारके अन्तर्गत ही रासलीलाका वर्णन आता है। यद्यपि रासलीलाका वर्णन भागवतकी रासपचाध्यायीके आधारपर हुआ है तथापि सूरके वर्णनोमे स्वाभाविकता अधिक आ गई है।

सूरका वियोग शृंगार

सयोग शृंगार सम्बन्धी सूरदासजीका वर्णन तो बजोड है ही, उनका वियोग (विप्रलम्भ) शृंगार उससे भी बढकर है। इसका आरम्भ कृष्णके मथुरा चले जानेपर होता है। कृष्णके विरहमें गोपियोकी पीडा और वेदना का ऐसा स्वाभाविक चित्रण सूरदासजीने किया है कि उनके विरह-सागरमें डूबकर पाठकको सागरके पार जानेकी युक्ति ही नही सूझती। दो एक उदाहरण लीजिए —

१– बिनु गोपाल बैरिन भइं कुजें ।
तब वे लता लगति अति सीतल अब भइं विषम ज्वालकी पुजें ।
२– मधुबन तुम कत रहत हरे ।
बिरह वियोग स्यामसुन्दरके ठाढे क्यों न जरे ।
३– अरी मोहि भवन भयानक लागे माई स्याम बिना ।
देखहि जाइ काहि लोचन भरि नन्दमहरिके अँगना ।

सूरके वियोग वर्णनोंके भीतर परम्परासे चले आते हुए सभी प्रकारके उपालम्भ पाए जाते है।

सूरदासजीका भ्रमरगीत

वाग्वैदग्ध्यका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण यदि सूरसागर में कोई है तो वह है भ्रमरगीत। भ्रमरगीत विरह-काव्य है। यद्यपि उसमें गोपियोका विरह वर्णित है, किन्तु उसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि उसमे सूरने अत्यन्त मार्मिक ढगसे सगुणोपासनाका निरूपण किया है। उस समय निर्गुण पन्थियोका प्रभाव बहुत बढा हुआ था। इसलिए सूरने मार्मिक ढगसे सगुणोपासनाका प्रतिपादन किया और निर्गुण मत की ऐसी छीछालेदर की कि उसके पाँव ही उखड गए। गोपियोने अपनी वचन-वक्रतासे उद्धवको पछाड दिया। गोस्वामीजीने भी निर्गुण मतका खण्डन कागभुशुण्डिसे कराया है, किन्तु सूरदासजीका ढग निराला है। वे बहुत सीधे-सादे ढगसे गोपियोसे कहला देते है —

१– ऊधो तुम अपनो जतन विचारो ।
हितकी कहत कुहितकी लागै किन बेकाज ररो ।
२– जाहु जाहु आगे ते ऊधो पति राखति हौं तेरी ।

गोपियोकी इन उक्तियोमें कितना सहज भाव, कितना सहज रोष है।

मुरली तऊ गोपालहिं भावति ।
सुनु री सखी यदपि नंदनन्दन नाना भाँति नचावति ।
राखति अेक पाँव ठाढे करि, अति अधिकार जनावति ।

इस शृंगारके अन्तर्गत ही रासलीलाका वर्णन आता है। यद्यपि रासलीलाका वर्णन भागवतकी रासपचाध्यायीके आधारपर हुआ है तथापि सूरके वर्णनोमे स्वाभाविकता अधिक आ गई है।

सूरका वियोग शृंगार

सयोग शृंगार सम्वन्धी सूरदासजीका वर्णन तो वजोड है ही, उनका वियोग (विप्रलम्भ) शृंगार उससे भी वढकर है। इसका आरम्भ कृष्णके मथुरा चले जानेपर होता है। कृष्णके विरहमें गोपियोकी पीडा और वेदना का ऐसा स्वाभाविक चित्रण सूरदासजीने किया है कि उनके विरह-सागरमे डूवकर पाठकको सागरके पार जानेकी युक्ति ही नही सूझती। दो एक उदाहरण लीजिए —

१– बिनु गोपाल वैरिन भई कुंजे ।
तब वे लता लगति अति सीतल अब भईं विषम ज्वालकी पुंजे ।

२– मधुबन तुम कत रहत हरे ।
बिरह वियोग स्यामसुन्दरके ठाढ़े षयो न जरे ।

३– अरी मोहि भवन भयानक लागे माई स्याम बिना ।
देखहि जाइ काहि लोचन भरि नन्दमहरिके अँगना।

सूरके वियोग वर्णनोंके भीतर परम्परासे चले आते हुए सभी प्रकारके उपालम्भ पाए जाते हैं।

सूरदासजीका भ्रमरगीत

वाग्वैदग्ध्यका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण यदि सूरसागर मे कोई है तो वह है भ्रमरगीत। भ्रमरगीत विरह-काव्य है। यद्यपि उसमे गोपियोका विरह वर्णित है, किन्तु उसकी सवसे बडी विशेपता यह है कि उसमे सूरने अत्यन्त मार्मिक ढगसे सगुणोपासनाका निरूपण किया है। उस समय निर्गुण पन्थियोका प्रभाव वहुत बढा हुआ था। इसलिए सूरने मार्मिक ढगसे सगुणोपासनाका प्रतिपादन किया और निर्गुण मत की ऐसी छीछालेदर की कि उसके पाँव ही उखड गए। गोपियोने अपनी वचन-वक्रतासे उद्धवको पछाड दिया। गोस्वामीजीने भी निर्गुण मतका खण्डन कागभुशुण्डिसे कराया है, किन्तु सूरदासजीका ढग निराला है। वे वहुत सीधे-सादे ढगसे गोपियोसे कहला देते है —

१– ऊधो तुम अपनो जतन विचारौ ।
हितकी कहत कुहितकी लागै किन बेकाज ररौ ।

२– जाहु जाहु आगे ते ऊधो पति राखति हौं तेरी ।

गोपियोकी इन उक्तियोमे कितना सहज भाव, कितना सहज रोष है।

उनका तर्क भी देखिए —

१– मधुकर हम श्याम मति भोरी।
जाने तहँ योगकी बातें जो है नवलकिशोरी।
कंचनको मृग कबने देख्यो किन बाँध्यो गहि डोरी।
सबहै ज्ञान तुम्हारो परखल हम अहिरी मति भोरी।
सूरज कृष्णचन्द्रको चाहत अखियाँ तृषित चकोरी॥

२– निर्गुन कौन देसको बासी ?
मधुकर हँसि समुझाय सौंह दै बूझति साँच न हाँसी।

३– सुनिहैं कथा कौन निर्गुन की रचि पचि बात बनावत।
सगुन सुमेरु प्रगट लखियत तुम तृनकी ओट दुरावत॥

और अन्तमें वे यह ही कहती हैं —

साँच कहौं तुमको अपनी सौं बूझति बात निदाने।
सूरस्याम जब तुम्हैं पठाये तब नैकहु मुसुकाने॥

स्पष्ट बात है। उद्धव तुम अपना ज्ञान इतना बघार रहे हो किन्तु कहीं कृष्ण तुम्हे भेजते समय मुस्काए तो नहीं थे। यदि मुस्काए थे तो निश्चय ही उन्होंने तुम्हें यहाँ भेजकर मूर्ख बनाया है। कितनी स्वाभाविक और मनोहारिणी व्यञ्जना है।

सूरदासका कला-पक्ष

सूरका कला-पक्ष भी कम विचारणीय नहीं है। सूरदासजी जन्मान्ध थे और अधिक पढ़े-लिखे भी नहीं थे। वे आरम्भमें विनयके पद गाकर उसी प्रकार निर्वाह करते थे जिस प्रकार आजकल कितने ही सूर किया करते हैं किन्तु श्री वल्लभाचार्यजीके सम्पर्कमें आनेपर उन्होंने कृष्णकी भक्ति अपनाई। भक्ति भावना उन्मेष होनेसे प्राक्तन संस्कारोंके कारण उनमें काव्य शक्तिका स्फुरण हुआ और अपनी बोलचालकी भाषामें वे ऐसी प्रसिद्ध रचना करनेमें सफल हुए। इसलिए उनके काव्यमें भाव-पक्षके साथ कला-पक्षका जो उत्तम रूप व्यक्त हुआ है उसका महत्त्व स्वयं प्रकट है। इस दृष्टिसे देखनेपर सूरके काव्यमें सभी गुणों सभी वृत्तियों सभी मुख्य रसों और उपमा उत्प्रेक्षा तथा रूपक आदि अलंकारोंका स्वाभाविक समावेश मिलता है। अनेकों वे अपने आप आते और खपते गए हैं किन्तु जहाँ भी ऐसे वर्णन आए हैं वे मनको रससिक्त कर देते हैं। उत्प्रेक्षाओंका तो उन्होंने अत्यधिक प्रयोग किया है। उदाहरण लीजिए —

१– कटितट पीत बसन सुदेस।
मनहुँ नवघन दामिनी तजि रही सहज सुदेस॥

२– राजत रोम राजिव रेख।
नील घन मनो धूम धारा रही सूछम सेख॥

अनुप्रास भी सूरकी रचनाओंमें भरी रही बहुत अच्छे आए हैं। सूरने दृष्टिकूट पदोंकी भी रचनाएँ की हैं। सारंग शब्दको लेकर रचा हुआ यह पद देखिए —

१– पदमनि सारग एक मझारि।
आपुहि सारग नाम कहावै सारँग वरनी वारि।
तामे एक छबीलो सारग अर्ध सारँग उनहारि।
अध सारँग परि सकलइ सारग अधसारग विचारि॥
तामहि सारगसुत सोभित है ठाढी सारग सँभारि।
सूरदास प्रभु तुमहू सारग बनी छबीली नारि॥

इसी प्रकारका एक कूट पद यह है जिसमे सखी रूपकातिशयोक्ति-द्वारा राधामे बागका आरोप करती हुई कृष्णसे कहती है —

अदभुत एक अनूपम बाग।
युगल कमलपर गज क्रीडत है तापर सिंह करत अनुराग।
रुचिर कपोत बसे ता ऊपर ता ऊपर अमृत फल लाग॥
फलपर पुहुप पुहुपपर पल्लव तापर सुक पिक मृग मद काग।
खजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर इक मणिधर नाग॥

सूरदासजीने प्रकृति-वर्णन भी किया है, किन्तु वह सर्वत्र उद्दीपनके ही रूपमे आया है।
इस प्रकार भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनो दृष्टियोसे सूरदासजीकी रचनाएँ अपने क्षेत्रमे अद्वितीय है।

कृष्णकाव्यके अन्य रचनाकार

ब्रजभाषामे कृष्ण-काव्यकी एक परम्परा ही चल पडी जिसमें सूरदासजीके साथ नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास आदि तो वल्लभ-सम्प्रदायके अन्तर्गत अष्टछापके ही कवि है। इनके अतिरिक्त गदाधर भट्ट, मदनमोहन आदि चैतन्य सम्प्रदायके, श्री भट्टजी आदि निम्बार्क-सम्प्रदायके, हरिदासजी आदि हरिदासी सम्प्रदायके, श्री हितहरिवंश आदि राधावल्लभीय सम्प्रदायके और सैकडो अन्य भक्तिकालीन हुए जिनकी उदात्त परम्परामें मीरा और रसखान आदि हुए। यह क्रम अविच्छिन्न रूपसे नागरीदास, अलबेली ललितकिशोरी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, सत्यनारायण कविरत्न आदिकी रचनाओमें चलता हुआ अनूप शर्मा, रमाशकर शुक्ल 'रसाल', जगदम्बाप्रसाद 'हितैषी' और गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' वियोगी हरि, हृदयालु सिंह जैसे लब्धप्रतिष्ठ कवियोकी सजीव वाणीमें अबतक मुखरित हो रहा है।

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदासजीने ब्रजभाषामें गीतावली और कृष्णगीतावलीकी रचना अत्यन्त सरस ब्रज-भाषामें की है। उनकी रचनाओमें वही माधुर्य और रसात्मकता विद्यमान है जो सूर या अन्य ब्रजभाषाके प्रतिष्ठित कवियोमें है।

मीराबाई

मीराबाईका जन्म सम्वत् १५७३ में मेडतेके राठौड राजा रत्नसिंहके घर हुआ। इनका विवाह

आऊ आऊ बर गया साँवरा, कर गया कौळ अनेक ।
गिणते गिणते घिस गई उँगळी, घिस गई उँगळीकी रेख ।।
मैं बैरागिन आदि की थारी, म्हारे कदको सदेस ।

रसखान

रसखान राजवशके थे, यह तो उनके इस दोहेसे ही प्रकट है —

देखि गदर हित साहिवी, दिल्ली नगर मसान ।
छिनहि वादसा बसकी ठसक छाँडि रसखान ।।

इसके पश्चात् —

प्रेमनिकेतन श्रीबनहिं, आय गोबरधन धाम ।
लह्यौ सरन चित चाहिकै, जुगल-स्वरूप ललाम ।।

यह कहना तो कठिन है कि किस गदरकी इन्होने चर्चा की है और किस राजवशसे इनका सम्बन्ध था, किन्तु 'दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता' मे इनका उल्लेख हुआ है । साथ ही इन्हे गोस्वामी विट्ठलदासजीका कृपापात्र भी बताया गया है। विट्ठलनाथजी सम्वत् १६४० मे स्वर्गवासी हुए थे अत इसके आस-पास ही इनका रचनाकाल मानना चाहिए ।

रसखानकी रचनाएँ इतनी मधुर और हृदयस्पर्शी है कि मन उनमें तल्लीन हो जाता है। इनके शब्द-शब्दसे रस टपकता है। चलती, स्पष्ट और सरल भाषामे रसभाव-युक्त रचना कम ही कवियोने की है, और उनमें रसखानकी भी गणना की जाती है। इनकी एक विशेषता यह है कि इन्होने पद न गाकर कवित्त-सवैयोमें कृष्णकाव्यकी रचना की है। इन्होने दोहे भी रचे है जो प्रेमवाटिकामें सगृहीत है। ये ब्रजभूमि, व्रजराज और ब्रजमण्डलके अद्भुत प्रेमी थे। इनकी रचनाओके उदाहरण लीजिए —

मानुष हौं तो वहै रसखानि बसौं व्रज गोकुल गाँवके ग्वारन ।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरौ चरौं नित नन्दकी धेनु मँझारन ।।
पाहन हौं तो वहै गिरिको जो कियौ हरि छत्र पुरन्दर धारन ।
जौ खग हों तो बसेरौ करौं मिलि कालिंदि कूल कदम्बकी डारन ।। १।।
मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं गुज की माल गरे पहिरौंगी ।
ओढि पीताम्बर लै लकुटी बन गोधन ग्वारन सग फिरौंगी ।
भावतो सोई मेरो रसखान सो तेरे कहे सब स्वाग करौंगी ।।
पै मुरली मुरलीधरकी अधरान-धरा अधरा न धरौंगी ।।२।।
प्रेम फाँसि सों फँसि मरै, सोई जियै सदाहि ।
प्रेम मरम जाने बिना, मरि कोऊ जीवन नाहिं ।। (३)

रसखानके पश्चात् भी कितने ही कवियोने कृष्ण-चरितका गान किया है किन्तु उनमेसे अधिकाशने अन्य प्रकारके काव्योकी भी रचनाएँ की है।

उदयपुरके राणा-परिवारमें हुआ था। कुछ ही दिन पश्चात् इनके पतिका स्वर्गवास हो गया। आरम्भसे ही इनमें कृष्ण-भक्तिके अंकुर विद्यमान थे जो समय पाकर बढ़ते गए और इनके हृदयमें कृष्ण भक्तिका विशाल रूप उत्पन्न हो गया। मीराकी भक्ति प्रेमोन्मादिनी गोपियोंकी भक्ति-सी थी। इनके यहाँ कृष्ण-भक्तोंका नित्य ही जमघट लगा रहता था। मन्दिरमें भी जाकर ये कृष्ण-मूर्तिके समक्ष भजन-कीर्तन करती रहती थीं। इनके परिवारके लोग इससे बहुत ही रुष्ट रहा करते थे। कई बार उन्हें विष देकर मारनेकी भी चेष्टा की गई, परन्तु उसका कोई प्रभाव न पड़ा। इन्होंने द्वारिका और वृन्दावन की भी यात्राएँ कीं जहाँ इनका सर्वत्र देवियों-सा सम्मान होता था। इनकी मृत्यु सम्वत् १६ ३ में हुई। इसलिए गोस्वामीजीके साथ इनके पत्र-व्यवहारवाली बात निराधार प्रतीत होती है। इसी प्रकार रैदासके इनके गुरु होनेकी कथा भी असंगत है क्योंकि न तो रैदास ही मीराके समकालीन थे और न मीरा ही कभी काशी आई थी।

मीराकी भक्ति माधुर्य भावकी थी। वे कृष्णको पति-रूपमें भजती और कृष्णके अतिरिक्त संसारमें किसीको पुरुष नहीं मानती थी।

मीराके अधिकांश पद कृष्णकी रूप-माधुरी और बाल-लीलाको लेकर रचे गए हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने विनयके भी अनेक पद गाए हैं जिससे इनका दैन्य भाव ही प्रकट होता है। फिर भी मीरा अपनेको—

मीराबाई प्रेम दिवानी साँवलिया वर पाना।

ही कहती हैं।

मीराका प्रेमभाव वियोगपक्ष प्रधान है। इन्हें प्रियतमकी प्राप्ति नहीं हुई अतः उसके विरहमें वे तड़पती रहती हैं।

हेरी मैं तो दरद-दिवानी मेरो दरद न जानै कोय।

इस भावकी भक्तिके कारण कुछ लोग इनपर सूफियोंके रहस्यवादकी भी छाप मानते हैं, किन्तु प्रेमाभक्ति तो हमारे यहाँकी अत्यन्त प्रौढ़ भक्ति मानी गई है। सूफी लोग तो अपनेको प्रेमी और ईश्वरको प्रेमिका मानते हैं पर मीराने तो साक्षात् कृष्णको ही अपना प्रिय और प्रेमी माना है।

मीराकी रचनाएँ राजस्थानी राजस्थानी-मिश्रित ब्रज और शुद्ध ब्रजभाषामें हैं। यह कवयित्री नहीं थी भक्त थी। उसीके उद्वेगमें इनके भाव मुखरित हुए हैं। इसलिए जहाँ जो भाषा आ गई, आ गई। इन्होंने राग रागिनियोंमें पद गाए हैं। मीराकी रचनाओंसे दो उदाहरण दिए जा रहे हैं। मीराके नामसे चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं जिनमें एकका भी ठिकाना नहीं केवल स्फुट पद ही मिलते हैं—

१— बसो मेरे नैननमें नँदलाल।
मोहनि मूरति साँवरि सूरति नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजन्ती माल॥
छुद्र घंटिका कटितट सोभित नूपुर सब्द रसाल।
मीरा प्रभु सन्तन सुखदाई भक्त-बछल गोपाल।

२— बंसीवारा आज्यो म्हारे देस।
थारी साँवरी सूरत वारी बेस॥

आऊ आऊ बर गया साँवरा, कर गया कौळ अनेक।
गिणते गिणते घिस गई उँगळी, घिस गई उंगळीकी रेख ।।
मैं बैरागिन आदि की थारी, म्हारे कदको सदेस।

रसखान

रसखान राजवशके थे, यह तो उनके इस दोहेसे ही प्रकट है —

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं वादसा बसकी ठसक छाँडि रसखान ।।

इसके पश्चात् —

प्रेमनिकेतन श्रीबनहिं, आय गोवरधन धाम।
लह्यो सरन चित चाहिकै, जुगल-स्वरूप ललाम ।।

यह कहना तो कठिन है कि किस गदरकी इन्होने चर्चा की है और किस राजवशसे इनका सम्बन्ध था, किन्तु 'दो सौ वावन वैष्णवनकी वार्ता' मे इनका उल्लेख हुआ है। साथ ही इन्हे गोस्वामी विट्ठलदासजीका कृपापात्र भी बताया गया है। विट्ठलनाथजी सम्वत् १६४० मे स्वर्गवासी हुए थे अत इसके आस-पास ही इनका रचनाकाल मानना चाहिए।

रसखानकी रचनाएँ इतनी मधुर और हृदयस्पर्शी है कि मन उनमे तल्लीन हो जाता है। इनके शब्द-शब्दसे रस टपकता है। चलती, स्पष्ट और सरल भाषामें रसभाव-युक्त रचना कम ही कवियोने की है, और उनमें रसखानकी भी गणना की जाती है। इनकी एक विशेषता यह है कि इन्होने पद न गाकर कवित्त-सवैयोमें कृष्णकाव्यकी रचना की है। इन्होने दोहे भी रचे है जो प्रेमवाटिकामें सगृहीत है। ये ब्रजभूमि, व्रजराज और ब्रजमण्डलके अद्भुत प्रेमी थे। इनकी रचनाओके उदाहरण लीजिए —

मानुष हौं तो वहै रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँवके ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो चरौं नित नन्दकी धेनु मँझारन ।।
पाहन हौं तो वहै गिरिको जो कियो हरि छत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हो तो बसेरो करौं मिलि कालिंदि कूल कदम्बकी डारन ।। १ ।।
मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं गुज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढि पीताम्बर लै लकुटी वन गोधन ग्वारन सग फिरौंगी।
भावतो सोई मेरो रसखान सो तेरे कहे सब स्वांग करौंगी ।।
पै मुरली मुरलीधरकी अधरान-धरा अधरा न धरौंगी ।। २ ।।
प्रेम फाँसि सौं फँसि मरै, सोई जियै सदाहि।
प्रेम मरम जाने बिना, मरि कोऊ जीवन नाहि ।। (३)

रसखानके पश्चात् भी कितने ही कवियोने कृष्ण-चरितका गान किया है किन्तु उनमेसे अधिकाशने अन्य प्रकारके काव्योंकी भी रचनाएँ की है।

उदयपुरके राजा-परिवारमें हुआ था। कुछ ही दिन पश्चात् इनके पतिका स्वर्गवास हो गया। आरम्भसे ही इनमें कृष्ण भक्तिके अंकुर विद्यमान थे जो समय पाकर बढ़ते गए और इनके हृदयमें कृष्ण-भक्तिका विशाल तरु उत्पन्न हो गया। मीराकी भक्ति प्रेमोन्मादिनी गोपियोंकी भक्ति-सी थी। इनके यहाँ कृष्ण-भक्तोंका नित्य ही जमघट लगा रहता था। मन्दिरमें भी जाकर वे कृष्ण-मूर्तिके समक्ष भजन-कीर्तन करती रहती थी। इनके परिवारके लोग इससे बहुत ही रुष्ट रहा करते थे। कई बार उन्हें विष देकर मारनेकी भी चेष्टा की गई, परन्तु विषका कोई प्रभाव न पड़ा। इन्होंने द्वारिका और वृन्दावन की भी यात्राएँ की जहाँ इनका सर्वत्र देवियो-का सम्मान होता था। इनकी मृत्यु सम्वत् १६ ३ में हुई। इसलिए गोस्वामीजीके साथ इनके पत्र-व्यवहारवाली बात निराधार प्रतीत होती है। इसी प्रकार रैदासके इनके गुरु होनेकी कथा भी असंगत है क्योंकि न तो रैदास ही मीराके समकालीन थे और न मीरा ही कभी काशी आई थी।

मीराकी भक्ति माधुर्य भावकी थी। वे कृष्णको पति-रूपमें भजती और कृष्णके अतिरिक्त संसारमें किसीको पुरुष नहीं मानती थी।

मीराके अधिकांश पद कृष्णकी रूप-माधुरी और बाल-लीलाको लेकर रचे गए हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने विनयके भी अनेक पद गाए हैं जिससे इनका दैन्य भाव ही प्रकट होता है। फिर भी मीरा अपनेको—

मीराबाई प्रेम दिवानी साँवलिया वर पाना।

ही कहती है।

मीराका प्रेमभाव वियोगपक्ष-प्रधान है। इन्हें प्रियतमकी प्राप्ति नहीं हुई अतः उसके विरहमें वे तड़पती रहती हैं।

हेरी मैं तो दरद-दिवानी मेरो दरद न जाने कोय।

इस भावकी भक्तिके कारण कुछ लोग इनपर सूफियोंके रहस्यवादकी भी छाप मानते हैं, किन्तु प्रेमाभक्ति तो हमारे यहाँकी अत्यन्त प्रौढ़ भक्ति मानी गई है। सूफी लोग तो अपनेको प्रेमी और ईश्वरको प्रेमिका मानते हैं पर मीराने तो साक्षात् कृष्णको ही अपना प्रिय और प्रेमी माना है।

मीराकी रचनाएँ राजस्थानी राजस्थानी-मिश्रित व्रज और शुद्ध व्रजभाषामें हैं। यह कवयित्री नहीं थी भक्त थी। उसीके उद्वेगमें इनके भाव मुखरित हुए हैं। इसलिए जहाँ जो गाया जा गई, जा गई। इन्होंने राग-रागिनियोंमें पद गाए हैं। मीराकी रचनाओंसे दो उदाहरण दिए जा रहे हैं। मीराके नामसे चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं जिनमें एकका भी ठिकाना नहीं केवल स्फुट पद ही मिलते हैं—

१— **बसो मेरे नननमें नंदलाल।**
मोहनि मूरति साँवरि सूरति नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजन्ती माल॥
छुद्र घंटिका कटितट सोभित नूपुर सब्द रसाल।
मीरा प्रभु सन्तन सुखदाई भगत-बछल गोपाल।

२— **बंसीवारा आज्यो म्हारे देस।**
थारी साँवरी सूरत वारो बेस॥

आऊ आऊ बर गया साँवरा, कर गया कौळ अनेक।
गिणते गिणते घिस गई उँगळी, घिस गई उँगळीकी रेख॥
मैं बैरागिन आदि की थारी, म्हारे कदको सदेस।

रसखान

रसखान राजवशके थे, यह तो उनके इस दोहेसे ही प्रकट है —

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादसा बसकी ठसक छाँडि रसखान॥

इसके पश्चात् —

प्रेमनिकेतन श्रीबनहिं, आय गोबरधन धाम।
लह्यौ सरन चित चाहिकै, जुगल-स्वरूप ललाम॥

यह कहना तो कठिन है कि किस गदरकी इन्होने चर्चा की है और किस राजवशसे इनका सम्बन्ध था, किन्तु 'दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता' में इनका उल्लेख हुआ है। साथ ही इन्हे गोस्वामी विट्ठलदासजीका कृपापात्र भी बताया गया है। विट्ठलनाथजी सम्वत् १६४० मे स्वर्गवासी हुए थे अत इसके आस-पास ही इनका रचनाकाल मानना चाहिए।

रसखानकी रचनाएँ इतनी मधुर और हृदयस्पर्शी है कि मन उनमे तल्लीन हो जाता है। इनके शब्द-शब्दसे रस टपकता है। चलती, स्पष्ट और सरल भाषामे रसभाव-युक्त रचना कम ही कवियोने की है, और उनमे रसखानकी भी गणना की जाती है। इनकी एक विशेषता यह है कि इन्होने पद न गाकर कवित्त-सवैयोमें कृष्णकाव्यकी रचना की है। इन्होने दोहे भी रचे हैं जो प्रेमवाटिकामें सगृहीत है। ये ब्रजभूमि, ब्रजराज और ब्रजमण्डलके अद्भुत प्रेमी थे। इनकी रचनाओके उदाहरण लीजिए —

मानुष हौं तो वहै रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँवके ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरौ चरौं नित नन्दकी धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वहै गिरिको जो कियौ हरि छत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हौं तो बसेरौ करौं मिलि कालिंदि कूल कदम्बकी डारन॥१॥
मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं गुज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढि पीताम्बर लै लकुटी बन गोधन ग्वारन सग फिरौंगी।
भावतो सोई मेरो रसखान सो तेरे कहे सब स्वाग करौंगी॥
पै मुरली मुरलीधरकी अधरान-धरा अधरा न धरौंगी॥२॥
प्रेम फाँसि सों फँसि मरे, सोई जियै सदाहि।
प्रेम मरम जाने बिना, मरि कोऊ जीवन नाहि॥ (३)

रसखानके पश्चात् भी कितने ही कवियोने कृष्ण-चरितका गान किया है किन्तु उनमेंसे अधिकाशने अन्य प्रकारके काव्योकी भी रचनाएँ की है।

उदयपुरके राणा-परिवारमें हुआ था। कुछ ही दिन पश्चात् इनके पतिका स्वर्गवास हो गया। आरम्भसे ही इनमें कृष्ण भक्तिके अंकुर विद्यमान थे जो समय पाकर बढ़ते गए और इनके हृदयमें कृष्ण-भक्तिका विशाल रस उत्पन्न हो गया। मीराकी भक्ति प्रेमोन्मादिनी गोपियोंकी भक्ति-सी थी। इनके यहाँ कृष्ण-भक्तोंका नित्य ही जमघट लगा रहता था। मन्दिरमें भी जाकर ये कृष्ण-मूर्तिके समक्ष भजन-कीर्तन करती रहती थीं। इनके परिवारके लोग इससे बहुत ही रुष्ट रहा करते थे। कई बार उन्हें विष देकर मारनेकी भी चेष्टा की गई, परन्तु विषका कोई प्रभाव न पड़ा। इन्होंने द्वारिका और वृन्दावन की भी यात्राएँ की जहाँ इनका सर्वत्र देवियों सा सम्मान होता था। इनकी मृत्यु सम्वत् १६ ३ में हुई। इसलिए गोस्वामीजीके साथ इनके पत्र-व्यवहारकी बात निराधार प्रतीत होती है। इसी प्रकार रैदासके इनके गुरु होनेकी कथा भी असंगत है क्योंकि न तो रैदास ही मीराके समकालीन थे और न मीरा ही कभी काशी आई थी।

मीराकी भक्ति माधुर्य भावकी थी। वे कृष्णको पति-रूपमें भजती और कृष्णके अतिरिक्त संसारमें किसीको पुरुष नहीं मानती थी।

मीराके अधिकांश पद कृष्णकी रूप-माधुरी और बाल-लीलाको लेकर रचे गए हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने विनयके भी अनेक पद गाए हैं जिससे इनका दैन्य भाव ही प्रकट होता है। फिर भी मीरा अपनेको—

मीराबाई प्रेम दिवानी साँवलिया वर पाना।

ही कहती है।

मीराका प्रेमभाव वियोगपक्ष-प्रधान है। इन्हें प्रियतमकी प्राप्ति नहीं हुई अतः उसके विरहमें ये तड़पती रहती हैं।

हेरी म तो दरद-दिवाणी मेरो दरद न जाणै कोय।

इस भावकी भक्तिके कारण कुछ लोग इनपर सूफियोंके रहस्यवादकी भी छाप मानते हैं, किन्तु प्रेमाभक्ति तो हमारे यहाँकी अत्यन्त प्रौढ़ भक्ति मानी गई है। सूफी लोग तो अपनेको प्रेमी और ईश्वरको प्रेमिका मानते हैं पर मीराने तो साक्षात् कृष्णको ही अपना प्रिय और प्रेमी माना है।

मीराकी रचनाएँ राजस्थानी, राजस्थानी-मिश्रित ब्रज और शुद्ध ब्रजभाषामें हैं। वह कवयित्री नहीं थी भक्त थी। उसीके उद्‌गम इनके भाव मुखरित हुए हैं। इसलिए जहाँ जो भाषा आ गई आ गई। इन्होंने राग रागिनियोंमें पद गाए हैं। मीराकी रचनाओंसे दो उदाहरण दिए जा रहे हैं। मीराके नामसे चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं जिनमें एकका भी ठिकाना नहीं केवल स्फुट पद ही मिलते हैं—

१— बसे मेरे नैननमें नँदलाल।
मोहनि मूरति साँवरि सूरति नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजन्ती माल॥
छुद्र घंटिका कटितट सोभित नूपुर सब्द रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई भगत-बछल गोपाल।

२— बंसीवारा आज्यो म्हारे देस।
थारी साँवरी सूरत वारी बेस॥

इसके पश्चात् ब्रजभाषामे रचना करनेवालोमे कृष्ण-भक्त कवियोका ही क्रम आता है। बीच-बीचमे नीति, श्रृंगार आदिकी फुटकर रचनाएँ भी होती रही है—जिसका क्रम अवतक चला आया है। इस प्रकारके फुटकर काव्यकी रचना करनेवालोमें सर्वप्रथम जिस मुख्य कविका नाम आता है वह है ब्रह्मभट्ट गग कवि जो अकबरी दरबारके प्रमुख कवि थे। उस समय अकबरके दरबारमें नरहरि कवि जैसे प्रतिष्ठित कवि भी थे किन्तु गग जैसा स्वतन्त्र प्रकृतिका कवि उस दरबारमे दूसरा कोई नही था जिसे तुलसीके समान ही आदरणीय माना जाता था —

तुलसी गग दुवौ भए, सुकबिनके सरदार।
जिनकी कवितामें लही, भाषा बिबिध प्रकार॥

गंग

ये अत्यन्त निर्भीक और सरस हृदय कवि थे। रहीम इनको बहुत मानते थे। इनके एक ही छप्पयपर प्रसन्न होकर रहीमने उनको ३६ लाख रुपये दे डाले थे। गगकी अधिकतर रचनाएँ श्रृंगार-विषयक है किन्तु वीररस-सम्बन्धी रचनाएँ भी इन्होने की है। गगमे प्रचुर परिमाणमे वाग्वैदग्ध्य पाया जाता है। प्रसिद्ध है कि किसी नवाबने अप्रसन्न होकर इन्हे हाथीके पैरके नीचे दबवाकर मरवा डाला था। मरते समय इन्होने यह दोहा कहा था

कबहु न भडुवा रन चढे, कबहु न बाजी बब।
सकल सभाहि प्रनाम करि, बिदा होत कवि गग॥

इनका एक कवित्त नीचे दिया जा रहा है —

बैठी थी सखिन सग, पियको गवन सुन्यो,
सुखके समूहमें वियोग आग भरकी।
गग कहै त्रिविधि सुगन्ध ले पवन बह्यो
लागत ही ताके तन भई बिथा जरकी।
प्यारीको परसि पौन गयो मानसर पहँ।
लागत ही औरै गति भई मानसरकी।
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो।
जल जरि गयो पक सूख्यो भूमि दरकी।

इनका कोई ग्रन्थ नही मिलता, स्फुट छन्द ही मिलते है।

रहीम

नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना अकबरके सरक्षक बैरमखाँके पुत्र थे। इनका जन्म सम्वत् १६६० में हुआ था। ये सस्कृत, अरबी फारसी, तुर्की हिन्दी कई भाषाओके अच्छे विद्वान थे और सबमें बडी अच्छी कविताएँ करते थे। कवियो और विद्वानोका ये इतना आदर करते थे कि इनके दरबारमें कवियोकी भारी भीड लगी रहती थी। दानी और परोपकारी इतने बडे थे कि इन्होने अपना सब कुछ दीन-दुखियोको लुटा

आजकलके नये कवियों और तथाकथित विद्वानोंने भक्ति-काव्यपर यह आरोप लगाया है कि इसमें राष्ट्रीयताका अत्यन्त अभाव रहा है। उन महानुभावोंने झंडेके गीत लिखानो जागो भारत अब हमारा है को ही राष्ट्रीयता समझ लिया है। वे सम्भवतः यह नहीं जानते कि अपने देशके महापुरुषोंका जीवन-चरित उनके उदात्त गुण देशके पर्वतों नदियों और प्रदेशोंकी शोभा और सबसे अधिक एक भाषाके माध्यमसे सारे राष्ट्रमें शुद्ध नैतिक धार्मिक आध्यात्मिक और भावात्मक एकताकी प्रतिष्ठा करना ही वास्तवमें सबसे बड़ी राष्ट्रीयता है। बाहर राष्ट्रीयताका झूठा नारा लगाकर भीतर जातीयता प्रान्तीयता तथा संकुचित भाई भतीजेवादको आश्रय देना मिथ्या राष्ट्रीयता है। भक्त कवियोंने राष्ट्रभाषाके रूपमें ब्रजभाषाको प्रतिष्ठित करके सम्पूर्ण भारतीय जन-मानसमें इतनी भावात्मक एकता भरी कि हिन्दू और मुसलमान दोनों उस रसमें रमकर एकमना हो गए।

स्फुट काव्य

आजसे १ वर्ष पूर्वतक काव्य-रचनाके लिए व्यापक रूपसे ब्रजभाषाका ही प्रयोग होता रहा है। इसलिए सभी क्षेत्रोंके निवासी प्रायः अपने काव्योद्गार इसी भाषामें प्रकट करते रहे हैं। ब्रजभाषामें रचना करनेवाले कवियोंने अधिकतर मुक्तकोंकी ही रचना की चाहे वह कृष्णपरक रहा हो अथवा अन्य प्रकारका। कृष्ण-परक काव्य रचनेवालोंके अतिरिक्त जिन लोगोंने मुक्तक छन्दोंमें रचना की है उनकी दो श्रेणियाँ हैं—१—वीर, शृंगार आदि रसोंमें कविता करनेवाले सर्वथा स्वतन्त्र कवि तथा २—रीतिको आधार बनाकर काव्य रचनेवाले।

स्वतन्त्र कवि

साहित्य (काव्य) रचना करनेवालोंमें एक वर्ग सब कालमें और सब भाषाओंमें ऐसा रहता है जो किसी प्रकारकी परम्परासे बँधकर नहीं चलता और न किसी निश्चित उद्देश्य या निश्चित विषयको लेकर चलता है। इस प्रकारके कवि मौजमें आने और मनमें भावोद्रेक होनेपर कुछ लिख दिया करते हैं जो पीछे चलकर उनके नामपर संगृहीत हो जाता है। ब्रजभाषाके जिस पहले कविकी चर्चा मिश्र बन्धुओंने की है वह सेन कवि हैं। किन्तु पुष्ट प्रमाणोंके अभावमें यह कहना कठिन है कि वह सूरदासजीसे पहले हुआ या पीछे। उसका कोई ग्रन्थ भी प्रकाशमें नहीं आया। उक्त कविका केवल एक प्रचलित कवित्त नीचे दिया जा रहा है जिसकी भाषा अवश्य ही पुष्ट है —

जबते गोपाल मधुबनको सिधारे आली।
मधुबन भयो मधु दानव विषम सौ।
सेन कहै सारिका सिखण्डी खंजरीट सुक।
मिलिकै कलेस कीनों कालिन्दी कदमसौं।
जामिनी बरन यह जामिनी में जाम-जाम।
बधिककी जुगुति जनावि टेरि तम सौं।
देह करै करज करेजो लियो चाहति है
काग भई कोयल कगायो करै हमसौं॥

इसके पश्चात् ब्रजभाषामे रचना करनेवालोमे कृष्ण-भक्त कवियोका ही क्रम आता है। बीच-बीचमें नीति, शृंगार आदिकी फुटकर रचनाएँ भी होती रही हैं—जिसका क्रम अवतक चला आया है। इस प्रकारके फुटकर काव्यकी रचना करनेवालोमे सर्वप्रथम जिस मुख्य कविका नाम आता है वह है ब्रह्मभट्ट गग कवि जो अकबरी दरबारके प्रमुख कवि थे। उस समय अकबरके दरबारमे नरहरि कवि जैसे प्रतिष्ठित कवि भी थे किन्तु गग जैसा स्वतन्त्र प्रकृतिका कवि उस दरबारमे दूसरा कोई नही था जिसे तुलसीके समान ही आदरणीय माना जाता था —

तुलसी गग दुवौ भए, सुकबिनके सरदार।
जिनकी कवितामें लही, भाषा बिबिध प्रकार ॥

गग

ये अत्यन्त निर्भीक और सरस हृदय कवि थे। रहीम इनको बहुत मानते थे। इनके एक ही छप्पयपर प्रसन्न होकर रहीमने उनको ३६ लाख रुपये दे डाले थे। गगकी अधिकतर रचनाएँ शृगार-विषयक हैं किन्तु वीररस-सम्बन्धी रचनाएँ भी इन्होने की हैं। गगमें प्रचुर परिमाणमे वाग्वैदग्ध्य पाया जाता है। प्रसिद्ध है कि किसी नवाबने अप्रसन्न होकर इन्हे हाथीके पैरके नीचे दबवाकर मरवा डाला था। मरते समय इन्होने यह दोहा कहा था

कबहु न भडुवा रन चढे, कबहु न बाजी बब।
सकल सभाहि प्रनाम करि, बिदा होत कवि गग ॥

इनका एक कवित्त नीचे दिया जा रहा है —

बैठी थी सखिन सग, पियको गवन सुन्यो,
सुखके समूहमें वियोग आग भरकी।
गग कहै त्रिविधि सुगन्ध ले पवन बह्यो
लागत ही ताके तन भई बिथा जरकी।
प्यारीको परसि पौन गयो मानसर पहँ।
लागत ही औरै गति भई मानसरकी।
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो।
जल जरि गयो पक सूख्यो भूमि दरकी।

इनका कोई ग्रन्थ नही मिलता, स्फुट छन्द ही मिलते है।

रहीम

नवाव अब्दुर्रहीम खानखाना अकबरके सरक्षक बैरमखाँके पुत्र थे। इनका जन्म सम्वत् १६६० में हुआ था। ये सस्कृत, अरबी फारसी, तुर्की हिन्दी कई भाषाओके अच्छे विद्वान थे और सबमें बडी अच्छी कविताएँ करते थे। कवियो और विद्वानोका ये इतना आदर करते थे कि इनके दरबारमे कवियोकी भारी भीड लगी रहती थी। दानी और परोपकारी इतने बडे थे कि इन्होने अपना सब कुछ दीन-दुखियोको लुटा

आजकलके नये कवियों और तथाकथित विद्वानोंने भक्ति-काव्यपर यह आरोप लगाया है कि इसमें राष्ट्रीयताका अत्यन्त अभाव रहा है। उन महानुभावोंने झंडेके गीत, किसानो जागो, भारत वर्ष हमारा है को ही राष्ट्रीयता समझ लिया है। वे सम्भवतः यह नहीं जानते कि अपने देशके महापुरुषोंका जीवन चरित्र उनके उदात्त गुण, देशके पर्वतों, नदियों और प्रदेशोंकी शोभा और सबसे अधिक एक भाषाके माध्यमसे सारे राष्ट्रमें शुद्ध नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और भावात्मक एकताकी प्रतिष्ठा करना ही वास्तवमें सबसे बड़ी राष्ट्रीयता है। बाहर राष्ट्रीयताका झूठा नारा लगाकर भीतर जातीयता, प्रान्तीयता तथा संकुचित भाई-भतीजेवादको आश्रय देना मिथ्या राष्ट्रीयता है। भक्त कवियोंने राष्ट्रभाषाके रूपमें ब्रजभाषाको प्रतिष्ठित करके सम्पूर्ण भारतीय जन-मानसमें इतनी भावात्मक एकता भरी कि हिन्दू और मुसलमान दोनों उस रंगमें रंगकर एकमना हो गए।

स्फुट काव्य

आजसे १ वर्ष पूर्वतक काव्य-रचनाके लिए व्यापक रूपसे ब्रजभाषाका ही प्रयोग होता रहा है। इसलिए सभी क्षेत्रोंके निवासी प्राय अपने भावोद्गार इसी भाषामें प्रकट करते रहे हैं। ब्रजभाषामें रचना करनेवाले कवियोंने अधिकतर मुक्तकोंकी ही रचना की चाहे वह कृष्णपरक रहा हो अथवा अन्य प्रकारका। कृष्ण-परक काव्य रचनेवालोंके अतिरिक्त जिन लोगोंने मुक्तक छन्दोंमें रचना की है उनकी दो श्रेणियाँ हैं—१–वीर, शृंगार आदि रसोंमें कविता करनेवाले सर्वथा स्वतन्त्र कवि तथा २–रीतिको आधार बनाकर काव्य रचनेवाले।

स्वतन्त्र कवि

साहित्य (काव्य) रचना करनेवालोंमें एक वर्ग सब कालमें और सब भाषाओंमें ऐसा रहता है जो किसी प्रकारकी परम्परासे बँधकर नहीं चलता और न किसी निश्चित उद्देश्य या निश्चित विषयको लेकर चलता है। इस प्रकारके कवि मौजमें आने और मनमें भावोद्रेक होनेपर कुछ लिख दिया करते हैं जो पीछे चलकर उनके नामपर संगृहीत हो जाता है। ब्रजभाषाके जिस पहले कविकी चर्चा मिश्र बन्धुओंने की है वह सेन कवि हैं। किन्तु पुष्ट प्रमाणोंके अभावमें यह कहना कठिन है कि वह सूरदासजीसे पहले हुआ या पीछे। उसका कोई ग्रन्थ भी प्रकाशमें नहीं आया। उक्त कविका केवल एक प्रकाशित कवित्त नीचे दिया जा रहा है जिसकी भाषा अवश्य ही पुष्ट है —

जबते गोपाल मधुबनको सिधारे आली।
मधुबन भयो मधु दानव विषम सो।
सेन कहै सारिका सिखण्डी खंजरीट सुक।
मिलिकै कलेस कीनौ कालिन्दी कदमसों।
जामिनी बरन यह जामिनी में जाम-जाम।
बधिककी जुगुति जनावै टेरि तम सों।
देह करे करज करेजो लियो चाहति है
काम भई कोयल कसायो करै हमसों॥

इसके पश्चात् ब्रजभाषामे रचना करनेवालोमे कृष्ण-भक्त कवियोका ही क्रम आता है। बीच-बीचमे नीति, शृंगार आदिकी फुटकर रचनाएँ भी होती रही है—जिसका क्रम अबतक चला आया है। इस प्रकारके फुटकर काव्यकी रचना करनेवालोमे सर्वप्रथम जिस मुख्य कविका नाम आता है वह है ब्रह्मभट्ट गग कवि जो अकबरी दरबारके प्रमुख कवि थे। उस समय अकबरके दरबारमें नरहरि कवि जैसे प्रतिष्ठित कवि भी थे किन्तु गग जैसा स्वतन्त्र प्रकृतिका कवि उस दरबारमे दूसरा कोई नही था जिसे तुलसीके समान ही आदरणीय माना जाता था —

तुलसी गग दुवौ भए, सुकबिनके सरदार।
जिनकी कवितामें लही, भाषा बिबिध प्रकार॥

गंग

ये अत्यन्त निर्भीक और सरस हृदय कवि थे। रहीम इनको बहुत मानते थे। इनके एक ही छप्पयपर प्रसन्न होकर रहीमने उनको ३६ लाख रुपये दे डाले थे। गगकी अधिकतर रचनाएँ शृंगार-विषयक है किन्तु वीररस-सम्बन्धी रचनाएँ भी इन्होने की है। गगमे प्रचुर परिमाणमें वाग्वैदग्ध्य पाया जाता है। प्रसिद्ध है कि किसी नवाबने अप्रसन्न होकर इन्हे हाथीके पैरके नीचे दबवाकर मरवा डाला था। मरते समय इन्होने यह दोहा कहा था

कबहु न भडुवा रन चढे, कबहु न बाजी बब।
सकल सभाहि प्रनाम करि, विदा होत कवि गग॥

इनका एक कवित्त नीचे दिया जा रहा है —

बैठी थी सखिन सग, पियको गवन सुन्यो,
सुखके समूहमें वियोग आग भरकी।
गग कहै त्रिविधि सुगन्ध ले पवन बह्यो
लागत ही ताके तन भई बिथा जरकी।
प्यारीको परसि पौन गयो मानसर पहँ।
लागत ही औरै गति भई मानसरकी।
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो।
जल जरि गयो पक सूख्यो भूमि दरकी।

इनका कोई ग्रन्थ नही मिलता, स्फुट छन्द ही मिलते है।

रहीम

नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना अकबरके सरक्षक बैरमखाँके पुत्र थे। इनका जन्म सम्वत् १६६० में हुआ था। ये सस्कृत, अरबी फारसी, तुर्की हिन्दी कई भाषाओके अच्छे विद्वान थे और सबमें बडी अच्छी कविताएँ करते थे। कवियो और विद्वानोका ये इतना आदर करते थे कि इनके दरबारमें कवियोकी भारी भीड लगी रहती थी। दानी और परोपकारी इतने बडे थे कि इन्होने अपना सब कुछ दीन-दुखियोको लुटा

लिया फिर भी कभी नामकी कामना न की। इनका अन्तिम समय बड़े कष्टमें बीता और ये चित्रकूटपर जाकर रहने लगे। गोस्वामीजीसे भी इनकी मैत्री थी। यह प्रसिद्ध है कि इनके अनुरोधपर ही गोस्वामीजीने बरवै रामायण लिखा।

रहीम उच्च कोटिके परोपकारी और दानी सज्जन तो थे ही उन्होंने कवि-रूपमें भी बड़ा विशाल पाया था। रहीम मुख्यतः अपने दोहाके लिये ही प्रसिद्ध हैं। इनके दोहे सर्वोकी जिह्वापर नाचते रहते हैं। अपने दोहोंमें इन्होंने जीवनकी सच्ची परिस्थितियोंका अत्यन्त मार्मिक अनुभव व्यक्त किया है। इसीसे इनके दोहे इतने लोकप्रिय हो पाए हैं। इन्होंने कभी कल्पनाकी उड़ान नहीं भरी। दोहोंके अतिरिक्त रहीमने बरवै कवित्त सोरठे आदि भी लिखे हैं और इन सबमें इतनी अद्भुत सफलता प्राप्त की है कि उनकी जोड़के कवि अधिक नहीं हुए। ब्रजभाषा और अवधी दोनोंमें इनकी रचनाएँ सफल हुई हैं। इनका बरवै नायिका-भेद अवधीमें लिखी अत्यन्त मधुर रचना है। इसमें रस छलका पड़ता है। रहीमका एक भी छन्द ऐसा नहीं मिलेगा जो सरस न हो मधुर न हो।

इनकी कुछ रचनाएँ हिन्दी-संस्कृत-संयुक्त कुछ संस्कृत-फारसी संयुक्त और कुछ केवल संस्कृतमें भी हैं।

रहीमका देहावसान सम्वत् १६८३ में हुआ। इनकी रचनाओंके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—

यों रहीम सुख होत है बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि आँखिनको सुख होत ॥१॥
ज्यों रहीम गति दीपकी, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगै बढ़े अँधेरो होय ॥२॥
कौरहि बोलि कोइलिया बढ़ पछिताय।
घरी एक भरि सजनी रहु चुप साय ॥३॥
सघन कुंज अमरैया सीतल छाँहि।
झगरति आइ कोइलिया पुनि उड़ि जाहि ॥४॥
आम लागि घर बरिगा, बिधि भल कीन।
पियके हाथ बहरवा, भरि भरि दीन ॥५॥
जाति हुती सखि गोहनमें मनमोहनको लखि ही ललचानो।
नागरि नारि नई ब्रजकी उनहूँ नन्दलालको रीझिबो जानो॥
जाति भई फिरिकै चितई तब भाव रहीम यहै उर आनो।
ज्यों कमनैत दमानकमें फिरि तीरसों मारि लै जात निसानो ॥६॥

सेनापति

ब्रज-भाषाके कवियोंमें यदि किसीने प्रकृति-निरीक्षण करके ललित पदविन्यासके साथ मधुर ब्रज भाषामें प्रकृति वर्णन किया है तो वे एक मात्र सेनापति ही हैं। तभी तो उन्होंने गर्वपूर्वक अपना परिचय इस प्रकार दिया है —

दीक्षित परशुराम दादा है विदित नाम
जिन कीन्हे जज्ञ जाकी विपुल बडाई हैं।
गगाधर पिता गगाधरके समान जाके
गगातीर बसति अनूप जिन पायी है ।।
महाजानमनि विद्यादान हमै चिन्तामनि
हीरामनि दीक्षित तै पाई पण्डिताई है।
सेनापति सोई सीतापतिके प्रसाद जाकी
सब कवि कान दै सुनत कविताई है ।।

ये अनूपशहरके रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्मकाल सम्वत् १६४१ के लगभग माना जाता है। इन्होने 'कवित्त-रत्नाकर' और 'काव्य-कल्पद्रुम' नामक दो ग्रन्थोकी रचना की है। 'कवित्त रत्नाकर' की रचना सम्वत् १७०६ में हुई। इस ग्रन्थमे पाँच भाग है। पहले भागमे अलकारोका वर्णन, दूसरे मे शृगारिक कवित्त, तीसरेमें षड्ऋतु वर्णन, चौथेमें राम-कथा और पाँचवेमे भक्ति-सम्बन्धी छन्द है। इनकी कविताएँ बडी उच्च कोटिकी है। भाषापर भी इनका बडा अच्छा अधिकार है। इनके काव्योमे विशुद्ध और सरस ब्रजभाषाका माधुर्य विद्यमान है। इनकी कवित्व शक्ति भी अद्भुत थी। प्रकृति और मानव-हृदयका इनका अध्ययन गहरा था। अलकार प्रियता होनेपर भी इनकी कवितामे कही कृत्रिमता नही आने पाई है। सेनापतिने अधिकतर कवित्त ही लिखे है और इस शुद्धतासे लिखे है कि कही एक भी शब्द इधर-से-उधर नही किया जा सकता। इनका ऋतु-वर्णन ऐसा सजीव है कि प्राय जनसाधारणको उनके बहुतसे छन्द कण्ठ है।

सेनापतिकी रचनाओके दो उदाहरण नीचे दिए जा रहे है —

सिसिर तुषारके बुखारसे उखारतु है
पूस बीते होत सून हाथ पाँय ठिरिकै।
घौसकी छुटाईकी बडाई बरनी न जाय
सेनापति गाई कछू सौचिकै सुमिरिकै ।।
सीतते सहस कर सहस चरन ह्वैके
ऐसो जात भाजि तम आवत है घिरिकै।
जौलौं कोक कोकी सौं मिलत तौ लौं होत राति
कोक अति बीच ही ते आवतु हैं फिरिकै ।।१।।
महामोह-कन्दनिमें जगत जकन्दनिमें
दीन दुख दुन्दनिमें जात है बिहायकै।
सुखको न लेस है कलेस सब भौतिनको
सेनापति याही ते कहत अकुलायकै ।।
आवै मन ऐसी घरबार परिवार तजौं
डारौं लोक लाजके समाज विसरायकै।

हरिजन-पुञ्जनमें वृन्दावन-कुञ्जनिमें
रहौं बैठि कहूँ तरवर-तर जायके ।।२।।

सेनापति कबतक रहे यह तो ज्ञात नहीं किन्तु अन्तिम कालमे इन्होने क्षेत्र-सन्यास ले लिया था।

बिहारी

कविवर बिहारीलाल ब्रजभाषा काव्यके अद्भुत रत्न है। इनकी रचनाएँ सब प्रकारसे अनूठी है। ७ से कुछ ऊपर दोहेवाली उनकी बिहारी सतसई की जितनी टीकाएँ हुई है उससे ही इसकी लोकप्रियता सिद्ध हो जाती है। इन दोहोंमें शृगार-सम्बन्धी बडी मार्मिक उक्तियाँ भरी पडी है इसलिए लोगोने इनके प्रति बडा अनुराग दिखाया।

बिहारीलालका जन्म सवत् १६६२ मे ग्वालियरके निकट बसुवा गोविन्दपुरमें माना जाता है। ये माथुर चौबे थे। लडकपनमें ये बुन्देलखण्डम रहे तथा युवावस्थामें अपनी ससुराल मथुरामें जा रहे। इसके पश्चात् ये जयपुर चले गए जहाँके तत्कालीन नरेश महाराज जयसिंहके दरबारमें इन्हें वह *सम्मान* प्रतिष्ठा आदर और साथ ही सम्पत्ति प्राप्त हुई कि जिसका ठिकाना नही।

जब ये कवीश्वर जयपुर पहुँचे तब राजा तो महलमें रँगरलियाँ मना रहे थे और मन्त्री सेनापति आदि चिन्तित बैठे थे। बिहारीलालको ज्ञात हुआ कि नवपरिणीता बाला महारानीके प्रेममें पडकर राजा जयसिंह सब सुधबुध खो बैठे है और दरबारमे आ ही नही रहे है। फलत राज-काजम कठिनाई हो रही है। *किसी कौशलसे बिहारीने महाराजके पास यह दोहा लिखकर भिजवाया* —

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सौं बंध्यौ आगे कौन हवाल ।।

दोहा पढते ही महाराज बाहर आ गए और यह ज्ञात होनेपर कि बिहारीलालकी यह कृति है महाराजने उन्हे दरबारमे रख लिया और निवेदन किया कि आप ऐसे ही सरस दोहे नित्य सुनाया करें। बिहारीलालको यो ही सब कुछ प्राप्त हो गया था किन्तु इन दोहोपर भी महाराज प्रति दोहा एक स्वर्णमुद्रा देने लगे। धीरे-धीरे दोहोकी सख्या सात सौ तक पहुँच गई, जिन्हे सगृहीत करके बिहारी-सतसई का नाम दे दिया गया। अनुमानत इनका जीवन-काल सम्वत् १७२ तक था।

बिहारीकी ख्यातिका कारण

बिहारीने सतसईके अतिरिक्त कोई अन्य ग्रन्थ नही रचा और दोहेके अतिरिक्त अन्य कोई छन्द भी नही लिखा। फिर भी ब्रजभाषाके अन्य बहुतसे अच्छे कवि *बिहारीकी लोकप्रियता न प्राप्त कर सके।* इसका कारण यही है कि १—उनके दोहे शृगार रसकी ऐसी अनूठी उक्तियोसे भरे है। कि वे सहज ही पाठक या *श्रोताका ध्यान आकर्षित कर लेते है।* २—कविने अपनी बाते सक्षेपमें और मार्मिक ढगसे कह दी है कि वे चट जिह्वापर चढकर मानस-पटलपर अकित हो जाती है। ३—इनके दोहे इतने स्पष्ट है कि पढते ही उनका भाव मर्मतक पहुँच जाता है। इसलिए यह ठीक ही कहा गया है —

सतसैयाके दोहरे, ज्यो नावकके तीर।
देखतमें छोटे लगें, घाव करें गम्भीर ॥

बिहारीकी रस-व्यञ्जना

बिहारीने दोहोमे जो रस और भाव भरा है, वह कम कवियोमे पाया जाता है। इनकी रस-व्यञ्जनाका आनन्द लेना हो तो इनके उन सूक्ष्म अनुभवोपर दृष्टि डालनी चाहिए—जिनकी इन्होने अत्यन्त मधुर और सजीव योजना की है—देखिए —

नासा मोरि नचाई दृग, करी ककाकी सौंह।
काटे सी कसकति हिये, वहै कँटीली भौंह ॥१॥
ललन-चलन सुनि पलनमें, अँसुवा झलके आइ।
भई लखाइ न सखिन्हू, झूठे ही जमुहाइ ॥२॥

बिहारीकी वस्तुव्यञ्जना

बिहारीमे वस्तुव्यञ्जनाकी भी मार्मिकता कम नही है। तन्वगता विरहताप-विदग्धता, कान्ति आदिके वर्णनमें बिहारीका कौशल देखते ही बनता है। यह ठीक है कि ऐसे वर्णन कही-कही अतिशयोक्तिपूर्ण हो जाते है, तथापि ये उदाहरण पूरी सतसईमें दस-पाँच ही मिलेगे। कही-कही यह व्यञ्जना क्लिष्ट भी आ गई है और इसे समझनेमे रूढि ही पाठककी सहायता कर सकती है।

छाले परिबे के डरन, सकै न हाथ छुवाइ।
झिझकति हियै गुलाब कै, झँवा झँवावति पाइ ॥१॥
नये बिरह बढ़ती बिथा, खरी बिकल जिय बाल।
बिलखी देखि परौसिन्यौ, हरषि हँसि तिहि काल ॥२॥

बिहारीका वर्ण्य-विषय

बिहारीके दोहोमें शृगारके प्रसगमें नायक-नायिकाके रूपमे कृष्ण और राधाका नाम ही लिया गया है। इसलिए उसमे स्वभावत मुरली, राधा आदिका वर्णन आया है। बिहारीका वर्ण्य विषय अधिकतर नखशिख-वर्णन और नायिका—भेद ही है। इसीलिए इन्होने नायिका और उनकी विभिन्न दशाओको अनेक रूपोमें चित्रित किया है। बिहारीकी मुख्य नायिकाएँ है—स्वकीया, परकीया, मुग्धा, प्राप्त-यौवना, मध्या, प्रौढा, प्रौढा-खण्डिता, अधीरा, विश्रब्ध नवोढा, पूर्वानुरागिनी, खण्डिता, प्रौढधीरा खण्डिता, उत्तमा खण्डिता, स्वयदूतिका, प्रोषितपतिका, अन्य सम्भोग दुखिता, ग्रामीणा, प्रेमगर्विता, अनूढा, परकीया, मुदिता, अनुशयाना, प्रौढा प्रवत्स्यत्पतिका, क्रियाविदग्धा, आगमिष्यत्पतिका, अकुरित-यौवना, प्रवत्स्यत्पतिका, लक्षिता, कलहान्तरिता, कुलटा और गणिका। नायिकाओका ऐसा विस्तृत वर्णन होनेसे ही कुछ लोग ऐसा मानते है कि यद्यपि बिहारीने लक्षण ग्रन्थके रूपमें अपने दोहोकी रचना नही की तथापि उदाहरण उन्होने इसी विचारसे रखे, किन्तु वह युग ही कुछ इस प्रकारकी रचनाओका था और बिहारीको राजदरबारमें

पढ़कर इस कोटिकी रचना करनी थी अतः इन्होंने नायिकाओंके इतने रूपोंका वर्णन किया। बिहारीने नीति-विषयक भी कुछ दोहे रचे हैं।

बिहारीके कुछ दोहे नीचे दिए जा रहे हैं —

पलनु पीक अञ्जनु अधर, धरे महावर भाल।
आज मिले सु भली करी भले बने हौ लाल ॥१॥
बतरस लालच लालकी, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै भौंहनि हँसै दैन कहै नटि जाइ ॥२॥
दृग अरुझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन हिए, दई नई यह रीति ॥३॥
सघनकुञ्ज छाया सुखद सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै वा जमुनाके तीर ॥४॥
पत्राही तिथि पाइए, वा घरके चहुँ पास।
नित प्रति पून्योई रहै आनन-ओप उजास ॥५॥
इत आवति चलि जात उत चली छ सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासन साथ ॥६॥
मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोय।
जा तनकी झाँई परे स्याम हरित दुति होय ॥७॥

घनानन्द

घनानन्द आनन्दघन या घनआनन्द एक ही व्यक्तिके नाम हैं। अब तक घनानन्दका जन्म सम्वत् १७४६में और देहावसान सम्वत् १७९६में माना जाता था किन्तु इधरकी खोजोंके अनुसार उनका जन्म और मृत्युसम्वत् क्रमशः १७३ और १८१८ स्थिर किया गया है। ये दिल्लीके रहनेवाले और बादशाह मुहम्मद शाहके मीरमुन्शी (प्रधान लिपिक) थे। बादशाहपर इनका अद्भुत प्रभाव देखकर कुछ लोगोंने इन्हें उस पदसे हटवानेका कुचक्र रचा और उनसे कहा कि मीरमुन्शी गान-विद्याके अच्छे मर्मज्ञ और स्वयं उच्च कोटिके गायक हैं। बादशाहकी आज्ञा हुई पर ये टाल गए। अब षड्यन्त्रकारियोंको अवसर मिल गया। उन्होंने कहा कि अपनी प्रेमिका सुजान वेश्याके कहनेपर ये तत्काल गाएँगे। वह बुलाई गई और उससे कहलवाया गया। इन्होंने उसकी ओर मुँह करके और बादशाहकी ओर पीठ करके ऐसा अच्छा गाना गया कि सब लोग रसाभिभूत हो गए। बादशाह इनके गानेपर तो बहुत ही प्रसन्न हुआ और इसीलिए इनकी बेअदबी पर इन्हें प्राणदण्ड न देकर केवल दिल्लीसे निकलवा दिया। इन्होंने सुजानको भी साथ ले चलना चाहा परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। इससे ये इतने दुखी हुए कि वृन्दावन चले गए और निम्बार्क सम्प्रदायमें दीक्षित होकर वहीं रहने लगे। अहमदशाह अब्दालीके द्वितीय आक्रमणके समय पठानोंने इनको घेर लिया और जर जर जर (रुपये) चिल्लाने लगे। किन्तु इस विरक्तके पास था क्या। इन्होंने तीन बारके लिये तीन मुट्ठी वृन्दावनकी धूल उनपर फेंक दी। क्रुद्ध पठानोंने इनका हाथ ही काट लिया। इसीमें ये मर गए। मरते समय अपने रक्तसे इन्होंने भूमिपर यह कवित्त लिखा था —

बहुत दिनानकी अवधि आसपास परे,
खरे अरबरनि भरे है, उठि जानको।
कहि कहि आवन छबीले मन भावनको,
गहि गहि रखति है दै दै सनमानको ॥
झूठी बतियानिकी पत्यानितें उदास ह्वैकै,
अब ना घिरत घनआनन्द निदानको।
अधर लगे है आनि करिके पयान प्रान,
चाहत चलन ये संदेसो लै सुजानको ॥

इन्होने अपनी कवितामें जो बारबार सुजानको सम्बोधित किया है, वह शृगार पक्षमें नायकके लिए और भक्ति पक्षमें कृष्णके लिए प्रयुक्त हुआ समझना चाहिए। सुजानका नाम इन्हे इतना प्रिय था कि विरक्त होकर भी ये उसे न छोड सके।

घनानन्द जैसी शुद्ध रसमयी और शक्ति-प्रवाह समन्वित ब्रजभाषा लिखनेवाले कवि कदाचित ही हुए हो। स्वय इन्होने भाषापर अपने अधिकार की चर्चा इस सवैयेमें की है —

नेही महा ब्रजभाषा प्रवीन औ सुन्दरताहुके भेदको जानै।
योग-वियोगकी रीतिमें कोविद, भावना भेद स्वरूपको ठानै ॥
चाहके रगमें भीन्यो हियो, बिछुरे मिले प्रीतम सान्ति न मानै।
भाषा प्रवीन सुछन्द सदा रहै सो घनजूके कवित्त बखानै ॥

इनके रचे चालीस ग्रन्थ कहे जाते है किन्तु उनमेसे बहुतोका विवरण नही मिलता। इनका एक ग्रन्थ विरह लीला है जिसकी रचना अरबी छन्दोमें हुई है; परन्तु भाषा उसकी ब्रज ही है।

घनानन्द शृगार रसके ही प्रधान कवि है। यद्यपि इन्होंने शृगारके दोनो पक्ष लिए है पर वियोग-की अन्तर्दशाओका ही वर्णन इन्होंने प्रधान रूपसे किया है। इसीसे इनकी रचनाओसे प्रेमकी पीर फूट निकली है। इनके वियोग वर्णनकी विशेषता यह है कि उसमें बाह्यार्थ-निरूपण तथा बाहरी उछलकूद न होकर अन्तरवृत्ति-निरूपण ही मुख्य है।

इनकी रचनाओसे रस टपक पडता है। इनकी रचनाएँ वैदर्भी वृत्तिमे है। अत उनमें स्वाभाविक मधुरता और सरसता पाई जाती है। भाषापर पूरा अधिकार होनेसे इनकी रचनाओको और भी बल मिल गया है और ये अपनी बात इस ढगसे कह जाते हैं कि पाठकका हृदय भी घनानन्द की ही भाँति अनुरागमय हो जाता है।

इनकी भाषाकी एक विशेषता यह भी है कि इन्होने ब्रजभाषाकी सिद्धोक्ति तथा लोक-व्यवहारमें प्रचलित भाषाके माधुर्यका भी भरपूर प्रयोग किया है।

घनानन्दकी रचनाओके कुछ उदाहरण लीजिए —

निसि द्यौस खरी उन माँझ अरी छबि रग भरी मुरि चाहनि की।
तकि मोरनि त्यों चख ढोरि रहे, ढरिगो हिय ढोरनि वाहनि की ॥

रहकर इस कोटिकी रचना करती थी अतः इन्होंने नायिकाओंके इतने रूपोंका वर्णन किया। बिहारीने नीति-विषयक भी कुछ दोहे रचे हैं।

बिहारीके कुछ दोहे नीचे दिए जा रहे हैं —

पलनु पीक अञ्जनु अधर, धरे महावर भाल।
आज मिले सु भली करी भले बने हौ लाल ॥१॥
बतरस लालच लालकी, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै भौंहनि हँसै दैन कहै नटि जाइ ॥२॥
दृग अरुझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन हिए, दई नई यह रीति ॥३॥
सघनकुञ्ज छाया सुखद सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै वा जमुनाके तीर ॥४॥
पत्राही तिथि पाइए वा घरके चहुँ पास।
नित प्रति पून्योई रहै, आनन-ओप उजास ॥५॥
इत आवति चलि जाति उत चली छ सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासन साथ ॥६॥
मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तनकी झाईं परे स्याम हरित दुति होय ॥७॥

घनानन्द

घनानन्द आनन्दघन या घनआनन्द एक ही व्यक्तिके नाम हैं। अब तक घनानन्दका जन्म सम्वत् १७४६ में और देहावसान सम्वत् १७९६ में माना जाता था किन्तु इधरकी खोजोंके अनुसार उनका जन्म और मृत्युसम्वत क्रमश: १७३ और १८१८ स्थिर किया गया है। ये दिल्लीके रहनेवाले और बादशाह मुहम्मद शाहके मीरमुन्शी (प्रधान लिपिक) थे। बादशाहपर इनका अद्भुत प्रभाव देखकर कुछ लोगोंने इन्हें उस पदसे हटानेका कुचक्र रचा और उनसे कहा कि मीरमुन्शी गान-विद्याके अच्छे मर्मज्ञ और स्वयं उच्च कोटिके गायक हैं। बादशाहकी आज्ञा हुई पर ये टाल गए। अब षडयन्त्रकारियोंको अवसर मिल गया। उन्होंने कहा कि अपनी प्रेमिका सुजान वेश्याके कहनेपर ये तत्काल गाएँगे। वह बुलाई गई और उससे कहलवाया गया। इन्होंने उसकी ओर मुँह करके और बादशाहकी ओर पीठ करके ऐसा अच्छा गाना गाया कि सब लोग रसाभिभूत हो गए। बादशाह इनके गानेपर तो बहुत ही प्रसन्न हुआ और इसीलिए इनकी बेअदबी पर इन्हें प्राणदण्ड न देकर केवल दिल्लीसे निकलवा दिया। इन्होंने सुजानको भी साथ ले चलना चाहा परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। इससे ये इतने दुखी हुए कि वृन्दावन चले गए और निम्बार्क सम्प्रदायमें दीक्षित होकर वहीं रहने लगे। अहमदशाह अब्दालीके द्वितीय आक्रमणके समय पठानोंने इनको घेर लिया और जर जर (रुपये) चिल्लाने लगे। किन्तु इन विरक्तके पास क्या था। इन्होंने तीन बारके लिये तीन मुट्ठी वृन्दावनकी धूल उनपर फेंक दी। क्रुद्ध पठानोंने इनका हाथ ही काट लिया। इसीमें ये मर गए। मरते समय अपने रक्तसे इन्होंने भूमिपर यह कवित्त लिखा था :—

मुख्य श्रेय सत्यनारायण कविरत्नको है, जिन्होंने भाषाके शुद्ध चलते रूपका प्रयोग किया तथा अप्रचलित और बिगडे हुए शब्दोका त्यागकर नया मार्ग दिखाया। आचार्य रामचन्द्र शुक्लके बुद्धचरितमे भी भाषाकी विशुद्धता और चलतेपनपर अधिक बल दिया गया है। आज के नवीन व्रजभाषाके कवि भी इसी प्रणालीका अवलम्बन कर रहे हैं।

रीति-काव्य

पर्याप्त सख्यामे लक्ष्य ग्रन्थोकी रचना हो चुकनेपर लक्षण ग्रन्थोकी रचना स्वाभाविक है। हिन्दीमे साहित्य-शास्त्र सम्बन्धी जो रचनाएँ हुई है, उनका आधार सस्कृतका तद्विषयक साहित्य ही है। प्राय सभी कवियोने या रीतिविषयक ग्रन्थ रचनेवालोने सस्कृतकी प्रणालीका ही अवलम्बन लिया है या ऐसा कहिए कि ठीक उसीको हिन्दीमे उतार दिया है, अपनी ओरसे किसी प्रकारकी मीमासा नही की है। हिन्दीके सबसे पहले रीति-विषयक रचनाकार कृपाराम है जिन्होंने सम्वत् १५९८ मे रसके विषयमे कुछ निरूपण किया था। इनके पश्चात् मोहनलाल मिश्र और करनेमने इन विषयोपर लेखनी चलाई किन्तु जिस कविने अधिक विस्तार-पूर्वक व्यवस्थित ढग और शास्त्रीय पद्धतिपर इसका विवेचन किया वे थे केशवदास। आगे चलकर तो प्राय अधिकाश कवियोने यही धन्धा उठा लिया और जो कुछ भी रचनाएँ उन्होने की वह रीति-पद्धतिको सामने रखकर ही। इनमे सबसे बडा दोष यह था कि ये लोग आचार्य तो थे नही, कोरे कवि थे। कुछ लिखना इन्होने आवश्यक समझा तो काव्याशोंके विवेचनके माध्यमसे शृगारिक रचनाएँ करने लगे। इसलिए न तो इनकी कवित्त-शक्तिसे और न इनकी काव्य-शास्त्रकी विवेचनासे ही साहित्य-रसिक कोई लाभ उठा सके क्योंकि लक्षणोंके अनुसार उदाहरण प्रस्तुत करनेमें काव्य-सौष्ठव नष्ट हो गया और विवेचक-मीमासक बुद्धि न होनेसे काव्यागोका सम्यक् समीक्षण न हो सका। ये लोग पुरानी लकीर ही पीटते रहे। इनमे उल्लेख-योग्य सर्वप्रथम केशवदास है।

केशवदास

कविवर केशवदासजीका जन्म सस्कृतके गम्भीर और उच्चकोटिके विद्वानोके कुलमे सम्वत् १६१२ में हुआ। ६२ वर्षकी आयु भोगकर सवत् १६७४ के आसपास इन्होने शरीर त्याग किया। ये सनाढ्य ब्राह्मण ये और कृष्णदत्तके पौत्र तथा काशीनाथके पुत्र थे। ओरछानरेश रामसिहके भाई इन्द्रजीत सिंह इनको बहुत मानते थे। ये प्राय उन्हीके यहाँ रहते थे और उन्हीके द्वारा राजा रामसिह तक भी इनकी अच्छी पहुँच थी। इन्द्रजीतसिहपर किया गया एक करोडका अर्थदड भी बीरबलकी मध्यस्थतासे अकबरको प्रसन्न करके इन्होने क्षमा करा दिया। अकबरके पश्चात जब जहाँगीर सम्राट् हुआ तो उसने वीरसिंहको ओरछेका राज्य दे दिया। केशवदास वीरसिहके दरबारमें भी रहे। जहाँगीरके यहाँ भी सम्मभवत ये गए थे। क्योकि इन्होने उसकी प्रशस्तिमें 'जहाँगीर जय चन्द्रिका' भी लिखी है। इसी प्रकार वीरसिंहकी प्रशस्तिमे वीरसिह-देव-चरित लिखा है। इनके अतिरिक्त केशवदासके पाँच ग्रन्थ और मिलते है—रामचन्द्रिका कविप्रिया, रसिकप्रिया, रतनबावनी और विज्ञानगीता।

वीरसिह देवचरित, रतनबावनी, विज्ञानगीता और जहाँगीर जय-चन्द्रिका तो साधारण कोटिके

कट है कढ़ि पै बट प्रान भए गति सौं मतिमें अवगाहनि की।
घनआनन्द आन सजी सब तें जक सालियै मोहि कराहनि की॥१॥
अति सूधो सनेहको मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहँ साँचे चलें तजि आपनपौ, झिझकें कपटी जो निसाँक नहीं॥
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनो इत एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥२॥
परकारज देहको धारि फिरौ परजन्य ! जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि-नीर सुधाके समान करौ सबही बिधि सज्जन के सरसौ॥
घनआनन्द जीवनदायक हो कबौं मेरियौ पीर हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजानके आँगन मो अँसुवानकौं लै बरसौ॥३॥
गुनि बतायो राधा मोहन हू गायो
सदा सुखद सुहायो वृन्दावन गाढ़े गहिरे।
अद्भुत अभूत महिमण्डन परे तें परे
जीवनको लाहु हा हा क्यों न ताहि लहिरे।
आनन्दको घन छाया रहत निरन्तर ही
सरस सुदेय सों पपीहापन बहिरे।
जमुनाके तीर केलि कोलाहल भीर
ऐसे पावन पुलिनपर पतित परि रहिरे॥४॥

इस कवित्तसे घनानन्दका वृन्दावन-प्रेम प्रकट होता है।

अन्य मुक्तक कवि

घनानन्दके पश्चात् स्फुट रचना करनेवालोंमें आलम बोधा ठाकुर, पद्माकर आदि अच्छे कवि हो गए हैं जिन्होंने शृंगार-विषयक मनोहारिणी रचनाएँ की हैं। इधर वर्तमान कालमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनकी मित्र मण्डलीने बहुत ही अनूठे और मधुर छन्द ब्रजभाषामें रचे। यद्यपि भारतेन्दुने नागरी गद्यका प्रचार किया और उसे व्यवस्थित रूप दिया तथापि काव्य उन्होंने प्रायः ब्रजभाषामें ही लिखा। उनका और उनकी पूरी मण्डलीका विश्वास था कि नागरी भाषामें सरस रचनाएँ नहीं हो सकतीं। वे पुष्टि-मार्गी वैष्णव थे। अतः उनकी कृष्ण-सम्बन्धी रचनाएँ पुरानी परम्परा और प्रणाली पर ही हुई हैं। किन्तु वे अत्यन्त प्रेमी जीव थे इसलिए उन्होंने फुटकर रचनाएँ भी बहुत की हैं। अपने नाटकोंके पद्य भी उन्होंने ब्रजभाषामें ही लिखे। प्रतापनारायण मिश्र प्रेमघन अम्बिकादत्त व्यास राय देवीप्रसाद पूर्ण श्रीधर पाठक सत्यनारायण कविरत्न वियोगीहरि, बिहारीलालकी परम्पराके वर्तमान कवि गयाप्रसाद शुक्ल सनेही आदिने ब्रजभाषामें अच्छी स्फुट रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। आज भी ब्रजभाषामें रचनाएँ हो रही हैं और कवि-सम्मेलनोंके अवसर पर ये कविताएँ प्रायः सुननेको मिला करती हैं। पुरानी परम्परामें बहुत कुछ परिवर्तन तो भारतेन्दुने ही कर दिया और भाषाको नया रूप प्रदान किया था किन्तु इधर उसका और भी परिष्कार हुआ। इसका

मुख्य श्रेय सत्यनारायण कविरत्नको है, जिन्होने भाषाके शुद्ध चलते रूपका प्रयोग किया तथा अप्रचलित और बिगड़े हुए शब्दोका त्यागकर नया मार्ग दिखाया। आचार्य रामचन्द्र शुक्लके बुद्धचरितमे भी भाषाकी विशुद्धता और चलतेपनपर अधिक बल दिया गया है। आज के नवीन ब्रजभाषाके कवि भी इसी प्रणालीका अवलम्बन कर रहे हैं।

रीति-काव्य

पर्याप्त सख्यामें लक्ष्य ग्रन्थोकी रचना हो चुकनेपर लक्षण ग्रन्थोकी रचना स्वाभाविक है। हिन्दीमे साहित्य-शास्त्र सम्बन्धी जो रचनाएँ हुई है, उनका आधार सस्कृतका तद्विषयक साहित्य ही है। प्राय सभी कवियोने या रीतिविषयक ग्रन्थ रचनेवालोने सस्कृतकी प्रणालीका ही अवलम्बन लिया है या ऐसा कहिए कि ठीक उसीको हिन्दीमें उतार दिया है, अपनी ओरसे किसी प्रकारकी मीमासा नही की है। हिन्दीके सबसे पहले रीति-विषयक रचनाकार कृपाराम है जिन्होने सम्वत् १५९८ मे रसके विषयमे कुछ निरूपण किया था। इनके पश्चात् मोहनलाल मिश्र और करनेसने इन विषयोपर लेखनी चलाई किन्तु जिस कविने अधिक विस्तार-पूर्वक व्यवस्थित ढग और शास्त्रीय पद्धतिपर इसका विवेचन किया वे थे केशवदास। आगे चलकर तो प्राय अधिकाश कवियोने यही धन्धा उठा लिया और जो कुछ भी रचनाएँ उन्होने की वह रीति-पद्धतिको सामने रखकर ही। इनमें सबसे बडा दोष यह था कि ये लोग आचार्य तो थे नही, कोरे कवि थे। कुछ लिखना इन्होने आवश्यक समझा तो काव्याशोके विवेचनके माध्यमसे शृगारिक रचनाएँ करने लगे। इसलिए न तो इनकी कवित्त-शक्तिसे और न इनकी काव्य-शास्त्रकी विवेचनासे ही साहित्य-रसिक कोई लाभ उठा सके क्योकि लक्षणोंके अनुसार उदाहरण प्रस्तुत करनेमे काव्य-सौष्ठव नष्ट हो गया और विवेचक-मीमासक बुद्धि न होनेसे काव्यागोका सम्यक् समीक्षण न हो सका। ये लोग पुरानी लकीर ही पीटते रहे। इनमे उल्लेख-योग्य सर्वप्रथम केशवदास है।

केशवदास

कविवर केशवदासजीका जन्म सस्कृतके गम्भीर और उच्चकोटिके विद्वानोके कुलमे सम्वत् १६१२ में हुआ। ६२ वर्षकी आयु भोगकर सवत् १६७४ के आसपास इन्होने शरीर त्याग किया। ये सनाढ्य ब्राह्मण थे और कृष्णदत्तके पौत्र तथा काशीनाथके पुत्र थे। ओरछानरेश रामसिहके भाई इन्द्रजीत सिह इनको बहुत मानते थे। ये प्राय उन्हीके यहाँ रहते थे और उन्हीके द्वारा राजा रामसिह तक भी इनकी अच्छी पहुँच थी। इन्द्रजीतसिहपर किया गया एक करोडका अर्थदड भी बीरबलकी मध्यस्थतासे अकबरको प्रसन्न करके इन्होने क्षमा करा दिया। अकबरके पश्चात जब जहाँगीर सम्राट् हुआ तो उसने वीरसिहको ओरछेका राज्य दे दिया। केशवदास वीरसिहके दरबारमें भी रहे। जहाँगीरके यहाँ भी सम्भवत ये गए थे। क्योकि इन्होने उसकी प्रशस्तिमें 'जहाँगीर जय चन्द्रिका' भी लिखी है। इसी प्रकार वीरसिहकी प्रशस्तिमे वीरसिह-देव-चरित लिखा है। इनके अतिरिक्त केशवदासके पाँच ग्रन्थ और मिलते है—रामचन्द्रिका कविप्रिया, रसिकप्रिया, रतनबावनी और विज्ञानगीता।

वीरसिह देवचरित, रतनबावनी, विज्ञानगीता और जहाँगीर जय-चन्द्रिका तो साधारण कोटिके

ग्रन्थ हैं। काव्यकी दृष्टिसे न इनका कोई महत्त्व है न ये विचारणीय हैं। केशवदासकी प्रतिष्ठाके आधार केवल तीन ग्रन्थ हैं—कविप्रिया, रसिकप्रिया और रामचन्द्रिका।

कविप्रियाकी रचना सम्वत् १६५८ में हुई। यह अलंकार-शास्त्रका ग्रन्थ है। केशव अलंकारवादी कवि थे। दण्डी भामह आदिकी भाँति ये अलंकारोंको ही काव्यका मुख्य तत्त्व मानते थे तथा रस रीति आदिको उसके अन्तर्गत ही लेते थे। चमत्कारप्रियता अधिक होनेसे इनकी दृष्टिमें वह काव्य ही महत्त्वहीन था जिसमें अलंकारोंकी छटा न हो। दण्डीके आधारपर ही इन्होंने अलंकारोंका विवेचन किया है और उदाहरण बहुतसे प्राचीन ग्रन्थोंसे उठाकर हिन्दी रूपमें रख दिए हैं। अनुवादमें कहीं कहीं ऐसी गड़बड़ी भी हो गई है कि कुछ-का कुछ अर्थ कर दिया गया है। इसमें इनकी मौलिक विवेचना शक्तिके दर्शन नहीं होते।

रसिकप्रियाकी रचना कविप्रियासे दस वर्ष पूर्व हुई थी। यह रसशास्त्रका ग्रन्थ है। इसमें नवरसोंका और नायिकाभेदका भी वर्णन किया गया है। केशवदासने इस ग्रन्थमें शृंगारको रसराजत्व सिद्ध किया है और उसके प्रच्छन्न और प्रकाश ये दो भेद भी कर दिए हैं। यही भेद नायिका-भेदमें भी रखा गया है। इस ग्रन्थमें जो उदाहरण दिए गए हैं वे सरस और हृदयग्राही हैं।

केशवकी सहृदयता

वस्तुतः केशवदासकी कवि-प्रतिभा, उनकी सहृदयता, उनकी भाव-व्यञ्जना, उनका शब्द विन्यास और उनकी भाषाका ओज और माधुर्य देखना हो तो इन दोनों ग्रन्थोंको देखना चाहिए। कुछ महानुभावोंने केशवदासजीको हृदयहीन कहा है। कविके लिये इससे बढ़कर निन्दात्मक दूसरी बात हो ही नहीं सकती।

> केसव केसनि अस करि, जस अरिहू न कराहिं।
> चन्द्रबदनि मृगलोचनी बाबा कहि कहि जाहिं॥

जो व्यक्ति ऐसा रसिक और सरस-हृदय हो उसके सम्बन्धमें यह नहीं कहा जा सकता कि वह कवि हृदय हीन है।

रामचन्द्रिका केशवदासजीका अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसीके कारण केशवको कठिन काव्यका प्रेत कहा जाता है और कहा जाता है—कविको देन न चहै बिदाई। पूछै केसवकी कविताई॥ केशव-विषयक ये उक्तियाँ रामचन्द्रिकाको लेकर ही कही गई हैं। इस ग्रन्थमें रामचरितका वर्णन किया गया है। इसकी रचना कविने सम्वत् १६५८ में की। ऐसा प्रतीत होता है कि केशवने बहुतसे स्फुट छन्दोंकी रचना करनेके पश्चात् महाकाव्यकी रचना का भी विचार किया और इसके लिये रामकी गाथा चुना। केशव पण्डिताके घरमें उत्पन्न हुए थे। उनको अपनी विद्वत्ताकी धाक भी जमानी थी तथा एक महा-काव्य भी रचना था। इस सम्बन्धमें संस्कृतमें प्रचुर परिमाणमें साहित्य उपलब्ध था ही। केशवने उसका खुलकर उपयोग किया और इस प्रकार महाकाव्यका एक ढाँचा खड़ा कर दिया।

केशवका प्रबन्ध-कौशल

महाकाव्यका न्यास केशवदासने उपस्थित अवश्य किया किन्तु वे महाकाव्यकी रचनाके अधिकारी नहीं थे यह निर्विवाद है। महाकाव्यकी रचनाके लिए कविमें जिन गुणोंकी सम्यक्‌ आवश्यकता होती

है वे केशवमे रत्तीभर नही थे। शास्त्रपारगत विद्वान् होनेके कारण शास्त्रोमे वर्णित महाकाव्यके लक्षण तो उन्होने रामचन्द्रिकापर ला घटाए परन्तु बाहरी ढाँचेसे आगे वे नही बढ सके। कथाकाव्यकी रचनामे चार मुख्य बातें है जिन्हे केशव नही सँभाल पाए। पहली बात है कथाकी धाराका प्रवाहमयी होना। केशव छन्दोका जाल इस प्रकार फैला गए है कि रामचन्द्रिका का पाठक यह अनुभव करने लगता है कि हम किसी प्रवाहमयी कथाका आनन्द न लेकर छन्दोकी जन्तु-शालामे विचर रहे है। दूसरी बात है काव्यानुपात, जिसका केशवने तनिक भी ध्यान नही रखा है। रामके जन्मसे लेकर विश्वामित्रके अवध पहुँचने तककी पूरी कथा इतनी सक्षिप्त कर डाली कि उसका सारा रस ही समाप्त हो गया। तीसरी बात है मार्मिक स्थलोकी पहचान। या तो केशव उन्हे पहचान ही नही पाए या फिर उनका वर्णन नही कर पाए। चौथी बात है पात्रोका शील-निदर्शन या चरित्र-चित्रण जिससे कथामे आदर्शकी सृष्टि होती तथा सजीवता आती है। इसका भी केशवदासके हाथ निर्वाह नही हो पाया। दो उदाहरण पर्याप्त है। वन जानेके पूर्व राम अपनी माताको पातिव्रत्यका उपदेश करते है तथा भरत-जैसे साधु-चरित व्यक्तिपर सन्देह करके लक्ष्मणको आदेश देते है कि भरतसे सतर्क रहना तथा उनपर दृष्टि रखना। इन प्रसगोने रामके चरित्रका सम्पूर्ण आदर्श ही नष्ट कर दिया। इनके अतिरिक्त केशवके वर्णन इतने जटिल और अस्वाभाविक हो गए है कि कथा समझने और उसका आनन्द लेनेमें निरन्तर बाधा पडती है। अलकार-नियोजन और पाण्डित्य-प्रदर्शनकी भावनाने इस ग्रन्थको और भी चौपट कर दिया। इस दृष्टिसे प्रबन्ध-काव्यकी रचनामे केशव सर्वथा विफल रहे। हाँ, मुक्तक काव्य-रचनामें वे अवश्य ही सिद्ध-प्रतिभ थे और उनमें उनके रस-मर्मज्ञत्वका परिचय भली प्रकार मिलता भी है।

रामचन्द्रिकामे सम्वाद बडे अच्छे उतरे है। उसका कारण यह है कि एक तो इन्होने सस्कृत ग्रन्थोसे सीधे अनुवाद कर दिया है, दूसरे दरबारी कवि होनेके कारण इन्हें इस बातका पूर्ण ज्ञान था कि किस समय, किसके मुँहसे, किस प्रकार, किन शब्दोमें सम्वाद कहलाना उपयुक्त हो सकता है। अवसरानुकूल सम्वादोकी योजना करनेमें केशवको जो सफलता मिली है वह कम कवियोको प्राप्त होती है। इसीलिए कुछ लोग इसे सम्वाद-ग्रन्थ भी कहते है।

केशवकी कविताके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे है —

चञ्चल न हूजे नाथ अञ्चल न खैंचो हाथ,
सोवे नेक सारिकाऊ सुक तौ सोवायो जू।
मन्द करौ दीपदुति चन्दमुख देखियत,
दौरिकै दुराय आऊँ द्वार तौ दिखायो जू॥
मृगज मराल बाल बाहिरै बिडारि देउँ,
भायो तुम्हें केशव सो मोहू मन भायो जू।
छलके निवास ऐसे बचन-विलास सुनि,
सौगुनो सुरत हू तें स्याम सुख पायो जू॥१॥
फल फूलन पूरे तरुवर रूरे कोकिल कुल कलरव बोलें।
अति मत्त मयूरी पियरस पूरी बन-बन प्रति नाचत डोलें॥

सारी सुक पण्डित गुनगन मण्डित भावनमय अर्थ बखानै।
देखे रघुनायक सीय सहायक मनहुँ मदन रति मधु जानै ॥२॥
आरक्त-पत्रा सुभ चित्र-पुत्री
मनो विराजै अति चारु वेष।
सम्पूर्ण सिन्दूर प्रभा बसै धौं
गणेश भालस्थल चन्द्र रेखा ॥३॥
कुन्तल ललित नील भ्रुकुटी धनुष नैन
कुमुद कटाक्ष बान सबल सदाई है।
सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषनन
मध्य देश केसरी सु जग गति भाई है।
विग्रहानुकूल सब लच्छ लच्छ ऋच्छ बल
ऋच्छराज-मुखी मुख केसोदास गाई है।
रामचन्द्रकी चमू, राजश्री विभीषनकी
रावनकी मीचु दर कूच चलि आई है ॥४॥

भूषण

केशवने बहुत विस्तारके साथ काव्यशास्त्रके सम्पूर्ण अंगोंपर ग्रन्थ लिखा सही किन्तु रीतिग्रन्थ लिखनेवाले कवियोंकी परम्परा केशवके बहुत पीछे चिन्तामणि त्रिपाठीसे आरम्भ हुई। चिन्तामणिको भूषण और मतिरामका बड़ा भाई बताया जाता है। रीतिकी जो परम्परा उन्होंने आरम्भ की वह अबाधित रूपसे पद्माकर तक चलती रही यद्यपि पद्माकरके बहुत पीछे हरिऔध जीने भी रीति-विषयक अपना ग्रन्थ रसकलस ब्रजभाषा पद्यमें ही लिखा। चिन्तामणिके भाइयोंमें भूषण और मतिराम बहुत-ही यशस्वी कवि हो गए हैं। ये रीति-ग्रन्थकार मुख्य रूपसे कवि ही थे। उन्होंने रीतिको अपनी कविताका माध्यम मात्र बनाया। काव्यांगोंके विवेचनमें उनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं मानना चाहिए। उस युगमें उत्पन्न होकर महाकवि भूषणने भी यही कार्य किया। अन्य कवियोंमें और भूषणमें सबसे बड़ा अन्तर यह है कि जहाँ औरोंने रसकी दृष्टिसे शृंगारको अधिक महत्त्व दिया वहाँ भूषणने वीररसको। इनके सभी उदाहरणोंके नायक छत्रपति शिवाजी महाराज ही हैं।

भूषणका जीवन-वृत्त

जनश्रुति प्रसिद्ध है कि भूषणके तीन भाई और थे—चिन्तामणि, मतिराम और जटाशंकर। किन्तु भूषण-विमर्शके रचयिताका मत है कि मतिराम थे तो भूषणके समकालीन अवश्य परन्तु उनके सहोदर न थे। भूषणने अपनेको—

द्विज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर।

लिखा है। इससे यह तो सिद्ध हो गया कि रत्नाकरके पुत्र भूषण कश्यप-गोत्रीय थे। इन्होंने अपने निवास स्थानकी भी सूचना स्वयं दी है—

बसत त्रिविक्रमपुर सदा तरनितनूजा तीर।

किन्तु इसके अतिरिक्त और कोई विवरण इनके सम्बन्धका इनकी रचनाओसे नही मिलता।

भूषणके जन्मकालके सम्बन्धमे दो मत है। यदि भूषणको शिवाजीके दरबारका रत्न माना जाय-जैसा कि लोक-प्रचलित है—तो शिवाजीकी मृत्युतक तो भूषण अवश्य ही वहाँ रहे होगे। शिवाजीकी मृत्यु-तिथि सवत् १७३७ है। जो कवि शिवाजीकी सभाका रत्न रहा हो और जिसने अपने वीरतापूर्ण काव्यसे हिन्दू जाति और धर्मके रक्षक शिवाजीको उस परम पुनीत कार्यके लिए अग्रसर किया हो वह निश्चय ही अत्यन्त प्रौढ अवस्थाका अर्थात् ५० वर्षसे कम का न रहा होगा। ऐसी अवस्थामे भूपणका जन्मकाल सवत् १६७२ के आस-पास माना जा सकता है जैसा कि मिश्रवन्धुओका मत है। किन्तु ऐसा भी कहा जाता है कि भूषण वास्तवमे शिवाजीके यहाँ नही, उनके पुत्र साहूके यहाँ थे। साथ ही शिवा-वावनीमे वर्णित वहुतसी घटनाएँ सवत् १७६८-६९ तककी है। इससे माना जा सकता है कि साहूके यहाँ भी भूषण रहे। भूषणका निधनकाल सवत् १७७२ माना जाता है। यदि प्रचलित वाते मान ली जाएँ और भूषणका जन्मकाल सम्वत १६७२ माना जाय तो भूषणकी मृत्यु १०० वर्षकी अवस्थामें हुई और यह कोई असम्भव वात नही है। यदि शिवसिहकी वात मानकर भूपणका जन्म सवत् १७३८ माना जाय और उनका साहूके यहाँ रहना ठीक समझा जाय तो भी यह आपत्ति तो है ही कि जो भूषण युवावस्था तक यो ही घूमते रहे वे ४२ वर्षकी अवस्था तक इतना सारा कार्य और प्रतिष्ठा कैसे अर्जित कर गए। सारी वातोपर विचार करनेपर यही प्रतीत होता है कि भूषणका जन्म १६७२ में और मृत्यु १७७२ में हुई तथा वे शिवाजीके यहाँ तो अवश्य ही रहे और सम्भव है साहूके यहाँ भी रहे हो।

भूषणके वास्तविक नामपर भी विवाद है। भूषणको चित्रकूटाधिपति सोलकी राजा रुद्रने कवि-भूषण की उपाधिसे सम्मानित किया था।

कुल सुलक चित्रकूट पति, साहस सील समुद्र।
कवि भूषण पदवी दई, हृदयराम सुत रुद्र॥

आगे चलकर भूषण नाम ही प्रसिद्ध हो गया। वास्तविक नामका कोई ठिकाना नही रहा।

भूषणकी रचनाएँ

भूषणकी तीन कृतियाँ आज उपलब्ध है—शिवराज-भूषण, शिवाबावनी, और छत्रसालदशक। इनके तीन ग्रन्थ और कहे जाते है—दूषणउल्लास, भूषणउल्लास और भूषणहजारा, जो अप्राप्त है। उनके कुछ फुटकर छन्द भी इधर-उधर पाए जाते है।

शिवराज-भूषणकी रचनाके सम्बन्धमें कवि लिखता है —

सिवा चरित लखि यों भयो कवि भूषणके चित्त।
भाँति भाँति भूषननि सों भूषित करों कवित्त॥
भूषन सब भुवननिमें, उपमहि उत्तम चाहि।
याते उपमहि आदि दै बरनत सकल निवाहि॥

सारी सुक पण्डित गुनगन मण्डित भावनमय अर्थ बखानै।
देखे रघुनायक सीय सहायक मनहुँ मदन रति मधु जानै ॥२॥
मारकत-मणि सुभ चित्र-पुत्री
मनो विराजै अति चारु वेष।
सम्पूर्ण सिन्दूर प्रभा बसै धौं
गणेश भालस्थल चन्द्र रेखा ॥३॥
कुन्तल ललित नील भृकुटी धनुष नैन
कुमुद कटाक्ष बान सबल सदाई है।
सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषनन
मध्य देस केसरी सु जग गति भाई है।
विग्रहानुकूल सब लच्छ लच्छ ऋच्छ बल
ऋच्छराज-मुखी मुख केसोदास गाई है।
रामचन्द्रकी चमू, राजश्री विभीषणकी
रावनकी मीचु दर कूच चलि आई है ॥४॥

भूषण

केशवने बहुत विस्तारके साथ काव्यशास्त्रके सम्पूर्ण अंगोंपर ग्रन्थ लिखा सही किन्तु रीतिग्रन्थ लिखनेवाले कवियोंकी परम्परा केशवके बहुत पीछे चिन्तामणि त्रिपाठीसे आरम्भ हुई। चिन्तामणिको भूषण और मतिरामका बड़ा भाई बताया जाता है। रीतिकी जो परम्परा उन्होंने आरम्भ की वह अबाधित रूपसे पद्माकर तक चलती रही यद्यपि पद्माकरके बहुत पीछे हरिऔध जीने भी रीति-विषयक अपना ग्रन्थ रसकलस ब्रजभाषा पद्यमें ही लिखा। चिन्तामणिके भाइयोंमें भूषण और मतिराम बहुत-ही यशस्वी कवि हो गए हैं। ये रीति-ग्रन्थकार शुद्ध रूपसे कवि ही थे। उन्होंने रीतिको अपनी कविताका माध्यम मात्र बनाया काव्यांगोंके विवेचनसे उनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं मानना चाहिए। उस युगमें उत्पन्न होकर महाकवि भूषणने भी यही डगर पकड़ा। अन्य कवियोंमें और भूषणमें सबसे बड़ा अन्तर यह है कि जहाँ औरोंने रसकी दृष्टिसे शृंगारको अधिक महत्त्व दिया वहाँ भूषणने वीररसको। इनके सभी उदाहरणोंके नायक छत्रपति शिवाजी महाराज ही हैं।

भूषणका जीवन-वृत्त

परम्परासे प्रसिद्ध है कि भूषणके तीन भाई और थे—चिन्तामणि मतिराम और जटाशंकर। किन्तु भूषण-विमर्शके रचयिताका मत है कि मतिराम थे तो भूषणके समकालीन अवश्य परन्तु उनके सहोदर न थे। भूषणने अपनेको—

द्विज कनौज कुल कस्यपी रतनाकर सुत धीर।

लिखा है। इससे यह तो सिद्ध हो गया कि रत्नाकरके पुत्र भूषण कश्यप-गोत्रीय थे। इन्होंने अपने निवास स्थानकी भी सूचना स्वयं दी है—

बसत त्रिविक्रमपुर सदा तरनितनूजा तीर।

किन्तु इसके अतिरिक्त और कोई विवरण इनके सम्बन्धका इनकी रचनाओसे नही मिलता।

भूषणके जन्मकालके सम्बन्धमे दो मत है। यदि भूषणको शिवाजीके दरबारका रत्न माना जाय-जैसा कि लोक-प्रचलित है—तो शिवाजीकी मृत्युतक तो भूषण अवश्य ही वहाँ रहे होगे। शिवाजीकी मृत्यु-तिथि सवत् १७३७ है। जो कवि शिवाजीकी सभाका रत्न रहा हो और जिसने अपने वीरतापूर्ण काव्यसे हिन्दू जाति और धर्मके रक्षक शिवाजीको उस परम पुनीत कार्यके लिए अग्रसर किया हो वह निश्चय ही अत्यन्त प्रौढ अवस्थाका अर्थात् ५० वर्षसे कम का न रहा होगा। ऐसी अवस्थामे भूषणका जन्मकाल सवत् १६७२ के आस-पास माना जा सकता है जैसा कि मिश्रबन्धुओका मत है। किन्तु ऐसा भी कहा जाता है कि भूषण वास्तवमें शिवाजीके यहाँ नही, उनके पुत्र साहूके यहाँ थे। साथ ही शिवा-वावनीमें वर्णित बहुतसी घटनाएँ सवत् १७६८-६९ तककी है। इससे माना जा सकता है कि साहूके यहाँ भी भूषण रहे। भूषणका निधनकाल सवत् १७७२ माना जाता है। यदि प्रचलित बाते मान ली जाएँ और भूषणका जन्मकाल सम्वत १६७२ माना जाय तो भूषणकी मृत्यु १०० वर्षकी अवस्थामे हुई और यह कोई असम्भव बात नही है। यदि शिवसिंहकी बात मानकर भूषणका जन्म सवत् १७३८ माना जाय और उनका साहूके यहाँ रहना ठीक समझा जाय तो भी यह आपत्ति तो है ही कि जो भूषण युवावस्था तक यो ही घूमते रहे वे ४२ वर्षकी अवस्था तक इतना सारा कार्य और प्रतिष्ठा कैसे अर्जित कर गए। सारी बातोपर विचार करनेपर यही प्रतीत होता है कि भूषणका जन्म १६७२ में और मृत्यु १७७२ में हुई तथा वे शिवाजीके यहाँ तो अवश्य ही रहे और सम्भव है साहूके यहाँ भी रहे हो।

भूषणके वास्तविक नामपर भी विवाद है। भूषणको चित्रकूटाधिपति सोलकी राजा रुद्रने कवि-भूषण की उपाधिसे सम्मानित किया था।

कुल सुलक चित्रकूट पति, साहस सील समुद्र।
कवि भूषण पदवी दई, हृदयराम सुत रुद्र॥

आगे चलकर भूषण नाम ही प्रसिद्ध हो गया। वास्तविक नामका कोई ठिकाना नही रहा।

भूषणकी रचनाएँ

भूषणकी तीन कृतियाँ आज उपलब्ध है—शिवराज-भूषण, शिवावावनी, और छत्रसालदशक। इनके तीन ग्रन्थ और कहे जाते है—दूषणउल्लास, भूषणउल्लास और भूषणहजारा, जो अप्राप्त है। उनके कुछ फुटकर छन्द भी इधर-उधर पाए जाते है।

शिवराज-भूषणकी रचनाके सम्बन्धमें कवि लिखता है —

सिवा चरित लखि यों भयो कवि भूषणके चित्त।
भाँति भाँति भूषननि सों भूषित करौं कवित्त॥
भूषन सब भुवननिमें, उपमहि उत्तम चाहि।
याते उपमहि आदि दै वरनत सकल निवाहि॥

सारी सुक पण्डित गुनगन मण्डित भावनमय अर्थ बखानै ।
देखे रघुनायक सीय सहायक मनहुँ मदन रति मधु जानै ।।२।।
आरक्त-पत्रा सुभ चित्र-पुत्री
मनो विराजै अति चारु वेषा ।
सम्पूर्ण सिन्दूर प्रभा बसै धौं,
गणेश भालस्थल चन्द्र रेखा ।।३।।
कुन्तल ललित नील भृकुटी धनुष नैन
कुमुद कटाच्छ बान सबल सदाई है ।
सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषनन
मध्य देश केसरी सु जग गति भाई है ।
विग्रहानुकूल सब लच्छ लच्छ ऋच्छ बल
ऋच्छराज-मुखी मुख केसोदास गाई है ।
रामचन्द्रकी चमू राजश्री विभीषनकी
रावनकी मीचु दर कूच चलि आई है ।।४।।

भूषण

केशवने बहुत विस्तारके साथ काव्यशास्त्रके सम्पूर्ण अंगोंपर ग्रन्थ लिखा सही किन्तु रीतिग्रन्थ लिखनेवाले कवियोंकी परम्परा केशवके बहुत पीछे चिन्तामणि त्रिपाठीसे आरम्भ हुई। चिन्तामणिको भूषण और मतिरामका बड़ा भाई बताया जाता है। रीतिकी जो परम्परा इन्होंने आरम्भ की वह अविच्छिन्न रूपसे पद्माकर तक चलती रही यद्यपि पद्माकरके बहुत पीछे गरिमौज चौबे भी रीति-विषयक अपना ग्रन्थ रसरंग ब्रजभाषा पद्यमें ही लिखा। चिन्तामणिके भाइयोंमें भूषण और मतिराम बहुत-ही यशस्वी कवि हो गए हैं। ये रीति-ग्रन्थकार मुख्य रूपसे कवि ही थे। इन्होंने रीतिको अपनी कविताका माध्यम मात्र बनाया, आचार्योंके विवेचनसे इनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं मानना चाहिए। उस युगमें उत्पन्न होकर [illegible] भूषणने भी यही डगर पकड़ा। अन्य कवियोंमें और भूषणमें सबसे बड़ा अन्तर यह है कि जहाँ औरोंने रसकी दृष्टिसे शृंगारको अधिक महत्त्व दिया वहाँ भूषणने वीररसको। इनके सभी उदाहरणोंके नायक छत्रपति शिवाजी महाराज ही हैं।

भूषणका जीवन-वृत्त

परम्परासे प्रसिद्ध है कि भूषणके तीन भाई और थे—चिन्तामणि, मतिराम और जटाशंकर। किन्तु कुछ विद्वानोंने यह निश्चित किया है कि मतिराम थे तो भूषणके समकालीन अवश्य परन्तु उनके सहोदर न थे। भूषणने अपनेको—

द्विज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर।

लिखा है। इससे यह तो सिद्ध हो गया कि रत्नाकरके पुत्र भूषण कश्यप-गोत्रीय थे। इन्होंने अपने निवास स्थानकी भी सूचना यों दी है—

बूडति है दिल्ली सो सँचारै क्यों न दिल्लीपति,
धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकालको ।।२।।
चाकचक चमूकै अचाकचक चहूँ ओर,
चाक-सी फिरति धाक चम्पतिके लालकी ।
भूषन भनत पातसाही मारि जेर कीन्ही,
काहू उमराव ना करेरी करवालकी ।।
सुनि सुनि रीति विरुदैतके बडप्पनकी,
थप्पन उथप्पनकी वानि छत्रसालकी ।
जग जीति लेवा तेऊ ह्वैकै दाम-देवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा-महिपालकी ।।३।।

मतिराम

रीति ग्रन्थकारोमे मतिराम, दास, देव और पद्माकर बहुत प्रसिद्ध हो गए है, किन्तु साहित्य-शास्त्रके आचार्यकी दृष्टिसे इनका उतना महत्त्व नही है जितना कविकी दृष्टिसे। मतिरामने अत्यन्त स्वच्छ, प्राञ्जल और चलती भाषामे अत्यन्त सरल और मधुर छन्दोकी रचना की है। इनमे किसी प्रकारकी कृत्रिमता नही है और भावव्यञ्जना भी अत्यन्त स्वाभाविक है ।

देव

मतिरामके कुछ समय पश्चात् देव कविका समय आता है। देव इटावा निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे जैसा कि उनके प्रपौत्र भोगीलालने लिखा है ---

कश्यप गोत्र द्विवेदि कुल, कान्यकुब्ज कमनीय ।
देवदत्त कवि जगत्में, भए देव रमनीय ।

स्वरचित भावविलासमें देवने दो दोहे लिखे है जिनसे उनका कुछ परिचय मिलता है ---

द्यौसरिया कवि देवको, नगर इटायो वास ।
जोवन नवल सुभाव रस, कीन्हों भावविलास ।।
सुभ सत्रहसै छियालिस, चढ़त सोरहीं वर्ष ।
कढी देव-मुख देवता, भावविलास सहर्ष ।।

इन दोहोसे इतनी बातें स्पष्ट हो जाती है---१--देव इटावाके रहनेवाले थे। २--उनका जन्म सवत् १७२० में हुआ था। ३--वे द्यौसारिया (देवसरिया, दुसरिहा) कान्युकुब्ज द्विवेदी ब्राह्मण थे। ४--उनका प्रथम ग्रन्थ भावविलास है जिसकी रचना उन्होने सवत् १७४६ मे सोलह वर्षकी अवस्थामे की थी।

इन्हें कोई स्थायी आश्रयदाता नही मिला। अत , ये इधर-उधर भटकते ही रहे। इनके अन्तिम आश्रयदाता पिहानीके अली अकबरखाँ थे, जिन्हें उन्होने सुखसागर तरग समर्पित किया है। इसके पीछेका

इसका अर्थ यह हुआ कि शिवाजीके उत्तम चरित्रका बखान करनेके उद्देश्यसे ही कविने शिवराज भूषणकी रचना की। किन्तु रीतिबद्ध रचनाका युग होनेसे उन्होंने विविध अलंकारोंके उदाहरणस्वरूप ही शिवाजीकी कीर्तिका वर्णन किया। अलंकार-शास्त्रकी दृष्टिसे शिवराज भूषण किसी कामका ग्रन्थ नहीं है। *कविने आरम्भमें ही स्पष्ट भी कर दिया है कि हम तो शिवाजीके चरित्रका वर्णन करना है* और इसके लिए अलंकारोंका माध्यम इसलिए चुना गया है कि भूषणको हिन्दुकुलभूषण का वर्णन भूषणोंके माध्यमसे सुहाता है।

भूषणने शब्दोंके रूप बहुत बिगाड़े हैं और अनेक भाषाओंके शब्दोंका प्रयोग भी तोड़-मरोड़कर किया है।

शिवा-बावनीके वर्तमान स्वरूपमें ५२ छन्द तो हैं किन्तु सब शिवाजी-परक नहीं हैं। हाँ इसके छन्द अत्यन्त ओजस्वी अवश्य हैं।

छत्रसालदशकमें छत्रसाल-सम्बन्धी दस छन्द हैं। छत्रसालने भूषणकी पालकीमें कन्धा लगाकर जो भूषणका सम्मान किया उसपर उन्होंने ये दस छन्द कहे थे।

सिवाको बखानौं कि बखानौं छत्रसालको।

जिन दोनों वीरोंका चरित्रगान भूषणने किया है उन्हें सम्पूर्ण हिन्दू जाति उत्साह और श्रद्धाके साथ स्मरण करती थी। अतः भूषणने कोई चाटुकारी नहीं की वरन् अपनी कविताके द्वारा उसी जन-भावनाकी व्यञ्जना की। इसीसे भूषणको अल्प-कालमें ही लोक-प्रियता और लोक-प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया। जिस ओजस्विनी और वीरदर्पपूर्ण भाषा और भावनाकी व्यञ्जना भूषणने की है उसके सम्बन्धमें अधिक कुछ कहना व्यर्थ है। उन्होंने उस कालमें भी वीर रस की ही रचनाएँ की और वे मुख्य रूपसे वीर-रसके ही कवि थे। उनके कुछ कवित्त नीचे दिए जा रहे हैं —

इन्द्र जिमि जम्भपर बाड़व सुअम्भपर,
रावन सदम्भपर रघुकुलराज है।
पौन बारिबाहपर सम्भु रतिनाहपर,
ज्यौं सहस्रबाहुपर राम द्विजराज है।
दावा द्रुमदण्ड पर चीता मृगझुण्डपर,
भूषन बितुण्डपर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंसपर,
त्यौं मलेच्छ-बंसपर सेर सिवराज है॥ १॥

दाराकी न दौर यह रार नहि खजुवेकी
बांधिबो नहीं है कैधौं मीर सहवालको।
मठ बिस्वनाथको न बास ग्राम गोकुलको
देवीको न देहरा न मन्दिर गोपालको।
गाढ़े गढ़ लीन्हें अरु बैरी कतलाम कीन्हें
ठौर ठौर हासिल उगाहत है सालको।

वूडति है दिल्ली सो सँचारै क्यों न दिल्लीपति,
घक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकालको ॥२॥
चाकचक चमूकै अचाकचक चहूँ ओर,
चाक-सी फिरति धाक चम्पतिके लालकी।
भूषन भनत पातसाही मारि जेर कीन्हो,
काहू उमराव ना फरेरी करवालकी ॥
सुनि सुनि रीति विरुदैतके वडप्पनकी,
थप्पन उथप्पनकी वानि छत्रसालकी।
जग जीति लेवा तेऊ ह्वैकै दाम-देवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा-महिपालकी ॥३॥

मतिराम

रीति ग्रन्थकारोमे मतिराम, दास, देव और पद्माकर वहुत प्रसिद्ध हो गए है, किन्तु साहित्य-शास्त्रके आचार्यकी दृष्टिसे इनका उतना महत्त्व नही है जितना कविकी दृष्टिसे। मतिरामने अत्यन्त स्वच्छ, प्राञ्जल और चलती भाषामे अत्यन्त सरल और मधुर छन्दोकी रचना की है। इनमे किसी प्रकारकी कृत्रिमता नही है और भावव्यञ्जना भी अत्यन्त स्वाभाविक है।

देव

मतिरामके कुछ समय पश्चात् देव कविका समय आता है। देव इटावा निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे जैसा कि उनके प्रपौत्र भोगीलालने लिखा है —

कश्यप गोत्र द्विवेदि कुल, कान्यकुब्ज कमनीय।
देवदत्त कवि जगत्में, भए देव रमनीय।

स्वरचित भावविलासमें देवने दो दोहे लिखे है जिनसे उनका कुछ परिचय मिलता है —

धौसरिया कवि देवको, नगर इटायो वास।
जोवन नवल सुभाव रस, कीन्हों भावविलास ॥
सुभ सत्रहसै छियालिस, चढ़त सोरहीं वर्ष।
कढ़ी देव-मुख देवता, भावविलास सहर्ष ॥

इन दोहोसे इतनी बातें स्पष्ट हो जाती है—१—देव इटावाके रहनेवाले थे। २—उनका जन्म सवत् १७२० में हुआ था। ३—वे द्यौसारिया (देवसरिया, दुसरिहा) कान्युकुब्ज द्विवेदी ब्राह्मण थे। ४—उनका प्रथम ग्रन्थ भावविलास है जिसकी रचना उन्होने सवत् १७४६ मे सोलह वर्षकी अवस्थामे की थी।

इन्हें कोई स्थायी आश्रयदाता नही मिला। अत, ये इधर-उधर भटकते ही रहे। इनके अन्तिम आश्रयदाता पिहानीके अली अकबरखाँ थे, जिन्हें उन्होने सुखसागर तरग समर्पित किया है। इसके पीछेका

इसका अर्थ यह हुआ कि शिवाजीके उत्तम चरित्रका बखान करनेके उद्देश्यसे ही कविने शिवराज-भूषणकी रचना की। किन्तु रीतिबद्ध रचनाका युग होनेसे उन्होंने विविध अलंकारोंके उदाहरणस्वरूप ही शिवाजीकी कीर्तिका वर्णन किया। अलंकार-शास्त्रकी दृष्टिसे शिवराज भूषण किसी कामका ग्रन्थ नहीं है। कविने आरम्भमें ही स्पष्ट भी कर दिया है कि हम तो शिवाजीके चरित्रका वर्णन करना है और इसके लिए अलंकारोंका माध्यम इसलिए चुना गया है कि भूषणको हिन्दूकुलभूषण का वर्णन भूषणोंके माध्यमसे सुहाता है।

भूषणने शब्दोंके रूप बहुत बिगाड़े हैं और अनेक भाषाओंके शब्दोंका प्रयोग भी तोड़-मरोड़कर किया है।

शिवा-बावनीके वर्तमान स्वरूपमें ५२ छन्द तो हैं किन्तु सब शिवाजी-परक नहीं हैं। हाँ इसके छन्द अत्यन्त ओजस्वी अवश्य हैं।

छत्रसालदशकमें छत्रसाल-सम्बन्धी दस छन्द हैं। छत्रसालने भूषणकी पालकीमें कन्धा लगाकर जो भूषणका सम्मान किया उसपर उन्होंने ये दस छन्द कहे थे।

सिवाको बखानौं कि बखानौं छत्रसालको।

जिन दोनों वीरोंका चरित्रगान भूषणने किया है उन्हें सम्पूर्ण हिन्दू जाति उत्साह और श्रद्धाके साथ स्मरण करती थी। अतः भूषणने कोई चाटुकारी नहीं की वरन् अपनी कविताके द्वारा उसी जन-भावनाकी व्यञ्जना की। इसीसे भूषणको अल्प-कालमें ही लोक-प्रियता और लोक-प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया। जिस ओजस्विनी और वीरदर्पपूर्ण भाषा और भावनाकी व्यञ्जना भूषणने की है उसके सम्बन्धमें अधिक कुछ कहना व्यर्थ है। उन्होंने उस कालमें भी वीर रस की ही रचनाएँ की और वे मुख्य रूपसे वीर रसके ही कवि थे। उनके कुछ कवित्त नीचे दिए जा रहे हैं —

इन्द्र जिमि जम्भपर बाड़व सुअम्भपर,
रावन सदम्भपर रघुकुलराज है।
पौन बारिबाहपर सम्भु रतिनाहपर,
ज्यौं सहस्रबाहुपर राम द्विजराज है।
दावा द्रुमदण्ड पर चीता मृगझुण्डपर
भूषन बितुण्डपर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंसपर
त्यौं म्लेच्छ-बंसपर सेर सिवराज है॥१॥
दाराकी न दौर यह रार नहिं खजुवेकी
बाँधिबो नहीं है कैधौं मीर सहवालको।
मठ विश्वनाथको न बास ग्राम गोकुलको
देवीको न देहरा न मन्दिर गोपालको।
गाढ़ गढ़ लीन्हें अरु बैरी कतलाम कीन्हें
ठौर ठौर हासिल उगाहत है सालको।

बूडति है दिल्ली सो सँचारै क्यों न दिल्लीपति,
घक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकालको ॥२॥
चाकचक चमूकै अचाकचक चहूँ ओर,
चाक-सी फिरति धाक चम्पतिके लालकी।
भूषन भनत पातसाही मारि जेर कीन्ही,
काहू उमराव ना करेरी करवालकी॥
सुनि सुनि रीति बिरुदैतके बडप्पनकी,
थप्पन उथप्पनकी बानि छत्रसालकी।
जग जीति लेवा तेऊ ह्वैकै दाम-देवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा-महिपालकी ॥३॥

मतिराम

रीति ग्रन्थकारोमे मतिराम, दास, देव और पद्माकर बहुत प्रसिद्ध हो गए है, किन्तु साहित्य-शास्त्रके आचार्यकी दृष्टिसे इनका उतना महत्त्व नही है जितना कविकी दृष्टिसे। मतिरामने अत्यन्त स्वच्छ, प्राञ्जल और चलती भाषामे अत्यन्त सरल और मधुर छन्दोकी रचना की है। इनमे किसी प्रकारकी कृत्रिमता नही है और भावव्यञ्जना भी अत्यन्त स्वाभाविक है।

देव

मतिरामके कुछ समय पश्चात् देव कविका समय आता है। देव इटावा निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे जैसा कि उनके प्रपौत्र भोगीलालने लिखा है —

कश्यप गोत्र द्विवेदि कुल, कान्यकुब्ज कमनीय।
देवदत्त कवि जगत्में, भए देव रमनीय।

स्वरचित भावविलासमें देवने दो दोहे लिखे है जिनसे उनका कुछ परिचय मिलता है —

द्यौसरिया कवि देवको, नगर इटायो वास।
जोवन नवल सुभाव रस, कीन्हों भावविलास॥
सुभ सत्रहसै छियालिस, चढ़त सोरहीं वर्ष।
कढ़ी देव-मुख देवता, भावविलास सहर्ष॥

इन दोहोसे इतनी बातें स्पष्ट हो जाती है—१—देव इटावाके रहनेवाले थे। २—उनका जन्म सवत् १७२० में हुआ था। ३—वे धौसारिया (देवसरिया, दुसरिहा) कान्युकुब्ज द्विवेदी ब्राह्मण थे। ४—उनका प्रथम ग्रन्थ भावविलास है जिसकी रचना उन्होने सवत् १७४६ में सोलह वर्षकी अवस्थामे की थी।

इन्हे कोई स्थायी आश्रयदाता नही मिला। अत, ये इधर-उधर भटकते ही रहे। इनके अन्तिम आश्रयदाता पिहानीके अली अकबरखाँ थे, जिन्हे उन्होने सुखसागर तरग समर्पित किया है। इसके पीछेका

इसका अर्थ यह हुआ कि शिवाजीके उत्तम चरित्रका बखान करनेके उद्देश्यसे ही कविने शिवराज-भूषणकी रचना की। किन्तु रीतिबद्ध रचनाका युग होनेसे उन्होंने विविध अलंकारोंके उदाहरणरूप ही शिवाजीकी कीर्तिका वर्णन किया। अलंकार-शास्त्रकी दृष्टिसे शिवराज भूषण किसी कामका ग्रन्थ नहीं है। कविने आरम्भमें ही स्पष्ट भी कर दिया है कि हम तो शिवाजीके चरित्रका वर्णन करता है और इसके लिए अलंकारोंका माध्यम इसलिए चुना गया है कि भूषणको हिन्दूकुलभूषण का वर्णन भूषणोंके माध्यमसे सुहाता है।

भूषणने शब्दोंके रूप बहुत बिगाडे हैं और अनेक भाषाओंके शब्दोंका प्रयोग भी तोड़-मरोड़कर किया है।

शिवा-बावनीके वर्तमान स्वरूपमें ५२ छन्द तो हैं किन्तु सब शिवाजी-परक नहीं हैं। हाँ इसके छन्द अत्यन्त ओजस्वी अवश्य हैं।

छत्रसालदशकमें छत्रसाल-सम्बन्धी दस छन्द हैं। छत्रसालने भूषणकी पालकीमें कन्धा लगाकर जो भूषणका सम्मान किया उसपर उन्होंने ये दस छन्द कहे थे।

सिवाको बखानौं की बखानौं छत्रसालको।

जिन दोनों वीरोंका चरित्रगान भूषणने किया है उन्हें सम्पूर्ण हिन्दू जाति उत्साह और श्रद्धाके साथ स्मरण करती थी। अतः भूषणने कोई चाटुकारी नहीं की वरन् अपनी कविताके द्वारा उसी जन भावनाकी व्यञ्जना की। इसीसे भूषणको अल्प-कालमें ही लोक-प्रियता और लोक-प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया। जिस ओजस्विनी और वीरदर्पपूर्ण भाषा और भावनाकी व्यञ्जना भूषणने की है उसके सम्बन्धमें अधिक कुछ कहना व्यर्थ है। उन्होंने उस कालमें भी वीर रस की ही रचनाएँ की और वे मुख्य रूपसे वीर-रसके ही कवि थे। उनके कुछ कवित्त नीचे दिए जा रहे हैं —

इन्द्र जिमि जम्भपर बाड़व सुअम्भपर,
रावन सदम्भपर रघुकुलराज हैं।
पौन बारिवाहपर सम्भु रतिनाहपर,
ज्यौं सहस्रबाहुपर राम द्विजराज हैं।
दावा द्रुमदण्ड पर चीता मृगझुण्डपर,
भूषन वितुण्डपर जैसे मृगराज हैं।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंसपर,
त्यौं म्लेच्छ-बंसपर सेर सिवराज हैं॥१॥
दाराकी न दौर यह रार नहिं खजुवेकी
बाँधिबो नहीं है कैधों मीर सहवालको।
मठ विश्वनाथको न बास ग्राम गोकुलको
देवीको न देहरा न मन्दिर गोपालको।
गाढे गढ़ लीन्हे अरु बैरी कतलाम कीन्हें
ठौर ठौर हासिल उगाहत है सालको।

बूडति है दिल्ली सो संचारै क्यो न दिल्लीपति,
घक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकालको ॥२॥
चाकचक चमूकं अचाकचक चहूँ ओर,
चाक-सी फिरति धाक चम्पतिके लालकी।
भूषन भनत पातसाही मारि जेर कीन्ही,
काहू उमराव ना फरेरी फरवालकी ॥
सुनि सुनि रीति विरुदंतके बडप्पनकी,
थप्पन उयप्पनकी वानि छत्रसालकी।
जग जीति लेवा तेऊ ह्वैकै दाम-देवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा-महिपालकी ॥३॥

मतिराम

रीति ग्रन्थकारोमे मतिराम, दास, देव और पद्माकर बहुत प्रसिद्ध हो गए है, किन्तु साहित्य-शास्त्रके आचार्यकी दृष्टिसे इनका उतना महत्त्व नही है जितना कविकी दृष्टिसे। मतिरामने अत्यन्त स्वच्छ, प्राञ्जल और चलती भाषामें अत्यन्त सरल और मधुर छन्दोकी रचना की है। इनमे किसी प्रकारकी कृत्रिमता नही है और भावव्यञ्जना भी अत्यन्त स्वाभाविक है।

देव

मतिरामके कुछ समय पश्चात् देव कविका समय आता है। देव इटावा निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे जैसा कि उनके प्रपौत्र भोगीलालने लिखा है —

कश्यप गोत्र द्विवेदि कुल, कान्यकुब्ज कमनीय।
देवदत्त कवि जगत्में, भए देव रमनीय।

स्वरचित भावविलासमें देवने दो दोहे लिखे है जिनसे उनका कुछ परिचय मिलता है —

द्यौसरिया कवि देवको, नगर इटायो वास।
जोवन नवल सुभाव रस, कीन्हो भावविलास ॥
सुभ सत्रहसै छियालिस, चढ़त सोरहीं वर्ष।
कढ़ी देव-मुख देवता, भावविलास सहर्ष ॥

इन दोहोसे इतनी बातें स्पष्ट हो जाती है—१—देव इटावाके रहनेवाले थे। २—उनका जन्म सवत् १७२० में हुआ था। ३—वे द्यौसारिया (देवसरिया, दुसरिहा) कान्यकुब्ज द्विवेदी ब्राह्मण थे। ४—उनका प्रथम ग्रन्थ भावविलास है जिसकी रचना उन्होने सवत् १७४६ मे सोलह वर्षकी अवस्थामें की थी।

इन्हें कोई स्थायी आश्रयदाता नही मिला। अत, ये इधर-उधर भटकते ही रहे। इनके अन्तिम आश्रयदाता पिहानीके अली अकबरखाँ थे, जिन्हें उन्होने सुखसागर तरग समर्पित किया है। इसके पीछेका

इसका अर्थ यह हुआ कि शिवाजीके उत्तम चरित्रका बखान करनेके उद्देश्यसे ही कविने शिवराज-भूषणकी रचना की। किन्तु रीतिबद्ध रचनाका युग होनेसे उन्होंने विविध अलंकारोंके उदाहरणस्प ही शिवाजीकी कीर्तिका वर्णन किया। अलंकार-शास्त्रकी दृष्टिसे शिवराज-भूषण किसी कामका ग्रन्थ नहीं है। कविने आरम्भमें ही स्पष्ट भी कर दिया है कि हम तो शिवाजीके चरित्रका वर्णन करना है और इसके लिए अलंकारोंका माध्यम इसलिए चुना गया है कि भूषणको हिन्दूकुलभूषण का वर्णन भूषणोंके माध्यमसे सुहाता है।

भूषणने शब्दोंके रूप बहुत बिगाड़े हैं और अनेक भाषाओंके शब्दोंका प्रयोग भी तोड़-मरोड़कर किया है।

शिवा-बावनीके वर्तमान स्वरूपमें ५२ छन्द तो हैं किन्तु सब शिवाजी-परक नहीं है। हाँ इसके छन्द अत्यन्त ओजस्वी अवश्य हैं।

छत्रसालदशकमें छत्रसाल-सम्बन्धी दस छन्द हैं। छत्रसालने भूषणकी पालकीमें कन्धा लगाकर जो भूषणका सम्मान किया उसपर उन्होंने ये दस छन्द कहे थे।

सिवाको बखानौं की बखानौं छत्रसालको।

जिन दोनो वीरोंका चरित्रगान भूषणने किया है उन्हे सम्पूर्ण हिन्दू जाति उत्साह और श्रद्धाके साथ स्मरण करती थी। अत भूषणने कोई चाटुकारी नहीं की वरन् अपनी कविताके द्वारा उसी जन-भावनाकी व्यञ्जना की। इसीसे भूषणको अल्प-कालमे ही लोक-प्रियता और लोक-प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया। जिस ओजस्विनी और वीरदर्पपूर्ण भाषा और भावनाकी व्यञ्जना भूषणने की है उसके सम्बन्धमे अधिक कुछ कहना व्यर्थ है। उन्होंने उस कालम भी वीर रस की ही रचनाएँ की और वे शुद्ध रूपसे वीर-रसके ही कवि थे। उनके कुछ कवित्त नीचे दिए जा रहे हैं —

इन्द्र जिमि जम्भपर बाड़व सुअम्भपर,
रावन सदम्भपर रघुकुलराज हैं।
पौन बारिवाहपर सम्भु रतिनाहपर,
ज्यौं सहस्रबाहुपर राम द्विजराज हैं।
दावा द्रुमदण्ड पर चीता मृगझुण्डपर
भूषण वितुण्डपर जैसे मृगराज हैं।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंसपर
त्यौं म्लेच्छ-बंसपर सेर सिवराज हैं ॥१॥
दाराकी न दौर यह रार नहि खजुवेकी,
बाँधिबो नहीं है कैधौं मीर सहबालको।
मठ विश्वनाथको न बास ग्राम गोकुलको
देवीको न देहरा न मन्दिर गोपालको।
गाड़ गढ़ लीन्हें अरु बैरी कतलाम कीन्हें
ठौर ठौर हासिल उगाहत हैं सालको।

देव कछू अपनो बस ना रस लालच लाल चितै भईं चेरी ।
बेग ही बूडि गईं पखियां अंखियां मधुकी मखियां भईं मेरी ॥२॥
झहरि झहरि झीनी बूंद हैं परति मानो ।
घहरि घहरि घटा घेरी है गगन में ।
आनि कह्यो स्याम मोसों चलो झूलिबे को आज ।
फूली ना समानी भई ऐसी हौं मगन मैं ।
चाहत उठ्योई उठि गई सो निगोडी नींद,
सोय गए भाग मेरे जागि वा जगन में ।
आंख खोलि देखौं तौ न घन है न घनस्याम,
वेई छाई बूंदें मेरे आंसु ह्वै दृगनमें ॥३॥

एक वाक्यमे कहा जा सकता है कि देव बहुज्ञ थे और शृंगार रसका जैसा सशक्त वर्णन इन्होने किया है वैसा कम कवि कर सके है ।

पद्माकर

रीति-ग्रन्थकार कवियोमें पद्माकरका स्थान अत्यन्त ऊंचा है । बिहारीके अतिरिक्त इनके-जैसी लोकप्रियता भी किसीको नही मिली और इसका कारण है इनकी कविताकी रमणीयता ।

पद्माकरका जन्म मोहनलाल भट्टके घर सवत् १८१० मे हुआ था । ये तैलग ब्राह्मण थे और बांदामे ही उत्पन्न हुए थे । सस्कृतके अच्छे विद्वान् और भाषाके सुकवि होनेके कारण अनेक राजधानियोमे इनका सम्मान हुआ था । पद्माकरने अपनी कवित्व-शक्तिसे करोडोकी सम्पत्ति, नाम और प्रतिष्ठा भी प्राप्त की । सबसे पहले ये नोने अर्जुनसिहके यहां रहे । उसके पश्चात् गोसाई अनूपगिरि (हिम्मत बहादुर) के यहां कुछ समय रहकर ये रघुनाथ रावके यहां चले गए । वहांसे ये जयपुर, उदयपुर, ग्वालियर और बूंदी होते हुए बांदा चले आए । जीवनके अन्तिम सात वर्ष पद्माकरने कानपुरमे गगा तटपर बिताए जहां सम्वत् १८९० में इनकी मृत्यु हुई ।

पद्माकरकी रचनाएं

पद्माकरकी सबसे पहली रचना हिम्मतबहादुर-विरुदावली है जिसमे फडकती भाषामे इन्होने हिम्मतबहादुरके गुणोका वर्णन किया है । यह खण्ड कथा-काव्य है । अपने जयपुर-निवास-कालमें इन्होने महाराज जगतसिहके नामपर जगद्विनोदकी रचना की । रस-शास्त्रपर लिखा हुआ इनका यह जग-द्विनोद अत्यन्त लोकप्रिय हुआ । वही सम्भवत इन्होने अलकार-विषयक अपना ग्रन्थ 'पद्माभरण' भी लिखा जो दोहोमें हैं । बांदा लौटनेपर इन्होने भक्ति और वैराग्य-सम्बन्धी ग्रन्थ 'प्रबोधपचीसी' की रचना की । कानपुर-निवासकालमें इन्होंने 'गगालहरी' की रचना की जिसमे गगाजी की स्तुति है । रामरसायन नामसे दोहे चौपाइयोमें लिखा । इनके नामसे एक और ग्रन्थ प्रसिद्ध है किन्तु उसकी रचना साधारण होनेसे कहा जाता है कि सम्भवत यह किसी दूसरेकी रचना हो ।

उसका और कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। रसी अकबरखाँका समय सवत् १८२४ से आरम्भ होता है। अतः ज्ञात होता है कि उसके कुछ ही पश्चात् देवका परलोकवास हुआ।

देवकी रचनाएं

देवकी रची ७२ पुस्तके बताई जाती हैं किन्तु उनमे २७ का नाम ज्ञात है और मिलती केवल १८ हैं—भावविलास अष्टयाम भवानीविलास प्रेमतरग कुशलविलास जातिविलास रसविलास प्रेमचन्द्रिका सुजानविनोद रामरत्नाकर, शब्द-रसायन देवचरित्र देवमाया प्रपच जगद्दर्शन-पचीसी आत्मदर्शन-पचीसी तत्त्वदर्शन-पचीसी प्रेमपचीसी और सुखसागर-तरग। इनमे अधिकाश रचनाएँ शृगार रसकी हैं और कुछ उनके ससारसे विरक्ति-भावकी सूचक हैं। इनकी रचनाओका श्रेणी-विभाजन किया जाय तो तीन कोटियाँ सामने आती हैं—१—शृगार और प्रेमकी भावनासे ओतप्रोत जिसके अन्तर्गत अष्टयाम जातिविलास रसविलास और सुजानविनोद आते हैं। २—रीतिके विवेचनके लिए लिखे हुए ग्रन्थ जिसके अन्तर्गत भाव विलास भवानीविलास और शब्दरसायनकी गणना की जा सकती है तथा ३—दार्शनिक विचारोसे युक्त जिसके अन्तर्गत देव चरित्र देवमायाप्रपच प्रेम-पचीसी तत्त्वदर्शन-पचीसी जगद्दर्शन-पचीसी और आत्मदर्शन-पचीसी आते हैं। शेष पाँचमें रामरत्नाकर तो सचीतका ग्रन्थ है और सुखसागर तरग उनके विभिन्न ग्रन्थोसे लिया हुआ सग्रह ग्रन्थ है। यही अवस्था उनके तीन अन्य ग्रन्थोकी भी है। इस प्रकार अब तक प्राप्त ग्रन्थोमे तेरह ही ऐसे हैं जिन्हे देवकी स्वतन्त्र रचना कहा जा सकता है।

देव सब प्रकारसे महाकवि थे। रीतिकालके कवियोंमें उनका प्रमुख स्थान है। भाषा और भावपर पूर्ण अधिकारके साथ प्रत्येक विषयका ठीक ढगसे सरस चित्रण कर देना देवका सबसे बड़ा कौशल है। देव स्वतन्त्र विचारोंके निर्भीक व्यक्ति थे। इनको न किसी का बन्धन अच्छा लगता था न ये किसीकी चाप लूसी अधिक करते थे। इसीलिए ये किसीके यहाँ टिक नहीं पाए।

देवकी भाषा प्रौढ़ और प्राञ्जल है। उसमें प्रवाह है। इनके कवित्तोमें जितना प्रबल प्रवाह ओज अनुप्रास और यमक की छटा मिलती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। इनके सवैये सरलता और माधुर्यसे ओतप्रोत है। इनकी रचनाएँ प्रसाद-गुण सम्पन्न होनेके साथ ही गम्भीर और गूढ भी है इनका शब्द विन्यास ललित और मनोमुग्धकारी है। शब्दोको तोड़ा-मरोड़ा भी इन्होने कम है। देशाटनसे प्रभावित होकर अन्य भाषाके शब्दोंका प्रयोग तो अवश्य इन्होने किया है किन्तु इस कौशलसे कि भाषाओंके प्रवाहमे वे पूर्णत घुलमिल गए हैं। जैसे-जैसे ये वयस बढ़ते गये वैसे-वैसे इनकी भाषा और इनके भावमे निखार आता गया। इनकी रचनाओके कुछ उदाहरण लीजिए —

> पाँयन नूपुर मञ्जु बजै कटि किंकिनि मे धुनिकी मधुराई।
> साँवरे अग लसै पट पीत, हिए हुलसै बनमाल सुहाई॥
> माथे किरीट बड़े दृग चञ्चल मन्द हँसी मुखचन्द जुन्हाई।
> जै जग मन्दिर दीपक सुन्दर श्रीब्रजदूलह देव सहाई॥१॥
> धारमें धाय धँसी निरधार ह्वै जाय फँसी उकसीं न उमेरी।
> री! अगराय गिरीं गहिरी, गहि फेरे फिरीं न घिरीं नहि घेरी॥

ब्रजभाषाके प्रबन्ध काव्य

ब्रजभाषाकी प्रकृति मुक्तक काव्यके अधिक अनुकूल है सही परन्तु इसका यह अर्थ नही है कि उसमे सफल प्रबन्ध काव्योकी रचना नही हो सकती। ब्रजभाषाके प्रथम महाकवि सूरदासजीने श्रीमद्भागवतको आधार मानकर भी सूरसागरकी सम्पूर्ण रचना मुक्तक शैलीमे ही की, क्योकि उन्होने जो पद कहे है वे तो श्रीनाथजीकी कीर्तन-सेवामें ही कहे हैं। किन्तु उसका प्रभाव यह हुआ कि उन्हीके अनुकरणपर ब्रजभाषामे कृष्ण-सम्बन्धी जो विशाल साहित्य रचा गया वह सब मुक्तक छन्दो या पदोमे ही रह गया। इसीलिए ब्रजभाषा मुक्तकोमे ही मँजी।

सूरदासजीका सूर-सागर यदि छोड दिया जाय तो ब्रजभाषाका सबसे पहला प्रबन्ध-काव्य नन्ददास-की रासपञ्चाध्यायी है। उसमे कृष्णके बालचरितकी एक झाँकी दिखाई गई है। इसी समयके आस-पास नरहरि कविने रुक्मिणी-मगलकी रचना की। किन्तु खण्डकाव्यके रूपमे जिस ग्रन्थकी सबसे अधिक प्रसिद्धि हुई और जिसे आज भी प्रत्येक पढा-लिखा व्यक्ति जानता है वह है नरोत्तमदासजीका सुदामाचरित। इसकी रचना अत्यन्त सरस और हृदयग्राहिणी है। रामचन्द्रिकाको यदि स्फुट छन्दोका सग्रह न मानकर महाकाव्य मानें तो सवत् १६५८ मे ही ब्रजभाषाका प्रथम महाकाव्य प्रकाशमे आ गया था। इसके पश्चात् प्राय सभी अच्छे-अच्छे कवियोका ध्यान रीति-ग्रन्थोकी रचनाकी ओर ही आकृष्ट हो गया और किसीने भी कथाकी ओर रुचि न दिखाई। जो छोटे-मोटे कथा-काव्य रचे भी गए, वे भी बडे महत्त्वहीन हैं। हाँ, कुछ अन्य कवियोने कथा-काव्योकी रचनाएँ अवश्य की है जिनमे सबसे पहला नाम लाल कविका आता है जिन्होने दोहे-चौपाईमे 'छत्रप्रकाश' की रचना की। यह वीर-रस प्रधान रचना है। छोटी-मोटी अन्य प्रबन्ध रचनाओ-के पश्चात् सूदनके 'सुजानचरित' का नाम आता है। इसमें भरतपुरके सुजानसिहके शौर्य और पराक्रमका वर्णन बडे ही ओजस्वी छन्दोमे किया गया है। वीररसके ग्रन्थोमें इसका विशेष महत्त्व है। पद्माकरकी 'हिम्मतबहादुर विरुदावली' भी वीर रसका छोटासा अच्छा खण्ड-काव्य है। चन्द्रशेखर वाजपेयीका 'हम्मीर हठ' भी प्रसिद्ध ग्रन्थ है। बीसवी शताब्दीके प्रथम चरणमें भारतेन्दुके पिता गिरिधरदासजीने भी कई प्रबन्ध-काव्योकी रचना ब्रजभाषामे की। ब्रजभाषामे काव्य-रचना कुछ दिन आगेतक भी चलती रही किन्तु भारतेन्दु-मण्डलके अवसानके साथ उसकी व्याप्ति समाप्त हो गई और उसका स्थान नागरीने लिया। इसका यह अर्थ नही कि ब्रजभाषामे काव्य-रचना बन्द हो गई। वह तो आज भी हो रही है और कितने ही अच्छे-अच्छे कवि ब्रजभाषामें बडी उच्च कोटिकी रचनाएँ करते जा रहे हैं किन्तु अब यह छिटफुट प्रयासके रूपमें ही है। ब्रजभाषाके वर्तमान मुक्तक रचनाकारोकी चर्चा हम पहले कर आए है। इस युगके प्रबन्ध-काव्य रचनेवालोमें राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' का नाम लिया जा सकता है जिन्होने 'धाराधर-धावन' के नामसे मेघदूतका अनुवाद किया। बीसवी शताब्दीके उत्तरार्द्धमें कथा-काव्य रचनेवालोमें जगन्नाथदास 'रत्नाकर', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और रामनाथ ज्योतिषीका नाम आता है। इस प्रकार हम देखते है कि ब्रज भाषामे कथा-काव्यकी परम्परा अब भी चल रही है, यद्यपि उसमें रचनाएँ अब बहुत कम हो रही है।

रत्नाकर

श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म काशीमें सवत् १९२३ में और निधन हरिद्वारमें स १९८९ में

यद्यपि इनकी अन्य रचनाएँ भी कम महत्त्व की नहीं हैं किन्तु पद्माकरकी ख्यातिका मुख्य आधार इनका जगद्विनोद है। काव्यरसिकों और काव्याभ्यासियों दोनोंके लिए इस ग्रन्थका समान महत्त्व रहा है।

पद्माकरकी रचनाओंमें भाषा और भाव दोनोंकी चुस्ती और सजीवता प्राप्त होती है। जैसा प्रौढ़ इनका शब्द-विन्यास है वैसा ही भावको साकार कर देनेका कौशल भी। उनके शब्दोंमें झंकार है प्रवाह है और सरलता है और इनके प्रयोगमें इस कौशलसे काम लिया गया है कि पद्माकरके कवित्त-सवैयोंसे रस छलक पड़ता है। अनुप्रासका ध्यान इन्होंने बराबर रखा है किन्तु कदाचित् ही कहीं ऐसा लगता हो कि भाषा या भाव उसके कारण दब गए हों। जैसे इन्होंने अन्य भाषाओंके शब्द भी कहीं-कहीं लेकर पचाए हैं उसी प्रकार अन्य कवियोंके भाव भी इन्होंने इस प्रकार लिए हैं कि वे इनके हो गए हैं।

पद्माकरका काव्य-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इन्होंने वीररसकी कविता भी उसी कौशलके साथ लिखी है जिस कौशलके साथ शृंगार रस की। अन्तिम दिनोंमें इन्होंने ज्ञान भक्ति विषयक जो दो ग्रन्थ लिखे वे भी कविका महत्त्व घटाते नहीं बढ़ाते हैं।

पद्माकरकी रचनाओंके कुछ उदाहरण लीजिए —

फागुकी भीर, अभीरिनमें गहि गोविन्दै लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मनकी पदमाकर, ऊपर नाई अबीरकी झोरी॥
छीनि पितम्बर कम्मर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कही मुसुकाय लला फिर आइयो खेलन होरी॥१॥
ए ब्रजचन्द चलौ किन वा ब्रज लूकैं बसन्तकी ऊकन लागीं।
त्यौं पदमाकर पेखौ पलासन पावक-सी मनो फूँकन लागीं॥
वै ब्रजनारी बिचारी बधू बन बावरी लौं हिए हूकन लागीं।
कारी कुरूप कसाइनें ये सु कुहू-कुहू क्वैलिया कूकन लागीं॥२॥
कूलनमें केलिमें कछारनमें कुञ्जनमें
क्यारिनमें कलित कलीन किलकन्त है।
कहै पदमाकर परागनमें पौन हूँ मे
पानममें पीकमें पलासन पगन्त है।
द्वारमें दिसानमें दुनीमें देस-देसनमें
देखौ दीप दीपनमें दीपति दिगन्त है।
बीथिनमें ब्रजमें नेवलिनमें बेलिनमें
बननमें बागनमें बगरो बसन्त है॥३॥

रीति-ग्रन्थकारोंकी परम्परामें अन्तिम कवि प्रतापसाहि थे जिन्होंने व्यंग्यार्थ कौमुदी लिखी। उसके पश्चात् भारतमें गद्यका प्रचार हो जानेसे साहित्य-शास्त्र-सम्बन्धी जो भी ग्रन्थ लिखे गए सब प्रायः गद्यमें ही। इस शताब्दीके प्रथम चरणमें एक ही कवि हरिऔधजीने ब्रजभाषा पद्यमें रीति-विषयक अपना ग्रन्थ रसकलस प्रस्तुत किया।

ब्रजभाषाके प्रबन्ध काव्य

ब्रजभाषाकी प्रकृति मुक्तक काव्यके अधिक अनुकूल है सही परन्तु इसका यह अर्थ नही है कि उसमे सफल प्रबन्ध काव्योकी रचना नही हो सकती। ब्रजभाषाके प्रथम महाकवि सूरदासजीने श्रीमद्भागवतको आधार मानकर भी सूरसागरकी सम्पूर्ण रचना मुक्तक शैलीमे ही की, क्योकि उन्होने जो पद कहे हैं वे तो श्रीनाथजीकी कीर्त्तन-सेवामे ही कहे हैं। किन्तु उसका प्रभाव यह हुआ कि उन्हींके अनुकरणपर ब्रजभाषामें कृष्ण-सम्बन्धी जो विशाल साहित्य रचा गया वह सब मुक्तक छन्दो या पदोमे ही रह गया। इसीलिए ब्रजभाषा मुक्तकोमें ही मँजी।

सूरदासजीका सूर-सागर यदि छोड दिया जाय तो ब्रजभाषाका सबसे पहला प्रबन्ध-काव्य नन्ददास-की रासपञ्चाध्यायी है। उसमे कृष्णके बालचरितकी एक झाँकी दिखाई गई है। इसी समयके आस-पास नरहरि कविने रुक्मिणी-मगलकी रचना की। किन्तु खण्डकाव्यके रूपमे जिस ग्रन्थकी सबसे अधिक प्रसिद्धि हुई और जिसे आज भी प्रत्येक पढा-लिखा व्यक्ति जानता है वह है नरोत्तमदासजीका सुदामाचरित। इसकी रचना अत्यन्त सरस और हृदयग्राहिणी है। रामचन्द्रिकाको यदि स्फुट छन्दोका सग्रह न मानकर महाकाव्य मानें तो सवत् १६५८ मे ही ब्रजभाषाका प्रथम महाकाव्य प्रकाशमे आ गया था। इसके पश्चात् प्राय सभी अच्छे-अच्छे कवियोका ध्यान रीति-ग्रन्थोकी रचनाकी ओर ही आकृष्ट हो गया और किसीने भी कथाकी ओर रुचि न दिखाई। जो छोटे-मोटे कथा-काव्य रचे भी गए, वे भी बडे महत्त्वहीन है। हाँ, कुछ अन्य कवियोने कथा-काव्योकी रचनाएँ अवश्य की है जिनमे सबसे पहला नाम लाल कविका आता है जिन्होंने दोहे-चौपाईमे 'छत्रप्रकाश' की रचना की। यह वीर-रस प्रधान रचना है। छोटी-मोटी अन्य प्रबन्ध रचनाओ-के पश्चात् सूदनके 'सुजानचरित' का नाम आता है। इसमे भरतपुरके सुजानसिंहके शौर्य और पराक्रमका वर्णन बडे ही ओजस्वी छन्दोमें किया गया है। वीररसके ग्रन्थोमें इसका विशेष महत्त्व है। पद्माकरकी 'हिम्मतबहादुर विरुदावली' भी वीर रसका छोटासा अच्छा खण्ड-काव्य है। चन्द्रशेखर वाजपेयीका 'हम्मीर हठ' भी प्रसिद्ध ग्रन्थ है। बीसवी शताब्दीके प्रथम चरणमे भारतेन्दुके पिता गिरिधरदासजीने भी कई प्रबन्ध-काव्योकी रचना ब्रजभाषामे की। ब्रजभाषामें काव्य-रचना कुछ दिन आगेतक भी चलती रही किन्तु भारतेन्दु-मण्डलके अवसानके साथ उसकी व्याप्ति समाप्त हो गई और उसका स्थान नागरीने लिया। इसका यह अर्थ नही कि ब्रजभाषामे काव्य-रचना बन्द हो गई। वह तो आज भी हो रही है और कितने ही अच्छे-अच्छे कवि ब्रजभाषामें बडी उच्च कोटिकी रचनाएँ करते जा रहे है किन्तु अब यह छिटफुट प्रयासके रूपमें ही है। ब्रजभाषाके वर्तमान मुक्तक रचनाकारोंकी चर्चा हम पहले कर आए हैं। इस युगके प्रबन्ध-काव्य रचनेवालोमे राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने 'धाराधर-धावन' के नामसे मेघदूतका अनुवाद किया। बीसवी शताब्दीके उत्तरार्धमें कथा-काव्य रचनेवालोंमें जगन्नाथदास 'रत्नाकर', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और रामनाथ ज्योतिषीका नाम आता है। इस प्रकार हम देखते है कि ब्रज भाषामे कथा-काव्यकी परम्परा अब भी चल रही है, यद्यपि उसमें रचनाएँ अब बहुत कम हो रही है।

रत्नाकर

श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म काशीमें संवत् १९२३ में और निधन हरिद्वारमें स १९८६ मे

हुआ। नागरीके इस युगमें भी इन्होने एकनिष्ठ होकर ब्रजभाषाकी सेवा की। गंगावतरण हरिश्चन्द्र और उद्धवशतक इनके तीन प्रबन्ध-काव्य है। समालोचनादर्श अँग्रेजीका अनुवाद है। इनके काव्योंका संग्रह रत्नाकर-ग्रन्थावली नाम-से प्रकाशित हुआ है। ब्रजभाषापर इनका जैसा असाधारण अधिकार था वैसा कम कवियोका देखा जाता है। इनकी रचनाओमे इतनी सरसता कूट-कूटकर भरी है कि बड़े-बड़े पुराने कवि भी इनकी सुघरताके आगे नही ठहरते। इनकी सूझ और उक्ति-वैचित्र्य भी अद्भुत है। इनकी भाषामे प्रवाहके साथ बड़ी चुस्ती भी पाई जाती है। बिहारी-सतसईकी बहुत अच्छी और प्रामाणिक टीका इन्होने प्रकाशित की थी। इनकी रचनाओंमें ओज और प्रवाहके साथ माधुर्य भी है। रत्नाकरजी महाकवि थे इसमें सन्देह नही। और सच पूछिए तो इस युगमें यदि कोई कवि हुआ है तो रत्नाकरजीही थेच सब यो ही है। इनकी रचनाओके उदाहरण लीजिए —

कान्ह दूत कैधौं ब्रह्मदूत ह्वै पधारे आप
धारे प्रन फेरन कौ मति ब्रजबारी की।
कहै रतनाकर पै प्रीति-रीति जानत ना
ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी की॥
मान्यो हम कान्ह ब्रह्म एक ही कह्यौ जो तुम
तौ हू हमैं भावति न भावना अन्यारी की।
जैहै बनि बिगरि न बारिधिता बारिधि की,
बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की॥१॥
सुनि उछाह हरखाइ चोकुरो बिरद सँवारयो।
लियो बिसद बर राज भूपको काज सँवारयो॥
हम जैहैं सिर नंग संग जस होहि जाहि ज्यौं।
यों कहि अन्तर्धान भए, नृप रहे चकित ह्वै॥२॥

रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जन्म बस्तीमें संवत् १९४१ म तथा निधन काशीमें संवत् १९९८ में हुआ। शुक्लजी प्रधानतया समीक्षक और निबन्धकारके रूपमें प्रसिद्ध हैं। किन्तु वे हिन्दीके आदि कहानीकार ब्रजभाषा और नागरीके उत्कृष्ट कवि तथा अँग्रेजी संस्कृत फारसी तथा बँगलाके मर्मज्ञ थे। नागरीमें उन्होने कई कविताएँ प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी लिखी थी। संवत् १९७९ मे उनका बुद्धचरित प्रकाशित हुआ। ब्रजभाषामें आठ सर्गोमें तथा विविध छन्दोमें रचा हुआ यह अत्यन्त प्रौढ और सुन्दर महाकाव्य है। यद्यपि अँग्रेजी पुस्तक लाइट ऑफ एशिया के आधारपर इसकी रचना हुई है किन्तु यह अनुवाद नहीं है पूर्णत मौलिक रचना है। बुद्धचरित की भाषा इतनी प्रवाहशील है कि बस्ती ब्रजभाषाके पूरे मेलमें लाई गई है। अप्रचलित शब्दोका प्रयोग उसमें कहीं नहीं मिलता है। प्राकृतिक वर्णन भी उसमें यथेष्ट है। कुछ उदाहरण लीजिए —

चमकाय चपल चाप चढि जब सबल अम्बर चढ़्यो।
तातकाल निहित भूमि रोहिणिके हिलोरमनो रह्यो॥

रमधामके बांके मुंडरनपर रही द्युति छाय है।
जहँ हिलत डोलत नाहि कोऊ कतहुँ परत लखाय है॥१॥
पय फूलन सो यदि भांति भरं।
जहँ पांव कुमार तुरन्त धरं॥
घँसि टापन तासु लखाय परं।
मिलि लोग सबै जयनाद करं॥२॥

सोलहवी शताब्दीमे पूर्व ही ब्रजभाषा इतनी व्यापक काव्य-भाषा हो गई थी कि सम्पूर्ण उत्तर भारतमें पिछली पांच शताब्दियोंमे गुजरातमे असम तक ब्रजभाषामें रचनाएँ होने लगी। उसका कुछ कारण तो वैष्णव-धर्मका प्रचार था किन्तु दूसरा कारण काव्यके लिए ब्रजभाषाकी स्वाभाविक प्रकृति भी थी। ब्रजभाषाकी माधुरीके लिये पुरानी उक्ति ही प्रसिद्ध है—

वाचि श्रीमाथुरीणा जनक-जनपदस्यायिनीना कटाक्षे
दन्ते गौडाङ्गनाना सुललितजघने चोत्कल-प्रेयसीनाम।
माहाराष्ट्री नितम्बे सजलघनरुचौ केरलीकेशपाशे।
कर्णाटीना कटौ च स्फुरति रतिपतिर्गुर्जरीणा स्तनेषु॥

[ब्रज नारियोकी वाणीमे, मैथिल नारियोके कटाक्षमे, बंगालियोके दांतमें, उडिया स्त्रियोके जघनमे, महाराष्ट्री स्त्रियोके नितम्बमे, केरलकी नारियोके घने काले जूडोमे, कन्नडी स्त्रियोकी कमरमें और गुजराती नारियोके स्तनोमे कामदेव स्फुरण करता है।']

ब्रजभाषाके माधुर्यका यह प्रभाव इसी बातसे स्पष्ट है सुदूर पश्चिम गुजरातमे ब्रजभाषामे साहित्य रचनेवालोकी सख्या लगभग चार सौ है और असम—जैसे सुदूर पूर्वमे भी शकरदेव जैसे प्रौढ कविने ब्रजभाषामे ही रचना करके प्रसिद्धि पाई।

निर्गुणिए सन्तोका ब्रज-साहित्य

पीछे बताया जा चुका है कि राजस्थानमे निर्गुणवादी सन्तोने सधुक्कडी तथा राजस्थानी भाषामें तो बहुत रचनाएँ की किन्तु ब्रजभाषाके प्रभावसे भी वे मुक्त नही हो सके। इसलिए उनमेंसे बहुतोने पिंगल (ब्रजभाषा) में भी प्रौढ रचनाएँ की। विशेषत अधिक विद्वान् और व्युत्पन्न सन्तोने तो ब्रजभाषाका ही आश्रय लिया।

दादू पन्थका प्रचार जयपुर राज्यमें अधिक था। इनका समाज चार भागोमें विभक्त है—खालसा, विरक्त, उतराधा, और नागा। इस पन्थसे सम्बद्ध भक्तोने अधिकाश सधुक्कडी तथा राजस्थानी [illegible] रचना की। किन्तु ब्रजभाषाकी सर्वश्रेष्ठ रचना यदि किसीने की तो सुन्दरदासने, जिनके [illegible] सवैयोमें वही चोज, उक्ति-सौन्दर्य और प्रवाह है जो रीति-कालीन कवियोमें दृष्टिगोचर होता है [illegible] एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा—

देह तज्यो अरु नेह तज्यो अरु खेह लगाइ कै देह सँवारी।
मेह सहे सिर सीत सहे तन धूप से जो पँचागिनी जारी॥

मूल गही रहि कन तरे पर सुन्दरदास सबै दुख मारी
आसन छाँडि कै आसन ऊपर आसन मार्‌यौ पै आस न मारी

चरणदासी सम्प्रदायके प्रवर्त्तक सन्त चरणदासने एक और निर्गुणके गीत गाए हैं। वहीं सगुण भक्तिके आवेशमें ब्रज चरित या ब्रज-चरित्र वर्णन ब्रजभाषामें भी लिखा है।

राम-सनेही पन्थके अनुयायियोंमें राम जन (सम्वत् १८१९) ने अपनी राम-पद्धति दृष्टान्त सागर और फुटकर वाणियोंमें जगन्नाथ (सम्वत् १८५५) ने ब्रह्म समाधि विलास जोग प्रन्थमें हरिरामदास (सम्वत १८३५) ने निशानीमें रामदास (सम्वत १८ ९ से १८२१) ने गुरुमहिमा भक्तमाल चेतावनी आदि ग्रन्थोंमें दयालदासने (सम्वत् १८१६ से १८८५) करुणा-सागर नामक ग्रन्थमें और दरियावजीने (सम्वत १७३३ से १८ ३) वाणीग्रन्थमें पिंगल या ब्रजभाषाका प्रयोग किया है।

लालदासी पन्थके प्रवर्त्तक लालदास (१५९७) ने यद्यपि नागरी (खड़ी बोली) में रचना की किन्तु उनके अनुयायी सन्त कवियोंने पिंगल या ब्रजमें ही रचना की।

तुलसी साहब या साहबजीका सम्बन्ध सम्भवतः महाराष्ट्र सन्त परम्परासे रहा है। इनका महत्व इसलिए अधिक है कि ये अपनेको गोस्वामी तुलसीदासजीका अवतार मानते थे। इन्होंने राम-चरित मानसको ब्रजभाषाके माध्यमसे घट रामायण के रूपमें प्रस्तुत किया है। इनकी मुख्य रचनाओंमें घटरामायण शब्दावली रत्नसागर तथा पद्म-सागर उल्लेखनीय हैं।

राजस्थानके ब्रजभाषाके कवि

राजस्थानके ब्रजभाषाके कवियोंमें तत्ववेत्ता कृष्णदास अग्रदास नाभादास मीराबाई, परशुराम महाराज यशवन्त सिंह बिहारी जानकवि नरहरिदास कुलपति वृन्द हरिराम नागरीदास हित वृन्दावनदास वल्लपतिराम और कवीश्वर (अहमदाबाद-निवासी) हरिचरणदास सुन्दर कुँवरि, उम्मेदराम जोधराज बुद्ध सिंह प्रतापसिंह गवरीबाई, कृष्णलाल बख्तावरसिंह कवीदान आदि अनेक कवि हुए और सम्वत् १९ के पश्चात भी नटनागर, जीवनलाल बख्तावरजी प्रताप कुँवरिबाई गणेशपुरी गुलाबजी मुरारीदान विजय सिंह चन्द्रकला केसरी सिंह रामसिंह अमृत लाल मोहन सिंह आदि अनेक ब्रजभाषाके अच्छे कवि हुए हैं।

वास्तवमें ब्रजभाषाका सर्वाधिक सुन्दर साहित्यिक स्वरूप कृष्णभक्तोंमें ही देखनेको मिलता है। वल्लभ सम्प्रदायके अष्ट छापके आठो कवि-कुम्भनदास सूरदास परमानन्ददास कृष्णदास गोविन्द स्वामी नन्ददास छीत स्वामी और चतुर्भुज दास सभीने अत्यन्त रसमय साहित्यिक रचना की। इनमें सूरदासजीने विशेष प्रसिद्धि पाई।

चैतन्य सम्प्रदायके ब्रजभाषाके कवियोंमें गदाधर भट्ट माधवेन्द्रपुरी राम रायजी सूरदास मदनमोहन वल्लभरसिक केशव भट्ट वृन्दावनदास ब्रह्म गोपाल माधवदास जगन्नाथ चन्द्रगोपाल स्वामी कल्याण-दास ललित किशोरी कृष्णदास ब्रह्मचारी प्रियादास और रामहरि मुख्य हैं। इनमें भी गदाधर भट्ट (१६८) और सूरदास मदनमोहन (१६९) की रचनाएँ अधिक सरस हैं।

निम्बार्क सम्प्रदायके ब्रजभाषा कवियोंमें भट्टजी परशुराम देव तत्व-वेत्ता गोविन्द देव सुन्दर

कुँवरि, हरिव्यास देव, रूपरसिक, वृन्दावन देव, वाकावती, वनीठनीजी, गोविन्दशरण देव, छत्रकुँवरि तथा रसिक गोविन्दजी अधिक प्रसिद्ध हैं।

निम्बार्क सम्प्रदायकी दूसरी हरिदासी शाखामे स्वामी हरिदासजी, विट्ठल विपुलजी, विहारीन देवजी, सरसदेवजी, नरहरि देवजी, रसिक देवजी, ललित किशोरी देवजी, सहचर्य शरण तथा भगवत रसिक अपनी सरस ब्रजभापाकी रचनाओके लिये अधिक प्रसिद्ध हैं।

राधावल्लभीय सम्प्रदायमे सबसे अधिक ब्रजभापाके कवि हुए हैं। इस सम्प्रदायमे १६ वी सदीमें हित हरिवश, विट्ठलदास, नरवाहन, मेघा (मेहा), खेमहित, अली भगवान, सेवकजी तथा नवलदास और इसके पश्चात् १७ वी से २० वी शताव्दी तकके लगभग दो सौ अच्छे प्रौढ कवि हुए हैं। इनमे हित-हरिवश, नरवाहन, सेवकजी, चतुर्भुजदास, कृष्णदास, भावुक, हरिराम व्यास, ध्रुवदास, नागरीदास और रूपलाल अधिक प्रसिद्ध हुए हैं।

भक्तिकालके अन्य कवियोमे लालजी, केवलराम, मदन मोहन प्रभुदास खेम, गोपीनाथ, नाथ, नारायण भट्ट और रामदास आदि अनेक प्रसिद्ध कवि हुए। ब्रजसे वाहरके अन्य कवियोमें आसकरणदास, कल्याणसिंह, कृष्णदास चालक, चन्द्रसखी, हृदयराम, रसखान, अभयराम, कल्याणदास, कल्याणी, गोविन्दस्वामी, जगन्नाथ-दास, तुलसीदास, माधवदास, मुरारीदास, विद्यादास, कृष्णदास पैहारी और कील्हजीका नाम उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त छीहल, कृपाराम, महापात्र नरहरि वन्दीजन, नरोत्तमदास, महाराज वीरबल, महाराज टोडरमल, गग मनोहर कवि, वलभद्र मिश्र, जमाल, केशवदास, होलाराय, रहीम, नादिर, मुबारिक, बनारसीदास, सेनापति, पुहकर कवि, सुन्दर, लालचन्द्र तानसेन और अकबरका नाम भी गिना जाता है।

ब्रजभाषाका रीतिकालीन साहित्य

रीतिकालीन (१७००से १९०० सम्वत्तक) साहित्यमे काव्य शास्त्रके लक्षण-ग्रन्थ लिखे जा रहे थे और अधिकाश रचनाएँ शृगार-परक थी। सभी प्रतिभाशीली कवि नायिका-भेदके वर्णनमें अपनी सारी शक्ति लगा रहे थे, या अलकार ग्रन्थ लिख रहे थे। किन्तु इसी युगमें भक्ति और शृगारके समन्वयसे माधुर्य भक्तिका भी निरूपण होने लगा था, आश्रय दाता राजाओकी प्रशसा भी की जा रही थी और भूषण-जैसे कुछ लोग वीर रसकी रचनाएँ भी कर रहे थे। इनमेंसे पहली श्रेणीमें वे कवि आते हैं जिन्होने काव्य-शास्त्रकी पद्धतिपर तत्सम्बन्धी सभी विषयोका निरूपण किया है। इनमे मुख्य कवि और उनकी रचनाएँ निम्नाकित है —

१—**सेनापति**—काव्य-कल्पद्रुम।
२—**चिन्तामणि**—कविकुलकल्पतरु और काव्यविवेक।
३—**कुलपति मिश्र**—रस-रहस्य।
४—**देव**—काव्य-रसायन।
५—**सूरति—मिश्र** काव्य-सिद्धान्त।
६—**श्रीपति**—काव्य सरोज।
७—**दास**—काव्य-निर्णय।
८—**सोमनाथ**—रसपीयूषनिधि।
९—**कुमारमणि भट्ट**—रसिकरसाल।
१०—**रतनकवि**—फतेहभूषण।
११—**करनकवि**—साहित्य-रस।
१२—**प्रतापसाहि**—काव्य-विलास।
१३—**रसिकगोविंद**—रसिक गोविंदानन्दघन।

जिन कवियोंने विशेष रूपसे नायिका-भेदका अथवा शृंगार रसके विभिन्न विषयों और अंगोंका विवेचन किया है उनमें निम्नांकित कवियोंकी रचनाएँ आती हैं—

१—केशव—रसिकप्रिया। २—मतिराम—रसराज।
३—सुखदेव मिश्र—रस रत्नाकर रसार्णव। ४—देव—भावविलास रसविलास भवानीविलास आदि।
५—कवीन्द्र—रस चन्द्रोदय। ६—दास—रस निर्णय।
७—तोष—सुधानिधि। ८—बेनी प्रवीन—नवरसतरंग।
९—पद्माकर—जगद्विनोद।

कुछ ऐसे भी विद्वान कवि हुए हैं जिन्होंने केवल ऐसे अलंकार ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें केवल लक्षण देकर उदाहरण दे दिए गए हैं। इनमें करनेसका भूतिभूषण और जसवन्त सिंहका भाषा-भूषण मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी प्रतिभा-सम्पन्न कवि हुए हैं जिनमें लक्षण देकर केवल लक्षण या उदाहरण ही मुख्य रूपसे दिए गए हैं जैसे—

१—मतिराम—ललितललाम। ५—दत्त—लालित्यलता।
२—भूषण—शिवराजभूषण। ६—ग्वाल—रसिकानन्द।
३—रघुनाथ—रसिकमोहन। ७—प्रतापसिंह—अलंकार चिन्तामणि।
४—दूलह—कविकुलकंठाभरण।

केशवदास

इन रचनाओंमें आचार्य केशवदास अपने आचार्यत्वके लिए अधिक प्रसिद्ध हैं जिनकी राम-चन्द्रिका रसिक-प्रिया और कवि-प्रिया अधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। उन्होंने वीरसिंह देव-चरित विज्ञान-गीता और रतन-बावनी की रचना भी की थी। प्रसिद्ध सन्त सुन्दरदासने इनकी रसिक-प्रिया पर बड़ी कठोर आलोचनात्मक टिप्पणी की थी—

रसिक-प्रिया रसमंजरी और सिंगारहि जानि।
चतुराई करि बहुत विधि विषै बनाई आनि॥
विषै बनाई आनि लगत विषयिनको प्यारी।
जागै मदन प्रचण्ड, सराहैं नख-सिख नारी॥
ज्यौं रोगी मिष्ठान्न खाइ रोगहि बिस्तारै।
सुन्दर यह गति होइ जु तो रसिक प्रिया धारै॥

इन्हें कठिन काव्यका प्रेत कहते हैं। इनके सम्बन्धमें यह उक्ति प्रसिद्ध है—

कवि को देन न चहै बिदाई।
पूछे केशव की कविताई॥

चिन्तामणि

चिन्तामणि (सम्वत् १६६६) ने छन्द-विचारके अतिरिक्त रामायण काव्य विवेक शृंगार मंजरी रस-मंजरी काव्य-प्रकाश तथा कवि-कुल कल्पतरु शीर्षक ग्रन्थोंकी रचना की है।

महाराज जसवन्त सिंह (१६८३) ने अलकारोके लक्षण और उदाहरण देकर रस-नायक, नायक-नायिका-भेद आदिपर 'भाषा भूषण' नामक ग्रन्थ लिखा है जिनमे आचार्यत्व अधिक और कवित्व कम है।

बिहारी, मतिराम, भूषण और देव

कुलपति मिश्रने (सम्वत् १७२७) रस-रहस्य, द्रोण पर्व, युक्ति-तरगिणी, नखशिख और सग्राम-सार पाँच ग्रन्थ लिखे। आगरा-निवासी सूरति मिश्र ने (१८ वी शतीके अन्तिम चरण) अलकार-माला, रस-रत्न-माला, सरस रस, नख-शिख, काव्य सिद्धान्त, रस-रत्नाकर तथा रस ग्राहक-चन्द्रिका ग्रन्थोके अतिरिक्त विहारी सतसई, रसिकप्रिया और कविप्रियापर ब्रजभाषामें गद्यमे टीकाएँ लिखी है। कृष्ण कवि (सम्वत् १७८५) ने विहारीके दोहोपर सवैयोमें टीका लिखी है। रसिक सुमति (सम्वत् १७८५) ने अलकार-चन्द्रोदय की रचना की। भिखारीदास (सम्वत् १८०३ मे) ने काव्य-निर्णय, रस साराश, छन्दार्णव पिंगल, शृगार, नाम प्रकाश, विष्णुपुराण भाषा, छन्द प्रकाश, शतरञ्ज शतिका तथा अमर प्रकाश शीर्षक ग्रन्थोकी रचना की है। आचार्यत्वकी दृष्टिसे इनकी रचना अत्यन्त प्रौढ और उच्च कोटिकी है।

आलमने ब्राह्मण होनेपर भी शेख रगरेजिनसे विवाह करके अत्यन्त मादक शृगार-पूर्ण रचनाएँ (१७४०–१७६०) की है ,जिनका सग्रह 'आलम केलि' नामसे प्रकाशित हुआ है। लाल कवि (सम्वत् १७६४) ने छत्र प्रकाश और विष्णुविलास ग्रन्थकी रचना की जिनमे छत्र-प्रकाशका महत्त्व इतिहास और काव्य दोनो दृष्टियोसे अधिक है। घनानन्द (सम्वत् १७४६) के मनमें कृष्णके प्रति प्रेमा भक्ति उत्पन्न हुई। इन्होने सवैयो और कवित्तोमे भक्ति, विरह और करुणके अत्यन्त मधुर छन्दोकी रचना की है। इन्होने स्वय अपने काव्यके सम्बन्धमे कहा है —

नेही महा ब्रजभाषा प्रवीन औ सुन्दरतानिके भेदको जानै।
योग-वियोगकी रीतिमें कोविद भावना भेद सरूपको ठानै॥
चाहके रगमें भीज्यो हियो बिछुरे—मिले प्रीतम साति न मानै।
भाषा-प्रवीन सुछन्द सदा रहै सो घनजीके कवित्त बखानै॥

रीतिकालीन कवियोमें इनका-सा माधुर्य किसीको नही प्राप्त है।

कृष्णगढ नरेश महाराज सावन्तसिहने (नागरीदास) सम्वत् १७५६ ने विरक्त होकर लगभग ७३ ग्रन्थोकी बहुत ही प्रौढ रचनाएँ की। सोमनाथ (सम्वत् १७८६ से १८१२) भरतपुरके राजा वदन सिंहके राज-कवि थे। ये शशिनाथ और नाथके नामसे भी प्रसिद्ध हैं। इन्होने सग्राम-दर्पण, सुजान-विलास, रस-विलास, शृगार-विलास, राम-चरित-रत्नाकर आदि अनेक ग्रन्थोकी रचना की।

इनके अतिरिक्त रसलीनने अग-दर्पण तथा रस-प्रबोध, चाचा हित वृन्दावनदास (सम्वत् १७६०) में लगभग दो सौ ग्रन्थ लिखे। निम्बार्कके टट्टी सम्प्रदायमें दीक्षित भगवत-रसिक (सम्वत् १७९५) ने अनेक पद, छप्पय और कवित्त लिखे। सूदन (सम्वत् १८०२) ने सुजान-चरितकी रचना की। दूलह (१८०० से १८२५) ने कविकुलकठाभरण लिखा। रसिक कवि बोधा (सम्वत् १८३०–६०) ने बडे चुभते हुए प्रेम-परक सवैये लिखे। बुन्देलखण्डी लाला ठाकुरदास (सम्वत् १८२३) ने अत्यन्त सरल, स्वाभाविक और सटीक शब्दोमें बहुत ही सुन्दर सवैये और कवित्त लिखे जो 'ठाकुर ठसक' के नामसे प्रकाशित है।

ग्वाल

ग्वाल (सम्वत् १८४८) ने बीसको ग्रन्थ लिखे जिनमे मुख्य है—यमुना लहरी रसिकानन्द हमीर हठ राधा-माधव-मिलन श्रीकृष्ण जू की नखशिख कवि-दर्पण रसरंग साहित्यानन्द अलंकार भ्रम भञ्जन प्रस्तार-प्रकाश नेह निबाह और कवि-हृदय-विनोद।

प्रताप साहि (१८८ से १९) ने व्यग्यार्थ कौमुदी काव्य-विलास जयसिंह प्रकाश शृगार मञ्जरी शृगार शिरोमणि अलकार-चिन्तामणि तथा काव्य-विनोद नामक ग्रन्थ लिखे। ये अत्युच्च उच्च कोटिके कवि भी थे और आचार्य भी। अयोध्याके महाराजा मानसिंह (द्विजदेव) ने शृगार-लतिका और शृगार-बत्तीसीकी रचना की।

इनके अतिरिक्त ब्रजभाषाके जिन प्रसिद्ध कवियोकी सम्मानपूर्ण गणना होती है उनमे निम्नांकित मुख्य है —

बेनी मडन मुखदेव मिश्र कालिदास त्रिवेदी राम नेवाज श्रीधर, कवीन्द्र श्रीपति बीर, मडन बनीमुहीबखाँ भूपति तोषनिधि दलपतराय बंसीधर रघुनाथ कुमार, मणि भट्ट शम्भुनाथ मिश्र शिव सहायदास रूपसाहि ऋषिनाथ बैरीसाल दत्त रतन नाथ मनीराम मिश्र चन्दन देवकीनन्दन रामसिंह मान थान बनी बख्तौजन बेनी प्रवीन जसवन्त सिंह द्वितीय यशोदानन्द करन गुरदीन ब्रह्मदत्त रसिक-गोविन्द बनवारी सबलसिंह चौहान वृन्द छत्रसिंह बैताल वृन्दगोविन्द सिंह श्रीधर,रसनिधि विश्वनाथ सिंह जोधराज बख्शी हंसराज किशोरीशरण मञ्जुकेशी मणि गिरधर,हठीजी गुमान मिश्र सरजूराम भगवन्त राय खीची हरनारायण ब्रजवासीदास गोकुलनाथ गोपीनाथ मणिदेव रामचन्द्र मधुसूदनदास मनियार सिंह कृष्णदास गणेश सम्मन ठाकुर (असनी वाले) ललकदास बुमान नवलसिंह कायस्थ रामसहायदास चकत्रोबार, बाबू दीनदयाल गिरि पद्मनेस तथा गिरधरदास।

राजस्थानके ब्रजभाषा कवियोकी जो सूची ऊपर दी जा चुकी है उनकी निम्नांकित रचनाएँ प्रसिद्ध है—जान (सम्वत १६७६) का रस-कोष कवि बल्लभकी रस-मञ्जरी और रसतरंगिणी केहरि (१७१) का रसिक-विलास जगन्नाथ (१७१४) का रति-भूषण सूरदासका रसिक हुलास उदय चन्द्र (१७२८) का अनूप रसाल नन्दराम (१७२८) का जलसभेदनी भान (१७३१) का सयोग द्वात्रिंशिका सतीदासव्यास (१७३३) का रसिक माराम स्वामी (१७३९) का रसरूप अभयराम (१७५४) का अनूप शृगार, लोकनाथ चौबे (१७६) का रस-तरग किशोरराम (१७६७) का रस-प्रकाश अजीत सिंह (१७७) का भाव-विरही बुधसिंह (१७८४) का नेह-तरग श्रीकृष्ण भट्ट (१७६६–९१) का शृगार-रस-माधुर्य तथा अलकार-कला-निधि दलपतिराय (१७९८) का अलकार-रत्नाकर और पीवल (१८) का युगल-विलास।

इनके अतिरिक्त भी इस रीति-युगके पश्चात् कुछ प्रसिद्ध कवि हुए है जिनमें उदराम (जवराम चौबे) नवीन कवि (१९ ०) लाला सामुराम (१९) किशोर बख्शी (महौबेके लेखक) हर देवजी कृष्णानन्द व्यास राजकुमार, रत्न सिंह भटनागर, सेवक कवि महाराज रघुराज सिंह राजा पिपरीके नारायण स्वामी रसीलाल राजा लक्ष्मण सिंह काशीके बेनी द्विज और सरदार कवि गुजरातके गोविन्द गिल्ला भाई, अयोध्याके बाबा रघुनाथदास प नकछेद तिवारी अवान हनुमान कवि लखनऊके मिश्र

बन्धु, कुन्दनलाल (ललित किशोरी) तथा फुन्दन लाल (ललित-माधुरी), वस्तीके लक्ष्मी राम, गोकुलके गोप भट्ट, वृन्दावनके लाल बलवीर विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।

भारतेन्दुसे अब तक ब्रज-साहित्य

भारतेन्दुकी सभामें ब्रजभाषामे कविता रचनेवालो और समस्या-पूर्ति करनेवालोमे प्रसिद्ध रहे हैं प सुधाकर द्विवेदी, अम्बिकादत्त व्यास, बाबू रामकृष्ण वर्मा, ब्रजचन्द वल्लभीय, बेनी द्विज, बाबा सुमेर-सिंह, श्रीमती चन्द्रकलाबाई (बूंदी), बाबू शिवनन्दन सहाय, गोविन्द गिल्ला भाई, ठा रामेश्वरबख्स सिंह, कविराय, लच्छीराय और नवनीत चतुर्वेदी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी (१९१७) की ब्रजभाषामें की हुई काव्य-रचना अपने माधुर्य, प्रसाद, प्रवाह और सरसताके कारण प्रसिद्ध थी। उनके अतिरिक्त वर्त्तमान युगके प्रारम्भसे लेकर आजतक ब्रजभाषाकी साहित्यिक रचना करनेवालोमे राजा कृष्णदेवशरण सिंहजी, गोप, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' (१९१२), प्रताप नारायण मिश्र (१९१३), नाथूराम शकर शर्मा (१९१६), ठा जगमोहन सिंह (१९१४), लाला सीताराम (१९१५), राधाचरण गोस्वामी (१९१५), अम्बिकादत्त व्यास (१९१५), बाबू राधाकृष्णदास (१९२२), ब्रजचन्द्रजी वल्लभीय (१९२० के लगभग), नवनीत जी (१९१५)—जो ब्रजभाषाके अमर पीयूष-वर्षी कवि हुए हैं, श्रीधर पाठक (१९१६) अयोध्या सिंह उपाध्याय (१९२२), महापात्र लालजी (१९१४), जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (१९२३), लाला भगवानदीन (१९२३), राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' (१९२५), ब्रजेशजी (१९२८), सेठ कन्हैयालाल पोद्दार (१९२८), मिश्र बन्धु (श्याम बिहारी मिश्र, शुकदेव बिहारी मिश्र), राजारामसिंह (सीतामऊ) (१९३६), वचनेशजी (१९३२), लाला किसन लाल या कृष्ण कवि (१९३१), वल्लभसखा (१८६०), सत्यनारायण कविरत्न (१९३७), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (१९४५), श्याम सेवक (१९४८), रामाधीन (१९४१), पुरुषोत्तम दास सैयद (१९४२), नाथूराम माहौर (स १९४२), नवीबक्स फलक (१९५०), रामप्रसाद त्रिपाठी (१९४६), ब्रजनन्दन कविरत्न (१९४९), वियोगी हरि (१९५३), हरदयाल सिंह, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामशकर शुक्ल 'रसाल' (१९५५), सीताराम चतुर्वेदी (१९६४), अमृतलाल चतुर्वेदी, प रामदयाल, उमराव सिंह पाण्डे, अम्बिकेश, जगनसिंह सेगर, रामलला, विश्वम्भर सहाय 'व्याकुल', गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', उजियारे लाल ललितेश, धनीराम शर्मा, ठा उल्फतसिंह निर्भय, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, अनूप शर्मा, दुलारेलाल भार्गव, रामलाल श्रीवास्तव लाल, जगदम्बा प्रसाद हितैषी, सरजू शरण शर्मा, श्यामनारायण मिश्र श्याम, प्रणयेश शुक्ल, भद्रदत्त शर्मा शास्त्री, उत्तरराम शुक्ल नागर, बालमुकुन्द चतुर्वेदी मुकुन्द, रामनाथ ज्योतिषी, रामचन्द्र शुक्ल सरस, लक्ष्मी नारायण सिंह ईश, राजेश दयाल, सेवकेन्द्र त्रिपाठी, गोविन्द चतुर्वेदी, बलराम प्रसाद मिश्र 'द्विजेश', किशोरी शरण अलि, जगदीश गुप्त, छबीले लाल गोस्वामी, वचऊ चौबे, महामहोपाध्याय अयोध्यायनाथजी अवधेश, डा बैजनाथ सिंह किंकर, रामगोपाल वर्मा, चुन्नीलाल शेष, गोपालदत्त चञ्चलजी, गोपालप्रसाद व्यास, दीनानाथ सुमनेश, सरवनलाल अग्रवाल, कैलास चन्द्र कृष्ण, भगवानदत्त चौबे, बरसानेलाल चतुर्वेदी, रामनारायण अग्रवाल, और इन वर्तमान अखाडियोंके गुरु प श्रीनारायण चतुर्वेदी मुख्य हैं।

इनके अतिरिक्त उन्नीसवी शताब्दीके उत्तरार्द्ध और बीसवी शताब्दीके प्रारम्भमें निम्बार्क सम्प्रदायके

बाबा नरहरि भक्ति हरिदासीय सम्प्रदायके गोस्वामी नवनागरीदास गौडीय सम्प्रदायके ललित [illegible] वल्लभ सम्प्रदायके भक्तजनोंने भी ब्रजभाषामें सुन्दर, ललित रचनाएँ कीं। वल्लभ सम्प्रदायमें आचार्योंकी परम्परामें गोस्वामी बलदेवजी ब्रजपाल सुन्दर लाल और दयाल चन्द्र तथा राधा वल्लभीय सम्प्रदायके राधा लाल प्रीतमलाल प्रियादास चतुर दत्त प्रियतमदास गोपालप्रसाद मनोहर वल्लभ भोलानाथ गुण वल्लभ गोवर्धनदास कुँवर प्रभुराज सिंह नन्दनन्दन रोशनलाल वेदपाठी किशोरीलाल गोस्वामी और कविवर प्रेमीजी विशेष उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त वृन्दावन हाथरस आगरा ब्रज-मण्डल और ब्रजके बाहरके निम्नांकित कवि उल्लेखनीय हैं—

गोस्वामी मदन मोहन किशोरी शरण अली रामहरि शास्त्री गोस्वामी छबीले वल्लभ वल्लभ शरण दान बिहारी लाल शर्मा ललिताचरण गोस्वामी बाबा हितदास गोस्वामी विष्णुजी रामकृष्ण वर्म चिन्तामणि शुक्ल प्रेमानन्द परिव्राजक ब्रज भूषण मिश्र मुकुन्द कवि श्यामलाल शिवलाल चूनीराम बाबा शीतलदास मौनी शीतलजी शत्रुघ्न दुबे नवलजी मुरलीधरजी जयराम स्वामिनी पन्नालाल प्रेमपुष्प देवी प्रसाद मिश्र श्यामलाल शुक्ल ऋषिकेश चतुर्वेदी।

नई पीढीके जिन अनेक प्रतिभाशील उदीयमान कवियोंने ब्रज भाषामें प्रौढ रचनाएँ की हैं और कर रहे हैं उनमें राजेन्द्र दीक्षित जगदीशचन्द्र पाठक राजेन्द्र चतुर्वेदी बालसिंह गुमाणी तथा लक्ष्मण स्वरूप पुष्पेन्द्र उल्लेखनीय हैं।

ब्रज मण्डलके बाहर श्री केसरी सिंह बारहट्ट द्वारिका प्रसाद मिश्र रायकृष्णदास उमाशंकर बाजपेयी रामचरण मिश्र कमलेश त्रिवेदी लक्ष्मण प्रिया नवलजी भास्कर दत्त दीक्षित सिद्धनाथ शुक्ल द्वारिका प्रसाद शुक्ल 'शंकर' शिवरत्न शुक्ल पूर्णकुमार पाडे मन्मथ बिहारी पण्डित दुर्गाप्रसाद त्रिवेदी सेवक शंकर, श्याम-सुन्दर मिश्र शिवराखन बाजपेयी लाल ब्रजेश कृष्ण ब्रह्मभट्ट हरदास दत्त कवि रामदत्त नाथ भूप कवि भवानीदास जसवन्त चतुरेश कवि गोपाल रामरतन शुक्ल मनीराम प्रागदास वेणीलाल शील चन्द्र ललित रसेश नवीन तथा सेवक कवि प्रसिद्ध हैं।

ब्रजभाषाका गद्य-साहित्य

चौदहवींसे १९ वीं शताब्दी तक उत्तर भारतका अधिकांश व्यापक धार्मिक भक्त्यात्मक और अध्यात्मक साहित्य ब्रजभाषामें ही रचा गया। इस सम्पूर्ण गद्य-साहित्यमें वचनिका वार्ता और भावना नामक गद्य-साहित्य प्राप्त होता है। इस गद्य-साहित्यके निर्माणमें धर्मोपदेशकों धर्म प्रवर्तकों अथवा सम्प्रदाय प्रवर्तक आचार्योंका हाथ अधिक रहा है। ब्रजभाषाका सर्व प्राचीन गद्य गोरखपन्थी साधुओंका (१४) है। इसके दो सौ वर्ष पश्चात् वल्लभ सम्प्रदायका वार्ता-साहित्य है जिनमें हरिरायजी और गोस्वामी विट्ठलनाथजी द्वारा अपने सेवकोंको लिखे गए पत्र हैं। इन वार्ता निर्माताओंमें गोकुलनाथ जी (१९ प) और हरिरायजी (स १६४१) अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त श्री द्वारकेशजीने भी वार्ता-साहित्यकी रचना की है। इन वार्ताओंकी देखा-देखी राधा वल्लभीय सम्प्रदायमें ध्रुवदास दामोदर स्वामी, प्राणनाथ अनन्य अली गोस्वामी चतुरशिरोमणि लाल गोस्वामी रसी लाल और श्री स्वामिनी शरणने अनेक उल्लेखनीय

गद्य रचनाएँ की। किसन-गढ नरेश सावन्त सिह (नागरी दास) ने भी अनेक ग्रन्थोका निर्माण किया। इनके अतिरिक्त नाभाजीका अष्टयाम और ललित किशोरीजी और श्री स्वामीजी महाराजकी वचनिका प्रसिद्ध है। गौडीय कवि रूप गोस्वामीके विदग्ध माधव नाटकके आधारपर राधा-माधव लीला-विलास, माधव-राधा-विलास, राधा-मिलन, पूर्णमासीजीकी कथा तथा विदग्ध माधव नामकी कई गद्य रचनाएँ की।

१७ वी शताब्दी के अन्तमें वैकुण्ठमणि शुक्लने वैशाख और अगहन महात्म्य लिखा। १८ वी शताब्दीके आरम्भमे साधु दामोदरदासने मारकण्डेय पुराण, मेघराज प्रधानने अध्यात्म रामायणका अनुवाद, महाराज यशवन्तसिहने प्रवोध चन्द्रोदय नाटक और माथुर कृष्ण देवने भागवत भापाकी रचना की। गीतापर तो अनेक टीकाएँ ब्रजभाषामें लिखी गई। सम्वत् १८०० मे किसी अज्ञात व्यक्तिने ब्रजभाषामे नासिकेतोपाख्यान भी लिखा।

जैन आचार्यो और साहित्यकारोने ब्रजभाषामे वहुतसे गद्य-ग्रन्थ लिखे है जिनमें सवसे प्राचीन वनारसीदास (१६४३--१७००) हुए है। उनके पश्चात् पाण्डे हेमराज, प दौलतराम, विलास राय, नन्दराम, और भागचन्द्रके ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

इनके अतिरिक्त केशव, विहारी, मतिराम आदिके ग्रन्थोकी टीकाएँ ब्रजभाषामे लिखी गई। इन ग्रन्थोके अतिरिक्त वैद्यक, ज्योतिष, कथा, कहानी तथा, इतिहासके अनेक ग्रन्थ भी गद्यात्मक ब्रजभाषामे लिखे गए।

उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि २० वी शताब्दीमे पूर्व काव्य भाषा और गद्य भापाके रूपमे ब्रजभाषाका विस्तृत प्रचलन था। यदि ब्रजभाषाके सम्पूर्ण पद्य-साहित्यको एकत्रित किया जाय तो लगभग साढे तीन करोडसे ऊपर छन्दोका विशाल भण्डार मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि सस्कृतको छोडकर ससारकी सब भाषाओमें जितना कुछ साहित्य आज तक रचा गया उससे लगभग बारह गुना साहित्य केवल ब्रजभाषामें रचा गया।

इस सम्पूर्ण ब्रजभाषा साहित्यमें हमारे देशकी सम्पूर्ण सास्कृतिक परम्पराएँ, धर्म, सम्प्रदाय, पन्थ, दर्शन, इतिहास, काव्य-शास्त्र, धर्मशास्त्र, जन-भावना, राष्ट्र-भावना, देश-प्रेम, आदि समस्त मानवीय आन्तरिक और वाह्य अभिव्यक्तियोका सम्पूर्ण भण्डार निहित है। इतना ही नही, वहुतसे ग्रन्थ तो ऐसे है जिनमें भारतके सभी प्रदेशोंके रहन-सहन, खान-पान, भाषा, भौगोलिक स्थिति और इतिहास सबका बडा सटीक और सूक्ष्म वर्णनके साथ-साथ भारतके तीर्थों, नदियो, नदो, पर्वतो, मन्दिरो, महापुरुषो, वीरो तथा वीरागनाओका सम्पूर्ण वर्णन अक्षुण्ण रूपसे सगृहीत है। खेदकी बात यह है कि अिस ब्रजभाषा-साहित्यका अध्ययन न तो राष्ट्रीय दृष्टिसे किया गया और न इस दृष्टिसे किया गया कि इस भाषाने सम्पूर्ण भारतको अपने काव्य-सौष्ठव तथा काव्य-शक्तिमे और समस्त भारतको अपनी भाव-सम्पत्तिसे प्रभावित और आप्यायित किया है। राष्ट्रभाषा और राष्ट्र-साहित्यकी दृष्टिसे ब्रजभाषा साहित्यका अत्यन्त मार्मिक विश्लेषण करने और उसका विवेचनायुक्त इतिहास प्रस्तुत करनेकी नितान्त आवश्यकता है।

मैथिली साहित्य

मैथिलीको साहित्यिक रूप प्रदान करनेका श्रेय विद्यापतिको है। उनके पूर्व वह बोलचाल की ही

विद्यापति कवि गाओलरे धनि धरु पिय आस।
अओता तोर मन-भावन रे एहि कातिक मास॥

२– सावन पसरा सकल मल गाओलि पछिम पवन बहु धीरे।
सपनहु रूप वचन इक भाखिय मुखसे दूरि कर चीरे॥
तोहर वदन सन चांद होअथि नहि कैओ जतन विह केला॥
कै बेरि काटि बनावल नव कै, तैओ तुलित नहि मेला॥
लोचन तूल कमल नहि भै सक, से जगके नहि जाने?
से फिरि जाय लुकैलन्हि जल भएँ, पंकज निज अपमाने॥
भने विद्यापति सुनु वर जोवति ई सम लछमि समाने।
राजा सिवसिंह रूपनरायन 'लखिमा देइ' प्रति भाने॥

नागरी हिन्दी (खडी बोली) का साहित्य

बहुतसे लोगोने हिन्दी शब्दकी व्याख्या करते हुए कहा है कि सस्कृतके सिन्धु और सिन्धी शब्दोसे फारसीमे 'हिन्द' और 'हिन्दी' हो जाते है। यह 'स' को 'ह' कहनेकी प्रवृत्ति केवल फारसीमें ही नही गुजरात और पश्चिमी राजस्थानमे भी है। उदयपुरमें 'साढे सात' को 'हाडे हात' कहते है। पश्चिमी भारतके लोग (जहाँ अब भी स को ह बोला जाता है।) व्यापारके लिए बाहर जाते थे और वही ये लोग अपनेको सिन्धवी (सैन्धव या सिन्धी और अपनी बोलीमे हिन्दी) कहते थे। फारसीमे 'हिन्दी' का अर्थ है 'हिन्दसे सम्बन्ध रखनेवाला'। भारतके जितने भी मुसलमान हज करने मक्का जाते है या व्यापारके लिए पश्चिमी देशोमे जाते है उन्हें वहां के लोग हिन्दी ही कहते है और इसी नाते यहाँकी भाषा भी हिन्दी कहलाती है। पडोसी फारस, अरब आदि देशवाले भारत भरके लोगोको हिन्दी और यहाँ की सब बोलियोको भी हिन्दी कहते है। जहाँतक हिन्दी शब्दकी बात है, फारसवाले मुसलमान लोग उन लोगोको हिन्दू कहते है जो इस्लाम धर्मको नही मानते और हिन्दमें रहते है। यह अर्थ इसलिए लगाया गया है कि जब मुहम्मद साहबने अपना इस्लाम धर्म चलाया और सम्पूर्ण अरब, फारस, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान और चीनतकका प्रदेश मुसलमान बन बैठा तब भी हिन्दुस्तानवाले उनके धार्मिक सिद्धान्तोसे प्रभावित नही हुए, वरन् उलटे शैव और वैष्णव धर्मका प्रचार करके विष्णु या शिवके मन्दिर बनवाते रहे। इसीलिए 'हिन्दी' शब्दका दूसरा अर्थ इस्लाम धर्म न माननेवाले' और 'हिन्दके निवासी' माना गया। हमारे देशमें हिन्दू शब्दका अर्थ वह व्यक्ति है, जो ईसाई या मुसलमान न हो अर्थात् जो हिन्दू धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले धर्म मानता हो। यहाँ तक कि सिक्ख, जैन आदि भी व्यापक अर्थमे हिन्दू ही माने जाते है। जहाँतक हिन्दी भाषीकी बात है, हिन्दू-मुसलमान सभी यहाँकी बोलियाँ अर्थात् व्यापक दृष्टिसे हिन्दी ही बोलते है।

यद्यपि बाहरके पडोसी देशवाले भारतकी सभी भाषाओको हिन्दी मानते है किन्तु भाषा-शास्त्रकी दृष्टिसे हिन्दी वह भाषा है जो उत्तर भारतमें जयपुरसे लेकर पटनेतक विन्ध्याचलके उत्तरमें बोली जाती है, अथवा उत्तर-पश्चिममें अम्बालेसे लेकर और पश्चिममें जयपुरसे लेकर पूर्वमें भागलपुर और पटना, उत्तरमें शिमलेसे लेकर नैपालके पूर्वी छोरतकके सम्पूर्ण पहाडी प्रदेशके दक्षिणसे लेकर दक्षिण-पूर्वमे रायपुर-बिलासपुर

तक और दक्षिण-पश्चिममें बघेलखण्ड बोली जाती है जिसके अन्तर्गत पूर्वी राजस्थानी जयपुरिया छत्तीसगढ़ी बुन्देलखण्डी मैथिली ब्रज अवधी भोजपुरी मगही, पहाड़ी आदि सब भाषाएँ आ जाती हैं। किन्तु यदि पत्र-पत्रिका शिक्षा-माध्यम और साहित्य-सर्जनकी भाषाकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो सम्पूर्ण राजस्थानसे लेकर बिहारतक उत्तरमें पहाड़ी भाषाओंके क्षेत्र से लेकर विन्ध्याचलके दक्षिणमें सतपुड़ा तक उस नागरी (हिन्दी) का ही बोल-बाला है जिसे कुछ लोग भूलसे खड़ी बोली कहते हैं। इस प्रकार नागरी भाषाका व्यवहार करनेवाले लोगोंकी संख्या लगभग २२ करोड़ है। पहले इस क्षेत्रमें भी ब्रजभाषा ही काव्य-भाषा या साहित्य-भाषा थी। किन्तु अब ये सब भाषाएँ अर्थात् ब्रज अवधी मैथिली आदि केवल जन पदीय भाषायें रह गई हैं।

यह नागरी भाषा जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, किसी भी प्रदेशकी बोलचालकी भाषा नहीं है। पहले इसे संस्कृतके देशी तद्भव शब्दोंके योगसे अपने साम्प्रदायिक प्रचारके लिए गढ़ा फिर दिल्लीके शासकोंने अपने दरबारकी भाषाके रूपमें इसका पोषण किया और व्यापारियोंने व्यापारकी सार्वभौम भाषाके लिए इसका व्यापक व्यवहार किया ईसाई पादरियोंने धर्म प्रचारका माध्यम बनाया ईस्ट इण्डिया कम्पनी और ब्रिटिश सरकारने अपने शासनकी सुविधाके लिए इसे बल दिया साहित्यकारोंने और धार्मिक सुधारकोंने पुस्तक और पत्रके लिए माध्यम बनाया और अन्तमें स्वतन्त्र भारतने इसे राष्ट्रभाषाके रूपमें स्वीकार किया जिसके संस्कृत तत्सम शब्द रूपोंसे समन्वित भाषाको हिन्दी और फारसी-अरबीसे भरी भाषाको उर्दू कहते हैं।

इस सम्पूर्ण नागरीके क्षेत्रमें चार मुख्य प्रादेशिक भाषाएँ मानी जाती थी जिनके शिष्ट (साहित्यिक) और ग्रामीण (लोगोंकी बोलचाल) दोनों रूप मिलते हैं।

राजस्थानी—राजस्थानकी सब बोलियाँ।

मैथिली—दरभंगाके चारों ओरकी बोलियाँ।

भोजपुरी—पटना गयासे लेकर बनारस-गोरखपुरतकके बीच की।

पहाड़ी बोलियाँ—हिमालयकी तराईके पहाड़ी प्रदेशोंकी बोलियाँ।

बुन्देलखण्ड बघेलखण्ड और मालवाकी बोलियोंको पाँचवी प्रादेशिक श्रेणी माना जा सकता है। कुछ लोगोंने इन सब भाषाओंके समूहको दो भागोंमें विभक्त कर दिया है—पूर्वी और पश्चिमी। किन्तु इनके कम तीन माने जाने चाहिए—पूर्वी पश्चिमी और बीच की। इन सब बोलियोंके समूहको ही भाषा-शास्त्रवाले हिन्दी मानते हैं।

अब हिन्दी शब्दके तीन अर्थ हुए—

१—हिन्दुस्तानभरकी सब बोलियाँ।

२—उत्तर भारतकी पंजाबी सिन्धी बंगला और उड़ियाको छोड़कर शेष भाषाएँ।

३—राजस्थानसे लेकर बिहारतककी भाषाओंका समूह।

उर्दू

उर्दू कृत्रिम भाषा है। विदेशी मुसलमान शासकोंने यहाँ आकर दिल्लीके आस-पासकी भाषामें फारसी और अरबीके शब्द भर भरकर नागरीको ही कृत्रिम भाषाके रूपमें परिवर्तन करके ऐसी खिचड़ी भाषा

वना लिया जो आज कुछ भाषान्ध लोगोंके द्वारा हिन्दीकी प्रतियोगिनीके रूपमे खडी कर दी गई है।

हिन्दुस्तानी

अँग्रेजी तथा अन्य योरोपीय विद्वानोंने भारतकी उस वोलचालकी भाषाको हिन्दुस्तानी माना जो मुसलमानी शासन-कालमे उनके राजदरवारमे पनपी और फूली-फली और जिसमे अरवी-फारसीके तत्सम शब्दोका तेजीके साथ प्रयोग हुआ। इसे उर्दूका पर्याय ही समझना चाहिए क्योंकि भारतवर्षमें इंग्लैण्डसे जो शासक भेजे जाते थे उन्हे यह भाषा (उर्दू कहलानेवाली हिन्दी) पढाई जाती थी और इसीको वे लोग हिन्दुस्तानी कहते थे। यद्यपि इसमें उर्दूवालोका-सा यह दुराग्रह नही है कि छाँट-छाँटकर वलपूर्वक फारसी और अरवीके शब्द भरे ही जायँ और सस्कृत या देशी शब्द मतरूक (त्याज्य) समझे जायँ। किन्तु यह निश्चय है कि उसकी प्रवृत्ति उर्दूकी ओर ही अधिक है। अँग्रेजोके जानेके साथ उसका अस्तित्व लुप्त हो गया है और वह स्वाभाविक अवसान प्राप्त कर चुकी है। अँगरेजोके शासनके कारण यह भाषा इतनी व्यापक हो गई थी कि समस्त उत्तर भारतमें यह समझी और शिष्ट समाजमे वोली भी जाती थी क्योंकि निर्गुणी सन्तोंने इसके आधार रूपको पहले ही व्यापक वना दिया था। किन्तु इसका क्षेत्र शासन-क्षेत्र तक ही परिमित था, लोक-भाषाके क्षेत्रके क्षेत्रमे नही। यद्यपि लोक-भाषा-भाषी लोग भी इसे भली प्रकार समझते थे क्योंकि कचहरियोमे इसी का वोलवाला था।

नागरी

ठेठ नागरी भाषा सस्कृत, अरवी और फारसी आदिके तत्सम शब्दोसे रहित होती है। नीचेके उदाहरणसे उसका रूप स्पष्ट हो जायगा —

'टीलेकी ऊँची रेतीली चोटीपर चढकर जो मैने चारो ओर आँखे घुमाई तो देखता क्या हूँ कि दूरपर धरती-आकाशके मिलनकी झिलमिलीपर, अटपट फैली हुई हरियालीकी झुरमुटमे, अपने लाल खपरैलोपर पच्छिमकी गोदमे ढलते हुए सूरजकी पिछली धूप-छाँह भरी किरनें लहराता हुआ, एक सुहावना-सा लुभावना-सा नन्हा-सा झोपडा उस साँझकी ललाईमे हँसता, मुसकराता और वुलाता-सा चमक रहा है। मेरे साथ मेरी घरनी चलते-चलते थककर चूर हो चली थी। उसकी साँस फूलने लगी थी और वह रह-रहकर पूछती जा रही थी—"कहिए अभी कितनी दूर चलना है।"

इसीको आजके नागरी (हिन्दी) वाले इस प्रकार लिखेगे —

वप्रके समुन्नत वालुकामय शिखरपर आरूढ होकर जो मैने चतुर्दिक् दृष्टि-निक्षेपण किया तो मुझे प्रतीत हुआ कि सुदूर धरणी-आकाशके सम्मिलित तीर्थपर अनियमित रूपसे विकीर्ण हरीतिमाकी छायामे अपने रक्तिम खपरैलोपर पश्चिम दिशाके क्रोडमें अकस्थ होते हुए भास्करके अन्तिम आलोककी छाया-पूर्ण किरण-माला अकित करता हुआ एक सुशोभन, मनोहर, अत्यन्त लघु कुटीर, उस साध्य लालिमामें मन्द स्मितिसे हँसता और निमन्त्रण देता-सा उद्भासित हो रहा है। मेरे साथ मेरी धर्म-पत्नी इस सुदूर यात्रासे अत्यन्त श्रान्त और क्लान्त हो चली थी। उसका प्रश्वास-वेग वढ चला था और क्षण-क्षण पर वह आतुर जिज्ञासा करती जा रही थी—कहिए अभी कितना मार्ग शेष है ?

इसी ऊपर दिए वाक्यको उर्दूवाले यो लिखेंगे —

बरसगके बसन्द पुर-रेग गुलहपर सवार होकर जो मैंने इर्द-गिर्द नजर दौड़ाई तो मालूम हुआ कि एक फासलेपर जमीन-आसमानके इत्तेहाय-उफक्की बेनूरीमें निहायत बे-करीने दराज सब्जी-गयाहकी पुस्तमें मगरिबम गुरूब होते हुए आफताबकी आखरी शुआएँ अपने सुर्ख बपरैलोपर छाया करता हुआ एक निहायत धुंधमुमा दिलकश मुख्तसर-सा झोपड़ा उस धामकी दफअन हँसता मुस्कराता और दावत-सा देता आलकार है।

इससे प्रतीत होता है कि वर्तमान संस्कृतनिष्ठ नागरी भी नागरीकी वास्तविक ठेठ तद्भवात्मक प्रकृति छोड़कर तत्समात्मिकाके कृत्रिम रूपमें ढल रही है। उर्दूमें भी वाक्यकी बनावट हमारी अपनी है केवल उसमें कुछ थोड़ी-सी संज्ञाएँ और विशेषण फारसी और अरबी से लाकर भर दिए गए हैं। उसकी रूप-रेखा या तो नागरीके संज्ञा विशेषणके बदले अरबी-फारसी संज्ञा विशेषण भरनेसे बनी किन्तु कभी-कभी उसके वाक्योंकी बनावट फारसीके ढंगपर भी होने लगी भी जैसे— आना राजा इन्दर का यह वाक्य-रूप फारसी के आमद राजा इन्दर का अनुवाद है। हिन्दीकी इस फारसी शैलीवाली उर्दू भाषामें कभी-कभी बहुवचनका निर्माण भी फारसीके ढगपर होने लगा जैसे— कागज का कागजात आदि। कहनेका अर्थ यह है कि उर्दू भाषा कोई स्वतन्त्र भाषा नहीं है। यह हिन्दीकी ही एक शैली है जिसमें नागरी (हिन्दी) के प्रचलित देशी या तद्भवात्मक शब्द हटाकर उनके बदले फारसी और अरबीके शब्द ला भरे जाते हैं। ठीक यही बात वर्तमान साहित्यिक हिन्दीके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। अर्थात् उसमें भी छाँट-छाँटकर देशी और बमले शब्दोंके बदले संस्कृतके शब्द भरनेकी प्रवृत्ति आ गई है। ये दोनों अतिकृत प्रवृत्तियाँ सराहनीय नहीं कही जा सकती।

ग्रियर्सनने भाषा सर्वेक्षण (लिंग्विस्टिक सर्वे) में दिल्ली—मेरठके पास बोली जानेवाली इस भाषा-का बड़ा बेढ़ंगा और बेतुका नाम वर्नाक्यूलर हिन्दुस्तानी दिया है। कुछ लोगोंने इसका नाम खड़ी बोली और सिर-हिन्दी रखा है। किन्तु ये सब नाम ठीक नहीं है। इसका वास्तविक नाम नागरी ही उचित है जिसका अर्थ है नगरवासियोंके लिए नगरोंमें प्रयोगके लिये बनी हुई भाषा। वास्तवमें यह कहींकी बोल-चालकी भाषा नहीं है।

कुछ लोगोंने खड़ी बोली बांगरू ब्रजभाषा कन्नौजी बुन्देलखण्डी अवधी बघेली छत्तीसगढ़ी भोजपुरी आदिको ग्रामीण बोलियाँ बताया है। किन्तु ये ग्रामीण बोलियाँ नहीं है। इनमेंसे नागरी (खड़ी बोली) ब्रज भाषा कनौजी (अवधी) को तो ग्रामीण कहना अत्यन्त अनुचित है। क्योंकि इनमें साहित्य भी है। हाँ बाँगरूको अवश्य ग्रामभाषा कहा जा सकता है। आगे चलकर यदि इसमें भी साहित्य रचा जाने लगा तो इसके भी दो रूप हो जाएँगे—

१—शिष्टजन-भाषा या साहित्य भाषा और २—ग्रामीण भाषा।

नागरी-साहित्य

जिस प्रकार अवधी राजस्थानी ब्रज और मैथिलीके विशेष क्षेत्र हैं उसी प्रकार नागरीका भी। पंजाब और राजस्थानके डाँड़ेसे लेकर मध्य प्रदेशके मध्यभागमें होती हुई उड़ीसाको छूती हुई बिहारके

पूर्वी छोरतक अपना हाथ फैलाकर नेपालकी तराईके नीचेसे आकर भारतकी राजधानीके पश्चिम पडनेवाले सम्पूर्ण भू भागको अपने अकमें नागरी समेट लेती है। जितने विस्तृत प्रदेशकी ऊपर चर्चा की गई, उतने की तो भाषा हिन्दी ही है। यद्यपि आजकी हिन्दीका अर्थ नागरी ही लगाया जाता है, किन्तु व्यापक भाषा हिन्दीके अन्तर्गत जितनी भाषाएँ आती है, उनमे नागरी भी है। आजसे ६० वर्ष पहले तक हिन्दी-भाषी क्षेत्रमें साहित्य-की रचनाका सर्वप्रधान माध्यम ब्रजभाषा थी। समयके प्रवाहके साथ वह चल नही पाई, क्योकि जो वैज्ञानिक युग ससारमे आ रहा था, उसके लिए ऐसी भाषा आवश्यक थी जो सब प्रकारकी रचनाओके लिए समर्थ हो, जिसमे गद्य-साहित्यके विकासकी सम्भावनाएँ निहित हो और जो देशके अधिक भू भागोमे बोली और समझी जाती हो। सन्तोने यह शक्ति पहले ही नागरीको प्रदान कर दी थी। ब्रजभाषाका जो रूप बन चुका था वह ससिद्ध (स्टैंडर्ड) भाषा इसलिए भी नही बन सकती थी कि उसके रूपोमे स्थिरता नही थी। एक कृष्ण शब्द ही कन्ह, कान्हा, कन्हैया, काँधा, कान्हरो आदि अनेक रूपोमे प्रयुक्त होता है। किसी भी ससिद्ध शिष्ट जनकी सर्व व्यवहारणीय भाषामे इतनी विकृतियाँ ग्राह्य नही हो सकती। यह सब देखते हुए ब्रजभाषासे यह आशा नही की जा सकती थी। यही बात अवधी और राजस्थानीमे भी थी। हिन्दीकी जिस क्षेत्रीय भाषाकी ओर इस उद्देश्यसे ध्यान गया वह नागरी थी। इसका वास्तविक क्षेत्र तो मेरठ, मुजफ्फरनगर तथा दिल्लीका पार्श्ववर्ती प्रदेश है, किन्तु इसका व्यवहार दिल्लीके व्यापारियो द्वारा दूर तक होता रहा। दिल्लीके मुसलमान शासकोको तथा उनकी परिषदोको वहाँके लोगोसे सम्पर्क स्थापनके निमित्त उक्त क्षेत्रकी बोली ही सीखनी पडी। उनका नित्यका व्यवहार उसके बिना चल ही नही सकता था। आगे चलकर जब ये शासक देशके अनेक भागोमें फैलते गए तो ये अपने साथ यहाँकी बोली भी लेते गए। नित्यके व्यवहारके लिए वे उनका ही प्रयोग करने लगे जिससे भारतभरमें किसी-न-किसी रूपमे नागरीका प्रचार हुआ। इसके प्रचारका एक मुख्य कारण यह भी हुआ कि राम-कृष्णकी जन्मभूमि, काशी, हरिद्वार और उत्तरा-खण्डकी यात्रा करनेवाले सभी लोगोको नागरीके क्षेत्रमे रहनेवालोंके बीच कई-कई मास तक निवास करना पडता था। मुहम्मद तुगलकने अपनी राजधानी दिल्लीसे हटाकर सुदूर दक्षिणमें दौलताबाद ले जाकर पहुँचाई तो दिल्ली निवासियोंके साथ यहाँकी भाषा भी वहाँ पहुँच गई। और तुगलकोके पश्चात् उनके दक्षिणके सूबेदार जफरखाँने बहमनी राज्य स्थापित किया और स्थानीय भाषाओके साथ अरबी-फारसी मिलाकर एक व्यवहार भाषा राजकार्यके लिए बना ली गई जिसे पहले हिन्दवी, फिर धीरे-धीरे हिन्दी और फिर 'दक्षिणी' (दक्खिनी हिन्दी) कहने लगे। इस प्रकार हिन्दी (नागरी) का व्यापक प्रचार और प्रसार पहलेसे ही रहा। नागरीके व्यापक प्रचार तथा शक्तिशाली गद्य प्रस्तुत कर सकनेकी उसकी क्षमताके कारण लोगोका ध्यान उसकी ओर ही आकृष्ट हुआ और कुछ ही कालके भीतर नागरीमे इतना अधिक साहित्य प्रस्तुत हो गया, जितना हिन्दीके अन्तर्गत आनेवाली सब भाषाओको मिलाकर भी नही है। इसके कारण तो कई है, किन्तु तीन मुख्य है —१—छापेका आविष्कार और उसका व्यापक प्रयोग, २—समाचार-पत्रोका प्रचार ३—ज्ञान-विज्ञानके अनेक क्षेत्रोका विकास जिनकी अभिव्यक्तिके लिए गद्यका प्रयोग अनिवार्य था।

नागरी भाषाका प्रयोग बहुत पहलेसे हो रहा है। जिस क्षेत्रकी यह आजसे सहस्रो वर्ष पूर्व बोली रही है, उस क्षेत्र (मेरठ और मुजफ्फरनगर) में प्राय ठीक उसी रूपमें आज भी बोली जाती है। यद्यपि अमीर खुसरो और नामदेवकी ही कुछ रचनाएँ नागरीकी सर्वप्रथम रचनाके रूपमें उपलब्ध है, तथापि उनकी भाषाका

जो पुष्ट रूप प्राप्त है, उसे देखते हुए यह असन्दिग्ध रूपसे कहा जा सकता है कि इस भाषामें पहलेसे रचना होती रही जो आज मिल नहीं रही है। विक्रमकी बारह्वीं शताब्दीमें रचे हुए आचार्य कुमुदेन्दु मुनिके भूवलय ग्रन्थमें जहाँ उन भाषाओंके नाम गिनाए गए हैं जिनमें उस ग्रन्थका पढा जाना सम्भव है वहाँ नागरीका भी उल्लेख किया गया है। इससे ही यह सिद्ध हो जाता है कि आजसे १२ वर्ष पूर्व भी आजकी नागरी (जिसे कुछ लोग भूलसे खड़ी बोली इसलिए कहते हैं कि ब्रजभाषाकी अपेक्षा उसमें कठोरता रूखापन अक्खड़पन अधिक है।) की प्रसिद्धि मुख्य भाषाके रूपमें ही थी। उस समय दिल्लीके निकटवर्ती प्रदेशों और स्वयं राजधानी दिल्लीमें किस प्रकारकी भाषा बोली जाती थी—इसका प्रमाण अमीर खुसरो (सन् १२ ई) की ये पहेलियाँ (मुकरियाँ) हैं —

१– अरथ तो इसका बूझेगा। मुँह देखो तो सूझेगा॥
२– एक थाल मोती से भरा। सबके सिर पर औंधा धरा॥
चारों ओर वह थाली फिरै। मोती उससे एक न गिरै॥

सवत १३४ के लगभग प्रसिद्ध फ़ारसीके विद्वान तथा लेखक जनप्रिय कवि अमीर खुसरोने गीत पहेलियाँ मुकरियाँ और दोहोंकी रचना की है, जिनमेंसे पहेलियाँ और मुकरियाँ तो हमारी वर्तमान नागरी (खड़ी बोली) का प्रारम्भिक स्वरूप है किन्तु गीत सब ब्रज भाषामें लिखे गए हैं। वतमान हिन्दीके अबतकके प्राप्त प्रमाणोंमें इन्हींकी रचना वास्तवमें हिन्दीकी आदि रचना है। इनका वास्तविक नाम अबुल हसन था। स १३२४ (सन् १२६७) में अलाउद्दीन खाने इन्हें एक सहस्र रुपये मासिक वेतनपर अपने यहाँ राजसभामें नियुक्त करके खुसरुये शाअरा की उपाधिसे विभूषित किया। वे कवि समीतज्ञ राजनीतिज्ञ सैनिक सन्त और हँसोड सभी कुछ थे। व इतने भावुक और कोमल-हृदय थे कि स १३११ में ख्वाजा निजामुद्दीन औलियाकी मृत्युसे प्रभावित होकर उनकी समाधिपर ही उन्होंने प्राण दे दिया। वे हिन्दी संस्कृत फ़ारसी तुर्की और अरबीके विशेषज्ञ थे। उन्होंने ढकोसला और पहेली दोनोंकी रचना की है। ढकोसलेका उदाहरण लीजिए —

बीसों का सिर काट लिया न मारा ना खून किया। (नाखून)
एक नारि जब बनकर आवे
मालिकको अपने पर लावे।
है वह नारी सबके मौकी
खुसरो नाम लिए तो चौकी (चोकी)
चल चल चलती चलता गाँव
बस्तीमें नहिं वाको ठावें।
खुसरु वाको दियो है नावें।
बूझ अरथ नहिं छोड़ो गाँवें। (नाव)
गोरी सुन्दर पातली केहर काले रंग।
ग्यारह देवर छोड़के, चली जेठके संग।
(अरहर जो ११ महीने तैयार होकर जेठमें काटी जाती है।)

पहेलियाँ लीजिए —

आना जाना उसका भाए।
जिस घर जाये लकडी खाए। (आरी)
एक राजाकी अलोखी रानी।
नीचेसे वह पीवे पानी। (दिएकी बत्ती)

इस प्रकार यदि देखा जाय तो नागरी (वर्तमान हिन्दी या खडी बोली) के आदि कवि और लेखक अमीर खुसरो ही सिद्ध होते हैं। उनके हँसोडपनकी एक कथा बडी प्रसिद्ध है। एक बार वे एक कुएँपर पहुँचे और वहाँ पानी भरती हुई स्त्रियोसे जल माँगने लगे। जब उन्हे ज्ञात हुआ कि ये अमीर खुसरो है तो उनमेंसे एकने कहा—खीरपर कुछ कहिए। दूसरीने कहा—चर्खेपर कहिए। तीसरीने कहा—कुत्तेपर कहिए और चौथीने कहा—ढोलपर कहिए। इन्होने झट तुक मिलाते हुए चारोपर एक कह दिया —

खीर पकाई जतनसे, चरखा दिया जला।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा।।
ला पानी पिला।

इनकी मुकरीका भी एक उदाहरण लीजिए जिसे काव्य-शास्त्रकी भाषामें अपह्नुति कहते है —

बरस-बरस वह देशमें आवे।
मुंहसे मूंह लगा रस प्यावे।
वा खातिर मे खर्चे दाम।
क्यों सखि साजन ना सखि आम।।

इन सब उदाहरणोसे यह समझने और माननेमे तनिक भी सन्देह नही हो सकता कि वास्तवमे अमीर खुसरो ही उस हिन्दी भाषाके आदि आचार्य हैं जिन्होने अत्यन्त प्रौढ, व्यवस्थित, सरल, मुहावरेदार और प्रवाहशील भाषामें सर्वबोध्य, ललित और रोचक स्फुट रचनाएँ की थी।

इसमें नागरीका कितना निखरा हुआ रूप विद्यमान है। आज जिस नागरीका सर्वत्र व्यवहार होता है, उसीका व्यवहार उस समय भी साहित्य-सर्जनमें होता था, यह खुसरोकी पहेलियाँ स्पष्ट कह रही है। इस भाषाकी पुष्टता ही बता रही है कि कई सौ वर्ष पूर्व इस भाषामे साहित्य रचना आरम्भ हो गई थी। किन्तु खुसरोके पश्चात् नागरीमें साहित्य-रचनाका उदाहरण हमें लगभग पाँच सौ वर्षकी लम्बी अवधिके अनन्तर ही जाकर मिलता है। इसके दो कारण हुए है—एक तो यह कि यह प्रदेश इतना धन-धान्य-सम्पन्न है कि वहाँ वालोको खेती-वारी और खाने-पीनेसे ही इतना अवकाश नही मिलता कि वे अपनी कलात्मक प्रवृत्तियोका विकास करके साहित्य-सर्जनादिकी ओर उन्मुख हो। दूसरे वहाँ वालोका समय सदा राज्य-फल भोगनेमें ही वीत जाता था, वे साहित्य-रचना क्या करते। जो कुछ साहित्य वहाँके लोगो द्वारा रचा भी विप्लवोका गया वह उपलब्ध नही है।

सोलहवी शताब्दीके मध्यमें सिक्खोके गुरु श्री नानक देवके पुत्र श्री श्रीचन्द्रजी हुए, जिन्होने अपने दार्शनिक सिद्धान्तोका प्रतिपादन करनेके लिए 'मात्राशास्त्र' नामक ग्रन्थकी रचना की। उसकी रचना इसी नागरीमे हुई। कुछ उदाहरण देखिए —

१— किसने मूँड़ा किसने मुँड़ाया।
किसका भला नगरी आया॥
२— गुरु अविनाशी खेल रचाया
आगम निगमका पन्थ बताया।

यह भाषा लगभग चार सौ वर्ष पुरानी है। आजकी भाषामें और इस भाषामें तनिक भी अन्तर नहीं है। अतः निष्कर्ष यह निकला कि १—अन्य देसी भाषाओंके साथ-साथ नागरी भी चलती रही है २—नागरी नई नहीं बहुत पुरानी भाषा है ३—नागरीके रूपमें परिवर्तन भी नहीं हुआ।

जब इस देशपर अँग्रेजोंका अधिकार हुआ तो उन्होंने जन-सम्पर्क बढ़ानेके उद्देश्यसे यहाँकी देसी भाषाओंका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक समझा। देश भरमें फैल जानेसे नागरीका प्रचार तो अवश्य हो गया किन्तु कालान्तरमें धीरे-धीरे जहाँकि शासन-कार्यमें उसका रूप फारसी की शैलीमें ढालना आरम्भ कर दिया। उसकी शब्दावली में बलपूर्वक अरबी फारसीके शब्द ठूँसे जाने लगे। इस खिचड़ी उर्दू भाषामें और औरंगजेबके समयमें काव्यकी रचना भी होने लगी जो बहुत दिनों तक नागरी प्रधान फारसी शब्दावलीमें होती थी। किन्तु आगे चलकर क्रम उलट गया और उर्दूमें इस हद तक अरबी-फारसीकी शब्दावलीका प्रयोग होने लगा कि हिन्दी-संस्कृतके शब्द मतरूक (त्याज्य) समझे जाने लगे उर्दू और फारसीका अन्तर केवल क्रिया पदसे प्रकट होता था। जिस प्रकार यह भाषा कृत्रिम होती गई, उसी प्रकार उसीमें अर्पित भाव और विचार भी कृत्रिम तथा अभारतीय होते गए। हिन्दीकी इस शैलीका वर्णन आगे किया जाएगा।

जिस समय अँग्रेजोंका आधिपत्य भारतपर हुआ उस समय यहाँकी सरकारी भाषा तो फारसी थी किन्तु हिन्दी (नागरी) का गद्य सामान्यतया किसी-न-किसी रूपमें सम्पूर्ण उत्तर भारतमें प्रचलित था। दूसरा रूप उन्होंने वह उर्दूका देखा जो सर्वथा कृत्रिम था जिसे मुसलमानोंने चला रखा था और जिसके सम्बन्धमें अँग्रेजोंने ठीक ही समझ रखा था कि उसका लगाव किसी प्रकार भी जनता से नहीं है। किन्तु मुसलमानोंका प्राबल्य बना हुआ था इसलिए फोर्ट विलियम कालेजकी ओरसे हिन्दी और उर्दू—दोनोंमें पुस्तकें लिखानेका प्रबन्ध हुआ और अँग्रेजोंने इन दोनोंको एक नाम दिया हिन्दुस्तानी।

अँग्रेजी राज्यके जम जानेसे पश्चिमकी विचारधाराका भी भारतमें प्रवेश हुआ। नये-नये विषय तथा ज्ञान विज्ञानके अनेक क्षेत्र सामने आने लगे। मुद्रण यन्त्रोंके प्रयोगसे विचारोंके प्रचारकी गति भी बहुत तीव्र होती गई। इस प्रकार नागरीके गद्यके लिए अपने आप मार्ग बनता गया। नागरीमें साहित्य का सर्जन वस्तुतः इसी युगकी घटना है। लल्लूजी और सदल मिश्र की रचनाओंसे उदाहरण देकर तो यही सिद्ध किया जा सकता है कि यह नागरी भाषा पुरानी है क्योंकि उस समय उसका प्रयोग हुआ है परन्तु क्रमबद्ध रचना तो इसी युगमें हुई। प्रारम्भमें जब नागरी गद्यका प्रचार हुआ उस समय लोग यही समझते रहे कि गद्य की भाषा नागरी और पद्यकी ब्रज है। बहुत समय तक यह विवाद चलता भी रहा किन्तु आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीके समयमें यह झगड़ा समाप्त हो गया। नागरीमें जो इक्की-दुक्की पद्य रचना होती थी वह अब जमकर उसीमें होने लगी। द्विवेदीजीने तो सरस्वती में ब्रजभाषाकी रचनाएँ छापनी भी बन्द कर दी थी।

नागरीका प्रचार गद्यसे ही आरम्भ हुआ, गद्यसे ही बढा और गद्य ही उसका प्रधान क्षेत्र है। अत नागरी साहित्यके गद्यपर ही पहले विचार करना उचित होगा।

नागरीका श्रीगणेश

ससारकी सभी जातियोमे प्रारम्भ-कालसे ही साहित्यके साथ-साथ अन्य सभी विषयोपर पद्यमे ही रचना करनेकी प्रथा चली आती रही है। उसका कारण यही था कि शीघ्र कठाग्र और जिह्वाग्र करने तथा परम्परागत रूपसे उसे जन समाजकी स्मृतिमें वनाए रखनेके लिए पद्य निश्चित रूपसे सहायक रहा है। ऐसे ऐतिहासिक विवरणोकी कमी नही है कि बाहरसे आनेवाले दस्युओने पुस्तको और पुस्तकालयोको नष्ट या भस्म कर दिया जिससे बहुत-सा सचित ज्ञान भण्डार नष्ट हो गया। भारतमें जो बहुतसे विदेशी दस्यु आए, उन्होने भारतीय साहित्य और सस्कृतिका विनाश करनेके लिए यहाँके विद्वानोको तलवारके घाट उतारा, सास्कृतिक केन्द्रोका विनाश किया और पुस्तकालयोकी होली जलाई, किन्तु चीनमें तो ऐसे भी विचित्र सनकी शासक रहे हैं जिन्होने केवल इसीलिए सब विद्वानोको मरवा डाला और सब पुस्तके जलवा डाली कि जिससे इतिहास-कार यह लिखें कि इनसे पहले कोई साहित्य नही था——इन्होने ही साहित्यका श्रीगणेश किया। ऐसे सब दुर्वृत्त पशुओसे विद्याकी रक्षा करनेका एक मात्र साधन था पद्य-बद्ध रचना करना और उसे शिष्योको सिखा देना। ऋषि-ऋणसे उऋण होनेका यही उपाय था। जब तक मुद्रण-यन्त्रका आविष्कार नही हुआ था, तब तक यही पद्धति ज्ञान-विज्ञानके सरक्षण की एक मात्र रीति मानी जाती थी।

मुद्रण यन्त्रोका आविष्कार होनेसे पूर्व भी पुस्तकोकी रचना होती रही और अच्छे ग्रन्थोकी प्रतिलिपि करनेका भी पर्याप्त प्रचार सभी देशोमें रहा है। फिर भी इन प्रतिलिपि किए हुए ग्रन्थोकी सख्या उतनी नही होती थी जितनी छपे हुए ग्रन्थोकी सम्भव है। इसलिए स्वभावत मुद्रण यन्त्रोका प्रचलन हो चलनेके पश्चात् ज्ञान-विज्ञान और साहित्यको परम्परागत एक कठसे दूसरे कठ तक श्रुति वनाकर सरक्षण करनेकी आवश्यकता नही रह गई। परिणाम यह हुआ कि पद्यमे लिखनेकी प्रथा भी इसीके साथ-साथ समाप्त हो गई और गद्यमें रचनाएँ होने लगी। सयोगवश नागरीका प्रचार उस युगमे प्रारम्भ हुआ जब मुद्रण यन्त्र भली प्रकार प्रचलित हो चुके थे। इसलिए स्वामी दयानन्दजीको अपना 'सत्यार्थप्रकाश' पद्यमें लिखनेकी आवश्यकता नही पडी। इधर समाचार पत्रोकी धूम भी मची हुई थी, विचार-पत्र भी निकल रहे थे और अनेक देशोके साथ भारतका सम्पर्क होनेके साथ स्वभावत समाचार पत्रोकी माँग और आवश्यकता बढती जा रही थी। यद्यपि हमारे यहाँ आज भी ऐसे कवि है जो चाहते तो पद्यमे ही समाचार-पत्र छापा करते किन्तु यह आवश्यक नही था कि सभी अच्छे लेखक और सम्वाददाता कवि हो। इसलिए समाचार पत्र गद्यमें निकलने लगे, विचार-पत्रोमें भी विभिन्न विषयोपर गद्यमें लेख प्रकाशित होने लगे और इस प्रकार गद्य चल निकला। कथा-कहानियोकी माँग होना स्वाभाविक था। इन सब अनेक परिस्थितियो और साधनाओने हिन्दी गद्यको विकसित होनेमें पर्याप्त सहायता दी।

अमीर खुसरोने जिस बोलीमें अपनी मुकरियाँ, पहेलियाँ आदिकी रचना की थी, वह मेरठ, मुजफ्फर-नगर और देहलीके आस पास बोली जानेवाली जन भाषाको सँवारकर बनाई गई थी जिसे पीछे चलकर खडी बोलीका दुर्नाम दे दिया गया। सन्तोने अपनी वानियोमें इसी भाषाका प्रयोग किया, निरजनी पन्थके

प्रवर्तक हरिदासजीने इसी भाषामे गद्य लिखा। लालदासी पन्थके प्रवर्तक लालदास (१५९७) ने इसी नागरी (हिन्दी) भाषामे रचना की। नानकदेवके पुत्र श्रीचन्द्राचार्यने अपने उदासीन सम्प्रदायका सिद्धान्त ग्रन्थ मात्राशास्त्र इसी भाषामे लिखा। अकबरके समय गगने चन्द-छन्द वर्णन की महिमा मे इसी नागरी (खड़ी बोली) से मिलती-जुलती भाषाका प्रयोग किया है। दिल्ली उजड़नेपर जहाँ-जहाँ (लखनऊ, पटना मुर्शिदाबाद और दक्षिण) में मुसलमानी शासन चलता रहा वहाँ शासन और राज्य सभा तथा उनसे सम्बद्ध शिष्ट लोगोकी भाषा यही नागरी बन चली। सन् १७४१ मे पटियालाके श्रीरामप्रसाद कथावाचकने ललित नागरीमे भाषा योगवाशिष्ठकी रचना की थी।

अमीर खुसरोकी भाषा देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि दिल्लीके आसपासके प्रदेशमे जो भाषा बहुत पहलेसे लोक भाषाके रूपमे व्यवहृत थी उसे ही परिमार्जित करके कवि लोग अपनी कवितामे और शिष्ट लोग अपने पारस्परिक व्यवहारके काममे लाते थे। आज भी मेरठ कमिश्नरीकी लोक भाषाका स्वरूप देखकर यह समझनेमें कोई कठिनाई नही होगी कि संस्कृतसे सीधे निकली हुई इस भाषाका अपना इतिहास रहा है। हरिद्वार आदि तीर्थोके पण्डोंके यहाँ रखी हुई बहुत प्राचीन बहियोका परीक्षण करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि यह भाषा एक सहस्र पहलेसे भी यहाँ बोली जाती रही है। इस प्रदेशके लोग जहाँ-जहाँ तीर्थ करने जाते रहे वहाँ-वहाँकी बहियोमें वे अपने हाथसे इसी भाषामे अपना नाम ठिकाना लिखते रहे। अभी इस क्षेत्रमे पूर्ण खोज नही हो पाई अन्यथा विद्वान लोग यह न करनेकी भ्रामक भूल न करते कि अपभ्रंशसे इसकी उत्पत्ति हुई है। पहले बताया जा चुका है कि हेमचन्द्र सोमप्रभ् सूरि आदिने जिस अपभ्रंशका व्याकरण लिखा है और जिसके उदाहरण दिए है वह गुजराती और राजस्थानीकी पूर्ववर्तिनी अपभ्रंश है नागरीकी नही।

संयोगसे नागरीका गद्य-साहित्य उस युगमें पनपा जिस युगमे योरोपसे आनेवाले अंग्रेज फ्रान्सीसी पुर्तगाली और हुपाण् (डच) देशोके साहसी व्यापारियोने यहाँ आकर हमारे व्यवसायको भारी आघात पहुँचाकर, यहाँके नवाबो और राजाओमे परस्पर कलह कराकर धीरे-धीरे हमारे देशके भू-भागोपर अधिकार प्रारम्भ कर दिया। योरोपीय देशोके इन व्यापारी जातियोके संघर्षमे अँग्रेजोने अधिक सफलता पाई और उन्होने ईस्ट इंडिया कम्पनी स्थापित करके सांस्कृतिक राजनैतिक आर्थिक दृष्टिसे भारतको दास बनाकर शोषण करना प्रारम्भ कर दिया। उन्हीके प्रयाससे कलकत्तेके फोर्ट विलियम कालेजमें हिन्दी और उर्दूके अध्यापक गिलक्राइस्ट साहबने हिन्दी और उर्दूकी पुस्तके लिखवानी आरम्भ की। इन्होने लल्लूजी लालसे प्रेम सागर और सदल मिश्रसे नासिकेतोपाख्यान लिखवाया। स्वतन्त्र रूपसे भी दिल्लीके सदासुख लाल (१७४६–१८२४) ने सुखसागर नामसे भागवतका रूपान्तर किया था और लखनऊके मुन्शी इंशाअल्लाखाँने रानी केतकी की कहानी लिखी। सन १८१७ म कलकत्तेकी स्कूल बुक सोसायटी और आगरेमें आगरा स्कूल बुक सोसायटी ने विद्यालयोंके लिए स्कूल पाठ्य-ग्रन्थोका प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया।

इन सबसे अधिक व्यवस्थित नागरी भाषाका प्रचार करनेका श्रेय ईसाई पादरियोको है जिन्होने हिन्दू धर्मका खण्डन करनेके लिए हिन्दू धर्म ग्रन्थ संस्कृत और नागरी भाषाका अध्ययन किया और अपने धार्मिक ग्रन्थोका नागरी (हिन्दी) म अनुवाद कराया। इस प्रकारके कार्यका श्रीगणेश किया सैरामपुर मिशनके पादरी केरे, मार्शमैन और वार्डने। उन्होंने यह भली भाँति अनुभव कर लिया था कि अपने धर्म प्रचारक

लिए यदि कोई भाषा समूचे उत्तर भारतमे समान रूपसे समझी जा सकती है तो वह नागरी भाषा ही है, कुछ तो इसलिए कि दिल्ली, सहस्राब्दियोसे उत्तर भारतकी राजधानी रही है, कुछ इसलिए कि सभी देशोके व्यापारी दिल्लीसे सम्पर्क रखते रहे है, कुछ इसलिए भी कि समस्त भारतके प्रमुख तीर्थ उत्तर प्रदेशमें ही है, इसलिए भी कि घने बसे होनेके कारण उत्तरप्रदेशके लोग छोटे-मोटे व्यवसाय और नौकरीके लिए सारे भारत और भारतके बाहर देशो (आसाम, मलाया, बर्मा, स्याम, फिजी, मौरीशस, दक्षिण अमरीकाके डच गायना, ब्रिटिश गायना और अफ्रीकाके प्रदेशो) में अपनी भाषा और संस्कृति, वेश और रहन-सहन लेकर बसे हुए है, जिन्होने अपनी नागरी भाषाको समुद्रके पार भी आज तक सशक्त और जीवित कर रखा है। इस भाषाकी व्यापकताके कारण कलकत्तेसे हिन्दीका प्रथम पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' और 'बंगदूत' नामक जो हिन्दीके समाचार-पत्र निकले, उनके प्रवर्त्तक राजा राममोहन राय, द्वारकानाथ ठाकुर और प्रसन्नकुमार तीनो ही बंगाली थे। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' का 'बनारस' पत्र तो काशीसे सन् १८४४ में प्रकाशित हुआ।

इस नागरीके दो रूप चले—हिन्दी और उर्दू। यद्यपि व्यवहारत नागरी और उर्दूमे कोई अन्तर नही था, किन्तु फारसी-अरबी शब्दोसे लदी होनेके कारण और मुसलिम शासकोकी मुँह-चढी होनेके कारण इसीका बोलबाला था। शासन-प्रिया होनेके कारण उर्दूकी व्यवस्थित पढाई भी होती थी और वे लोग उच्चारण और भाषा दोनोका ध्यान रखकर शिक्षा देते थे। हिन्दीको इस प्रकारकी कोई सुविधा नही मिली। यही कारण है कि उत्तर भारतके विभिन्न प्रदेशोमें उसका उच्चारण अभी तक व्यवस्थित नही हो सका और न भाषारूप ही अधिक सँवर पाया, यद्यपि वास्तवमें लोक-व्यवहार, जन-सम्पर्क, धार्मिक प्रवचन और शिष्ट लोगोमें पारस्परिक लेख-व्यवहार और निमन्त्रण-पत्र आदि की भाषा हिन्दी ही थी। इसी अंधकारमें चन्द्रके समान प्रकाश लेकर भारतेन्दुका उदय हुआ।

राष्ट्रीयताकी चेतनाका आधार नागरी (हिन्दी)

अँग्रेजोने भारतमें आकर अपनी 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' के द्वारा भारतीय राजा और महाराजाओको पदच्युत किया, उनके अधिकार छीन लिए और उनके दत्तक पुत्रोको स्वीकार नही किया। स्वभावत अनेक राजे-महाराजे और नवाब अँग्रेजोसे चिढे बैठे थे। अँग्रेजोने अपने शोषणसे देशका सम्पूर्ण वैभव और ऐश्वर्य लूटकर देशको दरिद्र बनाकर यहाँका सारा व्यापार विनष्ट कर दिया, इसलिए व्यापारी-वर्ग असन्तुष्ट हो उठा। योरोपसे आनेवाले पादरी निरन्तर भारतीयोको विधर्मी बनाते चले जा रहे थे। इसलिए देशका कुलीन वर्ग विचलित हो उठा। इन राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक कारणोसे सारा देश विक्षुब्ध हो उठा था। ऐसे समय नागरी भाषा (हिन्दी) ने इस सम्पूर्ण असन्तुष्ट हुई शक्तियोको एक सूत्रमें ग्रथित होनेमें बडी सहायता की। सम्पूर्ण उत्तर भारतमें एक साथ क्रान्ति की ज्वालाएँ भडक उठी, क्योकि सबके परस्पर मिलने-जुलने और बात करनेका एक सरल माध्यम नागरी भाषा ही बन गई थी। यदि उसी समय समस्त देशमें एक भाषा होती तो निश्चय ही हम लोग सन् १८५७ में स्वतन्त्र हो गए होते। यह कम आश्चर्यकी और दुखकी बात नही है कि इतिहासकी इस प्रमुख घटनासे कोई लाभ न उठाकर आज भी लोग भारतकी एक राष्ट्रभाषा होनेका विरोध करनेका अराष्ट्रीय कार्य कर रहे हैं।

प्रवर्तक हरिदासजीने इसी भाषामें पद लिखा। लालदासी पन्थके प्रवर्तक लालदास (१५९७) ने इसी नागरी (हिन्दी) भाषामें रचना की। नानकदेवके पुत्र श्रीचन्द्राचार्यने अपने उदासीन सम्प्रदायका सिद्धान्त ग्रन्थ मात्राशास्त्र इसी भाषामें लिखा। अकबरके समय गंगने चन्द-छन्द वर्णन की महिमा म इसी नागरी (खड़ी बोली) से मिलती-जुलती भाषाका प्रयोग किया है। दिल्ली उजड़नेपर जहाँ-तहाँ (लखनऊ, पटना मुर्शिदाबाद और दक्षिण) में मुसलमानी शासन चलता रहा वहाँ शासन और राज्य सभा तथा उनसे सम्बद्ध शिष्ट लोगोंकी भाषा यही नागरी बन चली। सन् १७४१ मे पटियालाके श्रीरामप्रसाद कथावाचकने कलित नागरीम भाषा योगवाशिष्टकी रचना की थी।

अमीर खुसरोकी भाषा देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि दिल्लीके आसपासके प्रदेशमें जो भाषा बहुत पहलेसे लोक भाषाके रूपमे व्यवहृत थी उसे ही परिमार्जित करके कवि लोग अपनी कविताम और शिष्ट लोग अपने पारस्परिक व्यवहारके काममे लाते थे। आज भी मेरठ कमिश्नरीकी लोक भाषाका स्वरूप देखकर यह समझनेम कोई कठिनाई नही होगी कि संस्कृतसे सीधे निकली हुई इस भाषाका अपना इतिहास रहा है। हरिद्वार आदि तीर्थोंके पण्डोंके यहाँ रखी हुई बहुत प्राचीन बहियोका परीक्षण करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि यह भाषा एक सहस्र वर्ष पहलेसे भी यहाँ बोली जाती रही है। इस प्रदेशके लोग जहाँ-जहाँ तीर्थ करने जाते रहे वहाँ-वहाँकी बहियाम वे अपने हाथसे इसी भाषामें अपना नाम ठिकाना लिखते रहे। अभी इस क्षेत्रमें पूर्ण खोज नही हो पाई अन्यथा विद्वान लोग यह न कहनेकी भ्रामक भूल न करते कि अपभ्रंशसे इसकी उत्पत्ति हुई है। पहले बताया जा चुका है कि हेमचन्द्र सोमप्रभ सूरि आदिने जिस अपभ्रंशका व्याकरण लिखा है और जिसके उदाहरण दिए हैं वह गुजराती और राजस्थानीकी पूर्ववर्तिनी अपभ्रंश है नागरीकी नही।

संयोगसे नागरीका गद्य-साहित्य उस युगम पनपा जिस युगमें योरोपसे आनेवाले अँग्रेज फ्रान्सीसी पुर्तगाली और हुलाण्ड (डच) देशोके साहसी व्यापारियोने यहाँ आकर हमारे व्यवसायको भारी आघात पहुँचाकर, यहाँके नवाबों और राजाओमें परस्पर कलह कराकर धीरे-धीरे हमारे देशके भू-भागोपर अधिकार प्रारम्भ कर दिया। योरोपीय देशोके इन व्यापारी जातियोके सघर्षमें अँग्रेजोने अधिक सफलता पाई और उन्होने ईस्ट इंडिया कम्पनी स्थापित करके सांस्कृतिक राजनैतिक आर्थिक दृष्टिसे भारतको दास बनाकर शोषण करना प्रारम्भ कर दिया। उन्हीके प्रयाससे कलकत्तेके फोर्ट विलियम कॉलेजमें हिन्दी और उर्दूके अध्यापक गिलक्रिस्ट साहबने हिन्दी और उर्दूकी पुस्तकें लिखवानी आरम्भ की। इन्होने लल्लूजी लालसे प्रेम सागर और सदल मिश्रसे नासिकेतोपाख्यान लिखवाया। स्वतन्त्र रूपसे भी दिल्लीके सदासुख लाल (१७४६–१८२४) ने सुखसागर नामसे भागवतका रूपान्तर किया था और लखनऊके मुन्शी इंशाअल्लाखाँने रानी केतकी की कहानी लिखी। सन १८१७ म कलकत्तेकी स्कूल बुक सोसायटी और आगरेमें आगरा स्कूल बुक सोसायटी ने विद्यालयोंके लिए स्वल्प पाठ्य-ग्रन्थोका प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया।

इन सबसे अधिक व्यवस्थित नागरी भाषाका प्रचार करनेका श्रेय ईसाई पादरियोको है जिन्होने हिन्दू धर्मका खण्डन करनेके लिए हिन्दू धर्म ग्रन्थ सस्कृत और नागरी भाषाका अध्ययन किया और अपने धार्मिक ग्रन्थोका नागरी (हिन्दी) म अनुवाद कराया। इस प्रकारके कामका श्रीगणेश किया कैरि विलियम वार्ड और मार्शमैन और वार्डने। उन्होने यह भली भाँति अनुभव कर लिया था कि अपने धर्म प्रचारके

लिए यदि कोई भाषा समूचे उत्तर भारतमे समान रूपसे समझी जा सकती है तो वह नागरी भाषा ही है, कुछ तो इसलिए कि दिल्ली, सहस्राब्दियोसे उत्तर भारतकी राजधानी रही है, कुछ इसलिए कि सभी देशोके व्यापारी दिल्लीसे सम्पर्क रखते रहे है, कुछ इसलिए भी कि समस्त भारतके प्रमुख तीर्थ उत्तर प्रदेशमे ही है, इसलिए भी कि घने वसे होनेके कारण उत्तरप्रदेशके लोग छोटे-मोटे व्यवसाय और नौकरीके लिए सारे भारत और भारतके वाहर देशो (आसाम, मलाया, वर्मा, स्याम, फिजी, मौरीशस, दक्षिण अमरीकाके डच गायना, ब्रिटिश गायना और अफ्रीकाके प्रदेशो) मे अपनी भाषा और सस्कृति, वेश और रहन-सहन लेकर वसे हुए है, जिन्होने अपनी नागरी भाषाको समुद्रके पार भी आज तक सशक्त और जीवित कर रखा है। इस भाषाकी व्यापकताके कारण कलकत्तेसे हिन्दीका प्रथम पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' और 'वगदूत' नामक जो हिन्दीके समाचार-पत्र निकले, उनके प्रवर्त्तक राजा राममोहन राय, द्वारकानाथ ठाकुर और प्रसन्नकुमार तीनो ही बगाली थे। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' का 'वनारस' पत्र तो काशीसे सन् १८४४ में प्रकाशित हुआ।

इस नागरीके दो रूप चले—हिन्दी और उर्दू। यद्यपि व्यवहारत नागरी और उर्दूमे कोई अन्तर नही था, किन्तु फारसी-अरबी शब्दोसे लदी होनेके कारण और मुसलिम शासकोकी मुँह-चढी होनेके कारण इसीका वोलवाला था। शासन-प्रिया होनेके कारण उर्दूकी व्यवस्थित पढाई भी होती थी और वे लोग उच्चारण और भाषा दोनोका ध्यान रखकर शिक्षा देते थे। हिन्दीको इस प्रकारकी कोई सुविधा नही मिली। यही कारण है कि उत्तर भारतके विभिन्न प्रदेशोमे उसका उच्चारण अभी तक व्यवस्थित नही हो सका और न भाषारूप ही अधिक सँवर पाया, यद्यपि वास्तवमें लोक-व्यवहार, जन-सम्पर्क, धार्मिक प्रवचन और शिष्ट लोगोमें पारस्परिक लेख-व्यवहार और निमन्त्रण-पत्र आदि की भाषा हिन्दी ही थी। इसी अधकारमे चन्द्रके समान प्रकाश लेकर भारतेन्दुका उदय हुआ।

राष्ट्रीयताकी चेतनाका आधार नागरी (हिन्दी)

अँग्रेजोने भारतमे आकर अपनी 'ईस्ट इडिया कम्पनी' के द्वारा भारतीय राजा और महाराजाओको पदच्युत किया, उनके अधिकार छीन लिए और उनके दत्तक पुत्रोंको स्वीकार नही किया। स्वभावत अनेक राजे-महाराजे और नवाब अँग्रेजोसे चिढे बैठे थे। अँग्रेजोने अपने शोषणसे देशका सम्पूर्ण वैभव और ऐश्वर्य लूटकर देशको दरिद्र बनाकर यहाँका सारा व्यापार विनष्ट कर दिया, इसलिए व्यापारी-वर्ग असन्तुष्ट हो उठा। योरोपसे आनेवाले पादरी निरन्तर भारतीयोको विधर्मी वनाते चले जा रहे थे। इसलिए देशका कुलीन वर्ग विचलित हो उठा। इन राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक कारणोसे सारा देश विक्षुब्ध हो उठा था। ऐसे समय नागरी भाषा (हिन्दी) ने इस सम्पूर्ण असन्तुष्ट हुई शक्तियोंको एक सूत्रमे ग्रथित होनेमें बडी सहायता की। सम्पूर्ण उत्तर भारतमें एक साथ क्रान्ति की ज्वालाएँ भडक उठी, क्योकि सबके परस्पर मिलने-जुलने और वात करनेका एक सरल माध्यम नागरी भाषा ही बन गई थी। यदि उसी समय समस्त देशमें एक भाषा होती तो निश्चय ही हम लोग सन् १८५७ में स्वतन्त्र हो गए होते। यह कम आश्चर्यकी और दुखकी बात नही है कि इतिहासकी इस प्रमुख घटनासे कोई लाभ न उठाकर आज भी लोग भारतकी एक राष्ट्रभाषा होनेका विरोध करनेका अराष्ट्रीय कार्य कर रहे है।

नागरीका गद्य

विश्वकी सभी भाषाओंमें गद्यका विकास पिछले पाँच सौ वर्षोंके भीतर हुआ है। गद्यके ग्रन्थ पहले भी लिखे जाते रहे, परन्तु उनका प्रचार तभी हो पाया जब वे अत्यन्त उच्च कोटिके होते थे। संस्कृतमें प्रसिद्ध ही था— गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति (गद्य ही कवियोंकी कसौटी है।)। छापेकी व्यवस्था होनेसे और उसका अधिकाधिक प्रचार होनेसे गद्यमें साहित्य रचनाको भी बल मिला। उद्योग और विज्ञान प्रधान युग होनेसे काव्यका ह्रास स्वाभाविक था किन्तु काव्यके ह्रासके साथ गद्य समृद्ध होता गया। पहले जहाँ साहित्य और काव्य एक ही वस्तु समझे जाते थे वहाँ अब काव्य (छन्दोमय रचना) भी साहित्यका एक अंग गिना जाता है। अतः इस युगमें गद्यका महत्त्व सर्वाधिक बढ़ गया।

नागरी गद्यका प्राचीनतम उदाहरण हम गंग कविकी 'चन्द-छन्द बरननकी महिमा' में मिलता है। देखिए —

सिद्धि श्री १०८ श्री पातसाहजी श्री दलपतिजी अकबर साहजी आमखासमें तखत ऊपर बिराजमान हो रहे।

इसके पश्चात् रामदास निरंजनका नाम आता है जिन्होंने संवत् १७९८ में 'भाषा योगवाशिष्ठ' की रचना की। इसकी भाषा स्पष्ट रूपसे आजकलकी नागरीका पूर्व रूप कही जा सकती है। दोनोंमें विशेष अन्तर नहीं है। एक वाक्य देखिए —

जिसने आत्मतत्त्व पाया है वह जैसे स्थित हो तैसे ही तुम भी स्थित हो। इसी दृष्टिको पाकर आत्म तत्त्वको देखो तब विगत-ज्वर होगे और आत्मपदको पाकर फिर जन्ममरणके बन्धनमें न आवोगे।

आजकलकी नागरीसे यह नागरी पूर्णतः मिलती-जुलती है। आगे चलकर १८११ में दौलत रामने हरिषेणाचार्यकृत 'जैन पद्मपुराण' का भाषानुवाद किया किन्तु उसकी भाषा उतनी पुष्ट नहीं है जितनी योग वाशिष्ठ की। दो-एक और छोटी-मोटी पुस्तकें भी निकलीं किन्तु फिर अंग्रेजोंकी प्रेरणासे नागरी गद्यमें रचनाएँ आरम्भ हुईं। कलकत्तेके फोर्ट विलियम कॉलेजके आश्रयमें लल्लूजी लालने 'प्रेम सागर' और सदल मिश्रने 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की।

लल्लूजी लाल

लल्लूजी लाल थे आगरेके निवासी। उन्होंने जिस भाषाका प्रयोग किया वह थी तो नागरी किन्तु इसमें ब्रज भाषाके शब्दोंका प्रचुर प्रयोग हुआ है। यह अवश्य है कि उन्होंने अरबी-फारसीके शब्दोंका प्रयोग बचानेकी चेष्टा की है। लल्लूजी लालकी भाषाकी सबसे बड़ी विशेषता है इनकी अनुप्रास-प्रियता। 'प्रेम-सागर' की भाषाका एक उदाहरण देखिए —

बालोंकी श्यामताके आगे अमावास्याकी अँधेरी फीकी लगने लगी। उसकी चोटी सटकाई लख नागिन अपनी केंचुली छोड़ सटक गई। भौंहकी बँकाई निरख धनुष धकधकाने लगा। आँखोंकी बड़ाई चंचलाई पेख मृग-मीन-खंजन खिसाय रहे।

सदल मिश्र

सदल मिश्र आरेके रहनेवाले थे इसलिए इनकी भाषामें स्वभावत कही-कही पूर्वी प्रयोग पाए जाते है—देखिए —

तब नृपने पडितको वोला दिन विचार बडी प्रसन्नतासे राजा वो ऋषियोको नेवत बुलाया। लगनके समय सबोको साथ ले मण्डलमे जहाँ सोनन्हके थम्भपर मानिक दीप वलते थे जा पहुँचे।

सदासुखलाल

ठीक इसी समय सदासुख लाल 'नियाज' ने कम्पनीकी नौकरी से अवकाश ग्रहण करनेके पश्चात् विष्णुपुराणके कुछ अशोका अनुवाद प्रस्तुत किया। इनकी रचना स्वतन्त्र है और किसीकी प्रेरणासे नही लिखी गई है। इन्होने उर्दू शैली और फारसीमें भी कुछ पुस्तकें लिखी है। ये दिल्लीके रहनेवाले थे तथा नौकरीसे अवकाश पाकर प्रयागमें ही वस गये थे। शेप जीवन इन्होने वही भगवद्भजनमें व्यतीत किया। इनकी भाषा ठीक वही है जो उस समय शिक्षित हिन्दू समाजकी वोलचालकी भाषा थी। इन्होने तत्सम शब्दोका वरावर प्रयोग किया और अपनी भाषाका स्वरूप वही रक्खा जो उस समय कथावाचको द्वारा व्यवहृत होता था। देखिए —

"विद्या इसी हेतु पढते है कि तात्पय इसका (जो) सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उसके निज स्वरूपमे लय हूजिए।"

इशा अल्लाह खाँ

इन्हीके ढगके दूसरे लेखक हो गए है सैयद इशा खाँ। इशा खाँ उर्दू शैलीके बहुत बडे कवि थे। किसी समय वे लखनऊ दरबारके रत्न रहे, किन्तु पीछे ये बहुत दुर्दशा भोगकर मरे। इन्होंने 'उदयभानचरित' या 'रानी केतकीकी कहानी' लिखी जिसका उद्देश्य इशाके शब्दोमें था—"कोई ऐसी कहानी कहिए जिसमें हिदवी छुट और किसी बोलीका पुट न मिले और वाहरकी वोली और गँवारी कुछ उसके बीचमें न हो, भाषापन भी न हो।"

इस प्रकार वाहरी (अरबी, फारसी आदि), गँवारी (ब्रजभाषा, अवधी आदि) तथा भाषा (सस्कृत) तीनोसे मुक्त भाषामे उन्होने रचना करनेका निश्चय किया। इसमें सन्देह नही कि इस प्रयत्नमें तो इशा सफल हो गए, किन्तु कही-कही फारसीके ढगका वाक्य-विन्यास रखकर इन्होंने भाषाकी प्रकृति अस्त-व्यस्त कर दी है। इनकी भाषामे अनुप्रास और शब्दोमें लोच और चचलता उसी ढगकी है जैसी प्रेम-कहानियोके लिए आवश्यक होती है। इन्होने कहानी भरमे ठेठ नागरीका प्रयोग किया है जिसमे स्थान-स्थानपर सिद्धोक्तियो (मुहावरो) का पुट है।

उदाहरण लीजिए —

"सिर झुकाकर नाक रगडता हूँ उस अपने बनानेवालेके सामने जिसने हम सबको बनाया और बात-की-बातमे वह कर दिखाया जिसका भेद किसीने न पाया।"

पादरियोंका प्रयास

ऊपर जिन चार लेखकोंकी चर्चा की गई है वे सम्वत् १८६ के आस पासके है। उन्होंने नागरी गद्यका जो स्वरूप निर्धारित किया उससे और लोगोंने तो कोई लाभ नहीं उठाया किन्तु ईसाई धर्मका प्रचार करनेवाले पादरियोंने अपने छापेखाने खोलकर अपनी बाइबिलका अनुवाद तथा अन्य पुस्तकोंका प्रकाशन उसी नागरी (हिन्दुस्तानी) गद्यमें प्रकाशित करनेमें किया। हिन्दी (नागरी) गद्यकी पुष्ट और अविच्छिन्न धारा वस्तुतः उपर्युक्त चारों लेखकोंके पचीस वर्ष पश्चात् आरम्भ हुई। इसी बीच कुछ पत्र भी नागरीमें निकले जो भाषाका रूप स्थिर करनेमें सहायक हुए।

राजा शिवप्रसाद

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने विक्रमकी बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें शिक्षा विभागमें निरीक्षक पदपर नियुक्त होकर कितनी ही पाठ्य पुस्तकें तैयार कराईं जिससे नागरीके लिए भली भाँति मार्ग बन सका। किन्तु राजा साहबका भाषा-विषयक कोई सिद्धान्त नहीं था। कभी तो वे फारसी मिश्रित शब्दावलीका प्रयोग करते कभी संस्कृतनिष्ठ शब्दावलीका और कभी ठेठ भाषाका।

उर्दूवालोंका कुचक्र

उर्दूकी शैली अलग करके उसके पोषकोंने संस्कृतनिष्ठ हिन्दीको गिरानेका निरन्तर कुप्रयत्न किया। सम्वत् १८६ में हिन्दी और उर्दू—दोनों ही न्यायालयोंकी भाषा मान ली गई थी और ११ वर्ष पश्चात् इसी आशयकी घोषणा पुनः की भी गई, किन्तु उर्दूके कुचक्रियोंने प्रयत्न करके वर्ष भरके पश्चात् यह घोषणा समाप्त भी करा दी और केवल उर्दू ही न्यायालयोंकी भाषा मान ली गई। इसका प्रभाव यह हुआ कि राजा शिवप्रसाद भी फारसी मिश्रित भाषाकी ओर ही झुक गए थे। परन्तु दूसरी ओर राजा लक्ष्मणसिंहने उसे उस संजीवनीका पान कराया कि नागरी गद्य पुनः जीकर उठ खड़ा हुआ। दोनोंकी भाषाके उदाहरण लीजिए —

१— हम लोगोंकी जबानका व्याकरण किसी कदर कायम हो गया है। जो बाकी है जिस कदर कायम हो जावे बहतर। इस जबानका दरवाजा हमेशा खुला रहा है और अब भी खुला रहेगा। —

—राजा शिवप्रसाद

२— तुम्हारे मधुर वचनोंके विश्वासमें आकर मेरा जी यह पूछनेको चाहता है कि तुम किस राज-वंशके भूषण हो और किस देशकी प्रजाको विरहमें व्याकुल छोड़कर पधारे हो। क्या कारण है कि जिसने तुमने अपने कोमल गातको कठिन तपोवनमें आकर पीड़ित किया। —

—राजा लक्ष्मणसिंह

स्वामी दयानन्द सरस्वती

ठीक इसी समय स्वामी दयानन्द सरस्वतीने सम्वत् १९३२ में आर्यसमाजकी स्थापना की और अपना सिद्धान्त-ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' नागरी भाषामें लिखा जिसका नाम उन्होंने आर्य भाषा रखा है। गुजराती होते हुए भी स्वामीजीने नागरी भाषाको ही आर्य समाजके सिद्धान्तोंके प्रचारका माध्यम बनाया क्योंकि यह

महर्षि दयानन्द

भाषा अधिक व्यापक रूपसे बोली और समझी जाती थी। स्वामीजीकी भाषा तत्सम शब्दावली प्रधान होती थी। एक उदाहरण लीजिए —

"राजा भोजके राज्यमे और समीप ऐसे शिल्पी लोग थे कि जिन्होने घोडेके आकारका एक मानयन्त्र कलायुक्त बनाया था कि जो एक कच्ची घडीमे ग्यारह कोस और एक घण्टेमे सत्ताईस कोस जाता था।"

इन तीनो लेखकोने एक ही समयमे तीन प्रकारकी शैलियाँ उपस्थित की।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका अभ्युदय

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (जन्म सवत १९०७–१९४२) ३५ वर्षकी आयुमे ही वर्तमान नागरी गद्यका प्रवर्तन करके अस्त हो गए। भारतेन्दु जिस समय साहित्य-जगतमे अवतरित हुए उस समय तक राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मण सिह, स्वामी दयानन्द और पजाबके प श्रद्धाराम फुल्लौरीने गद्यको एक रूप प्रदान कर दिया था, किन्तु वह पूर्णत व्यवस्थित नही था। भारतेन्दुजीने गद्य और पद्य दोनोको सुव्यवस्थित, परिमार्जित, चलता, स्निग्ध और आकर्षक रूप प्रदान किया और साहित्यको भी नए मार्गपर लाकर खडा किया। इसीलिए वे वर्तमान गद्यके जनक माने जाते है।

भारतेन्दुके सहयोगी तथा समकालीन प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', जगमोहन सिह, बालकृष्ण भट्ट आदि लेखकोका एक अच्छा मण्डल तैयार हो गया था जो नये ज्ञान-विज्ञानसे परिचित था, जिसके हृदयमे अपनी भाषाके प्रति प्रेम था और जो ससारकी अन्य समृद्ध भाषाओकी भाँति अपनी भाषाको भी समृद्ध देखना चाहते थे। भाषाका स्वरूप स्थिर हो जानेसे और उपर्युक्त लेखकोकी व्यक्तिगत विभिन्नताजन्य शैलियोके कारण भाषाकी शक्ति और सामर्थ्यमे वृद्धि होनेसे नये विचारोके नये लेखकोको भी यह सुविधा हुई कि वे अपने विचार नागरीमें प्रकट कर सके।

भारतेन्दुका अवसान सम्वत् १९४२ में हुआ। यद्यपि भारतेन्दु और उनके युगके कुछ-शीर्षस्थ लेखक उस समय साधु और व्याकरण सम्मत भाषा लिखते थे। किन्तु उस समयके लेखक किसी विषय-पर सोचते-विचारते तो थे अँग्रेजीमें और लिखते थे अपनी भाषामें। ऐसे लोगोंके लिए हिन्दी शब्दोका अभाव अनिवार्य था। जिसकी पूर्ति वे अँग्रेजी-सस्कृत कोष लेकर किया करते थे क्योकि उस समय अँग्रेजी-हिन्दीका कोई अच्छा कोष नही था। परिणाम यह होता था कि वे व्याकरण, सिद्धोक्ति, वाक्य-विन्यास आदि की कोओ चिन्ता न करके जैसा चाहते वैसा लिखते और फिर भाषा भी वैसी ही रह जाती। यह अवस्था बहुत दिन नही चलने पाई। सम्वत् १९५८ मे प महावीरप्रसाद द्विवेदीने 'सरस्वती' का सम्पादन-भार ग्रहण किया। 'सरस्वती' द्वारा उन्होने प्रकाशित पुस्तकोमें व्याकरण और भाषा सम्बन्धी अशुद्धियाँ दिखा-दिखाकर तथा प्रकाशनार्थ आए हुए लेखकोका सस्कार करके नये लेखकोको बहुत सावधान कर दिया और इस प्रकार हिन्दीपर बहुत बडा उपकार किया। गद्यकी भाषापर द्विवेदीजीका इतना अधिक प्रभाव पडा कि आगे आनेवाले लेखकोने अपनेको बहुत सँभाल लिया और आगे चलकर उन्हींके द्वारा निर्दिष्ट पथपर चलने लगे। द्विवेदीजीके समय तक साहित्यके विभिन्न अगोपर बहुत अधिक सख्यामें पुस्तके प्रकाशित हो चुकी थी। नागरी-गद्य अनेक धाराओमे वह निकला और आगे भी यही क्रम चलता रहा। कोई भी ऐसा ज्ञात विषय

नहीं रहा जिसपर न लिखा गया हो। शुद्ध साहित्य दर्शन इतिहास भूगोल ज्योतिष राजनीति अर्थनीति आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान आदि अनेक विषयोंपर साधारण और उच्च कोटिकी सभी प्रकारकी पुस्तकें लिखी जाने लगीं और आज भी लिखी जा रही हैं। शुद्ध साहित्यिक दृष्टिसे भी निबन्ध समीक्षा उपन्यास कहानियाँ नाटक जीवन चरित्र आदि कितने ही नये रूपोंका समावेश हुआ। इसके अतिरिक्त भ्रमण-सम्बन्धी साहित्य आखेट-सम्बन्धी साहित्य अनुसन्धान-सम्बन्धी साहित्यका भी पर्याप्त परिमाणमें प्रणयन हुआ। पत्र-पत्रिकाओंका आश्रयसे ही बहुत विशाल साहित्य प्रस्तुत हो गया।

आधुनिक गद्य-साहित्यकी परम्पराका प्रवर्तन नाटकोंसे हुआ। अतएव हम सर्वप्रथम नाटकोंपर ही विचार करेंगे।

नागरीका नाट्य-साहित्य

संस्कृत नाटकोंका इतना समृद्ध साहित्य होते हुए भी हिन्दीमें नाटकोंकी रचना की ओरसे कवियण उदासीन से रहे। इसका सबसे प्रधान कारण व्यवस्थित रूपसे रंगमंचका अभाव भी था। मुसलमानोंने इस ओर कोई रुचि नहीं दिखाई। तुर्कों और पठानोंके समयमें स्थापत्य कला की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया। मुगलोंने अवश्य काव्य संगीत चित्रकला आदि की ओर भी ध्यान दिया परन्तु रंगमंचकी उन्होंने उपेक्षा की। इसीलिए न रंगमंचका विकास हो सका न नाटक लिखे जा सके नाटकोंके नामपर जो कुछ लिखा गया वह सम्वादमात्र था। उनमें अभिनेयताका गुण न होनेसे उन्हें नाटक कहा ही नहीं जा सकता। यद्यपि भारतेन्दुजीने महाराज विश्वनाथसिंहके आनन्द रघुनन्दन' नाटकको हिन्दीका सर्वप्रथम नाटक ठहराया है किन्तु वास्तविक प्रथम नाटककार स्वयं भारतेन्दु ही हैं। भारतेन्दुकी देखा-देखी उनकी मित्र मण्डलीने भी कई नाटकोंकी रचना की। मौलिक रचनाओंके अतिरिक्त संस्कृत, बंगला अंग्रेजी तथा दो-चार अन्य भाषाओंके नाटकोंके अनुवाद भी पर्याप्त संख्यामें प्रकाशित हुए।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका जन्म सम्वत् १९०७ में काशीमें हुआ। इनके पिता गोपालचन्द्र उपनाम 'गिरधरदास' भी बहुत अच्छे कवि हो गए हैं। कुल ३५ वर्षकी आयु भोगकर भारतेन्दुजी सम्वत् १९४२ में परलोकवासी हुए। इस ३५ वर्षकी आयुमें ही भारतेन्दु जी जो काम कर गए वह पचासों वर्षमें भी किसीके किये नहीं हो सकता था। १८ वर्षकी अवस्थामें इन्होंने अपना सबसे पहला नाटक 'विद्या सुन्दर' प्रकाशित किया जो बंगलाके एक नाटकका अनुवाद था। भारतेन्दुने कुल सत्रह नाटक प्रस्तुत किए, जिनमें ८ मौलिक और ९ अनुवाद हैं। मौलिक नाटक हैं —

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति चन्द्रावली विषस्य विषमौषधम् भारत-दुर्दशा नीलदेवी अन्धेर नगरी प्रेम-जोगिनी सती प्रताप (अपूर्ण)।

अनूदित नाटक ये हैं —

रत्नावली मुद्राराक्षस पाखण्ड-विडम्बन धनञ्जय-विजय कर्पूर मंजरी (संस्कृतसे) विद्यासुन्दर, सत्य हरिश्चन्द्र भारत जननी (बंगलासे) दुर्लभबन्धु (अंग्रेजी) से।

भारतेन्दुके पूर्वतक हिन्दीमें नाटच शास्त्रपर कोई भी सामग्री न थी। इन्होंने 'नाटक' नामका एक निबन्ध लिखकर इस अभावकी पूर्ति तो कर दी और साथ ही माथ आगेके लेखकोंके लिए मार्ग भी खोल दिया।

भारतेन्दुके नाटकोंमें मुख्य बात यह है कि इन्होंने जीवनके अनेक क्षेत्रोंसे सामग्री ली है। देश-प्रेम, समाजकी वास्तविक स्थिति, देशी नरेशोंके दरबारोंमें चलनेवाले षड्यन्त्रमय-जीवन, हिन्दू-नारीके शौर्य और तेजकी कहानी, प्रेमके आदर्श—ये सभी इनके नाटकोंमें आए हैं। इस प्रकार भारतेन्दुजीने अपने समयमें व्याप्त सभी परिस्थितियोंका चित्रण करके अपने नाटकोंका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक रखा है।

भारतेन्दुकी शैली

भारतेन्दुका जीवन ही समन्वयवादी था। न तो वे कोरे आदर्शवादी थे, न तथ्यवादी। इनकी यही प्रवृत्ति इनकी रचनाओंमें भी प्रकट होती है। ये प्राचीन काव्यके भी प्रेमी थे, किन्तु नये काव्यकी परम्पराके जनक। उसी प्रकार गद्य शैलीमें भी भारतेन्दुने मध्यम मार्ग ग्रहण किया। यही अवस्था नाटच-रचना की भी हुई। न तो उन्होंने भारतकी शास्त्रीय प्रणालीसे अपनेको पूर्णत आबद्ध किया और न बंगला-वालोंके समान उसको सर्वथा त्यागकर अँग्रेजी ढग अपनाया। काल एव परिस्थितिका विचार करके जो कुछ उपयुक्त और अच्छा लगा, उसे ही इन्होंने भी ग्रहण किया। समन्वयवादीकी इस भावनाका ही यह परिणाम हुआ कि इन्होंने दो प्रकारकी भाषा-शैलियोंका प्रयोग किया—१ भावावेशकी शैली जिसमें बोलचालकी सरल भाषामें छोटे-छोटे वाक्योंका प्रयोग होता है, और २ स्थायी विचारोंकी व्यञ्जनाकरनेवाली तथ्यनिरूपण शैली, जिसमें अपने समयके अन्य लेखकोंकी अपेक्षा भारतेन्दुकी भाषा अधिक साधु और परिष्कृत होती थी।

दोनोंका उदाहरण लीजिए —

१—नाम बिके लोक झूठा कहे, अपने मारे मारे फिरें वर वाह रे शुद्ध बेहयाई—पूरी निर्लज्जता! लाजको जूतो मारके पीटके निकाल दिया है।

२—जब मुझे अँग्रेजी रमणी लोग मद-सिंचित केशराशि, कृत्रिम कुन्तल जूट, मिथ्यारत्नाभरण, विविधवर्ण वसनसे भूषित, क्षीणकटि देश, कसे, इधरसे उधर फरफर कलकी पुतलीकी भाँति फिरती हुई दिखाई पडती हैं, तब इस देशकी सीधी-सादी स्त्रियोंकी हीन अवस्था मुझको स्मरण आती है और यही बात मेरे दुःखका कारण होती है।

भारतेन्दुके नाटक अधिकतर अभिनेय हैं ओर खेले भी जा चुके हैं।

भारतेन्दु युगके अन्य नाटककार

भारतेन्दु युगके प्रमुख लेखकोंने भी उनकी देखा-देखी अन्य प्रकारकी रचनाओंके अतिरिक्त नाटक भी लिखे। प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', श्रीनिवासदास, तोताराम, केशवराम भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, काशीनाथ खत्री, राधाकृष्णदास आदिने कुछ नाटक लिखे। किन्तु भारतेन्दुके पीछे बहुत समय तक नाम लेने योग्य मौलिक नाटक कोई-कोई ही दिखाई पडे। हाँ, बगला,

सस्कृत अँग्रेजीसे अनुवादकोका काम बराबर चलता रहा। किशोरीलाल गोस्वामी आदिके दो-चार मौलिक नाटक भी निकले परन्तु इन सब रचनाओंको नाटक नहीं कहा जा सकता।

योरोपीय पद्धतिका समावेश

विक्रमकी बीसवी शताब्दीके अन्तिम चरणमें जो बहुतसे नाटक रचे गए उनमें बहुत कुछ नया विदेशी रूप प्रकट हुआ किन्तु उचित रगमचके अभावमें नाटक भी प्रतिष्ठा न पा सके। इसी बीच फारसी रगमचके व्यापक प्रचारके कारण उर्दू शैलीमें शेक्सपियरके नाटकोने हिन्दीमें साहित्यिक नाटकोके प्रणयनको बड़ी गहरी क्षति पहुँचाई। उस समय काशीके आगा हश्र काश्मीरी दिल्लीके नारायणप्रसाद बेताब और बरेलीके राधेश्याम कथावाचक न उत्पन्न हो गए होते तो जनरुचि और भी विकृत हो जाती। इन लोगोने पौराणिक कथाओका आश्रय लिया जिससे रगमचमें भारतीयताका समावेश हो चला। बँगलाके अनेक नाटकोका अनुवाद भी हुआ जिनका एक प्रभाव तो यह हुआ कि नाटकोमें योरोपकी चरित्र-चित्रण-पद्धतिका समावेश होने लगा। और दूसरा लाभ यह हुआ कि हिन्दीके नाटकोसे धीरवाणी उठ गई।

चार प्रवृत्तियाँ

इस अवधिमें चार प्रकारकी प्रवृत्तियाँ नाटक-रचनामें काम कर रही थी —

(१) सस्कृत नाट्य-शास्त्रके नियमोंके अनुसार तथा भारतेन्दु रचना-पद्धतिसे प्रभावित शैलीका प्रयोग

(२) दूसरी भाषाओंका अनुवाद

(३) बगला और अँग्रेजी नाटकोंके ढगपर मौलिक नाटकोकी रचना और

(४) भारतीय गाथाओंकी फारसी रंगशालाके लिए उर्दू नाटकोके अनुसार ढालना।

इनमेंसे पहली प्रवृत्ति तो राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' के 'चन्द्रकला भानुकुमार' तथा मैथिलीशरण गुप्तके चन्द्रहास नाटकके पश्चात् समाप्त हो गई। दूसरी प्रवृत्ति भी बहुत नही चल सकी। क्योंकि विदेशी भाषाओंके अच्छे नाटकोके एक तो अनुवाद हो चुके थे दूसरे उनके नाटकोंके विषय और उनका भाषा-विधान हिन्दीके साथ मेल नही खाता था। तीसरी प्रवृत्ति अवश्य ही श्लाघ्य है क्योंकि चाहे अनुकरणके रूपमें ही हुई हो किन्तु हिन्दीमें कुछ मौलिक नाटकोकी रचना अवश्य हुई। इसमें सबसे अधिक यशके भागी जयशंकर प्रसाद हुए जिन्होंने कुल मिलाकर ११ नाटक रचे जिनमें आठ ऐतिहासिक तीन पौराणिक और दो भावात्मक हैं।

अपने विशाख नाटककी भूमिकामें प्रसादजी लिखते हैं— मेरी इच्छा भारतीय इतिहासके अप्रकाशित अशमेंसे उन प्रकाण्ड घटनाओंका दिग्दर्शन करानेकी है जिन्होने कि हमारी वर्तमान स्थितिको बनानेका बहुत कुछ प्रयत्न किया और जिनपर हमारे वर्तमान साहित्यकी दृष्टि कम पडी है।" यह उद्देश्य उनके मस्तिष्कमें इस दृढतासे पैठ गया कि इसकी रक्षाके प्रयत्नमें प्रसादजी सवाद भाषा चरित्र-चित्रण दृश्य-विधान आदि सब नाटकीय तत्व भूल गए और नाटक रचते-रचते वस्तुत उन्होंने नाटकीय उपन्यासात्मक गद्य-काव्य लिख डाले। यही कारण है कि उनके अधिकाश नाटक रंगमचके उपयुक्त न हो

जयशंकर प्रसाद

सके। इधर काशीमे अभिनव रगशाला स्थापित करके अभिनव भरतने अजन्ता, अगुलिमाल, शबरी, रजिया, अनारकली, वसन्त, मेरी माँ, मगल प्रभात, प्रसाद, बेचारा केशव, देवता, सेनापति पुष्यमित्र, अलका, विक्रमादित्य, अपराधी, जय सोमनाथ, पारस, सिद्धार्थ, भगवान बुद्ध, मायावी, पापकी छाया नामक नाटक लिखे जिनका अभिनय काशी अभिनव रगशालाके मचपर तथा देशके अन्य भागोमें नए प्रकारके रगमचोपर सफलता-पूर्वक किया जा चुका है।

चौथी प्रवृत्तिके अनुसार जिन नाटकोकी रचना हुई उन्हें साहित्यिक नाटक नही कहा जा सकता, अतएव उनकी चर्चा यहाँ अनावश्यक है।

इधर पश्चिमी देशोकी देखादेखी समस्या, नाटक, एकाकी नाटक, रेडियो नाटक आदि भी हमारे यहाँ पर्याप्त सख्यामे रचे जा रहे है। एकाकी नाटक तो आजकल बहुतसे लिखे जा रहे है। किन्तु वे पत्र-पत्रिकाओमें प्रकाशनार्थ ही लिखे जाते है। लक्ष्मीनारायण मिश्रने सामाजिक समस्याओसे सम्बद्ध विषयो स्ट्रिंडबर्ग तथा इब्सनकी शैली पर अनेक समस्या नाटक लिखे किन्तु रगमचकी दृष्टिसे वे सफल नही हो पाए। अन्य नाटककारोमें गोविन्दवल्लभ पन्त, हरिकृष्ण प्रेमी मुख्य है।

जयशंकर प्रसाद

प्रसादजी काशीके बडे सम्पन्न व्यवसायी थे। सम्वत् १९४६ में काशीमे उनका जन्म हुआ और सम्वत् १९९४ में वही उनका निधन भी हुआ। प्रसादजी अध्ययनशील व्यक्ति थे और व्यावसायिक कार्योंमें लगे रहनेपर भी इन्होने घरपर ही पर्याप्त अध्ययन किया था। प्रसादजीकी ख्याति कवि, कहानीकार और नाटककार—तीनो रूपोमे है किन्तु प्रसादजी प्रधानत कवि थे, अत इनके नाटक भी नाटक न होकर काव्य ही हो गए है। प्रसादजीने तेरह नाटक लिखे —सज्जन, करुणालय, प्रायश्चित्त, राज्यश्री, विशाख, अजात-शत्रु, जनमेजयका नागयज्ञ, कामना, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, एक घूंट और ध्रुवस्वामिनी। 'यशोधर्मदेव' नाटक भी इन्होने लिखा था किन्तु उसे नष्ट कर दिया। राज्यश्री प्रसादजीका पहला नाटक है जिसमे उन्होने सम्राट् हर्षवर्धनकी बहन राज्यश्रीके जीवन-घटनाओंके एक अशका चित्रण किया है। नाटकका कथानक विश्रृखल-सा है तथा अजातशत्रुका चरित्रचित्रण भी ठीक नही हो पाया है। स्कन्दगुप्तको प्रसादजीका सर्वोत्तम नाटक माना जाता है। इसमें स्कन्दगुप्तके चरित्रका विकास उत्तम ढगसे दिखाया गया है। नायकमें जो गुण होने चाहिए उन सबका समावेश स्कन्दगुप्तमें किया गया है। चन्द्रगुप्तकी कथावस्तु अत्यन्त जटिल कर दी गई है। कही-कही तो ऐसे दृश्य उपस्थित किए गए है जो केवल समय काटनेके लिए ही रखे गए प्रतीत होते है किन्तु इस नाटकमें चाणक्य और कल्याणी ये दो पात्र अत्यन्त सजीव और उदात्त है।

प्रसादजीको ऐतिहासिक नाटकोमें ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमिका स्वरूप उपस्थित करनेमें अच्छी सफलता मिली है। उन्होने अपने नाटकोमें चरित्र चित्रण किसी निश्चित आदर्शको सामने रखकर नही किया वरन् प्रत्येक पात्रकी परिस्थिति, उसकी अवस्थाएँ उसकी विचार-सरणि और उसके सगीत आदिका ध्यान करके उसका चरित्र चित्रित किया गया है। साधारणतया उनके नाटकोमें घटनाओ और पात्रोके चरित्र-विकासकी श्रृखला नही टूटने पाई। किन्तु प्रसादजीने जो कथा ली उसे नाटकका रूप देनेमें अधिकाशत

उल्लास परिणाम विस्तार प्रयोग मात्रा तथा दृश्य विधानमें उचित अनुपातका ध्यान नहीं रखा। इसीसे वे रंगमंचपर सफल नाटक न रह गये।

प्रसादजीके अतिरिक्त ऐतिहासिक नाटक लिखनेवालोंमें हरिकृष्ण प्रेमीका नाम लिया जाता है। इन्होंने मुसलिम शासनकालकी घटनाएँ ली हैं। 'रक्षाबन्धन' इनका प्रसिद्ध नाटक है। इन दोनोंके नाटकोंमें सबसे बड़ा दोष यही है कि प्राचीन उनमें आधुनिक भावनाओंका रंग चढ़ाकर उपस्थित किया है।

गोविन्दवल्लभ पन्तके भी दो नाटक 'वरमाला' और 'राजमुकुट' प्रसिद्ध हुए हैं। उदयशंकर भट्टने भी 'सिन्ध-पतन' आदि १२ नाटक लिखे हैं जिनके कथानकका आधार पौराणिक या ऐतिहासिक घटनाएँ हैं। इनमें 'मत्स्यगंधा' अधिक आकर्षक है। लक्ष्मीनारायण मिश्रने इब्सन और शॉके अनुकरणपर अनेक समस्या नाटकोंकी रचना की— 'मुक्तिका रहस्य', 'सिन्दूरकी होली', 'राक्षसका मन्दिर' आदि किन्तु उनमें न समस्या स्पष्ट हुई न उसका समाधान ही।

आधुनिक हिन्दी नाटक और नाटककार

नागरी (हिन्दी) के आधुनिक नाटककारका प्रादुर्भाव अंग्रेजी विद्यालयोंके पठित वर्गोंसे हुआ जिनमें भारतीय अध्ययन और संस्कारका अभाव था अतः भारतीय और अमरीकी प्रभावोंके लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। पिछले दो भीषण युद्धों तथा विश्वमें व्याप्त बेकारी, दरिद्रता, निराशा और कुण्ठाने हमारे नाटककारोंको भी प्रभावित किया। योरोपमें इस भावनाके कारण समस्त प्राचीन परम्पराओं नियमों सिद्धान्तों और व्यवहारोंके प्रति घृणा और अनास्था उत्पन्न होनेके कारण एक विशेष प्रकारकी व्यक्तिवादिता समुद्भूत हो चली थी। जिस प्रकार पहलेके साहित्यकार काव्य-शास्त्र तथा कला विधानों और विद्याओंकी सम्यक् करके उत्पत्ति ज्ञान-सम्पन्न रचना करते थे वह सारी प्रवृत्ति ही नष्ट हो गई। एक छलांगमें एक दिनमें साहित्य महासागर पार करके साहित्य महारथी होनेकी लालसा उद्दीप्त हो उठी। अपने पल्ले कुछ न होनेके कारण स्वभावतः इन लोगोंने साहित्यक रूढ़ियोंके प्रति विद्रोह किया—क्योंकि न उन्हें उन साहित्यिक परम्पराओंका ज्ञान था न अध्ययन करनेकी प्रवृत्ति। इसीसे प्राचीन परम्पराके समर्थ पठित उदात्त साहित्यकारोंसे कोई सम्मान न पाकर ये लोग अपनी अलग-अलग बैठक और मण्डली बनाकर विदेशी वादोंके अनेक नाम ग्रहण करके अपनी अपनी ढफली और अपना अपना राग अलापने लगे। थोथा चना बाजा घना बजने लगा अध जल गगरी छलकती चलन लगी।

योरोपमें इस व्यक्तिवादी भावनाके कारण समाजवादी यथार्थवाद (सोशल रीअलिज्म) अभिव्यंजनावाद (एक्सप्रेशनिज्म) प्रतीकवाद (सिम्बोलिज्म) प्रकृतिवाद (नेचुरलिज्म) मनोविश्लेषणवाद (साइकोएनेलिसिज्म) अतियथार्थवाद (सररीअलिज्म) आदि अनेक वादोंका प्रचलन हुआ। जोला हाउप्टमान गोर्की और चेखव आदि नाटककारोंने प्रकृतिवादका आश्रय लेकर मानव-जीवनके अत्यन्त कुत्सित बीभत्स और कुरूप पक्षोंका यथार्थवादके नामसे चित्रण किया। अनेक रूपोंमें पुरुष और स्त्रीके वासनात्मक सम्बन्धका चित्रण किया गया। अचेतन मनका रहस्य खोलनेके नामपर ऐसी-ऐसी बेहूदी कल्पनाएँ प्रस्तुत की गईं जिनका कोई तुक नहीं था। अभिव्यञ्जनावादी नाटकोंमें अचेतन और अर्द्ध चेतन मानसिक संघर्षोंका प्रदर्शन कराया गया। अस्तित्ववाद (एक्जिस्टेंशलिज्म) से प्रभावित नाटकोंमें प्रतीकोंके द्वारा कष्ट,

व्यथा, अनैतिकता आदिका उद्घाटन किया गया और रगमचपर सडी लाशोकी दुर्गन्ध और मक्खियोकी भिनभिनाहट तथा स्त्रियोका करुण क्रन्दन सुनाई पडने लगा क्योकि सार्त्रने इसी प्रकारके चित्रणको अस्तित्ववादी कला माना है। तथ्यातिरेकवादियोने स्वप्न, मन और अचेतन मनकी सब वासनाओ, निराशाओ और कुठाओको व्यक्त करना ही अपना सिद्धान्त स्थिर किया और इससे प्रभावित हिन्दी नाटककारोने अपने नाटकोमें इनका समावेश प्रारम्भ कर दिया और यह भी नही सोचा कि हमारे देशके समाजकी रीति-नीति, आचार-व्यवहार और भाव-सस्कारसे इनका कोई सम्बन्ध है भी या नही।

हमारे देशके नाटककारोपर जहाँ एक ओर अपने स्वतन्त्रता-आन्दोलन, देश-विभाजन, विज्ञानके आविष्कार, पूँजीवाद और जमीदारी प्रथाके प्रति विद्रोह तथा स्वतन्त्रता प्राप्तिके पश्चात् व्याप्त होनेवाले भयकर भ्रष्टाचारकी प्रतिक्रिया ही हमारे साहित्यमें हुई, वही दूसरी ओर विदेशीवादोका भूत भी उनपर भली भाँति सवार हुआ। परिणामस्वरूप वर्तमान नाटकोमें वर्तमान भारतकी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विषमताओंके साथ-साथ योरोपीयवाद भी अपने सारे दोषोंके साथ विद्यमान है। लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, पृथ्वीनाथ शर्मा, और उपेन्द्रनाथ अश्कपर इब्सन और शॉके विचार-प्रधान नाटकोका प्रभाव पडा। सुमित्रानन्दन पन्तके प्रतीकवादी नाटकोपर यीट्स, मैटरलिंक आदिके प्रतीक-वादका प्रभाव पडा। जगदीशचन्द्र माथुर, धर्मवीर भारती और उपेन्द्रनाथ अश्ककी रचनाओपर स्ट्रिण्डवर्ग, पिरैंडेलो और ओनिलका प्रभाव पडा। कुछ लेखकोने अपने देशकी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओपर विदेशी नाटककारोकी नवीन शैली और कौशलोंके साथ व्यग्य और विस्तृत रग विधानके साथ नाटक लिखे है उनमें गोविन्ददास, उदयशकर भट्ट, वृन्दावनलाल वर्मा, पृथ्वीनाथ शर्मा, अश्क, जगदीश-चन्द्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मीनारायण लाल, रामनरेश त्रिपाठी, मोहनलाल महतो वियोगी, रामवृक्ष बेनीपुरी, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, सुधीन्द्र और वीरदेव वीरके नाम लिए जा सकते है। इनमें भी सेठ गोविन्ददास, वृन्दावनलाल वर्मा, पृथ्वीनाथ शर्मा, भगवतीचरण वर्मा, रामनरेश त्रिपाठी, रामवृक्ष बेनीपुरी, नरेश मेहता, सुधीन्द्र और वीर देव वीरके नाटकोमें नाटकीयता कम है, विचार अधिक हैं और ऐसा जान पडता है कि इन्होने किन्ही विशेष सिद्धान्तो या भावोका प्रचार करनेके लिए रगमचको आधार बनाया है।

मनोविश्लेषणके अनुसार विकृत प्रेमका चित्रण भी लक्ष्मीनारायण मिश्रके 'सिन्दूरकी होली' में, गोविन्ददासके 'पतित सुमन' मे और उदयशकर भट्टके 'नया समाज' में प्राप्त होता है। चेखव, स्ट्रिण्ड-वर्ग आदिसे प्रभावित उपेन्द्रनाथ अश्कने समस्याओका भीतरी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करनेका असफल प्रयत्न अपने 'कैद और उडान' मे किया है। स्ट्रिण्ड वर्गके 'दि अण्डर स्टॉर्म' की छायापर अश्कने 'छठा बेटा' नाटक और सामाजिक समस्याके रूपमें 'अलग-अलग रस्ते' नामक सामाजिक समस्या नाटक लिखा है जिसकी कथावस्तु बडी छिछली, सस्ती और पिटी-पिटाई है। इनके 'अजो दीदी' पर भी योरोपीय नाटकोका प्रभाव स्पष्ट है जिनमे साकेतिक प्रतीकोंके द्वारा अन्तश्चेतनाकी गाँठ खोलनेका प्रयत्न किया गया है।

जगदीशचन्द्र माथुरने रग-कौशल, विषय तथा सम्वाद—सभी दृष्टियोंसे सजाकर 'कुँवरसिंह', 'शारदीया', 'बन्दी' और 'कोणार्क' नामक नाटक लिखे है जिनमें 'कोणार्क' की बडी प्रतिष्ठा हुई है। डा

लक्ष्मीनारायण लालने 'अन्धा कुआँ' नाटकमें स्वाभाविकताके साथ अत्यन्त सजीव सम्वादोंसे युक्त समाजकी यथार्थवादी विवेचना करनेका स्तुत्य प्रयास किया है। किन्तु सम्वाद कहीं-कहीं आवश्यकतासे अधिक लम्बे हो गए हैं जिससे प्रभाव शिथिल पड़ गया है। भगवतीचरण वर्माका 'रुपया तुम्हें खा गया' नाटक बहुत साधारण कथानकके आधारपर अत्यन्त सामान्य ढंगसे लिखा गया है और इसीलिए वह अधिक प्रभावशाली नहीं बन पाया। मोहनलाल महतो वियोगीने 'अफजल वध' (ऐतिहासिक) 'काली यात्रा' (राजनीतिक) 'कसाई' और 'ये दिन' नामक चार नाटक लिखे हैं। प्रतीकवादी शैलीमें समस्यात्मक नाटक 'कसाई' बहुत प्रभावशाली ढंगसे लिखा गया है। किन्तु इसमें भी सम्वाद बहुत लम्बे हो गए हैं और ठूँस-ठूँसकर ज्ञान भरनेका अधिक प्रयास किया गया है। रामवृक्ष बेनीपुरीने 'तथागत' 'शकुन्तला' 'सीताकी माँ' 'अम्बपाली' तथा 'अमर ज्योति' नामक पौराणिक और ऐतिहासिक नाटक तथा 'खूनकी माँग' 'गाँवके देवता' 'विजेता' और 'नया समाज' नामक सामाजिक नाटक लिखे हैं जिनमें प्राचीन परम्पराओं और सिद्धान्तोंपर कटु कठोर व्यंग्य किये गए हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी नाटककारकी अपेक्षा कवि अधिक थे। उन्होंने 'जयन्त' 'प्रेम लोक' 'वफाती चाचा' 'अजनबी' तथा 'पैसा परमेश्वर' नामक नाटक लिखे किन्तु ये सभी नाटक नाट्य-कलाकी दृष्टिसे बहुत निम्न कोटिके हैं। विनोद रस्तोगीने अपने 'आजादीके बाद' नाटकमें स्वतन्त्रता प्राप्तिके पश्चात् देशमें व्याप्त भ्रष्टाचारका अत्यन्त व्यंग्यपूर्ण शैलीमें विवेचन किया है। उनका दूसरा नाटक 'सुबहके घण्टे' प्रतीक शैलीमें लिखा हुआ अत्यन्त असफल नाटक है क्योंकि सम्वाद विषय-निरूपण और नाटक प्रस्तुत करनेके कौशल सभी दृष्टियोंसे अत्यन्त शिथिल है।

नित्यानन्द हीरानन्द वात्स्यायन ने गाल्सवर्दीके 'स्ट्राइक्स' से प्रभावित होकर 'मुकुट' नामक एक नाटक लिखा है जिसमें नाटकीयता कम है प्रचारवाद अधिक है। नाटकीय दृष्टिसे कथानकमें जो प्रौढ़ता होनी चाहिए, उसका भी इसमें पूर्ण अभाव है। अन्य आधुनिक नाटककारोंमें राजनैतिक समस्यापर चतुरसेन शास्त्रीका 'धर्म-ध्वनि' राधा राधिकारमण सिंहका 'अपना पराया' और धर्मकी धुरी' वीरेन्द्र वीरके 'भूख और व्याय' पं० गौरीशंकर मिश्रके 'ठोस आजादी किसे' 'हिन्दू राज्य' 'पाकिस्तानी स्वप्न' 'बनाम हिन्दुस्तान पाकिस्तान साथ रहेंगे' 'आजाद हिन्दुस्तानसे नाता के बन' और 'घायरी बापू' शीर्षक प्रचारात्मक नाटक लिखे हैं। इनमें भी नाटकीयताका व्यापक अभाव है। विष्णु प्रभाकरने प्राचीन और नवीनका संघर्ष दिखलाया है, पं० रघुलाल व्यासने 'करुणा'में सामाजिक सौख्य की विधि बताई है और श्री रामनारायण शास्त्रीने 'देवता' में मानव-जीवनकी महत्ता प्रदर्शित की है।

गाँधीवादी विचार-धारा और गाँधीजीके जीवनसे सम्बद्ध अनेक नाटक लिखे गए हैं जिनमें मालतीन चतुर्वेदीका 'तीन दृश्य' रामचरण महेन्द्रका 'उनके बोमायालीमें प्रवास' देवीलाल सामरका 'बापू' प्रभाकर माचवेका 'गाँधीके रास्तेपर' और 'सेवाग्रामका सन्त' विष्णु प्रभाकरका 'स्वाधीनता संग्राम' बीन दयाल 'दिनेश' का 'सत्याग्रह' डा० लक्ष्मण सिंहका 'असहयोग' सुधीन्द्रका 'ज्वाला और ज्योति' मधुकर खरेका 'नव-निर्माण' विराजका 'तिरंगा झण्डा' और सीमान्तका 'सन्तरी' राजेन्द्र सिंह सेनाका 'नवयुग का आरम्भ' जगनाथ नलिनका 'डेमोक्रेसी' उदयशंकर भट्टका 'गाँधीजीका राम राज्य' तथा 'पुरुषा चलो रे' गोविन्ददासका 'मुझे सन्तरें' 'कृषि-यज्ञ' तथा 'भूदानी यज्ञ' रामचन्द्र तिवारीका 'स्वागत' तथा

राष्ट्र निर्माण' और 'शक्ति', विष्णु प्रभाकरका 'शक्तिका स्रोत', हरिशंकर शर्माका 'बापूके स्वर्गमें स्वागत समारोह', यज्ञदत्त शर्माका 'विश्वशान्तिके पथपर', रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। इन सबमें भी नाटकीयता कम, प्रचारवाद अधिक, लम्बे सम्वाद और अभिनेयता शिथिल है। गोपाल शर्माने 'सौन्दर्य प्रतियोगिता' नामक एक नाटकमें अत्यन्त शिथिल कथावस्तुके सहारे मध्यम-वर्गीय परिवारका चित्रण किया है।

इससे स्पष्ट होगा कि वर्तमान नाटकोंमें ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकोंकी बड़ी कमी है, क्योंकि वैसे नाटकोंके लिए जितना अनुसंधान, सांस्कृतिक आत्मीयता, अध्ययन, मनन और संविधान-रचनाका कौशल अपेक्षित है, उसके अभाव और रंगमंचका व्यावहारिक ज्ञान न होनेके कारण अच्छे ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक नहीं लिखे गए। अत्यन्त अप्रौढ अभिनेय ऐतिहासिक नाटकोंमें आचार्य सीताराम चतुर्वेदीके 'सेनापति पुष्यमित्र', 'गौतम बुद्ध', 'रजिया', 'अनारकली', 'मीराबाई', 'जय सोमनाथ' और 'विक्रमादित्य' ने रंगमंचपर बड़ी ख्याति पाई। इसी प्रकार आचार्य सीताराम चतुर्वेदीके पौराणिक नाटक 'शबरी' की तो इतनी धूम रही कि साहित्य समारोहों और विद्यालयोंके अनेक उत्सवोंपर वह अनेक बार अभिनीत किया जा चुका है। इस सफलताका कारण यह है कि आचार्य चतुर्वेदी स्वयं कुशल अभिनेता, नाट्य-शास्त्रके आचार्य और इतिहासके पण्डित हैं।

आजकलके अन्य नाटक अधिकांश सस्ती सामाजिक समस्याओंपर वह भी अधिकांश नारीके चारों ओर या राजनैतिक पुटके साथ प्रस्तुत किए गए हैं जिनमें गीत और स्वगत-भाषण समाप्त कर दिए गए। इन सभी नवीन नाटकोंपर योरोपीय और अमरीकी नाटककारों और विचारकोंका प्रभाव इतना अधिक पड़ा है कि वाद उभर आया है, नाटकीयता दब गई है।

वर्तमान एकांकी नाटक

वर्तमान युगमें एकांकी नाटकका बड़े वेगसे पर्याप्त विकास हुआ है क्योंकि इसमें बहुत थोड़े समयमें एक घटना भाव या विचार या परिणाम के आधारपर मानव जीवनके किसी पक्षकी एक झाँकी प्रस्तुत कर दी जाती है, जिसका उद्देश्य मनोरंजनके साथ-साथ सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, व्यक्तिगत या मनोवैज्ञानिक समस्याओंका निरूपण, विश्लेषण और समाधान होता है। इन नाटकोंका प्रयोग विद्यालयोंके उत्सवोंपर अधिक होता है क्योंकि छात्रोंके कई मण्डल थोड़े पात्रोंको अल्प समयमें शिक्षित करके छोटा-सा एकांकी नाटक खेलकर अतिथियोंका मनोरंजन मात्र करते हैं। अतः ये सभी नाटक विनोदात्मक अधिक होते हैं। एक दूसरे प्रकारके गम्भीर नाटक वे हैं जो खेले नहीं जाते, छापे जाते हैं, अभिनीत नहीं किए जाते, पढ़ाए जाते हैं और फिर भी विचित्र बात यह है कि वे नाटक कहलाते हैं।

यदि एकांकीका अर्थ केवल एक अंकका नाटक हो तो उसका प्रारम्भ भारतमें बहुत पहले अर्थात् विक्रम शताब्दीसे पूर्व ही भासके समय हो गया था। नागरी (हिन्दी) में भारतेन्दुका 'भारत-जननी', 'धनंजय विजय' और 'पाखण्ड विडम्बन' के अनूदित एकांकी और 'प्रेम-योगिनी', 'भारत-दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'अन्धेर-नगरी', 'विषस्य विषमौषधम्' को मौलिक एकांकी कह सकते हैं। भारतेन्दुके युगमें उनके सहयोगी बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र, श्रीनिवास दास, किशोरीलाल गोस्वामी, बदरीनारायण चौधरी, देवकीनन्दन त्रिपाठी आदि लेखकोंने भारतेन्दु-शैलीके अनुसार एकांकी

नाटकोंकी रचना की थी। किन्तु ये रचनाएँ उस प्रकार की नहीं थी जैसे आजकलके एकांकी नाटक होते हैं। रूपकोंके अठारह भेदोंमेंसे गोष्ठी नाट्य-रासक उल्लाप्य काव्यरासक प्रेक्षण श्रीगदित विलासिका दुर्मल्लिका और भाणका तथा रूपकोंमें व्यायोग अंक और वीथी—सब एक ही अंकके होते थे। किन्तु इनका भी अनुकरण भारतेन्दु कालीन नाटककारोंने नहीं किया। अधिक-से-अधिक 'धनञ्जय-विजय' को व्यायोग कहा जा सकता है। प्रसादके 'एक घूँट' को भी कुछ लोगोंने वर्तमान शैलीका प्रथम व्यवस्थित एकांकी नाटक माना है किन्तु उसमें नाटकीयता ही नहीं है उसे तो पद्य काव्य समझना चाहिए।

वर्तमान शैलीके हिन्दीके एकांकी नाटककारोंमें रामकुमार वर्मा आचार्य सीताराम चतुर्वेदी हरिकृष्ण प्रेमी गोविन्दवल्लभ पन्त जैनेन्द्रकुमार, चतुरसेन शास्त्री सद्गुरुशरण अवस्थी रामनरेश त्रिपाठी गोविन्ददास लक्ष्मीदास गणेश प्रसाद उपेन्द्रनाथ अश्क भुवनेश्वर, विष्णु प्रभाकर, जगदीशचन्द्र माथुर, लक्ष्मीनारायण लाल देवेन्द्रनाथ शर्मा भगवतीचरण शर्मा गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती सत्यपाल जैनेन्द्र और वृन्दावनलाल वर्माका नाम लिया जा सकता है किन्तु इनमेंसे बहुत कम लोग ऐसे हैं जिनके एकांकी रंगमंचपर खेले गए हैं या खेले जा सकने योग्य हैं। इन एकांकी नाटककारोंमें आचार्य सीताराम चतुर्वेदी हरिकृष्ण प्रेमी गोविन्दवल्लभ पन्त जैनेन्द्रकुमार, चतुरसेन शास्त्री वृन्दावनलाल वर्मा सत्येन्द्र सद्गुरुशरण अवस्थी और रामनरेश त्रिपाठीपर योरोपीय नाटककारों और लेखकोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। किन्तु भुवनेश्वरप्रसाद गणेशप्रसाद द्विवेदी और धर्म प्रकाश आनन्द तो पूर्णतः कौशल और विचार दोनों दृष्टियोंसे पाश्चात्य शैलीसे प्रभावित हैं।

रामकुमार वर्मा गोविन्ददास उपेन्द्रनाथ अश्क उदयशंकर भट्ट विष्णु प्रभाकर तथा भगवती चरण वर्मा उन लोगोंमें हैं जिन्होंने पाश्चात्य कौशल लेकर भारतीय सामग्रीको एकांकी रूपकोंमें प्रस्तुत किया है।

अभिनेय नाटक

हिन्दी साहित्यमें अभिनेय नाटक लिखने और रंगमंच स्थापित करने नाटकोंको खेल कर प्रचारित करानेकी यदि व्यवस्थित योजना किसीने की तो वह अभिनव भरत (आचार्य सीताराम चतुर्वेदी) ने। उन्होंने काशीमें अभिनव रंगशाला की स्थापना करके काशी बम्बई लखनऊ आदि स्थानोंमें विभिन्न प्रकारकी शैलियोंके रंगमंचपर विभिन्न शैलीके नाटकोंकी रचना करके उनका अभिनय कराया। उनके नाटकोंमें ऐतिहासिक पौराणिक राजनैतिक सामाजिक नृत्य-नाट्य गीति-नाट्य आदि सभी प्रकारके नाटक हैं जो अत्यन्त सफलतापूर्वक भारतके प्रसिद्ध नगरोंमें अभिनीत किये जा चुके हैं जिनमें स्वतः लेखकने या तो भूमिकाएँ ग्रहण कीं या निर्देशन किया है।

यह भली प्रकार स्मरण रखना चाहिए कि नाटक दृश्य काव्य है। वह खेले जानेके लिए लिखा जाता है पढ़े या पढ़ाए जानेके लिए नहीं। उसका कौशल इसी बातमें है कि दर्शकोंके सर्वसामान्य भावोंका परिष्कार और उदात्तीकरण उसके द्वारा हो। जो नाटक किसी भी कारणसे आधारपर लिखा जाएगा वह चाहे कितने अच्छे कौशलके साथ क्यों न प्रस्तुत किया जाय वह कभी सामाजिकोंका भाव-परिष्कार नहीं कर सकता। इसलिए उसका होना या न होना बराबर है चाहे उसमें कितनी भी साहित्यिकता क्यों न भरकर भर

रामकुमार वर्मा

दी गई हो। हिन्दीमें उचित रंगमंच न होनेके कारण और अधिकांश नाटक लिखनेवालोंका रंगमंच कौशलसे अनभिज्ञ होनेके कारण हिन्दीमें पाठ्य नाटक अधिक लिखे गए, अभिनेय कम, क्योंकि अधिकांश नाटककार अपने नाटक रंगमंचके लिए न लिखकर पाठ्यक्रमके लिए लिखते हैं, इसीलिए वे नाटक नहीं हो पाते। यदि किसी एक व्यक्तिको अभिनेय नाटक लिखनेका श्रेय दिया जा सकता है वह केवल अभिनव भरतको।

रेडियो नाटक

रेडियोके लिए आजकल श्रव्य-नाटक (ध्वनिरूपक, ध्वनिनाटक या ध्वनि एकाकी) भी लिखे जा सकते हैं जो एकाकी भी होते हैं और अनेकाकी भी। जहाँतक अनेकाकियोंकी बात है, उनके बीच-बीचमें कथा जोडनेवाला कथन देकर उसे ऐसा मिला देते हैं कि वह आदिसे अन्त तक एक प्रतीत होता है। इसलिए उसे कुछ लोग एकाकी ही कहने लग गए हैं। ये श्रव्य नाटक कुछ कल्पनाशील (फॅन्टेसी), कुछ सीधे श्रव्य नाटक, कुछ वास्तविक घटना-प्रधान नाटक (रेडियो फीचर, जो किसी वास्तविक घटनाका नाटकीय प्रदर्शन होता है।) गीति-रूपक, एकाकी कथन, (मोनोलोग) और रेडियो रूपान्तर आदि अनेक रूपोंमें मिलते हैं। रेडियोके लिए नाटक लिखनेवालोंमें अभिनव भरत (सीताराम चतुर्वेदी), रेवतीरमण शर्मा, सिद्धनाथ कुमार, रामचन्द्र तिवारी, बालकराम नागर, अज्ञेय, उदयशंकर भट्ट, रामकुमार वर्मा, विष्णु प्रभाकर, जगदीश-चन्द्र माथुर, चिरंजीत, प्रभाकर माचवे, भगवतीचरण वर्मा, भारतभूषण अग्रवाल, रामचरण शर्मा, राजा-राम शास्त्री, जगदीशचन्द्र खन्ना, देवराज दिनेश, अनिलकुमार, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ अश्क, लक्ष्मीनारायण लाल, गिरिजाकुमार माथुर, और भृग तुपकरी उल्लेखनीय ह।

गीति नाट्य

गीति नाट्य भी नाटक होते हैं जिनमें गीतोंके द्वारा नाट्य प्रदर्शित किया जाता है। ऐसे नाटकोंमें उदयशंकर भट्टके 'मत्स्यगंधा', 'विश्वामित्र', 'राधा', 'कालिदास', 'मेघदूत', 'विक्रमोर्वशीय' और 'अशोक', 'वन-वन्दिनी', तथा अभिनव-भरतके 'सिद्धार्थ' और 'मदन दहन' प्रसिद्ध हैं।

प्रतीकवादी नाटक

प्रतीकवादी नाटकोंमें रूपकों या प्रतीकोंके सहारे कोई भी नाट्य कथा प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दो अर्थोंमें प्रस्तुत की जाती है जिसके लिए कवि भावात्मक प्रतीकोंकी योजना करता है। इस प्रकारकी रचनाओंमें संस्कृतमें कृष्ण मिश्रका 'प्रबोध चन्द्रोदय', यशपालका 'मोहराज-पराजय' (तेरहवीं शताब्दी), वेंकट नाथका 'संकल्प सूर्योदय' (चौदहवीं शताब्दी), कवि कर्णपूरका 'चैतन्य चन्द्रोदय' (सोलहवीं शताब्दी), 'विद्या परिचय' (सत्रहवीं शताब्दी) और 'जीवानन्द' (अठारहवीं शताब्दी) प्रसिद्ध हैं। इनमें नाटकीयता कम होती है, केवल किसी दार्शनिक या साम्प्रदायिक सिद्धान्तका प्रतिपादन मुख्य होता है। योरोपमें ईसाई धर्मख्यान (क्रिश्चियन पैरेबिल) के रूपमें ऐसे अध्यवसान (ऐलेगरी) बहुत मिलती हैं। इसके पश्चात् इसी अध्य-वसानके रूपमें वहाँ नैतिक नाटक (मोरेलिटी प्लेज) तथा रहस्य नाटक (मिस्ट्री प्लेज) आदि प्रतीका-त्मक रचनाएँ की गईं। तेरहवीं शताब्दीमें फ्रांसमें रोमा दला रोज और अँग्रेजीमें स्पेंसरका 'दि फेयरी

स्वीन तथा जोन बनियनका पिलग्रिम्स प्रोग्रेस इसी प्रकारकी अन्यापदेशात्मक प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इसके पश्चात् आधुनिक युगमें तो इब्सन यीट्स मैटरलिंक हाउप्टमान स्ट्रिंडबर्ग रामटड तथा सडरमैनने इसी प्रकारके प्रतीकात्मक नाटकोंकी रचना की है जिनमें मैटरलिंक अधिक प्रसिद्ध हैं। हाउप्टमान और सडरमैनने स्वप्न रूपक लिखे हैं जिनमें किसी प्रकारके नैतिक निर्देशके लिए स्वप्नका आश्रय लिया जाता है। किन्तु इस प्रकारके अव्यवसित रूपकोंका सम्मान नहीं हुआ और वे अत्यन्त शीघ्र समाप्त हो गए।

हिन्दीमें सर्व प्रथम देव कविने 'देव-माया' प्रपञ्च और केशवने विज्ञान गीता की रचना की थी किन्तु ये दोनों रचनाएँ भी अन्य तरहसे रचनाओंके समान अत्यन्त शिथिल हैं। प्रतीकात्मक मौलिक नाटकोंमें प्रसादका कामना और एक घूँट भगवतीप्रसाद वाजपेयीका छलना गोविन्ददासका विकास पन्तकी ज्योत्स्ना सियारामशरण गुप्तका उन्मुक्त और शम्भूनाथ सिंहका धरती और आकाश उल्लेखनीय हैं। किन्तु अभिनयकी दृष्टिसे इनमेसे किसीका भी कोई महत्त्व नहीं है। कुछ नाटककारोंने अपने नाटकोंमें प्रतीकोंका प्रयोग भी किया है जैसे अश्कने अलग-अलग रास्ते तथा 'कैद और उड़ान' मे लक्ष्मीनारायण लालने अन्धा कुआँ और तीन आँखोंवाली मछली म किन्तु इन्हें रूपककी कोटिमें नहीं रखा जा सकता।

नागरी (हिन्दी) मे यद्यपि इतने अधिक प्रकारके नाटक लिखे गए और इतनी अधिक संख्याओंमें भी लिखे गए, किन्तु रंगमंच न होनेके कारण उनकी नाटकीयताका ठीकसे परीक्षण नहीं किया जा सका। इन सब नाटकोंमें केवल उन्हीं नाटकों और नाटककारोंने प्रसिद्धि पाई जिनके तथाकथित नाटक विभिन्न परीक्षाओंके पाठ्यक्रमोंमें सम्मिलित कर लिए गए। विचित्र बात यह है कि नाट्य समीक्षकोंने भी उनकी समीक्षा करते हुए उनकी नाटकीयताका परीक्षण न करके ऊपर-ऊपरसे कथावस्तु, चरित्र-चित्रण तथा सम्वाद की साहित्यिकताका ध्यान करके परीक्षार्थियोंकी दृष्टिसे उनकी आलोचना की। यह प्रवृत्ति जहाँ एक ओर अच्छे नाटकोंके प्रणयनके लिए बाधक है वहाँ स्वस्थ आलोचनाके लिए भी हानिकर है।

नाट्य समीक्षा

अभी तक नाटकीय समीक्षा या तो नाट्य रचना और नाट्य-प्रयोगके सिद्धान्तोंके प्रतिपादन तक ही परिमित रही या नाटकों और उनके प्रयोगोंपर किन्हीं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आदर्शोंके अनुसार व्यक्तिगत निर्णयोंके रूपमें थी। योरोपमें त्रासद (ट्रैजेडी) के सिद्धान्तोंका सर्व प्राचीन व्यवस्थित विश्लेषण अरस्तूके काव्य शास्त्र (पैरि पोइतिकीस) में मिलता है। अरिस्तो फेनसने अपने मेढक (फ्रॉग्स) मे व्यंग्य-परिकृति (पैरोडी) के रूपमें कुछ चलती-सी आलोचना की है। रोममें भी महाकाव्य (ईपिक) और त्रासदके रूपोंकी कवितापर विचार हुआ। सर्वप्रथम होरेसने अपने आर्स पौएतिका मे नाटकका पूर्ण सैद्धान्तिक विवेचन किया है। सिसरो क्विन्तीलियन और आउलस गेलियसकी रचनाओंमें भी नाटक और नाटककारोंके सम्बन्धमें कुछ विवेचन मिलते हैं। प्रारम्भिक ईसाई आलोचकोंने भी स्वभावतः नैतिक और धार्मिक दृष्टिसे नाट्यालोचन किया। ह्रासोन्मुख नाट्यशालाओंकी बढ़ती हुई विकास-प्रियता और स्वच्छन्दताका उन लोगोंने विरोध भी किया। पुनर्जागरण कालमें जब अरस्तूका काव्यशास्त्र मिल गया तबसे समीक्षा शास्त्रियोंने भाव-रेचन (कथार्सिस) घटनाक्रमता या सम्भवता (वैरीसिमिलि ट्यूड) तीनों एकत्व (एक

स्थान, एक समय और एक व्यापारका होना) की समस्याओंपर तथा अरस्तूके सिद्धान्तके साथ ही रसके विचारोंका सामञ्जस्य करने और उदात्तवादी नियमोंके साथ नये प्रयोगकी सगति बैठानेको ही कई शताब्दियों तक नाट्यालोचनका आधार बनाए रखा। सेण्ट-एवेरमोण्डने अरस्तूके करुणा और भयके रेचनके विरुद्ध 'भली भाँति अभिव्यक्त आत्मा की महत्ता' को अधिक महत्त्व दिया।

इन मौलिक सिद्धान्तोंके साथ-साथ फ्रान्समे रगशालाकी दृष्टिसे नाटकपर विचार होने लगा। मौलिएने 'आनन्द देना' ही नाटकका सबसे बडा नियम माना, प्रहसनमे समाजकी आलोचनाको ही ठीक समझा और शेक्सपियरकी इस नाटकीय समीक्षामे अधिकाश नाटककारो, अभिनेताओ तथा रगशालासे सम्बद्ध अन्य कार्य-कर्ताओका ही हाथ रहा। इग्लैंडमे रैस्टोरेशन-कालमे फौक्स कौर्नमे नाटकीय समीक्षकोका एक दल ही उठ खडा हुआ। किन्तु अठारहवी शताब्दिमे पत्रोमेकी हुई आलोचना ही मुख्य रूपसे प्रभावशाली हुई यहाँ तककी कुछ पत्रोने तो नाटकीय समीक्षाकी प्रणाली ही स्थिर कर दी।

नवोदात्तवादियोके नियमोके विरुद्ध जर्मनीमे झगडा उठ खडा हुआ—जहाँ शेक्सपियर ही नाटकीय पूर्णता और स्वतन्त्रताका प्रतीक मान लिया गया था। लैसिंगने नए राष्ट्रीय थिएटरकी जो समीक्षा (हाम्बुर्गिशे ड्रामाटुर्गी १७६७ से ६९ तक) लिखी, उसे ही योरोपमे वर्तमान नाटकीय समीक्षाका प्रारम्भ समझना चाहिए। हेगेलने अपने इस सिद्धान्तके अनुसार कि 'विरोध ही सब वस्तुओको गति प्रदान करता है', त्रासदीय सघर्षको नाटकीय व्यापारकी प्रेरणाशक्ति माना है। इसके कारण अरस्तूके व्यापार-सिद्धान्तको फिर नाटकमें प्रधानता मिल गई और श्लेगेल तथा कौलरिज—दोनोने इस सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया, गुस्टाव फ्रेटागने इसे पल्लवित किया और ब्रनेतिएने अपने सकल्प (वोलिशन) के सिद्धान्तके साथ सघर्षका सिद्धान्त मिलाकर इसे त्रासदसे आगे ले जाकर सब प्रकारके नाटकोपर आरोपित कर दिया। विलियम आर्चरने इसमे द्वन्द्व (कौन्फ्लिक्ट) को छोडकर विषमावसर (क्राइसिस) को अधिक महत्त्व दिया। हेगेलके इन विचार-विस्तारोका परिणाम यह हुआ कि इब्सन आदि पीछेके नाटककारोने इनके सहारे नये नाट्य-कौशलोका आविष्कार किया,यहाँ तक कि बर्नार्ड शॉने तो अपने नाटकोमें भी इस प्रकारके विचार-सिद्धान्तकी व्याख्याको प्रमुख स्थान दिया है। इस प्रकार हेगेलने सामाजिक नाटक और सामाजिक भावनाओ द्वारा प्रेरित समीक्षाको जन्म दिया।

स्वैरवाद फिर भी चलता ही रहा। आलोचनाके क्षेत्रपर ए डब्लू श्लेगेलका 'अन्तर्वादकी श्रेष्ठता' का सिद्धान्त तथा अन्त प्रेरणा (इन्टयूशन), इन्द्रियोके प्रभाव, ससीमका असीमके रूपमें रहस्यात्मक परिवर्तन आदि भाव ही व्यापक रूपसे छाये हुए थे। उसका मत था कि वास्तविक ससारसे जो अनेक व्यक्ति प्रकार (टाइप्स) या प्रतीक लिए जाते है, वे कविकी निजी अन्त प्रेरणाओ (इन्टयूशन) को उस स्पष्ट सीमामे पहुँचा देती हैं जिसे कला कहते है और जो प्रकृतिकी नग्न प्रतिकृति होती है। कवि की ये अन्त प्रेरणाएँ अत्यन्त महान रहस्यात्मक और दार्शनिक होती है और यही कारण है कि उनके सहारे वास्तविक ससारके प्रतीक कला-रूपमे परिणत हो जाते है। ये सिद्धान्त स्वैरवादी नाटक-सिद्धान्तसे इतना मेल खाते थे कि एक ओर मैटरलिंक, यीट्स, सोलोगुब और आन्द्रियेव जैसे नव-स्वैरवादी नाटककारोके लिए नया क्षेत्र खडा हो गया और दूसरी ओर स्ट्रिंण्डबर्ग तथा गैओर्ग कैसरके अभिव्यजनावादके लिए भी नया क्षेत्र खुल गया।

कोलरिजने भी इसी मतका समर्थन किया। वर्तमान यथार्थवादी एलार्डिस निकल जौर्जे जीन नैथन स्टार्क यंग जोसेफ वुडक्रचने तथ्यवाद तथा सामाजिक नाटकोंका विचार करते हुए इसीका प्रयोग किया है। ह्यूगोने फ्रान्सीसी नाटकके नवोदात्तवादी रूपवादको यह कहकर अस्वीकार किया कि संसारमें किसी कलाके लिए नियम और आदर्श नहीं हुआ करता। उसने नाटकको पृथ्वीकी वस्तु (स्वाभाविक) बनानेका प्रयत्न किया। उसने लिखा है कि हमें उदात्त और हास्यास्पद दोनों प्रकारोंका वैसा ही सुन्दर समन्वय करना चाहिए, जैसा हम जीवन और सृष्टिमें पाते हैं। दूसरा व्यक्ति था जर्मन नाटककार फ्रीडरिक हैबेल जिसने स्वैरवादी नाटककारोंपर टिप्पणी करते हुए प्रारम्भिक तथ्यवादका समर्थन किया। इंग्लैंडमें विलियम हैजलिट्ने मॉर्निंग क्रॉनिकल पत्रमें केवल प्रकाशित नाटकोंकी आलोचना करनेके बदले खेले हुए नाटकोंकी आलोचना प्रारम्भ की जो स्वस्थ प्रथा आज तक भी वहाँ पत्रोंमें चली जाती है।

धीरे-धीरे सामाजिक नाटक और तथ्यवादके पक्षमें समीक्षा बल पकड़ने लगी। समाधानयुक्त नाटक (थीसिस प्ले) का पक्ष ग्रहण करके एलेग्जान्डेर ड्यूमाके पुत्रने फ्रान्सीसी आलोचक सारसेको एक खुली चिट्ठी लिखी जिसमें उसने कहा कि व्यक्तिगत और सामूहिक सुधारके लिए उपादेय नाटक ही अत्यन्त आवश्यक साधन है। उसकी इस प्रेरणापर औगिए और इब्सनने नाटक लिखे और स्वयं उसने भी अपने उपदेशात्मक नाटकोंमें अपना पक्ष स्थापित किया। परिणाम यह हुआ कि प्रसिद्ध व्यवसायी फ्रान्सीसी आलोचक फ्रांसिस्क सारसेका मुँह ही बन्द हो गया जो सुरचित यथार्थपूर्ण सुखान्त नाटकोंका विशेषतः स्क्राइबे और सारदूके नाटकोंका समर्थक था। दर्शकोंको सन्तुष्ट करनेवाले नाट्य कौशलमें फेरम सारसेने अपना सीन आफेयर (वह दृश्य जिसमें जनता जम न जाय जनताको प्रसन्न करनेवाला वह जिसमें जनताकी रुचिका ध्यान हो।) का सिद्धान्त निकाला। विलियम आर्चरने इसका अनुवाद करके इसका नाम रखा था 'औपचारिक दृश्य (ऑब्लीगेटरी सीन)। सन् १८७१ में एमील जोलाने फ्रान्समें नाटकीय स्वाभाविकता या प्रकृतिवादका प्रवर्तन किया। व्यवसायी आलोचक जीन जूलियनने उसका समर्थन करते हुए कहा कि वास्तविक जीवन मनोवैज्ञानिक विवेचन विस्तृत सूक्ष्म विश्लेषण तथा मनुष्यकी पाशविक प्रवृत्तियोंके प्रदर्शनसे युक्त स्वाभाविक नाट्य-कौशलसे नाटक रचे जाने चाहिए—जो सुरचित नाटककी जटिलताओं और रचना-कौशलोंसे मुक्त हैं। अपनी नाट्यशालामें असफल हो जानेपर नाट्य प्रयोक्ता आन्त्वाँ भी समीक्षक बन बैठा किन्तु उसने अपने अतिशय प्रकृतिवादको थोड़ा शिथिल कर दिया। जर्मनीमें जिस विद्वत्तापूर्ण और स्वैरवादी प्रवृत्तिका प्रतिनिधित्व गुस्ताव फ्रैटाग कर रहा था उसके विरुद्ध यंग नामकी साहित्यिक गोष्ठीने बर्लिन और म्युनिखमें केवल आलोचना ही नहीं की वरन रंगमंचपर स्वयं व्यावहारिक प्रयोग करके दिखलाए। इनमेंसे ब्राह्मने पहला प्रकृतिवादी रंगमंच जर्मनीमें स्थापित किया जिसमें उसने अभिनय नाट्य-निर्देश और नाटकपर अपने आलोचना-सिद्धान्तोंका प्रयोग किया। स्कैण्डीनेवियामें इब्सन स्ट्रिण्डबर्ग और ब्योर्नसनने नाटकीय समीक्षा प्रारम्भ की जिन्हें तत्कालीन प्रसिद्ध उदार समीक्षावादी जेमोर्स ब्राण्डिसका प्रबल समर्थन मिला हुआ था। रूसमें भी उदार समीक्षकोंने प्रकृतिवादका ही समर्थन किया जिसका प्रवर्तन और जिसकी अभिव्यक्ति मॉस्को आर्ट थियेटरके संस्थापक स्तानिस्लावस्की और दान्चेंको द्वारा हुई, जिन्होंने अभिनय दृश्य-विधान और नाट्य-निर्देशपर भी विशेष ध्यान दिया और नाटककी तथ्यवादी आलोचना भी लिखी।

अमरीकामे यह तथ्यवाद वहुत धीरे और वहुत पीछे आया, जहाँ हैनरी जेम्स और विलियम डीन हौवेल्मने थोडा-थोडा समर्थन किया, किन्तु विलियम विन्टरने उसकी कसकर भर्त्सना की। वह विक्टोरिया-युगका नीतिवादी था इसलिए उसने इव्सनका वडा विरोध किया। दूसरी ओर व्रान्डेर मैथ्यूज और क्लेटन हैमिल्टन केवल विचारोंके वदले नाटकीय प्रभावकी ओर अधिक सरुच थे। वीसवी शताव्दीके प्रथम दशकोमे जौर्ज जीन नैतन् और लुडविग ल्युइसोन्हने उस स्वाभाविकतावादका स्वागत किया जो हाउप्टमान ओनीलके प्रारम्भिक नाटकोमे प्रकट हुआ था। इग्लैंडमे इव्सन का प्रवल समर्थन वर्नार्ड शॉने किया जिसने स्वैरवादको वडी खरी-खोटी सुनाई। उसने मिथ्या प्रशमको (वार्डोलेटर्स) को कोसते हुए कहा कि शेक्स-पियरके नाटकोको रगशालामे काम करनेवालेकी दृष्टिसे जाँचना चाहिए। वह 'कालार्थ कला' का भी पोषक था अर्थात् वह सामाजिक दृष्टिसे सगत और प्रभावशाली नाटकका पक्षपाती था। उसने विभिन्न पत्रोमे जो नाट्य-समीक्षाएँ लिखी, उन्होने नाटकीय समीक्षाके क्षेत्रमे नया मानदण्ड ही स्थापित कर दिया। विलियम आर्चर, जे टो ग्रीन, नाटयकार सर आर्थर विग पिनरो और हेनरी आर्थर जोन्मने अत्यन्त समीक्ष्यवादी शक्तिसे तथ्यवादको प्रदीप्त किया। ये लोग वर्नार्ड शॉकी अपेक्षा अधिक उदार थे। इसलिए इनका प्रभाव भी शॉकी अपेक्षा अधिक रहा। ए वी वाक्ले, क्लीमेंट स्कॉट और मैक्स वीरवोह्मने अपनी शिष्ट तथा तर्कपूर्ण शब्दावलीसे नाटकोकी समीक्षा प्रारम्भ की। यही प्रभाववादिताके साथ उदार मानदण्ड स्थापित करनेकी प्रवृत्ति ही आजकल इग्लैंडमें प्रचलित समीक्षा-पद्धति है। यद्यपि ब्रिटेनकी समीक्षा-पद्धतिमे उदारवादिता है, किन्तु शॉका प्रशसक होते हुए भी नाटककार समीक्षक सेन्ट जौन इरविन क्रान्तिकारी नाटक तथा सिद्धान्त दोनोका विरोधी है। उन्नीसवी शताव्दीके अन्तिम दशकमे प्रकृतिवादकी अतिरेकताओ और वन्धनोके विद्रोह स्वरूप तथा वर्तमान नाटकोमे वहुत कुछ अति साधारण अनगढ शैलीकी भरतीने एक नवस्वैरवादी या प्रतीकात्मक समीक्षाको जन्म दिया। इस सिद्धान्तका कुछ तो रिचार्ड वैगनरको नाट्य-सिद्धान्तसे समर्थन मिला और कुछ फ्रान्सकी प्रतीकात्मक कवितासे। उसके सर्वश्रेष्ठ प्रवर्त्तक कुछ तो मैटरलिंक जैसे नाटककार थे जिन्होने सियर, तथा गम्भीर नाटकोका आदर्श स्थापित किया और कुछ योट्स-जैसे लोग थे जिन्होने रगमचमे कविता लानेका प्रयत्न किया। इनके अतिरिक्त, सिन्जे, एशेले, ड्यूक्स सोलोगुव, एवरीवो आदि तथा विधायक गोर्डन क्रेग, अडोल्फी, अप्पिया-जैसे व्यक्ति थे, जिन्होने कला रगशाला आन्दोलन (आर्ट थियेटर मूवमेंट) को अनुप्राणित किया। अलार्डिस निकल अभीतक भी आध्यात्मिक और काव्यात्मक नाटकके पक्षपाती है। इटलीमें पिरान्देलो, चियारेली और सान सेकन्दो-जैसे लोग अलकृत शैलीके समर्थक है। जर्मन अभिव्यजनावादके समर्थक भी इसी प्रकृतिवादविरोधी दलमें गिने जा सकते है।

तथ्यवादियो और तथ्यवाद-विरोधियोका विभिन्न पक्ष स्पष्ट करते हुए एलेक्जेंडर वाक्सीने रग-शालाके दो भेद माने है—१ प्रतिनिधित्व पूर्ण (रिप्रेजेन्टेशनल) अर्थात् अधिक यथार्थतापूर्ण तथा भ्रान्तिपूर्ण। २ आदर्श (प्रेजेन्टेशनल) अर्थात् वास्तविकतायुक्त, अभ्रान्तियुक्त, विशिष्ट शैलीयुक्त तथा नियम-सिद्ध। आजके समीक्षक लोग नाटककी भावना और उद्देश्यके अनुसार दोनो शैलियोंको ठीक समझते है। कम-से-कम अमरीकी समीक्षामे, तो यह बात ठीक ही है, जहाँ उदारतावादी और प्रभाववादी समीक्षको की ही प्रधानता है। इन लोगोकी समीक्षा-पद्धतिके विरोधमे सन् १९३० में एक

वामपक्षीय समीक्षा-पद्धति चली जिसके आचार्य थे अनिता ब्लौक और हौवर्ड लासन इवियामीर एलेक्सअोर। और गैसनरने मध्यम मार्ग ग्रहण किया जिसने राजनैतिक परीक्षणका विरोध करके रंग-कौशल तथा सार्वजनिक भौमताको आवश्यक बताया और साथ ही यह भी स्वीकार किया कि रंगशालाको सामाजिक बना देना चाहिए। सोवियत रूसकी नाटकीय समीक्षा ध्रुव रूपसे मार्क्सवादी है यद्यपि अपने लेखों और छोटे भाषणोंमें मैक्सिम गोर्कीने नाटकको मानवित करनेकी भी प्रेरणा दी है। नात्सीवाद प्रारम्भ होनेसे ठीक पहले जर्मनीमें माक्फेड कर के लेखोंमें सुन्दर बौद्धिक उदारतावाद मिलता है और जुलियस बाब तथा कुर्ट पिन्थसके लेखोंमें सामाजिक लोकतन्त्रात्मक समीक्षा प्राप्त होती है।

वर्तमान नाटकीय समीक्षाकी मुख्य प्रवृत्ति यह है कि रंगशालाका इस दृष्टिसे गम्भीर परीक्षण किया जाय कि उसमें अनेक कलाओंका नियोजन किस प्रकार किया गया है अनेक शैलियोंको ग्रहण करके उन सम्भावनाओंकी खोज करनी चाहिए जिनसे कि हम रंगशालाको अपने समयके जीवनके लिए उपयुक्त और सगत बना सकें। किन्तु हिन्दीमें इस प्रकारकी समीक्षाका श्रीगणेश भी नहीं हुआ। आजकल समाचार पत्र और रेडियोवालोंका बोलबाला है। इसलिये ये लोग जैसा चाहे वैसा नाटकको बना-बिगाड़ सकते हैं यद्यपि कई देशोंमें यह प्रयत्न किया गया है कि इन लोगोंपर थोड़ा अंकुश रहे। रूसमें यह नीति बना दी गई है कि किसी नाटककी समीक्षा तबतक नहीं छापी जाती तबतक वह थोड़े दिन चल न ले। इसके अतिरिक्त नाटक प्रारम्भ करनेसे पहले ऐसे समालोचकोंको बुलाकर उनसे परामर्श भी कर लिया जाता है कि हमारे यहाँ तो नाटककी समीक्षा छपनेसे पहले हो जाती है और खेले जानेका तो कोई प्रश्न ही नहीं है।

नाटककी अभिनव भावना

देनिस दिदूरो (१७१३ से १७८४) नामक फ्रांसके प्रसिद्ध नाटककार, दार्शनिक और सम्पादकने एक नये प्रकारकी अभिनेय रचना ड्रामे' का प्रवर्तन किया। उसका कहना था कि इस नाटकका उद्देश्य शिक्षा देना गुणोंके प्रति प्रेम और दुर्गुणोंके प्रति घृणा उत्पन्न करना है। वह चाहता था कि नाटकका प्रयोजन सामाजिक और दार्शनिक विवेचन करना हो वह दार्शनिक प्रचारका साधन बने विश्वविद्या प्रचारकोंके भावोंको प्रचारित करनेका साधन बने और इस प्रकार स्वाभाविकता और विवेकके आधारपर नया समाज स्थापित करनेमें सहायक हो। इसीलिये उसने अपने नाटकोंमें व्यक्तियोंको चित्रित करनेके बदले जीविका वृत्तियों (प्रोफेशन) को स्थान देना प्रारम्भ किया। उसका कहना है कि नाटककारको साधारण व्यक्तिगत मनुष्यकी अपेक्षा सामाजिक मनुष्यको अधिक ध्यानमें रखना चाहिए और जैसे फ्रान्सीसी भासदमि चरित्रके प्रकार (टाइप्स ऑफ कैरेक्टर्स) चित्रित किए जाते हैं वैसे ही व्यवसायके प्रकार (टाइप्स ऑफ प्रोफेशन्स) को चित्रित करना चाहिए। वह चाहता था कि भावों और आवेगोंकी सीधी अभिव्यक्ति हो अर्थात् आवेगात्मक सम्वादोंका स्वाभाविक अवतरण और उतरना ज्यों-का-त्यों रखा जाय लम्बे सवाद छोटे कर दिये जायँ अधिक अभिव्यंजक भाव सामूहिक अभिनय और स्थिर दृश्य (टेब्लो) या मूकाभिनय (पेन्टोमीम) के समान पात्रोंके समूहको चित्रमय रूपमें सुव्यवस्थित करनेकी आधार योजना हो। दिदरोने दृश्य-विधान रंग निर्देश दृश्य-सज्जा और अभिनयके सम्बन्धमें भी विस्तारसे विचार किए उनके कारण नाटककी भावना ही बदल गई। उसने बताया कि नाटक पढ़नेकी वस्तु नहीं है रंगमंचपर खेलनेकी है। अभीतक हिन्दीके

साहित्यकारो, समीक्षको, विद्यालयोके प्राध्यापकोने नाटकके इस महत्वपूर्ण पक्षका कोई ध्यान नही रखा।

अभिनीत नाटककी समीक्षा

किसी नाटकका प्रयोग करना और उस नाटकका पढना दो अलग वस्तुए हैं। जब हम किसी प्रयोग हुए नाटकपर विचार करते हैं तव हम उस विशेष कार्यकी समीक्षा करते हैं जिसमे नाट्य-निर्देश, अभिनय, दृश्य-विधान, वेषभूषा, रग-प्रदीपन तथा नाटकके अन्य तत्त्व मिलकर एक सम्मिलित प्रभाव उत्पन्न करते हैं। विलियम आर्चरने गम्भीर नाटककी समीक्षाके लिये सिद्धान्त वताया है कि नाटकके समीक्षक को तीन प्रश्नोका उत्तर देना चाहिए।

१—क्या उस नाटकने रूढि-परिवर्तन अथवा भद्दे अनुकरण या प्रतिरूप अुपस्थित किए है। २—क्या कथा इस प्रकार विकसित हुई और चरित्र इस प्रकार उपस्थित किए गए है कि वे रगमचके पूरे साधनोका श्रेष्ठतम उपयोग करके जनतामे अत्यन्त प्रभावशाली रूपमे रुचि, आकस्मिक और प्रत्यक्ष अनुभूतिके ऐसे भावोको उत्पन्न कर सके है जो नाटक-द्वारा अवश्य उत्पन्न होने ही चाहिए। ३—ऐसा तो नही है कि नाटकमें कहा कुछ जा रहा हो और अर्थ कुछ और हो। जो कुछ कहा जा रहा है क्या वह आचार और विचारकी दृष्टिसे व्यावहारिक है। ४—नाटकमे विनोद-मात्र ही है या उसमें हमे कुछ अनुभव भी हुआ है। अर्थात् हमे यह देखना चाहिए कि उस नाटकको देखकर हमारे ज्ञान और सदाचारमे कुछ वृद्धि हुई या नही।

कुछ लोगोका कहना है कि कुछ नाटक तो विशेष रूपसे मनोविनोदके साथ ज्ञान तथा सदाचार भी प्रदान करते है और कुछ ऐसे है जिससे केवल मनोविनोद ही होता है। इन सवके अलग-अलग स्तर या परिधि होती है। इस प्रकार प्रत्येक नाटकको उसकी विशेषता के साथ समझना और परखना चाहिए।

नाटकीय आलोचक

अत्यन्त अनुभवी और नाट्य-शास्त्रके सव अगोके पण्डित लुई जूएने बताया है कि साहित्यिक और नाटकीय आलोचनामे वडा अन्तर है। हमारे साहित्यिक आलोचकोके लिये यह अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है। लुई जूएके अनुसार नाटककी आलोचनाका सम्बन्ध सजीव वस्तुसे है। वह ऐसा सावयव पदार्थ है जो प्रयोग या अभिनयके समय ही अपने पूर्ण श्रेष्ठत्वके साथ प्रस्तुत होता है। उसका सम्बन्ध केवल एक कलासे नही वरन् अनेक कलाओसे है जिनमें सगीत, गीत, दृश्य-कलाएँ (चित्रकला आदि) नृत्य और अभिनय सभी आ जाती हैं। लिखा हुआ नाटक तो नाट्यके जटिल स्वरूपका एक छोटा-सा अग है और वही ऐसी सामग्री है जिसकी साहित्यिक समीक्षा हो सकती है। वह तो महत्वका एक भाग मात्र अर्थात नाटकका ढाँचा ही होता है, वह पूर्ण नाट्य नहीं होता। इसलिए वास्तविक नाट्य-समीक्षकको अभिनयका समीक्षक या नाट्य-शालाका समीक्षक होना चाहिए क्योकि उसकी समीक्षाकी श्रेष्ठता इसीमे है कि वह श्रेष्ठ नाट्य प्रयोगको समझे और उसका गुण परखे। उसमें रगमच वृत्ति (थिएट्रिकल सेन्स) की भावना वैसी ही होनी चाहिए जैसे मूर्तिकार-में रूपकी, चित्रकारमें रगकी और सगीतकारमें श्रुतिकी, क्योकि जबतक उसमें यह भावना न होगी तबतक न तो वह नाटकको ठीक परख सकता न इस जटिल कलाके ठीक रूपकी समीक्षा कर सकता। उसका काम

दुहरा हो जाता है। उसे जानना चाहिए कि १—क्या श्रेष्ठ है या उसमें क्या गुण है? यह केवल इसलिये नहीं कि वह उसे अच्छा लगता वरन् इसलिये कि उसके मस्तिष्क उसके ज्ञान भव और उसकी शिक्षाने उसे इस योग्य बना दिया है कि वह निर्णय कर सके कि इसमें जितने कलाकारोंका समन्वय हुआ है उनके उद्देश्य क्या है तथा कितनी पूर्णता और सहयोगिताके साथ उन्होंने अपना उद्देश्य सिद्ध किया। २—यह बात कहाँतक कलाके उद्देश्योंको पूर्ण करती है? क्या यह कलाकी सीमाओंका विस्तार करती है? उसकी परिधिको बढ़ाती है? और अनुभव तथा प्रयोगके लिए नये मार्ग खोलती है। ३—जो नाटक प्रस्तुत किया गया है उसमें कौन-सा तत्व ऐसा है जिसका उद्देश्य अत्यन्त सुचारु रूपसे सिद्ध हुआ है। लिखे हुए नाटकसे निकाल देने योग्य वे कौन-कौनसे गुण हैं जो शिक्षा ठीक न दी जानेके कारण या भद्दे अभिनयके दुर्बलोंमें दब गए हैं। ४—किसी मौलिक कलाकारने किसी चलते दृश्यको किस प्रकार अंकित और अर्थ प्रदान किया है? यह सब करनेके लिये उसे स्पष्टतः रंगमंचके रूपके साधारणसे अनुभवके अतिरिक्त और भी बहुत कुछ जानना चाहिए। १—उसे रंगमंचकी पृष्ठभूमिका अर्थात् उन सभी धाराओंका ज्ञान होना चाहिए जिन्होंने विभिन्न युगोंकी करोड़ों भावनाओं आचार-विचारों अभ्यासों रूढ़ियों विश्वासों और स्वप्नोंको बहाकर आजके रंगमंच तक ला पहुँचाया। २—उसे रंगमंचकी प्रयोग समस्याओंका भी परिज्ञान होना चाहिए कि उसमें कितना श्रम लगता है? उसके अभिनेताओंकी क्या समस्याएँ हैं? रंग-मंच कैसे बनता है? कितने भागोंमें उसका कार्य होता है? नाटकका चुनाव अभिनेताओंका चुनाव उनकी शिक्षा रंगमंचका निर्माण वेशभूषा मुखराग रंगप्रदीपन प्रेक्षागृहमें जनताको एकत्र करनेके लिये विज्ञापन बैठानेकी सुविधा आदि कार्य किस प्रकार होता है। ३—उसे यह भी ज्ञान होना चाहिए कि नाटकमें कौनसी ऐसी बातें आवश्यक हैं जो जनताको मन्त्रमुग्ध और तन्मय किए रह सकती हैं अर्थात् उसे जनताकी मनोवृत्ति उनकी आवश्यकता उनकी रुचि और प्रवृत्तिका ज्ञान होना चाहिए और उसके साथ ही यह भी जानना चाहिए कि ये दर्शक कहाँसे आ रहे हैं अर्थात् गाँवके हैं या नगरके और नगरके भी हैं तो किस वृत्ति और संस्कारके हैं। यह सब उसे जानना तो था हुए किन्तु जैसे ही वह नाटकीय प्रयोगकी पहली रात्रिको परदेके सामने बैठे वैसे ही उसे यह सब भूल जाना चाहिए और उसी उत्सुकताके साथ उस रहस्य-भरे परदे की ओर देखना चाहिए जैसे एक प्रेमी अपनी प्रेमिकाके लिये प्रतीक्षा करता हुआ उत्सुकता आशा और प्रसन्नतासे गद्‌गद और उत्कंठित हुआ रहता है।

ज्योंही नाटक समाप्त हुआ कि समीक्षाका कार्य झटसे उपस्थित हो गया। कभी-कभी तो समीक्षकसे यह आशा की जाती है कि नाटक समाप्त होनेके कुछ ही घण्टोंके भीतर उसकी समीक्षा पत्रोंमें प्रकाशित हो जाय। इस प्रकार पत्रकारिताने समीक्षाके क्षेत्रपर आधिपत्य जमा लिया है। और इस कारण बेचारा समीक्षक भी साधारण सम्वाददाता या पुस्तक-समीक्षकके समान बन गया है। इसने समीक्षा तत्व-ग्राहक और निर्णयात्मक समीक्षाका कार्य ही छीन लिया गया है। सच्चा समीक्षक चाहे अपने पास प्रतिलिपि करने वालेको बैठाकर लिखे अथवा एक सप्ताह या महीनेमें जमकर लिखे किन्तु उसका कार्य यही होना चाहिए जैसा जौन मेसन ब्राउनने कहा है कि उसको जज ब्राह्म या मार्ग-दर्शकके समान कार्य करना चाहिए। जहाँ उसकी आवश्यकता हो वहाँ उसे डंका भी बजाना चाहिए किन्तु उसका मुख्य कार्य यही होना चाहिए कि वह सब कलाकारोंके सर्वश्रेष्ठ प्रयत्नोंके सम्मिलित प्रभावका ही समीक्षण करे अर्थात् प्रमुख प्रकाश डालनेवाले

कलाकारसे लेकर उस अभिनेता तकका उसे ध्यान रखना चाहिए जिसपर प्रकाश पडता है। किन्तु उसका सबसे बडा उत्तरदायित्व तो यह है कि वह उन आगे आनेवाले प्रतिभाशाली नाटच-कलाकारोके लिये मार्ग-दर्शक और अग्रदूतका काम करे जो रगमचके लिये अपना जीवन देनेवाले है।

नाटच समीक्षण

नाटककी समीक्षा हमें दो दृष्टियोसे करनी चाहिए। १—नाटच-रचना और २—नाटच प्रयोग। रचनाकी समीक्षामे हमे इन प्रश्नोका उत्तर देना चाहिए—१—नाटककारने किस उद्देश्यसे नाटककी रचना की है। २—उस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये नाटककारने किस प्रकारके कितने पात्रो और किन घटनाओका समावेश किया है ? ३—किस प्रकार नाटककारने घटनाओ और पात्रोके सयोजनमे कुतूहलका निर्वाह करते हुए पात्रो और घटनाओका सामजस्य स्थापित किया है। ४—जितने पात्रोका प्रयोग किया गया है उनमेसे कितने ऐसे है जिनका सयोजन अनिवार्य है ? ५—कितने पात्र ऐसे है जिनके बिना भी नाटच-व्यापार सरलता और सुचारु रूप, से सचालित किया जा सकता था ? ६—कितनी घटनाएँ ऐसी है जो पात्रोके चरित्र-विकास और कथा-प्रवाहके सम्वर्द्धनकी दृष्टिसे उचित और अपरिहार्य थी। ७—उनमेंसे कितनी घटनाएँ अनावश्यक, असम्भव और अस्वाभाविक है और कितनी घटनाएँ सम्भव, स्वाभाविक और आवश्यक है। ८—नाटककारने जो परिणाम निकाला है वह उसके उद्देश्यकी दृष्टिसे कहाँतक सगत है ? ९—उस घटनाके परिणामको किसी दूसरे रूपमें प्रस्तुत करनेसे उस उद्देश्यकी सिद्धि हो सकती थी या नही ? १०—स्वाभाविक होते हुए भी वह परिणाम कहाँतक वाछनीय और घटनाओके प्रवाहके अनुकूल है ?

विभिन्न पात्रोके लिये प्रयुक्त की हुई भाषा शैलीका भली प्रकार परीक्षण करते हुए नाटच-समीक्षकको देखना चाहिए कि—१—विभिन्न श्रेणीके पात्र जिस भाषाका प्रयोग करते हैं वे उस श्रेणीके पात्रकी मर्यादाके अनुकूल है या नही ? २—भाषाके प्रयोगमें सम्भावना और आवश्यकताके साथ-साथ स्वाभाविकता तथा औचित्यका विचार भी किया गया है या नही ? (औचित्यका तात्पर्य यह है कि सम्वादोमे परस्पर जोड-तोड, उत्तर-प्रत्युत्तरकी सगति और क्रम पात्रो और परिस्थितियोके अनुसार ठीक है या नही ?) ३—उसका कितना अश कथा-प्रवाहको आगे बढाने तथा पात्रोका चरित्र स्पष्ट करनेके लिये आवश्यक है ? ४—कितना भाग ऐसा है जिसे निकाल देनेसे नाटकके सौन्दर्य और कथा प्रवाहमे किसी प्रकारकी कोई त्रुटि उपस्थित नही होगी ? ५—उस सम्वादको सुनकर सामाजिक या दर्शक उसे सरलतासे समझकर भलीभाँति उसका रस ले पावेगे या नही ? अर्थात् उसमें इतना रस, विनोद, जोड-तोडके प्रत्युत्तर, प्रत्युत्पन्नमतित्व-पूर्ण उक्तियाँ है या नही जिन्हे सुनते ही दर्शक या सामाजिक तदनुकूल प्रभावसे रस-मग्न हो जाय ? वास्तवमे सम्वाद ही नाटककी प्रेरणाशक्ति होती है। अभिनेताओको अभिनय करनेमें और दर्शकोको नाट्यका वास्तविक आनन्द लेनेमे सबसे अधिक सहायता सम्वादसे ही मिलती है। अत, सम्वादका परीक्षण इस दृष्टिसे नही करना चाहिए कि नाटककारने इसमें काव्य कितना भरा है, वरन् इस दृष्टिसे करना चाहिए कि नाटककारने जिस उद्देश्यसे नाटक लिखा है उस उद्देश्यकी पूर्तिके निमित्त अभिनेताओके सहयोगसे वह जो विशेष प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है उसकी सम्भावनाएँ सम्वादमें है या नही। इस दृष्टसे परीक्षण किया

जाय तो प्रतीत होगा कि काव्य-कलाकी दृष्टिसे जो सम्वाद अत्यन्त भावपूर्ण और सरस प्रतीत होते हैं वे नाट्य प्रयोगकी दृष्टिसे अत्यन्त नीरस और प्रभावहीन हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी देखना चाहिए कि गीत नृत्य वाद्य आदिका संयोजन कहाँतक उचित उपयुक्त और आवश्यक हुआ है?

प्रयोगकी दृष्टिसे भी नाटककी परीक्षा करनी चाहिए और यह देखना चाहिए कि १—नाटककारने दृश्य-विधान इस क्रमसे रखा है या नहीं कि निर्बाध रूपसे नाट्य प्रयोक्ता उन दृश्योंका सरलतासे विधान कर सके और उस दृश्य-क्रमसे नाटककी कथा-धाराका क्रम ठीक बनाए रखे। २—नाटककारने जो रंग-निर्देश दिए हैं वे असंभव अयोजनीय अस्वाभाविक और अप्रयुक्त तो नहीं हैं। प्रायः नाटककार या तो रंग निर्देश देनेमें अत्यन्त संकोची होते हैं या इतने उदार होते हैं कि वे कई पृष्ठ रंग-निर्देशमें रंग डालते हैं। ३—रंग निर्देशमें रंग-व्यवस्थापकको दृश्य-सज्जाके लिए, नेपथ्य विधायकको वेश और रूप-सज्जाके लिए, प्रकाश विधायक को रंग-दीपनके लिए और अभिनेताको अभिनयके लिए स्पष्ट उचित और आवश्यक निर्देश मिले हैं या नहीं। ४—नाटककारने अभिनेताके वाचिक आंगिक और सात्विक अभिनयके लिए पर्याप्त सम्भावनाएँ उपस्थित की हैं या नहीं? अर्थात् सम्वादोंमें उसने इतनी शक्ति भरी है या नहीं कि अभिनेता उसके अनुसार अभिनय करते समय अपना सम्पूर्ण अभिनय-कौशल प्रदर्शित करके उचित नाटकीय प्रभाव उत्पन्न कर सके अर्थात् नाटककारने व्यापार-योजना क्रिया-योजना इतनी पर्याप्त रखी है या नहीं कि अभिनेता उसका अनुसरण करके नाटककार द्वारा उद्दिष्ट प्रभाव उत्पन्न कर सके। प्रायः आजकल ऐसी प्रवृत्ति बन गई है कि जब हम किसी बड़े लेखककी कृतिका समीक्षण करने बैठते हैं तब उस लेखककी महत्वकीर्तिका आतंक हमें तत्काल दबा बैठता है और हम समीक्षण करते-करते बलपूर्वक उसके दोषोंको भी गुण बतानेके लिये बाध्य हो जाते हैं। ५—समीक्षकको इस प्रकारके दुष्ट आतंकसे सदा बचे रहना चाहिए और उसे निष्पक्ष होकर यह देखना चाहिए कि यह जिन दर्शकोंके लिये लिखा गया है उनकी समझमें आ सकेगा या नहीं। ६—इसके कथानक या कथावस्तुका क्रम ऐसा तो नहीं उलझा दिया गया है कि कथा समझनेमें ही दर्शकोंको कठिनाई हो। ७—इसका दृश्य विधान इतना अव्यवस्थित असम्भव अटपटा (बहुत छोटा बहुत बड़ा या अक्रम) और दुष्कर तो नहीं है कि नाट्य प्रयोक्ता उसे प्रस्तुत ही न कर सके? ८—उसका पात्र-विधान इतना जटिल तो नहीं है कि नाट्य प्रयोक्ताको वैसे पात्र ही न मिल सकें। ९—उसका सम्वाद-विधान ऐसा कठिन तो नहीं कि अभिनेता उसमें अभिनयकी सम्भावनाएँ ही न पा सकें। १०—सम्वाद इतना पाण्डित्यपूर्ण तो नहीं है कि दर्शक तो दूर, स्वयं अभिनेता ही उसका अर्थ न समझ पाए। ११—यह जिस प्रकारके रंगमंचके लिए लिखा गया है उसके लिए कहाँतक उपयुक्त है? दर्शकोंपर उसका क्या मनोवैज्ञानिक या सांस्कृतिक प्रभाव पड़ता है और वह कहाँतक सफल हो पाया है? १२—उससे कोई अनैतिक या असामाजिक प्रभाव तो नहीं पड़ता है? इतने प्रश्नोंका उत्तर देनेपर ही नाट्यसमीक्षा पूर्ण होगी।

अभीतक हमारे यहाँ नाट्य-समीक्षा व्यवस्थित नहीं हो पाई है और यही कारण है कि बड़ी असम्बद्ध रचनाएँ नाटकके नामसे पाठ्यक्रम तक दी गई हैं। अभिनव भरत नाट्यशास्त्रके द्वारा इस कमीकी पूर्ति अवश्य की गई है किन्तु अभीतक भी ठोस नाट्य समीक्षाकी कमी दृष्टिगोचर अवश्य होती है।

नागरीका कथा-साहित्य उपन्यास

गद्यका विकास होनेके पश्चात् साहित्य क्षेत्रमे बहुत-सी नई रूप-शैलियोका प्रवेश हुआ। जैसे— उपन्यास, छोटी कहानियाँ, समीक्षा, निबन्ध आदि। उपन्यास योरोपीय साहित्यकी ही देन है। भारतीय साहित्यमे कथाओकी रचनाएँ तो हुई किन्तु जिस ढगसे आधुनिक उपन्यास रचे जाते है उस ढगकी कथाएँ नही मिलती। हिन्दीमें उपन्यास-रचनाकी प्रवृत्ति बगलासे आई और बँगलावालोने यह रूपशैलीसे ली।

पहले तो नागरीमें बँगलाके उपन्यासोका अनुवाद ही हुआ फिर अँग्रेजीमें भी हाथ लगाया गया। रामकृष्ण वर्मा उर्दूसे भी कुछ अनुवाद कर चुके थे। कार्तिक प्रसाद खत्रीने बँगलाके अनुवादोसे हिन्दीका भण्डार भरनेकी स्तुत्य चेष्टा की और दो वर्षके भीतर ही चार उपन्यासोका अनुवाद कर डाला। गोपालराम गहमरीने बँगलाके कई सामाजिक उपन्यासोंका अनुवाद किया। अनुवाद करनेवालोमे ईश्वरी प्रसाद शर्मा रूप नारायण पाडेय विशेष उल्लेखनीय हैं। अँग्रेजी बँगलाके अतिरिक्त कुछ अन्य देशी विदेशी भाषाओसे भी अनुवाद हुए।

नागरीमें सबसे पहले देवकीनन्दन खत्रीके मौलिक उपन्यास निकले जिनकी ख्याति वस्तुत चन्द्रकान्ता सन्तति आदि घटना-वैचित्र्य युक्त उपन्यासोके कारण हुई। ये उपन्यास इतने प्रसिद्ध हुए कि हिन्दी न जाननेवालोको भी इन्हें पढनेके लिए नागरी भाषा पढनी पडी। पर इनकी गणना साहित्यिक उपन्यासोकी श्रेणीमें नही की जा सकती।

मौलिक सामाजिक उपन्यास लिखनेवालोमे सबसे पहला नाम किशोरीलाल गोस्वामी का आता है जिन्होने छोटे-बडे कुल मिलाकर पैंसठ उपन्यास लिखे हैं। इनसे कुछ उपन्यास तो बहुत ही हलके ढगके और वासनात्मक प्रवृत्तिको उद्दीप्त करनेवाले है। भाषाके साथ इन्होने खिलवाड भी बहुत किया है। कही तो सस्कृत शब्दोसे युक्त समासबहुला भाषाका प्रयोग किया है और कही घोर उर्दू का। इस प्रवृत्तिने उनके उपन्यासोका साहित्यिक गौरव घटा दिया है। इन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे किन्तु उनमे अनैतिहासिकता आ जानेसे उपन्यास नष्ट हो गए।

कुछ और लोगोने भी थोडा-बहुत लिखा किन्तु हिन्दी उपन्यासोमे क्रान्तिका युग प्रेमचन्दजीके साथ आया और फिर उन्हीकी शैली व्यापक रूपसे स्वीकृत हो गई। विश्वम्भरनाथ शर्मा, 'कौशिक', सुदर्शन, जयशकर प्रसाद, पाण्डेय वेचन शर्मा, उग्र, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, इलाचन्द्र जोशी, वृन्दावनलाल वर्मा, जैनेन्द्रकुमार, यशपाल, अज्ञेय भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, चतुरसेन शास्त्री आदिने उपन्यासके क्षेत्रको अधिक समृद्ध किया। इधर कई अच्छे उपन्यासकारोने उपन्यासके क्षेत्रमे अपनी विशिष्ट प्रतिभाका प्रदर्शन किया है किन्तु फ्रायड मार्क्स और वैज्ञानिकताके फेरमे पडकर इधरके सभी उपन्यास पठनीय और विनोदजनक न होकर मननीय और दार्शनिक होनेके कारण नीरस हो चले हैं और इस दृष्टिसे उपन्यासोका भविष्य उज्वल नही प्रतीत होता।

प्रेमचन्द

नागरीमे लेखन-कार्य आरम्भ करनेके पूर्व प्रेमचन्दजीने उर्दूमे उपन्यास और कहानियाँ लिखकर पर्याप्त यश अर्जित किया था। नागरीमे कुछ कहानियाँ लिखनेके पश्चात् इन्होने अपना पहला उपन्यास

सेवासदन प्रकाशित किया। सेवासदनके प्रकाशित होनेके पश्चात् प्रेमचन्दजीकी धाक इस क्षेत्रमें जम गई और दिन-दिन उन्हें प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त होता गया। सेवासदनमें सामाजिक कुरीतियों विशेषकर दहेज प्रथा का विरोध किया गया है। इसके पश्चात् प्रेमाश्रममें गाँवोंके दीन-हीन किसानोंपर जमींदारों-द्वारा होनेवाले अत्याचारोंका वर्णन किया गया है। इसके अनन्तर रंगभूमिमें दो कथाएँ साथ-साथ चलती हैं जिनमें एक कथा तो अत्यन्त उत्कृष्ट है जिसका नायक सूरदास है। किन्तु दूसरी कथा अनावश्यक और निकृष्ट है। तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति और राजनैतिक स्थितिकी इसमें स्पष्ट प्रतिध्वनि है। कथावस्तु, चरित्र चित्रण तथा रचना-कौशल आदि दृष्टियोंसे यह उपन्यास उत्कृष्ट कोटिका है। रंगभूमिके पश्चात् उन्होंने कर्म भूमि कायाकल्प निर्मला प्रतिज्ञा और गबनकी रचना की। गबन तात्कालिक महत्त्वका उपन्यास है। प्रेमचन्दका सर्वोत्कृष्ट उपन्यास गोदान है। यही इनकी अन्तिम कृति भी है जिसमें ग्राम-जीवनकी समस्याओं के बीच होरीका चरित्र अत्यन्त उदात्त चित्रित हुआ है। गोदान विश्व-साहित्यकी अनूठी कृति है। इन सभी उपन्यासोंमें प्रेमचन्दजीने उपदेष्टाका रूप नहीं छोड़ा और उपन्यासोंकी आवश्यकताएँ अधिक बढ़ा दिया। प्रेमचन्दजीका उपन्यास लिखनेका ढंग बड़ा विचित्र था। वे अंग्रेजीमें कथा-सूत्र बनाते थे उर्दूमें लिखते थे और फिर उसे हिन्दीमें रूपान्तरित करते थे। वे बाबू प्रेमचन्दके नामसे लिखते थे। उनका नाम वास्तवमें धनपतराय था। जब उन्होंने श्री कन्हैयालाल मुन्शीके साथ बम्बईमें हंस नामक मासिक पत्र निकाला तब उसपर सम्पादक मुन्शी—प्रेमचन्द लिखा जाता था जो द्वन्द्व समास था। पीछे अज्ञानतावश लोगोंने कन्हैयालाल मुन्शीके मुन्शी शब्दको प्रेमचन्दजीके कायस्थ होनेके कारण उनका जाति-विशेषण बना कर बाबू प्रेमचन्दको मुन्शी प्रेमचन्द कहना और लिखना प्रारम्भ कर दिया।

प्रेमचन्दजीके उपन्यासोंकी व्याप्ति पूरे मानव-जीवन तक है। इन्होंने अपने उपन्यासोंमें ग्रामीण समाजका चित्रण बड़े विस्तारके साथ किया है। इनके उपन्यासोंमें मानव-समाजका चित्रण जितने विविध रूपों और विविध परिस्थितियोंके प्रकाशमें किया गया है उतना कम लोगोंने किया है। नगरोंकी अपेक्षा ग्राम इन्हें अधिक प्रिय थे। क्योंकि वे स्वयं मूलतः लमही ग्रामके निवासी थे। समाजके निम्नस्तरवालोंके साथ और आर्य समाजके प्रभावके कारण अस्पृश्यों और विधवाओंके साथ लेखककी सहानुभूति और ब्राह्मणोंके प्रति विरोध-वृत्ति बराबर रही है। अपनी इस विचारधाराके कारण ही वे मानववादियों तथा प्रगतिशीलोंका साथ करते हुए तथ्यवादी लगते हैं किन्तु वे आदर्शवादी मुख्य थे इसलिये उनकी कृतिको लोगोंने आदर्शोन्मुख यथार्थ वादका घामक नाम दिया है। वस्तुस्थिति यह है कि समाजके निम्नस्तरवालोंके प्रति इनके मनमें सहानुभूतिका जो भाव है वह राष्ट्रीय आन्दोलन और तत्कालीन जन-भावनाके कारण उत्पन्न है किसी सैद्धान्तिक वादसे प्रेरित होकर नहीं जैसा प्रगतिवादी कहते हैं। ये मूलतः आदर्शवादी हैं और भारतीय आदर्शकी अपनी आर्य समाजी और राष्ट्रीय भावनाके अनुसार ही इन्होंने सारे चित्र खड़े किए हैं। गाँधीवादकी प्रतिध्वनि इनकी कृतियोंमें बराबर मिलती है और लगता है कि लेखककी दृष्टिमें मानव समाजके उत्थानका वही एक मात्र उपाय है। इनके उपन्यासोंमें शुद्ध आदर्शवाद ही व्याप्त है। जो लोग उसमें तथ्यवादकी खोज करते हैं वे सम्भवतः यह नहीं जानते कि मानव जीवनका सूक्ष्म पर्यवेक्षण करनेवाला कोई भी उपन्यासकार स्वभावतः सामाजिक उपन्यासोंमें अपने युगके समाजके व्यक्तियों और वस्तुओंका स्पष्ट तथा यथार्थ चित्र उतारता है। प्रेमचन्दजीने मनुष्यकी आन्तरिक प्रवृत्तियों और मनोवेगोंके द्वन्द्वोंके उद्घाटनकी कभी चेष्टा

नही की। सामाजिक-जीवनको आधार वनाकर वाह्य द्वन्द्वपर ही इन्होने लेखनी चलाई और उसमें ये पूर्ण रूपसे सफल हुए। विविध पात्रोंके पद-प्रेम परिस्थितियोके अनुसार स्वाभाविक लोक-सिद्ध सम्वादोंके कारण प्रेमचन्दजीकी भाषामें ओज, प्रवाह और शक्ति आ गई है।

जयशकर प्रसादने भी 'ककाल' और 'तितली' नामक दो उपन्यास लिखे हैं, किन्तु ये वहुत अच्छे नही वन पडे। सुदर्शनपर तो प्रेमचन्दजीकी स्पष्ट छाप है। किन्तु प्रसादजीने भाषाके सम्वन्धमे अपनी अलग सस्कृतनिष्ठ शैलीका प्रयोग किया। रईसोके जीवनका चित्रण करनेवाला प्रताप नारायण श्रीवास्तवका 'विदा' उपन्यास भी अपने ढगका अच्छा उपन्यास है। पाण्डेय वेचन शर्मा उग्रका 'चन्दहसीनोंके खतूत, 'दिल्लीका दलाल' और 'वुधुआकी वेटी' की भी कुछ दिनतक वडी धूम रही किन्तु इन्होने मनुष्यकी पशु-प्रवृत्तियोके वर्णनसे अपनी कथाएँ सजाई इसलिए वह भले लोगोके पढनेके योग्य नही रह गए। फिर भी उनका कथा कहनेका ढग वहुत अद्‌भुत है और भाषामें वडा ओज, प्रवाह और प्रभाव है। जैनेन्द्रकुमारने 'परख' और 'सुनीता' आदि उपन्यास लिखकर हिन्दीमें मनोवैज्ञानिक उपन्यासोका श्री गणेश किया किन्तु जैनेन्द्रकी भाषा वडी कुण्ठित और प्राणहीन है।

ऐतिहासिक उपन्यासोमें वृन्दावनलाल वर्माकी 'मृगनयनी', 'झाँसीकी रानी', 'गढकुण्डार', 'विराटाकी पद्‌मनी' अधिक प्रसिद्ध है। इमकी भाषामे प्रवाहका अभाव है, कल्पना प्रभूत है। कृष्णकान्त मालवीयका 'सिहगढ विजय' भी अच्छा ऐतिहासिक उपन्यास है।

भगवती चरण वर्माका 'चित्रलेखा', 'टेढेमेढे रास्ते', और 'तीन वर्ष' तथा इलाचन्द्र जोशीका 'सन्यासी', 'सुवहके भूले', 'जिप्सी' 'जहाजका पछी' आदि अच्छे उपन्यास है।

चतुरसेन शास्त्रीने भी आँखकी किरकिरी, 'हृदयकी परख', 'वैशालीकी नगर वधू' आदि कई अच्छे उपन्यास लिखे है।

इधरके उपन्यासकारोमें यशपालको घटनागुम्फन तथा कथा कहनेके ढगमे अधिक सफलता मिली है। किन्तु यशपालमें सबसे वडा दोष यही है कि ये खुल्लमखुल्ला कम्यूनिस्ट-प्रचारक तथा काम-वासनाओंके चित्र-कारके रूपमे प्रकट होते है। 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही' आदि इनके इसी प्रकारके उपन्यास है। अमृतलाल नागरके उपन्यास भी नवीन वादोकी वात्यामें उलझे हुए है।

प्रेमचन्दको छोडकर कम उपन्यासकारोमे भाषा शैलीका ध्यान रखा गया है। प्रसादजीकी भाषा भी अधिक सस्कृतनिष्ठ शैलीकी होनेके कारण सर्वसामान्यके लिये ग्राह्य नही हो सकी। ये लोग कथा सँवारनेके फेरमें पडे रहे। भाषापर किसीने ध्यान नही दिया।

हिन्दीके उपन्यास

ससारके सभी देशोमें कथाओका प्रचार आदि कालसे रहा है। इन कथाओमें अधिकाश काल्पनिक कथाओका प्रभुत्व रहा है। इन कथाओमें परियो, भूत-प्रेतो, दैत्यो और राक्षसोकी कथाओके साथ-साथ देवी-देवताओ और अदृष्ट शक्तियोका वर्णन अधिक होता था जो प्राय भले आदमियोकी सहायता और दुष्टोको दण्ड देनेके लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहती है। हमारे यहाँ इसीलिए कथाओके दो प्रकार निश्चित हुए—१ आख्यायिका, जो सत्य घटनापर आश्रित हो और २ कथा, जो कल्पित घटनापर अवलम्बित

हो। किन्तु इन कथाओंके साथ-साथ कुछ साहित्यिक स्वरूप भी विकसित हुए—जैसे संस्कृतमें कादम्बरी सम्भवतः इसीलिए महाराष्ट्रमें उपन्यासको कादम्बरी ही कहते हैं। जैसे पहले राज-सभाओं या गाँवोंकी चौपालोंमें कहानी कहनेवालोंकी कहानियाँ सुननेके लिए लोग एकत्रित हुआ करते थे और सब कुछ भूलकर अत्यन्त रुचिपूर्वक कहानियाँ सुनते थे वैसे ही आजकल लोग उपन्यास पढ़ते हैं। जिनमें कुतूहल निर्वाहके अतिरिक्त मानसिक व्यसन की मात्रा अधिक होती है। इस प्रकारकी रचनाको अंग्रेजीमें नॉवेल फ्रान्सीसीमें रोमा मराठीमें कादम्बरी और हिन्दी तथा बँगलामें उपन्यास कहते हैं।

कथाकी दृष्टिसे वर्तमान उपन्यासोंको निम्नांकित वर्गोंमें विभक्त कर दिया गया है—सामाजिक, मध्यवर्गीय मनोवैज्ञानिक स्थानीय-चित्रण-मुक्त अपराध-चित्रक और भावावेगपूर्ण किन्तु ये भेद न पर्याप्त हैं और न अन्तिम। इनके अतिरिक्त भी ऐतिहासिक विवरणात्मक नाटकीय पत्रात्मक भावुकतापूर्ण जासूसी वैज्ञानिक कमिक प्रमाणपूर्ण (डॉक्युमेंटरी) तथा भीली पोथी (पैनी ड्रेडफुल शिलिंग-शॉकर क्ष्युबुक डाइम नावेल या यलोबैक) आदि अनेक भेद किए गए हैं और किए जाते रहेंगे। अभी हिन्दीमें इतने प्रकारके भेद दृष्टि-गोचर नहीं होते।

उपन्यास कौशलके आचार्योंने उपन्यास रचनाके सम्बन्धमें कुछ सिद्धान्त निर्धारित किए हैं। उनका कहना है कि उपन्यास किसी अत्यन्त प्रभावशाली स्थलसे आरम्भ करना चाहिए। २—इसमें ऐसा आधार स्थल (पकड़ या खूँटा) होना चाहिए जिसके आधारपर सम्पूर्ण कथा सधाश्रित होती हो और जिसके परिणामके लिए पाठक साँस रोककर उत्सुकता पूर्वक व्यग्र रहे। ३—प्राय उपन्यासका आरम्भ मूल कथाके बीचसे किया जाय और फिर पहलेकी घटना प्रत्यावर्तन कौशल (फ्लैश बैक या कट बैक टेक्नीक) से दिखा दी जाय। ४—उपन्यासमें सत्यता या सत्यतुल्यता (वैरीसिमिलिट्यूड) होनी चाहिए। ५—इसमें काव्य-न्याय (पोएटिक जस्टिस) होना चाहिए अर्थात् अपराधीकी विजय और सज्जनकी पराजय नहीं दिखानी चाहिए। वरन् अपराधीको दण्ड और सज्जनकी विजय दिखानी चाहिए। ६—चरमोत्कर्ष दिखानेसे पहले ऐसा विश्राम या मध्यान्तरका स्थल प्रस्तुत करना चाहिए जहाँ चरमोत्कर्षके लिए पूरी तैयारी दिखा दी जाय और पाठकके मनमें अत्यन्त वेगपूर्ण उत्सुकता और कुतूहल उत्पन्न कर दिया जाय। उपन्यासमें मनोवैज्ञानिक क्षणकी भी योजना करनी चाहिए जहाँ पाठक किसी विशेष घटनाकी आशा करे और वह घटना हो जाय। ८—इसके साथ ही उत्कण्ठित प्रत्याशा (पौज्ड एक्सपेक्टेन्सी) का भी आयोजन किया जाय जहाँ पाठक हृदयकी धुक-धुकीके साथ आकस्मिक दुर्घटनाके आनेवाले परिणामकी प्रतीक्षा करे। यह परिणाम कभी तो अनिश्चित रहता है और कभी पहलेसे कल्पित कर लिया जाता है किन्तु यह निश्चय नहीं होता कि परिणाम कब होगा। दीप्त दयनीय उत्कण्ठा (आयरौनिक सस्पेन्स) का स्थल वह होता है जहाँ पाठकके मनमें नायक पर आनेवाली विपत्ति पहलेसे जान लेनेके कारण यह इच्छा होती है कि क्यों न मैं जाकर नायकको बता दूँ कि यह घटना होनेवाली है। इस उत्कण्ठित प्रत्याशाके लिए ऐसी परिस्थिति या घटनाओंका संयोजन किया जाता है जो स्वाभाविक सम्भावनीय और अपरिहार्य हो। उपन्यासमें चरमोत्कर्षका क्षण ऐसा घनिष्ठाकी होना चाहिए कि उसके पश्चात् जो कथाकी धारा वेगपूर्ण घुमावके साथ दूसरी ओर घूमे वह आवश्यक और अनिवार्य प्रतीत हो बलपूर्वक लाई हुई नहीं। इस चरमोत्कर्षको पुष्ट करनेके लिए प्रवृत्ति (मोटिवेशन) अर्थात् परिस्थितियोंका समन्वय उत्पन्न किया जाता है जो अतीतकी घटनाओंसे विवेकपूर्ण

आधार देकर पात्रोके कार्योको प्रशसनीय वना देती है। उपन्यासमें कभी न तो भविष्यवाणी करनी चाहिए न भविष्यमे होनेवाली घटनाकी सूचनाका सकेत करना चाहिए। उपन्यासमे विनोद-तत्व पर्याप्त मात्रामें होना चाहिए जो पाठकको आगे पढनेके लिए प्रेरणा देता रहे। उपन्यासमे कुतूहलका तत्त्व आदिसे अन्ततक व्याप्त होना चाहिए। उपन्यासके वर्णनकी भाषा-शैली मनोहर, कलात्मक, सर्वबोध्य, मुहावरेदार और सूक्ष्म वर्णनसे युक्त होनी चाहिए। यह वर्णन उतना ही हो जितना कथाके प्रवाहको आगे वढाने और पात्रोका चरित्र, स्पष्ट करनेमें सहायक हो। सम्वादकी भाषा-शैली प्रत्येक पात्रकी योग्यता, मन स्थिति और परिस्थितिके अनुकूल हो। उपन्यासमें अधिक एक रस (फ्लैट) या स्थिर (स्टैटिक) चरित्र वाले पात्र नही लेने चाहिए, गतिशील (डायनॉमिक) लेने चाहिए जिनके जीवनमे परिस्थितियो और चारित्रिक गुणोका पर्याप्त उतार-चढाव हो। किसी भी उपन्यासमें पात्रोका मृत्यु द्वारा अन्त करा देना उपन्यासकारकी दुर्वलता और कलाहीनताका परिचायक होता है। उपन्यासकारको अपने उपन्यासका अन्त ऐसा करना चाहिए कि उपन्यासके परिणामसे पाठकको मानसिक सन्तोष और नैतिक तृप्ति प्राप्त हो।

इन सिद्धान्तोके अनुसार यदि उपन्यास लिखे जाएँ तो निश्चय ही सफल और शक्तिशाली सिद्ध होते है।

वैदिक कहानियो, महाकाव्य तथा पुराणकी कथाओ, जातक कथाओ तथा अन्य प्रकारकी कथाओ-का युग सस्कृतके साथ समाप्त हो गया या यो कहना चाहिए कि सस्कृतमे ही रह गया। प्रारम्भिक युगमें हिन्दीमे जो कथाएँ कही गई उनमे अधिकाश या तो प्रेमाख्यानके रूपमे थी अथवा सिहासन-बत्तीसी अथवा बैताल पचीसीके रूपमें सस्कृतके अनुवादके रूपमे थी। भारतेन्दुसे पूर्वकी इन कथा-पुस्तकोमें रानी केतकी की कहानी, प्रेम सागर, बैताल पचीसी, सिहासन वत्तीसी, किस्सा तोता मैना, किस्सा साढे तीन यार, चहार, दर्वेश, वागो वहार, किस्सा हातिमताई, माधवानल, कामकन्दला, शकुन्तला आदि मुख्य है। उस समय अधिकाश लोग पढे लिखे नही थे। गाँवमे एक आध पढे-लिखे सज्जन पोथी लेकर बैठ जाते थे और अन्य लोग उनके मुखसे पढी हुई कहानी सुनते, बीच-बीचमें हुँकारी भरते और टिप्पणी करते चलते थे। हिन्दी उपन्यासोका श्री-गणेश भारतेन्दुने ही 'कादम्वरी' और 'दुर्गेश-नन्दिनी' का अनुवाद कराकर किया। उनके मौलिक उपन्यास 'एक कहानी कुछ आप बीत कुछ जग बीतीका कुछ अश कवि वचन-सुधामे प्रकाशित हुई थी जिसमें उन्होने स्वय अपना आत्म-चरित्र लिखना प्रारम्भ कर दिया था। उनके अनुरोधसे राधारानी, स्वर्णलता, चन्द्रप्रभा और पूर्ण प्रकाशका भी अनुवाद कराया गया था। उन्होने एक नवीन उपन्यास 'वीर हठ' भी प्रारम्भ किया था किन्तु वह पूर्ण न हो सका, यहाँ तक कि उसे पूर्ण करनेका सकल्प करनेवाले श्री-निवास और प्रतापनारायण मिश्र भी उसे अधूरा छोडकर चल बसे। उनकी प्रेरणासे गोस्वामी राधाचरणने 'दीप-निर्वाण' और 'सरोजिनीका गदाधर सिंहने 'कादम्बरी' का और 'दुर्गेश नन्दिनी, रमाशकर व्यासने 'मधुमती' और राधाकृष्ण दासने 'स्वर्णलता' का अनुवाद किया था। इन उपन्यासोमें तत्कालीन समाज और व्यक्तियोका व्यग्यपूर्ण, रोचक और सूक्ष्म चित्रण करनेका प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया था। किन्तु यह प्रयास ज्योका त्यो पडा रह गया क्योकि देवकी नन्दन खत्री, गोपाल लाल गहमरी और किशोरीलाल गोस्वामीने जो अनक उपन्यास लिखे उनमें विनोद और घटनाओकी महत्ता अधिक थी, सामाजिक जीवनका चित्रण करने-की पूर्णत शून्य। तत्कालीन उपन्यासोको सामाजिक, ऐतिहासिक, जासूसी, ऐयारी, तिलस्मी और भाव-

प्रधान पाँच वर्गोंमें विभक्त कर सकते हैं। सामाजिक उपन्यासोंमें लाला श्रीनिवासदासका परीक्षा गुरु बालकृष्ण भट्टका नूतन ब्रह्मचारी तथा सौ अजान एक सुजान अमृतलाल चक्रवर्तीका सती सुखदेवी लोचनप्रसाद पाँडेयकी दो मित्र और लज्जाराम शर्माका आदर्श दम्पति तथा 'बिगड़ेका सुधार' जगत चन्द्र रमोलाका सत्य प्रेम' प्रसिद्ध हैं जिनमें सामाजिक कुरीतियों आदिका विरोध आदर्श गृहिणी मित्र चरित्र बल सत्यपालन आदिका निरूपण किया गया है। गोपाल राम गहमरीके नए बाबू में विधवा विवाह और स्त्री-स्वातन्त्र्यकी निन्दा की गई है उन्होंने सास-पतोहू बड़ा बीवी देवरानी-जेठानी दो बहन तीन पतोहू आदि कुछ ऐसे भी उपन्यास लिखे जिनका सम्बन्ध पारिवारिक जीवनसे है। इस कालके सामाजिक उपन्यासमें प्रेमकी अधिक प्रधानता है विशेषतः किशोरीलाल गोस्वामीके अंगूठीका नमूना चन्द्रावली लीलावती और चन्द्रिकामें गौरीशंकर पोद्दारके प्रणयी माधवमें हरिप्रसाद जिज्ञासुके धीमा और काम कन्दला आदि उपन्यासोंसे प्रेम कथाओंका ही चित्रण है। जिस रूपमें प्रेमचन्दजीने अपने उपन्यासोंमें सामाजिक समस्याओंका विश्लेषण किया उसका इन उपन्यासोंमें पूर्ण अभाव है।

देवकीनन्दन खत्रीने चन्द्रकान्ता और चन्द्रकान्ता सन्तति (१८९७) की रचना तिलस्मी (चमत्कार पूर्ण घटनाओंसे ओत प्रोत) ढंगसे की है। उन्हींसे प्रेरणा पाकर गोपालराम गहमरीने जासूसी उपन्यास लिखे। जैसे एडगर ऐलिन पो आर्थर कौनन डायल तथा वायकी कौलिन्स आदिने अँग्रेजीमें लिखे थे। किशोरीलाल गोस्वामीने लवंग लता कुसुमकुमारी चपला शाही महल तारा राजकुमारी आदि प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। जिनमें प्रेम-प्रसंग अधिक वासनात्मक तथा नग्न हो गए हैं। बलदेव प्रसाद मिश्र गंगा प्रसाद गुप्त जयराम दास गुप्त बलभद्र दुर्गादास खत्री आदि अनेक उपन्यासकारोंने ऐतिहासिक उपन्यासोंकी रचना की। ठा जगमोहन सिंहने सौन्दर्य उपासक राधाकान्त राजेन्द्र मालती चैत ब्रजनन्दन शिथिल भाव प्रधान उपन्यास लिखे जिनमें घटना और चरित्र दोनों निष्प्राण हैं और भाषा भी अत्यधिक आलंकारिक हो गई है।

इस युगके अन्य उपन्यासकारोंमें देवदत्तका मदन मित्र राम कृष्णका सुभाषा शालिग्राम प्रसाद शर्माका दीनानाथ चण्डीप्रसादका असार मदनरामका प्रेम सालिग्राम नारायण पाण्डेका 'अपरा जिता' राम नरेश त्रिपाठीका मारवाड़ी और पिशाचिनी जगन चन्द्र रमोलाका 'सत्य प्रेम योगेन्द्रनाथका मानसी हरकृष्ण पाठकका भारत माता राधा प्रसादका अघोरी सामाजिक उपन्यासोंमें उल्लेखनीय है। ऐतिहासिक उपन्यासोंमें बलदेवप्रसाद मिश्रका अनाराकली पृथ्वीराज चौहान और पानीपत गंगा प्रसाद गुप्तका नूरजहाँ तथा वीर पत्नी कुमार सिंहका सेनापति पूनामें हलचल और हमीर, मथुरा प्रसाद शर्माका नूरजहाँ लालजी सिंहका वीरबाला जैनेन्द्र किशोरका गुलेनार जयरामदासका काश्मीरका पतन रंगमें भंग माया रानी नवाबी परिस्तान कलावती तथा मल्लिका और बीवी प्रमुख हैं।

तिलस्मी उपन्यास-लेखकोंमें देवकीनन्दन खत्री और हरेकृष्ण जौहर ही प्रमुख हैं। जासूसी उपन्यास-लेखकोंमें गोपालराम गहमरी ईश्वरी प्रसाद शर्मा जयरामदास गुप्त और माधव केसरी आदि प्रसिद्ध हैं।

प्रेमचन्द

इस युगमे बँगला, गुजराती मराठी अँग्रेजी और सस्कृतकी कथाओ और उपन्यासोमे बहुत अनुवाद हुए और उर्दूका रूपान्तर भी। इस प्रकार प्रेमचन्दसे पूर्व उपन्यासके क्षेत्रमें विविध भाषा-शैलियो और कथा-शैलियोमें अनेक उपन्यास लिखे जा चुके है।

प्रेमचन्द

प्रेमचन्द (धनपतराय) ने उर्दू नवाबरायके नामसे अपनी रचनाएँ विशेषत कहानियाँ प्रारम्भ की और फिर हिन्दीमे प्रेमचन्दके नामसे लिखना प्रारम्भ किया वे अपने उपन्यासोकी सूत्र-योजना अँग्रेजीमे बनाते थे, उर्दूमे लिखते थे और हिन्दीमें उसका रूपान्तर करते थे। उनके समयमे भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन अपनी पराकाष्ठापर पहुँच गया था। उनसे पूर्व राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्दने ब्रह्म-समाज और आर्य समाजके द्वारा सामाजिक सुधारका आन्दोलन खडा कर दिया था। जमीदारोका किसानोपर अत्याचार चरम सीमा तक पहुँच गया था। समाजमे चारो ओर सामाजिक और आर्थिक कारणोसे जो अनेक प्रकारकी विषमताएँ व्याप्त हो गई थी उन्हे दूर करनेके उपाय व्यापक रूपसे होने लगे थे। इस सम्पूर्ण सामग्री-को लेकर प्रेमचन्दजी और उनके समयके लेखकोने अपनी रचनाएँ प्रारम्भ की। इस युग (१९१५–१९४०) के बीच अवध नारायणने 'विमाता', श्रीनाथ शास्त्रीजीने 'मँझली बहू', विश्वम्भर नाथ शर्माने 'माँ', शम्भु दयाल सक्सेनाने 'बहूरानी', केशव चरण जैनने 'भाई' और सियाराम शरण गुप्तने 'याद' आदि पारिवारिक समस्याओपर उपन्यास लिखे। तत्कालीन नारी-समस्याको लक्ष्यकरके प्रेमचन्दने युवती विधवाके लिए सेवाका निर्देश करते हुए 'प्रतिज्ञा' उपन्यास लिखा। इसी धारामे चतुरसेन शास्त्रीने अमर अभिलाषा, तेज रानी दीक्षितने हृदयका काँटा', चन्द्र शेखर शास्त्रीने 'विधवाके पत्र', जैनेन्द्रने 'परख' और तपोभूमि', प्रसादने 'ककाल' और भगवती प्रसाद बाजपेयीने 'पतिताकी साधनामें विधवाओकी समयाओपर विचार किया है। इसी प्रकार प्रेमचन्दने 'सेवा सदन' और 'गबन' में कौशिकने 'माँ' में, ऋषभचरणने 'वेश्या पुत्र' में, उग्रने 'शराबी' में, और निरालाने 'अप्सरा' में वेश्या-जीवनका चित्रण और तत्सम्बद्ध समस्याओका समाधान किया है। अनमेल विवाहकी समस्यापर प्रेमचन्दने 'निर्मला' और 'कायाकल्प' मे, श्रीनाथ सिंहने 'क्षमा' में, भगवती प्रसाद वाजपेयीने 'मीठी चुटकी और 'अनाथ' पत्नी' मे और मुक्तने 'तलाक' में विस्तृत विचार किया है। भारतीय नारी समाजका किस प्रकार शोषण होता है, अनाथालयो तथा विधवा-श्रमोमें उनपर किस प्रकार भीषण अत्याचार होता है, इसका चित्रण उग्रने अपने 'दिल्लीके दलाल' 'बुधुवाकी बेटी' और 'शराबी' में, चतुरसेन शास्त्रीने हृदयकी परख' और 'व्यभिचार' में ऋषभचरण जैनने 'दिल्लीका व्यभिचार', 'दिल्लीका कलक और 'दुराचार' शीर्षक उपन्यासमें किया है। प्रबुद्ध नारीके जीवनके सम्बन्धमें प्रेमचन्दने रगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि, गोदान, मालती और बिदामें अच्छा चित्रण किया है। वृन्दावनलाल वर्माके गढ कुडार, प्रेमकी भेंट, कुडली-चक्र और विराटाकी पद्मिनीमें, उग्रके 'चन्द हसी-नोके खतूत' में और निरालाकी निरुपमामे स्वैरवादी (रोमानी) प्रेमका चित्रण हुआ है। प्रेमचन्दने भी अपने रगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि तथा गोदानमें तो इस प्रकारके स्वैरवादी प्रेमकी असफलता दिखाई है किन्तु केवल उनके गोदानमें मालती और मेहताका प्रेम अन्तमें विवाहके रूपमें परिणत हुआ। लेकिन कौशिक ने भी अपने 'विहारिणी' उपन्यासमें इसी प्रकारके स्वैरवादी प्रेमकी असफलता व्यक्त की है।

पूँजीपतियों और जमींदारोंके अत्याचार और शोषण तथा सूदखोर महाजनों द्वारा ग्रामीणोंके शोषणकी कथाओंके भी अत्यन्त यथार्थ चित्रण प्रेमचन्दके प्रेमाश्रम रंगभूमि कर्मभूमि और गोदान आदि उपन्यासोंमें शिव पूजन सहायके देहाती दुनियामें ऋषभचरण जैनके सत्याग्रह और भाई में निराला के अलका में प्रसादकी पुतली में और श्रीनाथ सिंहके जागरण में अधिक व्यक्त रूपसे चित्रित हुए हैं। अन्ध-विश्वास अशिक्षा तथा अन्य धार्मिक सामाजिक वैयक्तिक हीनताओंपर प्रसादने कंकाल और तितली मे सियाराम शरण गुप्तने गोद तथा अन्तिम आकांक्षा में निरालाने अप्सरा और अलका में वृन्दावन लालने प्रेमकी भेंट और कुण्डली चक्रमें धार्मिक आडम्बर, पण्डे पुरोहित ओझा साधु फकीर आदिके हथकण्डों और भोली जनताकी मूर्खताओंका बड़ा विशेष चित्रण किया है। इसी युगमें जी पी श्रीवास्तव तथा अन्नपूर्णानन्दने अत्यन्त व्यंग्य प्रधान हास्यात्मक उपन्यास लिखे हैं।

यद्यपि किशोरीलाल गोस्वामीने ऐतिहासिक उपन्यास लिखने प्रारम्भ कर दिए थे। किन्तु उनमें यथार्थ चित्रणका सर्वथा अभाव था। ब्रजनन्दन सहायने (१९१६ में) लाल चीन उपन्यासकी रचना की। इनके अतिरिक्त मुरारी लाल पण्डितने विचित्र-वीर्य दुर्गादास खत्रीने अलगपाल मिश्र-बन्धुने वीर मणि गोविन्द वल्लभ पन्तने 'सूर्यास्त' विश्वम्भरनाथ जिज्जाने 'तुर्क तरुणी' ऋषभ चरण जैनने 'गदर' और कृष्णानन्दने केम नामक उपन्यास लिखे थे। इसी युगमें आचार्य रामचन्द्र शुक्लने राखालदासके करुणा और शशांक उपन्यासोंके अनुवादोंको प्रस्तुत किया। उसके पश्चात् वृन्दावन लाल वर्माने गढ़-कुण्डार, विराटाकी पद्मिनी मुसाहबजू झाँसीकी रानी लक्ष्मी बाई, कचनार १७१९, महादजी सिन्धिया टूटे काँटे और मृग नयनी नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। और भगवती चरण वर्माने चित्रलेखाकी रचना की।

प्रेमचन्दजीके उपन्यासोंको लोग आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहते हैं किन्तु उन्हें जानना चाहिए कि असाधारण यथार्थ ही आदर्श होता है। अतः आदर्शोन्मुख भी शुद्ध यथार्थवाद ही है। इस प्रकारके असाधारण यथार्थवादका चित्रण प्रसादकी तितली मे तथा कौशिक वृन्दावन लाल वर्मा तथा ऋषभ चरण जैन आदिकी प्रारम्भिक कृतियोंमें तथा जैनेन्द्र के परख मे चित्रित हुआ है। प्रेमचन्दजीके आदर्शवादके सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि उन्होंने आदर्श और यथार्थका समन्वय किया। यह वास्तवमें सत्य नहीं है। उन्होंने कोई समन्वय किया ही नहीं। उन्होंने यथार्थके आधारपर वास्तविक जीवनके आदर्श व्यक्तित्व को चित्रित किया है जो सामान्य जीवन स्तरसे ऊँचे गए हैं। इसीको भ्रमसे बहुतसे विद्वानोंने आदर्शोन्मुख यथार्थ वाद कह डाला है।

प्रेमचन्दने प्रायः समाज और देशकी सभी समस्याओंको सामने रखनेका प्रयत्न किया किन्तु उनके उपन्यासोंमें भी सम्पूर्ण देशके समाजका चित्रण न होकर केवल उसी समाजका चित्रण हुआ है जिसमें वे निवास करते थे और जिसका उन्हें पूर्ण और गहरा अनुभव था। उनके उपन्यासोंमें वरदान प्रतिज्ञा सेवा-सदन निर्मला गबन और गोदान का सम्बन्ध सामाजिक और पारिवारिक जीवनके चित्रणसे है। प्रेमाश्रम रंग भूमि कायाकल्प और कर्मभूमिमें सामाजिक और पारिवारिक जीवनका चित्रण तो है ही साथ ही समकालीन आन्दोलनोंकी भी छाप है। प्रेमाश्रममें जमींदार और किसानका संघर्ष चित्रित किया गया है। रंगभूमिमें पूँजीवाद जमींदारी-वाद आदि शोषक वर्गोंके विरुद्ध स्वर ऊँचा गया है। कायाकल्पमें हिन्दू मुस्लिम द्वन्द्व मजदूर-किसान आन्दोलनके साथ-साथ पुनर्जन्मके सिद्धान्तका विवेचन हुआ है और कर्म भूमिमें अछूतोद्धार

आन्दोलन तथा लगान वन्दी आन्दोलनकी झाँकी दी गई है। यद्यपि प्रेमचन्दके उपन्यास अस्वाभाविक रूपसे वडे हो गए है, घटनाओ का भी पिष्ट-पेषण हुआ है, पात्रोके चरित्रोका भी अन्तिम निर्वाह ठीक नही हुआ किन्तु अपनी भाषाके सरस और सरल प्रवाहके तथा मुहावरोके प्रयोगके कारण ये सवसे अधिक प्रसिद्ध हुए। अध्यापक होनेके कारण उनकी प्रवृत्ति स्वभावत उपदेश देनेकी थी इसलिए उनके उपन्यासोमे स्थान-स्थान पर इस प्रकारके उपदेशोका होना कोई आश्चर्यकी वात नही है।

जयशंकर प्रसाद

प्रसादने अपने ककाल (१९२९) मे प्रयाग, काशी, हरिद्वार, मथुरा और वृन्दावन आदि धर्म-स्थानो-मे धर्मकी आडमे पापाचरण करनेवालोका विस्तृत चित्रण किया है जिसमें एक भी पात्र असली माता-पिताका नही है। उनके दूसरे उपन्यास 'तितली' (१९३४) में प्रेमका आदर्श स्वरूप चित्रित करनेका प्रयत्न किया गया है किन्तु यह उपन्यास वहुत अच्छा नही हो पाया है। पात्रोका चयन और चित्रण दोनो वडी शिथिलताके साथ किये गए है।

वृन्दावनलाल वर्मा

वृन्दावनलाल वर्माने यद्यपि सामाजिक नाटक भी लिखे किन्तु उनकी प्रसिद्धि अग्राकित ऐतिहासिक उपन्यासोंके कारण ही हुई। गढकुण्डार, विराटाकी पद्मिनी, झाँसीकी रानी, मुसाहिव जू, कचनार, सत्रह सौ उन्नीस, माधवजी सिन्धिया, मृगनयनी, टूटे काँटे, अहल्यावाई, और भुवन विक्रम। सामाजिक उपन्यासोंमें—सगम, लगन, प्रत्यागत, कुण्डली-चक्र, प्रेमकी भेंट, अचल पेमेरा कोई और अमर वेल प्रसिद्ध है। वर्माजीके उपन्यासोमें स्थानीय चित्रण वहुत अच्छे है। चरित्रोके स्वरूप भी ऐतिहासिक उपन्यासोमें सावधानीसे सम्हाले गए है किन्तु भाषामे जो शक्ति होनी चाहिए उसका अभाव खटकता है। उनकी भाषामे न चुस्ती है, न ओज है, न रोचकता है और प्रवाह है किन्तु सरलता अवश्य है।

चण्डीप्रसाद हृदयेश

साहित्यिक उपन्यासमे जिस प्रकार की ओज पूर्ण कलात्मक अलकृत भाषा होनी चाहिए, उसका प्रयोग यदि किसीने अपने उपन्यासोसे किया तो वह है चण्डीप्रसाद 'हृदयेश'। इनके दो उपन्यास हैं— मनोरमा और मगल-प्रभात, जिनकी वर्णन शैली वडी मोहक और अलकृत है किन्तु उनकी प्रवृत्ति भी उपदेश देनेकी अधिक थी। इसलिए बीच-बीचमें कथाकी धारा रोककर धार्मिक और दार्शनिक विवेचन स्थान-स्थानपर दे दिये गए।

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

कुछ लोगोने विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिकको प्रेमचन्दका अनुयायी कहा है किन्तु यह भावना अत्यन्त भ्रमपूर्ण है। कौशिकजी पहले उर्दूमें लिखते थे और फिर हिन्दीमें लिखने लगे। इसलिए स्वभावत उनकी भाषा अत्यन्त प्रवाहशील और मुहावरोसे पूर्ण होती थी। उन्होने सामाजिक उपन्यासोमें भावावेगोका

अधिक चित्रण किया है। उनके उपन्यासोंमें माँ और भिखारिणी दो प्रसिद्ध उपन्यास हैं जिनमेंसे पहले में पारिवारिक और सामाजिक जीवनका चित्रण किया गया है और भिखारिणीमें एक दुःखान्त प्रेम-कथा अंकित की गई है। माँ उपन्यासका अन्त भी दुःखपूर्ण करके उन्होंने उपन्यासका प्रभाव कुण्ठित कर दिया है। ये दोनों उपन्यास सुखान्त बनाकर अधिक रोचक सरस और प्रभावशाली बनाए जा सकते थे।

चतुरसेन शास्त्री

हिन्दीमें अत्यन्त वेगपूर्ण शैलीमें लिखनेका श्रेय चतुरसेन शास्त्रीको है जिनमें हृदयकी परख व्यभिचार, हृदयकी प्यास अमर अभिलाषा और आत्मदाह तो बहुत पहले ही प्रकाशित हो चुके थे। किन्तु उन्हें अधिक प्रसिद्धि वैशालीकी नगर-वधू के कारण प्राप्त हुई। इसके पश्चात् उन्होंने पूर्णाहुति रक्तकी प्यास बहते आँसू, नरमेध अपराजिता मन्दिरकी नर्तकी दो किनारे, वय रक्षामः सोमनाथ और आलमगीर नामकके उपन्यास लिखे। ये तीनों अन्तिम उपन्यास अत्यन्त उत्कृष्ट कोटिके हैं।

पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र

अत्यन्त नग्न यथार्थवादी या वास्तविकतावादी समाजके घृणित तथा बीभत्स पक्षोंके चित्रण का श्रेय प्राप्त किया पाण्डे बेचन शर्मा उग्रने निम्नांकित उपन्यास लिखकर— दिल्लीका दलाल चन्द हसीनोंके खतूत बुधुआकी बेटी शराबी और सरकार तुम्हारी आँखोंमें। इसके पश्चात् उनके जीजी उपन्यासमें आदर्शवादी चित्रण देखकर स्वभावतः आश्चर्य होता है। भाषामें उद्दाम गति और प्रवाह यदि किसीको देखना हो तो उन्हें उग्रजीकी रचनाएँ पढ़नी चाहिए।

ऋषभ चरण जैन

ऋषभ चरण जैनने सामान्य जनताकी मानसिक दुर्बलताओंका लाभ उठाकर उसे ही तृप्त करके द्रव्योपार्जन करनेकी वृत्तिसे अत्यन्त दरिद्र प्रकारके उपन्यास लिखे— मास्टर साहब वेश्या-पुत्र गदर, सत्याग्रह दुरंगेवाली भाग्य भाई, रहस्यमयी चाँदनी रात मधुकरी मन्दिर दीप मुसाफिरोंका चम्पाकली मयखाना दिल्लीका व्यभिचार हर हाइनेस तीन इक्के और दुराचारके अड्डे। भाषा भाव कथा और विषय निरूपण सभी दृष्टिसे ये उपन्यास दरिद्र हैं।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

सफल उपन्यास लिखनेके लिए यदि किसी लेखकको सम्मानके साथ स्मरण किया जा सकता है तो वे हैं व्यक्तिवादी उपन्यासोंकी परम्पराका प्रवर्तक और पोषण करनेवाले सामाजिक उपन्यासकार भगवती प्रसाद वाजपेयी जिनमें आदर्शवादी भावनाके साथ-साथ समाज और परिवारका अत्यन्त मार्मिक चित्रण है। उनके उपन्यासोंमें प्रसिद्ध हैं—मीठी चुटकी अनाथ पत्नी प्रेमपथ त्यागमयी पतिताकी साधना पिपासा दो बहनें त्यागमयी निमन्त्रण गुप्तधन चलते चलते पतवार, यथार्थसे आगे और सूनी राह। उनके प्रायः सभी उपन्यासोंमें अधिकांश प्रेमका चित्रण है। और उसीके सहारे सामाजिक समस्याओंके समाधानकी भी

योजना की गई है। पीछेके उपन्यासोमे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और पात्रोमे वैयक्तिकताकी विशेषता अधिक दिखाई पडती है।

जैनेन्द्रकुमार

जैनेन्द्र कुमारने मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखे है अर्थात् उन्होने कुछ पात्र लेकर उन्हे विशेष परि-स्थितियोमें ढालकर उन परिस्थितियोके प्रति उनकी मानसिक प्रतिक्रियोका दिग्दर्शन और विवेचन किया है और उन सबका समाधान किसी रूढ नैतिक आधारपर न करके मानवीय व्यापक भावनाके अनुसार किया है। उनकी सबसे वडी दुर्बलता उनकी भाषा है जो बहुत टूटी, उखडी और असम्बद्ध है। उनके उपन्यासोमें भाषा-की अशुद्धियाँ भी पग-पगपर मिलती है। परन्तु उनका प्रचार आवश्यकतासे इतना अधिक किया गया है कि उनकी प्रसिद्धि अधिक हो गई। उनके उपन्यासोमे 'परख, तपोभूमि, सुनीति, त्याग-पत्र, कल्याणी, सुखदा, विवर्त और 'व्यतीत' प्रकाशित हो चुके है। वे थोडेसे पात्रोको लेकर उनका आन्तरिक परीक्षण और विश्लेषण अधिक करते है।

भगवतीचरण वर्मा

भगवती चरण वर्माने पतन, चित्रलेखा, तीन वर्ष, टेढे-मेढे रास्ते और आखीरी दाँव नामक उपन्यास लिखे जिनमे सबसे अधिक प्रसिद्धि चित्रलेखाने पाई। उन्होने भी अपने युगके लेखकोके समान यथार्थवादी दृष्टिसे और उदात्त व्यापक मानवीय भावनासे सामाजिक समस्याओका समाधान किया है जिनके पात्रोमें स्वाभाविकता का पुट बहुत कम है किन्तु उनकी वर्णन शैली ऐसी रोचक है कि ये अस्वाभाविक पात्र खटकते नही और कथा पढते चलनेकी उत्कण्ठा बनी रहती है।

प्रतापनारायण श्रीवास्तव

प्रतापनारायण श्रीवास्तवने सरकारी अधिकारियोकी श्रेणीके लोगोका सामाजिक चित्रण अत्यन्त सफलताके साथ किया है। उनका 'बिदा' उपन्यास इस दृष्टिसे सर्वोत्कृष्ट है जिसमे उन्होने भारतीय आदर्श-की स्थापना पूर्ण रूपसे की है। इसके पश्चात् उनके 'विजय' और 'विकास' नामक दो और उपन्यास निकले किन्तु वे उतने सफल न हो सके, जितना 'बिदा'। कही-कही उनकी भाषा वडी अस्वाभाविक और आलकारिक हो गई है। साथ ही उसमें वह प्रवाह नही है जो कौशिक या प्रेमचन्दमें है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

निरालाजी कवि थे इसलिए स्वभावत इनके उपन्यासोमे काव्यत्व अधिक है और सच पूछिए तो साहित्यिक उपन्यासमें काव्यत्व होना ही चाहिए जिससे पाठक उसकी कथाका आनन्द लेनेके साथ-साथ भाषा शैलीका भी आनन्द ले। उन्होने अप्सरा, अलका, निरुपमा, प्रभावती, और बिल्लेसुर बकरिहा, चोटीकी पकड' आदि वहुतसे उपन्यास लिखे परन्तु इन सबमे 'निरुपमा' अत्यन्त सरस, रमणीय सजीव और नाटकीय परिस्थितियोंसे पूर्ण है। 'अप्सरा' उपन्यास दर्शन और काव्यसे लदा हुआ है। प्रभावती उपन्यास

ऐतिहासिक होते हुए भी ऐतिहासिकताकी शक्तिसे शून्य है। बिल्लेसुर बकरिहाम ग्रामीण व्यंग्यात्मक विनोदा विनोदपूर्ण वर्णन है। चोटीकी पकड़ में बंगालके जमींदारोंके विलास और वैभवका पूर्ण चित्रण है।

सियारामशरण गुप्त

सियाराम शरण गुप्तने तीन उपन्यास लिखे— गोद अन्तिम आकांक्षा और नारी। गोदमें एक मामीके वात्सल्य-स्नेहका चित्रण करनेके साथ साथ भारतके ग्रामीण जीवनका एक पक्ष चित्रित किया गया है। अन्तिम आकांक्षामें एक घरेलू नौकर रामलालको नायक बनाकर यह प्रदर्शित किया गया है कि साधारण व्यक्तिमें भी महत्ता होती है। किन्तु इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है नारी जिसमें नायिका जमुनाकी आन्तरिक सरलता सत्यशीलता दयालुता आदि गुणोंका चित्रण किया गया है।

राधिका रमण प्रसाद सिंह

सूरजपुरा (बिहार) के राजा राधिकारमण प्रसाद सिंहके उपन्यासोंमें राम रहीम सावनी सभा पुरुष और नारी तथा सूरदास प्रसिद्ध हैं। इन सबमें व्यञ्जना-शैलीका चमत्कार लिए हुए राम रहीम अधिक प्रसिद्ध हुआ जिसके वास्तविक या तथ्यवादी वातावरणमें भारतीय समाजके प्रायः सभी वर्गोंकी नैतिकताका सुन्दर निरूपण किया गया है। पुरुष और नारी में भारतीय स्वतन्त्रता-संग्रामकी आधार भूमिपर प्रणय कथा चित्रित की गई है। इनकी भाषा उर्दू हिन्दी मिश्रित होते हुए भी स्वाभाविक नहीं है। कहीं-कहीं वह इतनी अधिक अलंकृत हो गई है कि उससे कथा-प्रवाह भी कुण्ठित हो जाता है। इस फेरमें इनके सम्वाद भी बहुत लम्बे हो गए हैं।

श्रीनाथ सिंह

ठा श्रीनाथ सिंहने चार उपन्यास लिखे—'उलझन जागरण प्रभावती और प्रजा-मण्डल' जिनमें जागरणने अधिक प्रसिद्धि पाई। इन्होंने अपने उपन्यासोंमें उपदेश और शिक्षा अधिक दी है और सम्भवतः इसीलिए लिखे भी हैं।

गोविन्दवल्लभ पन्त

गोविन्द वल्लभ पन्तने सूर्यास्त प्रतिमा मदारी जूनिया अमिताभ एकसूत्र अनुरागिनी नूर जहाँ मुक्तिके बन्धन और यामिनी आदि अनेक निराले उपन्यास लिखे जिनमें अमिताभ अधिक प्रसिद्ध हुआ।

इस युगके उपन्यासकारोंके उपन्यासोंमें अवध नारायणका विमाता मन्नन द्विवेदीका रामलाल और कल्याणी, जगदीश झा का आशा पर पानी विश्वम्भरनाथ जिज्जाका तुर्क तरुणी बलीराम प्रेमका मेरा देश और वेश्याका हृदय शिवनाथ शास्त्रीका मँझली बहू मथुनन्दन प्रसादका अपराधी विश्वनाथ सिंह शर्माका कसौटी चण्डीप्रसाद सक्सेनाका बहूरानी प्रफुल्लचन्द्र ओझाका पाप और पुण्य ऋषभचरणका स्फुलिंग शिवरानी देवीका नारी-हृदय चन्द्र शेखर शास्त्रीका विधवाके पत्र और दीपनारायण पाण्डेका कपटी अधिक प्रसिद्ध हैं।

सियारामशरण गुप्त

वर्तमान युग (सन् १९४० से आजतक)

देशव्यापी स्वातन्त्र्य आन्दोलन, रुढियोके प्रति, विद्रोह, सामाजिक बन्धनोसे मुक्त होनेकी छटपटाहट, मानववादका प्रचार, मानसिक ग्रन्थियोका विश्लेषण, सामाजिक यथार्थ तथा काम-वासनाके आधारपर सम्पूर्ण जीवन-क्रियाओका विश्लेषण नवीन प्रकृति-वाद, तथ्यवाद, अभिव्यञ्जना-वाद, मनोविश्लेषण-वाद और मानवता-वादके रूपमें चले और उन्हे वर्तमान सभी उपन्यासकारोने ज्यो-का-त्यो विदेशी मुद्राके साथ ग्रहण कर लिया इन्होने अपनी ओरसे अपने देशकी भाव-परम्पराकी दृष्टिसे तनिक सोचने समझनेका प्रयत्न नही किया। इसलिए पिछले २२ वर्षके उपन्यासकारोमे इन वादोकी ही धुन दिखाई पडती है, जीवनके उदात्त व्यावहारिक पक्षकी नही। इन लेखकोमें इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, अज्ञेय, अश्क, रांगेय राघव, अमृतराय, भारती, नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, लक्ष्मीनारायण लाल, गिरिधर गोपाल और महेश मेहता आदि प्रमुख है।

मनो-विश्लेषण सिद्धान्तके अनुसार इलाचन्द्र जोशीने घृणामयी, सन्यासी, पर्देकी रानी, प्रेत और कथा, निर्वासित, लज्जा, (घृणामयी का नवीन सस्करण), मुक्ति-पथ, सुबहके भूले, जिप्सी तथा जहाजका पछी ' अधिक प्रसिद्ध हुए है जिनमें जोशीजीने चेतना लोकमें दबी और भरी पडी मूल-पशु-प्रवृत्तियो और उनके सस्कारोका मनुष्यके विचार एव आचरणपर पडे हुए प्रभावका चित्रण किया है। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन (अज्ञेय) ने मनोवैज्ञानिक तथा अन्तर्द्वन्द-पूर्ण उपन्यास लिखे जिनमें 'शेखर एक जीवनी' नामका अत्यन्त असम्बद्ध और अनर्गल कथानकवाला उपन्यास लिखा। यह इतना बडा और इतना उलझा हुआ है कि इसे उपन्यासके बदले मनोविज्ञानकी पुस्तक कहना अधिक उपयुक्त होगा। इसमें न कथा है न उत्सुकता उत्पन्न करनेवाली घटनाएँ, न मनको उलझाए रखनेवाली चरित्र-वृत्तिया और न भाषा-शैलीका सौन्दर्य। अज्ञेयका दूसरा उपन्यास है 'नदीके द्वीप' जिसमें मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व तो उतना नही है, कथा भी व्यवस्थित है किन्तु लेखकके व्यक्तिवादसे वह इतना दब गया है कि कथा अस्पष्ट और गौण हो गई है। इस उपन्यासकी समस्या है प्रेम, वासना, तृप्ति और विवाह। कही कही पर सामान्य लोक शीलको भी लेखकने लाघ दिया है। इस प्रकारके उपन्यास किसी भी साहित्यके लिए कलक कहे जा सकते है। यशपालने अपने दादा कामरेड, देश-द्रोही, उपन्यासोमे राजनैतिक और सामाजिक विचारोका प्रतिपादन किया है जिससे सबका सहमत होना सम्भव नही है। तीसरे 'दिव्या' नामक ऐतिहासिक उपन्यासमें बौद्ध कालीन कथाके आधारपर अत्यन्त अस्वाभाविक रूपमे सार्वभौम और सर्वयुगीन समस्याओका समाधान करनेका प्रयत्न किया गया है। उनके चौथे उपन्यास 'अमिता' मे कलिंग पर अशोकके आक्रमण और भयकर मार-काटको देखकर अशोकके हृदय परिवर्तन की कथाका चित्रण किया गया है जिसमें उदार मानवताके भावो और चरित्रोका उदात्त वर्णन है।

उपेन्द्रनाथ अश्कने वास्तविक जीवनके आधारपर छोटे घटना प्रसगो और परिस्थितियोके स्वाभाविक वर्णन किए है जिनमें निम्न मध्य वर्गका स्वभाव, रहन-सहन, आचार-विचार तथा उनकी मानसिक वृत्तियोका चित्रण किया है। इनके 'सितारोके खेलमें' आधुनिक ढगके स्वैरवादी प्रेमकी कथा है। इनके गिरती दीवारें, गर्मराख, बडी-बडी आँखें और पत्थर अल पत्थर उपन्यास अधिक प्रसिद्ध है।

रांगेय राघवने सामाजिकता और व्यंग्यात्मकतासे पूर्ण कालेजके वातावरण तथा तत्सम्बद्ध सामाजिक समस्याओंका निरूपण अपने 'घरौंदे' में किया है। इसी प्रकार 'कब तक पुकारूँ' भी बहुत बड़ा सामाजिक उपन्यास है जिसमें नटोंके जीवनका विवेचन किया गया है। किन्तु ये उपन्यास इतने बड़े हैं कि पाठकका जी ऊब जाता है। रांगेय राघवने और भी कई उपन्यास लिखे हैं जिनमें 'मुर्दोंका टीला' 'विषाद मठ' 'चीवर' 'सीधा-सादा रास्ता' 'हुजूर' और 'काका' उल्लेखनीय हैं। इनमें ऐतिहासिक और सामाजिक जीवनका पर्याप्त चित्रण है किन्तु कथानकको सगठित रूपमें प्रस्तुत करनेका कौशल तनिक भी नहीं है।

अमृतलाल नागरने अत्यन्त सूक्ष्मताके साथ देश-कालके चित्रण की गहन विचित्रताका वर्णन करते हुए सामाजिक समस्याओंका समाधान किया है। इनके उपन्यासोंमें 'नवाबी मसनद' 'सेठ बांके मल' 'महाकाल' तथा 'बूँद और समुद्र' नामक उपन्यास हास्य व्यंग्यमय रेखा-चित्रोंसे सजीव हैं। नागार्जुनने 'रति नाथकी चाची' 'बलचनवा' 'नई पौध' 'बाबा बटेसरनाथ' और 'बड़ेके बेटे'में मिथिलाकी सामाजिक भौगोलिक और राजनैतिक स्थितिका तथा वहाँके स्त्री पुरुषोंके आचार-विचार रीति परम्पराका अच्छा चित्रण किया है। वर्तमान कालके उपन्यासकारोंमें धर्मवीर भारतीने 'गुनाहोंके देवता' तथा 'सूरजका सातवा घोड़ा' फणीश्वर नाथ रेणुके 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' प्रभाकर माचवेने 'परन्तु, साँचा' तथा 'द्वाभा' उदयशंकर भट्टने 'वह जो मैंने देखा' 'नये मोड़' तथा 'सागर, लहरें और मनुष्य' देवराजने 'पथकी खोज' लक्ष्मीनारायण लालने 'धरतीकी आँखें' 'बयाका घोसला और साँप' तथा 'काले फूलका पौधा' शिवप्रसाद मिश्र रुद्रने 'बहती गंगा' अमृत रायने 'बीज' नागफनीका देश' तथा 'हाथीके दाँत' गिरिधर गोपालने 'चाँदनीका खण्डहर' राजेन्द्र यादवने 'उखड़े हुए लोग' और 'प्रेत बोलते हैं' विष्णु प्रभाकरने 'निशिकान्त' और 'तटके बन्धन' शीर्षक उपन्यास लिखे हैं। इनमें सबसे सरस शिवप्रसाद मिश्रका 'बहती गंगा' है।

इनके अतिरिक्त राहुल सांकृत्यायन अनूप लाल मण्डल अंचल भगवत शर्मा पुष्कर मोहनलाल महतो 'पवन' ज्वाला सम्भरलाल नरोत्तम प्रसाद नागर, देवेन्द्र सत्यार्थी भैरवप्रसाद गुप्त कमल जोशी यादवेन्द्र नाथ शर्मा चन्द्र इन्द्र विद्या वाचस्पति करतार सिंह दुग्गल सर्वेश्वर दयाल सक्सेना नरेश मेहता कृष्ण बल्देव वैद कमलेश्वर गिरीश अस्थाना ओम प्रकाश जितेन्द्र गोविन्द सिंह हर्षनाथ नरेन्द्र अवध प्रकाश जैन राधाकृष्ण कृष्णचन्द्र शर्मा इन्दिरा नूपुर, राम प्रकाश कपूर आदि अनेक उपन्यासकार हमारी नागरी (हिन्दी) उपन्यासका श्रृंगार कर रहे हैं। अभी इन नए लेखकोंके सम्बन्धमें कुछ कहना सम्भव नहीं है किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि वादोंपर आधार करके जो उपन्यास लिखे जा रहे हैं वे पाठ्य पुस्तकोंमें भले ही रख लिए जाएँ किन्तु न तो सामान्य उपन्यास-पाठक उनका आदर करेंगे न कलाकी दृष्टिसे ही वे सराहनीय होंगे। उपन्यासमें भाषा-शैलीकी सजीवता और कुतूहलके तत्त्व अवश्य विद्यमान होने ही चाहिए और उससे पाठकका भावात्मक संस्कार भी होने चाहिये। अन्यथा वह उपन्यास उपन्यास न होकर किसी विशेष वादका पोषक ग्रन्थ मात्र रह जायेगा।

उपन्यासकी समीक्षा

उपन्यासकी समीक्षा करते समय निम्नांकित प्रश्नोंको ध्यानमें रखकर निर्णय करना चाहिए —

१—उपन्यासकी कथावस्तु कहाँसे ली गई है?

२—यदि कथावस्तु ऐतिहासिक या पौराणिक है तो लेखकने उसमें क्या परिवर्तन करके क्या विशेष प्रभाव उत्पन्न करना चाहा है ?

३—इस परिवर्तनके निमित्त लेखकने किन नवीन पात्रो या घटनाओका समावेश किया है ?

४—इन पात्रो या घटनाओमेंसे कितनी वास्तवमे आवश्यकताएँ है और कहाँतक उचित हैं ?

५—यदि कथा काल्पनिक है तो कहाँतक सम्भव, विश्वसनीय, स्वाभाविक और सगत है और उपन्यासकारने जो प्रभाव उत्पन्न करना चाहा है उसमें उसे कहाँतक सफलता मिली है ?

६—लेखक अपना उद्दिष्ट प्रभाव उत्पन्न करनेमें कहाँतक सफल हुआ है और वह प्रभाव भाषा शैली, घटना-सयोजन, पात्र-सयोजन, कथा की प्रकृति तथा पाठकोकी योग्यतासे कहाँतक मेल खाता है।

८—सम्वादोकी भाषा-शैली उपन्यासके पात्रोकी प्रकृति तथा परिस्थितिके कहाँ तक अनुकूल स्वाभाविक तथा उचित मात्रामें है।

९—लेखकने पाठकका मन उलझाए रखनेके लिए किस कौशलका प्रयोग किया है —

(क) प्रारम्भ उचित ढगसे किया है या नही ?

(ख) घटनाओका गुम्फन अधिक जटिल तो नही हो गया और मार्मिक स्थलोपर उचित ध्यान दिया गया है या नहीं।

(ग) कथाका चरमोत्कर्ष दिखानेमें शीघ्रता या विलम्ब तो नही हुआ और इस चरमोत्कर्षको दिखानेमें अनुचिन, अनावश्यक, अस्वाभाविक तथा असगत घटनाओका समावेश तो नही किया गया ?

(घ) उपन्यासका अन्त जिस प्रकार किया गया है वह कथा की प्रकृति, घटना-प्रवाह, पात्रोके चरित्र और उपन्यासके वर्णित युगकी मर्यादाके अनुकूल सगत, आवश्यक अपरिहार्य और स्वाभाविक है या नही ? अनावश्यक रूपसे उपन्यासको दु खान्त या सुखान्त तो नही बना दिया ?

(ङ) किस पुरुषमे कथा कही गई ? क्या वह रीति कथाके लिए उपयुक्त है ?

(च) किस रूपमें कथा कही गई ? वर्णन, पत्र, भाषण, समाचार, सम्वाद आदि।

(छ) रूपकी नवीनता उत्पन्न करनेसे उपन्यासके कथा-प्रवाहमें क्या दीप्ति या दोष आ गए ?

१०—उपन्यासमें वर्णन कहाँतक उचित परिमाण में आवश्यक और स्वाभाविक है ?

११—जो वाते (पात्रोका स्वभाव आदि) व्यजनासे बतानी चाहियें थी वे अपनी ओरसे तो नही कह दी गईं। पात्रोका चित्रण उनकी मर्यादा और प्रकृतिसे भिन्न, अस्वाभाविक असगत या अतिरजित तो नही हो गया।

१२—उपन्यासकारने किस विशेष वाद, सम्प्रदाय, नीति या सिद्धान्तसे प्रेरित होकर लिखा है, और उसकी सिद्धिमें वह कहाँतक सफल हो पाया है ?

१३—उपन्यासकारने अपने व्यक्तिगत जीवन या अनुभवकी जो अभिव्यक्ति की है वह कितनी प्रत्यक्ष है और कितनी व्यग्य है और वह कहाँतक उचित है या अनुचित ?

१४—उस उपन्यासका साधारण पाठकके मनपर क्या प्रभाव पड सकता है और वह पाठक की वृत्ति, प्रवृत्ति, स्वभावचेष्टा आदिको कहाँतक अपने पक्षमे ला सकता है ? सामाजिक तथा नैतिक दृष्टिसे वह प्रभाव कहाँतक वाछनीय है ?

१५—उपन्यासमें क्या मौलिकता है और उसमें सुन्दर, अद्भुत तथा असाधारण तत्वका सन्निवेश कहाँ और किस प्रकार किया गया है ?

१६—अलौकिक तत्वोंका प्रयोग कहाँतक उचित और बुद्धि-सगत हुआ है ?

१७—उपन्यास की कथावस्तु, घटना गुम्फन भाषा-शैली चरित्र चित्रण और परिणाम आदिमें जो दोष हो उनको सुधारके लिए क्या सुझाव दिए जा सकते हैं।

हिन्दीके क्षेत्रमें आजतक उपन्यासकी आलोचना केवल उसके विषय और सन्देश या प्रतिपाद्यके आधारपर होती है। मार्क्सवादी आलोचनामें जैसे विषय या परिणामको अधिक महत्व दिया जाता है वैसे ही विषय और सन्देशको अधिक महत्व दिया जाने लगा है और इस दृष्टिसे अधिक विचार किया जाता है कि अमुक लेखकने कितना मनोवैज्ञानिक चित्रण किया अथवा अमुक वादकी दृष्टिसे उसका क्या महत्व है इस दृष्टिसे नहीं कि समाजके भाव-परिष्कारके लिए उपन्यासकारने क्या व्यवस्था की है और साहित्यकी दृष्टिसे अर्थात् अभिव्यक्तिको अधिक हृदयग्राही और प्रभावशाली बनानेके लिए उपन्यासकारने अपनी भाषा-शैली और अभिव्यञ्जना शैलीमें क्या शक्ति भरी है। इसीलिए आजके उपन्यासोंको तबतक साहित्यिक कहना बड़ा कठिन है जबतक उनमें पर्याप्त मात्रामें साहित्यिक तत्वोंका सन्निवेश न हो।

उपन्यासके क्षेत्रमें आजकल भयंकर अराजकता व्याप्त है। आजके सभी उपन्यास फ्रायडकी पूँछ पकड़कर मानव-मनका विश्लेषण तथा काम-वृत्तियोंके प्रदर्शनका पोषण अथवा मार्क्सके सिद्धान्तका पल्ला थामकर वर्गहीन समाज बनानेकी दुन्दुभि बजा रहे हैं। उपन्यासके काव्यतत्व अर्थात् भाषा शैली आदि का कोई ध्यान नहीं रखता। साहित्यके विकासमें यह प्रवृत्ति बड़ी घातक है।

छोटी कहानियाँ

जिस प्रकार उपन्यासोंकी भीड़ नागरीमें बढ़ गई उसी प्रकार छोटी कहानियोंकी भी। इस समय संसारकी सभी भाषाओंमें यदि साहित्यके किसी एक अंगकी सर्वाधिक पूर्ति हो रही है तो छोटी कहानियों की। जितने भी पत्र निकलते हैं सबमें दो-चार कहानियाँ देनेका नियम हो गया है। पाठकको मनोरञ्जन चाहिए ही और इस मनोरञ्जनके लिए छोटी कहानियाँ सबसे अधिक उपयुक्त सिद्ध हुई हैं इस यान्त्रिक और व्यस्त युगमें मनुष्यके पास अवकाश की कमी हो गई है। इसलिये बड़े-बड़े उपन्यास पढ़नेका समय किसके पास है। जीवन सघर्षमय हो जानेसे गम्भीर चिन्तनात्मक विषयोंके अध्ययनकी प्रवृत्ति अब समाप्त हो गई है। इसीलिए अब वेगसे बुद्धिका भी ह्रास हो रहा है। ऐसी अवस्थामें छोटी कहानियाँ लिखने और पढ़नेका चलन बहुत बढ़ चला है।

आधुनिक छोटी कहानियाँ भी उपन्यासोंकी भाँति पूर्णतः पश्चिमकी देन हैं कहानी कहने और सुननेकी चाल इस देशमें भी बहुत प्राचीन कालसे है। जातक-कथाएँ कथासरित्सागर, पंचतन्त्र सब कहानियाँ ही हैं किन्तु आजकल जिस ढंगकी कहानियाँ लिखी जा रही हैं उसकी चाल पहले नहीं थी।

भारतेन्दु कालमें लेखकोंका ध्यान कहानियोंकी ओर नहीं गया। वास्तविकता यह है कि योरपमें भी इस प्रकारकी कहानीका विकास विक्रमकी २ वी शताब्दीके आरम्भसे ही हुआ। कुछ लोगोंने इंशाकी रानी केतकीकी कहानी को हिन्दीकी प्रथम कहानी माना है किन्तु आजकलकी कहानियोंसे उनका तनिक

भी मेल नही है। इसी प्रकार राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द कृत 'राजा भोजका सपना' और भारतेन्दु कृत 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' आधुनिक कहानी की परिधिमें नही है। इसलिए हिन्दीमें कहानियोका आरम्भ द्विवेदी युगसे मानना चाहिए जिसका पिछले पचास-साठ वर्षोंमें तीव्र गतिसे विकास हुआ है।

कहानीका विकास पत्र-पत्रिकाओंके विकाससे सम्बद्ध है। सरस्वती निकलनेके समय (सम्वत् १९५७) से ही छोटी कहानियोका लिखा जाना आरम्भ हुआ। प्रारम्भिक दस वर्षोंके भीतर रचनाओंके अनुवाद कहानीके रूपमें प्रकाशित हुए। सरस्वतीके प्रथम वर्षमें ही किशोरीलाल गोस्वामीकी 'इन्दुमती' कहानी प्रकाशित हुई। कुछ लोग इसे बगलाका अनुवाद और कुछ लोग शेक्सपियरके 'टेम्पेस्ट' नाटककी छाया कहकर इसे मौलिक कहानी ही नही मानते। इसी अवधिमें बगलासे बग महिला एव गिरजाकुमार घोषने कई अच्छे अनुवाद प्रकाशित किए। मैथिलीशरण गुप्त, वृन्दावनलाल वर्मा आदिने भी मौलिक कहानियाँ लिखनेकी चेष्टा की परन्तु वे सफल न हो पाए। सम्वत् १९६० में आचार्य रामचन्द्र शुक्लकी हिन्दी-की प्रथम मौलिक कहानी 'ग्यारह वर्षका समय' सरस्वतीमें प्रकाशित हुई और १९६४ में बग महिलाकृत 'दुलाईवाली' दूसरी कहानी। इसके पश्चात् इन्दुका प्रकाशन आरम्भ हुआ और १९६८ में 'प्रसादजीकी पहली कहानी 'ग्राम' उसमें छपी। फिर तो उन्होने आकाशदीप, स्वर्गके खण्डहर, प्रतिध्वनि आदि न जाने कितनी कहानियाँ लिखी। कौशिकजीकी 'रक्षावन्धन' कहानी भी इसी समय प्रकाशित हुई। गुलेरीजी-की प्रथम कहानी, 'सुखमय जीवन' और अन्तिम कहानी 'उसने कहा था' १९७२ के पूर्व छपी। किन्तु उपन्यासके समान ही कहानीके क्षेत्रमें भी उर्दूसे हिन्दीके क्षेत्रमें प्रेमचन्दके आगमनके अनन्तर क्रान्तिका युग आया। उनकी पहली कहानी 'पचपरमेश्वर' सम्वत् १९७३ में प्रकाशित हुई और फिर तो उन्होने हिन्दीमे कितनी ही बेजोड कहानियाँ लिखी। सम्वत् १९९० तक कहानी-कला अपने पूर्ण रूपमें प्रतिष्ठित हो चुकी थी और नागरीमे कितने ही उच्च श्रेणीके कहानीकार उत्पन्न हो गए थे। इन्होने विभिन्न प्रकारकी विभिन्न शैलियोमें, विभिन्न मनोभावो और परिस्थितियोको अकित करनेवाली ढाई तीन सौ कहानियाँ लिखी है। सख्या, कला और शैली सब दृष्टिसे देखनेपर प्रेमचन्दजी इन सबसे आगे निकल जाते है। प्रेमचन्दकी मौलिक कहानियोका क्षेत्र भी मुख्यत ग्रामीण जीवन, ग्रामीण जनता, दलित कृषकवर्ग, सामाजिक तथा कौटुम्बिक समस्याएँ है। प्रेमचन्दजीने चरित्र-चित्रणकी प्रत्येक प्रणालीका अवलम्बन किया है। उन्होने प्राय पात्रोके सवादके माध्यमसे ही उनकी चारित्रिक विशेषता उद्घाटित करानेकी चेष्टा की है। उनकी भाषा वडी वलशाली, वेगवती और सिद्धोक्तियो (मुहावरो) के योगसे आकर्षक हो गई है। सामयिक घटनाओ और आन्दोलनोका प्रभाव भी इनकी कहानियोपर वहुत पडा है।

सुदर्शन और कौशिकने अधिकतर प्रेमचन्दका पन्थ ही पकडा।

जयशकर प्रसादने भी साठसे ऊपर कहानियाँ लिखी जिनमें उनकी कलाका विकास वरावर देखनेको मिलता है। प्रसादजीकी कहानियाँ सीधे हृदयको स्पर्श करती है। मनोभावोंके आन्दोलनोसे हृदयको क्षुब्ध कर देनेमे प्रसादजी अद्वितीय है। कहानियोका कथानक प्राचीन होनेपर भी प्रसादजीने अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा उसे आकर्षक और मनोरजक बना दिया है।

पाण्डेय वेचन शर्मा उग्रने अपने उपन्यासोकी भाँति कहानी कहनेमें भी सफलता प्राप्त की। इसमें सन्देह नही कि उनकी शैली पूर्ण रूपसे मौलिक और अपने ढगकी अकेली है।

विनोद शंकर व्यासने छोटी-छोटी अनेक भाव-प्रधान कहानियाँ लिखी हैं। इनकी कहानियाँ प्राय सबकी सब अत्यन्त छोटी हैं। दो-तीन पात्रोंसे ही वे अपना काम चला लेते हैं।

जैनेन्द्र कुमारने मनोवेगोंको आधार मानकर कुछ कहानियाँ लिखी हैं। किन्तु उनकी भाषामें बल नहीं है। वे मनोभावोंके विश्लेषणमें ही अधिक शक्ति लगाते हैं। अज्ञेयने भी इसी ढंगकी बहुत-सी कहानियाँ लिखी हैं।

उपेन्द्रनाथ अश्क इलाचन्द्र जोशी यशपाल आदिने भी अच्छी कहानियाँ लिखी हैं।

विनोद-व्यंग्य प्रधान कहानीकारोंमें अन्नपूर्णानन्द और बेढब बनारसी का नाम विशेष रूपसे उल्लेख्य है। स्वागत दृश्योंको विशेष महत्व प्रदान करके लिखी हुई कहानियोंमें शिवप्रसाद मिश्र रुद्र काशिकेय का अपना अलग स्थान है। कुछ लोगोंने इसे ऐतिहासिक उपन्यास भी माना है क्यों कि इसकी कहानियाँ क्रमसे काशीके पिछले दो सौ वर्षोंके सांस्कृतिक इतिहासका भी परिचय देती हैं।

भाषा विषय और कौशलकी दृष्टिसे तान्त्रिक और अतिमानवीय विषयोंपर कहानियाँ लिखनेमें बलदेवप्रसाद मिश्र अद्वितीय हैं।

उपन्यासके समान कहानीके क्षेत्रमें भी यह अराजकता व्याप्त हो गई है कि लोग कथा मनो-विश्लेषण सिद्धान्त और वादके फेरमें अधिक पड गए हैं भाषा-सौष्ठव तथा पाठकके चित्तको कुतूहलसे भरकर उसकी मानसिक तुष्टि और भाषा-शैलीके चमत्कारसे काव्यास्वादन करानेकी प्रवृत्ति समाप्त हो गई है इसलिए ऐसी सब रचनाएँ काव्यके क्षेत्रमेंसे बाहर समझी जानी चाहिए जिसमें विषय ही प्रधान हो भाषा और शैली गौण हो जाय।

छोटी कहानी

छोटी कहानी वह सुसम्बद्ध संक्षिप्त तथा पूर्ण कहानी है जो कौशलपूर्ण रचना-शैली और भावानुकूल भाषा-शैलीमें कही गई हो और जो पाठकके मनपर एक ही प्रभाव डाले या जिसका एक ही परिणाम हो।

छोटी कहानीकी समीक्षा

छोटी कहानीकी समीक्षा करते समय निम्नांकित प्रश्नोंपर ध्यान देकर रचना करनी चाहिए —

१—कथा-कारका क्या उद्देश्य है? कथा-कार कोई विशेष प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है या केवल मनोविनोद?

२—कथाकारने एक ही घटना ली है या नहीं? उसने भूलसे किसी अनेक घटनाओंवाली कथाको छोटा करके कहनेको ही तो छोटी कहानी नहीं समझ लिया?

३—वह कथा अपने आदि मध्य और अन्तसहित पूर्ण है या नहीं और वह साधारणतः एक बैठकमें पढ़ी जाकर (आध या पौन घण्टेमें) एक ही प्रभाव उत्पन्न करती है या नहीं।

४—उसकी भाषा-शैली कथाके अनुरूप तथा पाठकोंकी समझमें आ सकनेवाली है या नहीं?

५—पात्रोंके चरित्र और सम्वादकी उसमें वर्णित भूमकी मर्यादा प्रकृति तथा परिस्थितिके अनुकूल है या नहीं?

६—कहानीको रुचिकर बनानेके लिये लेखकने किस कौशलका आश्रय लिया है—

क—प्रारम्भ कैसे किया है?

ख—बाह्य द्वन्द तथा पात्रोके मानसिक द्वन्दका किस प्रकार समन्वय किया है?

ग—चरमोत्कर्षपर कहानी समाप्त कर दी या उपसहार भी किया है?

घ—कहानीका अन्त कहाँ तक उचित और न्याय-सगत हुआ है?

ङ—किस पुरुषमे कहानी कही गई—प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, या उत्तम पुरुषमे?

च—किस रूपमे कही गई—वर्णन पत्र, सम्वाद, भाषण, समाचार आदि।

७—किस वाद, सम्प्रदाय, नीति, सिद्धान्त या प्रभाव को दृष्टिमे रखकर लिखी गई और उसकी सिद्धिमें लेखक कहाँ तक सफल हुआ।

८—लेखकका व्यक्तित्व या उसकी अपनी धारणाएँ कहाँ तक व्यक्त हुई है?

९—अनावश्यक वर्णन या विस्तार तो नही है?

१०—कथाका साधारण पाठकके मनपर क्या प्रभाव पड सकता है और वह प्रभाव कहाँतक नैतिक है? सामाजिक दृष्टिसे वह कहानी और उसका परिणाम कहाँ तक वाछनीय है?

११—उसमे क्या मौलिकता है और लेखकने किन सुन्दर, अद्भुत तथा असाधारण तत्वोका सन्निवेश उनमे किया है?

१२—उसमे जो दोष प्रतीत होते है उनका कैसे मार्जन किया जा सकता है।

हिन्दीमे कहानियोकी समीक्षा भी विशेष वादो, व्यक्तिगत सम्बन्धो और प्रचारवादी हथकण्डोंके साथ हुई। भारतमे प्रकाशित होनेवाली हिन्दीकी अगणित पत्र-पत्रिकाओमें इतनी अधिक और इतने विविध प्रकारकी सुन्दर कहानियाँ प्रकाशित हुई है और हो रही है कि कुछ थोडेसे प्रतिष्ठा प्राप्त या प्रचारित लेखकोका नाम देकर उनका महत्व कम करना उचित नही प्रतीत होता क्योकि सभी कहानीकारोकी सभी कहानियाँ अच्छी नही है। कभी-कभी अप्रसिद्ध लेखककी कोई कहानी बहुत अच्छी बन गई है और सुप्रसिद्ध लेखककी कहानी बडी दरिद्र हो गई है अत यह रेखा खीचकर कहना न्याय सगत नही होगा कि अमुख-अमुक लेखक ही अच्छे कहानीकार है क्योकि कहानीकी अच्छाईका आधार है विषय और उसे प्रस्तुत करनेकी शैली। जबतक ये दोनो तत्व नही होते तबतक कहानी अच्छी नही बन सकती, जैसे रसोई कभी-कभी अच्छी बनती है वैसे ही साहित्यक रचना भी कोई-कोई ही सफल हो पाती है, सब नही।

हिन्दीके प्रसिद्धि प्राप्त कहानी लेखकोमें निम्नाकित मुख्य है —

किशोरीलाल गोस्वामी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रधर गुलेरी, प्रेमचन्द, जयशकर प्रसाद, चडी, प्रसाद 'हृदयेश', विनोद शकर व्यास, ज्वालादत्त शर्मा, शिवपूजन सहाय, शिवनारायण द्विवेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, प्रफुल्लचन्द्र ओझा, ठाकुर श्रीनाथ सिंह, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', सुदर्शन, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, चतुरसेन शास्त्री, बलदेव उपाध्याय, सीताराम चतुर्वेदी, करुणापति त्रिपाठी, बेढब बनारसी, जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, पहाडी, व यशपाल। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, गोविन्द वल्लभ पन्त, मोहनलाल महतो 'वियोगी', कमलाकान्त वर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालकार, वाचस्पति पाठक, देवेन्द्र सत्यार्थी, भगवती चरण वर्मा, शिवप्रसाद मिश्र रुद्र, ऋषभ चरण जैन, सद्गुरु शरण अवस्थी, कमला चौधरी,

होमवती उषादेवी मित्रा सुमित्राकुमारी सिनहा सत्यवती मल्लिक भारतीप्रसाद सिंह भुवनेश्वर प्रसाद सिंह अन्नपूर्णानन्द रांगेय राघव अमृतराय रामचन्द्र तिवारी प्रभाकर माचवे शम्भुनाथ सक्सेना चन्द्रकिरण सौनरिक्सा।

हिन्दीमें केवल कहानियोंकी तो अनेक पत्रिकाएँ प्रकाशित होती ही हैं अन्य मासिक पाक्षिक और साप्ताहिक पत्र पत्रिकाओंमें भी कहानियाँ निरन्तर प्रकाशित होती रहती हैं जिनमेंसे कुछ ही शैली और कौशल-की दृष्टिसे कलात्मक होती हैं। इन पत्रिकाओंमें काशीके बेढब बनारसीके सम्पादकत्वमें प्रकाशित होने-वाली आँधी नामक पत्रिकामें बहुत ही उच्च कोटिकी कलात्मक कहानियोंका प्रकाशन हुआ था। कहानी लिखनेवालोंकी संख्या इतनी अपरिमित है कि सबकी गणना कराना सम्भव नहीं है। इतना अवश्य है कि हिन्दीकी कहानियोंमें विषय और कौशल (टेक्नीक) की विविधता तो बहुत है किन्तु शैलीके सम्बन्धमें हमारे सभी कहानीकार बड़े उदासीन और शिथिल हैं। कहानीके विषय और भावके अनुसार शब्द योजना और भाषा-शैलीका प्रवाह लानेका प्रयत्न तनिक भी न हुआ है न हो रहा है।

नागरीका काव्य-साहित्य

१९ वीं शताब्दी ईसवीके मध्यसे अर्थात् लगभग १८५ से आगे भी यद्यपि ब्रजभाषामें ही भक्ति और शृंगारकी कविता होती चली आई फिर भी भारतीय स्वतन्त्रताके प्रथम युद्ध अर्थात् सन् १८५७ के पश्चात् भारतेन्दुके समय में ही और उन्हींकी प्रेरणासे नागरीमें कविता होने लगी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने नागरी गद्यको सँवारनेका जितना प्रयत्न किया उतना कविताको नहीं फिर भी उन्होंने नागरीमें उर्दू ढंगकी लावनियाँ और ख्याल लिखे।

भारतेन्दुजीके गोलोकवासी होनेके थोड़े ही दिन पीछे लोगोंके मनमें यह बात खटकने लगी कि जब गद्य नागरीमें लिखा जाय तो पद्य ब्रजभाषामें क्यों लिखा जाय यह बात बड़ी असंगत है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने भी दशरथ-विलाप नामसे एक कविता नागरीमें लिखी थी—

कहाँ हो ऐ हमारे राम प्यारे।
किधर तुम छोड़कर हमको सिधारे॥

नागरीमें नामदेव कबीर, तुलसी आदि पहले भी रचना कर आए थे। फिर भी काव्यके क्षेत्रमें तो ब्रजभाषाका ही बोलबाला था। नागरीदास तथा नजीर अकबराबादीने भी नागरीमें कुछ रचनाएँ की हैं —

प्यारी सुनो ये छबिके कन्हैयाका बालपन।
और मधुपुरी नगरके बसैयाका बालपन॥

आदि। लखनऊके शाह कुन्दनलाल और फुन्दनलालने ललितकिशोरी और ललितमाधुरीके नामसे ब्रजभाषाके अतिरिक्त नागरीमें कुछ सुन्दर छन्द लिखे हैं।

जंगलमें अब रमते हैं, दिल बस्तीमें घबराता है।
मानुष गन्ध न भाती है सँग मरकट मोर सुहाता है॥

इसके पश्चात् मिरजापुरके तुकनगिरी गोसाईने नागरीमे लावनी चलाई जिसमे ब्रह्मज्ञान ही रहता था। इस प्रकार नागरीकी तीन ढगकी छन्द-प्रणालियाँ चली जिनमे कुछ कवित्त-सवैयेकी प्रणाली थी, कुछ उर्दू छन्दोकी प्रणाली और कुछ लावनी की। प श्रीधर पाठकने १८५६मे लावनीके ढगपर एकान्तवासी योगी लिखा जिसकी भाषा चलती बोल चालकी नागरी थी।

प्रान पियारेकी गुनगाथा साधु कहाँतक मैं गाऊँ।
गाते-गाते चुके नहीं वह चाहे मै ही चुक जाऊँ ।।

इसके पश्चात् नागरी या खडी बोलीके आन्दोलनका झण्डा उठाया। मुजफ्फरपुरके बाबू अयोध्या-प्रसाद खत्रीने जिन्होने 'खडी-बोली-आन्दोलन' नामक पुस्तकमे चार शैलियोकी चर्चा की—मौलवी स्टाइल, मुन्शी स्टाइल, पण्डित स्टाइल, और मास्टर स्टाइल। उन्होने बहुतसे लोगोसे नागरी अर्थात् खडी बोलीमे कह-कहकर अनेक कविताएँ लिखवाई।

ललितकिशोरी

भारतेन्दुके समयमे ही स्वतन्त्र रूपसे भी रचनाकी प्रवृत्ति बढ रही थी जिसे लावनी बाजो और खयाल बाजोने बडा आश्रय दिया। इस प्रकारकी उर्दू-हिन्दी मिश्रित नागरीमे स १८१३ के लगभग लखनऊ-निवासी ललित किशोरीने झूलना छन्द भी लिखे—

जगलमें अब रमते है दिल बस्तीसे घबराता है।
मानुष गध न भाती है सँग मरकट मोर सुहाता है।।
चाल गरेबाँ करके दमदम आहें भरना आता है।
ललितकिशोरी इश्क रात-दिन यह सब खेल खिलाता है।।

स्वैरवाद

इस युगके पश्चात् नागरीके क्षेत्रमें वह युग आया जिसे हम स्वैरवादी या आचार्य शुक्लजीके शब्दोमें सच्चा या नैसर्गिक स्वच्छन्दतावादी, कह सकते है जिसमे लेखको और कवियोने प्राचीन रूढियोसे मुक्त होकर नये विषयो और लोकभावनाके साथ सामञ्जस्य स्थापित किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके सह-योगियोने भी यद्यपि नए-नए विषयोपर रचनाएँ की किन्तु भाषा ब्रज ही रही और पद्य-निर्माण की शैली भावाभिव्यजनके स्वरूप तथा प्रकृति-चित्रणमे कोई नवीनता नही आई। वास्तविक स्वैरवादका स्वरूप यदि कही मिला तो श्रीधर पाठकके एकान्तवासी योगीमे, जिसमे उन्होने अपने नेत्रोके सामने व्यक्त होती हुई प्रकृतिका अर्थात् मूली-मटर जैसी वस्तुओका भी वर्णन किया और नागरी पदके लिए नए छन्द भी दिये। अपनी 'स्वर्गीय वीणा' मे उन्होने आध्यात्मिक भावनाओका भी रहस्यपूर्ण सकेत किया इसलिए श्रीधर पाठक ही वास्तवमे हिन्दी कविताके प्रथम स्वैरवादी कवि कहे जा सकते है। किन्तु प्राचीनतावादी पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीके प्रभावके कारण यह पद्धति चल न पाई और नीरस इतिवृत्तात्मक तुकात पद्य धुआँधार रचे जाने लगे। इसके पश्चात् तो लोग योरपसे बँगला-द्वारा हिन्दीमे प्रविष्ट होनेवाली रहस्यभरी कविताओंके रगमें ऐसे रगे कि इतिवृत्तात्मकता छूट गई और हिन्दी कविता भी विदेशी रहस्य धारामे बह चली।

पण्डित श्रीधर पाठकने नागरीमें श्रान्त पथिक (गोल्डस्मिथके ट्रैवलरका अनुवाद) और बहुत-सी फुटपुट कविताएँ लिखीं। इन्होंने कई नए ढाँचेके छन्द भी निकाले और अन्त्यानुप्रास-रहित छन्द भी लिखे। इनके उदाहरण लीजिए —

विजन वन प्रान्त था प्रकृति-मुख शान्त था
अटनका समय था रजनिका उदय था।
कहीं से स्वर्गिक कोई बाला सुमधु वीणा बजा रही है।
सुरोंके संगीतकी-सी कैसी, सुरीली गुंजार आ रही है।।

इनकी कवितामें सभी प्रकारके विषय होते थे। इन्होंने प्रकृतिका वर्णन जितना किया है इस युगके बहुत कम कवियोंने किया है। इसलिए इन्हें प्रकृतिका कवि कहा जाता है। इनका जन्म १८५९ में और मृत्यु १९२८ में हुई।

हरिऔध

पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔधने हिन्दीमें क्रान्तिकारी युग उपस्थित किये। इन्होंने संस्कृत और उर्दूके छन्द लिए, नागरी भाषा की और नागरी भाषामें भी ठेठ बोलीसे लेकर संस्कृतकी तत्सम-भरित समास-बहुला शैलीतक सबका प्रयोग किया। भाषापर इनका असामान्य अधिकार था। उर्दू फारसी हिन्दी संस्कृत ब्रज सभीका इन्हें विस्तृत ज्ञान था। ये वास्तवमें कवि थे जिन्होंने आजीवन नित्य नियमसे पाँच छन्द रचकर कविताकी थी।

सन् १९१४ में इनका प्रियप्रवास नामक प्रबन्ध काव्य निकला जिसके सम्बन्धमें बहुत दिनोंतक यही चर्चा चली कि वह महाकाव्य है या खण्ड-काव्य। उसमें अक्रूरके आगमनसे लेकर श्रीकृष्णके मथुरा चले जाने और उनके वियोगमें गोप-गोपियोंके वियोगका पूरा चित्रण है। इसलिए वह महाकाव्य ही है। उसमें श्रीकृष्णको ब्रजके रक्षक नेता के रूपमें चित्रित किया गया है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पूरा काव्य संस्कृतके वर्णवृत्तोंमें रचा गया। प्रियप्रवासके अतिरिक्त हरिऔधजीने वैदेही-वनवास भी लिखा जो प्रियप्रवाससे अधिक प्रौढ़ होनेपर भी उतनी प्रसिद्धि न प्राप्त कर सका। रसकलस तो निश्चय ही इनकी एक विशिष्ट विभूति है। प्रियप्रवाससे दो उदाहरण लीजिए —

दिवसका अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला।।
तरु शिखापर थी अब राजती।
कमलिनी कुल वल्लभकी प्रभा।।

× × ×

रूपोद्यान-प्रफुल्लप्राय-कलिका राकेन्दु बिम्बानना
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका क्रीड़ा-कला-पुत्तली।।
शोभावारिधिकी अमूल्य मणि-सी लावण्य-लीलामयी।
श्रीराधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य सम्मूर्ति थीं।।

मैथिलीशरण गुप्त

चोखे चौपदेसे एक उदाहरण लीजिए —

क्यों पले पीसकर किसीको तू।
है वहुत पौलिसी बुरी तेरी॥
हम रहे चाहते पटाना ही।
पेट तुझसे पटी नहीं मेरी॥

यद्यपि पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीने भी पद्य-रचना की, और ये सानुप्रास कोमल पदावलीका प्रयोग करते रहे किन्तु इनकी और इनके सभी अनुयायियोकी कविता ऐसा नीरस पद्यमात्र बनी रही जैसे गद्यमे कही जानेवाली कोई बात छन्दमे बाँधकर रख दी गई हो। उनमें न व्यजना थी न भावोका चित्रमय विन्यास और न अभिव्यक्तिकी वक्रता।

मैथिलीशरण गुप्त

द्विवेदीजीके शुद्ध अनुयायी और शिष्य मैथिलीशरण गुप्तजीने नागरी कविताका ढेर लगा दिया जिनमें तुकबन्दी अधिक है, काव्यका सौन्दर्य, आकर्षण, चमत्कार और लालित्य कम है। इन्होने सरलताके कारण अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की। इन्होने सबसे पहले 'रगमें भग' नामका प्रबन्ध काव्य लिखा जिसमें चित्तौड और बूँदीके राजघरानोकी कथा और राजपूतोकी आनका चित्रण था। इसके पश्चात् ऐतिहासिक पद्य-प्रबन्धके रूपमे 'भारत-भारती' निकली जिसमें भारतीयो या हिन्दुओंके अतीत और वर्तमान दशाका चित्रण करके भविष्यके लिये प्रेरणा दी गई है। इन्होने रगमें-भग, दयद्रथवध, विकट भट, पलासीका युद्ध, गुरुकुल, किसान, पचवटी, सिद्धराज, साकेत, द्वापर और यशोधरा नामके अनेक छोटे बडे काव्य लिखे जिनमेंसे जयद्रथ वध और पचवटी अधिक प्रसिद्ध हुए। जहाँ गुप्तजीको कोई प्रसिद्ध कथा मिल जाती है वहाँ तो वे कुछ सफलता पा जाते है किन्तु जहाँ इन्हे अपनी कल्पनासे काम लेना पडता है वहाँ इनकी कल्पना इन्हे धोखा दे जाती है। यह बात यशोधरा और साकेत दोनोमें है।

साकेतमें उर्मिलाको नायिका बनाकर रामायणकी कथा कही गई है किन्तु विदेहराज जनककी पुत्री, दशरथकी पुत्रवधू और यती लक्ष्मणकी पत्नी जिस उच्छृखल और क्षुद्र रूपसे व्यवहार करती है वह उर्मिला और रघुकुलकी उदात्त मर्यादाके सर्वथा विपरीत है। इसके अतिरिक्त स्थान-स्थानपर उन्होने जो सवाद कराए है या गीत जोडे है वे ऐसे अव्यवस्थित और असगत है कि वे काव्यकी धाराको अनावश्यक रूपसे नष्ट कर देते है। प्रारम्भमें उर्मिला और लक्ष्मणका परस्पर अत्यन्त निम्नकोटिका परिहास, उर्मिलाका विविध प्रकारसे विलाप, हनुमानकी सूचनापर अयोध्याकी सेना सजनेपर भी उर्मिलाका झण्डा लेकर निकलना और वशिष्ठजीका ताली बजाकर राम-रावणके युद्धका चलचित्र दिखाने लगना केवल कवि कौशलकी कमीको ही सूचित नही करते वरन् अत्यन्त हास्यप्रद भी लगते है। इसमे इन्होने किसानोंके साथ सहानुभति, प्रजाका अधिकार सत्याग्रह और विश्वबन्धुत्व आदि इस युगके आन्दोलनोका स्थान-स्थानपर सकेत करके पूरे काव्यकी महत्ता इतनी नष्ट कर दी है कि वह प्रचार-साहित्य बन गया है। इनकी अधिकाश कविता अत्यन्त हीन कोटिकी है।

एक उदाहरण लीजिए —

प्रभु नहीं फिरे क्या तुम्हीं फिरे,
हम गिरे, अहो तो गिरे, गिरे।

यह भी कुछ कविता है!

यशोधराकी रचना नाटकीय गीत (ड्रेमेटिक लिरिक) के ढंगपर हुई है जिसमें पद्य-गद्य दोनोंका सम्मिश्रण है। यह न नाटक ही हो पाया है न चम्पू ही।

द्वापरमें नाटकीय आत्म-विश्लेषण (ड्रेमेटिक मोनोलोग) की शैलीका प्रयोग किया गया है जिसमें यशोदा राधा नारद कंस और कुब्जा आदि अपनी-अपनी मनोवृत्तियोंका चित्रण करते हैं। किन्तु इनमेंसे भी किसीमें भी कोई ऐसा काव्यात्मक आकर्षण नहीं है कि उसे पढ़कर चित्त फड़क उठे।

गुप्तजीने तिलोत्तमा अनघ और चन्द्रहास नामके कुछ रूपक भी पद्यमें लिखे हैं पर उनमें भी कोई विशेष रस नहीं है।

गुप्तजी शुद्ध अवसरवादी कवि हैं। वे समय समयपर अवसरके अनुसार रचनाएँ करते आए हैं और देशमें जब जिस भावनाकी प्रधानता देखते रहे उसी भावकी रचना करते रहे। इसी दृष्टिसे वे राष्ट्र कवि कहे जाते हैं। किन्तु काव्यकी दृष्टिसे उन्होंने काव्य-रसिकोंको बड़ा निराश किया है।

अन्य कवि

इस युगके नागरीके प्रेरक कवि पं॰ महावीर प्रसाद द्विवेदीके अतिरिक्त गाजीपुरके रामचरित उपाध्याय झालरापाटनके गिरिधर शर्मा नवरत्न लोचन प्रसाद पाण्डेय आदि सरस्वतीमें अपनी रचनाएँ भेजते रहे। किन्तु उस युगकी अधिकांश रचनाओंमें तुकबन्दी ही रहती थी वास्तविक काव्य सौष्ठवका बड़ा अभाव था। द्विवेदीजीके प्रभावके बाहर राय देवी प्रसाद पूर्ण नाथूराम शंकर शर्मा गयाप्रसाद शुक्ल सनेही लाला भगवानदीन रूपनारायण पाण्डेय अनूप शर्मा ठा॰ गोपाल शरणसिंह सियाराम शरण गुप्त और रामनरेश त्रिपाठीने सुन्दर रचनाएँ कीं। इनमेंसे कुछ तो ब्रज-भाषाके भी कवि थे। नाथूराम शंकर शर्मा और रामनरेश त्रिपाठीने निश्चय ही प्रभावपूर्ण रचनाएँ कीं किन्तु उचित विषय न खोज पानेके कारण वे आगे न बढ़ पाए।

वर्तमानकालके कवि

बीसवीं शताब्दीके दूसरे दशकके पश्चात् सन् १९२ के लगभगसे द्विवेदी युगकी तुकबन्दीपूर्ण कविताओंकी प्रतिक्रियाके परिणाम स्वरूप हिन्दीमें बंगला से प्रभावित और योरपके मिथ्या रहस्यवाद (स्यूडोमिस्टिसिज्म) के प्रभावसे नागरीमें एक नई शैलीकी रचना चली जिसमें कवि लोग रहस्यवादी या सूफी साधकके समान प्रकृतिके प्रत्येक पदार्थमें किसी पारमार्थिक सत्ताका अनुभव करनेकी उससे प्रेरणा पानेकी अथवा उससे एकात्म प्राप्त करनेकी भावनासे प्रेरित रहनेका प्रदर्शन करते थे। यह भावना कहीं प्रत्यक्ष रूपसे और कहीं अप्रत्यक्ष रूपसे नागरीमें छायावादके नामसे चलती रही। यह केवल पलायनवादी शुद्ध काल्पनिक मन्यानुकरणवृत्ति ही थी जिसका हृदयसे या मनसे किसी प्रकारका कोई सम्बन्ध नहीं था। उसम

स्थान-स्थानपर टूटी हुई हृत्तन्त्रीके तारकी झकार, अभिसार, अनन्त, नीरव, हाहाकार आदि विचित्र अर्थहीन भावोद्रेक व्यक्त करनेवाले शब्द भरे रहते थे और इस प्रकार पाठक या श्रोताको भ्रान्त पूर्ण ढगसे प्रभावित करनेवाली रचनाएँ निरन्तर होने लगी। प्राय इसमे कलावाद और विचित्र अभिव्यञ्जना प्रणालीकाही प्राधान्य था। इस धारामे प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी का नाम लिया जाता है किन्तु निराला वास्तवमें छायावादी थे नही।

जयशकर प्रसाद

जयशकर प्रसादजी पहले तो ब्रजभाषामें कविताएँ रचते थे फिर इन्होने नागरीमें रचनाएँ प्रारम्भ कर दी। इसके अतिरिक्त इन्होने कुछ द्विवेदी कालकी और कुछ श्रीधर पाठककी शैलीपर अतुकान्त रचनाएँ भी की है। चित्रात्मक व्यञ्जनाकी नई स्वैरवादी धाराके अनुसार रची हुई उनकी कुछ कविताएँ 'झरना' में सग्रहीत है। इस सग्रहके अगले सस्करणमे जो रचनाएँ आई उनमे अभिव्यञ्जनाकी विचित्रता, रहस्यवाद और विचित्र व्यञ्जना सभीका समावेश है। 'खोलो द्वार' शीर्षक रचना इस रहस्य-भावनाका सबसे सुन्दर उदाहरण है।

प्रसादजीका 'आँसू' खण्डकाव्य या मुक्तक-सग्रह आजकल बहुत लोगोके लिए पहेली बन गया है। हिन्दीके बहुतसे अध्यापक उसमें बात-बातपर ब्रह्म उतारनेके फेरमें पडे हुए है। किन्तु वास्तवमे प्रसादजी भावुक, सहृदय प्रेमी व्यक्ति थे। जिन्होने अपने स्नेहास्पद व्यक्तियोकी मधुर स्मृतिमें ही आँसू की सृष्टि की। आचार्य शुक्लजीने ठीक ही कहा है—'आँसू वास्तवमे है तो श्रृगारी विप्रलम्भके छन्द, जिनमें अतीतके सयोग-सुखकी खिन्न स्मृतियोकी रह रहकर झलक मारती है। पर जहाँ प्रेमीकी मादकता की बेसुधीमे प्रियतम नीचेसे ऊपर आते और सज्ञाकी दशामें चले जाते है, जहाँ हृदयकी तरगे उस अनन्त कोनेको नहलाती चलती हैं, वहाँ आँसू उस अज्ञात प्रियतमके लिए बहते जान पडते है। स्वय प्रसादजीने आँसूके प्रारम्भमें लिख दिया है —

जो घनीभूत पीडा थी मस्तकमें स्मृति सी छाई,
दुर्दिनमें आँसू बनकर वह आज बरसने आई।

इतना स्पष्ट विवरण देनेपर भी यदि लोग उसमें वेदान्त और हठ योग ढूँढनेका प्रयत्न करते है तो उनको क्या कहा जाय।

कवि के रूपमें प्रसादजीकी अधिक प्रसिद्धि 'कामायनी' के कारण हुई जिसमें उन्होने यह दिखलाने-का प्रयत्न किया है कि मनुष्य जबतक 'इडा' या 'बुद्धि' के फेरमे पडा रहेगा तबतक उसे सासारिक द्वन्द्वोसे मुक्ति नही मिलेगी किन्तु जब वह श्रद्धा-समन्वित होकर ससार छोडकर एकान्तवास करनेके लिए निकल पडेगा तब उसे चारो ओर आनन्द ही आनन्द मिलेगा। उनका यह आनन्दवाद बाह्य आनन्दवाद है। अर्थात् ससारके द्वन्द्वोसे अलग होकर प्रकृतिकी मधुमय गोदमे स्वच्छन्द विचरण करनेकी भावनावाला आनन्द-वाद। इधर कुछ लोगोने 'कामायनी' मे शैव प्रत्यभिज्ञा-दर्शनका आरोप करना भी प्रारम्भ कर दिया है। उनका कहना है कि प्रसादजीने 'कामायनी' में शैव आनन्दवादकी प्रतिष्ठा की है किन्तु प्रसादजीने जिन सूत्रोसे कामायनीकी कथा और उसका रूपक लिया है उसमें कही उन्होने कश्मीरके शैवागमकी बात नहीं लिखी।

दूसरी मुख्य बात यह है कि प्रत्यभिज्ञादर्शनके अनुसार आनन्दकी वह स्थिति होती है जब पशुपति भगवान शिव की कृपासे यह पशु अर्थात् जीव माया-रूपी पाश से मुक्त होकर शिवोऽहम्‌का अनुभव करने लगता है अर्थात् जब वह स्वयं अपनेको 'शिव' के रूपमें पहचान लेता है। किन्तु कामायनीमें कहीं इस प्रकारकी बात नहीं है। कामायनीका पूर्वार्द्ध जितना सरस है उसका उत्तरार्द्ध उतना ही जटिल हो गया है। प्रसादजीने दार्शनिक और वैज्ञानिक बननेके फेरमें अपने कविको पीछे छोड़ दिया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि अल्पज्ञ पाठक उसीके आवरणमें व्यस्त होकर उसमें नए-नए दार्शनिक सिद्धान्त बैठे ढूँढा करते हैं। इस काव्यमें काम, चिन्ता, लज्जा आदि विशेष मानसिक भावोंका बड़ा अच्छा निरूपण और चित्रण किया गया है किन्तु न तो कथाकी दृष्टिसे इस काव्यमें कोई विलक्षणता है न इसका नायक मनु ही महाकाव्यके नायकके गुणोंसे युक्त आदर्श व्यक्ति है। अतः महाकाव्यकी श्रेणीमें तो कामायनी नहीं आती किन्तु यह अपने प्रकारकी अलग रचना है जिसकी अपनी अलग शैली और जिसका अपना अलग लक्ष्य है। यद्यपि कामायनीमें काव्यका क्रम स्पष्ट नहीं होता है और कथा प्रसंग भी कहीं-कहीं असम्बद्ध है फिर उसके कुछ सर्ग अत्यन्त मार्मिक और सुन्दर हैं विशेषतः लज्जा सर्ग। यह आश्चर्य की बात है कि जिस प्रसादने 'भारत-महिमा' नामक कवितामें मनुको अत्यन्त प्रशंसाके साथ स्मरण करते हुए कहा है—

> बचाकर बीज रूपसे सृष्टि नावपर झेल प्रलयका शीत।
> अरुण-केतन लेकर निज हाथ वरुण पथमें हम बढ़े अभीत॥

उन्होंने कामायनीमें मनुको इतना भीरु, चिन्तित, कामुक और भीरु स्त्रैण क्यों बना दिया कि उन्हें आनन्दकी प्राप्तिके लिये कामायनीका आश्रय लेना पड़ा।

सुमित्रानन्दन पन्त

सुमित्रानन्दन पन्तकी प्रारम्भिक कविता प्रकृतिकी गोदमें हुई। इसलिए उसमें शब्द-चित्रोंका माधुर्य अधिक मिलता है किन्तु आगे चलकर दार्शनिक प्रभावके कारण उनकी रचनाएँ दार्शनिक हो गई जिसमें वे सृष्टिकी नश्वरतापर विचार करने लगे। किन्तु इस प्रकारकी काव्य-तत्त्वहीन सब रचनाओंको काव्यकी श्रेणीसे हटाकर दर्शनकी श्रेणीमें रख देना चाहिए। इनकी तीसरी धारा युगके साथ चलने लगती है और ये अपने चारों ओर बिखरे हुए मानव समाजके साथ सहानुभूति दिखाने लगे। पन्तजीके चार कविता-संग्रह प्रसिद्ध हैं। वीणा, पल्लव, गुंजन और ग्राम्यामें उनकी तीनों भाव-पद्धतियोंका क्रमिक परिचय भली-भाँति मिल जाता है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

बँगलाके छायावादको नए अतुकान्त स्वच्छन्द छन्दोंमें नागरीमें प्रवर्तित करनेका श्रेय यदि किसी एक व्यक्तिको है तो वह है सूर्यकान्त त्रिपाठी निरालाको। संगीत और काव्य-शास्त्र, संस्कृत हिन्दी और बंगला भाषाओंपर जितना आपका अधिकार है उतना इस युगके अन्य किसी कविका नहीं है। इनकी भाषामें और शब्दोंमें पदावलीमें विचित्र प्रकारका काव्यात्मक ओज भरा हुआ है जिसमें यह शक्ति है कि वे अपने साथ पाठकको बहा ले जा सकते हैं। इनकी मुक्तक रचनाओंके अतिरिक्त 'तुलसीदास' और 'रामकी शक्तिपूजा' दो काव्य अत्यन्त महत्त्वके हैं जिनमें मधुर कल्पना, भावपूर्ण-व्यञ्जना, सुन्दर चित्र-भावोंको

आन्दोलित कर देनेवाली परिस्थितियोका मधुर समन्वय है। इन्होने कुकुरमुत्ता' 'गरम पकौडी' और 'वह तोडती पत्थर' जैसी भी कुछ खेलवाडी रचनाएँ की हैं किंतु वे इनकी कविता प्रतिभाकी नही, शुद्ध मस्तीकी परिचाययिका हैं। कविके रूपमें जो इन्होने रचनाएँ की है वे सचमुच बडी मनोहर और प्रौढ हैं। वर्तमान कालमे इतना प्रौढ, सशक्त और प्रतिभाशाली दूसरा कोई कवि उनकी जोडका नहीं हुआ।

महादेवी वर्मा

आचार्य शुक्लजीने छायावादी कहे जानेवाले कवियोमें महादेवीको ही रहस्यवादी माना है और कहा है कि 'उस अज्ञात प्रियतमके लिए वेदना ही इनके हृदयका भाव केन्द्र है जिससे अनेक प्रकारकी भावनाएँ फूट-फूटकर झलक मारती रहती है। वेदनासे इन्होने अपना स्वाभाविक प्रेम व्यक्त किया है, उसीके साथ ये रहना चाहती है और आगे मिलन-सुखको भी ये कुछ नही गिनती।" किन्तु महादेवी जीने स्वय 'आधुनिक हिन्दी कवि महादेवी' की भूमिकामे लिखा है कि 'मेरे जीवनमे वेदनाका स्थान नही है। मै सदा सुखी रही।' इससे प्रतीत होता है कि इनकी कविताका इनके हृदयसे कोई सम्बन्ध नही। मनोविश्लेषण-शास्त्रके अनुसार कहा जा सकता है कि वैवाहिक जीवन असफल और शून्य रहनेके कारण इनकी ये वेदनात्मक रचनाएँ इनके अचेतन मनसे उद्भूत अतृप्तिके परिणाम हैं। योरपमें प्रारम्भिक स्वैरवादियोको रोदन वादी (ड्राउड इन टीअर्स) या श्मशानवादी (ग्रेवयार्ड स्कूल) कहा गया है क्योकि वे लोग जीवनसे ऊबनेकी और वेदना की बातें किया करते थे। १८ वी शताब्दीमें टौमस पार्नेल, एडवर्ड यग, रॉबर्ट ब्लेयर, टौमस ग्रे आदिने जो रचनाएँ की उनमे केवल दुख और मृत्युकी ही बाते भरी रहती थी। अत उन सब लोगोको रोदनवादी कवियोकी सज्ञा दे दी गई। इसी प्रकार हिन्दीमे भी प्रसादजीकी अधिकाश रचनाएँ और महादेवी वर्माकी सब रचनाएँ रोदनवादी ही है। ये कविताएँ इतनी अधिक लाक्षणिक हो गई हैं कि जितने पण्डित है उतने ही अर्थ निकालते है यहाँतक कि हमारे कुछ मित्र तो उसमे भी वेदान्त और अष्टाग योगके दर्शनका स्वप्न देखा करते है। महादेवी वर्माका एक ही सग्रह है 'यामा' जिसमें इन्होने चित्र-सहित अपने गीत छापे है। किन्तु इन गीतोंका मनुष्यके हृदय और जीवनसे कोई सम्बन्ध नही और स्वय कवयित्रीके शब्दोमें 'उनके जीवनसे भी उनका सम्बन्ध नही है।' फिर ये रचनाएँ क्यो की गईं? क्या केवल कलाके लिए?

पद्मकान्त मालवीय

जिन दिनो महादेवी वर्मा अपने काव्यके स्वर साध रही थी उन्ही दिनो सन् १९२६ में प्रयागके सुप्रसिद्ध और लब्ध प्रतिष्ठ कवि पद्मकान्त मालवीयने अपनी कविताओके द्वारा हिन्दी साहित्य-जगतमें धूम मचा रखी थी। कोई ऐसा कवि-सम्मेलन न होता जिसमें वे निमन्त्रित न किए जाते और जिसमें वे सबसे इक्कीस न ठहरते हो। सन् १९२९ में उनकी पहली काव्य रचनाओकी मालिका 'त्रिवेणी' के नामसे प्रकाशित हुई। हृदयसे देश-भक्त होनेके कारण वे तत्कालीन सत्याग्रह आन्दोलनमें कूद पडे और सन् १९३० में वे दण्डित होकर कारागारवासी हो गऐ। सन् १९३२ में उनका दूसरा काव्य-सग्रह 'प्याला', सन् १९३३ में 'प्रेमपत्र', सन १९३४ मे 'आत्म-वेदना' तथा आत्म विस्मृति' सन् १९३६ में 'हार' और अब १९४० मे

पुनः कारागारमें पहुँच गये तो वहीं 'कंचन' की रचना हुई जिसका प्रकाशन १९४१ में हुआ। पद्मकान्त मालवीय ही उस हाला प्यालावादके वास्तविक जनक हैं जिसका अधिक प्रचार कविवर बच्चनने अपनी 'मधुशाला' और तत्सम्बद्ध रचनाओंके द्वारा किया।

पद्मकान्त मालवीयने सन् १९२४-२५ के लगभग हिन्दी काव्य क्षेत्रमें पदार्पण किया था अर्थात् उस युगमें जब पन्त, प्रसाद और निराला छायावादी युगकी सृष्टि कर रहे थे और भावात्मक वस्तुसे प्रेरणा लेकर कोमलकान्त पदावलीमें नवीन प्रकारकी रहस्यात्मक रचनाएँ की जा रही थीं। जिसके प्रभावसे हिन्दीकी एक अपनी भाषा-शैली निर्मित हो चली। किन्तु पद्मकान्त मालवीय इस शैलीसे अलग हटकर स्वाभाविक बोल-चाल और व्यवहार की हिन्दी भाषामें सक्रिय होकर रचनाएँ करते रहे।

उन्हीं दिनोंकी एक बड़ी विचित्र घटना उल्लेखनीय है। प्रयागके एक कवि जिनकी आज साहित्य-जगतमें प्रसिद्धि भी है उस समय पद्मकान्तजीके पास पहुँचे और उन्होंने उनसे कहा— मालवीयजी! 'हिन्दीके सप्तर्षि' नामसे एक काव्य-संग्रह प्रकाशित किया जाय जिसमें तीन तो पन्त, प्रसाद, निराला हो गए, तीन वर्मा त्रयी (महादेवी वर्मा, भगवती चरण वर्मा और रामकुमार वर्मा) और एक आप। इसपर पद्मकान्तजीने कहा कि— हरिऔध, रत्नाकर, मैथिली-शरण गुप्त आदिके रहते हुए यह धृष्टता मैं नहीं कर सकता। इस कथाका उल्लेख करनेका तात्पर्य यही है कि उस युगमें जब हिन्दी साहित्यके क्षेत्रमें कुछ लोग छल-बल कौशलसे मिथ्या ख्याति और सस्ती प्रशंसा प्राप्त करके महाकवियोंकी पगड़ी उछालकर और सबको लाँघकर महाकवि बननेका कुचक्र कर रहे थे उस समय अत्यन्त सत्य-निष्ठा और चारित्रिक महत्ताके साथ पद्मकान्तजीने उस प्रकारकी सस्ती प्रसिद्धिके साधनों और प्रवृत्तियोंका तिरस्कार किया था और किसी प्रकारकी भी सुलभ प्रसिद्धि की चिन्ता न करके अकेले अपनी काव्यधाराका निर्माण किया। उनकी रचनाओंके अनुशीलन और परिशीलन करनेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि उनके काव्यमें कितनी स्वाभाविकता, सरलता, सुबोधता और स्पष्टता है।

आजकल बहुतसे कवि रुबाइयाँ लिखने लगे हैं किन्तु हिन्दी रुबाइयोंका श्रीगणेश भी पद्मकान्त मालवीयने ही किया था। उनकी मधुशाला से एक रुबाई दी जाती है—

देता जा साकी मुझको हाला पर हाला।
जिसमें खूब लबालब भर जावे यह प्याला।
और गिरे तो दीप पात्रमें सोना अपने।
जिसमें जलती रहे सदा ही यह मधुशाला।

राष्ट्रीय आन्दोलनके समय उन्होंने यह प्रेरणात्मक कविता लिखी—

चले चलो बढ़े चलो, बढ़े चलो चले चलो
प्रखर सूर्य तापसे न तुम रुको न तुम थको
हृदयसे तुम निकाल दो अगर हो पस्त जिन्दगी
नहीं है खेल मात्र ये ये जिन्दगी है जिन्दगी।
न रक्त है न स्वेद है न हर्ष है न खेद है
यह जिन्दगी अभेद है यही तो एक भेद है॥

पद्मकान्तके द्वितीय काव्य-सग्रह, 'प्याला' (१९३२) पर टिप्पणी करते हुए डा रामप्रसाद त्रिपाठीजीने लिखा—"पद्मकान्तजीके विचारोपर उर्दू कविताका प्रभाव प्रत्यक्ष है। कुछ दिनोसे ऐसा लगता है कि उनपर उर्दू कविताका प्रभाव दिनपर दिन बढता जा रहा है। यदि वे अन्तिम रूपसे उर्दू काव्यकी परम्परापर चलनेका ही निश्चय करते है तो वे अपने साहित्यिक जीवनको हानि पहुँचाएँगे और अनुकरण करनेवालेके नीचे स्तरपर गिर जाएँगे। यदि वे छोटी-छोटी कविताएँ और गीत ही लिखे तो उनके लिए बहुत अच्छा होगा। यह सन्देह की बात है और सम्भव भी नही प्रतीत होता कि हिन्दी साहित्यकी परम्परा और परिपाटी कभी भी मदिरा, प्याला या वायजके लिये उपदेशक शब्द स्थायी रूपसे ग्रहण कर सके।'

इतना ही नही, सन् १९३३ की सरस्वतीमें भी यह लिखा गया कि 'हिन्दीके प्रतिभाशाली कवियोमें हाला और प्यालाका ही जोर नही बढ रहा है, वरन् वे कब्रके लिए भी लालायित है।' सम्भवत यही कारण रहा कि हिन्दी साहित्यके इतिहासकारोने पद्मकान्त मालवीयका नाम सूचीसे अलग कर दिया। आचार्य शुक्लजीने स्वय अपने साहित्यके इतिहासमें लिखा है कि बहुतसे लोग अपना नाम साहित्यके इतिहासमे सम्मिलित करानेके लिए प्रेरणा भी देते रहे और तग भी करते रहे। पद्मकान्तजीने यह सब कुछ नही किया और इसी लिए सम्भवत हिन्दी साहित्य के इतिहासकारोने उनकी उपेक्षा की। नीचे उनकी रचनाओंके कुछ उदाहरण दिये जा रहे है जिनसे उनकी कविताकी सरलता, सुबोधता और स्पष्टताका परिचय मिलेगा। साथ ही यह भी ज्ञात होगा कि हिन्दी साहित्य जगतमें उनकी काव्य-शैली अपनी निराली है। सुनिए —

दावा नहीं मुझे मैं कवि हूँ।
शशि बन गया या कि मे रवि हूँ
उजडे कविता-काननकी मै
स्मृति हूँ उसकी अतिम छवि हूँ॥
मेरी भाषामें है गगाजीको बहती हुई रवानी
सभी शब्द पावन हो जाते पाकर जिसका पावन पानी
भारतीय नारी-सी सीधी सादी सुन्दर भाषा मेरी
जिसमें उर्दूकी शोखी है हिन्दीकी मधु-मिश्रित बानी
पीना है पी लूंगा विष हो या हो हाला
जब तक खाली न हो जाये यह मेरा प्याला
मैं पीता जाऊँगा नभमें लुक-छिपकर
सुलझाएगी गूढ़ पहेली तारक-माला।

सुभाष बाबूका क्रान्ति आह्वान

सभी दिशाओंसे हे क्रान्ति! तुम्हारी जय-जयकार उठे
भारतीय प्रत्येक युवा नर-नारी फिर हुकार उठे
परतत्रता होलिकामें अब लगने ही वाली है आग।
खेलेगे हम रग रक्तसे जो जीवे सो खेले फाग।

मधु (कोसे—

समय आ गया है अब बदलो सभी पुरानी बातोंको
उठो बदल डालो तुम दिनसे अपनी काली रातोंको ॥
बूढ़े जो शरीर हों उनमें खून जवानीका भर दो।
पानीकी लघु बूंदोंमें तूफान एक पैदा कर दो ॥
रवि शशि नये बनाओ उज्ज्वल तारे नये उगें नभपर।
फैलो तुम उखाड़ तरुओंकी लगें नये पल्लव सुन्दर ॥
सभी पुरानी चीजोंको आओ आज बदल डालें
मुर्दे लाशोंको बदलें उठो आकाश बदल डालें ॥
जो ऐसे तलवार करोंमें नहीं कभी वे छिपते हैं।
किन्तु अहिंसाके परदेमें कायर भेष बदलते हैं ॥
राजमार्गको छोड़ चलो अब चलें आज अंगारोंपर।
मस्त खेल खम्भोंका हो अब तेज असिकी धारोंपर ॥

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलनके कवियोंमें माखनलाल चतुर्वेदी सियाराम शरण गुप्त बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और सुभद्रा कुमारी चौहान मुख्य हैं। पर इनमें या तो अधिक वाग्डम्बर है या सीधी तुकबन्दी अर्थात् कविता कम है स्वदेश-भक्तिका उद्वेग अधिक है—जैसा कि इस प्रकारकी कविताओंमें होना स्वाभाविक है।

वर्तमान कवियोंने बच्चनने अंग्रेजोंकी गीतिका (सौनेट) शैलीपर हिन्दीमें उमर खैयामकी हाला प्याली और मस्तीभरी भावना भरकर कविताकी एक नई धारा प्रवाहित की जिसका प्रभाव हिन्दीके कवियोंपर यह पड़ा कि कुछ दिनों तक लोग कवि सम्मेलनोंमें उसी शैलीपर गीत अलापते रहे। बच्चनने फारसीके हाला प्याला मधुशालाको अनेक रूपकों और प्रतीक भावनाओंके साथ हिन्दी साहित्यमें प्रस्तुत किया। सरकारी नौकरी करनेसे जैसे पन्तजीकी काव्य-धारा भिन्न होकर सूख गई वैसे ही बच्चनकी भी काव्य धारा दिग्भ्रान्त होकर सूख चली है। उनकी रचनाओंमें एकान्त संगीत मधुशाला मधुबाला और भिक्षा-निमन्त्रण प्रसिद्ध हैं।

महाकाव्यका युग—

यह एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना है कि इस युगमें अर्थात् पिछले कुछ वर्षोंमें हिन्दीमें अनेक महाकाव्योंके दर्शन हुए जिनमें श्यामनारायण पाण्डेयका हल्दी घाटी और जौहर, डा आनन्दका जगराज पुरुषदत्त सिंहका नूरजहाँ और विक्रमादित्य उदय शंकर भट्टका मत्स्यगन्धा भारती नन्दनका पार्वती मोहनलाल द्विवेदीका कुणाल और दिनकरका कुरुक्षेत्र और उर्वशी प्रसिद्ध हैं। इन सबमें भारतीनन्दनका पार्वती महाकाव्य सर्वश्रेष्ठ है और उसके पश्चात् यदि किसी दूसरे महाकाव्यका नाम लिया जा सकता है तो वह डा आनन्दका जगराज है। किन्तु पुराणोंके महापुरुषोंका चरित्र अत्यन्त असमर्थित ढंगसे चित्रण करनेके कारण वह महाकाव्य अभिशप्त हो गया है। कुरुक्षेत्रमें वर्तमान युगकी मुख्य समस्याओंपर विश्वव्यापी अभिनव भावनासे

विचार किया गया है। यद्यपि इसका कथानक महाभारतपर आश्रित है फिर भी इसे स्वतन्त्र रचना समझना चाहिए। इसमें कवि ने सब प्रकारके अन्यायोंके विरुद्ध शस्त्र उठाकर मानवताकी भावनाके अनुसार नवीन समाजके निर्माणका सन्देश दिया है। इसमे भी काव्यत्व कम है, दार्शनिकता अधिक भरनेका प्रयत्न किया गया है।

इधर जबसे भारत सरकारने पुरस्कार देने प्रारम्भ किए है तबसे नित्य नये महाकाव्य गढनेकी धुन भी बढती जा रही है और जान पडता है कि आगे आनेवाले कुछ वर्षोमें हिन्दीमें इतने महाकाव्य प्रस्तुत हो जायेगे जितने पिछले दो सौ वर्षोमे नही लिखे गए।

अन्य कवि

इस युगके अन्य कवियोमे माखनलाल चतुर्वेदी, रामकुमार वर्मा, भगवती चरण वर्मा, गुरुभक्तसिंह 'भक्त', जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द, उदयशकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, आरसीप्रसाद सिंह, जानकी वल्लभ शास्त्री, सोहनलाल द्विवेदी, रामेश्वर दयाल दुबे, अचल, तारा पाण्डेय, नरेन्द्र शर्मा, अज्ञेय, शिवमगल सिंह सुमन, केदार-नाथ अग्रवाल, गोपालसिंह नेपाली, हसकुमार तिवारी, चन्द्रमुखी ओझा, विद्यावती कोकिल, शिवप्रसाद मिश्र, रुद्र, मोती बी ए, शम्भुनाथ सिंह, नीरज आदि बहुतसे उल्लेखनीय है। आजके कवियोको कवि-सम्मेलनोमें परखा जाता है और पत्रो द्वारा प्रचारित किया जाता है अत जो लोग काव्यकी एकान्त साधना करते है उनका इस युगमें कोई स्थान नही है। इसीलिये बहुतसे वास्तविक प्रतिभाशील कवि प्रकाशमे आनेसे वचित रह गए हैं। साथ ही कवियो और कवयित्रियोकी सख्या इतनी अधिक हैं कि सबका नाम गिनाना भी सम्भव नही है। केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ऊपर उल्लिखित कवियोंके अतिरिक्त अगणित कवि समस्त भारतमें बिखरे हुए है जिनकी कविताओंके अनेक सुन्दर सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं किन्तु हिन्दी साहित्यके इतिहासकारोने उनकी प्रवृत्तियोकी उपेक्षा की है।

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद

छायावादी कवियोकी रोदनवादी, पलायनवादी और कल्पनावादी प्रवृत्तियोकी प्रतिक्रियाके रूपमें प्रगतिवादका प्रचलन हुआ जिसे यथार्थवाद और प्रकृतिवादका गतिशील रूपान्तर समझना चाहिए और जिसमें छायावादी रचनाओंके शुद्ध काल्पनिक तथा यथार्थ वर्णनोंके बदले यथार्थ अवस्थाओका वर्णन और चित्रण किया जाने लगा। इसलिए इनके विवरणोंमें कुछ राजनैतिक, कुछ सामाजिक और कुछ आर्थिक भावनाके साथ नए युगकी असन्तुष्टि, ऊब, कुण्ठा, और स्वातन्त्र्य प्रिय प्रवृत्तियोका अधिक अभिव्यञ्जन होने लगा और यह कहा और समझाया जाने लगा कि काव्य या साहित्यक रचना सोद्देश्य होनी चाहिए—उसका लक्ष्य होना चाहिये समाजका चित्रण और समाजकी भावनाओकी अभिव्यक्ति अर्थात् कला केवल कलाके लिए नही वरन् कला व्यवहारके लिए और समाजके लिए होनी चाहिए। इस प्रकारके साहित्यिक आदर्शकी भावना रूससे उधार ली गई थी जहाँ प्रसिद्ध जर्मन आर्थिक दर्शनवादी कार्लमार्क्सके वर्गवादका बोलबाला था। इसलिए इन सभी नवीन रचनाओमें 'रोटी' और 'भूख' का चित्रण किया गया, प्राचीन युगके सामन्तवादके विरोधके नारे लगाए गए, रिक्शेवाले, धोबी, चमार, घासवाले या घासवाली पर कविता लिखी जाने लगी और वे कवि

नवयुवकोंसे—

समय आ गया है अब बदलो सभी पुरानी बातोंको
उठो बदल डालो तुम दिनसे अपनी काली रातोंको ॥
बूढ़े भी शरीर हों उनमें खूब जवानीका भर दो।
पानीकी लघु बूँदोंमें तूफान एक पैदा कर दो ॥
रवि शशि नये बनाओ उज्ज्वल तारे नये उगें नभपर।
फेंको तुम उखाड़ तरुओंको लगें नये पल्लव सुन्दर ॥
सभी पुरानी चीजोंको आओ आज बदल डालें
टूटे साजोंको बदलें टूटी आवाज बदल डालें ॥
जो कैसे तलवार करोंमें नहीं कभी वे छिपते हैं।
किन्तु अहिंसाके परदेमें कायर भेष बदलते हैं ॥
राजमार्गको छोड़ चलो अब चलें आज अंगारोंपर।
बन्द खेल शब्दोंका हो अब खेलें असिकी धारोंपर ॥

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलनके कवियोंमें माखनलाल चतुर्वेदी सियाराम शरण गुप्त बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और सुभद्राकुमारी चौहान मुख्य हैं। पर इनमें या तो अधिक शब्दाडम्बर है या सीधी तुकबन्दी अर्थात् कविता कम है स्वदेश-भक्तिका उद्वेग अधिक है—जैसा कि इस प्रकारकी कविताओंमें होना स्वाभाविक है।

वर्तमान कवियोंमें बच्चनने अँग्रेजोंकी चौतिका (सौनेट) शैलीपर हिन्दीमें उमर खैयामकी हाला-वादी और मस्तीवादी भावना भरकर कविताकी एक नई धारा प्रवाहित की जिसका प्रभाव हिन्दीके कवियोंपर यह पड़ा कि कुछ दिनों तक लोग कवि सम्मेलनोंमें उसी शैलीपर गीत अलापते रहे। बच्चनने फारसीके हाला प्याला मधुशालाके अनेक रूपकों और प्रतीक भावनाओंके साथ हिन्दी साहित्यमें प्रस्तुत किया। सरकारी नौकरी करनेसे जैसे पन्तजीकी काव्य-धारा विकृत होकर सूख गई वैसे ही बच्चनकी भी काव्य धारा दिग्भ्रान्त होकर सूख चली है। उनकी रचनाओंमें एकान्त संगीत मधुशाला मधुबाला और निशा-निमन्त्रण प्रसिद्ध हैं।

महाकाव्यका युग—

यह एक हर्षजनक बात है कि इस युगमें अर्थात् पिछले कुछ वर्षोंमें हिन्दीमें अनेक महाकाव्योंके दर्शन हुए जिनमें श्यामनारायण पाण्डेयका हल्दी घाटी और जौहर, डा. आनन्दका अंगराज गुरुभक्त सिंहका नूरजहाँ और विक्रमादित्य उदय शंकर भट्टका मत्स्यगन्धा भारती नन्दनका पार्वती सोहनलाल द्विवेदीका कुणाल और दिनकरका कुरुक्षेत्र और उर्वशी प्रसिद्ध हैं। इन सबमें भारतीनन्दनका पार्वती महाकाव्य सर्वश्रेष्ठ है और उसके पश्चात् यदि किसी दूसरे महाकाव्यका नाम लिया जा सकता है तो वह डा. आनन्दका अंगराज है। किन्तु पुराणोंके महापुरुषोंका चरित्र अत्यन्त अमर्यादित ढंगसे चित्रण करनेके कारण यह महाकाव्य अभिशप्त हो गया है। कुरुक्षेत्र वर्तमान युगकी मुख्य समस्याओंपर विश्वव्यापी अभिनव भावनासे

विचार किया गया है। यद्यपि इसका कथानक महाभारतपर आश्रित है फिर भी इसे स्वतन्त्र रचना समझना चाहिए। इसमें कवि ने सब प्रकारके अन्यायोंके विरुद्ध शस्त्र उठाकर मानवताकी भावनाके अनुसार नवीन समाजके निर्माणका सन्देश दिया है। इसमें भी काव्यत्व कम है, दार्शनिकता अधिक भरनेका प्रयत्न किया गया है।

इधर जबसे भारत सरकारने पुरस्कार देने प्रारम्भ किए है तबसे नित्य नये महाकाव्य गढनेकी धुन भी बढती जा रही हैं और जान पडता है कि आगे आनेवाले कुछ वर्षोमे हिन्दीमें इतने महाकाव्य प्रस्तुत हो जायेंगे जितने पिछले दो सौ वर्षोमे नही लिखे गए।

अन्य कवि

इस युगके अन्य कवियोमें माखनलाल चतुर्वेदी, रामकुमार वर्मा, भगवती चरण वर्मा, गुरुभक्तसिंह 'भक्त', जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द, उदयशकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, आरसीप्रसाद सिंह, जानकी वल्लभ शास्त्री, सोहनलाल द्विवेदी, रामेश्वर दयाल दुबे, अचल, तारा पाण्डेय, नरेन्द्र शर्मा, अज्ञेय, शिवमगल सिंह सुमन, केदार-नाथ अग्रवाल, गोपालसिंह नेपाली, हसकुमार तिवारी, चन्द्रमुखी ओझा, विद्यावती कोकिल, शिवप्रसाद मिश्र, रुद्र, मोती बी ए, शम्भुनाथ सिंह, नीरज आदि बहुतसे उल्लेखनीय हैं। आजके कवियोको कवि-सम्मेलनोमे परखा जाता है और पत्रो द्वारा प्रचारित किया जाता है अत जो लोग काव्यकी एकान्त साधना करते हैं उनका इस युगमें कोई स्थान नही है। इसीलिये बहुतसे वास्तविक प्रतिभाशील कवि प्रकाशमे आनेसे वचित रह गए हैं। साथ ही कवियो और कवयित्रियोकी सख्या इतनी अधिक है कि सबका नाम गिनाना भी सम्भव नही है। केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ऊपर उल्लिखित कवियोके अतिरिक्त अगणित कवि समस्त भारतमें बिखरे हुए है जिनकी कविताओंके अनेक सुन्दर सग्रह प्रकाशित हो चुके है किन्तु हिन्दी साहित्यके इतिहासकारोने उनकी प्रवृत्तियोकी उपेक्षा की है।

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद

छायावादी कवियोकी रोदनवादी, पलायनवादी और कल्पनावादी प्रवृत्तियोकी प्रतिक्रियाके रूपमें प्रगतिवादका प्रचलन हुआ जिसे यथार्थवाद और प्रकृतिवादका गतिशील रूपान्तर समझना चाहिए और जिसमें छायावादी रचनाओंके शुद्ध काल्पनिक तथा यथार्थ वर्णनोके बदले यथार्थ अवस्थाओका वर्णन और चित्रण किया जाने लगा। इसलिए इनके विवरणोमें कुछ राजनैतिक, कुछ सामाजिक और कुछ आर्थिक भावनाके साथ नए युगकी असन्तुष्टि, ऊब, कुण्ठा, और स्वातन्त्र्य प्रिय प्रवृत्तियोंका अधिक अभिव्यञ्जन होने लगा और यह कहा और समझाया जाने लगा कि काव्य या साहित्यक रचना सोद्देश्य होनी चाहिए—उसका लक्ष्य होना चाहिये समाजका चित्रण और समाजकी भावनाओकी अभिव्यक्ति अर्थात् कला केवल कलाके लिए नही वरन् कला व्यवहारके लिए और समाजके लिए होनी चाहिए। इस प्रकारके साहित्यिक आदर्शकी भावना रूससे उधार ली गई थी जहाँ प्रसिद्ध जर्मन आर्थिक दर्शनवादी कार्लमार्क्सके वर्गवादका बोलवाला था। इसलिए इन सभी नवीन रचनाओमे 'रोटी' और 'भूख' का चित्रण किया गया, प्राचीन युगके सामन्तवादके विरोधके नारे लगाए गए, रिक्शेवाले, धोबी, चमार, घासवालों या घासवाली पर कविता लिखी जाने लगी और वे कवि

जिनका इस प्रकारके वर्गोसे कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा न उनके दुःख सुखका अनुभव रहा वे अपनी कविताओंमें उनपर आँसू बहाने लगे। इस प्रकारके सामाजिक यथार्थवादी कविताओं या रचनाओंकी निम्नांकित विशेषताएँ हैं —

१—बुर्जुआ (मध्यवर्गीय) राष्ट्रीय सरकारके विरुद्ध आक्रोश।

२—सामाजिक विषमताके विरुद्ध विद्रोह।

३—शोषित और पीड़ित वर्गके कष्टोंके प्रति सहानुभूति और समवेदनाका उद्गार।

४—समकालीन राजनीतिपर आक्षेप।

५—वर्गहीन समाजकी रचनाके लिए प्रेरणा।

६—ग्रामीण जीवनका वर्णन और चित्रण।

७—साम्राज्यवादका विरोध।

८—समस्त प्राचीन आदर्शों भावनाओं और संस्थाओंका विरोध।

इन लेखकों और कवियोंने सरल व्यावहारिक लोकजीवनमें व्यवहृत भाषाका प्रयोग किया और तुकान्त छन्दोंके साथ अतुकान्त और बेतुके छन्द बनने लगे। यति और छन्द-रचनाके बदले गति लय और प्रवाहका ध्यान रखा जाने लगा। काव्य-शास्त्रके सब नियम तोड़ डाले गए क्योंकि इन कवियों या लेखकोंका काव्य शास्त्र या छन्द शास्त्रका न तो ज्ञान था न उसका ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न किया गया। इससे काव्य का कला-पक्ष अर्थात् मनुष्यके हृदयको प्रभावित करने वाले पक्षका सर्वथा अभाव हो गया केवल बुद्धिको प्रभावित करनेकी बात रह गई। इसलिये यह बहुत दिन तक न चल पाई और स्वतः समाप्त हो गई। दूसरा कारण यह भी था कि उसमें शाश्वत भावोंको पल्लवित करनेकी भावना तनिक भी नहीं थी। समाजमें नए युगकी चेतना फैलनेके कारण इन प्रगतिवादियोंके विचारोंका कोष ही समाप्त हो गया। इसलिए उसका अवसान स्वाभाविक था।

इसे इस प्रकार समाप्त होते देखकर कुछ लोगोंने योरपके प्रसिद्ध मनोविश्लेषण शास्त्री फ्रायडके उपचेतन या अर्द्ध चेतन और अचेतनकी धारणाओंका पल्ला पकड़ कर और योरपसे सार्त्रके अस्तित्ववाद (एग्जिस्टेंशियलिज्म) और अति यथार्थवाद (सररियलिज्म) वर्तमानवाद (क्वीटिसिज्म) भविष्यवाद (फ्यूचरिज्म) बिम्बवस्तुत्ववाद (ऑब्जेक्टिविज्म) मानव-महत्तावाद (ह्यूमैनिज्म) अभिनव भविष्यवाद (न्यूफ्यूचरिज्म) आदि अनेक वादोंसे प्रभावित होकर विशेषतः टी एस इलियटकी नई भावधारासे प्रेरणा लेकर प्रयोगवादका प्रवर्तन किया जिसमें मुख्यतः या तो कविके अन्तःकरण और मानसिक द्वन्द्वों तथा प्रतिक्रियाओंका चित्रण होता है या मनुष्यके उपचेतन या अचेतन मनके मूर्त अमूर्त व्यवस्थित अव्यवस्थित समग्र बलवान पूर्ण या अपूर्ण कुण्ठित या अतृप्त इच्छाओं वासनाओं भावनाओं और विचारोंकी अभिव्यक्त करनेकी प्रवृत्ति रहती है और उनको स्वाभाविक रूपसे या भावात्मक दृष्टिके रूपमें व्यक्त कर देना ही उसकी कलाकी सफलता मानी जाती है। इनमें नए छन्दों नए प्रतीकों नए उपमानों और नए बिम्बोंके द्वारा मनुष्यके आन्तरिक जीवनकी सम्वेदनाओंको थोड़े शब्दों अनेक प्रकार विराम चिह्नों (?— — —) आदिके द्वारा प्रतीकात्मक रूपसे व्यक्त किया जाता है। ये लोग विचार-सम्बन्धी सभी प्रकारके परम्परागत नियमों भावनाओं अभिव्यक्तियों शैलियों और रूपोंका त्याग करके अपने मानसिक भावको भावमय देना ही अपनी

कविताका ध्येय समझते हैं। इन लोगोने प्राय मनुष्यकी काम-वासनाको अधिक महत्व देकर यथासम्भव उसे चित्रण करनेका और उसे ही मानवीय प्रेरणाओका मूल स्रोत समझनेका राग अलापा है। इनकी भी काव्य-प्रेरणा विलायती है। इन्होने वाल्ट हिटमैन, टी एस ईलियट, और ई ई कमिंग्स आदि अमरीकी कवियोको ही अपना अग्रज और नेता माना है।

इन प्रयोगवादियोंके कई रूप हो गए हैं—प्रयोगवादी कवि, प्रयोगशील कवि और नई कविताके कवि। इन प्रयोगवादी कवियोने अपने साहित्यिक वादका नाम प्रपद्यवाद या नकेनवाद रखा है। (न–केन–जो किसीने न रचा हो) वे केवल कौशल (टेकनीक) के विभिन्न प्रयोगो तक ही अपनी रचना परिमित रखना चाहते है और विषय तथा शैलीको अधिक महत्व देना चाहते हैं। किन्तु नई कविताके कवि समाजकी चेतनाको मुखरित करनेके साथ ही व्यक्ति चिन्तनका भी राग अलापते है। किन्तु ये सभी कवि पथभ्रष्ट हैं। हिन्दुस्तानके सात अन्धेके समान काव्यके अलग-अलग अगोको पकडकर सब या तो उसीको काव्य समझ बैठे है या विलायतसे उधार और जूठनमे पाई हुई अनैसर्गिक, अस्वाभाविक और अभारतीय भावनाओको पल्लवित करनेका प्रयास कर रहे है जो चिरस्थाई तो नही ही होगी, वरन् हमारे सम्पूर्ण परम्परागत काव्य वैभवको भी भ्रष्ट करके व्यभिचरित कर देगी। काव्यके क्षेत्रमे इस भयकर अराजकता और साहित्य-व्यभिचारको तत्काल रोकना चाहिए।

इनका एक ही उदाहरण पर्याप्त है—

सनातन-कथा

मात्र
××
मौन
××
मृत्यु
लीजिए हो गई कविता, अब आप अर्थ लगाइए बैठकर।

प्रगतिवाद

'प्रगति' शब्दको 'गति' के साथ 'प्र' लगाकर 'तीव्र' के अर्थमें स्वीकार कर लिया गया है। भारतमें यह वाद अँग्रेजीके 'प्रोग्रेसिविज्म' का अनुवाद बनकर आया। सन् १९३५ में ई एम फौरेस्टरकी अध्यक्षतामें लन्दनमें प्रगतिशील लेखक-सघ '(प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोशियन) नामकी अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाका श्रीगणेश हुआ जिसमे भारतसे मुल्कराज आनन्द और सज्जाद अली जहीर सम्मिलित हुए थे। वहाँसे लौटनेपर इन सब लोगोंने भारतकी स्वाभाविक अनुकरण प्रवृत्तिके अनुसार यहाँ भी प्रगतिशील साहित्य नामसे भारतमें उसकी एक शाखा खोल कर प्रेमचन्दजीको उसका प्रथम सभापति बना दिया। इसी सस्थाके द्वारा प्रचारित साहित्य ही प्रगतिवादी साहित्य कहलाया जिसकी प्रेरणा दी प्रेमचन्दजीके अध्यक्षीय भाषणने।

प्रगतिवादका आधार मार्क्सवादी अर्थात् आर्थिक है और जब साहित्यका आधार आर्थिक बन जाता है तब वह साहित्य न हो कर सौदेकी व्यवसायकी वस्तु हो जाती है। मार्क्सवादी सिद्धान्तोंपर आश्रित होनेके परिणाम स्वरूप बहुतसे आलोचकोंने कुछ भ्रमवश और कुछ व्यंग्यसे इसे मार्क्सवादका साहित्यिक संस्करण कहा है किन्तु यह वाद समकालीन सामाजिक परिस्थितियोंका चित्रण करनेका आडम्बर लेकर भारतीय परिस्थितियोंको मार्क्सवादी आधारपर साहित्यके रूपमें ढालनेका प्रयत्न था।

प्रगतिवादके इस सर्जनात्मक पक्ष या साहित्यिक स्वरूपके अतिरिक्त इसका समीक्षण-पक्ष भी उतना ही विचित्र है। यह भी इसी दृष्टिसे साहित्यकी आलोचना करना उचित समझता है कि साहित्यमें शोषितका समर्थन करके शोषकोंकी निन्दा की जाय और यह प्रयत्न किया जाय कि शोषितोंकी हीन दशाका चित्रण करके उनके मनमें शोषकोंके प्रति विद्रोह जगाया जाय। इस समीक्षात्मक प्रवृत्तिके कारण एक प्रगतिवादी समीक्षा-पद्धति भी प्रचलित हो गई किन्तु उसका क्षेत्र भी एक विशेष वर्ग तक सीमित रह गया।

प्रयोगवादी रचनाओंमें मुख्य रूपसे वर्ग-संघर्षकी भावना दलित पीड़ित और शोषित वर्गकी विजय सामाजिक विषमताओंका यह चित्रण जिसमें सामाजिक रूढ़ियोंका विरोध करनेवाले तत्त्वोंका समर्थन हो सब प्रकारकी व्यक्तिगत सामूहिक और सामाजिक समस्याओंका उच्च मानवी स्तरपर बौद्धिक समाधान धार्मिक एवं सामाजिक परम्पराओं विचारों रूढ़ियों और रीति नीतियोंपर टिप्पणीके साथ उन्हें नया पूर्ण दृष्टिसे देखनेकी प्रवृत्ति उद्देश्यकी प्रधानता और सामाजिक भावनाओंकी विशेष आवेशपूर्ण अभिव्यक्ति अधिक थी। आलोचनाके क्षेत्रमें प्रयोगवादियोंने ऐतिहासिक समीक्षा-पद्धतिको अधिक महत्त्व दिया।

प्रयोगवादके लेखकों आलोचकों और कवियोंमें राहुल सांकृत्यायन यशपाल अश्क, नागार्जुन केदारनाथ अग्रवाल शिवमंगल सिंह सुमन रामविलास शर्मा प्रकाश चन्द्र गुप्त रामवृक्ष बेनीपुरी रांगेय राघव भवानीप्रसाद मिश्र रांगेय राघव त्रिलोचन चन्द्रकुँवर बर्त्वाल चन्द्रकिरण सौनरिक्सा अमृतराय तेज बहादुर, चौधरी भीष्म सहानी भैरवप्रसाद गुप्त प्रेमचन्द्र गुप्त [महेन्द्र भटनागर प्रमुख हैं। इन लोगोंने प्रेमचन्दजीको अपने दलमें सम्मिलित करनेका बहुत प्रयत्न किया किन्तु सर्वोपरता वे इसमें आकर भी अलग ही रहे।

गीतलहरी या गीतवाद

छायावादकी गीत-पद्धतिसे विद्रोह करते हुए उसके आध्यात्मिक और पारमार्थिक छाया-स्वरूपकी अवहेलना करते हुए वर्तमान युगके लोक-जीवनके वास्तविक स्वरूपका सामंजस्यसे निरूपण करनेके लिए नए प्रकारके गीतोंका प्रचलन हुआ जिसकी नींवकी कड़ीमें आए बच्चन और अंचल। बच्चनने उमर खैयामके मस्तीवादी सिद्धान्तका आश्रय लेकर रूपकों प्रतीकों और अध्यवसायोंके माध्यमसे नए प्रकारके गीत लिखे जो बड़े लोकप्रिय हुए। इन सभी गीतोंमें मुख्य रूपसे शृंगार अथवा प्रेमकी तथा पूर्ण लौकिक सामान्य भावनाओंका अभिव्यञ्जन हुआ। परिणाम स्वरूप हिन्दीमें गीतकारोंकी बाढ़ आ गई और हिन्दीके कवि-सम्मेलन बहुत दिनों तक नवीन सम्मेलन बने रहे। इन सभी प्रकारके प्रेम काव्योंमें प्रायः प्रेमकी विफलताका ही विशेष अंकन था यद्यपि छायावादी कवियोंके समान इनके सभी प्रेम-पात्र अस्पष्ट और अज्ञात थे। दूसरी इनकी विशेषता यह रही कि अंग्रेजीके रोमान्सवादी और छायावादी कवियोंके समान इनका भी करुण स्वर ही अधिक मुखर था जिसमें आदिसे अन्त तक सारी अनुभूतियाँ आसुओंसे तर और वेदनासे कराहती हुई दिखाई पड़ती

थी। प्राय इस प्रकारके कवियोको कण्ठ सुन्दर मिला हुआ था इसलिए कवि-सम्मेलनोमें इन्हे बडी ख्याति मिली और इन्हींके कारण उनका प्रचार भी हुआ। जनताने भी इन्हे हाथो हाथ ऊपर उठा लिया और नए कवि भी इन्हींके पीछे दौड पडे। इसमे कोई सन्देह नही है कि प्रगतिवादी और प्रयोगवादी रचना-कौशल और बौद्धिक व्यायामके मरुस्थलोके बीच यह गीत-लहरी निश्चित रूपसे मरुद्यानकी सरस पुष्करिणी थी।

पीछे चलकर ये सभी गीतकार करुणाके साथ-साथ मानवताका भी आडम्बर-पूर्ण आलाप भरने लगे और उन्होने कल्पना की मधुर स्वप्निल अनुभूतियोंके साथ साथ सामाजिक समस्याओकी अभिव्यक्तिका भी प्रयास किया, किन्तु वह प्रयास नितान्त असफल हुआ क्योकि उसकी भाव-भूमि पूर्णत मिथ्या और खोखली थी। इसलिए इनकी रचनाएँ यथार्थवादी न होकर केवल भावात्मक बनी रह गई जो श्रोताओकी मानस तृप्तिके लिए तो सहायक हुईं किन्तु समाजके भावात्मक परिष्कारके लिए निष्फल ही सिद्ध हुई।

इन गीतकारोमें स्वभावत स्त्रियाँ अधिक थी—इसके मुख्य कवि हुए हैं तारा पाण्डे, विद्यावती कोकिल, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, शकुन्तला सिरोठिया, शम्भुनाथ सिह, मोती बी ए, हसकुमार तिवारी, गोपीकृष्ण गोपेश, श्रीपाल सिह क्षेम, गिरिधर गोपाल, शान्ति मेहरोत्रा, रमानाथ अवस्थी, जगदीश गुप्त, नर्मदेश्वर उपाध्याय और बालस्वरूप राही।

प्रयोगवाद

प्रयोगवादकी सर्वप्रथम चर्चा 'तारसप्तक' (१९४३) से प्रारम्भ हुई। जिसे 'प्रतीक' पत्रिका (१९४७ से ५२) ने पर्याप्त प्रचारित करनेका प्रयत्न किया। द्वितीय तार सप्तक (१९५२) तक आते-आते जब उसकी स्थापना होनेको हुई उसी समय वह काल कवलित हो गया। इस प्रयोगवादके 'प्रयोग' शब्दका मनोरञ्जक इतिहास यह है कि तारसप्तककी भूमिका मे अज्ञेय ने नवीन काव्य-प्रवृत्तिको तत्कालीन परम आवश्यकता बताया, उसे 'प्रयोग' शब्दसे सम्बोधित किया। छायावाद तो सन १९४० तक पहुँचते-पहुँचते स्वत आत्मलीन हो गया था क्योकि उसका सम्पूर्ण दर्शन और उसकी सामग्री सबका दिवाला निकल चुका था। यहाँतक कि छायावादके कवि स्वय अपने पथसे विचलित होकर चले थे। उधर प्रगतिवाद भी विश्व व्यापक समाजवादका प्रचारक बनकर नया अखाडा बनाकर बैठ गया और इसीलिए वह भी अल्पायु होकर समाधिस्थ हो गया क्योकि वह समकालीन लोकानुभूतियों या यो कहिए कि राजनैतिक तथा समाजवादी अभिव्यक्तियोंके लिए निरन्तर व्याकुल रहा। वास्तवमे यही उसकी सृष्टिका प्रेरणा-मन्त्र भी था।

इस प्रयोग वादके प्रवर्त्तन और समर्थनका आधार भी शुद्ध विदेशी था। इसलिए भारतकी भूमिमें अस्वाभाविक होनेके कारण यहाँकी जलवायुमें वह पनप नही सका। सन् १९६२ में लन्दनसे प्रकाशित 'न्यू सिगनेचर्स' नामसे एक सकलन प्रकाशित हुआ था जिसमे औडेन, जूलियन वेल, सेसिल, ड्रू, लुइस, रिचर्ड, एवरहर्ट, विलियम एम्सन, जौन लेमन, विलियम प्लोवेर, स्टीपेन, स्पेडर तथा टेसीमोन नामक नवयुवक कवियोकी नवीनतम रचनाएँ सकलित थी जिसकी भूमिका माइकेल रौबर्ट्सने लिखी थी। ये सभी युवक कवि द्वितीय महायुद्धके पीछेकी समस्त विश्रृखलताओ, विभीषिकाओ और जीवनकी अव्यवस्थितताओ से विक्षुब्ध थे। नवीन युगकी भावनाके अनुकूल प्रगतिशील विचारोंसे प्रेरित होकर साहित्यमे नई भावनाएँ

लेकर उपस्थित हुए। यह संकलन लगभग उसी प्रकारका था जिस प्रकारका यहाँ तारसप्तक प्रकाशित हुआ क्योंकि तारसप्तक के सब कवि भी या तो अपने समयकी समस्त सामाजिक विषमताओंसे और द्वितीय महायुद्धके पश्चात् उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण व्यक्तिगत सामूहिक मानसिक विभीषिकाओंसे पूर्णतः प्रभावित होनेका रूपक लेकर उपस्थित हुए अथवा छायावादी कवियोंके समान पारमार्थिक भावनाओंके अनुकरण-पर या जन-मानसकी कल्पित व्याकुलताको अभिव्यक्त करनेके लिए या अपने अतृप्त अहम्‌को पाठकोंके सिरपर पटकनेके लिए व्याकुल थे। इनमेंसे कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जिसे व्यक्तिगत रूपसे समाजकी विषमताओंने प्रभावित किया हो। यह अवश्य कहा जा सकता है कि इस युगकी अतृप्त भावनाको इन सभी वर्तमान लेखकोंने अंकित करनेका यथाशक्ति साथ प्रयत्न किया है।

प्रयोगवादके प्रवर्तकोंने (विशेषतः अज्ञेयने) इस प्रयोगको साध्य नहीं अपितु अपनी तीव्र अनुभूतिको व्यक्त करनेका साधन माना है। किन्तु प्रयोगवादियोंका एक ऐसा भी मंडल था जिन्होंने इसे साध्य मानकर अपने नामोंके पहले अक्षरसे नाम देकर नकेन वाद या प्रपद्य वाद चलाया। नकेन के अन्तर्गत न से नलिन विलोचन शर्मा के से केसरीकुमार और न से नरेश मेहता का तो बोध होता ही है किन्तु इसका अर्थ यह भी है कि हम ऐसा कर रहे हैं जैसा किसीने पहले नहीं किया (न केन)। उनका स्पष्ट मत था कि कवि तो परम्परा-मुक्त होता है। अपनी कवितामें प्रयुक्त किए हुए प्रत्येक शब्द और छन्दका वह स्वयं निर्माता होता है। हमारे यहाँ तो पहले भी कहा जाता था —

लीक लीक गाड़ी चले लीक हि चले कपूत।
लीक छाँड़ि तीनौ चलें सायर, सिंह, सपूत॥

स्वयं वाल्मीकिने वेदके छन्दोंको छोड़कर नये छन्दोंमें रामायणकी रचना की। महाकवि कालिदासने पूरे रघुवंशको अपने काव्यका आधार नायक बनाया। अन्य सभी प्रौढ़ कवि निरन्तर इसी प्रकारके प्रयोग करते रहे। अच्छे कविका स्वभाव ही यही था। किन्तु एक बातमें वे सभी एक मत थे कि काव्यका प्रतिपाद्य विषय ऐसा अवश्य होना चाहिए जो मानवीय भावनाओंका परिष्कार करे। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरित मानसके प्रारम्भमें कहा था—

सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदर सुजान।
सहज बैर बिसराइ रिपु, सादर करहिं बखान॥

उसी कविताको सुजान लोग आदर रसिक समझते हैं जो सरल हो जिसमें किसीकी विमल कीर्तिवालेका चरित्र वर्णित हो। उसकी कसौटी यही है कि स्वाभाविक बैर भुलाकर शत्रु भी उसका बखान करने लगे।

कविताके इस महत्त्वपूर्ण तत्त्वपर इन कवियोंने कोई ध्यान नहीं दिया। अज्ञेयने यद्यपि परम्पराकी शक्तिको अस्वीकार तो नहीं किया किन्तु यह आग्रह अवश्य किया कि उसमें समयकी आवश्यकताके अनुरूप भावनाओं और प्रवृत्तियोंके विश्लेषण और निरूपणका योग अवश्य होना चाहिए।

इन्हीं भावनाओंके कारण प्रयोगवादी रचनाओंमें मध्यवर्गीय जीवनके वास्तविक चित्रोंके प्रदर्शनका अधिक प्रयत्न किया गया जिनमें मध्यवर्गीय समाजकी विवशतापूर्ण अवस्था दीनता जीवनकी कटुताएँ, पलायनवादी प्रवृत्ति आत्महीनता कुंठा आदि सबका अंकन किया गया है। इस वस्तु-नियोजनके अतिरिक्त

उनकी विशेषता यह है कि वे रचना-कौशलके स्वरूपके प्रति विशेष रूपसे सजग और सचेष्ट है। इसीलिए उनकी रचनाओमे अनेक प्रकारकी विचित्रताओके दर्शन होते है।

इस वादके मुख्य कवियोमे अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, मुक्तिबोध, नेमिचन्द, भारतभूषण, शमशेर, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, नलिन विलोचन शर्मा, केशरी कुमार और नरेश मेहता मुख्य है।

किन्तु वादकी वात्यामे पडकर इनकी रचनाएँ इतनी निष्प्राण हो गई है कि किसी भी प्रकारके समाज-को न इनसे प्रेरणा मिलती, न उनका कोई कल्याण हो सकता। यदि इनका उद्देश्य यही था कि हम मध्यवर्गीय समाजके जीवनकी विषमताओका चित्रण करके उन्हे नव-चेतनाके लिए उद्वोधन दें अथवा उनके मनमे क्रान्ति उत्पन्न करें तो उनका यह प्रयास भी नितान्त असफल सिद्ध हुआ। यह वाद कुछ विशेष व्यक्तियोकी सीमामे आवद्ध होकर रह गया जो या तो इस वादके प्रचारक थे या समर्थक, समाजपर इसका कोई भी प्रभाव नही पडा और यह वाद भी अपनी अल्प सम्पत्ति लेकर अकाल ही कालग्रस्त हो गया।

नई कविता

इन प्रयोगवादी कवियोकी रचनाओको नया नाम दिया गया 'नई कविता' क्योकि 'नई कविता' के इन रचनाकारोमे कुछ नए कवियोको छोडकर शेष सभी प्रयोगवादी दलके ही थे। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है सन् १९५० तक आते-आते इन्होने प्रयोगकी वृत्ति छोडकर नए भाव-बोधसे प्रेरित होकर कुछ नए प्रकारकी रचनाएँ प्रारम्भ कर दी जिसे वे बदलते हुए नए सामाजिक बोधकी अभिव्यक्तिका प्रयत्न बताते है। हमारा नया समाज स्वतन्त्रताके पश्चात् चार नए वर्गोमे विभक्त हो गया—एक नेता वर्ग, दूसरा अधि-कारी (नौकरशाही) वर्ग, तीसरा प्रबुद्ध किसान मजदूर वर्ग और चौथा दलित मध्यवर्ग। इनमेंसे नेता-वर्ग और अधिकारी वर्ग हमारे वर्तमान युगकी बहुत बड़ी समस्या है क्योकि उनका भ्रष्टाचार पराकाष्ठापर पहुँच गया है। यद्यपि जमीदार लुप्त हो गए और राजवाडे भी समाप्त हो गए किन्तु उनकी सब बुराइयाँ सत्तारूढ़ नेताओ और राज्याधिकारियोमे व्याप्त हो गईं। महगाईके कारण किसान और मजदूरोकी दशा बहुत सुधर गई। अत इस समय केवल एक ही वर्ग अत्यन्त असन्तुष्ट, दलित और पीडित रह गया है और वह है मध्य वर्ग। किन्तु 'नई कविता' मे इन सवकी भावनाओका प्रतिनिधित्व और इस नवीन सामा-जिक विषमताका कोई समाधान नही किया वरन् नए प्रतीको, बिम्वो और उपमानोके साथ एक विचित्र काल्प-निक अस्वाभाविक कुठाका चित्रण उसी प्रकार किया जैसे छायावादियोने किया था। अन्तर इतना ही है कि लोग सडाँध, घुटन और तडपन जैसे शब्दोका प्रयोग करते है वे 'मूक वेदना, मौन, हाहाकार, और टूटी वीणाके तार बजाते थे। मदिरा वही है, सुराही बदल गई है। 'निकष' नामक पत्रने इस 'नई कविता' को बहुत सिर चढानेका प्रयत्न किया, इसका बहुत ढिंढोरा पीटा, पर पाडुरोगके रोगीको पहलवान घोषित करके अखाडेमे नही उतारा जा सकता। सयोगसे इसका क्षेत्र कुछ थोडेसे प्रचारको, और प्रयोगकी परिमल और 'साहित्य सहयोग' आदिकी सस्थाओकी परिचर्चा तक ही वँध कर रह गया। कुछ और भी पत्रोने इधर-उधर इनकी वकालत की पर वे भी ठहर न सके।

इस नई कविताकी विशेषता यह थी कि जिसे कोई न पूछे उसकी ये वकालत करते थे। सामान्य वस्तुओं और परिस्थितियोंसे भी इन्होंने नाता जोड़ा गहरे और तीखे व्यंग किये नई छन्द-योजना चलाई, व्यापक और उन्नत मानववादी भावनाओंका स्पर्श रखा और योरोपके भविष्यवाद (फ्यूचरिज्म) और अहं-भविष्यवाद (ईगोफ्यूचरिज्म) के अनुकरण पर यान्त्रिक सभ्यताका अंकन किया। इन लोगोंने सर्वथा नयपर बल दिया तुक तालका बन्धन तोड़ा किन्तु नयपर भी ठहर न सके क्योंकि ये सभी बेसुरे और बेतुके थे।

प्रयोगवादी कवियोंके अतिरिक्त नई कविता के कवियोंमें प्रयाग नारायण त्रिपाठी कीर्ति चौधरी मदन वात्स्यायन केदारनाथ सिंह विजय देव नारायण साही सर्वेश्वर दयाल सक्सेना अजित कुमार, जगदीश गुप्त रमासिंह और शरद देवड़ा मुख्य हैं।

हास्य-काव्य

कुछ कवियोंने इन सब विदेशी प्रभाववाली धाराओंसे हटकर अकबर इलाहाबादीकी काव्यरीतिके अनुसार सामाजिक और राजनैतिक व्यंग्यका मार्ग ग्रहण करके हास्य-विनोदात्मक कविताएँ लिखी जिनमें बेढब बेधड़क गोपाल प्रसाद व्यास और बरसानेलाल चतुर्वेदी मुख्य हैं। इन्होंने अँग्रेजी हिन्दी उर्दू मिश्रित भाषामें तथा दोहे चौपदे आदि छन्दोंमें समाजपर अत्यन्त मार्मिक चोटें की हैं किन्तु इन्हें मनोरञ्जन मात्र समझना चाहिए, ये काव्यकी श्रेणीमें नहीं रखे जा सकते।

आजका कवि और लेखक अध्ययन न करनेके कारण अपनी समस्त प्राचीन भाव-परम्पराओं काव्य-परम्पराओं और ऐतिहासिक परम्पराओंसे अनभिज्ञ होनेके कारण विदेशी आर्थिक तथा मनोविश्लेषणात्मक प्रभावोंसे अभिभूत होनेके कारण इतना पथ-भ्रष्ट हो गया है कि वह स्वतः भारतीय उदात्त काव्य-परम्पराका अनुसरण करनेमें अपने को सर्वथा असमर्थ पा रहा है। इसी कमीके कारण वह इतनी आत्महीनताका अनुभव करता है कि विद्वानों द्वारा आदर न पा सकनेके कारण वह कुण्ठा-ग्रस्त होकर अपने मनकी कुण्ठाको दूसरोंपर आरोपित करनेका ढोंग करनेके लिए एक नए वादका पल्ला पकड़कर अपना झण्डा गाड़कर अपनी डेढ़ चावलकी खिचड़ी अलग पकाना चाहता है। अपनी और अपने साथियोंकी बेतुकी रचनाओंका अर्थ समझानेके लिए वह अखाड़ा बनाता है पत्र निकालता है प्रचार करता है किन्तु उनकी पूँजी इतनी कम इतनी अनर्गल और इतनी अभारतीय है कि भारतीय जनता उसे आत्मसात् नहीं कर सकती। विचित्र बात यह है कि जिस जनमानसको उद्बुद्ध करनेका ये लोग संकल्प करते हैं उस जन-मानससे इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। जिस प्रकार छायावादी कवियोंको पाठ्यपुस्तकोंमें रखकर जिलाया जा रहा है उस प्रकार यदि इन प्रगति-वादी प्रयोगवादी नई कविता-वादी या नकेन-वादी कवियोंको जिलानेका प्रयत्न किया गया तो सम्भवतः ये लोग साँस लेते रह जायँ अन्यथा इनका अवसान बहुत कुछ हो गया है जो शेष है उसमें भी विलम्ब नहीं है। इस अव्यवस्थाके लिए वे कवि और लेखक भी उत्तरदायी हैं जो राजधानियोंमें बैठकर नेताओंके तलवे सहलाते हैं। उनसे अपने काव्योंकी भूमिका लिखवाते हैं पुरस्कार, पद और उपाधि पानेके लिए उनकी चाटुकारी करते हुए उनके मिथ्या गीत गाते हैं।

हिन्दी कविताका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल अवश्य है किन्तु आजके अधिकांश कवियोंकी रचनामें शक्ति और सौष्ठवका अभाव है क्योंकि न तो वे प्राचीन काव्यों और कवियोंका अध्ययन करते हैं न उनकी

व्यापकताके साथ अपने, देश, समाज और जीवनका अनुभव करते जैसा प्राचीन कवि किया करते थे। इसीलिए उनमें व्यापक पाडित्य, व्युत्पत्ति और कल्पनाका अभाव है। जबतक ये शक्तियाँ पुन भली प्रकार व्यवस्थित रूपसे सिद्ध नही की जाती तबतक काव्यमें शाश्वत चमत्कार और ओज नही आ सकता। फिर भी जो प्राचीन परम्पराके इने-गिने कवि और लेखक विद्यमान हैं वे अवश्य इस प्रकारकी प्रेरणा देगें कि आजका पथभ्रष्ट कवि पुन सुमार्गपर आकर अपने देश और समाजको सम्पूर्ण मानवताको, उन भावो और विचारोकी प्रेरणा देगा जिनसे मनुष्यमें सेवा, त्याग, आत्मोसर्ग, परोपकार और पररक्षा आदिके उदात्त भावोका सर्जन होता है और जिससे सन्तुष्ट होकर मानवीय सस्कृति और सभ्यता उदात्त होकर बल पाती और पल्लवित होती है।

निम्नाकित नवीनतावादी रचनाओको पढनेसे ही ज्ञात हो जाएगा कि वे कितनी बेतुकी, अस्पष्ट और काव्यगुण विहीन है। कुछ कहना मात्र कविता नही कहलाती। ऐसे चमत्कारी ढगसे कही हुई बातको ही कविता कह सकते है जिसे श्रोता तत्काल समझकर फडक उठे और कविका उद्दिष्ट तथा शैली दोनोसे प्रभावित होकर वाद कह उठे। वर्त्तमान रचनाओके इन सभी तत्वोका अभाव है। पढिए—

ज्ञात
दु ख सबको माँजता है
और—
चाह स्वय सबको मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु—
जिनको माजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें।
चित्रकारोके
रगोंके वन
स्वय
फैल-फैल मै गया
हूँ कहाँ-कहाँ
कविता
मे अव वह या कुल—
होगी फल—यह दुनिया
मेरे जीवनमें।
आओ—ले जाओ
मुझसे मेरा
प्रणयका धन
सर्व
वह है सव तुम्हारा हो—

तुम—
वह तुम हो।

× × ×

जी हाँ हुजूर मैं गीत बेचता हूँ।
मैं तरह तरहके
गीत बेचता हूँ।
मैं सभी किसिमके गीत
बेचता हूँ।
जी माल देखिए दाम बताऊँगा
बेकाम नहीं है काम बताऊँगा
कुछ गीत लिखे है मस्तीमें मैंने
कुछ गीत लिखे हैं पस्तीमें मैंने
यह गीत सख्त सरदर्द भुलाएगा
यह गीत पियाको पास बुलाएगा।
जी पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको
पर पीछे-पीछे अक्ल जगी मुझको।
जी लोगोंने तो बेच दिए ईमान।
मैं सोच समझकर आखिर
अपने गीत बेचता हूँ,
जी हाँ हुजूरमें गीत बेचता हूँ

(गीत फ़रोश)

आमाशय
यौनाशय
गर्भाशय
जिसकी जिन्दगीका यही आशय
यही इतना भोग्य
कितना सुखी है वह भाग्य उसका
ईर्ष्याके योग्य।
हाय पर मेरे कल्पके प्राण
तुमको मिला कैसी चेतनाका विषम जीवन-मान
जिसकी इंद्रियोंसे परे व्याप्त है अनोखी भूख।

(आशय कुँवरनारायण)

प्रबन्धकाव्यकी समीक्षा

प्रवन्ध काव्यकी समीक्षा करते समय समीक्ष्यवादीको अग्राकित प्रश्नोका समाधान करना चाहिए—

१—कविने जो कथा चुनी या कल्पित की है वह ग्राहकोके भाव-सस्कारके अनुकूल है या नही ? उसमें विश्व-मात्रके भाव-सस्कारको आकृष्ट करनेकी शक्ति है अथवा किसी विशेष वर्गके ?

२—घटना-सयोग उचित, आवश्यक, सम्भव, विश्वसनीय, आकर्षक तथा कुतूहलजनक है या नही ? यदि ऐतिहासिक कथा है तो उसमें कविने क्या घटना-परिवर्तन, क्यो किया है और उससे कथामें क्या विशेषता या त्रुटि आ गई है ?

३—पात्रोंके चयनमें कविने क्या नीति अपनाई है ? उसने अनावश्यक पात्र तो नही लिए है ? उसने जो पात्र लिए हैं उनका चित्रण वर्णनीय युगकी मर्यादा, परिस्थिति तथा मन स्थितिके अनुकूल हुआ है या नही ? किसीका चित्रण अतिरजित तो नही हो गया है या किसीके साथ अनुचित पक्षपात तो नही किया गया ? यदि किया गया तो क्यो और उस पक्षपातसे क्या दोष आ गया ?

४—कवि क्या प्रभाव या रस उत्पन्न करना चाहता है ? उसमे कितनी सफलता मिली है और उस सफलताके लिए उसने किन गुण-तत्वोका कहाँ-कहाँ किस कौशलसे सन्निवेश किया है ?

५—कविका उद्देश्य क्या है ? वह अपने उद्देश्यमें कहाँ तक सफल हुआ अर्थात् पाठकोने उस उद्दिष्ट अर्थका कहाँ तक स्वागत और समर्थन किया ?

६—वर्णन कितना आवश्यक, सगत और सानुपात हुआ है और इस वर्णनमें भी सटीकता और सूक्ष्मता कितनी है ? किन मार्मिक स्थलोपर वर्णनका चमत्कार आवश्यक पर्याप्त और सुन्दर अथवा अनावश्यक, या अत्यन्त अल्प असुन्दर हुआ है ?

७—भाषा-शैली उस कथाकी प्रकृति, विभिन्न स्थलोपर वर्णित विषयो तथा भावोंके कहाँतक अनुकूल प्रभावशील आकर्षक और सुबोध है ? वाक्योकी जटिलता, वर्णनोकी भरमार और अलकारोंके अतिशय प्रयोगसे भाषा कृत्रिम तो नही प्रतीत होती और उसके कारण मुख्य भाव दब तो नहीं गए हैं ? या ऐसा तो नही हुआ कि विषय निरूपणके फेरमें भाषाकी उपेक्षा कर दी गई हो।

८—कथा-विषय, रस और भावके अनुकूल है या नही ? यदि है तो उसकी गति, यति शुद्ध और लय-युक्त है या नही ? यदि केवल लयात्मक पद्यमें ही कथा-काव्य लिखा गया है तो लयकी धारा ठीक है या नही ? काव्यके गुणो (अलकार प्रसाद, ओज माधुर्य, आदि गुणो) से युक्त है या केवल गद्यको पद्यमय बना दिया गया है।

९—कविने अपने सम्बन्धमें जो परिचय अपने काव्यमें दिया है वह उस काव्यके उद्देश्य या उसकी वृत्ति समझनेमे कहाँतक सहायक होता है ?

१०—कविने अपने काव्यके आधार, उसकी प्रेरणा तथा अपने जीवन-सिद्धान्तका जो परिचय काव्य या उसकी भूमिकामे दिया है उसका काव्यसे क्या सम्बन्ध है ?

११—जैसे जर्मनीमे किसी कविके अनुकरणपर निम्नकोटिका अनुकरण-साहित्य (एपिगोवेनडि-स्टूंग) रचा जाता था उस प्रकार कविने केवल अनुकरण मात्र तो नहीं किया है ? यदि अनुकरण किया है तो (अनुकरणीय ग्रन्थ या शैलीसे) अच्छा है या वुरा ?

भावात्मक-काव्यके तत्त्व

शुद्ध सात्त्विक या भावात्मक कविताओं या गीतोंके अन्तर्गत ही वर्णनात्मक और विचारात्मक कविताएँ भी आती हैं क्योंकि कथाके प्रसंगके अतिरिक्त कवि जब किसी वस्तु, दृश्य या व्यक्तिका वर्णन करता है कोई विचार या सिद्धान्त स्थापित करता कोई प्रतीक उपस्थित करता अथवा नीतिके द्वारा उपदेश देना चाहता है तब उसके साथ कविकी बौद्धिक अनुकूलताके साथ-साथ उसका भाव पक्ष भी समन्वित रहता है। क्योंकि इसी प्रकारके भावात्मक प्रभाव तथा अनुभवकी मानसिक प्रतिक्रियाके रूपमें ही इस प्रकारकी अभिव्यक्ति की जा सकती है। इस प्रकारकी भावात्मक कविताके विषय साधन और तत्त्व ये हैं —

१—कोई वस्तु, जैसे फूल कोई दृश्य जैसे—पर्वत कोई व्यक्ति जैसे—सुन्दर अद्भुत या असाधारण पुरुष या स्त्री कोई भाव जैसे देश भक्ति कोई क्रिया जैसे किसीका मुसकराना।

२—उस वस्तु, दृश्य व्यक्ति भाव या क्रिया की परिस्थिति अर्थात् किस ऋतु, काल अवसर तथा मन स्थितिमे कविने उसे देखा।

३—उस वस्तु, दृश्य व्यक्ति भाव या क्रियाके लिये अप्रस्तुत विधान (उपमान) या प्रतीक।

४—मानसिक भाव अनुराग विरक्ति क्रोध श्रद्धा आदि।

५—भावानुकूल शब्द श्रुति-मधुर, श्रुति-कटु, समस्त पद आदि।

६—भावानुकूल लय छन्द और राग।

ऐसी भावात्मक रचनाओंमे रस न होकर केवल भाव होता है और उसका उद्देश्य केवल उस भावका सशक्त रूपसे व्यक्त कर देना मात्र होता है अत उसमे उद्देश्य भी नहीं होता। ऐसी रचनाएँ भावावेगकी अवस्थामे व्यक्तिगत तुष्टि अथवा कलाके लिए रची जा सकती हैं। और वे मुक्तक प्रगीत या गीत-रूपमे ही हो सकती हैं।

भावात्मक कविताकी समीक्षा

भावात्मक कविताकी समीक्षाके लिए निम्नांकित प्रश्नोंका समाधान करना आवश्यक है —

१—कवि किस परिस्थितिमें विद्यमान किस दृश्य व्यक्ति भाव या क्रिया (घटना) से किस मन स्थितिमे प्रभावित हुआ है ?

२—इस प्रभावका क्या भाव-स्वरूप था (अनुराग या विराग) ?

३—इस प्रभावको व्यक्त करनेके लिए उसने जो अप्रस्तुत-विधान या प्रतीक उपस्थित किए वे कहाँ तक सगत या उचित है। ?

४—इस प्रभावकी अभिव्यक्तिके लिए उसने अभिव्यक्तिकी किस रूप शैली (वर्णन रूपक सस्मरण या विश्लेषण) का प्रयोग किया वह कहाँतक उचित और प्रभावशाली है।

५—अपनी अभिव्यक्ति-शैलीके लिए उसने जो भाषा-शैली ग्रहण की वह कहाँतक उचित है प्रभाव-शाली भावानुकूल और सुबोध है ?

६—जिस लय छन्द और रागमे बाँधकर कविता लिखी गई वह भावानुकूल है या नहीं ?

७—वह कविता अपने शब्द, उपमान, और छन्दके समन्वयसे पाठक या श्रोता हृदयपर भी वर्ण्य विषय और भावके प्रति वही भाव उत्पन्न करती है या नही, जो कविके हृदयमे उत्पन्न हुआ था ?

चित्र-काव्य

केवल कलाके लिए जो चित्र-काव्य रचा जाता है उसमे चमत्कार-प्रधान होता है। उसमे केवल एक ही तत्व होता है "चमत्कार"। ऐसी रचनाओका समीक्षण केवल इस दृष्टिसे करना चाहिए कि उसमें कविने शब्दो या अर्थमे किस प्रकार चमत्कार उत्पन्न किया और उस चमत्कारमे उक्ति-सम्बन्धी कुछ सौन्दर्य, अद्‌भुत तत्व या असाधारण तत्त्व विद्यमान है या नही या वह केवल शाब्दिक बाजीगरी मात्र है। बहुतसे कवियोने केवल भाषा-कौशल (जवानदानी) के लिए ही रचना की है। अत उनके कौशलकी समीक्षा करते समय भावोकी गहराई नापनेके फेरमे न पडकर सीधे यह देखना चाहिए कि कविने कितने सरल तथा सक्षिप्त शब्दोमें कितने बडा अर्थ भर दिया है।

आजका युग गद्यका युग है। मनुष्य आज भौतिकवादके कारण तथ्यवादी और प्रत्यक्षवादी हो गया इसलिए उसकी कल्पनाशक्ति और बिब-ग्रहण शक्ति कुठित हो गई है। अनेक प्रकारके राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक वादोके कारण काव्यको प्रचारका आधार बनाया जाने लगा है इसलिए काव्यमे न तो कल्पनाका चमत्कार ही रह गया है न अभिव्यक्ति-कौशलका आकर्षण। कविता तो सत्त्व प्रेरक होती है, बाह्य सुधारक नही किन्तु यह महत्वपूर्ण तत्त्व भुला देनेके कारण काव्य व्यभिचरित होकर निष्प्राण हो गया है।

निबन्ध

गद्यका प्रचार और प्रसार होनेके साथ ही बहुतसे लोगोको विभिन्न विषयोपर चिन्तनपूर्वक अपने मत व्यक्त कर सकनेमें सुविधा हो गई क्योकि पद्य रचनामे इतने विस्तारके साथ सब बातें कह लेना सम्भव नही था। इसलिए निबन्धोका चलन भी गद्यके साथ ही हुआ।

नागरी-गद्यका विकास होनेपर हिन्दीमे अनेक निबन्धकार निकल आए। भारतेन्दु-कालीन लेखकोने बहुत-से अच्छे लेख चुह-चुहाती भाषामें लिखे किन्तु गम्भीर निबन्धोकी कोटिमें वे नही रखे जा सकते। मासिक अथवा साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओका प्रकाशन आरम्भ होनेके साथ ही उनके लिए लेखोंकी समस्या सामने आई और उनके लिए ही लेख लिखनेका ढग भी चल पडा। परन्तु निबन्ध केवल लेख मात्र नहीं होता। उसमे गम्भीर और विचारात्मक भाव भी अपेक्षित है अतएव पत्र-पत्रिकाओंमें निकलनेवाले सभी लेखोको निबन्ध की सज्ञा नही दी जा सकती। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भारतेन्दु कालके लेखकोने विभिन्न शैलियोमें लेख लिखकर भाषाकी शक्ति प्रदर्शित की और यह सिद्ध कर दिया कि गम्भीर विचार प्रकट करनेकी शक्ति नागरीमें है क्योकि उन्होने वर्णनात्मक, भावात्मक और विचारात्मक सभी प्रकारके लेख लिखे है।

निबन्धके तत्व

निबन्धके पाँच तत्व होते हैं—१—विचार, २—विचारोंके समर्थक तर्क ३—विचारोंके विरोधी तर्क ४—विचारोंका समन्वय और ५—मत-स्थापना। प्रत्येक निबन्धकारको इन तत्वोंका संग्रह करनेके अनन्तर आगे दिए हुए एक विशेष क्रमसे उपर्युक्त तत्वोंका विभाग करना चाहिए— १—प्रस्तावना या विषय प्रवेश २—विरोधी तर्कोंका खण्डन ३—दोनो पक्षोंके मतोंका तुलनात्मक विवेचन ४—अपने पक्षकी स्थापना और ५—उपसंहार या निर्णय।

निबन्धकी शैली

निबन्धकी भाषा-शैली गम्भीर, पारिभाषिक तथा दार्शनिक होनी चाहिए क्योंकि निबन्धोंकी रचना केवल उच्च श्रेणीके विचारकोंके लिए की जाती है। उसमें वाक्य-रचना अत्यन्त संश्लिष्ट सुगठित सन्तुलित स्पष्ट तथा संक्षिप्त होनी चाहिए। उसमें कहीं शिथिलता लघुता तथा कृत्रिमता और आवेग पूर्ण भावात्मकता नहीं आनी चाहिए। निबन्ध लेखकोंको यही प्रयत्न करना चाहिए कि हम कमसे-कम शब्दोंमें अधिकसे अधिक भाव भर दें और पाठकको मनन करनेका अवसर दें।

निबन्धकी समीक्षा

निबन्धकी समीक्षा में समीक्षकोंको निम्नांकित समस्याओंका समाधान करना चाहिए —

१—लेखकने जो विषय चुना है वह कहाँ तक निबन्धके योग्य है।

२—उसके लिए जो भाषा शैली चुनी गई है वह कहाँ तक उपयुक्त है।

३—लेखकमें इस विषयके विवेचन की निर्वाह-शक्ति किन बातोंसे व्यक्त होती है।

४—दार्शनिक संक्षिप्त और पारिभाषिक बननेके फेरमें लेखक अस्पष्ट तो नहीं हो गया?

५—लेखकके तर्क कितने प्रामाणिक और सशक्त हैं?

६—उद्दिष्ट विषय स्पष्ट रूपसे विविक्त हो पाया है या नहीं?

द्विवेदी कालमें आकर निबन्धोंका पूर्ण विकास हुआ। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीने सरस्वतीके माध्यमसे जहाँ लोगोंकी भाषाका संस्कार किया वहाँ उन्होंने निबन्धोंके लिए भी मार्ग खोल दिया। द्विवेदीजी का आचार्यत्व भाषा-संस्कारतक ही परिमित है परन्तु उन्होंने अच्छे-अच्छे निबन्धकार भी उत्पन्न किए। यद्यपि द्विवेदीजीने गूढ़ विषयोंपर गम्भीर निबन्धोंकी सृष्टि नहीं की तथापि विचारात्मक और मुख्यतः विवरणात्मक निबन्ध उन्होंने बहुतसे लिखे। उस समयके बहुत उच्च कोटिके निबन्ध लेखकोंमें माधवप्रसाद मिश्र बाल-मुकुन्द गुप्त गोविन्दनारायण मिश्र चन्द्रधर शर्मा गुलेरी अध्यापक पूर्णसिंह और गुलाबराय हैं। सबसे अधिक प्रौढ़ निबन्ध आचार्य शुक्लजीके हैं जिन्होंने गम्भीर विषयोंपर प्रौढ़ भाषामें ऐसे श्रेष्ठ निबन्ध लिखे कि उनसे नागरी भाषाकी अभिव्यंजना-शक्तिका सिक्का जम गया। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी शिवपूजन सहाय नन्ददुलारे वाजपेयी चन्द्रबली पाण्डेय हजारी प्रसाद द्विवेदीने भी अच्छे निबन्ध लिखे हैं पर शुक्लजीको कोई नहीं पा सका। नागरी गद्यकी शक्तिकी पूर्ण व्यञ्जकता निबन्धोंमें ही दिखाई पड़ी।

महावीरप्रसाद द्विवेदी

गद्य-काव्य

हिन्दी साहित्यके अन्य क्षेत्र

रवीन्द्रनाथ ठाकुरको गीताञ्जलिपर जब नोबेल पुरस्कार मिला तो इसकी ओर बहुतसे लोग आकृष्ट हुए। वह पुस्तक गद्य-काव्यके रूपमे लिखी गई थी। अत नागरीके अनेक लेखकोंने उसी प्रकारका भावात्मक गद्य (गद्य-काव्य) लिखनेकी चेष्टा की। वियोगी हरि, चतुरसेन शास्त्री, रायकृष्ण दास, भँवरलाल सिंघी आदिने—इस शैलीमे कई पुस्तके लिखी किन्तु अब इसका चलन बन्द हो गया है।

पत्र-साहित्य

पत्रोके रूपमे विचार प्रकट करना भी निबन्ध-लेखनकी एक शैली है। विदेशोमें इस प्रकारके निबन्ध लिखे गए। है तो वस्तुत ये गूढ निबन्ध ही किन्तु ये पत्रोके रूपमे लिखे गए हैं। नागरीमें भी इस प्रकारके कुछ पत्रात्मक निबन्ध लिखे गए हैं जो विचारात्मक और भावात्मक दोनो श्रेणियोमे आते हैं। इस प्रकारकी दो महत्वपूर्ण पुस्तके हमारे देखनेमें आई है—एक है कमलापति त्रिपाठी कृत 'बन्दीकी चेतना' जो बहुत ही प्रौढ प्रवाहशील और प्रभावशील ओज-पूर्ण रचना है और दूसरा है रामनाथ कृत 'भाईके पत्र'।

जीवनचरित्र

चरितकाव्य लिखनेकी परम्परा सभी भाषाओमे आदिकालसे ही रही है। नागरीमे गद्य-साहित्यका प्रसार होनेपर जहाँ साहित्य-सेवियोने अनेक विषयोपर पुस्तके लिखी वहाँ जीवन-चरित भी बहुतसे लिखे गए। इसमें आचार्य चतुर्वेदी कृत 'महामना पण्डित मालवीय' साहित्यिक दृष्टिसे अत्यन्त उच्च कोटिका है। शेष केवल जीवन-चरितकी दृष्टिसे लिखे गए हैं, साहित्यकी दृष्टिसे नही।

हिन्दीमे सबसे पहला जीवन-चरित जैन कवि बनारसीदास कृत 'अर्द्ध कथानक' है। उसके पश्चात् फिर नागरीमें ही जीवन चरित लिखे गए। नागरीमें लिखी गई पहली आत्मकथा स्वामी श्रद्धानन्द-कृत कल्याण मार्गका 'पथिक' है।

माधवप्रसाद मिश्रकी 'विशुद्ध चरितावली' का अपना अलग महत्व है। शिवपूजन सहाय-कृत गोस्वामी तुलसीदासका जीवन चरित तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका जीवन चरित उच्च कोटिकी रचनाएँ हैं। देवी-प्रसादकृत 'मीराकी जीवनी' भी अच्छी पुस्तक है। बनारसीदास चतुर्वेदी कृत 'सत्यनारायण कवि-रत्नकी जीवनी बहुत अच्छी बन पडी है। भाषा शैलीकी दृष्टिसे बहुत व्यवस्थित न होते हुए भी राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादकी 'आत्मकथा' अच्छी पुस्तक है। छोटी-मोटी जीवनियाँ तो बहुत निकली है।

प्रचार-कार्य

पत्र-पत्रिकाएँ

आरम्भसे ही नागरीके प्रचारके लिए प्रचार-सम्बन्धी कार्य भी होता रहा है। इस प्रसगमे सबसे पहला महत्वपूर्ण कार्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने अपनी दो पत्रिकाओ 'कविवचन सुधा' और 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका'

द्वारा किया। इसके साथ ही प्रताप नारायण मिश्र 'प्रेमघन' तथा बालकृष्ण भट्ट आदिने भी पत्रिकाएँ निकाल-कर बड़ा भारी कार्य किया। इस क्षेत्रमें महामना पंडित मदनमोहन मालवीयने हिन्दुस्तान पत्रका सम्पादन करके बड़ा यश अर्जित किया। देशके अनेक भागोसे समय समयपर पत्र-पत्रिकाएँ निकलती रहीं। इन पत्र-पत्रिकाओके कारण जहाँ नागरीका प्रचार होता था वहाँ सबसे बड़ी बात यह हुई कि भाषाकी शुद्धिके सवर्धनमें भी उन्होंने बहुत बड़ा हाथ बँटाया। सरस्वती और नागरी प्रचारिणी-पत्रिकाके निकलनेके पश्चात् नागरी-गद्यका रूप अत्यन्त सुव्यवस्थित हो गया। आगे चलकर विशुद्ध साहित्यिक पत्रिकाएँ भी निकलने लगी। सम्प्रति इस श्रेणी पत्रिकाओंमें सरस्वती और साहित्य-सन्देश उल्लेखनीय है। इस समय नागरीमें निकलनेवाली पत्र-पत्रिकाओकी संख्या एक सहस्रसे कम न होगी।

प्रचार-संस्थाएँ

नागरीके प्रचारके उद्देश्यसे सर्वप्रथम नागरी प्रचारिणी सभाकी स्थापना आचार्य श्यामसुन्दरदास रामनारायण मिश्र और शिवकुमार सिंहने सन १८९ मे की। सभाने सबसे बड़ा कार्य यह किया कि महामना पंडित मदनमोहन मालवीयजीके नेतृत्वमें प्रबल आन्दोलन करके नागरीको पुन न्यायालयोकी भाषाके रूपमें प्रतिष्ठित कराया। इसके पश्चात् हिन्दीके ग्रन्थोंका खोज-कार्य हाथमें लेकर अनेक महत्वके ग्रन्थोंका प्रकाशन किया और हिन्दी पुस्तकोंका सबसे बड़ा पुस्तकालय स्थापित किया। नागरी प्रचारिणी सभाके अधिकारियोंके प्रयत्नसे ही हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी स्थापना हुई जिसने हिन्दीमे उच्च कोटिकी परीक्षाएँ लेनेका प्रबन्ध करके हिन्दी साहित्यके अध्ययनकी ओर लोगोको प्रवृत्त किया और जिसकी ओरसे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रमे हिन्दी प्रचार-सम्बन्धी कार्य भली भाँति कर रही है।

नागरी या हिन्दीके देशव्यापी प्रचारमे सबसे अधिक योग दिया है हिन्दीके चल चित्रोने जिन्होंने प्रेम कथाओं और कामोत्तेजक दृश्योके कारण जहाँ एक ओर लोक मानसको बहुत दूषित किया वही उनसे अनजाने और अनचाहे यह हित भी हो गया कि जिन प्रदेशोमे लोग हिन्दीका विरोध करते है वहाँ भी लोग बड़े चावसे हिन्दी चित्र देखते है और उन चलचित्रोके गीत अलापते है य' तक कि कर्नाटक सगीतवालोको यह आशका होने लगी है कि कही कर्नाटक-सगीत-पद्धति ही न लुप्त हो जाय।

समीक्षा

प्राचीन समीक्षा प्रणालीके अनुसार एक श्लोक या एक दोहेमे कविके सम्बन्धमे कुछ कह देना ही पर्याप्त समझा जाता था। किन्तु इधर जबसे योरोपीय साहित्यसे लोगोंका परिचय हुआ तबसे समीक्षाका मानदण्ड सवथा बदल गया। समीक्षा अब गुणदोष कथन तक ही न रहकर कविकी विशेषताओ उसकी अन प्रवृत्तियोंके उद्घाटन उसकी सामयिक परिस्थितियों और ग्रन्थ रचना की प्रेरक शक्तियोंकी छान-बीन तक जा पहुँची। इसके अतिरिक्त अपने यहाँके काव्य विषयक सिद्धान्तो तथा योरोपीय साहित्य सिद्धान्तो एवं वादोपर भी गम्भीरतापूर्वक विचार हुआ। इस प्रकारकी समीक्षाकी प्रौढ पद्धतिके विकासका श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्लको है।

नागरी-गद्यका विकास होनेके पश्चात् और विदेशी साहित्योंसे परिचित होनेके अनन्तर हमारे यहाँके लेखकोने कवियोकी रचनाओको आलोचनात्मक दृष्टिसे देखना आरम्भ किया। किन्तु विचार करनेवालोकी दृष्टि काव्यके बाह्य आवरण तक ही परिमित रही। कालिदासकी निरकुशता, हिन्दी कालिदासकी आलोचना आदि इसी ढगकी पुस्तके है। आलोचनाकी निर्णयात्मक और व्याख्यात्मक दोनो पद्धतियोमेंसे आरम्भ में हमारे यहाँ निर्णयात्मक पद्धतिका ही बोलवाला रहा। निर्णयात्मक पद्धतिका मुख्य आधार तुलनात्मक समीक्षा है। यह ढग सस्कृतमे भी किसी-न-किसी रूपमें चलता था। सबसे पहले मिश्रबन्धुओने हिन्दी नवरत्नके द्वारा इसे नई शैलीमें ढाला। उसके पश्चात् तो देव बिहारीको लेकर हिन्दीके साहित्यकारोमें एक प्रकारका द्वन्द्व ही खडा हो गया। इस प्रकारकी समीक्षा उन दिनो इतनी चली कि लोगोने तुलनात्मक समीक्षाको ही मुख्य मान लिया। पत्र-पत्रिकाओमे कवियोपर आरम्भसे ही समीक्षात्मक लेख निकलते रहे। सरस्वतीमे आचार्य द्विवेदीजीने समीक्षाके लिए आई हुई पुस्तकोकी भाषा आदिकी दृष्टिसे उचित समीक्षाएँ की किन्तु उस समयतक व्याख्यात्मक समालोचनाका उदय न हो पाया था।

सम्वत् १९७५ के पश्चात् हिन्दीमे सब प्रकारसे स्वस्थ समीक्षाका आरम्भ हुआ। सूरदास, तुलसी-दास और जायसीपर शुक्लजीने जो प्रसिद्ध विद्वत्तापूर्ण समीक्षाएँ लिखी उनके अनुकरणपर नए-पुराने सभी साहित्यकारोंके विषयमे सैकडो समीक्षाएँ लिखी गई। विभिन्न परीक्षाओमें समीक्षात्मक प्रश्न पूछे जानेकी दुष्ट परम्पराके कारण भी अतिशय दरिद्र समीक्षात्मक पुस्तकोका प्रकाशन हुआ। पुस्तक-प्रकाशनकी दृष्टिसे देखा जाय तो यह समीक्षा-युग है। पिछले २५-३० वर्षोंमें समीक्षा-सम्बन्धी साहित्य का अम्बार लग गया। स्वतन्त्र रूपसे तो समीक्षात्मक ग्रन्थ निकले ही, साथ ही पुराने कवियोने, ग्रन्थोंके सम्पादकोने भी ग्रन्थके आरम्भ-मे लम्बी-चौडी भूमिकाएँ लिखकर कवियोंके समय, परिस्थिति और उनके जीवन-क्रमके प्रसगमें ग्रन्थकी विस्तृत समीक्षाएँ प्रस्तुत की। कुछ लेखको और कवियोने स्वय भी अपने ग्रन्थोकी भूमिकाके रूपमें साहित्यके या उससे सम्बद्ध अगपर विस्तारपूर्वक विचार करके अपनी पोथीके सम्बन्धमें भी अपना मत उपस्थित किया जैसे हरिऔधजीने प्रियप्रवासकी भूमिकामे, शुक्लजीने बुद्ध-चरितकी भूमिकामें और पन्तजीने पल्लवकी भूमिका में। आजकल डाक्टर बननेकी धुनने भी इस प्रवृत्तिको पर्याप्त बल दिया। कुछ साहित्यकारोने स्वय अपनी रचनाओकी समीक्षाकी है जैसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित आधुनिक हिन्दी कवि पन्त, आधुनिक हिन्दी कवि महादेवी, बहुतसे कवि, लेखक और उपन्यासकार अपने शिष्यो प्रशसको आदिसे अपनी प्रशसामें या अपने प्रचारके लिए अपनी रचनाओकी आलोचना प्रकाशित कराते रहते है और कुछ सज्जन तो पैसा देकर भी आलोचना लिखवाते है। कुछ लोगोने अपना दल बना लिया है जिसके सदस्य परस्पर एक-दूसरेकी प्रशसा करते रहते हैं—परस्पर प्रशसन्ति अहोरूपमहो ध्वनि। इसलिए ऐसी समीक्षाका कोई महत्व नही रह गया।

भारतीय साहित्यशास्त्रके विविध अगोपर तथा योरोपीय साहित्यिक वादोपर भी अनेक समीक्षात्मक ग्रन्थोंका इस बीच प्रकाशन हुआ, जिनमे गम्भीरता पूर्वक और आधुनिक दृष्टिसे इन सब विषयोका बहुत विस्तारके साथ विवेचन किया गया है। इस ढगकी पहली पुस्तक आचार्य श्यामसुन्दरदासकी साहित्या-लोचन है, जिसमें हड्सनके अँग्रेजी साहित्यके अध्ययनकी भूमिका (इट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑफ इगलिश लिटरेचर) के आधारपर साहित्य-समीक्षापर विचार किया गया है। आचार्य चतुर्वेदीने समीक्षा-शास्त्रमें

देशी-विदेशी साहित्योंके समीक्षा-सिद्धान्तोंपर विवेचन किया है और अभिनव नाट्यशास्त्रमें साहित्यके मुख्य अंग नाट्य पर देशी और विदेशी नाट्य शास्त्रीयकी दृष्टिसे विस्तृत विचार किया है।

कवियोंकी समीक्षाके साथ ही साहित्यके विकास-क्रमपर भी इस बीच पर्याप्त रूपसे विचार हुआ। आचार्य शुक्लजीने ही सर्वप्रथम ९ क्योंकि हिन्दी साहित्यके इतिहासको व्यवस्थित करके उसे युग प्रवृत्तियोंके अनुसार कालकी सीमामें बाँधा प्रत्येक युग और प्रत्येक युगके कविकी सटीक शास्त्रीय समीक्षा भी की। इससे पूर्व शिवसिंह सरोज और मिश्रबन्धु विनोद प्रकाशित हो चुके थे। किन्तु वे कालक्रमानुसार कवि वृत्त-संग्रह मात्र थे। साहित्यके इतिहासके रूपमें उनका कोई महत्व न था। कुछ पुस्तक अँग्रेजीमें अवश्य निकली थी किन्तु शुक्लजीने जिस व्यवस्थित ढंगसे हिन्दी साहित्यका इतिहास लिखा उसे देखते हुए वैज्ञानिक पद्धतिपर हिन्दी-साहित्यके प्रथम इतिहासकार वेही हैं। फिर तो उनके अनुकरणपर एक एक युग और कालको लेकर या समग्र दृष्टिसे न जाने कितने छोटे-बड़े इतिहास निकल गए जिनमें युगकी समीक्षाके साथ कवियोंकी समीक्षा करनेकी चाल भी चल निकली। हिन्दी साहित्यके इतिहास भी इतने अधिक निकल चुके कि उनकी गणना करना व्यर्थ है। किन्तु इतना तो अवश्य सत्य है कि प्राय सभी लेखकोंने शुक्लजीकी प्रणाली ही अपनाई।

भोजपुरी साहित्य

अवधी और मगही भाषा क्षेत्रोंके बीच पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहारका वह प्रदेश आता है जहाँ हिन्दीकी पूर्वी बोली भोजपुरी बोली जाती है और जिसमें कबीरने अपनी रचना करनेकी घोषणा की थी। प्रयाग काशी गोरखपुर, गाजीपुर, आजमगढ बस्ती मिर्जापुर, आरा छपरा पटना तक बहुत बड़ा भू भाग इस बोलीकी सीमामें है। अधिक घना बसा होनेके कारण यहाँके लोग समस्त भारतमें फैलकर भइया के नामसे प्रसिद्ध है और जीविकाकी खोजमें घूमते हुए बर्मा स्याम मलाया ट्रिनिडाड मौरीसस फिजी डच गायना ब्रिटिश गायना नैटाल आदि प्रदेशोंमें अपनी भोजपुरी भाषा बोलचालके लिए और नागरी भाषा (हिन्दी खड़ी बोली) व्यवहार और लिखा-पढ़ीके लिए लेकर जमे हुए हैं।

इस भोजपुरी क्षेत्रका लोक-साहित्य इतना सम्पन्न है कि उसके विविध अंगोंको लेकर कई सज्जन डाक्टर हो गए। यह तपोभूमि और वीर भूमि है भारतीय स्वातन्त्र्य संग्रामके प्रथम युद्ध (१८५७) का श्री गणेश करनेवाला मंगल पाडे इसी प्रदेशके बलिया जनपदका निवासी था और १९४२के अन्तिम स्वातन्त्र्य युद्धकी सफलताका श्रेय भी इसी जनपदको है। इधर कुछ वर्षोंसे भोजपुरी बोलीको समुन्नत करनेका और उसे भाषाके पदपर प्रतिष्ठित करनेका अत्यन्त स्तुत्य प्रयास हो रहा है। भोजपुरी और बिहान नामक दो साप्ताहिक पत्र भोजपुरी बोलीमें आए और बम्बियासे प्रकाशित हो रहे हैं। अनेक कवि भोजपुरी बोलीमें उच्च तथा प्रौढ साहित्यिक रचनाएँ कर रहे हैं। काशीके प्रसिद्ध दैनिक-पत्र आज के रविवासरीय संस्करणमें नियमत भोजपुरी कविताएँ प्रकाशित होती हैं और पत्र छपते हैं। आकाशवाणी प्रयाग और पटनासे नई शैलीमें ग्राम भोजपुरी कवियोंकी कविताएँ और उसके गीत सुननेको मिल जाते हैं। भोजपुरी बोलीमें कुछ कहानियाँ भी प्रकाशित हुई हैं गीत-संग्रह भी निकले हैं और काव्यकी अनेक शैलियों और छन्दोंमें भोजपुरीमें सफल प्रयोग हो रहा है।

कुछ वर्ष पूर्व आरेमें जो भोजपुरी सम्मेलन हुआ था उसमें तो भाषावार प्रान्तके आधारपर भोजपुरी प्रान्त वनानेकी भी माँग की गई थी किन्तु अत्यन्त सन्तोषकी वात है कि देश-विघटक सकुचित प्रवृत्ति अधिक बल नही प्राप्त कर सकी। वास्तवमें वर्तमान हिन्दी (नागरी) के जन्मदाता, स्रष्टा और पोषक सब (भारतेन्दु, हरिऔध, प्रेमचन्द, प्रसाद, आचार्य शुक्ल, रत्नाकर आदि) इसी प्रदेशके थे जिन्होने अपनी बोलीका सकुचित मोह छोडकर भारत-व्यापी राष्ट्रीयताको पुष्ट करनेवाली नागरी (हिन्दी) को समृद्ध करनेका सकल्प लेकर उसीका भण्डार भरा। एक वार आचार्य शुक्लजीसे किसी भोजपुरी प्रचारकने कहा भी था कि आपने अपनी वोलीके लिए कुछ नही किया। आचार्यजीने स्वाभाविक व्यग्यके साथ कहा—'अपनी वोली तो मै वोलता हूँ पर हमें तलैयामें ही उछलकूद मचाकर सन्तोष नही करना चाहिए, समुद्रमे तैरनेका अभ्यास करना चाहिए, प्रदेशकी मकुचित दृष्टि छोडकर देशको व्यापक दृष्टिसे देखना चाहिए।' राष्ट्रभाषाको समुन्नत करनेकी इस उदार दृष्टिके कारण ही इन मनीषियोने अपनी वोलीका मोह त्यागकर नागरी साहित्यको श्री-सम्पन्न और शक्ति सम्पन्न किया; यह भी कम त्याग और तपस्याकी वात नही है। यह भी राष्ट्रकी वडी अमूल्य और महत्वपूर्ण सेवा है।

भोजपुरी-साहित्यके सवर्द्धनमें जो व्यक्तिगत और सम्मिलित प्रयास हो रहे है वे वडे सराहनीय है और यह विश्वास है कि इन सभी प्रयासोके फलस्वरूप भोजपुरी वोली भी शीघ्र ही साहित्यिक शक्ति सजोकर भाषाके पदपर प्रतिष्ठित हो जायगी, प्रादेशिक भाषाओमें उसका भी सम्मान होगा। आशका यही है कि कही इतनी साहित्यिक प्रौढता प्राप्त करके भोजपुर प्रदेशके लोग प्रान्तकी माँग न कर वैठें जो उनकी भावात्मक परम्पराके प्रतिकूल है क्योकि वे उत्तर प्रदेशमे ब्रज, अवधी, बुन्देलखण्डी, नागरी (खडी बोली) और गढवाली कुमाऊँनीके साथ और विहारमे मगही, मैथिली, सन्थालीके साथ रहते चले आए है।

राहुल साकृत्यायनने भोजपुरी भाषाके पाँच शैली-भेद माने है—१ काशिका (काशी और मिर्जापुर प्रदेशमें वोली जानेवाली, २ मल्लिका (प्राचीन मल्ल देश अर्थात्, गाजीपुर, वलिया, छपरा, आजमगढ, जौनपुर, गोरखपुर, देवरियामे बोली जानेवाली, ३ वज्जिका प्राचीवृज्जि प्रदेश अर्थात् मुजफ्फरपुरकी ओर वोली जानेवाली, ४ मधेसिया-थारू (चम्पारन तथा तराईके प्रदेशमें बोली जानेवाली), और ५ नगपुरिया (छोटा नागपुर, राचीके आसपास वोली जानेवाली। इस प्रकार इस भाषाका क्षेत्र वहुत विस्तृत और विशाल है और यह इस प्रदेशके लिए श्रेयकी वात है कि यहाँके निवासियोने अपनी वोलीका आग्रह छोडकर राष्ट्रभाषाकी समुन्नतिमें सबसे अधिक योग दिया, उसे पुष्ट तथा समृद्ध किया।

भोजपुरीका लोक-साहित्य

भोजपुरीका लोक-साहित्य बडा सरस, समृद्ध और बहुरूप है। जैसे राजस्थान और गुजरातमें रासक, रासा या रासो चले वैसे ही इस प्रदेशमें बिदेसिया काव्य चला जिसमे उस वियोगिनी नायिकाके वियोगका वर्णन होता है जो नौकरीके लिए परदेश चला जाता है और जिसके सम्बन्धमें यह समाचार मिलता है कि उसने वही अपना दूसरा विवाह भी कर लिया है। इसका अन्त प्राय सुखमय होता है। इसके अतिरिक्त आठ लयोंमे बिरहा, झूमर, लहरो, चहल, घाँटो, चैता, होली, कहरवा आदि न जाने कितने प्रकारके-लोक-काव्य-रूप

मिलते हैं जिनमें साथ स्त्रियोंके गीत (विवाह यज्ञोपवीत उत्सव पर्व स्नान पूजा आदिसे सम्बद्ध) और श्रम कार्योंके गीत (चक्की चलाने पुरवट चलाने आदिसे सम्बद्ध) भी प्रचलित हैं।

नवीन शैलीके गीत

इन लोक-गीतोंके अतिरिक्त वर्तमान उच्च-शिक्षण प्राप्त कवियोंने उदात्त शैलीके गीत और कविताएँ लिखी हैं जिन्हें विषय शैली और कौशल सभी दृष्टियोंसे उदात्त काव्यकी शैलीमें रखा जा सकता है। इन कवियोंने सामाजिक साहित्यिक और राजनैतिक विषयोंपर गभीर विनोदात्मक रचनाएँ की हैं। जिनमें कुछ हलकी भी हैं किन्तु अधिकांश उच्च कोटिकी हैं। इन रचनाकारोंमें निम्नांकित प्रमुख हैं—मनोरञ्जन प्रसाद सिनहा महेन्द्र शास्त्री रामविचार पाण्डेय रामबली तिवारी प्रसिद्ध नारायण सिंह श्यामसुन्दर ओझा मंजुल विश्वनाथप्रसाद शैदा शिवप्रसाद मिश्र रुद्र गुरु बनारसी शिवदत्त श्रीवास्तव सुमित्र जगदीश ओझा सुन्दर मोहनलाल गुप्त भैयाजी बनारसी रमाकान्त द्विवेदी रमता नन्दकिशोर कवच मोती बी ए रामनाथ पाठक प्रणय विश्वनाथ त्रिपाठी गणेश्वर पाण्डेय उज्ज्वल प्रभुनाथ मिश्र रामवचन लाल श्रीवास्तव रामदरश मिश्र रामसिंह उदय अनिरुद्ध दिवाकर लाल अंकुर, लक्ष्मण त्रिपाठी प्रवासी भगवान सिंह चन्द्रशेखर मिश्र पद्मदेव पद्म परमहंस पाठक चन्द्रदेव सिंह हृदय रघुनाथ चौबे भुवनेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव भानु परमानन्द मिश्र रंग राहगीर कमलाप्रसाद मिश्र विप्र अर्जुनकुमार अशान्त रामेश्वरप्रसाद काश्यप चतुरी चाचा रामपुकारसिंह सरोजेश रव अज्ञेय उमाकान्त वर्मा मदन मोहन सिनहा मनुज।

भोजपुरी कवियोंकी एक यह भी परम्परागत विशेषता है कि सब बहुत लम्बी कविता करते हैं किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनमें सरसता अपार होती है। कुछ उदाहरण उल्लेखनीय हैं—

अइली बसन्त रितु मधुमाका कोचवामें
झाँकि-झाँकि हँसि-हँसि आँखि मलकावेली।
सरसोंका फूलवाकी पियर चदरियामें
तीसीयाका फूलके कसीसी चमकावेली।
आमका मोजरियापर झम-झम नाचेली
आ मम-मम फूलके गमक गमकावेली।
पछुवा के सीहीकि सीहीकिके चढ़ेला चौसे
चूमि-चूमि चमका चबानीके चमावेली।

—रामविचार पाण्डेय

बिहान

पुरुबका देसवासे झाँकि बिहनवाँ
चहके चिरइयनके गोल।
लहरे जा बरतीके धानी चुँदरिया,
बाजकि किरिनियाँ, सुनहला अचरिया।

साँझियेके तालावामें सूतल कमलवा
ताके नयनवाँके खोल।
लालीमें काली बदरिया रँगाइल,
अइले गगनमें सुरुज अगराइल।
रतियाका अँखियासे ढरकल लोरवा
मोती बनल अनमोल।
जागलि मडइयोंके सूतल जवानी,
माटीपर झलकेला सोनाका पानी।
कलियनका भानावाँसे गावे भँवरिया,
भौंरा बजावेला ढोल।
अबहूँसे, जागु-जागु भइया किसनवाँ,
कमवामें अइहेंना एको बहनवाँ।
लुढ़कि-लुढ़कि कर बाँटे बयरिया,
पीलऽ मधुइयाके घोल।
पुरुबका देसावासे झाँके बिहनवाँ
गावे चिरइयनके गोल।

—श्यामसुन्दर ओझा 'मजुल'

गजल

बनमें बनल हमार तऽ बासा तोरे बदे।
जग-जगसे लगउले हई आसा तोरे बदे॥
फाँकीला धूर पीके पवन मूतके तरे।
खेलल करीला बनके तमासा तोरे बदे॥
जोन्हरी चना न बाय मवस्सर एहर हमें।
लेकिन ओहर हौ दूध-बतासा तोरे बदे॥
पछी रही अकासमें मछरी समुन्द्रमें।
देखऽ कहाँ लगाईला लासा तोरे बदे॥
जूता औ लात हाथ कि लाठी कऽ बातका,
एक दिन चली जरूर गँडासा तोरे बदे।
माँगीला भीख आज तऽ साईं अतीथ बन,
गुदड़ी हौ तर पै हाथमें कासा तोरे बदे।
देवीकऽ रूप हमके तू मन्दिरमें ले चलऽ
खस्सी बनल हई होलऽ खासा तोरे बदे।

बोहुलमें मूँछ पड़ल कइ पगली तइ का मयल
पाननमें तइ बजऊमा पचासा तोरे बबे।
पढ़ले ही संसकीरती औ मायरी गुष
सिखलेस बनारसी कइ तइ मासा तोरे बबे।

—शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' गुरु बनारसी

बरखाक रात

बरसेला पनिया
बुमार लागि घनिया
राहि ताकि ताकि पछिताय।
ना आइल बिदेसिया
ना भजलसि सनेसिया,
एक-एक दिन टरि जाय।
कड़के बदरवा
तड़पे जियरवा
बिजरीक लोक बँसि जाय।
रतियो सवतिया
बताई कवन बतिया
आँखि लागि-लागि खुलि जाय।

—बरखाक रात बलदेव सिंह 'हृदय'

पहिला पानी

प्यारके पियासल धरती पड़ल पहिला पानी रे
अँसुवासे भीजल हमरे प्यारके कहानी रे।
मनके कगार टूटल
दिलमें दरार फूटल,
हिरदयके हार टूटल,
जियाके कगार फूटल,
अँसुवनके धार फूटल हुई बिनपानी रे।
बहुत इंतीजार कइली
जिनगी बेकार कइली
सोनाके छार कइली
पाथरके प्यार कइली
बिरहा अगिनमें पलके होइ गइल पानी रे।

तडपत जइसे घायल,
झूम्के बदरवा आयल,
बाजे घुंघुरवा पायल,
मोरे अँगनवा आयल,
झुकिके कहेला कनवा प्रीतके कहानी रे !
वरखाके बान छूटल,
धरतीके मान टूटल,
फाटल हियरवा जूटल,
एक मोर भाग फूटल,
पानीमें पियासी हमरे प्यारके जवानी रे।
अदरा बदरवा आए,
दुरकत कजरवा आए,
हिया रोपि बिरवा आए
अँसुआसे सींची ओही प्रीतके निसानी रे !
प्यारके पियासल धरती पडल पहिला पानी रे !

अन्य भाषाएँ और बोलियाँ

हिन्दीकी आत्मीय भाषाओमे नेपाली बहुत समृद्ध है जिसमें सब प्रकारकी शैलियाँ और रचनाएँ प्राप्त होती है जिसमें वर्त्तमान युगके ज्ञान-विज्ञान तथा प्राचीन कालके दर्शन, कलाके अनेक ग्रन्थ विद्यमान है। यह आश्चर्यकी बात है कि हिन्दीवालोने उसे अपनानेका कोई प्रयत्न नही किया, यद्यपि नेपालमें कई ब्रजभाषा और नागरी (खडी बोली) के बडे अच्छे कवि हुए है और है।

मैथिलीमें भी अब बहुत प्रौढ, सरस तथा उच्च कोटिकी रचनाएँ होने लगी है। पजावीमें तो साहित्य-रचना भी होने लगी है। मालवी भाषामें भी साहित्यिक ओज लानेका प्रयास किया जा रहा है। स्वतन्त्रता और सर्वांगीण विकासके साथ सभी प्रादेशिक बोलियाँ अपना अपना सस्कार करती हुई हिन्दी साहित्यको अवश्य शक्ति, व्यापकता और रूप-विविधताके साथ भावात्मक अखण्डताकी सिद्धिमें योग देगी।

उर्दू-साहित्य

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलनने कई वार अपने प्रस्तावोमें घोषणा की है कि उर्दू तो हिन्दीकी ही एक शैली है और कही-कही तो वह इतनी एक रूप है कि उसे पढ या सुनकर उर्दूवाले उसे उर्दू वताते है और हिन्दीवाले हिन्दी, अर्थात् दोनोके मूल स्वरूपमे किसी भी प्रकारका कोई अन्तर नही है। नीचे 'गगाराम' नामक व्यग्यात्मक उपन्यास का एक अनुच्छेद दिया जा रहा है—

"इसी बीच वहाँ लाल पगडी आ धमकी। उसने अपना डण्डा सभाला। दो-चार वार ललकार दी—हटो भागो। हो हल्ला मचाया—यह क्या चौपाल विछा रखी है ? यहाँ क्या कोई मछर-हट्टा है

या काजीजीका मन्दिर है जो सारी सड़क रोके खड़े हो? फिर क्या था! भगदड़ मच गई। लोगोंने समझा कहीं ठाँय ठाँय न हो जाय बिना बातके लाठी न चल जाय। लोग तितर-बितर होने लगे। सिपाही-रामने भी गंगारामको नीचेसे ऊपर तक देखा और उसकी बात सुनी तो वह भी खिलखिलाकर हँस पड़ा।

उपर्युक्त वाक्य हिन्दी और उर्दू दोनोंके लिए ग्राह्य और दोनोंमें गतसमुक्त है। ऐसी दशामें उर्दू भाषा कोई नागरीसे भिन्न विचित्र या नई भाषा नहीं है। नागरी (खड़ी बोली) का प्रारम्भ ही उर्दूका प्रारम्भ है किन्तु उर्दू नामसे हिन्दीकी यह शैली शाहजहाँके समयमें जन्म हुई। सन् ११२८ में शाहजहाँको गद्दी मिली और उसीके राज्यमें उर्दू भाषा बनी और पनपी। उर्दू लिपि तो सन् १२ ६६ में ही गढ़ ली गई थी। कुछ लोगोंका मत है कि उर्दूकी नींव पंजाबमें पड़ी और इसके सर्वप्रथम चिन्ह पृथ्वीराज रासोमें मिलते हैं। कुछ लोगोंका कथन है कि जब मोहम्मद बिन कासिमने सन् ११७१ में सिन्धपर आक्रमण किया उस समय उन आक्रमणकारियों और भारतके-निवासी जनताके सम्पर्कसे इस भाषाका बीजरोपण हुआ। तीसरा मत है कि जब १४ वी शताब्दीमें मुहम्मद तुगलकने अपनी राजधानी दिल्लीसे दौलताबाद हटा दी तब वहाँ ही उर्दूका जन्म हुआ और गोलकुण्डा बीजापुरके मुसलमान शासकोंने जो मरसिये (लोकगीत) लिखे हैं वही उर्दूकी प्रारम्भिक कविता है। मीरने भी इसका समर्थन करते हुए कहा है—

> ऐ मीर मै ही इसको किया रेख्ता वरना।
> एक चीज लचर-सी बजबाने दकिनी थी॥

(मीर कहते हैं कि मैने ही इस भाषाको रेखता या उर्दू बनाया नहीं तो यह एक दरिद्र-सी दक्षिणी भाषा थी।)

दक्षिणमें जाकर हमारी हिन्दी या नागरी भाषा भले ही दरिद्र बन गई हो किन्तु पंजाबमें यह भाषा बहुत पहले ही प्रौढ़ता प्राप्त कर चुकी थी। अमीर खुसरोने ११ वी शताब्दीमें इसी भाषामें अर्थात् नागरी (खड़ी बोली) में रचना की थी। मेरठ मुजफ्फरनगरकी शिष्ट जन-भाषामें उसने अपनी मुकरियाँ और पहेलियाँ कही थी—

> बरस बरस वह देसमें आवे मुँहसे मुँह लगा रस प्यावे।
> या खातिर मैं खरचे दाम क्यों सखि साजन ना सखि आम॥
> खेतमें उपजै सब कोई खाय घरमें रहे तो घर खा जाय।
> तरवरसे इक तिरिया उतरी जिसने खूब रिझाया।
> बापका उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया॥

कहनेका तात्पर्य यह है कि अमीर खुसरोने प्रारम्भमें ही ११ वी शताब्दीमें उस भाषा का प्रयोग काव्यमें किया जो मुजफ्फरनगर मेरठ और दिल्लीके आसपास पहलेसे ही जन भाषा थी और जिसे दिल्लीके आसपास होनेके कारण व्यवसायियों और व्यापारियोंके अधिक काम आनेके कारण लोगोंने व्यवहारिक बोल-चालके लिए स्वीकार कर रखा था। उसका कारण यह था कि दिल्ली सहसा क्योंकि उत्तर भारतकी राजधानी रही इसलिए वहाँके व्यापारी सभी देशमें घूमते थे और सब देशोंके व्यापारी वहाँ आते थे जो वहाँ भाषाका प्रयोग सब स्थानोंपर करते थे। यह व्यावहारिक प्रयोगकी भाषा सब स्थानोंमें उसी प्रकार व्यवहृत हो गई जिस प्रकार आज भी उत्तर प्रदेशकी भाषा हिन्दी मॉरिशस ब्रिटिश गायना और डच गायना जैसे

सुदूर प्रदेशोंमें व्यवहारकी भाषा हो गई है क्योंकि उत्तर प्रदेशके लोग सदासे सख्यामें अधिक रहे हैं और काम-काज, नौकरी-धन्धे तथा व्यापारके लिए बाहर जाते रहे हैं। इसलिए स्वभावत इन लोगोंने दूर-दूर तक अपनी भाषाका प्रयोग किया। यही कारण था कि जब कबीर आदि सन्तोंने १५ वीं शताब्दीमें अपने विचारोंका प्रचार करना प्रारम्भ किया तब उन्होंने अपनी उसी हिन्दी भाषाका प्रयोग किया जिसे वे लोग नागरी (खडी बोली) और उर्दू वाले उर्दू कहते हैं। यही उर्दूके बाजारू कहलानेका रहस्य है। तात्पर्य यह है कि यह भाषा सन्तोंकी धर्म-प्रचार भाषा होनेके कारण और व्यापारियों-द्वारा अधिक प्रचारित होनेके कारण इतनी लोक-व्यवहृत हुई कि गुरुनानकके पुत्र श्रीचन्द्राचार्यजीने अपने चलाए हुए उदासीन सम्प्रदायके धर्म-ग्रन्थ 'मात्रा-शास्त्र' की रचना इसी शुद्ध नागरी भाषामें की। उदाहरण लीजिए—

ओ३म कहु रे बाल।
किसने मूडा किसने मुडाया।
किसका भेजा नगरी आया ?॥१॥
सद्गुरु मूडा लेख मुडाया।
गुरुका भेजा नगरी आया॥२॥
चेतहु नगरी तारहु गाँम।
अलख पुरुषका सिमरहु नाम॥३॥
गुरु अविनाशी खेल रचाया।
अगम-निगमका पन्थ बताया॥४॥

कबीर और गुरुनानकके समयमें ही मुसलमानी शासनके कारण अनेक फारसी और अरबी शब्दोंका प्रयोग काव्यमें होने लगा था। यहाँतक कि सूर और तुलसीने भी बहुत खुलकर फारसी और अरबी शब्दोंका प्रयोग किया है पर उस प्रयोगके कारण उनकी भाषा फारसी या अरबी नहीं हो जाती। अत, उर्दूका रूप उर्दू तबसे हुआ जबसे मीर, गालिब आदि उर्दूके कवियोंने फारसी और अरबी छन्द शास्त्रके अनुसार अपनी कविताएँ रचनी आरम्भ की और उनमें भारतीय वृक्षों, फूलों और पशु-पक्षियोंके बदले फारस और अरबके वृक्ष, फूल और पशु-पक्षियोंका प्रयोग उपमान और वर्णनके लिए ग्रहण किया, फारसीकी पद्धतिके अनुसार गुलो-बुलबुल आशिक-माशूकके चोचले और मरसिए आदिकी रचनाओंका प्रारम्भ हुआ और हिन्दी तथा सस्कृतके शब्द मतरूक (त्याज्य) कर दिए गए। इन लक्षणोंवाली रचनाओंके लिए जिस खडी भाषाका प्रयोग किया गया वह उर्दू कहलाई। शाहजहाँके समयमें सबसे पहली गजल 'चन्द्रभान' नामक एक ब्राह्मणने लिखी थी जिसने अपना तखल्लुस (उपनाम) 'बिरहमन' रखा था। यह स्वय इस बातका प्रमाण है कि एक तो फारसी छन्द शास्त्रकी शैलीमें रचना करनेके कारण वह उर्दूकी रचना कहलाती है और दूसरे उसमें बहुत अधिक फारसी और अरबीके शब्द भी हैं। वह गजल द्रष्टव्य है—

न जाने किस शहर अन्दर हमनको लोक डाला है।
न दिलबर है, न साकी है, न शीशा है, न प्याला है॥
पियाके नाँवका सुमिरन किया चाहूँ, करूँ, कैसे ?
न तस्बीह है, न सुमिरन है, न कंठी है, न माला है॥

पियाके नाँव आशिक का कतल बाअजब देख हूँ।
न बरछी है न करछी है न खंजर है न भाला है॥
खूबाँके बागमें रौनक होवे तो किस तरह यारो।
न दोना है न मरवा है न सौसन है न लाला है।
बिरहमन वास्ते असनानके फिरता है बगिया में॥
न गंगा है न जमुना है न नदी है न नाला है॥

आज पंजाबमें यह दृश्य मचाया जा रहा है कि पंजाबकी भाषा पंजाबी है। यदि यह बात होती तो सिक्ख गुरुओंने अपने ग्रन्थ साहबकी रचना पंजाबीमें की होती और गुरु नानकके सुपुत्र श्री चन्द्राचार्यने अपने मात्रा शास्त्र नामक धर्म ग्रन्थकी रचना नागरी खड़ी बोलीमें न करके पंजाबीमें की होती। अतः एक बात यह निश्चय है कि दिल्लीके आस-पास और पंजाबमें शिष्ट जनकी व्यवहारकी भाषा हिन्दी खड़ी बोली ही थी—न पंजाबी थी न फारसी अरबीसे लदी हुई उर्दू। दूसरी बात यह भी निश्चय है कि उर्दू वही भाषा कहला सकती है जो फारसी अरबीके छन्द शास्त्रमें ढली हुई रचनाओंमें प्रयुक्त होती है या जिनके विषय फारसी-अरबीके कथानकोंसे लिए हुए हों और उनमें फारसी अरबी उपमानोंका फारसी और अरबी शब्दोंमें ही प्रयोग हो। केवल फारसी और अरबी शब्दोंके प्रयोग मात्रसे ही कोई रचना उर्दू नहीं हो जाती।

यह सत्य है कि शाहजहाँके समयमें उर्दू भाषाका संस्कार और नामकरण हुआ। दिल्लीमें उसका परिष्कार हुआ। जहाँगीरके समकालीन दक्षिणके सुल्तान मो॰ कुतुबशाह, शाहजहाँके समकालीन अब्दुल्ला कुतुबशाह गोलकुण्डा और बीजापुरके कवि तहसीनुद्दीन मुल्ला कुतुबी नुसरती अब्दे हाशमी और दौलत आदि कवियोंने फारसी-अरबी शैलियोंमें गजल कसीदे मसनवी नामा और कहानियाँ लिखीं। इनके अतिरिक्त उत्तर और दक्षिणके बीचकी कड़ीके रूपमें वली (१६६८ से १७४४) प्रसिद्ध हैं जिन्होंने दक्षिणसे आकर मोहम्मद शाह रंगीलेको अपनी कविता सुनाई थी। महत्त्वकी बात यह है कि उसी समय दिल्लीके सूफी कवि शाहगुल्ला गुलशनने वलीको यह सम्मति दी थी कि आप फारसी की शैली छोड़कर इस देशकी शैली अपनाइये किन्तु उन्होंने नहीं माना। दिल्लीके कवियोंपर उनका प्रभाव हुआ और वलीने उर्दू कवितामें जो नई शैली चलाई वह आजतक चली आ रही है और जब वली तो लौटकर दक्षिण चले गए पर दिल्लीमें उर्दू कविताकी वह धूम मची कि जिसे देखो वही उर्दूमें कविता करने लगा। यहाँतक कि फारसीका रंग भी फीका पड़ गया। उस समय उर्दूमें दो प्रकारकी रचनाएँ होती थीं—एक राज-दरबारकी उर्दू कविता दूसरी सूफियोंके कलाम। उर्दू कवितामें प्रेमके दो रूप माने जाते हैं। एक इश्क हकीकी (आध्यात्मिक प्रेम) और दूसरा इश्क मजाजी। (लौकिक प्रेम)। इश्क हकीकीमें माधुर्य भक्तिके समान परमात्मा या आराध्य देवसे प्रेम प्रकट किया जाता है। भारतीय प्रथाके अनुसार स्त्री ही पुरुषके प्रति प्रेम प्रकट करती है किन्तु अरबीमें पुरुष ही स्त्रीके प्रति प्रेम प्रकट करता है। इन दोनोंसे भिन्न उर्दूमें फारसीके अनुकरण पर पुरुषका प्रेम पुरुषके प्रति प्रकट किया जाता है। कभी-कभी स्त्री प्रेयसीके प्रति भी पुल्लिंग-वाची क्रियामें ही प्रेम व्यक्त कर दिया जाता है। उर्दूपर इन तीनों पद्धतियोंका प्रभाव पड़ा है पर सबसे अधिक रंग चढ़ा है फारसी का।

१८ वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें उर्दूके प्रसिद्ध दिल्लीके कवियोंमें मीर तकी मीर सौदा और दर्द हैं। इन्हींके युगमें नजीर हुए जिन्होंने बच्चोंके लिए भी रचनाएँ लिखीं और बड़ोंके लिए भी और सच्ची बात यह है

कि ये बडे उदार हृदयके व्यक्ति थे। इन्होने जहाँ एक ओर हजरत मोहम्मद की नात (प्रशसा ') लिखी वही कन्हैयाका बालपन भी लिखा। क्योकि भाषाकी दृष्टिसे उर्दू हिन्दीमें कोई भेद नही था। आपने ऋतुओपर कविताएँ लिखनेके साथ-साथ हिन्दी और मुसलमानोंके त्यौहारोपर भी लिखा और 'रीछका वच्चा' तथा 'गिलहरीका वच्चा' जैसी बच्चोकी कविताएँ भी लिखी। वे अपनी कलामे अद्वितीय रहे, कोई उनका अनुकरण न कर सका।

दिल्ली उजडनेपर सौदा और मीर भी लखनऊ चले आये। वहाँ भी नवाबी दरबारमे उर्दूने बडा आश्रय पाया। मीर साहब उन दिनो उर्दूके साढे तीन शायर मानते थे। एक अपने आपको, दूसरे सौदाको, तीसरे दर्दको और आधा सोजको। इनके पीछे मुसहफी, और इशाकी प्रसिद्धि हुई और उन्हीके साथ इशाके मित्र अधे कवि जुरअत की। लखनऊमे गजलको समुन्नत करनेका श्रेय मुसहफीको ही है। परन्तु इशाने नए प्रकारका हास्य और व्यग्य प्रवर्तित किया, उर्दूका पहला व्याकरण लिखा, छन्द ग्रन्थ लिखा और पचास पृष्ठोकी रानी केतकीकी कहानी लिखी जिससे उर्दूवाले उर्दूकी और हिन्दी वाले हिन्दीकी कहते है। यही इस बातका सबसे बडा प्रमाण है कि हिन्दी-उर्दूमे कोई अन्तर नही है, गद्यमे दोनो एक हैं।

१९ वी सदीमे मीर हसन देहलवीने 'बद्र मुनीर' नामकी मसनवी लिखी जिसका उत्तर पण्डित दयाशकर 'नसीम' का गुल्जारे नसीम है।

गजलके क्षेत्रमें भी लखनऊ और दिल्लीकी शैली अलग-अलग है। दिल्लीमें गालिब, मोमिन और जौक गजलके प्रसिद्ध कवि माने गए हैं और लखनऊमें आतिश और नासिर। किन्तु मीर तकीकी प्रतिष्ठा दोनो ही स्थानोमे हुई।

उर्दूकी सबसे बडी विशेषता यह है कि उर्दूके लेखकोने इस भाषाको बहुत अच्छी तरह माँजा है। मीर अम्मन देहलवीने 'चार दर्वेश' नामकी जो पुस्तक लिखी है उसके प्रारम्भमें उन्होने लिखा है कि यह दिल्लीकी टकसाली भाषा है। इस पुस्तकको उर्दू गद्यके साहित्यमें प्रथम स्थान मिला है। किन्तु लखनऊ वालोको इससे बडा रोष हुआ, जिसके उत्तरमें मिर्जा रज्जबअली बेग 'सुरूर' लखनवीने फिसाने अजायब नामकी पुस्तक लिखी जो उपमा और अलकारोसे ठसाठस भरी पडी है और जिसकी भाषा बडी कृत्रिम है। इसमे लखनऊकी प्रशसा और कानपुरकी निन्दा की गई है। कलकत्तेसे लल्लू लालजीकी लिखी हुई बैताल पचीसीको भी उर्दू और हिन्दीवाले दोनो समान रूपसे अपना मानते हैं।

गालिबने उर्दूमें अपने मित्रो और सम्बधियोको जो पत्र भेजे उनसे उर्दू भाषाका नया युग प्रारम्भ होता है। उन्होने अपने पत्रोके सम्बोधनमे बडे-लम्बे चौडे अरबी-फारसीके शब्दोका बहिष्कार करके केवल मेहरबान, महाराज, हजरत या बन्दा-परवर लिखकर अपनी बात लिखना प्रारम्भ कर देते हैं। गालिबके शिष्य ख्वाजा अल्ताफ हुसेन और जौकके शिष्य मौलाना मोहम्मद ने उर्दू गद्य-शैलीकी नीव डाली। नवीन शैलीके उर्दू लेखकोमें सर सैय्यद अहमद खाँका भी बडा ऊँचा स्थान है। इसके अतिरिक्त मौलाना मोहम्मद हुसेन आजाद और मौलाना शिबली प्रसिद्ध गद्य लेखक हैं। दिल्लीमें प्रथम उर्दूके उपन्यासकार मौलवी नजीर अहमद हुए जिन्होने बहुतसे उपन्यास लिखे।

उर्दूमें पहला दैनिक पत्र 'अवध अखबार' १८५८ से प्रारम्भ हुआ जो प रतननाथ दर सरशारके सम्पादकत्वके कारण बडा प्रसिद्ध हो चला। इनका प्रथम उपन्यास 'फिसाने आजाद' भी उर्दूका प्रथम उपन्यास

पियाके नाँव आशिक का कतल वाजब देखो हूँ।
न बरछी है न करछी है न खंजर है न भाला है।।
खूबाँके बाममें रौनक होवे तो किस तरह यारो।
न सोना है न मरवा है न सौसन है न लाला है।
बिरहमन वास्ते अस्नानके फिरता है जमिमा में।।
न गंगा है न जमुना है न नदी है न नाला है।।

आज पंजाबमें यह हल्ला मचाया जा रहा है कि पंजाबकी भाषा पंजाबी है। यदि यह बात होती तो सिक्ख गुरुओंने अपने ग्रन्थ साहबकी रचना पंजाबीमें की होती और गुरु नानकके सुपुत्र श्री चन्द्राचार्यने अपने मात्रा शास्त्र नामक धर्म ग्रन्थकी रचना नागरी खड़ी बोलीमें न करके पंजाबीमें की होती। अतः एक बात यह निश्चय है कि दिल्लीके आस-पास और पंजाबमें शिष्ट जनकी व्यवहारकी भाषा हिन्दी खड़ी बोली ही थी—न पंजाबी थी न फारसी अरबीसे लदी हुई उर्दू। दूसरी बात यह भी निश्चय है कि उर्दू वही भाषा कहला सकती है जो फारसी अरबीके छन्द शास्त्रमें ढली हुई रचनाओंमें प्रयुक्त होती है या जिनके विषय फारसी-अरबीके कथानकोंसे लिए हुए हों और उनमें फारसी अरबी उपमानोंका फारसी और अरबी शब्दोंमें ही प्रयोग हो। केवल फारसी और अरबी शब्दोंके प्रयोग मात्रसे ही कोई रचना उर्दू नहीं हो जाती।

यह सत्य है कि शाहजहाँके समयमें उर्दू भाषाका संस्कार और नामकरण हुआ। दिल्लीमें उसका परिष्कार हुआ। जहाँगीरके समकालीन दक्षिणके सुल्तान मो० कुतुबशाह, शाहजहाँके समकालीन अब्दुल्ला कुतुबशाह, गोलकुण्डा और बीजापुरके कवि तहसीनुद्दीन मुल्ला कुतुबी नुसरती अमीं हाशमी और दौलत आदि कवियोंने फारसी-अरबी शैलियोंमें गजल कसीदे मसनवी नामा और कहानियाँ लिखीं। इनके अतिरिक्त उत्तर और दक्षिणके बीचकी कड़ीके रूपमें वली (१६६८ से १७४४) प्रसिद्ध हैं जिन्होंने दक्षिणसे आकर मोहम्मद शाह रंगीलेको अपनी कविता सुनाई थी। महत्वकी बात यह है कि उसी समय दिल्लीके सूफी कवि शाह गुलशनने वलीको यह सम्मति दी थी कि आप फारसीकी शैली छोड़कर इस देशकी शैली अपनाइये किन्तु उन्होंने नहीं माना। दिल्लीके कवियोंपर उनका प्रभाव हुआ और वलीने उर्दू कवितामें जो नई शैली चलाई वह आजतक चली आ रही है और जब वली तो औरंगाबाद दक्षिण चले गए पर दिल्लीमें उर्दू कविताकी वह धूम मची कि जिसे देखो वही उर्दूमें कविता करने लगा। यहाँतक कि फारसीका रंग भी फीका पड़ गया। उस समय उर्दूमें दो प्रकारकी रचनाएँ होती थीं—एक राज-दरबारकी उर्दू कविता दूसरी सूफियोंके कलाम। उर्दू कवितामें प्रेमके दो रूप माने जाते हैं। एक इश्क हकीकी (आध्यात्मिक प्रेम) और दूसरा इश्क मजाजी। (लौकिक प्रेम)। इश्क हकीकीमें माधुर्य भक्तिके समान परमात्मा या आराध्य देवसे प्रेम प्रकट किया जाता है। भारतीय प्रथाके अनुसार स्त्री ही पुरुषके प्रति प्रेम प्रकट करती है किन्तु अरबीमें पुरुष ही स्त्रीके प्रति प्रेम प्रकट करता है। इन दोनोंसे भिन्न उर्दूमें फारसीके अनुकरण पर पुरुषका प्रेम पुरुषके प्रति प्रकट किया जाता है। कभी-कभी स्त्री प्रेयसीके प्रति भी पुल्लिंग-वाची क्रियाओंसे ही प्रेम व्यक्त कर दिया जाता है। उर्दू पर इन तीनों पद्धतियोंका प्रभाव पड़ा है पर सबसे अधिक रंग चढ़ा है फारसी का।

१८वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें उर्दूके प्रसिद्ध दिल्लीके कवियोंमें मीर तकी, मीर सौदा और दर्द हैं। इन्हींके तुल्य नज़ीर हुए जिन्होंने बच्चोंके लिए भी रचनाएँ लिखीं और बड़ोंके लिए भी और सबकी बात यह है

कि ये वडे उदार हृदयके व्यक्ति थे। इन्होने जहाँ एक और हजरत मोहम्मद की नात (प्रशसा ') लिखी वही कन्हैयाका वालपन भी लिखा। क्योंकि भाषाकी दृष्टिसे उर्दू हिन्दीमे कोई भेद नही था। आपने ऋतुओपर कविताएँ लिखनेके साथ-साथ हिन्दी और मुसलमानोके त्योहारोपर भी लिखा और 'रीछका वच्चा' तथा 'गिलहरीका वच्चा' जैसी वच्चोकी कविताएँ भी लिखी। वे अपनी कलामे अद्वितीय रहे, कोई उनका अनुकरण न कर सका।

दिल्ली उजडनेपर सौदा और मीर भी लखनऊ चले आये। वहाँ भी नवावी दरवारमे उर्दूने वडा आश्रय पाया। मीर साहव उन दिनो उर्दूके साढे तीन शायर मानते थे। एक अपने आपको, दूसरे सौदाको, तीसरे दर्दको और आधा सोजको। इनके पीछे मुसहफी, और इशाकी प्रसिद्धि हुई और उन्हींके साथ इशाके मित्र अधे कवि जुरअत की। लखनऊमे गजलको समुन्नत करनेका श्रेय मुसहफीको ही है। परन्तु इशाने नए प्रकारका हास्य और व्यग्य प्रर्वतित किया, उर्दूका पहला व्याकरण लिखा, छन्द ग्रन्थ लिखा और पचास पृष्ठोकी रानी केतकीकी कहानी लिखी जिससे उर्दूवाले उर्दूकी और हिन्दी वाले हिन्दीकी कहते हैं। यही इस वातका सवसे वडा प्रमाण है कि हिन्दी-उर्दूमे कोई अन्तर नही है, गद्यमें दोनो एक हैं।

१९ वी सदीमें मीर हसन देहलवीने 'वद्र मुनीर' नामकी मसनवी लिखी जिसका उत्तर पण्डित दयाशकर 'नसीम' का गुल्जारे नसीम है।

गजलके क्षेत्रमे भी लखनऊ और दिल्लीकी शैली अलग-अलग है। दिल्लीमें गालिव, मोमिन और जौक गजलके प्रसिद्ध कवि माने गए हैं और लखनऊमें आतिश और नासिर। किन्तु मीर तकीकी प्रतिष्ठा दोनो ही स्थानोमें हुई।

उर्दूकी सबसे वडी विशेपता यह है कि उर्दूके लेखकोने इस भाषाको बहुत अच्छी तरह माँजा है। मीर अम्मन देहलवीने 'चार दर्वेश' नामकी जो पुस्तक लिखी है उसके प्रारम्भमे उन्होने लिखा है कि यह दिल्लीकी टकसाली भाषा है। इस पुस्तकको उर्दू गद्यके साहित्यमें प्रथम स्थान मिला है। किन्तु लखनऊ वालोको इससे वडा रोप हुआ, जिसके उत्तरमें मिर्जा रज्जबअली वेग 'सुरूर' लखनवीने फिसाने अजायव नामकी पुस्तक लिखी जो उपमा और अलकारोसे ठसाठस भरी पडी है और जिसकी भाषा वडी कृत्रिम है। इसमें लखनऊकी प्रशसा और कानपुरकी निन्दा की गई है। कलकत्तेसे लल्लू लालजीकी लिखी हुई बैताल पचीसीको भी उर्दू और हिन्दीवाले दोनो समान रूपसे अपना मानते है।

गालिबने उर्दूमें अपने मित्रो और सम्वधियोको जो पत्र भेजे उनसे उर्दू भाषाका नया युग प्रारम्भ होता है। उन्होने अपने पत्रोंके सम्वोधनमें बडे-लम्बे चौडे अरबी-फारसीके शब्दोका बहिष्कार करके केवल मेहरबान, महाराज, हजरत या वन्दा-परवर लिखकर अपनी बात लिखना प्रारम्भ कर देते हैं। गालिबके शिष्य ख्वाजा अल्ताफ हुसेन और जौकके शिष्य मौलाना मोहम्मद ने उर्दू गद्य-शैलीकी नीव डाली। नवीन शैलीके उर्दू लेखकोमें सर सैय्यद अहमद खाँका भी वडा ऊँचा स्थान है। इसके अतिरिक्त मौलाना मोहम्मद हुसेन आजाद और मौलाना शिवली प्रसिद्ध गद्य लेखक हैं। दिल्लीमें प्रथम उर्दूके उपन्यासकार मौलवी नजीर अहमद हुए जिन्होने बहुतसे उपन्यास लिखे।

उर्दूमे पहला दैनिक पत्र 'अवध अखबार' १८५८ से प्रारम्भ हुआ जो प रत्ननाथ दर सरशारके सम्पादकत्वके कारण बडा प्रसिद्ध हो चला। इनका प्रथम उपन्यास 'फिसाने आजाद' भी उर्दूका प्रथम उपन्यास

है जिसमे लखनऊके सब प्रकारके सामाजिक रूपोंका अत्यन्त सुन्दर सरस चित्रण है। इसकी शैलीको उर्दूमें कोई नही पा सका। इसके पश्चात् तो सन् १८७७ मे मुन्शी सज्जाद हुसेनके सम्पादकत्वमें अवध पंच निकला जिसमे हास्य और व्यंग्यके साथ राजनैतिक लेख छपते थे।

२० वी शताब्दीके आरम्भमें मुन्शी गंगाप्रसाद वर्माने हिन्दुस्तानी अखबार निकाला जिसके सम्पादक कृष्णप्रसाद कौल अभी जीवित हैं। इसके पश्चात् और भी कई अखबार निकले।

उर्दूमें हास्य रसके प्रथम प्रवर्तक मिरजा रफी सौदाके पश्चात नजीर अकबराबादी इंशा अकबर हुसेन अकबर और अकबर इलाहाबादी अधिक प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे सौदा तो हजो (व्यंग्य) के बादशाह माने जाते हैं।

उर्दूमे नवीन शैलीकी कहानी लिखनेका श्रेय मुंशी व्रजमुकुन्द गुप्तको है। २० वी शताब्दीके आरम्भमे कानपुरसे प्रकाशित जमाना अखबार मे बाबू प्रेमचन्द (धनपतराय) नवाबरायके नामसे अपनी कहानियाँ लिखते थे। अभीतक भी प्रेमचन्द जी उर्दूके सर्वश्रेष्ठ कहानी लेखक माने जाते हैं। दूसरे प्रगतिशील लेखक कृष्णचन्द्र हैं जिनकी प्रगतिवादी धारामे राजेन्द्रसिंह बेदी सआदत हसन मिन्टो फिक्र तौसवी देवेन्द्र सत्यार्थी उपेन्द्रनाथ अश्क और रेवती शरण मुख्य हैं। स्त्रियोंमें मुमताज सीरी इस्मत चुगताई और स्वालिहा आबिदहुसेन उल्लेखनीय हैं। ख्वाजा अहमद अब्बास तो प्रसिद्ध लेखक हैं ही। हास्य रसके कहानी लेखकोंमें मिर्जा फरहत उल्ला बेग शौकत थानवी और मिर्जा अजीम बेग चुगताई प्रसिद्ध हैं।

नवीन उर्दू कविताकी धारामें इस्लामी कवि इकबाल राष्ट्रीय कवि चकबस्त क्रान्तिकारी कवि जोश मलीहाबादी प्रसिद्ध हैं और अब मौलाना मो हम्मद अली मौलाना हसरत मोहानी फानी बदायूनी आदिके पश्चात् नई प्रगतिवादी धारामे रघुपति सहाय फिराक गोरखपुरी और अख्तर शिरीनीके नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होने रोमानी शायरीको पूर्णतः नवीन रूप दे दिया है। ये प्रगतिशील कवि समाज बदलना चाहते हैं प्रेमकी रास ढीली कर देना चाहते हैं और विवाह प्रथाको अप्राकृतिक मानते हैं ये कवि भी आजतक यह नही समझ पाए कि क्रान्ति और प्रेममेंसे किसका अधिक सम्मान किया जाय। हाँ मजाज लखनवीने प्रेमका अपमान नही किया। हमारे विचारसे वे प्रगतिशील हैं भी नही। ये सभी कवि एक ओर इस प्रकार समाज बदलनेकी बात करते हैं कारखानेके मालिकसे क्रान्ति करनेकी बात कहते हैं और उन्हींके यहाँ जाकर प्याले ढालते हैं। यह दुरंगा रूप उर्दू साहित्यको ही नही उर्दू साहित्यके उन महाकवियों और लेखकोंकी प्रतिष्ठाको भी नीचे पटक देगा जिन्होने अत्यन्त लगन स्वाभिमान और निष्पक्षताके साथ उर्दू साहित्यको बनाया और सँवारा है जिन्होने उसमें प्राण फूंके जिन्होने उसमे अभिव्यक्तिकी शक्ति भरी और उसे अत्यन्त उदात्त बनानेका जीवन भर प्रयत्न किया।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है हिन्दी और उर्दू मतमे कोई किसी प्रकारका भेद नही है क्योंकि बहुतसे हिन्दीके लेखक भी जब लिखते समय फारसी और अरबीके सैकड़ो शब्दोंका स्वाभाविक प्रवाहमें प्रयोग करते हैं। इन दोनोंकी एकताका एक सबसे बड़ा प्रमाण यह दिखाई दे रहा है कि उर्दूके अनेक लेखक और कवि बड़ी सरलताके साथ अत्यन्त प्रौढ़ और सशक्त हिन्दी रचनाएँ करने लगे हैं जिसके अत्यन्त सबल और ज्वलन्त प्रमाण हैं प्रेमचन्दजी। इन कवियों और लेखकोंको केवल कुछ ऐसे शब्दोंको हिन्दी रूपमें ढाल देना पड़ता है जो हिन्दीवालोंको अभी अव्यवहृत प्रतीत होते हैं। आधुनिक कवि-सम्मेलनोंमें

यह देखा जाता है कि अनेक उर्दू कवि हिन्दी छन्दोमे अत्यन्त सुन्दर रचना करने लगे है और उर्दूमे जबानकी सफाई सिद्ध होनेके कारण उनकी कविताएँ और कहानियाँ हिन्दीके उन कवियो और लेखकोसे कही अधिक प्रौढ, चटकीली और प्रभावशाली होती है जो पहलेसे हिन्दीमे लिखते आ रहे है। जहाँतक हिन्दी और उर्दूकी छन्दहीन रचनाओकी बात है उसमे तो कोई भेदकी बात नही है क्योकि भाषा एक है, विषय एक होते है और छन्दका भी बन्धन नही है। इसलिए व्यर्थमें उर्दू शैलीको अलग भाषा मानकर उसका एक अलग अखाडा बनाना केवल राजनैतिक दृष्टिसे अमान्य नही है वरन् व्यावहारिक और ऐतिहासिक दृष्टिसे भी निर्मूल है। वह भी राष्ट्रभाषा हिन्दीकी अत्यन्त पुष्ट और मँजी हुई शैली है।

इस प्रकार हिन्दी साहित्यका क्षेत्र बडा व्यापक है जिसकी विभिन्न विभाषाओ, उपभाषाओ, बोलियो और शैलियोमे बडी भावात्मक एकता और अभिन्नता है। इस हिन्दीने अपने आरम्भसे सन्तोकी वाणीमे धार्मिक और भावात्मक अखण्डताका प्रचार किया और वह राजनैतिक अखण्डताकी सिद्धिके लिए भावात्मक एकताका प्रबल साधन बन गई है।

तेरी पेशानीका टीका झमकता,
तमाशा है उजाले में उजाला॥

—अब्दुल्ला कुतुबशाह

दिलसे उठता है जाँ से उठता है,
यह धुआँ-सा कहाँ से उठता है।
उलटी हो गई सब तदबीरें, कुछ न दवाने काम किया,
देखा इस बिमारिये दिलने, आखिर काम तमाम किया।
नाहक हम मजबूरों पर यह तोहमत है मुख्तारी की,
चाहते है सो आप करें, है हमको अबस बदनाम किया।
सिरहाने मीरके आहिस्ता बोलो,
अभी टुक रोते रोते सो गया है।
हवादिस और थे पर दिलका जाना,
अजब एक सौन सा हो गया।
मीर अब एक मजारे मजनूसे,
ना तबा सा गुबार उठता है।

—मीर तकी 'मीर'

उठ गया बहमनोदय का चमनिस्तासे अमल
तेगे उर्दी ने किया मुल्के खिजाँ मस्तासल।
लडकी वो जो लडकियोंमें खेले
न कि लडकोंमें जाकर दण्ड पेले।

—सौदा

तोहमते चन्द अपने जुम्मे धर चले
आये क्या करनेको क्या कर चले।
जिन्दगी है या कोई तूफान है
हम तो इस जीनेके हाथों मर चले।
साकिया लग रहा है चल चलाव
जब तलक बस चल सके सागर चले।
वाये नादानी की वक्ते मर्ग यह साबित हुआ
ख्वाब था जो कुछ का देखा जो सुना अफसाना था।

—दर्द

टुक हिरसो हवाको छोड़ मियाँ क्यों देस बिदेस फिरे मारा।
कज्जाक अजलका लूटे है दिन रात बजाकर नक्कारा॥
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा
जब लाद चलेगा बंजारा।

× × ×

क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन
ऐसा था बांसुरीके बजैयाका बालपन।

—नजीर 'अकबराबादी'

क्या बूदोबास पूछे हो पूरबके साकिनो
हमको गरीब जानके हँस हँस पुकारके।
दिल्ली जो एक शहर था आलममें इन्तखाब
रहते थे मुन्तखिब ही जहाँ रोजगारके।
उसको फलक ने लूटके वीरान कर दिया।
हम रहने वाले हैं उसी उजड़े दयारके।

—मीर

शहरमें जैसे मगस हम हिर्स में पाबन्द हैं
दाम पकड़ना इस सियह जिन्दोंमें यूँ खुर्सन्द हैं।
रिज्क का आमिन खुदा शाहिद कलाम अल्लाह है
जिसपे अपनी मूरतोंसे रोज हाजतमन्द हैं।
मकबरोंमें जाके उन आँखोंसे हम देखे हैं रोज
यह बिरादर, यह पिदर, यह खेश यह फरजन्द हैं।
जिसपे रानाईसे ठोकर मारकर चलते हैं हम
जानते इतना नहीं हम खाकके पैवन्द हैं।

जब तलक आँखे खुली हैं दुःख पै दुख देखेंगे हम,
मुद गयीं जब अँखडियाँ तब, 'सोज' सब आनन्द है।

—सोज

कमर बाँधे हुए चलनेको याँ सब यार बैठे हैं
बहुत आगे गये बाकी जो हैं तैयार बैठे हैं।
न देड ऐ निकहते बादे बहारी, राह लग गयी अपनी,
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं, हम बेजार बैठे हैं।
नजीबों का अजब कुछ हाल है, इस दौर में यारो,
जहाँ देखो यही कहते हैं हम बेकार बैठे हैं।
कहाँ सबरो तहम्मुलआह नगो नामका शेष है,
मियाँ रो पीटकर इन सबको हम एक बार बैठे हैं।
भला गर्दिश फलक की चैन देती है किसे इन्शा,
गनीमत है कि हम सोहबत यहाँ दो चार बैठे हैं।

—सैयद इन्शा

बरस पन्द्रह या कि सोलह का सिन
जवानीकी रातें मुरादोंका दिन

—मीर हसन

पत्ता फल फूल छाल लकड़ी।
उस पेड़से लेके राह पकड़ी॥
हय हय मेरा फूल ले गया कौन।
हय हय मुझे दाग दे गया कौन॥
शबनमके सिवा चुराने वाला।
ऊपरसे था कौन आनेवाला॥
जिस तरह उन्हें वहम में लाया।
बिछुड़े यूँ ही सब मिले खुदाया॥

—दयाशंकर 'नसीम'

रेखते में तुम्हीं उस्ताद नहीं हो गालिब
कहते हैं अगले जमानेमें कोई मीर भी था।
कोई तदबीर बर नहीं आती,
कोई सूरत नजर नही आती।
मौतका एक दिन मुकर्रर है,
नींद क्यों रात भर नहीं आती?
पहले आती थी हाले दिलपे हँसी।

अब किसी बातपर आती नहीं।
हम वहाँ हैं जहाँ से हमको भी
कुछ हमारी खबर नहीं आती।
यूँ ही कुछ बात है कि मैं चुप हूँ
वरना क्या बात कर नहीं आती।
जानता हूँ सवाबे ताअतो जुहद
पर तबीयत इधर नहीं आती।
काबे किस मुँहसे जाओगे गालिब
शर्म तुमको मगर नहीं आती।

—गालिब

तुम मेरे पास होते हो गोया
जब कोई दूसरा नहीं होता।
साज यह कि ना साज क्या जानें
नाजवाले नमाज क्या जानें।।
जानके बिस्तर जो गुजरती है
अब बन्दानवाज क्या जाने !
जिसमें लाखों बरसकी हूरें हों
ऐसी जन्नतको कोई करे कोई
मसीहा तू भी किसी पर जान दे
हाय का उस्ताद क्यूँ कैसी कही।

—दाग

गुल गुल ए शबनम, जो मला हुरे सुबह ने
ठण्डे जिराम कर दिये काफूरे सुबह ने

—दबीर

मुस्तफी किस जिन्दगी पर नाज इतना कीजिए,
याद है मरने वालोंको मुरदने इनका मुझे।

—मुस्तफी

नादाँ कहूँ दिल को या खिरदमन्द कहूँ
या तिलतिल य बला का पाबन्द कहूँ।
एक रोज खुदाको मुँह दिखाना है जरूर,
किस मुँहसे मैं बन्देको खुदावन्द कहूँ।।

गर आँखसे निकलके ठहर जाय राहमें,
पड जाये लाख आबले पाये निगाहेमें।

—अनीस

मुश्किल है जे वस कलाम मेरा ऐ दिल,
सुतसुतके अुसे सुखन वराते काविल।
आसाँ कहनेकी करते हैं फरमाइश,
गोयम् मुश्किल वगर न गोयम् मुश्किल।
कातिशका दिल करे है तकाजा, कि है हिनोज,
नाखुन पै कर्ज, उस गिरहे नीम वाजका।
मैं खुलाऊँ और खुले, यों कौन जाय,
यारका दरवाजा पाऊँ गर खुला।

—गालिब

नीचे वाके जल मरो, उपर लागी आग,
बाजन लागी बाँसुरी, निकसन लागे नाग।

—सौदा

जाफर जहल्लीने ऐसा किया,
कि मक्खीको मल मलके भैंसा किया।
बे परदा कल नजर पडी जो पडी चन्द बीबियाँ,
'अकबर' जमीं में गैरते कौमीसे गड गया।
पूछा जो उनसे आपका परदा कहाँ गया,
कहने लगीं कि अक्ल पै मरदोंकी पड गया।
परदा उठ जानेका आखिर यह नतीजा निकला,
बेटा हम जिसको समझते भतीजा निकला।
आगे इञ्जनके दीन है क्या चीज,
भैंसके आगे बीन है क्या चीज?
यह बात गलत कि मुल्के इस्लाम है हिन्द,
यह झूठ कि मुल्के लछमनों–राम है हिन्द।
हम सब है मती और खैर ख्वाहे ब्रिटिश,
यूरोपके लिए बस एक गोदाम है हिन्द।
नाक रखते हो तो तेगे तेजसे डरते रहो,
खैरियत चाहो तो हर अँग्रेजसे डरते रहो॥
बहुत शौक अँग्रेज बननेका है,
तो चेहरे पै पहले गिलट कीजिये।

अब किसी बातपर आती नहीं।
हम वहां हैं जहां से हमको भी
कुछ हमारी खबर नहीं आती।
यूं ही कुछ बात है कि मैं चुप हूं
वरना क्या बात कर नहीं आती।
जानता हूं सवाबे ताअतो जुहद
पर तबीयत इधर नहीं आती।
काबे किस मुंहसे जाओगे गालिब
शर्म तुमको मगर नहीं आती।

—गालिब

तुम मेरे पास होते हो गोया
जब कोई दूसरा नहीं होता।
साज यह कि ना साज क्या जानें
नाजवाले नमाज क्या जानें॥
वाएजे दिलपर जो गुजरती है
अय अक्लमन्दाज क्या जाने।
जिसमें लाखों बरसकी हूरें हों
ऐसी जन्नतको कोई करे कोई
मसीहा तु भी किसी पर जान दे
हाथ का उस्ताद क्यूं कैसी कही।

—दाग

गुल चुन ए अब्र, जो मला हुवे सुबह ने
ठण्डे चिराग कर दिये काफूरे सुबह ने

—कबीर

मुस्तफी किस जिन्दगी पर नाज इतना कीजिए,
याद है मरने कलीमों गुरवने इल्मा मुझे।

—मुस्तफी

नादीं कहूं दिल को या बिदरमन्द कहूं
या सिलसिले ए वफा का पाबन्द कहूं।
एक रोज खुदाको मुंह दिखाना है जरूर
किस मुंहसे मैं अपनेको खुदावन्द कहूं॥

गर आँखसे निकलके ठहर जाय राहमें,
पड जाये लाख आवले पाये निगाहेमें।

—अनीस

मुश्किल है जे वस कलाम मेरा ऐ दिल,
सुतसुतके अुसे सुखन वराते काविल।
आसां कहनेकी करते हैं फरमाइश,
गोयम् मुश्किल वगर न गोयम् मुश्किल।
कातिशका दिल करे है तकाजा, कि है हिनोज,
नाखुन पै कर्ज, उस गिरहे नीम वाजका।
मैं खुलाऊँ और खुले, यो कौन जाय,
यारका दरवाजा पाऊँ गर खुला।

—गालिब

नीचे वाके जल मरो, उपर लागी आग,
वाजन लागी बाँपुरी, निकसन लागे नाग।

—सौदा

जाफर जहल्लीने ऐसा किया,
कि मक्खीको मल मलके भैसा किया।
बे परदा कल नजर पडी जो पडी चन्द बीबियाँ,
'अकवर' जमीं में गैरते कौमीसे गड गया।
पूछा जो उनसे आपका परदा कहाँ गया,
कहने लगीं कि अक्ल पै मरदोंकी पड गया।
परदा उठ जानेका आखिर यह नतीजा निकला,
बेटा हम जिसको समझते भतीजा निकला।
आगे इञ्जनके दीन है क्या चीज,
भैसके आगे बीन है क्या चीज?
यह बात गलत कि मुल्के इस्लाम है हिन्द,
यह झूठ कि मुल्के लछमनों–राम है हिन्द।
हम सब है मती और खैर ख्वाहे ब्रिटिश,
यूरोपके लिए बस एक गोदाम है हिन्द।
नाक रखते हो तो तेगे तेजसे डरते रहो,
खैरियत चाहो तो हर अँग्रेजसे डरते रहो॥
बहुत शौक अँग्रेज बननेका है,
तो चेहरे पै पहले गिलट कीजिये।

इशरती हिन्द की लन्दनमें मजा भूल गए,
केककी चाहमें सिवइयोंका मजा भूल गए।
मोमकी पुतलियोंपर ऐसी तबीयत आई
चमन हिन्दकी परियोंकी अदा भूल गए।
क्या ताज्जुब है जो बच्चोंने भुलाई तहजीब
जब कि रविशे दीने खुदा भूल गए।

—अकबर

उठो मेरी दुनियाके गरीबोंको जगा दो
काखे उमराके दरो-दीवार हिला दो।
जिस खेतसे दहकांको मयस्सर न हो रोजी
उस खेतके हर खोशये गन्दुमको जला दो।

—इकबाल

बिरतानियाका साया सिरपर कुबूल होगा
हम होंगे ऐश होगा और होमरूल होगा।
तलब फिजूल है कांटोंकी फूलके बदले
न लें बहिश्त भी हम होमरूलके बदले।
तुम्हें जो करना है कर लो अभी वतनके लिये
लहूमें फिर यह रवानी रहे रहे न रहे।
रहेगी आबो हवामें ख्यालकी बिजली
यह मुश्ते खाक है फानी रहे रहे न रहे।
जो चुप रहें तो हवा कौम की बिगड़ती है
जो सर उठायें तो कोड़ोंकी मार पड़ती है।
कौम गाफिल नहीं भाता तेरी मजबूरीसे
वलवला मुल्कमें है तेरी गिरफ्तारीसे।
सन्तरी देखके इस जोशको घबरायेंगे।
गीत जंजीरकी झंकार पै हम गायेंगे।
चांदी रातमें पवनको भी हवा आती है
कौमके दिलके धड़कनकी सदा आती है।
कहीं-कहीं है मेरे कश्मीरका महमा नवाज
राहमें पत्थरके टुकड़ोंने दिया पानी मुझे।
परदा पलके जो उठाया तो बहुत खूब किया।
परदये शर्मको दिलसे न उठाना हरगिज।

—चकबस्त

खुदको गुम करदा राह करके छोडा,
हौआ को भी तबाह करके छोडा।
अल्लाहने जन्नतमें किये लाख जतन,
आदमने मगर गुनाह करके छोडा।
क्या फायदा शेख ऐसे जीनेमें मुझे,
खुश्कीमें तुझे मजा, सफीनेमें मुझे।
ऐयाश तो दोनों है मगर फर्क यह है,
खानेमें तुझे मजा है पीनेमें मुझे।
क्या शेखकी तल्ख जिन्दगानी गुजरी।
बेचारेकी एक शब न सुहानी गुजरी।
दोजखके तसव्वरमें बुढ़ापा बीता,
जन्नतकी दुआओंमें जवानी गुजरी।
क्या शेख मिलेगा लन्तरानी करके,
तौहीने मिजाजे नौजवानी करके।
त आतिशे दोजखसे डरता है उन्हें
जो आगको पी जाते है पानी करके।
गुंचे तेरी जिन्दगी पै दिल हिलता है,
बस एक तवस्सुमके लिए खिलता है।
गुंचेने कहा यह मुस्कराकर बाबा,
यह एक तबस्सुम भी किसे मिलता है ?
नाम है मेरा जवानी, नाम है मेरा शबाब,
मेरा नारा इन्कलाबी इन्कलाबी, इन्कलाब।
सर-सर है कोई तो बादे तूफा कोई।
खजर हैं कोई तो तेगे बुर्रा कोई।
इन्सान कहाँ है किस कुरेमें गुसम है,
यो तो कोई हिन्दू है मुसल्मां कोई।

—जोश मलीहाबादी

बेसुरी नगमा-सराईका न ले नाम अभी,
मजिले इश्कमें करने है बहुत काम अभी।
नुज्ज पा जाये जो खा धोकसे बादाम अभी,
नाला है बुलबुले शोरीदा तेरा खाम अभी,
अपने सीनेमें जरा और इसे थाम अभी
कभी मादूम में है और कभी मौजूद में इश्क,

कभी माशूक़में है और कभी आशिक़में इश्क़
मुश्किला रोके अक़्लसे है उक़्दा-कुशामें इश्क़,
बेख़तर कूद पड़ा आतिशे नमरूदमें इश्क़।
अक़्ल है महवे तमाशाए लबे बाम अभी।

—हाली

हामिदा चमकी न थी इंगलिशसे जब बेगाना थी
अब है शमए अंजुमन पहले चिराग़े ख़ाना थी।
मज़हबी कलाम पै भी ख़िस्स हो पाबस्ता पड़े
और ख़ुदा है तो पशेमाँ हो जाएँ।
चंद रोज़ और मेरी जान फ़क़त चंद ही रोज़
ज़ुल्मकी छाँवमें दम लेनेपर मजबूर हैं हम।
तुम्हारे ग़मके सिवा और भी तो ग़म हैं मुझे।
नजात जिनसे मैं एक लहमा पा नहीं सकता।
यह ऊँचे ऊँचे मकानोंकी ड्योढ़ियोंके तले
हर एक गामपर भूखे भिखारियोंकी सदा।
यह कारख़ानोंमें लोहेका शोरो-गुल जिसमें
है दफ़्न लाखों ग़रीबोंकी रूह का नग़मा।

तीसरा खण्ड

राष्ट्रभाषाका निर्माण तथा पारिभाषिक शब्दावली

डॉ उदयनारायण तिवारी

राष्ट्रभाषाके निर्माणमे पारिभाषिक शव्दावलीका अत्यधिक महत्त्व है। राष्ट्रभाषाके द्वारा ही समस्त देशमें एकताकी स्थापना हो सकती है, इस वातका अनुभव सर्वप्रथम हमारे देशके दो राज्यो—वगाल एव महाराष्ट्रने किया। इस देशके इन्ही दो राज्योको सवसे पहले राष्ट्रीय चेतनाका वोध हुआ। वगालके श्री वकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, श्री केशवचन्द्र सेन तथा श्री भूदेव मुखोपाध्यायने इस कार्यके लिए हिन्दीको उपयुक्त माना और लोकमान्य वाल गगाधर तिलकने स्वराज्यके लिए राष्ट्रभाषाके रूपमें हिन्दीकी आवश्यकता स्वीकार की। उधर आर्य समाजके सस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वतीने भी हिन्दीको अपने धर्म-प्रचारका माध्यम वनाया। किन्तु यह थी वास्तवमें राष्ट्रभाषाकी भूमिका। इसे कार्यरूपमे परिणत करनेवाले वास्तवमें भारतीय क्रान्तिकारी थे। इस शताब्दिके आरम्भमें ही विदेश स्थित भारतीय क्रान्तिकारियोका एक दल सगठित हो गया था, जिसमें वगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, पजाव आदि सभी प्रदेशोके तरुण थे। इस युगमें राष्ट्रीयताकी जो लहर उठी, उसने राष्ट्रभाषाकी ओर इन भारतीय युवकोका ध्यान आकर्षित किया और इसके फलस्वरूप राष्ट्रभाषाके रूपमें हिन्दी राष्ट्रीयताका अविभाज्य अग बनने लगी। सन् १९१७ में श्रद्धेय बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डनकी प्रेरणासे राष्ट्रपिता बापू 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के सभापति बने और उनके द्वारा राष्ट्रभाषाके आन्दोलनको सर्वाधिक बल मिला। जव देश स्वतन्त्र हुआ तो सविधान द्वारा हिन्दी राज्यभाषा मान ली गई और तव लोग 'राज्यभाषा' तथा 'राष्ट्रभाषा' में स्पष्ट रूपसे अन्तर करने लगे। यह वात भली-भाँति हृदयगम कर लेनेकी है कि जव तक सम्पूर्ण देश हिन्दीको राष्ट्रभापाके रूपमें स्वीकार नही कर लेता, तवतक न तो भारत सच्चे अर्थोंमे राष्ट्र ही होगा और न हिन्दी राष्ट्रभापा ही हो सकेगी। ज्यो-ज्यो हमारे भीतर राष्ट्रीयताकी भावना आएगी, त्यो-त्यो राष्ट्रभाषाका भी मार्ग प्रशस्त होगा। राष्ट्रीय भावनाके जागरणके लिए यह सर्व प्रथम आवश्यक है कि हम सम्पूर्ण देशको अपना देश समझें और उससे प्रेम करें। यह प्रेमकी भावना भारतीय सस्कृति, नागरी लिपि, सस्कृत भाषा, उत्तर एव दक्षिणकी आधुनिक भाषाओंके अध्ययन तथा सम्पूर्ण देशके लिए एक पारिभाषिक शव्दावलीके निर्माणके द्वारा उत्पन्न की जा सकती है। यहाँ पारिभाषिक शव्दावलीके सम्बन्धमें सक्षेपमें विचार किया जाएगा।

'शिक्षा' तथा 'एजुकेशन डिपार्टमेण्ट' के लिए 'शिक्षा विभाग' शब्द चल रहे हैं, किन्तु दक्षिणी भारत तथा महाराष्ट्रमें 'शिक्षा' का अर्थ 'दण्ड' होता है। इस प्रकार शिक्षा विभागका अर्थ वहाँ 'दण्ड विभाग' हो जाएगा। आन्ध्र (हैदराबाद) मे 'एजुकेशन विभाग' के लिए 'विद्याशाखा' शब्द प्रचलित है। यदि यही शब्द उत्तरी भारतमें भी चालू किया जाय तो क्या कठिनाई होगी? इसी प्रकार "वायर लेस" के लिए इधर 'वितन्तु' शब्द स्वीकृत किया गया है और 'वायरलेस डिपार्टमेण्ट' के लिए 'वितन्तु कार्यालय', किन्तु दक्षिणमें "वितन्तु" शब्द 'विधवा' के अर्थमें प्रचलित है। वहाँ 'वायरलेस' के लिए "निस्तत्री" शब्द प्रयुक्त होता है जो सर्वत्र प्रचलित होने योग्य है।

पारिभाषिक शब्दोके निर्माणका कार्य यथासम्भव शीघ्र सम्पन्न होना चाहिए। इस दिशामें डा रघुवीरने जो कार्य किया है वह स्तुत्य है। जो लोग उनकी आलोचना करते हैं वे भी अन्ततोगत्वा उनके द्वारा निर्मित शब्दोका प्रयोग करते हैं। सच बात तो यह है कि जितनी आलोचना सरल है उतना शब्दोका निर्माण करना सरल नही है। सन १९४७ ई में श्री राहुल साकृत्यायन 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के बम्बई अधिवेशनके सभापति हुए थे। श्री राहुलजीने यह कार्यक्रम बनाया था कि चार-पाँच वर्षोंके भीतर ही वे उच्च शिक्षामें प्रयुक्त होनेवाले पारिभाषिक शब्दोका निर्माण करके उनकी 'प्रूफ कापी' लेकर विभिन्न राज्योमें जाएँगे और वहाँके विद्वानोसे मिलकर इनका अन्तिम रूप तैयार करेंगे। श्री राहुलजीने कतिपय सप्ताहमे ही 'शासन शब्द कोष' तैयार कर दिया था जो सम्मेलनसे प्रकाशित हुआ था। जिस गतिसे श्री राहुलजीने पारिभाषिक शब्दोके निर्माणका कार्य प्रारम्भ किया था, उससे न जाने यह कार्य कबका सम्पन्न हो गया होता, किन्तु इसी समय हिन्दीके दुर्भाग्यसे सम्मेलनमें जो आन्तरिक कलह आरम्भ हुआ उससे सम्मेलन ही बन्द हो गया।

जिस प्रकार नागरी लिपिके प्रचार-प्रसारसे देशमे एकताकी अभिवृद्धि होगी, उसी प्रकार पारिभाषिक शब्दावली एक होनेसे भी भारतके विभिन्न राज्य एक दूसरेके निकट आएँगे। पारिभाषिक शब्दावलीके द्वारा वास्तवमें राष्ट्रभाषाके निर्माणमें सहायता मिलेगी।

प्रादेशिक भाषाओंके सन्दर्भमें हिन्दीका शब्द-समूह

डॉ॰ भोलानाथ तिवारी

किसी भाषाकी प्रकृतिको समझने तथा अन्य भाषाओंसे उसके साम्य-वैषम्य या नैतिक-अनैतिकका पता चलानेके लिए शब्द-समूहका अध्ययन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। भाषा विज्ञान अपने शैशव-कालमें इसीका हाथ पकड़ कर चलनेमें समर्थ हो सका था। आज जब हिन्दी भारतकी राज्य एवं राष्ट्रभाषाके रूपमें विकसित हो रही है प्रादेशिक भाषाओंके सन्दर्भमें उसके वर्तमान शब्द-समूहका अध्ययन एवं भावीका निर्देश बहुत महत्त्व रखता है।

भारतीय आचार्योंने परम्परागत रूपसे शब्द-समूहका विभाजन प्रमुखतः चार वर्गोंमें किया है—तत्सम तद्भव देशज और विदेशी। विश्वकी सभी भाषाओंके शब्द-भण्डारपर प्रायः इनके अन्तर्गत विचार किया जा सकता है। भारतवर्षमें जो भाषाएँ बोली जाती हैं उन्हें प्रायः चार परिवारोंमें रखा गया है—भारोपीय परिवार, द्रविड़ परिवार, ऑस्ट्रिक परिवार, तथा तिब्बती चीनी परिवार। इनमें अधिक महत्त्व केवल प्रथम दो परिवारोंका है। अंतिम दो के अन्तर्गत आनेवाली भाषाएँ और बोलियाँ वर्तमानकी दृष्टिसे बहुत महत्त्व नहीं रखती। यद्यपि भूतकी दृष्टिसे उनमेंसे प्रथमका कुछ महत्त्व है क्योंकि उसने प्रथम दो परिवारोंको उभयनिष्ठ शब्द संपत्ति दी है।

जहाँतक तत्सम शब्दोंका प्रश्न है हिन्दीका भारतकी प्रादेशिक भाषाओंसे पर्याप्त साम्य है। हिन्दीमें संस्कृतके तत्सम शब्द संख्यामें पर्याप्त हैं। इनका प्रतिशत पचाससे कम न होगा। ये शब्द न्यूनाधिक रूपमें उसी प्रकार पंजाबी सिंधी गुजराती मराठी उड़िया बंगला तथा असमिया आदि अन्य भारतीय आर्य भाषाओंमें भी हैं। इस श्रेणीके अधिकांश शब्दोंमें हिन्दीका अन्य भारतीय आर्य भाषाओंके साथ ध्वनि साम्यके साथ-साथ अर्थ-साम्य भी है। उदाहरणार्थ अस लेनाको ही लें तो अनन्त अधीकार अधःपूर्व अकस्मित अकस्मात् अनीति अवसर, अतिरिक्त अधोगति अनुताप अनुपात आदि हजारों ऐसे तत्सम शब्दोंको खोजा जा सकता है जो उनमें हिन्दीके समान ही हैं। हाँ कुछ थोड़े शब्द ऐसे भी अवश्य मिलते हैं जो तत्सम तो हैं किन्तु जिनका हिन्दीमें कुछ और अर्थ है और अन्य भाषाओंमें कुछ और। जैसे हिन्दीमें श्रीमती का प्रयोग सधवा के लिए होता है, किंतु मराठीमें 'विधवा' के लिए। इसी प्रकार हिन्दी-असमिया अनुभव या हिन्दी-उड़िया

लिपि आदि भी अर्थकी दृष्टिसे पूर्णत एक नही है। तत्समके प्रसगमे ये बाते हिन्दी और वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओंके सम्बन्धमें थी। द्रविड भाषाओंके सम्बन्धमे भी स्थिति बहुत अधिक भिन्न नही है। द्रविड भाषाओमे कन्नड तथा मलयाळम तो बहुत ही सस्कृत निष्ठ है, अत वे भी इस दृष्टिसे हिन्दीके समीप है। तेलुगुकी भी स्थिति लगभग ऐसी ही है। द्रविड भाषाओमे केवल तमिळ ही ऐसी है जिसमे सस्कृत शब्द कम कहे जाते है। किन्तु इसका आशय यह नही कि उनमे सस्कृत शब्दोका बिल्कुल ही अभाव है। मीन, मणि, अणु, नीति, अरुचि, पति, परम, रीति, उदार, एकागी, परमाणु, कर्ता, देवी, वस्तु, नदी, गायत्री, वायु, गुरु, चण्डी, माता, महामुनि, आदि सैकडो शब्द तमिळमे भी सस्कृत तत्सम है। तमिळमे बहुतसे शब्दोंके अन्तमे हलत् 'म्' या कभी-कभी 'न्' आते है, यदि उसे भाषाकी सामान्य विशेषता मानकर छोड दे, तब तो अनुमान, आनद, उत्तम, जप तप, जल, तप, स्थान, दिवस, दूर, नष्ट, नाम नायक, नास्तिक, निर्वाण, नीच, निवास, नील, रतन, पडित, बल, मत, यवन, विचार आदि अन्य बहुतसे समान तत्सम शब्द मिल सकते है। आर्य भाषाओकी भाँति ही द्रविड भाषाओमे भी कुछ तत्सम शब्द अर्थ-भेदके साथ प्रयुक्त होते है, जैसे तेलुगुमें 'जानु' का अर्थ है पैरका घुटनेसे नीचेका भाग और 'व्यवसाय' का अर्थ है खेती। किन्तु ऐसे शब्द अधिक नही है। निष्कर्षत तत्सम शब्दोकी दृष्टिसे हिन्दीका शब्द-समूह अन्य प्रादेशिक भाषाओसे न्यूनाधिक रूपमें समीप है। यह सामीप्य मराठी-बगला आदिसे जहाँ सस्कृत शब्द ४५ प्र श के लगभग है, से तो बहुत अधिक है, किन्तु तमिळ आदि कुछसे अपेक्षाकृत कम है।

तद्भव शब्दोकी दृष्टिसे तो स्थिति और भी अच्छी है। तत्सम शब्दोकी तुलनामे समान तद्भव शब्दोकी सख्या सभी भाषाओमें अधिक है। गुजराती, पजाबी, मराठी, बगला, उडिया आदि तो हिन्दी-प्रदेशकी सीमासे मिली हुई है, अत उनमे तो इनकी सख्या कई हजार होती है, साथ ही वे भाषाएँ, जो सीमासे दूर पडती है, उनमे भी सख्या बहुत छोटी नही है। कश्मीरी इस दृष्टिसे सुन्दर उदाहरण हो सकती है। यह हिन्दीसे बहुत दूरकी भाषा है। कुछ लोग तो इसे 'दरद' वर्गकी भी मानते है, साथ ही इसपर विदेशी प्रभाव भी हिन्दी आदिकी तुलनामे बहुत अधिक है, फिर भी पर्याप्त समान तद्भव शब्द इसमें है। कुछ उदाहरण देखे जा सकते है —

हिन्दी	**कश्मीरी**
अक्षर	अछ्र
अडा	अड
अधिकारी	अदिकारी
अनाज	अनाज
अनुभव	अनुवव
अन्न	अन
अभाव	अबाव
अभिमान	अविमान
अमावस	अमावश्या
अर्थ	अर्त

हिन्दी	कश्मीरी
अर्ध	अर्द
अस्थान	अस्थान
आँगन	आगन
आपदा	आपदा
उग्र	व्यग्र
उत्तर	वुत्तर
कलंक	कलंख
करोड़	क्रोर
कपट	कपठ

असमिया भी हिन्दीकी सीमावर्ती भाषा नही है किन्तु उसमें भी हिन्दीसे मिलते-जुलते तद्भव शब्दोंकी संख्या बहुत बड़ी है। कुछ उदाहरण देखे जा सकते है —

हिन्दी	असमिया
अंगीठी	अंमठा
अगहन	अघोन
अच्छा	आच्छा
अटूट	अटट
अत	अतर
अंधा	अंध
अपना	आपोन
अभागा	आभागा
अभागिन	अभागिनी
आगा	आगाग
आपदा	आपद
आसपास	आशपाश
उदास	उदासीन
कपास	कपाह
कछुआ	काछ

द्रविड परिवारकी भाषाओंमें भी तद्भव शब्द हिन्दीसे मिलते-जुलते हैं। इस श्रेणीके शब्द तेलुगु, कन्नड और मलयाळममें तो है ही तमिळमें भी है यद्यपि लोग प्राय इस दृष्टिसे उसे अलग रखते है। उदाहरणार्थ —

हिन्दी	तमिळ
अच्छा	अच्चा

हिन्दी	तमिळ
अधर्म	अदर्मम
अन्याय	अनियायम्
अशुद्धि	असुद्धि
आलस्य	आलसियम्
कगन	कगणम्
ककडी	ककरी
कच्चा	कच्चा
कत्था	कत्तै
गाडी	काडी, गाडी
चडाल	चडालन्
चाँद	चन्दिरन्

इस तरह हर भाषामे इस प्रकारके हजारो शब्द विद्यमान हैं।

हाँ, इस प्रसगमें एक वात अवश्य उल्लेख्य है। एक ही तत्सम शब्दसे निकले ऐसे भी तद्भव शब्द भारतीय भाषाओमे है, जो सामान्यतया पहचाने नही जाते। उदाहरणार्थ —

हिन्दी	अनुग्रह	तमिळ	अनुक्किरकम्	
,,	आश्रम	,,	आच्चिरमम्	
,,	टकसाल	,,	तगसालै	(टकशाला)
,,	महामाई	,,	मकामाई	(महामातृ)
,,	राज	,,	राच्चियम्	(राज्य)
,,	पछताबा	असमिया	पस्ता	(पश्चाताप)
,,	अचरज	कश्मीरी	आछर	(आश्चर्य)
,,	दूब	,,	दर्व	(दूर्वा)
,,	दरिद्र	,,	द्रोलिद	
,,	भौंरा	,,	वम्बुर	(भ्रमर)
,,	पद्रह	मराठी	पध्रा	
,,	पत्थर	,,	फत्तर	
,,	भूखा	उडिया	भोकी	

किन्तु ऐसे शब्दोको भी प्रसगानुसार पहचानना बहुत कठिन नही है। साथ ही इनकी सख्या बहुत बडी नही है।

तीसरे प्रकारके शब्द विदेशी है। भारतीय भाषाओमें विदेशी शब्द प्रमुखत अरबी, फारसी, तुर्की, पुर्तगाली तथा अँग्रेजीके है। इन शब्दोकी दृष्टिसे भी भारतीय भाषाओमें पर्याप्त एकता है, क्योकि प्राय एक ही प्रकारके शब्द उपयुक्त सभी भाषाओसे आए है। हिन्दीमें विदेशी शब्दोकी सख्या लगभग

१० हजार हैं। इसीके आसपास अन्य भाषाओंमें भी विदेशी शब्द होंगे और कुछ अपवादोंको छोड़कर ये शब्द भी प्रायः एक ही होंगे। हिन्दीको केन्द्र मानकर कुछ शब्द देखे जा सकते हैं —

हिन्दी	उड़िया
अंग्रेज	इंरेज
अंग्रेजी	इंरेजि
अमल	अमल
असल	असल
आखिर	आखर
आबादी	आबादि
आलपिन	आलपिन
आलमारी	आलमारि
काबू	काबु
किरासन	केरोसिन
रेल	रेल
रास्ता	रास्ता

हिन्दी	तमिळ
इनाम	इनाम
इलाका	इलाका
इस्तरी	इस्तिरी
कवायद	कवायतु
कारखाना	कारकाना
कुर्सी	कुरच्चि
खजाना	कजाना
आफिस	आपीस
स्टेशन	स्टेशन
होटल	हाटेल

हिन्दी	कश्मीरी
अंग्रेजी	अंग्रीजी
अदालत	अदालत
अर्ज	अर्ज
आग्गिर	आग्गिर

हिन्दी	कश्मीरी
आज़माइश	आजमोइश
इजलास	इजलास
इज्ज़त	यज़त
खातिर	खोतिर

देशज शब्द प्राय सभी भाषाओके अपने क्षेत्रीय होते है। इसी कारण उनमे अधिक समानता नही मिल सकती है। द्रविड भाषाओके अपने परम्परागत शब्द भी इसी प्रकार प्राय आर्य भाषाओसे भिन्न हैं।

उपर्युक्त बातोंके अतिरिक्त हिन्दीने अधिकाश आधुनिक भारतीय भाषाओंसे भी शब्द लिये हैं। जैसे दक्षिण भारतकी भाषाओंसे डोसा, इडली, पजाबीसे सिक्ख, खालसा, गुजरातीसे हडताल, श्रीखड, गरबा, तथा बगलासे उपन्यास, कविराज, रसगुल्ला, चमचम, सन्देश आदि। दूसरी ओर हिन्दी-भाषी जनता पर्याप्त सख्यामें प्राय भारतके सभी क्षेत्रोमें है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि अनेक हिन्दी शब्द आधुनिक भारतीय भाषाओमें घर कर गए हैं। उदाहरणार्थ कश्मीरीमें अड्डा, आरपार, उथल-पुथल, उडियामें बर्फी, पगडी, तथा असमियामे कचौडी आदि।

उपर्युक्त कारणोंसे हिन्दी तथा सभी प्रादेशिक भाषाओके शब्द-भडार में कुछ समानता रही है तथा है। भविष्यमें शब्द-समूहकी समानता और भी बढती जाएगी। इसका कारण यह है कि अभीतक भारतकी सभी भाषाएँ साहित्य, पत्र-व्यवहार तथा समाचार पत्र आदिकी भाषाएँ रही हैं, विज्ञान आदि तकनीकी विषयोकी नही। अब सभी प्रमुख भाषाएँ तकनीकी विषयोकी दृष्टिसे भी समृद्ध होने जा रही हैं। इसके लिए पारिभाषिक शब्दोकी आवश्यकता है। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय इस दिशामें तेजीसे काम कर रहा है और लगभग तीन लाख पारिभाषिक शब्द बनाए जा चुके हैं। इन शब्दोंके निर्माणमें इस बातका भी ध्यान रखा जा रहा है, कि शब्द ऐसे बनें जो न केवल हिन्दीमें अपितु सभी भारतीय भाषाओमे प्रयुक्त हो सके। इसी दृष्टिसे यदि कोई शब्द हिन्दीमें नही है, किन्तु किसी अन्य भारतीय भाषामें हैं, तो वह भारतकी इस सामान्य पारिभाषिक शब्दावलीके लिए अपनाया जा रहा है। इसका आशय यह हुआ कि निकट भविष्यमें तीन लाख समान शब्द भारतीय भाषाओमें आ जाएँगे। लगभग इतने ही और शब्द भविष्यमें बनेंगे और वे भी सभी भाषाओकी सामान्य सम्पत्ति हो जाएँगे। इस समय कोई भी भारतीय भाषा लाख-सवालाखसे अधिक शब्दोका प्रयोग नही कर रही है। यदि इन सबको मिला दिया जाय, तो ऐसा अनुमान लगाना अनुचित न होगा कि भविष्यमें सामान्य और पारिभाषिक दोनो ही प्रकारके शब्द, सामूहिक रूपमें सभी भारतीय भाषाओमें लगभग सात-सात लाख हो जाएँगे। इनमें छह लाख के लगभग शब्द, जो पारिभाषिक होगे, समान होगे ही, साथ ही समान तत्सम, समान तद्भव, समान विदेशी तथा आपसी लेन-देनके कारण सामान्य शब्दावलीके भी पर्याप्त शब्द समान होगे। इस समय भारतीय भाषाओमें, आर्य भाषाओमें, हिन्दीसे शब्द भडारकी समानता ५०% से ऊपर है। जहाँ तक आर्येतर या द्रविड भाषाओका सम्बन्ध है, यह समानता १५% के लगभग है। ६ लाख समान पारिभाषिक शब्दोंके आ जानेपर आर्यभाषाओमे यह समानता लगभग ९०% तथा अन्य भाषाओमें

लगभग ७ % हो जाएगी। इस प्रकार प्रादेशिक भाषाओंके सन्दर्भमें हिन्दीका शब्द-समूह पर्याप्त समानताएँ रखता है और भविष्यमें ये समानताएँ और भी बढ़ती जाएँगी जिसका परिणाम यह होगा कि एक तो राष्ट्रभाषा हिन्दी हर प्रादेशिक भाषा भाषीके लिए उतनी अपरिचित नहीं ज्ञात होगी जितनी कि आज ज्ञात होती है दूसरे भारतीय भाषाएँ समवेत रूपमें एक दूसरेके पर्याप्त निकट आ जाएँगी।

हिन्दीमे वैज्ञानिक साहित्य

डॉ शिवगोपाल मिश्र

हिन्दीमे वैज्ञानिक साहित्यका अभाव है, अत क्या देशवासी, क्या विदेशी सभी यह कहते सुने जाते है कि अभी हिन्दीमें वह क्षमता नही कि उसे वैज्ञानिक विषयोके पठन-पाठनके लिए सर्वथा उपयुक्त समझा जाय। बात सच है। और इसके दो कारण प्रतीत होते है—प्रथम तो हिन्दीमें प्राचीन वैज्ञानिक साहित्यका अभाव तथा दूसरे, हिन्दीमें उपयुक्त पारिभाषिक शब्दोकी न्यूनता तथा वैज्ञानिक विचारोको प्रकट करनेमें हिन्दीकी तथाकथित असमर्थता। इस प्रसगमें यह न भूल जाना चाहिए कि हिन्दीका विकास ही अत्यन्त अर्वाचीन है, अत उसमे प्राचीन वैज्ञानिक साहित्यकी खोज करना व्यर्थ है। हाँ, सस्कृत तथा अन्य भारतीय आर्य भाषाओकी वैज्ञानिक परम्पराका अवतरण जो पूर्णरूपसे हिन्दीमें अब तक हो जाना चाहिए था, वह अभी तक नही हो पाया, अत यदि हम आज जल्दी-जल्दी पारिभाषिक शब्द गढ भी ले तो उनको प्रचलित होनेमें काफी समय लग जाएगा।

ऐसी स्थितिमें यह आवश्यक है कि हिन्दीमे वैज्ञानिक साहित्यकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो और यह वृद्धि इस प्रकार नियन्त्रित हो कि न केवल स्कूलो या कालिजोमें छात्रोके वैज्ञानिक ज्ञानकी तृष्णा तृप्त हो वरन् अनुसधान एव शोधकी आवश्यकताओकी भी पूर्ति हो सके। ऐसी वृद्धि नए-नए लेखकोंके उदय, उनके द्वारा विविध विषयोपर मौलिक कृतियोके लेखन एव साहसी प्रकाशकोंके द्वारा उनके शीघ्र एव सस्ते प्रकाशन द्वारा ही सम्भव है। साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि नित्यप्रति उद्भूत नवीन साहित्य-की सूचना एव ठीक-ठीक जानकारी पाठको एव जनसाधारण तक सरलतासे पहुँच सके। आजकल ऐसे लक्ष्यकी पूर्तिके लिए प्रदर्शनियाँ अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई है। इनके द्वारा नवीन पुस्तकोका परिचय प्राप्त होता है और आलोचकोंके लिए उनमेंसे उत्तम पुस्तकोंके निर्देशनमें सहायता मिलती है।

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालयने आधुनिक हिन्दी साहित्यकी प्रगतिका मूल्याकन करनेके दृष्टिकोणसे अगस्त सन् १९५५ में हिन्दी पुस्तकोकी एक प्रदर्शनी आयोजित की थी। तभी राष्ट्रपतिने यह सुझाव दिया था कि आगे चलकर हिन्दीके वैज्ञानिक और प्राविधिक (टेकनिकल) साहित्यकी प्रदर्शनीका आयोजन शिक्षा मन्त्रालय करे। एतदर्थ ५ दिसम्बर सन् १९५७ को नई दिल्लीमें, "हिन्दीमें वैज्ञानिक तथा प्राविधिक

साहित्य' की प्रदर्शनी की गई जिसका उद्‌घाटन तत्कालीन राष्ट्रपतिने ही किया। हिन्दीमें वैज्ञानिक और प्राविधिक साहित्यकी यह प्रदर्शनी इस प्रकारके साहित्यके मूल्यांकन करनेकी प्रथम पीठिका थी। इसके लिए विविध विषयोंकी एवं प्रतिनिधि कृतियोंके रूपमें १ पुस्तकें चुनी गई थी। इन पुस्तकोंमें अधिकतर माध्यमिक और उच्चस्तर की पुस्तकोंको ही स्थान दिया गया था। ये पुस्तकें छह भागोंमें विभाजित की गई थी —

(१) भौतिक विज्ञान—इसमें गणित भौतिकी रसायन प्राणिशास्त्र वनस्पति विज्ञान आयुर्वेद आरोग्य शास्त्र आदिकी पुस्तकें थी। इंजीनियरी तथा विज्ञानके उत्तम सन्दर्भ ग्रन्थ भी इसीमें सम्मिलित किए गए थे।

(२) सामाजिक विज्ञान—इसमें अर्थशास्त्र नीतिशास्त्र समाजशास्त्र शिक्षाशास्त्र मानव-विज्ञान मनोविज्ञान कानून आदिकी कृतियाँ थी।

(३) सामान्य तथा सरल विज्ञान—जनसाधारणमें वैज्ञानिक विषयोंकी जानकारी फैलानेके लिए हिन्दीमें लिखी विभिन्न पुस्तकें थी।

(४) प्राविधिक विभाग—इसमें अत्यल्प पुस्तकें थी परन्तु वे उच्चस्तर की थी।

(५) ललित कला विभाग—यद्यपि अँग्रेजी तथा संस्कृतमें ललित कला सम्बन्धी साहित्य प्रचुर मात्रामें उपलब्ध है परन्तु हिन्दीमें ऐसा साहित्य स्वतन्त्रताके बाद ही लिखा गया।

(६) वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाएँ—इसमें विभिन्न विषयोंपर निकलनेवाली पत्रिकाएँ एवं पत्र थे।

उपरोक्त प्रकारका विभाजन अपेक्षासे अधिक उदार एवं विस्तृत है। हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य की परिचयात्मक विवेचनाके लिए निम्न लिखित वर्गोंपर विचार करना पर्याप्त होगा क्योंकि विज्ञानका समस्त क्षेत्र इनमें समा जाता है।

(१) पाठ्य पुस्तकें
- गणित सम्बन्धी
- भौतिकी सम्बन्धी
- रसायन सम्बन्धी
- वनस्पति तथा प्राणिशास्त्र सम्बन्धी
- धातु तथा खनिज सम्बन्धी
- कृषि तथा पशुपालन सम्बन्धी

(२) इंजीनियरी तथा यन्त्रकला
(३) औद्योगिक साहित्य
(४) ज्योतिष सम्बन्धी साहित्य
(५) इतिहास सम्बन्धी साहित्य
(६) जनोपयोगी अथवा ज्ञानवर्धक साहित्य
(७) पारिभाषिक कोष एवं विश्वकोष
(८) पत्र-पत्रिकाएँ

हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यका इतिहास

पिछले डेढ सौ वर्षोमें विज्ञानने अद्भुत उन्नति की है और अन्य राष्ट्र वहुत आगे वढ गए है, परन्तु हमारी राजनैतिक दासताने हमे इस दिशामे उन्नति करनेसे वचित रखा। हमारी शिक्षाका माध्यम एक विदेशी भाषा—अँग्रेजीको वनाया गया, जिसके फलस्वरूप हमारी भाषाओका स्वाभाविक विकास रुक गया। तेजीसे आगे वढते हुए मानव-ज्ञानके अनेक नए क्षेत्रोंसे ये भाषाएँ अछूती रह गई। स्वतन्त्र लेखकोको किसी प्रकारकी प्रेरणा और सहायता मिलना तो दूर रहा, साधारण पाठ्य पुस्तकोको भी इन भाषाओमें लिखना कठिन हो गया। किन्तु आश्चर्य ही समझें कि इतने व्यवधानोके होते हुए भी विभिन्न भारतीय भाषाओमे विज्ञान विषयक साहित्यके सृजनका स्तुत्य प्रयास होता ही रहा। जिससे सन् १८०० से १९०० ई के बीच लिखी गई रसायन, भौतिकी, वीज गणित, तथा वनस्पति शास्त्र विषयक अनेक पुस्तके प्राप्त हैं। इन पुस्तको-में भारतकी प्राचीन वैज्ञानिक परम्पराको जीवित रखने और तत्कालीन वैज्ञानिक प्रगतिके साथ शृखलावद्ध करनेका प्रयत्न मिलता है। बीसवी शताब्दीके आरम्भमे जिस भौतिक एव सास्कृतिक जागरणका नवोदय हुआ, उससे भारतीय भाषाओमें एक नवीन चेतना आई और इस शताब्दीके उत्तरार्द्ध तक हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओमें कई उच्च कोटिके मौलिक ग्रन्थोकी रचनाएँ हुईं।

सन् १९१५ तक जो उल्लेखनीय कार्य हिन्दीके क्षेत्रमे हुए, उनमे लक्ष्मीशकर मिश्रकी त्रिकोणमिति (सन् १८७३), सुधाकर द्विवेदीकी गणित (सन् १९१०) और ज्योतिषकी पुस्तके और श्री महेशचरनसिंह (सन् १९११-१२) की भौतिक एव रसायनके विभिन्न अगोकी पुस्तके थी। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित वैज्ञानिक शब्द कोष (सन् १९०६) अपनी कोटिका प्रथम प्रयास था। विज्ञान परिषद, प्रयाग, द्वारा 'विज्ञान' मासिक पत्रिकाका प्रकाशन सन् १९१४ ई में सर्वप्रथम प्रारम्भ हुआ। यह है हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यका प्रथम उत्थान।

हिन्दीमें वैज्ञानिक प्राविधिक साहित्यका जो द्वितीय उत्थान हुआ, उसमे अधिक उच्चस्तरकी रचनाएँ निकली। विज्ञानके क्षेत्रमें काम करनेवालो तथा शिक्षा सस्थाओसे सम्वन्धित अनेक विद्वानोने भारतीय भाषाओमें साहित्यकी रचना करनेके महत्त्वको समझा और अँग्रेजीसे सम्वन्ध होनेके कारण उसके समस्त वैज्ञानिक वाङ्मयका उन्होने पूरा-पूरा लाभ उठाया। हो सकता है कि इस कालकी भी रचनाएँ सामान्य कोटिकी सिद्ध हो, परन्तु हिन्दी-वैज्ञानिक साहित्यके विकासके इतिहासमें उनका विशिष्ट स्थान है।

सन् १९४७ में स्वतन्त्रता-प्राप्तिके साथ ही हिन्दीमे वैज्ञानिक साहित्यकी अधिक वृद्धि हुई। हिन्दी राष्ट्रभाषा घोषित हुई। सरकारी तथा गैर सरकारी सस्थाएँ वैज्ञानिक साहित्यके निर्माणकी योजनाएँ वनाने लगी। कही-कही तो शिक्षाका माध्यम हिन्दी हो जानेसे इस कार्यमे और सुविधा हुई। शिक्षा पाठ्यक्रमोकी आवश्यकता-पूर्तिके लिए अनेक अधिकारी विद्वान् और कई सस्थाएँ वैज्ञानिक साहित्यके सृजनमें लग गईं। पाठ्यपुस्तकोके साथ ही सामान्य विज्ञान और उच्चस्तरीय वैज्ञानिक विषयोकी पुस्तके भी लिखी गईं जिससे विज्ञानकी मौलिक रचनाओमें दिन प्रतिदिन अभिवृद्धि हुई।

हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यकी रचनाओको प्रोत्साहित करनेके लिए केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार तथा कई सस्थाओने पुरस्कार योजनाएँ चालू की है। इन योजनाओने गत १५ वर्षोमें अनेक लेखको और

प्रकाशकोंको प्रोत्साहित किया है जिससे हिन्दीमें अधिकाधिक वैज्ञानिक साहित्यका निर्माण सम्भव हो सका है। अभी हाल ही में (सन् १९५९ से) विज्ञान परिषद् प्रयागकी ओरसे वैज्ञानिक विषयोंपर लिखी उत्तम कृतियोंपर २०० रुपयेका स्वामी 'हरिशरणानन्द पुरस्कार' चालू किया गया है। यह विज्ञानमें प्रदत्त पुरस्कारोंमें सबसे अधिक मूल्यका है।

व्यक्तियों और संस्थाओंको वैज्ञानिक कोष, विश्वकोष, सन्दर्भ ग्रन्थ तथा विशिष्ट विषयोंपर मौलिक पुस्तक तैयार करनेके लिए सरकारकी ओरसे जो भी वित्तीय सहायता एवं अनुदान दिये गए उनका भी परिणाम उत्साह-जनक रहा है। मौलिक रचनाओंके साथ-साथ अनेक योरोपीय भाषाओंकी सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक कृतियोंका अनुवाद भी तीव्र गतिसे हो रहा है।

पारिभाषिक शब्दावलीका निर्माण-कार्य भी हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यकी सृष्टिके लिए अमूल्य कदम है। सन् १९५ में शिक्षा मन्त्रालयने वैज्ञानिक शब्दावली बोर्डकी स्थापना की। इसमें चुने हुए वैज्ञानिक एवं शिक्षाविद् हैं। इसके निर्देशानुसार कुछ ही वर्षोंमें विज्ञानकी अनेक शाखाओंकी पारिभाषिक शब्दावली तैयार हुई है जिसके फलस्वरूप पाठ्य पुस्तकोंकी वैज्ञानिक भाषामें एक रूपता लानेमें काफी सहायता मिली है। हर्षका विषय है कि उत्तर प्रदेशके इंटरमीडियेट बोर्डने यह घोषणा की है कि पाठ्यक्रमके लिए वे ही पुस्तकें चुनी जाएँगी जिनमें भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली व्यवहृत होगी। इससे लेखक शिक्षक एवं परीक्षक समान रूपसे एक ही शब्दावलीका प्रयोग करनेके लिए बाध्य हुए हैं और ऐसा वातावरण बन गया है कि विश्वविद्यालयोंमें प्रवेश करनेके पूर्व विज्ञानके सभी छात्र समान रीतिसे वैज्ञानिक हिन्दी शब्दावलीसे परिचित एवं भिज्ञ होते हैं। परन्तु खेदका विषय है कि भारतीय सरकार द्वारा नियुक्त विशेषज्ञोंकी समितियाँ अभीतक स्नातकोत्तर कक्षाओंके लिए उपयोगी शब्दावलीका निर्माण नहीं कर पाईं। यहाँतक कि कुछ विषयोंकी समितियां द्वारा इन्टरकी परीक्षाओं तकके लिए भी आवश्यक शब्दावलीका निर्माण नहीं हो सका। इन समितियोंमेंसे गणित एवं रसायनकी समितियोंने सर्वाधिक कार्य किया है जिससे उच्चतर स्तरकी पाठ्यपुस्तकें लिखनेके लिए शब्दावली उपलब्ध है।

सन्तोषजनक पारिभाषिक शब्दावलीके अभावमें लेखकोंको या तो निराश होना पड़ता है या अपनी रुचिके शब्द गढ़ने पड़ते हैं। यद्यपि विभिन्न वैज्ञानिक विषयोंपर पारिभाषिक कोषोंके सम्पादन हुए हैं, परन्तु एक साथ समस्त आवश्यकताओंकी पूर्ति यदि किसी एक कोष द्वारा होती है तो वह डॉ रघुवीरका 'अंग्रेजी-हिन्दी कोष' है। एक ओर जहाँ इसमें सभी शब्दोंके समानार्थी हिन्दी शब्द मिल सकते हैं वहीं उनकी दुरूहता उन्हें सर्वग्राह्य नहीं बना पाई। फल यह हुआ है कि जिन लेखकोंने राष्ट्रभाषा हिन्दीमें वैज्ञानिक विषयोंपर उच्चस्तरीय कृतियाँ लिखी हैं और इस कोषके पारिभाषिक शब्दोंको ग्रहण किया है वे आज कुतूहल एवं आलोचनाका विषय बन गई हैं। परन्तु यहाँ यह संकेत कर देना प्रसमानुकूल ही होगा कि डॉ रघुवीरके कोषके प्रति हमें अनुदार नहीं होना चाहिए वरन् आवश्यकताके समय शब्द ग्रहण करनेमें संकोच नहीं करना चाहिए। विशेषतः जीव-विज्ञानके क्षेत्रमें प्रयुक्त शब्दावलीके लिए यह सर्वश्रेष्ठ कोष है।

अब तो केन्द्रीय एवं प्रादेशिक सरकारोंने कुछ प्रकाशन-कार्य भी अपने हाथोंमें लिया है। विभिन्न वैज्ञानिक विषयोंपर उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्मित हिन्दी समितिने पुस्तकें लिखवाई हैं जिनको प्रकाशन शाखा द्वारा प्रकाशित किया गया है। ये पुस्तकें मौलिक एवं अनूदित दोनों श्रेणियों की हैं। साथ ही साथ

विषय-पुस्तकका नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	मूल्य
कार्बनिक रसायन	सत्यप्रकाश	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९२८	२–५०
गणात्मक विश्लेषण	रामशरणदास	गुरुकुल कागडी	१९१९	२–५०
औद्योगिक				
क्षार निर्माण विज्ञान	हरिशरणानन्द	आयुर्वेदिक फार्मेसी, अमृतसर	१९२७	०–५०
कृत्रिम काष्ठ	गगाशकर पचौली	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९२०	०–१२
चर्म वनानेके सिद्धान्त	देवदत्त अरेडा,	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग	१९३०	३–००
तेलकी पुस्तक	लक्ष्मीचन्द्र	विज्ञान हुनर माला आफिस, बनारस	१९१७	१–००
फल सरक्षण	गोरखप्रसाद ,,	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९३७	१–००
फोटोग्राफी	गोरखप्रसाद ,,	इण्डियन प्रेस, प्रयाग	१९३१	७–००
नारियलके रेशेका उद्योग		मारवाडी महासभा, कलकत्ता		०–५०
भारतीय चीनी मिट्टियाँ	मनोहरलाल मिश्र	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९४१	१–५०
गणित				
लीलावती		लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	१९०९	
अकगणित, प्रथम भाग	यादवचन्द्र चक्रवर्ती	पी सी द्वादस श्रेणी, अलीगढ	१९००	०–१५
सुलभ वीज गणित	कुज विहारीलाल	गवर्नमेंट प्रेस, प्रयाग	१८७५	०–३१
बीजगणित	लाला सीताराम	कौशल किशोर, मुरादाबाद,	१९०७	१–००
हिन्दुस्तानी माप विद्या	रामनाथ चटर्जी	इण्डियन प्रेस प्रयाग		०–५०
पैमाइश	नन्दलाल मुरलीधर	रामदयाल अग्रवाल, प्रयाग	१९२७	१–००
गणितका इतिहास	सुधाकर द्विवेदी	सस्कृत कालेज, बनारस	१९०२	२–००
गति विद्या	लक्ष्मीशकर मिश्र	इस्पेक्टर आफ स्कूल, वनारस	१८८५	०–७५
चलनकलन	सुधाकर द्विवेदी	सस्कृत कालेज, बनारस		
बीज ज्यामिति	सत्यप्रकाश	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९३१	१–२५
ज्योतिष				
आकाशकी सैर	गोरखप्रसाद	इण्डियन प्रेस, प्रयाग	१९३६	००–७५
कालवोध	शिवकुमारसिंह	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	१८९५	
ज्योतिर्विनोद	सम्पूर्णानन्द	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	१९१७	१–२५
सूर्य सिद्धान्त	इन्द्र नारायण द्विवेदी	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	१९१८	१–००
सूर्य सिद्धात (विज्ञानभाष्य)	महावीरप्रसाद श्रीवास्तव	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९२४–३४	५–५०
सौर परिवार	गोरखप्रसाद	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग	१९३१	१२–००

एण्ड कम्पनी हिन्दी समिति देहाती पुस्तक भण्डार किताब महल आदि प्रमुख प्रकाशक एवं प्रकाशन संस्थाएँ हैं जिनके द्वारा उच्चतर प्रामाणिक वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित किया जा रहा है।

स्वतन्त्रताके पूर्वका वैज्ञानिक साहित्य

यदि हम १९४७ के पूर्वके हिन्दीमें प्रकाशित वैज्ञानिक साहित्यपर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि तबतक मुख्यतः सामान्य पाठ्य-पुस्तका भी ही रचना हो पाई थी। क्या भौतिक रसायन गणित कृषि वनस्पति या जीवनशास्त्र क्या वैद्यक ज्योतिष अथवा सामान्य विज्ञान इन सभी विषयोंके लेखक अपने चिन्तनकी प्रारम्भिक अवस्थामें प्रतीत होते हैं उन सबोंकी शैलियाँ विभिन्न होनेपर भी विषयको बोधगम्य नहीं बना पाती और उनके द्वारा प्रयुक्त अधिकांश शब्द मात्र हास्यास्पद प्रतीत होते हैं। परन्तु इस अधिक लेखन एव प्रकाशनसे वैज्ञानिक क्षेत्रमें हिन्दीका प्रवेश निश्चित रूपसे हो गया और अधिकाधिक पुस्तकोंकी आवश्यकता हुई। परिचयके लिए नीचे विभिन्न विषयोंपर प्राप्त कुछ पुस्तकोंके नाम उनके प्रकाशक प्रकाशन तिथि एव मूल्यो सहित दिये जा रहे हैं। विवरणके लिए विज्ञान के भाग ४८ दिसम्बर १९१८ के अकको देखा जा सकता है।

स्वतन्त्रता प्राप्तिसे पूर्व हिन्दीका वैज्ञानिक साहित्य

विषय-पुस्तकका नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	मूल्य
भौतिकी				
चुम्बक	सालगराम भार्गव	विज्ञान परिषद प्रयाग	१९१७	०—१०
ताप	प्रेमवल्लभ जोशी	विज्ञान परिषद प्रयाग	१९२१	०—१७
प्रारम्भिक भौतिक विज्ञान	निहाल करण सेठी	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय	१९१	
भौतिकी	गोवर्धन	गुरुकुल कांगड़ी	१९१	०—४
विद्युत् शास्त्र भाग १	महेशचरण सिंह	गरुकुल कांगड़ी	१९१२	
वैज्ञानिक परिमाण	सत्यप्रकाश निहाल करण सेठी	विज्ञान परिषद	१९२८	१—२
रसायन				
रसायन शास्त्र	महेशचरण सिंह	इण्डियन प्रेस प्रयाग	१९ ९	१—४
रसायन सग्रह	विश्वम्भरनाथ वर्मा	बड़ा बाजार कलकत्ता	१८९६	
हिन्दी केमिस्ट्री	लक्ष्मीचन्द्र	विज्ञान हुनर माला आफिस काशी	१९१०	१—०
रसायन प्रकाश प्रश्नोत्तर		आगरा स्कूल बुक सोसायटी	१८४७	
मनोरंजक रसायन	गोपाल स्वरूप भार्गव	विज्ञान परिषद प्रयाग	१९२१	१—१
साधारण रसायन (भाग २)	फूलदेव सहाय वर्मा	हिन्दी विश्वविद्यालय काशी	१९३२	
प्रारम्भिक रसायन	अमीचन्द्र विद्यालंकार	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग	१९२८	१—

विषय-पुस्तकका नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	मूल्य
कार्बनिक रसायन	सत्यप्रकाश	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९२८	२—५०
गणात्मक विश्लेषण	रामशरणदास	गुरुकुल कागडी	१९१९	२—५०
औद्योगिक				
क्षार निर्माण विज्ञान	हरिशरणानन्द	आयुर्वेदिक फार्मेसी, अमृतसर	१९२७	०—५०
कृत्रिम काष्ठ	गगाशकर पचौली	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९२०	०—१२
चर्म बनानेके सिद्धान्त	देवदत्त अरेडा,	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग	१९३०	३—००
तेलकी पुस्तक	लक्ष्मीचन्द्र	विज्ञान हुनर माला आफिस, बनारस	१९१७	१—००
फल सरक्षण	गोरखप्रसाद ,,	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९३७	१—००
फोटोग्राफी	गोरखप्रसाद ,,	इण्डियन प्रेस, प्रयाग	१९३१	७—००
नारियलके रेशेका उद्योग		मारवाडी महासभा, कलकत्ता		०—५०
भारतीय चीनी मिट्टियाँ	मनोहरलाल मिश्र	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९४१	१—५०
गणित				
लीलावती		लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	१९०९	
अकगणित, प्रथम भाग	यादवचन्द्र चक्रवर्ती	पी सी द्वादस श्रेणी, अलीगढ	१९००	०—१५
सुलभ बीज गणित	कुज बिहारीलाल	गवर्नमेंट प्रेस, प्रयाग	१८७५	०—३१
बीजगणित	लाला सीताराम	कौशल किशोर, मुरादाबाद,	१९०७	१—००
हिन्दुस्तानी माप विद्या	रामनाथ चटर्जी	इण्डियन प्रेस प्रयाग		०—५०
पैमाइश	नन्दलाल मुरलीधर	रामदयाल अग्रवाल, प्रयाग	१९२७	१—००
गणितका इतिहास	सुधाकर द्विवेदी	सस्कृत कालेज, बनारस	१९०२	२—००
गति विद्या	लक्ष्मीशकर मिश्र	इस्पेक्टर आफ स्कूल, बनारस	१८८५	०—७५
चलनकलन	सुधाकर द्विवेदी	सस्कृत कालेज, बनारस		
बीज ज्यामिति	सत्यप्रकाश	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९३१	१—२५
ज्योतिष				
आकाशकी सैर	गोरखप्रसाद	इण्डियन प्रेस, प्रयाग	१९३६	००—७५
कालबोध	शिवकुमारसिंह	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	१८९५	
ज्योतिर्विनोद	सम्पूर्णानन्द	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	१९१७	१—२५
सूर्य सिद्धान्त	इन्द्र नारायण द्विवेदी	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	१९१८	१—००
सूर्य सिद्धात (विज्ञानभाष्य)	महावीरप्रसाद श्रीवास्तव	विज्ञान परिषद, प्रयाग	१९२४—३४	५—५०
सौर परिवार	गोरखप्रसाद	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग	१९३१	१२—००

विषय-पुस्तकका नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	मूल्य
सामान्य विज्ञान				
वायु पर विजय	जगपति चतुर्वेदी	रामदयाल अग्रवाल, प्रयाग	१९३१	१–००
विज्ञान वार्ता	महावीरप्रसाद द्विवेदी	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ	१९३०	१–३७
विज्ञान हस्तामलक	रामदास गौड	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग	१९३६	६–५०
सृष्टिकी कथा	सत्यप्रकाश	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	१९३७	१–००
वायुयान	जगपति चतुर्वेदी	आदर्श ग्रन्थमाला, दारागज, प्रयाग	१८३४	०–७५
आविष्कारकी कहानियाँ	जगपति चतुर्वेदी	भारतीय पब्लिशर्स,पटना		०–७५
भारतीय वैज्ञानिक	श्यामनारायण कपूर	साहित्य निकेतन कानपुर	१९४२	३–००

स्वतन्त्रता परवर्ती हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य

सन् १९४७ के पश्चात् हिन्दीमें जो वैज्ञानिक साहित्य रचा गया उसकी कुछ विशेषताएँ है—यथा उच्चकोटिके लेखको हिन्दीमें पदार्पण, भाषा एव शैलीमें सुस्पष्टता एव प्रवाह तथा सामान्य स्तरकी पुस्तकोंके साथ ही उच्चस्तरीय मौलिक एव अनूदित पुस्तकोका लेखन। प्रकाशकोने इस कालके पश्चात् जितनी भी पुस्तके प्रकाशित की वे उनके बाह्य आवरण आकर्षक एव सुसज्जित तथा उनके मूल्य अधिक एव उनके आकार वृहत् है। ऐसा होनेसे वैज्ञानिक विषयोको चित्रोंसे युक्त करनेमें सफलता मिली है। आज ऐसी अनेक पुस्तके है जो विदेशी वैज्ञानिक पुस्तकोसे सरलतापूर्वक होड कर सकती है। यद्यपि ऐसी मँहगी कृतियोको खरीद पाना हिन्दीके पाठकोंके लिए सहज नही है परन्तु वे अनेकानेक पुस्तकालयोमें अवश्य खरीदी जाती हैं। इसमें सन्देह नही कि हम हिन्दीमें लिखी पुस्तकोपर अधिक खर्च नही करना चाहते अन्यथा हमारे देशमें प्रकाशित अनेक वैज्ञानिक कृतियाँ अँग्रेजी मे प्रकाशित उन्ही विषयोकी कृतियोसे कही अधिक सस्ती है। हिन्दीके प्रचार एव प्रसारके लिए आवश्यक है कि उसके पाठक अधिक पैसे खर्च करके अपनी राष्ट्रभाषाका सम्मान करना सीखें।

नीचे विज्ञानके विविध अगोपर १९४७ के पश्चात्से प्रकाशित पुस्तकोकी सूची, उनके लेखको एव प्रकाशकोंके नाम, प्रकाशन तिथि, पृष्ठ सख्या एव मूल्य दिये जा रहे हैं जिससे पाठकोको यह अनुमान हो जाएगा कि किस तीव्र गतिसे हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य रचा जा रहा है। प्रत्येक वर्षकी नवीनतम पुस्तकोंसे परिचित होनेके लिए सर्वश्रेष्ठ साधन है उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा प्रदान किये जानेवाले पुरस्कार। यदि ध्यानसे देखा जाय तो पता चलेगा कि दिन प्रति दिन वैज्ञानिक साहित्यमें वृद्धि हो रही है और पुरस्कृत लेखको-की कृतियोकी सख्या अधिक होती रही है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रदत्त मगलाप्रसाद पारितोषिक वैज्ञानिक कृतियोपर भी दिया जाता है। विहार राष्ट्रभाषा परिषदने भी ऐसा ही आयोजन किया है। विज्ञान परिषद द्वारा स्वामी हरिशरणानन्द पुरस्कारोकी योजना प्रतिवर्ष नवीन लेखकोको प्रतियोगितामे भाग लेनेका सुनहला अवसर प्रदान करती है। तात्पर्य यह कि हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यके लेखनके लिए प्रचुर प्रोत्साहन मिलता रहा है। कुछ वर्षोंसे उत्तर-प्रदेशकी हिन्दी समितिने विज्ञानके विविध विषयोपर मूर्धन्य

स्वकोर कृतियाँ लिखानेकी एक योजना बनाई है जिसके फलस्वरूप अनेक प्रामाणिक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं और कुछ लिखी जा रही हैं।

हम विविध विषयोंकी पुस्तक सूचियाँ देते हुए उन विषयोंमें जो उल्लेखनीय प्रयास हुए हैं उनका इंगित मात्र करेंगे क्योंकि प्रत्येक पुस्तकके सम्बन्धमें पृथकसे विचार प्रकट करना असम्भवसा है।

१ (क) गणित—जैसा कि इसके पूर्व हम देख चुके हैं स्वतन्त्रता प्राप्तिके पूर्व गणितमें प्रारम्भिक साहित्यकी रचना हुई। परन्तु बादमें कुछ विशिष्ट प्रयास हुए। हिन्दी साहित्य सम्मेलनने इंटर कक्षाओंके शिक्षणके लिए गणितकी पुस्तकोंकी एक योजना बनाई थी। इसके अन्तर्गत डा बी पी पुष्कका गति विज्ञान डा हरिश्चन्द्र गुप्तका चलराशि कलन और डा ब्रजमोहनकी ठोस ज्यामिति प्रकाशित हुई। गया प्रसाद एण्ड सन्सने डा ब्रजबासीलालकी तीन पुस्तकें— प्रारम्भिक गति विज्ञान आधुनिक स्थिति विज्ञान तथा 'प्रारम्भिक चलनकलन और हरस्वरूप शर्माकी 'घन ज्यामिति' नियामक ज्यामिति और समतल त्रिकोणमिति प्रकाशित की। हिन्दी प्रकाशन मण्डल काशीने डा ब्रजमोहन कृत नियामक ज्यामिति (२ भाग) एवं 'इंटरमीडियट बीज गणित प्रश्नोत्तर' तथा श्री कमल मोहन द्वारा लिखित 'ठोस रेखा गणित' प्रकाशित किया। लाला रामदयाल अग्रवालने डा प्यारेलाल श्रीवास्तव तथा रामसिंह कृत चलन कलन प्रकाशित किया। लोनीकी प्रसिद्ध पुस्तकोंके हिन्दी अनुवाद— नियामक ज्यामिति वैश्लेषिक त्रिकोणमिति 'स्थिति विज्ञान' तथा 'गति विज्ञान'—मैकमिलन एण्ड कम्पनी द्वारा प्रकाशित हुए। इसीने हाल तथा नाइटके हायर अलजबराका हिन्दी अनुवाद— उच्चतर बीज गणित भी प्रकाशित किया। पोथीशाला लिमिटेडसे डा गोरख प्रसादकी दो पुस्तकें प्रकाशित हुई—(१) प्रारम्भिक अवकल समीकरण तथा (२) 'सरल गणित ज्योतिष'। इनमेंसे अधिकांश पुस्तकें इण्टर तक की कक्षाओंके लिए हैं। विश्वविद्यालयोंमें बी एस सी कक्षामें गणितके अन्तर्गत ९ विषय पढ़ाये जाते हैं जिनके लिए कमसे कम एक एक पुस्तककी आवश्यकता होती है। अंग्रेजीमें इनमेंसे प्रत्येक विषयपर दर्जनों पुस्तकें मिलेंगी परन्तु हिन्दीमें अभीतक केवल तीन विषयोंपर केवल एक एक पुस्तक लिखी जा सकी है। ये हैं डा हरिश्चन्द्र गुप्त कृत चलराशि कलन तथा गोरख प्रसाद कृत अवकल समीकरण जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। डा बी एन प्रसाद कृत अंग्रेजी पुस्तक हाइड्रोस्टैटिक्स का अब हिन्दी अनुवाद भी प्राप्त है।

हिन्दू गणित शास्त्रका इतिहास नामक नवीन कृति प्रकाशनब्यूरो उत्तर प्रदेश (लखनऊ) प्रकाशित हुई है जिसमें २१४ पृष्ठ हैं और मूल्य ३ रु है। गणितके चमत्कार रा र गाडिलकर कृत है जिसका मूल्य ४ रु है। डा ब्रजमोहनका गणितीय कोष ६८९ पृष्ठोंका है जिसका मूल्य ९ रु है। यह अपनी कोटिका विशिष्ट ग्रन्थ है। इस प्रकार गणितके क्षेत्रमें उच्चस्तरीय साहित्यका सर्वथा अभावसा है।

१ (ख) भौतिकी—पाठ्य पुस्तकोंके अतिरिक्त प्रायः १ दर्जन ऐसी पुस्तकें प्राप्त हैं जो महत्त्वपूर्ण हैं। इनमेंसे निहालकरण सेठी कृत चुम्बकत्व और विद्युत पर जिस वर्ष उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा १२ रु का पुरस्कार भी प्रदत्त हुआ है। प्रकाशन शाखा सूचना विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित ४ पुस्तकें उल्लेख्य की हैं जिनमेंसे ३ अनुवादके रूपमें हैं। पाठ्यपुस्तकोंमेंसे स्टूडेन्ट्स फ्रेंड्स प्रयाग द्वारा प्रकाशित डा० भगवान सिंह कृत भौतिक विज्ञान प्रवेशिका एवं प्रायोगिक भौतिक विज्ञान प्रमुख हैं जो इण्टरमीडियेट कक्षाओंके लिए उपयुक्त हैं। बी एस सी कक्षाओंके लिए भौतिक शास्त्रमें ताप प्रकाश ध्वनि विद्युत

तथा चुम्वकत्व इन पांच विपयोपर पुस्तके चाहिए परन्तु प्रकाश एव विद्युत् तथा चुम्वकत्वपर ही डा० निहाल करण सेठीकी पुस्तके—'प्रकाश विज्ञान' एस चाँद एण्ड कम्पनी दिल्ली' तथा 'चुम्वकत्व और विद्युत्' (हिन्दुस्तानी एकेडेमी) प्राप्त है। अभी तक स्नातक कक्षाओकी भी पूर्ति नही हो पाई अत तमाम ग्रन्थोंके लिखे जानेकी आवश्यकता है।

भौतिकीपर पुस्तकें

	नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	पृष्ठ	मूल्य
१	चुम्वकत्व और विद्युत्	डा निहालकरण सेठी	हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग		७४९	१६–००
२	शक्ति (वर्तमान और	मूललेखक शेरडट टेलर अनु० सत्यप्रकाश गोयल	प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश	१९६०	१२२	४–००
३	भौतिक विज्ञानमें क्राति	मूललेखक लुई दे ब्रोगली अनु० निहालकरण सेठी	,, ,,	१९६०	३२४	४–५०
४	आपेक्षिकताका अभिप्राय	निहालकरण सेठी तथा डी आर भवालकर	,, ,,	१९६०	१७४	४–००
५	इलेक्ट्रान विवर्तन	अनु० दयालाल खडेलवाल	,, ,,	१९६०	११८	२–५०
६	प्रकाश विज्ञान	निहालकरण सेठी	एस चाँद एण्ड कम्पनी, लखनऊ		५४६	१०–००
७	परमाणु शक्ति	भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव	ज्ञानमडल पुस्तक भडार लिमिटेड, काशी		१०२	२–००
८	एटम (हमारे जीवनमें)	अनुवादक—वालकृष्ण	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली		१७९	३–००
९	भौतिक विज्ञान प्रवेशिका (१)	नन्दलालसिंह	स्टूडेंट्स, फ्रेंड्स, प्रयाग		७६१	७–००
१०	हाइस्कूल भौतिकी	अरबिन्दमोहन श्रीवास्तव	पोथीशाला लि प्रयाग	१९५८	३३२	३–५०
११	विजलीकी लीला	जगपति चतुर्वेदी	किताव महल, इलाहावाद	१९५१	१६८	१–००

१ (ग) **रसायन**—हाईस्कूल और इटरमीडियेट कक्षाओके लिये उपयोगी पुस्तकोकी सूची वहुत वडी है किन्तु अधिकाश डा० रघुबीरकी शब्दावली प्रयुक्त होनेके कारण प्रचलित न हो सकी। केवल कतिपय लेखकोकी ही रचनाएँ सर्वप्रिय हो पाई। इनमेंसे डा० सत्यप्रकाशकी सामान्य रसायन कार्वनिक रसायन तथा 'प्रायोगिक रसायन' (स्टुडेण्ट्स फ्रेडस, प्रयाग), डा० सन्तप्रसाद टण्डनकी प्रारम्भिक कार्वनि रसायन (इण्डियन प्रेस, प्रयाग) तथा डा० रामदास तिवारी कृत कार्वनिक रसायन (महेश एण्ड कम्पनी, आगरा) प्रमुख है। बी एस सी कक्षाओमें तीन विषयोंके लिए पुस्तके चाहिए—कार्वनिक, अकार्वनिक तथा भौतिक रसायन किन्तु इनमेंसे केवल दो चार पुस्तके उपलब्ध है। कार्वनिक रसायनपर हिन्दीमें कोई पुस्तक ही नही है। अकार्वनिक रसायनमें डा० सत्यप्रकाश कृत सामान्य 'रसायन शास्त्र' (भारती भडार प्रयाग) तथा श्रीप्रकाश कृत अकार्वनिक रसायन एव भौतिक रसायनपर डा रामचरण मेहरोत्राकी

भौतिक रसायनकी रूप रेखा (प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग) नामक पुस्तकें हैं। प्रयोगात्मक रसायन जो अकार्बनिक रसायनका अंग है पर डा कृष्णबहादुरकी वैश्लेषिक रसायन (पोथी शाला प्रयाग) प्राप्त है। इधर हालहीमें भारतमें रसायन शास्त्रके विकासपर डा सत्यप्रकाशकी पुस्तक प्रकाशित हुई है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

रसायनशास्त्र पर पुस्तकें

	नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	पृष्ठ	मूल्य
१	भौतिक रसायनकी रूपरेखा	डा रामचरण मेहरोत्रा	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग	१९५४	४२	७–१०
२	कार्बनिक रसायन	डा सत्यप्रकाश	स्टुडेण्ट फ्रेण्डस प्रयाग	१९५४	४१४	४–०
३	रसायन दीपिका	डा सत्यप्रकाश	एस चाँद एण्ड कम्पनी दिल्ली	१९६०	२५९	५–७५
४	कार्बनिक रसायन	पी एस सोनी	"	१९५८	३९९	५–५
५	कार्बनिक रसायन	बी एस मिश्रा	सेन्ट्रल बुक डिपो प्रयाग	१९५७	४१८	४–५
६	माध्यमिक रसायन	इन्द्रदेव सिंह आर्य तथा अन्य	नागपुर विश्वविद्यालय	१९५	७६४	७–१०
७	प्रारम्भिक कार्बनिक रसायन	डा सन्तप्रसाद टण्डन	इण्डियन प्रेस प्रयाग	१९५१	४२५	५–०
८.	वैश्लेषिक रसायन	डा कृष्णबहादुर	पोथीशाला लि प्रयाग	१९५५	२२८	४–०
९.	अकार्बनिक रसायनकी रूपरेखा	श्री प्रकाश तथा हीरालाल निगम	गौतम ब्रदर्स कानपुर	×	५८	७–०
१	माध्यमिक कार्बनिक रसायन	सिगुरन तथा अग्निहोत्री	"	१९५९	४२९	४–०
११	अकार्बनिक रसायन	कैलाश बिहारी प्रसाद	अशोक प्रेस पटना	१९४९	२२२	३–५
१२	रासायनिक तत्त्व	गोरखप्रसाद श्रीवास्तव	हिन्दी प्रकाशन मण्डल काशी	१९४९	२८९	६–००
१३	धातुओंकी कहानी	धर्मेन्द्रकुमार कावरिया	राजकमल प्रकाशन दिल्ली	१९५८	१११	२–०

१ (घ) वनस्पति शास्त्र—वनस्पति शास्त्र पर अभीतक हाईस्कूल एवं इण्टरमीडिएट परीक्षाओंके लिए ही उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो पाई हैं। बी एस सी के लिए कोई भी पुस्तक उपलब्ध नहीं है। कालेजके लिए वनस्पति शास्त्रपर पुस्तक लेखकोंमें धर्मनारायण और श्री विद्यार्थी तथा ए सी दत्त प्रमुख हैं। मराठी एवं नागरकी सुप्रसिद्ध पुस्तकका अनुवाद इस दिशामें एक विशिष्ट कार्य है।

वनस्पतिशास्त्रपर पुस्तकें

	नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	पृष्ठ	मूल्य
१	वनस्पति शास्त्र, भा २	आर डी विद्यार्थी	इण्डियन प्रेस, प्रयाग	१९५४	३३०	४–००
२	वनस्पति शास्त्र	डा धर्मनारायण	किताव महल प्रकाशन	१९५४	३७९	६–००
३	वनस्पति विज्ञान	आर डी विद्यार्थी	श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा	१९५७	२६३	२–५०
४	वनस्पति शास्त्र	आर डी विद्यार्थी तथा ए सी सहगल	इण्डियन प्रेस, प्रयाग	१९५७	४६४	६–००
५	वनस्पति शास्त्र	विजयभूषण भटनागर	नवयुग प्रकाशन, मुजफ्फरनगर	१९५६	४०४	७–००
६	माध्यमिक वनस्पति विज्ञान	कन्हैयालाल और अन्य	ओरियन्टल पब्लिशर लिमिटेड, आगरा	१९५५	७१९	१०–००
७	जीव विज्ञानकी भूमिका (२) वनस्पति विज्ञान	कृष्णमोहन गुप्त	भारतेन्दु पुस्तक मन्दिर, बनारस	१९५७	३०१	२–५०
८	माध्यमिक वनस्पति विज्ञान	एम एन गुप्त	गुप्ता पब्लिशिंग हाउस, आगरा	१९५९	४१०	१०–००
९	जीव विज्ञानकी रूपरेखा (२) वनस्पति विज्ञान	महेशनारायण माथुर व इन्द्रमोहन लमगोडा	इण्डिस्ट्रियल एण्ड कमर्शियल सर्विस, ह्वीवेट रोड, इलाहाबाद	×	२२०	२–५०
१०	वनस्पति शास्त्रकी पाठ्यपुस्तक	मूल लेखक–जे एन लायन तथा बीरबल साहनी अनु० देवेन्द्रकुमार वेदालकार	एस चाँद एण्ड कम्पनी, फव्वारा, दिल्ली	१९५५	६३०	१०–५०
११	अशोक	रामेश बेदी	गुरुकुल कागडी, हरिद्वार	१९५९	५९	१–००

१ (ङ) **प्राणिशास्त्र**—हाइस्कूल एव इण्टरके उपयुक्त पाठ्य पुस्तकोमें ए पी सिंहकी जीव विज्ञान, डा० उमाशकर श्रीवास्तवकी 'आधुनिक प्राणि शास्त्र' (विद्या भवन, लखनऊ), आर डी विद्यार्थीको माध्यमिक 'प्राणिशास्त्र' (इण्डियन प्रेस, प्रयाग) तथा चम्पतस्वरूप गुप्त की 'जन्तु विज्ञान' (किताव महल, प्रयाग) पुस्तके प्रमुख है। इनके अतिरिक्त कीडो मकोडो, जन्तुओ आदिपर कतिपय वालोपयोगी एव सामान्य स्तरकी पुस्तके भी मिलती है। इधर सूचना विभाग, उत्तरप्रदेशकी प्रकाशन शाखाने सुरेश सिह कृत अत्यन्त विस्तृत एव सचित्र पुस्तक 'जीव जगत' निकाला है।

प्राणिशास्त्रपर पुस्तकें

	नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	पृष्ठ	मूल्य
१	जीव जगत	सुरेश सिंह	प्रकाशन शाखा सूचना विभाग उ प्र लखनऊ	१९५८	७२७	१४—०
२	कृषि हानिकारक जीव जन्तु	मोतीलाल सेठ	विज्ञान साहित्य प्रकाशन इलाहाबाद	१९५१	२	१—०
३	कीट-पतंगोंका संसार	जगपति चतुर्वेदी	किताब महल इलाहाबाद	१९५७	१९५	४—०
४	जन्तुओंकी जन्म-कहानी	जगपति चतुर्वेदी	किताब महल इलाहाबाद	१९५८	१८८	४—
५	जन्तु-विज्ञान	कृष्णमोहन गुप्त	भारतेन्दु पुस्तक मन्दिर, बनारस	१९५७	१४४	१—०
६	साँपोंकी दुनिया	रामेश बेदी	विज्ञान परिषद प्रयाग	१९५१	११	४—०
७	विलुप्त जन्तु	जगपति चतुर्वेदी	किताब महल इलाहाबाद	१९५१	१५२	२—०
८	मछलियोंकी दुनिया			१९५८	१७६	५
९	संसारके सरीसृप	”	” ”	१९५७	१	४—
१	जीव जन्तुओंकी बुद्धि		”	१९५७	१९२	४—०
११	पक्षियोंकी दुनिया	सुरेश सिंह	सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली	१९५९		१—५
१२	जीव माया	देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय		१९५७	११	१—०
१३	समुद्रके जीव जन्तु	सुरेशसिंह		१९५८	४८	१—५
१४	जीव जन्तु	”	प्रकाशगृह कालाकांकर	१९५७	१४८	४—००

१ (च) **धातु और खनिज**—नागरी प्रचारिणी सभा काशीने डा दयास्वरूप कृत 'धातु विज्ञान' नामक पुस्तक प्रकाशित की है। भूगर्भ शास्त्र विषयक पुस्तकोंमें 'वसन्त मालिका' मद्रासले प्रकाशित डा एम एस कृष्णनकी भारतीय भूतत्त्वकी भूमिका (अंग्रेजीका अनुवाद) उल्लेखनीय है। भूगोल कार्यालयसे एच एल शर्माकी भारतकी खनिज सम्पत्ति और प्रो एन एल शर्माकी भारतवर्षकी खनिजात्मक सम्पत्ति एवं डा रघुवीर कृत खनिज अभिज्ञान (नागपुर) उल्लेखनीय है।

१ (छ) **कृषि तथा पशुपालन**—कृषिके अन्तर्गत मृत्तिका रसायन फसलोत्पादन फलोत्पादन फसलोंके रोग आदि विषय हैं। पशुपालनके अन्तर्गत दुग्ध विज्ञान आहार विज्ञान पशुओंके रोग उनकी सुश्रूषा आदि सम्मिलित हैं। कृषि तथा पशुपालनपर प्रचुर साहित्य उपलब्ध है और बी एस सी की परीक्षाओं तकके लिए आवश्यक पुस्तकोंकी रचना हो चुकी है, परन्तु अभी तक मृत्तिका रसायन कृषि जैव रसायन अथवा मृत्तिका जीवाणु विज्ञानपर कोई भी पुस्तक नहीं लिखी गई। हाईस्कूल तथा इंटरके उपयुक्त पुस्तकोंकी सूची बहुत लम्बी है। देहाती पुस्तक भंडार दिल्लीसे रामेश्वर अशान्तकी १५ पुस्तकें मिलती हैं परन्तु इनमेंसे

किसीमें भी न तो सन्तोषजनक सामग्रीका समावेश है और न पारिभाषिक शब्दोका उचित व्यवहार ही। भारतीय कृषि अनुसधान परिषद, नई दिल्ली एव कृषि विभाग, उत्तरप्रदेशकी ओरसे समय-समयपर पत्रिकाओ-के रूपमें विभिन्न विषयोपर पुस्तिकाएँ प्रकाशित होती रहती है जो अत्यन्त लोकोपयोगी एव प्रामाणिक होती है। इन प्रकाशनोमें 'धानकी खेती', 'मूँगफलीकी खेती', 'प्याज और लहसुनकी खेती', 'भारतमें आम, खादें और उनका प्रयोग', 'आलूकी खेती' आदि प्रमुख हैं। पशुपालन सम्बन्धी साहित्यमें भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषदसे प्रकाशित 'गोसवर्धन', 'बकरी पालन', 'मौना पालन' तथा 'मछली पालन' उल्लेखनीय हैं। नारायण दुलीचन्द व्यास, विदुरनारायण अग्निहोत्री, जयरामसिंह तथा सन्त बहादुर सिंहने कृषि विषयक अनेक पुस्तके लिखी है। इनमेसे डा० सन्तबहादुर द्वारा लिखित 'कृषिमें उन्नति' तथा 'गहन खेती' नामक पुस्तक उल्लेखनीय है। डा० सन्त बहादुर उत्तरप्रदेशके कृषि निर्देशक रह चुके है। फूलदेवसहाय वर्मा द्वारा लिखित (खाद और उर्वरक) अपने कोटिकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है परन्तु इसे पूर्णरूपसे मौलिक नही कह सकते, क्योकि यह अँग्रेजी पुस्तक (कोलिंग्सकृत) के आधारपर लिखी गई है।

कृषि एवं पशुपालन सम्बन्धी प्रकाशन

	नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	पृष्ठ	मूल्य
१	कृषिमें उन्नति	डा. सन्तबहादुर सिंह भानुप्रताप सिंह			१४०	३–७५
२	गहन खेती	" "	प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उ प्र, लखनऊ	१९६१	२५०	५–००
३	खाद और उर्वरक	फूलदेव सहाय वर्मा	" "	१९६०	५७२	१०–००
४	देशी खाद	जगपति चतुर्वेदी	छात्र हितकारी पुस्तक-माला, दारागज–प्रयाग	१९५५	५६	०–५०
५	वैज्ञानिक खाद	" "	" "	१९५५	४८	०–५०
६.	फसल रक्षाकी दवाएं	" "	" "	१९५५	४८	०–५०
७	साग सब्जी उगाओ	लाडली मोहन	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली	१९५९	१५२	३–००
८.	रोक फसलोकी खेती,	नारायण दुलीचन्द व्यास	सस्ता साहित्य मडल, दिल्ली	१९५७	१३९	१–५०
९	खेतीके साधन	" "	" "	१९५९	९६	१–२५
१०	टमाटर	विदुरनारायण अग्निहोत्री,	कृषि साहित्य प्रकाशन, नरही, लखनऊ	१९६०	५६	१–५०
११	फल सरक्षण विज्ञान	" "	" "	१९६०	१६६	२–००
१२	आम और उससे निर्मित पदार्थ	" "	" "	१९६०	३३	०–५०

सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। इसमे भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावलीका व्यवहार हुआ है। इसी वर्ष इस 'कृतिपर स्वामी हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार' प्रदान किया गया है।

उद्योग मन्दिर–अजमेरसे १९६० मे प्रकाशित ओंकारनाथ शर्माकी एक दूसरी पुस्तक 'वैक्युम ब्रेक' (पृष्ठ सख्या, १६०, मूल्य २ रु) भी उल्लेखनीय है।

आजका युग राकेटोका युग है। राकेटो या विमानोंसे सम्बन्धित शास्त्रपर भी कई पुस्तके हाल ही में प्रकाशित हुई है। इनमेंसे ब्रह्ममुनि परिब्राजक कृत 'वृहत विमान शास्त्र' (सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द भवन, नई दिल्लीसे प्रकाशित, (प्रकाशन तिथि सन् १९५९, पृष्ठ सख्या ३४३, मूल्य १३ रु) प्राचीन विमान शास्त्रपर प्रामाणिक कृति है। प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेशसे प्रकाशित श्री चमनलाल गुप्त कृत 'विमान और वैमानिकी' (प्रकाशन तिथि, १९६० ई, पृष्ठसख्या ३१९, मूल्य ४ रुपये) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक है।

इजीनियरीका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। उसमे अनेकानेक पुस्तकोकी आवश्यकता है परन्तु अभी तक इनीगिनी पुस्तकोके अतिरिक्त प्रामाणिक पुस्तकोका नितान्त अभाव है। सम्भवत पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणमें कठिनाई होनेके कारण पुस्तक-लेखन कार्य मन्दगतिसे हो रहा है, अन्यथा हमारे देशमें इजीनियरोकी कमी नही।

(३) **औद्योगिक साहित्य**—स्वतन्त्रता प्राप्तिके पश्चात् हमारे देशमें जो औद्योगीकरण प्रारम्भ हुआ, उसके कारण औद्योगिक साहित्यका प्रचुर निर्माण हुआ है। यह साहित्य दो प्रकारका है—एक तो सामान्य स्तरका जो सर्वसाधारणको किसी उद्योगके प्रति आकृष्ट करके उसके विषयमें साधारण ज्ञान प्रस्तुत करता है, दूसरा वह जो प्रामाणिक एव वैज्ञानिक सामग्री प्रस्तुत करता है।

औद्योगिक रसायनके क्षेत्रमें प्रो फूलदेव सहाय वर्मा द्वारा लिखित 'ईख और चीनी,' 'रवर,' 'प्लास्टिक,' 'पेट्रोलियम' तथा 'कोयला' अत्यन्त प्रामाणिक एव प्रसिद्ध पुस्तके है। 'ईख और चीनी' पर उन्हे मगलाप्रसाद पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। उत्तर प्रदेशके सूचना विभागकी प्रकाशन शाखा द्वारा पिछले तीन वर्षोमें कई पुस्तके प्रकाशित हुई है, जिनके वाह्य आवरण, छपाई, कागज तथा चित्र उच्च कोटिके है और वे अधिकारी विद्वानो द्वारा लिखी जानेके कारण प्रामाणिक भी है। इनके अतिरिक्त औद्योगिक विज्ञानके विविध अगो—यथा—कॉच, उद्योग, पोर्सलीन उद्योग, इस्पात उत्पादन आदिपर अनेक पुस्तके प्रकाशित हुई है। हिन्दी समिति द्वारा प्रकाशित हीरेन्द्रनाथ वोस कृत "मृत्तिका उद्योग" एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है जो चीनी मिट्टी उद्योगपर वैज्ञानिक सामग्री प्रस्तुत करती है। इसके लेखक अपने विपयके पण्डित है और उन्होने इसमें आधुनिकतम शोध सामग्रीका समावेश किया है। सन् १९५९ में इस कृतिपर 'स्वामी हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार' प्रदान किया जा चुका है।

औद्योगिक विज्ञानपर पुस्तकें

	नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	पृष्ठ	मूल्य
१	पेट्रोलियम	प्रो फूलदेव सहाय	विहार राष्ट्रभाषा परिषद,पटना	१९५८	२९३	५–५०
२	कोयला	,, ,,	सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश	१९५८	४८५	८–००

	नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	पृष्ठ	मूल्य
३	रबर	प्रो फूलदेव सहाय वर्मा	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना	—	—	—
४	प्लास्टिक		अशोक प्रेस पटना	—	१५२	४—०
५	ईख और चीनी		बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना	—	—	—
६	कांच विज्ञान	डा आर. चरन	सू बि उत्तर-प्रदेश लखनऊ	१९६	३४४	६—०
७	इस्पातका उत्पादन	दयास्वरूप तथा धर्मेन्द्रकुमार काकरिया	,,	१९६	३३३	५—०
८	काष्ठ परीक्षण	जगन्नाथ पाण्डे	,, ,,		४३३	१०—०
९	मिट्टीका काम	मनमोहन सरल	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली		१२८	२—०
१०	लकड़ीका काम	बांकेली मोहन	,, ,,		१०७	१—
११	आइना बनाना	एफ. सी मेहन	गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार		७६	१—०
१२	मोमबत्ती बनाना	,,	,, ,,		६४	१—४
१३	कारपेंटरी मैनुअल	के के सौची	देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली		२०	४—५०
१४	उद्योग और रसायन	गोरखप्रसाद श्रीवास्तव	सू बि उ. प्र लखनऊ		४९५	७—
१५	साबुनसाजी	बृजमोहनलाल मुनीम	सीताराम बुकसेलर, अलीगढ़		१२९	२—०
१६	बीडिंग बाइड	एस एन चोपरा	देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली		२२	४—००
१७	छपाई मन्दिर	श्यामनारायण लाल	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी		२१४	२—०

देहाती पुस्तक भंडार, दिल्लीने रबवाली प्लास्टिक गाइड बूट पालिश इक मास्टर रबरकी मोहरें हेयर आयल आतिश बाजी हलवाई मास्टर लाण्ड्री टीचिंग आदि ४ से अधिक सस्ती पुस्तकें छापी हैं जो अंग्रेजीमें प्रकाशित ऐसी ही पुस्तकोंके आधारपर प्रकाशित की गई है।

इधर 'कौंसिल आफ साइंटिफिक ऐण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च' नई दिल्लीने जो भारतीय सरकारकी औद्योगिक एवं विज्ञान सम्बन्धी परिषद है महत्वपूर्ण प्रकाशन करनेकी योजना बनाई है। इन प्रकाशनोंका मुख्य उद्देश्य वैज्ञानिक सामग्रीको संक्षिप्त रूपमें हिन्दीके माध्यमसे सर्वसाधारण तक पहुँचाना है। ऐसे प्रकाशनोंमें 'खिलौना-उद्योग' 'खाद-उद्योग' तथा 'कयर-उद्योग' प्रमुख है। परिषद हिन्दीमें एक पत्रिका भी प्रकाशित करती है। इसके अतिरिक्त भारतकी विभिन्न औद्योगिक रसायन-शालाओंसे समय-समयपर बुलेटिनें प्रकाशित होती रहती हैं। तात्पर्य यह कि हिन्दीमें औद्योगिक साहित्यका प्रचुर कोष एकत्र हो चुका है।

(४) ज्योतिष सम्बन्धी साहित्य—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटनाने निवेणीसिंह कृत ग्रन्थ मन्त्र एवं डा गोरखप्रसाद कृत नीहारिकाएँ प्रकाशित की है। उत्तर प्रदेशके प्रकाशन ब्यूरोने सन् १९५६—५७ में और दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किये है। वे है—डा गोरखप्रसाद कृत

'भारतीय ज्योतिषका इतिहास' (पृ स २९०, मूल्य ४ रु) तथा श्री शिवनाथ झारखडी कृत 'भारतीय ज्योतिष' (पृ स ७१३, मूल्य ८ रु)।

इस प्रसगमें नक्षत्र विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थोका उल्लेख सप्रसगिक होगा। तारोंके वर्णन, उल्का, पुच्छल तारा, चन्द्रलोककी सैर आदिपर प्रचुर सामान्य साहित्य उपलब्ध है।

यथा —

	नाम	लेखक	प्रकाशक	पृष्ठ	मूल्य
१	आकाश दर्शन	छोटू भाई सुथार	सस्ता साहित्य मडल, दिल्ली	६९	२—००
२	उल्का और पुच्छलतारा	ब्रजबिहारीलाल गौड	देश सेवा मडल, प्रयाग	७८	१—००
३	चन्द्रलोककी यात्रा	रमेशचन्द्र वर्मा	किताब महल, इलाहाबाद	७९	२—५०
४	आकाशकी सैर	गोरखप्रसाद	इण्डियन प्रेस, प्रयाग	८८	०—७५
५	अनन्तकी राहसे	पूर्णानन्द मिश्र	रतनगढ, बीकानेर	५१३	५—००

(५) **इतिहास सम्बन्धी साहित्य**—समय-समयपर विज्ञानकी विविध शाखाओंपर ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत की गई है। इनमेंसे आयुर्वेद, ज्योतिष शास्त्र, गणित शास्त्र, रसायन शास्त्र तथा कृषि शास्त्र पर भारतीय परम्परावादी इतिहासका लेखन हो चुका है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटनासे प्रकाशित डा सत्यप्रकाश कृत 'वैज्ञानिक विकासकी भारतीय परम्परा'(सन् १९५४, पृ स २६८, मूल्य ८ रु)प्राचीन भारत-की वैज्ञानिक प्रवृत्तियोंको बतानेवाली एकमात्र पुस्तक है। इधर उन्होने 'प्राचीन भारतमें रसायनका विकास' नामक वृहद् ग्रन्थ लिखा है जिसे प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊने (सन् १९६०; पृ स ८४०, मूल्य १४ रु) प्रकाशित किया है। इस ग्रन्थमें प्राचीन ग्रन्थोंके आधारपर रसायनशास्त्रका प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत किया गया है; आचार्य प्रफुल्लचन्द रे द्वारा लिखित 'हिन्दू केमिस्ट्री' से अधिक विस्तृत होनेके साथ ही हिन्दीमें होनेके कारण यह कृति अधिक सम्मानित होगी, इसमें सन्देह नही। उत्तर प्रदेशके प्रकाशन ब्यूरोने भारतीय 'ज्योतिषका इतिहास' नामक ग्रन्थ, जिसके लेखक स्वर्गीय डाक्टर गोरखप्रसाद थे, प्रकाशित किया है। (इसका उल्लेख ज्योतिष ग्रन्थोके साथ पहले ही हो चुका है)। डा विभूतिभूषण दत्त तथा डा अवधेशनारायण द्वारा लिखित 'हिन्दू गणित शास्त्रका इतिहास' (प्रकाशन ब्यूरो, पृ स २३८, मूल्य ३ रु)गणितके इतिहासपर प्रमाणिक सामग्री प्रस्तुत करती है। आयुर्वेदके इतिहाससे सम्बन्धित कई उपयोगी ग्रन्थ उपलब्ध है। आयुर्वेदिक विज्ञान ग्रन्थ माला, अमृतसरसे प्रकाशित स्वामी हरिशानन्द कृत 'भस्म विज्ञान' (सन् १९५४, पृ स ४१५, मूल्य १० रु)तथा चौखम्भा सस्कृत सीरीज, बनारससे प्रकाशित 'चरक सहिताका निर्माणकाल', जिसके लेखक रघुबीर शरण शर्मा है (सन् १९५९, पृ स ७३; मूल्य २ रु) महत्त्वपूर्ण पुस्तके है। सन् १९६० में प्रकाशन ब्यूरो उत्तर प्रदेशने अत्रिदेव विद्यालकार कृत 'आयुर्वेदका वृहत इतिहास' (पृ स ७०४, मूल्य ११ रु) प्रकाशित किया है। पिछले वर्ष विज्ञान परिषद, प्रयागने डा शिवगोपाल मिश्र कृत 'भारतीय कृषिका विकास' नामक पुस्तक (पृ स २४८, मूल्य ५ रु) प्रकाशित की है जिसमें प्राचीन कालसे आज तक की भारतीय कृषिका वैज्ञानिक इतिहास दिया गया है। यह अपने प्रकारका प्रथम प्रयास कहा जा सकता है। यह कृति उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पिछले वर्ष ५०० रु से पुरस्कृत भी की जा चुकी है।

(६) जनोपयोगी अथवा ज्ञानवर्धक साहित्य—इसके अन्तर्गत हम चिकित्साशास्त्र (विशेषत आयुर्वेद या वैद्यकशास्त्र) पाकशास्त्र आहार-विज्ञान तथा अन्य ज्ञानवर्धक साहित्यका उल्लेख कर सकते हैं।

भारतमें आयुर्वेदकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है परन्तु वर्तमान युगमें चिकित्सा शास्त्रकी अंग्रेजी पद्धतिके साथ ही लेखकोंका ध्यान आयुर्वेदकी विभिन्न प्रणालियोंकी ओर गया है जिसके परिणाम स्वरूप प्रचुर साहित्यका निर्माण हुआ है। यदि हम यह कहें कि अन्य विषयोंकी तुलनामें आयुर्वेदके विविध अंगोपर अधिक पुस्तकें उपलब्ध हैं तो अतिशयोक्ति न होगी। इनमेंसे कुछ संस्कृतमें उपलब्ध प्राचीन ग्रन्थोंके अनुवाद मात्र हैं तो कुछ अनुभूतियोंके आधारपर नवीन कृतियाँ। यही नहीं आधुनिक चिकित्सा-शास्त्रकी विभिन्न शाखाओंपर अब नई-नई पुस्तकें लिखी जा रही हैं जिससे अंग्रेजी न जाननेवाला भी उनसे लाभान्वित हो सकता है। चिकित्सा शास्त्रसे ही हमारे आहारका सम्बन्ध है। आहार विज्ञानसे सम्बन्धित भी कई पुस्तकें हैं। यही नहीं अच्छा भोजन किस प्रकार पकाया जाय—(पाकविज्ञान)—इस विषयपर भी कई पुस्तकें हैं जिनसे हमारे देशका नारीवर्ग लाभान्वित हो सकता है। आयुर्वेद विज्ञानको दृढ़ आधार भूमिपर खड़ा करनेमें स्वामी हरिशरणानन्द की कृतियाने बड़ा योग दिया है। उन्होंने आयुर्वेदको आधुनिक विज्ञानपर आधारित करके अनेक नई पुस्तकें लिखी हैं। उनके द्वारा लिखित व्याधिमूल विज्ञान (पूर्वार्द्ध) (*प्रकाशन तिथि १९६ पृ स ४ मूल्य १२ रु*) *जो आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला कार्यालय* दिल्ली व अमृतसरसे प्रकाशित हुई है—वास्तवमें आधुनिक जैव रसायन सम्बन्धी पुस्तक है। पिछले वर्ष उत्तर प्रदेश सरकारने इसपर १० रु का पुरस्कार दिया है। स्वामीजीने आयुर्वेदके साथ आधुनिक विज्ञान (रसायन शास्त्र) पर भी अधिकार प्राप्त कर रखा है। उनकी इस पुस्तककी विशेष कठिनाई यही है कि उन्होंने भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावलीको न प्रयुक्त करके डा रघुवीरकी शब्दावलीको ग्रहण किया है जिसके कारण प्रथम दृष्टिपर उनकी कृतिके समझनेमें कठिनाई पड़ती है। आयुर्वेद सम्बन्धी नवीन प्रकाशित ग्रन्थोंकी विशेषता है उनके बृहदाकार एव अधिक मूल्य जिसके कारण वे पुस्तकालय तक ही अपना प्रवेश पा सकेंगे।

चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थ-सूची

	नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशनका सन्	पृष्ठ	मूल्य
१	चरक संहिता ६ भाग	श्री गुलाबकुँवर	श्री आयुर्वेदिक सोसायटी जामनगर	१९४९		७५—० (प्रत्येककी)
२	पाश्चात्य द्रव्य गुण विज्ञान	डा रामसुशीलसिंह	मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी	१९५९	९१२	२५—०
३	माडर्न मेडिकल ट्रीटमेण्ट	डा एम एल गुप्ता	मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी	१९५९	६२२	२०—०
४	सुश्रुत संहिता	अत्रिदेव गुप्त		१९५	७८६	२०—
५	अष्टांग-संग्रह	अनु	निर्णयसागर मुद्रणालय बम्बई—२	१९५१	४ ८	११—०

	नाम	लेखक	प्रकाशक	तिथि	पृष्ठ	मूल्य
६	रसरत्न-समुच्चय	अम्बिकादत्त शास्त्री	चौखम्भा सस्कृत सीरीज, वाराणसी	१९५१	५४६	१०—००
७	चक्रदत्त	जगदीशप्रसाद त्रिपाठी	,, ,,	१९४९	३५२	१०—००
८	कषाय कल्पना विज्ञान	अवध विहारी अग्निहोत्री	,, ,,	१९५७	९४	१—५०
९	भारत भैषज्य रत्नाकर	नगीनदास छगनलाल शाह	ऊझा आयुर्वेदिक फार्मेसी, अहमदावाद	१९४८	५७९	५—००
१०	अभिनव विकृति-विज्ञान	डा. रघुबीर त्रिवेदी	चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी	१९५७	११११	२५—००
११	रसरत्न समुच्चय	शकरलाल हरिशकर	खेमराज श्रीकृष्ण दास, बम्बई	२००९	९२८	
१२	त्रिदोष मीमासा	स्वामी हरिशरणानन्द	आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थ माला, अमृतसर	१९४८	१७१	२—५०
१३	शल्यप्रदीपिका	मुकुन्द स्वरूप वर्मा	कमच्छा, वाराणसी	१९५८	७५२	१२—५०
१४	चिकित्सा प्रगति	भानुशकर मेहता	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९५८	१०३	२—००
१५	सामान्य शल्य विज्ञान	शिवदयाल गुप्त	मेडिकल पुस्तक भवन बनारस	१९५७	८५०	१२—००
१६	क्षयरोग	ओमप्रकाश मित्तल लक्ष्मीनारायण टडन	प्रेमी प्रकाशन, लखनऊ	१९५७	१२५	१—७५
१७	रोगोकी घरेलू चिकित्सा	राजेन्द्रप्रताप	आरोग्य निकेतन प्रकाशन, मेरठ	१९५९	१४०	२—७५
१८	रोगी सुश्रूषा	महेन्द्रनाथ पाण्डेय	छात्र हितकारी पुस्तक-माला, प्रयाग	१९५३	२७२	२—५०
१९	कपाउन्डरी (शिक्षा, तथा चिकित्सा प्रवेश)	आर सी भट्टाचार्य	स्वास्थ्य प्रकाशन गृह, वाराणसी	१९६०	२५३	८—००
२०	सूचीवेध विज्ञान	रमेशचन्द्र वर्मा	मोतीलाल बनारसी दास, बनारस	१९५८	४६०	७—५०
२१	आयुर्वेदिक सफल सूचीवेध इन्जेक्शन्स	प्रकाशचन्द्र जैन	वैद्य प्रकाशचन्द्र जैन	१९५९	१६८	५—००
२२	सचित्र इजेक्शन्स	शिवनाथ खन्ना	चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी	१९५९	७९९	१०—००
२३	कही हवा न लग जाय	शरत कुमार चौधरी	आपका स्वास्थ्य-प्रकाशन, वाराणसी	१९६०	८८	१—५०

शरीर विज्ञान आहार विज्ञान तथा पाक विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थ

	नाम	लेखक	प्रकाशक	तिथि	पृष्ठ	मूल्य
१	हमारा शरीर	चतुरसेन शास्त्री	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	१९५९	९२	—७५
२	आपका शरीर	आनन्दकुमार	हिन्द पाकेट बुक्स प्राइवेट लि शाहदरा दिल्ली	१९५९	१५१	१—००
३	मनुष्य शरीर और स्वास्थ्य	रानी टंडन	कुमार प्रकाशन समिति १३ बैंक रोड इलाहाबाद	१९५६	१४३	४—०
४	शरीर निर्माण	हेमेन्द्र गार्गरी	सुन्दरबाग लखनऊ	१९५८	९८	४-५
५	शरीरका मंत्र	मुनीश सक्सेना	राजकमल प्रकाशन	१९५९	११२	२—०
६	भोजन क्या क्यों कैसे ?	सुरेन्द्रनाथ	अवध पब्लिशिंग हाउस लखनऊ		२४२	४—०
७	मनपसंद भोजन	शकुन्तलादेवी	राजकमल प्रकाशन,प्रयाग	१९६	१९६	१—२५
८	आहार संयम और स्वास्थ्य	भगवतीप्रसाद	रामनारायण लाल प्रयाग	१९५	३४१	३—०
९	भारतीय भोजन विज्ञान	सावित्रीदेवी वर्मा	राजकमल प्रकाशन प्रयाग	१९५६	४ २	७—
१	संयम बीथिका	कुसुम कटारा	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी	१९६	१८४	१—०
११	संतति निरोध तथा गर्भ विज्ञान	पंडित हरीश	भूवन प्रकाशन वाराणसी	१९५८	१५५	२—५

अन्य उपयोगी वैज्ञानिक साहित्यसे हमारा तात्पर्य सामान्य विज्ञानपर लिखी गई उन पुस्तकोंसे है जो विविध आविष्कारों या वैज्ञानिक चमत्कारों अथवा दैनिक जीवनमें विज्ञानके उपयोगसे सम्बन्धित हैं।

अन्य उपयोगी वैज्ञानिक साहित्यसे हमारा तात्पर्य सामान्य विज्ञानपर लिखी गई उन पुस्तकोंसे है जो विविध आविष्कारों या वैज्ञानिक चमत्कारों अथवा दैनिक जीवनमें विज्ञानके उपयोगसे सम्बन्धित हैं। जनसाधारणको पृथ्वी एवं मनुष्यके सम्बन्धमें अथवा पशु पक्षियोंकी उत्पत्ति एवं उनकी विविधता बतानेके लिए लिखी गई छोटी-छोटी बालोपयोगी पुस्तके भी इसी वर्गमें रखी जा सकती हैं। ऐसी पुस्तकोंमेंसे अधिकांश या तो किसी अंग्रेजी या विदेशी पुस्तककी छायामात्र हैं अथवा कुछ मौलिक भी। उनकी चित्रमयता सरल एवं रोचक शैली उन्हें आकर्षक बना देती है। कुछ ऐसी पुस्तकें अत्यन्त भ्रामक भी हैं क्योंकि या तो वे किसी वैसी ही पूर्वलिखित पुस्तकोंके अनुकरणके पश्चात् लिखी गई हैं या लेखक उस विषयका पारंगत नहीं है। उदाहरण स्वरूप यमपति चतुर्वेदीकी अनेक ऐसी पुस्तकें अधकचरे ज्ञानकी द्योतक हैं। जब कोई एक लेखक विविध विषयोंपर एक साथ लेखनी चलाता है तो इस प्रकारकी त्रुटियोंका होना स्वाभाविक है।

	नाम	लेखक	प्रकाशक	तिथि	पृष्ठ	मूल्य
१	विज्ञानके चमत्कार	भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव	ज्ञान मण्डल लि काशी	–	१९६	१–००
२	सामान्य विज्ञान	वी एन कार इत्यादि	प्राविंशियल वुक डिपो, प्रयाग	१९५३	४५५	४–००
३	दैनिक जीवनमें विज्ञान	हरि भगवान	अशोक प्रकाशन, लखनऊ	१९५६	२०६	–
४	विश्व विज्ञान	स्वामी हरिशरणानन्द	आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थ-माला, अमृतसर	१९५८	२१५	३–००
५	नवीनतम आविष्कार	डा कृष्णवहादुर	रामनारायणलाल इलाहावाद	१९६०	१२५	१–००
६	ज्ञान भारती	भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव	पीपुल्स पव्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली	१९५९	७२	३–००
७	सृष्टिका इतिहास	जगपति चतुर्वेदी	किताव महल, प्रयाग	१९५८	१७१	४–००
८	मनुष्यका वचपन	देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय	सस्ता साहित्य मडल नई दिल्ली	१९६०	४७	१–००
९	मनुष्य जन्मा	" "	" "	१९५७	४३	१–००
१०	पक्षियोकी दुनिया	सुरेशसिह	" "	१९५९		१–५०
११	पृथ्वी वनी	देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय	" "		४०	१–००
१२	छह मील समुद्रके नीचे	शैलेन्द्रदास	भारतीय प्राणिशास्त्र परिषद, लखनऊ	१९५९	१०३	१–५०
१३	भूगर्भ विज्ञान	जगपति चतुर्वेदी	किताव महल, प्रयाग	१९५२	२४०	२–००

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्लीसे सुलभ विज्ञान मालाके अन्तर्गत वच्चोके लिए डा सत्यप्रकाशके सम्पादकत्वमें तीन पुस्तके निकल चुकी हैं—'प्रकाशकी वाते,' 'ध्वनिकी लहरें' तथा 'ऊष्मा अथवा गरमी।' आगे और पुस्तके लिखी जा रही है। यहीसे छोटा भाई सुथारकी पुस्तक 'धरती और आकाश' अनूदित होकर छपी है।

पारिभाषिक कोष एवं विश्वकोष

पाँच विभिन्न केन्द्रोसे पारिभाषिक शब्दोके कोशोपर कार्य हुआ है :—

(१) भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयागने डा सत्यप्रकाश द्वारा सम्पादित "अँग्रेजी हिन्दी कोश" (पृ स २५६, मूल्य १२ रु, प्रकाशन तिथि १९४८ ई) प्रकाशित किया है। यह सभी वैज्ञानिक विषयोका सकलित कोश है। इसमेंसे अनेक शब्द, अब उस रूपमें स्वीकृत नही हैं।

(२) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागने "जीव रसायन कोश" (डा ब्रजकिशोर मालवीय द्वारा सकलित) तथा "भूतत्त्व विज्ञान कोश" (एस पी सेनगुप्त द्वारा सकलित) प्रकाशित किया है।

(३) नागपुरकी इण्डियन एकेडमी आफ इण्डियन कल्चरसे एप्रीमेण्टरी इंगलिश इण्डियन डिक्शनरी साइंटिफिक टर्म्स (सन् १९४९, पृ २०७ मूल्य ५ रु तथा नागपुरसे ही डा रघुवीर कृत "इंगलिश हिन्दी डिक्शनरी" प्रमुख है। इस कोशने बड़ी ख्याति अर्जित की है। इसमें संस्कृतके आधारपर शब्दावलीका चयन हुआ है।

(४) शिक्षा मंत्रालयके अन्तर्गत विभिन्न वैज्ञानिक विषयोंपर शब्दावलियोंके निर्माण-कार्यका उल्लेख प्रारम्भमें ही किया जा चुका है।

(५) व्यक्तिगत प्रयासोंके फलस्वरूप भी कुछ पारिभाषिक कोश बने हैं। इनमें प्रमुख हैं डा ब्रजमोहन कृत "गणितीय कोश" (जयकृष्णदास हरिदास गुप्त बनारस पृष्ठ सं ६८९ मूल्य १९ रु) तथा माहेश्वरसिंह कृत "जन्तु विज्ञान शब्द कोश" (आगरा बुक स्टोरसे प्रकाशित)।

नागरी प्रचारिणी सभा काशीके तत्वावधानमें 'हिन्दी विश्वकोश' का निर्माण-कार्य प्रारम्भ हुआ है जिसका प्रथम खण्ड (सन् १९६० पृ सं ५०४) प्रकाशित हो चुका है। इसमें अ आ तथा इ इन तीन शब्दोंसे प्रारम्भ होनेवाले विविध शीर्षकोंपर सचित्र विवरण है। इस विश्वकोशमें विशेष महत्व की बात है। प्रथम बार रासायनिक संकेतों सूत्रों एवं समीकरणोंका हिन्दीकरण। इसकी लेकर सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डा कोठारीने कटु आलोचना भी की है। आत्माराम एण्ड संस दिल्लीने सरकारकी सहायतासे 'ज्ञान सरोवर' नामक बृहत् ग्रन्थ वैज्ञानिक विषयोंपर छापा है जो सचित्र है। यह प्रथम खण्डके रूपमें है। इसमें केवल १४ पृष्ठ हैं और मूल्य २ रु है। लखनऊसे विश्वभारती खण्ड-खण्ड करके प्रकाशित हुए हैं। यद्यपि इसके ५ खण्ड छपने थे परन्तु आर्थिक कठिनाइयोंके कारण काम रुक गया। इस विश्वकोशमें वैज्ञानिक विषयोंका सरल सचित्र लोकप्रिय विवेचन है।

वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाएँ

हिन्दीमें विशुद्ध विज्ञानसे सम्बन्धित पत्रिकाओंकी संख्या अत्यल्प है क्योंकि विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं एवं दैनिक पत्रोंमें विभिन्न स्तम्भों अथवा स्वतन्त्र लेखोंके रूपमें वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशमें आता रहता है। विज्ञान जगतमें हिन्दीके माध्यमसे वैज्ञानिक विषयोंपर अनवरत रूपसे सामग्री प्रस्तुत करते रहनेका श्रेय विज्ञान परिषद प्रयाग द्वारा प्रकाशित मासिक पत्र विज्ञान को है। यह पत्रिका सन् १९१४ से प्रकाशित होती रही है। यद्यपि आर्थिक कठिनाइयोंके कारण बीचमें इसके स्तरमें कुछ कमी हुई थी परन्तु आजकल यह उच्चस्तरकी मौलिक सामग्री प्रस्तुत करती है। इसमें विज्ञानकी सभी शाखाओंपर लेख विज्ञानवार्ता सार संकलन तथा सम्पादकीय होते हैं।

कृषि शास्त्रपर कई पत्रिकाएँ केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा प्रकाशित की जाती हैं। इनमेंसे भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद दिल्ली द्वारा धरतीके लाल तथा खेती एवं सूचना विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित कृषि तथा पशुपालन कृषि समाचार एवं पंचायत राज्य नामक मासिक पत्रिकाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ये न केवल विभिन्न क्षेत्रोंके कर्मचारियों कृषकों एवं अधिकारियोंके लिए उपयोगी हैं वरन् विद्यार्थियोंके लिए भी समान रूपसे आवश्यक हैं। भारतीय विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद नई दिल्लीकी ओरसे सन् १९५१ से विज्ञान प्रगति नामकी मासिक पत्रिका निकलती है

जिसमें औद्योगिक विषयोपर अधिकाधिक लेख, विज्ञान वार्ता, पुस्तक समालोचन एव पेटेन्टोकी सूचना रहती है।

बच्चोंके लिए सचित्र उपयोगी मासिक पत्रिका "विज्ञान लोक" का प्रकाशन सन् १९५९ ई से श्री राम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरासे प्रारम्भ हुआ है। इसके प्रत्येक अकका मूल्य ७५ नये पैसे है।

आयुर्वेदके क्षेत्रमे स्वामी हरिशरणानन्द द्वारा सम्पादित "आयुर्वेद विज्ञान" विशेप रूपसे उल्लेखनीय है। इण्डियन मेडिकल एशोशिएसन, वनारस से स्वास्थ्य सम्बन्धी पत्रिका "आपका स्वास्थ्य" का प्रकाशन सन् १९५३ से हो रहा है।

अभीतक विज्ञानके क्षेत्रमें हिन्दीमे कोई अनुसन्धान पत्रिका नही प्रकाशित होती थी। परन्तु विज्ञान परिषद, प्रयागने सन् १९५६से "विज्ञान परिषद अनुसन्धान पत्रिका" नामक शोध पत्रिकाका प्रकाशन प्रारम्भ किया है। इसके सम्पादकोमें डा सत्यप्रकाश तथा डा शिवगोपाल मिश्र है। यह शोध पत्रिका त्रैमासिक है। इसका वार्षिक मूल्य ८ रु है। इसमें रसायन, भौतिकी, गणित, जीव विज्ञान तथा कृषि-विज्ञानपर मौलिक, शोध निबन्ध हिन्दीमें प्रकाशित होते है। साथमें निबन्धोंके साराश अँग्रेजीमें भी छपते है। यह पत्रिका विदेशोमें जाती है जिसके परिवर्तनमे १७५ से अधिक शोध पत्रिकाएँ प्राप्त होती है। भारतीय भाषाओमें शोध निबन्ध प्रकाशित करनेवाली यह प्रथम पत्रिका है। इसके द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दीको अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली है। विश्वविद्यालयोमे होने वाले अनुसन्धानोकी प्रगति बतानेवाली यह पत्रिका आगे चलकर द्वैमासिक हो जाएगी।

इजीनियरी सम्बन्धी एक दूसरी शोध पत्रिका श्री ब्रजमोहनलालजीके सम्पादकत्वमें दिल्लीसे प्रकाशित होती है। इसका नाम है "इन्स्टीटयूट आफ इजीनियर्स जर्नल" यह पुस्तिका रूपमे सोलह पृष्ठो तक प्रतिमास प्रकाशित होती है। इसमें पारिभाषिक शब्दावली भी प्रकाशित होती रहती है।

इस प्रकार देखते है कि हिन्दीमे विज्ञानकी विविध शाखाओपर क्रमसे साहित्य रचना हो रही है। राष्ट्रभाषा हिन्दीके हित साधनाके लिए आवश्यक है कि सभी वर्गके लेखक इसमें साहित्यकी रचना करें। और इसके रिक्त भण्डारको शीघ्र ही पूरा कर दें जिससे आगे आनेवाली पीढी अपने देशमें अपनी ही भाषाके माध्यमसे विज्ञानका अध्ययन-अध्यापन कर सके।

चौथा खण्ड

देवनागरी वर्णमाला

श्री घनश्यामसिंह गुप्त

जिस वर्णमालाका मैं जिकर कर रहा हूँ, वास्तवमें उसे "ब्राह्मी" वर्णमाला कहना चाहिए। केवल सुभीतेके लिए देवनागरी सज्ञा दी जा रही है।

भाषा और बोली

भाषा और बोलीमे भेद है। ससारमें बोलियाँ सहस्रो हैं। हमारी भारत भूमिमें ही लगभग २०० से अधिक बोलियाँ है, परन्तु सविधान द्वारा स्वीकृत भाषा केवल १४ है। देशकाल और परिस्थितिके अनुसार बोलियाँ बनती है। उन्हे कोई विद्वत्मण्डली नही बनाती। 'चार कोसमें बदलै पानी, आठ कोसमे बानी'—इस कहावतमे बहुत कुछ तथ्य है कि बोली हर आठ कोसमें बदलती है। परन्तु यह बात भाषाकी नही। समान बोलियोंके आधारपर भाषा कुछ हद् तक विद्वानो द्वारा सुसस्कृत की जाती है। विद्वान लोग भाषाका व्याकरण बनाते है और उसके द्वारा भाषाका एक प्रकारका सस्कार होता है। भाषा व्याकरणकी शृखलामे बाँधी जाती है, ऐसा कहना अनुचित न होगा।

यह बात प्रत्येक देशके लिए लागू है। उदाहरणके लिए अँग्रेजी भाषाको ही लीजिए। ग्रेटब्रिटेनमे ही कई बोलियाँ हैं जिनका समझना हमारे भारतके अच्छे-अच्छे अँग्रेजी जाननेवालोको भी कठिन है। परन्तु भाषा जो कि "किंग्स इगलिश" (Kings English) राज्य भाषाके नामसे ज्ञात है, एक ही है और उसका व्याकरण भी है।

भाषा और लिपि

प्रत्येक भाषाकी लिपि होती है जिसके द्वारा वह लिखी जाती है और यह लिखा हुआ विचार दूरस्थ व्यक्तियो तक भी पहुँचाया जाता है। बोलकर अपना विचार तो केवल सुननेवालो तक ही पहुँचाया जा सकता है, परन्तु लिखित विचार ससारके एक कोनेसे दूसरे कोने तक जा सकता है।

लिपि और अक्षर

हरेक लिपिके अक्षर होते हैं उच्चरित अक्षर और उसीका लिखित स्वरूप। किसी उच्चरित शब्दके मौलिक टुकड़ेके रेखा द्वारा लिखित रूपको लिखित अक्षर कह सकते हैं जिस प्रकार कि किसी उच्चरित वाक्यका टुकड़ा शब्द कहाता है। ये 'लिखित अक्षर' भिन्न-भिन्न भाषाओंके भिन्न-भिन्न रूपके और भिन्न-भिन्न उच्चारणके होते हैं।

अक्षर और वर्णमाला

लिखित अक्षरोंकी क्रम बद्ध योजनाको वर्णमाला वर्णोंकी माला कहते हैं।

केवल बोलनेमें वर्णमालाकी शृंखलासे प्रयोजन नहीं। परन्तु लिखनेमें वर्णमालाका बहुत मुख्य स्थान है। अक्षरोंको किस क्रमसे रखना चाहिए इसका बहुत बड़ा महत्व है।

अक्षरोंके निर्माण और उनके वर्गीकरणमें ही किसी भाषाके प्रवर्तकोंकी बुद्धिमता तथा वैज्ञानिकता परिलक्षित होती है। इसमें हमारे ऋषि-मुनियोंको कोई नहीं पा सकता जिन्होंने अपनी दिव्य दृष्टिसे मानव-कल्याणके लिए अक्षरोंका निर्माण किया और उनको अनुपम शृंखलामें बाँधकर उनकी वर्णमाला बनाई।

इसीकी विशेषता बताना इस छोटेसे लेखका मुख्य उद्देश्य है और ऊपर जो कहा गया है, वह प्रस्तावना स्वरूप ही है।

ध्वनि और भाषा किंवा बोली

वायुके उस स्पन्दनको जिससे हमारा कर्ण स्पंदित होता है यदि हम ध्वनि कहें तो मनुष्यका कान प्रत्येक ध्वनिको सुनता है। परन्तु प्रत्येक ध्वनि भाषा या बोली या शब्द नहीं होती।

यदि हम किसी काँसेके पात्रको लोहेकी सलाकासे ठोंके तो उससे ध्वनि तो निकलती है जिसे हम सुन सकते हैं परन्तु उससे कोई शब्द नहीं निकलता। शब्द भाषा या बोली तो केवल हमारे मुखसे ही निकल सकती है। हमारे मुखसे ऐसी ध्वनि भी निकल सकती है जिसे हम शब्द भाषा या बोली नहीं कह सकते। परन्तु यह एक अलग बात है। शब्द भाषा या बोली केवल मनुष्यके मुखसे ही निकलती है यह स्पष्ट है।

मनुष्यके मुखकी रचना जहाँसे शब्द निकलता है

परमात्माने हमें आँख नाक कान और मुख दिया है और हम नित्य उस परमपिताले प्रार्थना करते हैं—

> दृष्येम शरदः शतम्
> जीवेम शरदः शतम्
> शृणुयाम शरदः शतम्
> प्रब्रवाम शरदः शतम् इत्यादि।

इस लेखका प्रयोजन 'प्रब्रुवाम' से है। मनुष्य-शरीरमे बोलनेका जो यन्त्र है, उसका विश्लेषण करके ही हमारे ऋषियोने अक्षर और वर्णमालाका निर्माण किया है। यह बात और कही नही पाई जाती। अक्षरोच्चारण का स्थान कण्ठसे लेकर ओष्ठ पर्यन्त है और इसीके अनुसार अक्षरोका निर्माण और विभाजन करके शृखला बद्ध किया गया है। वर्णमालामे स्वर और व्यजनका भी भेद करना उचित था। मनुष्य-के मुख रूपी वाद यन्त्र (मशीन) के विविध स्थानोके अनुसार ही वैज्ञानिक रूपसे वर्णमालाका निर्माण हमारे ऋषियो द्वारा किया गया है, जिसका दिग्दर्शन पाणनि मुनिने अपने—

अकुहविसर्जनीयाना कण्ठ

इचुयश ना तालु

आदि सूत्रो द्वारा किया है।

हमारी वर्णमाला सर्वोत्कृष्ट है

हमारी वर्णमाला अत्यन्त वैज्ञानिक और ससार भरमे अद्वितीय है। उसकी तुलनामे ससारकी कोई भी वर्णमाला नही है। अन्य प्रचलित वर्णमालाओको देखिए तो बात स्पष्ट हो जाएगी। ए, बी, सी, डी आदि कितनी बेतुकी है। स्वर और व्यजन एक साथ और फिर मुखके स्थानका कोई क्रम नही। 'बी' का स्थान ओष्ठ है तो 'सी' का स्थान यदि क वाचक है तो कण्ठ है यदि 'स' वाचक है तो दन्त है और 'डी' तो मूर्धा है। यही हाल अरबी वर्णमालाका भी है। कई अक्षरोके लिए उनकी वर्णमालामें अक्षर ही नही है, जैसे 'ण'। कई अक्षरोके अनेक उच्चारण होते है, जैसे—बी यू टी = बट (But) और पी यू टी = पुट (Put) में यू (u) का। इसीलिए ससारके कई विचारकोकी यह राय हुई कि इसका ठीकसे सस्कार किया जाय।

वर्णमाला और लिपि

हमारी वर्णमाला ही मुख्य चीज है, उसमें मूलभूत परिवर्तन न हुआ है और न होगा। लिपिमे भेद हो सकता है और पहिले भी थोडा बहुत होता रहा है।

हमारे भारत देशकी विभिन्न भाषाओमें लिपिका भेद तो है, परन्तु वर्णमाला भेद (उर्दूको छोडकर) किसी भी भाषामें प्राय कुछ भी नही है। एक-दो में कवर्ग, चवर्ग आदिमें कुछ बीचके अक्षर छूटे हुए है, यह ठीक है, परन्तु वर्णमाला-क्रम वही है।

हमारी वर्णमालाकी व्यापकता

यह वर्णमाला ससारमें सर्वोत्कृष्ट होनेके अतिरिक्त इसकी व्यापकता भी ससारके सभी दूसरी वर्णमालाओंसे अत्यधिक है। इसके जाननेवालोकी जनसख्याके मानसे भी इसका मुकाबला कोई नही कर सकता।

इस वर्णमालाका साम्राज्य केवल भारत तक ही सीमित नही है, अन्य कई देशोमे भी इसका विस्तार है। ब्रह्मदेश, श्रीलका, तिब्बत आदि अनेक देशोमें इसका साम्राज्य है। इसके अतिरिक्त जहाँ

जहाँ बौद्ध धर्मका प्रचार है वहाँ भी सभी धार्मिक ग्रन्थ—चाहे वे पालीमें हों या संस्कृतमें—वर्णमाला यही भारती वर्णमाला अर्थात् ब्राह्मी वर्णमाला ही है। अरेबिक रोमन आदि अनेक वर्णमालाएँ हैं, जिनकी व्यापकता ब्राह्मी वर्णमालाकी तुलनामें बहुत ही कम है।

वर्तमान युगमें संसारके देशोंका संसर्ग इतना अधिक और सुलभ हो गया है कि वह दिन भी आ सकता है जब संसारकी सभी भाषाओंके लिए एक लिपि न भी हो तो भी संसारकी सभी लिपियोंके लिए एक वर्णमालाका होना सम्भाव्य है। यह क्षमता "ब्राह्मी" वर्णमालामें ही है कि संसारकी सभी लिपियाँ उस वर्णमालामें ही पिरोयी जा सकती हैं।

परन्तु यह इस बातपर बहुत दूर तक अवलम्बित होगा कि उसके अनुयायियोंमें उसके प्रचारके लिए कितनी भक्ति कितना उत्साह और कितनी योग्यता है।

अयोग्य और निरुत्साही सचालकोंके हाथमें अच्छे मामलेकी हार हो जाती है और योग्य और उत्साही सचालकोंके हाथमें कमजोर मामलेकी भी जीत हो जाती है।

नागरी लिपि

प्रो रामेश्वर दयाल दुबे

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाजमे रहकर उसे अपने नित्यके कार्य करने पडते है और उसके लिए उसे अन्य व्यक्तियोके साथ विचार-विनिमय करना होता है। विचार-विनिमयके माध्यम अनेक है, जिनमे भाषा सबसे प्रमुख और सबसे सरल माध्यम है। विभिन्न सकेतो द्वारा भी, जैसे सिर हिलाना, आँखे फाडकर देखना, मुठ्ठी बाँधकर दिखाना, भाव प्रकट किए जाते है और दूसरे लोग उन्हे समझ भी लेते है। हाथ दबाने का एक अर्थ है, हल्दी बाँटनेका दूसरा और ताली बजानेका तीसरा। प्रतीको द्वारा सन्देश भेजनेकी प्रथा तो अति प्राचीन कालसे विभिन्न देशोमे प्रचलित है। कहते है एक बार एक राजा अपने पडोसी राज्यपर आक्रमण करना चाहता था। उसने सरसोके दस बोरे उस पडोसी राजाके यहाँ भेजे। पहले तो वह यह समझ ही न सका कि बोरे क्यो भेजे गए है ? फिर बुद्धिमान मन्त्रीकी सलाहसे उसने उस मौन सन्देशके उत्तर स्वरूप दस तीतर भेज दिए। तीतरोको देखकर राजाने आक्रमण करनेका विचार छोड दिया।

यहाँ सरसोके दस बोरेका अर्थ था—" मेरे पास अनन्त सेना है।" दस तीतरका अर्थ था—" भले ही तुम्हारे पास अनन्त सरसो (सेना) हो, मेरे पास भी तीतर (उस सेनाको समाप्त करनेवाले बहादुर) है।"

प्रतीको द्वारा सन्देश भेजने या सकेतो द्वारा अपने मनोभाव प्रकट करनेकी प्रथा प्राचीन कालमें थी और आज भी विद्यमान है। फिर भी यह कहना ही होगा कि भाव और विचार प्रकट करनेका सबसे सरल साधन भाषा है।

मनुष्यने लिखना कैसे सीखा, लिपिका जन्म कब और कैसे हुआ—इसकी कहानी कुछ कम मनोरजक नही है। यह तो निश्चित ही है कि लिपिका जन्म भाषाके जन्मके बहुत समय बाद हुआ होगा। निश्चित प्रयत्नोंके फलस्वरूप मनुष्यके मुखसे निकली हुई सार्थक ध्वनि-समिष्ट-भाषासे बहुत दिनो तक काम चलता रहा होगा। आगे चलकर ऐसी आवश्यकता अनुभव हुई होगी कि कोई ऐसा माध्यम मिले, जिसके द्वारा

मनुष्यके मुखसे निकली हुई वाणी स्थान और कालगत दूरीको पार कर सके। ध्वनिका क्षेत्र सीमित ही हो सकता है। आधुनिक युगमें और वह भी अभी-अभी वैज्ञानिक अन्वेषकाने माउडस्पीकरका आविष्कार कर ध्वनिको कुछ अधिक दूर तक पहुँचानेका प्रयत्न किया है। ईथरकी लहरोंका सहारा लेकर रेडियो अवश्य काफी दूर-दूरसे ध्वनि खींच लाता है। इस प्रकार ध्वनिकी दृष्टिसे स्थानकी दूरी सिमट रही है किन्तु कालगत दूरीकी समस्या अब भी बनी ही हुई है।

प्राचीन कालमें इस स्थानगत और कालगत दूरीको हल करनेके लिए—दूरस्थ व्यक्ति तक अपनी बात पहुँचानेके लिए, तथा अगली पीढ़ियोंके लिए अपने अनुभव अपनी ज्ञान राशिको स्थिर करनेके लिए एक माध्यमकी खोज शुरू हुई होगी। इस दिशामें जो प्रयत्न हुए, जो सफलता मिली उसीसे लिपिके जन्म और विकासकी कहानी प्रारम्भ होती है। आज भी हम वाल्मीकिकी बात सुन सकते हैं तुलसीकी राम-कथा का रसास्वाद ले सकते हैं शेक्सपियरके नाटकोंसे परिचित हो सकते हैं—यह सब लिपिका ही प्रसाद है।

लिपिकी उत्पत्तिके विषयमें सब का मत एक-सा नहीं है। कुछ लोग मानते हैं कि लिपि भी भगवान की ही कृति है। यह मान्यता केवल भारतमें ही नहीं विदेशोंमें भी पाई जाती है, किन्तु मानना होगा कि इस मतमें सार नहीं है। तथ्य यह है कि मनुष्यने अपनी आवश्यकतानुसार लिपिको स्वयं जन्म दिया है।

लिपिके जन्मकी खोज करते-करते हम वहाँ पहुँचते हैं जहाँ मनुष्य या तो जादू टोनेके लिए अथवा धार्मिक भावनासे किसी देवताका प्रतीक बनानेके लिए, अथवा स्मरण रखनेके लिए कुछ चिह्नोंका प्रयोग किया करता था। आज भी अपढ़ धोबी भिन्न-भिन्न घरोंके कपड़ोंपर भिन्न-भिन्न प्रकारके चिह्न बना देते हैं ताकि उन्हें आसानीसे खोजा जा सके।

चित्र लिपि—लिखनेकी कलाका लिपिका आदिरूप चित्र-लिपि ही है। इसके द्वारा किसी वस्तुका बोध करानेके लिए उसका चित्र बनाया जाता है। चित्र-लिपिका अपना महत्त्व है। उसके द्वारा अर्थ-बोध
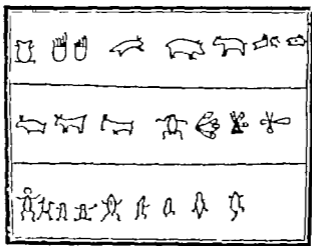
आदि मानवकी गुफाओंकी चित्र-लिपि

तो होता है, किन्तु ध्वनि-बोध नही होता। किसी भी देशके समाचार पत्रोमे छपे कार्टून चित्रके अर्थको, उस देशकी भाषा न जाननेपर भी, सहज ही समझा जा सकता है। इसीलिए चित्र-लिपिको अन्तर्राष्ट्रीय लिपि कह सकते है।

हमें यहाँ चित्र और चित्र-लिपिके अन्तरको समझ लेना चाहिए। जब हम किसी वस्तुका चित्र खीचते है, तब हमारा उद्देश्य उसको अकित करनेका होता है। किन्तु चित्र-लिपिका उद्देश्य केवल विचारोको प्रकट करना मात्र होता है। आदि मानव की गुफाओमे जो चित्र लिपि-मिलती है, वह चित्र और लिपि दोनोका ही आद्यतन रूप है। चित्रकला और लिपिकला—दोनोने इन्ही चिन्होसे जन्म पाया और फिर विकसित होते-होते आजके रूप तक पहुँची है।

चित्र लिपिका प्रयोग प्राय प्रत्येक देशमे पाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आदि युगमें इसका काफी प्रचार था। एक प्रकारसे चित्र-लिपि स्वय सिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय लिपि कही जा सकती है। किसी भी वस्तु या प्राणीका चित्र सब जगह एक-सा ही होता है। अगर एक कुत्तेके पास खडे हुए एक लडकेका चित्र बनाया जाय, तो सभी देशोमे वह आसानीसे समझा जा सकेगा।

सूत्र-लिपि—अपने भावोको व्यक्त करनेके लिए, किसी बातको स्मरण रखनेके लिए सूतका, कपडेका प्रयोग प्राचीन कालमे भी होता था और आज भी कभी-कभी होता है। आज भी देहातोमे गमछेके कोनेमें *गाँठ लगाकर किसी बातको न भूलनेका प्रयत्न किया जाता है। साल-गिरह अथवा वर्षगाँठमें* हम इसी माध्यमको प्रत्यक्ष पाते है। एक वर्ष बीता कि एक गाँठ लगा दी गई। 'सूत्र' (व्याकरण या दर्शन शास्त्रके सूत्र), 'गाँठ' आदि शब्द और 'गाँठ बाँधना' (मुहावरा) इसी सूत्र-लिपिकी ओर सकेत करते है।

भाव-लिपि—मनुष्यके हृदयके भावोका जब चित्रात्मक अकन किया जाता है, तो भाव-लिपि सामने आती है। उदाहरण देकर इसे स्पष्ट करना उचित होगा। भाव-लिपिमें जो सामान्य रेखाएँ चित्र रूपमें खीची जाती है, वे उस वस्तुका प्रतिनिधि नही होती, वरन उससे सम्बन्धित भावको प्रकट करती है। जानेकी क्रियाको दिखानेके लिए दो पैरोके प्रतिनिधि रूप दो खडी रेखाएँ खीच दी जाती है। सिंहका सिंहत्त्व दिखानेके लिए निम्न प्रकारकी एक रेखा पर्याप्त मानी जाती है —

भाव-लिपि गूढ होती है। उसे सब नही समझ पाते, परन्तु इसीलिए उसका महत्त्व कम नही हो जाता है। कलाके क्षेत्रमें भाव-लिपिका बहुत अधिक महत्त्व है।

ध्वन्यात्मक लिपि—अपने भावो और विचारोको प्रकट करनेके लिए अनेक प्रकारकी लिपियोका प्रयोग होता है, किन्तु इन सबमें ध्वन्यात्मक लिपिका स्थान सबसे ऊँचा है। इसमें लिपि चिह्नका सम्बन्ध ध्वनिसे जुडा रहता है। चित्र-लिपिमें अथवा भाव-लिपिमें चिह्न किसी वस्तुका चित्र उपस्थित करते हैं, अथवा किसी भावको व्यक्त करते है, किन्तु ध्वन्यात्मक लिपिमें चिह्न ध्वनियोको ही प्रकट करते हैं। परिणाम यह होता है कि एक व्यक्ति जिन शब्दोको कहना चाहता है, उन्हे वह इस लिपिमें लिख देता है और

चूँकि लिपिके अक्षर या वर्ण उन्हीं ध्वनियोंका प्रतिनिधित्व करते हैं इसलिए पढ़नेवाला पढ़ते समय उन्हीं ध्वनियोंको पढ़ता है। कहनेवाला 'राम' कहता है यह उसे 'राम' के रूपमें लिखता है और पढ़नेवाला 'राम' पढ़ता है। ध्वन्यात्मक लिपिमें अक्षरोंका सम्बन्ध ध्वनि से होता है। इसलिए किसी भी भाषाको उसमें लिखा जा सकता है जैसे —

रोमन　Love is God
नागरी　लव्ह इज गॉड
रोमन　Prem hi Bhagawan hei
नागरी　प्रेम ही भगवान है।

ध्वन्यात्मक लिपिके दो भेद हैं —

(१) अक्षरात्मक (Syllabic)
(२) वर्णात्मक (Alphabetic)

अक्षरात्मक लिपि तथा वर्णात्मक लिपि

इस लिपिमें चिन्ह अक्षरको व्यक्त करता है वर्णको नहीं। नागरी लिपि अक्षरात्मक है और रोमन लिपि वर्णात्मक है। कमला शब्द में क म् तथा ल्—इन तीन वर्णोंके साथ अ अ तथा आ स्वर जुड़े हुए हैं। यदि इसे रोमन लिपिमें लिखा जाय तो प्रत्येक ध्वनिका विश्लेषण किया जा सकता है—K A M A L A

नागरी गुजराती तमिल तलगू आदि लिपियाँ अक्षरात्मक हैं।

वर्णात्मक लिपिमें ध्वनिकी प्रत्येक इकाईके लिए पृथक चिह्न होता है। रोमन लिपि वर्णात्मक लिपि है।

भारतीय लिपियाँ

भारतीय लिपियोंका इतिहास काफी पुराना है। ऐसा माना जाता है कि भारतमें लेखन पद्धतिका प्रचार चौथी शताब्दीके पहले भी मौजूद था। प्राचीन कालमें भारतवासी अपने विचारोंको किसी न किसी लिपिमें शिलाओंपर, धातुपत्रोंपर, ताड़पत्रोंपर, भोजपत्रों इत्यादि पर प्रकट किया करते थे। प्राचीन मूल-ग्रन्थोंमें लेखन कला का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

विद्वानोंका मत है कि प्राचीन कालमें भारतमें ब्राह्मी खरोष्ठी तथा सिन्धु घाटीकी लिपियाँ प्रचलित थीं। पहली दो लिपियोंकी जानकारी तो विद्वानोंको पहलेसे ही थी किन्तु मोहनजोदड़ो की खुदाईमें प्राप्त मुद्राओंसे तीसरी लिपिका भी पता चला है। ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियोंकी मूल जन्म-भूमि भारत ही है अथवा अन्य कोई देश—इस सम्बन्धमें विद्वान एक मत नहीं हैं।

सिन्धु घाटीकी लिपि अभी विद्वानोंकी गवेषणाका विषय बनी हुई है। इस लिपिके प्रतीकोंकी संख्या एक विद्वान ३९६ बताते हैं तो दूसरे विद्वान २५१। यह लिपि न शुद्ध अक्षरात्मक है और न वर्णात्मक। इस लिपिके सम्बन्धमें काफी खोजबीन हो रही है।

अक्षरोंका प्रयोग होता है। ब्राह्मी लिपि बाएँसे दाईं ओर लिखी जाती थी जबकि खरोष्ठी दाहिनेसे बाईं ओर। खरोष्ठीके लिखनेका यह ढंग सुविधाजनक नहीं समझा गया। इन्हीं सब कारणोंसे खरोष्ठी लिपि शनैः लुप्त हो गई और ब्राह्मी लोकप्रिय बन गई।

ब्राह्मी लिपि

ब्राह्मी लिपि प्राचीन भारतकी प्रमुख लिपि गिनी जाती है। इस लिपिसे भारतकी अनेक वर्तमान लिपियाँ निकली हैं। देवनागरी लिपि तो इसका ही विकसित रूप है।

ब्राह्मी लिपिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें विद्वानोंमें बड़ा मतभेद है। एक श्रेणीके विद्वानोंका मत है कि ब्राह्मी लिपिकी उत्पत्ति भारतमें ही हुई। दूसरी श्रेणीके विद्वानोंका मत है कि इस लिपिका सम्बन्ध विदेशी लिपिसे है। अपने-अपने पक्षमें जोरदार तर्क दिये जाते हैं। यह कहना कठिन हो जाता है कि कौन-सा मत ठीक है।

ब्राह्मी लिपि

भारतके प्रसिद्ध विद्वान श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझाका स्पष्ट कथन है कि "ब्राह्मी लिपि भारत वर्षके आर्योंकी अपनी खोजसे उत्पन्न किया हुआ मौलिक आविष्कार है। इसकी प्राचीनता और सर्वांग-सुन्दरतासे इसका कर्ता ब्रह्मा देवता माना जाकर इसका नाम ब्राह्मी पड़ा। चाहे साक्षर ब्राह्मणोंकी लिपि होनेसे यह ब्राह्मी कहलाई हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि इसका फोनीशियनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।"

सर्वश्री टामस, डासन और कनिंघम आदि विद्वान श्री ओझाजीके विचारोंसे सहमत हैं।

ब्राह्मी लिपिका विकास—ब्राह्मी लिपिके प्राचीनतम नमूने ५ वी सदी ई पू के मिले हैं। यह लिपि अपने गुणोंके कारण फैलती गई, विकसित होती गई और लोकप्रिय बनती गई। जैसे-जैसे समय बीतता गया, एक ही लिपि रहते हुए भी उत्तर भारतकी ब्राह्मी लिपि और दक्षिण भारतकी ब्राह्मी लिपिमें अन्तर होने लगा और आगे चलकर तो यह भिन्नता इतनी बढ गई कि समानतामें भी सन्देह होने लगा।

उत्तर भारतीय ब्राह्मी लिपिने भी आगे चलकर धीरे-धीरे प्रदेशोंकी भिन्न-भिन्न लिपियोंका रूप धारण कर लिया।
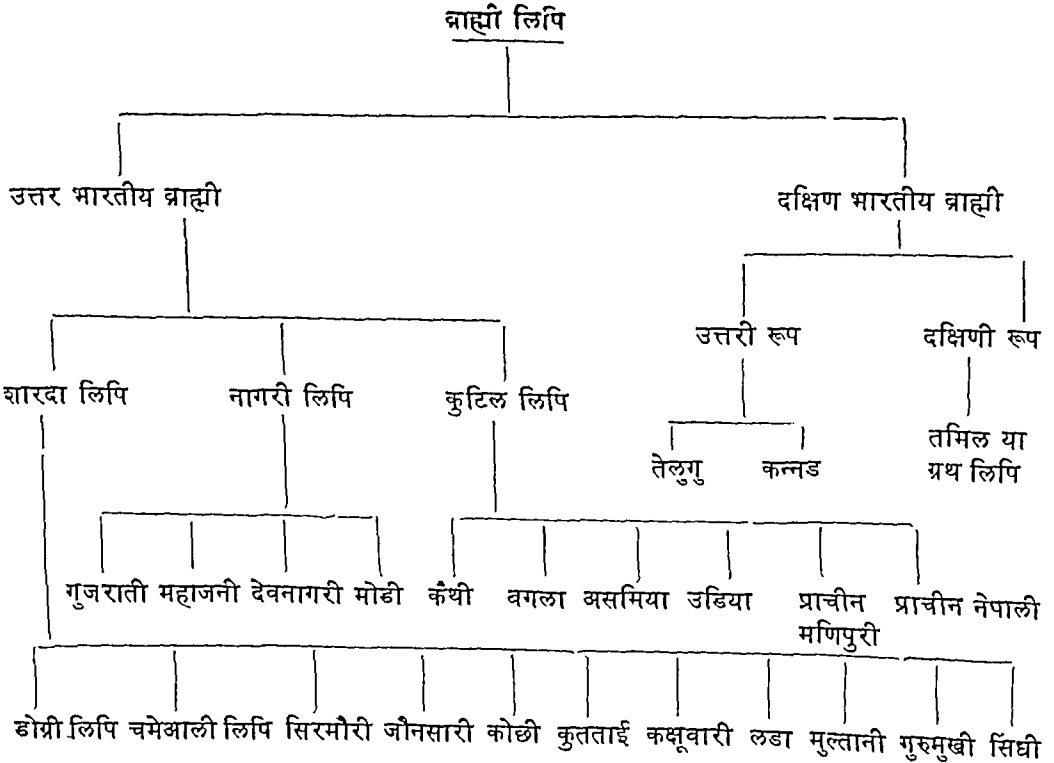
नागरी—नागर लिपिका ही दूसरा नाम नागरी अथवा देवनागरी है जो ब्राह्मी लिपिका ही सुसंस्कृत एवं विकसित रूप है। प्राचीन कालमें उत्तर प्रदेश राजस्थान गुजरात तथा महाराष्ट्रमें नागर लिपिका प्रचार था। इतने बड़े भू-भागकी लिपि होनेके कारण भारतकी लिपियोंमें इसका महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इसमें लिखित जो प्राचीनतम लेख प्राप्त हुआ है वह सातवीं सदीका है। इस लिपिका क्रम-क्रमसे विकास होता रहा। ग्यारहवीं शताब्दीमें इसने पूर्णता प्राप्त कर ली थी यथा —

व्यंजन

देवनागरी अर्ध अक्षरात्मक लिपि है। इसमें १४ स्वर और शेष व्यंजन हैं।

स्वर— अ आ इ ई उ ऊ ऋ लृ ए ऐ ओ औ अ अ

इसके व्यंजन सात वर्गोंमें विभाजित हैं, जैसे —

व्यंजन—

कण्ठय— क ख ग घ ङ

तालव्य— च छ ज झ ञ

मूर्द्धन्य— ट ठ ड ढ ण

दन्त्य— त थ द ध न

ओष्ठ्य— प फ ब भ म

अर्द्धस्वर— य् व्

ऊष्म— श, ष्, स्, ह्,

अन्तस्थ— य्, र्, ल्, व्
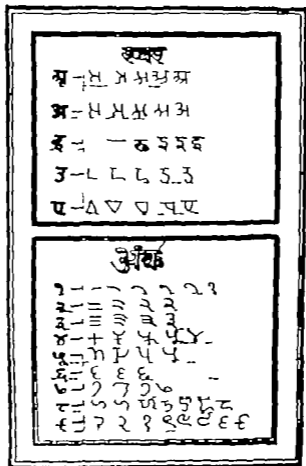
अपने अनेक गुणोंके कारण नागरी लिपि भारतकी सर्वाधिक प्रचलित तथा प्रतिष्ठित लिपि है। आज तो वह राष्ट्रलिपिके उच्चासनपर भी आसीन है।

नागरी लिपिकी व्यापकता

भारतमें अनेक भाषाएँ हैं और उनकी भिन्न-भिन्न लिपियाँ हैं। नागरी लिपिका व्यवहार देशके बहुत बड़े हिस्सेमें होता है। नागरी लिपि केवल उत्तर प्रदेशमें ही नहीं अपितु दिल्ली पंजाब हिमाचल प्रदेश राजस्थान विन्ध्य प्रदेश बिहार, मध्यप्रदेशमें भी प्रचलित है। महाराष्ट्रमें नागरी लिपि पहलेसे ही प्रचलित है। संस्कृतका प्रचार तो सम्पूर्ण देशमें है। संस्कृतकी लिपि देवनागरी है, इसलिए सभी हिन्दीतर प्रदेशोंके संस्कृत-विद्वान इस लिपिसे परिचित हैं। पिछले चालीस वर्षोंमें हिन्दीतर प्रदेशोंमें हिन्दीका प्रचार व्यापक रूपसे हुआ है। हिन्दी भाषाके साथ देवनागरी लिपिका भी प्रचार अनायास हुआ है।

कुछ विद्वानोंका तो मत है कि यदि देवनागरीमें कुछ सुधार कर दिए जायँ उसे और अधिक वैज्ञानिक बना दिया जाय तो देवनागरी लिपि एशिया भूखण्डकी एक प्रमुख लिपि बन सकती है।

आदर्श लिपिके गुण

लिपि-विशेषज्ञोंका मत है कि आदर्श लिपिमें नीचे लिखे गुण होने चाहिए —

(१) निश्चितता—एक वर्णकी एक ही ध्वनि हो ताकि जो लिखा जाय वही पढ़ा जाय।

(२) जिस वर्णका जो उच्चारण है उसी तरह वह लिखा जाय। जैसे क अक्षर और उसका उच्चारण एक-सा है। उर्दूका काफ और रोमनका के (K) उच्चारण क से भिन्न है। ऐसा नहीं होना चाहिए।

(३) शब्दमें कोई अक्षर अनुच्चरित न हो। जैसे Write में W ।

(४) भाषामें उच्चरित होनेवाली सभी ध्वनियोंके लिए लिपि चिह्न हो।

(५) एक ध्वनिके लिए एकसे अधिक लिपि चिह्न न हो।

(६) लिपि देखनेमें सुन्दर हो।

(७) उसमें शीघ्र लेखन-शक्ति हो।

(८) लिपि चिह्नोंकी संख्या बहुत अधिक न हो।

(९) उसमें मुद्रण सुगमता हो अर्थात उसमें कम्पोज शीघ्र किया जा सके।

(१) उसके लिए मोनो (एकटंक) लायनो (पंक्तिटंक) और टाइप राइटर आसानीसे बनाए जा सकें।

इस कसौटीपर यदि नागरी लिपिको कसा जाय तो वह बहुत दूर तक खरी निकलती है। देवनागरी पूर्ण रूपसे सर्व श्रेष्ठ आदर्श लिपि है—ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसमें भी कमियाँ हैं किन्तु यह मानना ही होगा कि अन्य कई लिपियोंकी तुलनामें वह कहीं अधिक गुण-सम्पन्न लिपि है। उसकी कमियाँ दूर हों वह हमारे लिए, हमारे युगकी आवश्यकताओंके लिए और अधिक उपयोगी बने—इस दिशामें चिन्तन मनन और प्रयत्न चल ही रहे हैं।

ब्राह्मी लिपिसे विकसित लिपियोके अलावा हमारे देशमे दो और लिपियाँ चल रही है। वे है—उर्दू लिपि, जिसे वास्तवमें 'फारसी लिपि' कहना चाहिए, तथा रोमन लिपि। ब्रिटिश राज्यके पहले इस देशपर मुसलमानोका आधिपत्य रहा, अत उर्दू लिपिको राजसत्ताका समर्थन मिला। अँगरेजोका राज्य कायम होनेपर रोमन लिपिको महत्त्व मिल जाना स्वाभाविक ही था। विषम ऐतिहासिक परिस्थितियोमे हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि उपेक्षित बनी रही। राष्ट्रीय आन्दोलनके दिनोमे हिन्दी भाषा और देवनागरी ने अपना स्थान प्राप्त करनेका प्रयत्न किया। ऐसे समयमे देवनागरीका मुकावला करनेका प्रयत्न उर्दूने किया और उसे परिस्थिति वश महात्माजीका समर्थन भी मिला, किन्तु भारतके स्वतन्त्र होते ही वह स्वय ही अपदस्थ हो गई। इधर लिपिके रोमन समर्थक भी कभी-कभी देवनागरीकी तुलनामें रोमन लिपिको श्रेष्ठ सिद्ध करनेका प्रयत्न करते रहते है, किन्तु जन-जागृतिके इन दिनोमे किसी भी विदेशी लिपिको अधिक महत्त्व मिल सके—यह सम्भव नही है। फिर भी विवेचन करनेकी दृष्टिसे यहाँ उनकी नागरीसे तुलना की जा रही है।

उर्दू लिपिके दोष

(१) अनेक ध्वनियोके लिए लिपि चिह्न है ही नही। जैसे—ऐ, औ, ण।

(२) एक ही अक्षरके दो-दो उच्चारण है।

(३) एक ही उच्चारणको बनानेवाले अनेक अक्षर है।

(४) लिखते समय मूल अक्षरका सकेत मात्र सामने आता है, इसलिए लिखना भले सरल कहा जाय, पढना एकदम कठिन हो जाता है।

(५) प्रेसके लिए एकदम अनुपयोगी है। इसीलिए उर्दू साहित्यको छापनेका काम प्राय लिथोसे लिया जाता है।

उर्दू लिपिकी कठिनाइयाँ इतनी ही नही है और भी अनेक है, जिनका अनुभव तो भुक्तभोगी ही कर सकता है।

उर्दू लिपिमें कोई गुण न हो, ऐसी बात नही है। वह द्रुतगतिसे लिखी जा सकती है। उसमें कम स्थानमें अधिक लिखा जा सकता है। इस दृष्टिसे वह 'शीघ्र लेखन' (शॉर्ट हैन्ड) के निकट पहुँचती है।

समग्र रूपसे विचार करनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि उर्दू लिपि सदोष लिपि है और वह कभी भी आदर्श लिपि नही बन सकती।

उर्दू लिपिकी तुलनामें रोमन लिपिमे दोष कम है, किन्तु नागरी लिपिकी तुलनामे वह बहुत पीछे रह जाती है।

रोमन लिपिके दोष

(१) अनेक ध्वनियोके लिए रोमन लिपिमें चिह्न ही नही है। जैसे—ए, औ, अनुनासिक, ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, ण, त, थ, द, ध, भ, श।

(२) महाप्राण वर्णोको लिखनेके लिए दो या दोसे अधिक अक्षर लिखने पडते है। जैसे—च = Ch, छ = Chh

(३) कहा जाता है कि रोमन लिपिमें केवल २६ अक्षर हैं किन्तु सत्य यह है कि चार प्रकारकी वर्णमाला (लिखनेके लिए केपिटल और स्माल तथा छापनेके लिए केपिटल और स्माल) होनेके कारण उनकी संख्या बहुत अधिक है।

(४) अधिकांश अक्षरोंके उच्चारण निश्चित नहीं हैं। एक जगहपर एक उच्चारण होता है, दूसरे स्थानपर उसीका दूसरा उच्चारण।

सूक्ष्म निरीक्षणसे और भी अनेक दोष देखे जा सकते हैं। इसलिए रोमन लिपिको जो लोग श्रेष्ठ लिपि मानते हैं, उनका कथन युक्ति संगत नहीं है।

रोमन लिपिके सम्बन्धमें महात्मा गांधीजीने अपना मत इन शब्दोंमें व्यक्त किया था— रोमन लिपिके समर्थक तो इन दोनों ही (नागरी और उर्दू) लिपियोंको रद्द कर देनेकी राय देंगे किन्तु विज्ञान तथा भावना—दोनों ही दृष्टियोंसे रोमन लिपि नहीं चल सकती। रोमन लिपिका मुख्य लाभ इतना ही है कि छापने और टाइप करनेमें यह लिपि आसान पड़ती है करोड़ों मनुष्योंको इसे सीखनेमें जो मेहनत पड़ती है, उसे देखते हुए इस लाभका हमारे लिए कोई मूल्य नहीं। लाखों करोड़ोंको तो देवनागरीमें या अपने-अपने प्रान्तकी लिपिमें ही लिखा हुआ अपने यहाँ का साहित्य पढ़ना है इसलिए रोमन लिपि जरा भी सहायता नहीं पहुँचा सकती।

अगर हम रोमन लिपिको दाखिल करें तो वह निरी चार रूप ही साबित होगी और कभी लोक-प्रिय नहीं बनेगी। जब सच्ची लोक-जागृति हो जाएगी तब इस प्रकारके चार रूप स्थान नहीं पा सकेंगे।

इस कथनमें दिए गए तर्क अकाट्य हैं। अत यह स्पष्ट है कि किसी दृष्टिसे भी हो, रोमनको भारतीय भाषाओंकी लिपि स्वीकार करना आत्मघातक सिद्ध होगा।

देवनागरी लिपिके दोष

देवनागरी लिपि एक सुन्दर लिपि है वैज्ञानिक लिपि है फिर भी वह निर्दोष नहीं है। नागरी लिपिकी प्रधान कमियाँ इस प्रकार हैं —

(१) कई ध्वनियोंके लिए लिपि चिह्न नहीं है, जैसे —

(क) ऑ —का उच्चारण यथा—डॉक्टर, बॉल में ॉ

(ख) ए का ह्रस्व रूप यथा— जेहि सुमिरत सिधि होय में जे

(ग) ओ का ह्रस्व रूप यथा—मोहब्बत में मो

(२) कुछ अक्षरोंके दो-दो रूप प्रचलित हैं जैसे —

अ अ   ण ण   ल ल;   झ झ

(३) दो अक्षरोंके योगसे एक नया अक्षर बनता है जैसे —

र + व = ख

इसके कारण कभी-कभी पढ़नेमें भ्रम होता है जैसे —

रवडी = खडी

रवाना = खाना

(४) र के पाँच प्रकार हैं—

र — राम
ˋ — कर्म
ॖ — प्रेम
ॢ — राष्ट्र
ˆ — वऱ्हाड

इस एक र के कारण ४०–५० टाइप नए बनाने पडते है।

(५) जिस क्रमसे अक्षर लिखे जायँ, उसी क्रमसे पढे जाने चाहिए, किन्तु इस विचारसे कुछ गडबडी है।

(छोटी इ) की मात्रा ि लिखी पहले जाती है पढी पीछे जाती है—

किसी, चन्द्रिका

(६) आ—की मात्रा का चिह्न 'ा' है। किसी अक्षरके आगे लगनेपर वह दीर्घ हो जाता है, जैसे—क का, म मा, किन्तु नागरी लिपिमे दो अक्षर ऐसे है जिनमे पहलेसे ही यह मात्रा लगी-सी दीखती है —

ग, श

(७) क्ष, त्र, ज्ञ—स्वतन्त्र ध्वनियाँ नही है। ये सयुक्त व्यञ्जन मात्र है, अत स्वतन्त्र लिपि चिह्नोकी आवश्यकता नही।

(८) अनेक सयुक्ताक्षरोंके लिए नए टाइप बनाने पड्ते है, अत टाइप सख्या बढती है।

(९) लिपि चिह्नोकी सख्या अधिक है। यदि नागरी लिपिको कम्पोज-सुलभ तथा टाइप राइटर, टेलीप्रिन्टर आदिके लिए उपयोगी बनना है, तो उसे अपने चिह्नोकी सख्या कम करनी होगी।

स्वतन्त्र स्वरो और उनकी मात्राओके दो अलग-अलग रूप है। इससे लिपि सीखनेवालोको दुहरी मेहनत करनी पडती है। टाइप और छपाईमे भी असुविधा होती है।

देवनागरीके व्यजन चिह्न सर्वथा वैज्ञानिक नही हैं, क् औ ख् में तथा ग् और घ् में केवल महाप्राणत्वका भेद है। इनके लिए दो स्वतत्र चिह्न मान लिए गए है। यही बात अन्य महाप्राण व्यञ्जनोंके बारेमे भी कही जा सकती है। इस प्रकार लिपिमें वैज्ञानिकता की तो कमी है ही, अक्षरोकी सख्या भी व्यर्थ ही बढी है।

नागरी लिपिकी इन कमियो, समस्याओ और आवश्यकताओकी ओर विद्वानोका ध्यान बहुत पहलेसे जाने लगा था। व्यक्तिगत तौरपर और सस्थागत तौरपर सुधार सम्बन्धी अनेक प्रयत्न होते रहे और हो रहे हैं। इधर तो सुधार सम्बन्धी सुझावोकी ऐसी बाढ आई है कि वह स्वय एक समस्या बन रही है। भारतके स्वतन्त्र हो जानेके पश्चात् सरकारी स्तरपर भी लिपि-सुधारके सम्बन्धमें प्रयत्न शुरू हुआ है। बावजूद इन सारे प्रयत्नोंके-सुधरी हुई नागरी लिपिका अन्तिम रूप अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है।

लिपि सुधारके क्षेत्रमें जो प्रमुख प्रयत्न किए जाते रहे है, उनकी सक्षिप्त जानकारी यहाँ दी जाती है।

जो लोग इतिहाससे परिचित नहीं वे मानते हैं कि नागरी लिपिमें कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ और यह वेदकालसे वैसी-की-वैसी चलती आई है। उनकी यह धारणा नितान्त गलत है। नागरी लिपिमें समय-समयपर आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते आए हैं। सम्राट् अशोकके कालसे लेकर आज तक जिस नागरी लिपिका प्रयोग शिलालेख ताम्रपत्र ताडपत्र भोजपत्र और आजकल कागजपर होता आ रहा है उस सबपर हम तुलनात्मक दृष्टिसे देखें तो पता चलेगा कि लिपिका परिस्थितिके अनुसार विकास और परिवर्तन होता आया है।

वर्तमान युगमें लिपि सुधारके क्षेत्रमें किए गए प्रयत्नोंका लेखा-जोखा करते समय सबसे पहले लोकमान्य तिलक सामने आते हैं। लोकमान्य तिलक केवल राजनीतिक नेता ही नहीं थे महाराष्ट्रके साहित्यिक जगतमें उनका वही स्थान है जो हिन्दीमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका। मातृभाषा द्वारा लोक-शिक्षण तिलक महाराजका ध्येय था। अपने मराठी साप्ताहिक पत्र केसरी को वे अर्द्ध साप्ताहिक करना चाहते थे किन्तु देवनागरी कम्पोजकी कठिनाई उनके मार्गमें बाधा बनकर खड़ी हुई जिसे हल करनेके लिए उन्होंने बहुत प्रयत्न किए। नागरी टाइपोंकी संख्या घटानेकी दृष्टिसे उन्होंने अनेक टाइप फाउण्डरियोंसे सम्पर्क स्थापित किया और नए टाइप बनवाए। अपनी इंग्लैंड यात्रामें वे इस कारण टाइपको साथ ले गए और वहाँसे मोनो टाइप ढलवाकर ले आए। सन् १९ ८ में उन्हें ६ वर्षके लिए जेल जाना पड़ा और पहली अगस्त १९२ को तो उनका देहान्त हो गया। यदि लोकमान्य कुछ वर्ष और जीवित रहते तो निस्सन्देह लिपि-सुधारकी समस्या कुछ अंशोंमें तो अवश्य हल हो जाती।

केसरी के ट्रस्टियोंने लोकमान्यके जिस कार्यको अधूरा छोड़ा उसे महाराष्ट्रके अन्य लोगोंने अपने हाथमें लिया इनमें श्री न रा वासे श्री स रा दाते श्री ठाकरकर तथा श्री द वा विजापुरे मुख्य हैं। श्री विजापुरेने इस कार्यमें सबसे अधिक सफलता प्राप्त की जिसका प्रमाण विजापुर टाइप न २ है जिसका व्यवहार आज भी महाराष्ट्रके कई समाचार पत्रोंमें होता है।

नागरी लिपि-सुधारक आन्दोलनका श्रीगणेश १९३५ में महात्मा गांधीकी अध्यक्षतामें होनेवाले हिन्दी साहित्य सम्मेलनके २४ वें इन्दौर अधिवेशनसे हुआ। इस अधिवेशनमें इस विषयकी विशद चर्चा हुई और इस विषयपर देशके विद्वानोंसे विचार-विमर्श करके विवरण उपस्थित करनेके लिए १० व्यक्तियोंकी एक उपसमिति बनाई गई जिसके संयोजक काकासाहेब कालेलकर थे। इस उपसमितिकी अनेक बैठकें हुईं। उपसमितिने अपनी रिपोर्ट नागपुरके अधिवेशनमें पेश की। नागपुर सम्मेलनने इस सम्बन्धमें अन्तिम निर्णय करनेका अधिकार सम्मेलनकी स्थायी समितिको सौंपा। स्थायी समितिने सन् १९३७ में लिपि-सुधारके सम्बन्धमें जो निश्चय किया वह इस प्रकार है —

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके निश्चय

प्रस्ताव

नं १

लिखनेमें शिरोरेखा लगाना आवश्यक नहीं है। छपाईमें साधारण रीतिसे शिरोरेखा लगाना ही नियम है। किन्तु जिस स्थानमें अक्षरोंकी विभिन्नता प्रकट करनेके लिए शिरोरेखा-विहीन अक्षर

भी प्रयुक्त हो सकते है। इस समितिकी सिफारिश है कि विशेष कर छोटे अक्षरोमे जहाँ शिरोरेखा होनेसे छपाईकी स्पष्टतामे कमी आ जाती हो, वहाँ शिरोरेखा-विहीन अक्षरोका प्रयोग करना अच्छा होगा।

नं २

यह समिति निश्चय करती है कि प्रत्येक वर्ण ध्वनिके उच्चारणके क्रममे लिखा जाए।

(क) जब तक कोई अधिक सन्तोषजनक स्वरूप सामने न आए, तब तक 'इ' की मात्रा अपवाद रूपमे वर्तमान पद्धतिके अनुसार ही 'ि' लिखी जाए, यथा—'सिर'।

(ख) ए, ऐ की मात्राएँ वर्णके ठीक ऊपर न लगाकर दाहिनी ओर जरा हटाकर, वर्तमान पद्धतिके अनुसार, ऊपर लगाई जाएँ, यथा—द ेवता, अन ेक।

ओ और औ भी ऊपरके सिद्धान्तके अनुसार लिखे जाएँ, यथा—आ ेला आ ैरत।

(ग) उ, ऊ, ऋ की मात्राएँ अक्षरके बाद आएँ और पक्तिमें ही लिखी जाएँ, यथा—क ुटिल, प ूजा, स ृष्टि।

(घ) अनुस्वार और अनुनासिकके चिह्न भी अक्षरके बाद ऊपर लिखे जाएँ, यथा—अ ंश।

(ङ) रेफसे व्यक्त होनेवाला अर्द्ध 'र' उच्चारण क्रमसे योग्य जगहपर लिखा जाए, यथा—ध र्म।

(च) सयुक्ताक्षरमे (द्वितीय) 'र' सामान्य रूपसे लिखा जाए, जैसे—प्र, त्र।

(छ) युक्ताक्षरमे भी सर्वत्र वर्ण उच्चारण क्रमसे एकके पीछे एक लिखे जाएँ, यथा द्‌वारका (द्वारका नही), विद-वत्ता (विद्वत्ता नही)। (द के आगेवाले 'डैस' को द से जुडा समझना चाहिए)

न ३

स्वरो और मात्राओमे समानता तथा सामजस्य स्थापित करनेके लिए 'इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ऋ' के वर्तमान रूप छोडकर केवल अ मे ही इन स्वरोकी मात्राएँ लगाकर इन स्वरोके मूल स्वरूपका बोध कराया जाए, अ की बारह खडी की जाए, यथा—अ, आ, अि, अी, अ ु, अ ू, अ ृ, अ े, अ ै, आे आ ै, अ ं, अ ।

न ४

दक्षिणकी लिपियोंके स्वरोमे ह्रस्व ए और ह्रस्व ओ के स्वरूप आते है, उनके लिए मात्रा इस प्रकार लगाई जाए, यथा—अ॒, आ॒।

नं ५

पूर्ण अनुस्वारके स्थानपर '°' लगाया जाए और अनुनासिकके लिए केवल बिन्दी '•' लिखी जाए यथा—सि ंह, चा द (चाँद नही)। व्यजनके पूर्व हलन्त ङ्, ञ्, ण्, न्, म्, की जगहपर जहाँ प्रतिकूलता (यथा—वाङ्मय, तन्मय) न हो, अनुस्वार लिखा जाए, यथा—च ंचल, प ंथ, प ंप आदि।

नं. ६

छपनेमे अक्षरोके नीचे बाई ओर यदि अनुकूल स्थानपर (नुकता) बिन्दी लगाई जाए, तो उसका अभिप्राय होगा कि अक्षरकी ध्वनि उस अक्षरकी मूल ध्वनिसे भिन्न है। उस ध्वनिका निर्णय प्रचलनके अनुसार होगा। यथा—फारसी — क़, ख़, ज़, झ़, मराठी च़, सिन्धी ज़, इत्यादि।

जो लोग इतिहाससे परिचित नही वे मानते है कि नागरी लिपिमें कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ और यह वेदकालसे वैसी-की-वैसी चलती आई है। उनकी यह धारणा नितान्त गलत है। नागरी लिपिमे समय-समयपर आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते आए है। सम्राट् अशोकके कालसे लेकर आज तक जिस नागरी लिपिका प्रयोग शिलालेख ताम्रपत्र ताड़पत्र भोजपत्र और आजकल कागजपर होता आ रहा है उसे अगर हम तुलनात्मक दृष्टिसे देखें तो पता चलेगा कि लिपिका परिस्थितिके अनुसार विकास और परिवर्तन होता आया है।

वर्तमान युगमे लिपि सुधारके क्षेत्रमें किए गए प्रयत्नोका लेखा-जोखा करते समय सबसे पहले लोकमान्य तिलक सामने आते है। लोकमान्य तिलक केवल राजनीतिक नेता ही नही थे महाराष्ट्रके साहित्यिक जगतमे उनका वही स्थान है जो हिन्दीमे भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका। मातृभाषा द्वारा लोक-शिक्षण तिलक महाराजका ध्येय था। अपने मराठी साप्ताहिक पत्र केसरी को वे दैनिक साप्ताहिक करना चाहते थे किन्तु देवनागरी कम्पोजकी कठिनाई उनके मार्गमे बाधा बनकर खड़ी हुई जिसे हल करनेके लिए उन्होने बहुत प्रयत्न किए। नागरी टाइपोकी संख्या घटानेकी दृष्टिसे उन्होने अनेक टाइप फाउण्डरियोसे सम्बन्ध स्थापित किया और नए टाइप बनवाए। अपनी इग्लैंड यात्रामें वे इस कारण टाइपको साथ ले गए और वहाँसे मोनो टाइप बनाकर ले आए। सन् १९ ८ मे उन्हे ६ वर्षके लिए जेल जाना पड़ा और पहली अगस्त १९२ को तो उनका देहान्त हो गया। यदि लोकमान्य कुछ वर्ष और जीवित रहते तो निस्सन्देह लिपि-सुधारकी समस्या कुछ अशोमें तो अवश्य हल हो जाती।

केसरी के ट्रस्टियोने लोकमान्यके जिस कार्यको अधूरा छोड़ा उसे महाराष्ट्रके अन्य लोगोने अपने हाथमें लिया इनमें श्री म रा दाते श्री ब रा दाते श्री सावरकर तथा श्री म पा चितामुरे मुख्य है। श्री चितापुरेने इस कार्यमें सबसे अधिक सफलता प्राप्त की जिसका प्रमाण चितापुर टाइप न ३ है जिसका व्यवहार आज भी महाराष्ट्रके कई समाचार पत्रोमें होता है।

नागरी लिपि-सुधारके आन्दोलनका श्रीगणेश १९३५ म महात्मा गांधीकी अध्यक्षतामे होनेवाले हिन्दी साहित्य सम्मेलनके २४ वें इन्दौर अधिवेशनसे हुआ। इस अधिवेशनमे इस विषयकी विशद चर्चा हुई और इस विषयपर देशके विद्वानोसे विचार-विमर्श करके विवरण उपस्थित करनेके लिए १ व्यक्तियोकी एक उपसमिति बनाई गई जिसके संयोजक काकासाहेब कालेलकर थे। इस उपसमितिकी अनेक बैठकें हुई। उपसमितिने अपनी रिपोर्ट नागपुरके अधिवेशनमे पेश की। नागपुर सम्मेलनने इस सम्बन्धम अन्तिम निर्णय करनेका अधिकार सम्मेलनकी स्थायी समितिको सौंपा। स्थायी समितिने सन् १९३७ म लिपि-सुधारके सम्बन्धमें जो निश्चय किया वह इस प्रकार है —

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके निश्चय

प्रस्ताव

नं १

लिखनेमे शिरोरेखा लगाना आवश्यक नहीं है। व्यवहारमे साधारण रीतिसे शिरोरेखा ही नियम रहे। किन्तु विशेष स्थानोमें अक्षरोकी विभिन्नता प्रकट करनेके लिए शिरोरेखा-रहि

विशेषत 'अ' की स्वराखडी हिन्दीतर प्रदेशोंमे हिन्दी-प्रचारमे भी सहायक सिद्ध हुई है। खासकर असमके पहाडी इलाकोंमें, जहां रोमन लिपिका बोलवाला है, अ की स्वराखडी वाला यह सरल रूप विशेष जनप्रिय हुआ है और इसके कारण वहां राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रचारमें सरलता अनुभव की गई है।

देवनागरी लिपिको यदि आजके युगके लिए अत्यन्त उपयोगी, मशीनोंके लिए सक्षम बनाना है और यदि आवश्यक नवीन ध्वनियोंके लिए लिपि चिह्न बनाना है, तो यह परम आवश्यक हो जाता है कि नागरीके कुछ अक्षर कम किये जाएँ। अक्षर कम करते समय इस बातका पूरा ध्यान रखना ही होगा कि ऐसा करते समय कोई लिपि-दोष न आने पाए।

अ की स्वराखडीका जो सुझाव दिया गया है, वह अत्यन्त सरल, और सुबोध है तथा अपरिचित नही है। व्याकरणकी बारीकियोंको एक तरफ रखकर यदि व्यावहारिक दृष्टिसे इस पर विचार करें तो यह सुझाव बहुत उपयोगी है।

लिपि सीखनेवालोंको यह सहज ही समझाया जा सकता है कि जिस प्रकार 'क' मे ा ि ी ु ू े ै ो ौ — । लगाकर क का कि की कु कू के कै को कौ क क बना लेते है उसी प्रकार 'अ' मे ये मात्राएँ लगाकर—

अ आ अि अी अु अू अे अै ओ औ अ अ बनाना है। इस प्रकार अ की स्वराखडी अपने आपमे पूर्ण और स्वाभाविक बन जाती है। यह कोई एकदम नया सुधार भी नही है। हम अब तक 'अ' में—

ा ो ौ — । की मात्राएँ लगाकर—

आ ओ औ अ अ बनाते रहे है। अब एक कदम और आगे चलना है—अि अी अु अू अे अै।

गुजराती और नैपाली लिपिमें अ पर े ै की मात्रा लगाकर अे और अै लिखा ही जाता है।

अि अी अु अू अे और अै को पढनेमे कोई कठिनाई नही होती। कोई भी पाठक जब इन्हे पढेगा तब सहज ही इ ई उ ऊ ए ऐ की ध्वनि निकालेगा। इस सुधारके द्वारा नागरी लिपिके छह अक्षर कम हो जाते हैं। यदि इस सुझावको स्वीकार कर लिया जाता है तो नए सीखनेवालोंको इ ई उ ऊ ए ऐ—इन छह अक्षरोंके सीखनेका भार नही उठाना पडता, दूसरे टाइप रायटरमें छह बटन (Key) कम हो जाते है, प्रेसके टाइपमें कुछ टाइप कम हो जाते है। इस परिवर्तनसे लिपि सौन्दर्यमे अथवा उपयोगितामें कोई कमी भी नही आती है।

हिन्दीके प्रसिद्ध वैयाकरण श्री किशोरीदास वाजपेयीने ठीक ही लिखा है—"कह सकते है कि 'अि', 'अी' आदि रूप आँखोंको अच्छे नही लगते। यह कोई तर्क नही है। उपयोगिताको रुचि-वैचित्र्य की बलिवेदीपर चढा देना बुद्धिमानी नही है। ओ और औ—इन दो स्वर सकेतोको क्यो पसन्द किया जाता है? इनकी जगह भी कोई नए सकेत स्वतन्त्र रूपसे क्यो नही चलाए जाते?"

जैसा कि ऊपर लिखा गया है हमें आगे बढकर ओ, और औ की तरह अि अी अु अू अे अै को भी स्वीकार कर लेना चाहिए। अ की स्वराखडीकी उपयोगिता कुछ लोगोंके ध्यानमें क्यो नही समझमें

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	
(a)	अ	अ	आ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ए	(a)
	Short		Short		Short		Short		Short		
(b)	ओ	ओ	action	at	ought	all	ऋ	अं	अः	अॅ	(b)
	Short		Short		Short						
(c)	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	(c)
(d)	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	(d)
(e)	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	(e)
(f)	ष	स	ह	Z	F.	azure	ळ	क्ष	त्र	ज्ञ	(f)

श्री श्रीनिवासजीने 'अ' के असकेतित अतएव निरर्थक अश "उ" के साथ मात्राओका प्रयोग करके स्वरोका बोध कराया था। ऐसा करनेसे स्वरोमे समानता भी आ गई है और प्रत्येक स्वरका लिपिगत रूप भिन्न हो गया है। इनकी स्वर-लिपिमे एकमात्रिक ह्रस्व और द्विमात्रिक दीर्घ परम्पराका निर्वाह भी है। श्री श्रीनिवासजी प्रत्येक वर्णकी खडी रेखा (पूर्ण या अपूर्ण) को स्वरकी मानते थे और उसके प्रयोगसे वर्णको सस्वर और अप्रयोगसे अस्वर समझते है। इसी प्रकार प्रत्येक वर्गके प्रथम और तृतीय वर्णोमे महाप्राणका कल्पित चिह्न लगाकर द्वितीय और चतुर्थ वणोका बोध कराया गया है। पञ्चम वर्णोकी आकृति भी निन्तात भिन्न नही है, अपने-अपने वर्गके किसी अल्पप्राण वर्णमे अनुस्वारका चिह्न लगाकर उन्हे व्यक्त किया गया था, जैसे 'प' में अनुस्वारका चिह्न " " लगाकर 'म' होता है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन और नागरी प्रचारिणी सभाके इन प्रयत्नोके अलावा देशमे अनेक विद्वानोने लिपि-सुधारके सम्बन्धमे चिन्तन-मनन किया और उनमेंसे अनेकने अपनी योजनाओको जनताके सामने रखा। इन योजनाकारोमें,नीचे लिखे व्यक्तियोके नाम उल्लेखनीय है —

(१) श्री काकासाहेब कालेलकर
(२) श्री केदारनाथ चित्रकार (काशी)
(३) स्वामी सत्यभक्त (वर्धा) भारतीय लिपि
(४) श्री हरगोविद (लखनऊ)
(५) श्री टी के कृष्णस्वामी अय्यर (हरिद्वार)
(६) आचार्य विनोबा भावे (वर्धा) लोकनागरी
(७) श्री श्रीनिवास (काशी) प्रति सस्कृत देवनागरी लिपि
(८) डॉ एम डी मनोहर (बम्बई)
(९) महापडित राहुल साकृत्यायन
(१०) श्री हरिजी गोविल

उपर्युक्त सज्जनोमेंसे अधिकाशकी योजनाएँ काफी क्रान्तिकारी है। उन्हे अपनानेका अर्थ होगा नई नागरी लिपिका निर्माण, जिसे व्यावहारिक दृष्टिसे स्वीकार नही किया जा सकता। लिपिमें सुधार किस सीमा तक किए जाएँ, इसके सम्बन्धमे श्री काकासाहेबके विचार ज्यादा तर्क सगत और व्यावहारिक है।

जाती—यह एक प्रश्न ही है। रूढ़ि-प्रियताके कारण ऐसे उपयोगी सुझावको स्वीकार न करना बुद्धिमानी नहीं कहा जाएगा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी लिपि सम्बन्धी योजनाके पश्चात् लिपि-सुधारका प्रश्न राष्ट्रव्यापी होता गया। हिन्दी भाषाका प्रचार ज्यों-ज्यों बढ़ता गया देवनागरी लिपिमें उसी त्वरासे कार्य सम्पादन करनेकी क्षमता लानेकी ओर विचारकोंका ध्यान जाने लगा।

नागरी प्रचारिणी सभाका ध्यान भी इस ओर गया और उसने सन् १९३४ में एक लिपि उपसमिति-का गठन किया। इस उपसमितिने समाचार पत्रों द्वारा लिपि-विचारकों और सुधार प्रेमियोंसे सम्पर्क स्थापित किया। अन्तमें उसने निश्चय किया कि—

(१) अभी केवल हिन्दी और संस्कृतके लिए उपयुक्त लिपिका ही सुधार किया जाना चाहिए।

(२) पठन-पाठन और लेखनमें सरलता लानेका उद्देश्य सिद्ध करनेके लिए लिखित और मुद्रित लिपिका रूप एक होना चाहिए।

(३) यद्यपि प्रचलित रीतिके अनुसार संयुक्ताक्षरोंको ऊपर-नीचे लिखने तथा मात्राओंको ऊपर नीचे आगे-पीछे लगानेकी स्वतन्त्रता हस्तलिपिमें बरती जा सकती है तथापि मुद्रण-सौन्दर्यके लिए यह आवश्यक है कि नागरी लिपिके संयुक्ताक्षर और मात्राएँ दाहिनी ओर क्रमसे एक ही पंक्तिमें बनाई जाएँ।

उपसमितिने श्री श्रीनिवासजी द्वारा सुझाई हुई लिपिकी सिफारिश की। यह लिपि ही समितिको विशेष संगत प्रतीत हुई। श्री निवासजीकी प्रति संस्कृत वर्णमालाका स्वरूप निम्नलिखित है —

प्रति संस्कृत वर्णमाला

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	
(a)	अ	अ	अ	अ	अि	अी	अु	अू	अ	अ	(a)
(b)	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	(b)
(c)	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	(c)
(d)	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	(d)
(e)	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	(e)
(f)	ष	स	ह	स	व	श	ळ	क्ष	श्र	ज्ञ	(f)

(२) शुद्ध अनुस्वारके स्थानपर "०" शून्य लगाया जाए। व्यजनके हलन्त ङ, ञ्, ण, न्, म्, की जगहपर जहाँ प्रतिकूलता न हो (यथा-वाङमय, तन्मय) शून्य लिखा जाए। अनुनासिक स्वरके लिए ' ' विन्दी का प्रयोग हो ' ' यथा-हसना, हस (पक्षी)

(३) शिरोरेखा लगाई जाए।

(४) ऋ लृ की मात्राएँ भी अन्य मात्राओके ही सदृश थोडा हटाकर दाहिनी ओर नीचे लगाई जाएँ।

(५) जिन वर्णोका उत्तरार्द्ध खडी पाई युक्त है उनका आधा रूप, खडी पाई निकालकर वनाया जाए। यथा ग पूर्ण रूप, ग अर्द्ध रूप। व पूर्ण रूप, व अर्द्ध रूप। उदाहरण—वक्र (वक्र), धर्म (धर्म), वस्त्र (वस्त्र)।

(६) जिन वर्णोका उत्तरार्द्ध खडी पाई युक्त नही है उनका आधा रूप "क" और "फ" को छोडकर हल चिह्न '्' मात्राओके ही समान वगलमे नीचे की ओर लगाकर वनाया जाए। यथा–ड का आधा रूप ड्, राष्ट्र (राष्ट्र), विद्या (विद्या), ब्राह्मण (ब्राह्मण)।

(७) ह्रस्व "इ" की मात्रा भी दाहिनी ओर लगाई जाए, यथा–विजय (विजय)

सग्रथन सम्बन्धी अनुरोध

(८) डा० गोरखप्रसादकी नवीन सग्रथन (Composing) प्रणालीका रूप इस प्रकार रहे—

(१) इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अ तथा ऋ, लृ, की मात्राओ और हलके चिह्नको थोडा-सा हटाकर दाहिनी ओर लगाया जाए।

(२) नवीन ध्वनियोंके लिए नवीन सकेत स्थित करनेकी अपेक्षा उच्चारण चिह्नो (Diacritical marks) का प्रयोग हो।

(३) सयुक्ताक्षरोका सयुक्त स्वतन्त्र रूप यथासम्भव निकाल दिया जाए।

इधर नरेन्द्रदेव समिति अपना काम कर रही थी, उधर दिल्लीमें विधान परिषदने इसी बीच शार्टहैंड, टाइप राइटिंग और टेली प्रिंटिंग आदि समस्याओपर विचार करने तथा उनके तरीकोमें एकरूपता लानेके उद्देश्यसे श्री काका साहव कालेलकरकी अध्यक्षतामें एक समिति सगठित की।

सन् १९५० में नागपुरमें एक अखिल भारतीय सम्मेलन हुआ, जिसे पुराने मध्यप्रदेश की सरकारने डॉ राजेन्द्रप्रसादजीकी अध्यक्षतामें आमन्त्रित किया था। लेकिन चूंकि तव तक सविधान परिपदने तथा उत्तर प्रदेश और वम्वई राज्यकी सरकारोने भी लिपि सुधारको लेकर समितियाँ वना दी थी, इसलिए नागपुर सम्मेलनने अपने निर्णय स्थगित कर दिए और उत्तर प्रदेशकी नरेन्द्रदेव कमेटीकी सिफारिशोको ही और अधिक विचारके लिए प्रेपित करनेका निर्णय किया। देश भरसे उनपर जो जवाव आए, उसपर से यह दिखाई दिया कि उन सुझावोसे प्राय सव सहमत है। इसलिए उत्तर प्रदेशकी सरकारने उस विपयपर सर्वमान्य निर्णय कर लेनेकी दृष्टिसे सन् १९५२ में लखनऊमें एक अखिल भारतीय सम्मेलन आमन्त्रित किया। इस सम्मेलनके अध्यक्ष थे—डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन् और उपस्थितोमें प्राय सव राज्योंके मुख्य मन्त्री, शिक्षा-मन्त्री और केन्द्रके कुछ मन्त्रीगण, शिक्षा-मन्त्रालयोंके अधिकारी, विश्वविद्यालयोके प्रमुख भापाविद्, साहित्यिक महानुभाव आदि थे।

काकासाहेबका कहना ठीक है—"जब लोग अपनी कल्पना चलाकर नई-नई लिपि देखने लगते रहते हैं। इनमेंसे कुछ लिपियाँ बहुत अच्छी हैं वैज्ञानिक हैं, तेजीसे लिखी जा सकती हैं लेकिन इतने बड़े देशमें बिलकुल नई लिपि स्वीकार कौन करेगा? जो देवनागरी बनारसमें चलती थी और जिसे सारे देशके पण्डितोंने संस्कृत करके अपनाया और जो लिपि हिन्दी-मराठी गुजराती आदि श्रेष्ठ भाषाओंने अपने लिए चलाई, उसी लिपिमें थोड़ा परिवर्तन करके इस युगकी सब आवश्यकताएँ पूरी करनेकी क्षमता लाना व्यवहार और बुद्धिमानीका रास्ता है।

व्यक्तिगत स्तरपर और संस्थागत स्तरपर देवनागरी लिपिमें सुधार, संशोधनके प्रयत्न किए गए किन्तु सरकारी स्तरपर उसके लिए प्रयत्न स्वाधीनताके बाद ही सफल हुए।

सन् १९४७ में युक्त प्रान्तीय सरकारने हिन्दीको राजभाषाके स्थानपर आसीन किया। उसने अपने उत्तरदायित्वको सम्हालनेकी दृष्टिसे एक ओर हिन्दीको समृद्ध करनेका प्रयत्न किया दूसरी ओर आचार्य नरेन्द्रदेवकी अध्यक्षतामें देवनागरी लिपि-सुधार समितिका गठन किया। इस समितिने न्यूनतम परिवर्तनसे अधिकतम लाभ के सिद्धान्तको ध्यानमें रखकर विभिन्न समस्याओंपर गम्भीरतासे विचार किया और अपने सुझाव दिए।

श्री नरेन्द्रदेव समितिने लिपि सुधारके क्षेत्रमें अबतकके किए गए प्रयत्नोंका अध्ययन और मनन किया सम्पूर्ण देशसे प्राप्त सुझावोंपर गम्भीरता पूर्वक विचार किया और निम्नलिखित रूपमें अपने नकारात्मक और स्वीकारात्मक सुझाव सामने रखे जो इस प्रकार है—

समितिके नकारात्मक निश्चय

(१) निश्चय हुआ कि श्री श्रीनिवासजीके एकमात्रिक और द्विमात्रिक आदि स्वरोंके भेद समिति-को मान्य नहीं हो सकते।

(२) अ की बारहखड़ी या काका साहेब कालेलकरके अनुसार "अ की स्वराखड़ी" नहीं बनाई जा सकती।

(३) इ की मात्रा को छोड़कर अन्य मात्राओंके वर्तमान स्वरूपमें परिवर्तन न किया जाए।

(४) किसी व्यञ्जनके नीचे कोई दूसरा व्यञ्जन वर्ण न लगाया जाय।

(५) कुछ लोग नागरी लिपिमें सुधारके नामपर आमूल परिवर्तन करना चाहते हैं जो वाञ्छनीय न होनेके कारण उन सुधारों पर विचार करनेके लिए उनके प्रेषकोंको बुलानेकी आवश्यकता नहीं है।

(६) केवल मशीनकी सुविधाके लिए कोई अवाञ्छनीय परिवर्तन न किए जाएँ।

समितिके स्वीकारात्मक सुझाव

सिद्धान्तगत और तत्कारण लिपि सम्बन्धी अनुरोध

(१) मुद्रण और टाइपराइटिंगकी सुविधाके लिए आवश्यकतानुसार मात्राओंको थोड़ा हटाकर केवल दाहिनी ओर ही क्रमसे ऊपर और नीचे लगाया जाय। यथा-महात्मा या श्री कर्ण न शङ्कित (निश्चित) क ज्ञत कर्कैमी सपूर्ण (सम्पूर्ण)।

(२) शुद्ध अनुस्वारके स्थानपर "०" शून्य लगाया जाए। व्यजनके हलन्त ङ, ञ्, ण, न्, म्, की जगहपर जहाँ प्रतिकूलता न हो (यथा-वाङमय, तन्मय) शून्य लिखा जाए। अनुनासिक स्वरके लिए ' ' बिन्दी का प्रयोग हो ' ' यथा-हसना, हस (पक्षी)

(३) शिरोरेखा लगाई जाए।

(४) ऋ ॠ की मात्राएँ भी अन्य मात्राओके ही सदृश थोडा हटाकर दाहिनी ओर नीचे लगाई जाएँ।

(५) जिन वर्णोका उत्तरार्द्ध खडी पाई युक्त है उनका आधा रूप, खडी पाई निकालकर बनाया जाए। यथा ग पूर्ण रूप, ग अर्द्ध रूप। व पूर्ण रूप, व अर्द्ध रूप। उदाहरण—वक्र (वक्र), ध-र्म (धर्म), वस्त्र (वस्त्र)।

(६) जिन वर्णोका उत्तरार्द्ध खडी पाई युक्त नही है उनका आधा रूप "क" और "फ" को छोडकर हल चिह्न '्' मात्राओके ही समान बगलमें नीचे की ओर लगाकर बनाया जाए। यथा—ड का आधा रूप ड्, राष्ट्र (राष्ट्र), विद्या (विद्या), ब्राह्मण (ब्राह्मण)।

(७) ह्रस्व "इ" की मात्रा भी दाहिनी ओर लगाई जाए, यथा—विजय (विजय)

सग्रथन सम्बन्धी अनुरोध

(८) डा० गोरखप्रसादकी नवीन सग्रथन (Composing) प्रणालीका रूप इस प्रकार रहे—

(१) इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अ तथा ऋ, ॡ, की मात्राओ और हलके चिह्नको थोडा-सा हटाकर दाहिनी ओर लगाया जाए।

(२) नवीन ध्वनियोके लिए नवीन सकेत स्थित करनेकी अपेक्षा उच्चारण चिह्नो (Diacritical marks) का प्रयोग हो।

(३) सयुक्ताक्षरोका सयुक्त स्वतन्त्र रूप यथासम्भव निकाल दिया जाए।

इधर नरेन्द्रदेव समिति अपना काम कर रही थी, उधर दिल्लीमे विधान परिषदने इसी बीच शार्टहैंड, टाइप राइटिंग और टेली प्रिंटिंग आदि समस्याओपर विचार करने तथा उनके तरीकोमें एकरूपता लानेके उद्देश्यसे श्री काका साहब कालेलकरकी अध्यक्षतामें एक समिति सगठित की।

सन् १९५० मे नागपुरमे एक अखिल भारतीय सम्मेलन हुआ, जिसे पुराने मध्यप्रदेश की सरकारने डॉ राजेन्द्रप्रसादजीकी अध्यक्षतामे आमन्त्रित किया था। लेकिन चूंकि तब तक सविधान परिषदने तथा उत्तर प्रदेश और बम्बई राज्यकी सरकारोने भी लिपि सुधारको लेकर समितियाँ बना दी थी, इसलिए नागपुर सम्मेलनने अपने निर्णय स्थगित कर दिए और उत्तर प्रदेशकी नरेन्द्रदेव कमेटीकी सिफारिशोको ही और अधिक विचारके लिए प्रेषित करनेका निर्णय किया। देश भरसे उनपर जो जवाब आए, उसपर से यह दिखाई दिया कि उन सुझावोंसे प्राय सब सहमत है। इसलिए उत्तर प्रदेशकी सरकारने उस विषयपर सर्वमान्य निर्णय कर लेनेकी दृष्टिसे सन् १९५२ में लखनऊमे एक अखिल भारतीय सम्मेलन आमन्त्रित किया। इस सम्मेलनके अध्यक्ष थे—डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन् और उपस्थितोमें प्राय सब राज्योके मुख्य मन्त्री, शिक्षा-मन्त्री और केन्द्रके कुछ मन्त्रीगण, शिक्षा-मन्त्रालयोके अधिकारी, विश्वविद्यालयोके प्रमुख भाषाविद्, साहित्यिक महानुभाव आदि थे।

हो तो उस 'ह' को हलन्त बनाना चाहिए लेकिन सुझाव था कि 'र' को हलन्त न बनाया जाए। उसके बारेमें आज जो तरीके हैं उन्हे ही चलने दिया जाए।

केन्द्रीय सरकारने सन् १९५५ मे लखनऊ परिषदके निर्णयोको मान लिया था और उसने प्रदेश राज्योको सूचित कर दिया था कि उनपर अमल किया जाए। लेकिन स्वय उत्तर प्रदेशमें और अन्यत्र भी, जैसे-जैसे उन निर्णयोपर अमल करनेकी बात आई, वैसी-वैसी कुछ दिक्कतें उभरने लगी। तब उत्तर प्रदेश सरकारने अपने राज्यकी सीमामें ही एक दूसरा लिपि सुधार सम्मेलन किया। यद्यपि उसमे अखिल भारतीय कीर्तिके भाषाविद् एव विद्वान् शामिल थे। फिर भी यह सम्मेलन उत्तर प्रदेशीय सम्मेलन था।

उत्तर प्रदेशीय लिपि सुधार सम्मेलन सन् ५७ के निर्णय

(१) सन् ५३ मे हुए अ भा लिपि सुधार सम्मेलन द्वारा सशोधित देवनागरी लिपिके स्वरो, व्यञ्जनो और अकोंके प्रचलित रूपोको स्वीकार किया जाए।

(२) ह्रस्व 'इ' की मात्रा अपवाद स्वरूप व्यञ्जनके बाई ओर ही लगाई जाए। यथा—'कि'।

(३) (अ) सयुक्ताक्षर जहाँ सम्भव हो वहाँ सशोधित वर्णोके मूलभूत अग खडी पाईको हटाकर बनाए जाएँ। लेकिन सयोज्य वर्ण 'र' को पुराने ही ढगसे मिलाया जाए।

(आ) क, फ, र और ह् को छोडकर अन्य वर्णोमे हलन्त लगाकर सयुक्ताक्षर बनाए जाएँ और (इ) ट, ठ, ड, ढ और द मे विकल्प स्वीकार किया जाए। जहाँ हलन्त लगानेसे उच्चारण-दोष आनेका डर हो, वहाँ पुरानी परिपाटीसे सयुक्ताक्षर बनाए जाएँ।

(४) 'र' के सम्बन्धमें निर्णय हुआ कि रेफके पुराने तीनो रूप मान लिए जाएँ और उनका प्रयोग पुराने ढगपर हो। यथा—

्र ॅ ^

प्रकार, धर्म, राष्ट्र

(५) लखनऊ परिषदके शिरोरेखा, विराम चिह्न, टाइप राइटरके मुद्रीपटलके (की-बोर्ड) चिह्न तथा अनुनासिक एव अनुस्वार सम्बन्धी निर्णय ज्यो-के-त्यो कायम रखे गए।

(६) उत्तर प्रदेश शासनने अपनी इस परिषदकी सिफारिशोको माना। सिर्फ उसने '९' सम्बन्धी निर्णयपर अमल नही किया।

चूँकि इस परिषदका दायरा उत्तर प्रदेश तक ही सीमित था, इसलिए भारत सरकारका शिक्षा-मत्रालय उन सिफारिशोको पूरे भारतके लिए एकदम नही स्वीकार कर सका तथा उन सुझावोपर विचार करनेके बाद उसने समस्याको हमेशाके लिए निपटा डालनेकी दृष्टिसे ८, ९, अगस्त १९५९ को राज्योके शिक्षा-मत्रियोकी एक परिषद बुलवाई। उसके पहिले देशमें इस समस्याके जो जानकार पडित गण हैं, उनका भी मत ले लेना उसने ठीक समझा। इसलिए विशेषज्ञोका एक सम्मेलन भी ४ अगस्त १९५९ को दिल्लीमें आमन्त्रित किया गया। इस सम्मेलनने जो निष्कर्ष निकाले, उन्हें मानते हुए शिक्षा-मन्त्रियोकी परिषदने निम्नलिखित प्रस्ताव किया—

खडी पाईवाले व्यञ्जनोका सयुक्त रूप खडी पाईको हटाकर ही बनाया जाना चाहिए। यथा

ख्याति, लग्न, विघ्न

कच्चा, छज्जा, व्यञ्जन

नगण्य

कुत्ता, पथ्य, ध्वनि, न्यास

प्यास, डिब्बा, सभ्य, रम्य

शय्या

उल्लेख

व्यास

श्लोक

राष्ट्रीय

स्वीकृत

यक्ष्मा

(३) अन्य व्यञ्जन

(क) 'क' और 'फ' के सयुक्ताक्षर बनानेका वर्तमान ढग ही कायम रहेगा। यथा
सयुक्त, पक्का, दफ्तर।

(ख) ङ, छ, ट, ठ, ड, ढ, और द के सयुक्ताक्षर हल् चिह्न लगाकर ही बनाए जाएँ। यथा
वाङ्मय, लट्टू, बुड्ढा, विद्या आदि
(वाङ्मय, लट्टू, बुड्ढा, विद्या नही)

(ग) सयुक्त 'र' के पुराने तीनो रूप यथावत् रहेगे। यथा
प्रकार, वर्म, राष्ट्र।

(घ) 'श्र' का पुराना रूप जैसा 'श्री' में है वैसा ही कायम रहेगा।

(ङ) 'त्र' के स्थानपर अब 'त' और 'र' का सयुक्त अक्षर 'त्र' रहेगा।

(च) 'ह' का सयुक्त रूप वर्तमान प्रणालीके साथ ही हल् चिह्‍न लगाकर भी किया जा सकेगा। यथा —
चिह्न और चिह्‍न (चिह्न नही)

(छ) सस्कृतमें सयुक्ताक्षर पुरानी शैलीसे भी लिखे जा सकेगे।

(४) अन्य निश्चय १९५३ में हुए थे वे ही कायम रहेगे। यथा

(१) शिरोरेखाका प्रयोग प्रचलित रहेगा।

(२) (क) फुलस्टापको छोडकर शेष विराम आदि चिह्न वही ग्रहण कर लिए जाएँ जो अँग्रेजीमें प्रचलित हैं। यथा

(— । ? ।)

विसर्गके चिह्नको ही कोलनका चिह्न मान लिया जाए)

(ख) पूर्ण विरामके लिए खड़ी पाई (।) का प्रयोग किया जाए।

(ग) जहां तक सम्भव हो टाइपराइटरके मुद्रीपटलमें निम्नलिखित चिह्नोंको सम्मिलित कर लिया जाए—

(% ( ) + × — * = ⌣)

(२) अनुस्वार और अनुनासिक दोनो ( ) प्रचलित रहेंगे।

यद्यपि एक प्रकारसे देवनागरी लिपिमें आवश्यक संशोधन कर उसका अन्तिम रूप निश्चित कर दिया गया है और शिक्षा-मन्त्रालय भारत सरकार द्वारा उसपर स्वीकृति की मुहर भी लगा दी गई, फिर भी अनेक लिपि-विशेषज्ञोंका और टेकनीशियनोंका स्पष्ट मत है कि लिपिको अन्तिम रूप देनेके पहले जितना विचार-विनिमय कर लेना चाहिए था नहीं किया गया और न उन टेकनीशियनोंसे उचित परामर्श किया गया जिनकी सलाह और सहयोग के बिना देवनागरी लिपि विविध मुद्रण यन्त्रोंके लिए उपयोगी नहीं हो सकती। यही कारण है कि यद्यपि लिपिका अन्तिम रूप निश्चित हुए काफी समय बीत चुका है किसी भी टाइप राइटर कम्पनीने उसका प्रयोग नहीं किया है। उनकी दृष्टिमें जो निर्णय किए गए हैं वे मशीनकी दृष्टिसे व्यावहारिक नहीं है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा-जैसी संस्था भी यह मानती है कि अ की स्वराखड़ीको न स्वीकार कर एक आवश्यक संशोधन की उपेक्षा की गई है। उसका निश्चित मत है कि आज नहीं तो कल देवनागरीको यन्त्रोंके लिए उपयोगी बनानेके लिए उसमें अ की स्वराखड़ीको अवश्य स्वीकार करना होगा।

राष्ट्रभाषा सम्मेलनके तिनसुकियामें सम्पन्न हुए १ में अधिवेशनमें इस सम्बन्धमें एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव भी पास किया गया था जो इस प्रकार है —

"केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालयकी ओरसे देवनागरी लिपिको जो अन्तिम रूप दिया गया है उसे हम स्वीकार करते हैं पर हमारा मन्तव्य है कि मन्त्रालयकी लिपि-विशेषज्ञोंकी समितिने देवनागरी लिपिके सम्बन्धमें अखिल भारतीय स्तरपर विचार नहीं किया है। हम और हमारे सभी नेता चाहते हैं कि सभी प्रदेशीय भाषाएँ देवनागरी लिपिमें भी लिखी जाएँ, ताकि प्रदेशीय साहित्य सारे भारतको सुलभ हो। इस दृष्टिसे कुछ नये चिह्न बनाना होगा और उसके लिए कुछ बनाना भी होगा। हम चाहते हैं कि मन्त्रालय इसपर ध्यान दे और ऐसे परिवर्तनके लिए विशेषज्ञोंकी समिति बनाकर विचार करे।

केन्द्रीय सरकार और उसका शिक्षा-मन्त्रालय इस दिशामें कुछ ठोस कदम उठाये और देवनागरी लिपिमें समयोचित सुधारकर उसे अन्तिम रूप दे—यह वाञ्छनीय है।

राजकाजके लिए जिस प्रकार हिन्दी राजभाषाके रूपमें स्वीकार की गई उसी प्रकार देवनागरी लिपि राजलिपिके लिए स्वीकार कर ली गई है। किन्तु हिन्दी और देवनागरीकी ये बाधाएँ यहीं समाप्त नहीं हो जाती हैं उन्हें सच्चे अर्थोंमें राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि बनना है।

आज राष्ट्रको सबसे बड़ी आवश्यकता यदि किसी वस्तु की है तो वह है राष्ट्रीय ऐक्य की।

विकासकी सभी सीढियोका आधार राष्ट्रीय एकता है। अत प्रत्येक देशभक्तका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उन सभी मार्गोका अवलम्बन करे, जो राष्ट्रीय ऐक्यके सम्वर्द्धनमे सहायक सिद्ध होते है।

राष्ट्रपिता पूज्य गाँधीजी इतने दूरन्देश थे कि उन्होंने राष्ट्रीय एकतासे सम्बन्धित उन सभी समस्याओपर बहुत पहले ही प्रकाश डाला था जो आज हमारा ध्यान आकर्षित कर रही है। राष्ट्रकी भावनात्मक एकताकी दृष्टिसे राष्ट्रभापा हिन्दीका महत्त्वाकन तथा उसके प्रचार-प्रसारका बहुत कुछ श्रेय उन्हीको है। इसीके साथ उन्होंने एक दूसरे विषयकी ओर भी सकेत किया था, जिससे एक भारतीय राष्ट्रीयताका भाव अधिक परिपुष्ट होता—और वह था सम्पूर्ण भारतकी भापाओका देवनागरी लिपिमे लिखा जाना।

लेकिन गाँधीजी के पहले भी स्वामी दयानन्द सरस्वती, वकिमचन्द्र चटर्जी, गोपाल कृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जस्टिस शारदाचरण मित्र आदि सुधी पुरुषोने देशके लिए एक सामान्य लिपिके रूपमे देवनागरीको स्वीकार कर लिया था।

स्वामी दयानन्द सरस्वती की मातृभापा गुजराती थी, फिर भी उन्होने अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' की किरणे राष्ट्रभापा हिन्दी और देवनागरी लिपिमे विखेरी थी। वस्तुत स्वामीजीने अपने विचारोके वाहनके रूपमे राष्ट्रभापा हिन्दी और देवनागरी लिपिको अपनाकर देशकी महान् सेवा की है। इसके लिए देश उनका चिरकाल तक ऋणी रहेग'।

देवनागरी लिपिके समर्थको मे जो दूसरा महत्त्वपूर्ण नाम है वह है, जस्टिस श्री शारदाचरण मित्रका। वगालके विषयमे प्रसिद्ध है कि "वगाल जिसे आज सोचता है सारा हिन्दुस्तान उसे कल सोचेगा।" स्वामीजीने यद्यपि अपने ग्रन्थ देवनागरी लिपिमे प्रकाशित कर एक युगान्तकारी कार्य किया था, फिर भी वह प्रयास व्यक्तिगत ही रहा। देवनागरी लिपिके लिए आन्दोलनकी लहर उठी वगालसे ही और उसके जनक थे श्री शारदाचरणजी। उन्होने एक लिपि-विस्तार परिपदकी स्थापना की और 'देवनागर' नामक एक पत्रिका भी निकाली। यद्यपि यह पत्रिका दीर्घजीवी न हो सकी, किन्तु श्री शारदाचरणजी ने भारतके भापा और लिपि विपयक मतभेदोकी अराजकताके वीच जिस ज्योतिको प्रज्वलित किया वह भविष्यके लिए आलोक स्तम्भ वन गई।

श्री मित्र महोदयका 'देवनागर' जिस उद्देश्यको अपने सामने रखकर चला था वह महान् था—

"जगद्विख्यात भारतवर्प ऐसे महाप्रदेशमे जहाँ जाति-पाँति, रीति, नीति, मत आदिके अनेक भेद दृष्टिगोचर हो रहे है। भावकी एकता रहते भी भिन्न-भिन्न भापाओके कारण एक प्रान्तवासियोके विचारोसे दूसरे प्रान्तवालोका उपकार नही होता। इसमें सन्देह नही कि भाषाका मुख्य उद्देश्य अपने भावोको दूसरोपर प्रकट करना है, इससे परमार्थ ही नही समझना चाहिए अर्थात् मनुष्यको अपना विचार दूसरोपर इसीलिए प्रकट करना पडता है कि उससे दूसरोको लाभ हो, किन्तु स्वार्थ साधनके लिए भी भाषाकी वडी आवश्यकता है। इस समय भारतवर्पमें अनेक भापाओका प्रचार होनेके कारण प्रान्तिक भापाओसे सर्वसाधारणका लाभ नही हो सकता। भापाओको शीघ्र एक कर देना तो परमावश्यक होनेपर भी दुस्साध्य-सा प्रतीत होता है, परन्तु इस अवस्थामे भी जव यह देखा जाता है कि अधिकाश लोग कश्मीरसे कुमारी अन्तरीप, और ब्रह्म देशसे गान्धार पर्यत हिन्दी या इसके रूपान्तरका व्यवहार करते है तव आशा है कि सवकी चेष्टा तथा अभिरुचि होनेसे कालान्तरमें प्रान्तिक भापाओके सम्मिलनसे एक सार्वजनिक नूतन भापाका आविर्भाव हो जाएगा।"

इस गन्तव्य तक पहुँचनेके लिए देवनागरमें लिपिकी एकताको पहली सीढ़ी स्वीकार किया गया था—

एक ऐसा वृक्ष भी रोपना चाहिए जिसमें एक भाषा रूपी सर्वप्रिय फल फले। भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंकी भिन्न-भिन्न बोलियोंको एक लिपिमें लिखना ही उस भाषारूपी फलका देनेवाला प्रधान अंकुर है। क्योंकि अनेक प्रान्तिक बोलियोंको सरल करनेकी पहली सीढ़ी उन्हें एक सामान्य सर्वसुलभ लिपिका वस्त्र पहनाना है जिसमें वह अपने भिन्न-भिन्न लिपियोंका परिच्छद छोड़कर एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तके निवासियोंके सम्मुख आनेपर सहजमें पढ़ी जा सकें और थोड़े ही परिश्रमसे समझी जा सकें।

न्यायमूर्ति श्री शारदाचरण मित्रके प्रयत्नसे उस समय एक लिपि विस्तार परिषद की स्थापना हुई थी। इस संस्थाके उद्देश्यको स्थापकोंने इन शब्दोंमें बाँधा था— एक लिपि विस्तार परिषद्का उद्देश्य है भारतकी भिन्न-भिन्न प्रान्तिक भाषाओंको यथा साध्य यत्नों द्वारा देवनागरी अक्षरोंमें लिखने और छपनेका प्रचार बढ़ाना जिससे कुछ समयके अनन्तर भारतीय भाषाओंके लिए एक सामान्य लिपि प्रचलित हो जाए। इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिए देवनागर का आविर्भाव हुआ।

श्री शारदाचरणजी देवनागरी लिपिके प्रचार प्रसारके लिए कितने प्रयत्नशील थे उसका पता इस बातसे ही लगता है कि सन् १९११ में प्रयागमें होनेवाले कांग्रेस अधिवेशनके समय उन्होंने राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डनजीको प्रेरित कर नागरी सम्मेलन करानेका आयोजन किया था। उस सम्मेलनके अध्यक्ष पदसे श्री कृष्णस्वामी अय्यरने जो विचार व्यक्त किए थे उन्हें यहाँ देना अप्रासंगिक न होगा—

मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूँ कि आप क्षणभर इस बातपर विचार करें कि विभिन्न लिपियोंका व्यवहार करनेसे हम कितनी बड़ी हानि उठा रहे हैं क्योंकि वे जनताके एक भागको दूसरे भागसे पृथक करती हैं। भाषा अलग-अलग हो भी किन्तु यदि उनकी लिपि एक ही हो तो लोगोंको शब्दों वाक्यों, अभिव्यक्तिके ढंगकी समानताके कारण अपनी भाषाके अतिरिक्त अन्य भाषाओंका समझना भी सरल होगा।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक भारतके उन जननायकोंमेंसे एक हैं जिन्होंने विदेशी शासनके विरुद्ध खड़े होकर जन-जागरणके लिए शंख-ध्वनि की थी। उनकी प्रकाण्ड विद्वत्ता उतनी ही महान् थी जितनी गम्भीर उनकी भारतके प्रति भक्ति थी। सभी प्रान्तीय भाषाओंके लिए जब एक लिपिका प्रश्न उठा तब दो चार व्यक्तियोंने उसके लिए रोमन लिपिकी सिफारिश की थी। भारतीय भाषाओंके लिए रोमन लिपिके समर्थनकी निरर्थकताको सिद्ध करते हुए लोकमान्य तिलकने दृढ़ताके साथ ये विचार प्रकट किए थे—

लिपि सम्बन्धी प्रश्नको टालनेके लिए एक समय यह कहा गया था कि हम सब रोमन लिपिको स्वीकार कर लें। इसके समर्थनमें एक युक्ति यह भी दी गई थी कि इससे केवल भारत ही में नहीं एशिया और यूरोपके बीच भी एक सर्वसामान्य लिपि कायम हो जाएगी। यह बात मुझे निरी भ्रमात्मक जान पड़ती है। यदि हमें सर्वसामान्य लिपिकी जरूरत है तो उस लिपिको स्वीकार करना चाहिए जो रोमन लिपिसे अधिक पूर्ण और सर्वांगपूर्ण हो। यूरोपके संस्कृत पण्डितोंने प्रकट किया है कि देवनागरी वर्णमाला उन सब अक्षरोंसे पूर्ण है जो आजकल यूरोपमें प्रचलित हैं। अतएव ऐसी हालतमें आर्य भाषाओंके लिए सर्वसामान्य लिपिकी खोजमें दूसरी जगह जाना आत्मघातक है।

युगो-युगोंके पश्चात् ही कोई देश राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जैसा कर्णधार-नेता पाकर गौरवमान बनता है। जीवनका ऐसा कौन पहलू है, कौन समस्या है जिसपर गांधीजीने प्रकाश न डाला हो, हल न उपस्थित किया हो। भारतके लिए एक सामान्य भाषा और एक सामान्य लिपिकी आवश्यकतापर उनका ध्यान तभी जा चुका था जब वे अफ्रीकासे भारत वापस भी नही आए थे। गांधीजीने समग्र देशकी भाषाओंके लिए देवनागरी लिपिको स्वीकार करनेके लिए बार-बार बल दिया है। उन्होंने एक स्थानपर लिखा है—

"लिपि विभिन्नताके कारण प्रान्तीय भाषाओका ज्ञान आज असम्भव हो गया है। बँगला लिपिमे लिखी हुई 'गीताजलि' को सिवा बगालियोंके और पढेगा कौन? पर यदि वह देवनागरी लिपिमें लिखी जाय, तो उसे सभी लोग पढ सकते है। हमे अपने बालकोको विभिन्न प्रान्तीय लिपियाँ सीखनेका व्यर्थ कष्ट नही देना चाहिए। यह निर्दयता नही तो और क्या है कि देवनागरीके अतिरिक्त तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड, उडिया और बगला—इन छह लिपियोको सिखानेमें दिमाग खपानेको कहा जाय। आज कोई प्रान्तीय भाषा सीखना चाहे, तो लिपियोंका यह अभेद्य प्रतिबन्ध ही उनके मार्गमे कठिनाई उपस्थित करता है।"

गांधीजी वाग्वीर नही कर्मवीर थे। उनकी 'कथनी' और 'करनी' मे कोई अन्तर नही रहा करता था। इसीलिए उन्होने न केवल देवनागरी लिपिका मौखिक समर्थन किया, बल्कि उन्हीकी प्रेरणासे 'नवजीवन' प्रकाशन, अहमदाबादने उनकी आत्मकथा 'सत्यनो प्रयोग' को गुजराती भाषा और देवनागरी लिपिमें प्रकाशित किया था। जिसकी भूमिकामे गांधीजीने लिखा था—

"मैं जब दक्षिण अफ्रिकामे था, तब यह स्वप्न देखा करता था कि सस्कृतसे निकली हुई सभी भाषाओकी एक समान लिपि होनी चाहिए और वह लिपि एक मात्र देवनागरी ही है।"

लेकिन यह स्वप्न अभी तक स्वप्न ही है। एक लिपिके लिए अनेक हलचले चल रही है, लेकिन बिल्लीके गलेमें घण्टी कौन बाँधे? यह काम सर्व प्रथम कौन करे?

इस समस्याको हल करनेकी दृष्टिसे "सत्यनो प्रयोग" की यह देवनागरी आवृत्ति निकाली गई है। यदि लोग इसे अपनाएँगे, तो नवजीवन पुस्तक प्रकाशन अन्य पुस्तकोको भी देवनागरी लिपिमे प्रकाशित करनेका प्रयत्न करेगा।

इस साहसका दूसरा हेतु यह है कि हिन्दी जनताको गुजराती पुस्तक देवनागरी लिपिमे प्राप्त हो। मेरा अभिप्राय यह है कि यदि गुजराती आदि भाषाकी पुस्तके देवनागरी लिपिमे प्रकाशित हो, तो उससे भाषा सीखनेकी समस्या आधी सुलझ जाती है।

भारत रत्न राजेन्द्रप्रसादजीने तो एक बार नही, अनेक बार इस बातको आग्रहके साथ कहा है कि यदि सम्पूर्ण भारतीय भाषाएँ अपने लिए देवनागरी लिपिको अपना ले तो देशका बडा कल्याण होगा।

"वर्तमान युगमें भारतीय सस्कृतिके समन्वयके प्रश्नके अतिरिक्त यह बात भी विचारणीय है कि भारतकी प्रत्येक प्रादेशिक भाषाकी सुन्दर आनन्दप्रद कृतियोका स्वादर भारतके अन्य प्रदेशोंके लोगोको कैसे चखाया जाय। इस बारेमें यह उचित ही होगा कि प्रत्येक भाषाकी साहित्यिक सस्थाएं उस भाषाकी कृतियो-को सघ लिपि अर्थात् देवनागरीमें भी छपवानेका आयोजन करे।"

—राजेन्द्रप्रसाद

असममें जब भाषाके मसलेको लेकर चारो ओर ईर्ष्या-द्वेषका धुआँ फैल गया था उस समय नेहरूजी वहाँपर गए थे और तत्कालीन कटु वातावरणको देखकर भाषाओंके विवादको मिटानेके लिए देवनागरी लिपि-की आवश्यकताको तीव्रताके साथ अनुभव किया था। यों नेहरूजीने इसके पहले भी अपनी आत्मकथा मे इस प्रकारके उद्गार प्रकट किए है —

" लेकिन भारतमें यह प्रश्न मात्र केवल एक शास्त्रीय प्रश्न नहीं है। लिपि सुधारके कार्यमें अथवा प्रोग्राम मुझे यह प्रतीत होता है कि संस्कृतकी पुत्री भाषाओं—हिन्दी अथवा मराठी और गुजरातीके लिए एक सामान्य लिपि स्वीकार की जाए। स्थिति यह है कि इन सबकी लिपियोंका उद्गम और मूल स्थान एक है और इनमें परस्पर अधिक अन्तर भी नहीं है। अतः एक सामान्य लिपिके रूपमें एक सामान्य साधन खोज निकालना कठिन न होना चाहिए।

आचार्य विनोबा भावे तो देवनागरीकी व्यापकताके बारेमें विशेष आग्रहवान है। आप देवनागरी-को राष्ट्रीय एकताकी एक मजबूत कड़ी मानते है। एक स्थानपर उन्होंने लिखा है—

"सारे भारतको एक रखनेके लिए जितने स्नेह-बन्धनोंसे बाँध सकते है उतने स्नेह-बन्धनोंकी जरूरत है। जैसे हिन्दी—यह एक स्नेह-तन्तु है। वैसे उतने ही महत्वका स्नेह-तन्तु नागरी लिपि है। आज भिन्न-भिन्न भाषाएँ अपनी-अपनी लिपिमें लोग लिखते है। साथ-साथ नागरीमें भी लिखे तो विशेष लाभ होगा! उनकी लिपि अच्छी है सुन्दर है हम उसका विरोध नहीं करते परन्तु उसके साथ-साथ ऐच्छिक तौरपर नागरीमें वह भाषा लिखना शुरू करते है तो सारे भारतकी भिन्न-भिन्न भाषाएँ दूसरोंको सीखना सुलभ होगा।

भारतकी समस्त क्षेत्रीय भाषाओंकी लिपि देवनागरी ही हो सकती है और उसे होना चाहिए। यदि देशभरमें देवनागरी लिपिको स्वीकार कर लिया जाय तो इस बातकी सम्भावना है कि वह देशके बाहर भी स्वीकार कर ली जाएगी।

आचार्य विनोबाजीका संकेत जापान और चीनकी ओर है। भारतीय और जापानी भाषाओंकी बनावट एकरूपताकी दृष्टिसे लगभग समान है। जापानी भाषाकी लिपि चित्रमय लिपि है। यह एक कठिन लिपि है। इसलिए जापानी एक नई लिपि की खोज कर रहे है। यही बात चीनी भाषाके सम्बन्धमें है। इसलिए विनोबाजीका विश्वास है कि यदि देवनागरीको भारतकी सभी प्रादेशिक भाषाएँ अपना लें तो देवनागरी लिपि पूर्वी एशियामें अपनाई जा सकती है।

दक्षिणकी मलयालम साहित्य सभा भी देवनागरी लिपिको व्यापक बनानेका स्वागत करती है। इस सभाने तो एक प्रस्ताव पास करके यह आग्रह किया था कि मलयाली भाषाके लिए अपनी लिपिके अतिरिक्त देवनागरी लिपिको वैकल्पिक रूपमें शामिल कर लिया जाय तो कहीं अधिक अच्छा होगा।

भारतमें नागरी लिपिके पास सब्बा-बल भी है ही। जनतन्त्रके युगमें संख्या बलका महत्त्व विशेष हुआ करता है। उत्तर प्रदेश बिहार, राजस्थान और मध्यप्रदेश-जैसे चार विशाल हिन्दी प्रदेश नागरी लिपिका प्रयोग करते है। नागरी लिपिका उपयोग हिन्दी भाषाके अलावा मराठी भाषाके लिए भी होता है इसलिए पूरे महाराष्ट्रकी लिपि भी देवनागरी ही है।

गुजराती तथा नागरी लिपि इतनी परस्पर मिलती-जुलती है कि एकका जानकार विना विशेष परिश्रमके दूसरी लिपि पढ सकता है। अभी कुछ ही दिन पहले तक गुजरातीमें यह प्रथा चालू थी कि पाठ-शालाके बच्चोंके लिए जितनी पुस्तकें प्रकाशित की जाती थी, उनमे गद्य भाग गुजराती लिपिमे रहता था और पद्य भाग देवनागरी लिपिमे। परिणाम यह होता था कि विद्यार्थी वर्ग सहज ही देवनागरी लिपिसे—जिसे गुजरातमें 'बाल बोध' लिपि कहा जाता है—परिचित हो जाता था। यो भी गुजरातीके दो-तीन ही अक्षर ऐसे हैं जो देवनागरीसे कुछ विशेप भिन्नता रखते है, वरना शिरोरेखाहीन देवनागरी गुजरातीके बहुत निकट पहुँच जाती है।

उडिया और बगला लिपिके अक्षर भी देवनागरीसे बहुत साम्य रखते है। असमिया लिपि तो बहुत कुछ बगला लिपि ही है। उडिया लिपिके तो अनेक अक्षर बिलकुल देवनागरी-जैसे ही है, भेद केवल शिरो-रेखाका है। जिन दिनो कागज उपलब्ध नही हुआ करता था, उत्कल प्रदेशमे कागजके स्थानपर सहजमे मिल सकनेवाला ताडपत्र इस्तेमाल किया जाता था। ताडपत्रपर लिखते समय यदि शिरोरेखा सीधी खीची जाय तो ताडपत्रके फटनेका भय रहता था। इसलिए वहाँ अक्षर लिखकर शिरोरेखा गोलाकार लगाई जाती थी।

भारतीयोका देवनागरीसे परिचित रहनेका दूसरा भी प्रमुख साधन रहा है। भारतकी भाषाओमे सस्कृत भाषाका एक विशेष स्थान है। सभी प्रदेशोमें उसका अध्ययन बडी श्रद्धाके साथ किया जाता है हिन्दुओके अधिकाश ग्रन्थ सस्कृत भाषामे हैं जो प्राय देवनागरी लिपिमे लिखे गए है। अत बहुत वडी सख्यामे सभी प्रदेशोके लोग देवनागरी लिपिसे परिचित होते है।

यदि आँकडोपर दृष्टिपात किया जाय तो एक स्पष्ट चित्र सामने उपस्थित होता है। श्री मो सत्यनारायणके शब्दोमे—हिन्दी प्रान्तोकी साक्षरताका प्रतिशत किसी अन्य प्रान्तकी तुलनामें कम होते हुए भी सम्पूर्ण भारतकी साक्षरतामे ३२ ४३ बैठता है। यदि मराठी तथा गुजरातीके साक्षरोकी सख्या हिन्दी साक्षरोकी सख्यामें मिला दी जाय तो इनका प्रतिशत भारतके कुल साक्षरोकी सख्याका ४९ २ बैठता है। इसके अलावा सस्कृत भाषा तक हिन्दी भाषाके अध्ययनके द्वारा अहिन्दी प्रान्तोमे नागरी लिपिके इतने अधिक जानकार है कि उनकी सख्या भी इसीमें सम्मिलित कर दी जाय तो नागरी लिपिमें साक्षरोका प्रतिशत ६० से भी अधिक हो जाता है। अब ज्यादा-से-ज्यादा दो करोड साक्षर ऐसे रह जाते है जो नागरी लिपिसे अनभिज्ञ है।"

ये आँकडे बहुत पुराने है। इधर देशमें साक्षरता बढी है। हिन्दीतर प्रदेशोमें हिन्दीका प्रचार बढा है। यदि वर्तमान समयमें आँकडे इकट्ठे किए जायँ तो निश्चय ही ६० प्रतिशतसे कही अधिक प्रतिशत नागरी लिपि जाननेवालोका होगा।

वर्णमाला और लिपि दो वस्तुएँ है, एक नही। वर्ण या अक्षर लिपिसे लिखा जाता है। एक ही वर्णमाला अनेक लिपिमें लिखी जा सकती है। भारतीय वर्णमाला एक है जो 'अ' से प्रारम्भ होकर 'ह' पर समाप्त होती है। विभिन्न प्रदेशोमे वह भिन्न-भिन्न लिपिमें लिखी जाती है। सभी प्रदेशोकी वर्णमालाओ-के अक्षरोकी सख्या लगभग समान है और क्रम भी सभीका लगभग एक-सा है। सभी भाषा-शास्त्री इस विषयमें एक मत है कि यह भारतीय वर्णमाला ससार भरमें सबसे सुन्दर उपयोगी तथा पूर्ण रूपसे वैज्ञानिक है।

भारतमें दो वर्णमालाएँ और हैं—एक अरबी वर्णमाला दूसरी रोमन वर्णमाला। इन दोनों ही के चमत्कार भारतीय वर्णमालाके चमत्कारोंकी तुलनामें अत्यन्त कम हैं। भारतके सम्पूर्ण प्रदेशोंके लोग भारतीय वर्णमाला (अकारादिसे हकार पर्यंत चलनेवाली) से परिचित हैं। वर्णमाला और लिपिमें भिन्नता होते हुए भी उनमें अटूट सम्बन्ध है। अतः भारतीय वर्णमालाका व्यापक ज्ञान देवनागरी लिपिके व्यापक प्रचारके लिए काफी सहायक हो सकता है होता है।

उपर्युक्त कथनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी दृष्टियोंसे अगर कोई लिपि भारतके सम्पूर्ण प्रदेशोंके लिए सामान्य लिपि बननेकी क्षमता रखती है तो वह देवनागरी ही है।

भारतमें रोमन लिपिका तो कोई स्थान है ही नहीं। यह तब तक इस देशमें है जब तक अंग्रेजी यहाँ रहती है। अंग्रेजी जिस आसनपर आज बैठी है चिरकाल तक बैठी नहीं रह सकती। अंग्रेजी इस देशमें अवश्य रहेगी किन्तु वह अपने अत्यन्त सीमित क्षेत्रमें ही रह सकेगी। अतः रोमन लिपिका यहाँ प्रश्न ही नहीं उठता। हाँ एक दूसरी लिपि है जो एक प्रश्न बनकर सामने खड़ी रहती है वह है उर्दू। उर्दू भाषा राष्ट्रभाषा की ही एक शैली है।

सरल हिन्दी और सरल उर्दू लगभग एक ही चीज है। हाँ लिपियोंकी भिन्नता उन्हें पृथक् कर देती है। अगर किसी तरह उर्दू लिपिके स्थानपर देवनागरी लिपिको स्वीकार कर लिया जाय तो न जाने कितनी समस्याएँ अपने आप सुलझ जाएँगी। दोनों लिपियोंको लेकर काफ़ी संघर्ष हुआ था। कोशिश तो यह भी गई थी कि हिन्दी नहीं हिन्दुस्तानीको राष्ट्रभाषा बनाया जाय और उसके लिए दोनों लिपियाँ (उर्दू और नागरी) स्वीकार की जायें।

जब कोई प्रश्न राजनैतिक बना दिया जाता है तब न्याय और सिद्धान्तकी बातको एक ओर रखकर समझौतेकी भाषा अपनायी जाती है। भारतमें भी यही होनेवाला था पर वह हो न सका। हिन्दी ही राष्ट्रभाषा बनी और देवनागरी राष्ट्रलिपि। स्वाधीनता प्राप्तिके बाद यह प्रश्न भी उत्तर प्रदेशमें किया गया था कि यदि उर्दूके साहित्यकार सामूहिक रूपसे नागरी लिपिको अपना लें और ऐसी घोषणा कर दें तो हिन्दी और उर्दू—दोनों को उत्तर प्रदेश (उस समय युक्तप्रान्त) की भाषाएँ मान ली जायँ। किन्तु यह योजना विफल ही रही। इस सुझाव के देनेवालोंकी यह धारणा थी कि 'दो लिपियोंवाली एक हिन्दुस्तानी' की अपेक्षा "एक लिपिवाली दो भाषा—हिन्दी-उर्दू" ज्यादा ठीक होगा।

उर्दूके साहित्यकारोंसे आज भी यह अनुरोध तो किया ही जा रहा है कि वे उर्दू लिपिके स्थानपर नागरी लिपिको स्वीकार कर लें। इधर हिन्दीके साहित्यकार और प्रकाशक इस बातका प्रयत्न कर रहे हैं, और इस दिशामें काफ़ी काम हो भी चुका है कि उर्दूका जितना भी अच्छा साहित्य है उसे देवनागरी लिपिमें छाप लिया जाय। ऐसी आशा की जाती है कि कभी न कभी उर्दू लिपिका आग्रह छोड़ा जाएगा और देवनागरीको स्वीकार कर लिया जाएगा।

भारतवर्षमें कुछ इस प्रकार की भी बोलियाँ हैं जिनके पास अपनी कोई लिपि नहीं है। विभिन्न अंचलोंमें रहनेवाले आदिवासियोंके पास उनकी कोई लिपि नहीं है। असम प्रदेशके अकेले नागा क्षेत्रमें १३–१४ बोलियाँ हैं। जहाँ-जहाँ ईसाई मिशनरी पहुँचे हैं वहाँ-वहाँ उन्होंने इन आदिवासियोंको न केवल ईसाई बनाया है, वरन् उन्हें पूर्णतया अभारतीय बना दिया है। उनकी बोलियों को रोमन लिपि दी है। यह रोमन

लिपि उनकी बोलियोके लिए उपयुक्त भी नही पडती है क्योकि रोमन लिपि उन ध्वनियोको लिख सकनेमे अपनेको असमर्थ पाती है जो ध्वनियाँ उन लिपियोमे विद्यमान है, फिर भी अन्य किसी लिपिके अभावमें उन्हे रोमन लिपि स्वीकार करनी पडी है।

भारतके विभिन्न अचलोमे रहनेवाले इन आदिवासियोकी बोलीको अगर देवनागरी लिपि दे दी जाय, तो एक ओर तो उनकी बोलियोको एक अच्छी लिपि मिल जाएगी, जिससे वे आज तक वचित रही है, दूसरी ओर उनका परिचय सहज ही उस लिपिसे हो जाएगा जो राष्ट्रकी सामान्य लिपि होगी।

सन् १९५२ में अनुसूचित जातियोका एक सम्मेलन दिल्लीमे हुआ था। इस सम्मेलनमे जहाँ आदिवासियोके सम्बन्धमें राष्ट्रपतिने अनेक उपयोगी सुझाव दिये वहाँ उन्होने उनकी बोलियोकी लिपिके सम्बन्धमें एक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिया था—

"मेरा यह विचार है कि अन्य बालकोकी तरह ही जन-जातियोंके बालकोको भी अपनेको दो लिपियोंसे परिचित करना होगा। एक तो उस भाषाकी लिपि होगी जो उनके चारो ओर वोली जाती है और दूसरी हिन्दी लिपि होगी। सविधानके अनुसार भारतकी लिपि हिन्दी होनेवाली है। सम्भवत यह वाछनीय होगा कि सब जन-जातियोकी भाषाके लिए हिन्दी लिपिको ही अपनाया जाय, क्योकि हर हालतमे जन-जातियोंके लोगोको हिन्दी तो किसी-न-किसी अवस्थामें अखिल भारतीय प्रयोजनोके लिए सीखनी ही होगी और उनकी अपनी किसी लिपिके अभावमें यह कही बेहतर है कि उनकी भाषा उस लिपिको अपनाए जो सर्वाधिक व्यापक लिपि होनेवाली है और जो वास्तवमे आज भी देशमें सर्वाधिक व्यापक लिपि है।"

सभी प्रान्तीय भाषाओके लिए एक सामान्य लिपिके रूपमें जब देवनागरीका सुझाव दिया जाता है और जब उसका समर्थन अकाटच तर्को द्वारा किया जाता है, तव कुछ मौलिक प्रश्न भी उठ खडे होते है और कुछ आशकाएँ भी। तस्वीरके दूसरे पहलूपर भी हमें विचार करना ही चाहिए।

इस सिलसिलेमें जो प्रश्न, जो शकाए उठाई जाती है वे कुछ इस प्रकार की है—

(१) केवल लिपिका भेद मिटा देने मात्रसे अन्य भाषाओका अध्ययन सुगम कैसे हो सकता है? अँग्रेजीको नागरी लिपिमें लिख देने मात्रसे क्या अँग्रेजी-ज्ञान न रखनेवाला कोई व्यक्ति उसे समझा सकेगा?

(२) भिन्न भिन्न भाषाओकी भिन्न-भिन्न लिपियाँ रहे, यह स्वाभाविक ही है। लिपिका भेद मिटा देने मात्रसे सब लोग भाषाओको पढनेमें प्रवृत्त होगे ही—ऐसी बात भी नही है।

(३) यदि देवनागरीको भारतीय भाषाओकी सामान्य लिपि स्वीकार कर लिया जाय तो वर्तमान प्रान्तीय लिपियोका क्या होगा? क्या उन्हे सदाके लिए लुप्त होने दिया जाएगा।

(४) इन प्रान्तीय लिपियोमें जो असीम प्रान्तीय साहित्य पडा है, लिपिके लुप्त होते ही उसका क्या होगा? लिपिमें परिवर्तन कर इस अमूल्य साहित्य-भडारको गँवाना कहाँ तक बुद्धिमानी होगी?

(५) आज जब भाषाओंको लेकर इतनी तनातनी है तव क्या यह उचित होगा कि एक नये लिपि आन्दोलनको अकुरित किया जाय?

ये प्रश्न ऐसे है जिनकी उपेक्षा नही की जा सकती और जिनपर गम्भीरतासे विचार करना होगा।

(१) भारतकी प्रादेशिक भाषाओंका पारस्परिक सम्बन्ध कुछ ऐसा है कि केवल लिपि परिवर्तनसे अन्य भाषाओंका समझना और अध्ययन करना सुगम हो सकता है। सभी भाषाएँ संस्कृतसे सम्बन्ध रखती हैं। संस्कृतकी प्रचुर शब्दावली सभी प्रादेशिक भाषाओंमें विद्यमान है। दक्षिण तक की भाषाओंमें संस्कृतके शब्द कम नहीं हैं अतः इस शब्दावलीसे परिचित होनेके कारण बहुत कुछ समझा जा सकता है।

अँग्रेजीका उदाहरण देना गलत है। अँग्रेजी पूर्ण रूपसे एक विदेशी भाषा है। अँग्रेजी और भारतकी प्रादेशिक भाषाओंमें किसी प्रकारका कोई साम्य नहीं है।

(२) प्रत्येक भाषाके लिए एक अलग लिपि हो ही—यह आवश्यक नहीं है। यूरोपमें भाषाएँ अनेक हैं पर उनकी लिपि एक है। भारत एक विशाल देश है। उसमें अनेक भाषाएँ हो सकती हैं, पर यह आवश्यक नहीं कि उनकी लिपियाँ भी भिन्न भिन्न रहें। बड़े लाभके लिए छोटे लाभकी हानि सहना अनुचित नहीं। दूसरे, जो सुझाव अभी दिया जा रहा है वह भी क्या है? ही क्या नहीं। प्रादेशिक लिपिके साथ-साथ नागरी लिपिमें भी लिखनेका प्रश्न है।

(३) प्रत्येक लिपिमें परिवर्तन होते रहते हैं। कालान्तरमें एक ही लिपिका रूप इतना बदल जाता है कि उसके आदि और अन्तके रूपोंमें कोई साम्य नहीं दिखाई देता। इसी प्रकार अनेक नई लिपियाँ अस्तित्वमें आती हैं और अनेक विलीन हो जाती हैं। दूसरे, आज तो इन लिपियोंको पूर्ण रूपसे हटानेका प्रश्न भी नहीं है। लिपि परिवर्तनका काम जल्दी नहीं हो सकता। प्रत्येक सुधार और प्रत्येक परिवर्तनमें यही ध्यान रहना चाहिए कि वह शनैः-शनैः हो और उसे क्रान्तिका रूप न दिया जाय। जब परिवर्तन धीरे-धीरे किया जाएगा तो वह सहनीय हो जाता है और जनता नई लिपिको धीरे-धीरे स्वीकार करेगी। इस तरह कालान्तरमें यदि भारतीय लिपियोंकी बहुलता मिट जाय तो राष्ट्रीय भावनाकी दृष्टिसे उचित ही होगा।

(४) यही बात साहित्यके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। किन्तु धीरे-धीरे ही इसमें परिवर्तन होना है। यदि हम प्रान्तीय साहित्यके अच्छे ग्रन्थको धीरे-धीरे देवनागरी लिपिमें भी प्रकाशित करते चलें तो समस्या पैदा न होगी। देवनागरीमें प्रकाशित प्रान्तीय साहित्यका क्षेत्र स्वभावतः व्यापक होगा। आर्थिक दृष्टिसे भी यह हानिकारक सिद्ध न होगा। जहाँ तक प्राचीन साहित्यका प्रश्न है उसका जितना अंश सुन्दर है, शक्तिशाली है, समृद्ध है उसका अंश अपने आप देवनागरीमें अपना स्थान बना लेगा। रवि ठाकुर, शरत, प्रेमचन्द, प्रसाद, मैथिलीशरण, वल्लतोल, तमिल कवि भारती और इसी प्रकारके समृद्ध साहित्यकारोंकी रचनाएँ भाषा और लिपिकी सीमाएँ पारकर अनुवादके माध्यमसे न केवल देशमें वरन् विदेशोंमें भी पहुँच गयी हैं। सुन्दर समृद्ध साहित्य नष्ट नहीं हो सकता। उसमें अमर रहनेकी अदमनीय शक्ति रहती है।

(५) भाषाओंको लेकर आज जो तथाकथित समस्याएँ दिखाई देती हैं वह क्षणिक राजनीतिक परिणाम है। वह समस्या कितनी भी गम्भीर हो, है क्षण स्थायी। ज्यों-ज्यों हममें राष्ट्रीय भावनाका उदय और विकास होगा त्यों त्यों हम अपनी क्षुद्र सीमाओंसे ऊपर उठेंगे। ज्यों ज्यों हमें अपनी राष्ट्रीय गौरवका भान होगा हम इस प्रकारके विघटनकारी विचार रखना छोड़ कर एकताका भाव अनुभव करेंगे।

इस प्रकार सांस्कृतिक दृष्टिसे एक लिपि बनानेका प्रश्न विशेष महत्त्व रखता है। देवनागरी लिपिको एक सामान्य लिपिके रूपमें स्वीकार कर लेनेसे क्या-क्या लाभ होंगे उनको यहाँ बतलाना भी कठिन है।

भारतमें सर्व सामान्य एक लिपिके विस्तारका प्रश्न कोई नया प्रश्न नही है। गत ६० वर्षोमे अनेक वार यह चर्चाका विपय वना है। देशके कर्णधारोका, विद्वानोका और दूरदर्शी मनीपियोका समर्थन इसे प्राप्त होता गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अव वह ममय आ गया है जव उस प्रश्नका हल निकालकर उसपर अमल करना चाहिए। यदि दूरदर्शी विद्वान् और नेतागण विचार पूर्वक एक निश्चित योजना तैयार करें और उसे कार्यान्वित करनेका प्रयत्न करे तो विशेप सफलता मिलनेकी सम्भावना है।

प्रादेशिक भापाओके लिए देवनागरी लिपिका प्रयोग प्रारम्भ हो, इस दिशामे काम करनेके लिए कुछ सुझाव इस प्रकार है—

१—प्रान्तीय भापाओकी ऐसी पुस्तके, जिनके प्रति जनतामे सहज आकर्पण है, देवनागरी लिपिमे भी प्रकाशित की जायँ।

२—दूसरी भाषाओकी ऐसी पुस्तकोका, जिन्हे पढनेके लिए लोग इच्छुक रहते है, प्रान्तीय भाषामे अनुवाद करके उन्हे देवनागरी लिपिमें प्रकाशित किया जाय।

आचार्य विनोवा द्वारा लिखित 'गीता-प्रवचन' एक ऐसा ही ग्रन्थ है, जिसका अध्ययन-मनन प्रत्येक जिज्ञासु करना चाहता है। विनोवाजीके सुझावोके अनुसार मूल पुस्तकका अनुवाद १८ भापाओमे हो चुका है। है। सभी अनुवाद भापा-विभिन्नता रखते हुए भी देवनागरी लिपिमे प्रकाशित हुए है।

३—प्रान्तीय भाषाओके समाचार-पत्र यदि अपने कुछ कालमोमे प्रान्तीय भापा और देवनागरी लिपिका प्रयोग करे, तो लाखो पाठक देवनागरी लिपिसे सहज ही परिचित हो सकते है।

४—शालाओकी पाठ्य-पुस्तकोमें जितने भी पद्य दिये जायँ, वे प्रान्तीय भापा और देवनागरी लिपिमें रहे। प्रारम्भिक वर्गोमे नागरी लिपिके लिखानेका आग्रह रखा जाय। वे नागरी लिपिमें लिखी अपनी प्रान्तीय भाषा पढ सके—इतना ही पर्याप्त समझा जाय।

५—अहिन्दी प्रदेशोके पुस्तकालय, वाचनालय और शालाओमें नागरी लिपिके वडे-बडे चार्ट टाँगे जायें जिनमें समकक्ष प्रान्तीय लिपिके अक्षर भी रहे।

इसी दिशामे श्री वासुदेव द्विवेदीजीने भी कुछ सुझाव दिये है उन्हे भी यहाँ दिया जा रहा है —

१—सभी प्रादेशिक भापाओंके सभा-सम्मेलनोमे यह प्रस्ताव रखा जाय और उसे वहुतसे और यदि सम्भव हो तो निर्विरोध रूपमें पारित करानेका प्रयत्न किया जाय।

२—विभिन्न प्रदेशोकी सरकारो, साहित्यिक सस्थाओ, प्रकाशको तथा लेखकोंसे नागरीमे भी प्रतिवर्ष कुछ चुनी हुई पुस्तकोंके प्रकाशनके लिए अनुरोध किया जाय।

३—अन्य भापाओकी कृतियोको नागरी लिपिमें प्रकाशित करनेके मार्गमे जो कुछ लिपि सम्वन्धी कठिनाइयाँ है, उनका अखिल भारतीय स्तरपर विचार विमर्श कर उन्हे दूर करनेके सिद्धान्त निश्चित किये जायें।

४—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तथा राष्ट्रभापा प्रचार समिति, वर्धा के द्वारा विशेप रूपसे कुछ अन्य भापाओकी पुस्तकोका नागरी लिपिमे प्रतिवर्प प्रकाशन किया जाय।

५—विभिन्न सस्थाओ द्वारा अव तक नागरी लिपिमे जो अन्य भापाओकी पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है, उनका अधिकाधिक प्रचार किया जाय तथा उनकी विक्री वढाई जाय।

६—सर्वप्रथम अन्य भाषाओंके साहित्यसे ऐसे शब्दोंका संकलन किया जाय, जो निकटकी दृष्टिसे सबके लिए अधिक-से-अधिक परिचित हों तथा भाषाकी दृष्टिसे संस्कृत-बहुल हों।

७—केवल नागरी लिपिके विस्तारके लिए ही एक अलग संस्था बनाई जाय जो सभी सम्भव एवं वैध उपायोंसे इस आन्दोलनको आगे बढ़ानेके लिए प्रयत्न करे और उसके संचालनके लिए राजकीय सहायता भी प्राप्त की जाय।

८—अनेक भाषाओंके अध्ययनमें रुचि रखनेवाले व्यक्तियोंका एक सम्मेलन बुलाया जाय तथा उनका संगठन किया जाय।

९—समय-समय एवं स्थान-स्थानपर विभिन्न भाषाओंकी सरल एवं ललित कविताओंके पाठका आयोजन किया जाय।

१०—सभी प्रादेशिक पाठ्य-पुस्तकोंमें टिप्पणीके साथ एक-दो अन्य भाषाओंकी कुछ ऐसी कविताओंका प्रकाशन किया जाय जो अधिक संस्कृत शब्द होनेके कारण सबके लिए सुबोध हो।

अन्तमें इस बातको दुहरा देना अप्रासंगिक न होगा कि यदि देवनागरी लिपिको एक सामान्य लिपि मान लिया गया तो वह भारत राष्ट्रकी एकताके लिए एक मजबूत कड़ी सिद्ध होगी। राष्ट्रपिता गांधीजीके इस कथनसे हम प्रेरणा लें यह वांछनीय है।

हमारे देशकी जनताका बहुत बड़ा हिस्सा निरक्षर है। उसे साक्षर बनानेकी दिशामें एक [illegible] लिपिका प्रयोग महत्त्वपूर्ण कदम होगा। समान लिपिका प्रयोग देशकी एकता के संवर्द्धनके लिए सहायक होगा। तमिळ तेलुगु कन्नड़ आदि दक्षिणी भाषाएँ भी देवनागरी लिपिमें लिखी जायें। समान [illegible] हो तो किसी भी भाषा-भाषीके लिए अन्य प्रादेशिक भाषाएँ सीखना आसान हो जायगा।

देवदास गाँधी

पाँचवाँ खण्ड

राष्ट्रभाषा प्रचार

श्री कान्तिलाल जोशी

राष्ट्रभाषा हिन्दी

भारत एक विशाल देश है। हजारो मील तक फैला हुआ है। उत्तरमे हिमालयसे लेकर दक्षिणमें कन्याकुमारी तक लगभग २००० मीलका भूभाग है और पश्चिमी छोर द्वारिकासे लेकर पूर्वी छोर तक लगभग १७०० मीलका विस्तार है। इतने बडे विशाल देशमे यह स्वाभाविक ही है कि अनेक भाषाएँ तथा बोलियाँ बोली जाएँ। भिन्न भिन्न आचार-विचार, वेशभूषा एव धर्मका आचरण करनेवाले तरह-तरहके लोग भारतकी इस विविधताका दर्शन कराते है। ऊपरसे लगता है कि यहाँ बडी विषमताएँ है, पर अन्तरगमें इन बाह्य विविधताओके बावजूद एक अखण्ड सास्कृतिक एकता सदासे यहाँ चली आ रही है। यह सास्कृतिक एकता अपने आप ही नही हुई है। इसका निर्वाह और इसका पोषण यहांके लोक-जीवनकी परम्पराओने किया है। देशकी भौगोलिक स्थिति भी इसमें सहायक हुई है। उत्तर में एक छोरसे दूसरे छोर तक फैला हुआ हिमालय एक दीवारके रूपमे है जो भारतको अन्य देशोंसे अलग करता है। पश्चिम, पूर्व तथा दक्षिणके किनारोपर लहराते हुए सागरने इसकी भौगोलिक इकाईको अक्षुण्ण रखा है।

भारतमें सदासे ही यह भावना रही है कि हिमालयके दक्षिणकी ओरका सारा देश एक है। यहांके लोकजीवनकी सदा यह आकाक्षा रही है कि चारो दिशाओकी सीमाओपर स्थित चारो तीर्थोंका दर्शन अपने जीवनकालमें किया जाय। उत्तरमे वद्रीनाथ, पश्चिममें द्वारिका, पूर्वमें जगन्नाथपुरी, दक्षिणमे कन्याकुमारी ये चार प्रमुख तीर्थ है, जिनका दर्शन करनेसे समूचे भारतकी यात्रा स्वत हो जाती है। इनके दर्शन करना जीवनका एक लक्ष्य रहा है अत स्वभावत भारत-दर्शन स्वत हो जाता है। इसके अतिरिक्त समय-समयपर नियमित रूपसे विभिन्न प्रदेशोके निश्चित स्थानोपर बडे-बडे मेले लगते रहे है, जहाँ लाखोकी सख्यामे भारतके कोने-कोनेसे लोग एक साथ इकट्ठा होते हैं। इससे भाषा भेदके होते हुए भी सास्कृतिक एकताको पोषण मिलता रहा है। राजनैतिक दृष्टिसे अनेक परिवर्तन हुए पर लोक-जीवनकी आतरिक एक रूपता इनके कारण बनी रही।

भारतमे अनेक भाषाएँ बोली जाती है। पुराने कालमें भी ऐसा ही था। अनेक भाषाएँ बोली जाती थी। ऊपर दर्शाए हुए लोक-जीवनके लिए यह आवश्यक था कि कोई एक भाषा प्रधानता रखे। इसी-

लिए बहुत प्राचीन कालमें यह प्रधानता संस्कृतको मिली थी। उस समय भी भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती थी पर संस्कृतको अन्तर्प्रान्तीय भाषाका सम्मान मिला था। कश्मीरसे लेकर कन्याकुमारी तकके विद्वानोंने उसमें रचनाएँ की और भारतकी एकताको सुदृढ़ किया। आंचलिक भाषाएँ (विविध प्राकृतें) अपने-अपने क्षेत्रमें व्यवहारमें आती थी पर अन्तर्प्रान्तीय क्षेत्रमें संस्कृतका उपयोग होता रहा। वह न केवल राष्ट्रभाषा ही थी वरन् वह राजभाषाके रूपमें भी समादर पाती रही। संस्कृतने हमारी सांस्कृतिक एकता की वह पृष्ठभूमि तैयार की है जो हमारे देशपर अनेक संकटोंके आनेपर भी आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है। समय समयपर वैदिक प्राकृत पाली प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाएँ भी भारतके अन्तर्प्रान्तीय रंगमंचपर आईं परन्तु अपनी परम्परा और साहित्यिक महत्त्वके कारण संस्कृतकी प्रधानता एक अखिल भारतीय भाषाके रूपमें सदा बनी रही।

मुसलमानोंके आनेके पश्चात् इस परिस्थितिमें अन्तर पड़ा। वे एक अलग धर्म अलग संस्कृति और अलग भाषा लेकर यहाँ आये। उन्हें यहाँके जनजीवनसे सम्पर्क स्थापित करना था अत उन्होंने यहाँकी जो व्यापक लोकभाषा रही उसीको प्रधानता दी और उसे अपनाया। उन्होंने उसका नाम हिन्दवी रखा। उसे रेख्ता भी कहा गया है। मुसलमान एक शासकके रूपमें आये थे अत उन्होंने इस भाषाके माध्यमसे अपना काम-व्यवहार प्रारम्भ कर दिया। इसी हिन्दवीका वर्तमान रूप हिन्दी आज संस्कृतका उत्तराधिकारी बना है। इसमें न केवल उत्तर भारतके बल्कि पश्चिम तथा पूर्व भारतके सन्तों और साधुओंकी वाणी प्रकट हुई है। वाणिज्यके क्षेत्रमें भी इसे अपनाया गया। व्यापारी लोग आपसके व्यवहारके लिए इसी भाषाका उपयोग करते थे। अंचलोंके बीच यह शृंखलाके रूपमें थी। राजभाषाके रूपमें इसे मान्यता न मिली पर राष्ट्रभाषाके रूपमें इसका सर्वत्र समादर होता रहा। इसके अनेक रूप देखनेको मिलते हैं। कहीं अधिक अरबी फारसीके प्रभावके कारण इसने उर्दू का रूप धारण किया कहीं सामान्य बोलचाल और व्यवहारकी भाषाके रूपमें हिन्दुस्तानी का रूप प्रकट हुआ पर संस्कृत के प्रभावके कारण हिन्दी का रूप प्रमुख रहा। हमारी प्रादेशिक भाषाओंकी धात्री संस्कृत रही है अत हिन्दीमें भी उनकी तरह संस्कृत शब्दोंकी प्रधानताका होना स्वाभाविक था। वस्तुत भाषाविज्ञानकी दृष्टिसे देखा जाय तो उर्दू हिन्दुस्तानी तथा हिन्दीमें कोई मौलिक भेद नहीं है ये वास्तवमें भिन्न-भिन्न प्रभावोंके कारण एक ही भाषाके भिन्न-भिन्न रूप है।

मूलकालमें हिन्दी अन्तर्प्रान्तीय व्यवहारकी भाषा रही है। इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। हिन्दीमें वीरगाथा-कालके पश्चात् भक्ति-काल आया है जिसके प्रमुख सन्तकवि सूरदास और तुलसीदास हैं। *सूरने अपने गुरुके रूपमें वल्लभाचार्यजीको माना है। सूरका कथन है —*

श्री वल्लभ नखचन्द्र छटा बिनु सब जग माहिं अँधेरो॥

वल्लभाचार्यजी विशिष्टाद्वैतवादके प्रणेता थे। वे दक्षिण भारतके थे। उन्होंने तथा उनके सम्प्रदायके अन्य गुरुओंने अपने सम्प्रदायको व्यापक बनानेके लिए हिन्दीके व्रजभाषा रूपको ही माध्यम चुना। सूरके पद इस सम्प्रदायके भारत व्यापी अनुयायियोंमें बड़े भक्ति भावसे गाये जाते थे। गुजरात तथा बंगालमें इस सम्प्रदायके अधिक अनुयायी थे। अत वहाँ सूरके पद अधिक लोकप्रिय हो सके। इस प्रकार दक्षिण और उत्तरका सांस्कृतिक मधुर मिलन हिन्दीके माध्यमसे होता रहा।

महाराष्ट्रके सन्तकवियोने हिन्दीमे सुन्दर एव भावपूर्ण रचनाएँ की है। सन्तकवि नामदेवका महाराष्ट्रके मन्त साहित्यमे विशेप स्थान है। उनका जीवन काल सम्वत् १३२७ से १४०७ तक माना जाता है। उस युगमे भी उनका हिन्दीमे लिखना हिन्दीकी व्यापकताको सिद्ध करता है। उनकी रचना की कुछ पक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती है —

माइ न होता वाप न होता, कर्म न होता काया।
हम नहीं होते, तुम नहीं होते, कौन कहाँ से आया ?
चन्द्र न होता, सूर्य न होता, पानी पवन मिलाया।
शास्त्र न होता, वेद न होता, करम कहाँसे आया ?

सिक्खोके धार्मिक ग्रन्थ "गुरु ग्रन्थ साहव" मे हिन्दीकी अनेक कविताएँ मिलती हैं। गुरुनानक तथा गुरु गोविन्द सिह हिन्दीके अच्छे कवि थे। गुरुनानकका जन्म सवत् १५२६ माना जाता है और 'गुरु ग्रन्थ' साहव' का सकलन समय सम्वत् १५०६ से १५४६ तकका माना जाता है। अत उसमे दी हुई हिन्दी रचनाएँ इस वातका प्रमाण है कि उस समय पजावमे हिन्दीका काफी प्रचलन था तथा एक अन्तर्प्रान्तीय भाषाके रूपमें उसका महत्त्व माना जाता है।

वगला कवि भरतचन्द्रने अपनी रचनाओमे हिन्दीकी भी रचनाएँ की है। गुजरातके भक्तकवि "प्रेमानन्द" के पूर्व सभी कवि व्रजभाषामे कविता करते रहे। इस कारण प्रेमानन्दको यह सकल्प करना पडा कि वे गुजरातीमें ही रचना करेंगे, इसके विना गुजरातीकी प्रगति सम्भव नही। श्यामल भट्टने तुलसी-कृत रामायणके आधारपर गुजरातीमे दोहे और चौपाइयाँ लिखी है। कवि 'दयाराम' और 'भालण' की कविताएँ हिन्दीमें मिलती है। मीरा गुजरातकी कवियित्री मानी जाती है पर साथ-साथ हिन्दीकी भी भक्त कवियित्री मानी जाती है। उन्होने दोनो भाषाओमें अपने हृदयके भावोको भजनके माध्यमसे व्यक्त किया है। मैथिलीके कवि विद्यापतिके सम्बन्धमे भी यही विवाद चल रहा है कि उन्हे हिन्दीका कवि माना जाय या वगलाका। विद्यापति तिरहुतके राजा शिवसिहके दरबारी कवि थे। इनका काल सम्वत् १४६०के के आसपासका माना जाता है। ठेठ पूर्वमें असममे नौगाँव जिलेके लेडू पुखरी गाँवके माधवदेवकी भी कविताएँ हिन्दीमें मिलती है। उनका काल सम्वत् १४३० का माना जाता है। उनकी रचनाकी कुछ कुछ पक्तियाँ यहाँ दी गई है जो व्रजभाषाकी है —

अवहुँ माय देखत मिलत अनन्दा,
वालक माथे उगत भयो हमरे नयन चकोर श्याम चन्दा।

दक्षिणमे गोलकुण्डाके शासक मुहम्मदकुल्ली कुतुबने हिन्दीमें रचना की थी। उनका काल भी सम्वत् १५२३–१५२७ का माना जाता है। उनकी कविताकी कुछ पक्तियाँ नीचे दी जाती है —

रुत आया कलियोंका हुआ राज,
हरि डालिके सिर फुलोंका ताज।

केरलके त्रावणकोर नरेश श्रीमन्त तपूरानने राज्यके कुल देवता श्री पद्मनाथ स्वामीकी स्तुतिमें हिन्दी (व्रजभाषा) में कविता लिखी, जो आज भी भजनके रूपमे वहाँ अत्यन्त आदरके साथ गाई जाती है।

महाराष्ट्रके छत्रपति शिवाजी महाराजके दरबारमें हिन्दीके कवि भूषण को विशेष प्रतिष्ठा मिली थी। उन्होने शिवाजी महाराजकी प्रशंसामें जो रचनाएँ की है, वे हिन्दी की है। स्वयं शिवाजीने भी हिन्दीमें पद रचना की है उनका जो एक पद प्राप्त है वह इस प्रकार है —

जय ही महाराज गरीब निवाज।
बन्दा कमीना कहलाता हूँ साहिब तेरी ही लाज।
मैं सेवक प्रभु सेवा माँगूं इतना है सब काज।
छत्रपति तुम सेवकार "शिव" इतना हमारा अर्ज।

महादाजी सिन्धियाने मराठा राज्यकी स्थापना ग्वालियरमें की। उन्हें कविता करनेका शौक था। वीर एवं राजनीतिज्ञ तो थे ही इसके अतिरिक्त वे कृष्णके अनन्य भक्त थे। उन्होने ब्रजभाषामें कृष्णपर सुन्दर रचनाएँ की है। कृष्णकी वंशीका वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

भरी बँसुरिया बाँसकी बहु तप कीन्हों कौन?
उन अधरन लागी रहे, हम चाहत हैं जौन॥

\+ \+ \+

एहो ताल, तमाल तरु बकुल, कदम्ब रसाल!
मो सौं कहियु करि, कृपा कित माधव नन्दलाल?

\+ \+ \+

ऊधो तुम उपदेश कर ऊधो सबै रस जान।
कुटिल होत सँग कुटिलके, ज्यों गुन बाम कमान॥

मुसलमान शासकोंके पश्चात् अँग्रेजोंका शासन धीरे-धीरे फैला। वे अपने साथ अँग्रेजी सभ्यता एवं अँग्रेजी भाषाको लाये और उसको प्रतिष्ठित करना चाहते थे। इस सम्बन्धमें लॉर्ड मेकॉलेके विचार इस बातके द्योतक है कि वे किस प्रकार अँग्रेजीका प्रभुत्व सारे देशमें बढ़ाना चाहते थे तथा यहाँकी प्राचीन भाषाओं और परम्पराओंको किस प्रकार नष्ट करना चाहते थे? इसके विपरीत अँग्रेजोंके शासनका प्रतीकार करनेके लिए देशमें राष्ट्रीय चेतना धीरे-धीरे जाग रही थी। सन् १८५७ में राष्ट्रीय भावनासे प्रेरित होकर यहाँके लोगोंने एवं राजाओंने अँग्रेजोंका इस देशसे निष्कासन करनेके लिए बड़े पैमानेपर प्रयत्न किया। यह हमारे स्वतन्त्रता संग्रामकी सर्वप्रथम लड़ाई थी। इसमें हम आपसी भेदभावोंको भूलकर एक रूप हुए और हमने विदेशी शासनको समाप्त करनेका संकल्प किया। यह लड़ाई प्रधानतः उत्तर भारतमें लड़ी गई। यह निर्विवाद है कि इसका सूत्रपात एक भाषाके माध्यमसे ही हुआ होगा। हिन्दी सारे भारतमें माध्यम का काम कर रही थी। अब यदि खोजबीनकी जाय तो उस समयके अनेक पत्र एवं निर्देश मिल सकते है जिनसे मालूम हो सकता है कि उस समय हिन्दीका व्यापक रूप में फैलाव था।

अन्तर्प्रान्तीय व्यवहारकी भाषाके रूपमें तथा विभिन्न प्रदेशोंके कवियोंकी रचनाओंमें हिन्दी सर्वत्र समादर पाती रही उसके इस अखिल भारतीय रूपको स्वीकार कर महापुरुषोंने इस राष्ट्रभाषाको महत्व दिया और उसके प्रचारपर बल दिया। यहाँ इस सम्बन्धी कुछके मत दिये गए हैं—

आजसे लगभग ८६ वर्ष पूर्व बंगालके राजनीतिज्ञ समाज सेवी श्री केशवचन्द्र सेनने यह अनुभव किया कि सारे देशमें एक भाषाकी आवश्यकता है और वह हिन्दी ही हो सकती है, इससे राष्ट्रीय एकता पुष्ट हो सकती है। उन्होंने अपना यह विचार सन् १८७५ में अपने पत्र "सुलभ समाचार" नामक एक पत्रमें निम्नानुसार व्यक्त किया है —

"यदि एक भाषाके न होनेके कारण भारतमें एकता नहीं होती है तो और चारा ही क्या है ? — तब सारे भारतवर्षमें एक ही भाषाका व्यवहार करना ही एक मात्र उपाय है। अभी कितनी ही भाषाएँ भारतमें प्रचलित है, उनमें हिन्दी भाषा ही सर्वत्र प्रचलित है। इसी हिन्दीको यदि भारत वर्षकी एकमात्र भाषा स्वीकार कर लिया जाय तो सहज ही में यह (एकता) सम्पन्न हो सकती है। किन्तु राज्यकी सहायताके बिना यह कभी भी सम्भव नहीं है। अभी अँग्रेज हमारे राजा है, वे इस प्रस्तावसे सहमत होंगे, ऐसा विश्वास नहीं होता। भारतवासियोंके बीच फिर फूट नहीं रहेगी, वे परस्पर एक हृदय हो जाएँगे, आदि सोचकर शायद अँग्रेजोके मनमें भय होगा, उनका ख्याल है कि भारतीयोंमें फूट न होनेपर ब्रिटिश-साम्राज्य भी स्थिर नहीं रह सकेगा। भाषा एक न होनेपर एकता सम्भव नहीं है।"

('सुलभ समाचार' १८७५ ई मूल बंगलामें)

बंगलाके प्रसिद्ध साहित्यकार एवं "वन्दे मातरम्" राष्ट्रगीतके रचयिता स्वर्गीय बंकिमचन्द्र चटर्जी भी हिन्दीके प्रबल पक्षपाती थे। उन्होंने यह भविष्यवाणी की थी कि "हिन्दी एक दिन भारतकी राष्ट्रभाषा होकर रहेगी, क्योंकि हिन्दी भाषाकी सहायतासे भारतके विभिन्न प्रदेशोमें जो ऐक्य-बन्धन स्थापित कर सकेगा वही भारत बन्धु कहलाने योग्य है।"

बंगालके ऋषि अरविन्द घोषने भी हिन्दीका समर्थन किया। इसकी उपयोगितापर प्रकाश डालते हुए इन्होंने अपने साप्ताहिक "धर्म" में लिखा था कि "भाषा-भेदसे देशकी एकतामें बाधा नहीं पडेगी। सब लोग अपनी मातृभाषाकी रक्षा करते हुए हिन्दीको साधारण भाषाके रूपमें अपनाकर इस भेदको नष्ट कर देंगे।"

श्री भूदेव मुखर्जीने भी हिन्दीके समर्थनमें अपना यह वक्तव्य दिखाया कि "भारतकी प्रचलित भाषाओमें हिन्दी हिन्दुस्तानी ही प्रधान है, एवं मुसलमानोंकी कृपासे वह सारे देशमें व्याप्त है। अतएव यह अनुमान किया जा सकता है कि इसी का (हिन्दीका) अवलम्बन कर किसी सुदूर भविष्यमें सारे भारतवर्ष की भाषा सम्मिलित रह सकेगी।

महाराष्ट्र हिन्दीका प्रबल समर्थक रहा है। विदेशी-शासन-कालमें यहाँके राष्ट्रीय कर्णधारोंका ध्यान हिन्दीकी ओर आकृष्ट हुआ। यहाँके सुप्रसिद्ध बैरिस्टर श्री विनायक दामोदर सावरकरने सन् १९०१-१९०२ में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का सम्मान देनेके लिए जोरदार आन्दोलन किया। श्री चिपलूणकर एवं श्री आगरकरने भी मराठीके प्रति स्वाभिमान रखते हुए देशके हितके लिए राष्ट्रभाषा-पदपर "हिन्दी" को ही प्रतिष्ठित करनेका समर्थन किया। श्री केशवराव पेठेने सन् १८९३-९४ में "राष्ट्रभाषा" नामक पुस्तक की रचना कर महाराष्ट्रीय जनतामें "राष्ट्रभाषा हिन्दी" के प्रति जागरूकताका परिचय दिया।

महाराष्ट्रके लोकप्रिय नेता श्री लोकमान्य तिलकने भी एक लिपि और एक भाषा-प्रचार-कार्यके प्रति अपना समर्थन एवं सदभावना व्यक्त की। आपके ही प्रोत्साहनसे स्व माधवराव सप्रेने नागपुरसे

हिन्दी केसरी का प्रकाशन प्रारम्भ किया। काशीकी प्रथम एक लिपि-विस्तार-परिषदका अधिवेशन सन् १९ ५ में बड़ौदा राज्यके तत्कालीन दीवान स्व रमेशचन्द्र दत्तकी अध्यक्षतामें सम्पन्न हुआ। मराठा रियासत-ग्वालियर इन्दौर, देवास धार आदिने हिन्दी " ही को राजभाषाके रूपमें अपनाया। बड़ौदाके महाराजा सयाजीराव तो हिन्दीके प्रबल समर्थक थे ही।

गुजरातमें स्वामी दयानन्द सरस्वतीने आर्य समाजकी स्थापना कर जब उसका प्रचार प्रारम्भ किया तो उनके सामने समाज प्रचारके लिए एक सर्वसामान्य भाषाका अत्यन्त विचारणीय एवं महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित हुआ। आपने सोच-विचार कर हिन्दी भाषाको ही समाजके प्रचारका माध्यम बनाया। आपके प्रभावसे आर्य समाजके सभी गुरुकुलोंमें शिक्षाका माध्यम हिन्दी बनी। आपने अपना ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश हिन्दीमें ही लिखा और वेदोंका अनुवाद भी इसी भाषामें करवाया। गुरुकुल कांगड़ीके संस्थापक महात्मा मुन्शीराम (बादमें स्वामी श्रद्धानन्द) भी हिन्दीके प्रबल समर्थकोंमेंसे थे। आप हिन्दीको " आर्य भाषा कहते थे। सम्वत् १७७ के लगभग एक गुजराती सज्जनने ब्रजभाषा-व्याकरण ब्रजभाषा-शब्द-सिन्धु और ब्रज-भाषा-धातुमाला लिखकर ब्रजभाषाके तीन अनमोल प्रकाश डाला जिसमें इस भाषाके प्राचीन रूपकी व्याकरण-सम्मत विवेचना मिलती है। विवेचना लिखनेका कारण इन्होंने निम्नलिखित दोहे द्वारा बताया है —

> नर बानी नर-लोकमें सुगम पढ़त संसार।
> ताकी कौसल रीतिको कहीं अकूक विचार।

व्याकरण सम्बन्धी यह विचार और वह भी एक हिन्दीतर प्रान्तवासी द्वारा व्यक्त होना इस बातका सूचक है कि उस समय हिन्दीको कितना व्यापक महत्व प्राप्त हो चुका था।

पंजाब उर्दूका गढ़ होते हुए भी वहाँके ग्रामीणोंमें पंजाबी एवं हिन्दीका काफ़ी प्रचार रहा। यहाँ हिन्दी प्रचारके निमित्त आर्य-समाजने जो कार्य किया वह प्रशंसनीय है। पंजाब विश्वविद्यालयके रजिस्ट्रार स्व नवीनचन्द्र रायने यहाँ हिन्दी प्रचारका स्तुत्य कार्य किया। सन् १८६७ में ज्ञान-प्रदायिनी पत्रिका प्रकाशित कर आपने इस प्रदेशमें हिन्दी-पत्रका प्रचलन किया। आपका मत था कि— उर्दू कभी भी जन साधारणकी भाषा नहीं बन सकती हिन्दी ही उसके सर्वथा योग्य है। इस प्रदेशकी स्त्रियोंने सर्वप्रथम ही हिन्दी-को अपनाया और पुरुषोंको भी इसे सीखनेके लिए विवश किया।

धीरे-धीरे हिन्दीके लिए सभी प्रान्तोंमें वातावरण अनुकूल होने लगा था और इसे सभी प्रान्तोंके मनीषियोंने अपनाना आरम्भ किया। यह प्रयास भी किया जाने लगा कि देशकी राष्ट्रभाषाके रूपमें हिन्दीको स्वीकार कर लिया जाय और इसका प्रचार किया जाय। कुछ और जननायक और चिंतकोंके विचार इस सम्बन्धमें यहाँ दिए गए हैं —

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बंगालके युग पुरुष विभिन्न विदेशी भाषाओंके वेत्ता मातृभाषाके परम उपासक एवम् सेवक विश्व-कवि रवीन्द्र ठाकुरने राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रति निम्नलिखित शब्दोंमें अपनी श्रद्धा व्यक्त की —

यदि हम प्रत्येक भारतीय नैसर्गिक अधिकारोंके सिद्धान्तको स्वीकार करते है, तो हमें राष्ट्रभाषाके
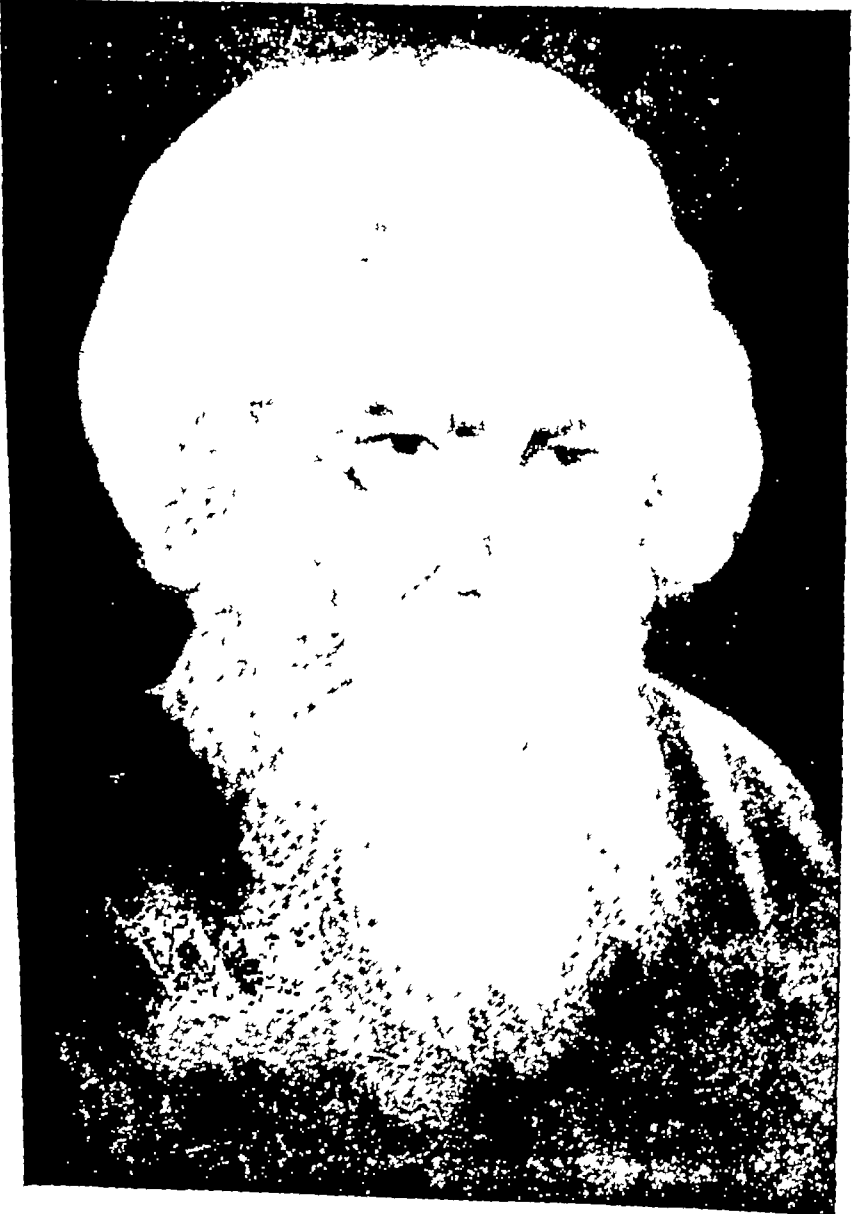
रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रूपमे उस भाषाको स्वीकार करना चाहिए जो देशके सबसे बडे भूभागमे बोली जाती है और जिसे स्वीकार करनेकी सिफारिश महात्माजीने हम लोगोंसे की है—अर्थात् हिन्दी और इसी विचारसे हमे एक भाषाकी आवश्यकता भी है।"

(कलकत्ता, 'हिन्दी क्लब बुलेटिन' सितम्बर १९३८)

महात्मा गांधी

राष्ट्रपिता महात्मा गांधीने देशमे राष्ट्रीय चेतना जागृत करनेके लिए चौदह सूत्री विधायक कार्यक्रम निश्चित किया। उसमे हिन्दी-प्रचारके कार्यको महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। वे एक युगप्रवर्तक थे। उन्होने साधारण जनताको ऊँचा उठानेको देशव्यापक जन-आन्दोलन किया। स्वतत्रता सग्रामके वे सफल सचालक थे। उनके सकेत मात्रपर हजारो लाखो लोग स्वातन्त्र्य-सग्राममें जुट जाते थे और अपने प्राणोकी आहुति देनेको तत्पर रहते थे। उन्होने जब हिन्दीकी व्यापकता और उसकी शक्तिको पहचाना तो उसके वे प्रबल समर्थक एव प्रचारक हो गए। सन् १९१८ मे हिन्दी साहित्य सम्मेलनका इन्दौरमे अधिवेशन हुआ था उसके गांधीजी सभापति बनाये गए। तबसे उन्होने हिन्दी-प्रचारके लिए ठोस और सक्रिय कदम उठाया। दक्षिण भारतके द्रविड भाषी प्रदेश हिन्दीसे अधिक दूर पडते है। अत उन्होने दक्षिणके हिन्दी-प्रचार-कार्यको सर्वोपरि महत्त्व दिया। सन् १९१८ मे उन्होने अपने पुत्र स्व देवदास गांधीको हिन्दी प्रचारके लिए भेजा और दक्षिणमें हिन्दीका सगठनात्मक रूपसे प्रचार करनेका सूत्रपात किया। इसके पश्चात् वे हमेशा हिन्दीके महत्त्वपर जोर देते रहे और इसके प्रचारको बल देते रहे। उनका कथन था कि 'बिना राष्ट्रभाषाके राष्ट्र गूंगा है।' अँग्रेजोको उन्होने 'सास्कृतिक लुटेरे' की सज्ञा दी थी। इस प्रकार उन्होने जीवनभर हिन्दी प्रचारके लिए सफल प्रयत्न किया तथा इस कार्यको अपनी प्रेरणा दी।

श्री नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

"कुछ लोगोका विचार है कि बगला राष्ट्रभाषा हो, क्योकि इसमे उच्चकोटिका साहित्य है। हिन्दीमें उच्च साहित्य है अथवा नही, यह विवादग्रस्त विषय उठाना व्यर्थ है। हिन्दी-व्यापक रूपसे भारतमें बोली जाती है, और इसमे ग्रहणशक्ति है तथा यह सरल है!"

('एडवान्स' जुलाई १९३८)

पं जवाहरलाल नेहरू

"हिन्दीका ज्ञान राष्ट्रीयताको प्रोत्साहन देता है और हिन्दी अन्य भाषाओकी अपेक्षा सबसे अधिक राष्ट्रभाषाके योग्य है। विभिन्न स्थान विशेषकी बोलियाँ अपने-अपने स्थान विशेषमें प्रमुख रहेगी किन्तु भारतको एक सूत्रमे बाँधनेके लिए हिन्दीको ही राष्ट्रभाषा होना चाहिए। हिन्दी और उर्दू—इन दोनोमे कोई अन्तर नही है। सिवा इसके कि हिन्दी, नागरी लिपिमें लिखी जाती है और उर्दू फारसी लिपिमें। यह बडे दु खकी बात है कि हिन्दी-उर्दूको धार्मिक झगडेका रूप दे डाला गया है।"

('एडवान्स' अक्टूबर १९३६)

श्री श्रीनिवास शास्त्री

"यदि मुझे पुराने बादशाहोंके अधिकार काममें लानेके लिए दिए जाएँ तो मैं एक काम यही करूँ कि देशमें एक भाषा और एक लिपिका व्यवहार हो।"

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद

प्रान्तीय भाषाएँ तो अपनी-अपनी जगहपर रहेंगी ही। हिन्दीका माध्यम ऐसे स्थलपर सिद्ध होगा जहाँ विविध प्रान्तों विविध बोलियोंके बोलनेवाले लोग एकत्रित हों और चर्चा ऐसे विषयपर हो जिसका सम्बन्ध सबसे हो।

कोई भी देश विदेशी भाषा द्वारा न तो उन्नति ही कर सकता है और न अपनी राष्ट्रीय भावनाकी अभिव्यक्ति ही कर सकता है। यह भारतका दुर्भाग्य था कि यहाँ कुछ लोग यह कहनेवाले भी निकले कि हमारा सार्वदेशिक संस्थाओं और प्रवृत्तियोंके लिए विदेशी भाषा आवश्यक है। लेकिन आज इस विचारके लोगोंकी कोई सुननेवाला नहीं है। यह सर्वसम्मति है कि वही राष्ट्रभाषा हो सकती है और है, जिसको उत्तर भारतकी जनता साधारण रीतिसे समझ लेती है। इसको हम हिन्दी कहते हैं। जहाँकी यह बोली नहीं है वहाँ भी बहुत बड़ी संख्या ऐसे लोगोंकी है जो उसे समझ और बोल लेते हैं। उसमें इतनी योग्यता और लचक भी है कि वह सब प्रकारके विचारों और भावनाओंको सरलतासे व्यक्त कर सकती है।

(आजाद हिन्द २५ मई १९४७ तथा विश्वमित्र १ अगस्त १९४७)

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

हिन्दीके द्वारा उत्तर और दक्षिणके कार्यमें तथा भाव विनिमयमें सुविधा होगी। यह धारणा बिल्कुल भ्रमात्मक है कि उर्दू की उत्पत्ति इस्लामसे हुई है। उर्दूको इस्लाम और हिन्दीको हिन्दू भाषा मानना बिलकुल गलत है। जिस भी लिपिमें लिखी जाय भारतकी राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी है इसके नामसे भी ऐसा ही बोध होता है।

(अमृत बाजार पत्रिका २१ मार्च १९३)

श्रीमती अम्मुअम्माल

मेरे दिलमें आशा बँध गई है कि हिन्दीके द्वारा ही भिन्न भिन्न प्रान्त एक सूत्रमें पिरोये जा सकते हैं और जिस माध्यमके द्वारा ही विभिन्न भाषा-भाषियोंके हृदयमें ऐक्यकी भावना जाग्रत हो सकती है।

(दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सम्मेलन १९३३ के अवसरपर)

स्व० नरसिंह चिन्तामणि

"हिन्दी भारतवर्षकी सामान्य भाषा होनी चाहिए।

डॉ० रामकृष्ण भंडारकर

यदि देश व्यापी आन्दोलन किया जाय तो देवनागरी लिपिको समस्त भारतवर्षमें चलाना कठिन नहीं होगा। भिन्न-भिन्न प्रदेशोंकी एक सामान्य भाषा बनानेका सम्मान हिन्दीको ही मिलना चाहिए।"

श्री फजलअली

" हिन्दी भारतकी स्वाभाविक भाषा है। हिन्दीको न सिर्फ राष्ट्रभाषा होनेका अधिकार है, वल्कि यदि उसके प्रचार और विकासकी ओर उचित ध्यान दिया गया, तो वह भी समय आ सकता है, जब वह समस्त एशिया की भाषा बने।

श्री ख्वाजा हसन निजामी

" बगला, बर्मी गुजराती और मराठी वगैरह सब जबानोसे ज्यादा रिवाज हिन्दी या नागरी जबानका है। करोडो हिन्दू औरत-मर्द अब भी यही जबान पढते है और यही जबान लिखते हैं।"

जोश मलीहाबादी

" हिन्दी और उर्दूमे कोई फर्क नही है। हिन्दीके सरकारी जबान बन जानेको हम मुसलमानोके लिए क्यो न्यामत समझ रहे हैं ? इसलिए समझ रहे है कि देवनागरी लिखाई मुल्कभरमे आम हो जाएगी।"

('उजाला' १७ नवम्बर १९४७)

श्री चार्ल्स नेपियर

" हिन्दी जितनी अधिक और अँग्रेजी जितनी कम काममें लाई जाएगी, उतनी ही शीघ्रतासे हिन्दीका विकास होगा। हिन्दीका प्रयोग जितना विस्तारसे हो सके, होना चाहिए। शिक्षाका माध्यम किसी स्तर पर अँग्रेजी नही रहना चाहिए।"

('नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष' १८, अक—३, सम्वत् २०१०)

'खड़ी बोली' हिन्दी

एक सर्व सामान्य भाषाकी आवश्यकताके सम्बन्धमें सारे देशमें मतैक्य था और वह भाषा हिन्दी ही हो सकती है इसपर सभीके विचार समान ही थे। इसका रूप क्या हो इसमें भी कोई सन्देह नही था। वह रूप हिन्दीका खडी बोली, रूप ही है। उसका वर्तमान रूप किस प्रकार निखरा उसका यहाँ विवेचन करना अनुचित न होगा।

खडी बोलीसे मिलती-जुलती भाषा दिल्ली और मेरठके अचलमे बोली जाती है। उसकी उत्पत्तिके विषयमें यह माना जाता है कि इसका विकास शौरसेनी अपभ्रशसे हुआ है। जो प्रदेश भारतका केन्द्रीय प्रदेश पहले गिना जाता था, उसकी सभी बोलियाँ—यथा अवधी, ब्रज, बुन्देली, राजस्थानी, पजाबी आदिने खडी बोलीको सँवारनेमे योग दिया है। जब हमारे देशमें मुसलमान शासक थे, तब दिल्ली राजधानीका शहर था और उस समय फारसी भाषा शासनकी भाषा थी। उसका उपयोग राजकाजके दायरे में होता था। जन साधारणकी वह भाषा न थी, इसलिए परस्परके व्यवहारमें फारसीका प्रचलन सम्भव नही था। जन साधारणसे सम्पर्क करनेके लिए फारसी-अरबीके शब्दोके सयोगसे विशेषकर लश्करी छावनियोंमें एक भाषा शैलीका निर्माण हुआ जिसे उर्दूका नाम दिया गया। इस भाषाको दरबारोमें खूब माँजा-सँवारा गया। इसका प्रभाव वर्तमान खडी बोलीपर बहुत पडा है।

यहाँ खड़ी बोलीके पद्य साहित्यके कुछ अंश प्राचीन कालसे अर्वाचीन काल तकके दिये गए हैं जिन्हें पढ़नेसे ज्ञात होगा कि खड़ी बोलीका रूप काव्यमें कैसे निखरता गया।

जिस प्रकार समस्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओंका मूल अपभ्रंश है उसी प्रकार खड़ी बोलीके बीज भी अपभ्रंशमें—विशेषतः परवर्ती अपभ्रंशमें मिलते हैं। प. दामोदर कृत (१२ वी शताब्दी) उक्ति व्यक्ति प्रकरण में ये पंक्तियाँ मिलती हैं —

जब जब धर्मु बाढ़, तब तब पाप ओहृट
जैसे जैसे धर्मु बाम तैसे तसै पा।

इसमें जब तब जैसे तैसे खड़ी बोलीके प्राचीन स्मारक चिह्न हैं।

हेमचन्द्रका समय १२ वी शताब्दीका उत्तरार्द्ध माना जाता है। उनके व्याकरणमें खड़ी बोलीके बीज जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हैं। हिन्दी पाठकोंका अत्यन्त जाना-पहचाना यह दोहा ही लीजिए —

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि म्हारा कन्तु।
लज्जेज्जन्तु वयंसिअहु जइ भग्गा घर एन्तु॥

इसमें हुआ तो साफ तौरपर खड़ी बोलीकी ही क्रिया है। यही नहीं म्हारा (हमारा) सर्वनाम भी मौजूद है। और तो और लज्जेज्जन्तु में संयुक्त क्रिया भी झलक रही है।

नाथोंका समय ग्यारहवींसे चौदहवी शताब्दी तक माना जाता है। नाथपंथी योगी राजस्थान पंजाब गुजरात बंगाल महाराष्ट्र तक फैले हुए थे। उनकी रचनाओंकी भाषाके बारेमें आचार्य रामचन्द्र शुक्लका अभिमत है —

नाथ पन्थके योगियोंने परम्परागत साहित्यकी भाषा या काव्य-भाषासे जिसका ढाँचा नागर अपभ्रंश या ब्रजभाषाका था अलग एक सधुक्कड़ी भाषाका सहारा लिया जिसका ढाँचा कुछ खड़ी बोली लिये राजस्थानी था।

(हिन्दी साहित्यका इतिहास)

गोरखनाथकी ये पंक्तियाँ देखिए —

बैठा अवधू लोहकी खूंटी चलता अवधू पवनकी मूंठी।
सोवता अवधू जीवता मूवा बोलता अवधू प्यंजरै सूवा॥

चौदहवी शताब्दीमें अमीर खुसरोने खड़ी बोलीमें पहेलियाँ बुझाई हैं —

एक तरवरका फल है तर। पहिले नारी पीछे नर॥
वा फल की यह देखी चाल। बाहर खाल और भीतर बाल॥

खुसरोके बाद उत्तर भारतमें खड़ी बोलीकी रचनाएँ बहुत ही कम देखनेको मिलती हैं। इसका कारण यह था कि वैष्णव धर्मके आन्दोलनके कारण ब्रजभाषाका एकछत्र राज्य स्थापित हो गया था। फिर भी खड़ी बोलीके कहीं-कहीं स्वर सुनाई ही पड़ते हैं। अटपटी बानीमें खरी-खोटी सुनानेवाले कबीर पुकार उठते हैं —

माला फेरत जुग गया, गया न मनका फेर।
करका मनका डार दे, मनका मनका फेर॥

कबीरकी रचनाओंके विश्लेषणके उपरान्त विद्वान इस निष्कर्षपर पहुँचे है कि कबीरकी साखियोमे खडी बोलीका पानी मिला हुआ है।

इसी सन्दर्भमे रहीमकी इन पक्तियोको भी नही भुलाया जा सकता —

कलित ललित वाला वो जवाहिर खडा था।
चपल चखनवाला चांदनीमें खडा था॥

रीतिकालके कवि घनानन्दने (सम्वत् १७४६–१७९६) तो खडी बोलीमें रचना भी की है। उनकी पुस्तक 'विरह लीला' की भापाका एक नमूना देखिए —

सलोने प्रान प्यारे क्यो न आवो।
दरस प्यासी मरै तिनको जिवावो॥

इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत (वरार, हैदराबाद, महाराष्ट्र, मैसूर आदि) में भी खडी बोलीके प्रचलित होनेके प्राचीन प्रमाण मिलते है। महाराष्ट्रके सन्त कवि नामदेव की इन पक्तियोसे तो सभी लोग परिचित है —

पाँडे तुम्हारी गायत्री लोधेका खेत खाती थी,
लेकर ठेंगा टँगरी तोरी लगत-लगत जाती थी।
पाँडे तुम्हारा रामचन्द्र सो भी आवत देखा था।
रावण सेती सरवर होइ घरकी जोई गँवाई थी॥

विक्रमकी १६ वी शताब्दीमें सन्त एकनाथ हिन्दू-मुसलमानोमें ऐक्यका मन्त्र इस भापामे फूंकते है —

'एका' जनार्दनका वदा, जमीन आसमान भरा खुदा

दक्षिणमे खडी वोलीके प्रचारमे मुसलमानोका भी कम योगदान नही है। वस्तुत दक्षिणमे सन्तो और मुसलमानोके सम्मिलनसे एक मिली-जुली भाषा उत्पन्न हुई जो वादमें 'दक्खिनी हिन्दी' कहलाई। दक्खिनी हिन्दीमें रचना करनेवाले हिन्दू और मुसलमान दोनो थे। मुसलमान कवियोमे गेसूदराज, मुहम्मद कुली, कुतुबशाह, इब्ननिशाती, और शेखसादीकी पर्याप्त रचनाएँ खडी बोलीमें है।

समर्थ स्वामी रामदासने (जन्म सम्वत् १६०८) महाराष्ट्र जन-जीवनमे एक नई जागृति उत्पन्न की। हिन्दू-हृदय-सम्राट् शिवाजी इनके शिष्य थे। समर्थ रामदासकी शिष्य परम्परामें दयाबाई की यह कविता दृष्टव्य है —

बाग रँगीला महल बना है। महलके बीचमें झूलना पड़ा है॥
इस झूलनेपर झूलो रे भाई। जनम मरनकी याद न आई॥

शिवाजीके दरवारी कवि भूषणकी रचनाओमें तो खडी बोलीका पुट बराबर मिलता है —

अफजल खानको जिन्होंने मैदान मारा।

वरार निवासी देवनाथ (सवत् १७५४) की ये पक्तियाँ कितनी जोरदार है —

रमते राम फकीर कोई दिन याद करोगे
कोई दिन ओढ़े शाल दुशाला। कोई दिन भावे चीर।

कोई दिन खावे मेवा मिठाई, कोई दिन पीवे नीर।
कोई दिन हाथी कोई दिन घोड़ा कोई दिन पाँव जंजीर।

इस प्रकार महाराष्ट्रमें १२ वी सताब्दीसे लेकर अठारहवी सताब्दी तक खड़ी बोली की रचनाएँ मिलती है।

श्री के एम मुन्शीने अपने ग्रन्थ 'गुजरात स्टोरस ऑफ गुजराती लिटरेचर' में लिखा है— मध्ययुगीन गुजरातमें हिन्दी ही मुसलमानों और विद्वानोंकी मान्य भाषा थी अठारहवी सताब्दीमें भूधरदासने 'पद सग्रह' आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। 'पद सग्रह' में आई हुई खड़ी बोलीका एक उदाहरण देखिए —

चरखा चलता नाहीं चरखा हुआ पुराना
पग खूँटे दग हालन लागे उर मदरा खखराना
आयुमाल की नहीं भरोसा अंग चलाचल सारे
रोग इलाज मरम्मत चाहे वैद बाढ़ई हारे॥

गुजरातमें हिन्दी प्रचारके इतिहासमें 'दादू पंथ' को नही भुलाया जा सकता। दादू दयाल (१६ वी सदी) अहमदाबादके रहनेवाले थे। इनकी रचनाओंमें खड़ी बोलीके छींटे दिखाई पड़ते है —

दादू बिरह अगनिमें जलि गए, मनके मैल विकार
दादू बिरही पीवका देखेगा दीदार

१८ वी शताब्दीमें गुजरातमें दयाराम नामक अत्यन्त प्रसिद्ध कवि हुए है। उनकी खड़ी बोलीकी एक बानगी देखिए —

हरदम कृष्ण कहू श्रीकृष्ण कहू तू अर्जी मेरी
यही मतलबके खातर करता हूँ खुशामद मैं तेरी
यही चोर चुप छलकर रोज खिलाता हूँ तुमे
तो भी हरिनाम गुमानी न तु है मुझे।

पंजाबके गुरु गोविन्दसिंहके उद्गार खड़ी बोलीमें है —

आज्ञा भई अकाल तभी चलायो पंथ।
सब सिक्खनको हुकुम है गुरु मानिए ग्रन्थ॥

सिन्धमें अठारहवी सताब्दीमें मनचित परबोध ग्रन्थ हिन्दीमें लिखा गया। उसकी भाषामें कहीं-कहीं खड़ी बोलीके प्रयोग झाँकते दिखाई देते है। एक उदाहरण देखिए —

प्रभुजी मैं शरन तुम्हारी आया।
मनमें ममता रहे न कोई दर्द मिटा सुख पाया।
शान सूरज घट भेद समाया अखंड ज्योति रंग छाया।
जिसके कारन फिरत उदासी, सो घट अन्दर पाया।

उड़ीसामें श्री वजनाथ बडजेना (सन् १७८०) की एक पुस्तक 'समर तरंग' मिलती है। इस पुस्तक का चौथा अध्याय तो हिन्दीमें ही लिखा गया है। 'समर तरंग' की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है —

अव सव सरदार विचारो। एक ठा रगड हाय न आया।
भले भले तुम यारो।
ढाल ढाल भर लेके कोई अव मार वो किल्ला
घोडा गढ टूक लडने नाहीं क्या करूँ जाके वगाला।

इस प्रकार हम देखते है खडी वोलीकी जडे वडी गहरी है और प्राचीन कालसे ही इसको सर्व व्यापी महत्त्व मिला था।

इसमे कोई सन्देह नही कि खडी वोलीका अस्तित्व उतना ही पुराना है जितना व्रजभाषाका। लेकिन फिर भी खडी वोलीमें धारावाहिक रूपसे काव्य-सर्जन नही हुआ। इसका कारण था वैष्णव धर्मका आन्दोलन। राम और कृष्णकी जन्मभूमिकी भाषाकी ओर लोगोका झुकना स्वाभाविक था। रीतिकालमें भी व्रजभाषाका ही आधिपत्य रहा। लेकिन अँग्रेजोके सम्पर्कके कारण देशमे चेतनाकी नई लहर दौडी तो व्रजभाषा जो नायक-नायिकाके नख-शिख वर्णनमें ही डूवी रही, उस उत्क्रान्तिके स्वरका भार लेनेमे असमर्थ सिद्ध हुई और खडी वोली उस दायित्त्वको लेनेके लिये आगे वढी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी साहित्यके जनक माने जाते है। उन्होने गद्यके क्षेत्रमे खडी वोलीको वल दिया लेकिन पद्यके क्षेत्रमें वे पुरानी पगडडीपर ही चलते रहे। लेकिन उन्होने कुछ खडी वोलीमे भी रचनाएँ की है। एक उदाहरण देखिए —

कहाँ हो हे हमारे राम प्यारे
किधर तुम छोडकर मुझको सिधारे
बुढ़ापेमें मुझे यह देखना था
इसीके भोगनेको मै बचा था।

लेकिन भारतेन्दुकी श्रेष्ठ रचनाएँ व्रजभाषामे है, खडी वोलीमें नही। वस्तुत यदि खडी बोलीको भारतेन्दुजीका करावलम्वन मिला होता तो अयोध्याप्रसाद खत्री आदि जैसोको खडी वोलीके लिए अखाडेमें नही उतरना पडता। सन् १८८७ में अयोध्याप्रसादजी वाकायदा खडी बोलीकी ओरसे मैदानमें उतरे। उन्होने 'खडी बोलीका पद्य' नामक पुस्तक अपने व्ययसे ही प्रकाशित की और लोगोका ध्यान आकर्षित करनेके लिए पुस्तकको नि शुल्क वितरित किया। खडी वोलीके प्रचारमे खत्रीजी को भुलाया नही जा सकता। उनके जीवनका 'मिशन' ही खडी बोलीका प्रचार करना वन गया था। उन्होने उसके लिए अपना जीवन ही होम दिया था। लेकिन इतनी दौड-धूपके वावजूद भी खत्रीजी अपने मिशनमें विशेष सफल नही हुए। उसका कारण था कि वे व्रजभाषाको एकदम काव्यके क्षेत्रसे निकाल देना चाहते थे और इस सिलसिलेमें उन्होने भारतेन्दु तकको खडी बोलीके विरोधियोके खेमेमें डाल दिया। फलत प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी ऐसे भारतेन्दु भक्त उनके कट्टर विरोधी हो गए। मजेकी बात तो यह है कि स्वय प्रतापनारायण मिश्र आदिने भी खडी बोलीमें फुटकर रचनाएँ की है। खत्रीजीके समयमे खडी बोलीका यदि कोई जबरदस्त समर्थक रहा तो वे श्रीधर पाठकजी ही थे। श्रीधर पाठक व्रजभाषाके भी वडे ही उच्च एव रससिद्ध कवि थे। उनमें मौलिक प्रतिभा थी। श्रीधर पाठकजीके 'एकातवासी योगी' से खडी बोलीको वहुत वल मिला। डॉ सुधीन्द्र लिखते है—"अयोध्याप्रसाद खत्रीने जो 'खडी बोलीका आन्दोलन' का झण्डा उठाया था उसमें 'एकान्त वासी योगी' का वही स्थान था, जो आज राष्ट्रीय झण्डेमे चक्रका है।"

व्रजभाषाके समर्थकोंका कहना था कि खड़ी बोलीमें व्रजभाषा-सी मिठास नहीं आ सकती। पाठकजीने खड़ी बोलीको सरस भी बनानेकी चेष्टा की। खड़ी बोलीके बीचमें वे व्रजभाषाके शब्दोंको भी जड़ देते थे जिससे भाषा कुछ मधुर हो जाती थी यथा —

कहाँ चले है वह आयौ

लेकिन मिठास डालनेके फेरमें कहीं-कहीं भाषा उपहासास्पद बन जाती थी जैसे—मूठ-मूठ बहकाय करेगा तेरा निश्चय नास। राधा कृष्णदास भी इसी समन्वयवादी पक्षके राही थे। उनकी भी कविताओंमें खड़ी बोली और व्रजभाषाका पुट विद्यमान है। लेकिन यह द्विधात्मक स्थिति किसी भी भाषाके लिए शोभनीय नहीं मानी जा सकती। खड़ी बोलीकी इसी निर्बल स्थितिको देखकर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीने नागरी तेरी यह दुर्दशा लिखी थी। इसी परिस्थितिमें प महावीरप्रसादजी द्विवेदी सन् १९ में सरस्वतीके सम्पादकके रूपमें हिन्दी काव्य क्षितिजपर उदित हुए। द्विवेदीजीने घोषित किया कि " गद्य और पद्यकी भाषा पृथक-पृथक न होनी चाहिए। हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसके गद्यमें एक प्रकार की और पद्यमें दूसरे प्रकारकी भाषा लिखी जाती है। सभ्य समाजकी जो भाषा हो उसीमें गद्य-पद्यात्मक साहित्य होना चाहिए। द्विवेदीजीने व्रजभाषापर नहीं व्रजभाषाकी सीमाओंपर प्रहार किया। नव शिक्षके बर्तनोंको तोड़नेका आह्वान किया उन्होंने प्रेमके पचड़ोंको छोड़कर जीवनकी खुली धूपमें विचरणके लिए निमन्त्रण दिया। द्विवेदीजी स्वयं एक बड़े लेखक थे और उनके हाथों खड़ी बोली काव्यके क्षेत्रमें पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित हो गई। मैथिलीशरण गुप्त हरिऔध शंकर गुरु लोचनप्रसाद पाण्डेय रामचरित उपाध्याय ठाकुर गोपाल शरणसिंह द्विवेदी युगके प्रमुख कवि थे जिन्होंने खड़ी बोलीको समृद्ध किया। फिर भी द्विवेदी युग खड़ी बोलीकी खराखराहटको कम नहीं कर सका व्रजभाषा जैसी मिठास वह खड़ी बोलीमें नहीं डाल सका। उसमें इतिवृत्तात्मकता अधिक थी। उसमें कहीं —

सुरम्य रूपे रसराशि रंजिते विचित्र वर्णाभरणे कहाँ गई

जैसी पंक्तियाँ हैं तो कहीं —

रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना

। " संस्कृत शब्दोंसे बोझिल पदावली तो कहीं ठेठ हिन्दीका ठाठ और कहीं सीधी सादी भाषा जैसे भारत भारती की ये पंक्तियाँ —

। आस्तीयता क्या वस्तु है निजदेश कहते हैं किसे ?

क्या अर्थ आत्म त्यागका, वे जानते हैं क्या इसे ?

द्विवेदी युगकी और इतिवृत्तात्मकताकी प्रतिक्रियाके रूपमें छायावाद आया। छायावाद वस्तुत खड़ी बोली कविताका स्वर्ण युग है। प्रसाद पन्त निरालाके हाथों जिस काव्यकी सृष्टि हुई, उसकी तुलना केवल भक्ति काव्यसे ही की जा सकती है। खड़ी बोलीको छायावादी कवियोंने इन्द्रधनुषी चित्रोंसे मनोरम कल्पनाओं और उदात्त विचारणाओंसे अलंकृत किया। पन्तजीकी इस कोमल कान्त पदावली—

अनिल पुलकित स्वर्णांचल लोल।

मधुर नूपुर ध्वनि खग-कुल-रोल॥

के आगे व्रजभाषाकी चासनी भी फीकी पड गई और खडी वोलीपर रुक्षताका जो सबसे बडा इलजाम लगाया जाता था, वह सदाके लिए मिट गया।

आधुनिक युगमें गद्यको विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ है। पुराने समयमे पद्यमें ही रचनाएँ होती थी। कवि, सन्त अथवा कोई कला-उपासक अपने हृदयके उद्‌गारो, विचारो और भावोको पद्यके माध्यमसे व्यक्त करता था। यह स्थिति केवल हिन्दीकी ही नही रही। हमारी तमाम भाषाओमें भी यही स्थिति रही। सवमे सर्व प्रथम पद्य साहित्यका सर्जन हुआ और वादमें आधुनिक युगमे गद्य साहित्यका विकास हुआ है। नाटक, निवन्ध, एकाकी, कहानी, उपन्यास आदि गद्य साहित्यके विभिन्न अग हैं, जो इस युगमें विशेष रूपसे पुष्ट हुए है। साहित्य लोक-जीवनसे प्रभावित होता है और साहित्यका प्रभाव लोक-जीवनपर पडता है। लेखक या कवि अपना सदेश अधिक से अधिक लोगोंके हृदय तक पहुँचाना चाहता है इसलिए वह प्रचलित भाषामें ही अपनी रचनाएँ करता है। यही कारण है कि हमारी तमाम भाषाओमें गद्य साहित्यका निर्माण आधुनिक युगमें बडे पैमानेपर हुआ है और आज तीव्र गतिसे वढ रहा है। फलस्वरूप भाषाका रूप भी दिनो-दिन निखरता जा रहा है। भाषाको बहता नीर कहते है—अत उसका रूप हमेशा सँवरता-निखरता ही जाएगा। खडी बोलीके प्राचीन और आधुनिक गद्य रूपमें काफी अन्तर देखनेको मिलता है। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जाएगा कि खडी बोलीके गद्य साहित्यकी भाषाका प्रारम्भिक रूप कैसा था और वह आजके रूप तक कैसे पहुँचा।

सन् १८०० के पूर्व तक गद्य-भाषा पूर्ण रूपसे व्यावहारिक हो गई थी। इसके पश्चात् लगभग २५ वर्षोंमे इस व्यवहारमें प्रयुक्त भाषाको साहित्यिक रूप देनेका प्रयत्न हुआ। इन वर्षोमे मुशी सदासुखलाल इशाअल्लाखाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्रने सराहनीय प्रयत्न किया।

मुशी सदासुखलालने 'सुखसागर' लिखा जिसकी भाषामें सस्कृतके तत्सम शब्दोके साथ पुराना पडिताऊपन है। इनकी भाषाका नमूना यह है —

"जो सत्य वात हो उसे कहा चाहिए, को बुरा माने कि भला माने। विद्या इस हेतु पढते है कि तात्पर्य इसका जो सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूपमें लय हूजिए। इस हेतु नही पढते है कि चतुराईकी वातें कहके लोगोको वहकाइए और फुसलाइए और असत्य छिपाइए, व्यभिचार कीजिए, और सुरापान कीजिए और धन द्रव्य इकठौरा कीजिए और मनको कि तमोवृत्तिसे भर रहा है उसे निर्मल न कीजिए। तोता है सो नारायणका नाम लेता है परन्तु उसे ज्ञान तो नहीं है।"

('हिन्दी-भाषा-सार')

मुशीजीकी भाषामें 'होय', 'लय हूजिए', 'करिकै', 'होता है सो' आदि प्रयोगोंसे उनके पडिता-ऊपनकी झलक मिलती है। यद्यपि आपने सस्कृतकी तत्सम शब्दावलीका प्रयोग किया है, फिर भी प्रान्तीयता और ग्रामीणताकी पुटसे आपकी भाषा मुक्त नहीं है। 'हूजिए', 'इकठौरा' आदि शब्द ऐसे ही हैं।

इशा अल्लाखांकी 'रानी केतकी की कहानी' हिन्दी गद्यमे एक प्रसिद्ध रचना है। इसकी भाषा वडी सरल, मुहावरेदार तथा सुन्दर है। इशाने साधारण शब्द-समुदायके साथ-साथ वाक्य-रचनाका ढग मुसलमानी रखा है। वैसे किसीने ठीक ही कहा है कि 'इन्शाके अल्फाज मोतीकी तरह रेशमपर ढुलकते आते है।' देखिए —

सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूँ उस अपने बनानेवालेके सामने जिसने हम सबको बनाया और बातकी बातमें वह कर दिखाया जिसका भेद किसीने न कर पाया। आतियाँ जातियाँ जो साँसें हैं, उनके बिन ध्यान सब फाँसे हैं। यह कलका पुतला जो अपने उस खिलाड़ीकी सुध रक्खे तो खटाईमें क्यों पड़े और कड़वा कसैला क्या हो?"

\+ \+ \+ \+

अच्छापना घाटोंका कोई क्या कह सके जितने घाट दोनों राजकी नदियोंमें थे पक्के चाँदीके थक्केसे होकर लोगोंको हक्का-बक्का कर रहे थे। जितनी टकी भाँजें थीं सोनहरी रुपहरी सजी-सजाई, कसी-कसाई सौ-सौ लचके आतियाँ जातियाँ घातियाँ ठहरातियाँ फिरतियाँ थीं।"

(रानी केतकीकी कहानी)

इसकी भाषामें कविताकी तरह तुकान्त एवं अनुप्रास है और प्रवाह उर्दू शैलीका है।

इसी समय इधर कलकत्तेके फोर्ट विलियम कॉलेजके तत्वावधानमें गद्य निर्माण का कुछ कार्य हो रहा था जिसमें लल्लूलाल एवं सदल मिश्रने रचनाएँ कीं।

लल्लूलालजी द्वारा अपने ग्रन्थ 'प्रेमसागर' में खड़ी बोलीका जो प्रयोग किया गया उसका रूप इस प्रकार है —

"अधिका प्रकाश दूर से देख मथुराकी खड़े हो श्रीकृष्ण चन्द्रजीसे कहने लगे कि महाराज तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषा किए सूर्य चला आता है"। तुमको ब्रह्मा रुद्र इन्द्रादि सब देवता ध्याते हैं और आठ पहर ध्यान धर तुम्हारा यश गाते हैं। तुम्हीं आदि पुरुष अविनाशी तुम्हें नित सेवती हैं कमला भई दासी।

(प्रेम सागर)

उसमें ब्रजभाषाके रूपोंका प्रयोग प्रधान रूपसे हो गया है यद्यपि खड़ी बोलीके अरबी-फारसी मुक्त रूपसे बचनेका प्रयत्न किया गया है।

सदल मिश्र संस्कृतके अच्छे विद्वान थे। इन्होंने 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की। इन्होंने अपनी रचनामें बोलचालकी भाषाका ही प्रयोग किया है। इनकी भाषाका एक नमूना यह है —

"जो नर चोरी आदि नाना भाँतिके कुकर्ममें आप तो दिन रात लगे रहते हैं जिसपर भी औरोंको बूझते हैं जो एक अक्षर भी जिससे पढ़ते हैं जिसे पुरुष बराबर नहीं मानते हैं, सो तब तक महानरकको देखते हैं कि जब तक संसार बना रहता है।"

(नासिकेतोपाख्यान)

इनकी भाषामें व्याकरणके नियमोंका पालन ठीकसे नहीं किया गया। इसमें जो और भी जैसे प्रयोग हैं।

इसी समय ईसाइयोंने अपनी धर्म पुस्तकोंका जो अनुवाद कराया उसमें खड़ी बोलीके विशुद्ध रूपका प्रयोग किया गया। सन् १८ ६ में प्रकाशित एक पुस्तकका निम्नलिखित उद्धरण देखनेपर यह बात स्पष्ट रूपमें समझमें आ जाती है —

"मन्टने पहले यह बात लिखी है कि देवताओंके कुकर्म सुकर्म हैं क्योंकि शास्त्रने इनको सुकर्म ठहराया है। यह सच है परन्तु हमारी समझमें इन्हीं बातोंसे हिन्दू शास्त्र झूठे ठहरते हैं। ऐसी बातोंमें शास्त्रके

कहनेका कुछ प्रमाण नही। जैसे चोरके कहनेका प्रमाण नही, जो चोरी करे फिर कहे कि मैं तो चोर नही। पहले आवश्यक है कि शास्त्र सुधारे जायँ और अच्छे अच्छे प्रमाणोसे ठहराया जाय कि यह पुस्तक ईश्वरकी है तब इसके पीछे उनके कहनेका प्रमाण होगा।"

इस उद्धरणसे यह कहा जा सकता है कि अब तक खडी बोलीमें बल आ गया था।

जैसे-जैसे खडी बोलीका प्रवेश पाठशालाओकी स्थापनाके परिणामस्वरूप पाठ्य-पुस्तकोमे हुआ वैसे-वैसे कुछ लोगोने खडी बोलीके इस ढाँचेमे अरबी, फारसी शब्दावलीका सम्मिश्रण कर, एक कामचलाऊ भाषाका निर्माण करके उसका स्वतत्र अस्तित्व स्थापित करनेका प्रयत्न किया। अदालतके कार्यकर्ताओमें इस भाषाकी जड जमी। ऐसी स्थितिमें सरकारी मदरसोंके लिए पाठ्य-ग्रन्थोके निर्माण की भाषाका प्रश्न सामने आया।

इस समय काशीके राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' शिक्षा विभागमे निरीक्षक के पद पर थे। उन्होने देखा कि शिक्षा विभागमें मुसलमानोका दल शक्तिशाली है, अत किसी पक्ष विशेषका समर्थन न करते हुए उन्होने मध्यवर्ती मार्गका अवलम्बन किया। लिपि देवनागरी रखते हुए उन्होने स्थान-स्थानपर साधारण उर्दू, फारसी तथा अरबीके शब्दोका भी प्रयोग किया, पर धीरे-धीरे उनपर उर्दूदाँ बननेकी धुन सवार हुई और उनकी लेखनीसे जो गद्य प्रसूत हुआ, वह इस प्रकारका था —

"इसमें अरबी, फारसी, सस्कृत और अब कहना चाहिए अँग्रेजीके भी शब्द कधे-से-कधा भिडाकर यानी दोश-ब-दोश चमक-दमक और रौनक पावे, न इस बेतर्तीबीसे कि जैसा अब गडबड मच रहा है बल्कि एक सल्तनतके मानिंद कि जिसकी हदें कायम हो गई हो और जिसका इन्तिजाम मुतजिमकी अक्लमन्दीकी गवाही देता है।"

पर इस स्थितिका सामना राजा लक्ष्मणसिंह ने किया और भाषाके एक निश्चयात्मक रूपके सम्यक् जो प्रसार की दृष्टिसे जिस शुद्ध हिन्दी गद्यमें लिखना आरम्भ किया, वह 'शकुन्तला' नाटकके शकुन्तला पात्र द्वारा कही गई भाषामे देखनेको मिलता है —

"उसी दिन मेरा पाला हुआ दीर्घायाग नामक मृगछौना आ गया, तुमने बडे प्यारसे कहा—आ छौने, पहले तू ही पीले। उसने तुम्हे विदेशी जान, तुम्हारे हाथसे जल न पिया। फिर उसी पत्तेमें मैंने पिलाया तो पी लिया। तब तुमने हँसकर कहा था कि सब कोई अपने ही सहवासीको पत्याता है, तुम दोनो एक ही वनके वासी हो।"

सन् १८२४ से १८८३ तककी अवधिमें आर्य समाज और सनातन धर्मके बीच चलनेवाले शास्त्रार्थों एव दोनो पक्षीय व्याख्याताओने भी खडी बोलीके गद्यके विकासमे एक महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा किया। उस समय सस्कृतके शब्दोका अधिकाधिक प्रयोग होता था। ऐसे पडितोमें महर्षि दयानन्द, प ज्वालाप्रसादजी, भीमसेन तथा श्रद्धाराम फुल्लौरीका नाम लिया जा सकता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने अपनी भाषामें न तो 'सितारे हिन्द' का वह उर्दूपन ही रखा जिसमें अरबी-फारसीके शब्दोकी बहुतायत रहती थी, और न वह रूप ही ग्रहण किया जिसमें एकदम सस्कृतके तत्सम शब्दोकी बहुतायत होती थी। उन्होने इन दोनोंके बीचके सरल और प्रचलित रूपको ग्रहण किया —

अब नहीं करनेसे क्या होता है? विचार तो करना ही होगा और फिर इसमें दोष क्या है जैसा तुम्हारा बिम्ब राजाके कुलमें जन्म है वैसा ही बिम्ब सन्यासी मिल जाएगा मैंने तो चांदका टुकड़ा वर खोज लिया था पर तू कहती है कि रानीसे उसका समाचार ही मत कहे तो अब कौन उपाय करें—अच्छा है वैसी तुम्हारी चोटी है कुछ उससे भी लम्बी उसकी दाढ़ी है सिरपर बड़ी भारी जटा है और सब अंगमें भभूत लगाए हैं ऐसे जोगी नित्य नित्य नहीं आते—अहा हा कैसा अद्भुत रूप है!

(विद्यासुन्दर नाटक)

अठारहवीं शताब्दीके अंत तक हिन्दी गद्यके लिए भूमि तैयार होती रही। इसके पश्चात् शासक और शासित—दोनोंकी स्थिति ऐसी हो गई कि गद्यके बिना उनका काम चलना असम्भव था। परिणामतः इसी समयसे गद्यकी प्रगति विशेष रूपसे हुई।

गद्यके इस वर्तमान कालमें पं० महावीर प्रसाद द्विवेदीका स्थान बड़े महत्त्वका है। भाषाकी चली आनेवाली शिथिलता अथवा व्याकरण सम्बन्धी निर्बलताके परिहारका कार्य भी द्विवेदीजीके हाथों हुआ। द्विवेदीजीने लेखकोंकी रचना शैलीकी आलोचना करके व्याकरणके दोषोंको दूर करने और करानेका प्रयत्न किया फलतः लेखक सतर्कता पूर्वक लिखने लगे। साधारणतः लेख सुस्पष्ट और शुद्ध होने लगे। शक्ति और चमत्कार युक्त छोटे-छोटे वाक्योंमें सम्यक अभिव्यंजनाके उद्देश्यको लेकर द्विवेदीजीने कई लेखकोंको तैयार किया। व्यंग्यात्मक आलोचनात्मक और गवेषणात्मक शैलियोंका आश्रय लिये जानेके कारण जिस प्रकारकी गद्यात्मक रचनाएँ हुईं उनके नमूने इस प्रकार हैं—

इस म्युनिसिपैलिटीके चेयरमैन (जिसे अब कुछ लोग कुरसी मैन भी कहने लगे हैं।) श्रीमान् बूचा शाह हैं। बाप-दादेकी कमाईका लाखों रुपया आपके घर भरा है। पढ़े-लिखे आप रामका नाम ही हैं। चेयरमैन आप सिर्फ इसलिए हुए हैं कि अपनी कारगुजारी गवर्नमेंटको दिखाकर आप रायबहादुर बन जायें और खुशामदियोंसे आठ पहर चौसठ घड़ी घिरे रहें। म्युनिसिपैलिटीका काम चाहे चले चाहे न चले आपकी बलासे।

\+ + + +

इसीसे किसी-किसीका ख्याल था कि यह भाषा देहलीके बाजार ही की बदौलत बनी है। पर यह खयाल ठीक नहीं। भाषा पहलेसे ही विद्यमान थी और उसका विशुद्ध रूप अब भी मेरठ प्रान्तमें बोला जाता है। बात सिर्फ यह हुई कि मुसलमान जब यह बोली बोलने लगे तब उन्होंने उसमें अरबी फारसीके शब्द मिलाने शुरू कर दिये जैसे कि आजकल संस्कृत जाननेवाले हिन्दी बोलनेमें आवश्यकतासे ज्यादा संस्कृत शब्द काममें लाते हैं।

अधिकांशतः द्विवेदीजीकी शैली यही है। उनकी अधिकतर रचनाओंमें एवं आलोचनात्मक लेखोंमें इसी भाषाका व्यवहार हुआ है।

द्विवेदीजी तक जितना हिन्दी गद्य लिखा गया था उसे देखनेसे यह मालूम होता है कि भाषागत लचरपन लगभग समाप्त हो गया था और बादके खड़ी बोली हिन्दीके सभी गद्य लेखक उन्हींके चरण-चिह्नोंपर चलने लगे। इनमें देवकीनन्दन खत्री किशोरीलाल गोस्वामी अयोध्यासिंह उपाध्याय एवं सरदार पूर्णसिंह आदिकी गणना की जा सकती है।

बाबू श्यामसुन्दरदासने एक अध्यापकके नाते बातको बार बार समझाते हुए भाषाके बलिष्ठ रूपकी एक सफल प्रतिमाको प्रस्थापित किया। देखिए —

"यह बात स्पष्ट है कि मानव समाजकी उन्नति उस समाजके अन्तर्भूत व्यक्तियोंके सहयोग और साहचर्यसे होती है, पर इस सहयोग और साहचर्यका साफल्य तभी सम्भव है जब परस्पर भावो या विचारोंके विनिमयका साधन उपस्थित हो। भाषा ही इसके लिए मूल साधन है और इसीकी सहायतामे मानव समाजकी उन्नति हो सकती है। अतएव भाषाका समाजकी उन्नतिके साथ बडा घनिष्ठ सम्बन्ध है, यहाँ तक कि एकके बिना दूसरेका अस्तित्व ही सम्भव नही, पर यही उनके सम्बन्धके साफल्यकी इतिश्री भी नही होती। दोनो साथ ही साथ चलते है। भाषाकी उन्नतिके साथ समाजकी उन्नति होती रहती है। इस-लिए हम कह सकते हैं कि उनका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है।"

('साहित्य और समाज' शीर्षक निबन्धसे)

प रामचन्द्र शुक्लने भावोंके अनुरूप प्रौढ भाषाका उपयोग किया है। ज्यो-ज्यो विषयकी गहनता और उत्कृष्टता बढती गई है, त्यो-त्यो भाषाके रूपरगम भी परिवर्तन होता गया है।

"ब्रह्मकी व्यक्त सत्ता सतत क्रियमाण है। अभिव्यक्तिके क्षेत्रमे स्थिर (Static) सौन्दर्य और स्थिर मगल कहीं नही, गत्यात्मक (Dynamic) सौन्दर्य गत्यात्मक मगल हीं है, पर सौन्दर्य-की गति भी नित्य अनन्त ह और मगल की भी। गतिकी यही नित्यता जगत्की नित्यता है। सौन्दर्य और मगल वास्तवमें पर्याय हैं। कला पक्षसे देखनेमें जो सौन्दर्य है, वही धर्म पक्षसे देखनेमें मगल है। जिस सामान्य काव्य-भूमिपर प्राप्त होकर हमारे भाव एक साथ ही सुन्दर और मगलमय हो जाते हैं, उसकी व्याख्या पहले ही हो चुकी है। कवि मगलका नाम न लेकर सौन्दर्यका ही नाम लेता है और धार्मिक सौन्दर्यकी चर्चा बचाकर मगल ही का जिक्र किया करता है। टालस्टाय इस प्रवृत्ति-भेदको न पहचानकर काव्य-क्षेत्रमें लोक-मगलका एकान्त उद्देश्य रखकर चले इससे उनकी समीक्षाएँ गिरजाघरके उपदेशके रूपमें हो गईं। मनुष्य-मनुष्यमें प्रेम और मातृभाव की प्रतिष्ठा ही काव्य का सीधा लक्ष्य ठहरानेसे उनकी दृष्टि बहुत सकुचित हो गई, जैसा कि उनकी सबसे उत्तम ठहराई हुई पुस्तकोकी विलक्षण सूचीसे विदित होता है। यदि टालस्टायकी धर्म-भावनामें व्यक्तिगत धर्मके अतिरिक्त लोकधर्म का भी समावेश होता तो शायद उनके कथनमें इतना असा-मजस्य न घटित होता।"

भाषा, सौष्ठवका जितना परिष्कृत रूप हमें प्रसादजीकी रचनामें प्राप्त होता है, वह सचमुच एक अनुपम आनन्द देनेवाला है। इस सौष्ठवमें मनोहरता, ओज और माधुर्यका चमत्कार-पूर्ण सयोग है —

"सुदर्शनने देखा सब सुन्दर है। आज तक जो प्रकृति उदास चित्र बनाकर सामने आती थी, उसकी मोहिनी और मधुर सौन्दर्यकी विभूतिको देखकर सुदर्शनकी तन्मयता उत्कण्ठामें बदल गई। उसे उन्माद ले चला। इच्छा होती थी कि वह समुद्र बन जाय। उसकी उद्वेलित लहरोसे चन्द्रमाकी किरणें खेलें और हँसा करें। इतनेमें ध्यान आया उस धीवरकी बालिका का। इच्छा हुई वह भी वरुण कन्या सी चन्द्रकिरणोसे लिपटी हुई उसके विशाल वक्षस्थलमें विहार करे। उसकी आँखोमें गोल धवल पालवाली नाव

समा गई, कानोंमें अस्फुट संगीत भर गया। सुदर्शन उन्मत्त था। कुछ पद शब्द सुनाई पड़े। उसे ध्यान आया मुझे लौटा ले जानेके लिए कुछ लोग आ रहे हैं। वह चंचल हो उठा। फेनिल जलधिमें कूद पड़ा। लहरोंमें तैर चला।

उपर्युक्त उदाहरणमें भावानुरूप काव्यका प्रौढ़तम उन्माद है।

प्रेमचन्दकी भाषा ठेठ हिन्दुस्तानी है सीधी-सादी किन्तु शैली प्रौढ़ परिष्कृत संस्कृत पदावलीसे शुभ्र और उर्दूसे चंचल। देखिए —

"सकीना जैसे घबरा गई। जहाँ उसने एक चुटकी आटेका सवाल किया था वहाँ दाताने ज्योनार का एक भरा थाल लेकर उसके सामने रख दिया। उसके छोटेसे पात्रमें इतनी जगह कहाँ है? उसकी समझमें नहीं आता कि इस विभूतिको कैसे समेटे। अंचल और दामन सब कुछ भर जाने पर भी तो वह उसे समेट न सकेगी।

(कर्मभूमि)

आजकल साधारणतः सरल शब्दावलीमें अधिकसे अधिक लोगोंके समझनेकी दृष्टिसे भाषाका प्रयोग वांछनीय माना जाता है और इसी दृष्टिसे सभी लोग खड़ी बोली गद्य रचनाओंकी ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। ऐसे लेखकोंमें चतुरसेन शास्त्री शिवपूजन सहाय पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' महादेवी वर्मा रामकुमार वर्मा हजारीप्रसाद द्विवेदी नगेन्द्र विनयमोहन शर्मा नन्ददुलारे वाजपेयी आदि लेखकोंका समावेश होता है।

संक्षेपमें यहां हम तो कह सकते हैं कि इस समय भाषाकी व्यापकता और विस्तारके साथ अन्य भाषाओंकी भावभंगी एवं वाक्य विन्यासके समावेशके कारण भाषाकी पाचन शक्तिपर काफी भार पड़ रहा है। परिणामतः सभी भाषाओंकी उपयोगी शब्दावलीको ग्रहण कर अपनी उद्भावना शक्तिका ह्रास न होने देनेकी आवश्यकता की ओर सम्यक् ध्यान देते हुए लेखक सतर्कतापूर्वक भाषाका प्रयोग कर रहे हैं। खड़ी बोली का शुद्ध हिन्दीवाला हिन्दुस्तानी कहलाया जानेवाला तथा उर्दूवाला आदि तीनों रूपोंका समाहार आजकी खड़ी बोली गद्यमें हो जाता है।

आज तो हिन्दी काव्य एवं गद्यके क्षेत्रमें हिन्दीकी खड़ी बोलीका रूप सर्वत्र छाया हुआ है। ब्रज अवधीका प्राचीन साहित्य अब अध्ययन तक सीमित है। अब इनमें मौलिक नवीन रचनाएँ बहुत कम होती हैं। साहित्य सर्जकोंका अब सारा झुकाव खड़ी बोलीकी ओर है।

हिन्दीका वर्तमान रूप अनेक घातों प्रतिघातों प्रवृत्तियों तथा प्रभावोंका परिणाम है। खड़ी बोलीके वर्तमान रूपके संवारनेमें हमारे देशकी प्रादेशिक भाषाओं बोलियों—संस्कृत अरबी फारसीके अतिरिक्त अंग्रेजी पोर्तगीज आदि विदेशी भाषाओंकी शब्दावली मुहावरे शब्द प्रयोग आदिका विशेष हाथ है।

राष्ट्रभाषा प्रचार-कार्य राष्ट्र निर्माणका कार्य है। इस कार्यमें अनेक संस्थाओं व्यक्तियों *और प्रवृत्तियोंने सहयोग दिया है। यहाँ हम उन संस्थाओंका संक्षेपमें परिचय दे रहे हैं जिन्होंने गत वर्षोंमें हिन्दीके प्रचार प्रसार एवं उसके संवर्द्धनमें विशेष सहयोग दिया है।*

नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
[भवन]

नागरी-प्रचारणी-सभा, वाराणसी

सभाका बीजारोपण लगभग ७० वर्ष पूर्व वाराणसीके क्वीस कॉलेजिएट स्कूलकी पाँचवी कक्षामें पढनेवाले कतिपय उत्साही छात्रोंने किया था, जिनका मूल उद्देश्य एक चर्चा समितिकी स्थापना करना था। उन्होंने स्थिर किया था कि नागरी प्रचारको उद्देश्य बनाकर एक सभाकी स्थापना की जाय। इस निश्चयके अनुसार २७ फाल्गुन १९४९ (१० मार्च, १८९३) को सभाकी स्थापना हुई, जिसका नाम 'नागरी प्रचारिणी सभा' रखा गया। उस समय सर्वश्री गोपालप्रसादजी खत्री, रामसूरत मिश्र, उमराव सिंह, शिवकुमार सिंह तथा प रामनारायण जी मिश्र उसके प्रमुख कार्यकर्ता थे। थोडे ही समय पश्चात् श्री श्यामसुदरदासजी भी इसमें सम्मिलित हो गए और वही मन्त्री हुए।

प्रारम्भमें उसे बालसभा मात्र समझकर बडे-बूढे उसमें आनेसे सकोच करते थे। पर कार्यकर्ताओके सतत उद्योगसे शीघ्र ही सर्वश्री राधाकृष्णदास, महोमहापाध्याय सुधाकर द्विवेदी, रायबहादुर लक्ष्मीशकर मिश्र, डॉ छन्नूलाल और रायबहादुर प्रमदादास मित्र जैसे तत्कालीन हिन्दी हितैषी प्रतिष्ठित विद्वान् पथ-प्रदर्शकके रूपमें प्राप्त हो गए। धीरे-धीरे सभा अपनी ओर भारत भरके हिन्दी प्रेमियोका ध्यान खीचने लगी। सर्वश्री महामना प मदनमोहन मालवीय, कालाकाकर नरेश, राजा रामपाल सिह, राजा शशिशेखर राय, काकरोलीनरेश, महाराज बालकृष्णलाल, अम्बिकादत्त व्यास, बदरीनारायण चौधरी, राधाचरण गोस्वामी, श्रीधर पाठक, ज्वालादत्त शर्मा (लाहौर), नन्दकिशोर देव शर्मा (अमृतसर,) कुवर जोधसिंह मेहता (उदयपुर), समर्थदान (अजमेर), डॉ सर जार्ज ग्रियर्सन जैसे लब्धप्रतिष्ठ विद्वानोंने पहले ही वर्ष सभाकी सरक्षकता और सदस्यता स्वीकार कर ली।

सभाने आरम्भसे ही ठोस रचनात्मक कामोको अपने हाथमें लिया। हिन्दीकी प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोकी खोज कराना, हिन्दीके बृहत् कोशका निर्माण कराना, हिन्दी भाषा और साहित्यका इतिहास तैयार कराना, शोध कार्य कराना, नागरी लिपिका प्रचार आदि सभाके प्रमुख काम थे।

सन् १८३७ में अँग्रेजी सरकारने फारसीको सर्वसाधारणके लिए दुरूह मानकर देशी भाषाओको अदालतोमें जारी करनेकी आज्ञा दी थी। परिणामस्वरूप बगाल, उडीसा, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रदेशोमें वहाँ प्रचलित देशी भाषाओका चलन हो गया। पर उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेशमें अदालती अमलोकी कृपासे हिन्दुस्तानीके नामपर उर्दू ही जारी रही। प्रयत्न करनेपर बिहार और मध्यप्रदेशकी सरकारोने सन् १८८१ में इस भ्रमको समझा और अपने यहाँ उर्दूके स्थानपर हिन्दी प्रचलित की। परन्तु उत्तर प्रदेशकी सरकारने इस ओर विशेष ध्यान नही दिया। अतएव सन् १८८२ में प्रान्तीय बोर्ड आफ रेवेन्यूका ध्यान इस ओर खीचा गया कि सन् १८७५ और १८८१ के क्रमश १९ वें और १२ वें विधानोंके अनुसार 'समन' आदि हिन्दी और उर्दू—दोनोंमें भरे जाने चाहिए। इन्ही दिनो रोमन लिपिको दफ्तरकी लिपि बनानेका भी कुछ प्रयत्न हुआ। इसपर सभाने २५ अगस्त, १८९५ के निश्चयके अनुसार नागरी लिपि और रोमन अक्षरोके विषयमें अँग्रेजीमें एक पुस्तिका तैयार करके प्रकाशित की और सरकार, पदाधिकारियो तथा जनतामें इसकी कई सौ प्रतियाँ वितरित कराईं। बोर्ड आफ रेवेन्यू विषयक सभाकी प्रार्थनाको सरकारने स्वीकार कर लिया। इसके अनुसार सब जिलोंके अधिकारियोको सूचना दे दी गई कि बोर्ड आफ रेवेन्यूके

सम्मन आदि सब कागज हिन्दीमें भी जारी किए जाया करें। १ अगस्त सन् १८९६ को सभाने निश्चय किया कि प्रान्तीय गवर्नरकी सेवामें प्रतिनिधिमण्डल भेजकर निवेदन-पत्र (मेमोरियल) उपस्थित किया जाय कि संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) के राजकीय कार्यालयोंमें देवनागरी लिपिको स्थान दिया जाय। इस अवसरपर महामना पं मदनमोहन मालवीयजीने कोर्ट कैरेक्टर ऐंड प्राइमरी एज्यूकेशन नामक एक बड़ा और महत्त्वपूर्ण निबन्ध तैयार किया। सभाने आन्दोलन करके निवेदनपत्रपर साठ हजार हस्ताक्षर करवाए। सभाका प्रतिनिधिमण्डल २ मार्च १८९८ को इलाहाबादके गवर्नमेंट हाउसमें प्रान्तके गवर्नर सर ऐन्टानी मैक डॉनेलसे मिला और उनके सम्मुख साठ हजार हस्ताक्षरोंकी १६ जिल्दें तथा मालवीयजीके कोर्ट कैरेक्टर ऐंड प्राइमरी एज्यूकेशनकी एक प्रतिके साथ निवेदन पत्र उपस्थित किया। सभाका आन्दोलन तेजीसे बढ़ने लगा। परिणामस्वरूप संयुक्त प्रान्तकी सरकारको बाध्य होकर १८ अप्रैल सन् १ को यह आज्ञा निकालनी पड़ी —

१—सभी अपनी इच्छाके अनुसार नागरी या फारसी लिपि में लिखकर प्रार्थना-पत्र दे सकते हैं।

२—सरकारी आदेश और सूचनाएँ नागरी और फारसी—दोनों लिपियोंमें निकलेंगी।

३—सरकारी कर्मचारियोंके लिए नागरी और फारसी दोनों लिपियोंका ज्ञान लेना आवश्यक होगा।

सभाने नागरी लिपि और हिन्दी भाषाको प्रचलित करानेके लिए कचहरी हिन्दी कोश भी तैयार करवाकर प्रकाशित किया। यही नहीं नागरी लिपिमें सुधारके लिए भी सभाने उद्योग किया।

इस प्रकार नागरी प्रचारिणी सभाने प्रारम्भसे ही हिन्दी भाषा और नागरी लिपिके प्रचार, प्रसार और संस्कारके कामोंको किया और उनहें करनेकी लोगोंमें प्रवृत्ति पैदा की तथा निरंतर उनका दिग्निर्देश और नेतृत्व करती रही।

प्रारम्भसे ही सभाने हिन्दीका पुस्तकालय स्थापित करनेका विचार किया। प्रारम्भमें सभाके पुस्तकालयका नाम ,नागरी भंडार, था। २७ अगस्त १८९४ को सभाने श्री गदाधर सिंहजीसे अनुरोध किया कि वह कृपाकर अपना आर्य भाषा पुस्तकालय सभाको दे दें। श्री गदाधर सिंहजी सभाकी व्यवस्थासे बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने इस शर्तके साथ अपना पुस्तकालय सभाको दे दिया कि सभाके संग्रह और उक्त पुस्तकालयमें संगृहीत सभी पुस्तकोंके संग्रहका सम्मिलित नाम आर्य भाषा पुस्तकालय रखा जाय। सभाने इसे स्वीकार कर लिया और तभीसे उसका पुस्तकालय आर्य भाषा पुस्तकालय के नामसे सेवा करता आ रहा है। आर्य भाषा पुस्तकालयमें हिन्दीका बहुत व्यापक संग्रह है। अनेक मूर्धन्य विद्वानोंने इस पुस्तकालय को अपना महत्त्वपूर्ण संग्रह दिया है। पुस्तकालयमें लगभग ५, ० हस्तलिखित तथा ४ मुद्रित ग्रन्थ संगृहीत हैं। प्राचीन-पत्र पत्रिकाओंका संग्रह भी पुस्तकालयमें है। इस प्रकार आर्य भाषा पुस्तकालयमें हिन्दीका बहुत व्यापक भंडार है। हिन्दीमें शोध कार्य करनेवाले विद्यार्थियोंकी दृष्टिसे तो यह पुस्तकालय अपूर्व है। विभिन्न विश्वविद्यालयोंमें हिन्दीमें डी फिल पी एच डी और डी लिट के शोध-विद्यार्थी बराबर सभामें इस पुस्तकालयमें अध्ययनके लिए आते हैं और यहीं टिककर अध्ययन करते हैं।

हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थोंकी खोजका कार्य आरम्भमें सभाने एशियाटिक सोसायटी (बंगाल) के द्वारा करवाया था। इसके परिणाम स्वरूप सं १९८५ तक ६ महत्त्वपूर्ण हस्तलेख मिले। इन ग्रन्थोंमें हिन्दी साहित्यके इतिहासकी बहुत उपयोगी सामग्री मिली। सन् १९ के बाद हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थोंकी

खोजका काम सभाने स्वतन्त्र रूपसे करना प्रारम्भ किया। सभाको प्राचीन हस्तलेखोकी खोजके कार्यमें अपने-अपने समयके सुविख्यात विद्वानोका सहयोग प्राप्त था। डॉ काशीप्रसाद जायसवाल, रा ब डॉ हीरालाल और रा ब गौरीशकर हीराचन्द ओझाका सहयोग सभाके खोज विभागको निरतर मिलता रहा। सभाकी इस खोजके क्षेत्रमें समस्त हिन्दी भाषी प्रदेश है। इतने वडे क्षेत्रमें और इतने महत्त्वपूर्ण काममे जितने आदमियोको लगानेकी जरूरत है, उतने आदमियोको सभा इस काममें नही लगा पा रही है क्योकि सभाके पास द्रव्यकी कमी है।

सभाके प्रकाशनोमें 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' इस युगकी सम्पूर्ण पत्र-पत्रिकाओमें निर्व्यवधान प्रकाशित होती रहनेवाली सर्वाधिक प्राचीन पत्रिका है। इसका मुख्य उद्देश्य है नागरी लिपि और हिन्दी भाषा का सरक्षण तथा प्रसार, हिन्दी साहित्यके विविध अगोका विवेचन और भारतीय सस्कृतिका अनुसधान। यह शोध-पत्रिका है और मुख्यत इसीके द्वारा हिन्दीमें उच्चतर शोधका मान प्रतिष्ठित हुआ है। आज भी पत्रिका अपने गौरवके अनुकूल चल रही है।

इस मुख पत्रिकाके अतिरिक्त सभा कुछ समय तक 'हिन्दी' तथा 'विधि पत्रिका' नामक हिन्दीकी मासिक पत्रिकाएँ और 'हिन्दी रिव्यू' नामक एक अँग्रेजी मासिक पत्रिका भी प्रकाशित करती रही। ये तीनो पत्रिकाएँ अपने-अपने क्षेत्रोमें यथेष्ट लोकप्रिय रही और उन्होने अपने उद्देश्योकी पूर्ति वहुत कुछ की, किन्तु आर्थिक दृष्टिसे वे स्वावलम्बी नही हो सकी। फलत वाध्य होकर सभाको उनका प्रकाशन वन्द कर देना पडा।

सभाके प्रकाशनोमें सबसे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है 'हिन्दी-शब्द सागर।' वस्तुत यह हिन्दी जगतके लिए गौरवमय प्रकाशन था। सभाके इस महत्वपूर्ण कार्यमें उस युगके अनेक मनीषी विद्वानोने बडी लगन और साधुभावसे काम किया। अनेक स्थानोपर जाकर, अनेक विद्वानोंसे सलाह करके हिन्दी शब्दसागरको पूर्ण बनाया गया। हिन्दी शब्दसागरमें सब मिलाकर ९३११५ शब्द और ४२८१ पृष्ठ हैं। इस बृहत् कोशकी तैयारीमें सन १९०८ से १९२९ तक लगभग २२ वर्ष लगे और १०८७१९ रु १४ आ ५ पा व्यय हुए। जिस समय यह हिन्दी शब्दसागर प्रकाशित हुआ उस समय इसने हिन्दीकी आवश्यकताकी अच्छी तरह पूर्ति की। पर इस कोशको प्रकाशित हुए ३० वर्षसे ऊपर हो गए। अब इसके पुन सशोधनकी, परिवर्तनकी, तथा प्रकाशनकी नितान्त आवश्यकता है। केन्द्रीय सरकारकी सहायतासे स २०११ से लेकर २०१६ तक, प्राय पाँच वर्ष, सभाने इस कोशका सशोधन और परिवर्तन कराया पर काम पूरा नही हुआ। सरकारी सहायता वन्द हो जानेपर सशोधन कार्य सभा अपनी ओरसे करा रही है।

हिन्दी शब्दसागरके अलावा हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली नामक अँग्रेजी-हिन्दी कोश भी सभाका एक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन रहा है। सच तो यह है कि भारतीय भाषाओमें वैज्ञानिक कोशके प्रणयनका सर्वप्रथम सौभाग्य नागरी प्रचारिणी सभाके उद्योगसे हिन्दीको ही प्राप्त है। इस कोशमें ज्योतिष, रसायन, भौतिक विज्ञान, गणित, वेदान्त, भूगोल, अर्थशास्त्र आदि विषयोके शब्द एकत्र किए गए। कई विद्वानोने लगातार उन्नीस दिनो तक वैठकर अत्यन्त परिश्रमके साथ इस कोशकी सामग्रीकी छानवीन करके इसके सम्वन्धमे व्यवस्थित सिद्धान्त स्थिर किए थे जिनके अनुसार स १९६२ मे यह कोश छपकर तैयार हुआ।

राजकीय शब्दकोशका काम भी सभाने अपने हाथमे लिया था। देशके विभिन्न विद्वानोके सहयोगसे सभाने इस कार्यको व्यापक योजनाके साथ आगे वढाया। प्रारम्भमें उत्तर प्रदेशकी सरकारका कुछ

सहयोग भी सभाको मिला। सभाने बहुत दूर तक इस कोशको तैयार भी करा लिया। उसके कुछ फर्में छपने भी लगे थे। पर दुबारा सरकारने सहायता नहीं दी और द्रव्याभावके कारण इस दिशामें अपेक्षाकृत यह सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण कार्य स्थगित कर दिया गया।

हिन्दीमें विस्तृत और सुव्यवस्थित व्याकरणका अभाव भी एक बहुत बड़ी कमी रही है। सभाने इस अभावको भी दूर करनेका प्रयत्न किया। सं १९९ में उसने हिन्दी व्याकरण प्रस्तुत करनेकी सामग्री एकत्र करवाई जिसके आधारपर सन् १९१९ में सभाने हिन्दीका एक प्रामाणिक व्याकरण प्रकाशित किया। इस कार्यमें मुख्य योग स्व प कामताप्रसाद जी गुरुका रहा और उन्हींके नामसे यह व्याकरण प्रकाशित हुआ। समय समयपर कतिपय विद्वान हिन्दी व्याकरण सम्बन्धी विभिन्न विषयोंकी चर्चा करते रहे और एक नवीन ग्रन्थकी आवश्यकतापर निरन्तर बल देते रहे। फलत सन् १९९ में सभाने प किशोरीदास जी वाजपेयी प्रणीत हिन्दी शब्दानुशासन प्रकाशित किया जिसमें व्याकरण विषयक अनेक मतभेदों और सन्देहोंका निराकरण हुआ।

हिन्दीमें महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंको प्रस्तुत करनेके लिए सभाने समय-समयपर हिन्दी प्रेमी श्रीमानोंकी सहायता तथा अपने निजी साधनोंसे अनेक पुस्तकमालाओंके प्रकाशनका आयोजन किया। इनमें मनोरंजन पुस्तकमाला देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला सूर्यकुमारी पुस्तकमाला बालाबक्ष राजपूत-चारण पुस्तकमाला देव पुरस्कार ग्रन्थावली रुक्मिणी तिवारी पुस्तकमाला रामविलास पोद्दार स्मारक ग्रन्थमाला महेन्द्रलाल गर्ग विज्ञान ग्रन्थावली नवभारत ग्रन्थमाला और महिला पुस्तकमाला आदि प्रमुख प्रकाशन है। इन ग्रन्थमालाओंमें अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका प्रकाशन हुआ है। किन्तु फिर भी हिन्दीके जानकारी एव ज्ञान विवर्द्धनके उपयोगी ग्रन्थोंकी दृष्टिसे सभाके प्रकाशनोंमें कमी थी। हिन्दीके सभी ग्रन्थ सुसम्पादित रूपमें अभी नहीं प्रकाशित हो पाए हैं। सभाका ध्यान इस कमीकी ओर गया। सभाके एक प्रतिनिधि मण्डलने इसकी हीरक जयन्ती (सं २ १ वि) के अवसरपर दिल्ली जाकर श्रीमान् सेठ घनश्यामदासजी बिड़लाका ध्यान इस कमीकी ओर आकर्षित किया। यह कहते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि श्री घनश्यामदासजीने इस कमी को दूर करनेके लिए सभाको पचीस हजार रुपयेका दान दिया जिससे राजा बलदेवदास बिड़ला पुस्तकमालाकी स्थापना की गई। सभाने अब तक १ से ऊपर पुस्तक प्रकाशित की है। इनसे हिन्दी साहित्यका श्रीवर्द्धन हुआ है। ये पुस्तक हिन्दी साहित्यके विविध अंग—यथा काव्य नाटक कहानी उपन्यास जीवन चरित्र निबन्ध आदिको पुष्ट करती है इनके अतिरिक्त इतिहास राजनीति अर्थशास्त्र दर्शन तर्कशास्त्र विज्ञान कला आदि विषयोंपर भी हिन्दीमें साहित्यका अभाव था उसकी पूर्ति करती है।

अपने उत्तमोत्तम प्रकाशनों द्वारा हिन्दी साहित्यका भण्डार भरपूर करनेके साथ-साथ सभाने सदैव यह चेष्टा की है कि अन्यान्य लोगोंसे भी निरन्तर विभिन्न विषयोंके उच्च कोटिके ग्रन्थ प्रकाशित होते रहें। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए सभाने पुरस्कार और पदका भी योजना की है। प्रति वर्ष भिन्न-भिन्न विषयोंकी सर्वोत्तम पुस्तकों एव रचयिताओंको नकद पुरस्कार और पदक या स्वर्णपदक प्रदान करके सम्मानित करती है और उनका उत्साहवर्द्धन करती रही है। हिन्दी-संसार सभाके पुरस्कारों और पदकोंको बड़े आदरकी दृष्टिसे देखता है।

हिन्दी साहित्यकी मौलिक और उत्तम कृतियोपर जो पुरस्कार और पदक दिये जाते है, उनका विवरण इस प्रकार है —

पुरस्कार

बलदेवदास बिड़ला पुरस्कार—२००) का यह पुरस्कार अध्यात्मयोग, सदाचार, मनोविज्ञान और दर्शनके सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थोपर प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

बटुक प्रसाद पुरस्कार—स्वर्गीय राय बहादुर बटुक प्रसाद खत्री द्वारा दी हुई निधिसे २००) का यह पुरस्कार सर्वश्रेष्ठ मौलिक उपन्यास या नाटकपर प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

रत्नाकर पुरस्कार—स्वर्गीय श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की दी हुई निधिसे २००) का यह पुरस्कार ब्रजभाषाके सर्वोत्तम ग्रन्थपर प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

एक और कलाका पुरस्कार भी २००) का दिया जाता है। डिंगल, राजस्थानी अवधी, बुन्देलखडी, भोजपुरी, छत्तीसगढी आदिकी सर्वोत्तम रचना या सुसम्पादित ग्रन्थपर प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

डॉ छन्नूलाल पुरस्कार—श्री रामनारायण मिश्रकी दी हुई निधिसे २००) का यह पुरस्कार प्रति चौथे वर्ष विज्ञान विषयक उत्तम रचनापर दिया जाता है।

जोधसिंह पुरस्कार—उदयपुर निवासी स्व मेहता जोधसिंहकी दी हुई निधिसे २००) का यह पुरस्कार प्रति चौथे वर्ष सर्वोत्तम ऐतिहासिक ग्रन्थपर दिया जाता है।

माधवीदेवी महिला पुरस्कार—१००) का यह पुरस्कार गृह-शास्त्र सम्बन्धी उत्कृष्ट पुस्तकपर महिला लेखिकाको दिया जाता है।

वसुमति पुरस्कार—बाल-साहित्य की सर्वोत्तम कृतिपर प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

डॉ श्यामसुन्दर पुरस्कार—यह पुरस्कार १,०००) तथा २,०००) का प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

पदक

डॉ हीरालाल स्वर्णपदक—यह स्वर्णपदक प्रति दूसरे वर्ष पुरातत्त्व, मुद्रा शास्त्र, इडोलोजी (हिन्दी विज्ञान), भाषा विज्ञान आदि सम्बन्धी हिन्दीमें लिखित सर्वश्रेष्ठ मौलिक पुस्तक अथवा गवेषणापूर्ण निबन्ध-पर दिया जाता है।

द्विवेदी स्वर्णपदक—यह पदक प्रति वर्ष हिन्दीकी सर्वोत्कृष्ट कृतिपर दिया जाता है।

सुधाकर पदक—यह रजत पदक बटुक प्रसाद पुरस्कार पानेवालेको दिया जाता है।

ग्रीव्ज पदक—श्री रामनारायण मिश्रकी दी हुई निधिसे यह रजत पदक डॉ छन्नूलाल पुरस्कार पानेवालेको दिया जाता है।

राधाकृष्णदास पदक—श्री शिवप्रसाद गुप्तकी दी हुई निधिसे यह रजत-पदक 'रत्नाकर पुरस्कार' पानेवालेको दिया जाता है।

बलदेवदास पदक—श्री ब्रजरत्नदास वकीलकी दी हुई निधिसे यह रजत-पदक 'रत्नाकर पुरस्कार' पानेवाले को दिया जाता है।

गुलेर पदक—स्व चन्द्रधर शर्मा गुलेरीकी स्मृतिमें श्री जगद्धर शर्मा गुलेरीकी दी हुई निधिसे यह रजत पदक जोधसिंह पुरस्कार पानेवालेको दिया जाता है।

रेडिचे पदक—यह पदक बिड़ला पुरस्कार प्राप्त करनेवालेको दिया जाता है।

सभाने एक राष्ट्रीय अभावकी पूर्तिके लिए स १९५१ मे हिन्दी सकेत लिपिका निर्माण करवाया एव उसे उत्तरोत्तर परिष्कृत करवाती रही। सकेतलिपि तथा टकण (टाइपराइटिंग) की शिक्षाके लिए सभाने एक विद्यालय भी खोला है। सभाके उद्योगसे ही आज अनेक प्रदेशोकी सरकारोमें हिन्दी सकेत लिपिका व्यवहार होने लगा है।

हिन्दीके परम आदरणीय कवि स्व जयशकर प्रसादजीकी स्मृतिमे सभा एक साहित्यगोष्ठी और व्याख्यानमालाका सचालन करती है। गोष्ठीके अन्तर्गत स्थानीय एव आगत विद्वानोके स्वागत सत्कार एव विचारोंके पारस्परिक आदान प्रदान की व्यवस्था की जाती है एव व्याख्यान मालाके अन्तर्गत विभिन्न विषयोपर लोकप्रिय एव सुबोध व्याख्यान होते हैं।

सभाके पास उसका निजी मुद्रणालय है जिसमे यहाँके प्राय समस्त प्रकाशन मुद्रित हुआ करते हैं। मुद्रणालयमें यद्यपि अभी बहुतेरी न्यूनताएँ हैं, तथापि सभाके प्रकाशनोको समयपर प्रस्तुत कर देनेमें मुद्रणालय का उल्लेखनीय योग रहता है। उन अनेक असुविधाओसे भी सभाको मुक्ति मिल गई है जिसका सामना मुद्रण कार्य अन्यत्र करानेमें करना पडता था। इतना ही नही सभाके अतिरिक्त मुद्रणालय कुछ बाहरी मुद्रणकार्य भी कर लेता है। इस प्रकार यह विभाग अनेक दृष्टियोसे सभाके लिए सुविधाजनक और हितावह सिद्ध हो रहा है।

हिन्दीके बडे पुराने परिव्राजक हिन्दी सेवी स्वामी सत्यदेव जीने ज्वालापुर (हरद्वार) में सत्यज्ञान निकेतन नामक अपना जो आश्रम बनवाया था उसे मुख्यत देशके उत्तरी और पश्चिमी अचलोके लिए हिन्दीका प्रचार केन्द्र बनानेके निमित्त इस सभाको अर्पित कर दिया है। सभाने अपने यत्किचित् साधनासे वहाँ एक पुस्तकालय भवन बनवा दिया है और यथावश्यकता अन्यान्य सुधार-परिष्कार करके स्वामीजीके इस सात्त्विक दानका उद्देश्यानुसार संचालन कर रही है।

सभाके सहयोग और मुख्यत राय कृष्णदासजीके उद्योगसे सभाने भारतीय सस्कृति और कलाकी विपुल प्राचीन सामग्रीका सग्रह भारत-कला-भवनमें करवाया। सग्रह बहुत अधिक बढ जानेपर यह कला भवन काशी हिन्दूविश्वविद्यालयको हस्तान्तरित कर दिया गया जहाँ उसका यथोचित सचालन एव विकास हो रहा है।

स २ १ में सभाने अपनी हीरक जयन्ती बडे समारोहपूर्वक भारतीय गणराज्यके प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीके सभापतित्वमें मनाई। सभाका यह आयोजन उत्सव मात्र न होकर उसकी परम्पराके अनुसार ऐसा अवसर था जब उसने अपने पिछले कार्योपर सम्यक् दृष्टिपात करते हुए भविष्यके लिए कुछ उल्लेखनीय रचनात्मक कार्योंका सकल्प किया था जिनमें प्रमुख निम्नाकित हैं —

१—हिन्दी शब्दसागरका सशोधन।
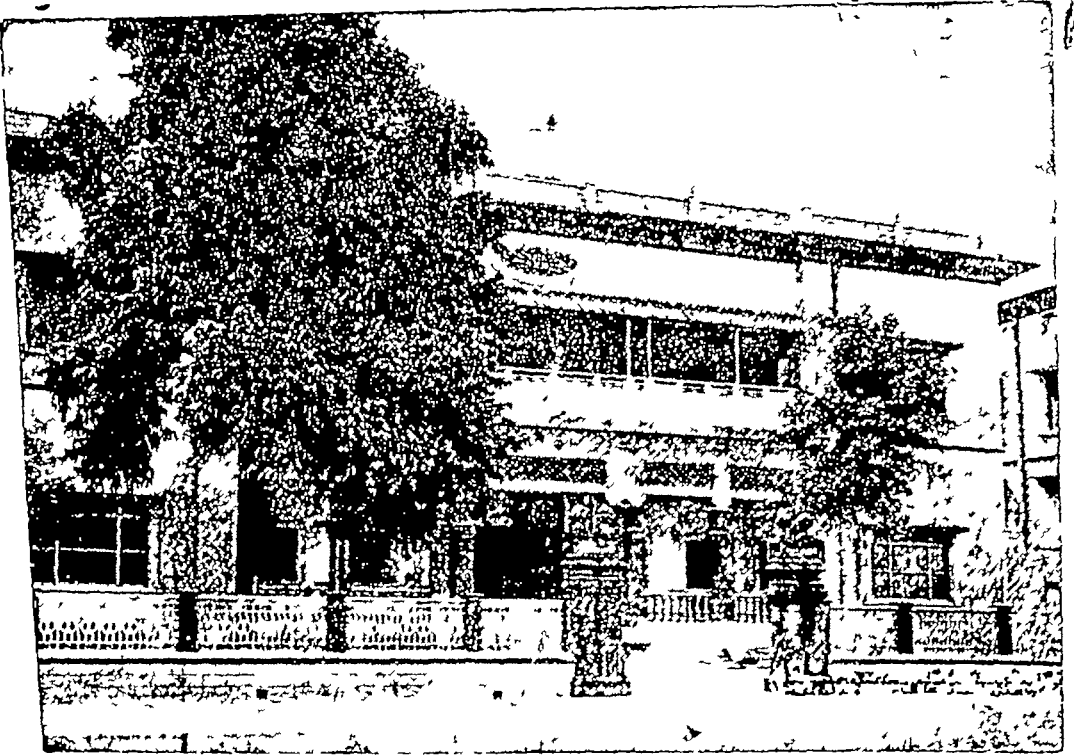
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
[भवन]

२—आकर ग्रन्थोका प्रकाशन।

३—हिन्दी साहित्यके बृहत् इतिहासका १७ भागोमे प्रकाशन।

४—हिन्दी विश्वकोशका प्रणयन और प्रकाशन।

इनमेंसे प्रथमोक्त दो कार्योका उल्लेख ऊपर हो चुका है। हिन्दी साहित्यके बृहत इतिहासका कार्य भी सभा यथोचित रीतिसे कर रही है और अव तक उसके तीन भाग—प्रथम, षष्ठ और षोडश—प्रकाशित हो चुके है। शेष भाग भी लेखन-सम्पादन आदिके क्रममें है और यथावसर प्रकाशित होंगे।

हिन्दी विश्वकोशके प्रणयन, प्रकाशनका कार्य सभा केन्द्रीय सरकारके वित्तीय सरक्षणमें कर रही है। लगभग ६००–६०० पृष्ठोंके दस भागोमे यह विश्वकोश सम्पूर्ण होगा और इसपर कुछ ६॥ लाख रुपये व्यय होंगे। स २०१७ में इसका प्रथम भाग प्रकाशित हो गया, जिसपर सारे देशके विद्वानोंने सतोष और प्रसन्नता व्यक्त की है। दूसरा भाग छप रहा है और आगेकी सामग्री सकलन एव प्रकाशनके क्रममें है।

नागरी प्रचारिणी सभा आधुनिक भारतके राष्ट्रीय जागरण कालकी सस्था है और हमारे लिए यह बडे गौरवकी वात है कि सभाने अपने अव तकके कालमें राष्ट्रकी साहित्यिक आवश्यकताकी पूर्तिका रचनात्मक काम किया है। आज हिन्दी और नागरी को जो महत्त्व प्राप्त है, उसका वहुत कुछ श्रेय सभाको ही है। इस अति अल्प आरम्भसे उसने आज एक विशाल सस्थाका रूप धारण कर लिया है जो देशके मूर्द्धन्य विद्वानोके सहयोगसे भारत गणराज्य राष्ट्रभाषाकी, हिन्दी साहित्य और राष्ट्रीय सस्कृतिके प्रसार-प्रचार एव उन्नयनके पथपर अविचल गतिसे निरन्तर प्रगति कर रही है।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सुचारुरूपसे कार्य कर रही थी। उसने नागरी लिपिके आन्दोलनका नेतृत्व कर उत्तर प्रदेशकी कचहरियोमे उर्दूके स्थानपर नागरी लिपिको स्थान दिलानेमे सफल प्रयत्न किया था। इस कारण उसकी प्रतिष्ठा जनतामें काफी वढी। सभाके द्वारा हिन्दी साहित्यके निर्माणका कार्य भी शुरू हो गया था। सभाके प्रमुख कार्यकर्ता तथा हिन्दी जगतके साहित्यकार यह आवश्यकता अनुभव करने लगे थे कि एक ऐसा मच होना चाहिए जहाँ हिन्दी प्रेमी एकत्रित होकर हिन्दीके विकास तथा हिन्दीकी समस्याओपर विचार-विनिमय कर सके। उस समयकी इस आवश्यकताको लक्ष्यमें रखकर स्व डॉ श्यामसुन्दरदासजीने जून १९१० में नागरी प्रचारिणी सभा, काशीकी प्रवन्ध समितिकी एक वैठकमे इस आशयका प्रस्ताव रखा कि हिन्दीके साहित्यिकोका एक सम्मेलन किया जाय और उसमें हिन्दी तथा नागरी लिपिके व्यापक प्रचार-प्रसार तथा व्यवहारके लिए उपयुक्त साधनो तथा प्रयत्नोंके सम्वन्धमें विचार किया जाय। यह प्रस्ताव सर्व सम्मतिसे स्वीकृत हुआ और उपस्थित सदस्योने एव नागरी प्रचारिणी सभा, काशीने इसके लिए आवश्यक धनकी भी व्यवस्था की। यह भी निर्णय किया गया कि यह सम्मेलन काशीमें शीघ्र ही वुलाया जाय।

इस प्रकार सन् १९१० में हिन्दी साहित्य सम्मेलनका नागरी प्रचारिणी सभा, काशीके प्रयत्नोंसे हिन्दी साहित्य सम्मेलनका जन्म हुआ। इस सम्मेलनका प्रथम अधिवेशन काशीमें ही हुआ और, उसके,

सभापति प. मदनमोहनजी मालवीय रहे। इसमें बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डन उपस्थित हुए थे। उन्होंने इस सम्मेलनमें यह प्रस्ताव स्वीकृत करवाया कि सरकारी दफ्तरोंमें नागरी लिपिके प्रचार तथा हिन्दी साहित्य की व्यापक उन्नति के लिए कोश संग्रह शीघ्र किया जाय और इस कोश संग्रहके लिए सम्मेलनकी ओरसे अपील भी की गई। इसके लिए हिन्दी पैसा-फण्ड समिति बनाई गई। इस अपीलके जवाबमें तुरन्त पैसोंकी वर्षा-सी शुरू हो गई और कुछ ही समयमें २ २५,५४६ पैसे जमा हो गए। इस पैसा-फण्डसे प्राप्त रकमसे हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी नींव पड़ी। दूसरे वर्ष पंडित गोविन्दनारायण मिश्रकी अध्यक्षतामें हिन्दी साहित्य सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन प्रयागमें हुआ। जिसमें टण्डनजीने सम्मेलनके लिए एक छोटी-सी नियमावली पेश की जो स्वीकार हुई और उसके अनुसार सम्मेलनका नियमित रूपसे कार्य चलने लगा। टण्डनजी सम्मेलनके प्रधानमन्त्री निर्वाचित हुए।

दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचारका सूत्रपात

सम्मेलनका काम टण्डनजीके मार्गदर्शनमें दिनों-दिन आगे बढ़ता गया। सम्मेलनके वार्षिक अधिवेशनोंके कारण हिन्दी साहित्यिकों और हिन्दी-प्रेमियोंका मिलना और हिन्दीकी उन्नतिके लिए विचार विनिमय करना सम्भव हो सका। ये अधिवेशन देशके विभिन्न प्रदेशोंके नगरोंमें होते रहे इसलिए धीरे धीरे सम्मेलनको एक अखिल भारतीय संस्थाका रूप प्राप्त होने लगा। सन् १९१८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनका ८ वाँ अधिवेशन इन्दौरमें हुआ उसके सभापति महात्मा गाँधी चुने गए। इससे हिन्दी साहित्य सम्मेलनका अखिल भारतीय स्वरूप अधिक स्पष्ट हुआ। इस अधिवेशनमें हिन्दी प्रचारके लिए ठोस कार्य करनेका निश्चय किया गया। इसके अनुसार दक्षिण भारतमें गाँधीजीके मार्गदर्शनमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनने हिन्दी प्रचारके कार्यको शुरू कर दिया। इस प्रकार अपने जीवनकालके केवल ८ वर्षोंमें ही सम्मेलनने हिन्दी प्रचारके लिए क्रियात्मक कदम उठाया। इसलिए इन्दौर अधिवेशनका सम्मेलन इतिहासमें विशेष महत्व रखता है। हिन्दीका एक सर्व सामान्य भाषाके रूपमें सारे देशमें उपयोग होता ही था पर उसके प्रचारके लिए संगठित रूपसे अभी तक कोई प्रयास नहीं किया गया था। सम्मेलन ही प्रथम संस्था है, जो गाँधीजीकी प्रेरणामें इस कार्यके लिए अग्रसर हुई। दक्षिण भारतका हिन्दी प्रचार कार्य सम्मेलनके मद्रास कार्यालयके द्वारा सन् १९२७ तक चलता रहा। प्रचारकोंको भेजना केन्द्रोंका निरीक्षण करना तथा नए केन्द्र स्थापित करना आदि कार्य सम्मेलनके अधीन मद्रास कार्यालयके संगठनकी देखरेखमें चलते रहे। सन १९२७ तक यह कार्य इसी प्रकार चला। बीचमें आवश्यकता पड़नेसे दो शाखा कार्यालय भी दक्षिणमें खोले गए थे। कार्य काफी बढ़ गया था। अतः इस सम्मेलनने महात्मा गाँधीजीकी इच्छानुसार दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा स्थापित हुई जो सम्मेलनसे सम्बद्ध होकर एक स्वतन्त्र संस्थाके रूपमें अब कार्य करती रही। उसने गत ३२ वर्षोंमें दक्षिण भारतमें जो कार्य किया है वह बड़ा ही प्रशंसनीय है। दक्षिणमें हिन्दी प्रचार-कार्यको आरम्भ करनेका तथा इस संस्थाको जन्म देनेका श्रेय हिन्दी साहित्य सम्मेलन को है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी अनेक प्रवृत्तियोंको सुचारु रूपसे सञ्चालित करनेके लिए उसके निम्न लिखित प्रमुख विभाग हैं —

(१) प्रबन्ध-विभाग, (४) प्रचार-विभाग,
(२) परीक्षा-विभाग, (५) साहित्य-विभाग तथा
(३) संग्रह-विभाग, (६) अर्थ-विभाग।

परीक्षाएँ

हिन्दीके व्यापक प्रचारकी दृष्टिसे सम्मेलनने हिन्दी-परीक्षाओका प्रबन्ध करना आवश्यक समझा और इसके लिए सन् १९१३ के भागलपुर अधिवेशनमे यह निर्णय किया गया कि सम्मेलनकी ओरसे हिन्दीकी परीक्षाएँ शुरू की जाएँ, उसके लिए नियमावली तैयार की गई और शीघ्र ही 'प्रथमा', मध्यमा' (विशारद), 'उत्तमा' (साहित्य-रत्न)—ये तीन परीक्षाएँ सम्मेलनकी ओरसे शुरू हुई। जैसे-जैसे कार्य बढता गया और नई परीक्षाएँ भी शुरू की गई। इस समय सम्मेलनकी ओरसे उसका हिन्दी विश्वविद्यालय निम्नलिखित परीक्षाएँ ले रहा है —

प्रथमा, मध्यमा (विशारद), उत्तमा (साहित्य-रत्न), आयुर्वेद विशारद, कृषि विशारद, व्यापार विशारद, शिक्षा विशारद, सम्पादन कला विशारद, शीघ्रलिपि विशारद, मुनीमी, अर्जीनवीसी तथा उपवैद्य।

इन परीक्षाओका प्रबन्ध और संचालन सम्मेलनकी परीक्षा समितिकी देखरेखमे होता है। सम्मेलनकी परीक्षाओको कुछ विश्वविद्यालययोने तथा केन्द्रीय एव राज्य सरकारोने मान्यता दी है। अभी कुछ समय हुए केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालयने सम्मेलनकी मध्यमा परीक्षाको हिन्दीके ज्ञान स्तरमे बी ए के समकक्ष माना है तथा उत्तमाको बी ए से ऊँचा तथा एम ए से कम। केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालयने इस प्रकार मान्यता देकर इन परीक्षाओंके मानदण्डको स्वीकार किया है। सम्मेलनकी परीक्षाओके केन्द्र सारे देशमें फैले हुए है। इनमे हजारोकी संख्यामे विद्यार्थी प्रतिवार सम्मिलित होते हैं। हिन्दी प्रदेशोके अतिरिक्त हिन्दी-तर प्रदेशोके सुदूर द्रविड भाषी प्रदेशके भी विद्यार्थी सम्मेलनकी परीक्षाओमे बडे चावसे बैठते है और अपने हिन्दी ज्ञानमें वृद्धि कर रहे हैं। भारतके बाहर विदेशोमें भी सम्मेलनकी परीक्षाओके लिए कही-कही केन्द्र चलते है। यहाँ गत पाँच वर्षोकी परीक्षार्थी संख्याके कुछ आकडे दिये गए है, जिन्हे देखनेसे यह स्पष्ट होगा कि सम्मेलन अपनी उच्च स्तरीय हिन्दी-परीक्षाओंके द्वारा हिन्दी प्रचारके कार्यमें कितना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनका परीक्षार्थी-क्रम १९५७ से

	प्रथमा	मध्यमा	उत्तमा		अन्य	सम्पूर्ण
			प्र खड	द्वि खड	विशारद	परी संख्या
सन् १९५७	७५००	११३४०	४६७५	२४००	१४३१	२७३४६
,, १९५८	७५५०	१०७७१	४६७०	२३०२	१८७८	२५१७१
,, १९५९	७६७६	११८४०	४८६०	२४७०	२२७०	२९११६
,, १९६०	७५०७	१३६४२	५२६५	२७१५	२९२६	३२०५५
,, १९६१	७९२७	१४६८६	५३३१	२९०३	३३१९	३४१६६

गत कुछ वर्षोंसे सम्मेलनकी ओरसे पदवीदान समारोह मनाया जा रहा है। इसमें देशके मान्यमान्य विद्वानों एवं साहित्यिकोंको आमन्त्रित किया जाता है। गत समारोहमें पं. जवाहरलाल नेहरू, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सेठ गोविन्ददास, श्री न. वि. गाडगील आदिने उपस्थित रहकर पदवीधारियोंके समक्ष अपने दीक्षान्त भाषण दिए हैं।

हिन्दी संग्रहालय

सम्मेलनका संग्रहालय देशके इने-गिने संग्रहालयोंमें एक विशेष स्थान रखता है। सम्वत् १९७९ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनका कानपुरमें १३ वां अधिवेशन बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डनजी अध्यक्षतामें हुआ था। इसमें यह निर्णय किया गया कि सम्मेलन एक आदर्श-सा संग्रहालय स्थापित करे। इस निर्णयके अनुसार सम्मेलनने एक विशाल भवनमें संग्रहालय स्थापित किया गया है। इस संग्रहालयको बढ़ानेमें टण्डनजीका अथक प्रयत्न एवं प्रेरणा रही है। इसमें इस समय ३५, पुस्तकें हैं। हिन्दीकी कुछ दुर्लभ पुस्तकें तथा पाण्डुलिपियाँ भी यहाँ रखी गई हैं। हिन्दीके अतिरिक्त और भाषाओंकी पुस्तकें इसमें हैं। इस संग्रहालयमें इतिहासके सुप्रसिद्ध विद्वान स्व. मेजर वामनदास बसुका सारा निजी पुस्तकालय खरीदकर रख लिया गया है। यह संग्रहालय सम्मेलनकी एक महत्त्वपूर्ण निधि है। इसका संवर्द्धन दिनों-दिन हो रहा है। इसमें पुरुषोत्तमदासजी टण्डन कक्ष भी है। राजर्षि टण्डनजीको जो भेंटें प्राप्त हुईं उन्हें उन्होंने सम्मेलनको अर्पित कर दिया। वे इस कक्षमें संग्रहीत हैं। इस संग्रहालयका और उसके पुस्तकालयका उपयोग हिन्दीके उच्च कोटिके विद्यार्थी करते हैं। अनेक प्रदेशोंसे विद्यार्थी अपने शोध ग्रन्थोंके लिए सामग्री जुटानेको यहाँ आते हैं और यहाँ रहकर इस संग्रहालयका लाभ उठाते हैं।

हिन्दी विद्यापीठ प्रयाग

हिन्दी विद्यापीठ प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा संचालित संस्था है। राजर्षि टण्डनजीने इसके निर्माण तथा उन्नतिमें बहुत दिलचस्पी ली। इसकी कई एकड़ जमीन है तथा यमुना नदीके किनारे पर स्थित है।

विभिन्न प्रदेशोंसे विशेष कर दक्षिण भारतसे आए हुए अनेक छात्रोंने हिन्दीकी उच्च परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं और विद्यापीठके माध्यमसे आज वे दक्षिण भारतमें सफलतापूर्वक हिन्दीका कार्य कर रहे हैं।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाकी स्थापना

सन् १९३६ में नागपुरमें डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीकी अध्यक्षतामें हिन्दी साहित्य सम्मेलनका २५ वाँ अधिवेशन हुआ। इसमें गांधीजीकी प्रेरणासे यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि हिन्दी प्रचारका कार्य करनेके लिए हिन्दी प्रचार समितिका संगठन किया जाय और इसका कार्यालय वर्धामें रखा जाय। इसके अनुसार राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाका संगठन किया गया। यह समिति दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी तरह हिन्दी प्रचारका कार्य दक्षिण भारतके ४ प्रान्तोंको छोड़कर भारतके लगभग सभी प्रदेशोंमें कर रही
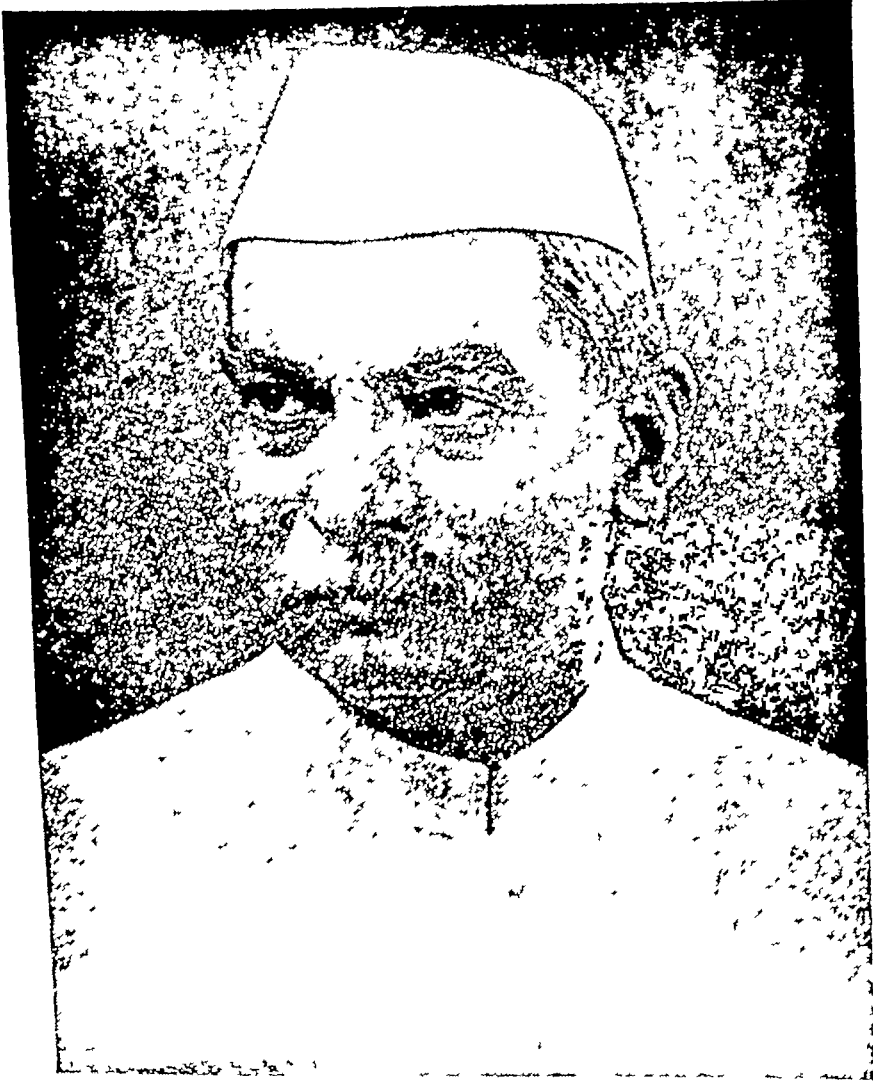
डॉ. राजेन्द्रप्रसाद
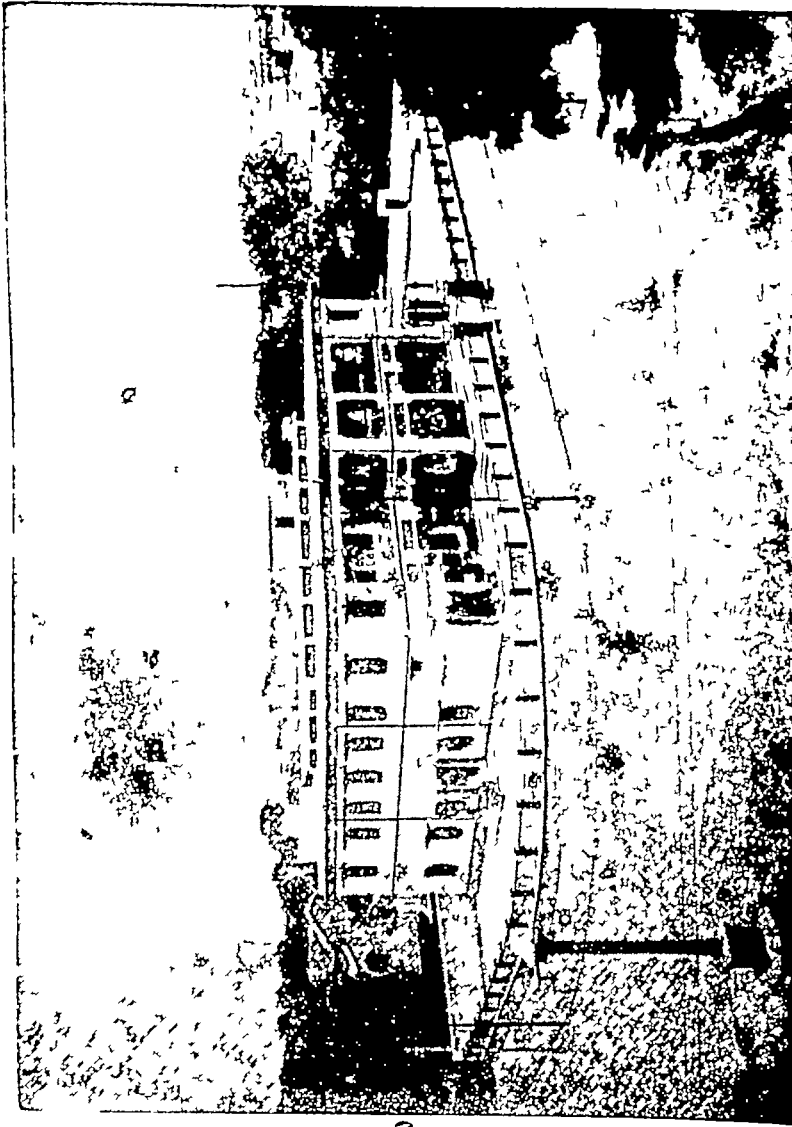
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
[संग्रहालय]
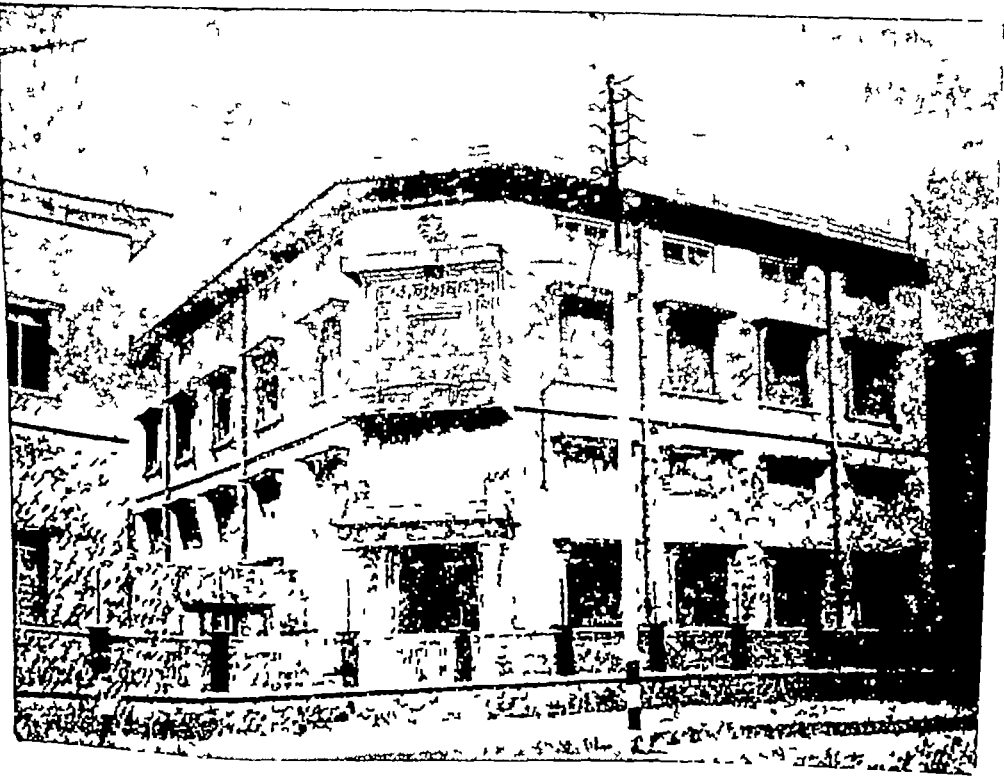
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
[मुद्रणालय]

रही है। विदेशोमें अनेक स्थानोपर समितिके परीक्षा-केन्द्र है और वहाँ हिन्दीके अध्यापनकी व्यवस्था है। इस समितिने गत २५ वर्षोंमें जो कार्य किया है, वह बडा ही स्तुत्य है। इसके कार्यका पूरा विवरण अन्यत्र दिया गया है। यह समिति सम्मेलनके अगरूप कार्य कर रही है। इस प्रकार सम्मेलनके द्वारा हिन्दीतर प्रदेशोमें हिन्दी प्रचारका ठोस कार्य हो रहा है।

सम्मेलनका एक और महत्त्वपूर्ण विभाग है, उसका साहित्य विभाग। इसके द्वारा पुस्तकोका निर्माण तथा प्रकाशन होता है। सम्मेलनने अनेक पुस्तकोका निर्माण तथा प्रकाशन करके हिन्दी साहित्यकी समृद्धिको वढाया है।

सम्मेलनके द्वारा अनेक ग्रन्थ-मालाओका आयोजन हुआ है और उनके अन्तर्गत १७ विभिन्न विषयो-की १९७ पुस्तके अभी तक प्रकाशित हो चुकी है। सम्मेलनकी यह भी योजना है कि भारतीय भाषाओंके गौरव ग्रन्थोका हिन्दीमें अनुवाद किया जाए।

साहित्य विभागके अन्तर्गत कोश-निर्माणका भी विभाग है। अधिकारी, सुयोग्य व्यक्तियो द्वारा सम्मेलन कोश-निर्माणका कार्य कर रहा है। अव तक 'शासन शब्द कोश', 'प्रत्यक्ष शरीर कोश', 'जीव रसायन कोश', 'भूतत्त्व विज्ञान कोश', 'चिकित्सा कोश'—ये पाँच शब्दकोश प्रकाशित हो चुके है और भी कुछ छोटे कोश उद्योग, रसायन आदि विषयोपर तैयार करवा लिए गए है। अँग्रेजी हिन्दी-शब्द कोश तैयार हो गया है उसके मुद्रणका कार्य चल रहा है।

सम्मेलनकी ओरसे "सम्मेलन पत्रिका" नामक एक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित की जाती है। इसमें अनुशीलन प्रधान लेख-सामग्री रहती है। इसलिए यह पत्रिका हिन्दीकी उच्च कोटिकी पत्रिकाओमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

मुद्रणालय

सम्मेलनका अपना मुद्रणालय है, जो अद्यतन साधनोंसे युक्त है। इसीमें सम्मेलनकी पुस्तकोका मुद्रण होता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी बिहार तथा उत्तर प्रदेशकी सरकारोका भी मुद्रण कार्य इस प्रेसमें होता है। सम्मेलनकी ओरसे साहित्य विद्यालय भी चलाया जाता है। इसमे हिन्दीके विद्यार्थी आकर पढते हैं। प्रयाग नगरके विद्यार्थी इस विद्यालयका लाभ उठाते हैं। इसके अतिरिक्त बाहरके छात्र यहाँ रहकर नि शुल्क हिन्दीका अध्ययन करते हैं। विदेशोंसे भी कभी-कभी कोई विद्यार्थी हिन्दीका अध्ययन करनेके हेतु यहाँ चला आता है। सम्मेलनकी ओरसे 'सकेत लिपि' तथा 'टकण विद्यालय' भी चलाये जाते है। इसमे छात्र आकर 'सकेत लिपि' तथा टकणका ज्ञान प्राप्त करते है।

सम्मेलनके पुरस्कार

सम्मेलनकी ओरसे हिन्दीकी मौलिक और उच्च कोटिकी कृतियोपर पुरस्कार दिये जाते है। इन पुरस्कारोमे मगलाप्रसाद पुरस्कार जो रु १२०० का है, सवसे महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त सम्मेलनकी ओरसे निम्नलिखित और पुरस्कार भी दिये जाते है —

दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

दिल्ली नगरको हिन्दीका सबसे पुराना घर माना जाता है। सघबद्ध रूपसे हिन्दीके प्रचार और प्रसारका कार्य भी यहाँ बीसवी शताब्दीकी प्रथम दशाब्दीमे तब आरम्भ हुआ था, जब विभिन्न धार्मिक विचारोके अनुसार अग्रसर होनेवाली विभिन्न शक्तियाँ हिन्दीके प्रचारार्थ एक मचपर एकत्रित हुई थी और सबके सम्मिलित प्रयाससे हिन्दी प्रचारिणी सभाकी नीव रखी गई थी। कूँचा ब्रजनाथके द्वारपर एक कमरेमे उसका कार्यालय, पुस्तकालय और वाचनालय उस अकुरकी भाँति उन्मुख हुआ था जिसमे भविष्यकी विराट् सम्भावनाएँ निहित रहती है। उन दिनोंके अनथक कार्यकर्ता श्री केदारनाथ गोयनकाकी सौम्य मूर्ति कितने ही भद्र पुरुषोको अब तक याद है।

दिल्लीकी निरन्तर परिवर्तित परिस्थितिमे चालीस वर्षो तक इसी प्रकार विभिन्न स्थानोपर हिन्दी सभाओकी स्थापना होती रही। जब राजधानीका रूप एक प्रकारसे कुछ स्थिर हो गया, तब २९ अक्टूबर सन् १९४४ के दिन दीवान हालमें श्री रामधन शास्त्री (अब डॉ) के सभापतित्वमें एक सार्वजनिक सभा हुई। सभामें श्री रामचन्द्र शर्मा महारथीके प्रस्ताव और सर्वश्री नगेन्द्र (अब डॉ), अवनीन्द्र विद्यालकार और बाबूराम पालीवालके समर्थनसे दिल्ली प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी स्थापनाका सकल्प ग्रहण किया गया। सकल्पको नियमित एव व्यावहारिक रूप देनेके लिए निम्नलिखित महानुभावो की एक समिति नियुक्ति की गई —

सर्वश्री—मौलिचन्द्र शर्मा, रामधन शर्मा, इन्द्र वाचस्पति, अवनीन्द्र विद्यालकार, नगेन्द्र, रामसिंह, कृष्णचन्द्र, पुत्तूलाल वर्मा 'करुणेश', दीनानाथ भार्गव, राजनारायण, सत्यदेव, विद्याभूषण, रामचन्द्र तिवारी, बाबूराम पालीवाल और रामचन्द्र शर्मा (सयोजक)।

जन्मकालसे अब तकके १५ वर्षोंमें निम्नलिखित महानुभाव सम्मेलनके सभापति, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एव प्रधानमन्त्रीके पदसे राष्ट्रभाषाकी सेवा कर चुके है या कर रहे है —

सभापति—सर्वश्री श्रीनारायण मेहता, बालकृष्ण शर्मा "नवीन" इन्द्र विद्यावाचस्पति, मौलिचन्द्र शर्मा, अनन्तशयनम् अय्यगार, डॉ युद्धवीर सिंह और रामधारीसिंह 'दिनकर'।

अध्यक्ष—सर्वश्री राजेन्द्र कुमार जैन, मौलिचन्द्र शर्मा, रघुवर दयाल त्रिवेदी, डॉ युद्धवीरसिंह और वसन्तराव ओक।

उपाध्यक्ष—सर्वश्री मौलिचन्द्र शर्मा, राजेन्द्रकुमार जैन, सत्यदेव विद्यालकार, रामधन शर्मा, माधव, महावीर प्रसाद, वसन्तराव ओक, रामलाल पुरी, लक्ष्मीनारायण रेखी, सुन्दरलाल भार्गव, कुँवरलाल गुप्त, अक्षयकुमार जैन, प्रि हरिश्चन्द्र, केशवप्रसाद 'आत्रेय' और किशन प्रसाद कटपीसवाले।

पुनर्गठन

सन् १९५२ मे सम्मेलनके तत्कालीन अध्यक्ष एव प्रधान मन्त्रीकी आकस्मिक व्यस्तता तथा अनुपस्थितिके कारण सम्मेलनका काम कुछ शिथिल हो गया था। हिन्दी आन्दोलनके सदा जाग्रत सूत्रधार राजर्षि टण्डनजीने उस समय अपना वरद हस्त आगे बढाया और डॉ युद्धवीरसिंहको सम्मेलनका अध्यक्ष

तथा श्री गोपालप्रसाद व्यासको प्रधान मन्त्री बनाया गया। कुछ दिन बाद निपुण संगठनकर्ता और कर्मठ नेता श्री बसन्तराव ओकका सहयोग सम्मेलनको मिल गया एवं श्री अक्षयकुमार जैन श्री सत्यनारायण बंसल श्री महावीर प्रसाद वर्मन श्री अमरनाथ शर्मा तथा अन्य कई महानुभाव सम्मेलनके कार्यमें प्रत्येक प्रकारसे संलग्न हो गए। इस नवीन रक्तसे सम्मेलनको नया वेग मिला परन्तु सम्मेलनकी वास्तविक शक्ति उसके उस संगठनमें निहित है जो अपने ढंगका निराला और पूर्ण जनतान्त्रिक हो गया है।

प्रारम्भमें दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलनका संगठन भी केन्द्रीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनसे सम्बद्ध अन्य प्रादेशिक सम्मेलनोंकी भाँति किया गया था। दिल्लीकी विशेष स्थितिके अनुसार यह निर्णय किया गया कि अस्त-व्यस्त हिन्दी सभाओंके स्थानपर सम्पूर्ण दिल्ली नई दिल्ली और उसके आस-पासके कस्बों-ग्रामोंके नगर निगमके निर्वाचन केन्द्रोंको आधार मानकर विभाजित किया जाए और प्रत्येक निर्वाचन केन्द्रमें प्रादेशिक सम्मेलनकी एक शाखा मण्डलिक संगठनके रूपमें काम करे। मंडलके सब सदस्य सम्मेलनके सदस्य समझे जाएँ। उनके शुल्कका पचास सम्मेलनको मिलाकर और सम्मेलन सदस्य-संख्याके अनुपातसे ही मंडल को प्रादेशिक संगठनमें प्रतिनिधित्व प्रदान करे। इस नवीन योजनाको सर्वत्र सराहना मिली। राजर्षि टंडनजीने इसे विशेष रूपसे आशीर्वाद प्रदान किया और सन् १९५५ में सूर जयन्तीके पुनीत अवसरपर उसके अनुसार दरियागंजमें जो पहला मंडल गठित हुआ उसका उद्घाटन करके इसके मस्तकपर अपने कर-कमलोंसे तिलक भी लगा दिया। अब सम्मेलनके मंडलोंकी संख्या इक्कीस और उनके सदस्योंकी संख्या पाँच हजारसे भी अधिक हो गई है। मंडलोंके नाम इस प्रकार हैं—अजमेरी द्वार, आर्यपुरा सोहनगंज कृष्णनगर, करौल बाग कमलानगर, खारी बावली गोल मार्केट, चाँदनी चौक तिमारपुर दरियागंज नई सड़क निजामुद्दीन पहाड़गंज मालीवाड़ा मिन्टोरोड मोतीबाग राजेन्द्रनगर, विनयनगर, लाजपतरायनगर, सदर बाजार, पहाड़ी और हौज काजी।

सम्मेलनने ऋतु-पर्वोंकी परम्परा जाग्रत करने और प्रमुख कवियोंकी जयन्तियाँ समारोहके साथ मनानेका जो अत्यन्त लोकप्रिय कार्य हाथमें लिया था वह अब इन्हीं मंडलोंको सौंप दिया गया है। मंडल बड़े उत्साहके साथ इस कार्यमें संलग्न हो गए हैं। प्रत्येक उत्सव और समारोहमें जनता पर्याप्त संख्यामें सम्मिलित होती है और उस जीवनदायिनी सरल सुधाका पान करती है। जो हमारे महान पूर्वज हमें दे गए हैं। इस प्रकार मंडलोंके द्वारा सम्मेलनका सन्देश इस महानगरीके कोने-कोने तक आसानीके साथ पहुँच जाता है।

विविधतामें एकता

सम्मेलनके संगठनकी एक और विशेषता यह है कि इसके मंचपर धर्मों विश्वासों जातियों और सम्प्रदायोंके लोग प्रत्येक प्रकारकी भेद-बुद्धिको त्यागकर राष्ट्रभाषाकी प्रतिष्ठाके लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। है। हिन्दीसे प्रेम करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति इसका सदस्य हो सकता है। इसीलिए सम्मेलन मंचसे रहीम नानक और वाल्मीकिको भी श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है और दक्षिण गुजरात महाराष्ट्र तथा बंगालके वरेण्य बन्धुओंकी जयन्तियाँ मनाकर सब भारतीय भाषाओंके प्रति पूर्ण सम्मान प्रकट किया जाता है। सम्मेलनके संगठनकी यह विशेषता और उसकी यह कार्य-विधि लोगोंको मौन उत्तर देती है, जो हिन्दीपर
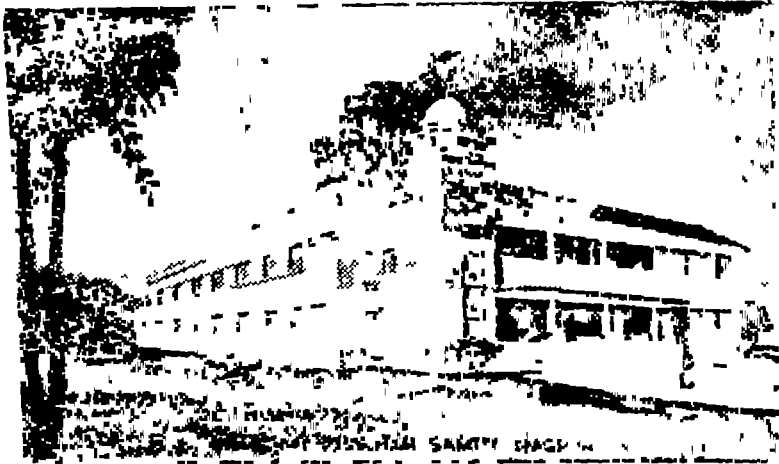
विदर्भ—नागपुर
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
[कार्यालय भवन]

साम्राज्यवादी मनोवृत्तिका आरोप लगाते है, साथ ही साथ यह आज की निरतर बढती हुई भेद-बुद्धिको समाप्त करनेका एक व्यावहारिक मार्ग प्रस्तुत करती है और इसे अपनानेका नम्र निमन्त्रण देती है। वास्तवमें राष्ट्र-भारतीका अचल ही वह एक मात्र स्थल है जहाँ सब प्रकारके भेद सम्मिलित और समाहित हो सकते है।

रचनात्मक कार्यक्रम

रचनात्मक कामोकी दिशामें सम्मेलनने दिल्लीकी पुलिस और अदालतकी ओर इसलिए अधिक ध्यान दिया कि वहाँ हिन्दीका प्रवेश बहुत कम हो पाया है। अदालतके क्षेत्रमें सम्मेलनने वकीलो और न्यायाधीशोसे भेंट करके जहाँ उनको हिन्दी अपनानेके लिए प्रेरित किया है, वहाँ न्यायालयकी परिषदोमें हिन्दी टाइप करनेवाले एक सज्जनको भी अपनी ओरसे बैठा दिया है। वे हिन्दी टाइप सस्ते पारिश्रमिकपर कर देते है। इसके अतिरिक्त उर्दू और अँग्रेजीमें पहले जो फार्म चलते थे, उन्हे हिन्दीमें छपवाकर नि शुल्क बाँटा जाता है। इससे अदालतोमे हिन्दीका वातावरण बनने लगा है।

पुलिस कर्मचारियोमे हिन्दी पहुँचानेके लिए सम्मेलन बडे अधिकारियोसे मिलकर पुलिस लाइसमें १९५८ से कक्षाएँ चला रहा है। अब तक हजारो पुलिस जवान इससे लाभ उठा चुके है।

विदर्भ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, नागपुर

सक्षिप्त परिचय

इस सस्थाका पुराना नाम मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन था। इसकी स्थापना सन् १९१८ मे हुई थी। इसी सम्मेलनके दो अधिवेशन नागपुरमे हो चुके, एक १९२२ तथा दूसरा १९४५ में सम्मेलन के प्रयाससे ही अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनका २५ वाँ अधिवेशन भूतपूर्व राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र-प्रसादजीकी अध्यक्षतामें सन् १९३६ में हुआ था। उसीके साथ महात्मा गाँधीकी अध्यक्षतामें भारतीय साहित्य परिषद भारतके विभिन्न भाषाओके साहित्यकारोके गठनकी नीव डाली गई थी। इस अवसरपर देशके प्रमुख राजनैतिक और साहित्यिक विद्वानोने भाग लिया था और अखिल भारतीय हिन्दी प्रचार समिति-की नीव रखी गई थी, यो तो 'मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन'के नामसे सारा कार्य सचालन नागपुरसे होता था, किन्तु सन् १९५६ मे राज्योका पुनर्गठन किया गया जिससे मध्यप्रदेश के १४ जिले विशाल मध्यप्रदेश मे समाविष्ट हो गए। शेष आठ जिलोका प्रतिनिधित्व विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मेलन कर रहा है।

सम्मेलनका उद्देश्य

सम्मेलनका उद्देश्य हिन्दीका सर्वांगीण साहित्यिक विकास तथा राष्ट्रभाषा और देवनागरी लिपिका प्रसार करना है। साहित्यकारोका सम्मान तथा उनकी प्रतिभाका प्रतिनिधित्व भी उसका ध्येय है। अपने उद्देश्योकी पूर्तिके लिए सम्मेलनकी ओरसे आवश्यक सगठन, प्रकाशन, प्रचार, सग्रह, खोज और साहित्यकोकी सहायता प्रदान करनेका सदैव प्रयत्न किया जाता है। क्षेत्रके उदारमना महानुभवोंसे प्राप्त दानसे नागपुरमें श्री फतेचन्द मोर हिन्दी भवनके नामसे अपना स्वत का सुन्दर भवन निर्माण करनेमें सफल

रहा। इस भवनमे चार बडे कमरोके अतिरिक्त एक वाचनालय कक्ष और एक पुस्तकालय कक्ष है। साथ ही लगभग १ सहस्त्र दर्शकोके बैठने योग्य सुन्दर रगमच भी है। उसके निर्माणका हेतु हिन्दी रगमचका पुनरुत्थान है। यह भवन आज नगरकी विविध सास्कृतिक एव सार्वजनिक गतिविधियोका प्रमुख केन्द्र है। इस समय भवनके कक्षोमे एक वाचनालय राज्य सरकारका माहिती (जानकारी) केन्द्र संस्कृत भाषा प्रचारिणी सभाका कार्यालय और मुख्य सगीतका शिक्षण केन्द्र तथा सिलाई-बुनाईसे सम्बन्धित कक्षाएँ-जो कि राजस्थानी महिला मडल की ओरसे सचालित की जा रही है।

सम्मेलनके भावी कार्यक्रम

विद्यालय हिन्दी ग्रन्थालय साहित्य सग्रहालय गाधी विचार केन्द्र, पूर्वा त्रैमासिक पत्रिकाका प्रकाशन बुलेटिनका प्रकाशन और प्रसिद्ध विद्वानोकी व्याख्यान माला तथा अन्य ऐसे कार्य जिनसे कि हिन्दी साहित्यका प्रचार तथा प्रसार हो सके किए जा रहे है और किए जाते रहेगे।

सम्मेलनका पुस्तकालय शुरू हो गया है जो एक वृहद् पुस्तकालयका सूत्रपात है। जिसमें प्राचीन एव अर्वाचीन प्रकाशित पुस्तकोका अच्छा सग्रह रहेगा। जिससे भाषा के शोध कार्योंकि करनेवाले विद्वान लाभ उठा सके। पिछले वर्ष १६ विषयोसे सम्बन्धित लगभग २१७१ पुस्तके खरीदी गई है और प्रति वर्ष अधिक-से-अधिक पुस्तके खरीदनेकी योजना है।

प्रकाशन कार्य समय-समयपर हुए है जिनमे हिन्दी साहित्यको विदर्भकी देन जिसका कि लेखन तथा सम्पादन साहित्य-मनीषी प प्रयागदत्तजी शुक्लने किया है प्रकाशित किया है। आपकी ही क्रान्तिके चरण नामक पुस्तकका प्रकाशन भी सम्मेलनने किया है। इस पुस्तकमे सन् १८८५ से लेकर सन् १९२ तक कॉग्रेसका इतिहास है। तीसरा प्रकाशन अति शीघ्र ही होने जा रहा है वह है दूसरा खड हिन्दी साहित्यको विदर्भकी देन का। इस प्रकारसे और अनुसधान तथा शोध पूर्ण कार्य हो रहे है। साथ ही विदर्भके प्रतिनिधि कहानीकारोका सकलन भी प्रकाशित किया जाएगा।

सम्मेलनकी वर्तमान कार्यकारणी समिति

अध्यक्ष—श्री ब्रिजलाल जी बियाणी।
उपाध्यक्ष—प प्रयागदत्तजी शुक्ल।
उपाध्यक्ष—श्री रामगोपालजी माहेश्वरी।
प्रधान-मन्त्री—श्री भीष्म आर्य।
संयुक्त मन्त्री—श्री उमाशकर शुक्ल।
साहित्य-मन्त्री—श्री शिवचन्द्रजी नागर।

सदस्य—सर्वश्री सेठ नरसिहदासजी मोर, प हृषीकेशजी शर्मा प शिवकरण शर्मा छांगाणी छेदीलालजी गुप्त पोद्दार विश्वनाथजी सारस्वत मदनलाल हीरालालजी चवडे वर्धा जगन्नाथ सिंहजी वैस अकोला श्यामलालजी गैसा धामणगाव तीन स्थान रिक्त है।

कार्यालय व्यवस्थापक—श्री रेवाशकर परसाई।

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

पजाव प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनका कार्यालय अवालामे है। इस सम्मेलनकी जालन्धर कपूरथला, अम्वाला छावनी, शिमलामे हिन्दी परिपद तथा स्थानीय हिन्दी प्रचारिणी सभाएँ स्थापित है। साहित्यिक समारोह आदिके कार्यक्रम इसके द्वारा होते रहते है। शिमलामे तो हिन्दी प्रचारिणी सभा अपना रजत जयन्ती समारोह भी मना चुकी है। इसकी सदस्य सख्या ५०० से ऊपर है। इसकी ओरसे पर्याप्त समय तक एक 'सन्देश' नामक हिन्दी मासिक प्रकाशित होता रहा था।

उत्तर प्रदेशीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी स्थापना सन् १९२० मे प्रयागमे हुई। आरम्भमे किन्ही परिस्थितियोके कारण इसका कार्य वन्द सा पड गया था, किन्तु १९४० में प श्रीनारायणजी चतुर्वेदीके प्रयत्नोसे इसका कार्य फिर आरम्भ हुआ। इस सम्मेलन द्वारा कचहरियोमे हिन्दी प्रयोग के लिए आन्दोलन किया गया जो वहुत व्यापक वना। उत्तर प्रदेश मे इसके अधिवेशन अनेक स्थानोपर हो चुके है।

बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

इसकी स्थापना सन् १९१९ में पटनामें हुई थी। विहार प्रान्तकी यह सवसे प्राचीन हिन्दी सेवी सस्था है। प्रान्तकी करीव ६० सस्थाएँ इससे सम्वद्ध है। १९४५ मे इसके वार्षिक सम्मेलनके अवसरपर अध्यक्षपद चीनी विद्वान श्री तानसुन शानने ग्रहण किया था। सम्मेलनकी परीक्षाओके लिए विद्यार्थियोके लिए वर्ग व्यवस्था आदिका कार्य भी इसकी देखरेखमें चलता है।

नागरी प्रचारिणी सभा, आरा

इस सस्थाकी स्थापना विहार प्रदेशके प्राचीन नगर पटनामे बीसवी सदीके पहले वर्षमें हुई थी। इसके प्रोत्साहनसे कितने ही गण्यमान्य कवि हिन्दी एव उसके साहित्यकी सेवामें प्रवृत्त हुए है। सभाने हिन्दी भाषा और नागरी लिपिके प्रचारार्थ विहारमे ही नही, अन्य प्रान्तो और तत्कालीन देशी राज्योमे भी व्यापक किये है। सभा साहित्यिक शोधकी दिशामें भी उन्मुख रही है। और एक अच्छे पुस्तकालयका सचालन भी करती है।

नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा

नागरी प्रचारिणी सभाकी स्थापना सन् १९११ में हुई। इसकी स्थापनासे आगरामें साहित्यिको तथा हिन्दी पढने तथा लिखनेवालोमें एक जाग्रति सी आ गई। इस सभाके पास एक वृहत पुस्तकालय है जिसमे करीब १२ हजार पुस्तके है और एक हजारके करीव सदस्य इस सभाके है। गाँवोके लिए भी एक गश्ती विभागका प्रबन्ध है। सभाकी ओरसे हिन्दीकी उच्च पढाईके लिए एक विद्यालय भी चलता

है जिसमें करीब २० विद्यार्थी निःशुल्क शिक्षा ग्रहण करते हैं। खोज कार्यका प्रबन्ध भी इस संस्था द्वारा है। इस सभा द्वारा सत्यनारायण ग्रन्थ माला के अन्तर्गत कई पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। सभाके पास पर्याप्त भूमि व निजी भवन है।

इसके अलावा नागरी प्रचारिणी सभाकी आजमगढ़ आरा गाजीपुर गोरखपुर, अजमेर, मुरादाबाद हरदोई आदि स्थानोंमें शाखाएँ हैं।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार-सभा, मद्रास

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके वार्षिक अधिवेशनोंमें जो सभापति चुने जाते थे वे साधारणतः हिन्दीके विद्वान और साहित्यकार होते थे लेकिन सन् १९१८ का वार्षिक अधिवेशन जो इन्दौरमें हुआ उसके सभापति के रूपमें महात्मा गाँधी चुने गए। बापू हिन्दीके कोई लेखक या साहित्यकार तो थे नहीं पर फिर भी उन्हें सभापति चुना गया। इसका प्रमुख कारण यह था कि वे हिन्दीके प्रबल समर्थक और उसके द्वारा राष्ट्रीय एकता स्थापित हो सकती है इस विचारके पोषक थे। उन्होंने हिन्द स्वराज्य नामक पुस्तकमें हिन्दीके महत्वके सम्बन्धमें बहुत पहले ही सन् १९०८ में लिखा था तथा सन् १९१६ में जब लखनऊमें अखिल भारतीय काँग्रेसका अधिवेशन हुआ तब देशभरके राजनीतिक नेता—जिनमें स्व लोकमान्य तिलक गाँधीजी मुहम्मद अली जिना एनी बेसन्ट आदि उसमें भाग लेनेको उपस्थित हुए थे। गाँधीजीने अपना भाषण हिन्दीमें दिया था। मद्रासके प्रतिनिधियोंमें जिनमें स्व सत्यमूर्ति भी थे उन्होंने इसका विरोध किया था और गाँधीजीसे अनुरोध किया था कि वे अपना भाषण हिन्दीमें दें। इसपर उन्होंने उनको समझाते हुए बताया था कि अँग्रेजीका मोह उन्हें छोड़ देना चाहिए और जल्दी ही हिन्दी सीख लेनी चाहिए। हिन्दीके प्रति उनके इस प्रेमसे प्रभावित होकर ही हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्रधान कर्णधार स्व बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डनने गाँधीजीसे अनुरोध किया कि वे सम्मेलनके सभापति बनें और उन्होंने भी इस विश्वाससे कि हिन्दीके प्रचारमें सम्मेलन उनका सहयोगी बनेगा सभापति बनना स्वीकार किया।

यह अधिवेशन हिन्दी प्रचारकी दृष्टिसे विशेष महत्व रखता है। इसमें गाँधीजीने अपने अध्यक्षीय भाषणमें हिन्दीके महत्वपर विशेष जोर दिया और इस बातकी आवश्यकता बताई कि शीघ्र ही दक्षिण भारतमें जहाँ द्रविड़ परिवारकी तमिल तेलुगु, मलयालम तथा कन्नड भाषाएँ बोली जाती हैं हिन्दीका प्रचार आरम्भ कर देना चाहिए। उन्होंने इस कार्यके लिए पैसा देनेके लिए अपील की। उसके जवाबमें तुरन्त ही इन्दौर के नगर सेठ सर हुकुमीचन्दजीने तथा इन्दौरके तत्कालीन नरेश महाराजा यशवन्तराव होल्करने दस-दस हजार रुपये सहायता स्वरूप दिए। इन धन राशिके प्राप्त होनेसे दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचारका कार्य आरम्भ करनेमें सरलता हुई।

इस सम्मेलनमें यह प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ था कि प्रतिवर्ष दक्षिण भारतके छह नवयुवक हिन्दी सीखनेको प्रयाग भेजे जाएँ और हिन्दी भाषी छह नवयुवक दक्षिणकी भाषाओंको सीखनेको तथा हिन्दीका प्रचार करनेको उत्तर भारतसे भेजे जाएँ।

गाँधीजीने उस समय एक विज्ञप्ति प्रकाशित की थी कि दक्षिणमें जो भी हिन्दी सीखना चाहे वे यदि हिन्दी वर्गाओंका शुरू करनेकी माँग करेंगे तो उसका प्रबन्ध तुरन्त किया जाएगा। वैसे तो दक्षिण
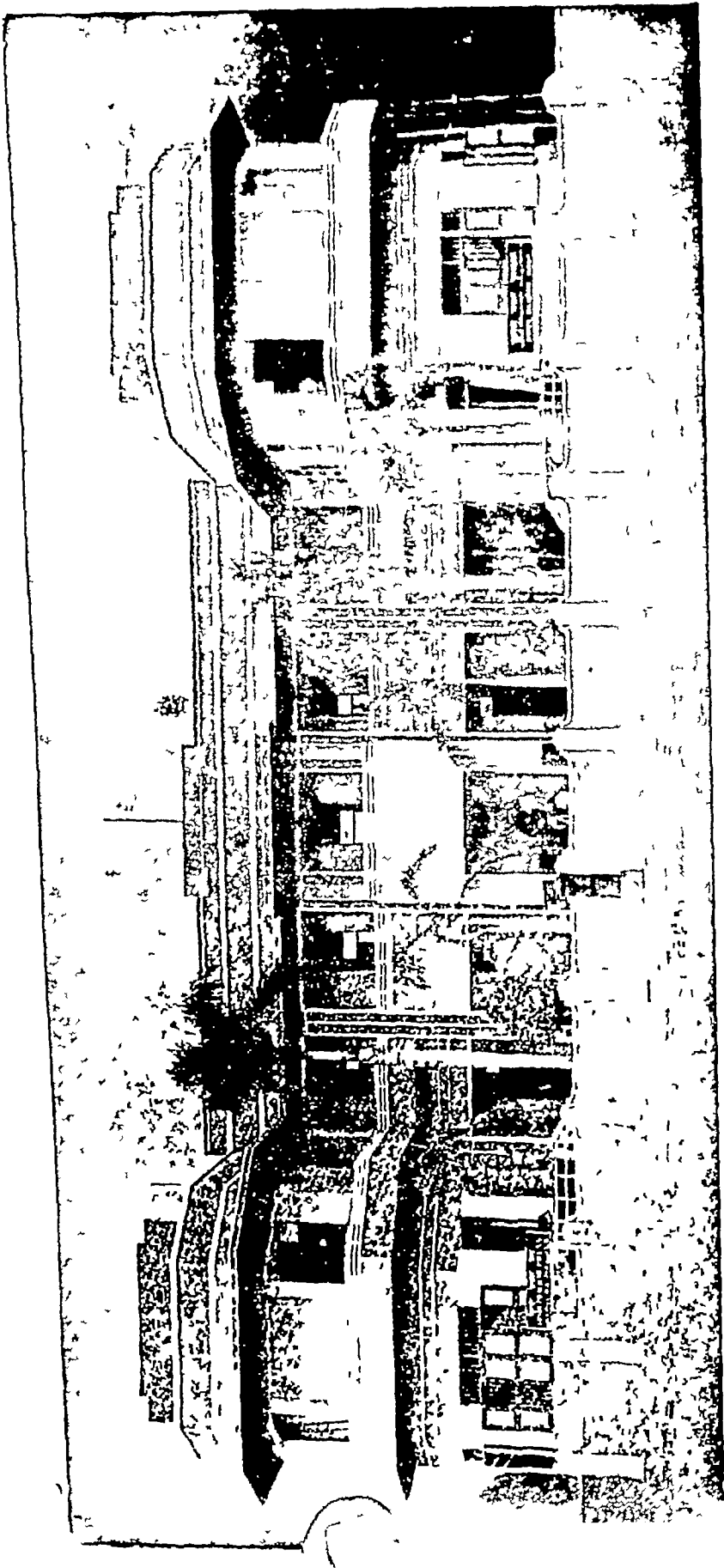
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रासका कार्यालय भवन

भारतमे हिन्दी प्रचारका कार्य बहुत पहलेसे ही हो रहा था। आर्य समाजके कार्यकर्ता हिन्दीका "आर्य भाषा" के रूपमें प्रचार करते थे और उसको सिखानेकी मदुरा, काञ्ची आदि स्थानोपर कुछ व्यवस्था भी की गई थी। आरकाटके नवाबो और तजौरके महाराजाओंके प्रभावके कारण दक्षिणके इन प्रदेशोमे हिन्दीका व्यवहार कुछ मात्रामे होता था। ऊँचे, धनी परिवारोमें हिन्दी सीखनेका शौक भी कही-कही देखनेको मिलता था। दक्षिणके कई व्यक्ति यह आवश्यकता अनुभव कर रहे थे कि सारे भारतके लिए एक भाषा का होना नितान्त आवश्यक है। मद्रासके श्री वी कृष्णस्वामी अय्यरने नागरी प्रचारिणी सभा, काशीके एक समारोहमें भाषण दिया था, उसमें भी इस बातको उन्होने स्पष्ट किया था। हमारे देशमें यात्राका बडा महत्त्व माना गया है। समुदाय-के-समुदाय यात्राके लिए निकल पडते है। वे अपने प्रदेशसे किसी भिन्न प्रदेशमें जाते है, तो साधारणत हिन्दीका ही प्रयोग करते है, अत जब सन् १९१८ में गाधीजीकी विज्ञप्तिको पढकर मद्रासके 'भारत सेवा सघ' (इडियन सर्विस लीग)के कुछ हिन्दी-प्रेमी नवयुवकोने गाधीजीको लिखा कि वे एक हिन्दी प्रचारकको भेजें तो इस पत्रके मिलते ही गाधीजीने अपने पुत्र स्व देवदास गाधीको हिन्दी प्रचारके कार्यके लिए भेजा। उस समय उनकी आयु केवल १८ वर्ष की थी। उन्होने मद्रास आते ही कुछ ही दिनोमें स्थानीय गोखले हॉलमें हिन्दीके वर्ग प्रारम्भ कर दिए। इन वर्गोंका उद्‌घाटन श्रीमती एनीबेसटके हाथों हुआ था और इस समारोहकी अध्यक्षता श्री सी पी रामस्वामी अय्यरने की थी। हिन्दीके प्रति लोगोमें उत्साह था, इसका प्रमाण तो यही है कि हिन्दीके इस नवीन वर्गमे पढनेके लिए जो विद्यार्थी सम्मिलित हुए उनमें स्थानीय कुछ नामी वकील, व्यापारी, न्यायाधीश, डाक्टर आदि उच्च श्रेणीके व्यक्ति भी थे। कुछ ही दिनोमें कार्य काफी बढ गया। इसे सम्हालनेके लिए श्री देवदास गाधीने और किसी व्यक्तिको भेजनेके लिए लिखा। हिन्दी साहित्य सम्मेलनने स्वामी सत्यदेव परिव्राजकको उनकी सहायतार्थ तुरन्त भेजा। उन्होने भी एक वर्ष तक मद्रासमें रहकर हिन्दीकी कक्षाओको चलानेका कार्य किया। प्रारम्भमे पाठ्य पुस्तकोकी भी कठिनाई थी। उपयुक्त पुस्तके न थी। साधारणत इण्डियन प्रेस, प्रयागकी "बाल रामायण" से ही हिन्दीकी पढाई शुरू होती थी, अत श्री सत्यदेवजीने अपने प्रयत्नोंसे एक हिन्दी रीडर तैयार की और उसको प्रकाशित भी करवाया। लगभग उन्ही दिनो गाधीजीसे प्रेरणा लेकर पण्डित हृषीकेश शर्मा भी हिन्दी प्रचारके कार्यमें अपना सहयोग देनेके लिए दक्षिण भारतमें आये और आन्ध्र प्रदेशमें कार्य करने लगे। गाधीजीकी योजना थी कि दक्षिण भारतके उत्साही नवयुवकोको उत्तर भारतमें भेजकर उन्हे हिन्दी की शिक्षा-दीक्षा दी जाय और वहाँसे वे लौटकर दक्षिण भारतमें आकर हिन्दी प्रचारके कार्यको सम्हालें। इस योजनाके अनुसार तीन दल प्रयाग भेजे गए। प्रथम दलके नेता श्री हरिहर शर्मा थे, जिन्होने आगे चलकर दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके प्रधानमन्त्रीके रूपमें दक्षिणके हिन्दी प्रचार कार्यको सगठित किया। जब श्री देवदास गाधी एक वर्षके पश्चात् गुजरात लौटे तब उन्होने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके मद्रास कार्यालयको सम्हालनेका कार्यभार श्री शर्माजीको सौपा था। वे उन्ही दिनो प्रयागसे लौटे थे। इस प्रथम दलमें श्री क म शिवराम शर्मा भी थे जो अभीतक हिन्दीके प्रचारमें लगे हुए हैं। बादके दलोमें श्री शिवन शास्त्री, श्री सुब्बराव आदि प्रमुख थे।

उन दिनो दक्षिण भारतमे हिन्दी पढनेका उत्साह जोरोंसे बढ रहा था। केवल एक-दो वर्षोमें ही आन्ध्रके बरहमपुर (अब उत्कल प्रदेशमें है) में राजमहेन्द्रवरम्, मछली पट्टम, नेल्लूर आदि स्थानोमें तथा

तमिल प्रदेशके त्रिचनापल्ली मदुरा सेलम कोयम्बतूर आदि स्थानोंमें तथा कर्नाटकमें बंगलोरमें हिन्दीके वर्ग शुरू हो गए थे।

उत्तर भारतके कुछ उत्साही नवयुवक हिन्दी प्रचारके कार्यको अपने जीवनका प्रधान उद्देश्य बनाकर दक्षिण भारतमें आए और यहाँ रहकर उन्होंने इस कार्यमें योग दिया। उनमें निम्नलिखित सज्जन मुख्य है—

पं रघुवरदयालु मिश्र पं अवधनन्दन प्रतापनारायण वाजपेयी जो युवावस्थामें ही हिन्दीका कार्य करते-करते चल बसे पं देवदूत विद्यार्थी पं रामानन्द शर्मा ब्रजनन्दन शर्मा रामभरोसे श्रीवास्तव मार्तेश्वर मिश्र आदि।

इधर दक्षिणके भी नवयुवक प्रयागमें शिक्षा पाकर दक्षिणमें हिन्दी प्रचारके कार्यमें जुटने लगे। स्वर्गीय दामोदर उण्णीने तिरुवान्कूर रियासतमें १९२१ के आसपास कार्य शुरू किया। श्री क म शिवराम शर्माने आन्ध्रमें प्रतापनारायण वाजपेयीने तमिलनाडमें कार्य शुरू किया। मद्रासमें इन वर्गोंकी संख्या बढ़ने लगी। लेकिन आन्ध्रमें राष्ट्रीयताकी लहर ऊँची थी। उसका असर हिन्दी प्रचारपर भी पड़ने लगा। सन् १९२४ में काकिनाडामें काँग्रेसका अधिवेशन हुआ। इसके कारण हिन्दी प्रचारका काम अधिक जोरोंसे होने लगा। हिन्दी प्रचार काँग्रेसके कार्यक्रमका एक अंग समझा जाता था। गांधीजीने अपने रचनात्मक कार्यक्रममें हिन्दी को प्रमुख स्थान दिया था।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनका कार्यालय शुरूमें मद्रासमें साहूकार पेटमें एक छोटी-सी गलीमें था। कुछ समय बाद माईलापूर लाया गया। वहाँसे तिरुवल्लिक्केणीमें और फिर जार्ज टाउनमें रखा गया। सन् १९३६ में मद्रासके म्युनिसिपल कॉरपोरेशनने दक्षिण भारतके विशाल हिन्दी प्रचार कार्यके अनुरूप अच्छा हिन्दी भवन तैयार किया जा सके इसलिए अपनी ओरसे त्यागरायनगरमें दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाको जमीन सहायता स्वरूप दी। यहींपर सभाकी विभिन्न प्रवृत्तियोंका सञ्चालन करनेके लिए सभाके अनेक भवन बनाए गए हैं।

हिन्दी प्रचारका प्रारम्भिक कार्य हो जानेके पश्चात् यह आवश्यक मालूम होने लगा कि दक्षिणमें ही उच्च स्तरके हिन्दी विद्यालय चलाए जाएँ और वहींपर हिन्दीके लिए सेवाव्रती प्रचारक तैयार किए जाएँ। इसके लिए सन् १९२१ में आन्ध्रमें गोदावरी नदीके तटपर राजमहेन्द्रीके पास धवलेश्वरम् नामक स्थानपर तथा तमिलनाडुमें कावेरी नदीके तटपर ईरोड नामक स्थानपर हिन्दी विद्यालय खोले गए। यहाँ हिन्दीकी उच्च शिक्षा देकर कार्यकर्ता तैयार किए जाने लगे। ईरोडके विद्यालयके सम्बन्धमें यह बात उल्लेखनीय है। श्री ई वी रामस्वामी नायकरने इस विद्यालयको चलानेमें बड़ी सहायता की थी। इस विद्यालयका आरम्भ भी उन्हींके घरपर हुआ था। आश्चर्य है कि आज वही श्री नायकरजी हिन्दीके प्रबल विरोधी हैं।

ये दोनों विद्यालय एक वर्षके तक चले। आन्ध्रके विद्यालयमें आन्ध्रके नवयुवक दाखिल किए गए थे तथा ईरोडके विद्यालयमें तमिलनाडु तथा केरलके विद्यार्थी सम्मिलित किए गए। इन विद्यालयोंमें अध्ययन पूरा करके प्रचारक बन्धु भिन्न-भिन्न केन्द्रोंमें जाकर हिन्दीका प्रचार करने लगे। सन १९२ १९२१ और १९२२ का समय असहयोग आन्दोलनका था। अत राष्ट्रीय-मनोवृत्तिवाले व्यक्ति हिन्दीकी तरफ स्वभावत झुकते थे। इसी समय हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंके उत्साहको बढ़ानेके लिए हिन्दी परीक्षाएँ चलानेका

एम्. सत्यनारायण
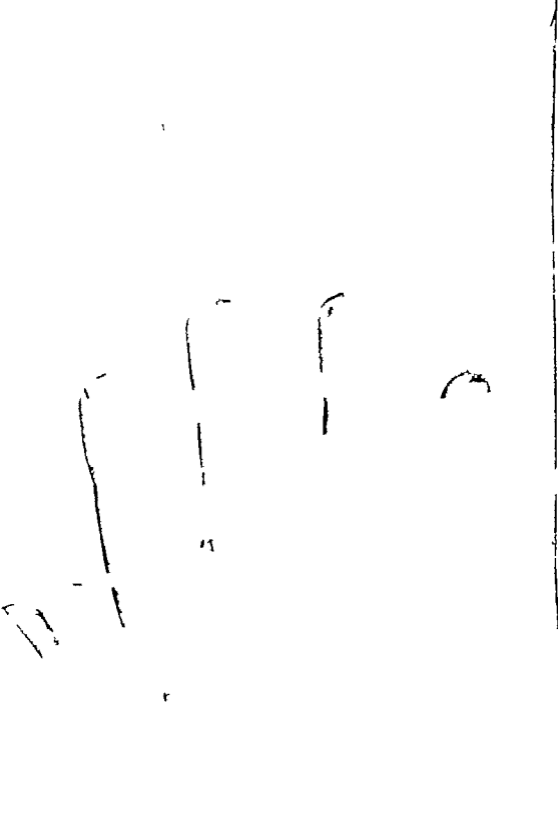
क्रम इसी समय शुरू किया गया। मद्रासमे सभाका सदर कार्यालय था। यहीसे भिन्न-भिन्न परीक्षाओका प्रवन्ध किया जाने लगा। उपयोगी हिन्दी पुस्तके प्रकाशित करनेकी व्यवस्था भी होने लगी। धीरे-धीरे प्रचारकोकी माँग बढने लगी। इस माँगकी पूर्ति के लिए सन् १९२४–२५ मे मद्रासमे एक विद्यालय शुरू किया गया। इस विद्यालयमे दक्षिणके सभी विभागोके विद्यार्थी दाखिल किए गए। अपनी पढाई पूरी करके ये नवयुवक भी हिन्दीके प्रचारमें लग गए।

दक्षिण भारतकी आवश्यकताओके अनुरूप पुस्तकोका निर्माण तथा उनके प्रकाशनका प्रश्न बडा महत्वपूर्ण था। अत यहाँ जैसे जैसे कार्य वढता गया यह आवश्यकता अनुभव होने लगी कि सभाके ही अधीन एक छापखानेका भी प्रवन्ध किया जाय। स्व जमनालालजी वजाजकी सहायतासे सन १९२३ में मद्रासमे हिन्दी प्रचार प्रेस' के नामसे छापखानेका प्रवन्ध किया गया। शुरूमे जो पुस्तके तैयार की गई वह है 'हिन्दी स्वबोधिनी' इसको श्री हरिहर शर्मा तथा श्री क म शिवराम शर्माने तैयार किया था। यह पुस्तक तमिल तथा अँग्रेजी भाषामे तैयार की गई। इसी प्रकार तेलुगु भाषामें पडित हृषीकेश शर्माने, 'स्वबोधिनी' तैयार की। इन पुस्तकोके आधारपर बादमे कन्नड और मलयालममें स्वबोधिनियाँ तैयार की गई। ये पुस्तके हिन्दी प्रचारके लिए बडी उपयोगी सावित हुई। वादमें श्री सत्यनारायणजी तथा श्री अवधनन्दनने इन पुस्तकोका परिवर्द्धन एव परिष्कार कर उन्हे नया रूप दिया।

प्रान्तोमे हिन्दीका काम इतना बढने लगा कि केवल मद्रास कार्यालयसे कार्य चलाना मुश्किल मालूम हुआ। अत आन्ध्र तथा तमिलनाडुमे शाखा कार्यालय खोले गए। समय समयपर हिन्दी प्रचारकी आवश्यकतापर नेताओके भाषण कराए गए। स्वर्गीय सत्यमूर्ति, डा पट्टाभि सीतारामैय्या तथा राजगोपालाचार्य हमेशा सभाकी मदद करते थे। राजाजी सभाके उपाध्यक्ष तथा प्रवर्तक भी थे। प्रारम्भिक अवस्थामें मद्रासके जो नेता सभाकी बडी सहायता करते थे उनमें देशोद्धारक नागेश्वरराव पन्तुलु, के भाष्यम, रामदास पन्तुलु, सजीव कामत, जगन्नाथदास के नाम उल्लेखनीय है।

धीरे-धीरे प्रचारकोकी सख्या बढी। साथ ही प्रचार कार्य भी बढा। तिरुवनतपुरम्, एरणाकुलम्, मगलोर, कालिकट, मद्रास, तजौर, कुभकोणम्, बगलौर, मैसूर, हुवली, बेलगाँव, चित्तूर, बेजवाडा, गुण्टूर आदि शहरोमें जोरशोरसे हिन्दीका प्रचार होने लगा। आन्ध्रमें ज्यादातर गाँवोके लोग हिन्दीकी ओर झुकने लगे। परीक्षार्थियोकी सख्या भी वहुत बढी, आवश्यकतानुसार नई-नई पुस्तके तैयार होने लगी और छपकर निकलने लगी।

सन् १९२७ तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रचार कार्यालयके नामसे सभा कार्य करती थी। सन् १९२६ में महात्मा गाँधीजीकी सलाहसे सभाका नया नाम—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा—रखा गया। सभाका सविधान बनाया गया। महात्मा गाँधी सभाके आजीवन अध्यक्ष चुने गए तथा मद्रासके प्रसिद्ध अँग्रेजी दैनिक "हिन्दू" के सपादक श्री अे रगस्वामी अय्यगार उपाध्यक्ष चुने गए। सभाकी आजीवन प्रचारक श्रेणी बनाई गई। इस श्रेणीमें ये प्रचारक शामिल हुए—

१ प हरिहर शर्मा, २ श्री मो सत्यनारायण, ३ प रघुवर दयालु मिश्र, ४ प देवदूत विद्यार्थी, ५ प अवधनन्दन, ६ श्री एस रामचन्द्र शास्त्री, ७. श्री पी सुव्वराव, ८ श्री दामोदर उण्णी। कुछ वर्षोंके बाद यह वर्ग रद्द किया गया।

क्रम इसी समय शुरू किया गया। मद्रासमें सभाका सदर कार्यालय था। यहीसे भिन्न-भिन्न परीक्षाओका प्रवन्ध किया जाने लगा। उपयोगी हिन्दी पुस्तके प्रकाशित करनेकी व्यवस्था भी होने लगी। धीरे-धीरे प्रचारकोकी माँग वढने लगी। इस माँगकी पूर्ति के लिए सन् १९२४–२५ मे मद्रासमे एक विद्यालय शुरू किया गया। इस विद्यालयमे दक्षिणके सभी विभागोके विद्यार्थी दाखिल किए गए। अपनी पढाई पूरी करके ये नवयुवक भी हिन्दीके प्रचारमें लग गए।

दक्षिण भारतकी आवश्यकताओंके अनुरूप पुस्तकोका निर्माण तथा उनके प्रकाशनका प्रश्न बडा महत्वपूर्ण था। अत यहाँ जैसे जैसे कार्य वढता गया यह आवश्यकता अनुभव होने लगी कि सभाके ही अधीन एक छापखानेका भी प्रवन्ध किया जाय। स्व जमनालालजी वजाजकी सहायतासे सन १९२३ में मद्रासमे हिन्दी प्रचार प्रेस ' के नामसे छापखानेका प्रवन्ध किया गया। शुरूमे जो पुस्तके तैयार की गई वह है 'हिन्दी स्ववोधिनी' इसको श्री हरिहर शर्मा तथा श्री क म. शिवराम शर्माने तैयार किया था। यह पुस्तक तमिल तथा अँग्रेजी भाषामें तैयार की गई। इसी प्रकार तेलुगु भाषामें पडित हृषीकेश शर्माने, 'स्ववोधिनी' तैयार की। इन पुस्तकोके आधारपर वादमे कन्नड और मलयालममे स्ववोधिनियाँ तैयार की गईं। ये पुस्तके हिन्दी प्रचारके लिए वडी उपयोगी सावित हुई। वादमें श्री सत्यनारायणजी तथा श्री अवधनन्दनने इन पुस्तकोका परिवर्द्धन एव परिष्कार कर उन्हे नया रूप दिया।

प्रान्तोमें हिन्दीका काम इतना वढने लगा कि केवल मद्रास कार्यालयसे कार्य चलाना मुश्किल मालूम हुआ। अत आन्ध्र तथा तमिलनाडुमे शाखा कार्यालय खोले गए। समय समयपर हिन्दी प्रचारकी आवश्यकतापर नेताओंके भाषण कराए गए। स्वर्गीय सत्यमूर्ति, डा पट्टाभि सीतारामैय्या तथा राजगोपालाचार्य हमेशा सभाकी मदद करते थे। राजाजी सभाके उपाध्यक्ष तथा प्रवर्तक भी थे। प्रारम्भिक अवस्थामें मद्रासके जो नेता सभाकी वडी सहायता करते थे उनमें देशोद्धारक नागेश्वरराव पन्तुलु, के भाष्यम, रामदास पन्तुलु, सजीव कामत, जगन्नाथदास के नाम उल्लेखनीय हैं।

धीरे-धीरे प्रचारकोकी सख्या बढी। साथ ही प्रचार कार्य भी बढा। तिरुवनतपुरम्, एरणाकुलम्, मगलोर, कालिकट, मद्रास, तजौर, कुभकोणम्, बगलौर, मैसूर, हुवली, बेलगाँव, चित्तूर, बेजवाडा, गुण्टूर आदि शहरोमें जोरशोरसे हिन्दीका प्रचार होने लगा। आन्ध्रमें ज्यादातर गाँवोके लोग हिन्दीकी ओर झुकने लगे। परीक्षार्थियोकी सख्या भी वहुत बढी, आवश्यकतानुसार नई-नई पुस्तके तैयार होने लगी और छपकर निकलने लगी।

सन् १९२७ तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रचार कार्यालयके नामसे सभा कार्य करती थी। सन् १९२६ में महात्मा गाँधीजीकी सलाहसे सभाका नया नाम—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा—रखा गया। सभाका सविधान बनाया गया। महात्मा गाँधी सभाके आजीवन अध्यक्ष चुने गए तथा मद्रासके प्रसिद्ध अँग्रेजी दैनिक "हिन्दू" के सपादक श्री अे रगस्वामी अय्यगार उपाध्यक्ष चुने गए। सभाकी आजीवन प्रचारक श्रेणी बनाई गई। इस श्रेणीमें ये प्रचारक शामिल हुए—

१ प हरिहर शर्मा, २ श्री मो सत्यनारायण, ३ प रघुवर दयालु मिश्र, ४ प देवदूत विद्यार्थी, ५ प अवधनन्दन, ६ श्री एस रामचन्द्र शास्त्री, ७. श्री पी सुब्बराव, ८ श्री दामोदर उण्णी। कुछ वर्षोंके बाद यह वर्ग रद्द किया गया।

सन् १९२ में हमारे स्वातन्त्र्य संग्रामके आन्दोलनने जोर पकड़ा। इसका शुभ परिणाम यह हुआ कि दक्षिणमें हिन्दी पढ़नेकी एक लहर सी आ गई। कार्यकर्ताओंकी मांग बढ़ने लगी। मद्रासमें प्रचारक विद्यालय शुरू किए गए। "राष्ट्रभाषा विशारद" नामक उपाधि परीक्षा शुरू की गई। विद्यालयमें विशारद तथा प्रचारक दोनोंकी पढ़ाई होती थी। साहित्यिक रुचि रखनेवालोंके लिए विशेष योग्यता नामक परीक्षा भी चलाई जाने लगी जो कालान्तरमें "राष्ट्रभाषा प्रवीण" उपाधि परीक्षामें परिणत हो गई। विद्यालय परीक्षा तथा साहित्य निर्माणमें सभाको परामर्श देनेके लिए, विद्यालय परीक्षा तथा साहित्य उपसमितियोंका सन् १९३२ मे निर्माण किया गया। इस दिनों एस एल एल सी में हिन्दी विषयको प्रवेश मिला। इससे लाभ उठाकर कई हाईस्कूलोंमे हिन्दीको प्रवेश दिया गया। देशी राज्योंमें भी—त्रिवान्कूर, कोचीन मैसूरमें कुछ हदतक हैदराबादमें भी जनता हिन्दीकी ओर आकर्षित हुई तथा स्कूलोंमे हिन्दीकी पढ़ाई की व्यवस्था होने लगी।

सन् १९३५ मे काका कालेलकर हिन्दी प्रचारके निमित्त दक्षिणका दौरा करने आए। उनके सुझावपर सभाके संविधानमें कुछ ठोस परिवर्तन किए गए। सभाको शिक्षा सम्बन्धी बातोंमे सलाह देनेके लिए "शिक्षा परिषद" का निर्माण हुआ तथा आन्ध्र तमिल केरल तथा कर्नाटकके हिन्दी प्रचार कार्यको सुसंगठित करनेके लिए उन प्रदेशोंमें प्रान्तीय सभाओंका निर्माण किया गया। आन्ध्रकी सभाका दफ्तर मुकाम—*बेजवाड़ामें तमिलकी सभाका तिरुचिरापल्लीमें केरलकी सभाका एरनाकुलम (तिरुप्पणतुरा)* तथा कर्नाटक प्रान्तीय सभा बंगलोरमें थी अब धारवाड़में है। इन प्रान्तीय सभाओंके लिए श्री पी सुब्बाराव रघुवरदयाल मिश्र देवदूत विद्यार्थी तथा सिद्धनाथ पन्त क्रमशः प्रान्तीय मन्त्री नियुक्त किए गए। प्रान्तीय सभाओंके निर्माणके बाद प्रान्तोंमें हिन्दी प्रचारके कार्यको नवीन स्फूर्ति मिली है और फल स्वरूप विद्यार्थियों-की संख्या बेहद बढ़ने लगी है।

पंडित हरिहर शर्माने प्रधान मन्त्रीके रूपमें सन् १९३९ तक कार्य किया। इसके बाद श्री मोटूरि सत्यनारायण प्रधान मन्त्री हुए। वे सन् १९६ में नियुक्त हुए और उनके स्थानपर अब श्री रा शास्त्री प्रधानमन्त्रीके रूपमें कार्य कर रहे हैं।

दक्षिणके विश्वविद्यालयोंके पाठ्यक्रममें भी हिन्दीको स्थान मिला। स्वर्गीय सी राम लिंग रेड्डी उपकुलपति आन्ध्र विश्वविद्यालयने भी काम में हिन्दीको अनिवार्य कर दिया। मैट्रिक इन्टर, बी ए के पाठ्यक्रमम हिन्दी जोड़ी गई। सबसे पहले आन्ध्रमें नेल्लूरके वी आर. कालेजमें हिन्दीकी पढ़ाई होने लगी। श्री भट्टाराम वेंकट सुब्बय्या हिन्दी अध्यापक नियुक्त हुए।

सन् १९३७ में श्री राजाजी मद्रास प्रान्तके मुख्य मन्त्री बने। उन्होंने मिडिल क्लासमें फार्म १ २ ३ में हिन्दीको लाजिमी कर दिया। इससे बड़ा तूफान उठा। तीन साल बाद कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलने इस्तीफा दे दिया। ब्रिटिश सरकारके हाथमें पूरी सत्ता चली गई। इससे स्कूलोंमें हिन्दी प्रचारका जो कार्य हो रहा था उसे धक्का पहुँचा। पर जनताका उत्साह कम न हुआ। सन् १९४२ में महात्मा गांधी जीने "भारत छोड़ो" आन्दोलन शुरू किया। नेतागण तथा अनेक उत्साही कार्यकर्ता जेलोंमें ठूँस दिए गए। जेलोंमें भी हिन्दीका खूब प्रचार होने लगा।

इन राजनैतिक उथलपुथलोंके कारण हिन्दी प्रचारकी गति धीमी नहीं हुई। प्रान्तीय सभाएँ

अपना कार्य सुचारु रूपसे करती रही। केन्द्रीय सभाके कार्यमें भी खूब विस्तार होने लगा। भिन्न-भिन्न विभागोके कार्यकलापोको ठीक तरहसे चलानेके लिए सन् १९४९ मे साहित्य मन्त्री, परीक्षा मन्त्री, शिक्षा मन्त्रीके पदोपर नियुक्त हुए। प्रधान मन्त्रीकी सहायता करनेको "सयुक्त मन्त्री" का पद निर्मित हुआ। पं रघुवरदयाल मिश्र प्रथम सयुक्त मन्त्री वने। सभाके चुनावोमें प्रचारक तथा जनता अव ज्यादा दिलचस्पी लेने लगी।

दक्षिणमें विद्यालयोकी स्थापना हुई इसके फलस्वरूप कई प्रचारक दक्षिणमे ही तैयार हो गए। उनमेंसे जो हिन्दीके उच्च साहित्यका अध्ययन करना चाहते थे, उन्हे उत्तर भारतमे जाकर हिन्दी साहित्यके अध्ययनमे सुविधा हो इसके लिए 'ज्ञानयात्री मण्डल" नामक सस्था सन् १९३२ में स्थापित हुई। प सिद्धनाथ पन्त इसके संस्थापक थे। इस मण्डल" के द्वारा कई प्रचारक प्रयाग, काशी आदि स्थानोपर जाकर हिन्दी साहित्यका अध्ययन करके दक्षिण लौटे। इसका शुभ परिणाम यह हुआ कि वे ज्यादा सफल प्रचारक हुए।

सन् १९३४ में एक यात्री-दल कायम किया गया। इसके द्वारा कई "प्रचारक" दल वांधकर उत्तर भारतमें गए और उन्होने वहाँ जाकर दक्षिणकी भाषा, सस्कृति आदिके वारेमे उत्तरके लोगोको समझाया। यह क्रम कुछ वर्षोतक चलता रहा।

सन् १९५० तक दक्षिणके प्राय सभी विश्वविद्यालयोमें हिन्दीका प्रवेश हो गया था। केरल तथा आन्ध्रके स्कूलोमें हिन्दी अनिवार्य रूपसे पढाई जाने लगी है। मैसूरमे भी करीब करीव सभी स्कूलोमें हिन्दीका प्रवेश हो गया है। मद्रास प्रान्तमें भी, जहाँ हिन्दी ऐच्छिक रूपसे पढाई जाती है, हिन्दी विषय लेनेवाले विद्यार्थियोकी सख्या वेहद वढने लगी। अध्यापकोकी माँग भी वढने लगी। अध्यापकोको तैयार करनेके लिए आन्ध्रमें—हैदराबाद, विजयवाडा, तेनाली, विद्यावन, राजमहेन्द्री, अनकापल्ली, विजयनगर आदि केन्द्रोमें विद्यालय चलाए गए, मद्रास राज्यमें, मद्रास, तिरुच्चिरापल्ली, कुभकोणम्, मदुरा, कोयवतूर आदि केन्द्रोमें, केरलमें—तिरुवनन्तपुरम्, तिरुप्पणुत्तुरा (येरणाकुलम), कोट्टयम, कालिकट, कण्णनूर आदि केन्द्रोमें मैसूर राज्यमे—वगलोर, मैसूर मगलोर, धारवाड आदि केन्द्रोमें विद्यालय चलाए गए। इन विद्यालयोको चलानेका भार केन्द्रीय सभाके शिक्षा मन्त्रीके अधीन था।

इस वक्त दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाका कार्य खूब विस्तृत है। करीव आठ हजार प्रमाणित प्रचारकोंके द्वारा प्रचार कार्य चलता है। प्रारम्भिक परीक्षाओ—प्राथमिक, मध्यमा, राष्ट्रभाषाके सचालन का कार्य प्रान्तीय सभाएँ करती है। उच्च परीक्षाएँ—प्रवेशिका, विशारद, प्रवीण तथा प्रचारक—केन्द्रीय सभा स्वय चलाती है।

हिन्दीका अधिकाधिक प्रचार हो, इसलिए प्रमाण पत्र वितरणोत्सव, प्रचारक सम्मेलन, वाक्स्पर्द्धाएँ, लेखन स्पर्द्धाएँ, नाटकोका अभिनय, हिन्दी सप्ताह तथा प्रमुख व्यक्तियोंके भाषण आदिका नियमित रूपसे आयोजन किया जाता है। अनेक स्थानोपर विद्यार्थी मेला भी लगाया जाता है। ऐसी प्रवृत्तियोको अच्छी तरहसे सम्पन्न करनेके लिए प्रत्येक प्रान्तके तीन विभाग कर दिए गए है उनमेंसे हरएक पर एक एक सगठक नियुक्त किया जाता है जो इन प्रवृत्तियोंका आयोजन करता है। प्रान्तीय समितियोके अधीन स्थान-स्थानपर हिन्दी-प्रचार-केन्द्र है। इन केन्द्रोका सचालन-हिन्दी प्रेमी मण्डल करते हैं।

सन् १९१ मे हमारे स्वातन्त्र्य संग्रामके आन्दोलनने जोर पकड़ा। इसका शुभ परिणाम यह हुआ कि दक्षिणमें हिन्दी पढ़नेकी एक लहर सी आ गई। कार्यकर्ताओंकी मांग बढ़ने लगी। मद्रासमें प्रचारक विद्यालय शुरू किए गए। "राष्ट्रभाषा विशारद" नामक उपाधि परीक्षा शुरू की गई। विद्यालयमें विशारद तथा प्रचारक दोनोंकी पढ़ाई होती थी। साहित्यिक रुचि रखनेवालोंके लिए "विशेष योग्यता" नामक परीक्षा भी चलाई जाने लगी जो कालान्तरमें "राष्ट्रभाषा प्रवीण" उपाधि परीक्षामें परिणत हो गई। विद्यालय परीक्षा तथा साहित्य निर्माणमें सभाको परामर्श देनेके लिए, विद्यालय परीक्षा तथा साहित्य उपसमितियोंका सन् १९१२ में निर्माण किया गया। इस दिनों एस एस एल सी में हिन्दी विषयका प्रवेश मिला। इससे लाभ उठाकर कई हाईस्कूलोंमें हिन्दीको प्रवेश दिया गया। देशी राज्योंमें भी—तिरुवान्कूर, कोचीन मैसूरमें कुछ हदतक हैदराबादमें भी जनता हिन्दीकी ओर आकर्षित हुई तथा स्कूलोंमें हिन्दीकी पढ़ाई की व्यवस्था होने लगी।

सन् १९१५ में काका कालेलकर हिन्दी प्रचारके निमित्त दक्षिणका दौरा करने आए। उनके सुझावपर सभाके संविधानमें कुछ ठोस परिवर्तन किए गए। सभाको शिक्षा सम्बन्धी बातोंमें सलाह देनेके लिए शिक्षा परिषद का निर्माण हुआ तथा आन्ध्र तमिल केरल तथा कर्नाटकके हिन्दी प्रचार कार्यको सुसंगठित करनेके लिए उन प्रदेशोंमें प्रान्तीय सभाओंका निर्माण किया गया। आन्ध्रकी सभाका दफ्तर मुकाम—बेजवाड़ामें तमिलकी सभाका तिरुचिरापल्लीमें केरलकी सभाका एरणाकुलम (तिरुमनतुरा) तथा कर्नाटक प्रान्तीय सभा बंगलोरमें थी अब धारवाड़में है। इन प्रान्तीय सभाओंके लिए श्री पी सुब्बाराव रघुवरदयाल मिश्र देवदूत विद्यार्थी तथा सिद्धनाथ पन्त क्रमशः प्रांन्तीय मन्त्री नियुक्त किए गए। प्रान्तीय सभाओंके निर्माणके बाद प्रान्तोंमें हिन्दी प्रचारके कार्यको नवीन स्फूर्ति मिली है और फल स्वरूप विद्यार्थियोंकी संख्या बेहद बढ़ने लगी है।

पंडित हरिहर शर्माने प्रधान मन्त्रीके रूपमें सन् १९३६ तक कार्य किया। इसके बाद श्री मोटूरि सत्यनारायण प्रधान मन्त्री हुए। वे सन् १९९ मे नियुक्त हुए और उनके स्थानपर अब श्री रा शास्त्री प्रधानमन्त्रीके रूपमे कार्य कर रहे हैं।

दक्षिणके विश्वविद्यालयोंके पाठ्यक्रममें भी हिन्दीको स्थान मिला। स्वर्गीय सी राम लिंग रेड्डी उपकुलपति आन्ध्र विश्वविद्यालयने बी काम में हिन्दीको अनिवार्य कर दिया। मैट्रिक इन्टर, बी ए के पाठ्यक्रममे हिन्दी जोड़ी गई। सबसे पहले आन्ध्रमें नेल्लूरके वी आर. कालेजमें हिन्दीकी पढ़ाई होने लगी। श्री भट्टाराम वेंकट सुब्बय्या हिन्दी अध्यापक नियुक्त हुए।

सन् १९३७ मे श्री राजाजी मद्रास प्रान्तके मुख्य मन्त्री बने। उन्होंने मिडिल क्लासमें फार्म १ ९, २ में हिन्दीको लाजिमी कर दिया। इससे बड़ा तूफान उठा। तीन साल बाद कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलने इस्तीफा दे दिया। ब्रिटिश सरकारके हाथमें पूरी सत्ता चली गई। इससे स्कूलोंमें हिन्दी प्रचारका जो कार्य हो रहा था उसे धक्का पहुँचा। पर जनताका उत्साह कम न हुआ। सन् १९४२ में महात्मा गांधीजीने भारत छोड़ो आन्दोलन शुरू किया। नेतागण तथा अनेक उत्साही कार्यकर्ता जेलोंमें ठूंस दिए गए। जेलोंमें भी हिन्दीका खूब प्रचार होने लगा।

इन राजनैतिक उपलपुथलोंके कारण हिन्दी प्रचारकी गति धीमी नहीं हुई। प्रान्तीय सभाएँ

अवधि	रुपए
१९३६—१९४१	६,१३,०७५
१९४२—१९४६	८,६५,१२९
१९४७—१९५१	२५,६४,८८२
१९५२—१९५६	२७,१३,०००
१९५८—१९५९	२३,०१,९५२
कुल	९०,५८,०३८

आन्ध्र, तमिल, कर्नाटक और केरल प्रान्तीय सभाओका खर्च

दक्षिणमें हिन्दी प्रचार आन्दोलनकी आश्चयजनक प्रगति, सभाकी चारो प्रान्तीय शाखाओंकी निम्न-लिखित क्रमिक व्यय-वृद्धिमे स्पप्टत प्रतिविंवित हैं—

अवधि	आन्ध्र	तमिलनाडु	कर्नाटक	केरल
१९३६—४१	८५,०००	४५,०००	३९,०००	५९ ०००
१९४२—४६	१,४०,०००	७५,०००	५५,०००	८०,०००
१९४८—५१	२,२७,०००	१,५०,०००	८०,०००	१,६३,०००
१९५२—५६	३,१०,०००	२,१०,०००	२,७६,०००	१,८७,०००
१९५७—५९	३,६८,५९६	२,४४,१९६	२,७६,१५३	१,५०,२७२
कुल	११,३०,५९६	७,२४,१९६	७,२६,१५३	६,३६,२७२

सभाकी परीक्षाएँ

सभा हिन्दीकी आठ क्रमवद्ध परीक्षाएँ चला रही है जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी भापाका अच्छा शिक्षण व्यवस्थित रूपसे हो रहा है। उपर्युक्त आठ परीक्षाओमें तीन प्रारम्भिक परीक्षाएँ हैं और पाँच उच्च परीक्षाएँ। 'प्राथमिक', 'मध्यमा', और 'राष्ट्रभापा' प्रारम्भिक परीक्षाएँ है, तथा 'प्रवेशिका', 'विशारद-पूर्वाद्ध', 'विशारद-उत्तरार्द्ध', 'प्रवीण' और 'हिन्दी प्रचारक' उच्च परीक्षाएँ हैं। इनके अतिरिक्त स्कूलोमें हिन्दी पढनेवाले विद्यार्थियोके उपयोगार्थ सभा 'हिन्दुस्तानी पहली' और 'दूसरी' परीक्षाएँ भी चलाती है और प्रतिवर्ष सभा 'राष्ट्रभाषा विशारद' और 'राष्ट्रभापा प्रवीण' परीक्षाओमें उत्तीर्ण स्नातकोको पदवीदान-समारम्भ के अवसरपर उपाधियाँ प्रदान करती है।

१९२२ से सभाने जवसे परीक्षाएँ शुरू की, तवसे आज तक उसकी विभिन्न परीक्षाओमें कुल १८३२५४७ परीक्षार्थी बैठे। ये परीक्षार्थी सभी प्रकारके समाजोसे सम्वद्ध है और विभिन्न स्तरोके लोग भी इनमें शामिल हैं, जिनमे ३० प्रतिशत तो नारियाँ है। सभाने अवतक करीव ७००० हिन्दी प्रचारकोको

महात्मा गांधीजीके पश्चात् सभाके अध्यक्ष डा. राजेन्द्रप्रसाद हैं तथा प्रधानमन्त्री श्री एस आर शास्त्री हैं। सभाके प्रान्तीय सभाओंके अध्यक्ष तथा मन्त्री निम्नानुसार हैं—

तमिलनाडु हिन्दी प्रचार सभा—मन्त्री—श्री एस चन्द्रमौली।

आन्ध्र राष्ट्र हिन्दी प्रचार सभा—अध्यक्ष—श्री डा. वी गोपाल रेड्डी मन्त्री—श्री पिट्टी लक्ष्मीनारायण शर्मा।

कर्नाटक हिन्दी प्रचार सभा—अध्यक्ष—श्री जी वी हल्लीकेरी मन्त्री—श्री व्यंकटाचल शर्मा।

केरल हिन्दी प्रचार सभा—अध्यक्ष—श्री पी के केशवन् नायर, मन्त्री—न नारायण देव।

दिल्ली शाखा—मन्त्री—श्री भालचन्द्र आप्टे।

स्कूल-कालेजोंमें हिन्दीका प्रवेश होनेसे सभाके कार्यकलापोंमें खूब वृद्धि हुई है। प्रान्तीय सभाओंको स्थापित हुए अब २५ सालसे अधिक समय हो गया। वे अपने अपने रजत जयन्ती उत्सव मनाने लगी हैं। सभाकी परीक्षाएँ केन्द्र तथा प्रान्तीय सरकारों द्वारा मान्य हो चुकी हैं।

सभाके कार्यका विस्तार, सच्चे कर्मठ प्रचारकोंके सक्रिय सहयोगके बिना सम्भव न था। सभाने जो प्रगति की है उसका कारण दक्षिण भारतभरमें फैले हुए, दिन रात प्रचार कार्यमें लगे हुए प्रचारक ही हैं।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके कार्यका विवरण तथा कुछ आंकड़े यहाँ नीचे दिए गए हैं वे इस बातके द्योतक हैं कि दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा तथा उसकी चारों प्रान्तीय सभाओंने गत ४१ वर्षोंमें दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचारका कितना व्यापक कार्य किया है।

पाँच पंचवर्षीय अवधियोंमें विकास

सभाने गत ५ पंचवर्षीय अवधियोंमें जो ८ क्रमबद्ध परीक्षाएँ चलाईं, उनमें बैठनेवालोंकी संख्या दस लाखसे भी अधिक है जिसका विवरण नीचे दिया जा रहा है—

अवधि	केन्द्र-संख्या	विद्यार्थियोंकी संख्या
१९३६—१९४१	४२१	८९ ८२१
१९४२—१९४६	४९८	१ २८२
१९४७—१९५१	७९	१ २२ ९६८
१९५२—१९५६	१	४ ८६ ४५५
१९५७—१९६१	१३५	६,५८ ४९
	कुल	१६,५७१ ७

संगठन एवं प्रचार पर केन्द्रीय खर्च

सभाकी प्रवृत्तियाँ क्रमशः ज्यों-ज्यों बढ़ती जा रही हैं त्यों-त्यों उसका खर्च भी बढ़ता जा रहा है। गत ५ पंचवर्षीय अवधियोंमें जो खर्च हुआ है, उसका विवरण यों है—

अवधि	रुपए
१९३६—१९४१	६,१३,०७५
१९४२—१९४६	८,६५,१२९
१९४७—१९५१	२५,६४,८८२
१९५२—१९५६	२७,१३,०००
१९५८—१९५९	२३,०१,९५२
कुल	९०,५८,०३८

आन्ध्र, तमिल, कर्नाटक और केरल प्रान्तीय सभाओंका खर्च

दक्षिणमें हिन्दी प्रचार आन्दोलनकी आश्चर्यजनक प्रगति, सभाकी चारों प्रान्तीय शाखाओंकी निम्नलिखित क्रमिक व्यय-वृद्धिमें स्पष्टतः प्रतिविंवित हैं—

अवधि	आन्ध्र	तमिलनाडु	कर्नाटक	केरल
१९३६—४१	८५,०००	४५,०००	३९,०००	५९,०००
१९४२—४६	१,४०,०००	७५,०००	५५,०००	८०,०००
१९४८—५१	२,२७,०००	१,५०,०००	८०,०००	१,६३,०००
१९५२—५६	३,१०,०००	२,१०,०००	२,७६,०००	१,८७,०००
१९५७—५९	३,६८,५९६	२,४४,१९६	२,७६,१५३	१,५०,२७२
कुल	११,३०,५९६	७,२४,१९६	७,२६,१५३	६,३६,२७२

सभाकी परीक्षाएँ

सभा हिन्दीकी आठ क्रमवद्ध परीक्षाएँ चला रही है जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी भाषाका अच्छा शिक्षण व्यवस्थित रूपसे हो रहा है। उपर्युक्त आठ परीक्षाओंमें तीन प्रारम्भिक परीक्षाएँ हैं और पाँच उच्च परीक्षाएँ। 'प्राथमिक', 'मध्यमा', और 'राष्ट्रभाषा' प्रारम्भिक परीक्षांएँ हैं, तथा 'प्रवेशिका', 'विशारद-पूर्वार्द्ध', 'विशारद-उत्तरार्द्ध', 'प्रवीण' और 'हिन्दी प्रचारक' उच्च परीक्षाएँ हैं। इनके अतिरिक्त स्कूलोंमें हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंके उपयोगार्थ सभा 'हिन्दुस्तानी पहली' और 'दूसरी' परीक्षाएँ भी चलाती है और प्रतिवर्ष सभा 'राष्ट्रभाषा विशारद' और 'राष्ट्रभाषा प्रवीण' परीक्षाओंमें उत्तीर्ण स्नातकोंको पदवीदान-समारम्भ के अवसरपर उपाधियाँ प्रदान करती है।

१९२२ से सभाने जबसे परीक्षाएँ शुरू कीं, तबसे आज तक उसकी विभिन्न परीक्षाओंमें कुल १८३२५४७ परीक्षार्थी बैठे। ये परीक्षार्थी सभी प्रकारके समाजोंसे सम्वद्ध हैं और विभिन्न स्तरोंके लोग भी इनमें शामिल हैं, जिनमें ३० प्रतिशत तो नारियाँ हैं। सभाने अबतक करीब ७००० हिन्दी प्रचारकोंको

प्रशिक्षण दिया है जो कि दक्षिणके कोने-कोनेमें हिन्दी प्रचारको बढ़ानेके कार्यमें लगे हुए हैं। सभाकी परीक्षाएँ करीब १३५० केन्द्रोंमें चलाई जाती हैं।

सभाकी परीक्षाओंकी मान्यता

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रासकी परीक्षाएँ भारत सरकारके शिक्षामन्त्रालयसे निम्न लिखित रूपमें मान्य हैं—

प्रवेशिका—मैट्रिकके समकक्ष
विशारद—इण्टरके समकक्ष
प्रवीण—बी. ए. के समकक्ष

परीक्षाकी उन्नति क्रम		परीक्षार्थियोंकी संख्या	
वर्ष	केन्द्र	प्रारम्भिक	उच्च परीक्षाएँ
१९२२ से ३०	७३	९,११६	३२
१९३१ से ३५	३९४	३०,७१०	२,१६६
१९३६ से ४०	५७८	७०,९८७	४,१५२
१९४१ से ४५	५२८	६५,१६२	५,०२२
१९४६ से ४९	६४५	१,७६,६२१	१५,३३८
१९५०	७४०	७८,६९७	११,५४७
१९५१	८२२	७८,५८७	१६,१७०
१९५२	८९५	७७,५८८	१५,३३८
१९५३	८३२	७५,५४९	१२,९४९
१९५४	९७३	७१,३९०	१५,५२२
१९५५	१०६४	८१,३२५	१६,८९६
१९५६	१२२३	९८,५५७	१६,९१३
१९५७	१२३१	९०,७२९	१८,११३
१९५८	१२७५	१,०४,५७८	१९,[illegible]
१९५९	१३०२	१,१६,७०१	२०,८५६
१९६०	१३२६	१,१५,८५९	२३,०४५
१९६१	१३५०	१,१४,८८०	२२,८७२
		१४,५७,०२७	२,३६,२२४
		कुल परीक्षार्थियोंकी संख्या	१६,९३,२५१

* सभाकी 'हिन्दी प्रचारक', 'हिन्दुस्तानी पहली' और 'दूसरी' परीक्षाओंमें जो परीक्षार्थी बैठे, उनकी सख्या इन आकडोमे सम्मिलित नही है।
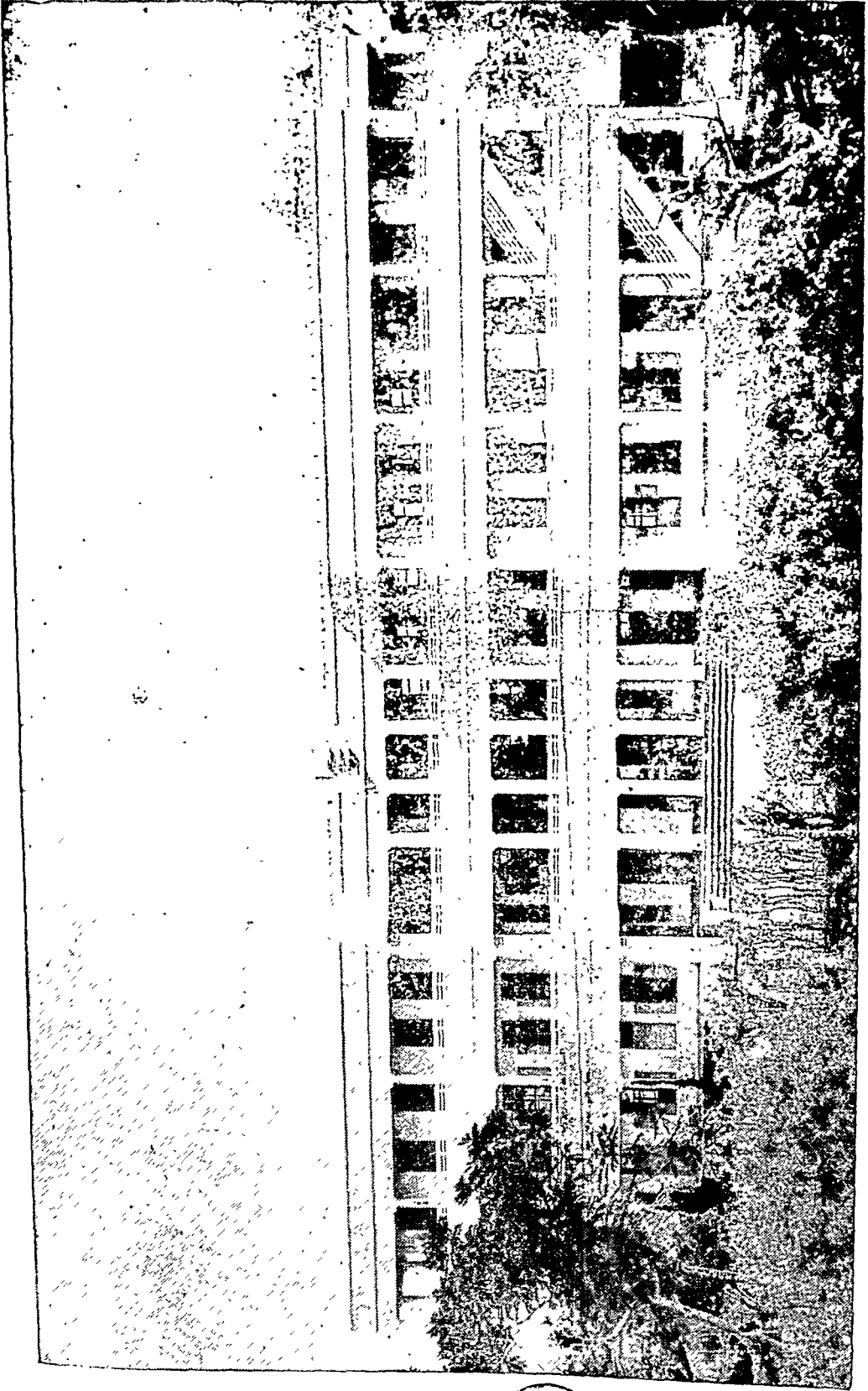
प्रचारक विद्यालय (महिला), मद्रास
[राजाजी छात्रावास]

पदवीदान-समारम्भ

सभाने सन १९३१ से लेकर अवतक उपाधियाँ प्रदान करनेके हेतु पच्चीस पदवीदान-समारम्भ मनाए हैं। निम्नलिखित विद्वानोंने उन अवसरोंपर अभिभाषण दिए हैं—

१९३१ आचार्य काका कालेलकर, १९३२ प्रो. मोहम्मद आगा शुस्त्री, * १९३३ पं रामनरेश त्रिपाठी, १९३४ वावू प्रेमचन्द, १९३५ पंडित सुन्दरलाल, * १९३६ वावू पुरुपोत्तमदास टण्डन, १९३७ जनाव याकूव हसन सेठ, १९३८ श्रीमती सरोजिनी नायडू, १९३९ श्री वाल गंगाधर खेर, १९४० डा. पट्टाभि सीतारामैय्या, १९४१ आचार्य विनोवा भावे, १९४२, १९४३ सैय्यद अव्दुल्ला ब्रेल्वी, * १९४६ राजकुमारी अमृत कौर; १९४८ डा. जाकिर हुसैन, १९४९ आचार्य विनोवा भावे, १९५० श्री आर. आर. दिवाकर, १९५२ श्री श्रीप्रकाश, १९५३ श्री ए. जी. रामचन्द्र राव, १९५४ श्री वी. रामकृष्णराव, १९५६ (जनवरी) श्री एन. सुन्दर ऐय्यर, १९५६ (अगस्त) डा. राजेन्द्र प्रसाद; १९५७ डा. जगजीवनराम, १९५८ डा. हरेकृष्ण महताव, १९५९ श्री सदाशिव कानोजी पाटील, १९६० डा. वी. गोपाल रेड्डी।

प्रकाशन

सभाका प्रकाशन-विभाग बड़े पैमानेपर प्रकाशनका कार्य कर रहा है, इस विभागकी तरफसे करीव ३१४ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें साहित्यिक महत्व रखनेवाली पुस्तकें भी हैं, और दक्षिणी भाषाओंसे हिन्दी सीखनेके लिए आवश्यक पुस्तकें, रीडरोंसे लेकर कोश तक, सम्मिलित हैं। सभाका अपना पुस्तक विक्री विभाग है जहाँ सभाकी निजी पुस्तकें और वाहरके प्रकाशन भी वेचनेका प्रवन्ध है। इस विभागने दक्षिणके कोने-कोनेमें करीव १८०० प्रकारकी २,८०,००,००० पुस्तकें वितरित की हैं।

पत्रिकाएँ

सभाकी तरफसे "दक्षिण भारत" (सांस्कृतिक द्वैमासिक) और "हिन्दी प्रचार समाचार" (प्रचारात्मक मासिक) नामक दो पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं।

"**दक्षिण भारत**" भारतीय—मुख्यतया दक्षिणी—भाषाओंकी विशेषताओंको प्रतिविम्वित करनेवाले साहित्य, संस्कृति, इतिहास और समाजका तथा इन क्षेत्रोंमें काम करनेवाले नेताओंका परिचय कराता है।

"**हिन्दी प्रचार समाचार**" दक्षिणके हिन्दी विद्यार्थियों एवं प्रचारकोंके लाभार्थ आवश्यक सुरुचिपूर्ण विभिन्न सामग्री प्रस्तुत करती है। यह मुख्यतः शिक्षा एवं संगठनको दृष्टिमें रखकर चलाया जाता है।

हिन्दी प्रचारक विद्यालय

सभाके प्रमुख कार्य-कलापोंमें स्कूलोंके लिए योग्य हिन्दी शिक्षकोंको तैयार करना भी एक मुख्य

[* १९३३, १९३६ और १९४६ के पदवीदान-समारम्भोंपर महात्मा गाँधीने अध्यक्षासन ग्रहण किया था।]

कार्य है। इस उद्देश्यको सफल बनानेके लिए निम्नलिखित केन्द्रोमे इस समय सभा हिन्दी प्रचारक विद्यालय चला रही है—

मद्रास तिरुच्चिरापल्ली हैदराबाद

निम्नलिखित केन्द्रोके हिन्दी प्रचारक विद्यालय सभा द्वारा मान्यता प्राप्त है—

राजमहेन्द्री तेनाली

उपर्युक्त विवरणसे यह स्पष्ट हो जाएगा कि सभाने गत ४३ वर्षोंमे कितना व्यापक तथा गौरवपूर्ण कार्य किया है।

दक्षिण भारतकी कुछ अन्य हिन्दी प्रचार संस्थाएँ

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार तथा उनकी चारो प्रान्तीय सभाओंके कार्यका विवरण ऊपर दिया जा चुका है। इनके अतिरिक्त दक्षिण भारतमें और भी कुछ हिन्दी प्रचार सस्थाएँ है जो कुछ वर्षोंसे स्वतन्त्र रूपसे हिन्दी प्रचारका कार्य कर रही है। आन्ध्र प्रदेशमें हिन्दी प्रचार सभा हैदराबादका विशेष स्थान है। यह सस्था राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धासे सम्बद्ध है अतः इसका विवरण अन्यत्र दिया गया है। इसके अतिरिक्त जो प्रमुख सस्थाएँ है उनके नाम राज्यानुसार नीचे दिए गए है।

(१) तिरुवाकुर हिन्दी प्रचार सभा— तिरुअनतपुरम्
(२) मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद— बगलौर
(३) साहित्यानुशीलन समिति— मद्रास
(४) कर्नाटक हिन्दी प्रचार सभा— धारवाड

सामान्यत यह भ्रम बना हुआ है कि दक्षिण भारतमें हिन्दीका कार्य इतना फैला नही है कि शासन तथा अन्य क्षेत्रोमे हिन्दीका उपयोग किया जाए। ऊपर दिए हुए विवरणसे यह स्पष्ट हो जाएगा कि दक्षिण भारतके लोग हिन्दीको कितने चावसे अपना रहे है। वहाँके बड़े-बड़े नगरो, कस्बो, एव गाँवोमें प्रचार केन्द्र फैले हुए है और उनके द्वारा हिन्दीके लिए अनुकूल वायुमडलका निर्माण हो रहा है। स्कूलो एव कालेजोमें विद्यार्थी हिन्दीको स्वेच्छासे सीख रहे है। विश्वविद्यालयोमे हिन्दीको ऐच्छिक विषयके रूपमे स्थान मिला है। हजारोकी सख्यामे विद्यार्थी हिन्दी विषय लेकर हिन्दी सीख रहे है। अत कुछ व्यक्तियोके हिन्दी विरोधके कारण यह कहना कि दक्षिण भारतमें हिन्दीका प्रबल विरोध है एक असत्य कथन है। बल्कि यथार्थ तो यह है कि हिन्दी बहुत तीव्र गतिसे सारे दक्षिण भारतमें फैल रही है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

महात्मा गाँधीने सन् १९१८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अन्तर्गत दक्षिणमें हिन्दी प्रचारके कार्यको प्रारम्भ किया था। यह कार्य सुचारुरूपसे चलने लगा। इसको सुसगठित करनेकी दृष्टिसे दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी स्थापना हुई। इसने दक्षिणके तमिल, तेलुगु, मलयालम तथा कन्नड भाषा-भाषी प्रदेशोमे व्यापक रूपसे कार्य बढाया। इस प्रकार दक्षिणमें हिन्दी प्रचारके कार्यको सगठित रूपमें लगाकर

चीन

भारत और चीन हजारों वर्षोंसे पड़ोसी देश हैं और इसलिए एक-दूसरेमें एक-दूसरेको अनेकों प्रकारकी दिलचस्पियाँ रहती चली आई हैं। (अभी-अभी तो हमारे राष्ट्रकी उत्तरी तथा पश्चिमी सीमाओंपर चीनका वहशियाना खूनी आक्रमण ही चल रहा है।) इसलिए चीनमें भारतकी भाषाओंके और विशेषकर सबसे अधिक बोली एवं समझी जानेवाली भाषाके रूपमें हिन्दीके अध्ययनपर विशेष तत्परता एवं योजना पूर्वक ध्यान दिया जाता रहा है। चीन अपने यहाँ ऐसे दुभाषियोंकी फौज खड़ी करना चाहता है जो हिन्दीमें माहिर हों, योग्यतापूर्वक हिन्दी लिख-पढ़ तथा बोल ले सकें ताकि भारतीय जनतामें विरोधी प्रचार मोर्चेपर उनका उपयोग किया जा सके। अकेले इन दिनों पीकिंग विश्वविद्यालयमें ४० छात्र हिन्दीका गहराईसे अध्ययन कर रहे हैं। विदेशोंसे हिन्दीमें समाचार तथा टिप्पणियाँ आदि प्रेषित करनेवाले देशोंमें शायद चीन ही एकमात्र ऐसा देश है जहाँ समाचार प्रेषित करनेवाला व्यक्ति भारतीय नहीं, हिन्दी सीखा हुआ चीनी है।

चीन हिन्दीमें कुछ पत्र-पत्रिकाओंका भी नियमित प्रकाशन करता आया है। विदेशोंमें सोवियट रूसके बाद चीन ही में हिन्दीमें पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकाएँ इतनी बड़ी तादादमें छापी जाती हैं। अन्तर इतना ही है कि चीन भारतकी जनता तक अपनी बात एवं प्रचार पहुँचानेके लिए यह सब उठापटक करता है, भारतके साहित्य एवं संस्कृतिसे रूसकी तरह अपनी जनताको समृद्ध एवं संस्कारित करनेके लिए नहीं। अब यह बात दूसरी है कि हिन्दी कविताएँ तथा भारतीय साहित्य अपनी शक्तिसे चीनी छात्रोंके मनमें अपने लिए अनुराग एवं ललक पैदा करनेमें कुछ अंश तक सफल हो जाएँ। कहते हैं कि हिन्दी कविताओंके अनुवादको पढ़कर ही कुछ छात्रोंके मनमें उन्हें मूल हिन्दीमें पढ़नेकी तीव्र इच्छा जाग उठी थी और उन्हींकी इच्छापूर्तिके लिए चीनमें सर्वप्रथम हिन्दी अध्यापनकी व्यवस्था की गई थी। चीनमें हिन्दी भाषाके इतिहास, व्याकरण, साहित्य इ० सम्बन्धी शोधकार्य भी चलाए जा रहे हैं।

भारत सरकारकी ओरसे पीकिंग स्थित भारतीय दूतावासको तथा शँघाई स्थित काउंसलेट जनरलको वहाँके भारतीय बच्चोंको हिन्दी पढ़ानेके लिए हिन्दी पुस्तकें भेंट में दी गई हैं।

विएतनाम

विएतनाम गणतन्त्रके नई दिल्ली स्थित काउंसलेट जनरलके अनुसार विएतनामके किसी कालेज या विश्वविद्यालयमें हिन्दी-विषयके अध्ययन-अध्यापनकी व्यवस्था नहीं है, लेकिन राजधानी सैगांनमें तथा अन्य महत्वपूर्ण शहरोंमें बहुतसे लोग हिन्दी जानते समझते हैं। भारतीय चलचित्र न सिर्फ वहाँके हिन्दुस्तानियोंमें बल्कि वियतनामियोंमें भी लोकप्रिय हैं। सैगानके एक या दो सिनेमाघरोंमें हिन्दी चलचित्रोंके प्रदर्शनकी विशेष व्यवस्था है।

ब्रह्मदेश

ब्रह्मदेश संस्कृति, भूगोल एवं इतिहासकी दृष्टिसे भारतके बहुत निकट है। आजसे २५–३० साल पहिले तक वह अँग्रेजोंके अधीन भारतका एक अंग ही था। भारतके अन्य प्रान्तोंकी तरह भारतीय

वहाँ अब तक निर्बाध गतिसे जाते एव बसते रहे हैं। द्वितीय महायुद्धके बाद जब दोनों प्रदेश अलग-अलग रूपसे स्वतन्त्र बना दिए गए, तबसे कही कुछ व्यवधान आया है। ब्रह्मदेशमे आज हजारो भारतवासी हैं और उनकी वहाँ अनेको शिक्षा-संस्थाएँ आदि चलती है। उस प्रदेशका अपना हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन भी है। ब्रह्मदेशमें हिन्दी विद्यापीठ, द. भा हिन्दी प्रचार सभा मद्रास तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाका कार्य शिक्षण-केन्द्र एव परीक्षाएँ चलती हैं तथा सैकडो विद्यार्थी उनमे सम्मिलित होते हैं। रंगूनके जियावाडी हाईस्कूलमे प्रायमरीसे सब विषय हिन्दी मे पढाए जाते हैं तथा आई. एस खालसा हाईस्कूल, डी. ए. वी. हाईस्कूल, मारवाडी हाईस्कूल और गुजराती हाइस्कूलमें कलकत्ताके मैट्रिक स्तरकी हिन्दी पढाई जाती है। रगूनकी इग्लिश मेथडिस्ट हाईस्कूल तथा बगाली एकेडमी हाईस्कूलमें हिन्दीके विशेष अध्ययनकी व्यवस्था है। गांधी मेमोरियल हाईस्कूल टौंजीमे मिडिल स्कूल तक सबको हिन्दी पढाई जाती है। लाश्यो, मिचान, माडले तथा कलौमें जो भारतीय स्कूलें हैं उनमे सब विद्यार्थियोंको हिन्दीमे पढाई जाती है। इनके अलावा ए. वी. एम. तमिल स्कूल, तेलुगु स्कूल तथा नेपाली स्कूलमे हिन्दी पढनेवाले विद्यार्थियोकी भी सख्या काफी रहती है। ब्रह्मदेशके रामकृष्ण मिशन पुस्तकालय, मारवाडी पुस्तकालय तथा आर्य समाज पुस्तकालयमें हिन्दीकी क्रमश ६ हजार, ३० हजार तथा १ हजार पुस्तके है।

रगून तथा माडलेमें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके परीक्षा केन्द्र चलते है।

श्रीलंका

श्री लंका यद्यपि आज स्वतन्त्र राज्य है लेकिन भाषा, धर्म, संस्कृति, एव वंशकी दृष्टिसे वह भारतसे अविच्छिन्न रूपसे जुड़ा हुआ है। यहाँ दो तरहके भारतीय हैं, एक तो जिन्हे नागरिकताके अधिकार प्राप्त हो चुके हैं और दूसरे जो पीढ़ियोंसे वहाँके बाशिंदे होनेपर भी उन अधिकारोंसे वंचित हैं। जनसंख्याके अनुपातमें भारतसे आए हुए सभी वासियोंकी संख्या इतनी काफी है कि वे वहाँकी राजनीतिपर प्रभाव डाल सकते हैं। इसलिए श्रीलंकामें प्रयत्न पूर्वक अलगाव एव भेदभावकी नीतिके बावजूद भी हिन्दी संस्कृत, एव पाली आदि भाषाओंका अध्ययन-अध्यापन बड़े पैमानेपर चलता रहता है। यहाँ एक बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि सभी प्रवासी भारतीय अधिकतर तमिल भाषा-भाषी हैं, इसलिए वहाँ हिन्दीके प्रचार एवं प्रसारके कामका बहुत शोर नहीं सुनाई देता। फिर भी हिन्दीकी तरफ लोक-रुचि है। सरकार भी उसपर सांस्कृतिक एव राजनैतिक आवश्यकताओंके कारण ध्यान देती है। श्री लंकाके विद्यालंकार विश्वविद्यालयमें हिन्दीका एक अध्यापन कायम किया गया है, जिसके अध्यक्षके रूपमें हिन्दीके प्रतिष्ठित साहित्य-मनीषी एव राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यके उद्भट सेनानी सुप्रसिद्ध बौद्ध-भिक्षु भदन्त आनन्द कौसल्यायनजीको नियुक्त किया गया है। राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके कई परीक्षा केन्द्र कोलंबो, दैवगोड आदि जगहपर चल रहे हैं।

श्री लंका विश्वविद्यालयमें हिन्दी भाषाके अध्ययनकी व्यवस्था है। भारत सरकारकी ओरसे इस विश्वविद्यालयको ५१०० रु. की निधि इसलिए प्रदान की गई है कि उसमेंसे प्रतिवर्ष हिन्दीके दो सर्वोत्तम विद्यार्थियोंको एक सौ (१००) रु. का तथा ७५ रु. का पुरस्कार दिया जा सके। भारत सरकारकी ओरसे समय-समयपर विभिन्न शिक्षा-संस्थाओंको हिन्दी शिक्षाकी व्यवस्थाके लिए तथा पुस्तकालयों आदिके लिए अनुदान तथा पुस्तकोंके रूपमें अनुदान दिए जाते रहे हैं।

नेपाल

धर्म, संस्कृति एवं साहित्यकी दृष्टिसे तथा भाषाकी दृष्टिसे नेपाल तथा भारत लगभग एकजीव रहे हैं। विश्वमें नेपाल ही एकमात्र राज्य है जहाँ का धर्म आज भी आधिकारिक रूपसे हिन्दू है और जहाँके शासकोंके विवाहादि सम्वन्ध भारतीय राजपूतोंके साथ वने हुए हैं। नेपालके स्कूलोंमें हिन्दी पढ़ाईकी व्यवस्था है। भारत सरकारने सन् ५४–५५ में १० हजार रुपयेकी लागत की पुस्तकें पचास नेपाली स्कूलों एवं संस्थाओंको अनुदानमें दी थीं। सन ५५–५६ में उसने और ५० सेट पुस्तकोंके भेजे। हिन्दी प्रचार एवं प्रसारमें तथा उसकी शिक्षा-दीक्षामें नेपाल सरकार भी दिलचस्पी लेती है। नेपालमें हिन्दीके समाचार-पत्र निकलते हैं या भारतसे जाकर बिकते हैं। वहुत वड़ी तादादमें हिन्दी पुस्तकें रखनेवाले पुस्तकालयोंकी संख्या तो अनगिनत है। नेपाली भाषा तथा हिन्दी भापा एक ही इंडो-आर्यन वर्गकी भाषा——बहनें होनेके कारण दोनोंमें आपसमें आदान-प्रदान लगातार चलता आया है। स्वाधीनताके बाद तो इस दिशामें सजग प्रयत्न भी किए गए हैं। यूँ भी कहा जा सकता है कि हिन्दी नेपालकी दुय्यम महत्वपूर्ण भाषा है, संस्कृतको तो खैर वहाँ धार्मिक दृष्टिसे मूर्द्धन्य स्थान प्राप्त है ही।

सिक्किम और भूटान

ये दोनों प्रदेश लगभग भारतीय ही हैं, भारतीय शक्ति द्वारा संरक्षित तथा भारतीय साधनोंसे परिवर्धित सिक्किम तथा भूटानकी संस्थाओंको हिन्दीके प्रचार एवं प्रसारके लिए भारत सरकार द्वारा सन् १९५६–५७ में १० हजारकी हिन्दी पुस्तकें भेंट की गई थीं। हिन्दी शिक्षा एवं प्रसारके लिए भारत सरकारकी ओरसे समय-समयपर आर्थिक मदद भी प्राप्त होती रहती है।

पाकिस्तान

वाक्योंमें पदों, सम्वन्ध सूचक अव्ययों तथा क्रियाओंकी स्थितियोंपरसे, लिंग-वचन पुरुष-वचनके अनुसार संज्ञा-सर्वनाम शब्दोंके रूपोंपरसे और लिंग, वचन, काल एवं पुरुषके अनुसार क्रियापदोंके स्वरूपों परसे भाषाका स्वरूप निश्चित किया जा सकता है। इन सव दृष्टियोंसे हिन्दी और उर्दू एक ही भाषाके दो रूप, दो शैलियाँ मालूम होती हैं, मानों माँ-जाई दो बहनें हों। इसीलिए पाकिस्तानकी राजभाषा उर्दूमें जो समाचार समाचार प्रक्षेपित किए जाते हैं, वे उनमें ठूँसे गए अरबी-फारसी शब्दोंके बावजूद भी हिन्दी जाननेवालोंकी समझमें मोटे तौरपर आ जाते हैं। पश्चिमी पाकिस्तानमें जेकोबावाद जिलेके कन्धकोट शहरमें तथा पूर्वी पाकिस्तानके बैरकपुर नगरमें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके परीक्षा-केन्द्र सफलतापूर्वक चल रहे हैं। पाकिस्तानमें सिंध तथा पंजावमें और वंगालमें हिन्दी भाषाकी पढ़ाईके लिए स्कूलोंमें तथा कालेजोंमें व्यवस्था की जाती है। दोनों राज्योंके बीच साहित्यिक आदान-प्रदान गोष्ठी मुशायरे आदि आए दिन हुआ करते हैं।

फिजी

फिजीमें प्रवासी भारतीयोंकी संख्या काफी बड़ी है। उनमें हिन्दीके प्रति स्वाभाविक अनुराग है।

भारत सरकारने भी इसीलिए समय-समयपर वहाँकी पाठशालाओं संस्थाओं, पुस्तकालयों आदिको भरपूर मदद दी है। सन् १९५४–५५ मे उसने फिजीके २५ स्कूलो तथा सस्थाओमेंसे प्रत्येकको ८०–८० रु. की हिन्दी पुस्तकोके सच भेट किए और उस मदमे ७००० रु खर्च किए। सन् १९५५–५६ मे भारत सरकारकी ओरसे फिजीके चलते-फिरते पुस्तकालयकी 'पुस्तक पेटी योजना' के लिए ४ हजार रुपयेकी पुस्तके भेजी गई। उसी वर्ष फिजीके स्कूलों एव सस्थाओको ३३०० रु. की पुस्तके भारत सरकारकी ओरसे दानमे मिली। सन् १९५६–५७ में भारत सरकारने अशिक्षित भारतीय महिलाओको हिन्दी सिखानेके प्रयत्नोमें सहायता स्वरूप कु ग्रिफीसको ५०० रु. की हिन्दी पुस्तके भेट की। फिजीमें स्थित भारतीय आयुक्तकी प्रार्थनापर भारत सरकारके सूचना एव प्रसार मन्त्रालयने फिजीमे हिन्दी प्रचारके लिए हिन्दीमें रिकार्ड किया हुआ एक प्रोग्राम 'फिजी प्रसार निगम' (ब्राडकास्टिग कारपोरेशन) को भेजा है।

फिजीमें एक 'फिजी-कुमार साहित्य परिषद' है जो हिन्दी प्रचारका काम करती है। उसीके मातहत सिंगातोकामें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाका परीक्षा-केन्द्र चलाया जाता है।

मारीशस

यह द्वीप आफ्रिकाके पूर्वमें, हिन्दुस्तानसे लगभग २॥ या ३ हजार मील दूर हिन्द महासागरमे स्थित है। इसकी ५ लाख जनसख्यामे ३ लाख भारतीय हैं; इसलिए इस द्वीपकी समस्त राजनीति, कारोबार आदि भारतीयोके ही हाथोमें हैं। सन् १९१३ मे स्वामी स्वतन्त्रानन्दजीने यहाँ सर्वप्रथम हिन्दी पाठशालाएँ खुलवाई। आज इन पाठशालाओकी सख्या १५० है और लगभग १ हजार छात्र हिन्दीका नियमित अध्ययन करते हैं। हिन्दी प्रचार एव प्रसारका काम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा किया जाता है। समिति एव सम्मेलनकी परीक्षाओमे यहाँसे परीक्षार्थी काफी तादादमे बैठा करते है। समितिका परीक्षा-केन्द्र मोसेल्मा प्लैंडेपाईमे है। मारीशससे हिन्दीके चार समाचार पत्र 'आर्योदय, 'जनता', 'जमाना' तथा 'नवजीवन' निकलते हैं। चूंकि यहाँ जो भारतीय बसे हैं उनमे बिहार, उत्तरप्रदेश, बगाल, पजाब, उत्कल आदिके अधिक हैं, इसलिए भी इस द्वीपका वातावरण हिन्दीमय बन गया है। यहाँके स्कूल-कॉलेजोमे हिन्दी की पढाई अनिवार्य है। तुलसीकृत रामायण लोकप्रिय है और कई रामायण-मण्डल रामकथाके साथ-साथ हिन्दीका भी प्रचार एव प्रसार करनेमे सहायक सिद्ध हुए हैं। मारीशसमे हिन्दी प्रचारिणी सभाकी ओरसे हिन्दी-प्रचारका विशिष्ट कार्य किया गया है।

भारत सरकारने भी मारीशसमें हिन्दी प्रचार एव शिक्षाके लिए समय-समयपर सहायता प्रदान की है। सन् १९५४–५५ में उसकी ओरसे ४० पाठशालाओमेसे प्रत्येकको १००–१००) रु की हिन्दी पुस्तकोका सेट भेंट किया गया तथा वहाँके हिन्दी पुस्तकालयके लिए ४,०००) रु की पुस्तके भेजी गई। सन् १९५५–५६ मे फिर सरकारकी ओरसे चालीस स्कूलोके लिए १,०४४ रु. की पुस्तके दी गई।

ब्रिटिश वेस्ट इण्डीज, ब्रिटिश गायना और जमेका

इन तीनो उपनिवेशोमें भारतीय आबादीका अनुपात बडा है। यही कारण है कि इन प्रदेशोके समाजिक एव राजनैतिक जीवनमें भारतीय प्रवासियोके वशज प्रमुख रूपसे मोर्चोपर दिखाई देते हैं। ब्रिटिश

गायनाके प्रधानमन्त्री डॉ. छेदी जगन हैं। इसलिए हिन्दीके प्रति एवं भारतके प्रति इन प्रदेशोंमें स्वाभाविक अपनत्वकी भावना है और इसीलिए उनमें बसे हुए भारतीयोंको हिन्दी सिखानेके लिए भारत सरकारने योजनावद्ध रूपसे हर साल सहायता प्रदान की है। उसके द्वारा सन् १९५४–५५ में १५ हिन्दी-केन्द्रोंको अलग-अलग रूपसे तीन-तीन सौ रु. मूल्यकी हिन्दी किताबोंके सेट भेंट किए गए थे। उस वर्ष हिन्दी शिक्षा केन्द्रोंके अध्यापकोंको मानधनके रूपमें भारत सरकारकी ओरसे पारिश्रमिक भी प्रदान किया गया था। साथ ही विभिन्न केन्द्रों एवं प्रत्येक उपनिवेशमें सर्वश्रेष्ठ आनेवाले हिन्दी विद्यार्थियोंको पुरस्कार भी दिए गए। इन सब मदोंमें सन् ५४–५५ के सालमें भारत सरकारकी कुल रकम ९८१० रु. खर्च हुई। सन् १९५५–५६ में उसे बढ़ाकर १४,६५४ रु. कर दिया गया। उसमें से ५,१४ रु. किताबोंके सेट देनेके लिए, १०,४४० रु. अध्यापकोंको मानधन स्वरूप पारिश्रमिकके लिए तथा २७०० रु. विद्यार्थियोंको पुरस्कार देनेके लिए निर्धारित थे। सन १९५६–५७ में इन उपनिवेशोंके भारतीय-स्कूलोंको ९६० रु. ११ आ. ६ की पुस्तकें अनुदानमें दी गई तथा अध्यापकोंके पारिश्रमिक के लिए ५०० रु. स्वीकृत किए गए। भारत सरकारकी ओरसे इन उपनिवेशोंमें हिन्दी प्रचार एवं शिक्षाके कामको हर वर्ष इसी प्रकार प्रोत्साहन मिलता आया है। इन उपनिवेशोंमें रहनेवाले भारतीय अपने स्वयंस्फूर्त संगठनों एवं प्रयत्नों द्वारा भी हिन्दीके विद्यालय और कक्षाएँ चलाते हैं, पुस्तकालय एवं वाचनालय खोलते हैं तथा विस्तृत पैमानेपर धार्मिक अवसरों तथा त्योहारों एवं उत्सवोंमें हिन्दीका प्रयोग करते हैं।

अन्यत्र

अन्दमान-निकोबारमें मायाबन्दर तथा पोर्टब्लेअर, अदनमें अदन और दक्षिण अमेरिकामें पारा-मरेबो हिन्दी प्रचार एवं परीक्षा के केन्द्र हैं। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाका वहाँ काम चलता है। ट्रिनीडाडमें भी समितिका परीक्षा-केन्द्र है। इसके अलावा इन्डोनेशिया, फारस, अफगानिस्तान तथा अन्यत्र जहाँ भारतीय जा बसे हैं उनमें तथा राजनयिक एवं सांस्कृतिक कारणोंसे अन्य लोगोंमें भी हिन्दी सीखनेकी इच्छा बढ़ रही है और उन उन देशोंमें स्वयंस्फूर्त संगठनोंके सहारे हिन्दी शिक्षाके केन्द्र चलाए जाते हैं तथा पुस्तकालयोंमें हिन्दी,की पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ रखी जाती हैं।

हिन्दीके व्यापक प्रचारमें हिन्दी चलचित्रोंका योगदान

आधुनिक युगमें चलचित्रोंका विशेष महत्व है। आजका युग प्रचारका युग है जिसमें चलचित्रोंने जो कार्य किया है वह असाधारण है। हमारे यहाँके चलचित्रोंका इतिहास वहुत पुराना नहीं है। पहले मूक चित्रोंके द्वारा ही कथा वर्णित की जाती थी, किन्तु जवसे चलचित्रोंको वाणी प्रदान की गई है, तवसे तो वड़ी क्रान्ति-सी आ गई है। चलचित्रोंके द्वारा जनताका मनोरंजन होता ही है साथ ही उनके मन पर भी प्रभाव पड़ता ही है। हम इसका विवेचन यहाँ नहीं कर रहे हैं कि चलचित्रोंके कारण हमारे चरित्र निर्माणमें क्या प्रभाव पड़ा है। हमारा तो सम्वन्ध इसीसे है कि उनके द्वारा हिन्दीकी व्याप्ति सारे देशमें फैल रही है प्रारंभमें तथा अव भी कुछ प्रादेशिक भापाओंमें चलचित्र वनाए जाते हैं और वे उन प्रदेशोंमें चलते भी हैं, पर अधिकांश चलचित्र अव हिन्दीमें ही निर्मित किए जाते हैं और उनका प्रचलन सारे देशमें वड़े-वड़े नगरोंमें ही नहीं छोटे-छोटे कस्वों

भारत सरकारने भी इसीलिए समय-समयपर वहाँकी पाठशालाओं संस्थाओं, पुस्तकालयों आदिको भरपूर मदद दी है। सन् १९५४–५५ में उसने फिजीके २५ स्कूलों तथा संस्थाओंमेंसे प्रत्येकको ८०–८० रु की हिन्दी पुस्तकोंके सच भेंट किए और उस मदमें ७००० रु. खर्च किए। सन् १९५५–५६ में भारत सरकारकी ओरसे फिजीके चलते-फिरते पुस्तकालयकी 'पुस्तक पेटी योजना' के लिए ४ हजार रुपयेकी पुस्तकें भेजी गई। उसी वर्ष फिजीके स्कूलो एव संस्थाओको ३३०० रु. की पुस्तकें भारत सरकारकी ओरसे दानमें मिली। सन् १९५६–५७ में भारत सरकारने अशिक्षित भारतीय महिलाओको हिन्दी सिखानेके प्रयत्नोंमें सहायता स्वरूप कु. ग्रिफीसको ५०० रु. की हिन्दी पुस्तकें भेंट की। फिजीमें स्थित भारतीय आयुक्तकी प्रार्थनापर भारत सरकारके सूचना एव प्रसार मन्त्रालयने फिजीमें हिन्दी प्रचारके लिए हिन्दीमें रिकार्ड किया हुआ एक प्रोग्राम 'फिजी प्रसार निगम' (ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन) को भेजा है।

फिजीमें एक 'फिजी-कुमार साहित्य परिषद' है जो हिन्दी प्रचारका काम करती है। उसीके मातहत सिंगातोकामें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाका परीक्षा-केन्द्र चलाया जाता है।

मारीशस

यह द्वीप आफ्रिकाके पूर्वमें, हिन्दुस्तानसे लगभग २॥ या ३ हजार मील दूर हिन्द महासागरमें स्थित है। इसकी ५ लाख जनसख्यामें ३ लाख भारतीय हैं; इसलिए इस द्वीपकी समस्त राजनीति, कारोबार आदि भारतीयोंके ही हाथोंमें है। सन् १९१३ में स्वामी स्वतन्त्रानन्दजीने यहाँ सर्वप्रथम हिन्दी पाठशालाएँ खुलवाई। आज इन पाठशालाओकी सख्या १५० है और लगभग १ हजार छात्र हिन्दीका नियमित अध्ययन करते हैं। हिन्दी प्रचार एव प्रसारका काम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा किया जाता है। समिति एव सम्मेलनकी परीक्षाओंमें यहाँसे परीक्षार्थी काफी तादादमें बैठा करते हैं। समितिका परीक्षा-केन्द्र मोसेल्मा प्लैंडेपपाईमें है। मारीशससे हिन्दीके चार समाचार पत्र 'आर्योदय, 'जनता', 'जमाना' तथा 'नवजीवन' निकलते हैं। चूँकि यहाँ जो भारतीय बसे हैं उनमें बिहार, उत्तरप्रदेश, बगाल, पजाब, उत्कल आदिके अधिक हैं, इसलिए भी इस द्वीपका वातावरण हिन्दीमय बन गया है। यहाँके स्कूल-कॉलिजोंमें हिन्दी की पढाई अनिवार्य है। तुलसीकृत रामायण लोकप्रिय है और कई रामायण-मण्डल रामकथाके साथ-साथ हिन्दीका भी प्रचार एव प्रसार करनेमें सहायक सिद्ध हुए हैं। मारीशसमें हिन्दी प्रचारिणी सभाकी ओरसे हिन्दी-प्रचारका विशिष्ट कार्य किया गया है।

भारत सरकारने भी मारीशसमें हिन्दी प्रचार एव शिक्षाके लिए समय-समयपर सहायता प्रदान की है। सन् १९५४–५५ में उसकी ओरसे ४० पाठशालाओंमेंसे प्रत्येकको १००–१००) रु की हिन्दी पुस्तकोंका सेट भेंट किया गया तथा वहाँके हिन्दी पुस्तकालयके लिए ४,०००) रु. की पुस्तकें भेजी गई। सन् १९५५–५६ में फिर सरकारकी ओरसे चालीस स्कूलोंके लिए १,०४४ रु की पुस्तकें दी गई।

ब्रिटिश वेस्ट इण्डोज, ब्रिटिश गायना और जमेका

इन तीनों उपनिवेशोंमें भारतीय आबादीका अनुपात बडा है। यही कारण है कि इन प्रदेशोंके समाजिक एव राजनैतिक जीवनमें भारतीय प्रवासियोंके वशज प्रमुख रूपसे मोर्चोंपर दिखाई देते हैं। ब्रिटिश

उनके सामने आज आर्थिक तथा अन्य कठिनाइयाँ आ रही हैं पर उन्हें अपना यह कार्य उत्साह पूर्वक आगे बढ़ाना चाहिए।

प्रादेशिक भाषाएँ एवं हिन्दीके प्रचलनमें सबसे बड़ी बाधा पारिभाषिक शब्दावलीकी है। उसके लिए सरकारकी ओरसे प्रयत्न किए जा रहे हैं। लगभग सभी विषयोंकी प्रारंभिक परिभाषा तैयार भी कर ली गई है। अब इस परिभाषाका सभी भाषाओंमें शीघ्र व्यवहार होना चाहिए। उसके लिए भी प्रचारकी आवश्यकता है।

गत कुछ वर्षोंसे यह विचारधारा चल पड़ी है कि अँग्रेजीके ज्ञानके बिना हमारा सर्वतोमुखी विकास नहीं हो सकेगा। जहाँ तक ज्ञानकी भाषाके रूपमें अँग्रेजी सीखनेका प्रश्न है उसको कोई भी इन्कार नहीं करेगा। जो विज्ञानमें निष्णात बनना चाहें उनको अँग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाएँ सीखना आवश्यक है और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंके लिए भी अँग्रेजीकी आवश्यकता महसूस की जा सकती है। अँग्रेजी ही क्यों संसारके प्रगतिशील देशोंके साथ सम्पर्क स्थापित करनेके लिए हमें और भी विदेशी भाषाओंका ज्ञान प्राप्त करना होगा। लेकिन इन सबकी मर्यादाएँ हैं। जो विद्यार्थी विज्ञानके क्षेत्रमें आगे बढ़ना चाहें उनके लिए इन विदेशी भाषाओंका ज्ञान आवश्यक कर दिया जा सकता है। केन्द्रीय सरकारको भी विभिन्न देशोंके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए उन-उन देशोंकी भाषाओंके जाननेवाले व्यक्तियोंकी आवश्यकता रहेगी, इसलिए हमारे शिक्षा क्रममें मेधावी विद्यार्थियोंके लिए अँग्रेजीके अतिरिक्त दूसरी विदेशी भाषाओंके पठन-पाठनकी सुविधा रखनी चाहिए। लेकिन जिस प्रकार आज अँग्रेजी हमपर छाई हुई है उसी प्रकार उसका अधिक दिनों तक बना रहना हमारे लिए विघातक होगा। हमारी भाषाएँ अँग्रेजीके प्रचलनके कारण अपना विकास नहीं कर सकेंगी और यह तो निश्चित ही है कि भारत अपनी प्रतिभाका सर्वतोमुखी विकास अपनी भाषाके द्वारा ही कर सकेगा। विदेशी भाषा चाहे कितनी भी अच्छी क्यों न हो उसके व्यवहारसे हमारी प्रतिभा तथा मौलिकताका विकास होना कठिन है और उससे हमारी सर्जन शक्ति का भी ह्रास होगा। अपनी भाषाके अनुशीलनसे चेतना प्रगट होती है। कुछ इने-गिने परन्तु महत्वके व्यक्ति अँग्रेजीके व्यामोहमें पड़कर यहाँतक अपना मत प्रकट करते हैं कि यदि अँग्रेजी इस देशसे हट गई तो देशकी बड़ी अवनति होगी। यह विचारधारा हमारे राष्ट्रके लिए हानिकारक है।

सरकारकी ओरसे एक विधेयक पारित किया गया है; सरकार द्वारा जिसमें हिन्दीके साथ अँग्रेजीको अनिश्चितकाल तक एक सहभाषाके रूपमें स्थान दिया गया है। हिन्दीको उसका स्थान देनेमें जितना कार्य होना चाहिए था उतना नहीं हुआ इस कारण आज व्यावहारिक कठिनाइयाँ अनुभव की जाती हों और विधानमें निर्दिष्ट अवधिके अन्दर अँग्रेजीके स्थानपर हिन्दीको लाना यदि सम्भव न हो तो कुछ अधिक समयके लिए अँग्रेजीका प्रचलन हिन्दीके साथ-साथ जारी रखा जा सकता है। लेकिन इसको अनिश्चितकाल तक सहभाषाका स्थान देना सर्वथा अनुचित होगा। संविधानमें १५ वर्षोंकी लम्बी अवधि रखी गई, इस कारण सम्भव है कि सरकार इस भ्रममें रही कि धीरे-धीरे यह काम हो ही जाएगा। उसकी इस उदासीनताको देखकर प्रतिक्रियावादियोंको बल मिला और उन्होंने आज यह स्थिति पैदा कर दी है कि अँग्रेजीको १९६५ के बाद भी कायम रखनेका प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। अनिश्चित काल तक यदि अँग्रेजी सहभाषाके रूपमें रही तो शिथिलताका ऐसा वातावरण निर्मित होगा कि

और गाँवोमे भी हो रहा है। हिन्दीके कुछ चलचित्र तो इतने लोकप्रिय होते हैं कि वर्ष डेढ वर्ष तक मद्रास जैसे तमिल भाषी प्रदेशमे भी चलते हैं। इन्हे जनता लाखोकी सख्यामें देखती है। उनकी भाषाको समझती है और कई गीत इतने लोकप्रिय होते है कि वे लोगोकी जबानपर चढ जाते हैं। पुस्तकोको पढकर हिन्दी सीखना और बोलती हुई फिल्मोको सुनना इन दोनोमे बडा अन्तर है। फिल्मोके कारण हिन्दीके उच्चारणकी शुद्धता अधिक सम्भव है, इसलिए इस कथनमे कोई अत्युक्ति न होगी कि हिन्दीका प्रचार चलचित्रोके द्वारा भी बडी मात्रामे हुआ है। चलचित्रोकी भाषाके सम्बन्धमें मतभेद हो सकता है। वह इतनी प्राजल नही होगी पर हिन्दी या मूलके हिन्दुस्तानी रूपके प्रति लोगोमे रुचि उत्पन्न हुई है यह स्वीकार करना होगा।

उपसंहार

इस विवरणमें सभी सस्थाओ और सभी व्यक्तियो द्वारा किए हुए प्रयत्नोका विवरण नही दिया जा सका है। एक तो सभीसे विवरण प्राप्त नही हो सका है एव दूसरे स्थानाभावके कारण भी ऐसा हुआ है। कुछ ऐसी भी सस्थाएँ एव व्यक्ति रहे होगे, जिन्होने हिन्दीके प्रचार-प्रसारमे योगदान दिया है, लेकिन उस सम्बन्धमे कोई जानकारी न होनेके कारण उनसे सम्पर्क स्थापित नही हो सका है बहुतसी सस्थाएँ तथा व्यक्ति जिनके सम्बन्धमे यहाँ विवरण नही दिया जा सका है वे हमे क्षमा करेगे।

यहाँ हिन्दीके प्रचार-प्रसारके कार्यके लिए किए गए प्रयत्नोके प्रति निर्देश करना हमारा उद्देश्य था इसलिए केवल ऐसे मुख्य प्रयत्नोका ही विवरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दी प्रचारका कार्य स्वतत्रता प्राप्तिके पश्चात् जिस गतिके साथ आगे बढना चाहिए था वैसा हो नही पाया है। सन् ४९ में सविधानकी इस सम्बन्धमे बनी धाराओमे यह निर्णय किया गया कि हिन्दी केन्द्रकी राजभाषा होगी और राजकाजमें उसका पूरा प्रचलन १५ वर्षकी अवधिमे होगा। उस समय प्रत्येक राष्ट्रभाषा प्रेमीको यह लग रहा था कि यह अवधि बहुत लम्बी है। राष्ट्रीयताकी भावना उस समय बडी प्रबल थी। देश उन्ही दिनोमे स्वतत्र हुआ था अत. स्वभावतः जनतामें उल्लास और चेतनाकी एक लहर-सी आ गई थी। स्वतत्र गौरवशाली भारतके निर्माणकी कल्पनाएँ प्रत्येक राष्ट्रप्रेमीके मनमें लहरा रही थी। लेकिन इस बीचमे कुछ ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित हुई, जिनके कारण स्वतत्रताके आन्दोलनका जोश प्राय. लुप्त सा हो गया। सर्वत्र उदासीनताका वातावरण देखनेको मिला। हमारी राष्ट्रीय एकता को दृढ करने वाली राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रचार कार्यके प्रति भी उदासीनता दिखाई देने लगी। प्रादेशिक भावना और भाषगत सकीर्णताका वातावरण इन दिनो कुछ अधिक रहा। फलस्वरूप राष्ट्रीय भावनात्मक एकताको अधिक पुष्ट करनेकी आवश्यकता आज अनुभव की जा रही है। प्रत्येक राष्ट्र-हितैषी व्यक्ति इसी दिशामे प्रयत्नशील है कि भावनात्मक एकता कैसे स्थापित हो; इसके लिए अखिल भारतीय स्तरपर राष्ट्रके नेतागण चिन्तन कर रहे है और ऐसी योजनाएँ बना रहे हैं, जिनसे देशमें भावनात्मक एकता स्थापित हो। भावनात्मक एकताको सुदृढ करनेका सबसे प्रबल साधन राष्ट्रभाषा है। इसके प्रचार एव प्रसारके लिए जितना प्रयास किया जाएगा उसका निश्चित ही यह शुभ परिणाम होगा कि आजकी सकीर्णता दूर हो जाएगी और शुद्ध राष्ट्रीय भावनाका निर्माण होगा। अत· हिन्दी प्रचार कार्यमें लगी हुई सस्थाओंके लिए यह आवश्यक हो गया है कि वे अपने प्रचार कार्यको अधिक वेग और शक्तिके साथ सम्पन्न करें। सरकारकी उदासीनता तथा जनतामे उत्साहकी कमीके कारण

हिन्दी सीखनेका योजनाबद्ध प्रयत्न नही होगा। हमारी भाषाओंका विकास भी इस कारण कुण्ठित होगा।

हमारा विश्वास है कि राष्ट्र हितैषी सभी व्यक्ति इस प्रश्नपर गम्भीरता पूर्वक चिन्तन करेंगे और ऐसा मार्ग निकालेंगे कि जिससे देशकी भाषा विषयक समस्याका सुन्दर हल निकले।

सविधानके अनुसार वह भारतकी सामाजिक सस्कृतिको अभिव्यक्त करनेवाली राष्ट्रभाषा बननेवाली है। इसलिए सभी प्रदेशोकी विशिष्टता तथा प्रतिभाका उसमें प्रतिबिंब पडना चाहिए और भारतको जिन्होने अपनाया है और जिनकी भावनाएँ मान्यताएँ विश्वास आदिने भारतकी सस्कृतिके विकासमें प्रभाव डाला उन हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि सभी जातिके विद्वानो, चिन्तकों द्वारा उसके उच्च निर्माण कार्यमे पूरा सहयोग होना चाहिए।

स्वतन्त्रता प्राप्तिके पश्चात् हिन्दीका उत्तरदायित्व और बढ गया है। आज हमारे केन्द्रीय शासनमें अँग्रेजीका व्यवहार हो रहा है उसका स्थान हिन्दीको लेना है। ज्ञान, विज्ञानके क्षेत्रमे अँग्रेजी आज छाई हुई है; उसे अपदस्थ कर हिन्दी एव हमारी प्रादेशिक भाषाओको प्रतिष्ठित करना है अत. हिन्दीका वर्तमान स्वरूप दिनो दिन निखरता ही जाएगा। इसे अपना सर्वतोमुखी विकास करना है। आज हिन्दीकी धारा हरिद्वारके पासकी गगाकी धारा-सी है। वह दिनो दिन बढती ही जाएगी और गगाके समान अपना प्रगाढ रूप कुछ ही समयमें ग्रहण करेगी। उसका ओज और उसकी शक्ति अधिकाधिक बढती जाएगी। भारतकी बहुमुखी प्रतिभा हिन्दीके द्वारा मुखरित होगी। भारतके विभिन्न प्रदेशोमे जो सास्कृतिक और साहित्यिक प्रवृत्तियाँ चल रही है, उनमें सामजस्य स्थापित करनेका कार्य हिन्दीको ही करना है। प्रान्त-प्रान्तके बीच जो खाइयाँ है उन्हे पाटनेका कार्य भी हिन्दी के द्वारा ही होगा। इस प्रकार हिन्दीका भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है। उसके वेग और उसकी शक्तिको अब कोई रोक नही सकता। वह जनता जनार्दनकी भाषा होकर ही रहेगी। पर उसके लिए सबके सहयोगकी आवश्यकता है। हिन्दी भाषी क्षेत्रियोके ही नही, अहिन्दी-भाषियोके भी। सारे भारतका आज हिन्दीपर दावा है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

गया। श्री हरिहर शर्माने अथक प्रयत्नकर समितिकी परीक्षाओंको सुचारु रूपसे नियोजित किया एवं उनके उपयुक्त पाठचपुस्तकोका निर्माण कराया। इस कार्यमें उनका दक्षिण भारतके कार्यका अनुभव विशेष रूपसे उपयोगी हुआ। स्व. श्री जमनालालजी बजाजके प्रयत्नोंसे समितिको सेठ पद्मपतजी सिंघानियाने ७५ हजार रुपए हिन्दी प्रचार कार्य करनेके लिए सहायता स्वरूप दिए। यह रकम प्रति वर्ष १५ हजारके हिसाबसे ५ वर्षोके लिए मिली। इससे समितिकी आर्थिक चिन्ता दूर हुई और प्रारम्भके वर्षोंमें कार्य करनेमें सुविधा हो गई। समितिके उपाध्यक्ष आचार्य श्री काका साहेब कालेलकरने समितिके कार्यको बढ़ानेमें पूरा ध्यान दिया और उसके कार्यको अखिल भारतीय रूप देनेमें अपनी पूरी शक्ति लगाई। उन्होने भारतके विभिन्न हिन्दीतर प्रदेशोमें प्रचारार्थ दौरा किया और जगह-जगह हिन्दी प्रचारके लिए समितियां सगठित कर उत्तर भारत के हिन्दीतर प्रदेशोमें हिन्दी प्रचारके कार्यको सगठित किया। उनके इस प्रचार-दौरेमे समितिके मन्त्री श्री सत्यनारायण भी प्रारम्भमें उनके साथ थे बादमे उन्हे मद्रासके कार्यको सम्हालनेके लिए मद्रास जाना पडा। अत ता. ५–७–१९३८ को समितिके सयुक्त मन्त्री श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल मन्त्री चुने गए। प्रारम्भिक कालमे समितिको सत्यनारायणजीकी सेवा मिली। इसका विशेष महत्व है। उन्होने अपने दक्षिण भारतके अनुभवके आधारपर समितिको सुदृढ भूमिकापर रखा। उनके पश्चात् भी श्रीमन्नारायणजीने समितिके मन्त्रीके रूपमें ४ वर्ष तक अपनी सेवाएँ दी। इस कालमें समितिने अपनी सभी प्रकारकी उन्नति की एव प्रचार कार्यको प्रान्तोमे बडा बल मिला। केवल २-३ वर्षोके प्रयत्नोंके फलस्वरूप समितिका कार्य भारतके गुजरात, बम्बई, महाराष्ट्र, उडीसा, असम, बगाल, सिन्ध, विदर्भ-नागपुर, आदि हिन्दीतर प्रदेशोमे सुचारू रूपसे चलने लगा तथा इन प्रदेशोमें प्रान्तीय सगठन भी कायम हुए––

मणिपुर, हैदराबाद, राजस्थान, मध्यप्रदेश, पजाब, कश्मीर, मराठवाड़ा, कर्नाटक आदि प्रदेशोमें भी यह कार्य काफी बढा है तथा वहाँ प्रचार करनेको समितियोका भी गठन हुआ है।

बादमे समितिका कार्य विदेशोमे भी इग्लैण्ड, सूदान, अदन, जापान, जावा, सुमात्रा, वर्मा, सिलोन, दक्षिण आफ्रिका, पूर्व अफ्रिका आदि देशोमे फैल गया है।

इनमेसे कुछ प्रान्तोमे पहलेसे ही राष्ट्रीय भावनासे प्रेरित होकर हिन्दी-प्रचारका कार्य चल रहा था। उनमें उडीसा, महाराष्ट्र, बम्बई, गुजरात मुख्य हैं। महाराष्ट्रमें हिन्दी-प्रचार-सघ पूना कार्य कर रहा था। इसके कर्मठ सगठक श्री ग रा वैशम्पायनका नाम उल्लेखनीय हैं। बम्बईमे हिन्दी-प्रचार-सभा बम्बई, कार्य कर रही थी, इसके कर्मठ कार्यकर्ता श्री रा. शकरन्, श्री भा. ग. जोगळेकर तथा श्री कान्तिलाल जोशी रहे। गुजरातमे गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबादने कार्य किया। नवजीवन ट्रस्टने भी इसमें सहयोग दिया। उस समय श्री मोहनलाल भट्ट इस कार्यको सम्हालते थे। अहमदाबादमें सन् १९२८ मे हिन्दी प्रचारके लिए श्री जेठालाल जोशी द्वारा विशेष प्रयत्न किया गया। उस वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी परीक्षाओका केन्द्र शुरू किया गया। श्री जेठालाल जोशी केन्द्र-व्यवस्थापक बने। उन्होने इन परीक्षाओंके लिए कक्षाओका भी प्रबन्ध किया। सूरतमे राष्ट्रभाषा प्रचारक मडल कार्य कर रहा था। पूर्वांचलमे श्री परमेष्ठीदास जैन हिन्दी प्रचार कार्यको बल दे रहे थे। पूर्वांचलमे श्री सीताराम सेकसरियाके प्रयत्नोसे पूर्व भारत हिन्दी प्रचार सभा कलकत्तेमे कार्य कर रही थी, उड़ीसामें श्री अनसूयाप्रसादजी पाठकके प्रयत्नोसे कार्य

गाँधीजीका ध्यान शेष भारतके हिन्दीतर प्रदेशोंमें हिन्दी प्रचारके कार्यको करनेकी ओर गया। सन् १९३६ में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनका वार्षिक अधिवेशन नागपुरमें हुआ। उसके सभापति देशरत्न डॉ. राजेन्द्रप्रसाद थे। इस अवसरपर गाँधीजीकी प्रेरणासे एक प्रस्ताव द्वारा हिन्दी प्रचार समितिका संगठन किया गया। उस प्रस्तावके प्रस्तावक स्व. वावू पुरुषोत्तमदास टण्डन थे तथा उसके अनुमोदक स्व. श्री जमनालालजी वजाज थे। इसके अनुसार प्रारम्भके तीन वर्षोंके लिए निम्नलिखित १५ सदस्योंकी हिन्दी प्रचार समिति वनाई गई—

(१) वावू राजेन्द्रप्रसाद (पदेन), (२) महात्मा गाँधी, (३) पं. जवारहलाल नेहरू, (४) वावू पुरुषोत्तमदास टण्डन, (५) सेठ जमनालाल वजाज, (६) व्रजलाल वियाणी, (७) आचार्य नरेन्द्र देव, (८) काका कालेलकर, (९) पं. हरिहर शर्मा, (१०) वियोगी हरि, (११) वावा राघवदास, (१२) शंकरराव देव, (१३) पं. माखनलाल चतुर्वेदी, (१४) सरदार नर्मदाप्रसाद सिंह (पदेन-सम्मेलन प्रधानमन्त्री), (१५) ठा. श्रीनाथसिंह (पदेन-सम्मेलन प्रवन्ध मन्त्री)।

इस समितिको ६ और सदस्योंको लेनेका अधिकार था। अतः इसकी पहली वैठकमें जो ४ जुलाई १९३६ को सेवाग्राम (वर्धा) में महात्मा गाँधीके निवास स्थानपर हुई उसमें ६ और सदस्य लिए गए। उनके नाम निम्नानुसार हैं:—

(१) श्रीमती लोकसुन्दरी राम, वंगलूर, (२) श्रीमती पेरीनवेन केप्टेन, वम्वई, (३) श्रीमती रमादेवी चौधरानी, कटक, (४) श्रीयुत गुरुमुरीय गोस्वामी, आसाम, (५) श्रीयुत मो. सत्यनारायण, मद्रास, (६) श्रीमन्नारायण अग्रवाल, वर्धा।

इसी वैठकमें निम्नलिखित पदाधिकारियोंका चुनाव किया गया:—

(१) वावू राजेन्द्रप्रसाद—अध्यक्ष (पदेन), (२) सेठ जमनालाल वजाज—उपाध्यक्ष एवं कोषाध्यक्ष, (३) श्री सत्यनारायण—मन्त्री, (४) श्रीमन्नारायण अग्रवाल—संयुक्त मन्त्री।

वादमें सन १९३८ में श्री काका साहव कालेलकर समितिके उपाध्यक्ष वनाए गए।

इस समितिका कार्यालय वर्धामें ही रखा गया। इसका कार्यालय वर्धामें रखनेका हेतु यह था कि उसे गाँधीजीका मार्गदर्शन मिलता रहे। गाँधीजी उन दिनों वर्धाके समीप सेवाग्राममें रहते थे। अतः समितिका यह सौभाग्य रहा कि प्रारम्भके वर्षोंमें गाँधीजीका इसे मार्गदर्शन मिलता रहा। आगे चलकर इस समितिका नाम हिन्दी प्रचार समितिसे वदलकर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति किया गया। नाम परिवर्तन सम्वन्धी यह निर्णय सन् १९३८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनके २७ वें अधिवेशनके अवसरपर शिमलामें किया गया। तबसे यह समिति राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके नामसे कार्य कर रही है।

रा. प्र. समितिके प्रारम्भके वर्ष

समितिका कार्य सुचारू रूपसे चले इस दृष्टिसे महात्मा गाँधीने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके अनुभवी कार्यकर्ता श्री मो. सत्यनारायण तथा श्री पं. हरिहर शर्माको दक्षिण भारतसे वर्धा बुला लिया। श्री सत्यनारायणजी मंत्री वनाये गए, तथा पं. हरिहर शर्माको परीक्षा मन्त्री बनाकर उन्हें परीक्षा कार्य सौंपा

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पूना

अध्यक्ष—माननीय श्री यशवन्तराव चव्हाण, प्रतिरक्षा मन्त्री, भारत सरकार।
उपाध्यक्ष—माननीय श्री न वि. गाडगील, भूतपूर्व राज्यपाल, पंजाब।
उपाध्यक्ष—श्री मधुकरराव चौधरी, नगर विकास मन्त्री, महाराष्ट्र राज्य।
कार्याध्यक्ष—तर्कतीर्थ पं. लक्ष्मण शास्त्री जोशी, वाई।
कोषाध्यक्ष—श्री श्रीनिवास रा मूंदडा, पूना।
अन्तर्गत लेखाक्षक—श्री माधवराव मा धुमाळ, सातारा।
मन्त्री-सचालक—श्री प. मु डागरे, बी. ए बी. टी. पूना।

बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, बम्बई

अध्यक्ष—श्री स ल सिलम (भूतपूर्व अध्यक्ष महाराष्ट्र विधान सभा)
उपाध्यक्ष—श्री सुलोचना बहन मोदी (भू पू. मेयर बम्बई महानगरपालिका)
उपाध्यक्ष—श्री रामसहाय पाडेय (भू पू.उपाध्यक्ष,बम्बई प्रा.कांग्रेस समिति तथा लोक सभा सदस्य।)
कोषाध्यक्ष—श्री शिवकुमार भुवालका।
मन्त्री-सचालक—कान्तिलाल जोशी, एम. ए।

विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुर

अध्यक्ष—डॉ सर भवानी शकर नियोगी, भू. पू. जस्टिस, नागपुर हाईकोर्ट।
मन्त्री-सचालक श्री प हृषीकेश शर्मा।

पश्चिम वंग राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कलकत्ता

सभापति—डॉ सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, चेअरमेन, वेस्ट बंगाल लेजिस्लेटिव कौन्सिल।
मन्त्री-सचालक—श्री रेवन्तीरजन सिन्हा।

मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, इम्फाल

अध्यक्ष—श्री कालाचान्द सिंह शास्त्री।
उपाध्यक्ष—श्री गौरहरि शर्मा।
कोषाध्यक्ष—श्री ते. आवीरसिंह।
मन्त्री-सचालक—छत्रध्वज शर्मा।

असम राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, शिलांग

अध्यक्ष—श्री नरेन्द्रनाथ शर्मा, एम. एल ए. देरगांव।
कार्याध्यक्ष—श्रीमती लावण्यप्रभादत्त चौधरी, शिलाग।

आरम्भ हुआ और असममें बाबा राघवदास गाँधीजीकी प्रेरणासे हिन्दी प्रचार करनेके लिए गए और वहाँ उन्होंने कार्य आरम्भ किया।

इस प्रकार सारे देशमें हिन्दी प्रचारका कार्य राष्ट्रीय भावनासे प्रेरित होकर जगह-जगह चल रहा था। वर्धामें हिन्दी समितिकी स्थापना हो जानेसे ये सभी बिखरे हुए कार्य उससे सम्बन्धित हुए और परिणाम स्वरूप अखिल भारतीय स्तरपर सारे कार्य सुचारू रूपसे नियोजित हुए। करीब करीब सभी प्रान्तोंमें प्रान्तीय समितियोंका संगठन हो गया था। स्थानीय कार्यकर्ता ही हिन्दी सीखकर हिन्दीके प्रचारमें अपना सहयोग दे रहे थे। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी तरह यहाँ भी सभी प्रदेशोंमें हिन्दीतर भाषी लोग ही विशेषतः हिन्दी प्रचारके कार्यमें संलग्न हुए।

समितिकी प्रान्तीय समितियाँ तथा उनके वर्तमान पदाधिकारी

समितिका कार्य लगभग भारतके सभी हिन्दीतर प्रदेशोंमें फैल गया है। उसे स्थानीय जनताका एवं वहाँके प्रतिष्ठित समाजसेवियों एवं जन नायकोंका बल मिला है। फलतः समितिका कार्य उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। यहाँ केवल प्रान्तीय समितियोंके वर्तमान पदाधिकारियोंका उल्लेख किया जा रहा है।

प्रान्तीय समितियोंके पदाधिकारी (१९६२ तक)

दिल्ली प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, दिल्ली

अध्यक्ष—श्री के. सी. रेड्डी, उत्पादन मन्त्री, भारत सरकार।

कार्यवाह अध्यक्ष—श्री एम. अनन्त शयनम् आयंगार, राज्यपाल, बिहार।

कोषाध्यक्ष—श्री एस. आर. एस. राघवन्।

मन्त्री-संचालिका—श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन्।

गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद

अध्यक्ष—माननीय श्री कन्हैयालाल मा. मुन्शी, कुलपति, भारतीय विद्याभवन, भूतपूर्व राज्यपाल, उत्तर प्रदेश।

कार्याध्यक्ष—डॉ. श्रीमती हंसाबहन मेहता, भूतपूर्व उपकुलपति, महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी, बड़ौदा।

उपाध्यक्ष—श्री गजाननभाई जोशी, एम. ए., एल. एल. बी., राजकोट।

उपाध्यक्ष—श्री रमणिकलाल इनामदार, अहमदाबाद।

कोषाध्यक्ष—श्री सन्तप्रसाद भट्ट, आचार्य बा. दा. महिला कालेज, अहमदाबाद।

मन्त्री-संचालक—श्री जेठालाल जोशी, अहमदाबाद।

मराठवाड़ा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, औरंगाबाद

अध्यक्ष—श्री भगवन्तराव गाढे, भू. पू. वन और ग्राम विकास मन्त्री, महाराष्ट्र राज्य।
उपाध्यक्ष—श्री शंकरराव चव्हाण, विद्युत विकास मन्त्री, महाराष्ट्र राज्य।
सचालक—श्री विष्णुदत्त शर्मा।

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

अध्यक्ष—श्री अच्युत रेड्डीजी।
मन्त्री—श्री दत्तात्रयराव अवरादी
सयुक्त-मन्त्री—श्री राजकिशोर पाण्डेय।
सचालक—श्री गोपालराव अपर्सिंगिकर।

जम्मू काश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, श्रीनगर

अध्यक्ष—श्री जगद्धरजी जाडू, श्रीनगर।
सचालक—श्री शम्भुनाथजी पारिभू।

पंजाब प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अबोहर

सचालक—श्री दौलतराम शर्मा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति।

बेलगांव जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बेलगांव

जिला-सगठक—श्री द. पा. साटम।

विदेशोंमें हिन्दी प्रचार

हमारा कार्य कुछ विदेशोंमें भी होता है। इस सम्बन्धमें हमारी नीति यह रही है कि हम स्वयं अपनी ओरसे विदेशोंमें कार्य करने नही जाते और जो लोग विदेशोंमें कार्य करना चाहते हैं उन्हे समितिके बजटमें कुछ आर्थिक सहायता भी नही देते। हमारी नीति तो भारतमें ही राष्ट्रभाषाका प्रचार कार्य करनेकी है और भारतमें काफी विशाल क्षेत्र पड़ा है, जिसमें अभी तक जैसा चाहिए वैसा कार्य हम नही कर सके हैं।

सारे पूर्वांचलमें पश्चिमकी तरह विकास नही हो पा रहा है। इसी प्रकार अन्दमान-निकोबार, नागालैण्ड, गोरा तथा जयन्तीया हिल्स जैसे क्षेत्रमें कार्यको सुगठित रूप देना भी आवश्यक है, जो हम अभी-तक पूरा नही कर सके है।

परन्तु विदेशोंमें गए हमारे प्रवासी भाई जहाँ अपने उत्साहसे कार्य आरम्भ करते हैं, वहाँ हम उनके कार्यको मान्यता देते हैं और सहायता भी करते हैं। अफ्रीकामें हमारा कार्य काफी अच्छा हुआ है और वहाँसे परीक्षार्थी-सख्या भी अच्छी होती है, इसलिए वहाँ समितिकी ओरसे जिस प्रकार अन्य प्रदेशीय समितियों-को सहायता दी जाती है, उसी अनुपातमें वहाँ सहायता दी जा रही है। वैसे तो विदेशोंमें कई स्थानोंसे हिन्दी

उपाध्यक्ष—श्री राधाकृष्ण खेमका, एम. एल. ए. तिनसुकिया ।
उपाध्यक्ष—श्री गोपालचन्द्र अग्रवाल, एडवोकेट, नौगाँव ।
मन्त्री-संचालक—जीतेन्द्रचन्द्र चौधरी ।
कोषाध्यक्ष—श्री कामाख्यालाल सिंघानिया शिलाँग ।
प्रचार-मन्त्री—श्री भगवती प्रसाद लड़ीया ।

उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कटक

अध्यक्ष—श्री स्वामी विचित्रानन्द दास ।
मन्त्री—श्री राजकृष्ण बोस ।
संचालक—श्री अनसूया प्रसाद पाठक ।

सिंध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, जयपुर

अध्यक्ष—श्री डॉ. सोमनाथ गुप्त ।
मन्त्री-संचालक—श्री दौलतराम शर्मा ।
सहायक-मन्त्री—श्री मूलचन्द पारीक ।
कोषाध्यक्ष—श्री राजरूप टांक ।

मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल

अध्यक्ष—श्री महाराजकुमार डॉ. रघुवीरसिंहजी, एम. पी. ।
कार्याध्यक्ष—श्री सौभाग्यमल जैन, शुजालपुर ।
उपाध्यक्ष—श्री श्यामाचरण शुक्ल, रायपुर ।
उपाध्यक्ष—श्री महाराजा भानुप्रकाशसिंह, नरसिंहगढ़ ।
उपाध्यक्ष—श्री डॉ. विनयमोहन शर्मा, रायगढ़ ।
कोषाध्यक्ष—श्री हुकुमचन्द पाटनी, इन्दौर ।
संयोजिका (महिला विभाग)—श्रीमती सुशीलादास, महू ।
मन्त्री-संचालक—श्री बैजनाथप्रसाद दुबे, भोपाल ।

कर्नाटक प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हुबली

अध्यक्ष—श्री एच. बी. शहा, एल. एल. बी., एम. एल. ए. ।
कार्याध्यक्ष—श्री आर. व्ही. शिरूर, अध्यक्ष, कर्नाटक वणिक संघ ।
उपाध्यक्ष—श्री एम. डी. झवेरी, श्री मरन्तम्मा जवळी, श्री पी. एच. गुँजाळ ।
कोषाध्यक्ष—श्री बी. एम. इंचीनाल, श्री राघवजी देवजी लद्दड ।
संचालक—श्री वासुदेव चिन्तामणि वस्ती, साहित्य रत्न ।
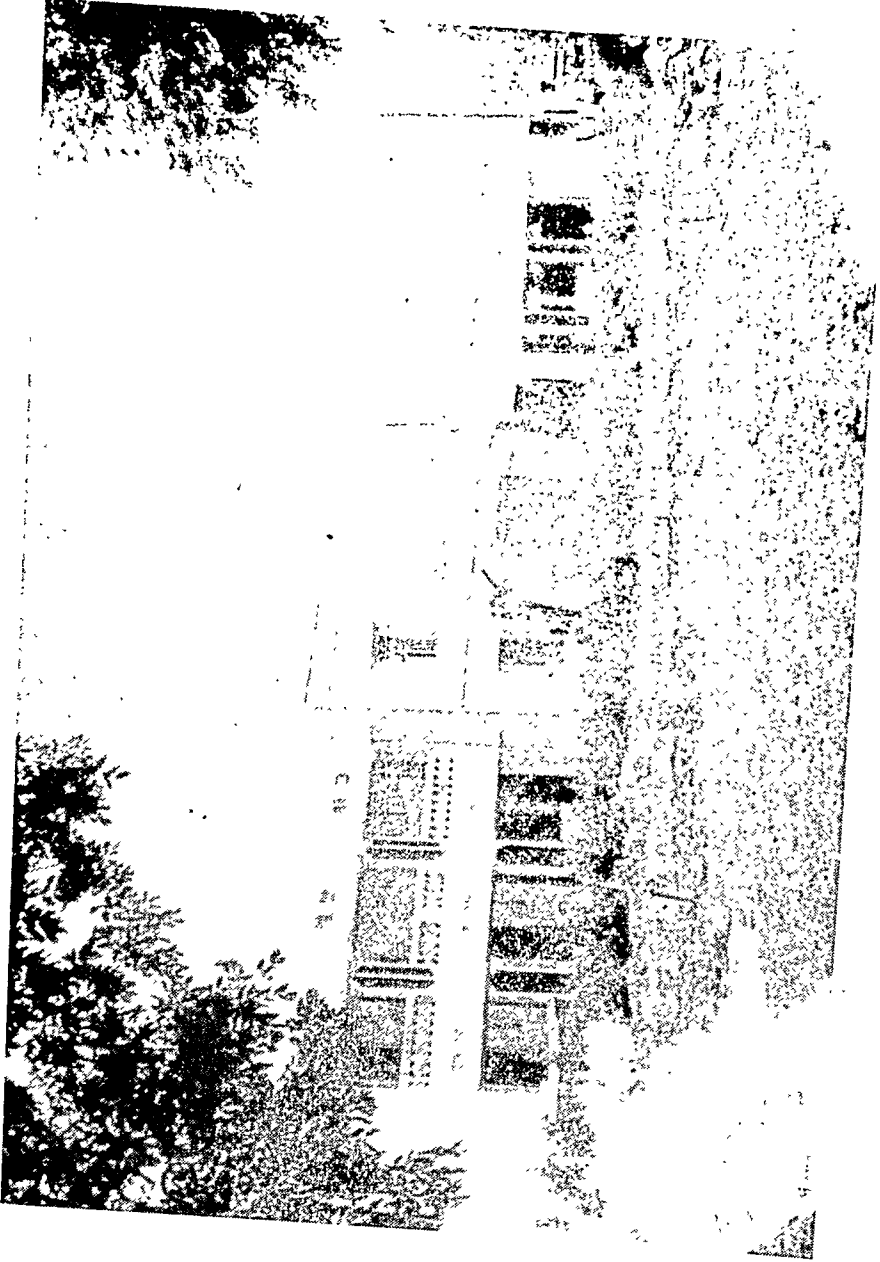
[राष्ट्रभाषा महाविद्यालय, वर्धा]

"..........इसी तरह धनसे भी हमको ज्यादा मदद नही मिलेगी। अकेले धनसे क्या हो सकता है। रुपयोंसे भी अधिक हम चारित्र्यको प्रधानता देते है।

"..........आज सुबह आप लोगोंसे यही कहने आया हूँ कि आप चारित्र्यवान् बनकर इस काममें मदद दें।"

[तारीख १–७–१९३७]　　　　—महात्मा गाँधी

अध्यापन कार्यमें सहायकके रूपमें श्री रामानन्द शर्मा नियुक्त किए गए। उन्होंने थोड़े ही समय कार्य किया। इसके पश्चात् सन् १९३७ में ही श्री रामेश्वर दयाल दुबे उनके स्थानपर नियुक्त किए गए। वे इस अध्यापन मन्दिरके सहायक अध्यापक एवं प्रबन्धकके रूपमें कार्य करते रहे। यह अध्यापन मन्दिर ५ वर्षों तक (सन् १९३७ से १९४२ तक) चलता रहा। इस दरम्यान भारतके विभिन्न हिन्दीतर प्रदेशोंके सुयोग्य कार्यकर्ताओंको हिन्दी सिखाकर प्रचारकके रूपमें तैयार किया गया। कार्यकर्ता अपने प्रदेशमें जाकर हिन्दी प्रचारके कार्यमें संलग्न हुए। यहाँ जो पाठ्यक्रम चलाया जाता था उसे हिन्दी साहित्य सम्मेलनने अपनी 'मध्यमा' परीक्षाके समकक्ष माना। बादमें जब राष्ट्रभाषा रत्नका पाठ्यक्रम निश्चित किया गया तब उसे यहाँ चलाया गया।

कुल ५ बॅच तैयार किए गए जो इस प्रकार है—

राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर, वर्धा

सत्र, सन्	परीक्षार्थी संख्या	विशेष
१९३८	१२	
१९३९	१६	अप्रैल : दूसरा–सत्र
१९४०	८	
१९४१	४	
१९४२	९	सन् '४२ से 'राष्ट्रभाषा-रत्न' परीक्षा शुरू हो गई थी।

इस अध्यापन मन्दिरका समितिके जीवनमें विशेष महत्व है। यहाँ जो छात्र पढ़ने आते थे, उन्हें विशुद्ध राष्ट्रीय वातावरण मिलता था। यहाँसे शिक्षित-दीक्षित होकर जो कार्यकर्ता अपने प्रदेशमें वापस गए, वे राष्ट्रभाषाके मूलमें रही राष्ट्रीय भावनाको लक्ष्यमें रखकर हिन्दी प्रचारके कार्यमें संलग्न हुए। कवियोंने अपने प्रदेशमें जाकर प्रारम्भिक संगठनात्मक कार्य किया जिसका उस प्रदेशके हिन्दी-प्रचारमें विशेष महत्व है और आज भी वे दत्तचित्त होकर कार्य कर रहे है।

सन् १९४२ में राष्ट्रभाषाके सम्बन्धमें महात्मा गांधीजीके और श्री टण्डनजीके विचारोंमें मतभेद पैदा हुआ। गांधीजीका मानना था कि दो लिपियोंके साथ हिन्दुस्तानीका प्रचार किया जाए, जब कि श्री टण्डनजी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका मत नागरी लिपिके द्वारा हिन्दीके कार्यको करनेका था। इस सम्बन्धमें गांधीजी और टण्डनजीमें एक लम्बा पत्र-व्यवहार भी हुआ, जिसमें ये दो विचार स्पष्टरूपसे व्यक्त हुए हैं। इस विचार-भेदके कारण गांधीजीने सम्मेलन से तथा समितिसे सन् १९४५ में अपना त्यागपत्र दिया। सन् १९४२ मे हिन्दुस्तानी प्रचार सभाकी स्थापना वर्धामें हो चुकी

शिक्षाकी सुविधा कर देनेके लिए माँगें हमारे पास आती हैं, परन्तु हमें नम्रतापूर्वक सखेद उसका इन्कार करना पड़ता है। लेकिन अब तक विदेशोंमें जहाँ नियमित रूपसे व्यवस्थित ढंगसे कार्य हो रहा है, उनके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं :—

विदेशोंमें—लंका, बर्मा, अफ्रीका, श्याम, जावा, सुमात्रा, मारिशस, अदन, सूदान तथा इंग्लैंड आदि स्थानोंमें भी समितिके केन्द्र हैं और समितिके कार्यकर्ता वहाँ राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य कर रहे हैं तथा वहाँसे हजारोंकी संख्यामें विद्यार्थी तैयार करते हैं। वहाँ कई स्थानोंपर तो समितियोंका संगठन भी हो गया है। नियमित रूपसे विद्यालय तथा पुस्तकालय आदि प्रवृत्तियाँ चल रही हैं।

राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर

समितिने अपनी स्थापनाके पश्चात् सर्वप्रथम इस बातपर विशेष ध्यान दिया कि वर्धामें राष्ट्रभाषाके प्रचारक तैयार किये जाएँ। इस उद्देश्यसे उसने सन् १९३७ में राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिरकी स्थापना की। इसके संचालनके लिए उसने एक प्रबन्ध समितिका संगठन किया गया जो निम्नानुसार हैं—

अध्यक्ष—श्री काका साहब कालेलकर।

मन्त्री—श्री मो. सत्यनारायण।

सदस्य—सर्वश्री कृष्णदास जाजू, आर्यनायकम्, आशादेवी, नाना आठवले, दादा धर्माधिकारी, श्रीमन्नारायण अग्रवाल, हृषीकेश शर्मा।

पंडित हृषीकेश शर्मा इस अध्यापन मन्दिरके प्रधानाध्यापक बनाए गए।

'राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर' का उद्घाटन पूज्य महात्मा गाँधीजीके हाथों ता. ७ जुलाई १९३७ को हुआ। इस उद्घाटन समारोहकी अध्यक्षता समितिके अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीने की। इस समारोह में सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री राजगोपालाचार्य, श्री गोपबन्धु चौधुरी आदि गण्यमान्य नेता उपस्थित थे। पूज्य गाँधीजीने इस विद्यालयमें पढ़नेवाले छात्रोंको जो आगे चलकर राष्ट्रभाषाके प्रचारक बननेवाले थे सम्बोधित कर उस समय जो उद्गार निकाले थे वे बड़े ही मननीय हैं और आज भी हमारे प्रचारकोंके लिए प्रेरणा-स्रोत हैं। उन्होंने कहा था कि—

"राजेन्द्रबाबूने यह कहकर कि राष्ट्रभाषा-प्रचारकोंको चारित्र्यवान होना चाहिए, मेरा काम हलका कर दिया है। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि जो प्रचारक साहित्यिक योग्यता नहीं रखते, उनसे यह काम नहीं हो सकता। परन्तु यह ध्यानमें रखना आवश्यक है कि जिनमें चारित्र्यिक योग्यताका अभाव होगा, वे किसी कामके नहीं।

"..........मैं उनके देवनागरी या फारसी लिपिके अथवा हिन्दी-व्याकरणके अज्ञानको बरदाश्त कर लूँगा, किन्तु उनके चारित्र्यकी कमीको तो मैं एक क्षणके लिए भी बरदाश्त नहीं कर सकता। हमें यहाँ ऐसे आदमियोंकी जरूरत नहीं।

"..........कोरे पांडित्यसे विदेशी शक्तियोंका हम सफलतापूर्वक मुकाबला नहीं कर सकते। यह काम विद्वानोंका नहीं है। फकीरोंका काम है—जिनका चारित्र्य बिलकुल शुद्ध हो और जो स्वार्थ-साधनसे परे हों।

"..........इसी तरह धनसे भी हमको ज्यादा मदद नही मिलेगी। अकेले धनसे क्या हो सकता है। रुपयोसे भी अधिक हम चारित्र्यको प्रधानता देते है।

"..........आज सुबह आप लोगोंसे यही कहने आया हूँ कि आप चारित्र्यवान् बनकर इस काममे मदद दें।"

[तारीख १-७-१९३७] —महात्मा गाँधी

अध्यापन कार्यमे सहायकके रूपमे श्री रामानन्द शर्मा नियुक्त किए गए। उन्होने थोड़े ही समय कार्य किया। इसके पश्चात् सन् १९३७ में ही श्री रामेश्वर दयाल दुबे उनके स्थानपर नियुक्त किए गए। वे इस अध्यापन मन्दिरके सहायक अध्यापक एव प्रबन्धकके रूपमें कार्य करते रहे। यह अध्यापन मन्दिर ५ वर्षों तक (सन् १९३७ से १९४२ तक) चलता रहा। इस दरम्यान भारतके विभिन्न हिन्दीतर प्रदेशोके सुयोग्य कार्यकर्ताओको हिन्दी सिखाकर प्रचारकके रूपमें तैयार किया गया। कार्यकर्ता अपने प्रदेशमें जाकर हिन्दी प्रचारके कार्यमे सलग्न हुए। यहाँ जो पाठयक्रम चलाया जाता था उसे हिन्दी साहित्य सम्मेलनने अपनी 'मध्यमा' परीक्षाके समकक्ष माना। बादमे जब राष्ट्रभाषा रत्नका पाठ्यक्रम निश्चित किया गया तब उसे यहाँ चलाया गया।

कुल ५ बॅच तैयार किए गए जो इस प्रकार है—

राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर, वर्धा

सत्र, सन्	परीक्षार्थी संख्या	विशेष
१९३८	१२	
१९३९	१६	अप्रैल : दूसरा-सत्र
१९४०	८	
१९४१	४	
१९४२	९	सन् '४२ से 'राष्ट्रभाषा-रत्न' परीक्षा शुरू हो गई थी।

इस अध्यापन मन्दिरका समितिके जीवनमें विशेष महत्व है। यहाँ जो छात्र पढने आते थे, उन्हे विशुद्ध राष्ट्रीय वातावरण मिलता था। यहाँसे शिक्षित-दीक्षित होकर जो कार्यकर्ता अपने प्रदेशमें वापस गए, वे राष्ट्रभाषाके मूलमें रही राष्ट्रीय भावनाको लक्ष्यमें रखकर हिन्दी प्रचारके कार्यमें सलग्न हुए। कवियोने अपने प्रदेशमें जाकर प्रारम्भिक सगठनात्मक कार्य किया जिसका उस प्रदेशके हिन्दी-प्रचारमे विशेष महत्व है और आज भी वे दत्तचित्त होकर कार्य कर रहे है।

सन् १९४२ में राष्ट्रभाषाके सम्बन्धमे महात्मा गाँधीजीके और श्री टण्डनजीके विचारोमें मतभेद पैदा हुआ। गाँधीजीका मानना था कि दो लिपियोके साथ हिन्दुस्तानीका प्रचार किया जाए, जब कि श्री टण्डनजी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका मत नागरी लिपिके द्वारा हिन्दीके कार्यको करनेका था। इस सम्बन्धमें गाँधीजी और टण्डनजीमें एक लम्बा पत्र-व्यवहार भी हुआ, जिसमें ये दो विचार स्पष्टरूपसे व्यक्त हुए है। इस विचार-भेदके कारण गाँधीजीने सम्मेलन से तथा समितिसे सन् १९४५ मे अपना त्यागपत्र दिया। सन् १९४२ मे हिन्दुस्तानी प्रचार सभाकी स्थापना वर्धामे हो चुकी

थी। इस नवीन सभाके मंत्री श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल बनाए गए, फलतः उन्होंने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके मन्त्रीपदसे त्यागपत्र दिया और वे केवल सदस्य रहे। श्री टण्डनजीकी प्रेरणासे सन् १९४२ में श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायनने समितिका मन्त्रीपद सम्हाला और श्री रामेश्वर दयाल दुबे, श्री अमृतलाल नाणावटीके स्थानपर सहायक मन्त्री तथा परीक्षा मन्त्री बने। श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायनने सभी प्रान्तों-का दौरा कर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके कार्यको बल दिया। हिन्दुस्तानीके कारण वातावरणमें अनेक भ्रम फैल गए थे; उनका निवारण किया और राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी भाषा विषयक नीतिकी स्पष्टता व्यक्त की। फलतः समितिका कार्य अधिकाधिक विकास पाता गया।

समितिकी भाषा-नीति

समितिकी भाषा नीति हमेशासे उदार रही है। आरम्भसे ही, जिसे श्री काकासाहबने "सबकी बोली" कहा है उस बोलीका (भाषाका) ही वह व्यवहार करती आई है। उर्दू, अँग्रेजी तथा अन्य किसी भी भाषाके शब्द क्यों न हों, यदि वे हिन्दीमें प्रचलित हो गए हैं तो उन शब्दोंके व्यवहार करनेमें उसे कोई हिचक नहीं रही। वह उर्दू या अँग्रेजीके प्रचलित शब्दोंके प्रयोगका बहिष्कार नहीं करती और न संस्कृतके शब्द जबरदस्ती भाषामें ठूँसना चाहती है। सब समझ सकें, ऐसी सरल भाषामें लिखना या बोलना उसकी दृष्टिमें बहुत बड़ा गुण या कला है। इसका यह अर्थ नहीं कि विषयके अनुरूप भाषाका होना वह आवश्यक नहीं मानती। विषयकी अभिव्यक्तिके लिए जो भाषा स्वाभाविक होगी उसका उपयोग ही व्यावहारिक बात होगी। समिति उर्दूको भी हिन्दीकी एक शैली ही मानती है, इसलिए उसकी परीक्षाओंमें "गुलदस्ता" जैसी पुस्तकोंको स्थान है। गाँधीजी और श्री टण्डनजीका जो लम्बा पत्र-व्यवहार हुआ, उससे यह स्पष्ट है कि भाषाके रूपके सम्बन्धमें उन दो नेताओंके बीच कोई खास मतभेद नहीं था। जो मुख्य मतभेद था, वह हिन्दी नागरी और अरबी दोनों लिपिमें लिखी जाए—या एक नागरी लिपिमें ही लिखी जाए, यही उनके मतभेदका विषय था।

परन्तु यह तो इतिहासकी बात हुई। सन् १९४९ में संविधानमें जब राजभाषा हिन्दीके सम्बन्धमें चर्चा हुई तो यह निर्णय किया गया कि नागरी लिपिमें लिखी हिन्दी संविधानमें स्वीकृत केन्द्रकी राजभाषा होगी। और वह मुख्यतः संस्कृतसे तथा आवश्यकता पड़नेपर अन्य भाषाओंसे शब्दोंको आत्मसात् कर अपना विकास करेगी और उसमें हमारी सामाजिक संस्कृतिका प्रतिबिम्ब होगा। समितिकी भाषा-नीतिके सम्बन्धमें समितिने विगत कुछ वर्षोंमें जो प्रस्ताव किए हैं, वे हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। इनसे समितिकी भाषा-नीति स्पष्ट हो जाएगी।

प्रस्ताव–१

राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी यह घोषणा है कि आरम्भसे ही उनकी यह नीति रही है कि राष्ट्रभाषा हिन्दीका रूप दिन-दिन इस रीतिसे विकसित हो कि उसके निर्माणमें देशकी समस्त भाषाओंका हाथ हो और वह सच्चे अर्थमें भारतीय जनताका प्रतिनिधित्व करे।

इस समितिकी धारणा है कि भारतीय संविधानने हिन्दीके इसी रूपकी कल्पना की है। यह रूप

किसी अप्राकृतिक रूपसे पैदा नही किया जा सकता। जो हिन्दी पुराने समयसे देशभरमें फैली हुई है उसीके क्रमिक विकाससे हिन्दीका भावी रूप निखरेगा। हालमें कुछ भाइयोने यह दिखानेका यत्न किया है कि राष्ट्रीय हिन्दी और प्रान्तीय हिन्दीमें भेद है। इस समितिके विचारमें इस प्रकारका भेद सर्वथा निर्मूल है और इससे हिन्दीके विकासमे कोई लाभ नही हो सकता।

स्थानीय बोलियोके अतिरिक्त हिन्दीका कोई रूप राष्ट्रीय हिन्दीसे भिन्न नही है। साहित्यिक और सास्कृतिक हिन्दी एक है। वही सब प्रदेशोमें प्रचलित है। उसीके द्वारा राष्ट्रीय कार्य सम्पन्न हो सकेगा और उसीके क्रमिक विकासमें सविधानके अनुसार संस्कृत तथा देशकी अन्य भाषाओका भाग होगा।"

प्रस्ताव–२

३० सितम्बर १९५१ की बैठक जो वर्धामें हुई थी, राष्ट्रभाषा प्रचार समितिने अपनी भाषा सम्बन्धी नीतिको स्पष्ट किया था फिर भी कुछ शकाएँ उठाई गई है। इसलिए यह समिति आज पुनः घोषणा करती है कि राष्ट्रभाषा हिन्दीके रूपके बारेमें उसकी एक ही नीति आरम्भकालसे चली आई है।

पूज्य गांधीजीकी प्रेरणासे इस सस्थाकी नीव सन् १९३६ में पडी और जिस प्रकारकी भाषाका प्रचार पूज्य बापूकी देखरेखमें समितिने शुरू किया था, उसी प्रकारकी भाषाका प्रचार वह आज भी कर रही है।

इस भाषाकी लिपि नागरी है। उसमें सब भाषाओके शब्दोका जो चालू है, समावेश और नए शब्दोके निर्माणमें किसी भाषाके उपयुक्त शब्दोका बहिष्कार नही है।

विशेष वैज्ञानिक विषयोकी शब्दावलीको छोड़कर यह भाषा सरल और जनताकी बोलचालकी भाषासे मिलती हुई होनी चाहिए।

इस समितिकी धारणा है कि भारतीय सविधानमें भी नागरी लिपिमें लिखित हिन्दीके इसी रूपकी कल्पना की गई है और वह मानती है कि राष्ट्रभाषा हिन्दीका जो रूप आगे विकसित होगा उसके निर्माणमें देशकी समस्त भाषाओका सहयोग होगा।"

प्रस्ताव–३

राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी भाषा नीतिके बारेमें कभी-कभी यह प्रश्न उठा है कि वह विधानमें स्वीकृत हिन्दीका प्रचार करती है या उससे भिन्न किसी भाषाका? समितिका विश्वास है कि समितिकी भाषा-नीति इतनी स्पष्ट रही है कि उसके सम्बन्धमें ऐसी कोई शका उठनी नही चाहिए। इतना होनेपर भी समितिकी कार्य-समिति यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि क्योकि विधानमें नागरी लिपि और हिन्दीके स्वीकार करनेमें समितिका भी कुछ प्रयत्न और हाथ रहा है, इसलिए हमारा तो कर्त्तव्य तथा निश्चय है कि हम विधानकी ३५१ वी धाराके अनुरूप हिन्दीका प्रचार करें और केन्द्रीय सरकार तथा राज्योको भी हिन्दीके प्रचार और प्रसारके कार्यमे सहयोग और सहायता प्रदान करे।

आशा है, राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यसे सम्बन्धित भाई-बहन अपने मनमें किसी प्रकारकी शकाको स्थान न देंगे और राष्ट्रभाषाके प्रचार कार्यमें दत्तचित्त और दृढ रहेगे।"

राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका संगठन हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्रतिनिधियों तथा इससे सम्बद्ध प्रान्तीय समितियोंके प्रतिनिधियोंसे होता है। कुल ३५ सदस्योंकी यह समिति है। इनमेंसे १९ प्रतिनिधि प्रान्तोंके प्रतिनिधि हैं और शेष १६ सदस्य जिनमेंसे ७ सम्मेलनके पदाधिकारी पदेन समितिमें आते हैं और बाकीके ९ सदस्य सम्मेलनकी स्थायी समिति द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। समिति अपने मन्त्रीका चुनाव प्रति तीन वर्षोंके लिए करती है तथा भाषा सम्बन्धी रीति-नीतिके सम्बन्धमें इसे पूरी स्वतन्त्रता है। इसे अपना बजट बनानेका तथा उसके अनुसार व्यय करनेका सम्पूर्ण अधिकार है। हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी एक समितिके रूपमें यह कार्य कर रही है, पर इसे जो अधिकार प्राप्त हैं, उसके अनुसार वह पूर्णतः अपने आपमें स्वतन्त्र है। यह इसकी वैधानिक स्थिति है। प्रान्तोंके जो १९ प्रतिनिधि लिये जाते हैं, वे निम्नानुसार हैं—

गुजरात–३, महाराष्ट्र–३, बम्बई–२, विदर्भ-नागपुर–२, सिन्ध-राजस्थान–२, बंगाल–२, उत्कल–२, आसाम–१, हैदराबाद–१, अन्य प्रान्त–१; कुल—१९ सदस्य होते हैं।

परीक्षा समितिका संगठन

समितिकी अपनी परीक्षा समिति है, जिसमें २१ सदस्य होते हैं। इनमेंसे १५ सदस्य समितिके अन्तर्गत जिन प्रान्तोंमें कार्य होता है, वहाँसे लिये जाते हैं। प्रान्तानुसार परीक्षा समितिके प्रतिनिधि संख्या इस प्रकार है :—

हैदराबाद–१, उत्कल–२, गुजरात–२, सिन्ध-राजस्थान–२, महाराष्ट्र–२, विदर्भ-नागपुर–२, आसाम–१, बंगाल–१, बम्बई–२।

समितिके आरम्भके दो वर्षोंमें हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागकी ओरसे हिन्दी प्रवेश, हिन्दी परिचय, हिन्दी कोविद, ये तीन परीक्षाएँ ली गईं। सितम्बर १९३८ से इन प्रचार परीक्षाओंका संचालन समिति द्वारा वर्धासे होने लगा। जनवरी सन् १९३९ में परीक्षा समितिका गठन किया गया।

आज समितिके निम्नलिखित विभाग हैं :—

परीक्षा-विभाग, प्रकाशन-विभाग, कार्यालय-विभाग—(प्रचार, भवन, राष्ट्रभाषा–राष्ट्रभारती), प्रेस-विभाग, राष्ट्रभाषा-महाविद्यालय, अर्थ-विभाग।

इन विभागोंका कार्य सम्हालनेके लिए प्रत्येकका एक अधिकारी है तथा उसके सहायक कार्यकर्ता भी हैं। समितिमें ४ अधिकारी तथा १०४ कर्मचारी कार्य कर रहे हैं। राष्ट्रभाषा प्रेसमें करीब ४० व्यक्ति कार्य करते हैं। इनके अतिरिक्त समितिके निम्नलिखित वैतनिक पदाधिकारी भी हैं—

परीक्षा-मन्त्री, सहायक-मन्त्री, कार्यालय-सचिव।

सन् १९५१ तक श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन मन्त्रीके रूपमें कार्य करते रहे। उसके बादसे गाँधीजीके 'हिन्दी नवजीवन' के व्यवस्थापक तथा हिन्दीके पुराने सेवक श्री मोहनलाल भट्ट प्रधानमन्त्रीके रूपमें कार्य कर रहे हैं। गत ११ वर्षोंसे वे राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके व्यापक कार्यको सम्हाल रहे हैं। इस दरम्यान अनेक कठिनाइयाँ आई पर उनके मार्गदर्शनमें समितिका कार्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया है। उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहनसे प्रान्तीय संगठन मजबूत हो रहे हैं तथा कुछके भवन भी बन गए हैं। प्रायः

सभी प्रान्तीय समितियाँ स्वतन्त्र रूपसे रजिस्टर्ड हो चुकी हैं। प्रान्तीय नेताओं, साहित्यकारों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियोंमेंसे प्रान्तीय समितियोंके अध्यक्ष, सदस्यों, मंत्री आदिका चुनाव होता है। सभी प्रान्तीय समितियोंकी स्वायत्तशासित समितियाँ हैं।

यह समितियोंका गठन, संचालन, पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तकों एवं परीक्षा सम्बन्धी समस्त नियमों, परीक्षा शुल्क आदिका निर्धारण करती है। उसके द्वारा मात्र १३ परीक्षाएँ ली जाती हैं, जिनके नाम नीचे अनुसार हैं—

राष्ट्रभाषा प्राथमिक, राष्ट्रभाषा प्रारम्भिक, राष्ट्रभाषा प्रवेश, राष्ट्रभाषा परिचय, राष्ट्रभाषा कोविद, राष्ट्रभाषा रत्न, राष्ट्रभाषा आचार्य, राष्ट्रभाषा अध्यापन विशारद, राष्ट्रभाषा अध्यापन कोविद, राष्ट्रभाषा प्रान्तीय भाषा परीक्षा (प्रारम्भिक तथा प्रवेश परीक्षा), राष्ट्रभाषा महाजनी प्रवेश, राष्ट्रभाषा बातचीत, राष्ट्रभाषा आलेखन कोविद।

परिचय उर्दू (पर्याप्त संख्या न होनेके कारण उसको अब हटा दिया गया है।)

राष्ट्रभाषा आलेखन कोविद परीक्षामें अर्थनीति, समाजशास्त्र तथा विज्ञान—ये तीन अतिरिक्त ऐच्छिक विषय रखे गए थे। इनमें कम वर्षोंमें राजस्थानसे परीक्षार्थी बैठे थे। कोविदमें प्राचीन ग्रन्थ एक और अतिरिक्त विषय ऐच्छिक रूपमें रखा गया था जो अब बन्द है।

सन् १९३७ से लेकर फरवरी ६२ तक परीक्षार्थियों, परीक्षा-केन्द्र तथा प्रचारकोंका उन्नति-क्रम नीचे लिखे अनुसार है —

प्रचार परीक्षाओंका उन्नति क्रम

वर्ष	परीक्षार्थी-संख्या	केन्द्र	प्रचारक	वर्ष	परीक्षार्थी-संख्या	केन्द्र	प्रचारक
१९३७	६१९	१८	७	१९५१	१७७९७७	१७७७	२९१७
१९३८	२४८६	७५	६३	१९५२	१३८४२२	१९०६	३४३४
१९३९	६८४९	१४०	१४१	१९५३	१२७३५०	१९७०	४०१६
१९४०	१५९६५	२५०	२२६	१९५४	१३२१५८	१९७०	४३८४
१९४१	२७३८८	४२८	२९१	१९५५	१४०१९१	२०२०	४८४८
१९४२	१५६५८	६४२	३४२	१९५६	१७०९९९	२३२८	५१६२
१९४३	५०२६७	६७२	३९९	१९५७	१५१४९०	२३३०	५४७१
१९४४	४४३४५	७४०	४२०	१९५८	१७११४९	२३६२	५८९३
१९४५	४७८७७	७९२	६२१	१९५९	२०७२७६	२४४८	६३६५
१९४६	४४७०१	८२८	८७५	१९६०	२२८४८३	३३५५	६९४०
१९४७	७००१५	१०८६	११६८	१९६१	२६१२१५	३६१८	७२६२
१९४८	१२०९८६	१२९४	१४१५	१९६२	२४६७८	३९४४	७५६२
१९४९	१४३३१९	१५६०	१८१४			अगस्त १९६२ तक	
१९५०	१८५७४४	१७२१	२३४१				

राष्ट्रभाषा कोविद, राष्ट्रभाषा रत्न एवं राष्ट्रभाषा आचार्यमें अब तक (१९६२ सितम्बर) जो परीक्षार्थी सम्मिलित हुए उनका ब्योरा इस प्रकार है :—

सन्	रा. भा. कोविद	रा. भा. रत्न	राष्ट्रभाषा आचार्य
१९३७	२८		
१९३८	८८		
१९३९	४१३		
१९४०	६२६		
१९४१	८६१		
१९४२	३७८		
१९४३	१९९५		
१९४४	१०५८	७९	
१९४५	१०३०	५६	
१९४६	९१९	५९	
१९४७	१६०६	३८	
१९४८	२८५१	६४	
१९४९	५३१९	१०९	
१९५०	८४६१	३०२	
१९५१	९९५७	५४०	
१९५२	८५३७	४५६	
१९५३	९२४४	७५५	
१९५४	१०००७	४१६	
१९५५	१०६०४	८८८	
१९५६	१०६४९	१०१३	
१९५७	१२६५९	२१४१	
१९५८	११०६३	१३७२	
१९५८	१२३९३	१२४२	२६
१९६०	१४२९०	१४१६	२८
१९६१	१५४०३	११८३	१७
१९६२	१४५१७	९३७	२५
	१६५०५५	१२१३९	९६

शिक्षण केन्द्र, राष्ट्रभाषा विद्यालय एवं महाविद्यालय

सन् १९५२ के पूर्व हिन्दीतर प्रान्तोमे विभिन्न स्थानोपर राष्ट्रभाषा-शिक्षकों एवं प्रमाणित प्रचारकों द्वारा पढाईका प्रबन्ध होता रहा था। पर सन् १९५२ से ऐसे सभी वर्गोंको तीन श्रेणियोमें विभाजित किया गया। जहाँ प्रारम्भिकसे परिचय तकके वर्गोंकी व्यवस्था होती है उन्हे 'राष्ट्रभाषा-शिक्षण' केन्द्र; जहाँ कोविद तककी पढाईकी व्यवस्था होनी है उन्हें 'राष्ट्रभाषा विद्यालय' और जहाँ रत्न तककी पढाईकी व्यवस्था होती है उन्हें 'राष्ट्रभाषा-महाविद्यालय' माना गया। तीनोके लिए अलग-अलग शर्तें निश्चित कर उनकी नियमावली ता. १५-१२-५२ की परीक्षा-समितिकी बैठकमें स्वीकृत की गई। नियमोके अन्तर्गत आनेवाले सभी राष्ट्रभाषा शिक्षण केन्द्र, विद्यालय एव महाविद्यालयोको समितिसे सम्बद्ध करनेकी योजना स्वीकृत की गई।

इसके अलावा प्रान्तोको अपनी-अपनी ओरसे एक संगठित और नियमित महाविद्यालयको चलानेके लिए प्रोत्साहित किया गया। ऐसे महाविद्यालयोको समितिकी ओरसे वार्षिक ५००) रु. तककी सहायता दी जाती है। प्रान्तोंके अन्य महाविद्यालयोंको सात्रिक ५०) रु. की सहायता दी जाती है।

विभिन्न प्रान्तोमें शिक्षण केन्द्र, विद्यालय एव महाविद्यालयोकी सख्यामें आशातीत वृद्धि हुई। इनके द्वारा काफी सख्यामें परीक्षार्थी राष्ट्रभाषा सम्बन्धी अपना ज्ञान वढा रहे हैं। शिक्षण केन्द्र विद्यालय व महाविद्यालयकी प्रान्तवार सख्या इस प्रकार है:—

सन्	शिक्षण केन्द्र	राष्ट्रभाषा-विद्यालय	महाविद्यालय
१९५२	२७३	२७७	४
१९५३	३२६	३२६	६
१९५४	३४५	३३९	११
१९५५	३४७	३८३	१३
१९५६	४१३	४२५	१७
१९५७	४३०	४४७	२०
१९५८	४५१	४५९	२२
१९५९	४६२	४७४	२७
१९६०	४८२	४९४	३२
१९६१	५०७	५१९	३५
१९६२	५१७	५३४	३६

उपरोक्त सख्या उन्ही शिक्षण-केन्द्र, राष्ट्रभाषा विद्यालय एवं महाविद्यालयोंकी है, जो समितिसे सम्बद्ध हुए है। इनके अतिरिक्त बहुत बडी सख्यामें शिक्षण केन्द्र, विद्यालय और महाविद्यालय चल रहे हैं, जो अपने-अपने प्रान्तोंसे सम्बद्ध है, पर समितिसे अभी तक सम्बद्ध नहीं हुए है।

भारत सरकार द्वारा समितिकी परीक्षाओंको मान्यता

भारत सरकारके शिक्षा-मन्त्रालय, गृहमन्त्रालय, आकाशवाणी, रेलवे तथा रक्षा-मन्त्रालय द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी कोविद परीक्षा निम्नलिखित रूपमें मान्य है —

राष्ट्रभाषा कोविद, राष्ट्रभाषा रत्न एवं राष्ट्रभाषा आचार्यमें अब तक (१९६२ सितम्बर) जो परीक्षार्थी सम्मिलित हुए उनका व्योरा इस प्रकार है :—

सन्	रा. भा. कोविद	रा. भा. रत्न	राष्ट्रभाषा आचार्य
१९३७	२८		
१९३८	८८		
१९३९	४१३		
१९४०	६२६		
१९४१	८६१		
१९४२	३७८		
१९४३	१९९५		
१९४४	१०५८	७९	
१९४५	१०३०	५६	
१९४६	९११	५९	
१९४७	१६०६	३८	
१९४८	२८५१	६४	
१९४९	५३१९	१०९	
१९५०	८४६१	३०२	
१९५१	९९५७	५४०	
१९५२	८५३७	४५६	
१९५३	९२४४	७५५	
१९५४	१०००७	४१६	
१९५५	१०६०४	८८८	
१९५६	१०६४९	१०१३	
१९५७	१२६५९	२१४१	
१९५८	११०६३	१३७२	
१९५९	१२३९३	१२४२	२६
१९६०	१४२९०	१४१६	२८
१९६१	१५४०३	११८३	१७
१९६२	१४५१७	९३७	२५
	१६५०५५	१२१३९	९६

बंगाल

कलकत्ता विश्वविद्यालयके ऐसे परीक्षार्थी जो हिन्दीके अतिरिक्त अन्य विषयोमे बी. ए. है "राष्ट्रभाषा-कोविद" उत्तीर्ण करनेपर हिन्दी लेकर एम. ए. कर सकते है।

उत्कल

उत्कलमें "राष्ट्रभाषा-रत्न" परीक्षाको सरकार द्वारा मान्य संस्कृतकी 'आचार्य' परीक्षाके समकक्ष माना गया है। "राष्ट्रभाषा-रत्न" उत्तीर्ण परीक्षार्थीका वेतन-क्रम उत्कल सरकारने ७० रु. से १४० रु. तक स्वीकृत किया है।

राजस्थान

राजस्थान सरकार द्वारा सरकारी कर्मचारियोकी किसी पदपर नियुक्ति अथवा स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारित की गई है, समितिकी "कोविद" परीक्षा मान्य की गई है।

"राष्ट्रभाषा-कोविद" तथा "राष्ट्रभाषा-रत्न" उत्तीर्ण क्रमश. राजपूताना विश्वविद्यालयकी हाईस्कूल तथा इण्टरमीजिएट परीक्षामे केवल अँग्रेजी विषय लेकर सम्मिलित हो सकते है। '(यह सुविधा केवल राजस्थानकी सीमामे रहनेवालोके लिए है।')

समितिकी 'कोविद' तथा 'राष्ट्रभाषा-रत्न' परीक्षाएँ राजपूताना विश्वविद्यालयकी 'साहित्य-विनोद' तथा 'साहित्य विशारद' परीक्षाके समकक्ष मान्य की गई है।

मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश सरकार द्वारा सरकारी कर्मचारियोकी किसी पदपर नियुक्ति अथवा स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारित की गई है, "परिचय" परीक्षा मान्य की है।

पंजाब

पंजाब सरकारने सरकारी कर्मचारियोकी किसी पदपर नियुक्ति या स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारित की है, समितिकी कोविद परीक्षा मान्य की है।

पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा 'कोविद' तथा 'राष्ट्रभाषा रत्न' परीक्षा उसकी 'रत्न' तथा 'भूषण' के समकक्ष मान्य है।

काश्मीर

जम्मू और काश्मीर विश्वविद्यालयने समितिकी कोविद और 'राष्ट्रभाषा-रत्न' परीक्षा उक्त विश्वविद्यालय द्वारा सचालित क्रमश. 'रत्न' तथा 'भूषण' परीक्षाके समकक्ष मान्य की है।

मैसूर

मैसूर सरकारने समितिकी प्रवेश परीक्षा सरकारी कर्मचारियोंके लिए (डिपार्टमेण्टल) विभागीय परीक्षाके रूपमे मान्य की है।

शिक्षा-मंत्रालय

भारत सरकारके शिक्षा-मन्त्रालयने समितिकी राष्ट्रभाषा परिचय, राष्ट्रभाषा कोविद तथा राष्ट्रभाषा रत्न परीक्षाको क्रमशः मैट्रिक, इण्टर तथा बी. ए. की हिन्दी योग्यताके समकक्ष मान्यता प्रदान की है।

गृह-मंत्रालय

केन्द्रीय सरकारके किसी पदपर नियुक्ति अथवा स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्द्धारित की गई है, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा संचालित "कोविद" परीक्षा उत्तीर्ण करनेवालेको हिन्दी योग्यता सम्बन्धी अन्य परीक्षा देनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी।

रेलवे-मंत्रालय

केन्द्रीय सरकारके रेल विभागीय प्रशिक्षण विद्यालयोंके शिक्षार्थियों तथा प्रोवेशनर अधिकारियोंकी किसी पदपर नियुक्ति अथवा स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्द्धारित की गई है—"कोविद" परीक्षा उत्तीर्णको हिन्दी योग्यता सम्बन्धी अन्य कोई परीक्षा देनेसे मुक्त किया गया है।

सूचना तथा प्रसार मंत्रालय

ऑल इण्डिया रेडियो (सूचना तथा प्रसार मन्त्रालय) द्वारा "कोविद" परीक्षा ऑल इण्डिया रेडियोके कर्मचारियोंके लिए विभागीय परीक्षाके रूपमें मान्य की गई है।

रक्षा-मंत्रालय

भारत सरकारके रक्षा-मन्त्रालय (Defence-Ministry) द्वारा सैनिकोंके लिए समितिकी "कोविद" परीक्षा विभागीय परीक्षाके रूपमें मान्य है।

विभिन्न राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा संस्थाओं द्वारा मान्यता

बम्बई

'राष्ट्रभाषा कोविद' उत्तीर्ण बम्बई-सरकारकी 'हिन्दी शिक्षक सनद', (एच. एस. एस.) (जूनियर) तथा 'राष्ट्रभाषा-रत्न' उत्तीर्ण (सीनियर) परीक्षामें बैठ सकते हैं।

असम

"परिचय" उत्तीर्ण, असममें ट्रेनिंग लेकर सीधा हाईस्कूलमें शिक्षक बन सकता है। कोविद उत्तीर्ण असममें किसी प्रकारकी ट्रेनिंग लिए बिना शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत वेतनपर हिन्दी शिक्षक बन सकता है।

आयोजन किया गया। इसमें विभिन्न प्रान्तोंसे ८ कार्यकर्ताओंने भाग लिया था। सन् १९६१-६२ में तीसरा राष्ट्रभाषा शिविर वर्धामें आयोजित किया गया; जिसमें १२ व्यक्ति विभिन्न प्रान्तोंसे आए थे। वर्धा बहुत दूर पड़नेके कारण यहाँ आकर शिविरमें भाग लेना कइयोंको कठिन मालूम देता है, अतः समितिने शिविरके आयोजनको प्रान्तोंमें भी चलाया है। प्रत्येक प्रान्तको यह सुविधा दी है, कि वह अपने प्रचारकों एवं केन्द्र-व्यवस्थापकोंका शिविर आयोजित करे। उसमें जो व्यय होगा उसका ५० प्रतिशत अंश समिति वहन करती है। इस सुविधाका लाभ उठाकर प्रत्येक प्रान्तमें राष्ट्रभाषा शिविर आयोजित किए जाते हैं। इस योजनासे कार्यकर्ताओंको विशेष लाभ हुआ है। हिन्दी विषयक समस्याओंकी विषद रूपसे शिविरोंमें चर्चा होती है तथा अधिकारी व्यक्तियोंके भाषण रखे जाते हैं। उससे भी शिविरार्थी लाभान्वित होते हैं।

प्रकाशन योजना

समितिकी ता. १-२-१९३८ की बैठकके अनुसार अहिन्दी-भाषी प्रान्तोंके अनुकूल रीडरें तैयार करनेकी दृष्टिसे दो व्यक्तियोंको मनोनीत किया गया—श्री मुरलीधर श्रीवास्तव तथा श्री रामानन्द शर्मा। बादमें श्री रामानन्द शर्माने उस कार्यको आगे बढ़ाया। निम्नलिखित पुस्तकोंकी पाण्डुलिपि तैयार की गई :—

(१) गुलदस्ता, (२) तलाशे हक (महात्मा गाँधीकी जीवनी), (३) मीरा पदावली, (४) चन्द्रगुप्त, (५) चलती हिन्दी, (६) असम-दर्शन, (७) हिन्दी प्रचार सग्रह।

उपरिलिखित पाण्डुलिपियोंको पुस्तकाकार करनेके लिए एक समिति गठित की गई जिसके निम्न-लिखित सदस्य थे :—

सर्वश्री—(१) हृषीकेश शर्मा, (२) रामेश्वरदयाल दुबे, (३) परमेष्ठीदास जैन, (४) नाना धर्माधिकारी, (५) श्रीमन्नारायण अग्रवाल, (६) हरिहर शर्मा।

इस तरहसे १९३८ से प्रकाशन विभाग क्रियाशील बना और निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित की गईं :—

(१) गुलदस्ता भाग २, (२) चलती हिन्दी, (३) राष्ट्रभाषाकी पहली, दूसरी, तीसरी पुस्तक, (४) राष्ट्रभाषा प्रारम्भिक बोधिनी, (५) कहानी सग्रह भाग १, २, ३ (६) राष्ट्रभाषा प्रचार सर्व सग्रह, (७) हाथकी लिखावट, (८) सरल रचना और पत्र लेखन।

प्रकाशनका कार्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया और ता. ३०-६-१९३९ तक ऊपर दी हुई पुस्तकोंका पुनर्मुद्रण हुआ। 'हाथकी लिखावट' नामक पुस्तकका नाम बदल कर 'नेताओंकी कलमसे' कर दिया गया। इसके अलावा रा. भा. प्र. सर्व सग्रह, सबकी बोली (नागरी तथा उर्दू लिपिमें) और हिन्दी-मराठी स्वबोधिनी नामक पुस्तकें भी प्रकाशित की गईं।

इसके बाद द्वितीय महायुद्धके परिणामस्वरूप परिस्थितियोंमें अनपेक्षित परिणामके कारण कागज आदिके अभावसे प्रकाशन-कार्य कुछ रुक-सा गया; फिर भी समितिकी परीक्षाओंकी लोकप्रियता दिनों-दिन बढ़ती गई और प्रकाशन कार्य बराबर चलता रहा।

उत्तर-प्रदेश

आगरा विश्वविद्यालयकी क. मु. हिन्दी भाषा-विज्ञान विद्यापीठ द्वारा संचालित डिप. लिट: वर्गमें इण्टर एवं कोविद उत्तीर्ण हिन्दीतर परीक्षार्थी सम्मिलित हो सकते हैं।

संस्थाएँ

राष्ट्रभाषा कोविद तथा राष्ट्रभाषा-रत्न उत्तीर्ण हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागकी क्रमशः 'विशारद' तथा 'साहित्य-रत्न' परीक्षामें सम्मिलित हो सकते हैं।

एस. एन. डी. टी. महिला विद्यापीठ (बम्बई) की बी. टी. परीक्षामें 'कोविद' उत्तीर्णको हिन्दी विषय लेनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

केन्द्रीय राष्ट्रभाषा महाविद्यालय तथा नागा विद्यार्थियोंकी शिक्षा

समितिने जबसे राष्ट्रभाषा रत्न परीक्षाका आयोजन किया है, तबसे जो राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर चल रहा था, वह सन् १९४३ में बन्द हो गया। समितिकी ओरसे केन्द्रीय महाविद्यालय चला। इसकी आवश्यकता अनुभव की जा रही थी, अतः पुनः सन् १९५३ में राष्ट्रभाषा महाविद्यालयका कार्य आरम्भ किया गया। इस महाविद्यालयमें श्री रसूल अहमद अबोध प्रधान अध्यापक है। श्री शिवराम शर्मा (द. भा. हिन्दी प्रचार सभाके अनुभवी शिक्षक सहायक प्रधान अध्यापक है। इसमें राष्ट्रभाषा रत्न तथा अध्यापन विशारद तककी पढ़ाईकी व्यवस्था है। इस महाविद्यालयमें नागा विद्यार्थियोंको हिन्दीकी शिक्षा देनेका भी विशेष प्रबन्ध किया गया है। इसके लिए समितिको काफी व्यय करना पड़ता है। प्रतिवर्ष लगभग १०–१२ विद्यार्थी नागा प्रदेशसे बुलाये जाते हैं। वे यहाँ रहकर हिन्दीका अध्ययन करते हैं। उन्हें समिति अपनी ओरसे छात्रवृत्ति देती है। ये विद्यार्थी राष्ट्रभाषाकी शिक्षा प्राप्त कर अपने प्रदेशमें चले जाते हैं और वहाँ जाकर हिन्दीके पढ़ानेका कार्य करते हैं। इस प्रकार अब तक यहाँसे ५ बैच शिक्षा पाकर गए हैं। उनमेंसे कुछ विद्यार्थियोंने अपने प्रदेशमें जाकर काम भी शुरू कर दिया है।

समितिकी 'राष्ट्रभाषा महाविद्यालय' योजनाके अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक प्रान्तीय समिति द्वारा महाविद्यालय चलाया जाए। इसके लिए प्रत्येक प्रान्तको केन्द्रीय समिति प्रतिवर्ष रु. ५००) का अनुदान देती है। इसके अतिरिक्त जो भी अन्य महाविद्यालय चलते हों उन्हें सम्बद्ध होनेपर प्रतिसत्र रु. ५० की सहायता देती है। इसका विस्तारपूर्वक विवरण अन्यत्र दिया गया है।

राष्ट्रभाषा शिविर तथा प्रान्तीय शिविर योजना

समितिकी ओरसे समय-समयपर अखिल भारतीय स्तरपर राष्ट्रभाषा शिविरका आयोजन किया जाता है। इसमें सभी प्रान्तोंके कार्यकर्ता आमन्त्रित किए जाते हैं और उन्हें शिविरमें चलाए जानेवाले प्रशिक्षण वर्गोंका लाभ दिया जाता है।

सन् १९४६ में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा सर्वप्रथम शिविर आयोजित किया गया। यह शिविर तीन महीनों तक चलाया गया। इसके बाद सन् १९५८ में वर्धामें दूसरे राष्ट्रभाषा शिविरका

राष्ट्रभाषा प्रेस

प्रचार, प्रसार एव प्रकाशनकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई आवश्यकताको देखकर समितिके लिए यह अत्यन्त जरूरी था कि उसका एक निजी प्रेस हो। समितिकी स्थापनासे लेकर तो सन् १९४६ तक समिति अपने प्रकाशन बाहरसे छपवाती थी। परन्तु उक्त कमीको पूरा करनेके लिए समितिकी दिनाक २२-५-४६ की बैठकमे यह तय हुआ कि एक प्रेस खोला जाए। तदनुसार उक्त कार्यके लिए २५००० रु. की राशि मजूर की गई। जून सन् १९४६ में प्रेसका उद्घाटन हुआ।

धीरे-धीरे प्रेसमे अद्यतन साधन जुटाये गए। ट्रेडल, मशीन तो थी ही उसके बादमें सिलण्डर मशीन खरीदी गई। आज राष्ट्रभाषा प्रेसमे करीब १०७९८९ रुपयेकी मशीने है, जिनमें इलेक्ट्रिक मोटर्स, स्टिचिंग मशीन, कटिंग मशीनका भी समावेश है। प्रारम्भमें राष्ट्रभाषा प्रेसमे कुल ५ व्यक्ति काम करते थे। अब उनकी सख्या बढकर ४४ हो गई है।

समितिको निजी प्रेससे एक फायदा यह भी हुआ कि उसके प्रकाशन शीघ्र एवं मितव्ययी दरमें प्रकाशित होते गए।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन

राष्ट्रभाषा प्रचारके कार्यको बल देनेके लिए समितिने अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका आयोजन किया है। यह सम्मेलन समितिके कार्यक्षेत्रमें आई हुई प्रान्तीय समितियो द्वारा बारी-बारीसे बुलाया जाता है। जिस प्रान्तमें यह होता है, वहाँ इससे प्रेरणा मिलती है। दूसरा लाभ यह है कि दूर-दूर तक फैले हुए समितिके कार्यकर्त्ता, प्रचारक, केन्द्र-व्यवस्थापक आदि एक स्थानपर एकत्रित होते हैं और राष्ट्रभाषा विषयक समस्याओपर चिन्तन करते है। इस सम्मेलनसे एक प्रान्तके राष्ट्रभाषा प्रचारकोको दूसरे प्रान्तोके प्रचारकोसे सम्पर्क स्थापित करनेका अवसर मिलता हैं और विचारोके आदान-प्रदानसे अपने कार्यको सुगठित करनेमें सहायता एव प्रोत्साहन मिलता है। वैसे तो राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन १९५० से विधिवत् होने लगा लेकिन इसका प्रारम्भ छोटे रूपमे काँग्रेस अधिवेशनोके अवसरपर रा भा प्र समितिके कार्यकर्ताओ-को सम्मिलित बैठकोके रूपमे कभी-कभी होता था। फैजपूर एव हरिपुरा काँग्रेसके अधिवेशनोके अवसरपर इस प्रकारकी बैठकें श्री जमनालालजी बजाजकी अध्यक्षतामे हुई थी। अतबतक ११ अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन हुए है, इनका विवरण नीचे लिए अनुसार है :—

सन्	सम्मेलन	स्थान	उद्घाटन कर्ता	अध्यक्ष
१९४९	पहला	वर्धा	पं द्वारकाप्रसाद मिश्र	सेठ गोविन्दास
१९५०	दूसरा	अहमदाबाद	स्व बाबा राघवदास	मुनि जिनविजयजी
१९५१	तीसरा	पूना	श्री न वि गाडगीलजी	श्री वियोगी हरि
१९५२	चौथा	बम्बई	श्री रामदेव पोद्दार	श्री कन्हैयालाल मुन्शी
१९५३	पाँचवाँ	नागपुर	श्री श्रीप्रकाश	श्री न. वि गाडगील
१९५५	छठा	पुरी	—	डॉ. बालकृष्ण वि. केसकर
१९५६	सातवाँ	जयपुर	श्री ब. न. दातार	सेठ गोविन्ददास

द्वितीय महायुद्धके बाद समितिने निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित कीं :—

(१) रहीमके दोहे सन् १९४४
(२) मुहावरे और कहावतें सन् १९४५
(३) उड़ते जुगनू १९४७
(४) पाँच एकांकी १९४७
(५) राष्ट्रभाषाका सरल व्याकरण भाग १, २, १९४८
(६) साहित्यका साथी १९४८

प्रकाशन-विभागको और भी सक्रिय और उपयोगी बनानेकी दृष्टिसे समितिने सन् १९५० में एक साहित्य निर्माणकी योजना बनाई। इस योजनाके प्रेरकास्त्रोत महापंडित श्री राहुल सांकृत्यायनजी थे। इस योजनाके अन्तर्गत निम्नलिखित छह प्रकारके ग्रन्थ प्रकाशित किए जाना निश्चित हुआ—(१) कोश ग्रन्थ, (२) स्वयं शिक्षक ग्रन्थ, (३) व्याकरण ग्रन्थ, (४) साहित्य-इतिहास ग्रन्थ, (५) कविता संग्रह, (६) पंचरत्न ग्रन्थ।

इनमेंसे क्रमशः निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित हुए :—

(१) संक्षिप्त राष्ट्रभाषा कोश—संपादक : राहुल सांकृत्यायन।
(२) फ्रेंच स्वयं शिक्षक—डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार।
(३) भारतीय वाङ्मय भाग १, २, ३।
(४) मराठीका वर्णनात्मक व्याकरण—न. चि. जोगलेकर।
(५) धरतीकी ओर (कन्नड उपन्यास)—शिवराम कारन्त।
(६) सोरठ तेरा बहता पानी—स्व. झवेरचन्द मेघाणी।
(७) लोकमान्य तिलक—श्री भी. गो. देशपाण्डे।
(८) धूमरेखा—गुलाबदास बोकर व धनसुखलाल महेता।
(९) मिर्जा गालिब (जीवनी व साहित्य)—रसूल अहमद 'अबोध'।
(१०) भारत-भारती (तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम, मराठी, गुजराती, बंगला, ओड़िया, मणिपुरी व असमिया।)
(११) राज्योपनिषद—श्री न. वि. गाडगिल।

जैसे-जैसे राष्ट्रभाषा प्रचार परीक्षाओंकी लोकप्रियता बढ़ती गई और परीक्षार्थी संख्यामें वृद्धि होती गई, वैसे-वैसे पाठ्यक्रमिक पुस्तकोंका प्रणयन व पुनः मुद्रण-प्रकाशन होता गया और अब तक समिति लगभग ७५ पुस्तकें प्रकाशित कर चुकी है। समितिके प्रकाशनोंकी ८५ लाखसे अधिक प्रतियाँ अब तक पाठकोंके हाथोंमें जा चुकी हैं।

प्रकाशन कार्यकी व्यवस्थाको और भी उत्तम बनानेकी दृष्टिसे सन् १९५७ से समितिने प्रकाशन विभागके अन्तर्गत पुस्तक विक्री विभाग व कागज भण्डार विभागको भी सम्मिलित कर दिया है। श्री मदनमोहन शर्मा एम. ए. साहित्यरत्नकी देखरेखमें यह कार्य प्रगति कर रहा है।

की हिन्दीके प्रति महान् सेवाओंके सम्मानस्वरूप समितिके केन्द्र-व्यवस्थापकों, प्रचारकों एवं राष्ट्रभाषा प्रेमियों आदिने एकत्रित की थी। राजर्षिने यह निधि राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको हिन्दी कार्यकी अभिवृद्धि हेतु दे दी।

श्री माखनलालजी चतुर्वेदीके ये वाक्य सचमुच अक्षरशः सत्य हैं कि हिन्दीके एक युगके इतिहासका नाम राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन है। हिन्दीका भावी रूप कैसे निखरेगा इस सम्बन्धमें राजर्षिके निम्नलिखित विचार बहुत ही मननीय हैं:—

"राष्ट्रभाषाकी नींव वह हिन्दी है जिसकी परम्परा प्राचीन कालसे होते हुए चन्द, सूर, तुलसी, कबीर, रसखान, रहीम, जायसी, हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट और महावीर प्रसाद द्विवेदीके हाथोंसे हमें मिली है और जो मुख्य रूपमें उत्तर भारतके प्रदेशोंमें लिखी-पढ़ी जाती है। किन्तु इस राष्ट्रभाषाका स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें कुछ भिन्नता रखेगा। जिस प्रकार हिन्दी भाषापर बहुत कालसे अरबी और फारसीका असर पड़ा है, उसी प्रकार जैसे जैसे अन्तरप्रान्तीय व्यवहारोंमें राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रयोग बढ़ेगा, वैसे-वैसे उस भाषाके विकासमें प्रान्तीय भाषाओंका असर पड़ना अनिवार्य है।

साहित्य और राष्ट्रीयता दोनों की दृष्टिसे यह आदान-प्रदान हिन्दीको समृद्धि शाली बनाएगा।"

समाचार-भारती

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके नवे अधिवेशनके समय जो दिल्लीमें 'सन् १९५५ में हुआ, उसमें समाचार भारती' (टेलीप्रिन्टर) के सम्बन्धमें एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव किया गया जो इस प्रकार है:—

"देशमें बड़े पैमानेपर हिन्दी समाचार सस्थाकी आवश्यकता तो बहुत दिनोंसे महसूस की जा रही थी, पर हालमें "यूनाइटेड प्रेस ऑफ इण्डिया" समाचार सस्था वन्द हो गई और लोकतन्त्रके विकासके लिए एकसे अधिक समाचार सस्थाका होना आवश्यक है, विशेषकर हिन्दीकी समाचार संस्थाका, इसलिए राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका यह अधिवेशन राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धासे अनुरोध करता है कि वह हिन्दीकी अन्य सस्थाओंके सहयोगसे राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय समाचारोंको सही तौरपर प्रस्तुत करनेवाली एक प्रमुख हिन्दी समाचार सस्थाकी स्थापनाके लिए आवश्यक कदम उठाए। इस समाचार सस्था द्वारा प्रसारित होनेवाले समाचारोंका मुख्य माध्यम तो हिन्दी हो पर जहाँ सम्भव हो वहाँ प्रादेशिक भाषाओंके पत्रोंको उनकी भाषाके माध्यममें समाचार दिए जाएँ।"

समितिने इस प्रस्तावको लक्ष्यमें रखकर इस कार्यको सम्पादित करनेके लिए प्रारम्भिक कार्य किया। श्री इन्दूरकरजीने इस कार्यमें दिलचस्पी दिखाई। समितिने इसके लिए प्रारम्भिक व्यय भी किया। अब समाचार-भारती रजिस्टर्ड सस्था बन गई है और इसको अनेक राज्य सरकार तथा केन्द्रीय सरकारसे सहयोगका आश्वासन मिल चुका है। विश्वास है, यह सस्था शीघ्र ही अपना कार्य प्रारम्भ कर देगी और एक अभावकी पूर्ति करेगी।

हिन्दी-दिवस

सन् १९५३ में अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका ५ वाँ अधिवेशन नागपुरमें श्री काका साहब कालेलकरकी अध्यक्षतामें हुआ। इस अवसरपर सम्मेलनने यह चिन्ता व्यक्त की कि सन् १९६५ तक

सन्	सम्मेलन	स्थान	उद्घाटन कर्ता	अध्यक्ष
१९५८	आठवाँ	भोपाल	देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद	डॉ. के. एल. श्रीमाली
१९५९	नवाँ	नई दिल्ली	श्री जवाहरलाल नेहरू	श्री अनन्तशयनम् अयंगार
१९६१	दसवाँ	तिनसुकिया	श्री जगजीवनराम	डॉ. हरेकृष्ण महताव
१९६२	ग्यारहवाँ	वर्धा	श्री जवाहरलाल नेहरू	भू. पू. राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद

महात्मा गाँधी पुरस्कार

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका दूसरा अधिवेशन अहमदाबादमें हुआ। उस अवसरपर बाबा राघवदास उपस्थित थे। उन्होंने यह प्रस्ताव रखा कि अहिन्दी भाषा-भाषी विद्वानको उसके हिन्दी साहित्यके निर्माणके उपलक्ष्यमें १५०१) रु. का महात्मा गाँधी पुरस्कार दिया जाए। यह प्रस्ताव बड़े हर्ष और उत्साहके-साथ स्वीकृत किया गया। आजतक जिन महानुभावोंको यह पुरस्कार अर्पित किया गया है, उनके नाम नीचे अनुसार हैं:—

महात्मा गाँधी पुरस्कार प्राप्त-कर्ता

सन्	सम्मेलन स्थान	पुरस्कार प्राप्त–कर्ता
१९५१	पूना	आचार्य क्षितिमोहन सेन
१९५२	बम्बई	महर्षि श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
१९५३	नागपुर	स्व. बाबूराव विष्णु पराड़कर
१९५५	पुरी	आचार्य विनोबा भावे
१९५६	जयपुर	प्रज्ञाचक्षु पं. सुखलाल संघवी
१९५८	भोपाल	पं. संतराम, बी. ए.
१९५९	दिल्ली	श्री काकासाहब कालेलकर
१९६१	तिनसुकिया	श्री अनन्तगोपाल शेवड़े

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डनको थैली समर्पित

समितिको उसके प्रारम्भसे ही राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डनका मार्गदर्शन एवं प्रेरणाप्रद बल प्राप्त होता रहा है। राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रबल उन्नायक, हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्राण और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके वे सबल प्रेरणा-स्रोत थे। इनके लिए उन्होंने जो कुछ किया, वह हिन्दीके लिए एक महान देनके रूपमें सिद्ध हुआ है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके प्रांगणमें जब राजर्षि आते थे तो कहा करते थे कि मैं तो अपने ही घरमें हूँ।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाने राजर्षिकी सेवामें अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन, दिल्लीके नवें अधिवेशनके अवसरपर सन् १९५९ में २५००१ रुपयोंकी निधि समर्पित की। यह निधि राजर्षि-

एक बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इससे सभी भारतीयभाषाओंमें न केवल सौहार्द पैदा होगा बल्कि उनमें समादरकी भावना जागृत होगी। इस प्रकार २५ पुस्तकें बनेंगी। उन्हें कवि-श्रीमालाका नाम दिया गया है। इस कविश्रीमालामें निम्नलिखित भाषाएँ तथा उनके निम्नलिखित कवियोंको स्थान दिया गया है :—

(१)	असमिया	रघुनाथ चौधुरी
(२)	"	नलिनीबाला देवी
(३)	मणिपुरी	कमलसिंह लमाबम
(४)	बंगला	सत्येन्द्र दत्त
(५)	"	काजी नजरुल इस्लाम
(६)	ओड़िया	गंगाधर मेहेर
(६)	"	कालिन्दीचरण पाणिग्राही
(८)	मराठी	कृष्णाजी केशव दामले 'केशवसुत'
(९)	"	यशवन्त दिनकर पेण्ढरकर
(१०)	गुजराती	दयाराम
(११)	"	सुन्दरम्
(१२)	सिन्धी	किशिनचन्द 'बेवसि'
(१३)	कश्मीरी	परमानन्द
(१४)	पंजाबी	भाई वीरसिंह
(१५)	"	अमृता प्रीतम
(१६)	तेलुगु	तिरुपति-वेंकट कवुलु
(१७)	"	काटूरि वेंकटेश्वरराव और पिंगल लक्ष्मीकान्तम्
(१८)	तमिल	सुब्रह्मण्य भारती
(१९)	"	नामक्कल रामलिंगम पिल्लै
(२०)	कन्नड	दत्तात्रेय रामचन्द्र बेन्द्रे
(२१)	"	'कुवेम्पु'
(२२)	मलयाळम्	वल्लतोळ नारायण मेनन
(२३)	"	जी शंकर कुरुप
(२४)	उर्दू	मुहम्मद इकबाल
(२५)	हिन्दी	जयशंकर प्रसाद

परिवार ग्रन्थ

समितिने अपने निष्ठावान कार्यकर्ताओं, केन्द्र-व्यवस्थापक एवं प्रचारकोंका सचित्र परिचय देनेके हेतुसे परिवार ग्रन्थ भी प्रकाशित किया है।

हिन्दीका प्रचार-प्रसार और उसकी समृद्धि योजनावद्ध रूपमें की जाए। अतः केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों एवं जनताका ध्यान आकर्षित करनेकी दृष्टिसे यह निर्णय किया गया कि ता. १४ सितम्बर–जिस दिन विधानमें १९४९ में हिन्दीको राजभाषाके रूपमें स्वीकृत किया गया था, स्मृतिके रूपमें यह दिवस "हिन्दी-दिवस" के रूपमें प्रतिवर्ष समग्र भारतमें मनाया जाए। तबसे यह दिवस सारे भारतमें न केवल राष्ट्रभाषा प्रचार संस्थाओं ही में बल्कि अनेक शिक्षण संस्थाओं द्वारा बड़े उत्साहसे मनाया जाता है। इस दिवसपर हिन्दीके विशेष कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इसका भी हमारे राष्ट्रीय दिवसोंकी तरह महत्व बढ़ रहा है। जनतामें इसके कारण जागृति हो रही है।

पदवीदान समारोह

समिति, कोविद परीक्षा तकके प्रमाण-पत्रोंको परीक्षा केन्द्रोंको भेज देती है। वे इनके वितरण-का प्रबन्ध करते हैं। समिति अपनी ओरसे 'राष्ट्रभाषा रत्न' तथा 'रा. भा. आचार्य' परीक्षामें उत्तीर्ण परीक्षार्थियोंको रत्नका उपाधि-पत्र देनेके लिए पदवीदान समारोहका आयोजन करती है। यह समारोह अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके अवसरपर किया जाता है।

अबतकके पदवीदान समारोहका विवरण नीचे लिखे अनुसार है:—

राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके अवसरपर दीक्षान्त भाषण-कर्ता

अधिवेशन	सन्	स्थान	दीक्षान्त भाषण-कर्ता
पाँचवाँ	१९५३	नागपुर	पं. रविशंकर शुक्ल, तत्कालीन मुख्यमन्त्री मध्य प्रदेश।
छठा	१९५४	पुरी	श्री राधानाथ रथ तत्कालीन शिक्षा मन्त्री उत्कल राज्य
सातवाँ	१९५६	जयपुर	देवीलाल तिवारी
आठवाँ	१९५८	भोपाल	श्री शंकरदयाल शर्मा, शिक्षा मन्त्री, मध्यप्रदेश।
नवाँ	१९५९	नई दिल्ली	अध्यक्ष—सरदार हुकुमसिंह, अध्यक्ष लोक सभा तथा श्री वियोगी हरिजीने दीक्षान्त भाषण दिया।
दसवाँ	१९६०	तिनसुकिया	डॉ. सम्पूर्णानन्दजी, वर्तमान राज्यपाल, राजस्थान
ग्यारहवाँ	१९६२	वर्धा	श्रीमती हंसाबहन मेहता।

रजत जयन्ती समारोह

राष्ट्रभाषाका सेवा-कार्य करते हुए समितिको २५ वर्ष पूरे हुए, अतः उसने बड़े पैमानेपर रजत जयन्ती समारोहका आयोजन किया। इसके अन्तर्गत ठोस साहित्य प्रकाशन का भी कार्य निश्चित हुआ है।

कविश्री माला

समितिने आयोजन किया है कि देशकी १४ भाषाओंके मूर्द्धन्य कवियोंकी रचनाओंके अंश हिन्दी अनुवाद सहित उनकी साहित्य साधनाका परिचय देते हुए पुस्तकाकार दिए जाएँ। यह कार्य अपने आपमें

मुझे अफसोस है कि मैं राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के रजत जयन्ती महोत्सव में नहीं आ सकता। मेरी बहुत इच्छा थी वहां जाने की, लेकिन डाक्टरों ने मुझे मना किया कि इस गर्मी के समय में मैं लंबा सफर न करूं।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने इन २५ वर्षों में जो काम किया है उसको सब लोग जो हिन्दी में दिलचस्पी लेते हैं, जानते हैं और उसकी बहुत प्रशंसा करते हैं। मैं ने इस काम को अक्सर देखा है और मुझे बहुत पसंद आया है, विशेषकर समिति ने जो राष्ट्रभाषा का ढंग निकाला है, यानि सादी और सहल हो, वह मुझे खास तौर से पसंद आया है। अक्सर आजकल हमारी हिन्दी बहुत कठिन हो गई है जिसको आम लोग नहीं समझते। मैं आशा करता हूं कि राष्ट्रभाषा समिति की हिन्दी का प्रयोग अधिकतर हो। इससे हिन्दी को भी लाभ होगा और उसके पढ़नेवालों को भी।

हिन्दी एक ही तरह से उन्नति कर सकती है - लोगों को सीखने का मौका दिया जाय बगैर ज़बरदस्ती किये। कोई भाषा भी उन्नति करती है इसी तरह से। राष्ट्रभाषा समिति ने यह मौका बहुतों को दिया और बहुतों ने उससे लाभ उठाया। हमारे लिये यह भाषाओं का प्रश्न एक बहुत कठिन और पेचीदा हो गया है। लेकिन मैं समझता हूं कि हल्के हल्के उसको हल करने का रास्ता दिख रहा है।

मैं पसंद करूं अगर जैसे राष्ट्रभाषा समिति बनी है वैसी ही समितियां उत्तर भारत में बनें जोकि दक्षिण भारत की भाषाओं को सिखायें।

मैं आशा करता हूं कि आपका महोत्सव सफलता से होगा और वह हिन्दी को और बढ़ाने और सिखाने का प्रबन्ध करने में सफल होगा।

जवाहरलाल नेहरू

तीन मूर्तियोंकी स्थापना

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके निर्माणमें तीन महान व्यक्तियोंका हाथ रहा है, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, स्व. राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा स्व. सेठ जमनालालजी बजाज। समिति अपने २५ वर्षके सेवा-कार्यके पश्चात् अपने इन महान मार्गदर्शकोंका श्रद्धाके साथ स्मरण करती है, जिनकी प्रेरणा सदा समितिको मिलती रही है। रजत जयन्ती महोत्सवके अवसरपर इन तीनोंकी मूर्तियाँ स्थापित करनेका निर्णय किया गया था। इसके अनुसार महात्मा गाँधीजीकी आदम कद कांस्य प्रतिमाँ समितिके प्रांगणमें महाविद्यालयके सामने स्थापित की गई है। इसका उद्घाटन वर्तमान गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्रीने ता. २६–५–६२ को किया। स्व. बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डनकी बस्ट प्रतिमा परीक्षा भवनके प्रांगणमें एक ओर बाँएँ कोनेमें स्थापित की गई है। इसका अनावरण ता. २८–५–६२ को सेठ गोविन्ददासजीने किया। उसके ठीक बगलमें दूसरे कोनेमें सेठ जमनालालजी बजाजकी बस्ट प्रतिमा स्थापित की गई है। उसका उद्घाटन मध्यप्रदेशके राज्यपाल श्री ह. वि. पाटस्करजीने ता. २७–५–६२ को किया।

राष्ट्रभाषा प्रदर्शनी

रजत जयन्ती महोत्सवके अवसरपर समितिने राष्ट्रभाषा प्रदर्शनीका वृहत् आयोजन किया था। इसमें समितिके अब तकके कार्यका परिचय चित्रों, चार्टों तथा नक्शोंके द्वारा दिया गया था। प्रत्येक प्रान्तीय समितिने अपनी उपलब्धियों एवं कार्यका परिचय देनेकी दृष्टिसे अपना अपना कक्ष प्रदर्शनीमें रखा था। भारत सरकारके शिक्षा विभाग, हिन्दी निदेशालय, मध्य रेल्वे, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, भाषा संचालन विभाग, मध्यप्रदेश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, विभिन्न प्रकाशकों आदि बहुतोंने अपने कक्ष सजाए थे। दक्षिण आफ्रिका एवं पूर्वी आफ्रिका आदिके भी कक्ष थे जहाँ समितिका कार्य फैला हुआ है। यह प्रदर्शनी अनेक दृष्टियोंसे सफल रही। इसका उद्घाटन महाराष्ट्र राज्यके तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री यशवन्तरावजी चव्हाणने किया था।

११ वाँ अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन

समितिने रजत जयन्ती महोत्सवके अवसरपर ११ वाँ अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन भी आयोजित किया। उसका उद्घाटन हमारे प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरूने अपना उद्घाटन सन्देश भेजकर किया और उसकी अध्यक्षता डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादने अपना अध्यक्षीय भाषण टेपरेकार्डके रूपमें भेजकर की। पंडित जवाहरलाल नेहरूने उस अवसरपर जो उद्घाटन सन्देश भेजा, वह बड़ा ही प्रेरणा एवं प्रोत्साहनदायक है। उसे यहाँ अक्षरशः दिया जाता है :—

पंडित जवाहरलाल नेहरू

नाम	प्रान्त
श्रीमती शारदा बहन मेहता	गुजरात
श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन्	दिल्ली
स्वामी केशवानन्द	पंजाब
श्री काशीनाथ रघुनाथ वैशम्पायन	महाराष्ट्र
श्री मुकुन्द श्रीकृष्ण पधे	विदर्भ-नागपुर
श्री भास्कर गणेश जोगलेकर	बम्बई
श्री अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी	आसाम
श्री देवदत्त शर्मा	सिन्ध-राजस्थान

'समितिका' मुखपत्र

समितिने अपने मुखपत्रके रूपमें "राष्ट्रभाषा" को गत २० वर्षों से प्रति माह प्रकाशित कर रही है। इसमें समितिकी प्रति दिनकी गतिविधियोंका तथा उसकी प्रान्तीय समितियोंकी गतिविधियोंका विवरण रहता है। इसके अतिरिक्त समय-समयपर राष्ट्रभाषा विषयक समस्याओंपर समितिकी ओरसे अभिमत प्रकाशित होते रहते हैं। परीक्षा सम्बन्धी सम्पूर्ण जानकारी इस पत्रिकाके द्वारा जनताको एवं उसके प्रचारक एव केन्द्र व्यवस्थापकोंको दी जाती है। परीक्षार्थियोंके लाभार्थ पाठयक्रम सम्बन्धी लेख भी प्रकाशित होते रहते हैं। इस पत्रिकाका सम्पादन समितिके प्रधानमन्त्री करते हैं।

समितिकी ओरसे "राष्ट्रभाषा" पत्रिकासे पूर्व "सबकी बोली" पत्रिका प्रति मास प्रकाशित की जाती थी। उसका सम्पादन काका कालेलकरजी एव श्रीमन्नारायण करते थे। यह पत्रिका सन् १९३९ के अक्तूबर माससे आरम्भ हुई और नियमित रूपसे सन १९४० के नवम्बर तक समितिके मुखपत्रके रूपमें चलती रही। इसके बाद सितम्बर १९४१ तक यह पत्रिका स्वतन्त्र रूपसे काका साहब कालेलकरके सम्पादत्वमें चलती रही। इसमें राष्ट्रभाषा तथा समितिकी गतिविधियों, राष्ट्रभाषा विषयक लेख आदि छपते रहे। जून १९४१ से 'राष्ट्रभाषा समाचार' मासिक पत्र प्रकाशित किया गया जो जून १९४३ तक निकलता रहा। बादमें सन् १९४३ की जुलाई माहसे यह पत्रिका 'राष्ट्रभाषा' के नामसे निकलने लगी। तबसे यह पत्रिका बराबर हर महीने समितिके मुखपत्रके रूपमें निकल रही है।

राष्ट्रभारती पत्रिका

समितिने सन् १९५० से इस पत्रिकाको प्रारम्भ किया है। राष्ट्रभाषाके द्वारा भारतकी विभिन्न प्रादेशिक भाषाओंका सुन्दर समन्वय हो, यह दृष्टि समितिकी प्रारम्भसे ही रही है। अत हमारे देशकी विभिन्न प्रादेशिक भाषाओंकी उच्चतम साहित्यिक कृतियोंका हिन्दी रूपान्तर कर, इसके द्वारा जनताके सामने प्रस्तुत किया जाता है। यह कार्य बडा ही महत्वपूर्ण है। इससे भारतव्यापी साहित्य सर्जनकी झाँकी होती है तथा देशकी तमाम भाषाओंके प्रति प्रेम एव समादरकी भावना अकुरित होती है। समितिको इस पत्रिकाको

राष्ट्रभाषाके कर्मठ सेवकोंका सम्मान

समिति अपने उन कार्यकर्ताओंका सम्मान अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके अवसरपर करती है, जिन्होंने आजीवन हिन्दीकी सेवा कर राष्ट्रभाषाके कार्यको बल दिया है। अबतक समितिने अपने निम्नलिखित राष्ट्रभाषा सेवकोंका सम्मान किया है:—

पं. हृषीकेशजी शर्मा

श्री शर्माजीका सम्मान अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके सातवें अधिवेशनके अवसरपर सन् १९५६ में जयपुरमें उनकी दीर्घकालीन सेवाओंके उपलक्ष्यमें किया गया। वे सन् १९१८ में महात्मा गांधीकी प्रेरणासे राष्ट्रभाषाके प्रचार कार्यमें प्रवृत्त हुए और इसे अपना जीवन कार्य समझकर लगनपूर्वक कर रहे हैं। आज वे विदर्भ-नागपुर प्रान्तीय समितिके संचालकके उत्तरदायित्वपूर्ण पदको सम्हाल रहे हैं।

श्री जेठालालजी जोशी

श्री जोशीजीका सम्मान अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके आठवें अधिवेशनके अवसर पर सन् १९५८ में भोपालमें उनकी दीर्घकालीन सेवाओंके उपलक्ष्यमें किया गया। राष्ट्रीय भावनासे प्रेरित होकर उन्होंने सन् १९२८ में हिन्दी प्रचारका काम प्रारम्भ किया और तबसे वे इस कार्यको लगनपूर्वक अपना जीवन-कार्य समझकर कर रहे हैं। आज वे गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके संचालकके उत्तर-दायित्वपूर्ण पदको सम्हाल रहे हैं।

पं. हरिहरजी शर्मा

श्री शर्माजीका सम्मान रजत जयन्ती महोत्सवके अवसरपर आयोजित अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके ११ वें अधिवेशनके अवसरपर सन् १९६२ में वर्धामें विशेष रूपसे किया गया। पं. हरिहरजी शर्मा, जिन्हें "अण्णा" नामसे संबोधित किया जाता है, हिन्दीके आदि प्रचारकोंमेंसे हैं। उन्होंने सन् १९१८ में हिन्दी प्रचारके कार्यको गाँधीजीके निर्देशसे शुरू किया। उन्होंने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाको जो अपनी सेवाएँ दी हैं, वे चिरस्मरणीय रहेंगी। उन्हें इस समय रु. १००१) की थैली भेंट की गई। राष्ट्रभाषा प्रचारको उन्होंने अपना जीवन-कार्य माना है और आज भी उसमें दत्तचित्त हैं।

राष्ट्रभाषा गौरव उपाधि

समितिने अपने कर्मठ कार्यकर्ताओंकी दीर्घकालीन सेवाओंका समादर करनेकी दृष्टिसे राष्ट्रभाषा गौरवकी उपाधि देनेका निर्णय किया। इसके अनुसार ११ वें अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके अवसरपर निम्नलिखित राष्ट्रभाषा-सेवियोंको यह उपाधि प्रदान की गई:—

प्रान्तीय भवन योजना

समितिने सन् १९५१ में प्रान्तोमे प्रान्तीय भवन बनें, इस ओर विशेष ध्यान दिया। इसके लिए, अनुदान देनेकी भी व्यवस्था की गई। इससे प्रेरित होकर कुछ प्रान्तोमें प्रान्तीय समितियोंके अपने भवन बन चुके हैं, इसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है :—

कटकमें विद्यालय, राष्ट्रभाषा समवाय प्रेस भवन लगभग तैयार हो गया है। प्रान्तीय रा. भा. भवनमे ही चल रहा है। उसमे उत्कल प्रान्तीय सभाका कार्यालय आज लम्बे अरसेसे उसमे काम कर रहा है।

गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति अहमदाबादका भव्य "राष्ट्रभाषा हिन्दी भवन" तैयार हो गया है और उसका उद्‌घाटन लोक सभाके तत्कालीन अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम अयंगारजी द्वारा सन् १९६० में बडे समारोहपूर्वक हुआ। गुजरात प्रान्तीय समितिका कार्यालय अब अपने भवनमें काम कर रहा है। समितिका विद्यालय, पुस्तकालय आदि सभी प्रवृत्तियाँ इसी भवनमे चल रही है।

विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुरका 'राष्ट्रभाषा-भवन' का शिलान्यास राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्रप्रसादने ता १३-९-५६ को सम्पन्न किया था। उसकी भी पहली और दूसरी मजिल तैयार हो गई है। विदर्भ-राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्यालय वहाँ चला गया है। विद्यालय, पुस्तकालय तथा अन्य प्रवृत्तियाँ राष्ट्रभाषा भवनमें ही चल रही है।

पूनामें महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समितिने कोई ३५ हजारके लागतकी जमीन अपने भवनके लिए खरीदी है। भवनके लिए निधि एकत्रित की जा रही है। वहाँ शीघ्र ही भवन-निर्माणका कार्य आरम्भ हो जाएगा।

जयपुरमें सिन्ध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके लिए १९५६ मे ही जयपुर राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके अवसरपर जमीन मिल गई थी, और उसपर राजस्थानके मुख्य मन्त्री श्री सुखाडियाजी द्वारा नीव भी डाल दी गई थी। वहाँ कार्य आरम्भ कर दिया गया है और उसका पक्का अहाता बाँध दिया गया है। और भवनकी नीवपरका कार्य भी अब शुरू कर दिया गया है।

मध्यप्रदेशमे 'रविशकर शुक्ल हिन्दी भवन' के लिए ३ एकड जमीन सरकारकी ओरसे दी गई है। मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति भवनका निर्माणके लिए चन्दा एकत्रित करनेका काम आरम्भ कर दिया गया है। उसमे अच्छी सफलता मिली है। मध्यप्रदेश सरकार भी इस काममे काफी दिलचस्पी ले रही है और हमें आशा है कि भोपालमे यह 'रविशकर शुक्ल भवन' शीघ्र तैयार हो जाएगा।

मणिपुरके सुदूर प्रदेशमें भी राष्ट्रभाषा भवन बन गया है और समितिका कार्यालय अपने भवनमें ही काम कर रहा है।

बेलगाँव तथा नसीराबादकी जिला समितियोंके भी भवन बन गए है और उनके कार्यालय अपने भवनोमें काम कर रहे है।

बडौदा, सूरत, गजाम आदि जिलोकी समितियोके भवनोके लिए भी समितिने सहायता दी है और वहाँ भवन बन रहे हैं।

बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा, सभाने भी भवन-निर्माणका कार्य आरम्भ कर दिया है। उसने महाराष्ट्र विधान सभाके भू पू अध्यक्ष श्री सिलमजीकी अध्यक्षतामें भवन-समिति तो निर्मित कर दी है।

चलानेमें काफी व्यय करना पड़ता है फिर भी समिति इसे एक आवश्यक कार्य मानकर गत १२ वर्षोंसे कर रही रही है।

समितिके भवन

समितिकी स्थापना सन् १९३६ में हुई, तब उसका कार्यालय आरम्भमें श्री बापू सेठके बंगले (वर्तमान कॉमर्स कॉलेजकी दाहिनी ओर)में किरायेके स्थानमें चलता था। वहीं एक ओर अध्यापन मन्दिर भी चलता था। अध्यापन मन्दिरके लिए बादमें महिलाश्रमके पास तीन कक्ष बनाए गए उनमेंसे दो में चलने लगा। जबकि कार्यालय शहरमें श्रीकृष्ण प्रेसके पास किरायेके मकानमें लाया गया। समिति लगभग एक वर्षमें महिलाश्रमके पास जब बड़ा मकान बना तो वहाँ समितिका कार्यालय लाया गया। यह स्थान 'भारतीय भाषा संघ' नामक ट्रस्टके नामपर कर दिया गया तो स्वभावतः समितिको कार्यालयके लिए स्थानकी आवश्यकता महसूस हुई। उक्त ट्रस्टके अधिकारियोंने ऐन बरसातके मौसममें समितिको अपना कार्यालय अन्यत्र ले जानेको बाध्य किया फलत: समितिका कार्यालय 'गो-रक्षण' के एक शेडमें सन् १९४५ में लाया गया। यहींसे समितिकी विभिन्न प्रवृत्तियाँ भी तथा परीक्षाओंका कार्य होता रहा। धीरे-धीरे समितिका कार्य बढ़ता गया। अतः बड़े कार्यालयकी आवश्यकता अनुभव करने लगी। पर १९४२ में विचार भेदके कारण समितिको अपना यह छोटा कार्यालय भी सन् १९४२ में छोड़ना पड़ा और वर्धामें रेलवे स्टेशनके नजदीक एक छोटेसे स्थानपर कार्यालय रखा गया। इस बीच समितिने पौने पाँच एकड़ जमीन सन् १९४२ में खरीद ली थी और वहाँ आवश्यकतानुसार अपने भवन बनानेका कार्य धीरे-धीरे प्रारम्भ हुआ। सन् १९४७ तक इस जमीनपर प्रेस, कार्यालय आदिके लिए कुछ भवन तैयार हो गए थे वहीं समितिका कार्यालय लाया गया। इसके पश्चात् समितिने और जमीन खरीदी और भवन बनवाया। आज समितिके पास १६ एकड़ जमीन है और ६ लाख रुपयोंकी लागतके भवन हैं। इनका विवरण इस प्रकार है :—

१—कार्यालयका दो मंजिला भवन एवं परीक्षा-विभाग।

२—अतिथि भवन।

३—कार्यालयके दो ६–६ कमरेके ब्लाक।

४—प्रेस भवन।

५—कार्यकर्ता निवास बड़े एवं छोटे ४ इनमें कुल कार्यकर्ताओंके परिवारोंके निवासकी व्यवस्था है।

६—सभा-भवन।

७—महाविद्यालयका दो मंजिला भवन।

८—रोहित कुटीर आदि।

आज समितिके ये भवन स्टेशनके समीप एक विशाल क्षेत्रपर स्थित हैं। इसने एक कॉलोनीका रूप धारण कर लिया है। इसे आज "हिन्दी-नगर" कहा जाता है। समितिके भवनोंमें ही एक कक्षमें "हिन्दी-नगर" डाकखाना आ गया है।

इससे हमारे राष्ट्रभाषा प्रचारके कामपर इस विभाजनका कोई असर नही पड़ा है। गुजरातमें—जिसमें सौराष्ट्र तथा कच्छ भी शामिल हैं—गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति जिस प्रकार पहले काम करती आ रही थी, उसी प्रकार काम कर रही है। महाराष्ट्रके चार विभागोमे विदर्भ, मराठवाड़ा, वम्बई तथा पुराने महाराष्ट्र प्रदेशमे जिस प्रकार पहले चार विभागीय समितियाँ—जिन्हे प्रान्तीय समितियोंका ही नाम तथा महत्व प्राप्त है—काम करती आई है, उसी प्रकार आज भी काम कर रही है। परन्तु विभागोकी प्रान्तीय समितियोमे सवादिता लाने तथा राज्यसे सम्वन्धित कामोमे एक साथ मिलकर कार्य करनेकी दृष्टिसे महाराष्ट्र राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति स्थापित हुई है। इसके अध्यक्ष श्री सिलमजी (महाराष्ट्र विधान सभाके भूतपूर्व अध्यक्ष) तथा श्री भगवन्तरावजी (वनमन्त्री महाराष्ट्र राज्य) के मार्गदर्शन तथा प्रेरणासे महाराष्ट्रमे समितिके कार्यको आगे बढानेमे बहुत प्रयत्नशील है। इस समितिका कार्यालय वम्बई सभाके कार्यालयमे रखा गया है।

सरकारी सहायता

समितिको उसके जन्मकालसे ही जनताका बल मिला है। इसे सरकारकी ओरसे अभीतक कोई विशेष सहायता नही मिली है। यद्यपि उसकी प्रान्तीय समितियोको कही-कही बहुत सहायता मिली है। समितिको प्रथम वार सन् १९६२ में केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालयकी ओरसे कुछ विशेष कार्योको सम्पादित करनेके लिए रु ७००० का अनुदान प्राप्त हुआ है। इसका यहाँ उल्लेख करना उचित होगा।

भाषण-स्पर्धा तथा निबन्ध-स्पर्धा पुरस्कार

राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी ओरसे गत मार्च अप्रैलमें अखिल भारतीय भाषण स्पर्धा तथा निवन्ध स्पर्धा, विद्यार्थियोके लिए तथा प्रौढ़ोके लिए आयोजित की गई थी—

भाषण स्पर्धामें—श्री सीतारामजी डोगरे प्रथम तथा कुमारी कुमुदिनी पाटील द्वितीय थी। जिन्हे क्रमश ५०१ तथा ३०१ रुपयेका पुरस्कार दिया गया।

प्रौढ़ निबन्ध स्पर्धामें—श्री श्रीकृष्ण तो. कासार प्रथम तथा श्री रवीन्द्र गो. पटेल द्वितीय थे, जिन्हे क्रमशः २५१ तथा १५१ रुपयेका पुरस्कार दिया गया।

विद्यार्थी निबन्ध स्पर्धामें—श्री कुमारी महेशी कपूर प्रथम तथा कु. प्रभा जोशी द्वितीय आई। जिन्हे क्रमश २०१ र तथा १०१ र नकद पुरस्कार श्री माताजी जानकीदेवी बजाज द्वारा वितरित किए गए।

श्री शिवमंगल सिंह सुमनका इस अवसरपर बहुत ही सुन्दर एव प्रभावपूर्ण भाषण हुआ। इनके अलावा श्री माधवजी आदिके भी प्रभावशाली भाषण हुए।

राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्य दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। सन् १९३७ मे जहाँ ६१९ परी-परीक्षार्थी बैठते थे वहाँ आज यह सख्या बढ़कर ढाई लाखसे अधिक तक पहुँची है। समितिने गत २५ वर्षोंमें २९ लाखसे अधिक विद्यार्थियोको हिन्दीकी शिक्षा दी है। आज इसके पास निष्ठावान ७६०० राष्ट्रभाषा प्रचारक केन्द्र-व्यवस्थापक है। जो हिन्दीके सन्देशको गाँव-गाँव और घर-घर पहुँचा रहे है। समितिकी स्थापना महात्मा गांधीकी प्रेरणासे हुई। स्वतन्त्रताके बहुत पूर्व समितिने राष्ट्रभाषाके कार्यको आरम्भ

आशा है कि इस समितिके प्रभावशाली सदस्य बहुत शीघ्र वम्बईके राष्ट्रभाषा-भवनके लिए आवश्यक धन जुटा लेंगे।

राष्ट्रभाषा पुस्तकालय योजना

समितिने अपने हिन्दीतर प्रान्तोंमें राष्ट्रभाषा प्रचारकी दृष्टिसे पुस्तकालय योजना बनाई। इसके अनुसार समितिने सम्बद्ध राष्ट्रभाषा पुस्तकालयोंको उनके द्वारा पुस्तकालयके लिए एकत्रित अंशको देनेका निश्चय किया। इस योजनाके अन्तर्गत सिन्ध-महाराष्ट्र तथा गुजरातके ६२ पुस्तकालयोंने अपनेको सम्बद्ध कर इस योजनाका लाभ उठाया। यह योजना सन् १९४५ तक चली।

राष्ट्रभाषा पुस्तकालय

समितिका अपना एक विशाल पुस्तकालय है। इस पुस्तकालयसे समितिके कार्यकर्तागण, वर्धा शहरके निवासी, परीक्षार्थी, तथा अन्य व्यक्ति लाभ उठाते हैं। इस पुस्तकालयमें हिन्दी, अँग्रेजी, बंगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओंकी लगभग १२ हजारसे अधिक पुस्तकें हैं। पुस्तकालय राज्य सरकार द्वारा मान्य है। रजत जयन्तीके अवसरपर हिन्दीमें अनूदित साहित्यकी हजारों पुस्तकें पुस्तकालयमें आईं। पुस्तकालयमें उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता, समालोचना, इतिहास, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि विषयोंकी पुस्तकें हैं।

हिन्दी मन्दिर पुस्तकालय

शहरमें भी समितिकी ओरसे एक 'हिन्दी-मन्दिर पुस्तकालय-वाचनालय' संचालित होता है। इस पुस्तकालय-वाचनालयसे शहरके पाठकोंको बड़ी आसानी हो गई है तथा वे इसका लाभ उठाते हैं। हिन्दी मन्दिरके पुस्तकालयमें करीब डेढ़ हजार पुस्तकें हैं। यह पुस्तकालय सेठ जमनालालजी बजाजने प्रारम्भ किया था, अब यह समितिको दे दिया गया है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

पश्चिमाञ्चलमें राष्ट्रभाषाका प्रचार करनेवाली संस्थाओंमें परस्पर विचारोंका आदान-प्रदान हो तथा यहाँ की समस्याओंपर सामूहिक रूपसे चिन्तन हो एवं उनके हल सोचे जाएँ इस दृष्टिसे सन् १९५० में पश्चिम भारत राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यका संगठन किया गया है। इस संगठनको वनानेमें गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वम्बई प्रान्तीय रासट्रभाषा प्रचार सभा, महाराष्ट्र प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, विदर्भ-नागपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, मराठवाड़ा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कर्नाटक राष्ट्रभाषा समिति एवं गोमन्तक राष्ट्रभाषा समितिका हाथ है। इसके अध्यक्षके रूपमें श्री क. मा. मुन्शी हैं तथा इसका कार्यालय वम्वईमें, वम्वई सभामें रखा गया है।

महाराष्ट्र राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समन्वय समिति

वम्वई राज्यका विभाजन किया गया और महाराष्ट्र तथा गुजरात इस प्रकार दो राज्य वने।
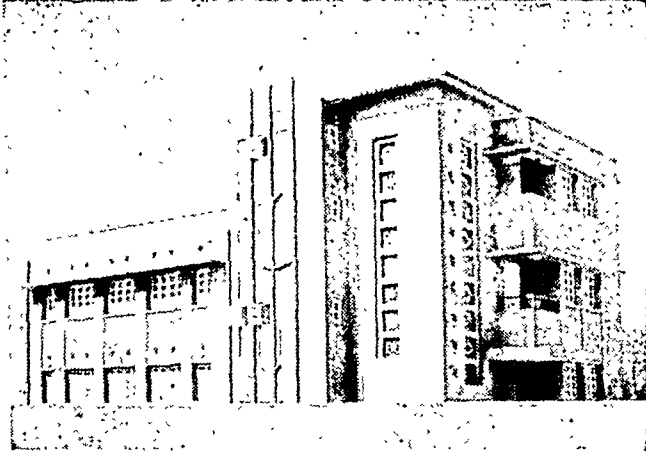
गुजरात प्रांतीय रा. भा. प्र. समिति, अहमदाबाद
[हिन्दी भवन]

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, मणिपुर
[भवन]

उसके पहले श्रीमती नाथीबाई दामोदर ठाकरसी महिला विद्यापीठ (कर्वे महिला विद्यापीठ) की स्थापना १९१६ में हो चुकी थी। इस विद्यापीठमे पढाईके माध्यमके रूपमे भारतीय भाषाओको स्थान दिया जा चुका था और हिन्दी भी उन भाषाओमे एक थी। उसके बाद १९२० में भारतमें बहुत बड़ी क्रान्ति हुई। इस राष्ट्रीय आन्दोलनके युगमे पूज्य बापूने राष्ट्रीय शिक्षा और राष्ट्रभाषा हिन्दीपर बहुत जोर दिया। पूज्य महात्माजीकी सत्प्रेरणासे देशमें काशी विद्यापीठ, तिलक विद्यापीठ, सदाकत आश्रम, जामिया मिलिया तथा गुजरात विद्यापीठ जैसी सस्थाएँ स्थापित हुई। उनमें गुजरात विद्यापीठ अहमदाबादका भी अपना एक विशेष स्थान है। गुजरात विद्यापीठके स्नातक (ग्रेज्युएट) तकके पाठ्यक्रममे हिन्दीको अनिवार्य विषयके रूपमें स्थान दिया गया था। दक्षिणामूर्ति भवनने बाल शिक्षा तथा माध्यमिक शिक्षाके क्षेत्रमें बहुत बडा कार्य किया है। वहाँके विद्यार्थियोके लिए हिन्दी विषयका शिक्षण अनिवार्य था। इस कार्यमें श्री गिजुभाई, श्री नानाभाई भट्ट, श्री हरभाई त्रिवेदी, श्री ताराबहन मोडककी पूरी सहायता रहती थी। शिक्षक गण हिन्दी सीखते थे तथा बोलते भी थे। बडौदा राज्यने सारे राज्यकी लिपि गुजरातीके साथ-साथ देवनागरी लिपिको भी स्थान दिया था। महाराजा सयाजीरावने हिन्दीके उत्कर्ष की दृष्टिसे हिन्दी विश्वविद्यालयको छह लाख रुपए दिए थे। सन् १९३३ में राज्यने सभी कर्मचारियोके लिए हिन्दी जानना अनिवार्य कर दिया था। उसके लिए परीक्षाओका प्रबन्ध भी किया गया था। साथ ही साथ राज्यकी शिक्षण सस्थाओमें हिन्दीकी पढाई अनिवार्य कर दी गई थी। साबरकाठा जिलेके ईडर राज्यने भी हिन्दी प्रचारके लिए थोडा बहुत प्रयत्न किया। राज्यकी भाषा तो गुजराती ही थी, परन्तु रियासतके हाईस्कूलमे पहली श्रेणी (आजकी पाँचवी श्रेणी) से छठी श्रेणी (आजकी दसवी श्रेणी) तक हिन्दी की पढाई अनिवार्य कर दी गई थी।

कर्वे युनिवर्सिटी, गुजरात विद्यापीठ तथा आर्य गुरुकुलो द्वारा हिन्दीके लिए वातावरण तैयार हो रहा था। फिर भी इन सस्थाओ द्वारा उन भाई-बहनोको हिन्दी पढनेका मौका मिलता था जो इन सस्थाओमें थे। बाहरके हिन्दी सीखनेवालोके लिए कोई सुविधा न थी। इसलिए सन् १९२८ मे सभी हिन्दी प्रेमियोके लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागका केन्द्र खोलनेके सम्बन्धमें श्री जेठालाल जोशीने प्रयत्न किया। प्रारम्भमें श्री उमाशकर जोशी, श्री कान्तिलाल जोशी तथा श्री भूलाभाई जोशी अहमदाबाद केन्द्रसे प्रथमा परीक्षामे सम्मिलित हुए। आज सकड़ो परीक्षार्थी इन परीक्षाओमे सम्मिलित होते है।

इस तरह हिन्दीका वातावरण गुजरातमें बन रहा था। सन् १९३५ से श्री मोहनलाल भट्ट तथा श्री परमेष्ठीदास जैनने हिन्दी प्रचारका व्यवस्थित कार्य आरम्भ किया। सन् १९३७ मे वर्धा समितिकी स्थापनाके अनन्तर समितिके तत्कालीन मन्त्री, श्री मो. सत्यनारायणजीने गुजरात में श्री मोहनलाल भट्टके साथ भ्रमण किया और हिन्दी प्रचार कार्यके लिए केन्द्र खोलनेके सम्बन्धमे परामर्श दिया। सन् १९३८ में हरिपुरा काँग्रेस हुई उसमें राष्ट्रभाषा परिषद भी हुई, जिसमें श्री सेठ जमनालालजी बजाज अध्यक्ष थे। श्री बालासाहब खेर मुख्य वक्ता थे। श्रीमती कमलाबाईने भी इसमें भाग लिया था। यह परिषद श्री मो. सत्यनारायणजी तथा श्री भट्टजीके प्रयत्नसे हुई थी और उससे हिन्दी सीखनेकी प्रवृत्ति बढ़ी। गुजरातमें उसके लिए उत्साह बढा और हिन्दी सीखकर परीक्षार्थी परीक्षाओमें बैठने लगे। बापूने इसी समय राष्ट्रको अपना महामन्त्र दिया कि "राष्ट्रभाषाके बिना राष्ट्र गूँगा है।" इस मन्त्रने जादूका काम किया और हिन्दीके लिए एक साधारण वातावरण तैयार होता गया। आज तो गुजरातके शहरो और गाँवोका हर कोना राष्ट्रभाषाके पवित्र सन्देशसे

किया। उस समयकी राष्ट्रीय भावना आज भी इसके कार्यकर्ताओंमें है और उन्हें अनुप्राणित करती रहती है। समितिके जीवन कालमें अनेक संकट एवं वाधाएँ भी आई हैं, लेकिन अपने कर्मठ निष्ठावान् प्रचारकों एवं केन्द्र-व्यवस्थापकोंके वलपर उन सव वाधाओंको पार करती हुई समिति इस राष्ट्रीय कार्यको आगे वढ़ा रही हैं। 'एक हृदय हो भारत जननी' यह समितिका वोध सूत्र है। इसीको लक्ष्यमें रखकर वह अपने कार्यमें सतत प्रयत्नशील रही है। सन् १९५१ में वम्वई राज्यने समितिकी 'राष्ट्रभाषा कोविद' परीक्षाको अमान्य किया था। इसका वड़ी दृढ़ताके साथ समितिने प्रतीकार किया। फलस्वरूप वम्वई राज्यके कर्णधारोंने मान्यता देनेके सम्वन्धमें जो पक्षपात-पूर्ण विभेद किया था, उसे दूर किया और जिन परीक्षाओंको मान्यता दी गई थी उनकी भी मान्यता हटा दी। सरकारने अपनी ओरसे स्वतन्त्र परीक्षाओंका गठन किया है। हिन्दी वातचीत परीक्षा, निम्नस्तर हिन्दी परीक्षा और उच्चस्तर हिन्दी परीक्षा—इस प्रकार तीन परीक्षाएँ महाराष्ट्र और गुजरात राज्यके कर्मचारियोंके लिए सरकारकी ओरसे चलाई जा रही हैं।

समितिके सामने एक और विकट स्थिति सन् १९५१ में उपस्थित हुई। हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सदस्योंमें दलवन्दियाँ हो गई और आपसी झगड़े इतने वढ़ गए कि उन्हें अदालतकी शरण लेनी पड़ी। फलत: उच्च न्यायालयने सम्मेलनके कार्योंको सम्पादित करनेके लिए आदाताकी नियुक्ति की जो इस समय सम्मेलनके विभिन्न कार्योंको चला रहे हैं। ऐसी स्थितिमें समितिका अस्तित्व खतरेमें आ गया था, किन्तु उसका कार्याधिकार स्वतन्त्र होनेके कारण समितिपर इसके कारण कोई वाधा उपस्थित नहीं हुई और समितिका कार्य सुचारू रूपसे पूर्ववत् चल रहा है। इन वाह्य आपत्तियोंका मुकावला करनेमें कोई शक्ति रही है तो वह समितिकी आन्तरिक संगठन शक्ति ही उसकी सुगठित प्रान्तीय समितियाँ, उसके निष्ठावान् प्रचारक एवं केन्द्र-व्यवस्थापक ही उसका वास्तविक वल रहा है। फलत: समिति अपने २५ वर्षोंका गौरवमय कार्य करनेके पश्चात् आज रजत जयन्ती समारोह वड़े उत्साहके साथ मना रही है। इसका भविष्य वहुत ही उज्ज्वल है। राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रचार और प्रसारमें समितिकी सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी और भविष्यमें भी वह इस राष्ट्रीय कार्यको अपना पूरा वल देकर राष्ट्रकी भावनात्मक एकतामें अपना योगदान करेगी।

गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदावाद

गुजरातमें हिन्दीका प्रचार गुजरात विद्यापीठ, अहमदावाद, दक्षिणामूर्ति विद्या-मन्दिर, भावनगर और राजकोट सेवा संघ आदि संस्थाओं द्वारा वहुत पहलेसे ही किया जा रहा है। वड़ौदा राज्य इस कार्यका अगुआ था। राज्यके सभी सरकारी कर्मचारियोंके लिए कचहरियोंमें हिन्दी सीखना अनिवार्य कर दिया गया था। हिन्दीकी पुस्तकें तथा कोष भी तैयार कराए गए थे। वरिष्ट अदालतके फैसले वहाँ गुजराती तथा नागरी लिपिमें लिखे जाते थे।

सन् १९३५ में परमेष्ठीदास जैनके प्रयत्नसे राष्ट्रभाषा प्रचार मण्डल, सूरतकी स्थापना हुई थी और नियमपूर्वक राष्ट्रभाषाका अध्यापन कार्य होता था। १९३५ में गुजरात विद्यापीठ तथा नवजीवनके तत्वावधानमें श्री मोहनलाल भट्टने अहमदावादमें हिन्दी-प्रचार-कार्य आरम्भ किया और गुजरातमें राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य इस प्रकार आरम्भ किया। राष्ट्रभाषा प्रचारक मण्डल सूरतने इस कार्यमें अपना सहज योग दिया।

समितिका कार्यालय प्रारम्भसे ही गुजरात राज्यके प्रधान नगर अहमदावादमें है। समितिका कार्यक्षेत्र पूरे गुजरातमें फैला हुआ है। प्रारम्भमें समितिका कार्यालय श्री मोहनलाल भट्टके अपने भारतीय मुद्रणालय, खाडिया, गोलवाड़में बिना किसी किरायेके रखा गया। १९४५ में यह कार्यालय खाडिया वाला-हनुमानके सामनेवाले एक छोटेसे किरायेके कमरेमें लाया गया। १९५१ से १९६० तक कालूपुर, खजूरी की पोलमें उस विशाल मकानमें रहा जहाँ पहले नवजीवनका कार्यालय था।

राष्ट्रभाषा हिन्दी भवन

समितिने सन् १९५७ मार्चमें राष्ट्रभाषा हिन्दी भवनके लिए एलिस ब्रिज भारतीय निवास सोसा-इटीके सामने जमीन खरीदी। इस जमीनपर सन् १९५७ दिसम्बरमें श्री कन्हैयालाल मा. मुन्शी द्वारा शिलान्यास विधि सम्पन्न हुई। बादमें भवन-निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ। इस भवनको बननेमें चार वर्ष लगे और इसकी उद्घाटन विधि तारीख ३–४–६० को तत्कालीन लोकसभाके अध्यक्ष श्री अनन्त शयनम्‌जी आयगर द्वारा सम्पन्न हुई। गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्यालय तबसे राष्ट्रभाषा हिन्दी भवनमें आ गया है।

समितिका संविधान

गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति एक रजिस्टर्ड संस्था है। इसकी एक व्यवस्थापिका समिति है। संविधानानुसार इसका प्रति तीसरे वर्ष चुनाव होता है और नीचे लिखे अनुसार व्यवस्थापिका समितिका संगठन होता है —

(१) प्रमाणित प्रचारकोंके प्रतिनिधि	१४
(२) केन्द्र-व्यवस्थापकोंके प्रतिनिधि	५
(३) जिला तथा नगर समितियोंके प्रतिनिधि	२०
(४) संरक्षक तथा आश्रयदाताओंके प्रतिनिधि	२
(५) आजीवन सदस्योंके प्रतिनिधि	२
(६) साधारण सदस्योंके प्रतिनिधि	४
(७) अधिकृत उपाधिधारी आजीवन तथा सम्मि. प.–सदस्योंके प्रतिनिधि	२
(८) सम्मान्य सदस्य	५
(९) भूतपूर्व पदाधिकारियोंके प्रतिनिधि	५
(१०) पदेन	२

समितिके वर्तमान पदाधिकारी

अध्यक्ष—माननीय श्री कन्हैयालाल मा. मुन्शी, कुलपति, भारतीय विद्याभवन, भूतपूर्व राज्यपाल, उत्तरप्रदेश।

परिपूरित है। प्रति वर्ष राष्ट्रभापाकी परीक्षाओंमें हजारों परीक्षार्थी सम्मिलित होते हैं। हरिपुरा काँग्रेसके साथ राष्ट्रभाषा परिषद करनेके वाद श्री मोहनलाल भट्टने गुजरातका कार्य श्री जेठालाल जोशीको सौंप दिया, जिन्होंने उसे वड़े उत्साहसे स्वीकार कर लिया और इस प्रवृत्तिको इतना बढ़ाया कि गुजरातमें हिन्दी प्रचारका कार्य बड़े विस्तृत पैमानेपर चल रहा है। उसके वाद सन् १९३९ में वर्धा समितिके गुजरात प्रदेशके हिन्दी प्रचारका कार्य श्री काका कालेलकरकी अध्यक्षतामें श्री अमृतलाल नाणावटीने करना शुरू किया। परन्तु अहमदावादका मुख्य कार्य श्री जेठालालजीके हाथोंमें ही था। शुरूमें श्री परमेष्ठीदास जैन और अन्य साथियों की सहायतासे हिन्दी प्रचारका कार्य चल रहा था। १९४० में हिन्दुस्तानीकी दो लिपियोंकी अनिवार्यताका प्रश्न गाँधीजीने उठाया। उसके कारण मतभेद पैदा हुआ और सन् १९४२ में वर्धामें हिन्दुस्तानी प्रचार सभाकी अलग स्थापना हुई। श्री नाणावटी हिन्दुस्तानी प्रचारके कार्यमें लग गए। इसलिए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके कार्यको सुसंगठित रूपसे आगे वढ़ानेके लिए सूरतमें गुजरातके प्रचारकों और केन्द्र-व्यवस्थापकोंकी एक सभा हुई। इस सभामें समितिके तत्कालीन मन्त्री, श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन भी उपस्थित थे। उनके साथ श्री कमलेश भारतीय भी थे। ता. १–१–४४ को इस सभामें गुजरात राष्ट्र-भाषा प्रचार समितिका विधिवत् संगठन हुआ। अध्यक्ष श्री रामनारायण भाई पाठक तथा उपाध्यक्ष डॉ. चम्पकलाल घीया तथा मन्त्री श्री परमेष्ठीदास जैन नियुक्त हुए और वर्धा समितिकी ओरसे श्री कमलेशजी संचालक नियुक्त किए गए। उसका मुख्य कार्यालय अहमदावाद वना। श्री जेठालाल जोशी, अहमदावाद समितिके मन्त्री बने रहे और श्री पाठकजी आदिका हिन्दी प्रचारके कार्यमें दिलचस्पी लेनेके लिए तैयार करनेका भार भी उन्हींपर था। श्री कमलेशजी इस कार्यको एक साल तक करते रहे; परन्तु गुजरातके कार्यमें अनेक कठिनाइयाँ आने लगीं; जिन्हें सम्हालना आवश्यक था। श्री परमेष्ठीदासजी सूरतसे यह कार्य नहीं कर सकते थे और वे सूरत छोड़नेका विचार भी कर रहे थे इसलिए श्री जेठालालजीको ही मन्त्री पदका भार सम्हालना पड़ा। मन्त्री तथा संचालक अलग-अलग रखनेके कारण भी अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं। परिणामस्वरूप मन्त्री-संचालकका पद श्री जेठालालजीको सौंपा गया। तबसे वे मन्त्री-संचालकका कार्य बहुत कुशलतापूर्वक कर रहे हैं और उनकी सफलताका प्रतीक गुजरातका कार्य और परीक्षार्थी संख्या है।

समितिके सुसंगठित हो जानेसे कार्य बढ़ता गया। १९४६ में अध्यक्ष श्री रामनारायण भाई पाठकके स्थानपर श्री कन्हैयालाल मा. मुँशी अध्यक्ष तथा उपाध्यक्षके रूपमें स्व. दादा साहब मावलंकर चुने गए। मावलंकरजीके लोकसभाके अध्यक्ष चुने जानेपर डॉ. श्री हरिप्रसाद देसाई उपाध्यक्ष चुने गए। बादमें उपाध्यक्षके रूपमें प्रा. श्री रामचन्द्र ब. आठवले, श्री हरभाई त्रिवेदी, श्री गौरीशंकर जोशी 'धूमकेतु' श्री डोलरराय मांकडका सहयोग प्राप्त हुआ।

समितिके कार्याध्यक्ष पदपर प्रारम्भसे ही श्रीमती शारदावहन मेहताका पूरा सहयोग समितिको मिलता रहा था। श्रीमती शारदाबहनके मार्गदर्शनसे समितिका कार्य खूब आगे बढ़ा। वे वृद्धावस्थाके कारण जब यह कार्यभार सम्भालनेमें असमर्थ हो गईं तब श्री हरिसिद्ध भाई दीवेटियाजीने इस पदको सुशोभित किया। पर श्रीमती शारदाबहनका सहयोग तो मिलता ही रहा। श्री दीवेटियाजीके नेतृत्वमें भी समिति-को बहुत लाभ मिला। अब १९६१ से कार्याध्यक्षके पदपर श्रीमती हंसावहन मेहता (भू. पू. उपकुलपति, सयाजीराव युनिवर्सिटी, बड़ौदा) हैं और पूरा सहयोग दे रही हैं।

होते हैं। समितिकी ओरसे केन्द्र-व्यवस्थापको तथा प्रचारक बन्धुओको राष्ट्रभाषा सम्बन्धी प्रत्यक्ष जानकारी के लिए इन शिविरोका आयोजन किया जाता है। सुप्रसिद्ध दर्शनीय स्थानो एवं तीर्थोंका पर्यटन कार्यक्रम भी इन शिविरोके अन्तर्गत रखा जाता है।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका द्वितीय अधिवेशन

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका द्वितीय अधिवेशन १९५० मे अहमदाबादमे हुआ था। इसी अधिवेशनमें यह निश्चय हुआ था कि राष्ट्रभाषाके अनन्य प्रवर्तक महात्मा गाँधीकी पुण्यस्मृतिमें १५०१) रु. का एक महात्मा गाँधी पुरस्कार प्रति वर्ष किसी ऐसे हिन्दीतर भाषा-भाषी लेखकको सेवामें समर्पित किया जाए; जिसने अपनी लेखनी द्वारा हिन्दीकी पर्याप्त सेवाएँ की हो। तबसे यह पुरस्कार समितिकी ओरसे राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनोके अवसरपर दिया जाता है।

प्रचार सम्मेलन

राष्ट्रभाषा प्रचार-प्रसारके लिए प्रदेशके भिन्न-भिन्न विभागोमे प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन आयोजित होते हैं। इन प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनोका आयोजन १९५४ से हो रहा है और भावनगर, भुज, सिद्धपुर, वल्लभ-विद्यानगरमे ये सम्मेलन आयोजित हो चुके हैं। जिला राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन भी आयोजित होते हैं और कच्छमें भूज, माडवी, आदिपुर, अंजार, सौराष्ट्रमें भावनगर, राजकोट, लिम्बडी, उत्तर गुजरातमे सिद्धपुर, महेसाणा, विसनगर, घोणोज, पचमहालमें गोधरा, लुणावाडा, खेडामे नडियाद इत्यादि स्थानोपर जिला राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन हो चुके हैं।

प्रचार-कार्य

परीक्षाएँ

गुजरात प्रदेशमे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी प्राथमिक, प्रारम्भिक, प्रवेश, परिचय, कोविद राष्ट्रभाषा-रत्न परीक्षाएँ बडी लोकप्रिय हैं। ये परीक्षाएँ वर्षमे दो बार फरवरी तथा सितम्बरमे होती है। सन् १९३७ में ७६ परीक्षार्थी गुजरात प्रदेशसे सम्मिलित हुये थे। आज यह सख्या कोई १ हजार गुना बढ़ गई है। प्रतिवर्ष समितिकी परीक्षाओमे ७५–७६ हजारसे अधिक परीक्षार्थी सम्मिलित होते हैं। अबतक गुजरात प्रदेशसे करीब १० लाख परीक्षार्थी वर्धा समितिकी परीक्षाओमें सम्मिलित हो चुके हैं।

केन्द्र

समितिके अन्तर्गत आज पूरे गुजरातमें करीब ६५० परीक्षा केन्द्रोमें राष्ट्रभाषा प्रचार कार्य चल रहा है।

प्रचारक

गुजरातमें २१५० सक्रिय प्रमाणित प्रचारकोका सहयोग समितिको प्राप्त हो रहा है।

कार्याध्यक्ष—डॉ. श्रीमती हंसाबहन मेहता, भू. पू. उपकुलपति, महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी, बड़ौदा।

उपाध्यक्ष—श्री गजाननभाई जोशी, राजकोट।

उपाध्यक्ष—श्री रमणिकलाल इनामदार, अहमदाबाद।

कोषाध्यक्ष—श्री सन्तप्रसाद भट्ट, आचार्य, वा. दा. महिला कालेज, अहमदाबाद।

मन्त्री-संचालक—श्री जेठालाल जोशी, अहमदाबाद।

प्रकाशन

राष्ट्रवीणा

समितिकी ओरसे सन् १९५१ से "राष्ट्रवीणा" त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित हो रही है। इसमें चिन्तन प्रधान लेख, कविताएँ, समीक्षा, कहानियाँ आदि सामग्री बड़े सुरुचिपूर्ण ढंगसे दी जाती हैं। इसमें गुजराती भाषा साहित्य और संस्कृतिकी विशेषताओंका संक्षिप्त तथा सुन्दर परिचय दिया जाता है। इस पत्रिकाने गुजरात प्रदेशमें बड़ी लोकप्रियता प्राप्त कर ली है।

पुस्तकें

१—समितिकी ओरसे एक प्रकाशन योजना भी बनाई गई है। समितिने कविवर सुमित्रानन्दन पन्तकी चुनी हुई २७ कविताओंका गुजराती पद्यानुवाद "सुमित्रानन्दन पन्तनां केटलोक काव्यों' के नामसे प्रकाशित किया।

२—गुजरातीके मूर्धन्य कथाकारोंकी १५ सुरुचिपूर्ण कहानियोंके हिन्दी अनुवादका संकलन "गुजरातीकी प्रतिनिधि कहानियाँ" के रूपमें छापा गया है।

३—हिन्दीसे हिन्दी तथा हिन्दीसे गुजराती कोशकी पांडुलिपि तैयार हो चुकी है। निकट भविष्य-में वह प्रकाशित हो जाएगा।

सरदार वल्लभभाई पटेल विजय पद्म वक्तृत्व स्पर्धा

गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी ओरसे सरदार वल्लभभाई पटेलकी पुण्यस्मृतिमें सरदार वल्लभभाई पटेल विजय पद्म (ट्राफी) वक्तृत्व स्पर्धाका आयोजन प्रति वर्ष किया जाता है। यह विजय पद्म चाँदीका बना है। इसमें १८ वर्षसे २५ वर्ष तकको उम्रके हिन्दीतर भाषा-भाषी भाग ले सकते हैं। सर्वप्रथम पुरस्कार १०१) रु. तथा द्वितीय पुरस्कार ५१) रु. तथा तृतीय पुरस्कार ४१) रु. का दिया जाता है। सन् १९५४ से अबतक अहमदाबाद, बड़ौदा, वल्लभ-विद्यानगरमें इसके आयोजन हो चुके हैं।

राष्ट्रभाषा शिविर

ज्ञानवृद्धि, परस्पर मेलमिलाप, राष्ट्रभाषा प्रचार तथा भाषा ज्ञान बढ़ानेके लिए शिविर बड़े उपयोगी

होते हैं। समितिकी ओरसे केन्द्र-व्यवस्थापकों तथा प्रचारक बन्धुओंको राष्ट्रभाषा सम्बन्धी प्रत्यक्ष जानकारी के लिए इन शिविरोका आयोजन किया जाता हैं। सुप्रसिद्ध दर्शनीय स्थानो एवं तीर्थोंका पर्यटन कार्यक्रम भी इन शिविरोके अन्तर्गत रखा जाता है।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका द्वितीय अधिवेशन

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका द्वितीय अधिवेशन १९५० मे अहमदाबादमें हुआ था। इसी अधिवेशनमें यह निश्चय हुआ था कि राष्ट्रभाषाके अनन्य प्रवर्तक महात्मा गाँधीकी पुण्यस्मृतिमें १५०१) रु का एक महात्मा गाँधी पुरस्कार प्रति वर्ष किसी ऐसे हिन्दीतर भाषा-भाषी लेखकको सेवामें समर्पित किया जाए; जिसने अपनी लेखनी द्वारा हिन्दीकी पर्याप्त सेवाएँ की हों। तबसे यह पुरस्कार समितिकी ओरसे राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनोके अवसरपर दिया जाता है।

प्रचार सम्मेलन

राष्ट्रभाषा प्रचार-प्रसारके लिए प्रदेशके भिन्न-भिन्न विभागोमें प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन आयोजित होते हैं। इन प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनोका आयोजन १९५४ से हो रहा है और भावनगर, भुज, सिद्धपुर, वल्लभ-विद्यानगरमें ये सम्मेलन आयोजित हो चुके हैं। जिला राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन भी आयोजित होते है और कच्छमें भूज, माडवी, आदिपुर, अजार, सौराष्ट्रमें भावनगर, राजकोट, लिम्बडी, उत्तर गुजरातमें सिद्धपुर, महेसाणा, विसनगर, घोणोज, पचमहालमें गोधरा, लुणावाडा, खेड़ामें नडियाद इत्यादि स्थानोपर जिला राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन हो चुके हैं।

प्रचार-कार्य

परीक्षाएँ

गुजरात प्रदेशमें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी प्राथमिक, प्रारम्भिक, प्रवेश, परिचय, कोविद *राष्ट्रभाषा-रत्न परीक्षाएँ बडी लोकप्रिय हैं। ये परीक्षाएँ वर्षमें दो बार फरवरी तथा सितम्बरमें होती हैं।* सन् १९३७ में ७६ परीक्षार्थी गुजरात प्रदेशसे सम्मिलित हुये थे। आज यह सख्या कोई १ हजार गुना वढ गई है। प्रतिवर्ष समितिकी परीक्षाओमें ७५–७६ हजारसे अधिक परीक्षार्थी सम्मिलित होते हैं। अबतक गुजरात प्रदेशसे करीब १० लाख परीक्षार्थी वर्धा समितिकी परीक्षाओमें सम्मिलित हो चुके हैं।

केन्द्र

समितिके अन्तर्गत आज पूरे गुजरातमें करीब ६५० परीक्षा केन्द्रोमें राष्ट्रभाषा प्रचार कार्य चल रहा है।

प्रचारक

गुजरातमें २१५० सक्रिय प्रमाणित प्रचारकोका सहयोग समितिको प्राप्त हो रहा है।

शिक्षण-केन्द्र, विद्यालय, महाविद्यालय

अधिकांश केन्द्रोंमें प्रशिक्षित प्राध्यापकों तथा शिक्षकों, प्रचारकों द्वारा प्रारम्भिकसे परिचय तककी पढ़ाईके लिए शिक्षण केन्द्र तथा परिचय, कोविदकी पढ़ाईके लिए विद्यालय तथा राष्ट्रभाषा रत्नकी पढ़ाईके लिए महाविद्यालयोंका प्रबन्ध किया गया है। १७० शिक्षण केन्द्र १६२ विद्यालय तथा ५ महाविद्यालय नियमित रूपसे चल रहे हैं।

पुस्तकालय

अहमदाबाद तथा सूरतके राष्ट्रभाषा पुस्तकालय काफी समृद्ध हैं। अहमदाबादके हिन्दी पुस्तकालयसे हिन्दी बी. ए. एम. ए. विशारद, साहित्य रत्नके विद्यार्थी भी लाभ उठाते हैं। पी. एच. ड़ी. तथा बी. टी की तैयारी करनेवाले भाई-बहन भी इससे लाभ उठा रहे हैं।

इसके अलावा सूरत, राजकोट, भावनगर, बड़ौदा, नड़ियाद, भुज, जामनगर आदि स्थानोंपर भी पुस्तकालय चल रहे हैं। बड़े-बड़े केन्द्रोंमें भी उनके अपने नियमित पुस्तकालय चल रहे हैं।

विभागीय समितियाँ

प्रदेशके नीचे लिखे जिलोंमें राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यको सुव्यवस्थित करनेके लिए विभागीय समितियाँ बनी हुई हैं। उनके पदाधिकारियोंके नाम नीचे दिए जा रहे हैं।

कच्छ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भुज

अध्यक्ष---श्री प्रेमजीभाई भवानजी ठाकर, उपमन्त्री गुजरात राज्य।
उपाध्यक्षा---श्री कु. तिलोत्तमा बहन देसाई।
कोषाध्यक्ष---श्री रवजीभाई ठक्कर।
मन्त्री---श्री मार्कण्डराय महेता।

सौराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, राजकोट

अध्यक्ष---श्री गजाननभाई जोशी, एम. ए., एल. एल. बी.।
कार्याध्यक्ष---श्री गंगादासभाई शाह, अध्यक्ष भावनगर नगरपालिका, भावनगर।
मन्त्री---श्री हरिलाल पंड्या।

अहमदाबाद राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद

अध्यक्ष---श्री रमणिकलाल इनामदार।
उपाध्यक्ष---श्री सन्तप्रसाद भट्ट, प्राचार्य बी. डी. कालेज, अहमदाबाद।
मन्त्री---श्री जेठालाल जोशी, ।
सहमन्त्री---श्री रणधीरभाई उपाध्याय।

उत्तर गुजरात राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सिद्धपुर

अध्यक्ष—श्री खोडाभाई शि. पटेल, एम. ए , एल. एल. बी. (एम. एल. ए.)।
कार्याध्यक्ष—श्री कान्तिलाल याज्ञिक बी. कॉम ।
उपाध्यक्ष—श्री रामचन्द्रभाई अमीन बी. ए. एल. एल. बी.।
उपाध्यक्ष—श्री छगनभाई का. पटेल (आचार्य, पीलवाई हाईस्कूल,)।
मन्त्री—श्री काशीशंकर शुक्ल,
सहमन्त्री—श्री रघुनाथ ब्रह्मभट्ट।

खेडा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वसो

अध्यक्ष—श्री भाईलालभाई पटेल, (भूतपूर्व उपकुलपति वल्लभ विश्व विद्यालय)
उपाध्यक्ष—श्री शकरभाई र. पटेल और श्री चन्द्रकान्त भट्ट (आचार्य आलिन्द्रा हाईस्कूल)
कार्याध्यक्ष—श्री वहेचरदास शाह, नडियाद।
मन्त्री—श्री पुरुषोत्तमभाई पटेल, वसो और श्री शान्तिलाल पड्या, नडियाद

पंचमहाल राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गोधरा

अध्यक्ष—श्री माणेकलाल गाँधी, एम. पी. (कालोल)
उपाध्यक्ष—श्री मणिलाल ह. महेता (गोधरा)
कार्याध्यक्ष—श्री जटाशकर पड्या (गोधरा)
मन्त्री—श्री फतेहलाल जे. दवे और श्री अमृतगर गोस्वामी तथा श्री सी. पी. पाठक

भरुच राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भरुच

अध्यक्ष—श्री चन्द्रशकर भट्ट, एम. पी. (भरूच)।
उपाध्यक्ष—श्री राजेन्द्रप्रसाद भट्ट (आमोद)।
कार्याध्यक्ष—श्री चन्दुलाल सेठ (भरूच)।
मन्त्री—श्री विष्णुप्रसाद भट्ट 'बिन्दु' (अमरवा)।
उपमन्त्री—श्री जयराम मालणकर (राजपीपला)

[इस वर्ष अहमदाबाद-साबरकाठा ज़िला राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके विधानकी रचना भी की गई है और चुनावकी योजना की जा रही है।]

सक्रिय नगर समितियाँ

प्रत्येक विभागके कुछ नगरोंमें राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यको व्यवस्थित करनेके लिए नगर समितियाँ बनी हुई हैं। उनमेंसे सक्रिय नगर समितियोंके पदाधिकारियोंके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं :—

कच्छ विभाग

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, मांडवी

अध्यक्ष---श्री भाईलालभाई मा. मामतोरा।
उपाध्यक्ष---श्री नौशेररभाई दस्तूर।
मन्त्री---श्री शिवलाल धोलकिया।
केन्द्र-व्यवस्थापक---श्री सुशीलचन्द्र पंड्या।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, मुन्द्रा

अध्यक्ष---श्री भोगीलालभाई महेता।
उपाध्यक्ष---श्री रतिभाई दवे।
मन्त्री---श्रीमती हंसाबहन भट्ट तथा श्री भानुभाई छाया।
केन्द्र-व्यवस्थापक---श्री कुंजविहारी महेता।

राष्ट्रभाषा प्रजार समिति, आदिपुर

अध्यक्षा---श्रीमती कृष्णा हिंगोरानी।
उपाध्यक्ष---श्री तोताराम बलेच्छा।
मन्त्री---श्री कुमारी कृष्णा भंमाणी (केन्द्र-व्यवस्थापिका),
तथा श्री हीरालाल धोलकिया।

सौराष्ट्र विभाग

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, राजकोट

अध्यक्ष---श्री गजाननभाई जोशी, एम. ए. एल. एल. बी.।
उपाध्यक्ष---श्री बालकृष्णभाई शुक्ल, बी. ए., एल. एल. बी.।
मन्त्री---श्री हरिलाल पंड्या (केन्द्र-व्यवस्थापक)।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भावनगर

अध्यक्ष---श्री गंगादासभाई शाह (अध्यक्ष नगरपालिका, भावनगर।)
मन्त्री---श्री हिंमतलाल याज्ञिक, बी. ए., साहित्यरत्न।
उपमन्त्री---श्री दिनकरराय भट्ट, कोविद।
सहमन्त्री---श्री जयेन्द्रभाई त्रिवेदी रा. रत्न, एम. ए., बी. एस. सी.।
केन्द्र-व्यवस्थापक---श्री लक्ष्मीचन्द्र सोमानी एम. ए., कोविद।

खेडा विभाग

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नडियाद

अध्यक्ष—श्री वहेचरदासजी शाह, बी. ए., एल. एल. बी. वकील।
उपाध्यक्ष—श्री सताभाई गो. पटेल।
मन्त्री—श्री शान्तिलाल पंडचा तथा श्री मोहनलाल म. शाह।
कोषाध्यक्ष—श्री पूजालाल त्रि. शुक्ल।
केन्द्र-व्यवस्थापक—श्री रतिलाल मू. दवे।

राष्ट्रभाषा प्रचारक मंडल, आणंद

अध्यक्ष—श्री केशवलाल भा. पटेल, बी. ए., एल. एल. बी. वकील।
उपाध्यक्ष—श्री शंकरभाई र. पटेल, बी. ए., बी. टी. कोविद।
कार्याध्यक्ष—श्री फूलाभाई झ. पटेल, बी. ए. बी. टी. (शारदा हाईस्कूल)
मन्त्री—श्री उमियाशंकर ठाकर, कोविद, साहित्यालंकार।
उपमन्त्री—श्री सुबोधचन्द्र स्नातक, साहित्य रत्न।

भरूच विभाग

हिन्दी प्रचार सभा, भरूच

अध्यक्ष—श्री चन्दुलाल सेठ।
उपाध्यक्ष—श्री करसनभाई पटेल।
कोषाध्यक्ष—श्री वैकुंठलाल देसाई।
मन्त्री—श्री नटवरलाल सी. ईटवाला।
सहमन्त्री—श्री माणेकलाल पाछियापरावाला।

बड़ौदा विभाग

राष्ट्रभाषा प्रचारक मंडल, बड़ौदा

अध्यक्ष—श्री मोहनलाल भट्ट (मन्त्री, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा)।
कार्याध्यक्ष—श्री मनुप्रसाद ल. भट्ट (केन्द्र-व्यवस्थापक)।
कोषाध्यक्ष—श्री नटवरलाल देसाई, विशारद।
मन्त्री—श्री महादेव अ. वैशम्पायन।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पादरा

अध्यक्ष—श्री मूलजीभाई बी. पटेल, बी. ए.,।

वर्ष	गुजरात
१९५७	४६,२८६
१९५८	४८,०५१
१९५९	५९,९१६
१९६०	६५,४१७
१९६१	७५,५६९
कुल	९,३७,४५०

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणे

स्व. ग. र. वैशम्पायनजीकी प्रेरणा तथा उनके प्रयत्नोंसे महाराष्ट्रमें हिन्दी प्रचारका कार्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापनासे पहले भी चल रहा था। इसमें माननीय श्री न. वि. उपाध्य, काकासाहब गाडगिल, श्री वि. मा देशमुख, श्री पोपटलाल शाहा महानुभावोंका स्नेह-सहयोग रहा। सन् १९३४ में हिन्दी प्रचार संघ, पुणेकी स्थापना हुई। इस संस्था द्वारा आरम्भमें दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रासका कार्य होता था। बादमें सन् १९३७ से राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी परीक्षाओंका कार्य होने लगा। "संघ" ने हिन्दी प्रचारके कार्यमें बहुमुखी कार्य किया है। उसका अपना एक विशाल कार्यक्षेत्र है और वहाँके कार्यकर्ता निःस्वार्थ भावसे सेवाकार्यमें संलग्न हैं। उसका अपना एक विशाल पुस्तकालय है। अभी "संघ" ने अपनी रजत जयन्ती १९५९ में धूमधामसे मनाई है।

सन् १९३४ में ही हिन्दी प्रचार कार्य करनेके उद्देश्यसे कोल्हापुरमें श्रीमद् दयानन्द निःशुल्क हिन्दी विद्यालयकी स्थापना श्री प. नारायण शास्त्री वालावलकरने की।

सन् १९३८ से राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी परीक्षामें कोल्हापुर तथा करवीर क्षेत्रमें प्रारम्भ हुईं। अन्य क्षेत्रोंमें भी हिन्दी प्रचारके सक्रिय प्रयत्न चलते रहे। पुणें, कोल्हापुरके साथ ही नासिकमें श्री कृ. व. महाबळ गुरुजीने हिन्दी प्रचार का कार्य आरम्भ किया था। बादमें श्री ह. शि. सहस्रबुद्धेजी वर्धाकी परीक्षाओंकी पढाईका प्रबन्ध करने और श्री महाबळ गुरुजीकी सहायतार्थ नासिक पहुँचे। अहमदनगर, सोलापुर, राजापुर, चिपळूण, मालवण, रत्नागिरी आदि केन्द्रोंमें भी हिन्दी प्रचारका कार्य शुरू हो गया था।

काकासाहब कालेलकर तथा श्री शंकरराव देवने महाराष्ट्रके करीब २० स्थानोंमें हिन्दी प्रचारार्थ परिभ्रमण किया। इस प्रकार कई केन्द्रोंमें हिन्दी प्रचारका कार्य चलने लगा।

सन् १९३८ में श्री शंकरराव देवकी अध्यक्षतामें पुणेमें महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका संगठन किया गया और श्री नाना धर्माधिकारी उसके मन्त्री-संचालक नियुक्त हुए। प्रचार क्षेत्रका विभाजन किया गया। बेंगुर्ला, बोर्डी ठाणें आदि स्थानोंमें परीक्षा केन्द्र खोले गए। हिन्दी प्रचार केन्द्रोंमें सवेतन प्रचारकोंकी नियुक्तिके लिए सन् १९३८ में अमलनेरके श्री प्रताप सेठजीने ६००० रु. की जो उदार सहायता दी, उसने महाराष्ट्रके कामको बडी गति प्रदान की।

तिलक पुण्य तिथि इत्यादि प्रसंगोंपर गण्यमान्य विद्वानोंके कार्यक्रम सम्पन्न होते हैं।

प्रदेशके विभिन्न केन्द्रोंमें प्रमाण-पत्र वितरणोत्सवके आयोजन प्रति-वर्ष होते रहते हैं।

केन्द्र-निरीक्षक

प्रदेशमें फैले हुए केन्द्रोंके निरीक्षणके लिए सुयोग्य अनुभवी जिला केन्द्र निरीक्षकोंकी नियुक्तियाँ की गई हैं। वे अपने निर्दिष्ट क्षेत्रमें समय समयपर केन्द्रमें जाकर मार्गदर्शन देते हैं।

कच्छ, सौराष्ट्र, उत्तर गुजरात, अहमदावाद व सांवरकाँठा जिला, खेडा, पंचमहाल, भरूच, सूरत आदि स्थानोंमें केन्द्र-निरीक्षकोंकी नियुक्तियाँ की गई हैं।

गुजरातसे राष्ट्रभाषा परीक्षाओंमें हर वर्ष जितने परीक्षार्थी सम्मिलित हुए उनका वर्षवार उन्नति क्रम इस प्रकार है :—

गुजरातका परीक्षार्थी उन्नति क्रम

वर्ष	गुजरात
१९३७	७६
१९३८	६३९
१९३९	२,१०१
१९४०	५,३०२
१९४१	१०,८२०
१९४२	६,३३५
१९४३	२१,४१५
१९४४	१५,३२४
१९४५	१२,३९६
१९४६	१३,०४५
१९४७	२३,८१०
१९४८	४७,४७६
१९४९	६८,२३०
१९५०	९३,५५८
१९५१	७९,५६१
१९५२	४३,७६६
१९५३	४४,०२७
१९५४	४७,७००
१९५५	४८,९५७
१९५६	५७,५९३

पत्रिकाका प्रकाशन आरम्भ किया गया जो समितिके मुखपत्रके रूपमें पूरे पन्द्रह साल बराबर चलता रहा। समय-समयपर हमने परीक्षोपयोगी तथा अन्य विशेषाक प्रकाशित होते रहते हैं। परीक्षार्थियोके लिए यह पत्रिका बड़ी उपयोगी सिद्ध हूई। "पत्रिका" का प्रकाशन फिलहालमें स्थगित है।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका तीसरा अधिवेशन

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका तीसरा अधिवेशन पुणेमें सन् १९५१ के मई महीनेमें सम्पन्न हुआ। इसका उद्घाटन श्री न. वि. गाडगीलजी तथा अध्यक्षता प. वियोगीहरिजीने किया। इसी सम्मेलनके अवसरपर शान्ति निकेतनके आचार्य श्री क्षितिमोहन सेनको १५०१ रु. का प्रथम 'महात्मा गाँधी पुरस्कार' एव ताम्रपट्ट समर्पित किया गया।

राष्ट्रभाषा हिन्दी भवनकी योजना

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समितिने, पुणेमे राष्ट्रभाषा हिन्दी भवनके निर्माणके सम्बन्धमे एक योजना बनाई है। इस भवनके लिए ८ हजार चौरस फुटकी एक खुली जगह खरीद ली गई है। इसका प्लान एस्टिमेट बनकर तैयार हो गया है, वह पुणे महानगरपालिका द्वारा स्वीकृत भी हो चुका है। भवनमे ३ लाख लागतका अनुमान है।

तुलसी महाविद्यालय

सन् १९५१ से समितिकी ओरसे तुलसी महाविद्यालय नामक एक महाविद्यालयको भी चलाया जा रहा है जिसमे राष्ट्रभाषा रत्न, अध्यापन विशारद, साहित्य-रत्न, साहित्य विशारद, आदि हिन्दीकी ऊँची परीक्षाओकी पढाईकी व्यवस्था की गई है। "समिति द्वारा" महाराष्ट्र सरकारकी ओरसे चलाई जा रही "हिन्दी शिक्षक सनद" परीक्षाके लिए वर्गकी व्यवस्था की जा रही है।

जिला समितियाँ

महाराष्ट्रके बढते हुए कार्यको देखकर हर जिलेमे जिला समितियाँ स्थापित की गई है। इन जिला समितियोकी देखरेखमें सभी केन्द्र प्रचार-कार्य कर रहे हैं। पूर्व खान्देश, पश्चिम खान्देश, नाशिक, अहमदनगर, ठाणा, कुलाबा, पुणें, रत्नागिरी, उत्तर सातारा, दक्षिण सातारा, शोलापुर, कोल्हापुर और गोमन्तक जिला समितियाँ है—

प्रकाशन

समितिनें एक प्रकाशन विभाग भी खोला है, जिसकी ओरसे *बापूकी बाते, पाठ-पद्धति, अमावसकी रात*, साधारण चार्ट आदि प्रकाशित हो चुके हैं—

राष्ट्रभाषा प्राथमिक परीक्षा

राष्ट्रभाषाका प्राथमिक ज्ञान करा देनेके हेतु "प्रान्तीय समिति" की ओरसे "राष्ट्रभाषा प्राथमिक"

सन् १९४० में श्री शंकरराव देवजीने अध्यक्ष पदसे त्यागपत्र दे दिया एवं इसके संचालनका भार तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पुणेंको सौपा गया। विद्यापीठने राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यके लिए एक उपसमिति बनाई जिसके अध्यक्ष महामहोपाध्याय प्रा. श्री द. वा. पोतदार बनाए गए और श्री कृ. ज. धर्माधिकारीके स्थानपर श्री गो. प. नेने प्रचार-संचालनका कार्य करने लगे। ३ वर्ष तक यह कार्य तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ के अन्तर्गत चलता रहा।

सन् १९४३ में पुन: स्वतन्त्र संगठन किया गया जिसके अध्यक्ष महामहोपाध्याय श्री द. वा. पोतदार मन्त्री श्री माधवराव नेमाने एवं संगठन मन्त्री, श्री गो. प. नेने चुने गए।

सन् १९४५ तक इस प्रकार कार्य करते रहनेके अनन्तर नवम्बर सन् १९४५ में इस समितिके कुछ लोगोंने अहमदनगर जिलेके बेलापुर ग्राममें प्रस्ताव-द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिसे अपनी सम्बद्धता तोड़कर स्वतन्त्र रूपसे कार्य करने लगे और अपने मूल उद्देश्य तथा नीतिमें एकाएक परिवर्तन किया। इन्होंने अपनी एक अलग संस्था महाराष्ट्र राष्ट्रभापा सभाके नामसे सन् १९४६ में प्रारम्भ की।

पुनर्गठन

महाराष्ट्र राष्ट्रभापा प्रचार समितिके पदाधिकारियोंकी इस अवैधानिक कार्यवाहीके सम्बन्धमें उस समयके हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति श्री कन्हैयालाल मा. मुन्शी,प्रधान-मन्त्री श्री मौलिचन्द्र शर्मा तथा समितिके तत्कालीन मन्त्री श्री आनन्द कौसल्यायन बम्बईमें मिले। महाराष्ट्रके कार्यकर्ताओंसे विचार-विनिमय किया गया। वे पुणें पहुँचे और नूतन मराठी विद्यालयमें एक सभा हुई; जिसमें महाराष्ट्र राष्ट्रभापा प्रचार समितिके नवीन पदाधिकारियोंका चुनाव किया गया। श्री प्रा. वा. मा. दवडघाव अध्यक्ष चुने गए; और विधिवत् कार्य महाराष्ट्रमें चलने लगा। श्री गो. प. नेनेको उनकी इच्छानुसार मुक्त किया गया। एक वर्ष बाद सन् १९४६ में संचालकके पदपर श्री पं. मु. डांगरेजीकी नियुक्त हुई। तबसे लेकर आजतक श्री डांगरेजी महाराष्ट्रमें राष्ट्रभापा प्रचार कार्यको सम्हाल रहे हैं।

वर्तमान समितिकी कार्यकारिणी

अध्यक्ष—श्री यशवन्तरावजी चव्हाण।

कार्याध्यक्ष—श्री तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी

उपाध्यक्ष—श्री काकासाहब गाडगीलजी (भू. पू. राज्यपाल, पंजाब) एवं मधुकररावजी चौधरी, (नगर विकास मन्त्री म. रा.)।

कोपाध्यक्ष—श्री श्रीनिवास मूंदड़ा।

अन्तर्गत लेखेक्षक—श्री माधवराव मा. घुमाळ।

संचालक—श्री पं. मु. डांगरे, पुणें।

'जयभारती' पत्रिकाका प्रकाशन

सन् १९४७ से महाराष्ट्र राष्ट्रभापा प्रचार समितिकी ओरसे 'जयभारती' नामक एक मासिक

महाराष्ट्रकी जिला तथा शहर राष्ट्रभाषा-प्रचार समितियाँ

वर्तमान-पदाधिकारी सन् १९६२-६३

अहमदनगर जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदनगर

अध्यक्ष—श्री ग. गो. फडके, अहमदनगर।
उपाध्यक्ष—श्री द. वा. डावरे, भिंगार।
मन्त्री—श्री रा. प. पटवर्धन, अहमदनगर।
सहायक मन्त्री—श्री रा. ता. हिरे, जामगाँव।
कोषाध्यक्ष—श्री सौ. सरस्वतीबाई फड़के, अहमदनगर।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री श. भ. अदुरे, खरवडी-कासार, श्री दि. श्री. देशमुख, पाथर्डी, श्री शेख यूसुफ शेख इब्राहीम, राशीन।

कुलाबा जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रोहा

अध्यक्ष—श्री यशवन्तराव देशमुख, रोहा।
उपाध्यक्ष—श्री दि. गो. आवळसकर, रोहा।
मन्त्री—श्री श. पा. पाध्ये, रोहा।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री न. वि. पोतनीस, नागोठणा, श्री रा. ल. महाडीक श्रीवर्धन।

कोल्हापुर जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, इचलकरंजी

अध्यक्ष—श्री लक्ष्मणराव पाटील।
कोषाध्यक्ष—श्री वि, रा. पापडे, इचलकरजी।
कार्याध्यक्ष—श्री वि रा. थोरात, नूला।
लेखेक्षक—श्री ग. गो. पाटील, इचलकरजी।
मन्त्री—श्री बा. गु कोळी, इचलकरजी।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री वि. रा. थोरात, नूल, श्री ब. आ. पाटील, इचलकरजी, श्री प्र. ना. जोशी, कागल।

जलगाँव जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, जलगाँव

कार्याध्यक्ष—श्री रा. वा. पाटील, जलगाँव।
उपाध्यक्ष—श्री घ. ग. मारखेडे, किन्ही।
कोषाध्यक्ष—श्री सी. म. तिवारी, जलगाँव।
मन्त्री—श्री का. म. पाटील, जलगाँव।
लेखेक्षक—श्री ग. लो. भिरूड़, पिंपळगाँव।

नामक एक प्रारम्भिक हिन्दी परीक्षा वर्धा समितिके तत्वावधानमें सन् १९५७ से संचालित हो रही है। इस परीक्षामें प्रति वर्ष ६ हजारसे भी अधिक परीक्षार्थी महाराष्ट्रसे सम्मिलित होते हैं—अवतक इसके अन्तर्गत १९१४६ परीक्षार्थी लाभ उठा चुके हैं।

सर्वाधिक प्रचारके लिए विशेष पुरस्कारकी योजना

जिलों तथा सभी शहरोंमें वर्षमें सर्वाधिक राष्ट्रभाषा प्रचार कार्य करनेके उपलक्ष्यमें जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको २१ रु. का श्री मोहन पुरस्कार (प्रथम) तथा शहर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको ११ रु. का 'श्री मोहन पुरस्कार' (द्वितीय) सन् १९५९ से देना आरम्भ किया गया है। उसी प्रकार प्राथमिक परीक्षामें सर्वाधिक संख्यामें परीक्षार्थी सम्मिलित करनेवाले जिलोंको "राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन' नामक रु. ११ का प्रथम तथा रु. ७ का द्वितीय पुरस्कार सन् १९६० की परीक्षाओंसे समितिकी ओरसे प्रतिवर्ष देना आरम्भ किया गया।

परीक्षार्थी संख्या एवं प्रचार केन्द्र तथा प्रचारक आदि

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा किए गए प्रचारके प्रयत्नोंके परिणामस्वरूप, प्रति वर्ष करीव २४ हजार परीक्षार्थी सम्मिलित होते हैं।

महाराष्ट्रमें वर्धा समितिकी परीक्षाओंके लिए ३६२ परीक्षा केन्द्र चल रहे हैं। प्रचारकोंकी संख्या १६०२ है। करीव १०० रा. भा. विद्यालय चल रहे हैं। अवतक लगभग ६ लाखके करीव परीक्षार्थी सम्मिलित हो चुके हैं। क्रमसे वर्षवार उन्नतिक्रम इस प्रकार है :—

वर्ष	परीक्षार्थी संख्या	वर्ष	परीक्षार्थी संख्या
१९३७	३१४	१९५०	३८,५८४
१९३८	१,११८	१९५१	३७,७७७
१९३९	४,२२२	१९५२	३२,२२६
१९४०	६,४००	१९५३	२३,०३५
१९४१	१०,५६८	१९५४	२०,०७९
१९४२	५,५५४	१९५५	१९,०४४
१९४३	२२,७१०	१९५६	२१,६५३
१९४४	१८,४९५	१९५७	१८,४०७
१९४५	२१,७४५	१९५८	१८,५२८
१९४६	१५,६८१	१९५९	२१,१६६
१९४७	१८,९८९	१९६०	२२,१२८
१९४८	२३,४४६	१९६१	२३,४४२
१९४९	३३,४६६		

सन् १९६१ अन्त तककी महाराष्ट्रकी कुल परीक्षार्थी-संख्या— ४,८७,७७७

मन्त्री—श्री वि. पं. भगली, बारामती।
सहायक मन्त्री—श्री शं. भ. पंढरी, बारामती।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री वि. पं. भगली, बारामती, श्री अ. प्र. कवीश्वर, लोणावळें, श्री ग. श. वाघ, मालेगाँव–बुद्रुक, श्री श्री. ग. भोसले, बारामती।

रत्नागिरी जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रत्नागिरी

अध्यक्ष—श्री मे. द शिरोडकर, (सम्पादक 'वैनतेय') सावन्तवाड़ी।
सहायक मन्त्री—श्री भा. ज. धैसास, गुहागर, श्री शा. कृ. ताडेल, वेंगुर्ले।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री शा. कृ. ताड़ेल, वेंगुर्ले, श्री वा. स नाईक, सावन्तवाड़ी।

सांगली जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सांगली

अध्यक्ष—श्री सं. नि. पाटील, सांगली।
कार्याध्यक्ष—श्री सौ इंदिराबाई पेंडसे, सागली।
कोषाध्यक्ष—श्री आ दा. कारदगेकर, सागली।
लेखेक्षक—श्री बा ल. तमोली, कोल्यबा–बोबलाद।
मन्त्री—श्री अे दा. काबळे, सागली।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री ता बा. शिन्दे, सागली, श्री र. पा. भाट, पारे, श्री आ दा. कारदगेकर, सागली, श्री ना. ता. महाजन बुधगाँव।

सातारा जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सातारा

अध्यक्ष—श्री प्रा आ. भा मगदूम, सातारा।
उपाध्यक्ष—श्री रा. भा. साळुखे, कराड, श्री श. कृ. वेळमकर, सातारा।
कोषाध्यक्ष—श्री यू चा बागवान, कराड।
लेखेक्षक— प्रा रा. ना क्षीरसागर, सातारा।
प्रधान-मन्त्री—श्री माधवराव धुमाळ, सातारा।
सहायक-मन्त्री—प्रा व. रा. घाटगे, सातारा।
प्रचार-मन्त्री—श्री ज श्री. घाडगे, कामेरी।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—प्रा रा. ना क्षीरसागर, सातारा, श्री प. न. पाटक, सातारा, श्री ना मा. भोसले, फलटण, श्री यू च. बागवान, कराड, श्री ज. श्री घाडगे, कामेरी।

सोलापुर जिला राष्ट्रभाषा समिति, बार्शी

अध्यक्ष—श्री नगराजजी पुनमिया, बार्शी।
उपाध्यक्ष—श्री माधवरावजी बुडूख, बार्शी।

उपमन्त्री—श्री गो. दे. चौधरी, पाडलसा।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री द्वारकाबाई पाटील, जलगाँव, श्री कृ. पा. पाटील, पाडलसा, श्री चुनीभाई रावल, जलगाँव, श्री सु. टो. कोल्हे, वामणोद।

ठाणें जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, ठाणें

अध्यक्ष—श्री कृष्णाप्रसाद उपाध्याय, ठाणें।
कोषाध्यक्ष—श्री कनुभाई गुजराती, ठाणें।
मन्त्री—श्री श्रीराम देसाई, ठाणें।
लेखेक्षक—श्री दि. खं. कानडे, भाईंदर।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री कनुभाई गुजराती, ठाणें, श्री स. वा. तेंडूलकर, वसई, श्री कृष्णप्रसाद उपाध्याय, ठाणें।

धुळें जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, धुळें

अध्यक्ष—श्री पं. स. करंजीकर, शिन्दखेड़ें।
कार्याध्यक्ष—श्री ग. मा. पाठक, धुळें।
कार्यवाह—श्री य. भा. स्वर्गे, नंदुरबार।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री य. भा. स्वर्गे, नंदुरबार, श्री ना. व. चौधरी, नंदुरबार, श्री व. कृ. पवार, तळोदें।

नासिक जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कळवण

अध्यक्ष—श्री पं. ध. पाटील, नासिक।
उपाध्यक्ष—श्री द. वि. केतकर, मनमाड़।
कार्याध्यक्ष—श्री तु. का. पाटील, देवळें।
कोपाध्यक्ष—श्री मु. ग. अहिरे, रावळगाँव।
मन्त्री—श्री भा. अ. चान्दोरकर, निवाणें।
उपमन्त्री—श्री नि. का. शिंपी, कळवण।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री मु. ग. अहिरे, रावळगाँव, श्री मा. अ. चान्दोरकर, कळवण, श्री खं. दा. पाटील, कळवण।

पुणें जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बारामती

अध्यक्ष—श्री शं. के. शिन्दे, मालेगाँव-बुद्रुक।
उपाध्यक्ष—श्री अ. प्र. कवीश्वर, लोणावळें।
कोषाध्यक्ष—श्री प्र. ब. राजोपाध्ये, मालेगाँव-बुद्रुक।

कार्याध्यक्ष—श्री काशीताई कुलकर्णी।
प्रचार-मन्त्री—श्री डॉ. कृ. शे. मार्डीकर।
कोषाध्यक्ष—श्री रमाबाई नातू।
मन्त्री—श्री ज. ना. पंडित।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री द. गो. शिंत्रे।

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणेसे सम्बद्ध संस्थाएँ

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नसिराबाद (जलगांव)

अध्यक्ष—श्री द. गो. मोहरीर।
उपाध्यक्ष—श्री रा. भा. वाणी।
मन्त्री—श्री वा. गो. कुलकर्णी।
उपमन्त्री—श्री ना. ग. भावसार।
सदस्य—श्री के. गो. सन्त, श्री रा. श देशपाडे, श्री भ चिं. घोडकर, श्री जा. रा. ढ्हाके, श्री स. वि धर्माधिकारी, श्री भी. मा पाटील, श्री रा. ग. चौधरी, श्री रा. मो. महाजन, श्री यशवन्त बु. गर्ग, श्री कृ. वि कानुगो, सुश्री मालती द. मोहरीर।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री के गो सन्त।

हिन्दी प्रचार संघ, पुणें ७८८ ब, सदाशिव पेठ, पुणें–२

कार्यकारिणी

अध्यक्ष—प्रा डॉ. न. का धारपुरे।
कार्याध्यक्ष—श्री द. स. थत्ते।
कोषाध्यक्ष—श्री चिं. प खरे।
प्रधान-मन्त्री—श्री ज. ग फगरे।
कार्यकारिणी-सदस्य—श्री द स थत्ते, श्री ज. ग. फगरे, श्री मु. ना. केळकर, श्री श. ज्यो. धामुडे, श्री भ. ना. कानडे, श्री के. वासुदेवराव।

व्यवस्था-समिति

अध्यक्ष—प्रा डॉ. न का धारपुरे।
उपाध्यक्ष—श्री श्रीनिवास रा. मूदन्डा।
सदस्य—श्री न. च. दोरस्वामी, श्री सुब्रह्मण्यम्, श्री लक्ष्मीबाई भाडारी।
शिक्षा-विभाग-प्रमुख—श्री मु ना केळकर।
वाचनालय-प्रमुख—श्री भ ना कानडे।
रास्ता पेठ शाखा-प्रवन्धक—श्री के. वासुदेवराव।

मन्त्री—श्री शं. अ. पाठक, बार्शी।

सहायक मन्त्री—श्री अ. न. सोनार, बार्शी।

प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री शं. अ. पाठक, बार्शी, श्री वि. फ. हरकुणी, अक्कलकोट, श्री दा. वि. आपटे, पंढरपुर।

शहर राष्ट्रभाषा प्रचार समितियाँ

कोल्हापुर शहर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,

अध्यक्ष—श्री मेजर दादासाहेब निंबाळकर।

कार्याध्यक्ष—श्री गो. द. छत्रे।

मन्त्री—श्री वा. गं. महाजन।

प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री बा. कृ. जोशी, कोल्हापुर।

पुणें शहर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणें

अध्यक्ष—श्री श्रीनिवास रामविलास मून्दड़ा।

कोषाध्यक्ष—श्री ग. रा. वर्धे।

मन्त्री—श्री मा. बा. आळेकर।

उपमन्त्री—सुश्री प्रमिला केळकर।

अन्तर्गत-लेखेक्षक—श्री म. मो. रावेतकर।

प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री मा. बा. आळेकर, श्री भ. ना. कानड़े।

सिन्धुनगर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कल्याण-कैम्प

अध्यक्ष—श्री दयालदास सा. हुकुमताणी।

उपाध्यक्ष—श्री थधासिंह गुरुबक्षसिंहाणी।

प्रधानमन्त्री—श्री हरिबक्षराय मोटवानी।

परीक्षा-मन्त्री—श्री दौलतराम तेजवाणी।

प्रचार-मन्त्री—श्री टिलूलाल ठारवाणी।

अर्थ-मन्त्री—श्री कर्तारसिंह नागवाणी।

प्रकाशन-मन्त्री—श्री लक्ष्मणदास वधवा।

प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री मनोहरलाल वनाणी, श्री परमानन्द पंजाबी, श्री द. सा. हुकुमताणी, श्री वसूराम डी. पंजाबी।

सोलापुर शहर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सोलापुर

अध्यक्ष—श्री गोविन्दलालजी अवस्थी।

कार्याध्यक्ष—श्री काशीताई कुलकर्णी।
प्रचार-मन्त्री—श्री डॉ. कृ. शे. मार्डीकर।
कोषाध्यक्ष—श्री रमाबाई नातू।
मन्त्री—श्री ज. ना. पंडित।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री द. गो. शित्रे।

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणेसे सम्बद्ध संस्थाएँ

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नसिराबाद (जलगांव)

अध्यक्ष—श्री द. गो. मोहरीर।
उपाध्यक्ष—श्री रा. भा. वाणी।
मन्त्री—श्री बा. गो. कुलकर्णी।
उपमन्त्री—श्री ना. ग. भावसार।
सदस्य—श्री के. गो सन्त, श्री रा. श देशपांडे, श्री भ चिं. घोडकर, श्री आ. रा. डहाके, श्री स. वि धर्माधिकारी, श्री भी. मा. पाटील, श्री रा. ग. चौधरी, श्री रा मो. महाजन, श्री यशवन्त बु. गर्गे, श्री कृ. वि. कानुगो, सुश्री मालती द. मोहरीर।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री के. गो. सन्त।

हिन्दी प्रचार संघ, पुणे ७८८ ब, सदाशिव पेठ, पुणे–२

कार्यकारिणी

अध्यक्ष—प्रा. डॉ. न. का. घारपुरे।
कार्याध्यक्ष—श्री द. स. थत्ते।
कोषाध्यक्ष—श्री चिं. प खरे।
प्रधान-मन्त्री—श्री ज. ग. फगरे।
कार्यकारिणी-सदस्य—श्री द. स थत्ते, श्री ज. ग. फगरे, श्री मु. ना. केळकर, श्री ग. ज्यो. धामुडे, श्री भ. ना. कानडे, श्री के. वासुदेवराव।

व्यवस्था-समिति

अध्यक्ष—प्रा. डॉ. न. का. घारपुरे।
उपाध्यक्ष—श्री श्रीनिवास रा. मूदन्डा।
सदस्य—श्री न. च दोरस्वामी, श्री सुब्रह्मण्यम्, श्री लक्ष्मीबाई भाडारी।
शिक्षा-विभाग-प्रमुख—श्री मु. ना. केळकर।
वाचनालय-प्रमुख—श्री भ ना कानडे।
रास्ता पेठ शाखा-प्रबन्धक—श्री. के. वासुदेवराव।

अन्तर्गत लेखेक्षक—श्री चं. अ. इनामदार।

प्रान्तीय-समिति-प्रतिनिधि—श्री ज. गं फगरे।

हिन्दी प्रचार संघ, पुणें

महाराष्ट्रके 'पुणें' शहरमें महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके अन्तर्गत यह संस्था हिन्दी प्रचारका कार्य कर रही है। इसकी स्थापना महात्मा गाँधीके हाथों सन् १९३४ में हुई। इसके द्वारा हिन्दी प्रचार का बहुत सुदृढ़ ढंगसे कार्य हो रहा है। प्रारम्भमें दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी परीक्षाओंके लिए विद्यार्थी तैयार किए जाते थे। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापना होनेपर अब इसके द्वारा समितिकी परीक्षाओंके लिए विद्यार्थी भेजे जाते हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धासे यह सम्बद्ध है।

हिन्दी प्रचार करनेवाली एक पुरानी संस्थाके रूपमें इस संस्थाका विशेष महत्त्व है। अबतक कई हजार परीक्षार्थी इसके द्वारा हिन्दीकी शिक्षा ले चुके हैं।

इसका अपना एक बड़ा पुस्तकालय है जिसमें ८००० पुस्तकें हैं। इसमें उच्च हिन्दी परीक्षाओंकी पाठ्य पुस्तकोंका भी एक विभाग है।

सन् १९४० में पुणेंमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनका वार्षिक अधिवेशन हुआ था। तब इसके कार्यकर्ताओंने उसे सम्पन्न करनेमें बड़ी सहायता पहुँचाई थी।

इसके प्रमुख कार्यकर्ताओंमें स्व. ग. र. वैशम्पायन, प्रा. प्र. रा. भुपटकर, स्व. शं. दा. चितले, श्रीमती सोनुताई काळे, श्री ज. गं. फगरे आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

इसके अबतकके अध्यक्षोंमें श्री न. वी. गाड़गील, श्री द. वा. पोतदार, श्री न. का. घारपुरे आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी-मराठी अनुवादमाला भाग १, २, ३, संघने प्रकाशित की हैं।

संघ द्वारा विद्यार्थी सम्मेलन प्रतिवर्ष मनाया जाता है। इसमें मराठीसे हिन्दीमें अनूदित नाटक खेलना एक विशेषता रही है।

सन् १९६० में महाराष्ट्रके तत्कालीन राज्यपाल श्री श्रीप्रकाशजीकी अध्यक्षतामें संस्थाकी रजत जयन्ती मनाई गई।

बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, बम्बई

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापनासे पहले बम्बईमें राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य प्रारम्भ किया गया था। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीने १९१८ में अ. भा. हिन्दी साहित्य सम्मेलनके इन्दौर अधिवेशन-के अवसरपर राष्ट्रभाषा हिन्दीके द्वारा भारतकी राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता सुदृढ़ करनेके लिए हिन्दीके प्रचार कार्यको राष्ट्रकी विधायक प्रवृत्तियोंमें महत्वपूर्ण स्थान दिया। इसका प्रभाव बम्बईपर भी पड़ा। प्रारम्भमें राष्ट्रभाषाके प्रेमसे प्रेरित होकर जिन व्यक्तियोंने हिन्दी प्रचारके लिए बम्बईमें कार्य किया, उनमें श्री विट्ठलभाई पटेल, स्व. जमनालालजी बजाज, श्री राजा गोविन्दलाल बन्सीलाल पित्ती, श्री बेलजी लखनसी

कार्याध्यक्ष—श्री काशीताई कुलकर्णी।
प्रचार-मन्त्री—श्री डॉ. कृ. शे. मार्डीकर।
कोषाध्यक्ष—श्री रमाबाई नातू।
मन्त्री—श्री ज. ना. पंडित।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री द. गो. शित्रे।

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणेसे सम्बद्ध संस्थाएँ

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नसिराबाद (जलगांव)

अध्यक्ष—श्री द. गो. मोहरीर।
उपाध्यक्ष—श्री रा. भा. वाणी।
मन्त्री—श्री वा. गो. कुलकर्णी।
उपमन्त्री—श्री ना. ग. भावसार।
सदस्य—श्री के. गो सन्त, श्री रा श. देशपांडे, श्री भ. चिं. घोडकर, श्री जा. रा. डहाके, श्री स. वि धर्माधिकारी, श्री भी. मा. पाटील, श्री रा. ग. चौधरी, श्री रा. मो. महाजन, श्री यशवन्त बु. गर्गे, श्री कृ. वि. कानुगो, सुश्री मालती द. मोहरीर।
प्रान्तीय समिति-प्रतिनिधि—श्री के. गो. सन्त।

हिन्दी प्रचार संघ, पुणे ७८८ ब, सदाशिव पेठ, पुणे–२

कार्यकारिणी

अध्यक्ष—प्रा. डॉ. न. का. घारपुरे।
कार्याध्यक्ष—श्री द. स थत्ते।
कोषाध्यक्ष—श्री चिं. प खरे।
प्रधान-मन्त्री—श्री ज. ग. फगरे।
कार्यकारिणी-सदस्य—श्री द स. थत्ते, श्री ज. ग. फगरे, श्री मु. ना. केळकर, श्री श. ज्यो. धामुडे, श्री भ. ना. कानडे, श्री के. वासुदेवराव।

व्यवस्था-समिति

अध्यक्ष—प्रा डॉ न. का घारपुरे।
उपाध्यक्ष—श्री श्रीनिवास रा मृदन्डा।
सदस्य—श्री न. च. दोरस्वामी, श्री सुब्रह्मण्यम्, श्री लक्ष्मीबाई भाबारी।
शिक्षा-विभाग-प्रमुख—श्री मु. ना केळकर।
वाचनालय-प्रमुख—श्री भ ना कानडे।
रास्ता पेठ शाखा-प्रबन्धक—श्री. के वासुदेवराव।

अन्तर्गत लेखेक्षक—श्री चं. अ. इनामदार।

प्रान्तीय-समिति-प्रतिनिधि—श्री ज. गं फगरे।

हिन्दी प्रचार संघ, पुणें

महाराष्ट्रके 'पुणें' शहरमें महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके अन्तर्गत यह संस्था हिन्दी प्रचारका कार्य कर रही है। इसकी स्थापना महात्मा गाँधीके हाथों सन् १९३४ में हुई। इसके द्वारा हिन्दी प्रचार का बहुत सुदृढ़ ढंगसे कार्य हो रहा है। प्रारम्भमें दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी परीक्षाओंके लिए विद्यार्थी तैयार किए जाते थे। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापना होनेपर अव इसके द्वारा समितिकी परीक्षाओंके लिए विद्यार्थी भेजे जाते हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धासे यह सम्वद्ध है।

हिन्दी प्रचार करनेवाली एक पुरानी संस्थाके रूपमें इस संस्थाका विशेष महत्त्व है। अबतक कई हजार परीक्षार्थी इसके द्वारा हिन्दीकी शिक्षा ले चुके हैं।

इसका अपना एक बड़ा पुस्तकालय है जिसमें ८००० पुस्तकें हैं। इसमें उच्च हिन्दी परीक्षाओंकी पाठ्य पुस्तकोंका भी एक विभाग है।

सन् १९४० में पुणेंमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनका वार्षिक अधिवेशन हुआ था। तब इसके कार्यकर्ताओंने उसे सम्पन्न करनेमें बड़ी सहायता पहुँचाई थी।

इसके प्रमुख कार्यकर्ताओंमें स्व. ग. र. वैशम्पायन, प्रा. प्र. रा. भुपटकर, स्व. शं. दा. चितले, श्रीमती सोनुताई काळे, श्री ज. गं. फगरे आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

इसके अवतकके अध्यक्षोंमें श्री न. वी. गाड़गील, श्री द. वा. पोतदार, श्री न. का. घारपुरे आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी-मराठी अनुवादमाला भाग १, २, ३, संघने प्रकाशित की हैं।

संघ द्वारा विद्यार्थी सम्मेलन प्रतिवर्ष मनाया जाता है। इसमें मराठीसे हिन्दीमें अनूदित नाटक खेलना एक विशेषता रही है।

सन् १९६० में महाराष्ट्रके तत्कालीन राज्यपाल श्री श्रीप्रकाशजीकी अध्यक्षतामें संस्थाकी रजत जयन्ती मनाई गई।

बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, बम्बई

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापनासे पहले वम्बईमें राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य प्रारम्भ किया गया था। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीने १९१८ में अ. भा. हिन्दी साहित्य सम्मेलनके इन्दौर अधिवेशनके अवसरपर राष्ट्रभाषा हिन्दीके द्वारा भारतकी राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता सुदृढ़ करनेके लिए हिन्दीके प्रचार कार्यको राष्ट्रकी विधायक प्रवृत्तियोंमें महत्वपूर्ण स्थान दिया। इसका प्रभाव वम्वईपर भी पड़ा। प्रारम्भमें राष्ट्रभाषाके प्रेमसे प्रेरित होकर जिन व्यक्तियोंने हिन्दी प्रचारके लिए वम्वईमें कार्य किया, उनमें श्री विट्ठलभाई पटेल, स्व. जमनालालजी वजाज, श्री राजा गोविन्दलाल वन्सीलाल पित्ती, श्री वेलजी लखनसी

नप्पू, स्व. पेरिन बेन केप्टन, डा. ना. सु. हार्डिकर आदिके नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। उन दिनों श्रीकृष्णलालजी वर्मा, श्री भा. ग. जोगलेकरजी तथा श्री ए शंकरन्जी जैसे कर्मठ कार्यकर्ताओका सहयोग प्राप्त हुआ, जिन्होने अनेक कठिनाइयोका सामना कर हिन्दी प्रशिक्षण वर्ग चलाकर राष्ट्रभाषा प्रचारके कार्यका सूत्रपात किया। सन् १९२१ मे स्थानीय कांग्रेस हाउसके अहातेकी कीर्ति बिल्डिगमें कांग्रेसकी ओरसे हिन्दी सीखनेके लिए वर्ग खोला गया। इस वर्गके प्रथम विद्यार्थी स्व. श्री विट्ठलभाई पटेलके भतीजे श्री ईश्वरभाई पटेल थे। फिर अनेको गुजराती, मराठी प्रेमी राष्ट्रभाषा सीखनेके लिए आने लगे। सन् १९२४ के जनवरी महीनेमे बम्बई म्युनिसिपल कार्पोरेशनके द्वारा प्रायोगिक तौरपर हिन्दीकी पढाई शुरू की गई। स्थानीय मारवाड़ी सम्मेलनने हिन्दीकी पढाईमे बडा सहयोग दिया। हिन्दी अध्यापकोको प्रशिक्षित करनेकी ओर भी ध्यान दिया गया।

सन् १९३० का 'नमक सत्याग्रह आन्दोलन' हिन्दीके प्रचार कार्यको बड़ा बल देनेवाला सिद्ध हुआ। १९३१ मे कुछ स्थानीय उत्साही व्यक्तियोने हिन्दी प्रचार सभाकी स्थापना की जिसके अध्यक्ष श्री बेवजी लखनसी नप्पू तथा मन्त्री श्री रा. शकरन् हुए और उनके द्वारा हिन्दी वर्ग शुरू किए गए। १९३५ में उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्दजीकी उपस्थितिमे स्व. जमनालालजी बजाजकी अध्यक्षतामें हिन्दी प्रचार सभाकी स्थापना की गई। इससे हिन्दी-प्रचारके कार्यको सगठित रूप मिला। खार, माटुंगा, गिरगाँव आदि स्थानोमे हिन्दी प्रचारके लिए जो पृथक्-पृथक् वर्ग चलते थे, वे इस सभाके अन्तर्गत हो गए। अबतक इन वर्गोमे दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी परीक्षाओकी पढाईका प्रबन्ध था। १९३६ के जून मासमें ही श्री शकरन्जी को मद्रास जाना पडा अत. संगठकके रूपमे श्री कान्तिलाल जोशी नियुक्त किए गए।

सन् १९३७ में वर्धा समितिकी स्थापनाके अनन्तर बम्बईकी हिन्दी प्रचार सभा इससे सम्बद्ध हुई और बम्बईके विद्यापीठको राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (पूर्वनाम हिन्दी प्रचार समिति) की परीक्षाओके लिए तैयार किया जाने लगा। प्रान्तीय सचालक श्री कान्तिलाल जोशी नियुक्त हुए।

हिन्दीके विकासका इतिहास हमारे स्वतन्त्रता सग्रामसे बहुत कुछ जुडा हुआ है। जैसे-जैसे हमारा स्वतन्त्रता आन्दोलन प्रगति करता गया, वैसे-वैसे हिन्दी का कार्य भी बल पकडता गया। सन् १९४२ में वर्धामें हिन्दुस्तानी प्रचार सभाकी स्थापना हुई। कुछ हिन्दी वर्गोने हिन्दुस्तानीके इस नवीन कार्यको अपनाना चाहा पर अधिकाश वर्गोने तथा राष्ट्रभाषा प्रचारकोने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके कार्यको ही चालू रखना उचित समझा। १० अक्तूबर, सन् १९४६ को बम्बईके प्रचारको आदिकी एक बैठक स्थानीय आर्यन एज्युकेशन सोसाइटी हायस्कूलमे बुलाई गई, जिसमे यह निर्णय हुआ कि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाका कार्य ही चालू रखा जाए। फलस्वरूप बम्बईमे हिन्दी प्रचारका जो कार्य चल रहा था, उसकी दो धाराएँ बनी। देवनागरी लिपिके द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाका जो राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य था वह बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाके अन्तर्गत हुआ और अरबी लिपिमें एव देवनागरीके साथ हिन्दुस्तानी का जो काम शुरू हुआ, वह हिन्दुस्तानी प्रचार सभाके अन्तर्गत हुआ।

बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाके अध्यक्ष सन् १९४५ से १९५५ तक श्री गोविन्दलाल बन्सीलाल रहे। उनके पश्चात् माननीय श्री मगलदास जी पकवासा सन् १९५६से १९५८ तक अध्यक्ष रहे। इनके पश्चात् महाराष्ट्र राज्य विधान सभाके भू पू अध्यक्ष मान. श्री स. ल. सिलम सभाके वर्तमान अध्यक्ष है।

परीक्षार्थी-संख्या

सभाके तत्वावधानमें प्रतिवर्ष २८ हजारसे भी अधिक परीक्षार्थी, समितिकी विभिन्नप रीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं। अबतक सभाके तत्वावधानमें करीब ४ लाख परीक्षार्थी वर्धा समितिकी परीक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके हैं। परीक्षार्थी उन्नतिक्रम तथा शिक्षणके प्रचार आदिका प्रारंभसे अबतकका ब्यौरा वर्षानुसार नीचे दिया जा रहा है।

उन्नतिक्रम

हिन्दी प्रचारके लिए हिन्दी-कक्षाओंका आयोजन प्रारम्भमें किया जाता रहा। हिन्दीका पढ़ना क्रमबद्ध हो इस दृष्टिसे परीक्षा प्रणालीको अधिक महत्व दिया गया। हिन्दी प्रचार कार्यकी प्रगति निम्नलिखित परीक्षार्थी-संख्याके आकड़ोंसे स्पष्ट होगी—

वर्ष	परीक्षार्थी-संख्या	परीक्षा-केन्द्र	शिक्षण-केन्द्र	राष्ट्रभाषा-प्रचारक
१९३५	४३०	४	१५	३१
१९३६	५५७	५	१५	३५
१९३७	६३०	६	१८	४४
१९३८	१,१४०	७	२२	५२
१९३९	२,१०८	८	४०	६५
१९४०	२,०४४	८	४२	६८
१९४१	३,३२५	१०	५५	८२
१९४२	१,७३९	१०	५८	८७
१९४३	४,७४९	१४	६५	९३
१९४४	३,९२२	१४	६८	९८
१९४५	४,३३७	१५	७७	१०४
१९४६	५,४७१	१७	८२	१३९
१९४७	८,३४४	१८	८८	१५९
१९४८	१३,३०८	२२	११२	२१५
१९४९	१५,५११	२३	१३५	२८७
१९५०	२०,६८२	२५	१५५	३१५
१९५१	२१,८३१	२८	१८०	३८०
१९५२	२०,२५१	३५	१८२	४६३
१९५३	१५,९०९	३६	१८५	५३६
१९५४	१६,४५६	३७	१८६	५८०
१९५५	२१,५८५	३८	१९०	६७४
१९५६	२९,९१३	४६	१९५	७४८

सभाका कार्यक्षेत्र

सभा द्वारा हिन्दीका जो प्रचार कार्य हो रहा है, वह बम्बई एवं उसके उपनगरोंमें विस्तृत रूपसे फैला हुआ है। कार्य संचालनकी दृष्टिसे सभाके कार्यक्षेत्रके निम्नानुसार विभाग किए गए हैं :—

(१) बम्बई दक्षिण विभाग, (२) बम्बई उत्तर विभाग, (३) बम्बई उपनगर (पश्चिम रेल्वे) विरारतक, (४) बम्बई उपनगर (मध्य रेल्वे) मुलुन्द तक।

सभाका कार्यालय गिरगाँव, कांग्रेस हाऊस, विट्ठल सदनमें हैं।

सभाका संगठन

बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा रजिस्टर्ड संस्था है। उसमें निम्नलिखित श्रेणियोंके सदस्य हैं :—

संरक्षक, पोषक, आजीवन, साधारण, प्रचारक, केन्द्र-व्यवस्थापक, उपाधिधारी, अधिकृत उपाधिधारी तथा सम्मानित। सभाकी सदस्य संख्या १२०० से अधिक है। सभाके संगठनमें कार्य समिति तथा व्यवस्थापिका समिति दो प्रमुख समितियाँ हैं।

सभाके वर्तमान पदाधिकारी

अध्यक्ष—श्री स. ल. सिलम (भूतपूर्व अध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य विधान सभा)

उपाध्यक्ष—श्री सुलोचना मोदी (भूतपूर्व मेयर बम्बई नगरपालिका)

उपाध्यक्ष—श्री रामसहाय पाण्डेय (भूतपूर्व उपाध्यक्ष, बम्बई प्रदेश कांग्रेस समिति तथा वर्तमान लोकसभाके सदस्य।)

कोषाध्यक्ष—श्री शिवकुमार भुवालका।

मन्त्री-संचालक—श्री कान्तिलाल जोशी।

शिक्षण-केन्द्र, विद्यालय, महाविद्यालय

सभाके अन्तर्गत मान्य शिक्षण केन्द्र विद्यालय एवं महाविद्यालय राष्ट्रभाषाकी पढ़ाईके लिए चलाए जाते हैं। शिक्षण केन्द्रोंकी संख्या ३० तथा विद्यालयोंकी संख्या ७४ है। १६ महाविद्यालय भी सभाके तत्वावधानमें चल रहे हैं। इनमें राष्ट्रभाषा रत्नकी पढ़ाईकी व्यवस्था है।

परीक्षा-केन्द्र

वर्षमें दो बार समितिकी राष्ट्रभाषा रत्न तककी परीक्षाओंकी व्यवस्था विभिन्न केन्द्रोंमें होती है। ५१ राष्ट्रभाषा परीक्षा केन्द्र बम्बईके सभी विभागोंमें फैले हुए हैं।

कान्तिलाल कारिया सर्वप्रथम राष्ट्रभाषा विद्यालय विजय पद्म

सभाकी ओरसे वर्ष सन् १९६० से यह विजय पद्म उस प्रचार केन्द्रको दिया जाता है जिसकी दो

परीक्षार्थी-संख्या

सभाके तत्वावधानमें प्रतिवर्ष २८ हजारसे भी अधिक परीक्षार्थी, समितिकी विभिन्नप रीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं। अबतक सभाके तत्वावधानमें करीब ४ लाख परीक्षार्थी वर्धा समितिकी परीक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके हैं। परीक्षार्थी उन्नतिक्रम तथा शिक्षणके प्रचार आदिका प्रारंभसे अबतकका ब्यौरा वर्षानुसार नीचे दिया जा रहा है।

उन्नतिक्रम

हिन्दी प्रचारके लिए हिन्दी-कक्षाओंका आयोजन प्रारम्भमें किया जाता रहा। हिन्दीका पढ़ना क्रमबद्ध हो इस दृष्टिसे परीक्षा प्रणालीको अधिक महत्व दिया गया। हिन्दी प्रचार कार्यकी प्रगति निम्नलिखित परीक्षार्थी-संख्याके आकड़ोंसे स्पष्ट होगी—

वर्ष	परीक्षार्थी-संख्या	परीक्षा-केन्द्र	शिक्षण-केन्द्र	राष्ट्रभाषा-प्रचारक
१९३५	४३०	४	१५	३१
१९३६	५५७	५	१५	३५
१९३७	६३०	६	१८	४४
१९३८	१,१४०	७	२२	५२
१९३९	२,१०८	८	४०	६५
१९४०	२,०४४	८	४२	६८
१९४१	३,३२५	१०	५५	८२
१९४२	१,७३९	१०	५८	८७
१९४३	४,७४९	१४	६५	९३
१९४४	३,९२२	१४	६८	९८
१९४५	४,३३७	१५	७७	१०४
१९४६	५,४७१	१७	८२	१३९
१९४७	८,३४४	१८	८८	१५९
१९४८	१३,३०८	२२	११२	२१५
१९४९	१५,५११	२३	१३५	२८७
१९५०	२०,६८२	२५	१५५	३१५
१९५१	२१,८३१	२८	१८०	३८०
१९५२	२०,२५१	३५	१८२	४६३
१९५३	१५,९०९	३६	१८५	५३६
१९५४	१६,४५६	३७	१८६	५८०
१९५५	२१,५८५	३८	१९०	६७४
१९५६	२९,९१३	४६	१९५	७४८

सभाका कार्यक्षेत्र

सभा द्वारा हिन्दीका जो प्रचार कार्य हो रहा है, वह बम्बई एवं उसके उपनगरोंमें विस्तृत रूपसे फैला हुआ है। कार्य संचालनकी दृष्टिसे सभाके कार्यक्षेत्रके निम्नानुसार विभाग किए गए हैं :—

(१) बम्बई दक्षिण विभाग, (२) बम्बई उत्तर विभाग, (३) बम्बई उपनगर (पश्चिम रेल्वे) विरारतक, (४) बम्बई उपनगर (मध्य रेल्वे) मुलुन्द तक।

सभाका कार्यालय गिरगाँव, काँग्रेस हाउस, विट्ठल सदनमें है।

सभाका संगठन

बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा रजिस्टर्ड संस्था है। उसमें निम्नलिखित श्रेणियोंके सदस्य हैं :—

संरक्षक, पोषक, आजीवन, साधारण, प्रचारक, केन्द्र-व्यवस्थापक, उपाधिधारी, अधिकृत उपाधिधारी तथा सम्मानित। सभाकी सदस्य संख्या १२०० से अधिक है। सभाके संगठनमें कार्य समिति तथा व्यवस्थापिका समिति दो प्रमुख समितियाँ हैं।

सभाके वर्तमान पदाधिकारी

अध्यक्ष—श्री स. ल सिलम (भूतपूर्व अध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य विधान सभा)

उपाध्यक्ष—श्री सुलोचना मोदी (भूतपूर्व मेयर बम्बई नगरपालिका)

उपाध्यक्ष—श्री रामसहाय पाण्डेय (भूतपूर्व उपाध्यक्ष, बम्बई प्रदेश काँग्रेस समिति तथा वर्तमान लोकसभाके सदस्य।)

कोषाध्यक्ष—श्री शिवकुमार भुवालका।

मन्त्री-संचालक—श्री कान्तिलाल जोशी।

शिक्षण-केन्द्र, विद्यालय, महाविद्यालय

सभाके अन्तर्गत मान्य शिक्षण केन्द्र विद्यालय एवं महाविद्यालय राष्ट्रभाषाकी पढाईके लिए चलाए जाते हैं। शिक्षण केन्द्रोंकी संख्या ३० तथा विद्यालयोंकी संख्या ७४ है। १६ महाविद्यालय भी सभाके तत्वावधानमें चल रहे हैं। इनमें राष्ट्रभाषा रत्नकी पढाईकी व्यवस्था है।

परीक्षा-केन्द्र

वर्षमें दो बार समितिकी राष्ट्रभाषा रत्न तककी परीक्षाओंकी व्यवस्था विभिन्न केन्द्रोंमें होती है। ५१ राष्ट्रभाषा परीक्षा केन्द्र बम्बईके सभी विभागोंमें फैले हुए हैं।

कान्तिलाल कारिया सर्वप्रथम राष्ट्रभाषा विद्यालय विजय पद्म

सभाकी ओरसे वर्ष सन् १९६० से यह विजय पद्म उस प्रचार केन्द्रको दिया जाता है जिसकी दो

सत्रोंकी परीक्षाओंकी परीक्षार्थी संख्या सर्वाधिक है। अभी १९६०–६१ के लिए इस विजयपद्म का विजेता राष्ट्रभाषा महाविद्यालय, परेल रहा है।

प्राथमिक परीक्षा

सभाकी ओरसे सितम्बर सन् १९५६ रा. भा. प्रारम्भिकसे पूर्व 'राष्ट्रभाषा प्राथमिक' परीक्षाका आयोजन किया गया है। इसमें करीव ५६ हजार से अधिक परीक्षार्थी प्रतिवर्ष सम्मिलित होते हैं। अवतक करीव २१ हजार परीक्षार्थी इस परीक्षामें सम्मिलित हो चुके हैं।

गाँधी जयन्ती निबन्ध स्पर्धा

सभा द्वारा प्रतिवर्ष राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजीकी पुण्यस्मृतिमें उनकी जयन्तीके उपलक्षमें हिन्दीमें गाँधी जयन्ती निबन्ध स्पर्धाका आयोजन किया जाता है। यह स्पर्धा उच्च एवं निम्न कक्षाओंके विद्यार्थियोंके लिए इस प्रकार 'क' और 'ख' श्रेणियोंमें विभाजित की गई हैं। इसमें राष्ट्रभाषाके वर्गोंके विद्यार्थी, स्थानीय स्कूल, कालिजोंके विद्यार्थी प्रतिवर्ष काफी संख्यामें सम्मिलित होते हैं। इस स्पर्धामें प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय आनेवालोंको क्रमशः २५, १५ तथा १० रु. पुरस्कार स्वरूप दिये जाते हैं।

राष्ट्रभाषा शिविर

राष्ट्रभाषा प्रचारकगण एक जगह एकत्रित होकर विचार-विनिमय कर सकें, इस उद्देश्यसे राष्ट्रभाषा शिबिरका आयोजन सन् १९५९ से किया जा रहा है। इस अवसरपर गण्यमान्य विद्वानोंके सारगर्भित भाषण एवं राष्ट्रभाषाके सम्बन्धमें व्यावहारिक ज्ञान तथा प्रत्यक्ष परिचय कराया जाता है।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका चौथा अधिवेशन

सन् १९५२ में बम्बईमें अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका चौथा अधिवेशन माननीय श्री कन्हैयालाल मा. मुन्शीकी अध्यक्षतामें सम्पन्न हुआ। इस अवसरपर महात्मा गाँधी पुरस्कार वेदमूर्ति श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीकी सेवामें सर्मपित किया गया।

राष्ट्रभाषा-भवन योजना

सभाके बढ़ते हुए कार्यको देखते हुए आज जो स्थान कार्यालयके लिए उसके पास है, वह पर्याप्त नहीं है। हिन्दी विद्यालय, वृहद् पुस्तकालय, वाचनालय, प्रकाशन, रंगमंच आदि प्रवृत्तियोंको सुचारु रूपसे सम्पन्न करनेके लिए बम्बईमें राष्ट्रभाषा भवनका निर्माण करना नितान्त आवश्यक हो गया है। इसके लिए भवन निधिमें करीव २५ हजार रूपये एकत्रित भी हो चुके हैं। एक भवन समितिका आयोजन किया गया है जिसमें प्रचारक, केन्द्र-व्यवस्थापक, आजीवन पोषक, संरक्षक आदि सभी श्रेणी के सदस्य हैं। इस समितिमें व्यवस्थापिका समिति, कार्य समिति एवं कुछ विशिष्ट व्यक्तियोंको भी सम्मिलित किया गया है।

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालयसे प्राप्त अनुदान

सभाने केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालयको हिन्दी प्रचारकी एक योजना बनाकर भेजी थी, जिसपर विचार कर केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालयने ६३०० रु की सहायता शिविर, पुस्तकालय एव स्पर्धाओ आदिके लिए स्वीकार की। इस प्रकारकी सहायता सरकारकी ओरसे प्रथमबार प्राप्त हुई है।

राष्ट्रभाषा पुस्तकालय

सभाने राष्ट्रभाषा पुस्तकालयकी व्यवस्था सन १९४७ से की है। देशके विभाजनके पश्चात् राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, करांचीके पुस्तकालयकी पुस्तके श्री सूर्यप्रकाश बम्बई ले आए और उन्होंने ये पुस्तके सभाको समर्पित की। इन पुस्तकोसे पुस्तकालयका आरम्भ हुआ। धीरे-धीरे इसमें और पुस्तकें खरीदकर रखी गई। इस समय हिन्दी साहित्यके सभी अगोपर पुस्तकालयमें ३१९४ पुस्तके हैं। इस वर्ष केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालयसे पुस्तकोके लिए रु. ३००० का अनुदान प्राप्त हुआ। इस रकमसे पुस्तकें खरीदकर इसे और समृद्ध किया गया। इसमें पाठ्च पुस्तक विभाग भी रखा गया है। इसमें साहित्य विशारद, साहित्य रत्न, राष्ट्रभाषा रत्न, राष्ट्रभाषा आचार्य, बी. ए, एम. ए. आदि परीक्षाओकी पाठ्य पुस्तकोकी अधिक प्रतियाँ रखी गई हैं। राष्ट्रभाषा प्रचारकोको विशेष सुविधाएँ दी जाती हैं।

विविध प्रवृत्तियाँ, स्पर्धाएँ

सभाकी ओरसे विविध स्पर्धाओका आयोजन, किया जाता है उनमें प्रमुख ये हैं—

(१) भाषण प्रतियोगिता—यह स्पर्धा राष्ट्रभाषा विद्यालयोमें होती है। जो विद्यालय सर्व प्रथम आता है उसे सेठ गोवर्धनदास वल्लभदास चतुर्भुज विजयपद्म दिया जाता है। (२) नागरी सुलेखन स्पर्धा, (३) काव्य-पठन स्पर्धा, (४) काव्य-रचना स्पर्धा, (५) नाट्च-स्पर्धा।

स्पर्धाओमे जो सर्वप्रथम, द्वितीय तथा तृतीय आते है उन्हे सभाकी ओरसे पुरस्कार दिए जाते हैं।

हिन्दी-दिवस—प्रतिवर्ष १४ सितम्बरको 'हिन्दी-दिवस' बडे उत्साहसे मनाया जाता है। सभाकी प्रेरणासे स्थानीय स्कूल कालेज भी 'हिन्दी-दिवस' को उत्साहसे मनाते है।

राष्ट्रभाषा स्नेह-सम्मेलन—बम्बईके सभी राष्ट्रभाषा प्रचारक एक मचपर एकत्रित हो, इस दृष्टिसे प्रति वर्ष सभाकी ओरसे राष्ट्रभाषा स्नेह-सम्मेलनका आयोजन किया जाता है। इसमें विद्वानोके भाषण, सास्कृतिक कार्यक्रम, सहभोजन आदि कार्यक्रम रहते है।

पदवीदान समारोह—सभाकी ओरसे प्रतिवर्ष कोविद उपाधिके वितरणके लिए पदवीदान समारोह आयोजित किया जाता है। इस अवसरपर दीक्षान्त भाषणके लिए हिन्दीके विद्वानोको तथा समाजसेवियोको आमन्त्रित किया जाता है। अबतक जितनके दीक्षान्त भाषण हुए हैं, उनके नाम इस प्रकार है :—

डॉ राजेन्द्रप्रसाद, राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टण्डन, सेठ जमनालालजी बजाज, आचार्य विनोबा भावे, आचार्य काकासाहब कालेलकर, श्रीमती सरोजनी नायडू, श्री रामधारीसिंह 'दिनकर', सुश्री महादेवी वर्मा, सेठ गोविन्ददास, महापडित श्री राहुल साकृत्यायन, डॉ बलदेवप्रसाद, स्व. बालासाहब खेर, श्री यशवन्तराव चव्हाण, श्री मामा वरेरकर।

सभा, अनेक संघर्षोंके बीच बम्बईमें कार्य कर रही है। लगभग १००० राष्ट्रभाषा प्रचारक निष्ठापूर्वक सेवाभावसे इस राष्ट्रीय कार्यमें सभाको अपना सहयोग दे रहे हैं। शिक्षण संस्थाएँ, बम्बई नगरपालिका तथा स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्ति सभाको अपना सहयोग दे रहे हैं फलस्वरूप बम्बईमें हिन्दी प्रचारका कार्य दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। सन् १९३६ में जहाँ केवल ४३० परीक्षार्थी बम्बईसे हिन्दीकी परीक्षाओंमें बैठे थे, वहाँ आज यह संख्या प्रतिवर्ष लगभग २९–३० हजार तक पहुँची है।

राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, माटुंगा

यह संस्था बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाके अन्तर्गत ३१ वर्षोंसे हिन्दी प्रचारका कार्य बम्बई में कर रही है। शुरूमें दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी परीक्षाओंके लिए यहाँ विद्यार्थी तैयार किए जाते थे, बादमें जबसे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापना, हुई इसके द्वारा समितिकी परीक्षाओंके लिए विद्यार्थी तैयार किए जा रहे हैं।

अबतक इसके द्वारा ३०००० विद्यार्थी हिन्दीकी शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। सन् १९५८ में सभाने अपनी रजत जयन्ती बड़े समारोहसे मनाई। उस समय हिन्दीके ख्यात कवि और नाटककार डॉ. रामकुमार वर्मा अध्यक्षके रूपमें आमन्त्रित किए गए थे।

सभाके कार्यक्रमोंके लिए हिन्दीके ख्यातनामा लेखक सेठ गोविन्ददासजी, रामधारी सिंह 'दिनकर', पं. सुदर्शनजी, श्री महावीर अधिकारी आदिका सहयोग मिला है।

सभाके पास एक अच्छा पुस्तकालय है जिसमें हिन्दी साहित्यके सभी अंगोंकी पुस्तकें संग्रहीत हैं।

सभा एक रजिस्टर्ड संस्था है। इसकी स्थापनाके आरम्भके कालमें श्री आर. शंकरन्, श्री एच. के. गुण्डूराव, श्री एस. कृष्ण अय्यर, आदिका इसे पूरा सहयोग मिला है। इसके कार्यकर्ता बड़े उत्साहसे हिन्दी प्रचारका कार्य कर रहे हैं। प्रतिवर्ष लगभग १००० छात्र सभाके वर्गोंमें हिन्दी सीखते हैं।

इसके वर्तमान प्रमुख कार्यकर्ताओंमें श्री टी. एम. एम. मणिक्कर, श्री पी. एस. गोपाल कृष्णन्, श्री के. एस. राघवन, श्री जी. एस. मणि, तथा श्री एस लक्ष्मणके नाम उल्लेखनीय है।

विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुर

सन १९३७–३८ में वर्धा समितिकी स्थापनाके अनन्तर विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका आरम्भ हुआ। इसका कार्यक्षेत्र विदर्भके ८ जिलों तक ही प्रारम्भ में मर्यादित रहा। पहले अँग्रेजी शासनके समय तक सी. पी. एण्ड बेरार नामसे यह प्रान्त प्रसिद्ध था। नागपुर इसकी राजधानी थी।

विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी जो पहली प्रबन्ध कारिणी समिति निर्मित हुई थी, उसके प्रथम मन्त्री-संचालक अध्यक्ष थे विदर्भके त्यागमूर्ति नेता स्व. वीर वामनराव जोशी और अमरावतीकी सुप्रसिद्ध व्यायाम शालाके संचालक वैद्य श्री हरिहररावजी देशपांडे और उसमें सदस्यके रूपमें स्वर्गीय कृष्णदासजी जाजू, स्व. कानडे शास्त्रीजी, ब्रिजलाल बियाणीजी, स्व. तात्याजी वझलवार, श्रीमन्नारायण, आचार्य दादा धर्माधिकारी आदि प्रमुख व्यक्ति थे। इस प्रान्तीय समितिका कार्यालय १९४५ तक अमरावतीमें रहा। तबतक विदर्भमें १०–१२ प्रचार केन्द्र और १०–१२ ही प्रमाणिक प्रचारक थे। लगभग हजार-डेढ़-हजार

परीक्षार्थी वर्धा समितिकी परीक्षाओमे बैठते थे। सन् १९४५ की जूनमें १८–१९ वर्ष तक मद्रासकी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभामे कार्य किए हुए अनुभवी श्री हृषीकेशजी शर्माको विदर्भका समस्त हिन्दी प्रचार कार्य सगठित और व्यापक बनानेके लिए प्रान्तीय सचालकका उत्तरदायित्व सौंपा। श्री शर्माजी गाँधीजीके आदेशानुसार सन् १९१८ से १९३५ तक मद्रास सभामे विभिन्न विभागीय कार्योंका संचालन करते रहे और १९३५-३६ तक बम्बईमे श्री के. एम. मुन्शीजी और स्व. प्रेमचन्दजीके साथ रहकर उन्होंने बम्बईमें हिन्दी प्रचार कार्यमे तथा 'हस' पत्रिकाके प्रकाशनमें हाथ बँटाया। १९३६ मे वर्धा समितिकी स्थापनाके साथ ही शर्माजीका सक्रिय सहयोग वर्धा समितिको प्राप्त हुआ। वे तबसे निष्ठापूर्वक सेवामें सलग्न हैं।

विदर्भ नागपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्यालय सन् १९४६ में नागपुर लाया गया। १९४६ से प्रान्तके मराठी भाषी क्षेत्रोमे केन्द्रोकी, प्रचारकोकी तथा राष्ट्रभाषा प्रचार सम्बन्धी प्रवृत्तियोंकी सख्या बढी। अनेक सहयोगी कार्यकर्ताओने राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यको आगे बढाया। श्रीमती शारदादेवी शर्मा, स्व श्रीमती अनुसूयाबाई काळे, स्व काकासाहब पुराणिक, पडित प्रयागदत्तजी शुक्ल आदिका सक्रिय सहयोग मिला और नागपुरमे राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यकी लोक प्रियता बढ़ी। १९४६ में नागपुरमें कार्यालय आनेके बाद न्यायमूर्ति डॉ भवानीशकर नियोगी सर्वानुमतिसे (नागपुर विश्वविद्यालयके भू. पू. कुलगुरु एव सेवानिवृत्त चीफ जस्टिस) विदर्भ-नागपुर रा. भा. प्र समितिके अध्यक्ष बने और तबसे वे इस पदको सुशोभित कर रहे हैं।

कार्य विस्तार

विदर्भ-नागपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके अन्तर्गत कार्य और व्यवस्थाकी दृष्टिसे कार्य विभाजन निम्नलिखित ८ जिलोमे किया गया है :—

(१) अमरावती, (२) अकोला, (३) यवतमाल, (४) बुलढाणा (५) नागपुर, (६) भडारा, (७) चाँदा और (८) वर्धा। इन जिलोमें गत २५ वर्षोसे यह सस्था हिन्दीतर भाषी लोगोमे हिन्दीका प्रचार कार्य कर रही है। अब यह सस्था रजिस्टर्ड हो गई है और सरकार मान्य है। १९५१ से जब से यह सस्था रजिस्टर्ड बनी तबसे ही सरकार इसे प्रतिवर्ष ५०००) वार्षिक सहायता देती है। १९५६ में विदर्भके ८ जिले बम्बई-महाराष्ट्र राज्यमे सम्मिलित हुए। महाराष्ट्र सरकारने वह ५००० रु का पुराने मध्यप्रदेशका अनुदान चालू रखा और ५००० रु का यह वार्षिक अनुदान प्रतिवर्ष मिल रहा है। अब विदर्भ-नागपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका नाम राज्य पुनर्रचनाके बाद विदर्भ-राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुर कर दिया गया।

अनुदान

विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुरको पुरानी मध्यप्रदेश सरकारसे अनुदानमें बहुत अच्छे मौकेकी १ एकड जमीन कार्यालय भवन निर्माणके लिए सन् १९५६ के सितम्बर मासमे मिली थी। भू पू. राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्रबाबूने ता १३–९–६० को भवनकी आधारशिला रखी। उस सकल्पित भवनकी एक मजिल बनकर तैयार हो चुकी है। दूसरी मजिल शीघ्र पूरी हो जाएगी। इसमे कुल डेढ लाख रुपया लगा। ३०,००० रुपये केन्द्रीय सरकारसे भवनके लिए अनुदान स्वरूप मिल चुका है। वर्धा समितिने १५ हजार रुपये भवन निर्माण सहायतामें दिये २५००० रुपये नागपुरसे एकत्रित हुए।

सभा, अनेक संघर्षोंके वीच वम्बईमें कार्य कर रही है। लगभग १००० राष्ट्रभाषा प्रचारक निष्ठा-पूर्वक सेवाभावसे इस राष्ट्रीय कार्यमें सभाको अपना सहयोग दे रहे हैं। शिक्षण संस्थाएँ, वम्बई नगरपालिका तथा स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्ति सभाको अपना सहयोग दे रहे हैं फलस्वरूप वम्बईमें हिन्दी प्रचारका कार्य दिनोंदिन वढ़ता जा रहा है। सन् १९३६ में जहाँ केवल ४३० परीक्षार्थी वम्बईसे हिन्दीकी परीक्षाओंमें बैठे थे, वहाँ आज यह संख्या प्रतिवर्ष लगभग २९–३० हजार तक पहुँची है।

राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, माटुंगा

यह संस्था वम्वई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाके अन्तर्गत ३१ वर्षोंसे हिन्दी प्रचारका कार्य वम्वई में कर रही है। शुरूमें दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी परीक्षाओंके लिए यहाँ विद्यार्थी तैयार किए जाते थे, वादमें जवसे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापना, हुई इसके द्वारा समितिकी परीक्षाओंके लिए विद्यार्थी तैयार किए जा रहे हैं।

अवतक इसके द्वारा ३०००० विद्यार्थी हिन्दीकी शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। सन् १९५८ में सभाने अपनी रजत जयन्ती वड़े समारोहसे मनाई। उस समय हिन्दीके ख्यात कवि और नाटककार डॉ. रामकुमार वर्मा अध्यक्षके रूपमें आमन्त्रित किए गए थे।

सभाके कार्यक्रमोंके लिए हिन्दीके ख्यातनामा लेखक सेठ गोविन्ददासजी, रामधारी सिंह 'दिनकर', पं. सुदर्शनजी, श्री महावीर अधिकारी आदिका सहयोग मिला है।

सभाके पास एक अच्छा पुस्तकालय है जिसमें हिन्दी साहित्यके सभी अंगोंकी पुस्तकें संग्रहीत हैं।

सभा एक रजिस्टर्ड संस्था है। इसकी स्थापनाके आरम्भके कालमें श्री आर. शंकरन्, श्री एच. के. गुण्डूराव, श्री एस. कृष्ण अय्यर, आदिका इसे पूरा सहयोग मिला है। इसके कार्यकर्ता वड़े उत्साहसे हिन्दी प्रचारका कार्य कर रहे हैं। प्रतिवर्ष लगभग १००० छात्र सभाके वर्गोंमें हिन्दी सीखते हैं।

इसके वर्तमान प्रमुख कार्यकर्ताओंमें श्री टी. एम. एम. मणिक्कर, श्री पी. एस. गोपाल कृष्णन्, श्री के. एस. राघवन, श्री जी. एस. मणि, तथा श्री एस लक्ष्मणके नाम उल्लेखनीय है।

विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुर

सन १९३७–३८ में वर्धा समितिकी स्थापनाके अनन्तर विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका आरम्भ हुआ। इसका कार्यक्षेत्र विदर्भके ८ जिलों तक ही प्रारम्भ में मर्यादित रहा। पहले अँग्रेजी शासनके समय तक सी. पी. एण्ड बेरार नामसे यह प्रान्त प्रसिद्ध था। नागपुर इसकी राजधानी थी।

विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी जो पहली प्रबन्ध कारिणी समिति निर्मित हुई थी, उसके प्रथम मन्त्री-संचालक अध्यक्ष थे विदर्भके त्यागमूर्ति नेता स्व. वीर वामनराव जोशी और अमरावतीकी सुप्रसिद्ध व्यायाम शालाके संचालक वैद्य श्री हरिहररावजी देशपांडे और उसमें सदस्यके रूपमें स्वर्गीय कृष्णदासजी जाजू, स्व. कानडे शास्त्रीजी, ब्रिजलाल वियाणीजी, स्व. तात्याजी वझलवार, श्रीमन्नारायण, आचार्य दादा धर्माधिकारी आदि प्रमुख व्यक्ति थे। इस प्रान्तीय समितिका कार्यालय १९४५ तक अमरावतीमें रहा। तबतक विदर्भमें १०–१२ प्रचार केन्द्र और १०–१२ ही प्रमाणिक प्रचारक थे। लगभग हजार-ड़ेढ़-हजार

परीक्षार्थी वर्धा समितिकी परीक्षाओमे बैठते थे। सन् १९४५ की जूनमें १८-१९ वर्ष तक मद्रासकी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभामे कार्य किए हुए अनुभवी श्री हृषीकेशजी शर्माको विदर्भका समस्त हिन्दी प्रचार कार्य सगठित और व्यापक बनानेके लिए प्रान्तीय संचालकका उत्तरदायित्व सौपा। श्री शर्माजी गाँधीजीके आदेशानुसार सन् १९१८ से १९३५ तक मद्रास सभामे विभिन्न विभागीय कार्योंका संचालन करते रहे और १९३५-३६ तक बम्बईमे श्री के. एम. मुन्शीजी और स्व प्रेमचन्दजीके साथ रहकर उन्होने बम्बईमे हिन्दी प्रचार कार्यमे तथा 'हंस' पत्रिकाके प्रकाशनमे हाथ बँटाया। १९३६ मे वर्धा समितिकी स्थापनाके साथ ही शर्माजीका सक्रिय सहयोग वर्धा समितिको प्राप्त हुआ। वे तबसे निष्ठापूर्वक सेवामे सलग्न हैं।

विदर्भ नागपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्यालय सन् १९४६ में नागपुर लाया गया। १९४६ से प्रान्तके मराठी भाषी क्षेत्रोमे केन्द्रोकी, प्रचारकोकी तथा राष्ट्रभाषा प्रचार सम्बन्धी प्रवृत्तियोकी सख्या बढी। अनेक सहयोगी कार्यकर्ताओने राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यको आगे बढाया। श्रीमती शारदादेवी शर्मा, स्व श्रीमती अनुसूयाबाई काळे, स्व काकासाहब पुराणिक, पडित प्रयागदत्तजी शुक्ल आदिका सक्रिय सहयोग मिला और नागपुरमे राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यकी लोक प्रियता बढ़ी। १९४६ में नागपुरमे कार्यालय आनेके बाद न्यायमूर्ति डॉ भवानीशकर नियोगी सर्वानुमतिसे (नागपुर विश्वविद्यालयके भू. पू. कुलगुरु एव सेवानिवृत्त चीफ जस्टिस) विदर्भ-नागपुर रा. भा. प्र. समितिके अध्यक्ष बने और तबसे वे इस पदको सुशोभित कर रहे हैं।

कार्य विस्तार

विदर्भ-नागपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके अन्तर्गत कार्य और व्यवस्थाकी दृष्टिसे कार्य विभाजन निम्नलिखित ८ जिलोमे किया गया है :—

(१) अमरावती, (२) अकोला, (३) यवतमाल, (४) बुलढाणा (५) नागपुर, (६) भडारा, (७) चाँदा और (८) वर्धा। इन जिलोमे गत २५ वर्षोसे यह सस्था हिन्दीतर भाषी लोगोमे हिन्दीका प्रचार कार्य कर रही है। अब यह सस्था रजिस्टर्ड हो गई हैं और सरकार मान्य है। १९५१ से जब से यह सस्था रजिस्टर्ड बनी तबसे ही सरकार इसे प्रतिवर्ष ५०००) वार्षिक सहायता देती है। १९५६ मे विदर्भके ८ जिले बम्बई-महाराष्ट्र राज्यमे सम्मिलित हुए। महाराष्ट्र सरकारने वह ५००० रु का पुराने मध्यप्रदेशका अनुदान चालू रखा और ५००० रु का यह वार्षिक अनुदान प्रतिवर्ष मिल रहा है। अब विदर्भ-नागपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका नाम राज्य पुनर्रचनाके बाद विदर्भ-राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुर कर दिया गया।

अनुदान

विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुरको पुरानी मध्यप्रदेश सरकारसे अनुदानमे बहुत अच्छे मौकेकी १ एकड जमीन कार्यालय भवन निर्माणके लिए सन् १९५६ के सितम्बर मासमे मिली थी। भू पू राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रबाबूने ता १३-९-६० को भवनकी आधारशिला रखी। उस सकल्पित भवनकी एक मजिल बनकर तैयार हो चुकी है। दूसरी मजिल शीघ्र पूरी हो जाएगी। इसमें कुल डेढ़ लाख रुपया लगा। ३०,००० रुपये केन्द्रीय सरकारसे भवनके लिए अनुदान स्वरूप मिल चुका है। वर्धा समितिने १५ हजार रुपये भवन निर्माण सहायतामे दिये २५००० रुपये नागपुरसे एकत्रित हुए।

केन्द्रीय सरकारकी ओरसे इस वर्ष स्पर्धामें एवं पुस्तकालय शिविर तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमोंके लिए अनुदान दिया गया। इसके अनुसार समिति द्वारा उपरोक्त कार्यक्रम सम्पन्न किए गए।

प्रचार-कार्य

इस समय अकोला, अमरावती, बुलडाणा, चाँदा, वर्धा, भंडारा, यवतमाल और नागपुरमें माहिती केन्द्र व जिला समितियाँ हैं। श्री परमेश्वर गोरे, श्री आनन्दराव लढके, श्री भंवरलाल सेवक, श्री मधुकर जोशी, श्री पुंडलीकराव मेघे, श्रीमती निशा हिर्डे और श्री र. वि. समर्थ तथा श्री श्याम लोहवरे, देकापुरवार और भा. रा. कोलते जिला संगठक हैं। ये जिला संगठक अपने जिलेमें भ्रमण कर जन सम्पर्क स्थापित करते हैं।

विदर्भ नागपुर समितिके संचालकत्वमें इस समय ५७५ परीक्षा केन्द्र चल रहे हैं। ७०० प्रचारक-बन्धु निष्ठापूर्वक प्रचार कार्यमें सहायता कर रहे हैं। अबतक साढ़े चार लाखसे अधिक परीक्षार्थी विदर्भसे वर्धा समितिकी परीक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके है।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका पाँचवाँ अधिवेशन

अ. भा. रा. प्रचार सम्मेलनका पाँचवाँ अधिवेशन श्री काकासाहब गाडगीलकी अध्यक्षतामें ११–१२ नवम्बर १९५२ को हुआ। उद्घाटन श्री श्रीप्रकाशजीने किया था। इस अवसरपर पत्रकार पितामह श्री बाबूराव विष्णु पराड़करजीको उनकी हिन्दीके प्रति की गई सेवाओंके सम्मान स्वरूप महात्मागाँधी पुरस्कार की १५०१ रु. की राशि समर्पित की गई। इसी अधिवेशनमें हिन्दी दिवस समारोह १४ सितम्बरको मनानेका निश्चय किया था जो बड़ा लोकप्रिय हुआ।

माहिती केन्द्र व जिला समितियाँ

विदर्भमें माहिती केन्द्र एवं जिला समितियाँ हैं। जिला समितियाँके नाम इस प्रकार हैं :—

(१) बुलढाणा जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, खामगाँव, संगठक—श्री भँवरलाल सेवक।
(२) अकोला जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, संगठक—श्री परमेश्वर गोरे।
(३) अमरावती जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अमरावती, संगठक—श्री आनन्दरावजी लढ़के।
(४) यवतमाल जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, संगठक—श्री र. वि. समर्थ।
(५) वर्धा जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, संगठक—श्री पुं. सु. मेघे।
(६) चाँदा जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, संगठक—श्री मधुकर जोशी।
(७) भंडारा जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, निशा हिर्डे-मन्त्री।
(८) नागपुर जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, संगठक—श्री श्याम लोहवरे, देकापुरवार।

विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी परीक्षाओंमें सम्मिलित परीक्षार्थियोंकी संख्या इस प्रकार है :—

सन्	परीक्षार्थी-संख्या
१९३९–४०	१००
१९४१	४२१
१९४२	(अगस्त आन्दोलनके कारण स्थगित)
१९४३	१,०६७
१९४४	१,०९०
१९४५	१,९०३
१९४६	२,६०४
१९४७	५,८४१
१९४८	१२,९९४
१९४९	१३,०४८
१९५०	१४,४४५
१९५१	१४,९६४
१९५२	२०,१००
१९५३	२१,२१२
१९५४	२५,८३०
१९५५	२६,२७८
१९५६	२९,००२
१९५७	२४,१९६
१९५८	३६,५६६
१९५९	४८,५००
१९६०	४६,५००
१९६१–६२	१,०३,१००
	कुल— ४,५०,७६२

पदवी-दान दीक्षान्त समारोह

नागपुरमें केन्द्र-व्यवस्थाके अन्तर्गत कोविद, विशारद, राष्ट्रभाषा-रत्न आदि उच्च हिन्दी परीक्षोपयोगी स्नातक छात्र-छात्राओंके सम्मानार्थ अबतक दीक्षान्त समारोह मनाए गए, उनमें दीक्षान्त भाषण करने व पुरस्कार-पारितोषिक वितरण करनेके लिए हमारे मुख्य अतिथियोंकी एक श्रेष्ठ पवित्र परम्परा इस समारोह में रही है। अबतक सर्वश्री भारतीय आत्मा, साहित्य देवता श्री माखनलालजी चतुर्वेदी, स्व. न्यायमूर्ति वा रा पुराणिक (नागपुर युनिवर्सिटीके तत्कालीन उपकुलपति), संगीताचार्य प. ओंकारनाथजी ठाकुर (दो बार) डॉ. भवानीशंकर नियोगी (चीफ जस्टिस और वाइसचान्सलर ना. यु. हा. कोर्ट और ना. वि. वि.), म. प्र.

के मुख्यमन्त्री स्व. पं. रविशंकर शुक्लजी, श्री डी.के. मेहताजी, अर्थमन्त्री, मा. घनश्याम सिंहजी गुप्त, राज्यपाल, श्री पकवासाजी, डॉ. वा. स. बारलिंगे (आरोग्य मन्त्री, म. प्र.), डॉ. पट्टाभिसीतारामैय्याजी, साहित्याचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी एम. ए., श्री ब्रिजलालजी बियाणी अध्यक्ष, विदर्भ हिन्दी सा. सम्मेलन, आचार्य धर्माधिकारी, श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख, श्रीमान् चिन्तामणिराव देशमुख, माननीय मुख्यमन्त्री यशवन्तराव चव्हाण, महाराष्ट्रके भू. पू. राज्यपाल श्रीप्रकाशजी आदि महानुभावोंने राष्ट्रभाषा-हिन्दीके स्नातकोंको प्रमाण-पत्र, पारितोषिक आदि दिए और अपने प्रभावशाली हिन्दी दीक्षान्त भाषणोंसे हिन्दीका भव्य वातावरण निर्माण किया। हिन्दी प्रचार-प्रसार कार्यको प्रोत्साहित कर प्रेरणा दी।

उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा

उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाकी स्थापना सन् १९३३ में हुई थी।

सभाका इतिहास

१९३२ का अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटीका अधिवेशन पुरीमें होना निश्चित हुआ। इस अधिवेशनकी कार्यवाही हिन्दीमें करना निश्चित किया गया। इसी निश्चयके अनुसार हिन्दी शिक्षकोंकी खोज की जाने लगी। इसी सिलसिलेमें स्वर्गीय बाबा राघवदास और भू. पू. राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीने प्रचारक भेजे। कलकत्तेके श्री सीतारामजी सेक्सरिया और वसन्तलालजी मुरारकाने भी अनसूयाप्रसादजी पाठकको उड़ीसामें प्रचार कार्यके लिए भेजा और दूसरे प्रचारक भाई भी पाठकजीकी सहायताके लिए भेजे गए लेकिन यह कार्य दो माहही चल पाया था कि जनवरी १९३३ से काँग्रेसका सत्याग्रह कार्यक्रम चल पड़ा और इसी बीच पाठकजीको जेल जाना पड़ा। पाठकजीने जेलमें भी हिन्दी पढ़ाईका काम चालू रखा। पाठकजीकी प्रेरणासे लोग जेलमें अन्य साधन उपलब्ध न होनेसे दातूनोंसे जमीनपर लिख-लिखकर अक्षर सीखते थे। बादमें जेल अधिकारियोंने सभी सुविधाएँ कर दीं।

१९३३ में उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाकी स्थापनाके बाद प्रथम वार्षिकोत्सव मनाया गया। अभीतक सभाका कार्यालय राधामोहनजी महापात्रके घरमें ही था—लेकिन सन् १९३३ के अप्रैल माहमें एक मकान किरायेपर लेकर एक हिन्दी शिक्षा-मन्दिर खोला गया। इसमें हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागकी परीक्षाएँ चलती थीं। श्रीमती रमादेवीका सहयोग समितिके कार्यको आगे बढ़ानेमें बड़ा सहायक हुआ। हिन्दी प्रचारके काममें कठिनाइयाँ अब कुछ-कुछ कम हो चली थीं। जनताकी ओरसे उत्साह तथा सहानुभूति मिल रही थी।

१९३७ में काँग्रेसी मंत्रिमंडल बना। जैसे अन्य कामोंको इसके कारण प्रोत्साहन मिला, वैसे ही हिन्दी प्रचारके कार्यको भी बल मिला। तत्कालीन उत्कलके मुख्यमन्त्री श्री विश्वनाथ दासने यह घोषणा की कि प्रत्येक सरकारी कर्मचारियोंको हिन्दी सीखना अनिवार्य है, तबसे इस ओर पर्याप्त उत्साह मिला। महात्मा गाँधीजीकी उपस्थितिमें गाँधी सेवा संघका उत्सव भी हिन्दी प्रचारके लिए बड़ा उत्साहवर्धक सिद्ध हुआ। इसमें श्रीमती सरोजिनी नायडूने हिन्दी प्रचारके सम्बन्धमें बड़े सुन्दर विचार व्यक्त किए।

उत्कलमें हिन्दी प्रचारके लिए गांधीजीका उत्कल यात्राका दौरा बड़ा लाभकारी रहा। गांधीजी स्वयं हिन्दी प्रचारके लिए चन्देके लिए गए थे।

धीरे-धीरे हिन्दीका प्रचार बढ़ने लगा। भद्रक, पुरी, ब्रह्मपुर, झारसुगडा, बुर्ला, बालेश्वर, कोरापुट और बरीमें वर्धा समितिकी परीक्षाओंके केन्द्र खोले गए। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापनाके बाद प्रचार सभाका नाम विधिवत् उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा रखा गया है और वह वर्धा समितिसे सम्बद्ध हो गई। श्री रामगुप्तजी भी इसी बीच आए और उन्हें ब्रह्मपुर केन्द्रके राष्ट्रभाषा प्रचारकके रूपमें भेजा गया।

१९४२ का आन्दोलन जोरोंसे चल रहा था। राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य भी जोरोंपर था। उस आन्दोलनमें पाठकजी और श्री वनमाली मिश्र जेल चले गए। इस समय सभाके संचालनका भार श्री गोविन्दचन्द्र मिश्रपर था। स्वामी विचित्रानन्द दासजी प्रदेशके सभी प्रचार कार्यपर ध्यान रखते थे।

१९४५ में श्री लिंगराज मिश्रने सभाका मन्त्री पद ग्रहण किया। पाठकजी और श्री वनमालीजीको जेलसे मुक्त तो कर दिया गया, किन्तु पाठकजीपर यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया कि वे प्रान्तके अन्दर प्रवेश न करें। यह प्रतिबन्ध अगस्त १९४५तक रहा। उसके बाद फिर पाठकजी यथावत् कार्य संचालन करनेमें जुट गए।

सन् १९४६ में फिरसे कांग्रेसी सरकार बनी। श्री हरेकृष्ण महताब मुख्यमन्त्री बने और पं. लिंगराज मिश्र शिक्षा मन्त्री। इसी समय हिन्दी तथा उर्दू लिपिके मतान्तरके कारण कलकत्तेसे पूर्व भारत हिन्दी प्रचार सभाकी तरफसे मिलनेवाली सहायता बन्द हो गई। उत्कल सरकारका ध्यान सभाकी ओर आकृष्ट हुआ। सरकारने सरकूलर निकालकर सूचित कर दिया कि प्रान्तके सभी स्कूलोंमें छठीसे नवी श्रेणीतक हिन्दी पढ़ना आवश्यक है। इसके साथ ही सरकारकी ओरसे प्रान्तमें प्रशिक्षण शिविर योजना बनी और उसके लिए ६४००० रु का अन्दाजा लगाया गया। प्रचारार्थ कार्य को और भी व्यापक बनानेकी दृष्टिसे सरकारने सभाको ३००० रु की सहायता दी। गंजाम जिला बोर्डने भी सभाकी योजनाके अनुसार हिंजलिकाटूमें शिक्षक शिविरके आयोजनको पूर्ण करनेकी लिए ५००० रु. की सहायता दी।

१९४७ में उत्कल सरकारसे सभा कार्यालयको १॥ एकड़ भूमि अनुदानमें मिली। इसी जमीनपर आज सभाका कार्यालय एवं राष्ट्रभाषा समवाय प्रेस है।

उत्कल सरकारने सभाके कार्य सचालनके लिए एवं पुस्तकालयकी अभिवृद्धिके लिए पर्याप्त सहायता दी। *प्रान्तीय सभाके प्रागणमें गांधी राष्ट्रभाषा भवन बननेकी योजना बनी। १९४८ में तत्कालीन मुख्यमन्त्री* श्रीयुत् डा. हरेकृष्ण मेहताब द्वारा गाँधी राष्ट्रभाषा भवनका शिलान्यास हुआ। भवन निर्माण व्ययके लिए सरकारने १ लाख १८ हजार रुपए प्रदान किए हैं। सन् १९५१ से उत्कल सरकार प्रतिवर्ष सभाको १५००० रु. देती आई है।

प्रान्तीय समितिके पदाधिकारी

सभापति—स्वामी विचित्रानन्द दास।
मन्त्री—श्री राजकृष्ण बोस
सचालक—अनसूयाप्रसाद पाठक।

के मुख्यमन्त्री स्व. पं. रविशंकर शुक्लजी, श्री ड़ी.के. मेहताजी, अर्थमन्त्री, मा. घनश्याम सिंहजी गुप्त, राज्यपाल, श्री पकवासाजी, ड़ॉ. वा. स. बारलिंगे (आरोग्य मन्त्री, म. प्र.), ड़ॉ. पट्टाभिसीतारामैय्याजी, साहित्याचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी एम. ए., श्री ब्रिजलालजी बियाणी अध्यक्ष, विदर्भ हिन्दी सा. सम्मेलन, आचार्य धर्माधिकारी, श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख, श्रीमान् चिन्तामणिराव देशमुख, माननीय मुख्यमन्त्री यशवन्तराव चव्हाण, महाराष्ट्रके भू. पू. राज्यपाल श्रीप्रकाशजी आदि महानुभावोंने राष्ट्रभाषा-हिन्दीके स्नातकोंको प्रमाण-पत्र, पारितोपिक आदि दिए और अपने प्रभावशाली हिन्दी दीक्षान्त भाषणोंसे हिन्दीका भव्य वातावरण निर्माण किया। हिन्दी प्रचार-प्रसार कार्यको प्रोत्साहित कर प्रेरणा दी।

उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा

उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाकी स्थापना सन् १९३३ में हुई थी।

सभाका इतिहास

१९३२ का अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका अधिवेशन पुरीमें होना निश्चित हुआ। इस अधिवेशनकी कार्यवाही हिन्दीमें करना निश्चित किया गया। इसी निश्चयके अनुसार हिन्दी शिक्षकोंकी खोज की जाने लगी। इसी सिलसिलेमें स्वर्गीय बाबा राघवदास और भू. पू. राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीने प्रचारक भेजे। कलकत्तेके श्री सीतारामजी सेक्सरिया और बसन्तलालजी मुरारकाने भी अनसूयाप्रसादजी पाठकको उड़ीसामें प्रचार कार्यके लिए भेजा और दूसरे प्रचारक भाई भी पाठकजीकी सहायताके लिए भेजे गए लेकिन यह कार्य दो माहही चल पाया था कि जनवरी १९३३ से काँग्रेसका सत्याग्रह कार्यक्रम चल पड़ा और इसी बीच पाठकजीको जेल जाना पड़ा। पाठकजीने जेलमें भी हिन्दी पढ़ाईका काम चालू रखा। पाठकजीकी प्रेरणासे लोग जेलमें अन्य साधन उपलब्ध न होनेसे दातूनोंसे जमीनपर लिख-लिखकर अक्षर सीखते थे। बादमें जेल अधिकारियोंने सभी सुविधाएँ कर दीं।

१९३३ में उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाकी स्थापनाके बाद प्रथम वार्षिकोत्सव मनाया गया। अभीतक सभाका कार्यालय राधामोहनजी महापात्रके घरमें ही था—लेकिन सन् १९३३ के अप्रैल माहमें एक मकान किरायेपर लेकर एक हिन्दी शिक्षा-मन्दिर खोला गया। इसमें हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागकी परीक्षाएँ चलती थीं। श्रीमती रमादेवीका सहयोग समितिके कार्यको आगे बढ़ानेमें बड़ा सहायक हुआ। हिन्दी प्रचारके काममें कठिनाइयाँ अब कुछ-कुछ कम हो चली थीं। जनताकी ओरसे उत्साह तथा सहानुभूति मिल रही थी।

१९३७ में काँग्रेसी मंत्रिमंडल बना। जैसे अन्य कामोंको इसके कारण प्रोत्साहन मिला, वैसे ही हिन्दी प्रचारके कार्यको भी बल मिला। तत्कालीन उत्कलके मुख्यमन्त्री श्री विश्वनाथ दासने यह घोषणा की कि प्रत्येक सरकारी कर्मचारियोंको हिन्दी सीखना अनिवार्य है, तबसे इस ओर पर्याप्त उत्साह मिला। महात्मा गाँधीजीकी उपस्थितिमें गाँधी सेवा संघका उत्सव भी हिन्दी प्रचारके लिए बड़ा उत्साहवर्धक सिद्ध हुआ। इसमें श्रीमती सरोजिनी नायडूने हिन्दी प्रचारके सम्बन्धमें बड़े सुन्दर विचार व्यक्त किए।

उत्कल राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कटक
(कार्यालय भवन)

१—श्री वैद्यनाथ आचार्य मन्त्री सभापति, राष्ट्रभाषा प्रचार सभा बालेश्वर।
१—श्री वनमाली मिश्र, सभापति राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, सम्बलपुर।
३—श्री कन्हैयालाल दोशी, सभापति राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, बालेश्वर।
४—श्री राधाकृष्णदास, मन्त्री राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, पुरी।
५—श्री त्रिभुवनजी दास, सभापति राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, बलागी।
६—श्री के. एन राव, केन्द्र-व्यव राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, ढेंकानाल।
७—श्री हरिहर नन्द, केन्द्र-व्यव. राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, केदुझर।
८—सतीशचन्द्र पटनायक, सभापति, राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, बारिपदा।
९—वासुदेव प्रधान, सभापति, राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, फुलवणी।
१०—हृषीकेश नायक, सभापति, राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, सुंदरगढ।

परीक्षार्थी उन्नतिक्रम

उत्कलसे प्रतिवर्ष राष्ट्रभाषा प्रचार परीक्षाओंमे जो परीक्षार्थी सम्मिलित हुए उनका क्रम इस प्रकार है —

वर्ष	परीक्षार्थी संख्या
१९३७	७०
१९३८	१११
१९३९	१६०
१९४०	१७५
१९४१	१९८
१९४२	३४२
१९४३	१,१३७
१९४४	९०५
१९४५	१,३९७
१९४६	२,२८२
१९४७	४,०९३
१९४८	६,५१७
१९४९	४,४३८
१९५०	४,९८१
१९५१	६,२४३
१९५२	५,८२१
१९५३	५,०६२
१९५४	५,१३५

सदस्य—श्री डॉ. हरेकृष्ण मेहताव, डॉ. आर्त वल्लभ महान्ति, श्री गुरुचरण महान्ति, श्री जगन्नाथ मिश्र, श्री वनमाली मिश्र, श्री उदयनाथ षड़ंगी, श्री वैद्यनाथ आचार्य।

राष्ट्रभाषा समवाय प्रेस

उत्कल प्रान्तमें राष्ट्रभाषा प्रचारके कार्यको व्यापक बनानेकी परिकल्पनासे १९४८ में राष्ट्रभाषा समवाय प्रेसकी स्थापना हुई। इसका संचालन एक बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर द्वारा होता है।

पुस्तकालय

हिन्दी प्रेमियों तथा परीक्षार्थियोंकी सुविधाके लिए सभामें एक वृहत् पुस्तकालय है। इसमें उड़िया, संस्कृत, हिन्दीकी ६००० से ऊपर पुस्तकें हैं। पुस्तकालयके अतिरिक्त वाचनालय भी है। जिसमें ५०–६० पत्रिकाएँ आती हैं।

राष्ट्रभाषा पत्र

विगत १८ वर्षोंसे सभाके मुख पत्रके रूपमें 'राष्ट्रभाषा पत्र' प्रकाशित हो रहा है। परीक्षार्थियों, शिक्षकों, प्रचारकोंके लिए यह बड़ा उपयोगी पत्र रहा है।

अनुवाद समिति

सभाकी एक अनुवाद समिति है जिसके निरन्तर परिश्रमसे बहुत-सी ओड़िया पुस्तकोंका हिन्दी अनुवाद और हिन्दी पुस्तकोंका ओड़िया अनुवाद हो चुका है। इस समितिके द्वारा प्रस्तुत की हुई पुस्तकें विभिन्न पाठ्यक्रमोंमें निर्धारित हैं। इसके हाथमें अब कोशका काम है। १५०० नए शब्दोंके माध्यमसे ओड़िया भाषियोंको हिन्दी सिखानेके लिए शिक्षाकी नई प्रणाली तैयार हो रही है।

प्रकाशन विभाग

सभाके प्रकाशन विभागने अबतक ५० पुस्तकोंका प्रकाशन कर लिया है।

हाथसे बने कागजका कारखाना

खादी बोर्डने सभाको एक हाथसे कागज बनानेके कारखानेको चलानेकी स्वीकृति दी है। कारखाना बन रहा है। अबतक करीब ३५००० रु. खर्च हो चुके है।

उत्कलसे अबतक राष्ट्रभाषा प्रचार परीक्षाओंमें १,८४,१०७ से अधिक परीक्षार्थी सम्मिलित हो चुके हैं। २६४ प्रचारक एवं ४७६ केन्द्र-व्यवस्थापक राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यमें सहायता कर रहे हैं।

६ शिक्षण केन्द्र तथा १७ विद्यालय हैं तथा १ महाविद्यालय हैं।

उत्कलमें जिला समितियाँ निम्नलिखित स्थानोंमें कार्य कर रही हैं, उनकी जानकारी निम्नानुसार है:—

इस समय असममें समितिका वर्ष बहुमुखी हुआ। प्रधान कार्यालय गौहाटीमें स्थापित हुआ। स्व श्रीवास्तवजी तथा उनके सहयोगी स्व. कमलदेवनारायणने कार्यालयके कार्यको बड़े सुन्दर ढंगसे संचालित किया था। समितिकी प्रवृत्तियोमे श्री कामाख्याप्रसाद त्रिपाठी (जो इस समय असमके श्रम तथा उद्योग मन्त्री हैं) डॉ विरंचिकुमार बरुवा, डॉ वाणिकान्त काकती आदि प्रमुख शिक्षाविदोका सक्रिय सहयोग प्राप्त होता रहा। सन् १९४० मे श्री देवकान्त बरुवाने, जो समितिके प्रधानमन्त्रीके थे, सत्याग्रह आन्दोलनमें शामिल होने के कारण प्रधानमन्त्री पद-त्याग दिया और १९४१ मे श्री यमुनाप्रसाद श्रीवास्तवजी सचालक पदसे मुक्त हो गए। श्री कमलदेव नारायणको सचालक पदपर नियुक्त किया गया। उन्होने धीरे-धीरे समिति-की सभी प्रवृत्तियोको सुव्यवस्थित कर लिया।

इतिहास

सन् १९४२ के आन्दोलनमे समितिकी स्थिति बडी नाजुक हो गई। कई प्रचारक जेल भेज दिए गए। जो प्रचारक जेलके बाहर रहे वे भी स्वतन्त्रतापूर्वक हिन्दी प्रचार कार्य नही कर पाते थे क्योकि अँग्रेज सरकार हिन्दी कार्यको भी स्वतन्त्रता आन्दोलनका एक दूसरा मोर्चा समझती थी। फिर भी कमलदेव नारायणजीकी कार्य कुशलताके कारण सलिला फल्गुकी तरह राष्ट्रभाषा प्रचारकी धारा बहती रही।

बौद्धिक मतभेद

सन १९४२ मे ही हिन्दी—हिन्दुस्तानीका बौद्धिक मतभेद प्रारम्भ हुआ। १९४३ मे वर्धामें काकासाहबके नेतृत्वमें हिन्दुस्तानी प्रचार सभाकी स्थापना हुई। स्व. बरदलैजीने भी हिन्दुस्तानी समितिका समर्थन किया। गौहाटीके शरणीया आश्रममे बापूकी उपस्थितिमे समितिकी बैठक हुई; जिसमे श्री नीलमणिजी फूकन तथा श्री कमलदेव नारायणजीने हिन्दुस्तानीका विरोध किया। बादमे हिन्दुस्तानी समर्थकोको लेकर एक अलग समिति बनाई गई। इसका नाम असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गौहाटी रखा गया। जो कुछ सरकारी सहायता सरकारकी ओरसे मिलती वह हिन्दुस्तानी समितिको ही प्राप्त होती रही। लेकिन वर्धा समितिके निष्ठावान् कतिपय प्रचारकोने प्रलोभनसे दूर रहकर सेवा-भावनासे इस विषम परिस्थितिमें भी कमलदेव नारायणके नेतृत्वमे राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य किया। लेकिन सन् १९४६ मे श्री कमलदेव नारायणका अचानक स्वर्गवास हो गया और राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यका भार श्री चक्रेश्वर भट्टा-चार्य तथा स्व. कमलदेव नारायणकी पत्नी नलिनीदेवीने उठाया। पर जब उन्होने भी यह कार्य छोड दिया तो यहाँका काम सीधे वर्धासे सचालित होने लगा।

सन् १९४८ मे प्रो रजनजी असम गए। उन्होने हिन्दुस्तानी समितिके कारण तथा वर्धा समिति-के कई प्रचारकोका हिन्दुस्तानी प्रचारक बन जानेके कारण जो समस्या प्रचार क्षेत्रमे उत्पन्न हुई उसका अध्ययन किया। उन्होने निष्ठावान प्रचारकोके तथा अन्य हितैषियोके परामर्शसे श्री छगनलाल जैनको सन् १९४८ के मई महीनेमे सचालक पदपर नियुक्त किया। श्री छगनलाल जैन, श्री अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी, श्री विपनचन्द्र गोस्वामी, श्री राजकुमार कोठ्ली तथा श्री जीतेन्द्रचन्द्र चौधुरीके सहयोगसे गौहाटीमे असम प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका चुनाव द्वारा नूतन सगठन किया गया। श्री नीलमणिजी फूकन सर्व

वर्ष	परीक्षार्थी संख्या
१९५५	७,२७०
१९५६	८,९९८
१९५७	९,३५४
१९५८	१७,५७४
१९५९	१९,६९६
१९६०	२६,२६१
१९६१	२१,९६०
१९६२	२७,१२८

असम राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, शिलाँग

आसाममें भाषागत एकताकी आवश्यकता सर्वप्रथम महात्मा गाँधीको महसूस हुई जब कि वे सन् १९३३–३४ के बीच अपने असहयोग आन्दोलन और रचनात्मक कार्यक्रमके सिलसिलेमें असम राज्यका व्यापक दौरा कर रहे थे। बापूने असममें ही भावी भारतकी एकताकी दृष्टिसे हिन्दीके प्रचार कार्यको प्रयोग दशामें प्रारम्भ किया। बापूसे प्रेरणा पाकर बाबा राघवदास हिन्दीका सन्देश लेकर असममें आए।

सर्वप्रथम बाबा राघवदासजीने अपना व्यापक दौरा असम राज्यके प्रमुख शहरोंमें किया और कुछ ऐसे शिक्षित युवकोंने उनसे प्रेरणा प्राप्त की। इन युवकोंने बाबा राघवदासके राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यको सफल बनानेमें पूरा योग दिया। डिब्रूगढ़के दानवीर चाय उद्योगपति रायसाहब हनुमान बक्श कनोई जो कि अभीतक अपनी वृद्धावस्थामें भी गणेशबाड़ी केन्द्रका केन्द्र-व्यवस्थापक पद अलंकृत कर रहे हैं, उनका सहयोग प्रारम्भसे ही समितिको प्राप्त होता रहा।

सन् १९३७ में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापनाके बाद असममें उसकी परीक्षाओंमें परीक्षार्थियोंको सम्मिलित कराया गया।

असम हिन्दी प्रचार समितिकी स्थापना लोकप्रिय स्व. गोपीनाथजी बरदलैकी अध्यक्षतामें सन् १९३८ में हुई। डॉ. बरदलैके अत्यन्त व्यस्त रहनेके साथ कारण बादमें डॉ. हरेकृष्णदास असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति अध्यक्ष बने।

हिन्दी प्रचार समितिका संचालन और संगठन करनेके निमित्त स्व. यमुनाप्रसाद श्रीवास्तवको केन्द्रीय समिति वर्धासे पहले ही भेजा गया था। वे ही इसके सर्वप्रथम संचालक नियुक्त हुए।

सन् १९३९ में काकासाहबके सभापतित्वमें प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सम्मेलन गौहाटीमें हुआ जिसमें प्रमाणित प्रचारक, केन्द्र-व्यवस्थापक और अनेक हिन्दी प्रेमी प्रतिनिधि उपस्थित थे—इसी वर्ष फरवरी महीनेमें गौहाटीमें एक प्रचारक विद्यालयकी स्थापना स्व. गोपीनाथ जी बरदलैकी अध्यक्षतामें हुई। वर्धासे श्री कमलदेवनारायण और श्री रामप्रसादजी भेजे गए। इन्होंने अपनी विद्वत्ता और परिश्रमसे पर्याप्त संख्यामें प्रचारक बनाए। नौगाँवमें भी एक राष्ट्रभाषा विद्यालयकी स्थापना हुई।

कर लिया। उनके स्थानपर श्री जीतेन्द्रचन्द्र जी चौधुरीको सचालक पदका कार्य भार सौंपा गया। उन्होंने असमका दौरा किया और कार्यको सगठित किया। जो प्रचारकगण निष्क्रिय होकर हिन्दी प्रचार कार्यसे अलग हो गए थे, वे नए सगठनमे जुट गए। असम राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्यालय शिलाग लाया गया और तबसे वह शिलागमे ही है। अब यह रजिस्टर्ड सस्था बन गई है और इसका अपना विधान है।

वर्तमान पदाधिकारी

अध्यक्ष—श्री नरेन्द्रनाथ शर्मा, एम एल ए।
कार्याध्यक्ष—श्रीमती लावण्य प्रभा दत्त चौधुरी।
उपाध्यक्ष—श्री राधाकृष्ण खेमका, एम. एल. ए.।
उपाध्यक्ष—श्री गोपाल चन्द्र अग्रवाल एडवोकेट।
कोषाध्यक्ष—श्री कामाख्यालाल सिंहानिया।
मन्त्री-सचालक—श्री जीतेन्द्रचन्द्र चौधुरी।
प्रचार-मन्त्री—श्री भगवती प्रसाद लाडिया।

समित सरक्षक, आजीवन, हितैषी सदस्य क्रमश. १००१ और ५०१, १०१ तथा ५१ रु देकर बन सकते हैं।

प्रचार विवरण

असममे २०५ परीक्षा केन्द्र इस समय चल रहे है। ११७ शिक्षण केन्द्र एव विद्यालय हैं। १५० से ऊपर प्रचारक हमारे प्रचार-कार्यमे सहयोग दे रहे है।

प्रशिक्षण केन्द्र

सन् १९५८–५९, १९६०–६१ मे शिलचर, करीमगज तथा सिद्ध कार्यपीठ कामाख्य पर्वतपर प्रशिक्षण केन्द्र हिन्दी शिक्षकोंको प्रशिक्षण देनेके लिए आयोजित किए गए। इन प्रशिक्षण केन्द्रोंको चलानेके लिए २०००० रु. का अनुदान सरकारकी ओरसे प्राप्त हुआ था। इन प्रशिक्षण केन्द्रोंको चलानेमें असम राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको बड़ी सफलता प्राप्त हुई।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका दसवां अधिवेशन

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका दसवां अधिवेशन असममें श्री हरेकृष्ण महताबकी अध्यक्षतामें १९–२०–२१ मई १९६१ को मनाया गया। इसका उद्घाटन श्री जगजीवनरामने किया था। स्वागताध्यक्ष असमके मुख्यमन्त्री श्री विमला प्रसाद चलिहा थे। यह सम्मेलन बड़ा भव्य एवं सफल रहा। इस अवसरपर श्री अनन्तगोपालजी शेवडेको महात्मा गांधी पुरस्कार भेंट किया गया।

सम्मतिसे अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इसी समय मणिपुरके प्रचार क्षेत्रको स्वतन्त्ररूपसे चलानेका अधिकार. असम राज्य समितिकी सम्मतिसे वर्धा समितिने मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको सौंप दिया। वहाँका प्रचार कार्य तवसे श्री छत्रध्वज शर्माके संचालनमें सुन्दर रूपमें चल रहा है।

चूँकि भारतीय संविधानमें राष्ट्रभापा प्रचार समितिके आदेशानुसार ही हिन्दी तथा नागरी लिपिको स्वीकृति प्राप्त हुई इसलिए समितिने निम्नलिखित निर्णय सर्व सम्मतिसे किया——

"चूँकि हिन्दुस्तानी प्रचार समितिकी आवश्यकता अव नहीं रही, इसलिए आजकी यह सभा चाहती है कि हिन्दुस्तानी प्रचार समिति (असम) राष्ट्रभाषा प्रचार समितिमें ही मिल जाए। उसके लिए एक सम्मिलित सभा वुलाई जाए जिसमें इस मिलनके विपयमें विचार-विमर्ष हो, इस कार्यका भार संचालकपर छोड़ा जाए जो हिन्दुस्तानी प्रचार समितिसे वातचीत करके एक ऐसी सभाका आयोजन करनेकी चेष्टा करें।"

इधर सन् १९४८ के मई महीनेमें हिन्दुस्तानी परम्पराकी समितिने हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धासे अपनी सम्वद्धता छोड़कर, एक स्वतन्त्र समिति वन चुकी थी। उसने हिन्दुस्तानीका प्रचार वन्द कर दिया; क्योंकि दो लिपियोंमें राष्ट्रभाषाकी शिक्षा जनप्रिय नहीं हो सकी। हमारी वर्धा प्रान्तीय समितिने हिन्दुस्तानी समितिके लोगोंको यह समझानेका प्रयत्न किया कि हिन्दुस्तानीका आदर्श अव नहीं रहा——अतएव हिन्दुस्तानी समिति अव पुरानी मातृसंस्थामें लीन होकर असम राष्ट्रभाषा प्रचारके कार्यको गतिशील वनाए लेकिन सव कोशिशोंके वावजूद भी उन्होंने अलग रहना ही पसन्द किया और सन् १९४९ में अपना रूप वदल कर यह संस्था अखिल भारतीय हिन्दी परिषदसे सम्वद्ध हो गई। १० जनवरीको एक प्रस्ताव पारित कर असममें वर्धा समितिके कार्यपर सरकारका ध्यान आकृष्ट किया गया।

सन् १९५१ में एक नई हलचल पैदा हो गई। सरकार तथा दूसरी समितिने राज्य समितिके सामने एकीकरणका एक प्रस्ताव रखा। राज्य समितिने उसका स्वागत किया और ९ मार्च १९५२ को दोनों समितियोंके प्रतिनिधियोंको लेकर राज्यके तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री विष्णुरायजी मेधीकी अध्यक्षतामें एक संयुक्त बैठक हुई। बैठकमें दोनों समितियोंको मिलाकर एकीकरणकी योजनाको स्वीकार कर लिया गया; किन्तु केन्द्रीय समिति वर्धासे नवीन रूपसे वनाई जानेवाली समितिका सम्पर्क स्पष्ट किए विना केन्द्रीय समितिके असम स्थित अंगका विलयन करनेका आग्रह हिन्दुस्तानीके समर्थकोंमें दिखाई देने लगा और व्यवहारमें भी ऐसा प्रतीत होता देखकर उक्त एकीकरणका समर्थन करके नए विधानको स्वीकृत तथा कार्यान्वित न करनेका निर्णय समितिके अधिकांश सदस्योंने किया——जिस सभामें यह निर्णय किया गया उसमें मन्त्री श्री आनन्दजी, परीक्षा मन्त्री श्री दुबेजी तथा सिन्ध-राजस्थानके संचालक श्री दौलतरामजी भी उपस्थित थे। मन्त्री-संचालक श्री छगनलाल जैनको यह निर्देश दिया गया कि एकीकरणके सम्वन्धमें कोई भी निर्णय तवतक लागू न हो सकेगा जवतक कि वर्धा समितिका अनुमोदन इसे प्राप्त न हो गया हो। यह भी निर्णय हुआ कि दूसरी समितिके द्वारा प्रस्तुत किए गए पारस्परिक सम्मानजनक एकीकरणके किसी भी प्रस्तावपर समिति आदर तथा आग्रहके साथ विचार करेगी।

इसके परिणाम स्वरूप १९५२ के अक्टूवर महीनेमें श्री छगनलाल जैनने अपने संचालक पदसे त्यागपत्र दे दिया। श्री फूकनजीने भी अध्यक्ष पद त्यागकर दूसरी समितिका कार्याध्यक्ष पद स्वीकार

पश्चिम बंग राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कलकत्ता

बगालमें सन् १९३४ से कलकत्तेकी "पूर्व भारत हिन्दी प्रचार सभा" हिन्दी प्रचारका कार्य करती आ रही थी। सन् १९३६ में वर्धा समितिकी स्थापनाके बाद यह सभा उस समितिके मार्गदर्शनमें कार्य करने लगी। सन् १९३८ के शिमला-अधिवेशनमें जब हिन्दी प्रचार समिति वर्धाका नाम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति कर दिया गया, तब कलकत्तेमें हिन्दीका प्रचार करनेवाली सस्थाका नाम भी पूर्व भारत राष्ट्र-भाषा प्रचार सभा रखा गया। किन्तु सन् १९४५ मे इसकी नीतिमे परिवर्तन हो जानेके कारण इसने हिन्दुस्तानीका प्रचार करना आरम्भ किया तथा वर्धा-समितिसे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। ऐसी स्थितिमे हिन्दी प्रचारके लिए वर्धा समितिसे सम्बद्ध एक पृथक् प्रान्तीय समितिका सगठन आवश्यक समझा गया। फलस्वरूप १५ दिसम्बर १९४५को डॉ सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याके निवास स्थान "सुधर्मा" में कई गण्यमान्य साहित्यिको, शिक्षा-प्रेमियो तथा विद्वानोकी बैठक करके "बगाल राष्ट्रभाषा प्रचार समिति" की स्थापना की गई, जो देश-विभाजनके बाद "पश्चिम बग राष्ट्रभाषा प्रचार समिति" कहलाने लगी।

बगालमे राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी स्थापनाके बाद श्री रेवतीरजन सिन्हाके सद्प्रयत्नोसे प्रचार और सगठनका कार्य आरम्भ हुआ। सर्वश्री भुवनेश्वर झा, ब्रजनन्दनसिंह, नरेन्द्रसिंह राय, शिवविलास सिन्हा, अमल सरकार आदि प्रचारक शिक्षकोने अपनी सेवाएँ देकर प्रचार-कार्यको आगे बढानेमें महत्वपूर्ण योग दिया। मुफ़स्सिलमे सर्वश्री जयगोविंद मिश्र, वामनचन्द्र वसु, श्रीनिवास शर्मा, जनार्दन चतुर्वेदी, सजीवप्रसाद सेन, देवीप्रसाद वर्मा, अरण्यबिहारी दास आदि प्रचारकोने इस कार्यमें यथेष्ट हाथ बँटाया।

इस समय पश्चिम बग राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके अन्तर्गत १२१ प्रमाणित प्रचारक तथा ३५ शिक्षक-अध्यापक हैं। प्रान्तभर मे १९५ अवैतनिक शिक्षण-केन्द्र तथा विद्यालय चलाए जाते है। परीक्षा-केन्द्रोकी सख्या ११७ हैं तथा प्राय १२००० परीक्षार्थी प्रति वर्ष त्रिपुरा अचल सहित बगाल प्रान्तसे वर्धा समितिकी परीक्षाओमें सम्मिलित होते हैं। समिति बगाल सरकारके सहयोगसे "डिप्लोमा इन हिन्दी टीचिंग" परीक्षा चलाती है। इसमे उत्तीर्ण होनेपर हिन्दी शिक्षकको अपने वेतनके अलावा १० रुपये प्रति माह भत्तेके रूपमे मिलते हैं। बगालसे करीब ९० हजार परीक्षार्थी वर्धा समितिकी परीक्षाओमे सम्मलित हो चुके है।

इस समितिको बगाल सरकारका काफी सहयोग प्राप्त है। हिन्दी शिक्षा प्रचार-प्रसार तथा शिक्षको आदिकी नियुक्तिमें सरकार समितिसे सलाह लेती हैं और उससे नियमित सम्पर्क बनाए रखती है। समितिको शिक्षक-शिक्षण योजनाके अन्तर्गत प्रति वर्ष २१८६००) की सहायता मिलती है। बगालमें वर्धा समितिकी निम्नलिखित परीक्षाएँ मान्य हैं—

(१) 'कोविद' तथा मैट्रिक उत्तीर्णको हायर सेकण्डरी स्कूलोमे हिन्दी शिक्षकके रूपमें रखा जाता है।

(२) 'डिप्लोमा इन हिन्दी टीचिंग" उत्तीर्ण व्यक्ति हाइस्कूलमे हिन्दी शिक्षकके रूपमें रखा जाता है जिसमें 'परिचय" परीक्षा उत्तीर्ण होना पड़ता है।

सभा-समारम्भ-हिन्दी-दिवस

समिति प्रतिवर्ष हिन्दी दिवस समारम्भका मुख्यरूपसे आयोजन करती है। इसमें प्रान्तके राज्यपाल, नेतागण आदिका प्रमुख रूपसे सहयोग प्राप्त होता रहा है।

असमसे सम्मिलित परीक्षार्थी तथा शिक्षण केन्द्र, प्रचारक तथा केन्द्रोंका उन्नतिक्रम इस प्रकार है—

शिक्षण व परीक्षा-उन्नति-क्रम

सन्	शिक्षण केन्द्र	परीक्षा केन्द्र	परीक्षार्थी संख्या	प्रचारक
१९३६	३	३	४०	३
१९३७	७	१५	३५०	१२
१९३८	–	२२	८४०	२०
१९३९	–	२६	१,०५८	२९
१९४०	–	३१	१,४५०	३१
१९४१	–	१४	९३०	१७
१९४२	–	९	४००	९
१९४३	–	१४	७२०	१२
१९४४	–	१४	८१५	१२
१९४५	–	२०	१,३३६	१८
१९४६	–	२१	१,१२०	२०
१९४७	–	१८	१.००७	२०
१९४८	–	१४	९२०	१४
१९४९	–	१४	१,०४२	१४
१९५०	–	१४	१,२११	१४
१९५१	–	१४	९८०	१६
१९५२	४	१४	८१९	१६
१९५३	१०	१९	१,८८३	१८
१९५४	२२	२९	२,०२१	२३
१९५५	२२	२६	१,६९८	२४
१९५६	२५	४०	२,४१.०	३७
१९५७	३२	५१	४,२१६	६५
१९५८	५३	७३	५,८२५	१०१
१९५९	६६	९९	८,२८८	१२६
१९६०	१००	११३	८,११५	१३०
१९६१	११७	१५२	११,१६४	१४०

सन्	परीक्षार्थी
१९५२	२,९६६
१९५३	३,८४३
१९५४	३,९५६
१९५५	५,२३९
१९५६	६,८७८
१९५७	६,३१५
१९५८	७,५०४
१९५९	९,२१८
१९६०	१२,४४६
१९६१	१२,१८९
१९६२	११,६८०

मणिपुर राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, इम्फालका विवरण

नया संगठन

भारतके प्रान्त मणिपुरमें सन् १९४० से राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,वर्धाकी ओरसे राष्ट्रभाषाका प्रचार-कार्य होता रहा था; पर विशेष रूपसे कोई सगठन नही हुआ था। प्रयागमें राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डनकी अध्यक्षतामें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी प्रचार समितिकी एक बैठक हुई, जिसमे मणिपुरमें राष्ट्रभाषाके प्रचार-कार्यके प्रति उत्साह देखकर यह निश्चय किया गया कि मणिपुर स्टेट को एक स्वतन्त्र प्रान्त मान लिया जाए और उसका प्रचार-कार्यभार श्री छत्रध्वज शर्माको सौप दिया जाए। उसी निश्चयके अनुसार मणिपुरमें मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी स्थापना हुई। पहले मणिपुरका कार्य असमके कार्यके अन्तर्गत चलता था।

पदाधिकारी और सदस्यगण

अध्यक्ष—श्री कालाचान्द सिंह, शास्त्री, बी. ए. बी. टी।

उपाध्यक्ष—श्री प. गौरहरि शर्मा, व्याकरण-तीर्थ, विशारद।

मन्त्री-सचालक—श्री छत्रध्वज शर्मा।

कोषाध्यक्ष—श्री ते. आवीरसिंह।

सदस्यगण—सर्वश्री मोहनलाल भट्ट, मन्त्री (वर्धा), अध्यापक वा नित्याइ सिंह, अध्यापक चन्द्रशेखर सिंह तथा अध्यापक योगेन्द्र सिंह।

प्रचारकोंका सहयोग

राष्ट्रभाषाके प्रचार-कार्यमें प्रचारकोका सहयोग प्राप्त किए बिना कभी श्रीवृद्धि नही हो सकती।

(३) कलकत्ता-विश्वविद्यालय ऐसे व्यक्तियोंको हिन्दी विषय लेकर एम. ए. पढ़नेकी अनुमति देता है, जो अहिन्दी भाषी बी. ए. और 'कोविद' उपाधिधारी हों।

किन्तु नूतन मान्यताके आधार पर यह सुविधा हट रही है। समितिकी व्यवस्था तथा संचालनमें एक हिन्दी प्रचार पुस्तकालय तथा वाचनालय भी चल रहा है। समितिका अपना एक प्रकाशन "पन्त: कविता संकलन" भी प्रकाशित हो चुका है।

कलकत्तेमें गत पाँच वर्षसे सरकारी अनावर्तक सहायता प्राप्त कर एक प्रशिक्षण महाविद्यालय भी चलता है जिसमें सम्मिलित होनेवाले शिक्षक शिक्षार्थीको मासिक ३० रु. की छात्रवृत्ति दी जाती है तथा इंटर उत्तीर्ण व्यक्तियोंको १५ महीनोंके सत्रमें 'कोविद' तथा 'डिप्लोमा इन हिन्दी टीचिंग' पाठ्यक्रमानुसार अध्ययन करना पड़ता है।

इसके अलावा २ डिप्लोमा कोर्सके तथा १० विशेष कोविद कोर्सके केन्द्र, शिक्षकोंके लिए चलाए गए हैं।

यह समिति प्रति वर्ष राजभवन मार्बल हालमें समापवर्तन उत्सव मनाती रही है, जिसके अध्यक्ष राज्यपाल ही होते रहे। इस अवसरपर विशिष्ट विद्वान् या शिक्षा-मन्त्री दीक्षान्त भाषण देते रहे हैं।

इस समय समितिके अध्यक्ष अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त भाषाविद् डा. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या हैं। मन्त्री-संचालक श्री रेवतीरंजन सिन्हा हैं। अन्य पदाधिकारियोंमें कार्यवाहक सभापति डॉक्टर श्रीकुमार बनर्जी, उपसमिति सभापति डॉक्टर सुकुमार सेन तथा अर्थमन्त्री श्री जनगन्नाथ बेरीवाला हैं।

बंगालके अबतक सम्मिलित परीक्षार्थियोंका उन्नति-क्रम

वर्ष	परीक्षार्थी
१९३८	१०२
१९३९	१०
१९४०	१३
१९४१	४१
१९४२	६५
१९४३	१४५
१९४४	९१
१९४५	३५७
१९४६	७४९
१९४७	८३३
१९४८	१,६८५
१९४९	१,५४९
१९५०	१,९२९
१९५१	२,६९९

वर्ष	परीक्षार्थी
१९४२	३२
१९४३ से १९४४ तक	महायुद्ध
१९४५	१०१
१९४६	१६३
१९४७	७६७
१९४८	१,३३१
१९४९	१,५९१
१९५०	१,५०७
१९५१	१,९२८
१८५२	२,३४४
१९५३	१,५६७
१९५४	१,५०४
१९५५	१,८०३
१९५६	१,९१५
१९५७	२,२०५
१९५८	२,३६०
१९५९	३,५९०
१९६०	४,८१०
१९६१	४,९७२

उत्सव-समारोह

समितिके तत्वावधानमें समय-समयपर गणतन्त्र-दिवस, स्वतन्त्रता-दिवस, तुलसी-जयन्ती, तिलक-जयन्ती, गाँधी-जयन्ती, पुण्य-तिथि, बाल-दिवस, हिन्दी-दिवस तथा प्रमाण-पत्र वितरणोत्सव आदि समारोहोंका आयोजन किया जाता है। समारोह जत्था उत्सवके कार्यक्रमसे जनता तथा राष्ट्रभाषा-सेवियोंमें बड़ा उत्साह पैदा हो जाता है। यह कार्यक्रम शिक्षा-प्रचार तथा राष्ट्रभाषाके प्रचार-कार्यका भी एक सफल साधन है।

मणिपुरमें विद्यालय

१ हिन्दी विद्या मन्दिर, खुयायोग। २ वाहेंगलैकाई हिन्दी स्कूल, इम्फाल। ३ नाओरेमथोंग हिन्दी स्कूल, इम्फाल। ४ मणिपुर हिन्दी विद्यापीठ, क्वाकैथेल। ५ दामेश्वरी प्राच्य हिन्दी विद्यालय, नोंगमैइबुंग। ६ वाखे हिन्दी स्कूल, इम्फाल। ७ धर्मालय हिन्दी स्कूल, ब्रह्मपुर। ८ याइस्कुल हिन्दी स्कूल, इम्फाल। ९ तेन्दोनयान हिन्दी स्कूल, शेकमाई। १० मोगशांगै हिन्दी विद्यालय, इम्फाल। ११ कर्कचिखुलेल राष्ट्रभाषा विद्यालय, कर्कचिंगबाजार। १२. सानोय उच्च हिन्दी विद्यालय, नम्बोल। १३ मालोम हिन्दी

एतदर्थ समितिने प्रचारकोंकी नियुक्तिपर विचार किया है। समिति चाहती है कि जो बन्धु 'राष्ट्रभाषा कोविद' तथा 'राष्ट्रभाषा रत्न' परीक्षामें उत्तीर्ण हुए हैं उन्हें राष्ट्रभाषा प्रचारक बनाया जाए। फिल-हाल ४० प्रचारक-बन्धु निष्ठापूर्वक राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रचार-कार्य कर रहे हैं और वे राष्ट्रभाषाके प्रचार-कार्यमें काफी सहयोग दे रहे हैं।

राष्ट्रभाषा शिक्षण-व्यवस्था

मणिपुर जैसे छोटे-से तथा भारतके सुदूर पूर्वी प्रदेशमें राष्ट्रभाषाका प्रचार-कार्य तो काफी हुआ है और हो रहा है। फिर भी समितिका ध्यान इस ओर है कि बिना शिक्षण-व्यवस्थाके राष्ट्रभाषाके प्रचार-कार्यमें सफलता मिलना कठिन है। अत: मणिपुरके कोने-कोने और गाँव-गाँवमें समितिकी ओरसे राष्ट्रभाषा शिक्षण केन्द्र तथा विद्यालय खोलनेका प्रयत्न किया गया। अब समितिके अन्तर्गत ६१ राष्ट्रभाषा शिक्षण-केन्द्र व विद्यालय हैं।

श्री ढेबरभाई द्वारा भवन-शिलान्यास

मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको कार्यालयके लिए इम्फालमें ही मणिपुर सरकारकी टाउन-फंड कमेटीने जमीन दी जिसपर भवनका निर्माण हो चुका है। ता. २६-११-१९४५ को अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटीके अध्यक्ष माननीय श्री ढेवर भाईने राष्ट्रभाषा-भवनका शिलान्यास किया। इसी भवनमें समितिका कार्यालय कार्य कर रहा है। अब कार्यालयके लिए समितिको कोई कठिनाई नहीं है। इस कमीकी पूर्तिमें वर्धा समितिकी ओरसे भी काफी सहायता एवं प्रेरणा प्राप्त हुई।

प्रशासन द्वारा आर्थिक-सहायता

मणिपुर प्रशासनके मुख्यायुक्त माननीय श्री जगत मोहनजी रैना तथा शिक्षा विभागके निर्देशक श्रीमान ए. डी. बहुगुणाजीके सहयोगसे प्रचार-कार्यके लिए विगत तीन वर्षसे वार्षिक रु. ३१०० के हिसाबसे अनुदान मिलने लगा है।

परीक्षार्थी उन्नति-क्रम

मणिपुरसे चार हजारसे ऊपर परीक्षार्थी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी प्रचार परीक्षाओंमें प्रतिवर्ष बैठते हैं। प्रारम्भसे अबतक लगभग ४००० परीक्षार्थी समितिकी परीक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके। अबतक हर वर्ष जितने परीक्षार्थी सम्मिलित हुए उनकी संख्या इस प्रकार है—

मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, इम्फालने परीक्षार्थी-संख्यामें वृद्धि की। अबतक जो प्रगति हुई है वह इसप्रकार है—

वर्ष	परीक्षार्थी
१९४०	४४
१९४१	४९

वर्ष	परीक्षार्थी
१९४२	३२
१९४३ से १९४४ तक	महायुद्ध
१९४५	१०१
१९४६	१६३
१९४७	७६७
१९४८	१,३३१
१९४९	१,५९१
१९५०	१,५०७
१९५१	१,९२८
१८५२	२,३४४
१९५३	१,५६७
१९५४	१,५०४
१९५५	१,८०३
१९५६	१,९१५
१९५७	२,२०५
१९५८	२,३६०
१९५९	३,५९०
१९६०	४,८१०
१९६१	४,९७२

उत्सव-समारोह

समितिके तत्वावधानमें समय-समयपर गणतन्त्र-दिवस, स्वतन्त्रता-दिवस, तुलसी-जयन्ती, तिलक-जयन्ती, गाँधी-जयन्ती, पुण्य-तिथि, बाल-दिवस, हिन्दी-दिवस तथा प्रमाण-पत्र वितरणोत्सव आदि समारोहोंका आयोजन किया जाता है। समारोह जनतथा उत्सवके कार्यक्रमसे जनता तथा राष्ट्रभाषा-सेवियोंमें बड़ा उत्साह पैदा हो जाता है। यह कार्यक्रम शिक्षा-प्रचार तथा राष्ट्रभाषाके प्रचार-कार्यका भी एक सफल साधन है।

मणिपुरमें विद्यालय

१. हिन्दी विद्या मन्दिर, खुमायोंग। २ वाहेंगलैकाई हिन्दी स्कूल, इम्फाल। ३. नाओरेमथोंग हिन्दी स्कूल, इम्फाल। ४. मणिपुर हिन्दी विद्यापीठ, क्वाकैथेल। ५ दामेश्वरी प्राच्य हिन्दी विद्यालय, नोंगमैबुंग। ६ वार्ब हिन्दी स्कूल, इम्फाल। ७ धर्मालय हिन्दी स्कूल, ब्रह्मपुर। ८. याइस्कूल हिन्दी स्कूल, इम्फाल। ९. तेन्दोनयान हिन्दी स्कूल, शेकमाई। १० मोंगशांगें हिन्दी विद्यालय, इम्फाल। ११. ककचिंखुलेल राष्ट्रभाषा विद्यालय, ककचिंगबाजार। १२. सानोय उच्च हिन्दी विद्यालय, नम्बोल। १३. मालोम हिन्दी

स्कूल, मालोम। १४. ड०इखोंग हिन्दी स्कूल, विष्णुपुर। १५. जनता हिन्दी विद्यालय, खुराईकोन्समलैकाई। १६. विष्णुपुर हिन्दी विद्यालय, विष्णुपुर। १७. वारुणी रोड़ हिन्दी विद्यालय, थम्बोलखोंग। १८. खुराई हिन्दी विद्यालय, खुराई-वाजार। १९. चींगनुँगहुत हिन्दी स्कूल, पलेल। २०. आदर्श हिन्दी विद्यालय, शगोलबन्द-लांगजिंग-अचौवा। २१. थम्वाल स्मृति हिन्दी विद्यालय मोइरांग। २२. फुँचोंगयांग हिन्दी स्कूल, मोइरांग। २३. नारान सैन्य हिन्दी स्कूल, फुवाला। २४. मैज्राओ हिन्दी स्कूल। २५. हैड० कोन्था हिन्दी स्कूल। २६. अवांगपोतशंगवम हिन्दी स्कूल। २७. लैप्पोक्पम हिन्दी विद्यालय, लैप्पोक्पम। २८. रोमकेश्वर तोरीवारी हिन्दी स्कूल, कैथेलमनवी।

राष्ट्रभाषा प्रचार शिबिर

मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति समय-समयपर राष्ट्रभाषा शिबिरोंका आयोजन भी करती है। १९६१ में एक शिबिर हिन्दी विद्यामंदिर, खुमायोंगमें आयोजित किया गया। इस अवसरपर एक प्रदर्शनी-का आयोजन भी किया गया था।

पुस्तकालय तथा वाचनालय

समितिने स्थानीय जनता तथा विद्यार्थियोंकी सुविधाके लिए राष्ट्रभाषा कार्यालय भवनमें पुस्तकालय खोल दिया है। पुस्तकालयमें सभी विषयोंकी पुस्तकें हैं। वाचनालयकी भी व्यवस्था है।

संक्षिप्त इतिहासका प्रकाशन

मणिपुरमें राष्ट्रभापा प्रचारका संक्षिप्त इतिहास' नामक पुस्तिका समितिने प्रकाशित की है। इससे प्रचार कार्यमें वड़ा लाभ हुआ है।

प्रमाण-पत्र वितरणोत्सव

मणिपुरके केन्द्रों एवं विद्यालयोंमें प्रतिवर्ष प्रमाण पत्र वितरणोत्सवके आयोजन होते हैं। उन परीक्षार्थियोंको, जो प्रथम-द्वितीय उत्तीर्ण होते हैं, उन्हें पुरस्कार भी दिए जाते हैं।

दिल्ली प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, दिल्ली

अप्रैल १९४८ से पहले दिल्ली तथा नई दिल्लीमें रहनेवाले हिन्दीतर भाषी लोगोंमें हिन्दीका प्रचार करनेकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया था। शायद इसका कारण यह हो कि पुरानी दिल्लीका प्रदेश हिन्दी भाषी है इसलिए उनमें हिन्दी प्रचारकी आवश्यकता न समझी गई हो। श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन् १९३७ से बम्बई वर्धा समितिकी परीक्षाओंका कार्य करती आ रहीं थीं, वे १९४२ में दिल्ली पहुँची और हिन्दीतर भाषी व्यक्तियोंमें उन्होंने हिन्दीका कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। हिन्दीके कार्यके लिए दिल्ली एक व्यापक क्षेत्र है। अहिन्दी भाषी प्रान्तोंसे आए करीव १ लाख सरकारी कर्मचारी एवं विभिन्न प्रदेशोंसे आकर वसी हुई जनतामें हिन्दी प्रचारकी वड़ी आवश्यकता महसूस की गई। १९४८ में श्री रंजनजी,

श्री मथुरादासजी और श्रीमती रामलक्ष्मी राघवनके प्रयत्नसे दिल्लीमें वर्धा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका केन्द्र स्थापित किया गया।

दिल्ली प्रान्तीय राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिका आरम्भ

२३ अप्रैल १९४८ में संत विनोबाजी द्वारा दिल्ली केन्द्रका उद्घाटन हुआ। डॉ. पट्टाभि सीतारामय्या अध्यक्ष थे। प्रारम्भमें ७ परीक्षार्थी सम्मिलित हुए। श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख एवं उनकी माताजी का सहयोग सदा प्रेरणादायक रहा। प्रारम्भमें विनयनगर, मोदी कॉलोनी, लाजपतरायनगर, नई दिल्ली, राजेन्द्रनगर, गुजराती स्कूल (दिल्ली) और हरिजन उद्योग शालामें सुचारु रूपसे काम चला। इन सब स्थानोंपर परीक्षार्थियोंकी संख्या ३०० तक पहुँची। इस कारण एक प्रान्तीय शाखा खोलनेकी जरूरत महसूस हुई और परिणामस्वरूप दिल्ली प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी स्थापना हुई। ३ अगस्त १९५२ में श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डितकी अध्यक्षतामें राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन द्वारा उसका विधिवत् उद्घाटन हुआ।

एक अपूर्व प्रसंग

ता. २ मई १९५४ को नई दिल्ली केन्द्रका सातवाँ वार्षिक सम्मेलन बड़े समारोह पूर्वक मनाया गया। यह समितिके इतिहासमें अभूतपूर्व ही रहा। भू. पू. राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीने इस समारम्भका अध्यक्षपद सुशोभित किया था। उन्होंने हिन्दी प्रचार कार्यपर अपना प्रोत्साहन पूर्ण सन्देश इस अवसरपर दिया। करीब एक हजार हिन्दी प्रेमी, नेतागण, मन्त्री, अधिकारी एवं भारतके सभी हिन्दी प्रेमी प्रमुख व्यक्ति उपस्थित हुए। इसने एक अखिल भारतीय जैसा रूप धारण कर लिया था। दिल्लीका प्रचार-कार्य अब आगे बढ़ा।

प्रचार-कार्यकी प्रगति

१९५५ की सितम्बरकी परीक्षाओंमें लगभग ८०० परीक्षार्थी बैठे। राजर्षि टण्डनजीने स्वयं सभी केन्द्रोंका निरीक्षण कर प्रशंसा की थी। नई दिल्ली और पुरानी दिल्लीके बीच १० केन्द्र चलते रहे और ५० वर्ग छात्र-छात्राओंको हिन्दी सीखनेके लिए चलते रहे। करीब १५० प्रचारक बन्धु इस कार्यमें जुट गए थे। अबतक ५००० विद्यार्थी समितिकी विभिन्न परीक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके थे।

केन्द्रीय सरकारके सरकारी कर्मचारियोंको हिन्दी पढ़ानेकी योजना (दिल्ली और नई दिल्लीमें) दिल्ली समितिने बनाई। भारत सरकारके द्वारा इसका अनुकरण किया गया। दिल्ली समितिने, केन्द्रीय सरकारको एक पंचवर्षीय योजना केन्द्रीय कर्मचारियोंको हिन्दी सीखनेकी दृष्टिसे दी थी किन्तु वह योजना स्वीकृत न हो सकी क्योंकि सरकारने वैसी ही अपनी योजना प्रारम्भ की। जबसे सरकारकी ओरसे हिन्दी सीखनेके वर्ग खोले गए हैं तबसे हमारे वर्गोंकी संख्या धीरे-धीरे घटने लगी।

संसदीय सदस्योंको हिन्दी पढ़ानेका कार्य

१९५२ में जब संसदका अधिवेशन प्रारम्भ हुआ तब समितिने संसदीय सदस्योंको हिन्दी सिखानेका

प्रबन्ध किया। यह कार्य संसदीय हिन्दी परिपदके सहयोगसे किया गया। १२ संसदीय सदस्य समितिकी परीक्षाओंमें सम्मिलित हुए।

भाषाकी शिक्षा

संसदीय सदस्योंके लिए तमिल वर्ग भी खोले गए। इसका उद्घाटन मौलाना अब्दुल कलाम आजादने किया था—अध्यक्षता श्री टी. टी. कृष्णमाचारीने की थी। ये वर्ग जितने चाहिए उतने यशस्वी न हो सके।

मान्यता संबंधी प्रयत्न

दिल्ली समितिने विभिन्न अवसरोंपर वर्धा समितिकी परीक्षाओंकी मान्यताके लिए अनेक प्रयत्न किए और आकाश वाणी, गृहमन्त्रालय, शिक्षा मन्त्रालय, रेल्वे मन्त्रालय आदिसे मान्यता प्राप्त करानेमें सहयोग दिया।

रेल्वे कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेकी योजना

रेल्वेमें कम-से-कम एक करोड़ लोग काम करते हैं जिनमेंसे ६० फीसदी लोग ऐसे हैं कि जिन्हें हिन्दी सिखानेकी नितान्त आवश्यकता है। दिल्ली समितिने राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी ओरसे इस योजनाको कार्यान्वित करनेकी बात रेल्वेबोर्डसे छेड़ी। सन् १९५७ में इस संबंधमें एक आदेश भी निकाला गया था किन्तु उसके पश्चात् कोई प्रगति नहीं हुई। इसके सम्बन्धमें तत्कालीन रेल्वे मन्त्री श्री जगजीवनरामजीने एक आदेश निकाला था जिसके अनुसार जहाँ गृह-मन्त्रालयकी ओरसे हिन्दी सिखानेका प्रबन्ध न हों ऐसी जगहपर वर्धा समितिके द्वारा हिन्दी सीखनेका प्रवन्ध करनेके लिए सोचा गया। इसमें दिल्ली समितिने अपना पूर्ण सहयोग दिया। इस कार्यको देशमें बडा बढ़ावा मिला।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलनका नवाँ अधिवेशन

१९५९में दिल्लीमें अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका अधिवेशन हुआ। विभिन्न हिन्दी-तर प्रदेशोंसे १५०० प्रतिनिधि, दर्शक इस सम्मेलनमें सम्मिलित हुए। पं. जवाहरलाल नेहरूने इस सम्मेलनका उद्घाटन किया और श्री अनन्तशयनम् अयंगारने इसकी अध्यक्षता की। इस अवसरपर ही राजर्षि पुरुषोत्तम-दासजी टण्डनकी सेवामें २५००१ रु. की निधि समर्पित की गई। वह निधि राजर्षिने हिन्दी प्रचार कार्यके लिए समर्पित कर दी। राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसादजी द्वारा प्रतिनिधियोंको राष्ट्रपति भवनमें मुगल उद्यानमें एक दावत दी गई। प्रधान मन्त्री नेहरूजीने भी अपनी कोठीपर प्रतिनिधियोंसे मुलाकात की। संसद भवनमें सभी प्रतिनिधियोंको पार्टी दी गई। दिल्ली कार्पोरेशनकी ओरसे भी प्रतिनिधियोंका स्वागत कर पार्टी दी गई। इस प्रकार यह सम्मेलन भी चिरस्मरणीय रहा। गांधी पुरस्कार श्री काका साहव कालेलकरको दिया गया।

पत्र-पत्रिकाओं द्वारा हिन्दी-प्रचार-कार्य

चूँकि सभी भाषाओंका प्रतिनिधित्व दिल्लीसे होता है, इसलिए सभी भापाओंको एक दूसरेसे निकट

लानेका प्रयत्न करना आवश्यक समझा गया। इस उद्देश्यसे सन् १९५६ में एक अच्छी पत्रिका "विजय भारती" निकालनेका प्रयास किया गया परन्तु इसका एक अक ही निकल सका और यह कार्य रुक गया।

'देवनागर' पत्र संसदीय हिन्दी परिषदकी ओरसे पुनः निकलने लगा। ससदीय हिन्दी परिषद द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके सहयोगसे एक हिन्दी साप्ताहिक राजभाषा प्रकाशित करना शुरू किया गया इस साप्ताहिककी सहसम्पादिका श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन् हैं।

हिन्दी-दिवस

हिन्दी-दिवसका आयोजन बडे समारोहके साथ राष्ट्रपतिजी आदिके मार्गदर्शनमें होता रहा। संसद भवन में राष्ट्रपति भवनमें इसके आयोजन होते रहे हैं। इससे हिन्दीके कार्यको बडी गति मिली है। हिन्दी सप्ताहका आयोजन भी इस अवसरपर किया जाता रहा हैं।

दिल्ली प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके पदाधिकारी

अध्यक्ष—श्री के. सी. रेड्डी, मन्त्री, उद्योग तथा व्यापार केन्द्रीय सरकार।
उपाध्यक्ष—श्री अनन्त शयनम् अयगार राज्यपाल बिहार।
कोषाध्यक्ष—श्री एस. आर एस. राघवन्।
मंत्री-संचालक—श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन्।

परीक्षा उन्नति-क्रम

दिल्लीसे अवतक इस प्रकार परीक्षार्थी राष्ट्रभाषाकी विभिन्न परीक्षाओमे सम्मिलित हुए।

सन्	परीक्षार्थी
१९५३	७७८
१९५४	८३५
१९५५	८२४
१९५६	४९९
१९५७	२३९
१९५८	२२४
१९५९	२५९
१९६०	३०१
१९६१	३२०
१९६२	३७१

सिन्ध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, जयपुर

सिंधमें हिन्दी प्रचारका कार्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापनाके पूर्व भी होता रहा।

प्रबन्ध किया। यह कार्य संसदीय हिन्दी परिषदके सहयोगसे किया गया। १२ संसदीय सदस्य समितिकी परीक्षाओंमें सम्मिलित हुए।

भाषाकी शिक्षा

संसदीय सदस्योंके लिए तमिल वर्ग भी खोले गए। इसका उद्‌घाटन मौलाना अब्दुल कलाम आजादने किया था—अध्यक्षता श्री टी. टी. कृष्णमाचारीने की थी। ये वर्ग जितने चाहिए उतने यशस्वी न हो सके।

मान्यता संबंधी प्रयत्न

दिल्ली समितिने विभिन्न अवसरोंपर वर्धा समितिकी परीक्षाओंकी मान्यताके लिए अनेक प्रयत्न किए और आकाश वाणी, गृहमन्त्रालय, शिक्षा मन्त्रालय, रेल्वे मन्त्रालय आदिसे मान्यता प्राप्त करानेमें सहयोग दिया।

रेल्वे कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेकी योजना

रेल्वेमें कम-से-कम एक करोड़ लोग काम करते हैं जिनमेंसे ६० फीसदी लोग ऐसे हैं कि जिन्हें हिन्दी सिखानेकी नितान्त आवश्यकता है। दिल्ली समितिने राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी ओरसे इस योजनाको कार्यान्वित करनेकी बात रेल्वेबोर्डसे छेड़ी। सन् १९५७ में इस संबंधमें एक आदेश भी निकाला गया था किन्तु उसके पश्चात् कोई प्रगति नहीं हुई। इसके सम्बन्धमें तत्कालीन रेल्वे मन्त्री श्री जगजीवनरामजीने एक आदेश निकाला था जिसके अनुसार जहाँ गृह-मन्त्रालयकी ओरसे हिन्दी सिखानेका प्रबन्ध न हों ऐसी जगहपर वर्धा समितिके द्वारा हिन्दी सीखनेका प्रबन्ध करनेके लिए सोचा गया। इसमें दिल्ली समितिने अपना पूर्ण सहयोग दिया। इस कार्यको देशमें बडा बढ़ावा मिला।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलनका नवाँ अधिवेशन

१९५९में दिल्लीमें अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका अधिवेशन हुआ। विभिन्न हिन्दी-तर प्रदेशोंसे १५०० प्रतिनिधि,दर्शक इस सम्मेलनमें सम्मिलित हुए। पं. जवाहरलाल नेहरूने इस सम्मेलनका उद्‌घाटन किया और श्री अनन्तशयनम् अयंगारने इसकी अध्यक्षता की। इस अवसरपर ही राजर्षि पुरुषोत्तम-दासजी टण्डनकी सेवामें २५००१ रु. की निधि समर्पित की गई। वह निधि राजर्षिने हिन्दी प्रचार कार्यके लिए समर्पित कर दी। राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसादजी द्वारा प्रतिनिधयोंको राष्ट्रपति भवनमें मुगल उद्यानमें एक दावत दी गई। प्रधान मन्त्री नेहरूजीने भी अपनी कोठीपर प्रतिनिधियोंसे मुलाकात की। संसद भवनमें सभी प्रतिनिधियोंको पार्टी दी गई। दिल्ली कार्पोरेशनकी ओरसे भी प्रतिनिधियोंका स्वागत कर पार्टी दी गई। इस प्रकार यह सम्मेलन भी चिरस्मरणीय रहा। गांधी पुरस्कार श्री काका साहब कालेलकरको दिया गया।

पत्र-पत्रिकाओं द्वारा हिन्दी-प्रचार-कार्य

चूंकि सभी भाषाओंका प्रतिनिधित्व दिल्लीसे होता है, इसलिए सभी भाषाओंको एक दूसरेसे निकट

राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको कार्य करनेके लिए कहा गया और अजमेर प्रान्तीय कार्यालय स्थापित कर, कार्य प्रारम्भ कर दिया गया।

सिन्धी भाइयोंको राजस्थानी एवं अन्य प्रान्तोंकी जनताके साथ सम्पर्क स्थापित करनेके लिए हिन्दी ही एकमात्र सहारा थी। इसलिए राष्ट्रभाषा-कर्मीगण राष्ट्रभाषाका सन्देश घर-घर पहुँचाने लगे। वे दिन आँधी-तूफान और कठिनाईके दिन थे। उसकी कल्पना कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

राजस्थान चूँकि छोटे-छोटे राज्योंमें सदियोंसे बँटा हुआ था अतः शिक्षामें बहुत पिछड़ा हुआ था। राजस्थानी भाइयोंने हिन्दी पढ़ना शुरू किया और समितिका क्षेत्र व्यापक बनने लगा। समितिने राजस्थानमें राष्ट्रभाषाकी शिक्षाकी माँगको देखते हुए अपने नाममें राजस्थान जोड़ लिया और अब वह 'सिन्ध-राजस्थान' राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बन गई। आज समिति राजस्थानके ग्राम-ग्राम, नगर-नगरमें आबाल-वृद्ध एवं सभी वर्गोंके लोगोंमें काम कर रही है।

सिन्धमें १९३८ से १९४७ तक २४४३२ परीक्षार्थी समितिकी परीक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके थे। राजस्थानमें १९४८ से कार्य १११ परीक्षार्थियोंसे प्रारम्भ किया गया और १९६१ तक ५९३८१ परीक्षार्थी सम्मिलित हो चुके है, अब केन्द्रोंकी सख्या भी २०५ हो गई है।' आजकल प्रतिवर्ष करीब १० हजारसे ऊपर परीक्षार्थी बैठने लगे हैं।

राष्ट्रभाषा सम्मेलन

राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समितिने जोधपुरमें १९५३ के अक्तूबर महीनेमें अनन्त शयनम्‌जी अय्यगारकी अध्यक्षतामें अपना प्रथम प्रान्तीय सम्मेलन सफलतापूर्वक मनाया।

१९५३ में ही नवम्बरमें उदयपुर जिलेके एक बहुत ही छोटे ग्राम रीछेडमें श्री जनार्दनरायकी अध्यक्षतामें उदयपुर जिला राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन हुआ।

रीछेड़की ही भाँति सिकरायमें १९५४ में तत्कालीन सचालक मन्त्री श्री राजबहादुरकी अध्यक्षतामें सम्मेलन हुआ।

५-६ नवम्बर ५५ को लक्ष्मणगढमें सीकर जिला सम्मेलन श्री प. मु. डागरेजीकी अध्यक्षतामें हुआ।

१९५९ में विनोबाजी द्वारा उद्घाटन किया जाकर श्री जेठालाल जोशीकी अध्यक्षतामें डूँगरपुरमें उदयपुर *डिवीजन सम्मेलन २५ जनवरीको हुआ।*

अखिल भारतीय रा. भा. प्रचार सम्मेलन, सातवाँ अधिवेशन

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका ७ वाँ अधिवेशन जयपुरमें सम्पन्न हुआ। इसकी अध्यक्षता साहित्य वाचस्पति सेठ गोविन्ददासजीने की एवं गृह-मन्त्रालयके मन्त्री श्री ब. ना. दातारने *उद्घाटन किया। प्रदर्शनी उद्घाटन जयपुरके महाराज सवाई मानसिंहजीने किया।* इस अवसरपर भारतीय दर्शनके प्रकाण्ड विद्वान् प्रज्ञाचक्षु प. सुन्दरलालजीको महात्मा गाँधी पुरस्कार समर्पित

शिकारपुरकी प्रीतम धर्म सभा, साधुबेलाके महन्त स्वामी हरनामदास सक्खर तथा सिन्धके वीर सेनानी डॉ. चोइथराम द्वारा १९११ में हैदराबादमें स्थापित ब्रह्मचारी आश्रम एवं गिटूमल संस्कृत पाठशाला द्वारा सिन्धमें हिन्दीका प्रचार होता रहा। १९१५ में स्वामी सत्यदेव परिव्राजकने हैदराबाद (सिन्ध) में नागरी प्रचारिणी सभाकी स्थापना की जिसकी ओरसे दो रात्रि पाठशालाएँ चलाई गई।

१९३६ में वर्धा समितिकी स्थापनाके अनन्तर काकासाहब कालेलकरकी अध्यक्षतामें सिन्ध-प्रान्तीय साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन हुआ। उसी अवसरपर सिन्ध-हिन्दी प्रचार समितिका गठन किया गया, जिसके अध्यक्ष सेठ लोकामल चेलाराम एवं मन्त्री पं. चन्द्रसेन जेतली निर्वाचित किए गए। पं. इन्द्रदेव शर्माको जो उन दिनों वर्धा अध्यापन मंदिरसे शिक्षा प्राप्त कर लौटे थे, संचालकके पदपर नियुक्त किए गए। १९४०–४१ में प्रोफेसर नारायण दास मलकानीको अध्यक्ष नियुक्त किया गया। उन्होंने समितिको नए सिरेसे संगठित किया। प्रत्येक जिलेके अध्यक्ष एवं मन्त्री इस प्रकार नियुक्त किए गए—

कराँची	अध्यक्ष—श्री भगवानसिंह।	मन्त्री—श्री चन्द्रसेन जेतली।
हैदराबाद	अध्यक्ष—श्री प्रो. एम. एन. बठीजा।	मन्त्री—श्री देवदत्त शर्मा।
नवाबशाह	अध्यक्ष—श्री मठोराम हरूमल।	मन्त्री—श्री दीपचन्द्र।
सक्खर	अध्यक्ष—श्री बालचन्द्र।	मन्त्री—श्री वृहस्पति शर्मा।

प्रान्तीय समितिका कार्यालय कराँचीसे बदलकर हैदराबाद रखा गया।

इसके बाद ही २१–२२ फरवरी १९४० को काकासाहबकी अध्यक्षतामें हैदराबादमें राष्ट्रभाषा सम्मेलन हुआ और तदनन्तर कार्य बढ़ने लगा। कार्य बढ़ जानेपर पं. इन्द्रदेव शर्माके स्थानपर श्री देवदत्त शर्मा प्रान्तीय संचालक बनाए गए जो १९४६ तक इस कार्यको करते रहे।

सन् १९४४ में सिन्ध समितिने 'कौमी बोली' नामक मासिक पत्रका प्रकाशन आरम्भ किया। पं. देवदत्त शर्मा एवं श्री गौरीशंकर शर्मा इसके सम्पादक थे।

१९४२ में प्रो. मलकानीके जेल चले जानेके कारण भाई प्रताप डीयलदासको समितिका सभापति बनाया गया।

श्री इन्द्रदेवजी शर्माके अथक परिश्रम एवं त्यागके कारण ही सिन्धमें राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य बढ़ा, लेकिन १९४६ में उनकी मृत्यु हो जानेके कारण समितिकी अपार क्षति हुई।

दिसम्बर १९४६ में कराँचीमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन हुआ। उसी अवसरपर सिंध समितिके संचालनका कार्य श्री दौलतरामजी शर्माको सौंपा गया। अभी मुश्किलसे १ वर्ष बीत पाया था कि देशका विभाजन हो गया और सिन्धका सारा कार्य जैसे-का-तैसा छोड़कर आना पड़ा।

राजस्थानमें

विभाजनके कारण सिन्धी भाइयोंको अपनी मातृभूमि छोड़नी पड़ी। राजस्थान सिन्धके निकट होनेके कारण वहुत संख्यामें सिन्धी भाई राजस्थानमें आए। अतः राजस्थानमें ही वर्धा समिति द्वारा सिन्ध

सिंधमें तथा राजस्थानमें परीक्षार्थियोंका उन्नति क्रम नीचे दिया जा रहा है —

केवल सिन्धमें

सन्	परीक्षार्थी
१९३८	१४
१९३९	१६६
१९४०	८४८
१९४१	१,५४८
१९४२	१,८७२
१९४३	२,९०२
१९४४	३,४४२
१९४५	४,२०५
१९४६	५,१८९
१९४७	५,२४३
	२४४३२

राजस्थानमें

सन्	परीक्षार्थी
१९४८	१११
१९४९	३,०६२
१०५०	४,५११
१९५१	३,८८८
१९५२	३,६६१
१९५३	३,३९८
१९५४	३,६०९
१९५५	३,२२८
१९५६	३,७५८
१९५७	३,४३८
१९५८	३,८८२
१९५९	४,९१२
१९६०	७,४४५
१९६१	१०,४५६

किया गया। राष्ट्रभाषाके पुराने निष्ठावान् सेवी श्री हृषीकेशजीका भी वर्धा समितिने अभिनन्दन किया।

हिन्दी-भवन

सम्मेलनके अवसरपर ही राजस्थानके मुख्यमन्त्री श्री मोहनलालजी सुखाड़ियाने सिन्ध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके तत्वावधानमें बननेवाले हिन्दी भवनका शिलान्यास किया। अब इस भवनका निर्माण-कार्य प्रारम्भ हो गया है।

अब सिन्ध राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके अध्यक्ष डॉ. सोमनाथजी गुप्त हैं जिनका मार्ग-दर्शन समितिको बड़ा प्रेरणादायी रहा है।

श्री दौलतरामजी शर्मा सिन्ध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके मन्त्री-संचालक पदपर बड़ी लगनसे कार्य कर रहे हैं। वे १९५९ में थाइलैण्ड, कम्बोडिया, वीतनाम, हांगकांग, जापान और सिंगापुर भी हो आए हैं। जापान म्पोतौमें उन्होंने राष्ट्रभाषा केन्द्रकी स्थापना भी की।

अन्य प्रवृत्तियां

१—राजस्थान ही पहला प्रान्त है जहाँ पंचायतोंको अधिकार दिए गए। लेकिन अधिकतर पंच अशिक्षित हैं। समितिने उनमें शिक्षाका प्रचार किया और बड़ी संख्यामें पंच राष्ट्रभाषाकी परीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं।

२—एक रेल विभाग भी खोला गया है। श्री सत्यदेवराव, अजमेरके प्रयत्नसे अजमेर, उदयपुर फुलेरा, रींगस, सीकर बोदी मुई, अछनेरा और जयपुरमें रेल्वे मजदूर वर्गके लिये राष्ट्रभाषा वर्ग चल रहे हैं।

३—२० शिक्षण केन्द्र एवं ३५ विद्यालय तथा १० महाविद्यालय प्रान्तमें चल रहे हैं।

४—राजस्थानमें ज्यों-ज्यों काम बढ़ता जा रहा है त्यों-त्यों केन्द्र-संख्या भी बढ़ती जा रही है। १९४८ में ११ केन्द्रोंसे काम शुरू हुआ था अब राजस्थानमें २५० केन्द्र चल रहे हैं।

५—१६० प्रमाणित प्रचारक बन्धुओंका हार्दिक सहयोग समितिको प्राप्त है और लगभग उससे दुगने सहयोगी प्रचारक बड़ी निष्ठासे राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्य कर रहे हैं।

६—समिति ६ वर्षोंसे 'उत्तर भारती' के नामसे कार्यकी जानकारी देनेके लिए एक मासिक बुलेटिन भी निकाल रही है जो केन्द्रोंको निःशुल्क भेजी जाती है।

सिन्ध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके वर्तमान पदाधिकारी

अध्यक्ष—श्री डॉ. सोमनाथजी गुप्त, डाइरेक्टर-राजस्थान अकादमी उदयपुर।
संचालक-मन्त्री—श्री दौलतरामजी शर्मा।
कोषाध्यक्ष—श्री राजरूपजी टाँक।

कैलाशनाथ काटजूने वितरित किए। हेवी इलेक्ट्रिकल्सके कर्मचारियोंने हिन्दी भवनके लिए भी पर्याप्त मदद की।

हिन्दी-भवन

मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके तत्वावधानमें पं. रविशंकर शुक्लकी स्मृतिमें एक हिन्दी भवन बनानेका निश्चय किया गया है। भवनके लिए शासनकी ओरसे दो ओकड़ भूमि टैगोर स्मृति गृहके निकट आकाशवाणीके पडोसमें मिल चुकी है। भवनके लिए राष्ट्रभाषा प्रचार केन्द्रोसे १० हजार रु एवं बिडला बन्धुओसे १० हजार एकत्र हुए है। भवन-निधि एकत्र करनेके लिए ईंटोके प्रतीक ब्लाक बनाए गए है।

प्रचार विवरण

प्रान्तमें ७० प्रचारक बन्धु प्रचार कार्यमे सहयोग दे रहे है।
७१ केन्द्रोमे नियमित रूपसे परीक्षाओका आयोजन किया जाता है।
करीब सवा पांच हजार परीक्षार्थी प्रतिवर्ष प्रदेशसे सम्मिलित होते है।

मान्यता

मध्यप्रदेश शासनने समितिकी परिचय परीक्षाको विभागीय परीक्षाके रूपमे मान्य किया है। उसी तरह शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकारके समान परिचय, कोविद, एव राष्ट्रभाषा रत्नको क्रमश मैट्रिक, इन्टरमीजियेट, एव बी. ए हिन्दी के समकक्ष स्वीकार किया है।

हस्ताक्षर आन्दोलन

मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समितिने १९६१ से एक हस्ताक्षर आन्दोलन प्रारम्भ किया है और मध्यप्रदेशके समस्त हिन्दी प्रेमियो, प्रचारको, केन्द्र-व्यवस्थापको एव हिन्दी सस्थाओसे अनुरोध किया है कि वे अपने पास-पडोस, ग्राम नगरके अशिक्षित व्यक्तियोको हस्ताक्षर करना सिखाएँ और अगूठा निशानी एव अशिक्षाको दूर करे। मध्यप्रदेशके राज्यपाल श्री पाटस्करजीने एक चपरासिनको हस्ताक्षर करना सिखाकर इस आन्दोलनका उद्घाटन किया।

महिला विभाग

१९५६ मे मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समितिने महिलाओमे राष्ट्रभाषा कार्यको बढ़ावा देने और अशिक्षित महिलाओको शिक्षित करनेके विचारसे एक महिला विभाग खोलनेका निश्चय किया। १९५७ में रानी पद्मावती (खैरागढ) के नेतृत्वमे म. प्र राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके अन्तर्गत महिला विभाग खोल दिया गया। उसकी एक कार्यकारिणी गठित की गई। पहले इसका कार्यालय इन्दौरमे रखा गया था लेकिन अगस्त ५९ मे यह कार्यालय भोपाल ले आया गया।

मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल

(इतिहास एवं प्रगतिविवरण)

स्वतन्त्रता प्राप्तिके वाद सिन्ध व पंजाबसे एक बड़ी संख्यामें शरणार्थी भाई पूर्व मध्यभारत व भोपालमें आकर बसे। उन्हें हिन्दी सिखानेकी दृष्टिसे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा इस प्रान्तमें परीक्षाएँ आरम्भ की गई। प्रारम्भमें यह कार्य श्री प्रेमसिंह चौहान 'द्विव्यार्थ' देखते थे। इसका कार्यालय विदिशाके पास त्यौंदा ग्राममें था। कुछ वर्षोंके वाद कार्यालय त्यौंदासे खाचरौद ले आया गया। खाचरौदसे कार्य १९५२ तक चलता रहा। १९५२ में भोपाल-मध्यभारत राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी स्थापना हुई इसके सर्वप्रथम अध्यक्ष महाराजकुमार डॉ. रघुवीरसिंह, सीतामऊ बनाए गए। कतिपय कारणोंसे १९५३–५४ में वहाँका कार्यालय बन्द कर दिया गया और वह कार्य केन्द्रीय कार्यालय वर्धासे ही संचालित होता रहा किन्तु जुलाई १९५४ में श्री वैजनाथ प्रसाद दुबेकी नियुक्ति प्रान्तीय समितिके संचालक-मन्त्री पदपर हुई। १५ व्यक्तियोंकी एक कार्यकारिणीका गठन डॉ. रघुवीरसिंहजीकी अध्यक्षतामें किया गया। कार्य विधिवत् प्रगति करता रहा। समितिके कार्यमें स्थिरता आने लगी। सन् १९५६ के नवम्बर माहमें मध्यभारत, भोपाल, विन्ध्य व महाकोशलको मिलाकर मध्यप्रदेश प्रान्तका एकीकरण हुआ तव भोपाल मध्यभारत राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका नाम वदलकर मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति किया गया और उसका कार्यालय जो पहले महूमें था अव भोपाल आ गया। २२ जून १९५७ को मध्यप्रदेशके मुख्यमन्त्री डॉ. कैलाशनाथ काटजूने इस कार्यालयका विधिवत् उद्घाटन किया।

मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, प्रान्तमें, अपने अन्तर्गत विभिन्न प्रवृत्तियोंका संचालन करती है।

सचिवालय कक्षाएँ

मध्यप्रदेश शासनके तृतीय श्रेणीके कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेके लिए जुलाई १९६० से सचिवालयके कमेटी रूममें कक्षाएँ आरम्भ की गई हैं। इन कक्षाओंमें लभगभग ५० परीक्षार्थी (१९६१ तक) सम्मिलित हो चुके हैं। इस कार्यमें भाषा विभाग मध्यप्रदेश शासनका विशेष सहयोग मिला।

वादविवाद प्रतियोगिताएँ

१९५९ में रानी पद्मावती देवी (खैरागढ़) ने १५००) रु. की लागत की दो शील्डें प्रदान कीं। ये शील्डें पुरुषोंके लिए पं. रविशंकर शुक्ल वाद-विवाद प्रतियोगिता अेवं महिलाओंके लिए रानी पद्मावती देवी वाद-विवाद प्रतियोगिताके लिए दी गई।

हेवी इलेक्ट्रिकल्समें कार्य

सितम्बर ५९ से हेवी इलेक्ट्रिकल्समें राष्ट्रभाषाका केन्द्र खोला गया। इसमें १९६१ तक हिन्दीतर भाषा-भाषी २५१ परीक्षार्थी सम्मिलित हो चुके हैं। प्रमाण-पत्र १९६० के जुलाई महीनेमें डॉ.

सन्	परीक्षार्थी
१९५९	४,५३३
१९६०	४,६२५
१९६१	५,०९८
१९६२	४,६१७

मराठवाड़ा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, औरंगाबाद

मराठवाड़ा कई सांस्कृतिक विशेषताओंके गौरवसे सम्पन्न होते हुए भी, कई वर्षोंतक अंग्रेजो तथा निजाम शासनकी दुहरी गुलामीमें जकड़ा होने के कारण भारतके अन्य कई प्रदेशोंकी अपेक्षा पिछड़ा ही रहा। वहाँकी जनताके मनपर भय व आतकका प्रभाव था।

हैदराबादमें राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी स्थापनाके अनन्तर ही १९३७ में कार्य आरम्भ किया गया था। लेकिन श्री विष्णुदत्तजी शर्मा मराठवाडामें राष्ट्रभाषा प्रचार कार्य बड़ी निर्भीकतासे करते रहे। भारतके स्वतन्त्र होनेके बाद निजाम हुकूमतसे छुटकारा पानेके लिए स्टेट कांग्रेस हैदराबाद द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन' प्रारम्भ किया गया। इस कारण राजनैतिक नेताओंके साथ कई राष्ट्रभाषा प्रेमियोंको भी जेल भेज दिया गया। श्री प. विष्णुदत्तजी शर्माको भी जेलमें भेज दिया गया। हिन्दी प्रचारका कार्य भी जेलके सीकचोमें ही चलने लगा। जेलमें ही राष्ट्रभाषा पढानेकी योजना विविध प्रवृत्तियोंके साथ कार्यान्वित होने लगी।

नवम्बर १९४८ में भारत सरकार द्वारा पुलिस कार्यवाही होनेके पश्चात् भय एव आतंकके साम्राज्यका अन्त हुआ। राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्यको भी गति मिली। इस समय जालनाके श्री प. गगा विष्णुजी शर्मा, श्री प. नागेशदत्तजी शुक्ल, श्री भीमरावजी बरील, नान्देड़के श्री लक्ष्मणाचार्य शास्त्री, श्री मदनलालजी विपाणी, लातूरके श्री कचरूलालजी पोकरणा, अम्बा जोगाईके श्री चन्द्रगुप्तजी गुप्ता तथा श्री वि ना. जाधव, औरंगाबादके श्री पं. ज्ञानेन्द्रजी शर्मा आदि कई हिन्दी प्रेमियोंने अपनी निष्ठाका परिचय देकर हिन्दी प्रचार क्षेत्रमे महत्वपूर्ण कार्य किया है।

मराठवाडामे राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्य हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभाके द्वारा संचालित होता रहा। आगे चलकर जब हैदराबाद स्टेट का पुनर्विभाजन हुआ तो वह बम्बई राज्यके अन्तर्गत आ गया। १९५६ के अन्ततक मराठवाड़ामें हिन्दीका कार्य शिथिल-सा हो गया। अत समितिके निश्चयानुसार मराठवाडामें कार्य करनेकी दृष्टिसे मराठवाडाके पुराने राष्ट्रभाषा कर्मी श्री पं विष्णुदत्तजी शर्माकी नियुक्ति की गई।

शर्माजीने मराठवाड़ाके जालना, सेलू, नान्देड, परभणी, बीड़ तथा लातूर आदि स्थानोका दौरा कर जन सम्पर्क स्थापित किया। उन्होंने मराठवाडाके प्रमुख जन नेता मा श्री भगवंतरावजी गाढे तथा मा. श्री शकररावची चव्हाणसे विचार विनिमयकर मराठवाडा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका गठन किया। अध्यक्ष श्री भगवन्तरावजी गाढे बनाए गए और उपाध्यक्ष श्री शंकररावजी चव्हाण। ये अबतक पदाधिकारीके रूपमें विद्यमान हैं।

१९५७–५८ में समाज शिक्षा विभागने महिला विभागको १० हजारका अनुदान दिया। १९५८–५९ में केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्डने पुस्तकालयके लिए १३०० का अनुदान दिया। समाज कल्याण बोर्डने १९५०–६० व १९६०–६१ में भी क्रमशः १ हजार एवं ९५० का अनुदान दिया।

मध्यप्रदेशसे सम्वद्ध संस्थाओंमें ये संस्थाएँ प्रमुख हैं—

१—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रतलाम।

२—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, इन्दौर।

३—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, उज्जैन।

४—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बैरागढ़।

५—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, आष्टा।

६—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बुरहानपुर (जिला पूर्व निमाड)

७—नूतन साहित्य कलानिकेतन, जच्छण्ड (जिला भिण्ड)

८—मालव विद्यापीठ मन्दसौर।

मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके वर्तमान पदाधिकारी

अध्यक्ष—श्री महाराज कुमार डॉ. रघुवीरसिंह, डी. लिट्।

कार्याध्यक्ष—श्री सौभाग्यमलजी जैन, एडवोकेट।

उपाध्यक्ष—श्री श्यामाचरणजी शुक्ल, एम. एल. ए.।

उपाध्यक्ष—श्री महाराजा भानुप्रकाशसिंहजी।

उपाध्यक्ष—श्री डॉ. विनयमोहन शर्मा।

कोषाध्यक्ष—श्री हुकुमचन्दजी पाटनी।

संयोजिका महिला विभाग—श्रीमती सुशीलारानी दास।

मन्त्री-संचालक—श्री बैजनाथ प्रसाद दुबे।

परीक्षार्थी उन्नति-क्रम

सन्	परीक्षार्थी
१९५१	२,०३७
१९५२	१,७९९
१९५३	१,३८४
१९५४	१,३०८
१९५५	१,५०७
१९५६	३,१४८
१९५७	२,७१८
१९५८	३,८१४

उसमें मूरसाविर मठके जगद्गुरु श्री गंगाधर राजयोगीन्द्र स्वामीजीने उद्घाटन किया तथा मैसूर राज्यके तत्कालीन मुख्य मन्त्री श्री बी. डी. जत्तीजी मुख्य अतिथिके रूपमें पधारे थे।

हिन्दी-दिवसका आयोजन बड़े समारोहपूर्वक किया जाता है। इस अवसरपर विभिन्न स्पर्धाएँ भी आयोजित की जाती हैं।

कर्नाटक प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्य इस अल्प कालमें बहुत प्रगति कर चुका है। अब ४० केन्द्रोंमें राष्ट्रभाषा प्रचार का कार्य चल रहा है और ४३००० से अधिक परीक्षार्थी इसकी परीक्षामें प्रतिवर्ष सम्मिलित होते हैं।

अबतक प्रान्तसे प्राथमिकमें ६,७१२, प्रारम्भिकमें १७,५८५, प्रवेशमें १३६८३, कोविदमें ३,०३६ तथा रत्नमें १६२ इस प्रकार ४८,१०१ परीक्षामें सम्मिलित हो चुके हैं—

समितिके वर्तमान पदाधिकारी

अध्यक्ष—श्री एच. पी. शहा, एम. एल ए.।
कार्याध्यक्ष—श्री आर. व्ही. शिरूर।
उपाध्यक्ष—श्री बी. एल. इचिनाल,
उपाध्यक्ष—श्री राघवजी देवजी लद्दड़।
संचालक—श्री वासुदेव चिन्तामणि बस्ती।

यह संस्था रजिस्टर्ड हो गई है। सरकारकी ओरसे इसे कोई सहायता अभी प्राप्त नहीं हुई है। वर्धा समितिकी सहायता एवं जनताके सहयोगपर ही यह समिति अपना कार्य चलाती है। एक सालसे हुबली कर्नाटकमें राष्ट्रभाषा प्रचार परीक्षाओंमें निम्नलिखित क्रमसे वर्षवार परीक्षार्थी सम्मिलित हुओ।

कर्नाटकमें भवन निर्माणके लिए श्री आर व्ही. शिरूरने ५४४५ स्केर फटकी जगह प्रदानकी है। भवन निर्माण शीघ्र ही प्रारम्भ होनेवाला है। शिरूरजीकी सहायता पहलेसे ही है।

कर्नाटक परीक्षार्थी उन्नति-क्रम

सन्	परीक्षार्थी
१९४७	२००
१९४८	१५०
१९४९	८००
१९५०	१,२००
१९५१	३,५००
१९५२	४,५००
१९५३	१,३३४

कार्यकी सुविधाके लिए प्रारम्भमें प्रान्तीय समितिका कार्यालय जालनामें रखा गया। १
में यह समिति विधिवत् प्रान्तीय समिति स्वीकृत कर ली गई।

अब मराठवाड़ा समितिका कार्य प्रगतिपर है। प्रतिवर्ष करीब ६००० परीक्षार्थी सम्मि
होने लगे हैं और करीब १०० केन्द्र भी स्थापित हो चुके हैं।

प्रान्तीय समितिकी ओरसे हाईस्कूल तथा महाविद्यालयीन छात्र-छात्राओंके लिए वक्तृत्व
निबन्ध स्पर्धाएँ आयोजित की जाती हैं।

महाराष्ट्र सरकारकी ओरसे १९५९–६० से अबतक १३ हजारका अनुदान प्राप्त
चुका है।

मराठवाड़ामें राष्ट्रभाषा प्रचार परीक्षाओंमें जो परीक्षार्थी सम्मिलित हुए उनका उन्नतिक्रम
प्रकार है :—

मराठवाड़ा उन्नति-क्रम

सन्	परीक्षार्थी
१९५७	४३६
१९५८	१,५९५
१९५९	३,०८९
१९६०	[illegible]००
१९६१	[illegible]०१

उसमें मूरसाविर मठके जगद्गुरु श्री गंगाधर राजयोगीन्द्र स्वामीजीने उद्घाटन किया तथा मैसूर राज्यके तत्कालीन मुख्य मन्त्री श्री बी. डी. जत्तीजी मुख्य अतिथिके रूपमें पधारे थे।

हिन्दी-दिवसका आयोजन बड़े समारोहपूर्वक किया जाता है। इस अवसरपर विभिन्न स्पर्धाएँ भी आयोजित की जाती है।

कर्नाटक प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्य इस अल्प कालमें बहुत प्रगति कार चुका है। अब ४० केन्द्रोमे राष्ट्रभाषा प्रचार का कार्य चल रहा है और ४३००० से अधिक परीक्षार्थी इसकी परीक्षामें प्रतिवर्ष सम्मिलित होते हैं।

अबतक प्रान्तसे प्राथमिकमे ६,७१२, प्रारम्भिकमे १७,५८५, प्रवेशमें १३६८३, कोविदमे ३,०३६ तथा रत्नमें १६२ इस प्रकार ४८,१०१ परीक्षामे सम्मिलित हो चुके है—

समितिके वर्तमान पदाधिकारी

अध्यक्ष—श्री एच. पी. शहा, एम. एल. ए.।

कार्याध्यक्ष—श्री आर. व्ही. शिरूर।

उपाध्यक्ष—श्री बी. एल. इचिनाल,

उपाध्यक्ष—श्री राघवजी देवजी लद्दड़।

संचालक—श्री वासुदेव चिन्तामणि बस्ती।

यह संस्था रजिस्टर्ड हो गई है। सरकारकी ओरसे इसे कोई सहायता अभी प्राप्त नहीं हुई है। वर्धा समितिकी सहायता एव जनताके सहयोगपर ही यह समिति अपना कार्य चलाती है। एक *सालसे हुबली कर्नाटकमें राष्ट्रभाषा प्रचार परीक्षाओमें निम्नलिखित क्रमसे वर्षवार परीक्षार्थी सम्मिलित* हुअे।

कर्नाटकमें भवन निर्माणके लिए श्री आर. व्ही. शिरूरने ५४४५ स्केर फटकी जगह *प्रदानकी है। भवन निर्माण शीघ्र ही प्रारम्भ होनेवाला है। शिरूरजीकी सहायता पहलेसे* ही है।

कर्नाटक परीक्षार्थी उन्नति-क्रम

सन्	परीक्षार्थी
१९४७	२००
१९४८	१५०
१९४९	८००
१९५०	१,२००
१९५१	३,५००
१९५२	४,५००
१९५३	१,१३४

सन्	परीक्षार्थी
१९५४	९०९
१९५७	१,४६९
१९५८	१,७३७
१९५९	१,९९६
१९६०	३,९३५
१९६१	३,६८८
१९६२	३,१००
	२८,५१८

बेलगांव जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बेलगाँव

बेलगाँव जिलेमें १९४५ से वर्धा समितिकी परीक्षाएँ शहापुर तथा येल्लूरमें संचालित होती थीं और १९४७ से बेलगाँव और गोवामें भी वर्धा समितिकी परीक्षाएँ संचालित हो रही थीं और इनका संचालन महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा होता था। परन्तु बेलगाँव जिलेका अलग संगठन बनानेका निश्चय किया गया तदनुसार १९५१ में बेलगाँव जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी स्थापना हुई। इसके प्रथम अध्यक्ष श्री भैरूलालजी व्यास चुने गए।

११ वर्षोंके इस अल्पकालमें इस जिला समितिने बड़ी सफलतापूर्वक कार्य किया। अब २५०० से अधिक परीक्षार्थी प्रतिवर्ष वर्धा समितिकी परीक्षाओंमें जिला बेलगाँव केन्द्रोंसे बैठते हैं। यहाँ परीक्षाओंके कार्यको सुचारु रूपसे चलानेके लिए प्रचारकोंको कई प्रकारके संघर्ष एवं कठिनाइयाँ सहन करनी पड़ी हैं। अब अनुकूलवातावरण तैयार हो गया है। इस कार्यमें हिन्दी प्रचार सभा, बेलगाँव, राष्ट्रभाषा विद्यालय, येल्लूर, भारती हिन्दी विद्यालय, बेलगाँव, राष्ट्रभाषा विद्यालय, टिलकवाड़ी, राष्ट्रभाषा विद्यालय कागवाड़का सहयोग विशेष रूपसे मिलता रहा है।

श्री द. पा. साटम, मन्त्रीने बेलगाँव जिलेके विभिन्न क्षेत्रोंमें केन्द्र स्थापित करने एवं प्रचार कार्यको बढ़ानेके लिए बड़ा सराहनीय कार्य किया है।

बेलगाँवकी हिन्दी प्रचार सभाकी ओरसे एक हिन्दी भवन भी बना है। उसमें वर्धा समितिने भी २००१ रु. का अनुदान दिया। येल्लूरमें भी एक हिन्दी भवन बननेवाला है उसमें भी वर्धा समितिने ७५१ रु. का अनुदान दिया।

१९५४ में बेलगाँवमें एक जिला सम्मेलन श्री ना. शा. बालावलकरजीकी अध्यक्षतामें आयोजित किया गया था। इससे प्रचार कार्यको बड़ा बल मिला।

अबतक बेलगाँव जिला समितिके प्रचारकों द्वारा वर्धा समितिकी परीक्षाओंमें लगभग २० हजार परीक्षार्थी सम्मिलित हो चुके हैं।

गोवामें हिन्दी प्रचार

बेलगाँव जिला समितिने गोवामें भी हिन्दी प्रचार करनेमे काफी सहयोग दिया है। श्री गाँवकर, श्री सुर्लेकर, रामकर तथा कु कीर्तनी कामत आदि हिन्दी प्रेमी वर्धाकी परीक्षाओका सफल प्रचार कर रहे है। वर्धा समितिके प्रचारका भविष्य उज्ज्वल है।

श्री भैरूलालजी व्यास जो समितिके प्रारम्भसे अध्यक्ष थे उनका २५ दिसम्बर १९६० को देहान्त होनेके कारण बेलगाँवके राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यको बड़ी क्षति पहुँची।

बेलगाँव जिलेसे निम्नानुसार परीक्षार्थी सम्मिलित हुए—

बेलगांव परीक्षार्थी उन्नति-क्रम

सन्	परीक्षार्थी
१९५३	१,८००
१९५४	१,५०४
१९५५	१,३७७
१९५६	१,७७५
१९५७	१,८६८
१९५८	२,१२९
१९५९	२,२३३
१९६०	२,१२०
१९६१	२,२७१
१९६२	२,८९१

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

पचीस वर्ष पूर्व १९३५ में युगादिके शुभ मुहूर्तपर सभाकी स्थापना हुई। प्रारम्भिक दिनोंसे इसकी नीति राष्ट्रभाषा हिन्दी और देवनागरी लिपिका प्रचार और प्रसार करना है। देशके इतिहासमें, राष्ट्रभाषाके प्रश्नको लेकर कई समस्याएँ खडी हुई, किन्तु सभाका सगठन और सभाकी नीति दृढ़ रही। सविधानमे राष्ट्रभाषा हिन्दीकी स्वीकृतिके कारण 'सभा' अधिक प्रोत्साहित हुई। सविधान मूलक हिन्दीका प्रचार करना 'सभा' का मूल उद्देश्य रहा है। सन १९५२ में औरंगाबाद अधिवेशनमे सभाने प्रादेशिक भाषाओके सम्बन्धमें अपनी नीति स्पष्ट की है।

सभाके निमन्त्रणपर १९४९ दिसम्बरमें अ. भा. हिन्दी साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन स्व चन्द्रबली पाडेयकी अध्यक्षतामें यहाँपर सम्पन्न हुआ।

सभाके मुख्य उद्देश्योंमेंसे एक है—अहिन्दी भाषियोंमें हिन्दीका प्रचार, दूसरा है हिन्दी साहित्यके प्रति रुचि उत्पन्न करना और प्रान्तीय भाषाओंसे हिन्दीका परस्पर आदान-प्रदान करना तथा स्नेह सौहार्द बढ़ाना। हिन्दी प्रचारके दो तरीके सभाने अपनाएँ है। एक तो साधारण जनताकी हिन्दीकी

आवश्यकताओंकी पूर्ति करना। दूसरा है 'संविधान' की धाराओंको ध्यानमें रखते हुए केन्द्रीय राज-काज तथा अन्तर्प्रान्तीय काम काजके विचारसे हिन्दीको व्यवहारोपयोगी वनाना। साधारण जनतामें प्रचार वढ़ानेके लिए परीक्षाओंका संचालन, करना, इनके लिए उचित पुस्तकोंको प्रकाशित करना आदि कार्य सभा कर रही है।

दूसरे उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए ऊंचे गम्भीर और मौलिक साहित्यका निर्माण, प्रादेशिक साहित्य और हिन्दीका अनुवादों द्वारा आदान-प्रदान और प्रादेशिक तथा हिन्दी भापाको निकटतम लानेका प्रयत्न, ये कार्य सभाके प्रकाशन विभाग और साहित्य विभागके द्वारा सम्पन्न किए जा रहे हैं। सभा कई वर्षोंतक उच्च कोटिकी पत्रिका "अजन्ता" का प्रकाशन भी करती थी। लेकिन यह पत्रिका अव वन्द हो गई है।

सभा जहाँ राष्ट्रभाषा हिन्दीके नाते अपने कार्योंका संचालन करती है, वहाँ हिन्दीकी ऐच्छिक भापा और माध्यमके रूपमें व्यवहृत किए जानेके लिए भी सुविधाएँ देती है। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए सभाके अन्तर्गत दो हिन्दी महाविद्यालय हैदरावादमें संचालित हो रहे हैं।

प्रचारात्मक, साहित्यिक और प्रकाशनात्मक कार्योंके अतिरिक्त 'सभा' का कार्य जन सम्पर्क और सरकारी शिक्षा विभागके सहयोगके नाते भी उल्लेखनीय रहा है। हिन्दीके द्वारा भापाके त्रिवेणीका स्वरूप हैदराबादके इस क्षेत्रमें विभिन्न भापा भापियोंके निकट लानेका कार्य सभाने किया और हैदरावादमें उर्दूके कारण जो अनुकूल वातावरण हिन्दी प्रचारके लिए अनायास मिल गया, उसके फल-स्वरूप जाति, धर्म, भाषा आदि भेदोंके रहते हुए भी हिन्दी प्रचारके कार्योंमें सभी लोग एक मन और एक प्राण रहे हैं। यहाँकी अन्य साहित्यिक संस्थाओंके साथ हमारा केवल सहयोगका सम्वन्ध ही नहीं, अपितु घनिष्ठताका नाता है। आन्ध्र साहित्य परिषद्, महाराष्ट्र साहित्य परिषद्, कन्नड़ साहित्य परिषद्, अंजुमन तरक्की उर्दू, अदवियात उर्दू, दखनी प्रकाशन समिति आदिसे हमारा अभिन्न सम्वन्ध रहा है। यहाँके कार्यकर्ताओंने यह प्रमाणित कर दिया है कि भाषा, धर्म, जाति आदिकी भिन्नता हिन्दी प्रचारमें वाधक नहीं अपितु साधक है।

सभाने अपनी गतिविधियोंके द्वारा सरकारी शिक्षा विभागके एक साधक अंगके रूपमें कार्य किया है। उसके द्वारा हैदरावाद, वरंगल, सिकंदरावाद तेनालि नर्सापुर और महवूवावादमें हिन्दी शिक्षक प्रशिक्षण वर्गोंके दीर्घ कालीन सत्रोंका संचालन किया जा रहा है। भारत सरकारकी समाज शिक्षा योजनाके अन्तर्गत लगभग १६ केन्द्रोंका २ वर्ष तक संगठन सरकारी कार्यालयोंमें वहाँके कार्यकर्ताओंको हिन्दी शिक्षासे सक्षम वनाना, जीवनसे निराश सैकड़ों कैदियोंको जेल विभागकी कृपासे हिन्दी शिक्षा द्वारा उनमें नवीन आशाका संचार, और हरिजन तथा पिछड़ी हुई जातियोंमें हिन्दी प्रचारको वढ़ावा देनेके लिए पर्याप्त निःशुल्क सुविधाओंका आयोजन, ये ऐसे कार्य हैं जिनसे सभा जनता तक पहुँचती है और सरकारके शिक्षा विभागके पूरक अंगके रूपमें कार्य कर रही है।

हिन्दी साहित्यकी अभिरुचि वढ़ाने तथा ऊँचे और गम्भीर साहित्यके पठन-पाठनकी प्रवृत्तिको प्रोत्साहित करनेके लिए सभा पुस्तकालयोंका संचालन करती है। इस पुस्तकालय योजनाके अंतर्गत सभाने कई जिला स्थानोंमें हिन्दीकी पुस्तकोंका अनुदान दिया है। यह अनुदान उन्हीं स्थानोंपर

दिया गया है, जहाँ प्रादेशिक साहित्यकी अच्छी पुस्तकें एकत्रित की गई हों। इस प्रकार हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओंके मेल-मिलापका यह प्रयत्न सभाने किया है।

इधर 'सभा' के विशेष प्रकाशनोंकी योजनाके लिए भारत सरकारने सहायता दी है। इसके अन्तर्गत मराठी, तेलुगु, कन्नड और उर्दू साहित्यका इतिहास हिन्दीमें प्रकाशित किया जा रहा है और हिन्दी-उर्दू कोष, उर्दू-हिन्दी कोषका भी निर्माण किया जा रहा है। इसमेंसे कुछ कार्य पूर्ण हो चुके है और थोड़े शेष हैं।

सभा दक्खिनी प्रकाशन समितिको सहयोग देती रही है। इस समितिका कार्य है दक्षिणमें 'दक्खनी' नामसे जो बोली प्रचलित है और उसमें जो साहित्य है, उसको हिन्दीमें रूपान्तरित करना। इसके द्वारा हिन्दीकी एक विशिष्ट शैलीका परिचय साहित्य जगतको दिया जा रहा है। हिन्दी और उर्दूको निकटतम लानेमें दक्खिनी प्रकाशन समितिके इस शुभ कार्यमें 'सभा' ने आर्थिक तथा बौद्धिक सहयोग दिया है।

सभा द्वारा प्रकाशित बाल साहित्यकी ६ पुस्तकोंमेंसे गाँवोंकी कहानियाँ भाग १ तथा बालकोंकी कहानियाँ इन दो पुस्तकोंको केन्द्रीय सरकार द्वारा ५००)-५००) रुपयोंका पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

यहाँ सभाकी परीक्षाओंके सम्बन्धमें कुछ निवेदन करना अप्रासंगिक न होगा। सभाकी सात परीक्षाएँ वर्षभरमें दो बार होती हैं, जिनमें लगभग ४० हजार विद्यार्थी ४५० केन्द्रोंमें प्रवेश पाते हैं। इनमें महिलाओंका अनुपात लगभग ३० प्रतिशत होता है। शहरमें इससे अधिक। अहिन्दी क्षेत्र होनेके नाते अहिन्दी परीक्षार्थियोंकी संख्या लगभग ९० प्रतिशत रहती है।

प्रसन्नताकी बात है कि इधर भारत सरकारके शिक्षा मन्त्रालयने सभाकी तीन परीक्षाओंको इस प्रकार मान्यता प्रदान की है।

विशारद—मैट्रिक
भूषण—इंटर
विद्वान—बी. ए

'हिन्दी-शिक्षक' प्रशिक्षणको आन्ध्र प्रदेशकी सरकारने बी. टी के बराबर मान्यता प्रदान की है। मंसूर और महाराष्ट्र प्रदेशने भी सभाकी परीक्षाओंको मान्यता प्रदान की है।

इस प्रकार सभाका कार्य आन्ध्र प्रदेशमें बड़े गौरव पूर्ण ढंगसे किया जा रहा है। प्रदेशमें उसका हिन्दी प्रचारकी दृष्टिसे बड़ा महत्व है।

सभा द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी परीक्षाओंमें वर्षवार जो परीक्षार्थी सम्मिलित कराए गए, उनकी संख्या इस प्रकार है :—

हैदराबादका परीक्षार्थी उन्नति-क्रम

सन्	परीक्षार्थी
१९४८	२०३
१९४९	१,१४५

सन्	परीक्षार्थी
१९५०	२,१०१
१९५१	१,५७२
१९५२	३६७
१९५३	१४४
१९५४	५९
१९५५	११४
१९५६	२३२
१९५७	१५४
१९५८	८९
१९५९	२३५
१९६०	३४८
१९६१	३३८
१९६२	२७३

जम्मू-काश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, श्रीनगर

जम्मू-काश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी स्थापना श्री दौलतरामजीके प्रयत्नोंसे १९५६ में हुई। श्रीमती कमला पारिमू प्रिंसिपल महिला महाविद्यालयके प्रयत्नोंसे महिला महाविद्यालयमें वर्धा समितिका पहला परीक्षा केन्द्र स्थापित हुआ। महिला महाविद्यालय राज्यभरकी प्राचीनतम हिन्दी शिक्षण संस्था है। यहाँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागकी परीक्षाओं एवं रत्न, भूषण, प्रभाकर आदि हिन्दी परीक्षाओंका प्रवन्ध १९४० से ही होता था।

अहिन्दी प्रान्त होनेके कारण काश्मीरमें कार्यको बढ़ानेमें बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। लेकिन अब वहाँकी जनता राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यकी ओर आकृष्ट हुई है और रूचि लेने लगी है।

१९५८ में श्री मोहनलाल भट्ट (मन्त्री वर्धा समिति) श्री जेठालालजी (संचालक गुजरात) एवं श्री दौलतरामजी शर्मा (संचालक सिन्ध-राजस्थान) श्रीनगर पधारे। एक बैठक श्री जगद्धरजी जाडू के सभापतित्वमें हुई जिसमें श्री हकीम शम्भूनाथजी पारिमू तथा श्रीमती कमला पारिमूने आजीवन वर्धा समितिका कार्य करनेकी प्रतिज्ञा की। इसी बैठकमें श्री जगद्धरजी जाडूने समितिका अध्यक्ष पद स्वीकार किया। १९५९ से हकीम शम्भूनाथजी पारिमू संचालक एवं श्रीमती पारिमू मन्त्री वनीं।

जम्मू-काश्मीर सरकारने समितिके कार्यसे प्रभावित होकर इस वर्ष समितिको १ हजार रुपयोंकी सहायता प्रदान की है। केन्द्रीय सरकारने भी पुस्तकालयके लिए ५०० रु. का अनुदान देना स्वीकार किया।

जम्मू-काश्मीरके प्रमुख नगरोमें वर्धा समितिके अनेक केन्द्र खुल चुके हैं जहाँ पाठ्यपुस्तक वितरण, परीक्षा प्रबन्ध आदि कार्य प्रारम्भ किया गया।

समितिने एक उर्दू-हिन्दी स्वयं शिक्षक भी प्रकाशित किया है जिसके द्वारा उर्दू जाननेवाला व्यक्ति १५ दिनमें ही स्वय हिन्दी सीख सकता है। इस स्वय शिक्षककी हजारों प्रतियाँ समिति वितरित कर चुकी है।

अबतक श्रीनगरमें श्रीनगर, कर्णनगर, रैणाबारी, भट्टयार, रंगटेग जम्मूमें-कच्ची छावनी जम्मू एवं गावोमें अनन्तनाग, चवगाम, भट्टन (मार्तण्ड) उत्तर सू. अच्छन, वेरीनाग, सागाय, चीनीगुण्ड, सोपुर, चोडुर, पट्टन, पलहालन, बारामुल्ला, हन्दवाडा, दरबाग आदि स्थानोमें केन्द्र खुल चुके हैं।

परीक्षार्थी संख्यामे निरन्तर प्रगति होती जा रही है।

काश्मीरसे सन् १९५६ मे ६६, १९५७ में १३०, १९५८ में १६०, १९५९ मे ८०७, १९६० में ९७३ एव १९६१ मे ८८० परीक्षार्थी सम्मिलित हुए।

काश्मीर समितिके प्रयत्नोसे वर्धा समितिकी राष्ट्रभाषा परीक्षाओको काश्मीर विश्वविद्यालय तथा जम्मू-काश्मीर शिक्षा विभागसे मान्यता प्राप्त हुई है।

हिन्दी-दिवस

१९५८ में 'हिन्दी-दिवस' श्री गुलाम मुहम्मद मुख्तार, शिक्षा-सचालक जम्मू-काश्मीरके सभापतित्वमें मनाया गया।

१९५९ मे *हिन्दी दिवसपर राज्यके तत्कालीन शिक्षा मन्त्री सरदार हरबन्ससिंहजी 'आजाद'* द्वारा प्रमाण-पत्र वितरित किये गये।

१९६० में 'हिन्दी-दिवस' के अवसरपर प्रचारकोको पुरस्कार तथा परीक्षार्थियोको प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय आनेके उपलक्ष्यमे पुरस्कार वितरण समारम्भ राज्यके तत्कालीन शिक्षा मन्त्री श्री गुलाम मुहम्मद राजपुरीके सभापतित्वमें हुआ।

१९६१ में समितिने एक लेख प्रतियोगिताका आयोजन किया। इसमे प्रथम, द्वितीय, तृतीय आनेवालोको राज्यके शिक्षा मन्त्री श्री गुलाम मुहम्मद सादिकने अच्छे पुरस्कार दिये।

जम्मू-काश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति भविष्यमें निम्नलिखित योजनाओको कार्यान्वित करने जा रही है:—

१—राष्ट्रभाषा शिक्षको एव प्रचारकोके लिए रिफ्रेशर कोर्सका आरम्भ।

२—राष्ट्रभाषा प्रदर्शनी।

३—उत्कृष्ट काश्मीरी साहित्यका सुयोग्य विद्वानो द्वारा हिन्दी अनुवाद।

४—यात्रियोकी सुविधाके लिए 'कश्मीरी सीखिए' पुस्तिकाका प्रकाशन। (इसकी पाडुलिपि प्रेसमें दी जा चुकी है।)

जम्मू-काश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, श्रीनगर।

अध्यक्ष—श्री जगद्धरजी जाडू।

मन्त्री—श्रीमती कमला पारिख।

संचालक—श्री रघुनाथजी पारिख।

अबतक वर्षवार जम्मू काश्मीरसे परीक्षार्थी सम्मिलित हुए उनकी वर्षवार परीक्षा संख्या नीचे लिखे अनुसार है।

परीक्षार्थी उन्नति-क्रम

सन्	परीक्षार्थी
१९५६	६६
१९५७	१३०
१९५८	१६०
१९५९	८०७
१९६०	९७३
१९६१	६३८
१९६२	१,१८३

पंजाब प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

वैसे पंजाबमें पंजाब प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन और साहित्य-सदन अबोहरके द्वारा काफी दिनोंसे हिन्दी प्रचारका कार्य चल रहा है। साहित्य-सदन सन् १९२५ में एक पुस्तकालयके रूपमें स्थापित हुआ था। इसका भव्य भवन हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी सम्पत्ति है। श्री स्वामी केशवानन्दजीके नेतृत्वमें सदनने पंजाबमें बड़ी ख्याति अर्जित की। इसके पुस्तकालय-संग्रहालयमें हस्तलिखित ग्रन्थ आदि प्राचीन वस्तुएँ संग्रहीत हैं। 'दीपक' मासिकका भी प्रकाशन यहाँसे होता था। पंजाब तथा काश्मीरके लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलनने हिन्दी परिचय तथा हिन्दी कोविद परीक्षाओंकी व्यवस्थाका भार सदनको सौंपा था।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनका ३० वाँ अधिवेशन सदनके प्रांगणमें ही हुआ था। सन् १९५८ से हिन्दी साहित्य सदनका सारा कार्यभार राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाको सौंप दिया गया। वहाँपर पंजाब प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्यालय भी खोल दिया गया है। फिलहाल पंजाबके कार्यका संचालन सिन्ध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके संचालक श्री दौलतरामजी शर्मा कर रहे हैं। पंजाब सरकार तथा पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा समितिकी कोविद परीक्षाको भी मान्यता प्राप्त हो चुकी है। परिणामतःयहाँ काफी केन्द्र खुल चुके हैं तथा प्रचार कार्य उत्साहपूर्ण वातावरणमें चल रहा है।

इस समय प्रतिवर्ष पंजाबमें ३१०६ परीक्षार्थी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी परीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं। कुल ८ परीक्षा केन्द्र हैं तथा ६ प्रचारक इस कार्यमें अपना योग दे रहे हैं।

अबतक जितने परीक्षार्थी सम्मिलित हुए उनका वर्षवार विवरण इस प्रकार है—

पंजाब परीक्षार्थी उन्नति-क्रम

सन्	परीक्षार्थी
१९५५	५५
१९५६	१५६
१९५७	२६३
१९५८	३९३
१९५९	४४७
१९६०	६८०
१९६१	६६७
१९६२	४४५

गुजरात विद्यापीठ

गुजरात विद्यापीठ महात्मा गाँधीजीके १९२० के असहयोग आन्दोलनके फलस्वरूप शाला एवं महाविद्यालयोके त्याग करनेवाले विद्यार्थियोकी शिक्षाके लिए स्थापित हुई। गाँधीजी स्वयं ही उसके कुलपति बने थे और आचार्य गिडवानी, आचार्य कृपालानी, आचार्य काकासाहब कालेलकर जैसे विद्वान् तथा शिक्षा शास्त्रियोंने इसके विकासमे पूरा योग दिया। वर्तमान गुजरातके राष्ट्रीय विकासमें इस विद्यापीठ-का बहुत बडा हिस्सा है। आरम्भसे ही इस विद्यापीठमे हिन्दीकी शिक्षाको स्थान मिला था और वहाँ हिन्दी विषय माध्यमिक शिक्षा तथा महाविद्यालयमे सदा अनिवार्य रहा है। परन्तु इस विद्यापीठने सन् १९३५ से ही नवजीवन ट्रस्टके सहयोगसे राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य प्रचारको द्वारा गुजरातमें करना आरम्भ किया। इन दोनो संस्थाओकी ओरसे श्री मोहनलालजी भट्टको यह प्रचार-कार्य सौंपा गया। इससे बहुत पहले ही गुजरातमे श्री परमेष्ठीदास जैनके प्रयत्नसे सूरतमे राष्ट्रभाषा प्रचार मण्डल की स्थापना हो चुकी थी और उसके द्वारा वहाँ राष्ट्रभाषाके वर्ग चलाए जा रहे थे। अब अहमदाबादमें भी राष्ट्रभाषा हिन्दीके नियमित वर्ग चलने लगे।

१९३६ मे जब राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापना हुई तब वही कार्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा होने लगा। किन्तु १९४२ में हिन्दी-हिन्दुस्तानीका प्रश्न पैदा हुआ और जब हिन्दुस्तानी प्रचार सभाकी स्थापना हुई तब विद्यापीठने उसको सहयोग दिया।

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धाने भी १९४५ में गुजरातमें चलनेवाले कार्यको गुजरात विद्यापीठ-को ही सौंप दिया था। जब संविधानमें हिन्दी तथा नागरी लिपि स्वीकार की गई तो विद्यापीठने भी दो लिपियोका आग्रह छोड दिया। गुजरात विद्यापीठके प्रति गुजरातमें बहुत आदर है। बम्बई राज्य तथा गुजरातमें इन परीक्षाओंमे परीक्षार्थी बड़े पैमानेपर सम्मिलित होते हैं। इसकी क्रमिक रूपमें पाँच निम्नलिखित परीक्षाएँ ली जाती हैं—

१—हिन्दी पहली

२—हिन्दी दूसरी

३—हिन्दी तीसरी

४—विनीत

५—हिन्दी सेवक

ये परीक्षाएँ वर्षमें फरवरी और सितम्बरमें ली जाती हैं। विद्यापीठकी शिक्षामें आज भी हिन्दीको वही स्थान तथा महत्व प्राप्त है जो पहले था।

गुजरात विद्यापीठकी तीसरी, विनीत और सेवक परीक्षाएँ अनुक्रमसे हिन्दी योग्यताकी दृष्टिसे मैट्रिक, इन्टर और बी. ए. के समकक्ष भारत सरकारके शिक्षा मन्त्रालय द्वारा मान्य की गई हैं।

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा

हिन्दुस्तानी प्रचार सभाकी स्थापना २ मई १९४२ को वर्धामें हुई। इसका प्रधान उद्देश्य हिन्दुस्तानी-का प्रचार करना था। सभाने अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए परीक्षाओंका संचालन करना चाहा, किन्तु इस बीच १९४२ का आन्दोलन छिड़ गया और राष्ट्रनेता तथा इसके सभी कर्मी जेलमें चले गए। श्री अमृतलाल नानावटी बाहर थे। इस बीच श्री नानावटीने गुजरात विद्यापीठके द्वारा हिन्दुस्तानीका प्रचार कार्य शुरू किया। सन् १९४४ में जब सभी कर्मी जेलसे बाहर आए तो गुजरातमें चलनेवाले कार्यकी तरह दूसरे प्रदे-शोंमें भी हिन्दुस्तानी प्रचारका कार्य करनेके सम्बन्धमें निश्चय किया। फरवरी १९४५ में वर्धामें एक सभा हिन्दुस्तानी प्रचार परिषदकी ओरसे गाँधीजीकी अध्यक्षतामें बुलाई गई। इस अवसरपर एक हिन्दुस्तानी साहित्य तैयार करनेवाला बोर्ड कायम हुआ। उसीकी एक उपसमिति बनाई गई जिसकी देखभाल डॉ. ताराचन्दके सुपुर्द हुई।

जब सभाका काम १९४४–४५ में फिरसे शुरू हुआ तो यह तय किया गया कि प्रान्तोंमें संगठन किया जाए और प्रान्तीय संगठनको पदवीकी परीक्षाको, छोड़कर बाकीकी नीचेकी परीक्षाएँ अर्थात् हिन्दुस्तानी लिखावट, हिन्दी पहली, हिन्दी दूसरी तथा हिन्दी तीसरी परीक्षाएँ चलानेका अधिकार दिया जाए। जहाँ प्रान्तीय संगठन न हो, वहाँ वर्धाके दफ्तरसे प्रचार कार्य किया जाए। यह भी तय हुआ कि प्रान्तीय संगठनोंको सम्बद्ध किया जाए और उसी धनसे दूसरी तरह मदद की जाए। इसके मुताबिक गुजरात राष्ट्रभाषा प्रचार सभा और बम्बई हिन्दुस्तानी प्रचार सभा ये दो प्रान्तीय संस्थाएँ सम्बन्द्ध की गई। सन् १९४५ में जुलाईमें श्री काका साहब कालेलकर जेलसे बाहर आये तब बाकीके सिन्ध, महाराष्ट्र, विदर्भ, बंगाल, उड़ीसा आदि प्रान्तोंमें प्रचार करनेका भार सभाने उन्हें सौंपा। सन् १९४५ के अन्तमें और १९४६ के शुरूमें काका साहबने गुजरातका दौरा किया। इसके बाद गुजरातमें हिन्दुस्तानी प्रचारका काम गुजरात विद्यापीठ अहमदाबादको सौंपा गया। सन् १९४७ में इस सभाके मन्त्री पदसे श्रीमन्नारायणजी अग्रवालने स्तीफा दे दिया।

हिन्दुस्तानी प्रचार सभाका कार्यालय अब बम्बई चला गया और वहींसे इसकी परीक्षाएँ ली जाती हैं।

भारत सरकारने इसकी काबिल और विद्वान् परीक्षाओको क्रमशः मैट्रिक और इन्टरकी हिन्दी योग्यताके समकक्ष माना है।

अखिल भारतीय हिन्दी परिषद्

सन १९४९ मे निम्नलिखित उद्देश्योको लेकर अखिल भारतीय हिन्दी परिषदकी स्थापना की गई—

१—भारतीय सविधानके अनुच्छेद ३५१ के आदेशके अनुसार राजभाषा हिन्दीके निर्माण-विकास और प्रचारमे मदद करना।

२—हिन्दी साहित्यकी श्रीवृद्धि करनेका प्रयत्न करना।

३—केन्द्रीय राजकाजमे हिन्दीका शीघ्र उपयोग हो, इसके लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न करना और आवश्यक सुविधाएँ प्रस्तुत करना।

४—भारतके अन्तरप्रान्तीय व्यवहारमे हिन्दीका अधिक-से-अधिक उपयोग हो,इसका प्रयत्न करना।

५—भारतीय सविधानकी आठवी अनुसूचीमें उल्लिखित सभी भाषाओके प्रति आदर और प्रेम पैदा करनेके साथ साथ हिन्दी भाषियोको अन्य भाषाएँ सीखनेके लिए प्रोत्साहित करना।

६—इन उद्देश्योकी पूर्तिके लिए आवश्यक सस्थाएँ स्थापित करना।

७—इन उद्देश्योके अनुसार काम करनेवाली सस्थाओको सम्बद्ध करना। इस परिषदका कार्यालय नई दिल्लीमे स्थापित किये गये। परिषदकी प्रथम कार्य समितिके लिए निम्नलिखित सदस्योका चुनाव हुआ—

अध्यक्ष—श्री डॉ. राजेन्द्रप्रसाद।

सर्वश्री—ग. वा मावलकर, कन्हैयालाल मा. मुन्शी, डॉ श्यामाप्रसाद मुखर्जी, राजकुमारी अमृतकौर, के सन्तानम, रगनाथ दिवाकर, घनश्याम सिंह गुप्त, इन्द्र विद्या वाचस्पति, गोविन्द वल्लभ पन्त, बालासाहब खेर, विष्णुराम मेधी, स्वामी विचित्रानन्दन दास, एस के. पाटील, कमलनयन बजाज।

इस परिषदके सयोजक श्री शकरराव देव तथा श्री मो. सत्यनारायण चुने गये। कार्यालय तथा परीक्षा-मन्त्री श्री देवदूत विद्यार्थी नियुक्त किये गये।

परिषदका एक अधिवेशन सन १९५१ के मार्चमे हुआ। इसमे राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्रप्रसादको सस्थापक सरक्षक रहनेका प्रस्ताव स्वीकृत हुआ—तथा इसके पदाधिकारी निम्नलिखित हुए—

अध्यक्ष—श्री ग वा मावलकर।

उपाध्यक्ष—श्री गोविन्द वल्लभ पन्त।

उपाध्यक्ष—श्री रगनाथ दिवाकर।

कोषाध्यक्ष—श्री कमलनयन बजाज।

मन्त्री—श्री शकरराव देव।

मन्त्री—श्री मो सत्यनारायण।

इसी अवसरपर सदस्योकी भी घोषणा की गई।

इस परिषदसे निम्नलिखित संस्थाएँ प्रारम्भसे सम्वद्ध हुई :—

१—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास।
२—पूर्व भारत राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कलकत्ता।
३—उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कटक।
४—आन्ध्र राष्ट्र हिन्दी प्रचार संघ, विजयवाड़ा।
५—तमिलनाडु हिन्दी प्रचार सभा, तिरुचिरापल्ली।
६—कर्नाटक प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा, धारवाड़।
७—केरल प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा, एर्नाकुलम्।
८—महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पूना।
९—असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गौहाटी।
१०—भारतीय हिन्दी परिषद, दिल्ली प्रदेश।
११—भारतीय हिन्दी परिषद, कश्मीर प्रदेश।
१२—हैदराबाद हिन्दी प्रचार संघ, हैदराबाद।
१३—राष्ट्रभाषा प्रचार परिषद, भोपाल।

परिषदकी ओरसे आगरामें एक महाविद्यालय चलाया जाता था जहाँ अहिन्दी प्रदेशोंसे विद्यार्थी हिन्दीकी उच्च शिक्षा तथा शैक्षणिक योग्यता प्राप्त करनेके हेतु आते थे। यहाँसे शिक्षा प्राप्त स्नातकको 'पारंगत' उपाधि प्राप्त होती थी। अब यह विद्यालय केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालयने अपने अधीन कर लिया है और उसके लिए एक कमेटी बना दी है जो उसका सञ्चालन, नियमन करती है। भारत सरकारने इस परीक्षाको बी. ए. की हिन्दी योग्यताके समकक्ष माना है।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके पुराने कार्यकर्ता श्री रामकृष्ण नावड़ा आगरामें चलनेवाले विद्यालयके आचार्य हैं।

बम्बई हिन्दी विद्यापीठ

सन् १९३८ में बम्बई हिन्दी विद्यापीठकी स्थापना हुई। इसका कार्यालय बम्बईमें है। हिन्दी प्रचारको अपना लक्ष्य बनाकर यह कार्य कर रहा है। अनेक कठिनाइयाँ आने पर भी इसके कार्यकर्ताओंके अदम्य उत्साहके कारण यह संस्था दृढ़तापूर्वक कार्य कर रही है। इसके द्वारा सञ्चालित परीक्षाएँ भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें ली जाती हैं। इस समय इसके ८४७ परीक्षा-केन्द्र हैं और प्रतिवर्ष काफी संख्यामें विद्यार्थी इसकी परीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं।

विद्यापीठमें निम्नलिखित परीक्षाएँ ली जाती हैं—

प्रचार परीक्षाएँ—हिन्दी प्रवेश, हिन्दी प्रथमा, हिन्दी मध्यमा तथा हिन्दी उत्तमा।

उच्च परीक्षाएँ—हिन्दी भाषा रत्न, साहित्य सुधाकर तथा साहित्य रत्नाकर।

विद्यापीठकी उत्तमा, भाषा रत्न एवं साहित्य सुधाकर परीक्षाएँ भारत सरकार द्वारा क्रमशः मैट्रिक इण्टर एवं बी. ए. की हिन्दी योग्यताके समकक्ष मानी गई हैं।

विद्यापीठकी उच्च परीक्षाओंको कुछ राज्य सरकारों एवं केन्द्रीय सरकारकी मान्यता प्राप्त है।

विद्यापीठका अपना मुद्रणालय है तथा अपने पाठ्यक्रमकी कुछ पुस्तकोंका प्रकाशन वह स्वयं करती है। इसके विकासमें श्रीमती लीलावती मुन्शी, श्री रामनाथ पोद्दार, स्व. रणछोडलाल ज्ञानी, डॉ. मोतीचन्द-जी, श्री घनश्यामदास पोद्दार श्री भानुकुमार जैन आदिका मुख्य योगदान रहा है।

समय-समयपर इस विद्यापीठ द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किए जाते हैं। यशोधरा, कामायनी, रामायण, चित्रलेखा आदि कलाकृतियोंको रंगमञ्चपर प्रस्तुत करनेमें इसे सफलता मिली है।

ज्ञानलता मण्डल—भारतीय विद्यापीठ

यह संस्था बम्बईमें कार्य कर रही है। इसके द्वारा हिन्दीका प्रचार तो होता है, पर इसके अतिरिक्त मराठी, गुजराती, बंगला, कन्नडके भी वर्ग चलाये जाते हैं और यह इस विद्यापीठ भाषाओंकी परीक्षाएँ भी लेता है। १९४२ में ज्ञानलता मंडलकी स्थापना हुई। और इस मंडलने परीक्षाओंकी व्यवस्था करके सन् १९४९ में 'भारतीय विद्यापीठ' की स्थापना की।

इस विद्यापीठकी हिन्दी परीक्षाओंके केन्द्र भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें स्थापित हैं। इसकी परीक्षाओंके नाम प्रवेश, प्रथम, द्वितीय, तृतीय और रत्न हैं। उच्च परीक्षाओंके नाम आचार्य और शिक्षा रत्न हैं। अबतक ३६०० परीक्षार्थी इसकी हिन्दी परीक्षाओंमें सम्मिलित हुए हैं। कुछ राज्य सरकारों द्वारा इसकी उच्च परीक्षाएँ—रत्न तथा आचार्य परीक्षा मान्य है।

इस विद्यापीठने अबतक १८ पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इसके द्वारा प्रकाशित 'व्यवहार दीपिका' नामक मराठी हिन्दी लघु कोश बहुत लोकप्रिय है। इसके पुस्तकालयमें हिन्दीके अतिरिक्त मराठी, गुजराती, बंगला, अँग्रेजी आदि भाषाओंकी पुस्तकें हैं।

समय-समयपर सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किए जाते हैं।

मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद्, बंगलौर

मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद, बंगलौर दक्षिण भारतकी एक सुप्रसिद्ध राष्ट्रभाषा प्रचार संस्था है। इसकी स्थापना सन् १९४३ में हुई। दक्षिण भारतमें, प्रधानतः मैसूर राज्यमें, राष्ट्रभाषा हिन्दीके साथ हिन्दी साहित्यके प्रति जनतामें अभिरुचि पैदा करना ही इस संस्थाका मुख्य लक्ष्य रहा है।

कार्य-विवरण

परिषदकी ओरसे प्रथमा, मध्यमा, प्रवेश, उत्तमा, हिन्दी रत्न, (उपाधि परीक्षा) आदि परीक्षाएँ ली जाती हैं। इन परीक्षाओंको मैसूर सरकारकी मान्यता प्रारम्भ कालसे ही थी। इस वर्ष भारत सरकारकी मान्यता भी प्राप्त हुई। परीक्षाएँ वर्षमें दो बार फरवरी और अगस्त महीनोंमें चलती हैं। इन परीक्षाओंमें करीब २५ हजार तक विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं। विशाल कर्नाटक प्रान्तकी स्थापनाके बाद इसका कार्यक्षेत्र भी अत्यन्त व्यापक हो गया है। गर्मियोंमें भी प्रचारकी दृष्टिसे प्रथमा और मध्यमा की विशेष परीक्षाएँ ली जाती हैं। मैसूर राज्यमें करीब २०० परीक्षा केन्द्र हैं।

भारत सरकारकी मान्यता

भारत सरकारके शिक्षा-विभाग द्वारा परिषदकी 'प्रवेश' परीक्षाको मैट्रिक, उत्तमाको इण्टर, और हिन्दी रत्नको बी. ए. के समकक्ष मान्यता प्राप्त हो चुकी है। मैसूर सरकार उत्तमा वालोंको माध्यमिक शालाओंमें, हिन्दी रत्नमें उत्तीर्ण उपाधिधारियोंको प्रौढ़ शालाओंमें हिन्दी अध्यापकका स्थान दे रही है। मध्यमामें उत्तीर्ण होनेवाले सरकारी कर्मचारी व अधिकारियोंको विभागीय हिन्दी परीक्षासे छूट भी मिल रही है। पंचवर्षीय योजनाके अनुसार इन परीक्षाओंके लिए आर्थिक सहायता भी प्राप्त हो रही है।

अध्ययनकी व्यवस्था

परिषदकी परीक्षाओंके लिए परिषदके केन्द्रीय कार्यालयमें अध्यापनकी व्यवस्था भी की गई है। 'हिन्दी उत्तमा' और 'हिन्दी रत्न' के लिए विशेष वर्ग भी चलते हैं। हिन्दी साहित्यके अच्छे ज्ञाता और हिन्दी पंडित ही अध्यापक हैं। हिन्दी विद्यार्थियोंकी विशेष योग्यता की दृष्टिसे व्याख्यान माला, वाक्स्पर्धा, विशेष भाषण, प्रचारक सम्मेलन, विचार गोष्ठी आदि सांस्कृतिक कार्यक्रम भी चलाये जाते हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागकी 'विशारद' और 'साहित्य रत्न' परीक्षाओंके परीक्षार्थियोंके लिए ऐसी ही विशेष व्यवस्था की जाती है।

पुस्तकालय

परिषदके अन्तर्गत एक सुव्यवस्थित पुस्तकालय और वाचनालय भी है। केन्द्रीय पुस्तकालयमें हिन्दी साहित्यके उच्च कोटिके सभी ग्रन्थ संग्रहीत हैं। फिलहाल २० हजारसे अधिक पुस्तकें है। केन्द्रीय पुस्तकालयके अतिरिक्त राज्यके मुख्य मुख्य नगरोंमें परिषदके नेतृत्वमें स्थानीय हिन्दी पुस्तकालय भी चल रहे हैं। इन पुस्तकालयोंको केन्द्र एवं प्रान्तीय सरकार तथा स्थानीय संस्थाओंकी आर्थिक सहायता भी प्राप्त है।

प्रकाशन

परिषदकी प्रारम्भिक परीक्षाओंके सारे पाठ्यग्रन्थ परिषदकी ओरसे ही प्रकाशित होते हैं। अबतक 'हिन्दी प्रकाश' के तीन भाग, 'महापुरुष', 'चार एकांकी,' 'साहित्य सुबोध,' हिन्दी कन्नड़ अनुवाद माला, हिन्दी कन्नड़ व्याकरण आदि प्रकाशित हो चुके हैं।

हिन्दी प्रशिक्षण केन्द्र

परिषदके तत्वावधानमें "हिन्दी अध्यापकोंका प्रशिक्षण केन्द्र" भी मैसूर सरकारकी आर्थिक सहायतासे चल रहा है।

समितिके पदाधिकारी

श्री एच. रामकृष्णरावजी (अध्यक्ष), श्रीमती पुष्पाबाई (उपाध्यक्षा), श्री के. बी. मानप्पा

(प्रधान और परीक्षा-मन्त्री), श्री वेंकटेशय्या (कोषाध्यक्ष), श्री वी. वीरप्पा (सदस्य), श्री आर. के. गोडबोले (सदस्य) ।

कार्य समितिके अतिरिक्त परिषदके असख्य प्रेमी और प्रचारक भी हैं, जिनके सक्रिय सहयोगसे राष्ट्रभाषाका सन्देश अपने प्रान्तके कोने-कोनेमें पहुँचानेमे सफलता मिल रही है। हम परिषदके सभी शुभकांक्षियोको धन्यवाद देते हैं।

साहित्य निर्माणकी फुटकर संस्थाएँ

हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग

महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंके अनुवाद करानेके उद्देश्यसे हिन्दुस्तानी एकेडमीकी स्थापना सन् १९२७ में प्रयागमे हुई। प्रमुख मौलिक रचनाओंको पुरस्कृत करना और साहित्य-सेवाको प्रोत्साहन देना, उत्तम लेखकोंको सस्थाकी ओरसे सम्मानित करना इसके प्रधान उद्देश्य रहे हैं। इसने सचमुच साहित्यकी बहुत बडी सेवा की है। इसका एक बहुत बडा सर्वागपूर्ण पुस्तकालय है। प्रति वर्ष अनेक विद्वानो द्वारा व्याख्यानो के आयोजन भी किये जाते है। 'हिन्दुस्तानी' नामक एक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती रही है। इसके द्वारा कई दर्जन पुस्तके विभिन्न विषयोपर प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रकाशनके क्षेत्रमें इसने बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

महिला विद्यापीठ, प्रयाग

हिन्दीके माध्यम द्वारा महिलाओमे शिक्षा-प्रसार का जो काम प्रयागकी महिला विद्यापीठने किया है, उसका अपना एक विशेष स्थान है। इसके द्वारा प्रवेशिका, विद्या-विनोदिनी, विदुषी, सुगृहिणी, सरस्वती आदि परीक्षाएँ सञ्चालित होती हैं। प्रारम्भसे लेकर एम. ए तककी पढाईका प्रबन्ध भी प्रयाग महिला विद्यापीठ द्वारा होना है। सस्थाके अन्तर्गत एक कालेज भी है। इसके प्रिन्सिपल हिन्दी साहित्यकी सुविख्यात कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा रही है। भारत सरकारने इसकी विदुषी एव सरस्वती परीक्षा-ओंको क्रमश इण्टर एव बी. ए के हिन्दी ज्ञानके समकक्ष माना है।

नागरी जागरणकी इनी-गिनी कुछ सस्थाओमे प्रयाग महिला विद्यापीठका नाम बड़े आदरके साथ लिया जाता है।

हिन्दी-विद्यापीठ, देवघर

देवघर हिन्दी विद्यापीठ कई वर्षोंमे हिन्दीकी उच्च परीक्षाओंका सञ्चालन करती आ रही है। इसकी साहित्यालकार (उपाधि) परीक्षाका देशमें बडा सम्मान है। हिन्दीके माध्यम द्वारा अनेक औद्योगिक विषयोंकी शिक्षा दी जाती है। साहित्य महाविद्यालयकी ओरसे पहली कक्षासे उत्तमा परीक्षा तक हिन्दी की अनिवार्य शिक्षा दी जाती है। बिहारसे बाहर भी इसके कई केन्द्र है तथा वहाँ इस सस्थाकी परीक्षा-ओंमें परीक्षार्थी सम्मिलित होने हैं।

भारत सरकारकी मान्यता

भारत सरकारके शिक्षा-विभाग द्वारा परिषदकी 'प्रवेश' परीक्षाको मैट्रिक, उत्तमाको इण्टर, और हिन्दी रत्नको बी. ए. के समकक्ष मान्यता प्राप्त हो चुकी है। मैसूर सरकार उत्तमा वालोंको माध्यमिक शालाओंमें, हिन्दी रत्नमें उत्तीर्ण उपाधिधारियोंको प्रौढ़ शालाओंमें हिन्दी अध्यापकका स्थान दे रही है। मध्यमामें उत्तीर्ण होनेवाले सरकारी कर्मचारी व अधिकारियोंको विभागीय हिन्दी परीक्षासे छूट भी मिल रही है। पंचवर्षीय योजनाके अनुसार इन परीक्षाओंके लिए आर्थिक सहायता भी प्राप्त हो रही है।

अध्ययनकी व्यवस्था

परिषदकी परीक्षाओंके लिए परिषदके केन्द्रीय कार्यालयमें अध्यापनकी व्यवस्था भी की गई है। 'हिन्दी उत्तमा' और 'हिन्दी रत्न' के लिए विशेष वर्ग भी चलते हैं। हिन्दी साहित्यके अच्छे ज्ञाता और हिन्दी पंडित ही अध्यापक हैं। हिन्दी विद्यार्थियोंकी विशेष योग्यता की दृष्टिसे व्याख्यान माला, वाक्स्पर्धा, विशेष भाषण, प्रचारक सम्मेलन, विचार गोष्ठी आदि सांस्कृतिक कार्यक्रम भी चलाये जाते हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागकी 'विशारद' और 'साहित्य रत्न' परीक्षाओंके परीक्षार्थियोंके लिए ऐसी ही विशेष व्यवस्था की जाती है।

पुस्तकालय

परिषदके अन्तर्गत एक सुव्यवस्थित पुस्तकालय और वाचनालय भी है। केन्द्रीय पुस्तकालयमें हिन्दी साहित्यके उच्च कोटिके सभी ग्रन्थ संग्रहीत हैं। फिलहाल २० हजारसे अधिक पुस्तकें हैं। केन्द्रीय पुस्तकालयके अतिरिक्त राज्यके मुख्य मुख्य नगरोंमें परिषदके नेतृत्वमें स्थानीय हिन्दी पुस्तकालय भी चल रहे हैं। इन पुस्तकालयोंको केन्द्र एवं प्रान्तीय सरकार तथा स्थानीय संस्थाओंकी आर्थिक सहायता भी प्राप्त है।

प्रकाशन

परिषदकी प्रारम्भिक परीक्षाओंके सारे पाठ्यग्रन्थ परिषदकी ओरसे ही प्रकाशित होते हैं। अबतक 'हिन्दी प्रकाश' के तीन भाग, 'महापुरुष', 'चार एकांकी,' 'साहित्य सुबोध,' हिन्दी कन्नड़ अनुवाद माला, हिन्दी कन्नड़ व्याकरण आदि प्रकाशित हो चुके हैं।

हिन्दी प्रशिक्षण केन्द्र

परिषदके तत्वावधानमें "हिन्दी अध्यापकोंका प्रशिक्षण केन्द्र" भी मैसूर सरकारकी आर्थिक सहायतासे चल रहा है।

समितिके पदाधिकारी

श्री एच. रामकृष्णरावजी (अध्यक्ष), श्रीमती पुष्पाबाई (उपाध्यक्षा), श्री के. वी. मानप्पा

रही है। सभा द्वारा ये परीक्षाएँ सञ्चालित हो रही हैं—

राष्ट्रभाषा—पहली
राष्ट्रभाषा—दूसरी
राष्ट्रभाषा—प्रबोध
राष्ट्रभाषा—प्रवीण
राष्ट्रभाषा—पंडित
राष्ट्रभाषा—सम्भाषण योग्यता।

सन् १९४९ में अखिल भारतीय हिन्दी परिषदकी स्थापना हुई। तब यह सभा भी उससे सम्बद्ध हो गई।

सभा-द्वारा मुख्यतः जो प्रवृत्तियाँ चलाई जाती है, वे इस प्रकार हैं—परीक्षा, प्रचार, शिक्षण, ग्रन्थालय, मासिक पत्रिका, प्रकाशन, प्रेस।

परीक्षा—महाराष्ट्रमें अबतक करीब २२ लाख व्यक्तियो तक यह संस्था हिन्दीका सन्देश पहुँचा चुका है।

परीक्षा मान्यता—प्रबोध, प्रवीण, और पडित परीक्षाएँ भारत सरकार द्वारा मैट्रिक, इण्टर एव बी. ए. की हिन्दी योग्यताके समकक्ष मान्य की गई हैं।

सभाने एक अनुवाद पंडित परीक्षा चलाई है ताकि भिन्न-भिन्न साहित्य शैलियोमें लिखे गये सामान्य तथा उच्च ग्रन्थोके अनुवाद करनेकी प्रवृत्ति बढे।

प्रचार और शिक्षण

सभाकी ओरसे स्थान-स्थानपर शिक्षण वर्गोंका प्रबन्ध किया जाता है। सभाने पूना और नासिकमें हाईस्कूल भी खोले हैं जहाँ शिक्षणका माध्यम हिन्दी है। सभा-द्वारा उच्च परीक्षाओके लिए शिक्षक तैयार करनेके लिए विद्यालय चलाये जाते हैं, साथ ही भिन्न-भिन्न परीक्षाओंके लिए विद्यार्थियोंके लिए व्याख्यान-मालाओका आयोजन किया जाता है।

ग्रन्थालय—सभाके पास एक बृहद् ग्रन्थालय भी है जिसमें हिन्दी तथा अन्य भाषाओकी विभिन्न विषयोपर लगभग २० हजार पुस्तके हैं।

राष्ट्रवाणी मासिक पत्रिका

सभा द्वारा 'राष्ट्रवाणी' नामक मासिक पत्रिकाका प्रकाशन भी किया जाता है। राष्ट्रवाणीका स्वरूप ऐतिहासिक व सास्कृतिक है।

प्रेस

सभाके पास अपना एक बडा प्रेस भी है।

सभाका कार्यक्षेत्र निरन्तर व्यापक होता जा रहा है और इसकी परीक्षाओमें अच्छी सख्यामें परीक्षार्थी सम्मिलित होते हैं।

भारत सरकारने हिन्दी विद्यापीठ देवघरकी प्रवेशिका, साहित्य भूषण एवं साहित्यालंकार परीक्षाओंको क्रमशः मैट्रिक, इण्टर एवं बी. ए. की हिन्दी योग्यताके समकक्ष माना है।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना

बिहार राज्यकी विधान सभाने ११ अप्रैल सन् १९४७ के दिन इस परिषदकी स्थापनाका संकल्प किया था। आधुनिक भारतीय भाषाओंके साहित्यका संवर्धन भारत की राष्ट्रभाषा और बिहारकी राज्यभाषा हिन्दीमें कला, विज्ञान एवं अन्यान्य विषयोंके मौलिक तथा उपयोगी ग्रन्थोंका प्रकाशन और बिहारकी प्रमुख बोलियोंका अनुशीलन परिषदके उद्देश्य रखे गये थे।

विभाजन सम्बन्धी असुविधाओंके कारण परिषदका कार्य १९ जुलाई १९५० में प्रारम्भ हो सका, जब श्री शिवपूजन सहाय इसके मन्त्री नियुक्त हो गये। बिहारके तत्कालीन शिक्षा मन्त्री आचार्य बद्रीनाथ वर्मा इसके अध्यक्ष हुए। परिषदका विधिवत् उद्घाटन ११ मार्च सन् १९५१ के दिन बिहारके तत्कालीन राज्यपाल महामहिम श्री माधव श्रीहरि अणेके कर कमलोंसे सम्पन्न हुआ।

उद्देश्योंकी सफलताके लिए श्रेष्ठ साहित्यके संकलन और प्रकाशनकी व्यवस्था की गई। प्रारम्भिक एवं वरिष्ठ ग्रन्थ-प्रणेताओं एवं नवोदित साहित्यकारोंको पुरस्कार देनेकी योजना बनी और सोचा गया कि उपयोगी साहित्यका सम्पादन करनेवालोंको आर्थिक सहायता प्रदान की जाए। विशिष्ट विद्वानोंके सारगर्भित भाषणोंका प्रबन्ध हुआ और हस्तलिखित एवं दुर्लभ साहित्यकी खोजका काम हाथमें लिया गया तथा भोजपुरी, मैथिली एवं मराठी आदि लोक भाषाओंके शब्दकोश प्रस्तुत करनेकी दिशामें प्रयत्न प्रारम्भ हुए।

इस कार्यक्रमके अनुसार अब परिषदके पास हस्तलिखित एवं दुर्लभ ग्रन्थोंका विशाल संग्रह एकत्रित हो गया है। उसके द्वारा प्रकाशित, हिन्दी साहित्यका 'आदि काल', 'हर्ष चरित', 'योरोपीय दर्शन' और 'सार्थवाह' आदि ग्रन्थ राष्ट्र भारतीके भंडारके गौरव माने गये हैं। लोक भाषाओंकी दिशामें भी पर्याप्त काम किया गया है। डॉ. उदयनारायण तिवारीका 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' इस प्रयत्नमें मुकटमणि है।

परिषदका वार्षिकोत्सव प्रतिवर्ष भव्य समारोहके साथ सम्पन्न होता है। वरेण्य विद्वानोंके भाषणोंकी व्यवस्था इसी अवसरपर होती है।

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे

सन् १९४५ तक महामहोपाध्याय श्री दत्तो वामनजी पोतदार एवं श्री गो. प. नेने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी महाराष्ट्र प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके क्रमशः अध्यक्ष और संगठन मन्त्री थे। लेकिन नवम्बर १९४५ में उन्होंने बेलापुरमें एक संगठन कायम किया और वर्धा समितिसे एकाएक सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया और एक स्वतन्त्र संगठन बनाया जो आज महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणेके नामसे कार्य कर रहा है।

ता. २६ जनवरी १९४६ से महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभाने अपनी परीक्षाएँ लेना आरम्भ कर दिया। तबसे परीक्षा और विद्यालयोंका सञ्चालन-शिक्षण, प्रकाशन आदि कार्योंकी इस संस्थाकी उन्नति हो

राजभाषाके सवालपर संविधान सभामें जो अनेक प्रकारकी चर्चाएँ हुई थी उनका समारोप एवं समन्वय करते हुए श्री कन्हैयालालजी मुन्शी तथा श्री गोपालस्वामी आयगरने एक फार्मूला पेश किया। इस फार्मूलामें विभिन्न विचार-धाराओंका समाधान था। लगभग सर्व सम्मतिसे संविधान सभाने यह नियम स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप ·धानमें राजभाषा विषयक जो धाराएँ आई, उनका निष्कर्ष इस प्रकार है —

संविधानमें राजभाषा सम्बन्धी धाराएँ

धारा ३४३ (१) संघकी राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघके राजकीय प्रयोजनोंके लिए प्रयुक्त होनेवाले अंकोंका रूप भारतीय अंकोंका अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा।

(२) खंड (१) से किसी बातके होते हुए भी इस संविधानके प्रारम्भसे पंद्रह वर्षकी कालावधिके लिए संघके उन सब राजकीय प्रयोजनोंके लिए अँग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिए ऐसे प्रारम्भके ठीक पहले वह प्रयोग की जाती है—

परन्तु राष्ट्रपति उक्त कलावधिमें, आदेश द्वारा संघके राजकीय प्रयोजनोंसे किसीके लिए अँग्रेजी भाषाके साथ-साथ हिन्दी भाषाका तथा भारतीय अंकोंके अन्तर्राष्ट्रीय रूपके साथ-साथ देवनागरी रूपका प्रयोग प्राधिकृत कर सकेंगे।

(३) इस अनुच्छेदमें किसी बातके होते हुए भी संसद उक्त पन्द्रह सालकी कालावधिके पश्चात् विधि द्वारा—

(क) अँग्रेजी भाषाका; अथवा

(ख) अंकोंके देवनागरी रूपका,

ऐसे प्रयोजनोंके लिए प्रयोग उपबन्धित कर सकेगी जैसी कि ऐसी विधिमें उल्लिखित हो।

धारा ३४४ (१) राष्ट्रपति, इस संविधानके प्रारम्भसे पाँच वर्षकी समाप्तिपर तथा तत्पश्चात् ऐसे प्रारम्भसे दस वर्षकी समाप्ति पर, आदेश द्वारा एक आयोग गठित करेंगे, जो एक सभापति, और अष्टम अनुसूचीमें उल्लिखित भाषाओंका प्रतिनिधित्व करनेवाले उन अन्य सदस्योंसे मिलकर बनेगा, जिन्हें कि राष्ट्रपति नियुक्त करें, तथा आयोग द्वारा अनुसरणकी जानेवाली प्रक्रियाको भी वही आदेश निर्दिष्ट करेगा।

(क) संघके राजकीय प्रयोजनोंके लिए हिन्दी भाषाके उत्तरोत्तर अधिक प्रयोगके बारेमें,

(ख) संघके राजकीय प्रयोजनोंमेंसे सब या किसीके लिए अँग्रेजी भाषाके प्रयोगपर निर्बन्धनोंके बारेमें,

(ग) अनुच्छेद ३४८ में वर्णित प्रयोजनोंमेंसे सब या किसीके लिए प्रयोगकी जानेवाली भाषाके बारेमें,

(घ) संघके किसी एक या अधिक उल्लिखित प्रयोजनोंके लिए प्रयोग किये जानेवाले अंकोंके रूपके बारेमें,

(ङ) संघकी राजभाषा तथा संघ और किसी राज्यके बीच अथवा एक राज्य और दूसरे राज्यके बीच सञ्चारकी भाषा तथा उनके प्रयोगके बारेमें राष्ट्रपति द्वारा (आयोग) से पूछा किये गये किसी अन्य विषयके सम्बन्धमें,

राजभाषा-हिन्दी

संघ सरकार तथा राज्य सरकारोंके प्रयत्न

जबतक अँग्रेज थे, भारतकी राजभाषा अँग्रेजी ही रही। यह ठीक है कि सन् १९३७ से जब कि कांग्रेसके हाथोंमें प्रान्तीय शासनकी बागडोर आई थी, हिन्दीको तथा प्रान्तीय भाषाओंको महत्त्व देनेका कार्य किसी-न-किसी रूपमें शुरू हो गया था। लेकिन फिर भी अँग्रेजोंके शासनकालमें राजभाषाके पदपर अँग्रेजीका ही बोलबाला रहा। अधिकसे-अधिक जनता तक अपनी बात पहुँचाने, अर्थात् अपने प्रचारके लिए शासकगण हिन्दी, हिन्दुस्तानी या प्रान्तीय भाषाओंका उपयोग कर लिया करते थे।

१५ अगस्त १९४७ में जैसे ही स्वराज्य मिला, हम सबका मन उमंगोंसे भर उठा। अँग्रेज चले गए उनके साथ अँग्रेजी भी चली जाएगी, ऐसी हमारी धारणा बनी।

स्वतन्त्रता हमें १५ अगस्त १९४७ को मिली, पर भारतके संविधानका काम सन् १९४६ से ही शुरू हो गया था। डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ९ दिसम्बर १९४६ को संविधान सभाके अध्यक्ष चुन लिये गये थे। लगभग तीन वर्षोंके चिन्तन-मनन एवं वाद-विवादके बाद, २६ नवम्बर १९४९ को संविधान परिषदके द्वारा भारतीय संविधान को पूरा रूप दे दिया गया।

वह दिन १४ सितम्बर १९४९ का था जब कि भारतीय संविधान सभाने भारत संघ राज्यकी राजभाषाके बारेमें निर्णय किया। हिन्दीके रूपके सम्बन्धमें देशमें दो मत थे। एकका कहना था कि भारतकी राजभाषाके रूपमें देवनागरी एवं उर्दू लिपिमें लिखी जानेवाली हिन्दुस्तानी प्रतिष्ठित हो; यह भाषा एक ऐसी भाषा रहे जिसमें न तो संस्कृतिके तत्सम, भारी-भरकम शब्द हों और न अरबी फारसीके अगम्य, अनसुने शब्दोंकी भरमार। यह भाषा बोलचालकी ऐसी भाषा रहे जिसे कि हिन्दू-मुसलमान दोनों समझ लें। गाँधीजी तथा उनके इस नीतिके कुछ अनुयायी इस मतके पक्षमें थे। दूसरा मत था कि नागरी लिपिमें लिखी जानेवाली हिन्दी ही केन्द्रकी राजभाषा हो। इस पक्षमें श्री टण्डनजी तथा उनके समर्थक हिन्दी, अहिन्दी-भाषी लोग थे। तीसरी एक विचार धारा अवधिके बारेमें थी। दक्षिणांचलके प्रतिनिधि यह चाहते थे कि हिन्दीको लानेकी १५ सालकी अवधि बहुत कम है, उसे बढ़ाया जाए। इस तरह भारतकी राजभाषाका प्रश्न पूरे भारतवर्षके लिए एक चिन्तनीय प्रश्न बन बैठा था। अत: उसके निराकरणके लिए, कुछ प्रमुख व्यक्तियोंके प्रयत्नोंसे, विशेषत: श्री पुरुषोत्तमदासजी टण्डनके प्रयत्नोंसे दिल्लीमें सारे देशके भाषाविदों एवं विद्वानोंकी एक परिषद (Convention) आमन्त्रित की गई। इस परिषदमें सभी प्रदेशोंके एवं भाषाओंके प्रकाण्ड पण्डित एवं विद्वान् इकट्ठे हुए थे। तीन दिनों तक उनमें आपसमें चर्चा, वाद-विवाद एवं चिन्तन-मनन चलता रहा। अन्तमें सब एक समझौतेपर पहुँचे, जिसका निष्कर्ष यह था कि हिन्दी ही अपनी प्रकृति एवं गठनके कारण भारतकी सभी प्रादेशिक भाषाओंके अधिक निकट है, अत: उसीको राजभाषाके रूपमें स्वीकार किया जाय। संविधान सभामें बादमें जो राजभाषा सम्बन्धी निर्णय हुए उनपर इस परिषदके निष्कर्षोंका गहरा प्रभाव पड़ा था; इसीलिए उसका यहाँ उल्लेख किया गया है।

(२) जो अधिनियम ससद द्वारा या राज्यके विधान-मंडल द्वारा पारित किये जाएँ तथा जो अध्यादेश राष्ट्रपति या राज्यपाल या राज्यप्रमुख द्वारा प्रख्यापित किये जाएँ, उन सबके प्राधिकृत पाठ, तथा

(३) जो आदेश, नियम, विनिमय और उपविधि इस सविधानके अधीन, अथवा संसद या राज्योके विधान-मडल द्वारा निर्मित किसी विधिके अधीन, निकाले जाएँ उनके प्राधिकृत पाठ, अँग्रेजी भाषामे होगे।

(२) खड (१) के उपखड (क)मे किसी बातके होते हुए भी किसी राज्यका राज्यपाल या राज-प्रमुख राष्ट्रपतिकी पूर्व सम्मतिसे हिन्दी भाषाका या उस राज्यमे राजकीय प्रयोजनके लिए प्रयुक्त होनेवाली किसी अन्य भाषाका प्रयोग उस राज्यमें मुख्य स्थान रखनेवाले उच्च न्यायालयकी कार्यवाहियोंके लिए अधिकृत कर सकेगा।

परन्तु इस खडकी कोई बात जैसे उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय, आज्ञप्ति अथवा आदेशपर लागू न होगी।

(३) खड (१) के उपखड (ख) मे किसी बातके होते हुए भी, जहाँ किसी राज्यके विधान-मडलने उस विधान मडलमे पुर स्थापित विधेयको या उसके द्वारा पारित अधिनियमोमे अथवा उस राज्य, राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशोमे अथवा उस उपखडकी कडिका (३)मे निर्दिष्ट किसी, आदेश, नियम, विनिमय या उपविधिमे प्रयोगके लिए अँग्रेजी भाषासे अन्य किसी भाषाके प्रयोगको विहित किया है वहाँ राज्यके राजकीय सूचना-पत्रमे उस राज्यके राज्यपाल या राजप्रमुखके प्राधिकारसे प्रकाशित अँग्रेजी भाषामें उसका अनुवाद उस खडके अभिप्रायोके लिए उसका अँग्रेजी भाषामे प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।

धारा ३४९. इस सविधानके प्रारम्भसे पन्द्रह वर्षोकी कालावधि तक अनुच्छेद ३४८ के खड (१) मे वर्णित प्रयोजनोमे से किसी के लिए प्रयोगकी जानेवाली भाषाके लिए उपबन्ध करनेवाला कोई विधेयक या सशोधन ससदके किसी सदनमे राष्ट्रपतिकी पूर्व मजूरीके बिना न तो पुर: स्थापित और न प्रस्तावित किया जाएगा तथा ऐसे किसी विधेयकके पुर. स्थापित अथवा ऐसे किसी सशोधनके प्रस्तावित किए जानेकी मजूरी अनुच्छेद ३४४ के खड (१) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशोपर, तथा उस अनुच्छेदके खड (४) के अधीन गठित समितिके प्रतिवेदन पर विचार करनेके पश्चात् ही राष्ट्रपति देगा।

धारा ३५०. किसी व्यथाके निवारणके लिए सघ या राज्यके किसी पदाधिकारी या प्राधिकारीको यथास्थिति सघमे या राज्यमे प्रयोग होनेवाली किसी भाषामे अभिवेदन देनेका, प्रत्येक व्यक्तिको हक होगा।

धारा ३५१ हिन्दी भाषाका प्रसार करना, उसका विकास करना, ताकि वह भारतकी सामा-जिक सस्कृतिके सब तत्वोंकी अभिव्यक्तिका माध्यम हो सके, तथा उसकी आत्मीयतामे हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूचीमे लिखित अन्य भारतीय भाषाओंके रूप, शैली और पदावलीको आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ आवश्यक या वाछनीय हो, वहाँ उसके शब्द भडारके लिए मुख्यत सस्कृतसे तथा गौणत वैसी उल्लिखित भाषाओंसे शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना सघका कर्तव्य होगा।

इस तरह हमारे सविधानमे हिन्दीको १९६५ तक राजभाषाके पदपर आसीन कर देनेकी व्यवस्था कर दी गई। सविधान २६ जनवरी १९५० से अमलमे आया अर्थात् १५ वर्षोमे हिन्दी भारतकी राजभाषा बन जाएगी इसका निश्चय स्वय सविधानने ही कर दिया था।

अपनी सिफारिशें राष्ट्रपतिके समक्ष पेश करनेका कर्तव्य आयोगका होगा।

(३) खंड (२) के अधीन अपनी सिफारिशें करनेमें आयोग भारतकी औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नतिका तथा लोक-सेवाओंके बारेमें अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रोंके लोगोंके न्यायपूर्ण दावों और हितोंका सम्यक् ध्यान रखेगा।

(४) तीस सदस्योंकी एक समिति गठित की जाएगी जिनमें से बीस लोक-सभाके सदस्य होंगे तथा दस राज्य-परिषदके सदस्य होंगे जो कि क्रमशः लोकसभाके सदस्यों तथा राज्य-परिषदके सदस्यों द्वारा सानुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धतिके अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।

(५) खंड (१) के अधीन गठित आयोगकी सिफारिशोंकी परीक्षा करना तथा उनपर अपनी राय का प्रतिवेदन राष्ट्रपतिको करना समितिका कर्तव्य होगा।

(६) अनुच्छेद ३४३ में किसी बातके होते हुए भी राष्ट्रपति खंड (५) में निर्दिष्ट प्रतिवेदनपर विचार करनेके पश्चात् उस सारे प्रतिवेदनके या उसके किसी भागके अनुसार निदेश निकाल सकेंगे।

धारा ३४५ अनुच्छेद ३४६ और ३४७ के उपबन्धोंके अधीन रहते हुए राज्यका विधान मंडल विधि द्वारा उस राज्यके राजकीय प्रयोजनोंमेंसे सब या किसी के लिए प्रयोगके अर्थ उस राज्यमें प्रयुक्त होनेवाली भाषाओंमेंसे किसी एक या अनेक को या हिन्दीको अंगीकार कर सकेगा।

परन्तु जबतक राज्यका विधान-मंडल विधि द्वारा इससे अन्यथा उपबन्ध न करे तबतक राज्यके भीतर उन राजकीय प्रयोजनोंके लिए अँग्रेजी भाषा प्रयोगकी जाती रहेगी जिनके लिए इस संविधानके प्रारम्भ से ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी।

धारा ३४६ संघमें राजकीय प्रयोजनोंके लिए प्रयुक्त होनेके लिए तत्समय प्राधिकृत भाषा, एक राज्य और दूसरे राज्यके बीचमें तथा किसी राज्य और संघके बीचमें संचारके लिए राजभाषा होगी।

परन्तु यदि दो या अधिक राज्य करार करते हैं कि ऐसे राज्योंके बीचमें संचारके लिए राजभाषा हिन्दी भाषा होगी तो ऐसे संचारके लिए वह भाषा प्रयुक्त की जा सकेगी।

धारा ३४७—तद्विषयक मांगकी जानेपर यदि राष्ट्रपतिका समाधान हो जाय कि किसी राज्यके जन समुदायका पर्याप्त अनुपात चाहता है कि उसके द्वारा बोली जानेवाली भाषा राज्य द्वारा अभिज्ञात की जाए, तो वह निदेश दे सकेगा कि उस भाषाको उस राज्यमें सर्वत्र अथवा उसके किसी भागमें ऐसे प्रयोजनके लिए जैसा कि वह उल्लिखित करे, राजकीय अभिज्ञा दी जाए।

अध्याय ३. उच्चतम न्यायालय, उच्चन्यायालयों आदिकी भाषा

धारा ३४८ (१) इस भागके पूर्ववर्ती उपबन्धोंमें किसी बातके होते हुए भी जबतक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे, तब तक—

(क) उच्चतम न्यायालयमें तथा प्रत्येक उच्च न्यायालयमें सबकार्यवाहियाँ;

(ख) (१) जो विधेयक, अथवा उनपर प्रस्तावित किये जानेवाले जो संशोधन, संसदके प्रत्येक सदनमें पुनः स्थापित किये जाएँ, उन सबके प्राधिकृत पाठ,

गृहमंत्रालय द्वारा की गई व्यवस्था

अपने उपर्युक्त स्पष्टीकरणके साथ-साथ भारत सरकारके गृह-मन्त्रालयने व्यवस्था की है कि—

(१) उपर्युक्त राजकीय कार्योंमें हिन्दीका प्रयोग किस हदतक किया जाय, इसका निर्णय भारत सरकारका प्रत्येक मन्त्रालय तथा सम्बन्धित विभाग स्वयं करेगा, और

(२) यदि राष्ट्रपतिके आदेशको कार्यान्वित करनेमें किसी अतिरिक्त कर्मचारी वर्गकी आवश्यकता पड़ी तो इस सम्बन्धमें प्रत्येक मन्त्रालय तथा सम्बद्ध और अधीनस्थ कार्यालय, वित्त विभागसे परामर्श करके, आवश्यक अतिरिक्त कर्मचारियोंकी नियुक्ति कर सकेंगे।

राजभाषा आयोगकी नियुक्ति तथा उसकी रिपोर्ट

७ जून १९५५ को राष्ट्रपतिने राजभाषा आयोगकी नियुक्ति की। बम्बई राज्यके भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री बाल गंगाधर खेर इस आयोगके अध्यक्ष बनाए गए। उनके अलावा संविधान द्वारा स्वीकृत एवं उसकी अष्टम सूचीमें उल्लिखित हिन्दीतर भाषाओंके बीस प्रतिनिधियोंको भी उसमें रखा गया। इस आयोगने पूरे हिन्दुस्तानका दौरा किया, अनेक सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओंके पदाधिकारियों एवं प्रमुख व्यक्तियोंसे भेंट की। लगभग ९३० व्यक्तियोंने आयोगके समक्ष अपने मंतव्य रखे तथा आयोगके पास १०९४ लिखित उत्तर आए। लगभग ५ लाख रुपये आयोगके काममें खर्च हुए। ६ अगस्त सन् १९५६ को उसने अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपतिके सम्मुख प्रस्तुत कर दी। रिपोर्टके साथमें दो असहमति-पत्र थे और एक व्याख्यात्मक टिप्पण। आयोगने अपनी रिपोर्टमें जो मंतव्य दिए हैं एवं जो सुझाव रखे हैं वे इस प्रकार हैं :—

(१) संविधानके अनुसार कायम होनेवाले भारतीय राज्यके संपूर्ण जनतांत्रिक आधारको ध्यानमें रखते हुए अँग्रेजीकी अखिल भारतीय स्तरपर सामूहिक माध्यमके रूपमें कल्पना करना संभव नहीं है। संविधानमें जो अनिवार्य प्राथमिक शिक्षाके कार्यक्रम की बात आई है उसके बारेमें भारतीय भाषाओंके माध्यमसे ही सोचा जा सकता है।

शिक्षाके क्षेत्रोंमें, विशेषतया विज्ञान एवं अनुसंधानके क्षेत्रोंमें, उच्च स्टैण्डर्ड कायम रखनेकी दृष्टिसे, विश्वकी वैज्ञानिक एवं विचारात्मक प्रगतिसे सम्बन्ध बनाये रखनेकी दृष्टिसे, तथा अन्य विशिष्ट हेतुओं—आन्तर्राष्ट्रीय संबंधोंवाले राजकीय एवं कूटनीतिक भाषाके रूपमें कुछ व्यक्तियोंको अँग्रेजी भाषाका ज्ञान संपादित करना होगा। लेकिन विशिष्ट हेतुओंके लिए अथवा दूसरी भाषाके रूपमें किसी विदेशी भाषाका व्यवहार करनेमें तथा उसे शिक्षा, प्रशासन, सार्वजनिक जीवन तथा देशके दैनिक कारोबारके प्रमुख अथवा सामान्य माध्यमके रूपके प्रयुक्त करनेमें बहुत बड़ा अन्तर है।

(२) हिन्दी ही अखिल भारतीय कामोंके लिए प्रयुक्त हो सकने वाली सुस्पष्ट भाषा-माध्यम है। अन्य क्षेत्रीय भाषाओंकी तुलनामें हिन्दी अधिक लोगों द्वारा बोली तथा समझी जाती है; इसीलिए संविधानने उसे संघकी भाषाके रूपमें तथा आन्तरप्रान्तीय व्यवहारकी भाषाके रूपमें स्वीकृति दी है। इस स्वीकृतिका कारण यह नहीं है कि विकासकी दृष्टिसे या साहित्यिक-समृद्धिकी दृष्टिसे भारतकी अन्य क्षेत्रीय भाषाएँ किसी भी रूपमें हिन्दीसे कम हैं।

सन् १९५० का राष्ट्रपतिका आदेश

संविधानने भारत सरकार एवं प्रादेशिक सरकारोंपर यह उत्तरदायित्व सौंपा था कि वे इस बीच हिन्दीको समुचित रूपसे विकसित करें तथा उसे सक्षम बनाएँ, ताकि सन १९६५ तक वह शासनके काममें पूर्ण-रूपसे प्रयुक्त हो सके। हिन्दीको विकसित करनेके लिए तथा उसका प्रचार एवं प्रसार करनेके लिए शिक्षा-मन्त्रालय एवं गृह-मन्त्रालयके द्वारा उनका विवरण यथास्थान दिया गया है।

राष्ट्रपति द्वारा प्रसारित राजकीय प्रयोजनोंके लिए हिन्दी भाषा आदेश १९५५

राष्ट्रपतिने संविधानके अनुच्छेद ३४३ के खंड (२) के प्रतिबन्धात्मक खंड द्वारा प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करके एक आदेश (Order) जारी किया था जिसका नाम था "संविधान (राजकीय प्रयोजनोंके लिए हिन्दी भाषा) आदेश, १९५५"। इस आदेशके उपबन्धोंके अन्तर्गत भारत सरकारके सभी मंत्रालय तथा सम्बन्द्ध विभाग निम्न कार्योंके लिए अँग्रेजीके अतिरिक्त हिन्दी भाषाका भी प्रयोग कर सकेंगे।

(१) जनताके सदस्योंके साथ पत्र-व्यवहारमें, (२) प्रशासकीय रिपोर्ट, सरकारी पत्रिकाओं तथा उन रिपोर्टोंमें जो संसदको दी जानेवाली हों; (३) सरकारी प्रस्तावों तथा संसदीय विधियोंमें; (४) उन राज्य-शासनोंके साथ पत्र-व्यवहारमें जिन्होंने राजभाषाके रूपमें हिन्दीको स्वीकार कर लिया हो; (५) संधि-पत्र तथा करारनामोंमें; (६) विदेशी राज्यों, उनके राजदूतों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओंके साथ पत्र-व्यवहारमें; (७) अन्तर्राजनैतिक तथा वाणिज्य दूत अधिकारियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओंके भारतीय प्रतिनिधियोंके लिए जारी किए जानेवाले रीतिक लेख्योंमें।

गृहमंत्रालय द्वारा आदेशका स्पष्टीकरण १९५५

राष्ट्रपतिके उपर्युक्त आदेशको और आगे स्पष्ट करते हुए भारत सरकारके गृह मन्त्रालयने अपने ता. ५ दिसम्बर १९५५ के पत्र संख्या ५९ (२) ।५४ (पब्लिक) १ में बताया है कि:—

(१) जनताके सदस्योंसे जो भी पत्र प्राप्त हों उन सबका उत्तर यथासम्भव सरल हिन्दीमें ही दिया जाए।

(२) संसदमें पेश की जानेवाली रिपोर्टें, प्रशासकीय रिपोर्टें, सरकारी पत्रिकाएँ इत्यादि; यथा सम्भव हिन्दी और अँग्रेजी दोनोंमें ही प्रकाशित की जाएँ।

(३) सरकारी प्रस्तावों तथा अधिनियमोंमें अँग्रेजीके स्थानपर शनैः शनैः हिन्दीके प्रयोगको बढ़ानेके उद्देश्यसे तथा जनताके उपयोगके लिए, इस प्रकारके लेखोंको, जहाँ तक सम्भव हो, उनके मूल अँग्रेजी प्रतियोंके साथ, हिन्दीमें भी जारी किया जाए और साथ ही यह बात स्पष्ट कर दी जाए कि अँग्रेजी की प्रति ही अधिकृत प्रति समझी जाएगी।

(४) जिन्होंने राजभाषाके रूपमें हिन्दीको स्वीकार कर लिया है ऐसे राज्य शासनोंके साथ-पत्र-व्यवहारके सम्बन्धमें यह स्पष्ट किया गया है कि यद्यपि पत्र-व्यवहार अँग्रेजी ही में होना चाहिए, परन्तु वैधानिक कठिनाइयोंकी सम्भावनाको बचानेके उद्देश्यसे ऐसे राज्य शासनोंको भेजे जानेवाले पत्रोंके साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा।

(१२) जब हमारे विश्वविद्यालयोमे अँग्रेजीका माध्यम समाप्त हो जाएगा ; तब भी आगामी बहुत लम्बी अवधिके लिए यह आवश्यक होगा कि विश्वविद्यालयोसे निकलने वाले हमारे स्नातकोके पास, विशेषतया वैज्ञानिक विषयो एव उद्योगोके स्नातकोंके पास अँग्रेजी भाषाका (अथवा अन्य दूसरी कोई विकसित विदेशी भाषाका) उतना काफी ज्ञान रहे जिससे कि वे उस भाषामें छपने वाले पत्रों एव प्रकाशनोको पढकर अपने विशिप्ट विषयकी प्रगतिको जान-समझ ले। चूंकि हमारे देशकी शिक्षा-पद्धतिमें अँग्रेजीकी पढाई अब विशिष्ट उद्देश्योके लिए ही की जाएगी, इसलिए इसके बाद अँग्रेजीको साहित्यिक भाषा-स्तरपर नही, समझ सकने योग्य भाषा-स्तरपर पढाया जाना चाहिए।

(१३) *हमारे ख्यालसे पूरे देशमें माध्यमिक शिक्षाके स्तरपर हिन्दीकी पढाई अनिवार्य कर दी जाए।* हिन्दीको यह पढाई कबसे अनिवार्य बनाई जाए, इसका निर्णय राज्य सरकारो पर छोड देना चाहिए। माध्यमिक शिक्षाकी अवधिमे दक्षिणसे सतुलन बनाए रखनेके लिए हिन्दी भाषी क्षेत्रोके विद्यार्थियोपर दूसरी दूसरी (दक्षिण भारतीय) भाषाके अनिवार्य अध्ययनको लादने का सुझाव आयोगको मान्य नहीं है।

(१४) विश्वविद्यालयीन शिक्षाके सामान्य माध्यमके रूपमें अँग्रेजीको हटानेमें यह जरूरी नहीं कि पूरे देशमें सब जगह, एक ही समय पर, एक ही तरीकेसे यह बात की जाए। यह हो सकता है कि कुछ विषय, जैसे कि समाज शास्त्र क्षेत्रीय भाषाओमें अधिक अच्छी तरहसे पढाए जा सकेगे, साथ ही इसका भी ध्यान रखा जा सकता है कि अन्य विषयोके लिए सर्वत्र एक सामान्य माध्यमका लाभ सब विश्वविद्यालयोको पूरा-पूरा मिलता रहे। इस पर भी ध्यान रखना चाहिए, इसके विपरीत, कुछ अभ्यासक्रमोमें उच्च स्तरीय अध्ययनके लिए अँग्रेजी माध्यमको बनाये रखना भी अधिक हितकर हो सकता है। इस तरह शिक्षाके माध्यमकी पूरी परिस्थिति आज अस्थिर एवं प्रवाही है। इसलिए हमारी यह सलाह है कि शुरू-शुरूमें, विश्वविद्यालय आपसी विचार विनिमयके द्वारा स्वय निर्णय करें कि अलग-अलग अभ्यासक्रमोके लिए अलग-अलग स्तरोपर किस माध्यमको उन्हे प्रयुक्त करना है।

(१५) लेकिन हम महसूस करते है कि देशकी वर्तमान भाषिक-समस्याको ध्यानमें रखते हुए कम-से-कम ऐसी कुछ व्यवस्था होनी ही चाहिए—

(अ) जो विद्यार्थी हिन्दी भाषाके माध्यमसे परीक्षामे बैठना चाहें, उनकी परीक्षाका इन्तजाम हर हालतमें सभी विश्वविद्यालय करें।

(आ) महाविद्यालयोको सम्बद्ध करनेवाले विश्वविद्यालयोपर यह बन्धन रहना चाहिए कि वे हिन्दी माध्यमसे किसी भी विषयको पढानेवाले अपने क्षेत्रमेके कॉलेज या सस्थाको (सबके साथ) समानताके आधारपर सम्बन्द्ध कर लें।

(१६) जब वैज्ञानिक एव तकनीकी शिक्षण सस्थाओमें पढाईके लिए विभिन्न भाषिक क्षेत्रोंसे विद्यार्थी आते है, तब वहां सामान्य माध्यम रूपमें हिन्दी भाषाको अपनाना होगा; लेकिन जहाँ पूरे विद्यार्थी या लगभग सब विद्यार्थी किसी एक भाषिक वर्गके हो, वहाँ सम्बन्धित क्षेत्रीय भाषा माध्यमके रूपमें अपनाई जाए।

(१७) जहाँ तक पढाईके भाषिक माध्यमका सवाल है, वहाँ अन्तत विश्वविद्यालयोकी स्वायत्तताका सिद्धान्त सापेक्ष बन जाएगा और अन्तमें राष्ट्रभाषाकी (अधिकृत) नीतिपर ही चलना पड़ेगा।

(४) एक हिन्द-आर्य परिवारकी तथा दूसरी द्रविड़ परिवारकी –ऐसी दो भाषाओंको संघ राज्यकी भाषाओंके रूपमें मानना व्यवहार्य नहीं है, और न यह ही संभव है कि अखिल भारतीय माध्यमके रूपमें संस्कृतपर सोचा जाए।

(५) इन सब परिस्थितियोंमें केन्द्रके, केन्द्र एवं राज्यके, तथा राज्य और राज्यके कामोंके लिए हिन्दीको मान्यता देने संबंधी संविधानके उपबंध ही एकमात्र व्यवहार्य मार्गके रूपमें हमारे सामने आते हैं।

(६) संविधानके (राजभाषा संबंधी) उपबंध एक ऐसे "भाषिक-गणतंत्र" की कल्पना करते हैं, जिसमें अँग्रेजी सहित हर भाषाको देशके राष्ट्रीय जीवनमें अपना समुचित स्थान मिलेगा। हम उस बातका हार्दिक समर्थन करते हैं।

(७) संविधानके भाषा संबंधी उपबंध बुद्धिमत्ता–पूर्ण एवं व्यापक हैं। उनमें उद्देश्योंकी स्पष्ट व्याख्याके साथ-साथ संघ-भाषाको, विशेषतया न्यायालयों एवं विधान सभाओंकी भाषाको विकसित करनेकी भी व्यवस्था है, तथा बीचके समय की कठिनाइयोंपर भी ध्यान रखा गया है। वे (उपबंध) विकासमान एवं लचीले हैं, उनमें यह क्षमता है कि परिस्थिति जैसी भी विकसित होगी उसे वे संविधानके ढाँचेमें बिना कोई परिवर्तन किए सम्हाल सकेंगे।

(८) यद्यपि कुछ लोगोंके मनमें यह शंका है कि १५ वर्ष तैयारीका समय कम होगा; फिर भी लगभग सब जिम्मेदार व्यक्ति संविधानमें सूचित इस अवधिको स्वीकार करते हैं।

(९) पारिभाषिक शब्दावलीको स्वीकार करते समय मुख्य ध्येय स्पष्टता, सही अर्थ, एवं सरलता होना चाहिए। पांडित्यपूर्ण भाषिक शुद्धता की हठको त्याज्य माना जाए। नई शब्दावलीके निर्माणके काममें भूतकालमें प्रयुक्त होनेवाले देशज शब्दोंका भंडार तथा कारीगरों एवं दस्तकारों द्वारा उपयोगमें लाए जानेवाले प्रचलित शब्द अच्छे साधन-स्रोत हैं। जहाँ मुचित समझा गया वहाँ अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली का भारतीय भाषाओंकी प्रकृतिके अनुसार किंचित हेर-फेरके साथ अथवा ज्यों के त्यों स्वीकार किया जाना चाहिए। इसमें ध्येय यह रहे कि सब भारतीय भाषाओंकी नई पारिभापिक शब्दावलियोंमें अधिक समानता हो।

(१०) केन्द्रीय भाषा तथा अन्य भाषाओंकी शब्दावली विकसित करनेके कामकी समुचित व्यवस्था रहनी चाहिए; साथ ही अलग-अलग अधिकारियों द्वारा शब्दावली-निर्माणके काममें ठीकसे सामंजस्य स्थापित करनेकी भी व्यवस्था रहनी चाहिए। भारत सरकारके शिक्षा मंत्रालय द्वारा जो पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणका काम किया गया है, उसको देखनेके वाद यह महसूस होता है कि कामकी गतिको और अधिक तीव्र बनाया जाए तथा शब्दावली-निर्माण की अलग-अलग कोशिशोंमें अधिक अच्छा सामंजस्य लाया जाए।

(११) शिक्षा-प्रणालीको इस तरहसे पुनर्गठित करना चाहिए जिससे कि १४ सालकी उम्र तक हर विद्यार्थियोंको हिन्दीकी अच्छी साक्षरता प्राप्त हो जाए, ताकि हर नागरिक चाहे तो अखिल भारतीय स्तर पर सार्वजनिक जीवनकी हलचलोंके और संघ सरकारकी कार्रवाइयोंको समझ ले, तथा उनसे अपने सम्वन्ध वनाए रखे। १४ वर्ष की उम्र तक अनिवार्य शिक्षा लेने वाले वालकोंको कम से कम पिछले तीन-चार साल तक हिन्दी भापाकी शिक्षा दी जानी चाहिए।

ज्ञानका स्तर कुछ नीचा रखा जाए, ताकि संक्रमणकालमें विभिन्न क्षेत्रोंको मिलनेवाली नौकरियोंका परिमाण कम न हो जाए। हिन्दी ज्ञानके स्तरकी यह कमी भर्ती होनेके बाद विभागीय प्रशिक्षण द्वारा दूर की जा सकती है .... केन्द्रीय सरकारकी रेलवे, डाक और तार विभाग जैसी अखिल भारतीय एजेंसियोंकी भाषा नीति, जिस जिस क्षेत्रकी जनताको वे अपनी सेवाएँ प्रदान करती हैं, उस उस जनताकी सुविधाकी दृष्टिसे, मुख्य रूपसे निर्धारित होनी चाहिए। जनताकी असुविधाकी कीमतपर हिन्दी प्रचारकी गति बढ़ानेके लिए विभागोंका उपयोग नहीं होना चाहिए। जहाँ पट्टकोंपर या प्रपत्रोंमें हिन्दीकी शब्दावली तथा अभिव्यक्तियाँ दी जाती हैं, वहाँ जनताकी सुविधाकी दृष्टिसे उसे क्षेत्रीय भाषामें (अथवा योग्य हो तो अँग्रेजीमें) भी दिया जाना चाहिए।

इन विभागों द्वारा प्रयुक्त हिन्दी शब्दावली तथा अभिव्यक्तियोंको इसी दृष्टिसे जाँचना आवश्यक है कि वे स्थानीय बोलियों तथा सन्दर्भोंसे असगत न होने पाएँ।

(२६) हमारे ख्यालसे संविधानमें संघ-राज्यके कामके लिए भारतीय भाषाके माध्यमकी बातका उल्लेख इस उद्देश्यसे नहीं किया गया था कि मूल काम तो अँग्रेजीमें चलता रहे और जनताके पैसोंसे विभिन्न स्तरोंपर उसका हिन्दीमें अनुवाद करवाया जाता रहे। इसलिए नये भाषा-माध्यममें कर्मचारियोंको प्रशिक्षित करना यही ठीक मार्ग है।

संघ सरकार अपनी सेवाओंमें नये भरती होनेवालोंके लिए हिन्दी भाषाके उचित स्तर तकके ज्ञानकी यदि शर्त लगाए, तो वाजिब ही होगा, बशर्ते कि इस बातकी काफी लम्बी सूचना दी जाए और भाषा सामर्थ्यका स्तर मामूली हो और जो कमी रह जाए वह बादमें प्रशिक्षण देकर पूरी कर ली जाए।

जिन अधिकारियोंकी उम्र ४५ वर्षसे ऊपर की हो गई है, उनके लिए हिन्दी भाषाको ठीकसे समझ लेनेका स्तर ही निश्चित किया जाए।

(२७) भारत सरकारके साविधिक प्रकाशन जितने अधिक बन सके उतने अबसे हिन्दी भाषामें प्रकाशित हों।

(२८) फिलहाल, केन्द्रके किसी भी काममें अँग्रेजीके उपयोगपर किसी भी प्रकारकी रोकका सुझाव हम नहीं देना चाहते। केन्द्रके कारोबारमें संविधान द्वारा निश्चित अवधिके भीतर हिन्दीका अमल शुरू हो जाए इस दृष्टिसे एक निश्चित तारीख, तिथि वार टाइम टेबुल देना तथा हिन्दीको उस दृष्टिसे आगे बढ़ानेकी निश्चित मंजिलें सूचित करना हमारे लिए सम्भव नहीं है .... इसलिए सम्बन्धित तथ्योंके अध्ययनके बाद कामकी योजनाका खाका खींचने तथा उसके अन्तर्गत तारीख-समय निश्चित करनेके कामको भारत सरकारपर ही छोड़ देना चाहिए।

(२९) नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षकके अधीन भारतीय लेखा परीक्षक एवं हिसाब विभागका ममता विशिष्ट है .... किसी राज्यमें स्थित महालेखा एवं नियन्त्रक कार्यालयमें यह योग्यता रहनी चाहिए कि वह क्षेत्रीय भाषामें पेश किये गये विवरणोंमें हिसाब तैयार कर ले तथा सम्बन्धित क्षेत्रीय भाषाके टिप्पणों एवं प्रशासकीय निर्णयोंपर से लेखा-परीक्षणका काम कर ले....... इस उपायके रूपमें लेखा-परीक्षणके प्रान्तीयकरणपर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

(१८) यह ठीक है कि विभिन्न विश्वविद्यालयोंके अभ्यास-क्रमोंके लिए हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओं-की पाठ्य पुस्तकोंकी पूर्तिकी बात तत्सम्बन्धी बढ़नेवाली माँगपर आधारित है। फिर भी ऐसी व्यवस्था चाहिए कि इस क्षेत्रमें अधिक परिणामकारक एवं सामंजस्यपूर्ण काम सम्भव हो सके। जहाँ तक इन भाषाओंमें सन्दर्भ-साहित्यके निर्माणकी बात है, यह जरूरी है कि उन्हें प्रोत्साहित करने वाले विशेष प्रयत्नों-को संगठित किया जाए।

लोक प्रशासनमें भाषा

(१९) यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि प्रशासकीय तन्त्रके कार्यान्वियनसे सम्बन्धित नियमों, विनिमयों, नियम-पुस्तकों, गुटकों तथा इतर प्राविधिक साहित्य सम्बन्धी सरकारी प्रकाशनोंके हिन्दी अनुवादकी भाषामें एक हदतक एकरूपता रहे। इस दृष्टिसे यह अच्छा होगा कि ऐसे सब कामोंको कराने एवं उनपर देख-रेख रखनेकी सामान्य जिम्मेदारी केन्द्रीय सरकारकी किसी एक एजेंसीको सौंप दी जाए।

(२०) विभिन्न स्तरों एवं वर्गोंके प्रशासकीय कर्मचारियोंको भाषिक योग्यतामें समुचित रूपसे प्रशिक्षित करनेकी दृष्टिसे .... यदि वैकल्पिक व्यवस्थासे सन्तोषजनक परिणाम न निकलते हों तो ... सरकारके लिए यह वाजबी तथा आवश्यक हो जाता है कि वह सरकारी कर्मचारियोंपर ऐसे अनिवार्य बन्धन लागू करे, जिनसे कि वे अपने कामके लिए आवश्यक हिन्दीका ज्ञान ठीक-ठीक अवधिमें प्राप्त कर लें।

(२१) ऐसी योजनाएँ बनायी जाएँ जिनसे आशुलिपिक तथा टंकमुद्रक नये भाषामाध्यमकी आशुलिपिमें तथा टंक-मुद्रणमें प्रशिक्षण प्राप्त कर लें और संघीय भाषाका ज्ञान हासिल कर लें।

(२२) सामान्य तौरपर यदि उचित ही लगता है कि यदि कर्मचारी निर्धारित स्तर तकका हिन्दी ज्ञान निश्चित तारीख तक हासिल न कर पाएँ तो उन्हें दंड दिया जाए। वैसे ही उस स्तरसे अधिक ज्ञान हासिल कर लेनेपर उनके लिए पुरस्कारों एवं प्रोत्साहनका आयोजन भी समुचित है।

(२३) संघ सरकारके प्रशासन तन्त्रके किन्हीं हिस्सोंमें उन स्तरों तक कि जहाँ भारतीय शब्दावली-की आवश्यकता महसूस न की जाती हो, अँग्रेजीकी तकनीकी शब्दावलियाँ अनिश्चित समय तक भविष्यमें भी प्रयुक्त हो सकती हैं। वैसे ही, जहाँ विदेशोंसे कामका सम्बन्ध अँग्रेजी माध्यम द्वारा आता हो, वहाँ पत्र-व्यवहार अँग्रेजीमें भी किया जा सकता है।

(२४) रेलवे, डाक और तार विभाग, उत्पादन-शुल्क (Custom Duty) विभाग, सीमा-शुल्क (Excise Duty) विभाग, आयकर विभाग जैसी सरकारी एजेंसियों एवं संगठनोंको .... अपने प्रशासकीय संगठनोंमें एक हदतक स्थायी द्विभाषिकता विकसित करनी होगी। वे अपने आन्तरिक कारोबारमें हिन्दीका उपयोग करेंगे और जनतासे व्यवहार हेतु सम्बन्धित क्षेत्रकी भाषाका।

(२५) मौलिकके रूपमें इन विभागोंको एवं संगठनोंको अपने विभिन्न कार्यालयोंमें विभिन्न स्तरोंपर भर्तीके लिए (जहाँ आवश्यक हो, वहाँ सम्बन्धित क्षेत्रीय भाषाकी योग्यताके साथ-साथ) हिन्दीकी योग्यताका स्तर भी निर्धारित करनेका निश्चित अधिकार है .... यह हो सकता है कि प्रारम्भमें हिन्दी

ज्ञानका स्तर कुछ नीचा रखा जाए, ताकि संक्रमणकालमें विभिन्न क्षेत्रोंको मिलनेवाली नौकरियोंका परिमाण कम न हो जाए। हिन्दी ज्ञानके स्तरकी यह कमी भर्ती होनेके बाद विभागीय प्रशिक्षण द्वारा दूर की जा सकती है ....केन्द्रीय सरकारकी रेलवे, डाक और तार विभाग जैसी अखिल भारतीय एजेंसियोंकी भाषा नीति, जिस जिस क्षेत्रकी जनताको वे अपनी सेवाएँ प्रदान करती है, उस उस जनताकी सुविधाकी दृष्टिसे, मुख्य रूपसे निर्धारित होनी चाहिए। जनताकी असुविधाकी कीमतपर हिन्दी प्रचारकी गति बढ़ानेके लिए विभागोका उपयोग नही होना चाहिए। जहाँ पट्टकोपर या प्रपत्रोमें हिन्दीकी शब्दावली तथा अभिव्यक्तियाँ दी जाती है, वहाँ जनताकी सुविधाकी दृष्टिसे उसे क्षेत्रीय भाषामें (अथवा योग्य हो तो अँग्रेजीमें) भी दिया जाना चाहिए।

इन विभागो द्वारा प्रयुक्त हिन्दी शब्दावली तथा अभिव्यक्तियोको इसी दृष्टिसे जाँचना आवश्यक है कि वे स्थानीय बोलियो तथा सन्दर्भोसे असगत न होने पाएँ।

(२६) हमारे ख्यालसे सविधानमे संघ-राज्यके कामके लिए भारतीय भाषाके माध्यमकी बातका उल्लेख इस उद्देश्यसे नही किया गया था कि मूल काम तो अँग्रेजीमे चलता रहे और जनताके पैसोसे विभिन्न स्तरोपर उसका हिन्दीमे अनुवाद करवाया जाता रहे। इसलिए नये भाषा-माध्यममे कर्मचारियोको प्रशिक्षित करना यही ठीक मार्ग है।

सघ सरकार अपनी सेवाओमे नये भरती होनेवालोके लिए हिन्दी भाषाके उचित स्तर तकके ज्ञानकी यदि शर्त लगाए, तो वाजिब ही होगा, बशर्ते कि इस बातकी काफी लम्बी सूचना दी जाए और भाषा सामर्थ्यका स्तर मामूली हो और जो कमी रह जाए वह बादमे प्रशिक्षण देकर पूरी कर ली जाए।

जिन अधिकारियोकी उम्र ४५ वर्षसे ऊपर की हो गई है, उनके लिए हिन्दी भाषाको ठीकसे समझ लेनेका स्तर ही निश्चित किया जाए।

(२७) भारत सरकारके साविधिक प्रकाशन जितने अधिक बन सके उतने अबसे हिन्दी भाषामे प्रकाशित हो।

(२८) फिलहाल, केन्द्रके किसी भी काममें अँग्रेजीके उपयोगपर किसी भी प्रकारकी रोकका सुझाव हम नही देना चाहते। केन्द्रके कारोबारमे सविधान द्वारा निश्चित अवधिके भीतर हिन्दीका अमल शुरू हो जाए इस दृष्टिसे एक निश्चत तारीख, तिथि वार टाइम टेबुल देना तथा हिन्दीको उस दृष्टिसे आगे बढाने-की निश्चित मंजिले सूचित करना हमारे लिए सम्भव नही है ....इसलिए सम्बन्धित तथ्योके अध्ययनके बाद कामकी योजनाका खाका खीचने तथा उसके अन्तर्गत तारीख-समय निश्चित करनेके कामको भारत सरकारपर ही छोड देना चाहिए।

(२९) नियत्रक एव महालेखा परीक्षकके अधीन भारतीय लेखा परीक्षक एव हिसाब विभागका मसला विशिष्ट है. ....किसी राज्यमे स्थित महालेखा एव नियन्त्रक कार्यालयमे यह योग्यता रहनी चाहिए कि वह क्षेत्रीय भाषामें पेश किये गये विवरणोसे हिसाब तैयार कर ले तथा सम्बन्धित क्षेत्रीय भाषाके टिप्पणो एव प्रशासकीय निर्णयोपर से लेखा-परीक्षणका काम कर ले.......इस उपायके रूपमे लेखा-परीक्षणके प्रान्तीयकरणपर विचार करनेकी आवश्यकता नही है।

राज्य प्रशासनके स्तरपर हिन्दीका उपयोग

(३०) अन्तर्राज्यीय व्यवहारसे तथा राज्य और संघके बीचके व्यवहारसे जिन अधिकारियोंका सम्बन्ध आता है उनपर अमुक समयमें, अमुक स्तर तकका हिन्दी ज्ञान प्राप्त कर लेनेके बारेमें यदि राज्य सरकारें सख्ती करें, तो वह उचित ही माना जाएगा। राज्यके इतर कर्मचारी हिन्दीका ज्ञान प्राप्त करें, इसके लिए दण्ड एवं सख्तीके बजाय पुरस्कारों एवं प्रोत्साहनोंका सहारा लेना ज्यादा अच्छा होगा।

(३१) यदि सम्बन्धित राज्य सरकार चाहे तो संघ राज्यसे हिन्दी भाषी राज्यको लिखे जानेवाले पत्रोंका हिन्दी अनुवाद भी साथ-साथ भेजनेकी व्यवस्था की जानी चाहिए...... इससे हिन्दी भाषामें सम्बोधन एवं अभिव्यक्तिके तौर तरीके सुस्थापित होनेमें मदद मिलेगी।

अंकोंके स्वरूप

(३२) अंकोंके अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप....... भारतीय स्वरूप ही हैं..... वे प्राचीन भारतीय अंकोंके बिगड़े हुए रूप हैं। दक्षिण भारतकी चार महान् द्रविड़ भाषाओंमें कई बार अंकोंके अन्तर्राष्ट्रीय रूपोंका प्रयोग किया जाता है........संघ सरकारको चाहिए कि वह, जिस जनताको सम्बोधित किया जा रहा है उसकी सुविधानुसार, विभिन्न मन्त्रालयोंके प्रकाशनोंमें अंकोंके अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूपके साथ-साथ देवनागरी स्वरूपोंके प्रयोगको निर्धारित करे..... पर इसके सम्बन्धमें संघ-राज्यकी मूलभूत नीतिमें एकरूपता रहनी चाहिए।

कानून एवं कचहरियोंकी भाषा

(३३) आज ऐसा होता है कि अन्य सदस्योंकी जानकारीके लिए विधान सभाओंमें एक भाषाके प्रश्नों एवं उत्तरोंके लिखित अनुवाद सम्वन्धित विधान सभाकी निर्धारित भाषा (भाषाओं) में प्रस्तुत किये जाते हैं। इस प्रथाको यदि सामान्य बना दिया जाए तो अधिक लाभ होगा।

सन् १९६५ के बाद जब कि केन्द्रीय पार्लियामेंटमें अँग्रेजीका स्थान हिन्दी और राज्योंकी विधान सभाओंमें सम्बन्धित क्षेत्रकी भाषा ले ले; तब यह हो सकता है कि कोई सदस्य हिन्दीमें या उस क्षेत्रकी भाषामें या अपनी मातृभाषामें अपने मनके विचार ठीकसे प्रकट न कर पाए। उस हालतमें उस सदस्यको अँग्रेजीमें बोलनेकी अनुमति दी जानी चाहिए।

(३४) हमारा यह ख्याल है कि संसद एवं राज्योंकी विधान सभाओंकी कार्यवाहियों एवं विचार-विनिमयकी दृष्टिसे भाषाके लिए संविधानमें जो लिखा गया है, वह परिस्थितिके लिहाजसे काफी है।

(३५) हमारे ख्यालसे संसद एवं राज्यकी विधान सभाओं द्वारा स्वीकृत सरकारी कानूनोंको अन्ततः हिन्दीमें ही होना चाहिए। जनताकी सुविधाके लिए यह भी आवश्यक हो सकता है कि संसद एवं राज्योंके कानूनोंके अनुवाद विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओंमें प्रकाशित किए जाएँ।

(३६) हमारे विचारसे यह जरूरी है कि जब भाषा-माध्यम पूरी तरहसे बदल जाए तब देशका सम्पूर्ण सांविधिक ग्रन्थ एक ही भाषामें (अर्थात् हिन्दीमें) लिखा रहे। इसलिए राज्योंके तथा संसदके

विधानोंकी भाषा हिन्दी ही रहनी चाहिए और किसी भी कानूनके मातहत प्रकाशित होनेवाले तमाम सांविधिक आदेशों, नियमों आदिकी भाषा भी हिन्दी ही रहे।

अदालतकी भाषा

(३७) यह स्वाभाविक ही है कि देशमें न्यायदान देशकी भाषामें हो, और यदि यह परिवर्तन उचित तरीकेसे लाया जाए, तो उसकी मूल व्यावहारिकतामें कोई आशंका या खतरेकी गुंजाइश नहीं है। जहाँतक उच्चतम न्यायालयकी भाषाका सवाल है, सम्पूर्ण कोर्टकी कार्यवाही तथा उसके रिकार्डों, फैसलों एवं आदेशोंकी भाषा अन्ततः हिन्दी ही रहेगी। जब परिवर्तनका समय आयेगा तब उच्चतम न्यायालयको हिन्दीमें काम करना पड़ेगा। उच्चतम न्यायालयके प्रकाशित फैसलोंके अधिकृत पाठ्य भी हिन्दीमें ही प्रकाशित करने होंगे।

(३८) उच्चतम न्यायालयकी हिन्दी आदेशिकाएँ जब अहिन्दी क्षेत्रोंमें या अहिन्दी मातृभाषा-वाले व्यक्तिको भेजी जा रही हों तब सुविधाके लिए अनुवाद भी साथमें रहना चाहिए। इसका भी इन्तजाम होना चाहिए कि उच्चतम न्यायालयोंके निर्णयोंके प्रामाणिक अनुवाद विभिन्न राज्योंकी भाषाओंमें किये जाएँ।

(३९) न्याय पालिकाके निम्नतर स्तरों पंचायती अदालतों तथा तहसीली (दीवानी एवं फौज-दारी) अदालतोंकी भाषा एवं क्षेत्रीय भाषाएँ होनी चाहिए जिन्हें जनता अधिक-से-अधिक समझ सकें। यह बात जिला कचहरियोंपर भी लागू हो सकती है.....यह बहुभाषिक माध्यमका घेरा उच्च न्यायालयके स्तरपर तोड़ना पड़ेगा। उच्चतम न्यायालयकी दृष्टिसे हिन्दी एवं मातहत न्यायालयोंकी दृष्टिसे क्षेत्रीय भाषाकी व्यवस्था की जानी चाहिए। इस निश्चयके कई सुदृढ़ निर्णायक कारण हैं कि भाषा-परिवर्तनके बाद उच्च न्यायालयोंके निर्णय, डिग्रियाँ और आदेश पूरे देशके लिए एक सामान्य भाषा-माध्यममें, अर्थात् हिन्दीमें ही रहें। और चूँकि दोयम एवं मातहत अदालतें उच्च न्यायालयोंके निर्णयोंके मार्गदर्शनमें काम करती हैं इस-लिए उच्च न्यायालयोंके सब प्रकाशित निर्णय सम्बन्धित क्षेत्रीय भाषाओंमें भी अनूदित होने चाहिए। जब भाषा माध्यम बदले तब हमारा सुझाव है कि प्रत्येक उच्च न्यायालयमें फैसलोंके ऐसे अनुवादोंके लिए एक अनुवादक तन्त्र कायम किया जाए।

उच्च न्यायालयोंकी हिन्दी आदेशिकाओंके क्षेत्रीय भाषी अनुवाद भी, जहाँ आवश्यक हो, साथमें रखे जाएँ।

(४०) अदालतोंकी भाषाके सम्बन्धमें इस बातका बड़ा महत्त्व है कि सारी ताकत अदालती कार्यके भाषा-माध्यमको सामान्य रूपसे बदलनेमें लगा दी जाए।

(४१) उच्च न्यायालयोंके न्यायाधीशोंको अँग्रेजीमें फैसला देनेके वैकल्पिक अधिकारके साथ अपनी क्षेत्रीय भाषाओंमें फैसलो देनेका भी अधिकार रहना चाहिए। बशर्ते कि वे उन निर्णयोंके अँग्रेजी अथवा हिन्दी अनुवादको प्रमाणित कर दें।

(४२) यह व्यवस्था की जा सकती है कि सामान्य भाषिक स्थित्यंतरके बाद भी पीठासीन न्याया-धीश गण समुचित अवसरोंपर वकीलोंको उच्चतम न्यायालयमें अँग्रेजी या क्षेत्रीय भाषाओंमें बहस करनेकी

अनुमति दें। उसी तरह राज्यको हमारा सुझाव है कि वे (कम-से-कम) जिला अदालतोंमें मुवक्किल या वकील यदि चाहें तो हिन्दीका उपयोग कर सकें, ऐसी व्यवस्था योग्य समय आनेपर कर दें।

(४३) जहाँतक विशेष न्यायालयोंकी बात है, यदि उनके निर्णय किसी एक क्षेत्र तक ही सीमित न हों, तो यह निर्धारित किया जाना चाहिए कि वे अपने फैसले तथा आदेश मूलमें हिन्दीमें लिखें। जहाँ आवश्यक हों वहाँ पक्षकारोंको दूसरी भाषामें उनका अनुवाद उपलब्ध कराया जा सकता है। उच्च न्यायालयोंकी तरह, इन विशिष्ट न्यायालयोंके न्यायाधीशोंको भी, व्यक्तिशः संक्रमण कालकी समाप्तिके बाद काफी समय तक छूट रहे कि वे चाहें तो अँग्रेजीमें फैसला दें या आदेश लिखें।

(४४) परीक्षार्थियोंकी इच्छानुसार कानूनके विद्यार्थियोंको यह सुविधा मिलनी चाहिए कि वे हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाओंमें परीक्षा दे सकें।

(४५) हम इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि सरकारी प्रशासन एवं शिक्षा-पद्धतिमें परिवर्तनके अनुरूप कानून-निर्माण एवं अदालतोंके क्षेत्रमें भी भाषिक मांध्यमका स्थित्यन्तर अवश्यमेव आएगा, भले ही उसमें कुछ देरी लगे। इस प्रकारके परिवर्तनके लिए हमारे ख्यालसे ये प्राथमिक तैयारियाँ आवश्यक हैं—

(अ) एक प्रामाणिक कानूनी कोषकी रचना।

(आ) केन्द्रीय एवं राज्य स्तरके कानूनोंके सांविधिक ग्रन्थको हिन्दीमें फिरसे विधिपूर्वक लागू करना।

(४६) जहाँ तक कानूनकी शब्दावली बनानेकी बात है निम्नलिखित कार्य-योजनाको स्वीकार कर उस पर तेजीसे अमल करना हमारे मतसे जरूरी है—

(अ) भारतीय भाषाओंमें कानूनकी शब्दावली गढ़नेके कामकी गति बहुत अधिक बढ़ाना।

(आ) जैसे-जैसे वह बनाई जाए, वैसे-वैसे समुचित प्राधिकारी की देखरेखमें उसे प्रकाशित किया जाए।

(इ) केन्द्रके तत्वावधानमें केन्द्र तथा राज्यके कानूनोंका सांविधिक ग्रन्थ हिन्दीमें बनानेके कामकी योजना बनाई जाए।

(४७) हमें यह आवश्यक लगता है कि जिन राज्योंकी इच्छा हो उन्हें हिन्दीमें मूल सरकारी कानूनोंको बनानेकी अनुमति प्रदान की जाए। बीचके समयमें हम सोचते हैं कि सांविधिक ग्रन्थ और निर्णय-विधि कुछ हिन्दी में और कुछ अँग्रेजीमें रहेंगे तथा हिन्दी उत्तरोत्तर अधिक जगह लेती चली जाएगी; तब हिन्दी और अँग्रेजी दोनोंमें कानूनका मजमून रहेगा, एकमें मूल तो दूसरेमें अनुवाद।

शासकीय सेवा-परीक्षाएँ और संघ-भाषा

प्रतियोगिता परीक्षाओंका भाषा-माध्यम सामान्यतया शिक्षापद्धतिमें प्रचलित माध्यमसे सुसंगत रहना चाहिए। भारतीय नौसेना प्रवेशिका केडेट परीक्षा या राष्ट्रीय सुरक्षा अॅकेडेमी प्रवेशिका परीक्षा जैसी पहले प्रशिक्षणके लिए दाखिल करने वाली प्रतियोगिता परीक्षाओंमें तथा प्रत्यक्ष भर्तीके लिए ली जानेवाली प्रतियोगिता परीक्षाओंमें अन्तर किया जाना चाहिए। योग्य प्रवेश परीक्षाओंके भाषा-माध्यममें परिवर्तनकी

दृष्टिसे कदम उठाये जाने चाहिए। इनमे अँग्रेजीके स्थानपर क्षेत्रीय भाषा-माध्यमकी लानेकी आवश्यकता हो सकती है। ऐसा करने पर प्रवेश परीक्षाका शायद क्षेत्रीय विकेंद्रीकरण करना पड़े और परिणाम स्वरूप कोटा सिस्टिम लागू करनी पड़े।

(४८) अखिल भारतीय एव केन्द्रीय सेवाओके कर्मचारियोमें भविष्यमें हिंदी सम्बन्धी योग्यताका रहना जरूरी है। इस दृष्टिसे योग्य सूचनाके बाद उसके लिए हिंदीका एक अनिवार्य प्रश्न-पत्र रखा जाना चाहिए। अहिंदी विद्यार्थियोकी राहमे अनुचित बाधा न आए इस ख्यालसे ऐसा प्रश्न-पत्र प्रारभमें काफी साधारण स्तरका रहे। बादमें योग्य सूचनाके बाद उसे अन्य पर्चोंके स्तरपर अनिवार्य बनाया जा सकेगा, इसके अलावा जिनकी मातृभाषा दक्षिणी भाषाएँ हैं उन्हे इस पर्चेके एक या दो कठिन सवालोके बारेमें छूट दी जा सकती है। हिन्दी भाषी उम्मीदवारो एव अहिन्दी भाषी उम्मीदवारोमें समानता लानेकी दृष्टिसे हिन्दी-भाषी उम्मीदवारोके लिए उनके भाषा माध्यममें एक और पर्चा रहना चाहिए जिसमे दक्षिण भारतकी सस्कृति एवं आठवी अनुसूचीकी (हिंदीको छोडकर) इतर भाषाओसे सम्बन्धित विषयोपर कई वैकल्पिक प्रश्न रहें।

(४९) परीक्षाका माध्यम अँग्रेजीसे बदलकर दूसरी भाषा या भाषाओमें हो जानेके बाद भी अखिल भारतीय सेवा परीक्षाओके उम्मीदवारोमे अँग्रेजीका ज्ञान कितना है, इसकी जाँचके लिए कुछ खास पर्चोंकी व्यवस्था की जानी चाहिए।

(५०) *अखिल भारतीय सेवाओके कर्मचारियोंके बारेमे मुख्य जोर "गुण" पर दिया जाना चाहिए* न कि सानुपातिक हिस्सेदारी पर; इसलिए सेवाओकी प्रतियोगिता परीक्षाओके भाषा-माध्यमके बारेमें नीचे लिखे निष्कर्षों पर पहुँचे है :—

(अ) अखिल भारतीय एव केन्द्रीय सेवाओमें योग्य सूचना देनेके बाद, प्रचलित अँग्रेजी माध्यमके *साथ-साथ वैकल्पिक रूपमें हिंदी माध्यमको चलाया जाए। जब और जैसे स्नातक-स्तरकी* परीक्षाओमें विश्व-विद्यालयोमें हिंदीकी तरह क्षेत्रीय भाषाका माध्यम भी शुरू हो जाएगा तब उस भाषा माध्यमको भी दाखिल करनेकी बात सोची जा सकेगी। जब तक आवश्यक हो तब तक अँग्रेजी भाषाके माध्यमको वैकल्पिक रूपमें चालू रखा जा सकता है। अन्ततः जब परिस्थिति ऐसी आ जाए कि *अँग्रेजीका माध्यम हटाया जा सकता है तब काफी* कालावधिकी नोटिसके बाद उसे हटाया जाए।

(आ) जब तक माध्यमके रूपमें भाषाओंकी सख्या सीमित है, तब तक *संयम (मॉडरेशन)* व्यवहार्य बात होगी। लेकिन एक परिस्थिति ऐसी भी आ सकती है जबकि आगे माध्यमके रूपमें भाषाओकी सख्या बढाना *अव्यवहार्य हो जाएगा। तब सब सरकार एवं राज्य* सरकारोको आपसमें तय करना होगा कि

(क) *क्या वे अखिल भारतीय सेवाओमें भर्तीकी पद्धतिको बदलना चाहेंगे अथवा*

(ख) माध्यमके रूपमे भाषाओको सीमित करनेकी बात पर राजी हो जाएंगे अथवा

(ग) *परीक्षा पद्धतिमें और किसी प्रकारके योग्य परिवर्तनको स्वीकार करेंगे ?*

(इ) हम आशा करते हैं कि उपर्युक्त परिस्थिति आनेके पहले ही अहिन्दी भाषी विश्वविद्यालयोंके स्नातकोमें हिन्दीका *ज्ञान सामान्य तौर पर इतना काफी बढ़ जाएगा कि वे हिंदी भाषी*

विद्यार्थियोंके समकक्ष हिन्दी भाषाके माध्यमसे इन परीक्षाओंमें बैठ सकेंगे और जब तक ऐसा संभव हो, तब तक अँग्रेजी माध्यम अहिन्दी भाषी उमीदवारोंके वाजवी हितोंकी रक्षा करता रहेगा।

(५१) हमारे देशकी विशिष्ट परिस्थितियोंको देखते हुए भाषाओंके अध्ययनको सामान्य रूपसे प्रोत्साहनकी बड़ी आवश्यकता है। इसलिए सम्बन्धित अधिकारियोंको विभिन्न लोक-सेवा-आयोग परीक्षाओंके वैकल्पिक विषयोंकी यादीको इस प्रकार संशोधित करना चाहिए ताकि विभिन्न भारतीय भाषाओंके तथा उनके साहित्यके अध्ययनको अधिक मौका मिल सके।

(५२) राज्योंके लोक-सेवा-आयोगोंको अपनी सम्बन्धित प्रतियोगिता परीक्षाओंमें हिंदी माध्यमके विकल्पकी बातपर विचार करना चाहिए जिससे कि संघीय लोक सेवा आयोगकी प्रतियोगिता परीक्षाओंमें हिन्दी माध्यमसे शामिल होनेवाले उमीदवार घाटेमें न रहें। ऐसी हालतमें राज्यकी परीक्षाएँ क्षेत्रीय भाषाके साथ-साथ हिन्दीके भी माध्यमसे ली जा सकेंगी। संक्रमण समाप्त होने तक अँग्रेजीका माध्यम बना रहेगा।

हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओंका प्रचार एवं विकास

(५३) पिछले ३५ सालसे अहिन्दी क्षेत्रोंमें हिन्दी प्रचारका जो देशभक्तिपूर्ण एवं बहुत अच्छा काम हुआ है, बहुत कुछ उसीके कारण संविधान सभा राज्यके लिए अँग्रेजीके स्थानपर एक भारतीय भाषाको रखनेकी बात मान्य कर सकी। संविधान द्वारा स्वीकृति प्राप्त हो जानेके बाद हिन्दी-प्रचारके काममें एक नया पहलू जुड़ गया है और यह आवश्यक हो गया है कि वह काम अब सरकारी तौर पर "प्रेरित" हो। हमें ऐसा लगता है कि हिन्दी प्रचारके कामके बेहतर विकास एवं व्यवस्थित संगठनकी दृष्टिसे निम्न दिशाओंमें कदम उठाये जाने चाहिए।

(अ) विभिन्न एजेंसियोंके कामोंमें समन्वय एवं सामंजस्य स्थापित करना और जहाँ आवश्यक हो वहाँ उनके कार्य-कलापोंके क्षेत्रोंको अलग-अलग निश्चित कर देना।

(आ) उन्हें सौंपे गये क्षेत्रोंमें उनका काम बढ़ सके इस दृष्टिसे उनकी आवश्यकताएँ निश्चित करना।

(इ) उनकी परीक्षाओंके स्तरोंमें एक हद तक एक समान तथा तुलनात्मकता आ सके इसके लिए कदम उठाना, और यह देखना कि परीक्षाओंके संचालनमें ठीक तरीकोंका उपयोग होता रहे तथा उनका समुचित स्तर टिका रहे।

(ई) अध्यापनके तरीकोंको सुधारनेके लिए तथा शिक्षकोंके प्रशिक्षणके लिए अधिक सुविधा मिल सके इस दृष्टिसे मदद करना।

(उ) देशके विभिन्न क्षेत्रोंके लिए तथा हिंदी पढ़नेवाले विभिन्न वर्गोंके व्यक्तियोंके लिए योग्य एवं क्रमबद्ध पुस्तकोंकी पूरी व्यवस्था करना।

(ए) अभी जिन लोगोंने हिंदी सीखी है उनके लिए वाचनालयों एवं पुस्तकालयोंकी व्यवस्था करना।

(५४) हम सिफारिश करते हैं कि केन्द्रीय सरकार स्वेच्छासे कार्य करने वाली संस्थाओंको भी उनके कामको बढ़ाने एवं सुधारनेके लिए भरपूर आर्थिक मदद करे।

भारतीय लिपिका प्रामाणिक रूप

(५५) भारतकी लगभग सब लिपियां ब्राम्ही लिपिसे निकली हैं। तमिलको छोड़कर प्रायः सब लिपियोमें लगभग एकसे वर्ण हैं। विभिन्न भाषा-भाषी भारतीय जनताका जितना बड़ा हिस्सा हिन्दी भाषा बोलता-समझता है उससे कहीं अधिक बड़े हिस्सेमें देवनागरी लिपि फैली हुई है। इसलिए यदि भारतकी सब भाषाओके लिए एक लिपि रखनी हो तो उसके लिए सबसे अधिक अधिकार पूर्ण लिपि देवनागरी है। यदि सब भारतीय भाषाओकी एक लिपि हो जाए तो देशकी एकात्मकता एव एकताका काम बहुत आगे बढ़ेगा। हर क्षेत्रमें दूसरी भाषाओ एव उनके साहित्यके अध्ययनका काम बड़ा सुकर हो जाएगा, . . . सब तरहसे विचार करनेके बाद हमारा यह निष्कर्ष है कि रोमन लिपिको स्वीकार करनेसे कोई विशेष लाभ नहीं होगा. . . हमारी सलाह है कि सघ भाषाके अलावा अन्य भारतीय भाषाओके लिए देवनागरी लिपिको वैकल्पिकरूपसे स्वीकार किया जाए।

देवनागरी लिपिका सुधार

(५६) देवनागरी लिपि-सुधारके कुछ प्रश्नोका समाधान करनेके लिए लखनऊ परिषद्का निर्णय *स्तुत्य प्रयत्न है, यह तुरत आवश्यक है कि हिन्दी टाइप राइटरका कुंजी पटल अंतिमरूपसे निश्चित कर लिया* जाए और देवनागरी लिपिके सुधार सरकारी तौर पर स्वीकृत कर लिये जाए। यह काम केन्द्रीय सरकारके *मातहत तथा नेतृत्वमे ही सम्भव है।*

कौन सी हिन्दी ?

(५७) जिस हिन्दीको विकसित करना है वह सरल एवं बोधगम्य होनी चाहिए। लेकिन असली *मुसीबत तो यह है कि कुछ इलाकोमे जिसे "सरल" माना जाता है वही दूसरे इलाकोके लिए सचमुच कठिन* हो जाती है। ऐसी हालतमें अलग अलग हिस्सोमें जिन्हे सरल एव परिचित माना जाता है वैसे सब शब्दोको भाषामें लाना है और इस हद तक सघ-भाषाकी अलग-अलग शैलियोको विकसित किया जाना चाहिए।

समाचार पत्र और भारतीय भाषाएँ

(५८) हमारी सिफारिश है कि भारतीय भाषाओके समाचार पत्रोकी सुविधा के लिए हिंदीमें तथा जो लाभप्रद बन सके ऐसी अन्य क्षेत्रीय भाषाओमे समाचार देनेवाली सस्थाओके निर्माणकी सम्भावनाओ पर विचार किया जाए। यदि देवनागरी लिपिका प्रयोग क्षेत्रीय भाषाओमे समाचार भेजनेके लिए किया जाए तो यह बात अधिक व्यवहार्य हो सकेगी। भाषाओकी समाचार अभिकरणकी योजनासे भारतीय भाषा की पत्रकारिताको प्रोत्साहन एव सुविधा तो मिलेगी ही पर साथ ही साथ हिंदी एव क्षेत्रीय भाषाओकी शब्दावली तथा अभिव्यक्तिके प्रमाणीकरणमे भी सहायता पहुँचेगी।

राष्ट्रभाषा कार्यक्रमको कार्यान्वित करनेवाली एजेन्सियाँ

(५९) जहां तक सघ-प्रशासनमें हिंदी माध्यमको लानेकी बात है, हम जोर देकर कह सकते हैं

कि केन्द्रके सभी विभागों एवं एजेन्सियोंमें किये जानेवाले तत्सम्बन्धी कार्यवाहियोंके प्रारम्भी, दिग्दर्शन, अधीक्षण एवं सामंजस्यकी जिम्मेदारी विशेष रूपसे केन्द्रीय सरकारके एक प्रशासनिक इकाई पर डाल दी जानी चाहिए। यह एक मंत्रालय हो या मंत्रालयका विभाग हो अथवा उसका सिर्फ एक मण्डल (डिवीजन) हो, इसका निर्णय सरकार करे। शर्त यही है कि उसको काम करनेका पूरा अधिकार प्राप्त रहे।

(६०) कानून एवं प्रशासनके क्षेत्रोंमें भाषिक नीतियों पर अमल करते समय संघ प्रशासन एवं राज्य-प्रशासन एक दूसरे पर अतिक्रमणसा करने लगते हैं। हमारे ख्यालसे उनके द्वारा किये जानेवाले विभिन्न कामोंमें समन्वय एवं सामंजस्य स्थापित करनेकी दृष्टिसे केन्द्रमें राज्योंके प्रतिनिधियोंसे युक्त एक सलाहकारी बोर्डका संगठन हितकारी होगा।

(६१) हम यह महसूस करते हैं कि संघ-भाषा एवं क्षेत्रीय भाषाओंके विकासकी दृष्टिसे आवश्यक कार्यवाहियोंके संचालनके लिए तथा पाठ्य पुस्तकोंके एवं संदर्भ पुस्तकोंके उत्पादन जैसे सम्बन्धित उद्देश्योंके लिए "भारतीय भाषाओंकी राष्ट्रीय अकादमी" के नामसे नई एक एजेन्सीका निर्माण बहुत अच्छी बात होगी। अकादमीकी शासकीय समितिमें संघ-राज्य, प्रान्तीय-राज्यों, विश्वविद्यालयों तथा देशभरमें फैली हुई एवं विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओंमें काम करनेवाली पेशेवर एवं साहित्यक संस्थाओंको प्रतिनिधित्व दिया जाए।

(६२) यह ठीक है कि देशकी संघ-भाषा तथा क्षेत्रीय भाषाओंके विकासकी नई योजनाओंमें तथा नई पारिभाषिक शब्दावलीको विकसित करनेके काममें विद्वानों एवं साहित्यिकोंके मतोंको पूर्ण अवसर प्राप्त होता रहे। फिर भी यह जरूरी है कि केन्द्रीय सरकारके हाथमें उस राष्ट्रीय अकादमी को नीति-संबंधी आदेश देनेके अधिकार सुरक्षित रहें। यह अकादमी हैदरावाद शहरमें स्थित रहे, ऐसी हमारी सूचना है।

(६३) यह आवश्यक है कि सब भाषाओंके साहित्योंका एक केन्द्रीय पुस्तकालय बने तथा भाषा शिक्षकोंको प्रशिक्षणके लिए एक राष्ट्रीय संस्था की स्थापना की जाए। इस पर सोचा जाए कि क्या संस्थाएँ भारतीय भाषाओंकी राष्ट्रीय अकादमीके साथ-साथ ही स्थित रहें?

(६४) हमारी सिफारिश है कि केन्द्रीय सरकार संसदमें हर साल एक रिपोर्ट पेश करे जिसमें यह बताया जाए कि संविधानकी भाषा सम्बन्धी धाराओंकी व्यवस्थानुसार पिछले साल केन्द्र द्वारा क्या-क्या किया गया?

यह भी आवश्यक है कि भाषाओं सम्बन्धी राष्ट्रीय नीतिको विस्तृत रूपसे प्रसारित प्रकाशित किया जाए जिससे कि आम जनतामें उस विषयमें एक उचित दृष्टि आए और बिना कारणकी गलत फहमियाँ न फैलें।

समारोप

(६५) भारतके भाषिक एवं सांस्कृतिक ढांचेकी स्पष्ट भिन्नताओंके बावजूद भारतकी महत्वपूर्ण भाषाओंमें आपसमें गहरी समानता एवं लगाव है। यदि देशकी विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओंमें पुनर्मेल बढ़ानेकी दृष्टिसे जोरदार कदम उठाए जाएँ तो कुछ वर्षोंके भीतर ही भारतकी अलग-अलग भाषाओंके बीचकी दूरियाँ

काफी घटती जाएँगी। बहुभाषिक देशके नागरिकोके नाते हमारे लिए यह जरूरी है कि हम सब भाषिक क्षेत्रोंके बीच व्यापक बहुभाषिकताको प्रोत्साहित करे और इन उद्देश्योकी पूर्ति के लिए माध्यमिक एवं विश्वविद्यालयीन शिक्षा पद्धतियोमे समुचित व्यवस्था करें।

(६६) भाषिक समस्या मुख्यरूपसे आज की पीढ़ीकी समस्या है, इसलिए उसके ऐसे ही समाधान का महत्व है जो कि सामान्य रूपसे सबको मान्य हो। इस समस्याको सुलझानेमें संघ एवं राज्य सरकारोंके अलावा और भी कई एजेन्सियोकी दिलचस्पी है और इसलिए उसके हलमे उनका भी सहकार प्राप्त करना आवश्यक है। भाषिक नीतियोमे यह जरूरी है कि जहाँ तक बारीकियो एव समयकी पाबन्दीका सवाल है, वह लचीली रहे। उद्देश्यो एव ध्येयोके बारेमे अडिग रहे और मोटे कार्यक्रमोके बारेमे निश्चित रहे। भाषा सिर्फ एक साधन है, उसके सवाल पर गर्मागर्मी या भावुकता नही होनी चाहिए। यह ठीक है कि भारतकी भाषा-समस्यामे जितनी उलझनें हैं वे और कही नही पाई जाती, फिर भी हम यह महसूस करते हैं कि यदि उसको ठीकसे सभाला जाए तो उनके सही समाधान ढूंढे जा सकते हैं। हमें विश्वास है कि इसका सफलतापूर्वक मुकाबला किया जाएगा और उसे हम ठीकसे सुलझा सकेगे।

संसदीय राजभाषा समितिकी नियुक्ति तथा उसकी रिपोर्ट

सविधानकी कलम ३४४ (४) के अनुसार, राजभाषा आयोगकी रिपोर्टपर विचार करनेके लिए ससदको एक समिति गठित की गई। सितम्बर १९५७ मे इस समितिके लिए लोकसभाके सदस्योने अपने २० सदस्य तथा राज्य सभाके सदस्योने १० सदस्य सानुपातिक प्रतिनिधित्वकी एकल सांक्रमणीय गुप्त मतदान (Single Transferrable Secret Vote) पद्धति द्वारा चुने। १६ नवम्बर १९५७ की अपनी बैठकमे समितिने स्वर्गीय श्री गोविन्दवल्लभ पन्तको अपना अध्यक्ष निर्वाचित किया। एक नियम उपसमिति बनाकर उसने अपने कामकाज चलानेके नियम आदि निश्चित किए। सविधानमें यह स्पष्ट निर्देशित था कि इस समितिका काम आयोगकी सिफारिशोपर विचार करना तथा राष्ट्रपतिके पास उनपर अपनी रिपोर्ट भेजनेका है, इसलिए समितिने आयोगके निष्कर्षोंपर चर्चा नही की, सिर्फ उसकी सिफारिशोके बारेमें सोचा और उन्हीके बारेमे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। समितिकी कुल २६ बैठके हुईं। उसने अपना पचपन पृष्ठका प्रतिवेदन राष्ट्रपतिके पास ८ फरवरी १९५९ को भेज दिया। प्रतिवेदनके साथ डा. रघुवीर, सर्वश्री हरीशचन्द्र शर्मा, प्रफुल्ल चन्द्र भजदेव, पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा सेठ गोविन्ददास, फ्रेंक अन्थोनी और ठाकुरदास भार्गवके छ असहमति पत्र तथा टिप्पण थे। यह रिपोर्ट ससदमें अप्रेल १९५९ के अतिम सप्ताहमे चर्चाके लिए प्रस्तुत की गई।

ससदीय समितिने राजभाषा आयोगकी निम्नलिखित सिफारिशोके बारेमे अपना भिन्न मत प्रकट किया—

(१) आयोगकी सिफारिश थी कि सरकारके विभिन्न पदो एव नौकरियोके लिए फिलहाल जो अँग्रेजीको शिक्षाका स्तर निर्धारित है, हिन्दी ज्ञान एव शिक्षाका वही स्तर कर्मचारियोंके लिए निर्धारित किया जाए। समितिने सिद्धान्तके रूपमे उसे मान्यता देते हुए लिखा कि सक्रमण की अवस्थाओंमें हिन्दी ज्ञानका स्तर कुछ कम भी चल सकता है।

(२) आयोगकी सिफारिश थी कि कर्मचारी निर्धारित स्तरका हिन्दी ज्ञान निर्धारित समयके अन्दर प्राप्त न करले तो उन्हें दंडित किया जाए। समितिने उसे स्वीकृति नहीं दी।

(३) आयोगकी सिफारिश थी कि संघ सरकारके प्रशासन तंत्रके कुछ हिस्सोंमें उन स्तरोंपर कि जहाँ भारतीय पारिभाषिक शब्दावली का विकास आवश्यक न लगता हो, अँग्रेजीकी तकनीकी शब्दावली अनिश्चित काल तक चलती रहे। उसी तरह जहाँ विदेशोंसे अँग्रेजी माध्यमसे सतत सम्बन्ध बनाए रखना आवश्यक हो, वहाँ अँग्रेजीमें पत्र-व्यवहार किया जा सकता है। समितिने आयोगकी इस सिफारिश पर कहा कि जब तक इन स्तरोंपर भारतीय शब्दावलीके विकासकी आवश्यकता न महसूस की जाती हो तब तक अँग्रेजी की तकनीकी शब्दावली चलाई जा सकती है, लेकिन ऐसा अनिश्चित काल तक नहीं होना चाहिए।

(४) आयोगकी सिफारिश थी कि ४५ वर्षकी तथा उसके ऊपर जिनकी आयु हो गई है वैसे अधिकारियोंके लिए हिन्दीको सिर्फ समझ लेने तकका ज्ञान-स्तर निर्धारित होना चाहिए। समितिके मतसे ४५ वर्ष या उसके ऊपरकी आयुवाले अधिकारियोंके लिए हिन्दी ज्ञान प्राप्तिके बारेमें सख्ती नहीं की जानी चाहिए।

(५) समितिका यह मत है कि राजभाषा आयोगकी सिफारिशोंपर समितिने जो मन्तव्य दिए हैं, उन्हें मद्दे नजर रखते हुए हिन्दीका राजभाषाके रूपमें अधिकाधिक प्रयोग किया जा सके इस दृष्टिसे संघ सरकारको प्रत्यक्ष कार्यकी एक योजना बनानी चाहिए तथा उस पर अमल करना चाहिए।

(६) समितिके विचारसे संघ सरकारके विभिन्न मंत्रालयोंके प्रकाशनोंमें अंकोंके अंतर्राष्ट्रीय स्वरूपके साथ-साथ देवनागरी अंकोंको प्रयुक्त करनेके बारेमें संघ सरकारकी एक मूलभूत समान नीति होनी चाहिए। सम्बोधित की जाने वाली जनतापर एवं प्रकाशनकी विषय-वस्तु पर वह नीति आधारित रहे।

(७) केन्द्र सरकारके कामोंके लिए अंकोंके अंतर्राष्ट्रीय रूपोंके साथ-साथ देवनागरी अंकोंके उपयोग हेतु राष्ट्रपति द्वारा निर्देश प्रसारित करनेके बारेमें आयोगने कोई सिफारिश करनेसे इन्कार कर दिया था। समितिने इस इन्कारी पर विचार प्रकट करते हुए कहा कि उसकी कोई आवश्यकता नहीं थी और उसपर कतई न सोचा जाए।

(८) संसदके तथा राज्योंकी विधान सभाओंके कामकाजमें प्रयुक्त होनेवाली भाषाके बारेमें आयोगने जो सिफारिशें की थीं, समितिने उनपर विचार नहीं किया, कारण उसके मतमें संविधानकी धारा ३४८ के अनुसार आयोगको उस सम्बन्धमें कुछ कहना ही नहीं चाहिए था।

(९) संसदमें तथा राज्योंकी विधान सभाओंमें पास होनेवाले कानूनोंकी भाषाके बारेमें आयोगकी जो सिफारिशें थीं, उन पर समितिका मत पड़ा कि——

(अ) १९६५ तक, या जब तक अँग्रेजीका स्थान हिन्दीको नहीं दे दिया जाए तब तक संसदीय विधि-निर्माण अँग्रेजी भाषामें होते रहें, हिन्दी भाषामें उनके अधिकृत अनुवाद दिए जाएँ। विभिन्न राज्योंकी राजभाषाओंमें भी उसके अनुवाद देनेकी व्यवस्थाएँ की जा सकती हैं।

(आ) जहाँ तक राज्यके विधि-निर्माणकी भाषाका सवाल है (सम्बन्धित) राज्य विधान सभा उस हेतु राज्यकी राजभाषाका स्वीकार कर सकती है ; लेकिन तब सविधानकी धारा ३४८ खड (३) के अनुसार कानूनोका अधिकृत पाठ अँग्रेजीमें प्रकाशित करना जरूरी होगा। यदि (कानूनका) मूल पाठ हिन्दीको छोड़कर अन्य भाषामें हैं, तो साथमें हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किया जा सकता है।

(१०) उच्च न्यायालयोकी भाषाके बारेमे आयोगकी सिफारिशो पर मत देते हुए समितिने कहा कि सविधानकी धारा ३४८ खड (२) के अनुसार राष्ट्रपतिकी पूर्व सम्मतिसे उच्च न्यायालयकी कार्यवाहीमें राज्यकी राजभाषाका या हिन्दीका प्रयोग हो सकता हैं। लेकिन उच्च न्यायालयो द्वारा पास किए जानेवाले निर्णयो, डिक्रियो तथा आदेशोको अँग्रेजीमे ही होना चाहिए। समितिका यह मत है कि राष्ट्रपति कृपा करके ससदमे ऐसे एक विधेयकको प्रस्तुत करनेकी सम्मति दे दे जिसके अनुसार राष्ट्रपतिकी पूर्व सम्मतिसे उच्च न्यायालयोके निर्णयो, डिक्रियो तथा आदेशोके लिए वैकल्पिक रूपसे हिन्दी तथा राज्योकी अन्य राजभाषाओके प्रयोगकी व्यवस्था हो जाए। अँग्रेजीके अलावा दूसरी भाषामें दिए जाने वाले निर्णयो, डिक्रियो एव आदेशोका अँग्रेजी अनुवाद साथमें रखना चाहिए। सब प्रकाशित होनेवाले निर्णय एव आदेशोका हिन्दी भाषामे भी अनुवाद होना चाहिए। उच्च न्यायालयो द्वारा निकाली जानेवाली आदेशिकाएँ (Processes) सम्बन्धित क्षेत्रीय भाषामें लिखी हो सकती हैं, लेकिन साथमे सघ-भाषामे उनका अनुवाद रहना चाहिए।

(११) समिति यह उचित नही समझती कि उच्च न्यायालयोके न्यायाधीशोके लिए भाषा सम्बन्धी परीक्षाए निर्धारित की जाएँ। हाँ, समिति इसे मानती हैं कि हिन्दी का तथा जिस क्षेत्रमे उच्च न्यायालय स्थित है उस क्षेत्रकी भाषाका ज्ञान न्यायाधीशोके लिए उपयुक्त होगा।

(१२) जिलास्तरोपर तथा आवश्यक हो तो उससे भी नीचे, यदि पक्षकार या वकील चाहें तो हिन्दीका उपयोग कर सकते हैं—इस बारेमें आयोगने जो सिफारिश की है, उसके लिए समितिका कहना है कि धारा ३४८ के अनुसार यह मुद्दा आयोगके लिए विचाराधीन ही नही हो सकता था।

(१३) विधि-निर्माण एव न्यायदानके क्षेत्रोमे भाषिक परिवर्तनकी दृष्टिसे प्रामाणिक विधि-शब्दावलीके निर्माण तथा हिन्दीमें सम्पूर्ण साविधिक ग्रथके विधिकरणके सम्बन्धमे जो सुझाव एव कार्य-योजना आयोगने प्रस्तुत की थी, उन्हे मानते हुए समितिने भारतकी विभिन्न राष्ट्रभाषाओका प्रतिनिधित्व करने वाले कानून-विशारदोके एक ऐसे स्थाई आयोग या तत्सम उच्च स्तरीय समितिके निर्माणकी सिफारिश की थी, जिसका काम साविधिक ग्रन्थोके अनुवाद तथा कानूनकी पारिभाषिक शब्दावली आदिके निर्माणकी उचित योजना बनाना तथा उसके सम्पूर्ण क्रियान्वयनकी व्यवस्था करना रहे।

जहाँ तक राज्योके साविधिक ग्रन्थोको सम्बन्धित राज्योकी राजभाषाओमें अनूदित करनेकी बात है, समितिने राज्य सरकारोको सलाह दी कि वे सम्बन्धित केन्द्रीय अधिकारियोसे विचार विनिमय कर योग्य कार्यवाही करें।

(१४) आयोगका सुझाव था कि प्रतियोगिता परीक्षाओका भाषा-माध्यम शिक्षा-पद्धतिमे प्रचलित भाषा-माध्यमसे सुसगत रहे। समितिने आयोगकी इस सिफारिशको ठुकरा दिया।

(१५) केन्द्रकी प्रशिक्षण सिव्वंदियोंके भाषा-माध्यमके सम्वन्धमें आयोगकी जो सिफारिशें थीं, उनके बारेमें समितिका मत था कि आयोगकी रिपोर्टमें जिन प्रशिक्षण सिव्वंदियोंका जिकर आया है उनमें यह जरूरी है कि शुरू-शुरूमें कुछ समय तक अँग्रेजी, माध्यमके रूपमें चले लेकिन साथ ही यह भी जरूरी है कि उनकी पूरी पढ़ाईमें उसके कुछ अंश तक हिन्दीको माध्यमके रूपमें दाखिल करानेके लिए उचित कदम उठाया जाए। इन प्रशिक्षण सिव्वंदियोंमें भर्तीके लिए जो परीक्षाएँ ली जाती हैं, उनके सव या किन्हीं प्रश्नपत्रोंके लिए इच्छानुसार अँग्रेजी या हिन्दीको माध्यमके रूपमें लेनेकी स्वीकृति मिलनी चाहिए और एक विशेषज्ञ कमेटी वनाई जानी चाहिए जो यह देखे कि विना कोटा पद्धति दाखिल किए क्षेत्रीय भाषाओंको उन परीक्षाओंके माध्यमके रूपमें लाना कहाँ तक व्यवहार्य होगा ?

(१६) अखिल भारतीय तथा उच्च स्तरीय केन्द्रीय सेवाओंकी प्रतियोगिता परीक्षाओंके वारेमें समितिका मत रहा कि

(अ) परीक्षाओंके माध्यमके रूपमें अँग्रेजीको चलने दिया जाए, कुछ समय वाद हिन्दीको वैकल्पिक माध्यमके रूपमें दाखिल किया जाए और तदनन्तर जहाँ तक आवश्यक हो वहाँ तक हिन्दी और अँग्रेजी दोनोंको वैकल्पिक माध्यमके रूपमें चलने दिया जाए।

(आ) परीक्षाओंमें योग्य सूचनाके वाद समान स्तरके दो भाषा-प्रश्नपत्र अनिवार्य रूपसे रहें—एक हिन्दीका और दूसरा हिन्दीके अलावा अन्य किसी आधुनिक भारतीय भाषाका जिसे कि परीक्षार्थी पसन्द करें।

(इ) जब तक सरकारी कामोंमें से अँग्रेजीको पूर्णतया हटा नहीं दिया जाता तव तक परीक्षाका माध्यम बदल दिए जाने पर भी अँग्रेजीका अनिवार्य प्रश्नपत्र रहना चाहिए।

(ई) एक विशेषज्ञ समिति बनाई जाए जो इसकी जाँच करे कि विना कोटा-पद्धति लाए क्षेत्रीय भाषाओंको माध्यमके रूपमें दाखिल करना कहाँ तक सम्भव है ?

(१७) हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओंके प्रचार एवं विकासके बारेमें आयोगकी सिफारिशोंको स्वीकृति प्रदान करते हुए समितिने अपनी तरफसे कहा कि कुछ हिन्दी कितावोंका क्षेत्रीय लिपियोंमें प्रकाशन अहिन्दी क्षेत्रोंके वयस्कोंको हिन्दी सिखानेके काममें सुविधा पैदा करेगा।।

(१८) भारतकी रंग-बिरंगी संस्कृतिकी परम्पराको समझने एवं आत्मसात् करनेकी दृष्टिसे तथा विभिन्न भारतीय भाषाओंके बीच अधिकाधिक पुनर्मेल बढ़ानेकी दृष्टिसे आयोग ने जो सिफारिश की थी उसे मानते हुए समितिने सुझाया कि भारतीय साहित्यके अध्ययनको भी प्रोत्साहन दिया जाए।

(१९) देवनागरी लिपिमें सुधार सम्बन्धी आयोगकी सिफारिशसे सहमति जाहिर करते हुए समिति ने कहा कि देवनागरी लिपिमें सुधारकी दृष्टिसे १९५३ की लखनऊ परिषदके निर्णयोंपर जो अभी-अभी मतभेद उत्पन्न हुए हैं, उनके निराकरणके लिए फौरन-कदम उठाए जाएँ।

इनके अलावा आयोगकी जो अन्य सिफारिशें थीं, वे सब समिति द्वारा मान ली गईं।

संसदीय समितिकी प्रमुख सिफारिश—असहमतिका नोट लिखवानेवाले श्री फ्रेंक अंथोनीके अनुसार संसदीय समितिकी प्रबल एवं प्रभावशाली सिफारिश उसके निम्नलिखित शब्दोंमें निहित है—"अँग्रेजीसे हिन्दीमें अन्तिम स्थित्यन्तरकी तारीख इस प्रक्रिया की नई मंजिल की नहीं, उसके चरमोत्कर्ष विन्दुकी सूचक

होगी; उस तारीखको इसलिए लक्ष्मण-रेखा नही माना जा सकता। इस प्रश्नकी तरफ हमारा रुख लचीला एव व्यवहार्य होना चाहिए। समितिका मत है कि १९६५ तक सघ राज्यकी प्रमुख राजभाषा अँग्रेजी रहे तथा हिन्दी उसकी आनुषगिक राजभाषा रहे। और १९६५ से जब कि हिन्दी प्रमुख राजभाषा हो जाएगी तबसे जबतक आवश्यक हो तब तक अँग्रेजीका ससद द्वारा विधिवत् निर्धारित कामोके लिए सहायक राजभाषाके रूपमे प्रयोग चलता रहेगा।"

पुरुषोत्तमदासजी टण्डन तथा सेठ गोविन्ददासजीका संयुक्त असहमति-पत्र

राजभाषा-आयोगकी सिफारिशोपर विचार करनेके लिए बनाई गई ससदीय समितिकी रिपोर्टका सार ऊपर दिया जा चुका है। इस रिपोर्टसे विभिन्न मत व्यक्त करते हुए विभिन्न सदस्यो द्वारा जो नोट लिखे गए थे, उनमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टण्डन तथा सेठ गोविन्ददासजी द्वारा प्रस्तुत सयुक्त असहमति-पत्र था, इसलिए नीचे उसका सार दिया जा रहा है—

"इस समितिके बहुसख्यक सदस्योकी रिपोर्टसे हम सन्तुष्ट नही है ... ...हमारी यह धारणा है कि सघ सरकारके कामकाजोमे अँग्रेजीकी जगहपर हिन्दीको प्रस्थापित करनेके लिए आवश्यक वातावरण तथा परिस्थितियाँ पैदा करनेका काम भारत सरकारकी ओरसे विचारपूर्वक नही किया गया है। सविधानके अमलमे आनेके नौ साल बाद भी अँग्रेजी खुले आम अधिसत्तायुक्त भाषा है।......आज भी हमारी (इस) समितिने, केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाए गए वातावरणके प्रभावमे आकर अँग्रेजीके पक्षकी सिफारिशें प्रस्तुत की है। हिन्दी भाषाके प्रचार एव प्रसारके बारेमे.......समितिकी सिफारिशें अधूरी-सी तथा असन्तोषजनक हैं। वर्तमान ढाँचेमें परिवर्तन सूचित करनेवाली भाषा-आयोगकी सिफारिशें तो पहले ही आवश्यकसे अधिक सकीर्ण एवं सकुचित थी। समितिने उनमेंसे कुछ को और भी हल्का बना दिया है।

लोक प्रशासनमें भाषा

१—आयोगने सिफारिश की थी कि सघ सरकारके किसी भी कामके लिए अँग्रेजीके उपयोगपर फिलहाल कोई रोक लगानेकी वह सिफारिश नही करता। समितिके बहुमतकी रिपोर्टने आयोगकी इस सिफारिशको मजूर कर लिया है। लेकिन हम उससे सहमत नही है। सघ राज्यके कुछ काम ऐसे है कि जिनमें अँग्रेजीको चलने देना साफ साफ अयुक्तिसगत एव अन्यायकारी है और इसलिए उनपर रोक लगाना बहुत जरूरी हो गया है। हम केन्द्रीय सरकारके चतुर्थ श्रेणीके कर्मचारियोकी ही बात लेते हैं। ये कर्मचारी देश भरमें फैले है। इन कर्मचारियोको जब कर्तव्यकी अवहेलना या कर्तव्य-च्युतिके बारेमें अभियोग-पत्र दिए जाते है तो वे अँग्रेजीमें लिखे रहते है तथा उन कर्मचारियोंसे उनका जवाब अँग्रेजीमें माँगा जाता है। यह बात बहुत ही अनुचित है; कारण इस श्रेणीके कर्मचारीकी साक्षरता अपनी भाषा तक ही सीमित रहती है। हम सिफारिश करते है कि चतुर्थ श्रेणीके कर्मचारियोको भेजे जानेवाले सब पत्र वे कर्मचारी जिस राज्यके हो उस राज्यकी अधिकृत भाषामें, अथवा हिन्दीमें, निकाले जाएँ और ऐसे आदेश तुरन्त जारी कर दिए जाएँ।

उसी प्रकार हमारी सिफारिश है कि केन्द्रीय विभाग उन सब पत्रोके उत्तर जो अँग्रेजीमें नहीं लिखे जाते, सम्बन्धित राज्यकी भाषामें अथवा हिन्दीमें भेजे। विशेष कर जब कि कोई व्यक्ति, प्रतिष्ठान या संस्था

हिन्दीमें या अपनी राज्यभाषामें पत्र लिखता है, तब तो उसका जवाब हिन्दीमें या राज्य की भाषामें ही जाना चाहिए। किसी भी हालतमें वह अँग्रेजीमें नहीं भेजा जाए।

हमारे देशके स्वाभिमानका यह तकाजा है कि विदेशी शासकों एवं प्रमुख महानुभावोंकी सेवाओंमें राजदूतोंके साथ भेजनेवाले प्रत्यय-पत्र हमेशा हिन्दी भाषामें ही लिखे रहें; वे किसी भी हालतमें अँग्रेजीमें न लिखे जाएँ।

२—राजभाषा आयोगसे यह अपेक्षा थी कि अँग्रेजीसे हिन्दीमें स्थित्यन्तरण करनेके बारेमें वह भारत सरकारके विभिन्न विभागोंका मार्गदर्शन करनेके लिए एक ऐसी कार्य-योजना प्रस्तुत करेगा जिसमें इस स्थित्यन्तरणकी अवस्थाओं तथा तारीखोंका टाइम-टेबल भी जुड़ा रहे। आयोगका कहना है कि उसके सामने भारत सरकार द्वारा तत्सम्बन्धी कोई कार्य-योजना पेश नहीं की गई और इसलिए उसने ऐसी कार्य-योजनाके सम्बन्धमें सिर्फ कुछ पूर्वावश्यकताओंकी सूचना मात्र दी हैं; प्रत्यक्ष कार्य-योजना तैयार करनेका काम उसने भारत सरकारपर छोड़ दिया है। इस संसदीय समितिकी बैठकोंमें भी सरकारसे कई बार आग्रह पूर्वक कहा गया कि वह अब भी समितिके सामने सरकारके कामकाजोंमें हिन्दीको अधिकाधिक प्रयुक्त करने सम्बन्धी अपनी योजनाको प्रस्तुत कर दे, ताकि सदस्यगण उसपर विचार कर सकें और अपने प्रस्ताव सूचित कर सकें। लेकिन समितिके सामने कोई योजना नहीं रखी गई। दिखता ऐसा है कि सरकार किसी योजना-बद्ध कार्यक्रमसे अपने आपको नहीं बाँध लेना चाहती है। इस परिस्थितिमें हम सिर्फ आशा प्रकट कर सकते हैं कि पिछले नौ सालोंसे इस सम्बन्धमें जो अधकचरी उदासीनताकी नीति चलाई गई हैं, वह आगे नहीं चलाई जाएगी।

३—अब हम हिन्दीमें प्रयुक्त किये जानेवाले अंकोंके स्वरूपके सम्बन्धमें समितिकी रिपोर्टमें जो कुछ कहा गया है, उसपर विचार करेंगे।

संविधान सभाने जहाँ देवनागरी लिपिमें लिखी हुई हिन्दीको संघ राज्यकी राजभाषाके रूपमें स्वीकृति दी, वहाँ उसने प्राचीन एवं लोकप्रिय संस्कृत अंकोंके बदले अँग्रेजी अंकोंको मान्यता प्रदान की है। संविधान सभाके इस कामको हमने हमेशा अदूरदर्शितापूर्ण माना है। लेकिन संविधानमें यह भी व्यवस्था है कि संघ-राज्यके किसी भी काममें भारतीय अंकोंके अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूपके साथ-साथ देवनागरी अंकोंके प्रयोगको १५ वर्षकी अवधि तक राष्ट्रपति अधिकृत कर सकता है। इस रक्षात्मक खंडवाक्यसे अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूपकी आड़में अँग्रेजी अंकोंको दाखिल करनेकी गलती कुछ कम हो जाती है। वस्तु स्थिति यह है कि उन हिन्दी प्रकाशनोंमें अँग्रेजी अंकोंके उपयोगकी कोई तुक ही नहीं है, जो कि मूल अँग्रेजी-वस्तुके सिर्फ अनुवाद या उद्धरण मात्र होते हैं। चूँकि १९६५ तक या जब तक संसद अन्यथा निर्णय न कर ले तबतक सब सांख्यिकी तथा तकनीकी आंकड़े नियमानुसार अँग्रेजीमें ही लिखे जाते रहेंगे, इसलिए ऐसी कृतियोंके हिन्दी प्रकाशन अँग्रेजी अंकोंके उपयोगकी वजहसे निरर्थक हो जाते हैं और जो अँग्रेजी नहीं जानते हैं उनके लिए उन प्रकाशनोंका उपयोग काफी कम हो जाता है। हम सोचते हैं कि सन् १९६५ के बाद अँग्रेजी तथा देवनागरी अंकोंके प्रयोगके सम्पूर्ण प्रश्नपर उस समय जो हालत होगी उसके सन्दर्भमें, नए सिरेसे विचार किया जाए।

विधि-निर्माणकी भाषा

४—(संविधानके अनुसार) संसदमें पेश किए जानेवाले सब विधेयकोंकी भाषा १९६५ तक अँग्रेजी

ही रहेगी; पर हमारी सिफारिश है कि विधि-विभाग द्वारा प्रमाणित उनके हिन्दी अनुवाद भी संसदमें साथ-साथ पेश किए जाएँ। यह न सिर्फ जनताके हितकी दृष्टिसे ही आवश्यक है, बल्कि संसदके उन सदस्योंकी दृष्टिसे भी जरूरी है कि जो अँग्रेजीमें प्रस्तुत विधेयकोंकी व्यवस्थाओंको, अपने अध-कचरे अँग्रेजी ज्ञानके कारण ठीकसे नहीं समझ पाते। यदि उपर्युक्त सिफारिशानुसार प्रस्तुत करते समय ही विधेयकोंका हिन्दी अनुवाद करवा लिया जाए, तो अधिनियम स्वीकृत होते ही अँग्रेजी मूलके साथ साथ उसका हिन्दी अनुवाद भी तुरन्त मिल जाया करेगा।

विधि-विभाग केन्द्रीय विधि-मण्डलके कुछ अधिनियमोंको हिन्दीमें अनूदित करवा चुका है। हम सिफारिश करते हैं कि इन अनुवादोंको मूलके समकक्ष प्रामाणिकता हासिल हो जाए, इस दृष्टिसे तुरन्त कदम उठाए जाने चाहिए। सम्पूर्ण सविधि-ग्रन्थ का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद भी तीन सालमें तैयार कर लिया जाए। हमारी सिफारिशोंपर अमल करनेके लिए यह जरूरी है कि विधि-विभागके हिन्दी-अनुभागको बहुत अधिक सुदृढ बनाया जाए।

जहाँ तक राज्य विधान-मण्डलोंका सवाल है, राज्योंके साथ ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे कि उनकी विधियोंका हिन्दी-अनुवाद निकाला जा सके।

कचहरियोंकी भाषा

५—इस बारेमें समितिने जो कुछ कहा है उसमें हम इतना और जोडना चाहते हैं कि हिन्दी भाषी राज्योंके उच्च न्यायालयोंसे कहा जाए कि वे हिन्दीकरणके बारेमें अगुआई करें। उन्हें चाहिए कि वे साक्ष्य प्रमाणके अँग्रेजी अनुवादकी बातको हटा दें, और अधिवक्ताओंको अनुमति दें कि वे न्यायाधीशोंको, उनकी सम्मति लेकर हिन्दीमें सम्बोधित करें। उन्हें चाहिए कि विविध प्रार्थना-पत्रों और शपथ पत्रोंको वे हिन्दीमें दाखिल होने दें।

उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयोंके महत्वपूर्ण फैसलोंका तुरन्त प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद *निकाला जा सके। इसकी व्यवस्था की जानी चाहिए। विधि-विभागकी देखरेखमें काम करनेवाली दिल्ली* स्थित केन्द्रीय आफिसको यह काम सौंपा जा सकता है।

लोक-सेवा परीक्षाएँ

६—अब हम लोकसेवाओंके लिए ली जानेवाली परीक्षाओंमें तथा प्रशिक्षण कक्षाओंमें हिन्दीको *प्रयुक्त करनेके बारेमें कुछ कहना चाहते हैं। आयोगने यह सिफारिश की थी कि सामान्यतया प्रतियोगिता* परीक्षाओंका भाषा-माध्यम शिक्षा-पद्धतिमें प्रचलित पढाईके माध्यमसे सुसगत रहना चाहिए। हम सोचते हैं कि यह सिद्धान्त आमतौरपर मान लिया जाए। इस सम्बन्धमें समितिकी बहुसख्यक सदस्योंकी रिपोर्टका कहना है कि आयोगकी इस सिफारिशको खतम कर दिया जाए। लेकिन हम उससे सहमत नहीं हैं।

हम बहुसख्यक सदस्योंके इस मतसे सहमत हैं कि प्रशिक्षण सिव्वदियोंमें प्रवेशके लिए ली जानेवाली परीक्षाओंका माध्यम, *फिलहाल, अँग्रेजी तथा हिन्दी रहे, परीक्षार्थी उनमेंसे किसी एकको, एक या सब पर्चोंके* लिए चुन सकता है। लेकिन उनकी इस सिफारिशसे हम बिल्कुल असहमत हैं कि उन सिव्वदियोंमें शिक्षा-

माध्यमके रूपमें कुछ समय तक सिर्फ अँग्रेजी ही चलती रहे। वे डरते-डरते इतना भर कहते हैं कि "पूरी पढ़ाईके लिए या उसके कुछ हिस्सेके लिए हिन्दीको माध्यमके रूपमें दाखिल करानेकी दृष्टिसे फिर भी योग्य कदम उठाए जाएँ: "हमने सुझाव रखा था कि 'कदम' के आगे 'तुरन्त' शब्द जोड़ दिया जाए, लेकिन समितिने उसे मान्यता नहीं दी और 'तुरन्त' की जगहपर 'योग्य' शब्द रखा गया। इसपरसे दिखाई देता है कि समितिके सामने इस सिफारिशकी कितनी क्या कीमत है? समितिकी मुख्य इच्छा यह दिखती है कि जितनी देर तक हो सके, सिर्फ अंग्रेजीको ही शिक्षाका माध्यम रहने दिया जाए। हमारे विचारसे यह रवैया अदूरदर्शितापूर्ण, दकियानूसी एवं देशभक्तिके विरुद्ध है। इन प्रशिक्षण संस्थाओंमें दाखिल होने वाले अधिकांश लड़के १५ से १८ वर्षकी उमरके होंगे और उनकी प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षाका माध्यम उनके राज्यकी भाषा रहेगी तथा अँग्रेजीका उनका ज्ञान सामान्यतया काफी कम स्तरका होगा। इसलिए सिर्फ अँग्रेजीको माध्यमके रूपमें रखनेकी जिदमें कोई तुक नहीं है।

हमारा यह मत है कि इन संस्थाओंमें हिन्दीको शिक्षाके प्रमुख माध्यमके रूपमें तुरन्त स्वीकृत कर लेना चाहिए; अँग्रेजी देर तक कुछ वैकल्पिक माध्यमके रूपमें भले ही बनी रहे।

अखिल भारतीय एवं उच्चतर केन्द्रीय सेवाओंकी प्रतियोगिता परीक्षाओंमें भाषा-माध्यमके बारेमें भाषा-आयोग द्वारा २८ महीने पहले की गई मुख्य सिफारिशोंमें कहा गया था कि वर्तमान अँग्रेजी-माध्यमके साथ साथ, उचित अवधिका नोटिस देकर हिन्दीको भी वैकल्पिक माध्यमके रूपमें दाखिल कर लिया जाए। हम सोचते हैं कि जैसे ही आयोगने यह सिफारिश की थी, वैसे ही उसपर अमल हो जाना चाहिए था। चूँकि पिछले चार वर्षोंमें अनेकों विश्वविद्यालयोंमेंसे बहुत बड़ी संख्यामें विद्यार्थियोंने अपनी विश्वविद्यालयीन परीक्षाओंके माध्यमके रूपमें हिन्दीको अथवा अपनी राज्यकी भाषाको अपना कर स्नातकीय परीक्षाएँ पास कर ली हैं और चूँकि आज उनका अँग्रेजी-ज्ञान इतना सक्षम नहीं है कि वे इन प्रतियोगिता परीक्षाओंमें अँग्रेजी में उत्तर लिख सकें, इसलिए हमें इसका कोई न्यायसंगत कारण नहीं दिखाई देता कि आयोग की उपर्युक्त सिफारिशपर अमल करनेके कामको और आगे ढकेल दिया जाए। यदि उच्चतर प्रतियोगिता परीक्षाओंके माध्यमके रूपमें फिलहाल अँग्रेजीको रखा ही जाना हो, तो उस हालतमें यही न्यायकी बात होगी कि जो विद्यार्थी हिन्दीको वैकल्पिक माध्यमके रूपमें अपनाना चाहें, उन्हें वैसा करनेकी अनुमति दी जाए।

इन परीक्षाओंके बारेमें समितिके बहुसंख्यक सदस्योंका यह रुख है कि अँग्रेजीको परीक्षाओंके माध्यमके रूपमें चलने दिया जाए और हिन्दीको कुछ समय बाद वैकल्पिक माध्यमके रूपमें दाखिल किया जा सकता है। हमें समितिका यह रुख उन विद्यार्थियोंकी दृष्टिसे अनुचित एवं पक्षपातपूर्ण लगता है, जिन्होंने अपनी शिक्षाके माध्यमके रूपमें अँग्रेजीकी जगह हिन्दीको पसन्द किया है। हमारा प्रस्ताव था कि हिन्दीको वैकल्पिक माध्यमके रूपमें अँग्रेजीके साथ-साथ स्वीकार कर लिया जाए, परन्तु उसे समितिके बहुमत द्वारा स्वीकृति नहीं मिली। वे चाहते हैं कि वैकल्पिक माध्यमके रूपमें हिन्दीको दाखिल करनेकी बात आज टाल दी जाए और "कुछ अवधिके बाद" उसे लाया जाए। इससे लम्बे समयके लिए निष्क्रियताकी नीतिको बल मिल सकता है। हमारा निश्चित सुझाव है कि सितम्बरमें होनेवाली १९५९ की प्रतियोगिता परीक्षाओंमें अँग्रेजीके साथ साथ हिन्दीको भी माध्यमके रूपमें अनुमति मिले और १९५९ का मार्च खतम हो, उसके पहले ही वैसी घोषणा कर दी जाए।

हम मानते हैं कि जिनकी मातृ-भाषाएँ हिन्दीतर भाषाएँ हैं ऐसे विद्यार्थियोंको हिन्दी विद्यार्थियोंसे समस्तर करनेके लिए, इन परीक्षाओमे भाषाओके दो समान-स्तरीय अनिवार्य पर्चे रहें जिसमें एक हिन्दीका रहे तथा दूसरा परीक्षार्थी द्वारा चुनी गई किसी हिन्दीतर आधुनिक भारतीय भाषाका।

हिन्दी-मंत्रालयके लिए सुझाव

८—अन्तमें हम यह कहना चाहते हैं कि आयोग की, हमारी समितिकी तथा हमारी भी सिफारिशों-पर *बिना किसी अनावश्यक देरीके अमल किया जा सके और आवश्यक भाषिक स्थित्यंतरणको मजिल दर* मजिल पूरा करनेके प्रश्नपर ठीकसे विचार किया जा सके तथा उसके पीछे दत्तचित्त होकर भिडा जा सके। इसलिए यह जरुरी है कि अलगसे एक हिन्दी मत्रालय बनाया जाए जो अन्य मन्त्रालयोंके साथ मिलकर काम तो करेगा लेकिन सीधे किसीके अधीन नही रहेगा। यदि किसी कारणसे यह बात स्वीकार्य न पाई जाए, तो आवश्यक सुधारोंपर अमल करनेके लिए गृह-मन्त्रालय या शिक्षा-मन्त्रालयके मातहत एक स्वय-शासित बोर्डकी *नियुक्ति की जाए, जिससे कि अँग्रेजीसे हिन्दीमें सक्रमणका पूरा काम १९६५ तक या १९६५ के बादके एक दो* सालोमें पूरा कर लिया जा सके।

राष्ट्रपतिका आदेश सन् १९६०

ससदीय समितिकी इस रिपोर्टपर ससदके दोनो सभागृहोमे चर्चा होनेके बाद, राष्ट्रपतिने २७ अप्रैल *१९६० को एक आदेश प्रसारित किया जिसमे कहा गया है कि—*

"सविधानकी धारा ३४४ खड (४) में की गई व्यवस्थाओके अनुसार प्रथम राजभाषा आयोगकी सिफारिशोकी जाँच-पडताल करनेके लिए तथा राष्ट्रपतिके सम्मुख उनपर अपना मन्तव्य सूचित करनेके लिए लोकसभाके २० तथा राज्यसभाके १० सदस्योकी एक समिति बनाई गई थी। समितिने अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपतिके पास ८ फरवरी १९५९ को प्रस्तुत कर दी। समितिके सामान्य रुखको निर्देशित करने-वाले उस रिपोर्टके महत्वपूर्ण मुद्दे निम्नलिखित हैं—

(अ) सविधानमे राजभाषाके लिए एक समाकलित योजना सन्निहित है। (राजभाषाके) प्रश्नके बारेमे उस योजनाका रुख लचीला है तथा उसके ढाँचेमें आवश्यक उचित समजनोकी गुंजाइश है।

(आ) सरकारी कामकाजके माध्यमके रूपमें राज्योमे विभिन्न क्षेत्रीय भाषाएँ तेजीसे अँग्रेजीका स्थान ले रही है। यह स्वाभाविक ही है कि क्षेत्रीय भाषाएँ उस स्थानको प्राप्त करे जिसपर कि उनका अधिकार है। इस तरह सघ-राज्यके कामकाजके लिए एक भारतीय भाषाका उपयोग व्यावहारिक आव-श्यकता हो गई है। लेकिन उस परिवर्तनके लिए किसी लक्ष्मण-रेखाकी आवश्यकता नही है। यह ऐसा स्वाभाविक सक्रमण होना चाहिए जो कम-से-कम असुविधा उत्पन्न करते हुए फैली हुई कालावधिमें सरलता पूर्वक सम्पन्न हो।

(इ) १९६५ तक अँग्रेजी प्रमुख राजभाषा रहे और हिन्दी सहायक राजभाषा। १९६५ के बाद जबकि हिन्दी केन्द्रकी मुख्य राजभाषा बन जाती है तो अँग्रेजी सहायक राजभाषाके रूपमें चलती रहे।

माध्यमके रूपमें कुछ समय तक सिर्फ अँग्रेजी ही चलती रहे। वे डरते-डरते इतना भर कहते हैं कि "पूरी पढ़ाईके लिए या उसके कुछ हिस्सेके लिए हिन्दीको माध्यमके रूपमें दाखिल करानेकी दृष्टिसे फिर भी योग्य कदम उठाए जाएँ: "हमने सुझाव रखा था कि 'कदम' के आगे 'तुरन्त' शब्द जोड़ दिया जाए, लेकिन समितिने उसे मान्यता नहीं दी और 'तुरन्त' की जगहपर 'योग्य' शब्द रखा गया। इसपरसे दिखाई देता है कि समितिके सामने इस सिफारिशकी कितनी क्या कीमत है? समितिकी मुख्य इच्छा यह दिखती है कि जितनी देर तक हो सके, सिर्फ अंग्रेजीको ही शिक्षाका माध्यम रहने दिया जाए। हमारे विचारसे यह रवैया अदूरदर्शितापूर्ण, दकियानूसी एवं देशभक्तिके विरुद्ध है। इन प्रशिक्षण संस्थाओंमें दाखिल होने वाले अधिकांश लड़के १५ से १८ वर्षकी उमरके होंगे और उनकी प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षाका माध्यम उनके राज्यकी भाषा रहेगी तथा अँग्रेजीका उनका ज्ञान सामान्यतया काफी कम स्तरका होगा। इसलिए सिर्फ अँग्रेजीको माध्यमके रूपमें रखनेकी जिदमें कोई तुक नहीं है।

हमारा यह मत है कि इन संस्थाओंमें हिन्दीको शिक्षाके प्रमुख माध्यमके रूपमें तुरन्त स्वीकृत कर लेना चाहिए; अँग्रेजी देर तक कुछ वैकल्पिक माध्यमके रूपमें भले ही बनी रहे।

अखिल भारतीय एवं उच्चतर केन्द्रीय सेवाओंकी प्रतियोगिता परीक्षाओंमें भाषा-माध्यमके बारेमें भाषा-आयोग द्वारा २८ महीने पहले की गई मुख्य सिफारिशोंमें कहा गया था कि वर्तमान अँग्रेजी-माध्यमके साथ साथ, उचित अवधिका नोटिस देकर हिन्दीको भी वैकल्पिक माध्यमके रूपमें दाखिल कर लिया जाए। हम सोचते हैं कि जैसे ही आयोगने यह सिफारिश की थी, वैसे ही उसपर अमल हो जाना चाहिए था। चूँकि पिछले चार वर्षोंमें अनेकों विश्वविद्यालयोंमेंसे बहुत बड़ी संख्यामें विद्यार्थियोंने अपनी विश्वविद्यालयीन परीक्षाओंके माध्यमके रूपमें हिन्दीको अथवा अपनी राज्यकी भाषाको अपना कर स्नातकीय परीक्षाएँ पास कर ली हैं और चूँकि आज उनका अँग्रेजी-ज्ञान इतना सक्षम नहीं है कि वे इन प्रतियोगिता परीक्षाओंमें अँग्रेजी में उत्तर लिख सकें, इसलिए हमें इसका कोई न्यायसंगत कारण नहीं दिखाई देता कि आयोग की उपर्युक्त सिफारिशपर अमल करनेके कामको और आगे ढकेल दिया जाए। यदि उच्चतर प्रतियोगिता परीक्षाओंके माध्यमके रूपमें फिलहाल अँग्रेजीको रखा ही जाना हो, तो उस हालतमें यही न्यायकी बात होगी कि जो विद्यार्थी हिन्दीको वैकल्पिक माध्यमके रूपमें अपनाना चाहें, उन्हें वैसा करनेकी अनुमति दी जाए।

इन परीक्षाओंके बारेमें समितिके बहुसंख्यक सदस्योंका यह रुख है कि अँग्रेजीको परीक्षाओंके माध्यमके रूपमें चलने दिया जाए और हिन्दीको कुछ समय बाद वैकल्पिक माध्यमके रूपमें दाखिल किया जा सकता है। हमें समितिका यह रुख उन विद्यार्थियोंकी दृष्टिसे अनुचित एवं पक्षपातपूर्ण लगता है, जिन्होंने अपनी शिक्षाके माध्यमके रूपमें अँग्रेजीकी जगह हिन्दीको पसन्द किया है। हमारा प्रस्ताव था कि हिन्दीको वैकल्पिक माध्यमके रूपमें अँग्रेजीके साथ-साथ स्वीकार कर लिया जाए, परन्तु उसे समितिके बहुमत द्वारा स्वीकृति नहीं मिली। वे चाहते हैं कि वैकल्पिक माध्यमके रूपमें हिन्दीको दाखिल करनेकी बात आज टाल दी जाए और "कुछ अवधिके बाद" उसे लाया जाए। इससे लम्बे समयके लिए निष्क्रियताकी नीतिको बल मिल सकता है। हमारा निश्चित सुझाव है कि सितम्बरमें होनेवाली १९५९ की प्रतियोगिता परीक्षाओंमें अँग्रेजीके साथ साथ हिन्दीको भी माध्यमके रूपमें अनुमति मिले और १९५९ का मार्च खतम हो, उसके पहले ही वैसी घोषणा कर दी जाए।

चाहिए। अर्थात् मूल शब्द वे ही रहे जो फिलहाल अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावलीमें प्रचलित हैं, यद्यपि उनसे निकले हुए शब्दोका भारतीयकरण जितना जरूरी हो उतना किया जा सकता है।

(आ) शिक्षा-मन्त्रालय शब्दावली बनानेके काममे समन्वय स्थापित करनेकी व्यवस्थाको लेकर प्रस्ताव तैयार करनेका काम कर सकता है ।

(इ) जैसा कि समितिने सुझाव दिया है, शिक्षा मन्त्रालय वैज्ञानिक एव औद्योगिक शब्दावलीको विकसित करनेकी दृष्टिसे एक स्थायी आयोगका गठन कर सकता है।

प्रशासकीय नियम-पुस्तकों तथा अन्य क्रियाविधिक साहित्योंका अनुवाद

४—नियम-पुस्तकों तथा अन्य क्रिया-विधिक साहित्योंके अनुवादमें प्रयुक्त की जानेवाली भाषामें एक हदतक एकरूपता लानेकी आवश्यकता महसूस करते हुए समितिने आयोगके इस सुझावको मान लिया है कि यह सब काम एक एजेन्सीके जिम्मे कर दिया जाए, तो अच्छा रहे। शिक्षा-मन्त्रालय साविधिक नियमो, विनियमो तथा आदेशोको छोडकर अन्य सब नियम-पुस्तको एव क्रियाविधिक साहित्योका अनुवाद-कार्य करवा सकती है । साविधिक नियमो, विनियमो एव आदेशोके अनुवादका काम साविधियोके अनुवाद कार्यसे घनिष्टता-पूर्वक जुडा हुआ है और विधिमत्रालय उसका जिम्मा ले सकता है। यह कोशिश की जानी चाहिए कि इन सब अनुवादोमें प्रयुक्त होने वाली सब भारतीय भाषाओकी शब्दावलीमे अधिक-से-अधिक एकरूपता रहे।

प्रशासकीय कर्मचारियोंको हिन्दी माध्यममें प्रशिक्षित करना

५—(अ) समिति द्वारा अभिव्यक्त मतव्यानुसार ४५ वर्षसे कम उम्रके सरकारी कर्मचारियोके लिए नौकरी करते हुए हिन्दीकी शिक्षाको अनिवार्य बनाया जा सकता है। पर तीसरी श्रेणीके नीचेके, औद्योगिक प्रतिष्ठानोके तथा कामके अनुसार वेतन पानेवाले (Work-Charged) कर्मचारियोके लिए यह जरूरी नही है। इस योजनामे निश्चित तारीख तक निर्धारित स्तर तक ज्ञान प्राप्त करनेमे असफल होनेपर किसी प्रकारका दण्ड नही दिया जाना चाहिए। हिन्दी प्रशिक्षणकी सुविधाएँ प्रशिक्षणार्थियोको मुफ्त प्राप्त होनी चाहिए ।

(आ) केन्द्रीय सरकार द्वारा रखे गए टकमुद्रको तथा आशुलिपिकोको हिन्दी टकमुद्रक तथा आशुलेखनमें प्रशिक्षित करनेकी योग्य व्यवस्थाएँ गृह-मन्त्रालय द्वारा की जानी चाहिए ।

(इ) शिक्षा-मन्त्रालय हिन्दी टाइप यत्रोका कुजी पटल तैयार करनेके कामको तुरन्त हाथमें ले ले।

हिन्दी प्रचार

६–(अ) समितिने आयोगकी इस सिफारिशको मान लिया है कि इस कामका जिम्मा अब सरकारी स्तरपर उठा लिया जाए। जहाँ सक्षम स्वय-प्रेरित सस्थाएँ कार्यरत हैं, वहाँ उन्हे आर्थिक एव अन्य प्रकारसे मदद दी जा सकती है और जहाँ ऐसे अभिकरण नही है, वहाँ सरकार स्वय ऐसे जरूरी सगठन कायम करे।

(ई) संघ-सरकारके किसी कामके लिए अँग्रेजीपर फिलहाल कोई रोक नहीं लगानी चाहिए और संविधानकी धारा ३४३ खंड (३) में ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि १९६५ के बाद भी संसद द्वारा कानूनसे निर्धारित बातोंके लिए जब तक आवश्यक समझा जाए तबतक अँग्रेजीका उपयोग होता रहे।

(उ) धारा ३५१ की इस व्यवस्थाका बहुत महत्व है कि हिन्दीको इस तरहसे विकसित किया जाए जिससे कि वह भारतीय संस्कृतिके सब तत्वोंकी अभिव्यक्तिका माध्यम बन सके। उसमें सरल एवं प्रासादिक शब्द-योजनाको हर तरहसे प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

अप्रैल १९५९ में संसदके दोनों सदनोंके सामने इस रिपोर्टकी प्रतिलिपियाँ रखी गई और लोक-सभामें उसपर २ सितम्बरसे ४ सितम्बर ५९ तक तथा राज्यसभामें ८ तथा ९ सितम्बर ५९ को चर्चाएँ हुई। लोकसभाकी चर्चामें प्रधान-मन्त्रीने ४ सितम्बर १९५९ के दिन एक वक्तृत्व दिया जिसमें राजभाषाके प्रश्नपर सरकारके रुखको मोटे तौरपर इंगित किया गया था।

२—राष्ट्रपतिको धारा ३४४ के खण्ड ६ के अनुसार जो अधिकार प्रदान किए गए हैं उनके अनुसार राष्ट्रपतिने समितिकी रिपोर्टपर विचार किया है और राजभाषा आयोगकी सिफा-रिशोंपर समिति द्वारा प्रकट किए गए मन्तव्योंके सिलसिलेमें राष्ट्रपति निम्नलिखित निर्देश प्रसारित करते हैं—

पारिभाषिक शब्दावली

३—आयोगकी जिन मुख्य सिफारिशोंको समितिने मान लिया है वे हैं—

(१) पारिभाषिक शब्दावली बनाते समय मुख्य लक्ष्य स्पष्टता, सही अर्थ, और सरलताका रहना चाहिए। (२) योग्य मामलोंमें अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावलीको जैसे-के-तैसे अथवा रूपान्तरित कर स्वीकृत किया जा सकता है,। (३) सब भारतीय भाषाओंके लिए शब्दावलीको विकसित करते समय यह ध्यान रखा जाए कि उनमें अधिक-से-अधिक एकरूपता आए। (४) केन्द्र और राज्योंमें चलनेवाले हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओंकी शब्दावली विकसित करनेके कामोंका समन्वय करनेके लिए उचित व्यवस्थाएँ की जानी चाहिए। समितिने आगे कल्पना की है कि विज्ञान एवं औद्योगिकी (टेकनीक) के क्षेत्रमें बने वहाँ तक सब भारतीय भाषाओंमें एकरूपता रहे और उनकी शब्दावली अँग्रेजी या अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावलीसे घनिष्ट रूपसे मिलनेवाली हो। समितिने सुझाव दिया है कि इस क्षेत्रमें विभिन्न अभिकरणों द्वारा किए जानेवाले कामका समन्वय एवं अधीक्षण करनेके लिए और समस्त भारतीय भाषाओंके उपयोगार्थ अधिकृत शब्द-संग्रहोंके प्रकाशनके लिए एक ऐसे स्थायी आयोगका गठन किया जाए जिसमें मुख्य रूपसे वैज्ञानिक एवं औद्योगिकीविद् रहें।

'शिक्षा-मन्त्रालय निम्न कार्यवाही कर सकता है—

(अ) अभी तक जो काम हुआ है उसका पुनर्विलोकन करनेके लिए और समिति द्वारा मान्य सामान्य सिद्धान्तोंके अनुसार शब्दावली बनानेके लिए शिक्षा-मन्त्रालय कार्यवाही कर सकता है। विज्ञान एवं औद्योगिकी के क्षेत्रमें अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोगकी शब्दावली को कमसे-कम हेरफेरके साथ मान्य करना

शिक्षाके माध्यमके रूपमें अंग्रेजीको चालू रखा जा सकता है, लेकिन साथ ही पूर्ण या आंशिक रूपसे हिन्दीको भी माध्यमके रूपमें दाखिल करनेकी दृष्टिसे उचित कदम उठाए जाने चाहिए।

प्रतिरक्षा मंत्रालय हिन्दीमें पढ़ाईकी किताबों इ के प्रकाशन जैसी उचित तैयारीके कदमोंको उठा ताकि जहाँ व्यवहार्य एवं सम्भव हो वहाँ हिन्दीको माध्यमके रूपमें लानेमें सहूलियत हो।

(आ) समितिने सुझाव दिया है कि प्रशिक्षण सिब्बदियोंमें प्रवेश के लिए ली जानेवाली परीक्षाओं का माध्यम अंग्रेजी और हिन्दी रहे, परीक्षार्थी उनमेंसे एकको कुछ पर्चोंके लिए अथवा सब पर्चोंके लिए इच्छानुसार पसन्द कर सकते है। समितिका सुझाव है कि एक विशेषज्ञ समितिकी नियुक्ति की जाए जो बिना कोटा पद्धतिको दाखिल किए क्षेत्रीय भाषाओंके माध्यमकी व्यावहारिकताकी जाँच-पड़ताल करे।

प्रतिरक्षा मंत्रालय प्रवेश परीक्षाओंमें वैकल्पिक माध्यमके रूपमें हिन्दीको दाखिल करनेकी दृष्टिसे आवश्यक उपाय कर सकता है तथा बिना कोटा पद्धतिको लाए क्षेत्रीय भाषाओंके माध्यमपर विचार करनेके लिए विशेषज्ञ कमेटी बनानेकी दृष्टिसे योग्य कदम उठा सकता है।

अखिल भारतीय सेवाओं तथा उच्चतर केन्द्रीय सेवाओंमें भर्ती

९. (अ) **परीक्षाका माध्यम**: समितिका मत है कि

(१) अंग्रेजी परीक्षाका माध्यम बनी रहे और कुछ समय बाद वैकल्पिक माध्यमके रूपमें हिन्दीको लाया जाए; उसके बाद जबतक आवश्यक हो तब तक हिन्दी और अंग्रेजी दोनो माध्यम रहे, परीक्षार्थी जिसे चाहे ले सकें।

(२) बिना कोटा पद्धतिको लाए क्षेत्रीय भाषाओंको माध्यमके रूपमें दाखिल करनेकी बात की व्यावहारिकता की जाँच-पड़तालके लिए एक विशेषज्ञ समिति बनाई जाए।

संघ लोक-सेवा आयोगके परामर्शसे गृह-मंत्रालय कुछ समय बाद हिन्दीको वैकल्पिक माध्यमके रूपमें दाखिल करनेकी दृष्टिसे आवश्यक कदम उठा सकता है। विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओंको भी वैकल्पिक माध्यमके रूपमें दाखिल करनेसे सम्भवत. गम्भीर मुश्किलें उठ खड़ी होंगी, इसलिए क्षेत्रीय भाषाओंको वैकल्पिक माध्यमके रूपमें दाखिल करनेकी व्यावहारिकता पर सोचने के लिए विशेषज्ञ समितिका गठन आवश्यक नहीं है।

(आ) **भाषा सम्बन्धी प्रश्नपत्र** —समितिका मत है कि योग्य सूचना के बाद, दो समान स्तरके अनिवार्य प्रश्नपत्र होने चाहिए—एक हिन्दीमें और दूसरा हिन्दीको छोड़कर परीक्षार्थी द्वारा पसन्द अन्य आधुनिक भारतीय भाषामें।

फिलहाल, सिर्फ हिन्दी भाषाका एक वैकल्पिक प्रश्नपत्र ही दाखिल किया जाए। प्रतियोगिताके परिणाम स्वरूप चुने जानेवाले उम्मीदवारोंमेंसे जो इस वैकल्पिक हिन्दी प्रश्नपत्रमें उत्तीर्ण हो जाते हैं, उन्हें भर्तीके बाद ली जानेवाली वैभागिक हिन्दी-जाँच-परीक्षामें बैठने तथा उसमें उत्तीर्ण होनेसे मुक्त किया जा सकता है।

अंक

(१०) जैसा कि समितिने सुझाव दिया है, केन्द्रीय मंत्रालयोंके हिन्दी प्रकाशनोंमें अन्तर्राष्ट्रीय

हिन्दी प्रचारके लिए जो व्यवस्थाएँ अभी हैं उनके काम-काजका शिक्षा-मन्त्रालय पुनर्विलोकन करे और समिति द्वारा निर्देशित ढंगपर अगली कार्यवाही करे।

(आ) शिक्षा-मन्त्रालय एवं वैज्ञानिक अनुसंधान तथा सांस्कृतिक कार्योंका मन्त्रालय दीनों मिलाकर समितिके सुझावानुसार, भारतीय भाषा-विज्ञान, भाषातत्व एवं साहित्यके बारेमें अध्ययन एवं अनुसंधानको प्रोत्साहित करने वाले कदम उठाएँ और विभिन्न भारतीय भाषाओंको नजदीक लानेकी दृष्टिसे तथा धारा ३५१ के निर्देशनानुसार हिन्दीको विकसित करनेकी दृष्टिसे आवश्यक प्रस्तावोंको तैयार करें।

केन्द्रीय सरकारके विभागोंके स्थानिक आफिसोंमें भर्ती

७—समितिका मत है कि केन्द्रीय सरकारके विभागोंके स्थानिक आफिसोंको अपने अन्तर्गत कामोंमें हिन्दीका और सम्बन्धित क्षेत्रोंकी जनताके साथ व्यवहार करते समय सम्बन्धित क्षेत्रोंकी भाषाओंका उपयोग करना चाहिए।

अपने स्थानिक कार्यालयमें अँग्रेजीके अलावा हिन्दीका उत्तरोत्तर अधिक उपयोग करने सम्बन्धी योजना बनाते समय केन्द्रीय सरकारके विभागोंको इस बातकी आवश्यकताका भी ध्यान रखना चाहिए कि स्थानिक जनताके लिए उस क्षेत्रकी भाषामें अधिक-से-अधिक व्यवहार्य तादादमें पत्र एवं वैभागिक साहित्य उपलब्ध करनेवानेकी सुविधा की जाए।

(आ) समितिका मत है कि केन्द्र सरकारकी प्रशासकीय एजेन्सियों एवं विभागोंके कर्मचारी-ढाँचेका पुनर्विलोकन किया जाए और क्षेत्रीय आधारपर उसका विकेन्द्रीकरण कर दिया जाए। इस दृष्टिसे उन भर्तीके तरीकोंको एवं योग्यताओंको उचित रूपसे परिशोधित भी करना पड़ सकता है।

जिनके कर्मचारियोंकी बदली सामान्य रूपसे सम्बन्धित क्षेत्रके बाहर नहीं की जा सकती, ऐसी स्थानिक कार्यालयोंकी श्रेणियोंके स्थानोंके लिए अधिवास सम्बन्धी योग्यताओंको बिना लागू किए, समितिके इस सुझावको सिद्धान्तके रूपसे मान लिया जा सकता है।

(इ) समितिने आयोगकी इस सिफारिशको मान लिया है कि अपनी नौकरीमें आनेवाले लोगोंके लिए एक स्तर तक हिन्दी-भाषा-ज्ञानकी योग्यताको निर्धारित करना संघ सरकारके लिए वाजिब होगा, बशर्ते कि उसकी काफी सूचना दी जाए और निर्धारित भाषिक योग्यताका स्तर साधारण हो उसमें जो कमी रह जाए वह नौकरीमें दाखिल हो जानेके बाद प्रशिक्षण द्वारा पूरी कर ली जाए।

इस सिफारिशका अमल केन्द्रीय सरकारके विभागोंके सिर्फ हिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें स्थित कार्यालयोंकी भर्तीके लिए ही किया जाए; अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंके स्थानीय कार्यालयोंके लिए नहीं।

(अ), (आ), और (इ) में निहित निर्देश भारतीय लेखा परीक्षण तथा हिसाब विभागके मातहत कार्यालयोंपर लागू नहीं होंगे।

प्रशिक्षण सिब्बंदियाँ

८ (अ) समितिने सुझाव दिया है कि राष्ट्रीय सुरक्षा अकादमी जैसी प्रशिक्षणात्मक सिब्बंदियोंमें

कानूनके क्षेत्रमें स्थित्यन्तरणके लिए तैयारीकी कार्यवाहियाँ

१३. प्रामाणिक विधि कोषके निर्माण, केन्द्रीय एव राज्यीय कानूनोके साविधिक-ग्रंथके हिन्दीमें पुनर्विधिकरण, विधि-शब्दावली गठन की कार्य-योजना, तथा बीचके सक्रमण कालमें (जिसमें कि साविधिक-ग्रथ तथा निर्णय विधि अशत. हिन्दी तथा अँग्रेजीमें रहेगे) तैयारीके अन्य कामोको करनेके बारेमें आयोगने जो सिफारिशें की थी उनसे समिति सहमत हो गई है। समितिने साविधिक-ग्रन्थोके अनुवाद तथा विधि शब्दावली व शब्द-सग्रहोके निर्माणके पूरे कार्यक्रमकी उचित रूपसे योजना बनाने एवं उसे सम्पूरित करनेके लिए भारतकी विभिन्न भाषाओका प्रतिनिधित्व करनेवाले विधि विशेषज्ञोके एक स्थायी आयोग या तत्सम उच्चस्तरीय निकायके गठनका भी सुझाव दिया है। समितिने यह भी मत दिया है कि केन्द्रीय प्राधिकरणोके परामर्शसे आवश्यक कदम उठानेकी सलाह राज्य सरकारोको दी जाए।

सब भारतीय भाषाओमें अधिकसे अधिक प्रयुक्त हो सकनेकी क्षमता रखनेवाली प्रामाणिक विधि शब्दावलीके निर्माण—एव हिन्दीमे सविधियोके अनुवादके पूरे कामकी उचित ढगसे योजना बनाने एवं उसे सपादित करनेके लिये, समितिके तत्सम्बन्धी सुझावको ध्यानमे रखकर विधि-मत्रालय कार्यवाही कर सकता है।

हिन्दीके उत्तरोत्तर उपयोगके लिए कार्यक्रम अथवा योजना

(१४) समितिने सुझाया है कि सघ सरकार सघकी राजभाषा के रूपमे हिन्दीके उत्तरोत्तर उपयोगकी दृष्टिसे एक योजना बनाए और उसपर अमल करे तथा सघके किसी भी सरकारी काम के लिए अग्रेजी भाषाके उपयोगपर कोई रोक फिलहाल नही लगाई जाए।

इस सुझावके अनुसार गृह-मत्रालय एक योजना या कार्यक्रम को तैयार करने तथा उसपर अमल करनेके लिए आवश्यक कार्यवाही कर सकता है। इस योजना या कार्यक्रम का सम्बन्ध ऐसी तैयारीकी कार्यवाहियोंसे रहे जिनमे कि सघीय प्रशासनमें हिन्दीके उत्तरोत्तर प्रयोगमें सहूलियत हो तथा सविधानकी धारा ३४३ खण्ड २ में की गई व्यवस्थाके अनुसार सघके विभिन्न कामोंके लिए अँग्रेजीके साथ-साथ हिन्दीके उपयोगको प्रोत्साहन मिले। मुख्य रूपमे इन तैयारी के उपायोकी क्षमता पर बात निर्भर रहेगी कि अँग्रेजीके साथ साथ हिन्दीका उपयोग कितने अधिक पैमानेपर किया जा सकता है। अँग्रेजीके साथ-साथ हिन्दीको प्रयुक्त करनेकी योजना पर अनुभवोंके प्रकाशमें समय-समय पर पुनर्विचार एव समजन करना होगा।

केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालयकी विविध योजनाएं तथा कार्यक्रम

(१) वैज्ञानिक, औद्योगिकी तथा प्रशासकीय शब्दावलीका निर्माण

सन् १९४७ में भारत के स्वतन्त्र होनेके पश्चात् जब देशमें नये साविधानिक परिवर्तन हुए, तभी पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माण की दिशामें अखिल भारतीय स्तर पर देशमें प्रथम प्रयास प्रारम्भ हुआ। इसका श्रेय राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसादको है, जो उस समय सविधान सभाके अध्यक्ष थे। उन्होंने भाषा-

अंकोंके साथ-साथ देवनागरी अंकोंके उपयोगके बारेमें, जिस जनताको सम्बोधित किया जा रहा है उसके अनुरूप तथा प्रकाशन-विषयके अनुरूप एक मूलभूत नीति रहनी चाहिए। वैज्ञानिक, तकनीकी एवं सांख्यिकीय प्रकाशनोंमें तथा केन्द्रीय सरकारके बजट सम्बन्धी साहित्यमें सब जगह अन्तर्राष्ट्रीय अंकोंका उपयोग किया जाए।

अधिनियमों, विधेयकों आदिकी भाषा

११. (अ) समितिका मत है कि संसदीय विधि-निर्माणका काम अँग्रेजीमें चालू रखा जा सकता है, लेकिन हिन्दीमें प्रमाणित अनुवादकी व्यवस्था की जानी चाहिए।

संसदीय विधि-निर्माणका काम अँग्रेजीमें चालू रखा जा सकता है, विधि-मंत्रालय उसके प्रमाणित हिन्दी अनुवादकी व्यवस्थाके लिए आवश्यक कानून बनानेके कामको यथा समय चालना दे सकता है। संसदीय कानूनोंका क्षेत्रीय भाषाओंमें अनुवाद प्रस्तुत करनेकी भी व्यवस्था विधि-मंत्रालय कर सकता है।

(आ) समितिने मत प्रकट किया है कि जहाँ राज्य विधान सभामें प्रस्तुत विधेयकोंके पाठ या उसके द्वारा स्वीकृत अधिनियम हिन्दीके अलावा अन्य भाषामें हों, वहाँ संविधानकी धारा ३४८ खण्ड ३ की व्यवस्था-नुसार उनके अंग्रेजी अनुवादके अलावा हिन्दी अनुवादको प्रकाशित किया जा सकता है।

राज्योंके विधेयकों, अधिनियमों तथा अन्य सांविधिक दस्तावेजोंका हिन्दी अनुवाद राज्यकी सरकारी भाषामें उनके मूल-पाठके साथ-साथ, प्रकाशित करनेके लिए यथा समय कानून बनाया जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयोंकी भाषा

(१२) राजभाषा आयोगने सिफारिश की थी कि जहाँ तक उच्चतम न्यायालयकी भाषाका सवाल है, जब भी स्थित्यन्तरका समय आए, अन्ततः हिन्दीको ही उच्चतम न्यायालयकी भाषा रहना चाहिए। समिति ने इस सिफारिशको मान लिया है।

उच्च न्यायालयकी भाषाके सिलसिलेमें, आयोगने क्षेत्रीय एवं हिन्दी भाषाको लेकर सब तरहसे विचार किया और सिफारिश की कि जब स्थित्यन्तरणका समय आ जाए तब सब क्षेत्रोंमें उच्च न्यायालयोंके निर्णयों, डिकरियों तथा आदेशोंकी भाषा हिन्दी रहनी चाहिए। लेकिन समितिने यह मत प्रकट किया है कि उच्च न्यायालयोंके निर्णयों, डिकरियों तथा आदेशोंके लिए राष्ट्रपतिकी पूर्व सम्मति से हिन्दी तथा राज्योंकी राजभाषाओंके वैकल्पिक उपयोगार्थ आवश्यक कानून बनाकर व्यवस्था की जा सकती है।

उच्चतम न्यायालयके अन्ततः हिन्दीमें काम करनेसे सम्बन्धित समितिकी राय सिद्धान्ततया मान ली जा सकती है और जब स्थित्यन्तरणका समय आ जाएगा तभी उस दृष्टिसे उचित कार्यवाही करनी पड़ेगी। उच्च न्यायालयोंकी भाषाके सम्बन्धमें आयोगकी सिफारिशको मंदित करते हुए समितिने जो सुझाव दिया है, उसके अनुसार निर्णयों, डिकरियों तथा आदेशोंके हेतु राष्ट्रपतिकी पूर्व सम्मतिसे हिन्दी एवं राज्योंकी अन्य राजभाषाओंके वैकल्पिक उपयोगके लिए विधि-मंत्रालय आवश्यक कानून बनानेका काम यथासमय शुरू कर सकता है।

हुआ कि विश्वविद्यालयोमे शिक्षाके माध्यमके प्रश्नपर विचार करनेके लिए भारतके विश्वविद्यालयोंके उप-कुलपतियो और विशेषज्ञोकी एक समिति नियुक्त की जाए।

इस समितिने अन्य मामलोके साथ निर्देश-मण्डलकी रिपोर्ट पर विचार किया और इसके अलावा पाठ्य-पुस्तको तथा वैज्ञानिक शब्दकोष बनाने और विश्वविद्यालयोमे शिक्षा एव परीक्षाओंके माध्यमके विषयमें की गई सिफारिशोको अपनानेके लिए अन्य आवश्यक बातोपर भी विचार किया। इस समितिने यह सिफारिश की कि राजभाषामे प्रामाणिक साहित्यके निर्माणकी व्यवस्था करने और दूसरी भारतीय भाषाओमे इसी प्रकार के साहित्य निर्माणमे सहायता देनेके लिए तत्काल कार्यवाही की जाए।

विश्वविद्यालय आयोग

सन् १९४८ में भारत सरकारने डा राधाकृष्णन्की अध्यक्षतामे विश्वविद्यालय आयोगकी स्थापना की। इस आयोगने इस समस्यापर गहराईमे सोच-विचार किया और कुछ सिफारिशें की। इन सिफारिशोपर केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मण्डलकी (Contral Advisory Board of Education) अप्रैल १९५० की विशेष बैठकमें अन्य सिफारिशोके साथ विचार किया गया और इन्हे स्वीकार कर लिया गया।

वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावली मण्डलका निर्माण

शिक्षा-मत्रालयने केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मण्डलकी इन सिफारिशोपर सावधानीसे विचार किया और उसने यह महसूस किया कि स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद इस प्रश्नका महत्त्व बहुत अधिक बढ गया है और यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि अखिल भारतीय स्तरपर एक ऐसे मण्डलकी स्थापना की जाए जो सारे देशके लिए एक सी वैज्ञानिक शब्दावलीका निर्माण करे और खासतौरसे वैज्ञानिक और औद्योगिक विषयोकी पाठ्य-पुस्तके तैयार करे। तदनुसार १९५० मे एक एक वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावली मण्डल (Board of Scientific Technical Terminology) की स्थापना की गई जिसमे देशके प्रसिद्ध वैज्ञानिक, भाषा-शास्त्री एव शिक्षा-शास्त्री सम्मिलित थे और केद्रीय शिक्षा सलाहकार उसके अध्यक्ष थे।

वैज्ञानिक शब्दावली मण्डलकी पहली बैठक ११ दिसम्बर १९५० को हुई। तत्कालीन शिक्षा-मत्री स्वर्गीय मौलाना आजाद बैठकके अध्यक्ष थे। इस बैठकके निर्णयानुसार वैज्ञानिक शब्दावलीके काममें मण्डलको सहायता पहुँचानेके लिए इन नौ विषयोकी अलग अलग नौ विशेषज्ञोकी उपसमितियोका सगठन किया गया।

(१) गणित
(२) भौतिकी
(३) रसायन
(४) चिकित्सा-विज्ञान
(५) प्राणि-विज्ञान

विशेषज्ञोंका एक सम्मेलन वुलाया, जिसमें इस बात पर विचार किया गया कि जहाँ तक सम्भव हो संविधानके लिए एक व्यापक पारिभाषिक शब्दावली प्रस्तुत की जाए, जो सभी भारतीय भाषाओंमें समान रूपसे प्रयुक्त हो सके और जिसका उपयोग हम अन्य सरकारी, कानूनी, अदालती और शासन-सम्बन्धी कामोंमें कर सकें। इस सम्मेलनने संविधानमें प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दोंका एक पारिभाषिक शब्दावली संग्रह तैयार किया, जिसे अखिल भारतीय स्तर पर निर्मित प्रथम प्रामाणिक कोष कह सकते हैं।

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मण्डलके प्रयास

यों तो पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणमें १९ वीं शताब्दीसे ही हमारे राष्ट्रीय नेताओं और विचार शील विद्वानोंने विचार करना शुरू कर दिया था और हिन्दी क्षेत्र तथा बंगला, मराठी आदि अन्य प्रादेशिक भाषाओंमें भी पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणका कार्य अनेक व्यक्तियों, और नागरी-प्रचारिणी-सभा जैसी प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा होता रहा। किन्तु, अधिकृत रूपसे शासनके क्षेत्रमें सन् १९३८ में ही जबकि प्रान्तोंमें काँग्रेसकी सरकारें अधिष्ठित हुई तब हिन्दी तथा अन्य देशी भाषाओंको समृद्ध करनेके लिए ज्ञान-विज्ञानकी विविध शाखाओंमें शब्दावली-निर्माणके प्रयत्न शुरू किए गए। कुछ समय पश्चात् उन्हीं प्रयासोंके प्रेरणा स्वरूप सन् १९४० में वैज्ञानिक शब्दावलीके प्रश्नपर भारत सरकारने भी विचार करना शुरू कर दिया। १९४० में शिक्षा सलाहकार मण्डलकी पांचवीं बैठकमें अखिल भारतीय आधारपर एक-सी वैज्ञानिक शब्दावली अपनानेकी समस्या पर व्यापक रूपसे चर्चा की गई थी और इसकी व्यौरेवार परीक्षा करनेके लिए स्वर्गीय सर अकबर हैदरीकी अध्यक्षतामें एक समिति भी नियुक्त की गई थी। जनवरी १९४१ में केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार मण्डलने अपनी छठी बैठकमें सर अकबर हैदरी समितिकी इस सिफारिश को मंजूर कर लिया। भारतमें तथा दूसरे देशोंमें होनेवाले वैज्ञानिक विकासमें आपसमें आवश्यक सम्पर्क बनाए रखनेके लिए भारतमें ऐसी वैज्ञानिक शब्दावली अपनाई जाए जो अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें आमतौरपर स्वीकार किए गए शब्दोंको यथा सम्भव अपना ले।

केन्द्रीय निर्देश मण्डल

लेकिन विभिन्न राज्योंमें जनताकी राय जाननेके लिए इसपर की जानेवाली कार्यवाही स्थगित कर दी गई। जनवरी १९४२ में प्रान्तोंके विचार मालूम हो गए और चूँकि ये मण्डलकी रायसे मिलते थे, इसलिए एक ऐसे केन्द्रीय निर्देश मण्डलकी नियुक्ति करनेका फैसला किया गया जो भारतीय भाषाओंको कई समूहोंमें बाँटने और वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली अपनानेके बारेमें विभिन्न प्रश्नों पर विचार करे। डा. ए. लक्ष्मणस्वामी मुदालियरके सभापतित्वमें इस निर्देश मण्डलकी एक बैठक मई १९४७में हुई और उसमें अन्तर्राष्ट्रीय शब्दोंके बारेमें शिक्षा-मण्डलने जो निर्णय किया था, उसी पर जोर दिया गया।

उपकुलपतियों एवं विशेषज्ञोंकी समिति

इसके पहले कि उस नीतिके अनुसार कोई कार्यवाही हो सके, सवैधानिक परिवर्तन हो गए और जनवरी १९४८ में माननीय शिक्षा-मंत्रीने एक अखिल भारतीय शिक्षा परिषद् बुलाई और उसमें यह निर्णय

(२) यह भी स्वीकार किया गया कि अन्य विज्ञानो पर जो सिद्धान्त लागू होते है वे ही भू-विज्ञान, प्राणिविज्ञान और वनस्पति विज्ञान पर भी लागू होगे।

(३) सर्वसम्मतिसे यह निश्चय किया गया कि चिन्ह, प्रतीक, सूत्र और अकन पद्धति (नोटेशन) को बिना किसी परिवर्तनके अन्तर्राष्ट्रीय रूपमे ही स्वीकार कर लेना चाहिए।

(४) यह तय हुआ कि यौगिक शब्द हिन्दीकी प्रकृतिके अनुरूप बनाए जाएँ, परन्तु आधारभूत वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावलीको अन्तर्राष्ट्रीय रूपमे ही रखा जाए।

(५) प्रामाणिक उच्चारण और वर्तनीके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावलीका लिप्यन्तरण करनेके बारेमें समितिने यह सिफारिश की कि देवनागरीकरणका आधार वैज्ञानिक तकनीकी शब्दोका अँग्रेजी उच्चारण होना चाहिए।

यह भी निर्णय किया गया कि इजीनियरीके लिए एक उपसमिति बनाई जाए।

वैज्ञानिक शब्दावलीके सग्रहके कार्यक्रम और हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओमे उनके प्रचलित या सुझाए गए पर्यायोका सर्वेक्षण करनेके सम्बन्धमे यह तय हुआ कि प्रत्येक समिति सम्बन्धित विज्ञानकी बुनियादी पारिभाषिक और वैज्ञानिक शब्दावली तैयार करे।

इन निर्णयोको सामने रखकर विभिन्न विशेषज्ञ समितियोकी सहायतासे शब्दावली बनानेका काम शुरू किया गया। विभिन्न भाषाओके शब्द-भडारकी वास्तविक छानबीनसे यह स्पष्ट हो गया कि ऐसे वैज्ञानिक और तकनीकी शब्द बहुत बडी मात्रामे है, जो विश्वकी अधिकाश उन्नत भाषाओमे अपना लिए गए है। अतएव यह निर्णय किया गया कि नीचे लिखी कोटियोके शब्दोका केवल लिप्यतरण किया जाए और उन्हे अपना लिया जाए .—

(अ) बाट और मापकी इकाइयोके द्योतक शब्द, जैसे—मीटर, ग्राम, अर्ग, डाइन, कैलारी, लिटर आदि।

(आ) ऐसे शब्द जो आविष्कारकके नामपर बनाए गए हैं —अम्पियर वोल्ट, फारेनहाइट, वाट आदि।

(इ) ऐसे अन्य शब्द जो आमतौरपर सारे ससारमे प्रयुक्त हो रहे हैं, जैसे —अस्फाल्ट, रेडियो, पेट्रोल, रडार आदि।

(ई) नए तत्वो और यौगिकोके वैज्ञानिक नामादि, जैसे —अल्युमिनियम, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, बेरियम, कार्बन, क्रोमेट, डायऑक्साइड।

(उ) वनस्पति विज्ञान और प्राणिविज्ञान आदि की द्विपदी नामावली।

उस समय तक निर्धारित किए गए सिद्धान्तोके अनुसार काम करनेके लिए मत्रालयके हिन्दी प्रभागमे एक हिन्दी विभाग खोला गया, जिसमे विशेष अधिकारी और अनुसन्धान सहायक रखे गए।

राजभाषा-आयोग तथा संसदीय राजभाषा-समिति

यद्यपि प्रादेशिक भाषाओं तथा हिन्दीमें शब्दावलीके निर्माणके जो कार्य हो रहे थे, उनपर पूरा ध्यान दिया जाता रहा तथापि इनके वास्तविक समन्वयके लिए बहुत प्रभावशाली व्यवस्था नही हो सकी और विभिन्न व्यक्तियो, सस्थाओ, विश्वविद्यालयो तथा राज्य सरकारोंके प्रयत्नोंके फलस्वरूप विभिन्न प्रकारकी शब्दावलियाँ तैयार होती रही। इस प्रकार भारतीय शब्दावलीकी एकरूपता तथा हिन्दी और अन्य प्रादेशिक

(६) वनस्पति-विज्ञान
(७) कृषि-विज्ञान
(८) भूविज्ञान
(९) समाज-विज्ञान और प्रशासनिक शब्दावली।

बादमें रक्षा-विभागमें प्रयुक्त होने वाले तकनीकी शब्दोंके लिए भी एक अलग समिति बनाई गई।

भाषा-शास्त्रियोंकी समिति

इस समस्याकी भाषा-सम्बन्धी गुत्थियोंकी ब्यौरेवार परीक्षा करनेके लिए मण्डलकी सिफारिशोंके अनुसार भाषाशास्त्रियोंकी एक समिति (A Committee of Philologists) भी नियुक्त की गई। इस समितिकी कुल तीन बैठकें हुई और उसने निम्नलिखित सिफारिशें कीं :—

(१) अन्तर्राष्ट्रीय रूपमें प्रयुक्त होनेवाले नए और गढ़े गए पारिभाषिक शब्द हिन्दी (और दूसरी भारतीय भाषाओं) में सामायन्तः उसी रूपमें अपना लिए जाने चाहिए जिस रूपमें उनका प्रयोग अँग्रेजीमें होता है।
उदाहरणार्थ गैस, पेनिसिलीन, क्विनीन (कुनैन), प्लास्टिक, मरसराइज।

(२) जहाँ आमतौर पर उपयोगमें आनेवाले अँग्रेजी शब्दोंका उपयोग विशेष या पारिभाषिक अर्थमें किया गया है वहाँ हिन्दी (या अन्य भारतीय भाषा) का पर्याय भी पारिभाषिक अर्थमें प्रयुक्त हो सकता है। जैसे Heat ऊष्मा, Iron लोहा Saturation संपृक्तता।

(३) जब अन्तर्राष्ट्रीय शब्दोंका हिन्दीमें प्रयोग किया जाए तो सभी पुस्तकोंमें उसके पहले प्रयोगके आगे उसका हिन्दी पर्याय या अर्थ कोष्ठकमें दिया जाना चाहिए।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक शब्दोंको भारतीय भाषाओंमें अपनाते समय उनका उच्चारण अँग्रेजीके प्रचलित और प्रामाणिक उच्चारण जैसा रखना चाहिए तथा देवनागरी लिपिमें उच्चारण लिखते समय समितिकी सिफारिशोंका पालन किया जाना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावलीका हिन्दीमें लिप्यन्तरण करने तथा उनकी वर्तनी (Spelling) और उच्चारण निश्चित करनेके लिए भी एक ब्यौरेवार योजना बनाई गई।

इस दिशामें व्यवस्थित श्रीगणेश करने और इसकी कार्य-प्रणाली निश्चित करनेके लिए शिक्षा-मंत्रालयने उन तमाम विशेषज्ञ समितियोंके संयोजकोंकी एक बैठक बुलाई जो पारिभाषिक शब्दावली-मण्डलकी सिफारिशके अनुसार बनाई गई थी। यह बैठक पहली फरवरी १९५२ में हुई। वैज्ञानिक शब्दावली मण्डल और भाषाशास्त्रियोंकी समितिकी सिफारिशोंपर सामान्य चर्चाके बाद समितिने निम्नलिखित कुछ निश्चय किए :—

(१) जो वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्द अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें मान्य नहीं हैं, उनके लिए विभिन्न प्रचलित पर्यायों पर विचार करके उपयुक्त हिन्दी पर्याय तैयार करने चाहिए। इसके लिए सरलता और सुबोधता मुख्य आधार होना चाहिए।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयके निदेशक डॉ विश्वनाथ प्रसाद आयोगके सचिव नियुक्त किए गए। आयोगके कार्योमें निम्नलिखित सम्मिलित है :—

(क) राष्ट्रपतिके आदेशके पैरा ३ मे दिए हुए सिद्धान्तोका अनुसरण करते हुए वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावलीके क्षेत्रमें अबतक हुए कार्यका पुनरीक्षण करना ।

(ख) हिन्दी और अन्य भाषाओके लिए वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली बनानेके लिए और बनी हुई शब्दावलीमें समन्वय स्थापित करनेके लिए सिद्धान्त निर्धारित करना।

(ग) विभिन्न राज्योमें वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावलीके क्षेत्रमें काम करनेवाली संस्थाओंके कामोंमें उनकी सहमति या अनुरोधसे समन्वय स्थापित करना और ऐसी संस्थाओं द्वारा प्रस्तुत की गई हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओकी शब्दावलीको स्वीकृत करना।

(घ) इसके अतिरिक्त आयोग वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावलीके कोषोंके निर्माण, विदेशी भाषाओ की वैज्ञानिक पुस्तकोके भारतीय भाषाओमें अनुवाद और अपनी बनाई हुई तथा स्वीकृत की हुई शब्दावलीके प्रयोगका स्पष्टीकरण करनेके लिए प्रामाणिक वैज्ञानिक पुस्तको की रचनाका काम भी कर सकेगा।

उच्चस्तरीय वैज्ञानिक शब्दावली सलाहकार मण्डलकी रचना

विभिन्न संस्थाओ, राज्य सरकारो और विश्वविद्यालयोको आयोगके कार्यके साथ सम्बद्ध करनेके लिए मंत्रालयने एक उच्चस्तरीय वैज्ञानिक शब्दावली सलाहकार मण्डल की स्थापना करनेका निश्चय किया। यह मण्डल आयोगको सौपे गए कार्यके विषयमें मन्त्रालयको सलाह देगा।

बोर्डके सदस्य इस प्रकार होगें—

(१) शिक्षा-मन्त्रालय, वैज्ञानिक अनुसधान और सास्कृतिक कार्य मन्त्रालय, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, गृह-मन्त्रालय और विश्वविद्यालय अनुदान आयोगसे एक-एक प्रतिनिधि,

(२) प्रत्येक राज्य सरकारका एक एक प्रतिनिधि

(३) विश्वविद्यालयो, विद्वत्समाजो और अन्य वर्गोका प्रतिनिधित्व करनेवाले १० सदस्य जो शिक्षामन्त्रालय द्वारा नामित किए जाएँगे।

विज्ञानेतर विषयोंके लिए पुनरीक्षण और समन्वय समितिका गठन

वैज्ञानिक शब्दावली आयोगकी स्थापना केवल वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावलीका विकास, समन्वय और उसे अन्तिम रूप देनेके लिए की जा रही है, पर सामाजिक विज्ञानों, मानविकी और प्रशासनसे सम्बन्धित बहुतसी शब्दावलीके निर्माणका कार्य उस आयोगके कार्यक्षेत्र की सीमामें नहीं आता। अतः यह भी निश्चय किया गया कि साहित्यिक विद्वानो और भाषा वैज्ञानिको की एक समिति स्थापित की जाए और विज्ञानेतर पारिभाषिक शब्दावलीको अन्तिम रूप देनेका कार्य उसे सौंपा जाए। इस समितिका नाम विज्ञानेतर विषयोके लिए पुनरीक्षण और समन्वय समिति (Review & Co-ordination Committee for Non-scientific Subjects) है और श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' इसके अध्यक्ष हैं।

भाषाओंकी शब्दावलियोंके समन्वयकी गम्भीर समस्या पैदा हो गई। भारतके संविधानके अनुच्छेद ३४४ के उपबन्धोंके अनुसार १९५५ में जो राजभाषा आयोग नियुक्त किया गया था, उसने भी १९५६में अपनी रिपोर्टमें सरकारका ध्यान इस तथ्यकी ओर स्पष्ट रूपसे आकर्षित किया।

राजभाषा आयोगने पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणके बारेमें जो अन्य सिफारिशें की थीं उनपर संसदकी राजभाषा समितिने विचार किया और उसने उनको स्वीकार कर लिया। संसदकी समितिने इस बात पर भी जोर दिया कि विज्ञान तथा टेकनॉलॉजीके क्षेत्रमें सभी भारतीय भाषाओंकी शब्दावलीमें अधिकाधिक समानता होनी चाहिए और वह शब्दावली अँग्रेजी या अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावलीके भी निकट होनी चाहिए। समितिने सुझाव दिया कि इस क्षेत्रमें काम करनेवाली विभिन्न संस्थाओं द्वारा किए गए कामके समन्वयन एवं देखभालके लिए तथा सभी भारतीय भाषाओंमें प्रामाणिक शब्दावलियाँ तैयार करनेके लिए एक स्थायी आयोग बना दिया जाए, जिसमें मुख्यतया वैज्ञानिक तथा भाषाशास्त्री हों।

राजभाषा सम्बन्धी समितिकी रिपोर्ट पर विचार करते समय कैबिनेटने उन सभी सामान्य सिद्धान्तोंसे सहमति प्रकट की, जिन्हें समितिने स्वीकार किया था। परन्तु उसने यह इच्छा प्रकट की कि विज्ञान तथा टेक्नॉलॉजीके क्षेत्रमें अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोगमें आनेवाले शब्दोंको न्यूनतम परिवर्तनके साथ साथ अपना लिया जाना चाहिए अर्थात् उनका मूल शब्द वही होना चाहिए, जो अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावलीमें है, परन्तु आवश्यकतानुसार उनके यौगिक और व्युत्पन्न रूपोंको भारतीय स्वरूप दिया।

राष्ट्रपतिका आदेश

मंत्री मण्डलकी सिफारिशोंके अनुसार २७ अप्रैल १९६० को भारतके राष्ट्रपतिने एक आदेश निकाला जिसमें शिक्षा-मंत्रालयको कुछ काम करनेके निदेश दिए गए थे :—

(क) अब तक हुए कामका पुनरीक्षण करना और समिति द्वारा स्वीकृत सामान्य सिद्धान्तोंके अनुसार पारिभाषिक शब्दावली तैयार करना। विज्ञान तथा टेक्नॉलॉजीके क्षेत्रमें अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोगमें आनेवाले शब्दोंको न्यूनतम परिवर्तनके साथ अपना लिया जाना चाहिए अर्थात् उनका मूल शब्द वही होना चाहिए, जो अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावलीमें है परन्तु आवश्यकतानुसार उनके यौगिक और व्युत्पन्न रूपोंको भारतीय स्वरूप दिया जा सकता है।

(ख) पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणमें समन्वयकी व्यवस्थाके लिए सुझाव देना, और

(ग) समिति द्वारा दिए गए सुझावके अनुसार वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणके लिए एक स्थाई आयोगकी नियुक्ति करना।

पारिभाषिक शब्दावली आयोगकी स्थापना

राष्ट्रभाषाके निर्देशनके अनुसार शिक्षा-मंत्रालयने वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणार्थ अक्टूबर १९६१ में डॉ. दौलतसिंह कोठारीकी अध्यक्षतामें वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावलीके लिए एक आयोग (A Commission for Scientific & Technical Terminology) की स्थापना की जिसमें विज्ञान तथा टेक्नोलाजीके कुछ विशेषज्ञ तथा भाषा वैज्ञानिक शामिल किए गए

१७—परिवहन
१८—राजनीति-विज्ञान
१९—राजनय
२०—शिक्षा
२१—सूचना और प्रसार
२२—दर्शनशास्त्र
२३—साहित्य-शास्त्र
२४—मानव शास्त्र तथा समाज शास्त्र
२५—डाक-तार
२६—रेल
२७—विधि

चूंकि अब राष्ट्रपतिके आदेशानुसार एक पृथक् विधि-आयोग (Law Commission) नियुक्त हो चुका है अतएव विधि विशेषज्ञ समितिका कार्य अब उसे ही सौंप दिया गया है।

इसके अतिरिक्त शिक्षा मन्त्रालयमें सन् १९५८—५९ से स्वीकृत शब्दावलियोंको कोषके रूपमें तैयार करनेकी दिशामें काम हो रहा है। इस कार्यके लिए अभी तक सात उपसमितियाँ काम करती रही हैं।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयमें प्राचीन शास्त्रीय वाङ्मयमें व्यवहृत वैज्ञानिक शब्दावलीका भी संग्रह कराया गया है और ऐसे शब्द कोशोंका भी शीघ्र ही प्रकाशन किया जाएगा। रसायन तथा इंजीनियरिंग सम्बन्धी शब्दकोष छपनेके लिए तैयार है।

साहित्यमें शब्दावलीका प्रयोग

आयोग द्वारा विभिन्न विज्ञानसे सम्बन्धित शब्दावलीके अन्तिम रूपसे अनुमोदनमें अभी कुछ समय लगनेकी सम्भावना है। इस बीच केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयने शब्दावलीके औचित्यकी जाँच करनेके लिए प्रशासनिक और वैज्ञानिक वाङ्मयमें इनका वास्तविक प्रयोग करनेकी दिशामें भी कुछ कार्य किया है। सन्तोषकी बात है कि कुछ विज्ञान-विषयोंकी दीपिकाएँ प्रशासनिक नियमावलि तथा अन्य पुस्तकें प्रकाशित होनेवाली है। स्वतन्त्र रूपसे भी इधर विज्ञानकी कई अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनमें हमारी पारिभाषिक शब्दावलीका प्रयोग हुआ है।

इस वर्ष दो महत्वपूर्ण योजनाएँ आरम्भ की गई हैं। पहली योजनाका सम्बन्ध विश्वविद्यालयोंमें पढ़ाई जानेवाली प्रामाणिक पुस्तकोंके अनुवादसे है। यह काम विभिन्न विश्वविद्यालय और राज्य सरकारोंके शैक्षिक निकायोंको सौंपा गया है। किसी खास प्रादेशिक क्षेत्रमें काम करनेवाली संस्थाओंकी समस्याओंको हल करनेके लिए विभिन्न राज्योंमें समन्वय-समितियाँ बनाई गई हैं जो इन समस्याओंको सुलझानेमें विचार-विमर्शका माध्यम बन सकेंगी। लगभग ३०० पुस्तकें अनुवादके लिए निश्चित की जा चुकी हैं और उनमेंसे बहुतोंका अनुवाद प्रारम्भ भी हो गया है। इस योजनाके अनुसार भी कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

शिक्षा-मंत्रालयके अधीन नवगठित केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयको अब हिन्दीके विकास और प्रचारका वह काम सौंपा गया है जो पहले मंत्रालयके हिन्दी प्रभागके तत्वावधानमें होता था। अर्थात् पारिभाषिक शब्दावलीका काम भी अब केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयके द्वारा किया जा रहा है। केन्द्रीय हिंदी निदेशालय पारिभाषिक शब्दावली आयोग तथा पुनरीक्षण और समन्वय समितिके सचिवालयके रूपमें भी काम करता है। ज्ञानके विभिन्न क्षेत्रोंकी विशिष्ट शाखाओंसे सम्बन्धित अनेक विशेषज्ञ-समितियां स्थापित की गई और १९६० तक उनके द्वारा तैयार किए गए शब्द बहुत संख्यामें इकट्ठे हो गए थे। अब समय आ गया था जब कि इस कार्यको अंतिम रूप दिया जाए और प्रामाणिक शब्द-सूचीके रूपमें इन्हें स्वीकृत और प्रकाशित किया जाए। परन्तु पुनरीक्षण और समन्वयका कार्य करनेवाले मण्डलोंको स्थापित करनेमें बहुत समय लग गया। उसी अवधिमें केन्द्रीय पारिभाषिक और वैज्ञानिक-शब्दावली-सलाहकार मण्डलकी बैठक ६ नवम्बर १९६० को विज्ञान भवन, नई दिल्लीमें हुई। मण्डलने सिफारिश की कि प्रादेशिक भाषाओंमें शब्दावलीका निर्माण करनेके लिए राज्य सरकारें उपयुक्त संस्थाओं, समितियों या विभागोंकी स्थापना करें जो कि आयोगके मार्गदर्शन एवं सहयोगसे काम करें। मण्डलने वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावलीके बारेमें कई संकल्प किए और कुछ निर्णय भी किए।

विभिन्न विशेषज्ञ समितियाँ तथा कोष उपसमितियाँ

शब्दावली निर्माणका कार्य प्रारम्भमें दस विशेषज्ञ समितियोंसे आरम्भ हुआ था। आज केन्द्रीय निदेशालयके अन्तर्गत जिन विभिन्न विषयोंकी विशेषज्ञ समितियाँ कार्य करती रही हैं वे निम्नलिखित हैं—

१—भौतिकी
२—रसायन
३—गणित
४—वनस्पति विज्ञान
५—प्राणिविज्ञान
६—चिकित्साविज्ञान
७—भू-विज्ञान
८—कृषि-विज्ञान
९—सिविल इंजीनियरी
१०—यान्त्रिक इंजीनियरी
११—विद्युत् इंजीनियरी
१२—रक्षा
१३—अर्थ-शास्त्र
१४—सामान्य प्रशासन
१५—इतिहास और पुरातत्व
१६—समाज-विज्ञान

(ख) इन राज्योमेंसे प्रत्येकका एक-एक सदस्य—आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, महाराष्ट्र, गुजरात, जम्मू और काश्मीर, मध्यप्रदेश, मद्रास, मैसूर, उडीसा, पजाब, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, प. बंगाल और दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, तथा त्रिपुराके प्रशासित राज्य।

(ग) लोकसभाका एक सदस्य जो अध्यक्ष द्वारा नामित होगा।

(घ) राज्यसभाका एक सदस्य, जो अध्यक्ष द्वारा नामित होगा।

(ङ) प्रमुख हिन्दी सस्थाओके दो प्रतिनिधि जो भारत सरकार द्वारा नामित होंगे।

समितिके अध्यक्ष तथा सदस्योकी पदावधि तीन वर्षकी होगी। कार्यकी प्रगतिका सर्वेक्षण करने तथा हिन्दीके प्रचार और भावी कार्यक्रमोपर सलाह देनेके लिए समय समयपर समितिकी बैठकें होती है और उनमें अहिन्दी क्षेत्रोंमें राज्य सरकारोके मार्फत तथा स्वेच्छासे हिन्दीका काम करनेवाली सस्थाओंके मार्फत समितिकी देखरेखमें अन्यथा भी जो काम चलता रहता है, उसका सिंहावलोकन किया जाता है, चर्चा होती है और विभिन्न योजनाएँ निर्धारित की जाती हैं। समितिकी सलाह एव सिफारिश पर शिक्षा-मन्त्रालय तथा हिन्दी निदेशालय राज्योको तथा सस्थाओंको अनुदान देते है तथा हिन्दीके विकास एव प्रसारके अन्य कामोकी व्यवस्था करवाते हैं। हिन्दी शिक्षा समितिके अध्यक्ष वर्तमान शिक्षा मन्त्री डॉ. श्रीमालीजी स्वय हैं।

३. हिन्दीमें विज्ञान, तकनीकी एवं समाज-शास्त्र सम्बन्धी तथा सामान्य ढंगका लोकप्रिय साहित्य, प्रमाणित पुस्तकें कोष, आदि तैयार करना तथा उनका अनुवाद करवाना।

(क)

सन् १९५९ में शिक्षा-मन्त्रालयने अलग-अलग विश्वविद्यालयो तथा राज्य सरकारोकी एक परिषद निमन्त्रित की थी जिसने सिफारिश की थी कि शिक्षा-मन्त्रालयके मार्गदर्शनमें प्रमाणित एव दर्जेदार पुस्तकोके निर्माण एव अनुवादकी पूरी योजनाको क्रमबद्ध मजिलोमें सम्पन्न किया जाए। तदर्थ एक स्थाई परामर्श समितिका गठन किया गया जिसके अध्यक्ष शिक्षा-मन्त्रालयके सयुक्त सचिव, श्री रमाप्रसन्नजी नायक, आई. सी एस. हैं और सदस्योमें विश्वविद्यालयो, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा वैज्ञानिक अनुसधान एव सास्कृतिक कार्योके मन्त्रालयके प्रतिनिधि हैं। समितिने वैज्ञानिक तकनीकी एव समाज शास्त्रीय विषयों-की पुस्तकोके बारेमें एक योजना बनाई जिसके तीन लक्ष्य थे —

१—उचित स्तरवाली किताबोका हिन्दीमें अनुवाद, २—शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा तैयार की हुई शब्दावलीका प्रयोग कर भारतीय दृष्टिकोणसे हिन्दीमें प्रकाशनार्थ किताबोका आवश्यक परिवर्तनोके साथ लेखन अथवा पुनर्लेखन एव ३—हिन्दीमें ही मौलिक ग्रन्थोकी रचना करना।

इस योजनाके प्रथम हिस्सेपर तेजीसे अमल शुरू हो गया है। अनुवादकी एक योजनाको स्वीकृति प्राप्त हो गई है। अन्य लक्ष्योकी पूर्तिके हेतु भी काम शुरू हो गया है। शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा तैयार अनुवाद योजनामें शिक्षा मन्त्रालय अनुवादोपर पूरा खर्च करनेके लिए तैयार है। इस योजनामें तीन प्रायोजनाएँ सम्मिलित हैं।

विज्ञान और सामान्य ज्ञान आदिकी लोकप्रिय पुस्तकोंके प्रकाशनकी योजनाको प्रकाशकोंकी सहायतासे अमलमें लाया जा रहा है। इस योजनाके अधीन प्रकाशकोंको यह आश्वासन दिया गया है कि उनके द्वारा प्रकाशित की जानेवाली पुस्तकोंको एक निश्चित संख्यामें खरीद लिया जाएगा। इसके अलावा यह भी विचार किया जा रहा है कि विभिन्न विषयोंके साहित्यको प्रकाशित करनेके लिए प्रकाशकोंको रुपया उधार दिया जाए। परन्तु ऐसे मामलोंमें यह शर्त होगी कि हिन्दी भाषाके अनुवादमें भारत सरकार द्वारा बनाई गई पारिभाषिक शब्दावलीका उपयोग किया जाए।

पारिभाषिक शब्द-संग्रहके दोनों खण्ड प्रकाशित

पारिभाषिक शब्दावलीका पूरा कोष, लगभग ३ लाख शब्दोंवाला, दो खण्डोंमें प्रकाशित हो गया है। उसमें मूल अँग्रेजीकी शब्दावली हिन्दीमें दी गई है। सरकारके विभिन्न प्रशासनिक विभागों तथा मन्त्रालयोंने इसकी शब्दावलीको अपनानेका आश्वासन दिया है। इस प्रकाशनसे देशको विभिन्न भागोंके भाषाविदों, शिक्षकों तथा विद्यार्थियोंको तकनीकी विषयोंके हिन्दी पर्याय सुगमतासे मिल सकेंगे।

शब्द-निर्माण कार्यके लिए कार्य-गोष्ठी (वर्क शॉप)

वैज्ञानिक शब्दावलीके निर्माण कार्यको अधिक सुचारु रूपसे चलानेके लिए तथा बनाई गई शब्दावलीपर विभिन्न भाषाविदों तथा विद्वानोंके विचार जाननेके लिए तथा नई शब्दावलीके निर्माणमें उनके विचारोंका लाभ उठानेके लिए एक योजना शब्दावली कार्य-गोष्ठी 'के नामसे तैयार की गई है। इसकी पहली बैठक एक मासके लिए शिमलामें ता. २२ मई १९६२ से शुरू की गई थी। इसमें गणित, रसायन तथा भौतिकीकी शब्दावलियोंको संशोधित एवं परिवर्द्धित करनेका कार्य हुआ। भविष्यमें अन्य तकनीकी विषयोंसे सम्बन्धित कार्य-गोष्ठियाँ आयोजित की जाएँगी।

दो खण्डोंमें पारिभाषिक शब्द-संग्रह प्रकाशित हो जानेपर भी दर्शन, चिकित्सा, सिविल इंजीनियरींग, भौतिकी तथा डाक एवं तार विषयोंकी बैठकें चल रही है। शब्द-निर्माणका काम एक सतत कार्य है जो आगे बढ़ता और फैलता रहेगा। तदर्थ जो विभिन्न आयोग, मंडल तथा समितियाँ उपसमितियाँ बनी हैं वे काम करती ही रहेंगी।

२. हिन्दी-शिक्षा-समितिका गठन

हिन्दी प्रचार सम्बन्धी मामलोंमें, विशेषकर अहिन्दी भाषी प्रदेशोंमें सरकारको परामर्श देनेके लिये सन् १९५१ में हिन्दी शिक्षा समिति नियुक्त की गई। अक्टूबर १९५४ में उसका पुनर्गठन हुआ। फिर पहली नवम्बर १९५६ से राज्य पुनर्गठनके फलस्वरूप उसके संगठन और सदस्यताकी अवधिमें कुछ परिवर्तन किए गए। परिवर्तन समितिमें उसके बाद भी परिवर्तन होते गए हैं। आज समितिका गठन मोटे रूपसे इस प्रकार का है —

(क) अध्यक्ष जो भारत सरकार द्वारा नामित हो।

(ग) बुनियादी हिन्दी शब्दावलीका निर्माण

हिन्दी शिक्षा समितिने सन् १९५४ में सिफारिश की थी कि बुनियादी हिन्दी शब्दोकी दो सूचियाँ तैयार की जाएँ और अहिन्दी भाषी क्षेत्रोमे जो पाठ-मालाएँ तथा पाठ्य-पुस्तके तैयार हो उनमें इन शब्दोका प्रयोग किया जाए। समितिने तदर्थ दो उपसमितियाँ बनाई। उन्होने देशमे इस विषयपर जो कुछ काम हो चुका था उसका सर्वेक्षण किया और तदनन्तर समितिके आदेशानुसार बुनियादी शब्दावलीकी दो सूचियाँ तैयार की। दोनो सूचियाँ सरकार द्वारा स्वीकृत एव प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रत्येक राज्यको चाहिए कि वह इसी शब्दावलीके आधारपर प्रदेश विशेषकी आवश्यकताओ और रुचियोको ध्यानमे रखते हुए, हिन्दीकी पाठ्य-पुस्तके बनाएँ। अपने यहाँ प्रचलित हिन्दीके और ५०० शब्द वह राज्य इस शब्दावलीमे जोड सकता है।

(घ) हिन्दीके मूलभूत व्याकरणका निर्माण

शिक्षा-मन्त्रालयने हिन्दीका मूलभूत व्याकरण तैयार करनेके लिए सन् १९५३ मे एक विशेषज्ञ उपसमिति बनाई थी; जिसमें उस्मानिया विश्व-विद्यालयके डॉ. आर्येन्द्र शर्मा, सुनीतकुमार चटर्जी, एम. सत्यनारायण, नेनेजी, डॉ. बाबूराम सक्सेना थे। डॉ. आर्येन्द्र शर्माने सजीव भाषाओंके व्याकरण-लेखनकी नवीनतम अनुमोदित पद्धतियोके आधारपर वैज्ञानिक ढगसे एक आदर्श हिन्दी व्याकरण तैयार किया। अँग्रेजीमे पुस्तक A Basic Grammer for Modern Hindi के नामसे छप चुकी है और हिन्दीमें उसका सस्करण निकल रहा है। इसमे उच्चारणपर विशेष ध्यान दिया गया है। ध्वनि उच्चारणकी क्रियाके सम्बन्धमे सस्कृतसे ली गई ध्वनियोके सम्बन्धमें तथा हिन्दीकी मूल ध्वनियोके सम्बन्धमें वैज्ञानिक ढगसे चर्चा की गई है। 'ने' का प्रयोग तथा व्याकरणकी अन्य बाते बडी सरलतासे प्रस्तुत की गई है।

(ङ) उत्कृष्ट हिन्दी पुस्तकोंके लिए पुरस्कार योजना

सन् १९५२ में शिक्षा-मन्त्रालयने विभिन्न श्रेणियोकी सर्वश्रेष्ठ हिन्दी पुस्तकोंपर पुरस्कार देनेकी योजना स्वीकृत की थी। इन पुरस्कारोके लिए प्रतिवर्ष एक प्रेस नोट निकाला जाता है। पिछले वर्षमें जो पुस्तके प्रकाशित की जाती है उनमेसे श्रेष्ठ पुस्तकोपर पुरस्कार देनेकी घोषणा की जाती है। पुरस्कारके लिए चार श्रेणियाँ निश्चित की गई है—

श्रेणी १–अन्य भाषाओंसे हिन्दीमें अनुवाद—इस श्रेणीमे काव्य, नाटक, कथा-साहित्य और सामान्य साहित्यके चार पुरस्कार दिए जाते है। पाँचवा पुरस्कार उपर्युक्त विषयोमेंसे किसी एक विषयकी किताबका अनुवाद प्रस्तुत करनेवाले अहिन्दी भाषीके लिए सुरक्षित है।

श्रेणी २–हिन्दीमें मौलिक रचनाएँ—इस श्रेणीके अन्तर्गत काव्य, नाटक, कथा-साहित्य एव सामान्य साहित्यके लिए चार पुरस्कार है तथा पाँचवा पुरस्कार अहिन्दी भाषी लेखकके लिए है।

श्रेणी ३–अन्तर्वर्गीय, अन्तर्जातीय तथा अन्तर्देशीय सद्भावना एव भारतकी संश्लिष्ट संस्कृतिको सममानेके लिए लिखी गई हिन्दीकी मौलिक पुस्तकोपर तीन पुरस्कार निश्चित किए गए है।

(अ) **मानक ग्रन्थोंके अनुवादकी योजना**—यह योजना तीन टप्पोंमें पूरी होनी चाहिए। सर्व प्रथम ३०० किताबोंको लिया गया है। इसमें महाविद्यालयीन स्तरोंकी पाठ्य-पुस्तकोंके निर्माणपर विशेष जोर है। तीसरी पंचवार्षिक योजनामें अनुवादोंके लिए २५ लाख रुपयोंकी रकम निर्धारित की गई है।

(आ) **लोकप्रिय पुस्तकोंका अनुवाद**—भारत सरकारने सामान्य रुचिकी विभिन्न पुस्तकोंके हिन्दी अनुवादकी योजना भी शुरू की है। योजनाका उद्देश्य सामान्य पाठकों एवं पुस्तकालयोंके लिए कम मूल्यपर लोकप्रिय साहित्यका प्रचुर मात्रामें उत्पादन करना है। इस योजनाके अन्तर्गत प्रकाशित पुस्तकोंमें शिक्षा-मन्त्रालय तथा निदेशालय द्वारा निर्मित शब्दोंका प्रयोग अनिवार्य है तथा भाषा यथा-सम्भव सरल, व्यावहारिक एवं मुहावरेदार होगी।

(इ) **असांविधिक प्रशासनिक साहित्यका अनुवाद**—हिन्दी निदेशालयमें इसके अलावा सरकार के विभिन्न कार्यकलापों तथा दैनिक कामकाजमें आनेवाले विभिन्न प्रकारके असांविधिक प्रशासनिक साहित्यका अनुवाद 'अनुवाद एकक' द्वारा किया जा रहा है। अभीतक अनुवाद कार्यके लिए तीन सौ से अधिक पुस्तकें तथा तीन हजार पाँच सौ प्रपत्र आदि प्राप्त हो चुके हैं। शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा पारि-भाषिक शब्दावली निर्माण कार्यके अन्तर्गत कई शब्द-सूचियाँ, पारिभाषिक शब्द-संग्रहके दोनों खण्ड, दीपिकाएँ तथा अन्य पुस्तकें निकाली जा चुकी हैं। निदेशालयमें क्रिया विधि सम्बन्धी साहित्यके अनुवादका काम भी तेजीसे प्रारम्भ हो गया है।

(ख) विभिन्न कोशोंका निर्माण

(अ) **हिन्दी-हिन्दी कोश तथा हिन्दी विश्वकोश**—हिन्दी शब्द-सागरका संशोधित और बृहत् संस्करण प्रकाशित करनेके लिए १९५४–५५ में नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसीको कुल १ लाख रुपए स्वीकृत किए गए थे। विश्वकोशको दस खण्डोंमें तैयार करनेका भी भार नागरी प्रचारिणी सभाको ही सौंपा गया है।

(आ) **रूसी हिन्दी कोश**—श्री ऋषिजीने ५०,००० शब्दोंवाले एक रूसी-हिन्दी कोशको सम्पादित किया है। यह काम दिल्ली विश्वविद्यालयके रूसी विभागके प्रो. शिवायव और हिन्दी विभागके डॉ. नगेन्द्र की देखरेखमें किया गया है।

(इ) **द्विभाषीय शब्द-सूचियाँ**—१९५४ में हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओंमें समान रूपसे पाए जाने वाले शब्दोंकी सूचियाँ बनाकर प्रादेशिक भाषाओंके क्षेत्रोंमें सुझावोंके लिए भेजी गई। इस योजनामें दृष्टि यह है कि हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओंमें समान रूपसे मिलनेवाले शब्दोंके संग्रहीत हो जानेसे हिन्दीको अखिल भारतीय भाषाके रूपमें विकसित होनेमें सहूलियत होगी।

(ई) इलाहाबादकी हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलनको अँग्रेजीकी कन्साईज डिक्शनरीके शब्दोंके आधारपर अँग्रेजी हिन्दी कोशका काम अलग अलग सौंपा गया था, लेकिन उसमें विशेष प्रगति नहीं है। उसी तरह अँग्रेजी, हिन्दी, तुर्की, फ्रांसीसी, रूसी और इटालियन भाषाओंके एक शब्द-कोशकी योजना भी १९५५ में बनी थी। दूसरी योजना हिन्दी, अँग्रेजी, बंगला, मराठी, तमिल, तेलुगु और उर्दूके एक सामान्य कोशकी भी थी। लेकिन उनका क्या हुआ पता नहीं।

(८) सामाजिक शिक्षा-साहित्य सम्बन्धी किताबे हिन्दीमे प्रकाशित हो, इसलिए शिक्षा-मंत्रालय प्रकाशकोसे सहयोग करता है तथा उन्हे प्रोत्साहन देता है। इस विषयकी पुस्तकोंकी वह निश्चित संख्यामें प्रतियाँ खरीदता है जिन्हे वह सामुदायिक योजना क्षेत्रो, शिक्षा-सस्थाओ, पुस्तकालयों आदिमें वितरित करवाता है। राज्य सरकारें इस मदमे खर्चका ५० प्रतिशत देती है, बाकीकी रकम तथा प्रेषण खर्च आदि भारत सरकारका रहता है।

(९) जन-साधारणके लिए 'भारतका एक लोकप्रिय इतिहास' पर ५००० रु. पुरस्कारकी घोषणा की गई है।

(छ) साहित्य निर्माणकी अन्य योजनाएँ

शिक्षा मत्रालयने हिंदीके प्रचार एव प्रसारके लिए निम्न लिखित योजनाएँ बनाई हैं और उनपर काम चल रहा है —

(अ) अहिन्दी भाषी लोगोकी आवश्यकताओको ध्यानमें रखते हुए हिन्दी शिक्षाके लिए वैज्ञानिक ढगपर हिन्दीकी पाठ मालाएँ तथा पाठ्य पुस्तके तैयार करना।

(आ) अहिन्दी भाषी देवनागरी लिपि सीख सके, इसलिए हिन्दी तथा भारतकी विभिन्न भाषाओं के सचित्र द्विभाषी वर्णमाला चार्ट बनाना।

(अि) मेग्रहिल एन्साक्लोपीडिया ऑफ सायन्सेज अ‍ॅण्ड टेक्नॉलॉजीका १५ खण्डोंमें अनुवाद प्रकाशित करना।

(अी) वर्तमान तथा वास्तविक क्षेत्रोके प्रत्यक्ष कार्योंकी सहायतासे कला और हस्तशिल्प संबधी विशिष्ट शब्दावलियोका चयन तथा सकलन।

(उ) हिंदीके प्राचीन तथा नवीन प्रख्यात लेखकोकी कृतियोमेंसे पारिभाषिक तथा इतर शब्दोंकी अनुक्रमणिकाएँ, विभिन्न विश्वविद्यालयो द्वारा तैयार करवाना।

(ऊ) हिन्दीके अप्राप्य मानक ग्रन्थोके परिशोधित एव आलोचनात्मक सस्करण, विश्वविद्यालयो एव आलोचनात्मक सस्करण, विश्वविद्यालयों एवं पण्डितोकी सहायतासे प्रकाशित करना।

(ए) श्री रामचंद्र वर्मा द्वारा 'शब्द-साधना' लिखवाकर प्रकाशित करवाना।

(ऐ) हिन्दीके प्रसिद्ध लेखकोकी रचनाओके बृहत् सकलन, विद्वानो एव विश्वविद्यालयोकी सहायता से तैयार करवाना।

(ओ) इतिहास, भौतिक शास्त्र, सामान्य-विज्ञान, गणित आदि शास्त्रीय विषयोपर हिंदीमें प्रमाणित पाठ्य-पुस्तके तैयार करवाना।

(ज) केन्द्रीय हिन्दी पुस्तकालय

सन् १९५० में शिक्षामन्त्रालयके हिंदी प्रभागमें जो एक पुस्तकालय तैयार किया गया था, वह अब बढते बढते एक अच्छे सदर्भ पुस्तकालयमे बदल गया है। केंद्रीय हिंदी निदेशालयके इस पुस्तकालयमें विश्वकोश, शब्दकोश, भाषा-शास्त्र, मानवशास्त्र एव विभिन्न सामाजिक तथा वैज्ञानिक

श्रेणी ४–वैज्ञानिक एवं प्राविधिक विषयकी पुस्तकें—इस श्रेणीके अन्तर्गत (१) हाईस्कूलों एवं कालेजोंके लिए उपयोगी पुस्तकों (२) जनसाधारणकी रुचिकी पुस्तकों तथा (३) पत्रिकाओं आदिपर तीन पुरस्कार निर्धारित हैं।

प्राप्त पुस्तकोंके मूल्यांकनके लिए निर्णायकोंकी विशेष समितियाँ रहती हैं।

वैज्ञानिक ग्रन्थ-लेखनके लिए अनुदान—इसके अलावा जो लेखक वैज्ञानिक ग्रन्थ लिखते हैं, पर आर्थिक परिस्थितियोंके कारण उन्हें प्रकाशित नहीं कर सकते, उन्हें सरकारने अनुदान देनेका निश्चय किया है।

(च) बच्चों एवं नव साक्षरोंके लिए साहित्य-सृजन

(१) एक योजनाके अनुसार दक्षिणकी भाषाओंमें हिन्दीकी बालोपयोगी पुस्तकें तैयार करनेका काम दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाको सौंपा गया था जिसे उसने लगभग पूरा कर लिया है।

(२) भारत सरकारने विविध भारतीय भाषाओंमें बाल-साहित्यके विकासकी आवश्यकताको महसूस कर बच्चोंके लिए उत्कृष्ट पुस्तकोंके प्रत्येक लेखकको ५०० रु० पुरस्कार देनेकी एक योजना बनाई है। इनमें हिन्दी पुस्तकोंपर भी पुरस्कार दिए जाते हैं।

(३) नव साक्षरोंके लिए सर्वश्रेष्ठ पुस्तकोंपर पुरस्कार योजना सन् १९५४ से शुरू है। इसके लिए पुस्तकें किसी भी भारतीय भाषामें भेजी जा सकती हैं। विशिष्ट अनुवाद और रूपान्तरण भी स्वीकृत किए जाते हैं। सिर्फ उनमें वयस्क नव साक्षरोंकी आवश्यकताओंकी पूर्तिका ध्यान रखा जाना चाहिए और वे आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोणोंसे लिखी हुई हैं। सरकार प्रत्येक पुरस्कृत पुस्तककी कुछ प्रतियाँ खरीदकर उन्हें सामुदायिक प्रायोजना क्षेत्रोंमें तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा खंडोंमें वितरित करवाती है। हिन्दीके अलावा जिन पुस्तकोंको पुरस्कार मिलता है उनका हिन्दी अनुवाद करवाया जाता है।

(४) इनके अलावा बच्चों एवं नवसाक्षरोंके लिए शिक्षा-मंत्रालयकी एक योजना, भी है, जिसके अन्तर्गत कुछ पुस्तकें तैयार करवाई जा रही हैं तथा निकल चुकी हैं।

(५) शिक्षा-मंत्रालय हिन्दीके बाल-साहित्यके विकासमें योगदानार्थ प्रकाशकोंको प्रोत्साहित करती है। उसने विदेशी गौरव ग्रन्थ माला तथा जीव विज्ञान पुस्तक माला जैसी कुछ मालाओंको प्रकाशित करानेके प्रयत्न किए हैं।

(६) हिन्दी और दूसरी भारतीय भाषाओंमें बच्चोंकी पुस्तकोंके प्रकाशनकी सुविधाएँ बढ़ानेके उद्देश्यसे मंत्रालयने बाल-पुस्तक न्यासकी एक योजनाको स्वीकृति दे दी है। यह प्रायोजन ७ लाखका है और उसमें मंत्रालय द्वारा तैयार की गई पुस्तकोंको प्राथमिकता दी जाती है।

(७) हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी इलाहाबादने नव-साक्षरोंके लिए क्रमबद्ध पुस्तकोंके प्रकाशन की योजना पेश की थी जिसे मंत्रालयने मान लिया है। इस काममें सोसायटीकी सहायता करनेके लिए तीन व्यक्तियोंकी एक समिति बना दी गई है।

(८) *सामाजिक शिक्षा-साहित्य सम्बन्धी किताबें हिन्दीमें प्रकाशित हो, इसलिए शिक्षा-मंत्रालय* प्रकाशकोंसे सहयोग करता है तथा उन्हें प्रोत्साहन देता है। इस विषयकी पुस्तकोंकी वह निश्चित संख्यामें प्रतियाँ खरीदता है जिन्हें वह सामुदायिक योजना क्षेत्रों, शिक्षा-संस्थाओं, पुस्तकालयों आदिमें वितरित करवाता है। राज्य सरकारें इस मदमें खर्चका ५० प्रतिशत देती हैं, बाकीकी रकम तथा प्रेषण खर्च आदि भारत सरकारका रहता है।

(९) जन-साधारणके लिए 'भारतका एक लोकप्रिय इतिहास' पर ५००० रु. पुरस्कारकी घोषणा की गई है।

(छ) साहित्य निर्माणकी अन्य योजनाएँ

शिक्षा मंत्रालयने हिंदीके प्रचार एवं प्रसारके लिए निम्न लिखित योजनाएँ बनाई हैं और उनपर काम चल रहा है:—

(अ) अहिन्दी भाषी लोगोंकी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखते हुए हिन्दी शिक्षाके लिए वैज्ञानिक ढंगपर हिन्दीकी पाठ मालाएँ तथा पाठ्य पुस्तकें तैयार करना।

(आ) *अहिन्दी भाषी देवनागरी लिपि सीख सके, इसलिए हिन्दी तथा भारतकी विभिन्न भाषाओं* के सचित्र द्विभाषी वर्णमाला चार्ट बनाना।

(इ) मेग्रहिल एन्साक्लोपीडिया ऑफ सायन्सेज अॅण्ड टेक्नॉलॉजीका १५ खण्डोंमें अनुवाद प्रकाशित करना।

(ई) वर्तमान तथा वास्तविक क्षेत्रोंके प्रत्यक्ष कार्योंकी सहायतासे कला और हस्तशिल्प संबंधी विशिष्ट शब्दावलियोंका चयन तथा संकलन।

(उ) हिंदीके प्राचीन तथा नवीन प्रख्यात लेखकोंकी कृतियोंमेंसे पारिभाषिक तथा इतर शब्दोंकी अनुक्रमणिकाएँ, विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा तैयार करवाना।

(ऊ) हिन्दीके अप्राप्य मानक ग्रन्थोंके परिशोधित एवं आलोचनात्मक संस्करण, विश्वविद्यालयों *एवं आलोचनात्मक संस्करण, विश्वविद्यालयों एवं पण्डितोंकी सहायतासे प्रकाशित करना।*

(ए) श्री रामचंद्र वर्मा द्वारा 'शब्द-साधना' लिखवाकर प्रकाशित करवाना।

(ऐ) हिन्दीके प्रसिद्ध लेखकोंकी रचनाओंके बृहत् संकलन, विद्वानों एवं विश्वविद्यालयोंकी सहायता से तैयार करवाना।

(ओ) इतिहास, भौतिक शास्त्र, सामान्य-विज्ञान, गणित आदि शास्त्रीय विषयोंपर हिंदीमें प्रमाणित पाठ्य-पुस्तकें तैयार करवाना।

(ज) केन्द्रीय हिन्दी पुस्तकालय

सन् १९५० में शिक्षामंत्रालयके हिंदी प्रभागमें जो एक पुस्तकालय तैयार किया गया था, वह अब बढ़ते बढ़ते एक अच्छे संदर्भ पुस्तकालयमें बदल गया है। केंद्रीय हिंदी निदेशालयके इस पुस्तकालयमें विश्वकोश, शब्दकोश, भाषा-शास्त्र, मानवशास्त्र एवं विभिन्न सामाजिक तथा वैज्ञानिक

विषय आदिपर बहुविध सन्दर्भ ग्रन्थ एवं साहित्य उपलब्ध है। इस केन्द्रीय पुस्तकालयसे सम्बद्ध चार प्रादेशिक पुस्तकालयोंकी स्थापना पर विचार चल रहा है।

४. हिन्दी शिक्षण एवं प्रशिक्षणके प्रयत्न

(क) केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण मण्डल

सन् १९५२ से आगरामें अखिल भारतीय हिन्दी परिषद द्वारा एक अखिल भारतीय हिन्दी महाविद्यालय अहिन्दी भाषी राज्योंके हिन्दी शिक्षकोंकी ट्रेनिंगके लिए चलाया जा रहा था। सन् ५५–५६ से केंद्रीय सरकारने उसका पूरा खर्च देना शुरू कर दिया था। उपर्युक्त महाविद्यालयके लिए १९५९ में भारत सरकाने केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण मण्डल नामकी एक स्वशासी संस्था कायम की। महाविद्यालयको पुनर्गठित कर उसे प्रशिक्षण एवं अनुसन्धानकी आदर्श संस्थाके रूपमें बदल देनेका काम इस मण्डलको सौंपा गया। यह मण्डल सरकार-नियुक्त एक अध्यक्ष, भारत सरकारके दो प्रतिनिधि, केन्द्रीय शिक्षामंत्रालय द्वारा नियुक्त १३ अन्य सदस्य तथा हिन्दीके विकासके लिए काम करनेवाली १७ संस्थाओंके एक एक प्रतिनिधिसे बना है। मण्डलने ता. १–१–१९६१ से अ. भा. हिन्दी महाविद्यालय आगराका नाम बदलकर केन्द्रीय हिन्दी शिक्षक महाविद्यालय आगरा रख दिया है। केन्द्रीय सरकारकी विज्ञप्ति तथा मण्डलके उद्देश्य-पत्रके अनुसार इस महाविद्यालयमें हिन्दी अध्यापकोंका प्रशिक्षण, हिन्दीके उच्च साहित्यका अध्ययन, हिंदी शिक्षण पद्धतिमें अनुसन्धान तथा हिन्दी एवं अन्य प्रादेशिशिक भाषाओंके तुलनात्मक अध्ययन आदिकी सुविधाएं प्रदान की जाएँगी। महाविद्यालय 'हिन्दी शिक्षण प्रवीण', 'हिन्दी शिक्षण पारंगत' तथा 'हिन्दी शिक्षण निष्णात' की परीक्षाएं चलाता है।

(ख) अहिन्दी राज्योंमें हिन्दी-अध्यापक-शिक्षण-कालेज

हिन्दी शिक्षा समितिकी सिफारिशके अनुसार केन्द्रीय सरकारने कई अहिन्दी राज्योंमें स्वतन्त्र रूपसे हिन्दी प्रशिक्षण महविद्यालयोंकी स्थापना की है और वे अपने-अपने राज्योंके शिक्षा-विभाग द्वारा संचालित होते हैं। उनका पूरा खर्च केन्द्र सरकार देती है पर उनका सम्बन्ध केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण म डलसे या महाविद्यालयसे नहीं है, यद्यपि वैसे प्रयत्न चल रहे हैं। हिन्दी अध्यापकोंके प्रशिक्षण की योजनामें कई अहिन्दी भाषी राज्य शामिल हो चुके हैं। आन्ध्रप्रदेश, बम्बई, केरल, असम, मैसूर, मद्रास राज्योंमें तथा त्रिपुरा, अन्दमान और निकोबार द्वीपमें हिन्दी अध्यापकोंके प्रशिक्षण की व्यवस्था हैं।

(ग) अहिन्दी भाषी राज्योंमें हिन्दी अध्यापकोंकी नियुक्ति

विभिन्न पंचवार्षिक योजनाओंके अधीन अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें हिन्दी अध्यापकोंको नियुक्त करनेकी योजना है। सम्बद्ध राज्य सरकारोंसे कहा गया था कि वे अपने बजटमें इस योजनाके लिए आवश्यक व्यवस्था करें। केन्द्रीय सरकारने तदर्थ अपनी ओरसे ६० प्रतिशतसे अधिक रकमके अनुदान दिए। केन्द्र प्रशासित क्षेत्रोंमें अनुदानशत प्रतिशत थे। माध्यमिक विद्यालयोंमें हिन्दी अध्यापकोंकी

नियुक्तिके लिए भी केन्द्रीय सरकारने अनुदान दिए हैं। खेद है, कुछ राज्य सरकारोंने इस योजनासे कोई लाभ नही उठाया और न उसपर अमल किया।

(घ) त्रिभाषा सिद्धान्तका माध्यमिक स्कूलोंमें अमल तथा अहिन्दी भाषी राज्योंमें विद्यार्थियोंको हिन्दी सिखाना

केन्द्रीय शिक्षा परामर्श बोर्डने जनवरी १९५६ के अपने २३ वें अधिवेशनमें माध्यमिक स्कूलोमे भाषा-शिक्षाके लिए दो सूत्र तैयार किए थे जिनमे हिन्दीकी शिक्षा भी शामिल थी। इन सूत्रोंपर राज्य सरकारोंके जो विचार आए उन्हे बोर्डके जनवरी ५७ के २४ वें अधिवेशनमें रखा गया। बोर्डको इस बातका सन्तोष रहा कि उसके द्वारा तैयार किए गए दोनो सूत्रोमें निहित एक मुख्य सिफारिश पर—माध्यमिक स्तर पर तीन भाषाओकी पढाईकी अनिवार्य व्यवस्थापर बडी मात्रामें सब सहमत हो गए। काफी सोच-विचार करनेके बाद राष्ट्रीय एकता समितिने माध्यमिक स्कूलोकी पढाईमें त्रिभाषा सिद्धान्तको अपना लेने पर जोर दिया था और अगस्त '६१मे मुख्य मन्त्रियोंके सम्मेलनमें उसे स्वीकार कर लिया गया था। तदनुसार यह त्रिभाषा सूत्र माध्यमिक स्तरपर शिक्षाकी भारतीय नीतिका रूप ग्रहण कर चुका है —और विभिन्न राज्य उसपर या तो चल रहे हैं या चलनेके प्रयत्नमें है। इसका अर्थ यह हुआ कि पूरे भारतमें सर्वत्र माध्यमिक स्तरपर हिंदीकी पढाई अनिवार्य हो जाएगी। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, केन्द्रीय सरकारने माध्यमिक स्कूलोमें हिन्दी अध्यापकोकी नियुक्तिके लिए अनुदान भी दिए हैं। आज प्राय अहिंदी राज्योंमें स्कूलोमें हिंदी अध्यापककी जगह रहती है।

(ङ) विश्वविद्यालयों तथा अन्य उच्च संस्थाओंमें हिन्दीको प्रोत्साहन

केन्द्रीय शिक्षा परामर्श बोर्डने नवम्बर १९५३ के अपने २० वें अधिवेशनमें सिफारिश कर विश्वविद्यालयोका ध्यान अन्य भारतीय एव विदेशी भाषाओसे हिन्दीमें पाठ्य-पुस्तक तैयार करनेके लिए अकादमी एव ब्यूरोकी स्थापनाकी तरफ आकर्षित किया था। विभिन्न विश्वविद्यालयोंने तदनुसार कदम उठाए और काफी काम किया।

सरकार द्वारा प्रेरित विश्वविद्यालय अनुदान आयोगने हिन्दीके विश्वविद्यालयोकी कई योजनाओंको धन प्रदान किया है जिससे कि हिन्दीके प्रचार एव विकासका काम आगे बढता रहे। यह आयोग विश्वविद्यालयोको उनके हिन्दी विभागोको विकसित करनेके लिए तथा जहां नही है, वहां उन्हें कायम करनेके लिए भी अनुदान देता है।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोगने शिक्षाके माध्यमपर विचार करते हुए राष्ट्रभाषा हिन्दीके भाषा-ज्ञानकी आवश्यकतापर जोर दिया है और सघीय भाषाकी लिपिके रूपमें देवनागरी लिपिके प्रयोगकी बात मान ली है। विश्वविद्यालयीन स्तरपर ऐच्छिक हिन्दी माध्यमको भी स्वीकृति दे दी गई है।

शिक्षा समितिकी इस योजनापर जब उचित प्रतिक्रिया नहीं हुई तो योजनामें संशोधन किया गया। हिन्दीकी ओर आकृष्ट करनेके लिए इण्टरके दर्जेसे हिन्दीको ऐच्छिक विषयके रूपमें लेकर अध्ययन करनेवाले लड़को तथा लड़कियोको सहायता देनेकी व्यवस्था योजनामें अब है। डाक्टरेटके लिए अध्ययन योजना अलग

है। जहाँ हिन्दी के उच्च अध्ययनकी सुविधा नहीं है, ऐसे अहिन्दी भाषी राज्योंके विद्यार्थियोंके लिए यह सुविधा की गई है। हिन्दी भाषी प्रदेशोंके विद्यार्थी भी योजनाका उपयोग हिन्दीके उच्च अध्ययनके उस हिस्सेके लिए ले सकते हैं जिस अध्ययनकी व्यवस्था उनके यहाँ न हो। इस योजनाके अन्तर्गत अब वार्षिक ११० छात्रवृत्तियोंकी व्यवस्था है।

हिन्दीके उच्च अध्ययनके लिए छात्रवृत्तियां

सन् १९५५–५६ में हिन्दी-शिक्षा समितिके सुझावानुसार एक योजना चालू की गई थी, जिसके अधीन अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंके उन व्यक्तियोंको छात्र-वृत्तियाँ दी जाती हैं जो हिन्दी भाषी राज्योंमें हिन्दीका उच्चतर अध्ययन करना चाहते हैं। उस समय हिन्दीके अध्ययनके लिए कुल १२ छात्र-वृत्तियाँ निर्धारित थीं।

(च) केन्द्रीय सरकारके अहिन्दी भाषी कर्मचारियोंको हिन्दी पढ़ाना––शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालयने सरकारके अहिन्दी भाषी कर्मचारियोंको हिन्दी पढ़ानेके लिए दफ्तरोंके बादके समयमें सन् १९५२ में कक्षाएँ शुरू की थीं। एक परीक्षा 'प्रबोध' नामकी शुरू की गई जिसका स्तर 'अवर बुनियादी स्तर' का था। हिंदी शिक्षणको संगठित रूप देनेके लिए तथा व्यापक बनानेके लिए सन् १९५५ में स्वराष्ट्र मंत्रालय तथा शिक्षा मंत्रालयकी संयुक्त समिति बनाई गई। इस समितिने हिंदी शिक्षणकी एक सांगोपांग योजना बनाई जिसके अनुसार काम किया गया। सबसे पहले कर्मचारियोंके वर्गीकरण किए गए।

(क) हिंदी भाषी तथा हिन्दी जाननेवालोंका,
(ख) पंजाबी, उर्दू तथा हिंदीसे मिलती जुलती भाषाओंवालोंका,
(ग) बंगला, मराठी, गुजराती आदि सहोदर भाषाओंवालोंका,
(घ) दक्षिण भाषा भाषियों का। 'क' वर्ग को छोड़कर तीन प्रकारके पाठ्यक्रम बनाए गए। 'प्रबोध' तो 'घ' के लिए शुरू थी ही।

'ग' वर्गके लिए हिंदी प्रवीण तथा 'ख' वर्गके लिए 'हिंदी प्राज्ञ' शुरु की गई।

आगे चलकर सरकारने योग्यता क्रमसे नगद पुरस्कार देनेकी भी व्यवस्था की। प्रथम पुरस्कार ––३०० रु., १० तक द्वितीय पुरस्कार––२०० रु. प्रत्येक २० तक तृतीय पुरस्कार–१०० रु. प्रत्येक ७० तक चतुर्थ पुरस्कार ५० रु. प्रत्येक।

हर बार कितने पुरस्कार दिए जाएँगे; यह हर परीक्षाओंमें पास होने वाले कर्मचारियोंकी संख्याको देखकर निश्चित किया जाता है।

उद्देश्य यह था कि सरकारी कर्मचारी सरकारी कामको हिन्दीमें करनेके लिए आवश्यक हिन्दी-ज्ञान प्राप्त कर सकें। गृह मंत्रालयने भी सन् १९५५ से दफ्तरके समयमें ही दिल्ली तथा दिल्लीसे बाहर हिन्दी कक्षाएँ प्रारम्भ कीं। पहले तो यह नियम था कि जो कक्षाओंमें उपस्थित रहें, उन्हें ही परीक्षाओंमें बैठने दिया जाए। लेकिन १९५७ से हिन्दी प्रबोध एवं प्राज्ञ परीक्षाके लिए सभी कर्मचारियोंको अनुमति दे दी गई, फिर चाहे वे कक्षाओंमें उपस्थित रहें या न रहें।

ऐसे केन्द्र कि जहाँ कर्मचारियोंको हिन्दी पढानेका इन्तजाम है, फिलहाल पूरे हिन्दुस्तानमें लगभग १२५ हैं। इस योजनामे पढाईकी फीस नही ली जाती, कक्षाएँ कार्यालयके समयमें लगतीं, परीक्षाओंके लिए विशेष आकस्मिक छुट्टियाँ दी जाती, ऊँचे नबरोमे पास होने वालोको नकद पुरस्कार दिए जाते और सर्विस बुकमे परीक्षाओका उल्लेख कर दिया जाता है। १ जनवरी १९६१ को ४५ वर्षसे जिनकी आयु कम थी उनके लिए हिन्दी माध्यमसे प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया गया है। अब लगभग ४० हजार प्रशिक्षार्थी प्रति वर्ष इस योजनासे शिक्षित हो सकते हैं। सन् १९६० में दिल्लीमें हिन्दीका एक टाइपराइटिंग तथा स्टेनोग्राफीका केन्द्र खुला, बादमे दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रासमे उसके ४ और नए केन्द्र खुले। अब प्रति वर्ष २००० टाइपिस्ट तथा ५०० स्टेनोग्राफर प्रशिक्षित किए जा सकते है।

(छ) **गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा सचालित विभिन्न हिन्दी परीक्षाओंको मान्यता**—देशमें विभिन्न हिन्दी सस्थाओं द्वारा प्रचलित हिन्दी परीक्षाओको मान्यता देनेके प्रश्नपर १९५३से विचार किया जा रहा था। हिन्दी शिक्षा समितिने परीक्षाओकी मान्यता के प्रश्नपर कई समितियोंके माध्यमसे खोजबीन तथा सोच-विचार किया। अलग-अलग सस्थाओ द्वारा सचालित विभिन्न परीक्षाओके स्तर भी एक-से नही थे। अत. उन सबके स्तरोका नाम मानकीकरण आवश्यक था। हर्षकी बात है कि आज विविध सस्थाओ द्वारा परीक्षाओके स्तर निर्धारित हो चुके है और केन्द्रीय सरकार द्वारा उन्हें मान्यता प्राप्त हो गई हैं। केन्द्र अब तक ऐसी १५ सस्थाओकी परीक्षाओको मान्यता दे चुका हैं। शिक्षा मंत्रालय द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाकी 'परिचय', 'कोविद' तथा 'रत्न' परीक्षाओको क्रमशः मैट्रिक, इटर तथा बी. ए की हिन्दी योग्यताके समकक्ष मान्यता दी जा चुकी है।

५. देवनागरी लिपिमें सुधार

देवनागरी लिपिमे सुधार करनेके लिए उत्तरप्रदेशकी सरकारने एक अखिल भारतीय सम्मेलन बुलाया था जिसमें प्रायः सब राज्योके मुख्य-मत्री शिक्षा-मत्री, केन्द्रीय सरकारके कतिपय मत्रीगण, शिक्षा-मत्रालयके अधिकारी, विभिन्न विश्वविद्यालयोके प्रमुख भाषाविद् एव साहित्यिक महानुभाव आदि उपस्थित हुए थे। *डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् उस सम्मेलनके अध्यक्ष थे।* सम्मेलनका उद्देश्य देवनागरी लिपिमे इस तरहसे सुधार करनेका था जिससे वर्तमान मुद्रण आविष्कारोका अभीष्ट उपयोग हो सके तथा उसके मुद्रणमे सरलता, प्रयत्नलाघव तथा सौष्ठवका समावेश हो सके। टकण-यत्रोके कुंजी पटलकी भी समस्या थी ही। लेकिन छपाईकी दृष्टिसे लिपि-सुधारकी समस्याका विशेष महत्व था। इस सम्मेलनने देवनागरी लिपिमे सुधारकी जो सिफारिशे की थी, उन्हे केन्द्रीय सरकारने सन् १९५५ में मान लिया था। लेकिन स्वयं उत्तरप्रदेशमें तथा अन्यत्र उन पर पुनर्विचार होने लगा था और इसलिए उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सन् १९५७ मे एक दूसरा लिपि सुधार सम्मेलन निमन्त्रित किया गया। भारत सरकारके शिक्षा-मत्रालयने इस सम्मेलनकी सिफारिशोंपर गौर करनेके लिए तथा लिपि सुधारकी समस्याको हमेशा के लिए निपटा डालनेकी दृष्टिसे ४ अगस्त १९५९ को अखिल भारतीय स्तरपर विशेषज्ञोंका एक सम्मेलन दिल्लीमें आमत्रित किया। तदनतर राज्योंके विशेषज्ञ सम्मेलनोकी सिफारिशोंपर विचारार्थ सब राज्योंके शिक्षा-मत्रियोंकी ८, ९ अगस्त १९५९ को तुरन्त एक परिषद् शिक्षा मत्रालय द्वारा बुलाई गई। इस परिषदने उत्तर

प्रदेशके दूसरे भाषा-सम्बन्धी सम्मेलनकी सिफारिशोंको तथा उपयुक्त विशेषज्ञ सम्मेलन के निष्कर्षोंको कुछ स्पष्टीकरणात्मक टिप्पणियोंके साथ स्वीकृति प्रदान कर दी। तबसे देवनागरी लिपि सुधार सम्बन्धी बहसका अन्त-सा हो गया है।

अन्तिम रूपसे स्वीकृत देवनागरी लिपि अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः

क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ड़, ढ़, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष, ज्ञ।

६. हिन्दी टाइप राइटर तथा टेलीप्रिंटरके कुंजी-पटलका मानकीकरण

देवनागरी लिपिमें सुधारके बारेमें प्रथम सम्मेलनकी सिफारिशोंको भारत सरकारने पहले स्वीकृति प्रदान कर दी थी और इसलिए सन् १९५५ में हिन्दी टाइप राइटर और हिन्दी टेलीप्रिंटरके कुंजी पटलके मानकीकरणके लिए तीन सदस्योंकी एक उपसमितिका शिक्षा-मंत्रालय द्वारा गठन किया गया था। इस उपसमितिमें डाक तथा तार निदेशालय, मुद्रण और लेखन सामग्री नियंत्रणके कार्यालय तथा शिक्षा-मंत्रालय का एक एक प्रतिनिधि था। समितिने नवम्बर १९५५ में अपनी पूरी रिपोर्ट पेश की तथा उसने जो कुंजी-पटल तैयार किया था वह भी प्रकाशित किया। उस कुंजी-पटलपर विभिन्न स्रोतोंसे कुल तीन सौ सुझाव आए। उपसमितिने देशभरमें दौरा भी किया और टाइप राइटर बनानेवाली अनेक संस्थाओंसे बातचीत की। इसके बाद समितिने अपनी अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसके अन्तर्गत हिन्दी टाइप राइटरोंका एक कुंजीपटल प्रस्तावित किया गया था।लेकिन तब तक देवनागरी लिपिमें-सुधार सम्बन्धी सरकारी तथा सर्वमान्य निष्कर्षोंमें अन्तर पड़ गया, इसलिए उस कुंजी पटलपर फिरसे विचार करना पड़ा। अब टाइप राइटरका मानक कुंजी पटल अन्तिम रूपसे निर्धारित हो चुका है तथा तदनुसार हिन्दी टाइप राइटरोंके निर्माणका आर्डर भी कम्पनियोंको दिया जा चुका है। उसके राहकी सारी अड़चनें दूर हो गई हैं। हाँ टेलीप्रिंटरका विषय अभी विचाराधीन है।

७. हिन्दी आशुलिपिकी मानक पद्धतिका निर्णय

शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसन्धान मंत्रालय बहुत दिनों पहलेसे हिन्दी और यथासम्भव अन्य भारतीय भाषाओंके लिए भी एक मानक आशुलिपि पद्धतिके विकासके प्रयत्न कर रहा था। इस प्रश्नपर गहराईसे विचार करनेके लिए तथा ठोस सुझाव देनेके लिए मंत्रालयने सन् १९५५ में एक समिति बनाई थी। उस समितिने अपनी रिपोर्ट पेश कर सुझाव दिया था कि हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओंके लिए आशुलिपिकी एक मानक पद्धतिका विकास करनेके लिए सबसे पहला काम यह होना चाहिए कि शब्दके रूप और ध्वनिकी दृष्टिसे हिन्दी और दूसरी भारतीय भाषाओंका विश्लेषण किया जाए। समितिकी इस सिफारिशको स्वीकार कर सरकारने गौहाटी, कलकत्ता, उत्कल, मद्रास, मैसूर, तिरुवांकुर, आन्ध्र और गुजरातके विश्वविद्यालयोंको यह काम सुपुर्द किया था। शब्दके रूप और ध्वनिकी दृष्टिसे हिन्दीके विश्लेषणका काम डेक्कन कालेज, पूनाको सौंपा गया था। सरकारने तदर्थ अनुदान दिए हैं।

८. हिन्दीमें वैज्ञानिक एवं प्राविधिक साहित्यकी प्रदर्शनियाँ

हिन्दीके वैज्ञानिक और प्राविधिक साहित्यके प्रचारार्थ प्रदर्शनियोके आयोजन सरकार द्वारा किए जाते है। सन् १९५७ मे नई दिल्ली मे तथा बादमें दिल्ली विश्वविद्यालय, इन्दौर, बम्बई, पटना और लखनऊमे तथा फिलहाल राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी रजत जयन्तीके अवसरपर वर्धामें ये प्रदर्शनियाँ की गई और विभिन्न अखिल भारतीय सम्मेलनोके अवसरपर शिक्षा-मत्रालय हिन्दी प्रकाशनोके स्टाल लगवाता है।

९. राज्य सरकारोंको अनुदान

अपने-अपने राज्योमे हिन्दी प्रचारके लिए राज्य, विशेषकर अहिन्दी राज्य जो योजनाएँ बनाते हैं उन पर सोच-विचार करनेके बाद उन योजनाओ पर होनेवाले खर्चके काफी बडे हिस्सेका बोझ उठा लेती है। पिछले सालोसे केन्द्रीय सरकारने विभिन्न राज्य सरकारोको तथा केन्द्र द्वारा शासित क्षेत्रो एव प्रदेशोको हिन्दीके प्रचार एवं प्रसारके लिए इस तरहसे काफी उदार अनुदान दिए हैं।

जिन अहिंदी भाषी राज्योमें हिंदी पढाई जारी है, वहाँके स्कूलो, कालेजो तथा सार्वजनिक पुस्तकालयोको शिक्षा-मत्रालयने हिंदीकी पुस्तके अनुदानमें देनेका निश्चय किया। शिक्षा मत्रालयकी तदर्थ हिन्दीके *उपन्यास, कहानियाँ, नाटक, कविता, निबन्ध यात्रा-विवरण, जीवनियाँ, सस्कृति इतिहास, विज्ञान, साधारण* ज्ञान आदि की तथा बच्चोकी पुस्तके तथा उनके अनुवाद बहुत बडी तादादमें खरीदनेकी योजना है। पुस्तकोका चुनाव करनेके लिए एक समिति स्थापित की जा रही है।

१०. गैर सरकारी संस्थाओंको अनुदान

शिक्षा-मंत्रालय द्वारा निमत्रित ६ दिसम्बरकी विभिन्न गैर सरकारी सगठनो, अहिन्दी राज्य सरकारके प्रतिनिधियोकी परिषदने स्वेच्छासे हिन्दी प्रचारका काम करनेवाली सस्थाओको आर्थिक मदद की बात पर भी सोच विचार कर निम्नलिखित निर्णय किया था--(अ) हिन्दी प्रचारकी नई सस्थाओको खोलनेके लिए या जो पुरानी सस्थाएँ चल रही हैं उनके सचालनके लिए (आ) अहिन्दी भाषी राज्योमें अहिन्दी भाषा-*भाषियोकी कक्षाओको चलानेके लिए (इ) अहिन्दी क्षेत्रोके लिए प्रचारकोको प्रशिक्षित करने तथा नियुक्त* करनेके लिए (ई) अहिन्दी क्षेत्रोमे हिन्दी किताबे तथा सामयिक पत्रोके पुस्तकालय व वाचनालयोको कायम करनेके लिए (उ) अहिन्दी क्षेत्रोमे हिन्दी प्रचार के लिए प्रचार-साधनोकी खरीदके लिए (ऊ) अहिन्दी क्षेत्रोमे हिन्दी भाषण प्रतियोगिताएँ, वाद-विवाद, नाटक आदि करानेके लिए तथा हिन्दीके विद्वानो द्वारा व्याख्यानमाला सगठित करनेके लिए और हिन्दीके विकास एव प्रचारके लिए, स्वेच्छासे कार्यरत सस्थाओको आर्थिक मदद दी जाए।

राज्य सरकारोको केन्द्रीय सरकार द्वारा हिन्दीके प्रचार एव प्रसारके लिए जो सहायता दी जाती है, उनके बारेमें सम्बन्धित राज्य सरकारको यह छूट रहती है कि वह उसे जैसे वह उचित समझे खर्च करे, किसी भी एजसीसे या किसी भी ढगपर वह काम कर सकती है। लेकिन जो सस्थाएं अखिल भारतीय होती है, उनमेंसे सरकार जिन्हे जिस कामके लिए योग्य आँकती है, उन्हें उन उन कामोके लिए वह आर्थिक

सहायता देती है। लेकिन सरकारकी अनुदान नीतिके बारेमें अनुभव बड़ा अटपटा है। जहाँ काम हो रहा है वहाँ कुछ नहीं दिया जाता, और बहुत-सा अनुदान अपात्र-दानकी तरह व्यर्थ नष्ट हो जाता है। यह भी देखा गया है कि अनुदानकी रकमें पड़ी हैं, योजनाएँ भी कागजपर हैं, लेकिन सम्बन्धित अधिकारी तथा विभाग ही सो रहा है या अव्यवस्थित है।

११. हिन्दी-वर्तनी-समिति

शिक्षा-मंत्रालयने एक वर्तनी (Spelling) समिति बनाई है। इसका काम है यह तय करना कि हिन्दीके शब्द ठीकसे कैसे लिखे जाएँ तथा कौनसा शब्द किस रूपमें ठीक हैं? इसने हिन्दीके शब्दोंकी वर्तनी के सम्बन्धमें कुछ निर्णय किए थे, जिनके बारेमें यह द्विधा पैदा हो गई थी कि वे हिन्दीके बेसिक ग्रामर के नियमों के अनुकूल नहीं बैठते। इसलिए वर्तनी समितिने अपनी चौथी बैठकमें ११ अप्रैल १९६२ को उन पर फिरसे विचार किया। उसने पुनर्निश्चय किया कि उसके निर्णय ही ठीक हैं और उन्हें मान्य समझा जाए। चन्द्रविन्दु के बारेमें यह निश्चय किया गया कि बच्चोंकी पुस्तकोंमें, जहाँ उच्चारण समझाना उद्दिष्ट हो वहाँ नासिका ध्वनिको व्यक्त करनेके लिए चन्द्रविन्दुका अवश्य प्रयोग किया जाए, परन्तु सामान्यतया जहाँ अक्षरके ऊपर मात्रा लगी हो वहाँ चन्द्रविन्दु उच्चारणको व्यक्त करनेके लिए भी अनुस्वारसे ही काम चलाना पर्याप्त होगा।

समितिकी पिछली बैठकोंमें यह सुझाव आया था कि वर्तनीके विषयमें अन्तिम रूपसे निर्णय करनेके लिए एक विस्तृत समिति बनाई जाए। लेकिन यह सुझाव नामंजूर हो गया है, कारण उससे निर्णयोंमें देर होनेकी सम्भावना है।

१२. आकाशवाणीकी हिन्दीके लिए सलाहकार समिति

आकासवाणीके समाचारोंकी हिन्दीके सम्बन्धमें सलाह देनेके लिए सरकारने महाराष्ट्रके भूतपूर्व राज्यपाल श्री श्रीप्रकाशजी की अध्यक्षतामें एक समिति नियुक्त की है। यह कदम ११ संसदीय सदस्योंकी उस समितिकी सिफारिशों पर उठाया गया है, जिसने आकाशवाणीके समाचारोंकी हिन्दी पर विचार किया था। समितिकी रिपोर्ट सितम्बर सन् १९६२ में दी गई थी। समितिने हिन्दीके सरलीकरणका स्वागत करते हुए कहा था कि उन नए मुहावरों तथा शब्दोंका हिन्दीमें प्रयोग किया जाए जो हिन्दीकी प्रकृति के अनुकूल हों तथा हिन्दीमें खप सकें। अब जो नई समिति बनी है उसमें श्री सुमित्रानंदनजी पंत, हरिभाऊ उपाध्याय डॉ. बच्चन, तथा आकाशवाणीकी नई दिल्ली न्यूजसर्विसके डाईरेक्टर महोदय भी हैं।

१३. हिन्दीके विकास एवं प्रचारके लिए विनिमय कार्यक्रमोंकी तीन योजनाएँ

(क) अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें हिन्दीके बारेमें दिलचस्पी पैदा करने और अहिन्दी भाषी तथा हिन्दी भाषी लोगोंमें अधिक सम्पर्क स्थापित करनेके लिए विनिमय कार्यक्रमोंकी कुछ योजनाएँ शिक्षा-मंत्रालय द्वारा बनाई गई हैं तथा वे कार्यान्वित की जा रही हैं।

योजना नं. १—हिन्दी भाषी क्षेत्रमें अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंसे हिन्दी भाषी क्षेत्रोंके हिन्दी अध्यापकोंके सेमिनार (विचार गोष्ठियाँ) आयोजित करना—योजनाका उद्देश्य यह है कि जो लोग अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें हिन्दी पढा रहे हैं, वे समय समय पर हिन्दी क्षेत्रोंमें आएँ और हिन्दी भाषा और उसके साहित्य की समसामयिक प्रवृत्तियोंसे परिचय प्राप्त कर अपने ज्ञानको बढ़ाएँ तथा हिन्दी भाषी क्षेत्रोके अध्यापको और हिन्दी जगतके प्रमुख व्यक्तियोंसे सम्पर्क स्थापित करें। हिन्दी भाषी क्षेत्रके अध्यापको एव विद्वानोको भी इन सेमिनारोंसे अहिन्दी क्षेत्रोमें हिन्दी पढानेकी उलझन युक्त समस्या का निकटसे ज्ञान होता है। ऐसे कई शिक्षक सेमिनार शिक्षा मत्रालयद्वारा संगठित किए जा चुके हैं और किए जा रहे हैं।

योजना नं २—हिन्दी और अहिन्दी क्षेत्रोंके अध्यापकों, कवियों, विद्वानों आदिके एक-दूसरेके क्षेत्रमें व्याख्यान–दौरे—स्थाई परामर्श समितिने व्याख्यानोंके इन दौरोंकी योजना सितम्बर १९५७ मे बनाई थी। १९५७ में तो उस पर अमल नही हो सका, लेकिन उसके बाद हर वर्ष हिन्दी क्षेत्रोंके विद्वानो, अध्यापको आदिको व्याख्यान-प्रवासके लिए अहिन्दी क्षेत्रोंमें भेजा जा रहा है तथा अहिन्दी क्षेत्रोके हिन्दी अध्यापको आदिके दौरे हिन्दी क्षेत्रोमें करवाए जा रहे है। इस कार्यक्रमका उद्देश्य यह है कि हिन्दी और अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंके बीच निकट सम्बन्ध स्थापित हो और दोनो क्षेत्रोंके लोग एक दूसरेके दृष्टिकोणो और कठिनाइयोको समझें।

योजना नं. ३—हिन्दी और अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंके छात्रोंके वाद-विवाद दलों (Debating Teams) को एक-दूसरेके क्षेत्रोंमें भेजनेकी व्यवस्था करना—इस कार्यक्रमके अन्तर्गत यह व्यवस्था है कि राज्योंके स्कूलों और कालेजोंके विद्यार्थियोंके अलग-अलग वाद-विवाद दल प्रतिवर्ष हिन्दी भाषी क्षेत्रोंमे अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें तथा अहिन्दी - भाषा क्षेत्रोंमेंसे हिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें दौरा करें। इस कार्यक्रमका उद्देश्य यह है कि विद्यार्थियोंमें हिन्दीके लिए दिलचस्पी पैदा हो जाए तथा हिन्दीके माध्यमसे सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्रोमे परस्पर सम्पर्क स्थापित होनेमें सहायता मिले।

(ख) विनिमय कार्यक्रम स्थाई परामर्श समिति

सन् १९५९ में इस विनिमय कार्यक्रमोंकी केन्द्रीय योजनामें सरकारको सलाह देनेके लिए एक स्थाई परामर्श समितिकी नियुक्ति शिक्षा-मंत्रालय की ओरसे की गई है जो बार-बार बैठकर उनके बारेमें सोचती है, निर्णय करती है और उनको संगठित करनेमें सहायता देती है। इस समितिमें सरकारी गैर-सरकारी भी व्यक्ति है।

१४. विदेशोंमें हिन्दी-प्रचार

(क) विदेशोंमें बसे भारतीयोको हिन्दी सीखनेकी सुविधाएँ देनेके लिए भारत सरकार प्रति वर्ष कुछ रकम निश्चित करती है। तदर्थ विभिन्न भारतीय दूतावासोंमें ग्रन्थालय खोले गए और विविध कुर्सी आफ्रिका, नेपाल, ब्रिटिश वेस्ट इंडीज गायना, जमेका, फिजी, मारीशस, सीलोन आदि देशोंमें वहां भारतीय

प्रवासी जाकर काफी संख्यामें बस गए हैं, हिन्दीकी कक्षाओंके लिए, शिक्षकों एवं पुस्तकालयोंके लिए तथा विद्यार्थियोंमें पुरस्कारार्थ वितरणके लिए रकमें तय की जाती हैं।

(ख) भारत सरकार उन देशोंमें भी जहाँ कि भारतीय प्रवासी नहीं हैं, प्राध्यापक शिक्षक आदि भेजकर वहाँके विश्वविद्यालयों आदिको हिन्दी शिक्षाकी व्यवस्था करनेके लिए प्रोत्साहित करती है। सरकार ऐसे हिन्दी प्राध्यापकका या तो पूरा वेतन देती है या तदर्थ आंशिक सहायता देती है।

(ग) विदेशोंमें हिन्दी विषयक अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियोंमेंसे जो सर्वश्रेष्ठ होते हैं उनको भारत सरकार विशेष रूपसे पुरस्कृत भी करती है।

(घ) विदेश स्थित अलग अलग विश्वविद्यालयोंको तथा संस्थाओंको उनके पुस्तकालयोंके हिन्दी विभागके लिए भारत सरकार हिन्दी पुस्तकोंके सेट भेंट या दानमें दिया करती हैं। आक्सफोर्ड, डरहम, केम्ब्रिज विश्वविद्यालयोंको तथा नेपालकी स्कूलों एवं संस्थाओंकी ऐसे सेट भेंट किए गए हैं। क्वींसलेंड, तिब्बत, सिक्किम और भूतान, चीन,, पोलैण्ड आदिकी संस्थाओंको भी हिन्दी पुस्तकें आदि दी गई हैं।

(ङ) भारतमें उच्च अध्ययनके लिए आनेवाले आफ्रिकी तथा अन्य देशोंके विद्यार्थियोंको हिन्दी शिक्षा देनेके लिए भारत सरकार कुछ रकम खर्च करती रहती है।

१५. सरकारी कामकाजमें हिन्दीके उपयोगके लिए कुछ कदम

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयकी स्थापना

शुरु-शुरू में हिन्दीके प्रचार एवं विकासका काम शिक्षा एवं वैज्ञानिक अनुसन्धान मंत्रालयके अधीन चला करता था। भावी राजभाषाके रूपमें हिन्दीको महत्व प्राप्त हो जाने पर सन् १९५१ में मंत्रालयके अधीन एक पृथक् हिन्दी इकाई (Hindi Unit) की रचना की गई। जैसे-जैसे काम बढ़ता गया, यह एकक बढ़ कर 'हिन्दी प्रभाग' (Hindi Division) में परिवर्तित हो गया। राजभाषा आयोग तथा संसदीय समितिके अहवालोंके बाद, स्वर्गीय बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डनके मन्तव्यानुसार शिक्षा-मंत्रालयके मातहत एक केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय (Central Hindi Directorate) गठित किया गया। १९६५ तक हिन्दी राजभाषा बन सके इस दृष्टिसे उसे विकसित करने तथा उसका प्रचार एवं प्रसार करनेका काम हिन्दी निदेशालय को सौंपा गया है। हिन्दीकी पारिभाषिक शब्दावली विकसित करनेका काम, प्रमाणित शब्द कोशोंके निर्माणका काम, शासकीय एवं असांविधिक ढंगके प्राविधिक साहित्य के अनुवादका काम और हिन्दीके विकास एवं प्रसारसे जुड़े हुए अन्य कामोंका जिम्मा निदेशालयका है। यह निदेशालय एक सक्षम डायरेक्टरकी देखरेखमें कार्यरत है और उसने हिन्दीके विकास एवं प्रचार-प्रसारके लिए बहुविध प्रयत्न किए हैं।

(१) केन्द्रीय सरकारने ४५ वर्षसे कम आयुवाले अपने कर्मचारियोंको आदेश दिए हैं कि वे अगले पाँच वर्षके भीतर हिन्दी सीखलें ताकि १९६५ तक वे हिन्दीमें काम करने लायक हो जाएँ।

(२) सरकारने यह निश्चय किया है कि सचिवालयके कुछ चुने हुए विभागोंमें जहाँ अधिकतर कर्मचारी हिन्दी जानते हों, परीक्षणके रूपमें फाइलों पर हिन्दीमें नोट लिखनेकी अनुमति दी जाए। प्रारम्भमें

हिन्दी पत्र-व्यवहार सम्बन्धी फाइलोंमें हिन्दीमे नोट लिखनेकी अनुमति दी जाएगी। इसके अलावा हिन्दी भाषी क्षेत्रोमें स्थित केन्द्रीय सरकारके स्थानीय कार्यालयोमें भी फाइलों पर हिन्दीमें नोट लिखनेकी अनुमति दी जाएगी।

इन कार्यवाहियोका उद्देश्य यह है कि सन् ६१–६२ के अन्त तक हिन्दीके सब पत्रोंके उत्तर हिन्दीमें दिए जाने लगे और १९६३–६४ के अन्त तक उन राज्योके साथ जिन्होने हिन्दीको अपनी सरकारी भाषाके रूप मे अपना लिया है अग्रेजीके साथ हिन्दीमे भी पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हो जाए।

सरकारने तीन और निश्चय किए है

(अ) सरकारी प्रस्ताव हिन्दीमे भी प्रकाशित किए जाएँ।

(आ) फार्मो और रजिस्टरोमे अग्रेजीके साथसाथ हिन्दीको भी अपनाया जाए।

(इ) १९६२–६३ से भारत सरकारके गजटके कुछ भाग हिन्दीमें भी प्रकाशित किए जाएँ।

हिन्दी-प्रगतिकी जाँचके लिए स्थाई समिति

स्वराष्ट्र गृह मत्रालय सचिवकी अध्यक्षतामें एक स्थाई समिति बनाई गई है जिसका काम यह देखना है कि केन्द्रीय सरकारके कामकाज में अग्रेजीके साथ साथ हिन्दीको अपनानेके कार्यक्रम पर कितना क्या और कैसा अमल हो रहा है तथा कर्मचारियोको हिन्दी सिखानेमें क्या प्रगति की जा रही है। इस समितिमें केन्द्रीय मत्रालयोके कुछ सचिव भी हैं।

(५) स्वराष्ट्र मत्रीने एक परिपत्र निकालकर सभी मत्रालयोको सूचित किया है कि वे अग्रेजीके स्थान पर हिन्दीके प्रयोगकी योजना बनाएँ तथा अधिकारी यह देखें कि उनको कहाँ तक पूरा किया गया है। वे हिन्दी टाइपराइटर तथा सन्दर्भ ग्रन्थ आदि की भी सुविधाएँ प्रदान करें।

(६) केन्द्रीय सचिवालयमें हिन्दीका कार्य चलानेके लिए "हिन्दी असिस्टेंट" नियुक्त किए गए है। केन्द्रीय लोक सेवा आयोग हिन्दी असिस्टेटो की प्रतियोगिता परीक्षाए आयोजित करता है।

(७) हिन्दीमे प्राप्त पत्रोके उत्तर हिन्दीमे देने तथा हिन्दी भाषी क्षेत्रोकी सरकारोंके साथ पत्र-व्यवहार करने आदिके लिए अग्रेजी के अलावा हिन्दी भाषाका प्रयोग प्राधिकृत कर दिया गया है।

भारत सरकारके अन्य मन्त्रालयों द्वारा हिन्दी कार्य

१. रेलवे-मन्त्रालय

हिन्दी पत्रोंके उत्तर हिन्दीमें

रेल मत्रालयके कार्यालयमें जो हिन्दीके पत्र आते है, उनके उत्तर हिन्दीमें दिए जाते हैं। यह व्यवस्था दिसम्बर १९५२ मे शुरू की गई थी। क्षेत्रीय रेल प्रशासनोके प्रधान कार्यालयोमें भी हिन्दी पत्रोंके हिन्दीमें उत्तर देनेकी व्यवस्था कर ली गई है। रेलवेके अन्य कार्यालयोमें भी यह व्यवस्था की जा रही है। जिन

प्रवासी जाकर काफी संख्यामें बस गए हैं, हिन्दीकी कक्षाओंके लिए, शिक्षकों एवं पुस्तकालयोंके लिए तथा विद्यार्थियोंमें पुरस्कारार्थ वितरणके लिए रकमें तय की जाती हैं।

(ख) भारत सरकार उन देशोंमें भी जहाँ कि भारतीय प्रवासी नहीं हैं, प्राध्यापक शिक्षक आदि भेजकर वहाँके विश्वविद्यालयों आदिको हिन्दी शिक्षाकी व्यवस्था करनेके लिए प्रोत्साहित करती है। सरकार ऐसे हिन्दी प्राध्यापकका या तो पूरा वेतन देती है या तदर्थ आंशिक सहायता देती है।

(ग) विदेशोंमें हिन्दी विषयक अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियोंमेंसे जो सर्वश्रेष्ठ होते हैं उनको भारत सरकार विशेष रूपसे पुरस्कृत भी करती है।

(घ) विदेश स्थित अलग अलग विश्वविद्यालयोंको तथा संस्थाओंको उनके पुस्तकालयोंके हिन्दी विभागके लिए भारत सरकार हिन्दी पुस्तकोंके सेट भेंट या दानमें दिया करती हैं। आक्सफोर्ड, डरहम, केम्ब्रिज विश्वविद्यालयोंको तथा नेपालकी स्कूलों एवं संस्थाओंकी ऐसे सेट भेंट किए गए हैं। क्वींसलेंड, तिब्बत, सिक्किम और भूतान, चीन,, पोलैण्ड आदिकी संस्थाओंको भी हिन्दी पुस्तकें आदि दी गई हैं।

(ङ) भारतमें उच्च अध्ययनके लिए आनेवाले आफ्रिकी तथा अन्य देशोंके विद्यार्थियोंको हिन्दी शिक्षा देनेके लिए भारत सरकार कुछ रकम खर्च करती रहती है।

१५. सरकारी कामकाजमें हिन्दीके उपयोगके लिए कुछ कदम

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयकी स्थापना

शुरु-शुरू में हिन्दीके प्रचार एवं विकासका काम शिक्षा एवं वैज्ञानिक अनुसन्धान मंत्रालयके अधीन चला करता था। भावी राजभाषाके रूपमें हिन्दीको महत्व प्राप्त हो जाने पर सन् १९५१ में मंत्रालयके अधीन एक पृथक् हिन्दी इकाई (Hindi Unit) की रचना की गई। जैसे-जैसे काम बढ़ता गया, यह एकक बढ़ कर 'हिन्दी प्रभाग' (Hindi Division) में परिवर्तित हो गया। राजभाषा आयोग तथा संसदीय समितिके अहवालोंके बाद, स्वर्गीय बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डनके मन्तव्यानुसार शिक्षा-मंत्रालयके मातहत एक केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय (Central Hindi Directorate) गठित किया गया। १९६५ तक हिन्दी राजभाषा बन सके इस दृष्टिसे उसे विकसित करने तथा उसका प्रचार एवं प्रसार करनेका काम हिन्दी निदेशालय को सौंपा गया है। हिन्दीकी पारिभाषिक शब्दावली विकसित करनेका काम, प्रमाणित शब्द कोशोंके निर्माणका काम, शासकीय एवं असांविधिक ढंगके प्राविधिक साहित्य के अनुवादका काम और हिन्दीके विकास एवं प्रसारसे जुड़े हुए अन्य कामोंका जिम्मा निदेशालयका है। यह निदेशालय एक सक्षम डायरेक्टरकी देखरेखमें कार्यरत है और उसने हिन्दीके विकास एवं प्रचार-प्रसारके लिए बहुविध प्रयत्न किए हैं।

(१) केन्द्रीय सरकारने ४५ वर्षसे कम आयुवाले अपने कर्मचारियोंको आदेश दिए हैं कि वे अगले पाँच वर्षके भीतर हिन्दी सीखलें ताकि १९६५ तक वे हिन्दीमें काम करने लायक हो जाएँ।

(२) सरकारने यह निश्चय किया है कि सचिवालयके कुछ चुने हुए विभागोंमें जहाँ अधिकतर कर्मचारी हिन्दी जानते हों, परीक्षणके रूपमें फाइलों पर हिन्दीमें नोट लिखनेकी अनुमति दी जाए। प्रारम्भमें

रेल कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेकी व्यवस्था

रेलवेका अधिक-से-अधिक काम हिन्दीमें हो, इसके लिए सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि रेल कर्मचारी जल्द-से-जल्द हिन्दी सीखें। भारतीय रेलवेमें पहले, दूसरे और तीसरे दर्जेके लगभग ढाई लाख कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानी है। रेल कर्मचारी देशके हर कोनेमें फैले हुए हैं। इसलिए उनको हिन्दी सिखानेके काममें कई व्यावाहरिक कठिनाइयाँ है। लेकिन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी अधिकाधिक कर्मचारियोंको निर्धारित कार्यक्रमके अनुसार हिन्दी सिखानेकी व्यवस्था की जा रही है। इस समय विभिन्न क्षेत्रोंमें ८३ हिन्दी शिक्षण केन्द्र चल रहे हैं और इस समय इन केन्द्रोंमें १४००० से कुछ अधिक रेल कर्मचारी हिन्दी सीख रहे हैं। हर क्षेत्रमें अधिकाधिक हिन्दी शिक्षण-केन्द्र खोलनेकी व्यवस्था की जा रही है। केन्द्रीय सरकारके कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेके लिये भारत सरकारकी ओरसे देशके सभी भागोंमें हिन्दी कक्षाएँ चलाई जा रही हैं। रेल कर्मचारी भी इस सुविधासे लाभ उठा रहे है। इस सरकारी व्यवस्थाके अतिरिक्त रेल कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेके लिए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रासका भी सहयोग प्राप्त किया गया है। हिन्दी टाइप और शार्ट हैंड सिखानेकी भी व्यवस्था की गई है। रेलवे स्टेशनोंपर हिन्दीमें तार देनेकी व्यवस्था धीरे-धीरे बढाई जा रही है। हिन्दी क्षेत्रके कुछ प्रमुख स्टेशनोंपर हिन्दीमें तार भेजनेकी व्यवस्था की गई है। आवश्यकतानुसार यह व्यवस्था क्रमशः और स्टेशनोंपर भी की जा रही है। कर्मचारियोंको हिन्दी 'मोर्स' सिखानेकी व्यवस्था कई केन्द्रोंमें की जा रही है।

कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेकी दृष्टिसे रेलवे बोर्डने केन्द्रमें तथा अलग-अलग रेलवे प्रशासनोंमें एक-एक हिन्दी अनुभागकी रचना की है। रेलवे मन्त्रालय—(१) प्रबोध, (२) प्रवीण तथा (३) प्राज्ञ नामक तीन परीक्षाओंको चलाता है। इन परीक्षाओंमें तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा द्वारा सचालित परीक्षाओंमें सफल होनेवाले व्यक्तियोंके लिए १०० इनाम रखे गए हैं, जो सालमें दो बार दिए जाते हैं। पहला इनाम ३०० रु० का है। पुरस्कार विजेताओंमेंसे १० प्रतिशतको प्रत्येकको २०० रु, बीस प्रतिशतको प्रत्येकको १०० रु. तथा ७० प्रतिशतको प्रत्येकको ५० रु, इस तरह पुरस्कार योजना है। पुरस्कारकी आधी रकम हिन्दी किताबोंके रूपमें तथा आधी नकद दी जाती है।

हिन्दी-प्रचारके अन्य कार्य

यह निर्णय किया गया है कि अब से रेल मन्त्रालय द्वारा जो करार या समझौते किसी अन्य सरकार या प्राइवेट फर्मसे किए जाएँगे उनका हिन्दी रूपान्तर भी तैयार किया जाएगा। भारत सरकारके गजटके कुछ अश अँग्रेजीके साथ-साथ हिन्दीमें प्रकाशित करनेका प्रबन्ध किया जा रहा है। रेल मन्त्रालयके प्रस्ताव अब अँग्रेजीके अतिरिक्त हिन्दीमें प्रकाशित किए जा रहे हैं।

स्पष्ट है कि जो कर्मचारी हिन्दी सीख रहे हैं या सीख चुके हैं उनको हिन्दीमें काम करनेका अवसर दिया जाए। इस उद्देश्यसे रेल मन्त्रालयकी जिन शाखाओंमें ७५ प्रतिशत या इससे अधिक कर्मचारियोंको हिन्दीका व्यवहारिक ज्ञान है, वहाँ परीक्षणके रूपमें सामान्य फाइलोंमें हिन्दीमें टिप्पणी लिखनेकी अनुमति दी गई है। हिन्दी क्षेत्रोंमें स्थित रेलवे कार्यालयोंमें भी यह प्रथा अपनाई जा रही है।

राज्य सरकारोंने हिन्दीको राजभाषा स्वीकार कर लिया है, मार्च, १९६४ से उनके साथ भी पत्र-व्यवहारमें अँग्रेजीके साथ-साथ हिन्दीका प्रयोग किया जाएगा।

पिछले कई वर्षोंसे रेल मंत्रालयकी वार्षिक रिपोर्ट और बजट सम्बन्धी अन्य विवरण अँग्रेजीके साथ-साथ हिन्दीमें प्रकाशित किए जाते हैं। विगत बजटमें १३ रिपोर्ट, विवरण आदि अंगरेजी और हिन्दीमें साथ-साथ प्रकाशित किए गए हैं।

रेल संहिताओं, नियमावलियों आदिका हिन्दी अनुवाद

हिन्दीमें सरकारी काम आरम्भ करनेसे पहले यह आवश्यक है कि रेलवेके काममें जिन जिन नियम पुस्तकों, संहिताओं आदिका प्रयोग होता है, वे हिन्दीमें उपलब्ध हों। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए एक निर्धारित कार्यक्रमके अनुसार रेलवेकी नियम-पुस्तकोंका हिन्दी अनुवाद तैयार किया जा रहा है। रेलवे बोर्डने यह भी निर्णय किया है कि अब से जो नियम पुस्तकें प्रकाशित की जाएँ, वे अँगरेजी-हिन्दीमें हों। एक अन्य निर्णयके अनुसार वर्तमान सभी नियम-पुस्तकें १९६५ तक अँग्रेजी-हिन्दीमें प्रकाशित कर दी जाएँगी। रेलवेके विभिन्न कार्यालयोंमें जो फार्म काममें लाए जाते हैं, वे अँगरेजी और हिन्दीमें साथ-साथ जारी किए जा रहे हैं। रेल प्रशासनोंसे कहा गया है कि १९६५ तक सभी फार्म हिन्दी और अँगरेजीमें जारी करनेकी व्यवस्था करें।

कर्मचारियोंसे सम्बन्धित परिपत्र और अधिसूचनाएँ आदि हिन्दीमें

रेल मन्त्रालयके कार्यालयमें कर्मचारियोंसे सम्वन्धित परिपत्र, अधिसूचनाएँ आदि अँग्रेजी और हिन्दीमें साथ-साथ जारी की जाती है। चौथे दर्जेके कर्मचारियोंके आवेदन-पत्रोंका उत्तर भी अँग्रेजीके अतिरिक्त हिन्दीमें देनेकी व्यवस्था की जा रही है। क्षेत्रीय रेलोंको भी निर्देश दिया गया है कि कर्मचारियों, विशेप रूपसे चौथे दर्जेके कर्मचारियोंसे सम्वन्धिति परिपत्र आदि अँग्रेजीके अतिरिक्त हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओंमें जारी करनेकी व्यवस्था की जाए।

अखिल भारतीय समय-सारणी और क्षेत्रीय रेलोंकी समय-सारणियाँ पिछले कई वर्षोंसे हिन्दीमें भी प्रकाशित की जा रही हैं। कुछ रेलोंके समाचार-पत्र आदि भी अँग्रेजीके अतिरिक्त हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओंमें प्रकाशित किए जा रहे हैं। अगस्त, १९६० से रेल मन्त्रालयकी ओरसे "भारतीय रेल" नामकी मासिक हिन्दी-पत्रिका प्रकाशित की जा रही है। इसके अतिरिक्त उत्तर पूर्वोत्तर मध्य और पश्चिम रेलोंकी मासिक पत्रिकाओंके कुछ पृष्ठ हिन्दीमें भी प्रकाशित किए जा रहे हैं।

पारिभाषिक शब्दोंके हिन्दी पर्याय

हिन्दीमें काम शुरू होनेसे पहले यह आवश्यक है कि रेलवेके काममें आनेवाले शब्दोंके हिन्दी पर्याय तैयार कर लिए जाएँ। यह काम शिक्षा मन्त्रालयके परामर्शसे किया जा रहा है। इस कामको शीघ्र पूरा करनेके उद्देश्यसे रेल मन्त्रालयमें भी एक समिति बनाई गई है जिसने अपना काम प्रारम्भ कर दिया है।

३. वैज्ञानिक अनुसन्धान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय

इस मन्त्रालय द्वारा निम्नलिखित हिन्दी काम होता है—

१—सरकारी पत्रों, प्रशासनिक रिपोर्टों, ससदको दी जानेवाली रिपोर्टों, भारत सरकारके राजपत्रमें छपनेवाले सरकारी सकल्पोका हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित किया जाता है।

२—आनेवाले हिन्दी पत्रोका उत्तर हिन्दीमें दिया जाता है।

३—मन्त्रालयके जो कर्मचारी हिन्दी नही जानते हो, उनकी तालिकाएँ बनाकर गृह-मन्त्रालय द्वारा चलाई गई हिन्दी कक्षाओके उपयोगके लिए प्रेषित की जाती है।

४—मन्त्रालयोके प्रकाशनोको हिन्दीमें प्रकाशित किया जाता है।

४. वित्त-मंत्रालय

१—मन्त्रालयके उन अनुभागोमें जिनके ५० प्रतिशत अथवा उससे अधिक कर्मचारियोंको हिन्दीका काम चलाऊ ज्ञान है, हिन्दीमें प्राप्त पत्रोको निपटाते समय फाइलोमें हिन्दीमें टिप्पण (नोट) लिखनेकी अनुमति दे दी गई है।

२—चतुर्थ श्रेणियोको दी जानेवाली हिदायतें सामान्यतया हिन्दीमें भी जारी की जाती हैं।

३—मन्त्रालयकी वार्षिक रिपोर्ट, आर्थिक समीक्षा, केन्द्रीय सरकारके बजटका आर्थिक वर्गीकरण, वित्त-मन्त्रीका बजट भाषण, अनुदानोकी माँगो, व्याख्यात्मक ज्ञापन, अर्ध सरकारी पत्रका नमूना, हिन्दी मुद्रा, अवकाश सम्बन्धी ज्ञापनका हिन्दी रूप आदि हिन्दीमें रहती है।

५. स्वराष्ट्र मंत्रालय (गृह-मंत्रालय)

स्वराष्ट्र मन्त्रालयने हिन्दीको विकसित करनेके काममें तथा उसका प्रयोग सरकारी स्तरपर शुरू करवानेके काममें बहुत कुछ किया है। कर्मचारियोको हिन्दी पढनेकी दृष्टिसे तथा उन्हे हिन्दीमें काम कर सकने लायक बनानेकी दृष्टिसे भी इस मन्त्रालय द्वारा काफी काम किया गया है। राजभाषा आयोग, ससदीय समिति आदि की नियुक्तियाँ, उनके अहवालोका प्रकाशन, राष्ट्रपतिके राष्ट्रभाषा सम्बन्धी विभिन्न आदेश, स्वराष्ट्र मन्त्रालयकी उनपर मार्गदर्शक टिपणियाँ आदिका जिक्र किया जा चुका है: स्वराष्ट्र मन्त्रालयने सरकारी स्तरपर हिन्दीके अधिकाधिक प्रयोग किए जानेके लिए एक योजना बनाई है जिसके अनुसार सभी मन्त्रालयोको यह आश्वासन देना होगा कि वे १९६३–६४ के अन्त तक अँग्रेजीके अलावा हिन्दीका भी प्रयोग करेंगे। केन्द्रीय मन्त्रालय उन राज्य सरकारोके साथ जहाँ कि हिन्दीको सरकारी भाषा स्वीकार कर लिया गया है, हिन्दीमें पत्र-व्यवहार करेंगे।

२—**हिन्दी प्रगति-जाँच-समिति**—केन्द्रीय सरकारके कामकाजमें अँग्रेजीके साथ-साथ हिन्दीके अधिकाधिक प्रयोगके कार्यक्रमकी प्रगति समय-समयपर जाँचनेके लिए एक विभागीय समिति स्वराष्ट्र मन्त्रालय द्वारा गठित की गई है। इस स्थाई-समितिके अध्यक्ष स्वराष्ट्र मन्त्रालयके सचिव रहेंगे और विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालयोंके सचिवोंमेंसे चार को समितिका सदस्य बनाया जाएगा। यह समिति यह देखेगी कि

हिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें काम करने वाले कर्मचारियोंको अनुमति दी गई है कि यदि वे चाहें तो छुट्टी आदिके आवेदन-पत्र हिन्दीमें दे सकते हैं।

केन्द्रीय सरकारके रेल विभागीय प्रशिक्षण विद्यालयोंके शिक्षार्थियों तथा प्रोवेशनर अधिकारियोंकी किसी पदपर नियुक्ति अथवा स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारित की गई है—वहाँ राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति वर्धाकी "कोविद" परीक्षा उत्तीर्ण व्यक्तिको उसके बाद अन्य कोई हिन्दी योग्यता सम्बन्धी परीक्षा देनेसे मुक्त कर दिया गया है।

२. रक्षा-मंत्रालय

सशस्त्र सेनाओंमें हिन्दी—(१) सेनामें प्रथम श्रेणी प्रमाण-पत्रकी सभी परीक्षाएँ अब हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा और देवनागरी लिपिमें होती हैं। (२) सेना शिक्षाकी हवलदार युनिटोंमें अध्यापकोंके स्थानपर जो नागरिक अध्यापक रखे जाते हैं उनके लिए आवश्यक है कि उनमें सेनाकी प्रथम श्रेणी प्रमाण-पत्र परीक्षाके बराबर योग्यता हो वर्ना उन्हें यह परीक्षा पास कर लेनी पड़ती है। (३) रक्षा-प्रतिष्ठानोंके विभिन्न स्थानोंमें जहाँपर असैनिक कर्मचारी काम करते हैं, सेना-सम्पर्क-अफसर नियुक्त किए गए हैं। उनका काम गृह-मन्त्रालयकी सरकारी कर्मचारी हिन्दी प्रशिक्षण योजनामें सहायता देना है। (४) मन्त्रालयने रक्षा सम्बन्धी हिन्दी पारिभाषिक शब्दावलीके विकासका तथा प्रशिक्षण पुस्तकोंके हिन्दी अनुवादका बहुत-सा काम सम्पन्न किया है। (५) नौ सेनाके अफसर तथा मिडशिप मॅन अनिवार्य हिन्दी परीक्षामें अधिकाधिक संख्यामें बैठते हैं तथा कामयाब होते हैं। अब तक नियमित अफसरोंमें आधेसे भी काफी अधिक लोगोंने यह परीक्षा पास कर ली है या उससे उनको छूट मिल गई है। (६) विभिन्न प्रशिक्षण सिब्बंदियोंमें हिन्दीकी योग्यतावाले नागरिक शिक्षकोंकी नियुक्तियाँ की गई हैं। (७) प्रशिक्षण सिब्बंदियों (Training Establishments) में ऊँची कक्षाओंके बालकोंको हिन्दी अनिवार्य रूपसे पढ़ाई जाती है। (८) जिन ब्रांच अफसरोंकी लेफ्टिनेंटके पदपर तरक्की होती है या जो सीधे सब लेफ्टिनेंट (एल) पदसे नौ-सेनामें आते हैं उन दोनोंके लिए संयुक्त हिन्दी कक्षाएँ चलाई जाती हैं और अहिन्दी भाषी ब्रांच अफसरोंको तरक्कीके पहले ही अनिवार्य हिन्दी पढ़ाई जाती है। (९) मॅन्युअल, नियम इ. साहित्यका हिन्दी अनुवादका काम तेजीसे चल रहा है। (१०) वायुसेनाके सैकड़ों अफसरोंने अनिवार्य हिन्दी परीक्षा पास करली है। इस परीक्षाको लगभग ८५ प्रतिशत अफसर और केडेट पास कर चुके हैं। जहाँ कहीं सम्भव है, स्वेच्छाके आधार पर हिन्दी कक्षाएँ चलाई जाती हैं। केन्द्रीय सरकारी नौकरोंको हिन्दी पढ़ानेकी गृह-मन्त्रालयकी योजनाके लिए सम्पर्क अफसरोंकी नियुक्तियाँ की गई हैं। वायुसेनाकी विभिन्न तकनीकी तथा निर्देश पुस्तकालयोंके लिए हजारों रुपयोंकी पुस्तकें खरीदी गई हैं। वायु सेनाकी विभिन्न यूनिटोंमें हिन्दी फिल्में दिखाई जाती हैं। सूचना-केन्द्रोंमें हिन्दीकी पत्र-पत्रिकाएँ रखी जाती हैं। मॅन्युअलों आदिका अनुवाद-काम भी शुरू है। (११) सशस्त्र सेनाओंकी युनिटों आदिमें सब सूचना बोर्डोंपर तथा साइन बोर्डोंपर ऊपर हिन्दी तथा नीचे अँग्रेजीमें लिखा रहता है। (१२) सैनिक कवायदों तथा परेडोंमें हिन्दी शब्दोंका व्यवहार किया जाता है। गणराज्यकी पूरी परेडोंमें तथा विदेशी अभ्यागतोंकी सलामीमें हिन्दी शब्द प्रयुक्त होते हैं। (१३) राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी कोविद परीक्षा उत्तीर्ण व्यक्तियोंको विभागीय परीक्षासे मुक्त कर दिया गया है।

७. सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय

हिन्दीके व्यवहारमें केन्द्रीय सरकारके सूचना और प्रसारण मत्रालयने महत्वपूर्ण योग दिया है। इसके विभिन्न विभागोमें तेजीसे हिन्दीकी प्रगति हो रही है।

(१) प्रेस सूचनाओको शीघ्रतासे हिन्दी समाचार पत्रो तक पहुँचानेके लिए सूचना कार्यालयने हिन्दी टेलीप्रिंटरका सर्वप्रथम-पत्र उपयोग किया। राजधानीसे जारी होनेवाली विज्ञप्तियोको हिन्दी टेलीप्रिंटरसे लखनऊ क्षेत्रीय कार्यालयमे भेजा जाता हैं जहाँसे वे उस क्षेत्रके हिन्दी पत्रोंको दी जाती हैं। जब हिन्दी टेलीप्रिंटर मशीने तैयार हो जाएँगी तब यह काम और भी तेजीसे विस्तृत होगा।

(२) सूचना मत्रालयके प्रकाशन द्वारा 'भारत' नामक एक वर्ष-पुस्तिका निकाली जाती है। हिन्दीमें अपने ढगका यह एक ही प्रकाशन है।

(३) विज्ञापन तथा दृश्य विभागने अच्छी छपाई की प्रतियोगिताओ और प्रदर्शनियोंका उपक्रम शुरू किया है। उससे भारतीय मुद्रणको, विशेषकर हिन्दी मुद्रणको प्रोत्साहन मिला है। सबसे अच्छी छपाई वाले समाचार-पत्रको छपाई पुरस्कार दिए जाते हैं।

(४) आकाशवाणी रेडिओ द्वारा हिन्दीकी जो सेवा हो रही है, वह सर्वविदित है ही। हिन्दीमें राष्ट्रीय कार्यक्रम, हिन्दी सीखने वालोके लिए रेडिओसे हिन्दी पाठ, हिन्दी माध्यमसे सर्वभाषा कवि सम्मेलन उसके कुछ उल्लेखनीय आयोजन हैं। हिन्दी समाचार, समाचार समीक्षा, कथा, कहानी, एकाकी, काव्य संगीत आदि विविध कार्यक्रम तो है ही।

(५) आकाशवाणीकी हिन्दी विषयक सलाह देनेके लिए एक सलाहकार समिति श्री श्रीप्रकाशजीके सभापतित्वमें हाल ही में गठित की गई है।

(६) सूचना एव प्रसारण मंत्रालयही ऐसा मत्रालय है जहाँ किसी भी मंत्रालयकी अपेक्षा बहुत अधिक पत्र हिन्दीमें प्राप्त होते हैं। उन पत्रोके उत्तर भी प्रायः हिन्दीमें दिए जाते हैं।

(७) आकाशवाणीने अपने कर्मचारियोको राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी 'कोविद' परीक्षा उत्तीर्ण कर लेनेपर विभागीय हिंदी परीक्षा में बैठनेसे मुक्त कर दिया है।

८. परराष्ट्र मन्त्रालय

परराष्ट्रोंसे व्यवहारमें अधिकाधिक हिन्दी पर जोर दिया जा रहा है। दूसरे देशोंमें नियुक्त होने-वाले भारतीय राजदूत और राजनीतिज्ञ अपने विश्वास-पत्र हिन्दीमें प्रयुक्त करते हैं। प्रधान-मंत्रीकी ओरसे अन्य देशोको जो औपचारिक निमत्रण पत्र भेजे जाते हैं उनकी मूल प्रति पार्चमेंटपर हिन्दीमें सुन्दर अक्षरोंमें लिखी जाती है। परराष्ट्र सेवामें नव नियुक्त अधिकारियोको तथा प्रोबेशनरोको अपना अभ्यास काल पूरा करने पर हिन्दीकी परीक्षा पास करनी होती है।

किस हद तक हिन्दीका प्रयोग होने लगा है और सरकारी कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेके कामकी क्या प्रगति है ?

३—स्वराष्ट्र-मन्त्रीने एक परिपत्र निकालकर सभी मन्त्रालयोंको सूचित किया है कि वे अँग्रेजीके स्थानपर हिन्दीके प्रयोगकी योजनाएँ बनाएँ तथा अधिकारी गण यह देखें कि उनको कहाँ तक पूरा किया गया है।

४—केन्द्रीय सरकारके किसी पदपर नियुक्तिके लिए अथवा स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारित की गई है वहाँ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा संचालित कोविद परीक्षा उत्तीर्ण व्यक्तिको बादमें अन्य कोई परीक्षा नहीं देनी होती।

५—स्वराष्ट्र मन्त्रालयका ही यह जिम्मा है कि वह देखे कि मन्त्रालय संलग्न, अधीनस्थ तथा प्रादेशिक कार्यालयके हिन्दी न जाननेवाले वर्तमान कर्मचारी ३१–३–१९६४ तक काम चलाने योग्य हिन्दी ज्ञान हासिल कर लें तथा केन्द्रीय सरकारी विभागोंकी शाखाओं तथा स्थानीय कार्यालयोंके हिन्दी न जाननेवाले कर्मचारी १९६६ मार्च तक हिन्दीकी शिक्षा प्राप्त कर लें। उसी प्रकार मन्त्रालयों, संलग्न कार्यालयों तथा प्रादेशिक कार्यालयोंके वर्तमान कर्मचारी हिन्दी टाइप राइटिंग तथा स्टेनोग्राफीके प्रशिक्षणको ३१–१२–६४ तक तथा केन्द्रीय सरकारी विभागोंकी शाखाओं तथा स्थानीय कार्यालयोंके वर्तमान कर्मचारी १९६६–६७ तक पूरा कर लें, इसकी भी जिम्मेदारी स्वराष्ट्र मन्त्रालयकी है।

६. डाक तार मंत्रालय

१—हिन्दीमें तार भेजनेकी योजना सन् १९४९ में शुरू की गई थी। आज हजारों तारघरोंमें हिन्दी तार भेजनेकी व्यवस्था हो गई है। मद्रासमें तथा दक्षिणमें भी हिन्दीमें तार करनेकी व्यवस्था है। इन तारघरोंसे देवनागरीमें लिखे हुए किसी भी भारतीय भाषाके तार भेजे जा सकते हैं। हिन्दीमें बधाईके तार, जरूरी तार, स्थानीय तार, फोनोग्राम, और तारसे मनिआर्डर भेजे जा सकते हैं और रियायती दर पर 'तारके पते' रजिस्टर्ड कराए जा सकते हैं।

२—कई केन्द्रोंमें हिन्दी-मोर्स, प्रणालीकी शिक्षा दी जाती है और हजारों आदमियोंको उसमें प्रशिक्षित किया जा चुका है।

३—डाकतारकी जेबी गाइड हिन्दीमें प्रकाशित होती है। हिन्दी क्षेत्रोंमें टेलीफोन डायरेक्टरी भी हिन्दीमें छप रही है।

४—डाकतार मण्डलने सिद्धान्ततः यह भी स्वीकार कर लिया है कि हिन्दीके लिए जो प्रशिक्षण-वर्ग चलाए जा रहे हैं उनमें उपयोग करनेके लिए पाठ्य-पुस्तकें निःशुल्क दी जाएँ। साथ ही गृह-मन्त्रालय द्वारा ली जानेवाली परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होनेवाले अपने कर्मचारियोंको नकद पुरस्कार भी दिए जाएँ।

५—पोस्टकार्डों, अन्तर्देशीय पत्रों, जवाबी कार्डों तथा स्थानीय कार्डोंपर हिन्दी तथा अँग्रेजी दोनों भाषाओंमें विवरण लिखा रहता है।

प्रदेशमें कांग्रेस मंत्रिमण्डलकी स्थापनाके बाद सन् १९३७ में मंत्रियों तथा अधिकारियोंके पास आनेवाली हिन्दी याचिकाओंके अनुवादके लिए जो अनुवाद विभाग बनाया था, उसीके जिम्मे अंग्रेजीसे हिन्दी अनुवादका काम भी सौंप दिया गया था।

जनताको सरकारके राष्ट्र-निर्माण सम्बन्धी कार्योंसे परिचित करानेके लिए शासनने सूचना-विभागमें एक अलग हिन्दी अनुभाग खोला। इसके फलस्वरूप प्रेस विज्ञप्तियां नोट आदि हिन्दीमें प्रकाशित होने लगे तथा कई प्रचार-पुस्तिकाएं भी हिन्दीमें छपी।

हिन्दी राजभाषा घोषित

(अ) अक्टूबर १९४७ में हिन्दी राज्यकी राजभाषा घोषित की गई, और सरकारी कर्मचारियोंके पथ-प्रदर्शनके लिए विस्तृत अनुदेश जारी किए गए।

(आ) भारतके संविधानके अनुच्छेद ३४८ खण्ड (३) के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश विधान मण्डलने उत्तर प्रदेश (विधेयक तथा अधिनियम) अधिनियम, १९५० स्वीकृत किया जिसके अन्तर्गत विधान-मण्डलमें सभी विधेयक तथा अधिनियम देवनागरी लिपिमें लिखित हिन्दीमें प्रस्तुत एवं पारित किए जाते हैं।

(इ) संविधानकी धारा ३४५ में और विषयोंके अतिरिक्त यह व्यवस्था है कि राज्य विधान-मंडल राज्यके राजकीय प्रयोजनोंके लिए देवनागरी लिपिमें हिन्दीको अंगीकृत कर सकता है। इस व्यवस्थाके अनुसार उत्तर प्रदेश विधान मण्डलने १९५१में उत्तर प्रदेश राजभाषा अधिनियम १९५१ में पारित किया। इस अधिनियमकी धारा २ के अन्तर्गत राज्यपालने घोषित किया कि १ नव. १९५२ से निम्नलिखितके सम्बन्धमें देवनागरी लिपिमें हिन्दीका प्रयोग होगा—

(१) संविधानके अनुच्छेद २१३ के अधीन प्रचारित अध्यादेश।

(२) संविधानके अधीन अथवा संसद या राज्य विधान मण्डल द्वारा निर्मित किसीके अधीन राज्य सरकार द्वारा प्रचारित आज्ञा, नियम, विनिमय, उपविधि इ

विधान सभाकी भाषा हिन्दी

उत्तर प्रदेश विधान सभाने भी संविधानके उपबन्धोंके अन्तर्गत अपने कार्य-संचालन प्रक्रियाकी जो नियमावली बनाई है उसमें यह व्यवस्था की है कि विधान सभाका कार्य देवनागरी लिपिमें लिखित हिन्दी भाषा ही में होगा। विधान परिषदने भी अभी हालमें अपनी कार्य-संचालन प्रक्रिया सम्बन्धी नियमावलीमें इसी नियमका अनुसरण किया है, यद्यपि विशिष्ट मामलोंमें सभापतिकी अनुमतिसे अंग्रेजीमें भी भाषण दिए जा सकते हैं, यदि कोई सदस्य हिन्दीसे अनभिज्ञ हो।

न्यायालयोंमें हिन्दी

राज्य सरकारने हिन्दीको इस प्रदेशकी दीवानी और फौजदारी अदालतोंकी भाषा जाब्ता दीवानीकी धारा १३७ और जाब्ता फौजदारीकी धारा ५५८ द्वारा प्रदत्त अधिकारोंका प्रयोग करके घोषित की है।

राज्य सरकारों द्वारा किया गया कार्य

१. उत्तर प्रदेश

प्रारम्भसे ही इस राज्यके विभिन्न क्षेत्रोंके लोग हिन्दी भाषाका प्रयोग करते आए हैं। सन् १८३७ तक न्यायालयोंमें फारसी लिपि और फारसी भाषा प्रयुक्त होती रही। उसके बाद न्यायालयकी भाषा हिन्दुस्तानी हो गई, लिपि अलबत्ता फारसी रही। सन् १९०० में उत्तरी पश्चिमी प्रान्तके लेफ्टिनेंट गवर्नर और अवधके कमिश्नरने आवेदन-पत्र, शिकायत, सम्मन आदिमें देवनागरी लिपिकी छूट दे दी थी। १८ अप्रैल १९०० के एक सरकारी संकल्पमें आदेश था कि विशुद्ध रूपसे अंग्रेजी कार्यालयोंके अतिरिक्त अन्य किसी कार्यालयमें ... कोई भी व्यक्ति किसी भी पद पर तब तक नियुक्त नहीं किया जाएगा जबतक वह हिन्दी और उर्दू दोनों ही न जानता हो। बादमें उच्च न्यायालय तथा अवधके न्यायिक आयुक्तने आदेश निकाले कि भविष्यमें सभी प्रतिवाद-पत्र तथा लिखित कथन हिन्दी भाषामें तथा देवनागरी लिपिमें लिखे हुए उत्तर पश्चिमी प्रान्त तथा अवधकी समस्त अधीनस्थ दीवानी अदालतोंमें स्वीकार किए जाएँगे।

हिन्दुस्तानी अकादमी

२० जनवरी सन् १९२७ को एक सरकारी संकल्प द्वारा सर तेज बहादुर सप्रू की अध्यक्षतामें हिन्दुस्तानी अकादमीकी स्थापना की गई। अकादमीके काम थे—

(१) विशिष्ट विषयोंकी सर्वोत्तम पुस्तकों पर पुरस्कार देना।

(२) वैतनिक अनुवादों द्वारा पुस्तकोंका हिन्दी तथा उर्दूमें अनुवाद करना और अकादमीके माध्यमसे उन्हें प्रकाशित करवाना।

(३) विश्वविद्यालयों तथा साहित्यिक संस्थाओं आदिको दिए गए अनुदानसे मौलिक अथवा अनूदित पुस्तकोंकी रचनाको प्रोत्साहित करना।

(४) अकादमीकी फेलोशिपके लिए विख्यात लेखकोंका चुनाव करना।

अकादमीके लिए एक आवर्त्तक अनुदानकी व्यवस्था की गई थी।

गव्हर्नमेन्ट ऑफ इंडिया एक्ट, १९३५के अन्तर्गत बनी नई विधान सभामें सभापतिने निम्नलिखित कार्योंके लिए हिन्दीका प्रयोग प्राधिकृत कर दिया—[3]

(१) कार्यक्रम तथा कार्यवाहियाँ हिन्दीमें भी हों।

(२) सदस्य विकल्प रूपसे हिन्दीमें भी बोल सकते हैं।

(३) पेश होनेवाले विधेयक तथा प्रतिवेदन हिन्दीमें भी प्रस्तुत किए जाएँ।

(४) प्रश्नोंके उत्तर हिन्दीमें भी छापे जाएँ।

इसका परिणाम यह हुआ कि विधान सभा विभागमें एक अलग अनुवाद तथा कार्यवाही अनुभाग की स्थापना की गई।

(१०) समाचार-पत्रोको विज्ञापन, टेण्डर, नोटिसें, समन आदि हिन्दीमें दिए जाते हैं और वे हिन्दीमें छपते है। सरकारी नौकरीमें भर्तीके लिए लोक सेवा आयोग द्वारा जो विज्ञापन निकाले जाते है, वे हिन्दीमे ही होते हैं।

(११) कार्यालयोकी मुहरे, रबर की मुद्राएँ, चपरासियोके बिल्ले आदि हिन्दीमें हैं।

(१२) सभी कार्यालयोंमे नाम-पट्टे, सूचनाएँ इत्यादि हिन्दीमें ही होनी चाहिए।

सचिवालयके विभागोंमें कार्यवाही

विशेषकर सचिवालयके विभागोमें निम्नलिखित कार्यवाहियाँ की गई हैं—

(१) सचिवालयके सूचना विभाग, पचायत राज विभाग, विधान सभा विभाग, शिक्षा विभाग और भाषा विभागमे प्राय. सम्पूर्ण कार्य हिन्दीमे होनेके आदेश हुए हैं।

(२) सरकार द्वारा भेजे जाने वाले परिपत्र हिन्दीमे भी तैयार होने चाहिए। यदि कोई ऐसा परिपत्र भेजना हो, जिसका सम्बन्ध वित्तीय मामलोंसे हो और जिसकी प्रति महालेखापालको भेजनी हो, तो भी उसे हिन्दी ही मे भेजनेका प्रयत्न किया जाना चाहिए और उसके साथ एक अंग्रेजी प्रति लगा दी जानी चाहिए।

इस आशयके आदेश जारी कर दिए गए है कि सचिवालयसे विभागाध्यक्षोको और विभागाध्यक्षोंसे अधीनस्थ कार्यालयोको जो भी पत्र, परिपत्र या आदेश जारी किए जाएँ वे यथासम्भव हिन्दीमे ही हों जिससे कि शीघ्रसे शीघ्र सरकारी काम हिन्दीमे ही होने लगे।

(३) विधान सभाके प्रश्नो तथा प्रस्तावोके सम्बन्धमे टिप्पण-कार्य तथा पत्र-व्यवहार यथासम्भव हिन्दीमें होना चाहिए।

(४) सविधानके अनुच्छेद ३४६ के अन्तर्गत बिहार, मध्यप्रदेश और राजस्थान सरकारोसे एक करारनामा हो गया है जिसके अनुसार इन सरकारोके बीच सम्पूर्ण पत्र-व्यवहार हिन्दीमें किया जाना चाहिए।

(५) सरकारी समितियोंकी कार्यवाही हिन्दीमें तैयार हो।

प्रदेशके अधीनस्थ कार्यालयों तथा जिलोंके स्थानीय कार्यालयोंको आदेश

प्रदेशके अधीनस्थ कार्यालयो और जिलोके स्थानीय कार्यालयोमे भी हिन्दीमे पूर्ण रूपसे कार्य करनेके लिए आदेश दिए गए है। इसमे जो प्रगति हुई है, वह नीचे दी हुई है —

(१) विभागाध्यक्षोके कार्यालयोमें भी हिन्दीमें काम करनेका धीरे-धीरे अभ्यास किया जा रहा है और उन मदोमें भी, जिनका उल्लेख "(क)" सामान्यमे किया गया है, काम यथासम्भव हिन्दीमें किया जाता है।

(२) जिला दफ्तरोमें अधिकतर कार्य हिन्दीमे होता है जैसा कि नीचे बताया गया है—

(१) जिला दफ्तर—सभी कर्मचारियोने हिन्दीका काम चलाऊ ज्ञान प्राप्त कर लिया है और दफ्तरका अधिकाश काम भी हिन्दी भाषामें किया जाता है। नियोजन, पचायत, जमींदारी उन्मूलन कार्यालयो आदि जिनका सम्बन्ध सीधा जनतासे है, हिन्दीमें ही काम होता है।

उच्च न्यायालयके अधीनस्थ अदालतोंके निर्णयों '(Judgements)को छोड़कर करीब-करीब अन्य सभी कार्यवाही हिन्दीमें होती है जैसे अदालतोंमें रजिस्टर, डायरियाँ आदि हिन्दीमें भी जाती है, गवाहोंके बयान आदि हिन्दीमें लिखे जाते हैं और मुकदमोंकी सभी मिसलें हिन्दीमें तैयार होती हैं। जब तक उच्च न्यायालयकी भाषा भी हिन्दी नहीं घोषित हो जाती (और यह भारत सरकार की मंजूरी प्राप्त करके ही किया जा सकता है), अधीनस्थ अदालतोंमें निर्णयोंका हिन्दीमें लिखा जाना आमतौर पर सुविधाजनक नहीं होगा। फिर भी निर्णयोंको हिन्दीमें लिखनेके लिए कोई रुकावट नहीं है और कभी-कभी वे हिन्दीमें ही लिखे जाते हैं।

सरकारी कार्यालयोंमें हिन्दीकी प्रगतिके लिए किए गए उपाय

सरकारी कार्यालयोंमें हिन्दीकी प्रगति बढ़ानेके निम्नलिखित उपाय किए गए हैं:—

(१) हिन्दीके लिए पदेन अधिकारी:—सचिवालय विभागाध्यक्षों तथा कार्यालयाध्यक्षोंके कार्यालय आदिमें हिन्दीकी प्रगति समुचित रूपसे हो रही है अथवा नहीं यह देखनेके लिए

(२) साथही सरकारने हेडक्वार्टर्स पर एक विशेष कार्याधिकारी (हिन्दी) की नियुक्ति की है जो प्रदेशके सरकारी कार्यालयोंका निरीक्षण करके सरकारको हिन्दी सम्बन्धी मामलोंसे सम्बन्धित सरकारी कार्यालयोंकी प्रगतिकी रिपोर्ट भेजता रहे। यह अधिकारी यह भी देखता है कि विभिन्न कार्यालयों तथा विभागोंमें हिन्दी सम्बन्धी आदेशोंका किस हद तक अमल होता है।

(३) प्रत्येक कार्यालयमें एक हिन्दी पुस्तकालय स्थापित करनेकी व्यवस्था की गई है।

(४) अधिकारीका पदनाम (Designation) और विभागोंके नाम हिन्दीमें निर्धारित कर दिए गए हैं और कार्यालयकी टिप्पणियों, पत्र-व्यवहार, पर्चियों आदिमें और तख्तियों आदिमें इन्हीं हिन्दी पर्यायोंका प्रयोग करनेके 'आदेश' दिए गए हैं।

(५) जनतासे प्राप्त आवेदन-पत्रका उत्तर हिन्दीमें दिया जाता है।

(६) आदेश है कि निम्नलिखित पत्र-व्यवहारके सम्ब्रन्धमें सभी अनुस्मारक और पत्र प्राप्ति हिन्दीमें लिखी जाएँ—

(१) अन्तर्विभागीय पत्र-व्यवहार,

(२) विभिन्न विभागाध्यक्षोंसे शासनको आने वाला पत्र-व्यवहार और शासनसे विभिन्न विभागाध्यक्षोंको जानेवाला पत्र-व्यवहार।

(३) सामान्य प्रकारका सरकारी पत्र-व्यवहार और उससे सम्बन्धित टिप्पणी, पुस्तकोंके लिए अपेक्षण पत्र और लेखन-सामग्री मंगानेके लिए अपेक्षण-पत्र हिन्दीमें लिखे जाएं।

(७) लिफाफों पर पते हिन्दीमें हों।

(८) वैभागिक प्रतिवेदन आदि हिन्दीमें भी प्रकाशित हों।

(९) तारोंको हिन्दीमें भेजनेकी व्यवस्था की गई है और समाचार-पत्रोंके लिए हिन्दीमें प्रेस टलीग्राफ सर्विसकी व्यवस्था भी कर दी गई है।

अनुवादके सम्बन्धमे सुझाव और नमूने दिए गए हैं और एक संक्षिप्त विविध तथा प्रशासकीय शब्दावली भी दी गई है।

२—बादमें एक और पुस्तिका सामान्य अँग्रेजी वाक्यांशोके हिन्दी पर्यायके नामसे अप्रैल, १९५८ में प्रकाशित की गई। इस पुस्तिकाकी प्रतियाँ भी विभागाध्यक्षो इत्यादिको बहुसंख्यामें बाँटी गईं।

३—इसके अतिरिक्त, राज्यकी पुनर्गठित हिन्दी शब्दकोश समितिने पारिभाषिक शब्दोंकी एक शब्दावली तैयार की है।

प्रपत्र, प्रतिवेदन, नियमिकाएँ, सेवा नियमावलियाँ हिन्दीमें

प्रपत्रो, प्रतिवेदनो, नियमिकाओं, सेवा नियमावलियो आदिके सम्बन्धमें शासनने १९४७ से ही ये आदेश दे दिए थे कि इनके हिन्दी रूपान्तर शीघ्रातिशीघ्र तैयार किए जाएँ ताकि सरकारी काममें हिन्दीका प्रयोग अधिकाधिक बढ जाए। इस सम्बन्धमें वर्तमान स्थिति इस प्रकार है—

सचिवालयके प्रायः सभी प्रपत्रो और पंजियोका हिन्दी रूपान्तर हो गया है और हिन्दीमें छपे भी गए हैं। इनमें लेखा तथा वित्त सम्बन्धी प्रपत्र शामिल नही है।

विभागाध्यक्षो आदिके कार्यालयोके अधिकतर प्रपत्रोका हिन्दी रूपान्तर एक विशेष कार्याधिकारी द्वारा करा लिया गया है।

आदेश जारी किए गए है कि सभी प्रपत्र चाहे वे अँग्रेजीमें हों या हिन्दीमें हो, कार्यालयोमें हिन्दी ही मे भरे जाएँ। इसीप्रकार सभी प्रकारकी पंजियोको भी हिन्दीमें भरे जानेके भी आदेश दिए गए है।

२—वार्षिक प्रतिवेदनो आदिका प्रकाशन हिन्दीमें हो।

३—सरकार द्वारा निर्मित सेवा नियमावलियाँ हिन्दीमे भी प्रकाशित होती हैं।

सन् १९४७ से ही शासनने निम्नलिखित कार्यवाहियाँ प्रारम्भ कर दी—

१—विधान सभामें प्रस्तुत किया जानेवाला सम्पूर्ण आय-व्ययक (बजट) साहित्य जिसमें पाँच *खण्ड सम्मिलित होते हैं हिन्दीमें भी तैयार होता है। इसके साथ सार्वजनिक लेखा समितिकी* कार्यवाहियाँ तथा विनियोग लेखे तथा लेखा परीक्षण प्रतिवेदन हिन्दीमें छापे जाते है।

२—राज्य सरकारके गजटका एक पृथक् हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित होता है जिसमें सरकारी सूचनाएँ, विज्ञप्तियाँ, घोषणाएँ, आदि प्रकाशित होती हैं।

३—पुलिस गजट भी हिन्दीमें प्रकाशित होता है।

४—विभिन्न विभागो द्वारा वैभागिक मासिक तथा त्रैमासिक पत्रिकाएँ भी हिन्दीमें प्रकाशित हो रही हैं। इनमें 'त्रिपथगा, पंचायत राज, शिक्षा, जनसेवक, तथा नवयुवक' के नाम उल्लेखनीय हैं।

सूचना विभागका काम हिन्दीमें

सूचना-विभागका सारा प्रकाशन कार्य हिन्दीमें होता है। वह विभाग शासनके विभिन्न विभागोंके कार्यपर हिन्दीमें पुस्तिकाएँ निकालता है। "उपयोगी रिसाले" नामक पुस्तिकाएँ भी इसी

(२) तहसील—यहाँ भी अधिकतर काम हिन्दीमें किया जाता है।
(३) नगरपालिका—यहाँ भी अधिकतर हिन्दीका ही प्रयोग होता है।
(४) गाँवों–गाँवोंमें सम्पूर्ण काम हिन्दीमें होता है।

प्रोत्साहनार्थ किए गए उपाय

कर्मचारियोंको दिए गए आदेश तथा उनको हिन्दी प्रयोग करनेके लिए प्रोत्साहित करनेके हेतु नीचे दिए गए उपाय किए गए हैं :—

(१) सभी कर्मचारियोंसे हिन्दी सीखनेके लिए कहा गया है और यह भी कहा गया है कि वे अपना सारा कार्य हिन्दीमें ही करें।

(२) सरकारी कर्मचारियोंसे कहा गया है कि वे अपने आवेदन-पत्र यथासम्भव हिन्दी ही में दें। इसी प्रकार सभी विभागों तथा कार्यालयोंसे कहा गया है कि वे ऐसे आवेदन-पत्रोंपर दिए गए आदेशोंकी सूचना हिन्दीमें ही देनेका प्रयत्न करें।

(३) सचिवालयके सभी कर्मचारियोंके लिए दक्षता-रोक पार करने तथा वार्षिक वेतन-वृद्धि पानेके लिए २५ शब्दोंकी हिन्दी टाईपिंगका ज्ञान होना आवश्यक कर दिया गया है।

(४) हिन्दीमें अच्छा ज्ञान रखने वाले तथा हिन्दीकी प्रगतिमें विशेष योग देनेका कर्मचारियोंको प्रोत्साहन देनेके लिए उनकी आचरणावलियोंमें इस आशयकी विशेष प्रविष्टियाँ की जाएँ और पदोन्नतिके समय इन पर विशेष ध्यान दिया जाए।

(५) सचिवालयके कर्मचारियोंको हिन्दी आशुलिपि तथा हिन्दी टंकन सीखनेकी सुविधाएँ दी जाएँ। पहले ये कर्मचारी केवल कार्यालयके घंटोंके बाद या पहले ही हिन्दी आशुलिपि और टंकन सीख सकते थे, परन्तु अब उन्हें कार्यालयके घंटोंके भीतर इन्हें सीखनेकी सुविधा दी गई है। यदि आवश्यकता हो तो सरकारी कर्मचारियोंको हिन्दी स्टेनोग्राफी तथा हिन्दी टाइप सीखनेके लिए अध्ययन-अवकाश भी दिया जाए।

नोट—सचिवालयमें हिन्दी टंकन कक्षाएँ १९५५ से प्रारम्भ हुई हैं। अबतक बहुतसे कर्मचारी हिन्दी टंकन सीख चुके हैं। हिन्दी आशुलिपिकी कक्षाएँ १९५६ में खोली गई थीं और अबतक काफी संख्यामें कर्मचारीगण हिन्दी स्टेनोग्राफी सीख चुके हैं।

सचिवालयमें जो मौजूदा हिन्दी आशुलिपि तथा टंकक हैं उनके लिए भी हिन्दी शार्टहैण्ड तथा हिन्दी टाइप राइटिंग सीखना आवश्यक कर दिया गया है।

कर्मचारियोंके लिए उपयोगी प्रकाशन

शासनने कर्मचारियों आदिको हिन्दीमें कार्य करनेमें कार्य कुशलता प्राप्त करनेके लिए कई उपयोगी प्रकाशन निकाले हैं। इनका विवरण नीचे दिया गया है—

१—"हिन्दी निर्देशिका" नामकी एक पुस्तिका प्रकाशित की गई। इस पुस्तिकामें सरकारी कर्मचारियोंके लिए हिन्दी सम्बन्धी सामग्री संग्रहीत है, जिसमें और बातोंके अतिरिक्त, टिप्पण, आलेखन और

हिन्दी साहित्यका विकास तथा विश्व-विद्यालयीय पाठ्यक्रमकी पुस्तकोंका निर्माण

हिन्दी साहित्यके विकास और कला, साहित्य और विज्ञानमें कालेजो तथा विश्वविद्यालयोंकी कक्षाओंकी पाठ्य-पुस्तके तैयार करानेके उद्देश्यसे शासनने निम्नलिखित कार्यवाहियाँ की हैं—

१—**पुरस्कार देनेकी योजना**—हिन्दीके विकासको प्रोत्साहित करनेके उद्देश्यसे राज्य सरकारने साहित्यिक अथवा वैज्ञानिक ग्रन्थो या विशिष्ट प्रकारकी रचनाओके लिए पुरस्कार देनेकी योजना चलाई।

२—**हिन्दी लेखकों और विद्वानोंकी वित्तीय सहायता**—ऐसे लेखको एव विद्वानोको आर्थिक सहायता देनेके लिए, जिनकी वित्तीय दशा बीमारीके कारण या किन्ही अन्य कारणोसे बहुत खराब हो गई हो, व्यवस्था की हैं।

३—**हिन्दी प्रकाशकोंको वित्तीय सहायता**—इसी प्रकार कला, साहित्य या विज्ञान सम्बन्धी मौलिक रचनाओके प्रकाशनको वित्त पोषित करनेके लिए भी राज्य सरकार हिन्दी प्रकाशनोको इस प्रयोजनके लिए वित्तीय सहायता देती है।

४—**हिन्दी मन्त्रणा समितिकी स्थापना**—उपर्युक्त उद्देश्योकी पूर्तिके लिए राज्य सरकारने हिन्दी मन्त्रणा समितिकी स्थापना की हैं। इसकी स्थापना १९४८ में की गई थी।

५—**हिन्दी साहित्य कोषकी स्थापना**—उपर्युक्त मद १, २ और ३ के अन्तर्गत जो पुरस्कार आदि दिए जाते हैं, वे शासन द्वारा स्थापित हिन्दी साहित्य कोषसे दिए जाते है जिसके लिए एक विशिष्ट नियमावली बना दी गई है।

हिन्दीको लोकप्रिय बनानेके लिए किए गए काम

हिन्दीको लोकप्रिय बनाने तथा उसके साहित्यको समृद्ध करनेके लिए जो विविध कार्यवाहियाँ की गई है, उनका सक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है—

(क) राजकीय कार्योंमें हिन्दीकी शैली तथा भाषा सरल हो। इस सम्बन्धमें राज्य सरकारने १९५४ में विधान परिषदमें पारित इस आशयके गैर-सरकारी प्रस्तावको मान लिया कि हिन्दी भाषाको जीवित व जागृत बनाए रखने और उसके शब्दकोशमें वृद्धि करनेके लिए आजकलके प्रचलित ऐसे शब्दोको, जिन्हें सब शिक्षित व अशिक्षित आसानीसे समझ सकते हैं, ज्यो का त्यो सरकारी काममें प्रयोग होनेवाली हिन्दी भाषामें सम्मिलित कर लिया जाए।

सन् १९५२ के अपने राजकीय आदेशमें भी राज्य सरकारने यह स्पष्ट कर दिया था कि हिन्दीके माने उस सरल जबानसे है जो देश में और इस प्रदेशमें बोली जाती है। लिपि नागरी होगी और जबान आसान और सरल होगी। पारिभाषिक शब्द नागरी या रोमन लिपिमें लिखे जा सकते हैं।

(ख) **देवनागरी लिपिमें सुधार**—देवनागरी लिपिमे सुधार करनेके लिए राज्य सरकारने सबसे पहले १९५३ में एक अखिल भारतीय सम्मेलन बुलाया था जिसने एक नई लिपि तैयार की। इस लिपिमें कुछ दोष पाए जानेपर राज्य शासनने १९५७ में एक दूसरा सम्मेलन बुलाया और इन दोषोको दूर करनेका निर्णय लिया।

विभाग द्वारा प्रकाशित होती हैं। प्रेस विज्ञप्तियां, विज्ञापन आदि हिन्दीमें तैयार किए जाते हैं। अन्य विभागोंका भी प्रख्यापन कार्य अधिकतर हिन्दीमें ही होता है। कुछ विभागोंका प्रकाशन कार्य तो प्रायः सभी हिन्दीमें होता है, जैसे कृषि विभाग, पंचायत राज विभाग और नियोजन विभागका प्रकाशन कार्य।

सूचना विभागकी हिन्दी समिति, हिन्दी साहित्यके अलभ्य ग्रन्थों एवं पाठ्य-पुस्तकोंके प्रकाशनकी योजनाको पूरा करनेमें लगी है। इस कार्यक्रमपर चालू योजनामें २० लाख रुपए व्यय का अनुमान है। अलभ्य ग्रन्थोंमें ३०० ग्रन्थोंको और पाठ्य-पुस्तकोंमें १४५ पुस्तकोंको प्रकाशित करनेकी योजना है।

सरकारी नौकरीके उम्मीदवारोंके लिए आदेश

शासनने सरकारी नौकरियोंमें भर्ती होनेवाले उम्मीदवारोंके लिए निम्न लिखित आदेश जारी किए हैं—

१—सरकारी नौकरियोंमें भर्तीके वास्ते उम्मीदवारोंके लिए हिन्दीका ज्ञान होना आवश्यक है।

२—जिन नौकरियोंमें भर्ती लोक सेवा आयोग द्वारा परीक्षा लेकर की जाती है उनमें हिन्दीको एक अनिवार्य विषय बना दिया गया है।

३—आयोगने अपने परीक्षार्थियोंको अँग्रेजीको छोड़कर अन्य प्रश्न-पत्रोंके उत्तर हिन्दीमें लिखनेकी सुविधा भी प्रदान की है।

४—इसी प्रकार आशुलिपिकों (स्टेनोग्राफरों) की भर्तीके लिए यह नियम बना दिया गया है कि उन्हें हिन्दी आशुलिपिका भी यथेष्ट ज्ञान हो।

५—टाइपिस्टोंकी जगहोंके लिए भर्तीमें भी हिन्दी टंकनका ज्ञान अनिवार्य कर दिया गया है।

शिक्षा-क्षेत्रमें हिन्दी

शिक्षाके क्षेत्रमें हिन्दीके सम्बन्धमें निम्नलिखित कार्यवाही की गई है—

१—प्रारम्भिक (प्राइमरी), जूनियर हाइस्कूल, माध्यमिक तथा इण्टरमिडिएट कक्षाओंका शिक्षण तथा परीक्षाका माध्यम हिन्दी है। तीसरी कक्षासे अहिन्दी भाषी छात्रोंके लिए हिन्दी अनिवार्य विषय है।

२—**विश्वविद्यालयोंमें हिन्दीकी स्थिति**—विश्वविद्यालयोंमें भी बी. ए. तथा एम. ए. में हिन्दी अध्ययनका विषय है। कुछ समय पश्चात्, सभी विश्वविद्यालयोंमें अनिवार्य रूपसे शिक्षाका माध्यम हिन्दी हो जाएगा। अभी भी विश्वविद्यालयोंकी उन कक्षाओंमें जहाँ विद्यार्थी हिन्दीमें पढ़ना अधिक पसन्द करते हैं, हिन्दीमें ही पढ़ाई होती है। विद्यार्थियोंको परीक्षाओंमें प्रश्न-पत्रोंके उत्तर हिन्दीमें लिखनेकी अनुमति भी दी गई है।

इसके अतिरिक्त, आगरा विश्वविद्यालयमें हिन्दीका एक इंस्टिट्यूट भी स्थापित किया गया है जहाँ हिन्दीमें गवेषणाकी विशेष सुविधा है।

३—गैर सरकारी हिन्दी संस्थाओंकी डिग्रियोंको मान्यता देना—गैर सरकारी संस्थाओं जैसे, काशी नागरी-प्रचारणी सभा, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, महिला-विद्यापीठ, अन्तर्राष्ट्रीय विद्यापीठ, जो हिन्दीके प्रसारमें योग दे रही हैं, इनके द्वारा प्रदत्त डिग्रियोंको शासनने मान्यता प्रदान कर दी है।

इस विभागका काम, विधान सभा और विधान परिषदके प्रश्नों और उत्तरोंका हिन्दी तथा उर्दूमें अनुवाद, विभागीय प्रतिवेदनों, याचिकाओ, मॅन्युअलो, विधेयकों तथा अधिनियमोंका अनुवाद आदि था। स्वतंत्रताके पश्चात्, जब देवनागरी लिपिमें हिन्दी राजभाषा घोषित हो गई तब उर्दूका काम प्रायः समाप्त हो गया। अब सचिवालयके अन्य विभाग अपना समस्त कार्य इस विभागमें भेजने लगे। सरकारने एक विशेष कार्याधिकारीकी विभाग-प्रशासकके रूपमें नियुक्ति की तथा उसे प्रशासन शब्दावली तैयार करनेका काम भी सौंपा गया। सन् १९५८ जुलाईमें राज्य सरकारने अनुवाद विभागको छोटी छोटी इकाइयोंमें विभाजित करके सचिवालयकी विभिन्न शाखाओं और विभागोमे हिन्दीकी प्रगतिमें सहायता देनेके अभिप्रायसे संलग्न कर दिया। अनुवादकोकी इस तरहकी सहायता से सचिवालयके कर्मचारियोंको हिन्दीमें काम करना आ गया।

लेकिन इस विकेन्द्रीकरणसे अनुवादोका काम पिछड़ने लगा तथा उसमें असम्बद्धता आने लगी। इसलिए १५ अक्टूबर १९५९ ई. को फिर एक भाषा-विभाग कायम किया गया। स्थाई और अस्थाई सभी अनुवादक अलग अलग विभागोसे खीचकर इकट्ठे कर दिए गए। पुनर्गठित भाषा-विभागको तीन अनुभागोमें बाटा गया

(१) मॅन्युअल और फार्म अनुभाग।

(२) बजट तथा विधायिका अनुभाग।

(३) भाषा (सामान्य) अनुभाग।

प्रत्येक अनुभाग एक विशेष कार्याधिकारीके मातहत काम करता है। इसके अतिरिक्त शब्दकोष समितिको भी विभागका एक अनुभाग घोषित कर दिया गया। इस विभागके कार्य निम्नलिखित है:—

(क) भाषा-नीति सम्बन्धी कार्य:—

१—सरकारी काममें हिन्दीके प्रयोगके बारेमें नीति सम्बन्धी विनिश्चय।

२—उत्तर प्रदेश राजभाषा अधिनियम १९५१ उसके अधीन नियमावलियाँ, विज्ञप्तियाँ, उनकी व्याख्यादि।

३— हिन्दी शब्दकोश।

४—सरकारी कर्मचारियोके लिए हिन्दी प्रशिक्षाकी व्यवस्था, सचिवालय और डिविजनोंमें हिन्दी आशुलिपिकी तथा टाइपकारी की कक्षाएँ।

५—सरकारी कार्यालयोमे हिन्दी पुस्तकालयोकी स्थापना।

६—देवनागरी लिपि सुधार और

७—अन्तर्राष्ट्रीय अकोका प्रयोग।

ख) अनुवाद और परीक्षण कार्य—

१—अधिनियम, विधेयक, नियम आदि।

२—प्रशासकीय रिपोर्ट, भाषण आदि।

३—बजट साहित्य।

(ग) **हिन्दी प्रकाशन योजना**—हिन्दी साहित्यका विकास करने तथा उसे समृद्ध बनानेके लिए, राज्य सरकारने अप्रैल, १९५५ से द्वितीय-पंचवर्षीय योजनाके अन्तर्गत एक हिन्दी प्रकाशन योजना चालू की है। संगीत, नृत्य तथा नाटकों जैसी कलाओंमें अच्छी पुस्तकोंकी कमीको देखते हुए यह निश्चय किया गया है कि इन विषयोंकी पुस्तकोंके प्रकाशनपर विशेष जोर दिया जाए। योजनाके अन्तर्गत लगभग ३०० पुस्तकोंके प्रकाशनका आयोजन था जिनमें लगभग १०० मौलिक ग्रन्थ, १०० अन्य साहित्योंकी पुस्तकोंके अनुवाद और १०० सामान्य विषयकी पुस्तकें होंगी। इस योजना पर कुल व्यय लगभग २५ लाख रुपया होगा।

(घ) **हिन्दी-बाल-साहित्यका प्रकाशन**—भारत सरकारकी योजनाके अन्तर्गत, उपयुक्त हिन्दी-बाल साहित्यके तैयार करनेकी एक योजना बनाई गई है जिसे द्वितीय पंचवर्षीय योजनामें सम्मिलित कर लिया गया है। इस योजनाके अधीन प्रत्येक वर्ष १२ पुस्तकें गैर-सरकारी लेखकों द्वारा लिखवानेका प्रस्ताव है। इस सम्बन्धमें लेखकोंपर तथा प्रकाशकों द्वारा लिखित तथा प्रकाशित पुस्तकोंपर भी पुरस्कार देनेका प्रस्ताव है।

(ङ) **पुराण कोश समितिकी स्थापना**—हिन्दी समितिके तत्वावधानमें पुराण कोशका संकलन करनेके लिए एक पुराण कोश समिति स्थापित की गई है। इस समितिने १५ सितम्बर, १९५७ से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है।

(च) **लोक-साहित्यके पुनरुद्धार तथा प्रकाशनके लिए समितिकी स्थापना**—शासनको लोक गीतोंके सुधारसे सम्बन्धित मामलोंमें सलाह देनेके लिए और उनके प्रकाशनमें सहायता देनेके लिए सरकारने एक लोक-साहित्य सुधार समिति स्थापित की है। इस समितिने कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं और बहुतसे लोक-गीतोंके ग्रामोफोन रिकार्ड तैयार कराए हैं।

(छ) **हिन्दुस्तानी अकादमीकी स्थापना**—शासनने १९२७ ई. में इलाहाबादमें हिन्दुस्तानी अकादमीकी स्थापना की थी। हालमें इसका पुनस्संगठन किया है। इसने बहुतसे हिन्दीके उत्कृष्ट ग्रन्थ निकाले हैं।

(ज) ऊपर दी गई कार्यवाहियोंके अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य कार्यवाहियाँ भी की गई हैं :—

(क) अँग्रेजी टाइपराइटरोंके स्थानपर हिन्दी टाइपराइटरोंका क्रय:—केवल हिन्दी टाइपराइटर ही क्रय किए जाते हैं, अँग्रेजी टाइपराइटरोंके क्रयके लिए शासनकी स्वीकृति प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया है।

(ख) रीतिक अवसरोंके निमंत्रण-पत्र तथा कार्यक्रम हिन्दीमें हों—

(ग) राज्यपाल, मंत्रियों और अधिकारियोंके भाषण, अपील, रेडिओ प्रसारणकी भाषा हिन्दीमें हो।

(ङ) तिथि-पत्री (कॅलेंडर) पंचांग, दैनन्दिनी (डायरी) और छुट्टियोंकी सूची आदि हिन्दीमें हों।

(च) उत्तर प्रदेशके पोस्ट मास्टर जनरलको सरकारी पदनामोंके हिन्दी पर्यायोंकी सूची भेजना।

उत्तरप्रदेश सचिवालयका भाषा-विभाग

उत्तर प्रदेशमें कांग्रेस मंत्रिमण्डलके सत्तारूढ़ होते ही १९३७ ई. के अन्तिम भागमें सचिवालयमें एक अनुवाद विभाग अस्थाई रूपसे कायम किया गया। सन् १९३९ में यह विभाग स्थाई बना दिया गया।

प्रारूपणके प्रशिक्षण-केन्द्र भी खोले गए। आधार ग्रन्थके लिए " प्रशिक्षण व्याख्यानमाला " के दो भाग तैयार कराकर प्रकाशित किए गए।

योग्यता परीक्षा

१९६१ तक लगभग २५ हजार व्यक्ति टिप्पण-प्रारूपणकी परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुके हैं। सिर्फ सचिवालयके ही करीब ६ हजार राजपत्रित और अराजपत्रित पदाधिकारी यह प्रशिक्षण पा चुके हैं। योग्यता परीक्षामें उत्तीर्ण होनेवालोंकी संख्या ५,७५६ हैं।

प्रमाण-पत्र वितरण

परीक्षामें उत्तीर्ण होनेवालोंमें जो विशेष योग्यता दिखाते हैं, प्रोत्साहन के लिए उन्हें पुरस्कृत किया जाता है। प्रति वर्ष एक विशेष समारोहका आयोजन करके उत्तीर्ण होने वाले पदाधिकारियोंको प्रमाण-पत्र दिया जाता है। अब तक केवल सचिवालयके तीन हजारसे अधिक पदाधिकारियोंको यह प्रमाण-पत्र दिया जा चुका है।

शब्दावली-निर्माण

तकनीकी एवं व्यावहारिक शब्दावलीकी कमी हिन्दीकरणके मार्गमें बहुत बड़ी बाधा थी। आधारके लिए डा. रघुवीरका कोश उपलब्ध जरूर था, परन्तु व्यावहारिकताकी दृष्टिसे और भी सहज-सुबोध तथा उपयुक्त शब्दोंकी उपयोगिता महसूस की गई, जिनमें कमसे कम नित्य व्यवहारमें आनेवाले आवश्यक शब्द आ जाएँ। सरकारने "पद और पदाधिकारी" तथा ". प्रशासन-शब्दावली" के प्रकाशनसे तात्कालिक आवश्यकताकी पूर्तिकी, ताकि हिन्दी प्रयोगकी प्रगतिमें रुकावट न आए।

विज्ञ-समिति

शब्दावली-निर्माणका कार्य और उत्तरदायित्व बहुत बड़ा है। इसके लिए यही चेष्टा चरम नहीं। विभिन्न विभागोंके कोड-मॅन्युअल, शिक्षा-क्रमके विभिन्न सब विषय सबके उपयुक्त व्यावहारिक शब्दोंका संग्रह और निर्माण हैं। इस महत्वपूर्ण कार्यके लिए सरकारने विभिन्न विषयोंके विशिष्ट विद्वानोंकी एक "विज्ञ-समिति" बना दी है, जो बड़ी लगन और परिश्रमके साथ इस कामको कर रही है।

अनुवाद विभाग

उतने ही महत्वका और जरूरी काम है कोड-मॅन्युअलका हिन्दी रूपान्तर। यह बहुत समयसापेक्ष और व्ययसाध्य कार्य है। इसके लिए सन् १९५६ से ही अनुवाद विभागका संगठन किया गया, जिसमें राजपत्रित, एवं अयराज पत्रित, कुल ५४ व्यक्ति काम कर रहे हैं। अब तक ५६४ एक्ट एवं ५७ कोड-मॅन्युअलका हिन्दी अनुवाद हो चुका है।

बिहार

राज्यकी राजभाषा हिन्दी

बिहार हिन्दी भाषी प्रदेश है। यहाँकी राज्य सरकार यह निश्चत अनुभव करती रही थी कि यहाँका राजकाज विशेष सुविधासे तभी चल सकता है, जब यहाँके जन-साधारणकी भाषा हिन्दीको ही उसका माध्यम बनाया जाए। इस बीच हिन्दी देशकी राष्ट्रभाषा मान ली गई। पन्द्रह वर्षोंके अन्दर उसे केन्द्रकी राजभाषा बनानेका भी निर्णय हो गया। अतः बिहार सरकार द्वारा तत्काल ही नागरी लिपिमें लिखी हिन्दीको राजभाषाकी मान्यता दे दी गई।

हिन्दी-समितिका गठन

हिन्दीकरणकी दिशामें तत्परता लाने तथा सुझाव और सलाह देनेके लिए सरकारने सन् १९४८ में हिन्दी समितिका गठन किया। हिन्दीके कुछ चोटीके विद्वान और सरकारके कुछ उच्चाधिकारी इसके सदस्य हैं।

बिहार राजभाषा अधिनियम

सन् १९५० में बिहार राजभाषा अधिनियम (लैंग्वेज एक्ट) पास किया गया। इसके अनुसार राजकाजमें पूर्णतया हिन्दीकरणकी अवधि दस साल रखी गई। और तबसे सरकार इसके लिए प्रयत्नशील हो गई कि वैधानिक कठिनाईवाले कामोंको छोड़कर शेष काम इसी अवधिमें होने लगे।

प्राथमिक कठिनाइयाँ

इस संकल्पके साथ ही कुछ ऐसी बुनियादी कठिनाइयाँ सामने आईं, जिन्हें हल किए बिना इस दिशामें एक कदम बढ़ सकना भी सम्भव न था; यथा अहिन्दी भाषी सरकारी पदाधिकारी और कर्मचारियोंको हिन्दी सिखाना, हिन्दी टिप्पण-प्रारूपणका प्रशिक्षण, शब्दावलीका निर्माण, कोड-मॅन्युअलका हिन्दी रूपान्तर, टंकण-यन्त्रोंकी आपूर्ति, हिन्दी आशुलेखन और टंकणका प्रशिक्षण।

हिन्दी-शिक्षण-केन्द्र

अहिन्दी भाषियोंको यथाशीघ्र हिन्दी सिखानेकी समस्याका हल पहले कर लेना जरूरी था। इसके लिए प्रत्येक जिलेमें अविलम्ब एक-एक हिन्दी शिक्षण-केन्द्र खोल दिया गया। ये केन्द्र लगातार तीन वर्ष तक चलाए गए एवं कर्मचारियोंको भाषाका आरम्भिक ज्ञान कराया गया।

टिप्पण प्रारूपणका प्रशिक्षण

लेकिन भाषाके ज्ञानमात्रसे ही काम नहीं चल सकता—काम-काजकी व्यावहारिक योग्यता अपेक्षित थी। यह व्यावहारिक योग्यता उनके लिए भी जरूरी थी, जिन्हें हिन्दीकी अच्छी योग्यता हो। अतः टिप्पण-

हिन्दीमें होने लगे हैं। इस औसतमें भारत-सरकार, महालेखापाल तथा विधि सम्बन्धी कार्य शामिल नहीं हैं। वैधानिक रुकावटके कारण ऐसे कार्य अनिवार्य नहीं किए जा सके हैं।

हिन्दीमें होनेवाले कार्योंका प्रतिशत सम्बन्धी विवरण इस प्रकार है—

	सचिवालय स्तरपर	जिला स्तरपर
१९५८	३६.८	३६.६
१९५९	३५.४	३४.१
१९६०	६१.९	८१.५
१९६१	७३.३	७८.४

राज्योंसे पत्राचार

मध्य भारत, उत्तर प्रदेश आदि कुछ राज्योंसे बिहार-सरकारका पत्राचार हिन्दीमें ही होता है।

पाठ्य-पुस्तक समिति

राज-काजमें हिन्दी प्रयोगके अतिरिक्त हिन्दीके समुचित प्रचार एव प्रसारके अन्यकार्योंमें सरकारने यथासाध्य हाथ बँटाया है। पाठ्य-पुस्तकोंके प्रणयन और प्रकाशनके लिए शिक्षा विभागके अन्तर्गत विशेषज्ञोंकी एक समिति है। यह समिति दर्जा १ से प्रवेशिका वर्गके छात्रोंके लिए साहित्य, गणित, भूगोल, इतिहास, विज्ञान, सामाजिक-अध्ययन सम्बन्धी सभी आवश्यक विषयोंकी पुस्तकें अधिकारी विद्वानोंसे तैयार कराती है तथा प्रकाशन और वितरणकी व्यवस्था करती है। चौथी कक्षासे हिन्दी अनिवार्य विषय है।

साक्षरोंके लिए पुस्तकें

वयस्क शिक्षा-बोर्डकी ओरसे कम पढ़े लिखे लोगोंके लिए सुबोध भाषामें विभिन्न विषयोंकी बहुतेरी उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और हो रही हैं, जिनका जन-जीवनकी प्रगतिसे गहरा सम्बन्ध है।

प्रदेश-परिचय-माला

जन-सम्पर्क विभागने अन्य अनेक प्रकाशनोंके साथ बिहारके ऐतिहासिक महत्वके दर्शनीय स्थानोंपर बड़े कामकी बहुत-सी पुस्तकें निकाली हैं। ये पुस्तकें सचित्र हैं और बिहारकी सांस्कृतिक विरासतके ऐश्वर्य-का संक्षिप्त तथा सहज परिचय देती हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ

"बिहार समाचार", "जन-जीवन", "श्रमिक", "आदिवासी" तथा "पंचायत राज" आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओंका भी सरकार नियमित प्रकाशन कराती है।

हिन्दी टंकण-यंत्र

हिन्दी टंकण-यंत्रोंकी नितान्त कमी थी। कम्पनियोंने निर्माण भी किया था, तो उसका की-बोर्ड टंकणकी दृष्टिसे सुविधाजनक नहीं था। इसके लिए राज्य-सरकारने बड़ी छानबीनके बाद एक नए की-बोर्ड, मिश्र-की-बोर्डको चुना। इसमें अँग्रेजी की-बोर्डो जैसी सुगमता है। राज्य सरकारने अपने एक प्रतिनिधिको जर्मनी भेजकर ओलिम्पिया कम्पनीसे अपने लिए मशीनें बनवाईं। विभिन्न विभागोंको अब तक लगभग ५ हजार हिन्दी टंकण-यंत्र बाँटे जा चुके हैं।

टंकणोंका प्रशिक्षण

टंककोंके प्रशिक्षणके लिए पाँच केन्द्र प्रमण्डलों और सचिवालयोंमें पहले से ही चालू थे—राँची, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, पटना और सचिवालय। अब प्रत्येक जिलेमें एक-एक केन्द्र खोल दिया गया है। कुल मिलाकर १,५९४ टंकक हिन्दी-यंत्र पर काम करनेकी योग्यता प्राप्त कर चुके हैं।

हिन्दी आशुलिपिक

उपर्युक्त केन्द्रोंमें ही हिन्दी आशुलिपि प्रशिक्षणकी व्यवस्था है। इस अवधिमें १,१०२ आशुलिपिक प्रशिक्षित हो चुके हैं।

राजभाषा-विभाग

राज-काजमें हिन्दी प्रयोगकी सतत प्रगतिके लिए आदेश एवं प्रगतिके निरीक्षण तथा परीक्षणके लिए नियुक्त विभागके अन्तर्गत राजभाषा विभाग नामसे एक अलग विभाग ही स्थापित कर दिया गया है।

हिन्दी-प्रगति-समिति

निरीक्षण कार्यके लिए गैर-सरकारी विद्वानोंकी एक समिति भी बना दी गई है, जिसमें विधान सभा और विधान परिषदके सदस्यगण ही सदस्य हैं। समितिके अध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण "सुधांशु" हैं। समिति राज्यके विभिन्न जिलों एवं सचिवालयके विभागोंमें हिन्दी प्रयोगकी स्थितिका अध्ययन करके समय-समयपर प्रतिवेदन भेजती है।

जिला-प्रगति समिति

जिला अधिकारीकी अध्यक्षतामें प्रत्येक जिलेमें भी एक-एक हिन्दी-प्रगति-समिति है, जो प्रत्येक महीने प्रगतिका लेखा-जोखा सरकारको भेजा करती है।

प्रगतिका औसत

इन प्रचेष्टाओंसे सचिवालय स्तरपर ७३ फी सदी और जिला स्तरपर ७८ फी सदी राज-काज

कर्नाटक प्रचार सभाकी चौथी परीक्षा और हिन्दुस्थानी प्रचार सभा, बम्बईकी 'काबिल' परीक्षाकी मान्यता देने सम्बन्धी सिफारिश भी शामिल थी।

सरकारने समितिकी सूचनाओपर विचार किया और हिन्दी शिक्षाको आगे बढानेकी दृष्टिसे कतिपय कदम उठाए। उसने निम्न लिखित सस्थाओकी परीक्षाओको मान्यता प्रदान की—गुजरात विद्यापीठकी हिन्दी विनीत परीक्षा महाराष्ट्र राष्ट्र सभा पूनाकी प्रवीण परीक्षा और कर्नाटक प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा धारवाड़-की चौथी परीक्षा तथा हिन्दुस्तानी प्रचार सभा बम्बई की 'काबिल' परीक्षा बादमें। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की'कोविद' परीक्षाको भी सन् १९५१ तक मान्यता प्रदान की गई। इन परीक्षाओको सरकारने कर्मचारियोके लिए अनिवार्य बना दिया था। यह परिस्थिति १९५५ तक चलती रही। बादमें सरकारने अपनी परीक्षाएँ शुरू की और तब गैर सरकारी सस्थाओकी मान्यता रद्द कर दी गई।

सन् १९५२-५३ में सरकारने एक आदेश प्रसारित कर कक्षा ८, ९, १० में हिन्दी विषयकी पढ़ाईको अनिवार्य बना दिया।

सन् १९५६ से बम्बई राज्यके एस एस. सी. बोर्डने हिन्दीको अनिवार्य विषय बनाकर उसमें परीक्षाएँ लेनी शुरू कर दी। इससे हिन्दीकी शिक्षाका महत्व बढ गया। फिलहाल पश्चिमी महाराष्ट्र और विदर्भमें हिन्दी, ५ वी कक्षासे अनिवार्य विषय हैं तथा मराठवाड़ामें तीसरी कक्षासे वह ऐच्छिक विषयके रूपमें पढ़ाया जाता है।

राज्यकी म्यु. कमेटियों तथा लोकल बोर्डोने भी अपनी स्कूलोमे हिन्दीको अनिवार्य विषयके रूपमें पढाना शुरू किया है।

प्रशासकीय शब्दावलीका निर्माण

सरकारने इस समितिको हिन्दीमे प्रशासकीय शब्दावलीके निर्माणका काम भी सौंपा था। सविधानकी धारा ३५१ की व्यवस्थानुसार पारिभाषिक शब्दावलीका निर्माण किया गया जिसमें हिन्दीतर भाषाओके शब्दोको भी ज्यों-का-त्यो अथवा हेरफेरके साथ लेकिन हिन्दीकी प्रकृतिके अनुरूप अपना लिया गया था।

हिन्दीकी परीक्षाओंका संचालन

बम्बई सरकार सन् ५१-५२ से हिन्दी कन्वरसेशनल स्टैण्डर्ड, हिन्दी लोअर स्टैण्डर्ड तथा हिन्दी हायर स्टैण्डर्ड ऐसी तीन विभागीय परीक्षाओका सचालन कर रही हैं। सरकारका एक एडहॉक हिन्दी बोर्ड है। सरकारी कर्मचारियोकी वह परीक्षाएँ लेता है। सरकारी कर्मचारियोके लिए ये परीक्षाएँ पास करना अनिवार्य बना दिया गया है।

उसी तरह हिन्दी शिक्षक सनदकी जूनियर एव सीनियर परीक्षाएँ भी राज्य सरकार द्वारा सचालित होती हैं। जूनियर सनद पास शिक्षक मिडिल स्कूलमें तथा सीनियर सनद पास हाईस्कूलमें हिन्दी विषय पढा सकता है। हिन्दी अध्यापकोके लिए ये परीक्षाएँ पास करना बम्बई राज्यमें (और अब महाराष्ट्र) राज्यमें अनिवार्य है।

राष्ट्रभाषा परिषद

राष्ट्रभाषा परिषदकी स्थापना हिन्दीके उन्नयनकी दिशामें सरकारका बड़ा ठोस कदम है। कुछ वर्षोमें इस संस्थाने अखिल भारतीय महत्वके अनेक कार्य किए हैं। शोध कार्य, पुस्तक-प्रणयन, प्रकाशन, नवोदित साहित्यकारोंको प्रोत्साहन जाने-माने विद्वानोंका सम्मान, आर्थिक सहायता आदि इसके कर्तव्यके प्रमुख अंग हैं।

महाराष्ट्र तथा गुजरात राज्य

चूंकि महाराष्ट्र तथा गुजरात १ मई १९६० तक एक ही राज्यमें सम्मिलित रहे, इसलिए यहाँ दोनों राज्योंका विवरण एक साथ दिया गया है।

हिन्दुस्तानी बोर्ड या हिन्दुस्तानी-शिक्षा-समिति

बम्बई राज्यमें सन् १९३७ में कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलके सत्तारूढ़ होनेके बाद हिन्दुस्तानी बोर्ड (या हिन्दुस्तानी शिक्षण समिति) कायम किया गया था जिसके सभापति काकासाहब कालेलकर थे। इसी बोर्डमें बादमें म. म. दत्तो वामन पोतदार भी अध्यक्षके रूपमें सम्बन्धित रहे हैं। यह बोर्ड हिन्दीके प्रचार एवं विकासके सम्बन्धमें प्रान्तीय सरकारको सलाह दिया करता था।

कक्षाएँ ५, ६, ७ में हिन्दी अनिवार्य विषय

उस समय मुख्य-मन्त्री श्री बाला साहब खेर थे। वे शिक्षा-मन्त्री भी थे। उन्होंने सभी माध्यमिक शालाओंमें उपर्युक्त बोर्डकी सलाहपर कक्षा ५, ६, ७, में हिन्दीको अनिवार्य विषय बना दिया था। तदनुसार स्कूलोंमें हिन्दी शिक्षाकी व्यवस्था हुई थी। हिन्दी विषय अनिवार्य रूपसे पढ़ाया जाता था।

हिन्दी-शिक्षण-समिति

स्वतन्त्रताके बाद और विशेष रूपसे संविधानमें राजभाषा सम्बन्धी धाराओंका समावेश हो जानेपर राज्य सरकारने मई सन् १९५० में अपने हिन्दी कार्यको और भी सुव्यवस्थित बनानेके लिए "हिन्दी शिक्षण समिति" का गठन किया। संविधान की राजभाषा सम्बन्धी धाराओंकी व्यवस्थाओंको ध्यानमें रखते हुए बम्बई राज्यमें हिन्दी प्रचार एवं विकासका काम किस तरह आगे बढ़ाया जाए, इसपर रिपोर्ट करनेका काम समितिको सौंपा गया था।

चूंकि उस वक्त बम्बई राज्यमें कई हिन्दी प्रचार संस्थाएँ काम कर रही थीं, इसलिए उन संस्थाओं एवं उनकी परीक्षाओंके बारेमें मानदण्ड निश्चित करनेका काम भी समितिको सौंपा गया था।

उस समितिने १९५१ में सरकारको अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्टमें (१) अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंको स्कूलोंमें हिन्दी प्रचारकी पद्धति एवं सिद्धान्तों पर (२) हिन्दीके रूप पर और (३) हिन्दी शिक्षकों के प्रशिक्षण एवं उचित पाठ्य-पुस्तकोंके निर्माण एवं हिन्दी शिक्षाके कार्यक्रम पर विचार किया गया था और सिफारिशें की गई थीं। उन सिफारिशोंमें महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पूना की प्रवीण परीक्षा, धारवाड़ और

कर्नाटक प्रचार सभाकी चौथी परीक्षा और हिन्दुस्थानी प्रचार सभा, बम्बईकी 'काबिल' परीक्षाकी मान्यता देने सम्बन्धी सिफारिश भी शामिल थी।

सरकारने समितिकी सूचनाओपर विचार किया और हिन्दी शिक्षाको आगे बढानेकी दृष्टिसे कतिपय कदम उठाए। उसने निम्न लिखित सस्थाओकी परीक्षाओको मान्यता प्रदान की—गुजरात विद्यापीठकी हिन्दी विनीत परीक्षा महाराष्ट्र राष्ट्र सभा पूनाकी प्रवीण परीक्षा और कर्नाटक प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा धारवाड़-की चौथी परीक्षा तथा हिन्दुस्तानी प्रचार सभा बम्बई की 'काबिल' परीक्षा बादमे। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की'कोविद' परीक्षाको भी सन् १९५१ तक मान्यता प्रदान की गई। इन परीक्षाओको सरकारने कर्मचारियोके लिए अनिवार्य बना दिया था। यह परिस्थिति १९५५ तक चलती रही। बादमें सरकारने अपनी परीक्षाएँ शुरू की और तब गैर सरकारी सस्थाओकी मान्यता रद्द कर दी गई।

सन् १९५२–५३ मे सरकारने एक आदेश प्रसारित कर कक्षा ८, ९, १० में हिन्दी विषयकी पढाईको अनिवार्य बना दिया।

सन् १९५६ से बम्बई राज्यके एस. एस. सी. बोर्डने हिन्दीको अनिवार्य विषय बनाकर उसमें परीक्षाएँ लेनी शुरू कर दी। इससे हिन्दीकी शिक्षाका महत्व बढ गया। फिलहाल पश्चिमी महाराष्ट्र और विदर्भमें हिन्दी, ५ वी कक्षासे अनिवार्य विषय है तथा मराठवाडामे तीसरी कक्षासे वह ऐच्छिक विषयके रूपमें पढाया जाता है।

राज्यकी म्यु. कमेटियो तथा लोकल बोर्डोंने भी अपनी स्कूलोमें हिन्दीको अनिवार्य विषयके रूपमें पढाना शुरू किया है।

प्रशासकीय शब्दावलीका निर्माण

सरकारने इस समितिको हिन्दीमे प्रशासकीय शब्दावलीके निर्माणका काम भी सौंपा था। सविधानकी धारा ३५१ की व्यवस्थानुसार पारिभाषिक शब्दावलीका निर्माण किया गया जिसमें हिन्दीतर भाषाओके शब्दोको भी ज्यो-का-त्यो अथवा हेरफेरके साथ लेकिन हिन्दीकी प्रकृतिके अनुरूप अपना लिया गया था।

हिन्दीकी परीक्षाओंका संचालन

बम्बई सरकार सन् ५१–५२ से हिन्दी कन्वरसेशनल स्टैण्डर्ड, हिन्दी लोअर स्टैण्डर्ड तथा हिन्दी हायर स्टैण्डर्ड ऐसी तीन विभागीय परीक्षाओका सचालन कर रही है। सरकारका एक एडहॉक हिन्दी बोर्ड है। सरकारी कर्मचारियोकी वह परीक्षाएँ लेता है। सरकारी कर्मचारियोके लिए ये परीक्षाएँ पास करना अनिवार्य बना दिया गया है।

उसी तरह हिन्दी शिक्षक सनदकी जूनियर एव सीनियर परीक्षाएँ भी राज्य सरकार द्वारा सचालित होती हैं। जूनियर सनद पास शिक्षक मिडिल स्कूलमें तथा सीनियर सनद पास हाईस्कूलमे हिन्दी विषय पढा सकता है। हिन्दी अध्यापकोके लिए ये परीक्षाएँ पास करना बम्बई राज्यमें (और अब महाराष्ट्र) राज्यमें अनिवार्य है।

महाराजा सयाजीराव गायकवाड़

[हिन्दीके कार्यको प्रोत्साहन एवं आर्थिक सहायता देकर व्यवस्थित रूपमें प्रचारित करनेवाले स्व. बड़ौदा नरेश।]

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाकी 'कोविद' परीक्षा तथा 'रत्न' परीक्षाको पास करनेवाले मशः जूनियर तथा सीनियर सनद परीक्षामें सीधे वैठ सकते हैं।

७—राज्यकी गैर-सरकारी संस्थाओंको पहले बम्बई सरकारने तथा बादमें महाराष्ट्र एवं गुजरात रकारने समय-समयपर हिन्दीके प्रचार एवं परीक्षाओंके लिए अनुदान दिए हैं। विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार मितिको ५००० रु. प्रतिवर्ष राज्य सरकार अनुदानमें देती है। सन् १९५९–६० से मराठवाड़ा राष्ट्रभाषा चार समितिको महाराष्ट्र सरकार अनुदान देती है। अवतक १३००० रु. अनुदानमें दिए जा चुके हैं।

८—गुजरात राज्यकी बड़ौदा स्टेटमें हिन्दीको समृद्ध करनेके लिए तथा उसका प्रचार-प्रसार रनेके लिए स्व. महाराज सयाजीरावजी गायकवाड़के शासन कालसे ही सतत प्रयत्न किए जाते रहे हैं। स राज्यकी ओरसे सन् १९३१ में एक "शासन-शब्दकल्पतरु" नामक शब्दकोश प्रकाशित हुआ था जिसमें ग्रेजी, गुजराती, मराठी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी तथा बंगला भाषाओंके समानार्थी हजारों शब्दोंका कलन किया गया था। राज्यका आदेश था कि शासन-कार्यकी भाषा गुजराती हो और अँग्रेजीके बदले जराती, संस्कृत, हिन्दी, भारतीय शब्दोंका व्यवहार हो। उच्च न्यायालयको 'न्याय मन्दिर' कहा ाता था और उसकी भाषा गुजराती निर्धारित की गई थी। सन् १९३३ में राज्यने सभी कर्मचारियोंके लए हिन्दीका ज्ञान अनिवार्य बना दिया था। साथ ही राज्यकी शिक्षण संस्थाओंमें हिन्दीकी पढ़ाई अनिवार्य र दी गई थी।

९—गुजरातमें (तथा महाराष्ट्रमें भी) सन् १९३८ से हाईस्कूलके प्रथम ३ वर्षोमें तथा प्राथमिक- अन्तिम तीन वर्षोंमें अर्थात् ५, ६, ७, कक्षामें हिन्दी अनिवार्य विषयके रूपमें पढ़ाई जाती है। सन् ४७ से ह ८, ९, १०, कक्षामें अनिवार्य कर दी गई है। सन १९४९ मार्चसे हिन्दी मातृभाषाके रूपमें मैट्रिकमें खी गई है। सन् ५२ से हायर मैट्रिकमें जनरल इंग्लिशके विकल्पमें हिन्दी विषय है। सन् १९५७ से ोअर मैट्रिकमें हिन्दी अनिवार्य विषय है। आज ५ वींसे ११ वीं तक हिन्दी और उसकी परीक्षाएँ अनिवार्य है।

मध्यप्रदेश

१—भारतीय संविधानकी धारा ९४५ की व्यवस्थानुसार पुराने मध्यप्रदेश राज्यने सन् १९५० में 'मध्यप्रदेश राजभाषा अधिनियम १९५०" स्वीकृत कर हिन्दी और मराठीको राज्यकी राजभाषा घोषित कर दिया था।

इस अधिनियममें यह व्यवस्था है कि विधान मण्डलमें पेश किए जानेवाले विधेयकों तथा उनके द्वारा स्वीकृत अधिनियमों, राज्यपाल द्वारा प्रसारित अध्यादेशों, राज्य द्वारा जारी किए गए किसी भी प्रकारके आदेश, नियम, विनिमय, उपनियम आदि हिन्दी और मराठीमें रहेंगे।

पुराने मध्यप्रदेश राज्यने उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यभारत, राजस्थान, भोपाल तथा विंध्य प्रदेश सरकारोंसे अन्तरराज्यीय पत्र-व्यवहार हिन्दीमें करने सम्बन्धी समझौते किए थे।

२—पुराने मध्यभारतकी सरकारने भी सन् १९५० में मध्य भारत राजभाषा अधिनियम १९५० पास कर हिन्दीको राजभाषाके रूपमें अंगीकार कर लिया था। उसी अधिनियमकी व्यवस्थानुसार विधान

विधेयक, अधिनियम, राज्यपालके अध्यादेश, राज्य सरकारके आदेश, नियम, विनिमय तथा उपनियम आदि हिन्दीमें रहा करते थे।

पुरानी मध्यभारत सरकारने पुराने मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान, तथा अजमेरसे अन्तरराज्यीय पत्र-व्यवहारमें हिन्दीका प्रयोग करनेके बारेमें समझौते किए थे। राजप्रमुखने उच्च न्यायालय की कार्यवाहियोंमें हिन्दीका प्रयोग प्राधिकृत कर दिया था।

३—उसी प्रकार भोपाल एवं विन्ध्य प्रदेश सरकारोंने भी मध्यप्रदेश सरकारसे अन्तरराज्यीय पत्र-व्यवहारके लिए हिन्दीको प्रयुक्त करनेका समझौता किया था।

४—सन् १९५६ में राज्य पुनर्रचनाके बाद मध्यप्रदेशमेंसे विदर्भ छोड़कर शेष मध्यप्रदेश और *मध्यभारत, भोपाल, विन्ध्य प्रदेश मिलाकर नए मध्यप्रदेश राज्यका गठन किया गया।* इस नए मध्यप्रदेश राज्यकी राजभाषा तथा लोक भाषा हिन्दी ही है और अन्तरराज्यीय पत्र-व्यवहारोंमें हिन्दीको प्रयुक्त करनेके बारेमें उसके उत्तरप्रदेश, राजस्थान तथा बिहारसे समझौते हुए हैं।

राज्य शासनके कार्यालयोंमें हिन्दीका यथा सम्भव अधिकाधिक उपयोग करनेके प्रयत्न किए जा रहे हैं। ९ जुलाई १९६० से सचिवालयके कमेटी रूममें शासनके तृतीय श्रेणी कर्मचारियोंके लिए रा. भा. प्र समितिकी ओरसे कक्षाएँ चलाई जा रही हैं। यह कार्य भाषा विभाग, राज्य सरकारकी प्रेरणा एवं सहायतासे चल रहा है।

मध्यप्रदेशकी हाईस्कूलोंमें हिन्दी अनिवार्य विषयके रूपमें अहिन्दी भाषी छात्रोंको पढाई जाती है।

५—मध्यप्रदेश शासकीय हिन्दी परिषद, राज्यमें हिन्दीको विकसित एवं समृद्ध करनेकी योजनाओंको चलाती है। शासन साहित्य परिषदने भूतपूर्व विन्ध्यप्रदेश सरकारकी विभिन्न साहित्यिक प्रतियोगिताओं, देव पुरस्कार इ को जारी रखा है। इतना ही कि ये पुरस्कार अब पूरे मध्यप्रदेश तक व्यापक कर दिए गए हैं।

२,१००) रु का देव पुरस्कार मात्र अखिल भारतीय स्तरका है।

परिषद प्रत्येक वर्ष राज्यके प्रमुख केन्द्रोंमें कुछ भाषण-मालाओंका आयोजन करवाती है।

गैर सरकारी संस्थाओंके द्वारा किए गए हिन्दी-प्रचार-कार्यको सहायता

शासनने समितिकी 'परिचय' 'कोविद' तथा 'रत्न' परीक्षाओंको क्रमश. मैट्रिक, इंटरमीडिएट, तथा बी ए की हिन्दी योग्यताके समकक्ष मान्यता प्रदान की है। उसी प्रकार कर्मचारी की किसी पद पर नियुक्ति अथवा स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारितकी जाती है, वहाँ सरकारने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की 'परिचय' परीक्षाको विभागीय परीक्षाके रूपमें मान्यता दी है। पुरानी मध्यप्रदेश सरकारने राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको नागपुरमें भवन बनानेके लिए भूमि दानमें दी थी। म प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके द्वारा राज्यमें रेल कर्मचारियोंके लिए तथा हेवी इलेक्ट्रिकल कारखानेके कर्मचारियोंके लिए कक्षाएँ चलाई जाती हैं। भोपालमें भी समितिको भवन बनानेके लिए दो एकड जमीन दी गई है। शासनने समितिको ६०-६१ के लिए ३ हजार रु दिए; ५९-६० में भी अनुदान दिया गया था। सन् १९५७-५८में पचायत व समाज-शिक्षा

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाकी 'कोविद' परीक्षा तथा 'रत्न' परीक्षाको पास करनेवाले क्रमशः जूनियर तथा सीनियर सनद परीक्षामें सीधे बैठ सकते हैं।

७—राज्यकी गैर-सरकारी संस्थाओंको पहले बम्बई सरकारने तथा बादमें महाराष्ट्र एवं गुजरात सरकारने समय-समयपर हिन्दीके प्रचार एवं परीक्षाओंके लिए अनुदान दिए हैं। विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको ५००० रु. प्रतिवर्ष राज्य सरकार अनुदानमें देती है। सन् १९५९–६० से मराठवाड़ा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको महाराष्ट्र सरकार अनुदान देती है। अबतक १३००० रु. अनुदानमें दिए जा चुके हैं।

८—गुजरात राज्यकी बड़ौदा स्टेटमें हिन्दीको समृद्ध करनेके लिए तथा उसका प्रचार-प्रसार करनेके लिए स्व. महाराज सयाजीरावजी गायकवाड़के शासन कालसे ही सतत प्रयत्न किए जाते रहे हैं। इस राज्यकी ओरसे सन् १९३१ में एक "शासन-शब्दकल्पतरु" नामक शब्दकोश प्रकाशित हुआ था जिसमें अँग्रेजी, गुजराती, मराठी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी तथा बंगला भाषाओंके समानार्थी हजारों शब्दोंका संकलन किया गया था। राज्यका आदेश था कि शासन-कार्यकी भाषा गुजराती हो और अँग्रेजीके बदले गुजराती, संस्कृत, हिन्दी, भारतीय शब्दोंका व्यवहार हो। उच्च न्यायालयको 'न्याय मन्दिर' कहा जाता था और उसकी भाषा गुजराती निर्धारित की गई थी। सन् १९३३ में राज्यने सभी कर्मचारियोंके लिए हिन्दीका ज्ञान अनिवार्य बना दिया था। साथ ही राज्यकी शिक्षण संस्थाओंमें हिन्दीकी पढ़ाई अनिवार्य कर दी गई थी।

९—गुजरातमें (तथा महाराष्ट्रमें भी) सन् १९३८ से हाईस्कूलके प्रथम ३ वर्षोंमें तथा प्राथमिकके अन्तिम तीन वर्षोंमें अर्थात् ५, ६, ७, कक्षामें हिन्दी अनिवार्य विषयके रूपमें पढ़ाई जाती है। सन् ४७ से वह ८, ९, १०, कक्षामें अनिवार्य कर दी गई है। सन १९४९ मार्चसे हिन्दी मातृभाषाके रूपमें मैट्रिकमें रखी गई है। सन् ५२ से हायर मैट्रिकमें जनरल इंग्लिशके विकल्पमें हिन्दी विषय है। सन् १९५७ से लोअर मैट्रिकमें हिन्दी अनिवार्य विषय है। आज ५ वींसे ११ वीं तक हिन्दी और उसकी परीक्षाएँ अनिवार्य हैं।

मध्यप्रदेश

१—भारतीय संविधानकी धारा ९४५ की व्यवस्थानुसार पुराने मध्यप्रदेश राज्यने सन् १९५० में "मध्यप्रदेश राजभाषा अधिनियम १९५०" स्वीकृत कर हिन्दी और मराठीको राज्यकी राजभाषा घोषित कर दिया था।

इस अधिनियममें यह व्यवस्था है कि विधान मण्डलमें पेश किए जानेवाले विधेयकों तथा उनके द्वारा स्वीकृत अधिनियमों, राज्यपाल द्वारा प्रसारित अध्यादेशों, राज्य द्वारा जारी किए गए किसी भी प्रकारके आदेश, नियम, विनिमय, उपनियम आदि हिन्दी और मराठीमें रहेंगे।

पुराने मध्यप्रदेश राज्यने उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यभारत, राजस्थान, भोपाल तथा विंध्य प्रदेश सरकारोंसे अन्तरराज्यीय पत्र-व्यवहार हिन्दीमें करने सम्बन्धी समझौते किए थे।

२—पुराने मध्यभारतकी सरकारने भी सन् १९५० में मध्य भारत राजभाषा अधिनियम १९५० पास कर हिन्दीको राजभाषाके रूपमें अंगीकार कर लिया था। उसी अधिनियमकी व्यवस्थानुसार विधान

विधेयक, अधिनियम, राज्यपालके अध्यादेश, राज्य सरकारके आदेश, नियम, विनिमय तथा उपनियम आदि हिन्दीमें रहा करते थे।

पुरानी मध्यभारत सरकारने पुराने मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान, तथा अजमेरसे अन्तरराज्यीय पत्र-व्यवहारमें हिन्दीका प्रयोग करनेके बारेमें समझौते किए थे। राजप्रमुखने उच्च न्यायालय की कार्यवाहियोंमें हिन्दीका प्रयोग प्राधिकृत कर दिया था।

३—उसी प्रकार भोपाल एवं विन्ध्य प्रदेश सरकारोंने भी मध्यप्रदेश सरकारसे अन्तरराज्यीय पत्र-व्यवहारके लिए हिन्दीको प्रयुक्त करनेका समझौता किया था।

४—सन् १९५६ में राज्य पुनर्रचनाके बाद मध्यप्रदेशमेंसे विदर्भ छोड़कर शेष मध्यप्रदेश और मध्यभारत, भोपाल, विन्ध्य प्रदेश मिलाकर नए मध्यप्रदेश राज्यका गठन किया गया। इस नए मध्यप्रदेश राज्यकी राजभाषा तथा लोक भाषा हिन्दी ही है और अन्तरराज्यीय पत्र-व्यवहारोंमें हिन्दीको प्रयुक्त करनेके बारेमें उसके उत्तरप्रदेश, राजस्थान तथा बिहारसे समझौते हुए हैं।

राज्य शासनके कार्यालयोंमें हिन्दीका यथा सम्भव अधिकाधिक उपयोग करनेके प्रयत्न किए जा रहे हैं। ९ जुलाई १९६० से सचिवालयके कमेटी रूममें शासनके तृतीय श्रेणी कर्मचारियोंके लिए रा. भा. प्र. समितिकी ओरसे कक्षाएँ चलाई जा रही हैं। यह कार्य भाषा विभाग, राज्य सरकारकी प्रेरणा एवं सहायतासे चल रहा है।

मध्यप्रदेशकी हाईस्कूलोंमें हिन्दी अनिवार्य विषयके रूपमें अहिन्दी भाषी छात्रोंको पढ़ाई जाती है।

५—मध्यप्रदेश शासकीय हिन्दी परिषद, राज्यमें हिन्दीको विकसित एवं समृद्ध करनेकी योजनाओंको चलाती है। शासन साहित्य परिषदने भूतपूर्व विन्ध्यप्रदेश सरकारकी विभिन्न साहित्यिक प्रतियोगिताओं, देव पुरस्कार इ को जारी रखा है। इतना ही कि ये पुरस्कार अब पूरे मध्यप्रदेश तक व्यापक कर दिए गए हैं।

२,१००) रु का देव पुरस्कार मात्र अखिल भारतीय स्तरका है।

परिषद प्रत्येक वर्ष राज्यके प्रमुख केन्द्रोंमें कुछ भाषण-मालाओंका आयोजन करवाती है।

गैर सरकारी संस्थाओंके द्वारा किए गए हिन्दी-प्रचार-कार्यको सहायता

शासनने समितिकी 'परिचय' 'कोविद' तथा 'रत्न' परीक्षाओंको क्रमश. मैट्रिक, इंटरमीडिएट, तथा बी ए की हिन्दी योग्यताके समकक्ष मान्यता प्रदान की है। उसी प्रकार कर्मचारी की किसी पद पर नियुक्ति अथवा स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारितकी जाती है, वहाँ सरकारने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की 'परिचय' परीक्षाको विभागीय परीक्षाके रूपमें मान्यता दी है। पुरानी मध्यप्रदेश सरकारने राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको नागपुरमें भवन बनानेके लिए भूमि दानमें दी थी। म. प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके द्वारा राज्यमें रेल कर्मचारियोंके लिए तथा हेवी इलेक्ट्रिकल कारखानेके कर्मचारियोंके लिए कक्षाएँ चलाई जाती हैं। भोपालमें भी समितिको भवन बनानेके लिए दो एकड़ जमीन दी गई है। [illegible] समितिको ६०-६१ के लिए ३ हजार रु. दिए; ५९-६० में भी अनुदान दिया गया था। सन् १९[illegible] [illegible] व [illegible]

विभागने १० हजार रु. का अनुदान समितिको दिया था। ५८-५९के लिए समिति पुस्तकालयके लिए केंद्रीय समाज कल्याण बोर्डने १३०० रु. दिए थे।

पंजाब

१—जब पेप्सू अलग राज्य था तो राजप्रमुखने उच्च न्यायालयकी कार्यवाहियोंमें हिन्दी एवं पंजाबी भाषाके प्रयोगकी अनुमति दे दी थी।

२—राज्यके भाषा-विभागने १९५६ में प्रतिवर्ष हिन्दी तथा पंजाबीकी साहित्य प्रतियोगिताएँ जारी करनेका निर्णय किया था। सफल रचनाओंको विभागीय पत्र 'सप्तसिन्धु' (हिन्दी) तथा 'पंजाबी-दुनिया' में प्रकाशित करनेकी बात थी। कुछ पुरस्कार भी रखे गए थे।

३—राज्यके भाषा-परामर्श बोर्डकी बैठकमें १९५९में हिन्दी और पंजाबीमें शब्दोंके अनुवादके लिए दो अलग-अलग समितियाँ नियुक्त की गई थीं और राज्यके लेखकोंकी पुस्तकों पर पुरस्कार देने तथा तदर्थ दो समितियोंके गठनका निश्चय किया गया था।

४—बोर्डने हिन्दी और पंजाबीकी विभागीय परीक्षाओंके लिए एक उपसमिति भी गठित की थी।

५—राज्य स्तर पर विश्वकी उत्तम पुस्तकोंका और वैज्ञानिक साहित्य का हिन्दी और पंजाबी अनुवाद प्रस्तुत करनेकी भी राज्य की योजना है।

६—राज्यकी भाषा-समस्यापर विचार करनेके लिए राज्य सरकारने १९६० में एक २५ सदस्यीय समितिको नियुक्त किया था।

७—पंजाब सरकारने सरकारी कर्मचारियोंकी किसी पद पर नियुक्ति अथवा स्थायित्वके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारित की है, वहाँ उसने राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी 'कोविद'-परीक्षाको मान्यता दी है।

वैसे पंजाब विश्वविद्यालय समितिकी 'कोविद' एवं 'रत्न' परीक्षाओंको अपने 'रत्न' तथा 'भूषण' परीक्षाओंके समकक्ष मानता है।

८—पंजाब सरकारने कुछ दिनों पहले अपने गजटमें एक अधिसूचना प्रकाशित की है जिसके अनुसार २ अक्टूबर १९६२ से पंजाबके हिन्दी क्षेत्रमें देवनागरी लिपिमें लिखी जानेवाली हिन्दी भाषा और पंजाबी क्षेत्रमें गुरुमुखी में लिखी जानेवाली पंजाबी भाषा जिला स्तर पर तथा उससे नीचेके स्तरों पर सरकारी भाषाएँ होंगी। लोगोंको पंजाबी अथवा हिन्दीमें प्रार्थना-पत्र भेजनेकी छूट रहेगी और उनके उत्तर प्रार्थीकी भाषामें दिए जाएँगे। सरकारके तमाम नोटिस हिन्दी और पंजाबीमें प्रकाशित होंगे।

९—अधिसूचनामें यह भी कहा गया है कि उच्च न्यायालयके मातहत तमाम अदालतोंकी भाषा हिन्दी क्षेत्रमें हिन्दी और पंजाबी क्षेत्रमें पंजाबी होगी। राजधानी चण्डीगढ़में अँग्रेजी और उर्दू में काम चलता रहेगा। राज्यकी अदालतोंमें अँग्रेजीमें उन मामलोंमें काम होता रहेगा जो २ अक्टूबरसे पहले पेश ही अँग्रेजीमें किए गए होंगे।

१०—स्कूलोंमें हिन्दी अनिवार्य विषय है। हिन्दी शिक्षकोंके प्रशिक्षणकी व्यवस्था है।

राजस्थान

१—राजस्थान राज्यने सन् १९५२ में 'राजस्थान राजभाषा अधिनियम १९५२' स्वीकृत कर हिन्दीको राजस्थान राज्यकी राजभाषाके रूपमे अंगीकार कर लिया था।

२—इस अधिनियममे यह व्यवस्था थी कि विधान सभाके सभी विधेयक, अधिनियम, राजप्रमुखके अध्यादेश तथा राज्य सरकार द्वारा प्रसारित आदेश, नियम, विनिमय अथवा उपनियम हिन्दीमें रहेंगे।

३—तभी राजस्थान सरकारने तत्कालीन अजमेर, मध्यप्रदेश, तथा मध्य भारत राज्योंसे अन्तर-राज्यीय व्यवहारोके लिए हिन्दीको प्रयुक्त करनेके समझौते किए थे।

४—पुराने अजमेर राज्यने भी हिन्दीको राजभाषाके रूपमें घोषित कर दिया था। उसने भी सन् १९५२ मे "अजमेर राजभाषा अधिनियम" पास किया था। अजमेर राज्यने भी मध्य भारत तथा राजस्थान राज्योसे पत्र-व्यवहार के लिए हिन्दीको प्रयुक्त करनेका समझौता किया था।

५—राजस्थान साहित्य अकादमी राजस्थानमें साहित्य-विकासका एक विशेष केन्द्र है। हिन्दीकी उपभाषा राजस्थानी तथा उसकी स्थानीय बोलियोको विकसित एव समृद्ध करनेका प्रयत्न करना इस अकादमीका एक कार्य है।

अकादमी राजस्थानके पुराने साहित्य, काव्य, नाटक, आदिका अनुसंधान करवाती है। उसने कतिपय जैन एव प्राचीन हस्तलिपियों एव ग्रन्थोके प्रकाशन एव सशोधनका काम भी हाथमें लिया है।

६—स्कूलोमे हिन्दी अनिवार्य विषय है।

७—राजस्थान सरकारने हिमाचल प्रदेश सरकारसे हिन्दीमे पत्र-व्यवहार करनेका करारनामा किया है। उत्तर प्रदेश एव बिहार राज्य सरकारोंसे तथा मध्यप्रदेश सरकारसे वह हिन्दीमें पत्र-व्यवहार करती ही है।

८—अपने वित्त-मन्त्री श्री हरिभाऊ उपाध्यायके नेतृत्वमे बनी समितिकी सिफारिश एव रिपोर्टपर विचार कर राजस्थान सरकारने एक घोषणा प्रस्तुत की है, जिसके अनुसार १ अप्रैल १९६० से सचिवालय और अन्य सब विभागोंका प्रत्यक्ष कामकाज हिन्दीमें शुरू हो गया है। अबतक हिन्दी सरकारके कुछ चुनिंदे विभागोंकी तथा जिला स्तर और उससे नीचेके कार्यालयोकी भाषा थी। इस घोषणाके बाद सरकारी कार्यालय गैर-सरकारी लोगोंके साथ हिन्दीमें पत्र-व्यवहार करने लगे है। जहाँ कानूनी शब्दावलीकी बात होती है, वही अंग्रेजीमें पत्र-व्यवहार किया जाता है। केन्द्र या राज्यसे प्राप्त अंग्रेजी पत्रोंपर कार्यवाही करनेके पहले उनका हिन्दी अनुवाद कर लेना पडता है।

उपर्युक्त घोषणाके अनुसार उस प्रत्येक सरकारी कर्मचारीको सन् १९६० के अन्त तक उच्च विद्यालय स्तरकी हिन्दी योग्यता प्राप्त कर लेनी चाहिए थी जो फाइलोका काम करता है। सरकारने यह भी घोषित किया था कि सरकार कुछ परीक्षाओंका आयोजन करेगी जिनमें उत्तीर्ण होनेवालोंको ही वृद्धि दी जाएगी। हिन्दीमे टाइप तथा शार्टहैंडकी कक्षाएँ भी खोली गई।

राज्य का उच्च न्यायालय अपने निर्णय अंग्रेजीमे ही देता है लेकिन अधीनस्थ अदालतें तथा राजस्व मण्डल अपने निर्णय हिन्दीमें देते हैं।

९—सरकारी कर्मचारियोंके स्थायित्व अथवा नियुक्तिके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारित की गई है, वहाँ शासन द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी 'कोविद' परीक्षाको मान्यता प्रदान की गई है। 'राष्ट्रभाषा-कोविद' तथा 'राष्ट्रभाषा-रत्न' उत्तीर्ण व्यक्ति राजपूताना विश्वविद्यालयकी हाइस्कूल एवं इंटर मिडियट परीक्षाओंमें सिर्फ अँग्रेजी लेकर बैठ सकते हैं। विश्व विद्यालयने समितिकी इन परीक्षाओंको अपनी 'साहित्य विनोद' एवं 'साहित्य विशारद' के समकक्ष मान्यता दी है।

असम

१—जब १९३८ में असम प्रान्तके मुख्यमन्त्री स्व. गोपीनाथजी बारडोलाईकी अध्यक्षतामें असम हिन्दी प्रचार समितिकी स्थापना हुई थी, तब प्रान्तके शिक्षा विभागके डायरेक्टर श्री जी. के. स्लम भी उस सभामें आमन्त्रित थे और उनकी सलाहसे सरकारी हाई स्कूलोंमें पाँचवीं और छठीं कक्षाओंमें हिन्दी शिक्षाकी व्यवस्था करनेका निर्णय किया गया था। समितिने सन् १९३९ में सभी हाइस्कूलोंमें हिन्दीकी व्यवस्था करनेपर विचार किया था।

२—सन् १९३९ से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको सरकारकी ओरसे अनुदान दिए गए हैं। महायुद्ध आदिके कारण यह सिलसिला टूट गया था। अब फिर सन् १९५८–५९ तथा ६० के लिए राज्य सरकारने तीन भिन्न स्थानोंपर हिन्दी अध्यापकोंके प्रशिक्षणार्थ प्रशिक्षण शिविर चलानेके हेतु समितिको २० हजार रुपएके अनुदान स्वीकृत किए थे। इन शिविरोंमें सरकार द्वारा प्रेपित लगभग १०० अध्यापक प्रशिक्षित किए जा चुके हैं।

३—तिनसुकियामें सन् १९६१ में जो अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा सम्मेलन हुआ था, उसके स्वागताध्यक्ष मुख्यमन्त्री श्री विमलप्रसादजी चलिहा थे। सम्मेलनके लिए सरकारने १० हजार रु. के नगद अनुदानके अलावा हिन्दी प्रचार आदिके लिए काफी ठोस सहायता प्रदान की थी।

४—राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी 'परिचय' परीक्षा पास व्यक्ति ट्रेनिंग लेकर सीधा हाइस्कूलका अध्यापक बन सकता है, 'कोविद' उत्तीर्ण व्यक्ति तो बिना ट्रेनिंग लिए ही शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत वेतन-क्रमपर हिन्दी शिक्षकके रूपमें नियुक्त किया जा सकता है।

५—राज्यमें चौथी कक्षासे हिन्दी अनिवार्य विषय है।

उत्कल

१—काँग्रेस मन्त्रिमण्डलकी स्थापनाके साथ ही सन् १९३७ में प्रान्तीय स्कूलोंमें हिन्दीको वैकल्पिक विषय बना दिया गया था।

२—सन् १९३८ में मुख्य मन्त्री श्री विश्वनाथ दासकी इस घोषणासे कि प्रत्येक सरकारी कर्मचारीको हिन्दी सीखना अनिवार्य है, हिन्दीको काफी बल मिला।

३—शिक्षा मन्त्रीने सन् १९४१ में उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाके अनुरोधसे एक परिपत्र भेजा था जिसमें हिन्दी सीखनेकी बात पर जोर दिया गया था तथा उसे अनिवार्य बनानेका भी जिकर किया गया था।

४—सन् १९३८ से सरकारी आदेशानुसार प्रान्तकी सभी स्कूलोंमें चौथीसे आठवीं तक हिन्दी शिक्षा आरम्भ हुआ। उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाने सर्वत्र अपने प्रचारक एवं शिक्षक भेजे।

५—स्कूलोंमें पहले उत्कल राष्ट्रभाषा प्रचार सभाके अवैतनिक प्रचारक हिन्दी पढ़ाया करते थे बादमें सन् १९४१ में हर स्कूलमें एक शिक्षकके हिसाबसे प्रान्तके शिक्षकोंका एक प्रशिक्षण केन्द्र सभाकी ओरसे सरकारी सहायतासे चलाया गया था।

६—तदनन्तर काम बन्द हो गया। सन् १९४६ में कांग्रेसके मन्त्रिमण्डल होते ही सरकारने एक परिपत्र निकाल कर सूचित किया कि प्रान्तके सभी स्कूलोंमें छठीसे नवीं श्रेणी तक राष्ट्रभाषा हिन्दी पढ़ना आवश्यक है। सन् १९४८ से सभी स्कूलोंमें राष्ट्रभाषा की पढ़ाई आवश्यक कर दी गई।

७—सरकारकी ओरसे प्रान्तमें १९४८ में प्रशिक्षण शिविरके लिए ६४००० रु की एक योजना बनी। सरकारने उत्कल प्रां. रा. प्र. सभाको इसके अलावा उस वर्ष २०००) का अनुदान दिया। गंजाम जिला बोर्डके ४८ शिक्षकोंको प्रशिक्षित करनेके लिए सभाकी ओरसे हिंजली काटूमें एक शिविर तीन मास तक चलाया गया जिसका खर्च ५००० रु. आया।

८—१९४७ में सभाको सरकारने डेढ़ एकड़ जमीन दी। १९४८ में सभा द्वारा सभी हाईस्कूलों तथा मिडिल स्कूलोंसे एक-एक शिक्षकको लेकर प्रशिक्षित करनेके लिए आठ केन्द्र खोले गए तथा सभाको उत्कल सरकारने १००००) का एक तथा ५०००) का दूसरा ऐसे दो अनुदान दिए। पुस्तकालयके लिए २७०० रु० की रकम भी दी। भवन-निर्माणके लिए सरकारने ११०००) की रकम सभाके लिए मंजूर की है। सन् १९५१ से सरकार सभाको हरसाल १५ हजार रु. देती है। सन् १९५५ से केन्द्रीय शिक्षामन्त्रालय भी प्रान्तीय सभाको सालाना २५०००) देती है।

९—सन् १९५६ में शिक्षा विभागके निर्देशक महोदयकी परिचालनासे हिन्दी ट्रेनिंग स्कूल सभाके प्रांगणमें ही खोला गया।

१०—अनुवाद समिति—उड़ीसा सरकार उ. प्रा. रा. सभाकी अनुवाद समितिको अनुदान देती है। इस समिति द्वारा अनूदित पुस्तकें माध्यमिक शिक्षण बोर्डके लिए स्वीकृत कर ली गई हैं। अब अनुवाद—समितिके हाथमें शब्दकोशका काम है। सभाका एक प्रकाशन विभाग भी है। इसके द्वारा ५० पुस्तकें प्रकाशित की गई है।

११—तीन सालसे उत्कली हाईस्कूलों और आश्रम स्कूलोंमें हिन्दी शिक्षकोंकी नियुक्तियाँ की जा रही हैं।

१२—सरकारी कॉलेजों तथा गैर-सरकारी कॉलेजोंमें हिन्दी प्राध्यापक नियुक्त किए गए हैं।

१३—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाकी 'राष्ट्रभाषा-रत्न' परीक्षाको प्रान्तीय सरकारने अपनी संस्कृत 'आचार्य' परीक्षाके समकक्ष मान्यता प्रदान की है। "राष्ट्रभाषा रत्न" उत्तीर्ण व्यक्तिका वेतन क्रम राज्य सरकारने ७० रु. से १४० रु. तक स्वीकृत किया है।

९—सरकारी कर्मचारियोंके स्थायित्व अथवा नियुक्तिके लिए जहाँ हिन्दीकी योग्यता निर्धारित की गई है, वहाँ शासन द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी 'कोविद' परीक्षाको मान्यता प्रदान की गई है। 'राष्ट्रभाषा-कोविद' तथा 'राष्ट्रभाषा-रत्न' उत्तीर्ण व्यक्ति राजपूताना विश्वविद्यालयकी हाइस्कूल एवं इंटर मिडियट परीक्षाओंमें सिर्फ अँग्रेजी लेकर बैठ सकते हैं। विश्व विद्यालयने समितिकी इन परीक्षाओंको अपनी 'साहित्य विनोद' एवं 'साहित्य विशारद' के समकक्ष मान्यता दी है।

असम

१—जब १९३८ में असम प्रान्तके मुख्यमन्त्री स्व. गोपीनाथजी बारडोलाईकी अध्यक्षतामें असम हिन्दी प्रचार समितिकी स्थापना हुई थी, तब प्रान्तके शिक्षा विभागके डायरेक्टर श्री जी. के. स्लम भी उस सभामें आमन्त्रित थे और उनकी सलाहसे सरकारी हाई स्कूलोंमें पाँचवीं और छठीं कक्षाओंमें हिन्दी शिक्षाकी व्यवस्था करनेका निर्णय किया गया था। समितिने सन् १९३९ में सभी हाइस्कूलोंमें हिन्दीकी व्यवस्था करनेपर विचार किया था।

२—सन् १९३९ से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको सरकारकी ओरसे अनुदान दिए गए है। महायुद्ध आदिके कारण यह सिलसिला टूट गया था। अब फिर सन् १९५८–५९ तथा ६० के लिए राज्य सरकारने तीन भिन्न स्थानोंपर हिन्दी अध्यापकोंके प्रशिक्षणार्थ प्रशिक्षण शिविर चलानेके हेतु समितिको २० हजार रुपएके अनुदान स्वीकृत किए थे। इन शिविरोंमें सरकार द्वारा प्रेषित लगभग १०० अध्यापक प्रशिक्षित किए जा चुके हैं।

३—तिनसुकियामें सन् १९६१ में जो अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा सम्मेलन हुआ था, उसके स्वागताध्यक्ष मुख्यमन्त्री श्री विमलप्रसादजी चलिहा थे। सम्मेलनके लिए सरकारने १० हजार रु. के नगद अनुदानके अलावा हिन्दी प्रचार आदिके लिए काफी ठोस सहायता प्रदान की थी।

४—राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी 'परिचय' परीक्षा पास व्यक्ति ट्रेनिंग लेकर सीधा हाइस्कूलका अध्यापक बन सकता है, 'कोविद' उत्तीर्ण व्यक्ति तो बिना ट्रेनिंग लिए ही शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत वेतन-क्रमपर हिन्दी शिक्षकके रूपमें नियुक्त किया जा सकता है।

५—राज्यमें चौथी कक्षासे हिन्दी अनिवार्य विषय है।

उत्कल

१—काँग्रेस मन्त्रिमण्डलकी स्थापनाके साथ ही सन् १९३७ में प्रान्तीय स्कूलोंमें हिन्दीको वैकल्पिक विषय बना दिया गया था।

२—सन् १९३८ में मुख्य मन्त्री श्री विश्वनाथ दासकी इस घोषणासे कि प्रत्येक सरकारी कर्मचारीको हिन्दी सीखना अनिवार्य है, हिन्दीको काफी बल मिला।

३—शिक्षा मन्त्रीने सन् १९४१ में उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभाके अनुरोधसे एक परिपत्र भेजा था जिसमें हिन्दी सीखनेकी बात पर जोर दिया गया था तथा उसे अनिवार्य बनानेका भी जिकर किया गया था।

७—सरकारने वहुत देरसे क्यों न हो, सन् १९६० में एक हिन्दी शिक्षाधिकारीकी भी नियुक्ति की है।

७—बंगालके विद्यालयो तथा महाविद्यालयोंमें विश्वविद्यालय गत योग्यताओंके साथ-साथ हिन्दी ज्ञानकी दृष्टिसे सरकारने राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी कोविद परीक्षाको मान्यता दी है। "कोविद" उपाधिधारी शिक्षकको न्यूनतम वेतन १०० रु. प्राप्त करनेका अधिकारी माना जाता है।

उसी तरह माध्यमिक शिक्षा परिषदने समितिकी 'प्रवेश' परीक्षा उत्तीर्णको स्कूल फायनल—मैट्रिककी हिन्दीके समकक्ष माना है और समितिकी पुस्तकोको मैट्रिक की हिन्दीके पाठ्यक्रममें स्थान दिया गया है।

कहा जा चुका है कि राज्य सरकारने शिक्षा-प्रशिक्षण योजनाओके अन्तर्गत विभिन्न परिकल्पनाओंके लिए समितिको आवर्तक, अनावर्तक तथा सामयिक कार्यकारी सहायता अनुदानके रूपमें समय-समयपर दी है।

आन्ध्र प्रदेश

(१) छठी कक्षासे हिन्दी अनिवार्य विषय है।

(२) सन् १९५९ से मैट्रिक परीक्षाके लिए हिन्दी अनिवार्य विषय बना दिया गया है।

(३) हिन्दी प्रचारके लिए विशेष अफसर नियुक्त किए गए हैं।

(४) हिन्दी शिक्षण संस्थाओंको अनुदान दिए जाते हैं।

(५) स्कूलोमें हिन्दी शिक्षक नियुक्त किए जाते हैं।

हिन्दी शिक्षाधिकारीकी नियुक्ति की गई है।

(७) आन्ध्र प्रदेशकी सरकारने हिंदी प्रचार सभा हैदराबादकी 'विद्वान्' एवं 'हिंदी शिक्षक' परीक्षाको मान्यता दी है। दोनो परीक्षा उत्तीर्ण व्यक्तिको बी. ए. बी. टी के समकक्ष माना जाता है। भारत सरकारने भी हिन्दी प्रचार सभा की हिन्दी विशारद हिन्दी भूषण तथा हिन्दी विद्वान् परीक्षाओंको क्रमशः हिन्दी मैट्रिक, हिन्दी इटर परीक्षा तथा हिन्दी बी. ए. के समकक्ष माना है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाओंकी उच्च स्तरीय परीक्षाओंको भी मान्यता प्राप्त हुई है।

(८) भारत सरकारकी योजनानुसार तथा उसके निर्देशनमें हिन्दी प्रचार सभाने कतिपय प्रकाशन निकाले हैं। मराठी, तेलुगु, कन्नड और उर्दू-हिन्दी कोश तथा हिन्दी-उर्दू कोशका निर्माण जारी है। इन योजनाओंके लिए सभाको ४२ हजार रुपयोंकी सहायता स्वीकृत हुई है। सभाकी दो बाल-साहित्य पुस्तकोंपर केन्द्रीय सरकारसे ५००–५०० के पुरस्कार मिले हैं। सभाने सरकारी शिक्षा विभागके एक पूरक-अंगके रूपमें हिन्दी शिक्षा एवं प्रसारका काम किया है। सरकारी अनुदानसे उसने कई स्थानोंपर हिन्दी शिक्षा प्रशिक्षणवर्गोंका सचालन किया। आन्ध्र प्रदेश सरकारने १९५९ तक सभाको १०००० रु. तथा बादमें भी बहुत कुछ सहायता प्रदान की है।

(९) सरकारने उस्मान पेठमें एक हिन्दी भवन बनाकर हैदराबाद स्थित हिन्दी प्रचार सभाको नि शुल्क हिन्दीके कामोंके लिए दे दिया गया है।

(१०) दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी परीक्षाओंको, विशेष कर विशारद, प्रवीण एवं हिन्दी प्रचारक परीक्षाओंको सरकारने मान्यता प्रदान की है।

मैसूर

द्वितीय पंचवार्षिक योजनाके अन्तर्गत सरकारका प्रस्ताव था कि राज्यकी प्रत्येक हाईस्कूलमें कमसे कम एक हिन्दी अध्यापक नियुक्त किया जाए।

राज्यमें छठी कक्षासे हिन्दी अनिवार्य विषय है।

सरकारने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाकी प्रवेश परीक्षाको सरकारी कर्मचारियोंके लिए विभागीय परीक्षाके रूपमें मान्यता दी है। उसी तरह दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी परीक्षाओंको, विशेषकर विशारद, प्रवीण तथा हिन्दी प्रचारक परीक्षाओंको सरकार द्वारा मान्यता प्रदान की गई है।

केरल

(१) कोचीनके महाराजने १९२८ में अपने यहांके हाईस्कूलोंमें हिन्दी पढ़ानेकी व्यवस्था करवाई।

(२) केरलके सभी स्कूलों तथा कॉलेजोंमें आज हिन्दी अनिवार्य रूपसे पढ़ाई जाती है। वहाँ छठी कक्षाओंसे हिन्दी अनिवार्य विषय है। केरलका एक भी गांव या कस्बा ऐसा नहीं है; जहाँ हिन्दी विद्यालय या हिन्दी वर्ग न चलते हो।

(३) केरल विश्वविद्यालय 'हिन्दी विद्वान्' परीक्षा चलाता है। विश्वविद्यालयने अपने कुछ प्रमुख कालेजोंमें एम. ए. हिन्दीकी पढ़ाईका इंतजाम किया है और उसके प्रायः हरेक कॉलेजमें हिन्दी पढ़ाईकी व्यवस्था है।

(४) केरल राज्यने हिन्दी प्रचार कार्यके लिए एक विशेष हिन्दी अधिकारीकी नियुक्ति की है।

(५) हिन्दी अध्यापकोंके प्रशिक्षणके लिए सरकार प्रशिक्षण शिविर तथा विद्यालय चलाती है। वह समय-समयपर सरकारी नौकरी करनेवाले योग्य हिन्दी अध्यापकोंको मार्गव्यय एवं छात्रवृत्ति देकर उत्तर भारत भेजती है। प्रशिक्षित हिन्दी शिक्षकोंको अच्छा वेतनमान दिया जाता है।

(६) हिन्दी प्रचारके लिए उसने एक प्रदर्शनी-वॅन खरीदी है।

(७) सरकार केरलकी प्रमुख हिन्दी संस्थाओंको आर्थिक सहायता देती है तथा उनको प्रोत्साहित करती है। नंबूदरीपाद सरकारने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा केरलको भवन निर्माणके लिए १.० हजार रु. एक मुश्त तथा मासिक २५० रु. का अनुदान देना निश्चित किया था।

(८) दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी परीक्षाओंको, विशेषकर विशारद, प्रवीण तथा हिन्दी प्रचारक परीक्षाओंको राज्य सरकारने मान्यता प्रदान की है।

मद्रास

(१) सन् १९३७ में जब कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बना तो सरकारने सभी स्कूलोंमें पांचवे दर्जेसे हिन्दी शिक्षा अनिवार्य कर दी। यह बात दूसरी है कि जब कांग्रेसका मन्त्रिमण्डल न रहा, तब यह अनिवार्यता समाप्त हो गई थी। स्कूलोमें हिन्दीके अनिवार्य बननेपर सरकारने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी सहायतासे एस. एस. एल. सी. पास १००० नवयुवकोको हिन्दी शिक्षकोंके रूपमें हिन्दी शिक्षण विद्यालय खुलवाकर प्रशिक्षित किया।

(२) कांग्रेस मन्त्रिमण्डलके समाप्त होनेके बाद भी हिन्दी शिक्षाकी व्यवस्था स्कूलोंमें थी, और आज भी हर स्कूलमें हिन्दी अध्यापक रहता है। हां, हिन्दी अब अनिवार्य विषय नहीं है, वैकल्पिक विषय बन गया है।

(३) दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाने महिलाओ तथा पुरुषोके लिए प्रचारक विद्यालय चलाकर बी. टी. के पाठ्यक्रमको हिन्दी माध्यमसे पढाया तथा सरकारसे हिन्दी शिक्षकोंका वेतनक्रम भी निश्चित करवाया।

(४) प्रथम पंचवार्षिक योजनामें हिन्दी प्रचार एवं शिक्षाके लिए राज्य सरकारने द. भा. हिन्दी प्रचार सभाको ही उनके हिन्दी प्रचारक विद्यालयो तथा पुस्तकालयोके लिए अनुदान दिए। इस अवधिमें स्कूलोमें हिन्दी पढाई की व्यवस्थाके साथ-साथ कॉलेजोमे भी हिन्दी पढाई की जाने लगी। स्कूलोमें जहाँ वह तीसरा ऐच्छिक विषय था, वहाँ कॉलेजोमें दूसरी भाषाके रूपमें अंगीकृत किया जाने लगा था। केन्द्र सरकारके क्षेत्रमें काम करनेवालोके लिए हिन्दीका ज्ञान अनिवार्य बन जानेके कारण हिन्दी शिक्षाको बल मिला। मद्रास प्रान्तके कालेजोमे पहले इण्टरमें तथा बादमें पी. यू. सी. में, बी. ए. बी. काम. तथा बी. एस. सी. में हिन्दी पढाई की जाने लगी और योग्य हिन्दी अध्यापकोंकी नियुक्तियाँ की गई।

मद्रास प्रान्तमें अब रेल्वे, डाक तथा केन्द्रीय विभागोके कर्मचारियोंको हिन्दीमें प्रशिक्षित करनेका काम ३० से अधिक हिन्दी प्राध्यापक कर रहे है।

(५) १९५६ से शुरु होनेवाली दूसरी योजनामें सरकारने स्कूलोमें कार्य करने वाले अध्यापकोंमेंसे ऐसे १०० प्रचारक नियुक्त किए जो प्रति दिस अपने शहरो या गाँवोमे मुफ्तका वर्ग चलाकर, २५ विद्यार्थी तैयार करेंगे। उन्हे २५ रु माहवार पारिश्रमिक दिया जाता है था, जिसमेंसे ६० प्रतिशत केंद्रीय सरकार और २० प्रतिशत प्रान्तीय सरकार देती थी। बाकी २० प्रतिशत द. भा हि. प्र सभा देती थी।

(६) इसके अलावा मद्रास तिरुच्चि तथा मदुरामें हिन्दी टकन तथा शीघ्र लिपि विद्यालय खोलने के लिए सरकारने घाटेका ५० प्रतिशत वहन करनेका भार अपने पर लिया था।

(७) उसने पूर्ण समयका विशारद विद्यालय तथा प्रचारक विद्यालय मद्रासमें महिलाओके लिए तिरुच्चिमें पुरुषोके लिए सचालनार्थ सभाको अनुदान दिया।

(८) तीसरी पचवार्षिक योजनामें सन् १९६१-६२ में मद्रासके हाइस्कूलोंमें हिन्दी परीक्षाका विषय बनाई गई लेकिन न्यूनतम अक नही निर्धारित किए गए। अतएव स्कूलोंमें हिन्दी शिक्षण तेजीसे चल निकला।

(९) सरकारने सभाकी प्रवेशिका, विशारद पूर्वार्ध, विशारद उत्तरार्ध, प्रवीण तथा हिन्दी प्रचारक परीक्षाओंको मान्यता दी है। हिन्दी शिक्षकोंको विशारद, प्रवीण तथा प्रचारक परीक्षाएँ पास करनी पड़ती हैं, तभी उन्हें हाईस्कूलोंमें रखा जाता है तथा पक्का किया जाता है। प्रचारक उत्तीर्ण व्यक्तिको विश्वविद्यालयकी 'डिप्लोमा इन ओरियण्टल लर्निंग' परीक्षा उत्तीर्ण व्यक्तिके समकक्ष सब सुविधाएँ एवं वेतन इ. दिया जाता है।

दिल्ली

(१) स्कूलोंमें हिन्दी विषय अनिवार्य है।

(२) सन् १९५८ में दिल्ली प्रदेशके शासनने यह निर्णय किया था कि ६ माहके भीतर उसके सब कर्मचारी हिन्दी सीख लें। अगले छ:महीनेमें सरकारका सारा काम हिन्दी में किया जाने लगेगा।

दिल्लीके मुख्य आयुक्तने एक छ: सदस्योंवाली भाषा-समिति बनाई थी। उस समितिने भी उपर्युक्त अवधिको उचित बताया था।

जम्मू-कश्मीर

(१) स्कूलोंमें हिन्दी ऐच्छिक विषयके रूपमें पढ़ाई जाती है।

(२) हिन्दी शिक्षकोंके प्रशिक्षणकी व्यवस्था है।

(३) जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालयने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी 'कोविद' और 'राष्ट्रभाषा-रत्न' परीक्षाको अपनी रत्न' एवं 'भूषण' परीक्षाके समकक्ष मान्यता दी है।

त्रिपुरा

(१) मिडिल कक्षाओंसे हिन्दी अनिवार्य विषय है।

उत्तर पूर्व सीमान्त अभिकरण (नेफा)

(१) तीसरी कक्षासे हिन्दी अनिवार्य है।

लक्ष और निमिकाय द्वीप

आठवीं और नवीं कक्षासे हिन्दी अनिवार्य है।

अण्डमान निकोबार द्वीप

तीसरी कक्षासे हिन्दी अनिवार्य विषय है।

विश्व-विद्यालयोंमें हिन्दी

हमारे देशमें विश्वविद्यालयोमें उच्च शिक्षा दी जाती है। साधारणतः सभी विश्वविद्यालयोमें उच्च शिक्षाका माध्यम अँग्रेजी भाषा है। कुछ वर्षोंसे यह विचार चिन्तनीय बन गया है कि विश्वविद्यालयोमें उच्च शिक्षाका माध्यम क्या रखा जाए। प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षाका माध्यम विद्यार्थियोकी अपनी मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा होती है। उसके पश्चात् उच्च शिक्षाका प्रश्न उपस्थित होता है। एकाएक शिक्षाका माध्यम बदल जानेसे अनेक कठिनाइयाँ पैदा होती है। अभी तक इस सम्बन्धमे कोई निश्चित नीति निर्धारित नही हुई है, लेकिन इन समस्याओका हल सोच विचारकर निश्चित करना आवश्यक है। अन्यथा शिक्षाका स्तर दिनोदिन गिरता ही जाएगा। कुछ का यह निश्चित मत है कि विश्वविद्यालययोमे उच्च स्तरीय शिक्षाका माध्यम विशेषत विज्ञान एवं (तकनकी) टेकनिकल विषयोकी शिक्षाका माध्यम अँग्रेजी ही रहना चाहिए। जब कि कुछ शिक्षा शास्त्रियोका यह मत है कि जब तक जिन विषयोकी शिक्षा विद्यार्थीकी अपनी भाषामें नही दी जाएगी तब तक शिक्षाका स्तर गिरता ही जाएगा। एक प्रबल विचार धारा यह है कि भारतके सभी विश्वविद्यालयोकी उच्च शिक्षाका माध्यम देशकी सर्व सामान्य भाषा हिन्दीमें होना चाहिए, जिससे विद्यार्थियोको एक प्रान्तके विश्वविद्यालयसे दूसरे प्रान्तके विश्वविद्यालयमे जानेमें कोई असुविधा न हो। इसी प्रकार प्राध्यापकोको भी एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें जानेमें कोई कठिनाई न हो। अपने पक्षके समर्थनमें उनका यह भी कथन है कि जो भी अनुशीलन एव अनुसन्धानका कार्य देशके विभिन्न विश्वविद्यालयोमें हो रहा है उसका माध्यम एक भाषा न रही तो परिणाम स्वरूप ज्ञानकी जो भी उपलब्धियाँ होगी वे प्रदेश तक ही सीमित रहेगी और वे सारे देशकी उपलब्धियाँ नही हो सकेंगी। एक भाषाके रहनेसे शोधकी नवीनतम बाते सभीपर प्रकट हो सकेगी और उससे सभी लाभान्वित होगे अतः एम. ए. [तथा पी. एच. डी. जैसी उच्च परीक्षाओ और उपाधियोमें यह आवश्यक कर दिया जाए कि उनमें हिन्दीका उपयोग किया जाए।

विश्वविद्यालयकी शिक्षाके माध्यमके सम्बन्धमे जो विभिन्न मत आज विद्यमान है उनके सम्बन्धमें देशके शिक्षा शास्त्रियोको गम्भीरतापूर्वक विचार करके एक निश्चित नीति निर्धारित करनी चाहिए और उसके अनुसार उसे कार्यान्वित किया जाना चाहिए। जहाँ तक हिन्दीके शिक्षणका प्रश्न है विश्वविद्यालयोने उसके बढते हुए लक्षके महत्वको ध्यानमें रखकर अपने यहाँके पाठ्यक्रममें किसी न किसी रूपमें स्थान देकर उसके प्रशिक्षणकी व्यवस्था की है। कुछ विश्वविद्यालयोने कॉलेजके प्रथम एव द्वितीय वर्षमें हिन्दीको एक अनिवार्य विषयके रूपमें स्थान देकर राष्ट्रभाषाके रूपमें उसके महत्वको स्वीकार किया है तथा उसके प्रशिक्षण की व्यवस्था की है। कही उसे ऐच्छिक विषयके रूपमें स्थान दिया है। भारतके कुछ विश्वविद्यालयोंसे जो जानकारी प्राप्त हुई है उसका यहाँ सक्षेपमें विवरण दिया जा रहा है।

आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

आगरा विश्वविद्यालय हिन्दीकी उन्नतिके लिए सदासे प्रयत्न कर रहा है। इसने कुछ प्रमुख टेकनिकल विषयोको छोडकर प्राय सभी विषयोका माध्यम हिन्दीको स्वीकार किया है। कला सबधी (आर्ट्स) सभी विषयोंके साथ बी कॉम, एम. काम, बी. एस. सी एग्रिकल्चर यहाँ तक कि एल. एल. बी कक्षाओका माध्यम

ऐच्छिक रूपमें हिन्दी अथवा अँग्रेजी है। इस विश्वविद्यालयके अन्तर्गत श्री कन्हैयालाल मुंशी हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ भी चलती है; जिसमें देशकी प्रायः सभी भाषाओंके विद्यार्थी हिन्दी भाषा तथा साहित्यका ज्ञान पानेके लिए आते हैं। विश्वविद्यालयकी कार्यक्षमताको देखते हुए भारत सरकारके शिक्षा मंत्रालयने उसे देशी तथा विदेशी भाषाओंसे लगभग २००० पुस्तकोंका हिन्दीमें अनुवाद कार्य सौंपा है।

मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

विश्वविद्यालयमें हिन्दीकी प्रारम्भिक कक्षाओंसे लेकर बी. ए., बी. काम, तथा बी. एस. सी. कक्षाओं तक प्रशिक्षित करनेकी व्यवस्था की गई है। इस विश्वविद्यालयमें हिन्दीके प्रशिक्षणकी नीचे लिखे अनुसार व्यवस्था की गई है:—

अ—अहिन्दी भाषा-भाषी राज्योंसे आनेवाले विद्यार्थियोंके लिए प्रारम्भिक हिन्दी।

आ—हिन्दी भाषा-भाषी राज्योंसे आनेवाले उन विद्यार्थियोंके लिए प्रारंभिक हिन्दी जिन्होंने अपनी प्रारम्भिक कक्षाओंमें हिन्दीका अनिवार्य रूपसे अध्ययन किया है।

इ—हिन्दीकी विशेष शिक्षा उन विद्यार्थियोंको दी जाती है जिनका बोधस्तर अपेक्षाकृत ऊँचा है और जिन्होंने अपनी प्रारम्भिक कक्षाओंमें हिन्दी का विशेष (वैकल्पिक नहीं) रूपसे अध्ययन किया है।

प्रारम्भिक कक्षाओंमें हिन्दीके प्रशिक्षणके लिए इस विश्वविद्यालयने अपनी ओरसे कुछ विशेष पुस्तकें तैयार की हैं जो बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

हिन्दी साहित्यका अध्ययन एक वैकल्पिक विषयके रूपमें बी. ए. तथा एम. ए. तककी परीक्षाओंके लिए स्वीकृत है।

सामान्य हिन्दीका अध्ययन बी. ए. में उन छात्रोंके लिए अनिवार्य है, जिन्होंने हाइस्कूल अथवा इण्टरमीजिएट परीक्षामें उच्च हिन्दीका अध्ययन नहीं किया है। इस विश्वविद्यालयमें कुछ भारतीय भाषाओंका अध्ययन हिन्दी भाषाके माध्यमसे किया जाता है। कला अधिकरण (आर्ट्स फॅकल्टी) के अन्तर्गत अँग्रेजीको छोड़कर शेष अन्य विषयोंमें परीक्षार्थीकी इच्छानुसार हिन्दी अथवा अँग्रेजी माध्यम रखा गया है। इसी प्रकार वाणिज्य एवं कृषि अधिकरणमें भी सुविधा दी गई है।

हिन्दी विषयोंमें विद्यार्थी पी एच. डी. तथा डी. लिट् कर सकते हैं। विश्वविद्यालयकी उच्चतम प्रशासिका (सीनेट) की कार्यवाही अब हिन्दीमें ही होती है। कालिदास समारोहके उपलक्ष्यमें हिन्दीमें ही निबंध आमंत्रित किए जाते हैं।

जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर

इस विश्वविद्यालयने अपने स्थापना वर्ष सन् १९५७ से ही हिन्दीको विश्वविद्यालयीन विभिन्न

पाठ्यक्रम व परीक्षाओंमें स्थान दिया है। कुछ पाठ्यपुस्तकोंका प्रशिक्षण भी हिन्दी माध्यमके द्वारा ही होता है। बी. ए. तथा एम. ए. में हिन्दीको एक ऐच्छिक विषयके रूपमे स्थान दिया गया है। इण्टरमीजिएट तक हिन्दी एक अनिवार्य विषयके रूपमें पढ़ाई जाती है।

सागर विश्वविद्यालय, सागर

इस विश्वविद्यालयमें बी. ए, बी. एस. सी. तथा बी. कॉम, कक्षाओ तक अध्ययन और परीक्षणका माध्यम हिन्दी स्वीकृत है। एम. ए. में प्रश्नपत्रोके उत्तर वैकल्पिक रीतिसे हिन्दीमे दिए जा सकते हैं। पी एच. डी. के प्रबन्धोकी भी वैकल्पिक भाषा हिन्दी है। इनके अतिरिक्त बी. ए, बी. एस. सी, बी. कॉम तक हिन्दी का एक अनिवार्य प्रश्नपत्र ५० अकोका रहता है। जिन विद्यार्थियोकी मातृभाषा हिन्दी नही होती है तथा जिन्होने हाइस्कूल तक हिन्दी नही ली हैं उन्हे सुगम हिन्दीका एक प्रश्नपत्र परीक्षाके लिए दिया जाता है।

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

इस विश्वविद्यालयमे बी. ए. में हिन्दी वैकल्पिक विषयके रूपमे पढ़ाई जाती है। जिन विद्यार्थियोंकी मातृभाषा हिन्दी नही होती है उन्हे हिन्दी अनिवार्य परीक्षाके रूपमे पास करनी होती है। इस विश्वविद्यालयने शिक्षा और परीक्षाका माध्यम बदलनेकी योजना बनाई है, जिसके अनुसार हिन्दीमाध्यम मण्डल द्वारा माध्यम परिवर्तन का कार्य १०–१२ वर्षोंमें सपन्न होगा। यह विश्वविद्यालय कुछ प्रामाणिक अँग्रेजी पुस्तकोंका अनुवाद करानेका तथा कुछ मौलिक पाठ्यग्रथ लिखवानेका प्रयत्न कर रहा है। शोध करनेवालोके लिए पी. एच. डी. का पाठयक्रम भी आरम्भ किया गया है जिसके अनुसार प्राविधिक और प्रक्रियाके सम्बन्धोमे विशेषज्ञो द्वारा विशेष मार्गदर्शन किया जाता है।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस

इस विश्वविद्यालयने बी. ए. तक आधुनिक भारतीय भाषाओके अन्तर्गत हिन्दी पढानेकी व्यवस्था की है। वैकल्पिक विषयके रूपमे भी हिन्दीको विभिन्न परीक्षाओमे स्थान दिया गया है। एम. ए. की परीक्षा के लिए भी हिन्दी विषय स्वीकृत है। कला अधिकरणमें एम. ए तक अँग्रेजीके अतिरिक्त हिन्दीको भी शिक्षा के माध्यमके रूपमे स्थान दिया गया है।

गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

इस विश्वविद्यालयमे यह व्यवस्था है कि जिन विद्यार्थियोने हायस्कूल या इन्टर मीजिएटमे हिन्दी विषय नही लिया है उनके लिए हिन्दी सीखना अनिवार्य है। बी. ए, एम. ए मे हिन्दीको एक ऐच्छिक विषयके रूपमें लेनेकी सुविधा कर दी गई है। इस विश्वविद्यालयमें छात्रोकी तीन परिषदे है, जिनमें हिन्दी शोध परिषद भी एक है। इस विश्वविद्यालय द्वारा एक हिन्दी-नाट्य-शास्त्र तैयार किया जा रहा है—इसमे परिभाषाएँ दशरूपक इत्यादिसे होगी।

राजस्थान विश्वविद्यालय

कला-विज्ञान तथा वाणिज्यकी सभी उपाधि परीक्षाओंमें हिन्दी अनिवार्य विषयके रूपमें स्वीकृत है।

गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद

इस विश्वविद्यालयके अभ्यासक्रममें इण्टर मीजिएट कक्षा तक हिन्दी अनिवार्य विषयके रूपमें पढ़ाई जाती है। बी. ए. तथा. एम. ए. की कक्षामें हिन्दीको एक वैकल्पिक विषयके रूपमें स्थान दिया गया है।

सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ

इस विद्यापीठने सभी विद्याशाखाओंमें शिक्षा व परीक्षाके माध्यमके रूपमें हिन्दी भाषाको स्वीकार करनेका निर्णय किया है। विद्यापीठने शिक्षा और परीक्षाओंके लिए हिन्दी माध्यम स्वीकार किया है।

महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा

कला, वाणिज्य एवं विज्ञानके प्रथम वर्षमें हिन्दीकी पढ़ाई अनिवार्य विषयके रूपमें की जा रही है। ललितकला अधिकरणके प्रथम एवं द्वितीय वर्षमें हिन्दीको अनिवार्य विषयके रूपमें स्थान दिया गया है। सन् ५७ से तृतीय एवं चतुर्थ वर्षमें अनिवार्य विषयके रूपमें हिन्दीको स्वीकार किया गया है। इस विश्वविद्यालयके अन्तर्गत हिन्दीमें शोध कार्य भी हो रहा है। इस विश्वविद्यालयकी शिक्षाका माध्यम क्या रखा जाए इस सम्बन्धमें भी विचार चल रहा है और इसके लिए योजना भी बनी है। एक प्रशिक्षण योजना भी प्रारंभ की गई है। इस योजनाके अन्तर्गत विश्वविद्यालय द्वारा संचालित परीक्षाएँ भी ली जाती हैं।

बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई

इस विश्वविद्यालयमें हिन्दीको एक विषयके रूपमें एम. ए. तक स्थान दिया गया है। पी. एच. डी. डिग्रीके लिए भी हिन्दी विषय स्वीकृत हुआ है। कॉलेजके प्रथम एवं द्वितीय वर्षमें कला तथा विज्ञानके अधिकरणोंमें हिन्दीको अनिवार्य विषयके रूपमें स्थान दिया गया है।

पूना विश्वविद्यालय, पूना

इस विश्वविद्यालयकी स्थापना सन् १९४८ में हुई। इसके पूर्व इससे सम्बद्ध महाविद्यालय बम्बई विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध थे जहाँ हिन्दीके प्रशिक्षणकी सुविधा बी. ए. तक एक वैकल्पिक विषयके रूपमें विद्यमान थी। पूना विश्वविद्यालयने सन् १९५३ से हिन्दीमें एम. ए. परीक्षाकी व्यवस्था की। सन् १९६० से इस विश्वविद्यालयने स्वतंत्र हिन्दी विभाग खोला है। एक अनुसंधान मण्डलकी स्थापना भी की गई है; जिसका उद्देश्य संशोधन सम्बन्धी नई जानकारीका आदान-प्रदान करना है।

मराठवाड़ा विश्वविद्यालय

हिन्दीको बी. ए., बी. कॉम, बी. एस सी. में वैकल्पिक एव एक विषय के रूपमें स्थान दिया गया है। एम. ए. परीक्षामें हिन्दीको एक विषयके रूपमें पढानेकी व्यवस्था इस विश्वविद्यालय द्वारा की गई है।

नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

इस विश्वविद्यालयमे एम. ए. तक हिन्दीको एक विषयके रूपमे पढानेकी सुविधा कर दी गई है। शिक्षाके माध्यमके रूपमे हिन्दी को भी रखा गया है। एक योजनाके अनुसार मराठी एव हिन्दीमे पाठ्य पुस्तके तैयार की जा रही है। बी. ए तक हिन्दी अथवा मराठी विषयका अध्ययन अनिवार्य कर दिया गया है।

उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

इस विश्वविद्यालयके अन्तर्गत सन् ४९ में हिन्दीका एक पृथक् विभाग कर दिया गया है और १९५१ में हिन्दी विषय ले करके कुछ विद्यार्थी एम. ए. परीक्षा उत्तीर्ण हुए। हिन्दीमे शोध कार्य सन् १९५३ से प्रारम्भ हुआ और सन् ५७ मे हिन्दीमें पी. एच. डी. की डिग्री दी गई। इस समय २० विद्यार्थी हिन्दी मे शोध कार्य कर रहे है। एम. ए. मे ७०, बी. ए. मे १५०० छात्र इस समय हिन्दीको एक विषयके रूपमें लेकर पढ़ रहे है। इस विश्वविद्यालयके पुस्तकालयमें हिन्दीकी १५००० पुस्तके है। सम्बद्ध महाविद्यालयोंके पुस्तकालयोंमें हिन्दीकी भी पुस्तके रहती है।

कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता

इस विश्वविद्यालयमें बी. ए तथा एम. ए के पाठ्यक्रममें हिन्दीके प्रशिक्षणकी सुविधा दी गई है। विश्वविद्यालयके अन्तर्गत हिन्दीका एक पृथक् विभाग ही स्थापित किया गया है।

विश्वभारती, शान्ति निकेतन

इस विश्वविद्यालयके अन्तर्गत हिन्दी विभाग है, जिसमें हिन्दीके अध्यापन और अध्ययनकी व्यवस्था की गई है। कुछ समय पूर्व हिन्दी विश्वभारती पत्रिका आचार्य हजारी प्रसादजी द्विवेदीके प्रयत्नोंसे शुरू हुई थी जो इस समय बन्द है। विश्वभारतीमें स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओंमें हिन्दीके अध्यापन तथा शोध की व्यवस्था हिन्दी विभाग द्वारा की जाती है। हिन्दी विभागके पुस्तकालयमें इस समय लगभग ६००० हिन्दी की पुस्तकें हैं। अहिन्दी भाषी देशी व विदेशी छात्रोंको हिन्दी सिखानेके लिए हिन्दी विभागकी ओरसे विशेष व्यवस्था है।

जिन-जिन विश्वविद्यालयोंसे विवरण नहीं प्राप्त हुआ है उनके सम्बन्धमें यहाँ जानकारी नहीं दी जा सकी है।

सभी विश्वविद्यालयोंके सामने माध्यमका प्रश्न बड़ा चिन्तनीय है और उपयुक्त पाठ्य पुस्तकोंका अभाव ही एक मुख्य बाधा है। अतः अधिकांश विश्वविद्यालय अनुवाद द्वारा हिन्दी अथवा प्रादेशिक भाषाओंमें

पुस्तकें तैयार करवानेका विचार कर रहे हैं और कुछ ने तो इसके लिए योजनाएँ बना ली हैं। इस कार्यमें केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उनकी सहायता कर रहा है।

भारतीय हिन्दी परिषद

१७ वर्षोंसे यह संस्था भारत वर्षके समस्त विश्वविद्यालयोंके प्राध्यापकोंका संगठन करती हुई उनकी अध्ययन, अध्यापन एवं अनुसन्धान सम्बन्धी विविध समस्याओंपर प्रतिनिधि रूपसे विचार करती आई है। हिन्दी भाषा और साहित्य क्षेत्रके सभी मूर्द्धन्य विद्वान इस संस्थाके साथ घनिष्ठ रूपसे सम्बद्ध रहे हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जैसे युग पुरुष तथा बाबू शिवप्रसाद गुप्त, पंडित अयोध्या सिंह उपाध्याय, महामहोपाध्याय पंडित गौरी शंकर हीराचंद ओझा भारत रत्न डॉ. भगवान-दास-जैसे देश भक्त, साहित्य सेवी और अनुसंधाता इसके मान्य सदस्य रहे हैं। स्व. डॉ. अमरनाथ झा इसके प्रथम संरक्षक थे। इसके वर्तमान मान्य सदस्योंमें राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, डॉ. सम्पूर्णानन्द, आचार्य शिवपूजन सहाय और सेठ गोविन्ददास आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। परिषदको अपने विभिन्न अधिवेशनों पर स्व. आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ. सम्पूर्णानन्द, श्री रा. र. दिवाकर श्री क. मा. मुन्शी, डॉ. केसकर पं. रविशंकर शुक्ल, श्री हरिभाऊ उपाध्याय जैसे देशके गण्यमान्य मनीषियों और नेताओंका सहयोग तथा पथ प्रदर्शन प्राप्त होता रहा है।

इस संस्थाका प्रमुख उद्देश्य विश्व विद्यालयीन स्तरपर हिन्दी भाषा, साहित्य एवं संस्कृतिके अध्ययन तथा अनुसंधानके कार्यको अग्रसर करना और उसके लिए अनुकूल वातावरणके लिए निर्माणमें सहायता देना है। इस सम्बन्धमें परिषदने समय-समयपर अनेक योजनाएँ प्रस्तुत की हैं और देशके सन्मुख अपने विचार और सुझाव प्रस्तुत किए हैं। शोध कार्यकी प्रगति पर परिषदका विशेष ध्यान रहा है और विभिन्न विश्वविद्यालयोंके तत्संबंधी पारस्परिक सहयोगके लिए वह अनेक प्रकारसे उद्योग करती रही है। अपने वार्षिक अधिवेशनोंकी विशिष्ट गोष्ठियोंमें शोधपूर्ण निबंधोंकी योजना द्वारा उनके शोध कार्यके स्तरको ऊँचा उठानेका सफल प्रयत्न किया है। राष्ट्रभाषाके स्वरूपका निर्धारण, उच्च शिक्षाका माध्यम, पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माणकी समस्या, विभिन्न प्रादेशिक भाषाओंसे हिन्दीका सम्पर्क तथा हिन्दी क्षेत्रकी विभिन्न उपभाषाओंसे उसके सम्बन्धकी समस्या आदि अनेक प्रश्नोंपर परिषदके अधिवेशनोंमें विद्वानोंने विद्वत्ता पूर्ण विवेचन, समाधान, सुझाव तथा योजनाओं द्वारा अनेक रूपोंमें दिशा-निर्देश किया है।

अधिवेशनों और गोष्ठियोंके अतिरिक्त कतिपय योजनाओंके द्वारा भी परिषदने अपनी सीमित शक्ति और साधनोंसे हिन्दी साहित्यकी अभिवृद्धि करनेका प्रयत्न किया है। आर्थिक कठिनाइयाँ होते हुए भी उसने विश्व विद्यालयोंके प्राध्यापकों द्वारा ३०,००० पारिभाषिक शब्दोंके हिन्दी अंग्रेजी वैज्ञानिक कोषका निर्माण कराया है। हिन्दीके प्रतिष्ठित विद्वानोंके सहयोगसे हिन्दी साहित्यका इतिहास प्रस्तुत करनेकी परिषद की योजना केन्द्रीय सरकारकी सहायतासे कार्यान्वित की जा रही है। उसका एक खंड प्रकाशित हो चुका है तथा शेष दो खंड भी इसी वर्षके भीतर प्रकाशित होने वाले हैं। परिषदने विभिन्न विषयों पर उच्च शिक्षाके स्तरकी पाठ्य पुस्तकें तैयार करानेकी एक विस्तृत योजना भी बनाई है।

परिषदका त्रैमासिक मुखपत्र "हिन्दी अनुशीलन" हिन्दी शोधके क्षेत्रमे अपना विशिष्ट स्थान रखता है। परिषदकी गतिविधिके साथ-साथ इसमें हिन्दी क्षेत्रके शोध कार्यका विवरण भी दिया जाता है।

परिषदकी प्रगतिमे उसके वार्षिक अधिवेशनोका विशेष महत्व है। इसी अवसर पर देश भरके हिन्दी प्राध्यापक एक स्थानपर एकत्र होकर हिन्दी भाषा एवं साहित्यकी विविध समस्याओंपर विचार करते हैं। अबतक इसके अधिवेशन प्रयाग, लखनऊ, पटना, आगरा, जयपुर, नागपुर, वाराणसी, रायगढ (म. प्र) और दिल्ली में हो चुके है।

विदेशोंमें हिन्दी

हिन्दी चूंकि विश्वमें जनसंख्या की दृष्टिसे दूसरे नबरके राष्ट्रकी राष्ट्रभाषा एव राजभाषा घोषित हो चुकी है, इसलिए विदेशोमे उसका महत्व बढता जा रहा है। आजकी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति जहाँ लाओस कम्बोडिया, लेबनान जैसे कुछ लाखोकी जनसख्यावाले राष्ट्रोंके लिए अत्यन्त खतरनाक खीचतानसे बाज नही आती,वहाँ ४५ करोडकी आबादीवाले हिन्दुस्तानको समझनेके लिए, उसे अपनी बात ठीकसे समझा देनेके लिए और उसकी सहानुभूति अपने पक्षमें जीत लेनेके लिए हिन्दीके अध्ययन अध्यापनका विश्वके अलग-अलग राष्ट्रोमे यदि महत्व बढे तथा विदेशी विश्व विद्यालयोमें और शिक्षा-सस्थाओमें उसके अध्ययनकी व्यवस्था की जाए, तो कोई आश्चर्य की बात नही है। वस्तु स्थिति यह है कि आज विश्वके समस्त एवं उन्नत राष्ट्रोके विश्वविद्यालयोमें हिन्दीको स्थान प्राप्त हो चुका है या अतिशीघ्र मिल जाएगा।

ऐसे कई छोटे-मोटे देश है जहाँ महाप्राण भारतवासी व्यापारके लिए या श्रम मजदूरीके लिए जाकर बस गए है। भारतवर्षकी स्वतनताके बाद और हिन्दीको भारतीय गणराज्यकी राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा स्वीकृत कर लिए जानेके बाद इन सब प्रवासी भारतीयोमे तथा उनके वशजोमें हिन्दीके प्रति अनुराग बढे, यह स्वाभाविक ही है। भारत सरकार भी उनमें हिन्दीका प्रचार-प्रसार बढे इस दृष्टिसे आर्थिक अनुदान देती आई है तथा उन्हे पुस्तको एव अध्यापकोकी सहायता आदि प्रदान करती है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ,वर्धाके कार्यकर्ता एवं प्रचारकोने भी इन क्षेत्रोमें काफी अच्छा एव ठोस कार्य किया है।

उपर्युक्त दोनों दृष्टियोसे विदेशोमें हिन्दीका जो प्रचार एवं प्रसार हुआ है, उसका सक्षिप्त विवरण हम नीचे प्रस्तुत करते है।

सोवियत रूस

रूस और भारत सदियोंसे एक-दूसरेसे परिचित पडोसी जैसे रहे हैं; इसलिए रूसमें इण्डोलॉजी सदियोंसे शास्त्रके रूपमें अध्ययन एव मननका विषय रहा है। अक्टूबर १९१७की श्रमिक क्रान्तिके मर्मस्पर्शी एव दूर-दृष्टि नेता लेनिनके आदेशसे तथा महान मनीषी श्री गोर्कीके नेतृत्वमें वहाँ एक पौर्वात्य विभाग की सृष्टि की गई थी, जिसमें इण्डोलॉजी एक महत्वपूर्ण विषय है। तबसे भारतीय लेखकोंकी लगभग ३०० पुस्तकें रूसकी ३२ भाषाओंमें प्रकाशित हो चुकी है और उनकी १५ करोड़ प्रतियाँ छप चुकी है। १९०९ में प्रेमचन्दजीके एक कहानी-सग्रहको अंग्रेज सरकारने जब्त कर लिया था। ५० साल पहले प्रकाशित उस किताब का रूसी भाषामें अनुवाद कई सालों पहले किया जा चुका है, प्रेमचन्दकी प्रारंभिक कहानियोंके नायकोंने इस

तरह बहुत पहले रूसी भाषा बोलनी शुरू कर दी थी। अबतक सोवियत यूनियन प्रेमचन्दजीकी १६ किताबोंका अनुवाद अपने यहाँ की आठ भाषाओंमें छाप चुकी है और उनकी कुल ८ लाख प्रतियाँ निकली हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, इकबाल, सुब्रह्मण्यम् भारती, शरतच्चन्द्र चट्टोपाध्याय तथा वल्लतोळ के साथ साथ हिन्दीके पंत, निराला, कृशनचन्दर, डॉ. रामकुमार वर्मा, यशपाल, सरदार अली जाफरी, ख्वाजा अहमद अब्बास, मैथिलीशरण गुप्त आदिका साहित्य भी सोवियत यूनियनमें बड़ी तेजीसे अनूदित एवं प्रकाशित हो रहा है। मास्को, लेनिनग्राड, ताशकन्द, कीव आदि शहरोंकी कई प्रकाशन संस्थाएँ इस कार्यमें दत्तचित्त हैं। स्टेट पब्लिशिंग हाऊस फॉर फिक्शन, स्टेट पब्लिशिंग हाऊस फॉर फॉरेन लिटरेचर तथा पब्लिशिंग हाऊस ऑफ ओरिएन्टल लिटरेचर इस दृष्टिसे अग्रसर प्रकाशन-संस्थाएँ हैं। ये प्रकाशन-संस्थाएँ विस्तृत एवं गंभीर शोध-कार्य करवाती हैं और रूसी भाषाओंमें अनुवादके लिए सुन्दरतम कृतियोंका चुनाव करती हैं। भारतीय साहित्यके विशेषज्ञ एवं लेखक इस कार्य में उन्हें सलाह देते हैं। ये प्रकाशन-संस्थाएँ कोशिश करती हैं कि हिन्दीके राष्ट्रीय साहित्य की विविध शैलियों एवं प्रवृत्तियोंसे सोवियत पाठक भलीभाँति और सम्पूर्णतया परिचित हो जाएँ। इसलिए हिन्दीके विभिन्न प्रगतिवादी, स्वच्छंदतावादी (रोमेंटिसिस्ट), प्रतीकवादी एवं तथाकथित मनोविज्ञानवादी कवियों, नाटककारों कहानी एवं उपन्यास लेखकों आदिकी कृतियोंके अनुवाद सोवियत यूनियनकी विभिन्न भाषाओंमें प्रस्तुत किए जा चुके हैं। जिन लेखकोंको हिन्दी साहित्यमें मूर्द्धन्य स्थान प्राप्त हो चुका है, उनके साथ-साथ नए उदीयमान लेखकोंकी प्राणवान कृतियोंको भी छापा जा रहा है। मालोद्या ग्वारडिया पब्लिशिंग हाउसकी तरफसे ऐसा ही एक संग्रह 'यंग पोस्टस् ऑफ इंडिया' सन् १९६० में प्रकाशित हुआ है। विभिन्न भारतीय एवं हिन्दी लेखकोंकी पुस्तकें सोवियत यूनियनके पुस्तकालयोंमें काफी विभिन्न भारतीय एवं हिन्दी लेखकोंकी पुस्तकें सोवियत यूनियनके पुस्तकालयोंमें काफी अहमियत रखती हैं और उनकी खूब माँग रहती है।

पिछले साल रूसमें श्री एहतीशम हुसैनकी 'हिस्ट्री ऑफ उर्दू लिटरेचर' प्रकाशित की गई। हिन्दी के प्रमुख विद्वान एवं प्रथितयश लेखक शिवदान सिंह चौहानकी भी एक महत्वपूर्ण किताब प्रकाशित हुई है। डॉ. नगेन्द्रके सम्पादकत्वमें लिटरेरी एकेडेमी द्वारा विविध भारतीय भाषाओंके साहित्यपर एक किताब निकाली जा चुकी है। ताशकन्दमें १९५८ में एशिया और अफ्रिकाके लेखकोंकी एक परिषद हुई थी, जिसमें हिन्दी साहित्यके प्रतिनिधि लेखकोंने हिस्सा लिया था। इससे हिन्दी साहित्यके अनुवादकी धाराको रूसमें और भी बल मिला। सोवियत अनुवादकर्ता इस बातकी भरसक कोशिश करते है कि मूलका सौन्दर्य, उसके भाव एवं विषय और साथ ही जिस शैली एवं छंद आदिमें वह बात कही गई वे भी ज्योंके त्यों अनुवादमें प्रस्तुत किए जाएँ। पिता-पुत्र बेरेन्निकोवने तुलसी रामायण (रामचरित मानस) का अनुवाद अत्यंत सजगता एवं कई वर्षो के सतत परिश्रमसे सम्पन्न किया है। उसमें रामचरितमानसकी मूल दोहा-चौपाई तक की रक्षा की गई है। उनकी पत्नीने कामता प्रसाद गुरूके हिन्दी व्याकरणका अनुवाद प्रस्तुत किया है। रूसमें भारतीय कविताओंका कवितामें अनुवादकी परम्परा प्राचीन है। झुकोवस्की, बालकोटकी तरह वर्तमानमें भी एन-तिखोनोव्ह, ए. सुरकाव्ह, व्ही. डेरझेवीन, ए. अखमातोवा, एस. लिप्किन आदि सफल कवि-अनुवादक हैं। बा. बालिन, वी. चेरनीशोव वी. बेसक्रोवीन, एन. राविनाविच आदि महानुभाव हिन्दी अनुवादके माहिर हैं।

श्री इ. चेलीशेव हिन्दी साहित्यके अध्येता एवं सफल अनुवादक हैं। सच तो यह है कि हिन्दीके अनुवादोंका सोवियत रूसमें एक वर्ग (कूल) ही बन गया है। इस वर्गकी चारित्रिक विशेपता यह है कि उनके

अनुवाद तथ्यात्मक एव रगारंग रहते हैं। उनमे कलापूर्ण कल्पनाएँ बड़ी संजीदगी एवं खूबसूरतीसे पेश की जाती हैं। मूलके प्रति उनकी ईमानदारी हद दर्जेकी रहती है। अनुवादमे रेखाए और रग सब भारतीय ही रखे जाते हैं, भाषा सिर्फ बदलती है।

दसो वर्षोंसे—सोवियत रूस अपनी विचारधाराका, अपने उपन्यासों एव काव्योका तथा अपने कई प्रकारके बाल एव प्रौढ साहित्यका प्रकाशन हिन्दीमें प्रस्तुत करता आया है। उसके ये प्रकाशन सुन्दर, सुभग एव सजीले होते हैं तथा भारत वर्षमें कई बुक-स्टालोपर बेचे जाते हैं। सोवियत यूनियनके नेताओके महत्वपूर्ण व्याख्यान, राजनैतिक दस्तावेज, हलचलो एव दृष्टिकोणोंके विवरण, समाचार आदि हिन्दीमे हुआ करते हैं और भारतीय समाचार-पत्रो सस्थाओ एव पुस्तकालयोकी सेवामें नियमित रूपसे पहुँचते रहते हैं।

सोवियत रूसके विश्वविद्यालयोमे हिन्दीका विशिष्ट विषयके रूपमे अध्ययन करनेवाले छात्रोकी सख्या सैकडोसे नही, हजारोसे गिनी जा सकती है। कही कही तो हिन्दीको माध्यमिक स्तरपर भी सिखाया जाता है। रूस सरकारके अनुरोधपर भारत सरकार अपने यहाँसे हिन्दी अध्यापकोका चुनाव कर देती है और उन्हे रूस जानेकी अनुमति प्रदान करती है। औपनिवेशिक स्वाधीनता युद्धके महान नेता एव अमर शहीद पीट्रिक लुमुम्बाके नामपर स्थापित मैत्री विश्वविद्यालय मास्कोमे हिन्दी अध्यापनकी विशेष व्यवस्था है।

लेनिनग्रादमें एक नियमित हिन्दी स्कूल है जिसमें दूसरीसे लेकर ग्यारहवी कक्षातक हिन्दीकी पढ़ाई की जाती है। इस स्कूलमें सारे विषय हिन्दीके माध्यमसे सिखाए जाते हैं और भारतका इतिहास, भारतका भूगोल, भारतीय साहित्य एव सस्कृति आदि भारतके सम्बन्धित विषयोका विधिवत् अध्ययन करवाया जाता है। इस स्कूलके छात्र आगे चलकर इडोलॉजी एव पौर्वात्य विषयकी प्रवीणता हासिल करते हैं।

पूर्वी जर्मनी

बर्लिनकी हमबोल्ट युनिवर्सिटीमे इडोलॉजी के अध्ययनमे प्राचीन भारतके साथ-साथ आधुनिक भारतके राजनैतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक तथा सास्कृतिक विकासका भी अध्ययन समाविष्ट रहता है, और वह अध्ययन सहज साध्य हो सके इसलिए आधुनिक भारतीय भाषाओके अध्ययनपर और विशेष रूपसे भारतकी वर्तमान राष्ट्रभाषा हिन्दीके अध्ययनपर अधिक जोर दिया जाता है। जब यह विश्वविद्यालय दूसरे महायुद्धके बाद दुबारा शुरू हुआ, तब हिन्दीके माध्यमकी तुरन्त आवश्यकता महसूस की गई। लेकिन १९४५ के पहले जर्मनीमें हिंदी अध्ययन-अध्यापनकी कोई परम्परा नही थी; इसलिए हिन्दी अध्यापकोकी दृष्टिसे तथा योग्य पाठ्य पुस्तकोके अभावमें बडी कठिनाइयोका मुकाबला करना पडा। जब बर्लिन स्थित एक भारतीय डॉक्टर डॉ. वैद्य हिन्दी कक्षाओको पढाने तैयार हो गए तब कही जाकर १९५५ मे हिन्दीके वर्ग शुरू किए गए। १९५७ के वसन्तमे एक-दूसरे डॉक्टर डा अन्सारी हिन्दीके लेक्चररके रूपमे सस्थामें चले आए। बादमे जब श्रीमती डी अन्सारीने सस्थासे सस्कृत एव हिन्दीमें उपाधि-ग्रहण कर ली तब सस्थाने उन्हे हिन्दीके असिस्टेंट रीडर तथा रिसर्च विद्यार्थीके रूपमे सस्थामें नियुक्त कर लिया। उस समय सस्थाकी हिन्दी कक्षामे लगभग १५ विद्यार्थी थे। १९५८–५९ मे शान्तिनिकेतन से प. शास्त्रीजी अतिथि-प्राध्यापकके रूपमें सस्थामें शामिल हुए। उनके बाद श्रीमती त्रिपाठी हिन्दी अध्यापकके रूपमें आई

तरह बहुत पहले रूसी भाषा बोलनी शुरू कर दी थी। अबतक सोवियत यूनियन प्रेमचन्दजीकी १६ किताबोंका अनुवाद अपने यहाँ की आठ भाषाओंमें छाप चुकी है और उनकी कुल ८ लाख प्रतियाँ निकली हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, इकबाल, सुब्रह्मण्यम् भारती, शरतच्चन्द्र चट्टोपाध्याय तथा वल्लतोळ के साथ साथ हिन्दीके पंत, निराला, कृशनचन्दर, डॉ. रामकुमार वर्मा, यशपाल, सरदार अली जाफरी, ख्वाजा अहमद अब्बास, मैथिली-शरण गुप्त आदिका साहित्य भी सोवियत यूनियनमें बड़ी तेजीसे अनूदित एवं प्रकाशित हो रहा है। मास्को, लेनिनग्राड, ताशकन्द, कीव आदि शहरोंकी कई प्रकाशन संस्थाएँ इस कार्यमें दत्तचित्त हैं। स्टेट पब्लिशिंग हाऊस फॉर फिक्शन, स्टेट पब्लिशिंग हाऊस फॉर फॉरेन लिटरेचर तथा पब्लिशिंग हाऊस ऑफ ओरिएन्टल लिटरेचर इस दृष्टिसे अग्रसर प्रकाशन-संस्थाएँ हैं। ये प्रकाशन-संस्थाएँ विस्तृत एवं गंभीर शोध-कार्य करवाती हैं और रूसी भाषाओंमें अनुवादके लिए सुन्दरतम कृतियोंका चुनाव करती हैं। भारतीय साहित्यके विशेषज्ञ एवं लेखक इस कार्य में उन्हें सलाह देते हैं। ये प्रकाशन-संस्थाएँ कोशिश करती हैं कि हिन्दीके राष्ट्रीय साहित्य की विविध शैलियों एवं प्रवृत्तियोंसे सोवियत पाठक भलीभाँति और सम्पूर्णतया परिचित हो जाएँ। इसलिए हिन्दीके विभिन्न प्रगतिवादी, स्वच्छंदतावादी (रोमेंटिसिस्ट), प्रतीकवादी एवं तथाकथित मनोविज्ञानवादी कवियों, नाटककारों कहानी एवं उपन्यास लेखकों आदिकी कृतियोंके अनुवाद सोवियत यूनियनकी विभिन्न भाषाओंमें प्रस्तुत किए जा चुके हैं। जिन लेखकोंको हिन्दी साहित्यमें मूर्द्धन्य स्थान प्राप्त हो चुका है, उनके साथ-साथ नए उदीयमान लेखकोंकी प्राणवान कृतियोंको भी छापा जा रहा है। मालोद्या ग्वारडिया पब्लिशिंग हाउसकी तरफसे ऐसा ही एक संग्रह 'यंग पोस्टस् ऑफ इंडिया' सन् १९६० में प्रकाशित हुआ है। विभिन्न भारतीय एवं हिन्दी लेखकोंकी पुस्तकें सोवियत यूनियनके पुस्तकालयोंमें काफी विभिन्न भारतीय एवं हिन्दी लेखकोंकी पुस्तकें सोवियत यूनियनके पुस्तकालयोंमें काफी अहमियत रखती हैं और उनकी खूब माँग रहती है।

पिछले साल रूसमें श्री एहतीशम हुसैनकी 'हिस्ट्री ऑफ उर्दू लिटरेचर' प्रकाशित की गई। हिन्दी के प्रमुख विद्वान एवं प्रथितयश लेखक शिवदान सिंह चौहानकी भी एक महत्वपूर्ण किताब प्रकाशित हुई है। डॉ. नगेन्द्रके सम्पादकत्वमें लिटरेरी एकेडेमी द्वारा विविध भारतीय भाषाओंके साहित्यपर एक किताब निकाली जा चुकी है। ताशकन्दमें १९५८ में एशिया और अफ्रिकाके लेखकोंकी एक परिषद हुई थी, जिसमें हिन्दी साहित्यके प्रतिनिधि लेखकोंने हिस्सा लिया था। इससे हिन्दी साहित्यके अनुवादकी धाराको रूसमें और भी बल मिला। सोवियत अनुवादकर्ता इस बातकी भरसक कोशिश करते है कि मूलका सौन्दर्य, उसके भाव एवं विषय और साथ ही जिस शैली एवं छंद आदिमें वह बात कही गई वे भी ज्योंके त्यों अनुवादमें प्रस्तुत किए जाएँ। पिता-पुत्र बेरेन्निकोवने तुलसी रामायण (रामचरित मानस) का अनुवाद अत्यंत सजगता एवं कई वर्षो के सतत परिश्रमसे सम्पन्न किया है। उसमें रामचरितमानसकी मूल दोहा-चौपाई तक की रक्षा की गई है। उनकी पत्नीने कामता प्रसाद गुरूके हिन्दी व्याकरणका अनुवाद प्रस्तुत किया है। रूसमें भारतीय कविताओंका कवितामें अनुवादकी परम्परा प्राचीन है। झुकोवस्की, बालकोटकी तरह वर्तमानमें भी एन-तिखोनोव्ह, ए. सुरकाव्ह, व्हीं. डेरझेवीन, ए. अखमातोवा, एस. लिप्किन आदि सफल कवि-अनुवादक हैं। बा. बालिन, वी. चेरनीशोव वी. बेसक्रोवीन, एन. राविनाविच आदि महानुभाव हिन्दी अनुवादके माहिर हैं।

श्री इ. चेलीशेव हिन्दी साहित्यके अध्येता एवं सफल अनुवादक हैं। सच तो यह है कि हिन्दीके अनु-वादोंका सोवियत रूसमें एक वर्ग (कूल) ही बन गया है। इस वर्गकी चारित्रिक विशेषता यह है कि उनके

अनुवाद तथ्यात्मक एवं रंगारंग रहते हैं। उनमें कलापूर्ण कल्पनाएँ बड़ी संजीदगी एवं खूबसूरतीसे पेश की जाती हैं। मूलके प्रति उनकी ईमानदारी हद दर्जेकी रहती है। अनुवादमें रेखाए और रग सब भारतीय ही रखे जाते हैं, भाषा सिर्फ बदलती है।

दसो वर्षोंसे—सोवियत रूस अपनी विचारधाराका, अपने उपन्यासों एवं काव्योका तथा अपने कई प्रकारके बाल एव प्रौढ साहित्यका प्रकाशन हिन्दीमें प्रस्तुत करता आया है। उसके ये प्रकाशन सुन्दर, सुभग एव सजीले होते है तथा भारत वर्षमें कई बुक-स्टालोपर बेचे जाते हैं। सोवियत यूनियनके नेताओके महत्वपूर्ण व्याख्यान, राजनैतिक दस्तावेज, हलचलो एव दृष्टिकोणोके विवरण, समाचार आदि हिन्दीमे हुआ करते है और भारतीय समाचार-पत्रो सस्थाओ एव पुस्तकालयोकी सेवामे नियमित रूपसे पहुँचते रहते है।

सोवियत रूसके विश्वविद्यालयोमें हिन्दीका विशिष्ट विषयके रूपमे अध्ययन करनेवाले छात्रोकी सख्या सैकडोसे नही, हजारोंसे गिनी जा सकती है। कही कही तो हिन्दीको माध्यमिक स्तरपर भी सिखाया जाता है। रूस सरकारके अनुरोधपर भारत सरकार अपने यहांसे हिन्दी अध्यापकोका चुनाव कर देती है और उन्हे रूस जानेकी अनुमति प्रदान करती है। औपनिवेशिक स्वाधीनता युद्धके महान नेता एव अमर शहीद पीट्रिक लुभुम्बाके नामपर स्थापित मैत्री विश्वविद्यालय मास्कोमें हिन्दी अध्यापनकी विशेष व्यवस्था है।

लेनिनग्रादमे एक नियमित हिन्दी स्कूल है जिसमे दूसरीसे लेकर ग्यारहवी कक्षातक हिन्दीकी पढाई की जाती है। इस स्कूलमे सारे विषय हिन्दीके माध्यमसे सिखाए जाते है और भारतका इतिहास, भारतका भूगोल, भारतीय साहित्य एव सस्कृति आदि भारतके सम्बन्धित विषयोंका विधिवत् अध्ययन करवाया जाता है। इस स्कूलके छात्र आगे चलकर इडोलॉजी एव पौर्वात्य विषयकी प्रवीणता हासिल करते हैं।

पूर्वी जर्मनी

बर्लिनकी हमबोल्ट युनिवर्सिटीमें इडोलॉजी के अध्ययनमे प्राचीन भारतके साथ-साथ आधुनिक भारतके राजनैतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक तथा सास्कृतिक विकासका भी अध्ययन समाविष्ट रहता है, और वह अध्ययन सहज साध्य हो सके इसलिए आधुनिक भारतीय भाषाओके अध्ययनपर और विशेष रूपसे भारतकी वर्तमान राष्ट्रभाषा हिन्दीके अध्ययनपर अधिक जोर दिया जाता है। जब यह विश्वविद्यालय दूसरे महायुद्धके बाद दुबारा शुरू हुआ, तब हिन्दीके माध्यमकी तुरन्त आवश्यकता महसूस की गई। लेकिन १९४५ के पहले जर्मनीमे हिंदी अध्ययन-अध्यापनकी कोई परम्परा नही थी; इसलिए हिन्दी अध्यापकोंकी दृष्टिसे तथा योग्य पाठ्य पुस्तकोके अभावमें बडी कठिनाइयोका मुकाबला करना पडा। जब बर्लिन स्थित एक भारतीय डॉक्टर डॉ. वैद्य हिन्दी कक्षाओको पढाने तैयार हो गए तब कही जाकर १९५५ में हिन्दीके वर्ग शुरू किए गए। १९५७ के वसन्तमे एक-दूसरे डॉक्टर डा. अन्सारी हिन्दीके लेक्चररके रूपमें सस्थामे चले आए। बादमे जब श्रीमती डी अन्सारीने सस्थासे सस्कृत एव हिन्दीमें उपाधि-ग्रहण कर ली तब सस्थाने उन्हे हिन्दीके असिस्टेंट रीडर तथा रिसर्च विद्यार्थीके रूपमे सस्थामे नियुक्त कर लिया। उस समय सस्थाकी हिन्दी कक्षामे लगभग १५ विद्यार्थी थे। १९५८–५९ में शान्तिनिकेतन से प. शास्त्रीजी अतिथि-प्राध्यापकके रूपमे सस्थामें शामिल हुए। उनके बाद श्रीमती त्रिपाठी हिन्दी अध्यापकके रूपमे आई

और सन् १९६० तक बनी रहीं। फिलहाल डा. एम. अन्सारी, श्रीमती डी. अन्सारी, श्री एस. के. सिन्हा तथा कुमारी वेस्टफाल हिन्दी शिक्षक हैं और हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंकी संख्या १८ है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, शुरू शुरूमें न तो उचित पाठ्य-पुस्तकें ही थीं, और न आधुनिक व्याकरणकी किताबें और न कोई हिन्दीके समाचार-पत्र या पत्रिकाएँ आदि ही। काफी हिन्दी अध्यापक भी नहीं थे। लेकिन फिर भी पिछले सालोंमें विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागने काफी तरक्की की है। इस विभागमें फिलहाल हिन्दी बोलनेवाले दुभाषिए तैयार नहीं किए जा रहे हैं। अभी तो विद्यार्थियोंको इस तरहसे पढ़ाया जाता है जिससे कि वे अपने विशिष्ट अभ्यास क्रमसे सम्बन्धित हिंदी किताबें तथा पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ और समझ ले सकें। इन विद्यार्थियोंको हिन्दी बोलनेका मौका नहीं मिलता, यद्यपि विश्वविद्यालयका यह उद्देश्य है कि उन्हें हिन्दीपर अच्छा अधिकार प्राप्त हो जाए।

भारत सरकारने सन् ५६–५७ में बर्लिन विश्वविद्यालयमें हिन्दी पढ़ानेके लिए एक प्रोफेसरको भारतसे जर्मनी तक का किराया देकर भेजा था।

पश्चिम जर्मनी

स्टुटगार्टमें एक भारत-भवन है जिसके अन्तर्गत हिन्दी की कक्षाएं चलाई जाती हैं। भारत सरकारने पुस्तकों आदिके लिए तथा हिन्दी प्रचारके लिए उसे कुछ अनुदान दिया है।

ॲमस्टरडम विश्वविद्यालय हॉलेंडमें सन् १९६० से रायल ट्रॉपीकल इंस्टीट्यूट ऑफ ॲमस्टरडमकी तरफसे 'आधुनिक भारतीय भाषाएं तथा उनका साहित्य, पर अध्यासन कायम किया गया है जिसके अध्यक्ष हैं डॉ० के. डी. व्रीज। डॉ० के. डी. व्रीज १९५४–५५ में भारत आए थे और तब उन्होंने महत्वपूर्ण इंडो आर्यन तथा द्रविडियन भाषाओंके अध्ययनार्थ पूरे भारतका दौरा किया था। जो उच्च विद्यार्थी भारतमें जाकर व्यवसाय या अन्य वृत्ति धारण करना चाहते हैं उनके लिए ॲमस्टरडम विश्वविद्यालयमें हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओंके अध्ययनकी यह व्यवस्था लाभप्रद सिद्ध होगी।

चेकोस्लोवाकिया

चेकोस्लोवाकियाने अपनी राजनैतिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए तथा भारत जन-गणसे परिचय एवं सम्बन्ध कायम करनेके लिए हिन्दी अध्ययन-अध्यापनकी व्यवस्था अपने देशमें की है। प्राग विश्वविद्यालयमें हिन्दीका एक अलग विभाग है, जहाँ छात्र नियमित रूपसे हिन्दीका अध्ययन करते हैं। वहाँके हिन्दी-इनचार्ज प्रोफेसर ओडोनेल स्मेकल कुछ दिनों पहले भारतके प्रवास पर भी आए थे। उन्होंने हिन्दीकी अनेक पुस्तकोंका चेक भाषामें अनुवाद किया है। डॉ० ओताकर पेर्तोल्ड भी प्राग-विश्वविद्यालयमें हिन्दी प्राध्यापक हैं। यहाँ हिन्दी पढ़ाई की यह विशेषता है कि शुद्ध हिन्दी लिखने-पढ़नेके साथ-साथ उसके शुद्ध उच्चारण पर तथा बोलनेकी सहज सुन्दर लकब पर ध्यान दिया जाता है। इसके लिए वे आकाशवाणी हिन्दीके समाचारों एवं बी. बी. सी. के हिन्दी कार्यक्रमोंका उपयोग करते हैं।

इटली

इटलीके विश्वविद्यालयोमें इडोलॉजीके अन्तर्गत और अलगसे भी हिन्दीके अध्ययनकी व्यवस्था है। रोम की 'इटालियानो इस्टीटयुट' में हिन्दी पढनेके लिए भारत सरकारकी ओरसे एक प्रोफेसर इटली भेजा गया था। उस प्रोफेसरको वेतनका एक अश भी लगभग २५०) रु. प्रति माह, भारत सरकारकी ओरसे दो वर्ष तक दिया गया था।

भारत सरकारने रोम विश्वविद्यालयमें हिन्दीके दो सर्वोत्तम विद्यार्थियोको १९५१–५२ मे ५०० रु. तथा २५० रु. के दो पारितोषिक देने के लिए रोम विश्वविद्यालय को सहायता भेजी ' थी।

पोलैण्ड

वारसामे एक भारतीय सस्था है जो हिन्दी कक्षाएँ चलाती है। उसका एक अच्छा हिन्दी पुस्तकालय भी है। इस संस्थाको भारत सरकारकी ओरसे हजारो रुपएकी हिन्दी पुस्तके अनुदानमे दी गई है। अपनी राजनैतिक आवश्यकताओकी पूर्तिके लिए पोलैण्डमे हिन्दी शिक्षाकी व्यवस्था विश्वविद्यालयीन स्तरपर तथा सरकारी तौरपर की जाती है।

ग्रेट-ब्रिटेन

पिछली चार सदियोमे भारतसे जिस देशका सबसे अधिक सम्बन्ध आया है, वह है ग्रेट-ब्रिटेन। सत्य तो यह है कि यूरोपियनोके और विशेषकर अग्रेजोके भारतमें आगमनके बाद ही हमारी भाषाओके सम्बन्धमे तरह तरहके शोध-कार्योकी और उनके फलस्वरूप शोध ग्रन्थो एव पुस्तकोकी भव्य परम्पराका प्रारम्भ हुआ था। सन् १७७३ मे लन्दनमे श्री फार्ग्युसन नामक सज्जन द्वारा हिन्दीके दो शब्द-कोश रोमन लिपिमें प्रस्तुत किए गए थे। सन् १८१० मे एडिनबरासे तथा १८१७ मे लन्दनसे अग्रेजी-हिन्दी तथा हिन्दी-अग्रेजी शब्दकोश प्रकाशित हुए। श्री गिलक्रिस्ट एव ग्रियर्सन साहबके नाम तो हिन्दीके अभ्युत्थान और इतिहासमे अजरामर हो गए है। न सिर्फ हिन्दीकी विभिन्न उपभाषाओका, बल्कि पूरे भारतकी भाषाओका 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया' नामक ग्रन्थ १९ वी सदीके अन्तमे श्री ग्रियर्सन द्वारा प्रकाशित कराया गया था। अन्य भारतीय भाषाओकी तरह हिन्दी तथा उसकी उपभाषाओके बारेमे, उनके व्याकरण, साहित्य, इतिहास आदिके सम्बन्धमे कई प्रकारके शोध-ग्रन्थोका काम अग्रेजी-भाषाविदो एवं पण्डितो द्वारा पिछली दो-ढाई सदियोंसे निरन्तर किया जाता रहा है। इसलिए इण्डोलॉजी और भारतीय भाषाओके विस्तृत एव गम्भीर अध्ययनकी व्यवस्था ग्रेट ब्रिटेनके विश्वविद्यालयो एव शिक्षण-सस्थाओमें मिलती है। ब्रिटिश म्यूजियममे तथा पुस्तकालयमे भारतकी तथा हिन्दीकी प्राचीन हस्तलिपियाँ तथा अनमोल ग्रन्थ सग्रहीत है तथा सैकडो जिज्ञासु दत्तचित्त होकर उससे नित्य लाभान्वित होते दिखाई देते है। पहले शासक और शासितके रूपमे तथा पिछले पन्द्रह वर्षोसे राष्ट्र-कुटुम्बके एक प्रभावशाली सदस्यके रूपमें अग्रेज राष्ट्रकी दिलचस्पी एव स्वार्थ, भारतीय जनताके साथ विविध प्रकारेण सलग्न रहे हैं। आज भी असम और बगालमे तथा पूरे देशमे सबसे अधिक विदेशी-सम्पत्ति यदि किसी राष्ट्रकी है तो यह

और सन् १९६० तक बनी रहीं। फिलहाल डा. एम. अन्सारी, श्रीमती डी. अन्सारी, श्री एस. के. सिन्हा तथा कुमारी वेस्टफाल हिन्दी शिक्षक हैं और हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंकी संख्या १८ है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, शुरू शुरूमें न तो उचित पाठ्य-पुस्तकें ही थीं, और न आधुनिक व्याकरणकी किताबें और न कोई हिन्दीके समाचार-पत्र या पत्रिकाएँ आदि ही। काफी हिन्दी अध्यापक भी नहीं थे। लेकिन फिर भी पिछले सालोंमें विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागने काफी तरक्की की है। इस विभागमें फिलहाल हिन्दी बोलनेवाले दुभाषिए तैयार नहीं किए जा रहे हैं। अभी तो विद्यार्थियोंको इस तरहसे पढ़ाया जाता है जिससे कि वे अपने विशिष्ट अभ्यास क्रमसे सम्बन्धित हिंदी किताबें तथा पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ और समझ ले सकें। इन विद्यार्थियोंको हिन्दी बोलनेका मौका नहीं मिलता, यद्यपि विश्वविद्यालयका यह उद्देश्य है कि उन्हें हिन्दीपर अच्छा अधिकार प्राप्त हो जाए।

भारत सरकारने सन् ५६–५७ में बर्लिन विश्वविद्यालयमें हिन्दी पढ़ानेके लिए एक प्रोफेसरको भारतसे जर्मनी तक का किराया देकर भेजा था।

पश्चिम जर्मनी

स्टुटगार्टमें एक भारत-भवन है जिसके अन्तर्गत हिन्दी की कक्षाएं चलाई जाती हैं। भारत सरकारने पुस्तकों आदिके लिए तथा हिन्दी प्रचारके लिए उसे कुछ अनुदान दिया है।

ॲमस्टरडम विश्वविद्यालय हॉलेंडमें सन् १९६० से रायल ट्रॉपीकल इंस्टीट्यूट ऑफ ॲमस्टरडमकी तरफसे 'आधुनिक भारतीय भाषाएं तथा उनका साहित्य, पर अध्यासन कायम किया गया है जिसके अध्यक्ष हैं डॉ० के. डी. व्रीज। डॉ० के. डी. व्रीज १९५४–५५ में भारत आए थे और तब उन्होंने महत्वपूर्ण इंडो आर्यन तथा द्रविडियन भाषाओंके अध्ययनार्थ पूरे भारतका दौरा किया था। जो उच्च विद्यार्थी भारतमें जाकर व्यवसाय या अन्य वृत्ति धारण करना चाहते हैं उनके लिए ॲमस्टरडम विश्वविद्यालयमें हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओंके अध्ययनकी यह व्यवस्था लाभप्रद सिद्ध होगी।

चेकोस्लोवाकिया

चेकोस्लोवाकियाने अपनी राजनैतिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए तथा भारत जन-गणसे परिचय एवं सम्बन्ध कायम करनेके लिए हिन्दी अध्ययन-अध्यापनकी व्यवस्था अपने देशमें की है। प्राग विश्वविद्यालयमें हिन्दीका एक अलग विभाग है, जहाँ छात्र नियमित रूपसे हिन्दीका अध्ययन करते हैं। वहाँके हिन्दी-इनचार्ज प्रोफेसर ओडोनेल स्मेकल कुछ दिनों पहले भारतके प्रवास पर भी आए थे। उन्होंने हिन्दीकी अनेक पुस्तकोंका चेक भाषामें अनुवाद किया है। डॉ० ओताकर पेर्तोल्ड भी प्राग-विश्वविद्यालयमें हिन्दी प्राध्यापक हैं। यहाँ हिन्दी पढ़ाई की यह विशेषता है कि शुद्ध हिन्दी लिखने-पढ़नेके साथ-साथ उसके शुद्ध उच्चारण पर तथा बोलनेकी सहज सुन्दर लकब पर ध्यान दिया जाता है। इसके लिए वे आकाशवाणी हिन्दीके समाचारों एवं बी. बी. सी. के हिन्दी कार्यक्रमोंका उपयोग करते हैं।

१० वर्ष पूरे होनेके उपलक्षमे १९५८ मे हिन्दी शिक्षा सघका दशाब्दि समारोह आयोजित हुआ और एक हिन्दी प्रचार सप्ताह मनाया गया। इस अवसर पर एक भारत-झलक प्रदर्शनी भी आयोजित की गई थी।

पूर्व आफ्रिका—करीब दस वर्षसे पूर्व आफ्रिकामे भी श्री अनन्त शास्त्री, मोम्बासाके प्रयत्नसे हिन्दी प्रचार कार्य सुन्दर ढगसे हो रहा है। मध्य तथा पूर्व आफ्रिकामे बसे हुए लगभग ४लाख भारतीय धन-धान्यसे सुखी है। ये अपनी मातृभूमि भारतकी सस्कृतिसे सम्पर्क रखनेकी दृष्टिसे राष्ट्रभाषा सीखनेकी ओर रुचि दिखाते है और राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी परीक्षाओमे सम्मिलित होते है।

श्री मावजीभाई जोशी तथा श्री अनन्त शास्त्रीजीके हिन्दी-प्रचार-कार्यके प्रयत्न सराहनीय है।

पूर्व आफ्रिकामे मोम्बासा, नैरोबी, एलडोरेट, किसुमु, नकरू, कम्पाला, कार्गोरा, दारेसलाम, टागा, म्वान्झा, सैलस्बरी, लुसाका, मगड़ीशो, जाजीबार, वेरा आदि स्थानोमे हिन्दी की पाठशालाए है एव नियमित हिन्दी वर्ग चलते है।

भारतीय आयुक्त के शिक्षा अनुभागने नैरौबीमें हिन्दी पढानेकी व्यवस्था की। भारत सरकारने नैरोबीकी पच्चीस स्कूलोके लिए पुस्तके खरीद दी है। दो अशकालीन अध्यापकोंका वेतन भी भारतीय आयुक्त द्वारा प्रदान किया गया। नैरोबी मे हिन्दी की पहली पुस्तकके लिए ४० रु भी दिए गए थे।

पूर्व आफ्रिकामें टागानिका, युगाडा तथा केनियाका समावेश होता है। टागानिकामें शिनयागा, मुसोमा, दारेसलाम, टागा आदि, युगाडामे त्तुगाझी, म्बाले, नगोन्गेरा, जिंजा, कबाले, कम्पाला आदि तथा केनियामे नैरोबी, मोम्बासा, ब्रोडेरीक फाल्स, किसुमु आदि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके परीक्षा-केन्द्र है।

पश्चिमी आफ्रिका—भारतसे आकर बसे हुए लोगोमे हिन्दी प्रचारके प्रति काफी दिलचस्पी है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा का एक परीक्षा केन्द्र 'लोरेन्को मारक्विस' मे चलता है।

दक्षिण रोडेशिया

भारतीय जनोमे हिन्दी प्रचार का काफी काम हो रहा है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की परीक्षा-ओका एक केन्द्र 'बुलावायो' मे चला करता है।

सूदान

जो प्रवासी भारतीय सूडान के नागरिक बन गए है अथवा उस देश मे रहने लगे है उनमे हिन्दी शिक्षा के लिए तीव्र ललक रहती है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके परीक्षा केन्द्र नियमित रूपसे कसाला और पोर्ट सूडानमे चला करते हैं।

इरीट्रिया

इरीट्रियाके अस्मारा, इरीट्रियामें हिन्दी परीक्षाओका एक केन्द्र है। यहाँसे परीक्षार्थी राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी परीक्षामें बैठा करते है।

जो आफ्रिकी विद्यार्थी उच्चस्तरीय या तकनीकी अध्ययनके लिए भारत आते है उन्हे हिन्दी सिखानेके लिए भारत सरकार अनुदान दिया करती है।

ब्रिटेनकी हीं है। इसलिए उस देशमें भारतकी सर्व-प्रमुख भाषा हिन्दीके अध्ययन-अध्यापनकी व्यवस्था समुचित रूपसे की जाए, यह स्वाभाविक ही है। और यही कारण है कि अंग्रेज सरकारके उपनिवेश विभागमें तथा राष्ट्र-कुटुम्व विभागमें हिन्दी भाषाके कुशल लेखक एवं पण्डित काफी तादादमें मिलते हैं।

ऑक्सफोर्ड, डुरहॅम तथा केम्ब्रिज विश्वविद्यालयोंको भारत सरकार की ओरसे हिन्दी पुस्तकें भेंट स्वरूप प्रदान की गई हैं। लन्दन आदि शहरोंमें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके परीक्षा एवं प्रचार केन्द्र स्थित हैं।

आफ्रिका

दक्षिण आफ्रिका—दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय लोग सन् १८६० से बस रहे हैं। वहाँ भारतीयोंमें प्रथम हिन्दी-प्रचार कार्य करनेवाले स्वामी शंकरानंदजी हुए। उनके बाद स्वामी भवानी दयाल सन्यासीने हिन्दी प्रचारका कार्य किया। एक 'धर्मवीर' पत्र भी वहाँ उन्होंने निकाला था। उन्हींके प्रयत्नोंसे हिन्दीके प्रचार कार्यकी दक्षिण आफ्रिकामें जड़ें जमीं थीं। सन् १९४७ में श्री नरदेवजी वेदालंकारके दक्षिण आफ्रिकामें पहुँचनेके बाद हिन्दी प्रचारके कार्यको विशेष गति मिली। उनकी सलाहसे १९४८ में एक हिन्दी सम्मेलन बुलाया गया था। उस सम्मेलनमें एक प्रस्ताव द्वारा हिन्दी शिक्षा संघ नाताल की स्थापना की गई और उसे दक्षिण आफ्रिका का सब कार्य सौंप दिया गया। दक्षिण आफ्रिकामें अधिकतर भारतीय नाताल प्रान्तमें ही वसे हुए हैं। इनमें तमिल-भाषी व्यक्तियोंके बाद हिन्दी-भाषी लोगोंकी संख्या अधिक है और उनके लिए स्थान-स्थानपर हिन्दी पाठशालाएँ चलाई जा रही हैं।

युवक आर्यसमाज क्लेयर वुड, मियर-बैंक सनातन धर्म उन्नति सभा, वेद धर्म सभा पीटर मेरित्सबर्ग, वैदिक विद्या प्रसारक सभा, आर्य समाज प्लेसिस्लेयर, वैदिक युवक सभा विल्गे फोंटीन, आर्य समाज रेअिस्तोर्प, आर्य समाज माऊंट पाट्रिज, हिन्दी विद्या मंदिर जोहानीसबर्ग, नागरी प्रचारिणी सभा स्प्रिंगफील्ड, कंडेला इस्टेट हिन्दू संगठन, एसेन्डीन रोड हिन्दी पाठशाला, भारत हिन्दी पाठशाला जेकबस, बिनोनी हिन्दी पाठशाला, सनातन धर्म सभा लेड़ी स्मिथ, आर्य समाज केटोमेनोर, आर्य समाज वेस्टविल, इनान्डा इन्डयन वेलफेयर सोसायटी, बिलेयर सोशियल सोसायटी, केवेन्डिश हिन्दी पाठशाला, डरवन पाठशाला, गुजराती हिन्दी स्कूल लेडी स्मिथ नवयुवक हिन्दी पाठशाला सीकाउलेक, हिन्दी युवक सभा लेडी स्मिथ, डरवन केन्द्र हिन्दी प्रचार समिति, क्लेयरवुड हिन्दी रात्रि वर्ग आदि पाठशालाएँ चल रही हैं इनमें ३००० के करीब विद्यार्थी हिन्दी नियमित रूपसे सीखते हैं। २२ और पाठशालाएँ अभी संघमें नई सम्मिलित हुई हैं।

दक्षिण आफ्रिकामें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की ही परीक्षाएं चलती हैं। समिति दक्षिण आफ्रिकाको वार्षिक अनुदान भी नियमित रूपसे देती आ रही है।

दक्षिण आफ्रिकामें प्लेसीअर, डरवन, जोहानीसवर्ग, पीटरमेरित्सवर्ग, केप टाऊन, स्प्रिन्ग्स, डरवन एन. ई. आदि स्थानोंमें राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके केन्द्र चलते हैं और सैकड़ों की संख्यामें परीक्षार्थी सम्मिलित होते हैं। हिन्दी शिक्षा संघकी ओरसे संगीत-नृत्य नाटक, भाषण आदि प्रतियोगिताएँ भी हिन्दीमें आयोजित की जाती हैं।

(इ) सुमित्रानन्दन पन्तकी दो कविताएँ—(:हैबोन-शा : विश्वकी श्रेष्ठ कविताएँ।)
(ई) वच्चोके गीत—('कोदान-शा' विश्वके बाल-गीतोंका संग्रह—विश्वके बाल-साहित्य संग्रहका १८ वाँ खण्ड।)

३—जापानकी पत्र-पत्रिकाओमें निम्नलिखित रचनाएँ अनूदित होकर छप चुकी है—
(अ) प्रेमचन्दजीकी "बेटोवाली विधवा" कहानी—'किदाई बुन्याकु' (समकालीन साहित्य) के मई १९५७ के अकमें।
(आ) महादेवी वर्माकी 'घीसा' कहानी—जापान इण्डिया सोसायटी द्वारा प्रकाशित निशिइन बुन्का', खंड २ में।)
(इ) जैनेन्द्रकुमारकी 'पटनी'—किनोकुनिया बुक स्टोर द्वारा प्रकाशित, त्सुकुएके जुलाई १९५९ के अंकमें।
(ई) जयशकर 'प्रसाद' की "ध्रुव स्वामिनी"—कनसेई जापान इण्डिया सोसायटी द्वारा प्रकाशित निशि-इन बुन्का खड २ के मार्च १९६१ के अंकमे।
(उ) रामधारी सिह 'दिनकर' का "सस्कृतिके चार अध्याय" शीघ्र प्रकाशित हो रहा है।

४—जापानमें विद्यार्थियो द्वारा निम्नलिखित हिन्दी एकाकी नाटक खेले जा चुके है:—
(अ) श्री उपेन्द्रनाथ अश्कका 'अंजो दीदी', 'आदि-मार्ग' तथा 'पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ'।
(आ) डॉ॰ रामकुमार वर्माका 'उत्सर्ग।'
(इ) श्री लक्ष्मीनारायणलालका 'बाहरका आदमी।'
(ई) श्री जयशकर प्रसादका 'ध्रुव स्वामिनी।'
(उ) श्री प्रेमचन्दजीका 'कफन।'

५—जापानमे हिन्दीके निम्निलिखित प्रोफेसर है:—
(१) श्री हिसाया डोई, असिस्टेंट प्रोफेसर, टोकियो युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन लेग्वेजेस।
(२) श्री ओटाया टनाका, प्रोफेसर चुओ युनिवर्सिटी।
(३) श्री शान्तिलाल झवेरी, लेक्चरर, टोकियो युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन लेंग्वेजेस।
(४) कुमारी पूर्णलता लेक्चरर, टोकियो युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन लेग्वेजेस।
(५) श्री सन्तप्रकाश गाधी, लेक्चरर टोकियो युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन लेग्वेजेस।
(६) श्री नोरीहिको उचीदा, असिस्टेंट प्रोफेसर, ओसाका युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज।
(७) श्री केतारो यामामाटो, प्रोफेसर, ओसाका युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज।
(८) श्री वत्सुरो कोगा, असिस्टेंट प्रोफेसर, ओसाका युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज।

६—जापानमें एक गांधी इन्स्टीटयूट है जो गांधीजीके तत्वोंके साथ साथ हिन्दीका भी प्रचार एव प्रसार करती है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके हिन्दी वर्ग भी जापानमें चलाए जाते है। क्योटो समितिका एक परीक्षा केन्द्र चल रहा है।

चीन

भारत और चीन हजारों वर्षोंसे पड़ोसी देश हैं और इसलिए एक-दूसरेमें एक-दूसरेको अनेकों प्रकारकी दिलचस्पियाँ रहती चली आई हैं। (अभी-अभी तो हमारे राष्ट्रकी उत्तरी तथा पश्चिमी सीमाओंपर चीनका वहशियाना खूनी आक्रमण ही चल रहा है।) इसलिए चीनमें भारतकी भाषाओंके और विशेषकर सबसे अधिक बोली एवं समझी जानेवाली भाषाके रूपमें हिन्दीके अध्ययनपर विशेष तत्परता एवं योजना पूर्वक ध्यान दिया जाता रहा है। चीन अपने यहाँ ऐसे दुभाषियोंकी फौज खड़ी करना चाहता है जो हिन्दीमें माहिर हों, योग्यतापूर्वक हिन्दी लिख-पढ़ तथा बोल ले सकें ताकि भारतीय जनतामें विरोधी प्रचार मोर्चेपर उनका उपयोग किया जा सके। अकेले इन दिनों पीकिंग विश्वविद्यालयमें ४० छात्र हिन्दीका गहराईसे अध्ययन कर रहे हैं। विदेशोंसे हिन्दीमें समाचार तथा टिप्पणियाँ आदि प्रेषित करनेवाले देशोंमें शायद चीन ही एकमात्र ऐसा देश है जहाँ समाचार प्रेषित करनेवाला व्यक्ति भारतीय नहीं, हिन्दी सीखा हुआ चीनी है।

चीन हिन्दीमें कुछ पत्र-पत्रिकाओंका भी नियमित प्रकाशन करता आया है। विदेशोंमें सोवियट रूसके बाद चीन ही में हिन्दीमें पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकाएँ इतनी बड़ी तादादमें छापी जाती हैं। अन्तर इतना ही है कि चीन भारतकी जनता तक अपनी बात एवं प्रचार पहुँचानेके लिए यह सब उठापटक करता है, भारतके साहित्य एवं संस्कृतिसे रूसकी तरह अपनी जनताको समृद्ध एवं संस्कारित करनेके लिए नहीं। अब यह बात दूसरी है कि हिन्दी कविताएँ तथा भारतीय साहित्य अपनी शक्तिसे चीनी छात्रोंके मनमें अपने लिए अनुराग एवं ललक पैदा करनेमें कुछ अंश तक सफल हो जाएँ। कहते हैं कि हिन्दी कविताओंके अनुवादको पढ़कर ही कुछ छात्रोंके मनमें उन्हें मूल हिन्दीमें पढ़नेकी तीव्र इच्छा जाग उठी थी और उन्हींकी इच्छापूर्तिके लिए चीनमें सर्वप्रथम हिन्दी अध्यापनकी व्यवस्था की गई थी। चीनमें हिन्दी भाषाके इतिहास, व्याकरण, साहित्य इ० सम्बन्धी शोधकार्य भी चलाए जा रहे हैं।

भारत सरकारकी ओरसे पीकिंग स्थित भारतीय दूतावासको तथा शँघाई स्थित काउंसलेट जनरलको वहाँके भारतीय बच्चोंको हिन्दी पढ़ानेके लिए हिन्दी पुस्तकें भेंट में दी गई हैं।

विएतनाम

विएतनाम गणतन्त्रके नई दिल्ली स्थित काउंसलेट जनरलके अनुसार विएतनामके किसी कालेज या विश्वविद्यालयमें हिन्दी-विषयके अध्ययन-अध्यापनकी व्यवस्था नहीं है, लेकिन राजधानी सैगांनमें तथा अन्य महत्वपूर्ण शहरोंमें बहुतसे लोग हिन्दी जानते समझते हैं। भारतीय चलचित्र न सिर्फ वहाँके हिन्दुस्तानियोंमें बल्कि वियतनामियोंमें भी लोकप्रिय हैं। सैगानके एक या दो सिनेमाघरोंमें हिन्दी चलचित्रोंके प्रदर्शनकी विशेष व्यवस्था है।

ब्रह्मदेश

ब्रह्मदेश संस्कृति, भूगोल एवं इतिहासकी दृष्टिसे भारतके बहुत निकट है। आजसे २५–३० साल पहिले तक वह अँग्रेजोंके अधीन भारतका एक अंग ही था। भारतके अन्य प्रान्तोंकी तरह भारतीय

(इ) सुमित्रानन्दन पन्तकी दो कविताएँ—(:हैबोन-शा : विश्वकी श्रेष्ठ कविताएँ।)
(ई) बच्चोंके गीत—('कोदान-शा' विश्वके बाल-गीतोंका संग्रह—विश्वके बाल-साहित्य संग्रहका १८ वाँ खण्ड।)

३—जापानकी पत्र-पत्रिकाओंमें निम्नलिखित रचनाएँ अनूदित होकर छप चुकी हैं—
(अ) प्रेमचन्दजीकी "बेटोंवाली विधवा" कहानी—'किदाई बुन्गकु' (समकालीन साहित्य) के मई १९५७ के अंकमें।
(आ) महादेवी वर्माकी 'घीसा' कहानी—जापान इण्डिया सोसायटी द्वारा प्रकाशित निशिइन बुन्का', खंड २ में।)
(इ) जैनेन्द्रकुमारकी 'पटनी'—किनोकुनिया बुक स्टोर द्वारा प्रकाशित, त्सुकुएके जुलाई १९५९ के अंकमें।
(ई) जयशंकर 'प्रसाद' की "ध्रुव स्वामिनी"—कनसेई जापान इण्डिया सोसायटी द्वारा प्रकाशित निशि-इन बुन्का खंड २ के मार्च १९६१ के अंकमे।
(उ) रामधारी सिंह 'दिनकर' का "संस्कृतिके चार अध्याय" शीघ्र प्रकाशित हो रहा है।

४—जापानमें विद्यार्थियों द्वारा निम्नलिखित हिन्दी एकांकी नाटक खेले जा चुके हैं:—
(अ) श्री उपेन्द्रनाथ अश्कका 'अजो दीदी', 'आदि-मार्ग' तथा 'पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ'।
(आ) डॉ० रामकुमार वर्माका 'उत्सर्ग।'
(इ) श्री लक्ष्मीनारायणलालका 'बाहरका आदमी।'
(ई) श्री जयशंकर प्रसादका 'ध्रुव स्वामिनी।'
(उ) श्री प्रेमचन्दजीका 'कफन।'

५—जापानमें हिन्दीके निम्निलिखित प्रोफेसर हैं :—
(१) श्री हिसाया डोई, असिस्टेंट प्रोफेसर, टोकियो युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन लेंग्वेजेस।
(२) श्री ओटाया टनाका, प्रोफेसर चुओ युनिवर्सिटी।
(३) श्री शान्तिलाल झवेरी, लेक्चरर, टोकियो युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन लेंग्वेजेस।
(४) कुमारी पूर्णलता लेक्चरर, टोकियो युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन लेंग्वेजेस।
(५) श्री सन्तप्रकाश गाधी, लेक्चरर टोकियो युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन लेंग्वेजेस।
(६) श्री नोरीहिको उचीदा, असिस्टेंट प्रोफेसर, ओसाका युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज।
(७) श्री केंतारो यामामाटो, प्रोफेसर, ओसाका युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज।
(८) श्री कत्सुरो कोगा, असिस्टेंट प्रोफेसर, ओसाका युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज।

६—जापानमें एक गांधी इन्स्टीट्यूट है जो गांधीजीके तत्वोंके साथ साथ हिन्दीका भी प्रचार एव प्रसार करती है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके हिन्दी वर्ग भी जापानमें चलाए जाते हैं। कियोटो समितिका एक परीक्षा केन्द्र चल रहा है।

चीन

भारत और चीन हजारों वर्षोंसे पड़ोसी देश हैं और इसलिए एक-दूसरेमें एक-दूसरेको अनेकों प्रकारकी दिलचस्पियाँ रहती चली आई हैं। (अभी-अभी तो हमारे राष्ट्रकी उत्तरी तथा पश्चिमी सीमाओंपर चीनका वहशियाना खूनी आक्रमण ही चल रहा है।) इसलिए चीनमें भारतकी भाषाओंके और विशेषकर सबसे अधिक बोली एवं समझी जानेवाली भाषाके रूपमें हिन्दीके अध्ययनपर विशेष तत्परता एवं योजना पूर्वक ध्यान दिया जाता रहा है। चीन अपने यहाँ ऐसे दुभाषियोंकी फौज खड़ी करना चाहता है जो हिन्दीमें माहिर हों, योग्यतापूर्वक हिन्दी लिख-पढ़ तथा बोल ले सकें ताकि भारतीय जनतामें विरोधी प्रचार मोर्चेपर उनका उपयोग किया जा सके। अकेले इन दिनों पीकिंग विश्वविद्यालयमें ४० छात्र हिन्दीका गहराईसे अध्ययन कर रहे हैं। विदेशोंसे हिन्दीमें समाचार तथा टिप्पणियाँ आदि प्रेषित करनेवाले देशोंमें शायद चीन ही एकमात्र ऐसा देश है जहाँ समाचार प्रेषित करनेवाला व्यक्ति भारतीय नहीं, हिन्दी सीखा हुआ चीनी है।

चीन हिन्दीमें कुछ पत्र-पत्रिकाओंका भी नियमित प्रकाशन करता आया है। विदेशोंमें सोवियट रूसके बाद चीन ही में हिन्दीमें पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकाएँ इतनी बड़ी तादादमें छापी जाती हैं। अन्तर इतना ही है कि चीन भारतकी जनता तक अपनी बात एवं प्रचार पहुँचानेके लिए यह सब उठापटक करता है, भारतके साहित्य एवं संस्कृतिसे रूसकी तरह अपनी जनताको समृद्ध एवं संस्कारित करनेके लिए नहीं। अब यह बात दूसरी है कि हिन्दी कविताएँ तथा भारतीय साहित्य अपनी शक्तिसे चीनी छात्रोंके मनमें अपने लिए अनुराग एवं ललक पैदा करनेमें कुछ अंश तक सफल हो जाएँ। कहते हैं कि हिन्दी कविताओंके अनुवादको पढ़कर ही कुछ छात्रोंके मनमें उन्हें मूल हिन्दीमें पढ़नेकी तीव्र इच्छा जाग उठी थी और उन्हींकी इच्छापूर्तिके लिए चीनमें सर्वप्रथम हिन्दी अध्यापनकी व्यवस्था की गई थी। चीनमें हिन्दी भाषाके इतिहास, व्याकरण, साहित्य इ० सम्बन्धी शोधकार्य भी चलाए जा रहे हैं।

भारत सरकारकी ओरसे पीकिंग स्थित भारतीय दूतावासको तथा शँघाई स्थित काउंसलेट जनरलको वहाँके भारतीय बच्चोंको हिन्दी पढ़ानेके लिए हिन्दी पुस्तकें भेंट में दी गई हैं।

विएतनाम

विएतनाम गणतन्त्रके नई दिल्ली स्थित काउंसलेट जनरलके अनुसार विएतनामके किसी कालेज या विश्वविद्यालयमें हिन्दी-विषयके अध्ययन-अध्यापनकी व्यवस्था नहीं है, लेकिन राजधानी सैगांनमें तथा अन्य महत्वपूर्ण शहरोंमें बहुतसे लोग हिन्दी जानते समझते हैं। भारतीय चलचित्र न सिर्फ वहाँके हिन्दुस्तानियोंमें बल्कि वियतनामियोंमें भी लोकप्रिय हैं। सैगानके एक या दो सिनेमाघरोंमें हिन्दी चलचित्रोंके प्रदर्शनकी विशेष व्यवस्था है।

ब्रह्मदेश

ब्रह्मदेश संस्कृति, भूगोल एवं इतिहासकी दृष्टिसे भारतके बहुत निकट है। आजसे २५–३० साल पहिले तक वह अँग्रेजोंके अधीन भारतका एक अंग ही था। भारतके अन्य प्रान्तोंकी तरह भारतीय